हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

पंचम भाग

['दस्त' से 'न्हावना' तक, शब्दसंख्या—१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट — रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह — जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन — रामचंद्र वर्मा

संपादकमंडल

संपूर्णानंद — कमलापति त्रिपाठी
नगेंद्र — धीरेंद्र वर्मा
रामधन शर्मा — हरवंशलाल शर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (स्वर्गीय) — शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (सह० संपा०) — सुधाकर पांडेय

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८९० संं० २०२५ वि० १९६८ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)

आवश्यक संशोधन

पृष्टसंख्या २३१६ के बाद कृपया २३१७, २३१८ आदि पढ़ें। आठ पृष्ठों के बाद पुनः भूल से २३३३, २३३४ आदि छप गया है, इन्हें २३२५, २३२६ आदि पढ़ें। पृ० २६३६ के बाद से अंत तक की पृष्ठसंख्या भी अशुद्ध छप गई है, जिन्हें कृपया २६३७, २६३८ आदि पढ़ें; अंतिम पृष्ठसंख्या २७२४ होगी।

शंभुनाथ वाजपेयी
द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० सपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूं। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएंगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूं कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनःसंपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खंडों तक भारत सरकार ने वहन किया है, इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हम संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहे हैं। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी सहर्ष सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुरुचिसंपन्न साहित्यकारों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि थे। इस समारोह में संशोधित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके संपादकों का एक एक ताम्रपत्र, मानपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा: 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं। उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत पंचम खंड में 'दस्त' से लेकर 'न्हावना' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ३९० पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५२० पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते थे और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं, सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
विजया दशमी २०२५ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं।]

संकेताक्षर	विवरण
अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अखिलेश (शब्द०)	अखिलेश कवि
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनुक्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इति०	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इनशा (शब्द)	इनशा अल्ला खाँ
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०

एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी ग्रंथ
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वीं सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य : यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवीं सं०
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वीं सं०
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंवर (शब्द०)	गुंवर कवि
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र

गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवादक
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चिता	चिता, [illegible] सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०

ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६,१९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अश्क,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र०सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
ध्रुव०	ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद
धूप०	धूप और धुआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्नदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
नाभादास (शब्द०)	नाभादास संत
नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देसी०	देसी नाममाला
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरोली, प्रथम सं०

पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू सहब की बानी [१-३ भाग], बेलवे-डियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्र-वाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
बाँकी० ग्रं० बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० राम-नारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्ना-कर', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०

बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
वृहत्०	वृहत्संहिता
वृहत्संहिता (शब्द०)	वृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १६३१ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (बीरबल)
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १६५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि सं०, १६८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्र प्रेस, बंबई, संवत् १६६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १६६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १६४६ ई०
भा० इ० रु०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १६३३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १६५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम स०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १६८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऍंड संस, दिल्ली, १६५३ ई०

भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज. इलाहाबाद, द्वि० सं०, १६३६ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल. सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १६३६ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प० सं०, १८६१ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १६६६ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १६५० ई०

मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना–४, प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्मसंग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चोकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लु (शब्द०)	लल्लूलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर

वीणा — वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०

वेनिस (शब्द०) — वेनिस का बाँका

वैशाली०, वै० न० — वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०

वो दुनिया — वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०

व्यंग्यार्थ (शब्द०) — व्यंग्यार्थ कौमुदी

व्यास (शब्द०) — अंबिकादत्त व्यास

ब्रज (शब्द०) — ब्रज (शब्द०)

शं० दि० (शब्द०) — शंकरदिग्विजय

शंकर० — शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड संस, आगरा, प्र० सं०

शंभु (शब्द०) — शंभु कवि

शकुं० — शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी

शकुंतला — शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०

शाहजहाँनामा (शब्द०) — शाहजहाँनामा

शार्ङ्गधर सं० — शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१

शिखर० — शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५

शिवप्रसाद (शब्द०) — राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद

शिवराम (शब्द०) — शिवराम कवि

शुक्ल० अभि० ग्रं० — शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन

शृं० सत० (शब्द०) — शृंगार सतसई

शृंगार सुधाकर (शब्द०) — शृंगार सुधाकर

शेर० — शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

शैली — शैली, करुणापति त्रिपाठी

श्यामा० — श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

श्रद्धानंद (शब्द०) — स्वामी श्रद्धानंद

श्रीधर पाठक (शब्द०) — श्रीधर पाठक

श्रीनिवास ग्रं० — श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

संतति० — चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी

संचिता — संचिता (कविता संग्रह),

संत तुरसी० — संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

सं० दरिया, संत दरिया — संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०

संत र० — संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०

संतवाणी०, संत०सार० — संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

संन्यासी, — संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

संपूर्णा० अभि० ग्रं० — संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन — समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

सत्य० — कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०

सत्यार्थप्रकाश (शब्द०) — सत्यार्थप्रकाश

सबल (शब्द०) — सबलसिंह चौहान [महाभारत]

सभा० वि० (शब्द०) — सभाविलास

सरस्वती (शब्द०) — सरस्वती, मासिक पत्रिका

स० शास्त्र — समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०

स० सप्तक — सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०

सहजो० — सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०

साकेत — साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०

सागरिका — सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

साम० — सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल पटना, द्वि० सं०

सा० दर्पण — साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०

सा० लहरी — साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना

सा० समीक्षा — साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग

साहित्य० — साहित्यालोचन

सिद्धांतसंग्रह (शब्द०) — सिद्धांतसंग्रह

सीताराम (शब्द०) — सीताराम कवि

सुंदर० ग्रं० — सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता

सुंदरीसिंदूर (शब्द०) — सुंदरीसिंदूर

सुखदा — सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०

सुखदेव (शब्द०) — कवि 'सुखदेव'

सुधाकर (शब्द०) — महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी

सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना०प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १६३४ ई०
सो अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १६४६ ई०
हर्ष०	हर्षचरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १६५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार, प्रयाग, १६४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १६३६ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १६४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	अनु०	अनुकरण शब्द
अ०	अरबी	अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अक० रूप	अकर्मक रूप	अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक

अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्ध मा०	अर्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभय०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
(को०). (को०)	अन्य कोश
कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित्
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
ति०	तिब्बती भाषा
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली

न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरांसीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बँग०	बँगला भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलायम भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी
यौ०	यौगिक
राज०	राजस्थानी
लश०	लशकरी
ला०	लाक्षणिक
लैं०	लैटिन
व० कृ०	वर्तमान कृदंत
वि०	विशेषण
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
वै०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
(शब्द०)	शब्दसागर
सं०	संस्कृत
संयो०	संयोजक अव्यय
संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
स०	सकर्मक

सक० रूप	सकर्मक रूप	(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा	>	व्युत्पन्न
सर्व०	सर्वनाम	†	प्रांतीय प्रयोग
स्पे०	स्पेनी भाषा	‡	ग्राम्य प्रयोग
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त	✓	धातुचिह्न
स्त्री०	स्त्रीलिंग	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
हिं०	हिंदी	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

दस्त[1]—वि० [सं०] १. छोड़ा हुआ। त्यक्त। बहिष्कृत। २. फेंका हुआ। क्षिप्त। ३. विनष्ट। क्षीण। नष्ट [को०]।

दस्त[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पतला पायखाना। पानी ऐसा मल गिरने की क्रिया। विरेचन।

क्रि० प्र०—आना। —होना।

मुहा०—दस्त लगना = मल निकलने का वेग जान पड़ना। पायखाना लगना।

२. हाथ। उ०—सदगुरु नाथ अमल मस्त। उस अमल में साहेब दस्त।—दक्खिनी०, पृ० १२५।

यौ०—दस्तकार। दस्तखत। दस्तगीर। दस्तराज। दस्तपनाह। दस्तबंद। दस्तबदस्त। दस्तबरदार। दस्तबस्ता। दस्तबुर्द। दस्तयाब।

दस्त[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दश्त] जंगल। बयाबान। मरुस्थल। उ०—सीस बिछा तब अब क्या रोना मनी मान को खोवै हो। दम दम याद करै साहिब को नेकी दस्त में बोवै हो।—पलटू०, पृ० ८९।

दस्तक[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. हाथ मारकर खट खट शब्द उत्पन्न करने की क्रिया। खटखटाने की क्रिया। २. बुलाने के लिये दरवाजे की कुंडी खटखटाने की क्रिया। घर के भीतर के लोगों को बुलाने के लिये बाहर से किवाड़ पर हाथ मारने की क्रिया। उ०—मनिया लजाती और मुसकाती हुई दरवाजे पर उनकी दस्तक देती हुई स्कूली लड़कियों की तरह शिकायत भरे स्वर से कहने लगी।—जिप्सी, पृ० १८६।

मुहा०—दस्तक देना = बुलाने के लिये किवाड़ खटखटाना।

३. किसी से देना या मालगुजारी वसूल करने के लिये निकाला हुआ हुक्मनामा। वह आज्ञापत्र जिसे लेकर कोई सिपाही कर्ज या मालगुजारी वसूल करने के लिये जावे। गिरफ्तारी या वसूली का परवाना।

क्रि० प्र०—जाना।

यौ०—दस्तक सिपाही = वह सिपाही जो किसी से मालगुजारी आदि वसूल करने या किसी को पकड़ने के लिये तैनात हो।

४. माल आदि ले जाने का परवाना। निकास की चिट्ठी। राहदारी का परवाना। उ०—भक्ति अंग को छापि, अंक दस्तक लिखि दीन्हों।—धरम०, पृ० ८१। ५. कर। महसूल। टैक्स। चुंगी।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—दस्तक बाँधना या लगाना = व्यर्थ का व्यय ऊपर डालना। नाहक का खर्च जिम्मे करना।

दस्तकार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] हाथ का कारीगर। हाथ से कारीगरी का काम करनेवाला आदमी।

दस्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हाथ की कारीगरी। कला संबंधिनी वह सुंदर रचना जो हाथ से की जाय। जैसे, बेल बूटे काढ़ना, आदि।

दस्तखत—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तख़त] अपने हाथ का लिखा हुआ नाम। हस्ताक्षर। जैसे,—उस दस्तावेज पर तुम कभी दस्तखत न करना।

विशेष—जिस लेख के नीचे किसी का दस्तखत होता है वह उसी का लिखा हुआ समझा जाता है, अतः उस लेख में जो बातें होती हैं उन्हें स्वीकार करने या पूरी करने के लिये वह नियम के अनुसार बाध्य होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दस्तखत लेना = दस्तखत कराना। किसी का नाम उसके हाथ से लिखवा लेना।

दस्तखती—वि० [फ़ा० दस्तख़त] जिसपर दस्तखत हो। (लेख) जिसपर लिखने या लिखानेवाले का नाम उसी के हाथ का लिखा हो। जैसे, दस्तखती चिट्ठी।

दस्तग—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तक] दे० 'दस्तक'। उ०—अहंकार गहर-मद करत ना खोट भली तृष्णा चपरासी को दस्तग नित जारी है।—राम० धर्म०, पृ० ५७।

दस्तगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] हाथ पकड़नेवाला। सहारा देनेवाला। सहायक। मददगार। उ०—दस्तगीर गाढ़े कर साथी।—जायसी (शब्द०)।

दस्तगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मदद। हिमायत। शरण। पनाह। उ०—यह दिल फकीरी दस्तगीरी मस्त गुंज मिसाल है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २६०।

दस्तदराज—वि० [फ़ा० दस्तदराज] १. धृष्ट। ढीठ। निडर। २. मार बैठनेवाला। हथछुट। ३. अन्यायी [को०]।

दस्तदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दस्तदराजी] १. ढिठाई। २. मार बैठने की आदत। ३. अन्याय; अत्याचार।

दस्तपनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिमटा।

दस्तबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कलाई पर पहनने का स्त्रियों का एक अलंकार। २. नृत्य का एक प्रकार [को०]।

दस्त बदस्त—क्रि० वि० [फ़ा०] हाथों हाथ। उ०—ऐसी वे तुम्हारे दरस भिखारी, होवै सौदा दस्तबदस्ती।—घनानंद, पृ० ५३४।

दस्तबरदार—वि० [फ़ा०] जो किसी काम से हाथ हटा ले। जो किसी वस्तु से अपना हाथ या अधिकार उठा ले। जो कोई वस्तु छोड़ दे या किसी बात से बाज रहे।

मुहा० —दस्तबरदार होना = बाज आना। किसी वस्तु पर का अपना अधिकार छोड़ देना। छोड़ देना। त्याग देना। जैसे,—अगर तुम मकान से दस्तबरदार हो जाओ तो हम १०००) और दें।

दस्तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. त्याग। २ त्यागपत्र।

दस्तबस्ता—क्रि० वि० [फा० दस्तबस्तह्] हाथ जोड़े हुए। नम्रता के साथ [को०]।

दस्तबुर्द—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपहरण। छीन लेना। जबरदस्ती दूसरे की चीज अपने कब्जे में कर लेना [को०]।

दस्तयाब—वि० [फ़ा०] हस्तगत। प्राप्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दस्तरखान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तरख्वान] वह चादर जिसपर खाना रखा जाता है। चौकी पर की वह चादर जिसपर भोजन की प्याली रखते हैं (मुसलमान)। उ०—पहले वह दस दोस्तों के साथ, नवाबी दस्तरखान सजाकर बैठने।—शराबी, पृ० १०४।

दस्ताँन(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तानह्] दे० 'दस्ताना'। उ०—दस्तान रच्चि सु हथ्थ। करि चढ़े मध्थ अकथ्थ।—पृ० रासो, पृ० १२३।

दस्ता[1]—संज्ञा पुं० [फा० दस्तह्] १. वह जो हाथ में आवे या रहे। २. किसी औजार आदि का वह हिस्सा जो हाथ से पकड़ा जाता है। मूठ। बेंट। जैसे, छुरी का दस्ता। ३. फूलों का गुच्छा। गुलदस्ता। ४. एक प्रकार की कुरती जो चोग या कबा पर लगती है। ५. सिपाहियों का छोटा दल। गारद। ६. चपरास। सजाफ। ७. किसी चीज का उतना बंडल या पूला जितना हाथ में आ सके। ८. कागज के चौबीस तावों की गड्डी। ९. सोंटा। डंडा। सोटा। १० खरल का मुँगरा। खरल का मूसला (को०)।

दस्ता[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का धतूरा। दुविला।

दस्ता[3]—संज्ञा पुं० [हिं० जरता] दे० 'जस्ता'।

दस्ताना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तानह्] १. पंजे और हथेली में पहनने का बुना हुआ कपड़ा। हाथ का मोजा। २. वह लंबी सीधी या सीधी तलवार जिसकी मूठ के ऊपर कलाई तक पहुँचनेवाला लोहे का परदा लगा रहता है। यह मूठ में लगे तीलियों के साथ प्रायः निकलता है। ३. हाथ की रक्षा के लिये बना लोहे का बख्तर। दस्तत्राण (को०)।

दस्तार—संज्ञा स्त्री० [फा०] पगड़ी। उष्णीष। साफा। उ०—मीर साहब ज़माना नाज़ुक है दोनों हाथों से थामिए दस्तार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ९३१।

दस्तारचा—संज्ञा पुं० [फा० दस्तारचह्] छोटी पगड़ी [को०]।

दस्तारबंद—वि० [फा०] अरबी साहित्य का ज्ञाता [को०]।

विशेष—जो व्यक्ति अरबी की पूरी शिक्षा प्राप्त कर लेता है, उसे उसके शिक्षक प्रमाण के रूप में पगड़ी बाँध देते हैं।

दस्तावर—वि० [फा०] जिससे दस्त आवे। विरेचक। जैसे,—दस्तावर दवा।

दस्तावेज—संज्ञा स्त्री० [फा० दस्तावेज़] वह कागज जिसमें दो या कई आदमियों के बीच के व्यवहार की बात लिखी हो और जिसपर व्यवहार करनेवालों के दस्तखत हों। व्यवहार संबंधी लेख। वह पत्र जिसे लिखकर किसी ने कोई प्रतिज्ञा की हो, किसी प्रकार का ऋण या देना स्वीकार किया हो अथवा द्रव्य संपत्ति आदि का लेनदेन किया हो। जैसे, तमस्सुक, रेहननामा, किवाला इत्यादि। उ०—(क) जबतक रजिस्ट्री न हो जाय, सच्चे से सच्चा दस्तावेज भी प्रामाणिक नहीं माना जाता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७३। (ख) कागज, पत्तर, दस्तावेज, तमस्सुक हुंडलोट वगैरह जिस संदूक में रखे हैं, उसकी चाबियों का गुच्छा किसके जिम्मे है?—नई०, पृ० १६।

क्रि० प्र०—लिखना।

दस्तावेजी—वि० [फ़ा० दस्तावेज] दस्तावेज संबंधी। दस्तावेज का। जैसे, दस्तावेजी रुपया, दस्तावेजी कागज।

दस्तास—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] हाथ से चलाई जानेवाली चक्की [को०]।

दस्ती[1]—वि० [फ़ा० दस्त (= हाथ)] हाथ का। जैसे, दस्ती रूमाल।

दस्ती[2]—संज्ञा स्त्री० १. हाथ में लेकर चलने की बत्ती। मशाल। २. छोटी मूठ। छोटा बेंट। ३ छोटा कलमदान। ४. वह सौगात जिसे विजयादशमी के दिन राजा लोग अपने हाथ से सरदारों और मुसाहबों को बाँटते हैं। ५. कुश्ती का एक पेंच जिसमें पहलवान अपने जोड़ का दाहिना हाथ दाहिने हाथ से अथवा बायाँ हाथ बाएँ हाथ से पकड़कर अपनी ओर खींचता है और झट पीछे जाकर झटके के द्वारा उसे पटक देता है।

दस्तूर—संज्ञा पुं० [फा०] १. रीति। रस्म। रवाज। चाल। प्रथा। २. नियम। कायदा। विधि। ३. पारसियों का पुरोहित जो उनके धर्मग्रंथ के अनुसार कर्मकांड कराता है। ४. जहाज के वे छोटे पाल जो सबसे ऊपरवाले पाल के नीचे की पंक्ति में दोनों ओर होते हैं। —(लश०)।

दस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [फा० दस्तूर] वह द्रव्य जो नौकर अपने मालिक का सौदा लेने में दुकानदारों से हक के तौर पर पाते हैं। दस्तूरी का कुछ बँधा हिसाब होता है जैसे, एक रुपए के सौदे पर आना पैसा। उ०—मगन के मुबरा मिले ओमैं दस्तूरी काटा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५।

दस्तोपा—संज्ञा पुं० [फा० दस्त ओ पा (= पैर)] १. हाथ पैर। २. परिश्रम। मिहनत। प्रयास [को०]।

दस्पना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तपनाह] चिमटा।

दस्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञकर्ता। यजमान। २. अग्नि। ३. तस्कर। चोर। ४. खल [को०]।

दस्म[2]—वि० १. सौन्दर्ययुक्त। सुंदर। २ दर्शनीय। आश्चर्यजनक [को०]।

दस्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. डाकू । चोर । २. रिपु । शत्रु (को०) । ३. असुर । अनार्य । म्लेच्छ । दास । उ०—प्राणा को मारी देखो उस दस्यु देश में जीती थी ।—साकेत, पृ० ३८८ ।

विशेष—दस्युओं का वर्णन वेदों में बहुत मिलता है । आर्यों के भारतवर्ष में चारों ओर फैलने के पहले ये छोटी छोटी बस्तियों में इधर उधर रहते थे और आर्यों को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते थे, उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे, उनके चौपाए चुरा ले जाते थे तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव करते थे । अनेक मंत्रों में इन यज्ञहीन, अमानुष दस्युओं का नाश करने की प्रार्थना इंद्र से की गई है । नमुचि, शंबर और वृत्र नामक दस्युपतियों के इंद्र के हाथ से मारे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर है । जैसे, 'हे इंद्र ! तुमने दस्यु शंबर की सौ से अधिक पुरियों का नाश किया ।' 'हे इंद्राग्नि ! तुमने एक बार में दासों की नब्बे पुरियों को हिला डाला ।' 'हे इंद्र ! तुमने कुलितर के पुत्र शंबर को ऊँचे पर्वत के ऊपर मुँह के बल गिराकर मार डाला ।' 'तुमने मनुष्यों के सुख की इच्छा से शंबर की पुरियाँ चूर्ण किया ।'

वेदों में दस्युओं के लिये दास और असुर शब्द भी आए हैं । इन दस्युओं के 'पणि' आदि कई भेद थे । पीछे जब कुछ दस्यु सेवा आदि के लिये मिला लिए गए तब उनकी उत्पत्ति के संबंध में कुछ कथाएँ कल्पित की गईं । ऐतरेय ब्राह्मण में वे विश्वामित्र द्वारा उत्पन्न और शाप द्वारा भ्रष्ट बतलाए गए हैं । मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में जो क्रियालुप्त और जाति बाहर हो गए हैं वे सब चाहे म्लेच्छभाषी हों चाहे आर्यभाषी, दस्यु कहलाते हैं । महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने दरदों के सहित काम्बोज तथा उत्तरपूर्व के जो दस्यु थे उन्हें भी परास्त किया । अथर्ववेद में दाढ़ीवाले दस्युओं का भी उल्लेख है । इन दस्युओं के बीच निवास करना ब्राह्मण आदि के लिये निषिद्ध था ।

दस्युता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लुटेरापन । डकैती । २. राक्षसपन । दुष्टता । क्रूर स्वभाव ।

दस्युवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डकैती । लुटेरापन । २. चोरी ।

दस्युहा—संज्ञा पुं० [सं० दस्युहन्] असुरों को मारनेवाले । इंद्र ।

दस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशिर ऋतु । २. गदहा । ३. अश्विनीकुमार । ४. दो का समूह । जोड़ा । ५. दस्यु । लुटेरा (को०) । ६. अश्विनी नक्षत्र (को०) ।

यौ०—दस्र देवता = अश्विनी नक्षत्र । दस्रसू = सूर्य की पत्नी ।

दस्र—वि० १. दोहरा । २ हिंसा करनेवाला ।

दस्रसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी संज्ञा जो अश्विनीकुमार की माता थी [को०] ।

दहँसत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दहशत] दे० 'दहशत' । उ०—तन दिल में दहँसत अति जागी । मुरकि फौज खालिक की भागी ।—शुक्ल अभि० ग्रं० (इति०), पृ० ८४ ।

दह—संज्ञा पुं० [सं० ह्रद (भावंत विपर्यय), अथवा सं० दह्र, प्रा० दह] १. नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो । नदी के भीतर का गड्ढा । पाल । उ०—नै वसुदेव धँसे दह मामुहि तिहूँ लोक उजियारे हो ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—कालीदह ।

२. कुंड । होज । उ०—टोरन टूटि उठै असि सच्छी । दह में मानो उछलैं मच्छी ।—लाल (शब्द०) ।

दह—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] ज्वाला । लपट । लौ ।

दह—वि० [फ़ा०] दस । उ०—(क) भादों घोर राति अँधियारी । द्वार कपाट कोट भट रोके दह दिसि कंत कंस भय भारी ।—सूर (शब्द०) । (ख) हाट बाट नहिं जाहिं निहारी । जनु पुर दह दिसि लागि दवारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दहचंद = दसगुना । दहदिला = साहसी । वीर । दहदिसि = चारों ओर । दसों दिशाओं में । उ०—दहदिसि दीपक तेज के बिन बाती बिन तेल । चहुँ दिसि सूरज देखिए दादू अद्भुत खेल ।—दादू०, पृ० १०० । दहरोजा = चंद दिन का । कुछ दिनों का ।

दहक—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] १. आग दहकने की क्रिया । धधक । दाह । २. ज्वाला । लपट । † ३. शर्म । हया । लज्जा ।

दहकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दहकना] दहकने की क्रिया या भाव ।

दहकना—क्रि० अ० [सं० दहन] १. ऐसा जलना कि लपट ऊपर उठे । लौ के साथ बलना । धधकना । भड़कना । जैसे, आग दहकना, कोयला दहकना । उ०—अंग अंग आगि ऐसे केसर के नीर लागे, चीर लागे बरन, अबीर लागे दहकन ।—सेवक (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. शरीर का गरम होना । तपना । धिकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहकान—संज्ञा पुं० [फ़ा० देहकान] गाँव का रहनेवाला । कृषक । किसान । देहाती । गँवार [को०] ।

दहकाना—क्रि० स० [हिं० दहकना] १. धधकाना । ऐसा जलाना कि लौ ऊपर उठे ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. भड़काना । क्रोध दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहकानियत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० देहकानियत] गँवारपन । भोंदूपन । अक्खड़पन [को०] ।

दहकानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० देहकान] देहाती । गँवार । उ०—मैं तुम्हें समझती रही, मिलिंद, तुम मुझे वणिक या दहकानी । सदियाँ हम दोनों साथ रहे, यह बात न अब तक पहचानी ।—हुंकार, पृ० १७ ।

दहकारना†—क्रि० स० [देश०] धूल आदि दबाने के लिये पानी का छिड़काव करना । सींचना ।

दहगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाह + आग] गरमी । ताप ।

दहचंद—वि० [फ़ा०] दसगुना [को०] ।

दहड़ दहड़—क्रि० वि० [सं० दहन या अनु०] लपट फेंकते हुए। धायँ धायँ। जैसे, दहड़ दहड़ जलना। उ०—इस बीच देखते क्या हैं कि वन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है। लल्लू० (शब्द०)।

दहणि† —संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] दे० 'दहनि'। उ०—दादू छूटि सुदाई, कहीं को नाहीं, फिरिहौ पिरथी सारी। दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधु सब्द विचारी।—दादू०, पृ० ३४२।

दहदल† —संज्ञा स्त्री० [हिं० दलदल] दे० 'दलदल'।

दहन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दहनीय, दह्यमान] १. जलने की क्रिया या भाव। भस्म होने या करने की क्रिया। दाह। जैसे, लंकादहन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. अग्नि। आग। ३. कृत्तिका नक्षत्र। ४. तीन की संख्या। ५. भिलावाँ। भल्लातक। ६. चित्रक। चीता। ७. दुष्ट या क्रोधी मनुष्य। ८. कबूतर। कपोत। ९. एक रुद्र का नाम। १०. ज्योतिष में एक योग जो पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होता है। ११. ज्योतिष में एक वीथी जो पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होती है।

दहन[२]—वि० १. जलानेवाला। दाहक। उ०—जय रघुवंस वनज वन भानू। गहन दनुज वन दहन कृसानू।—मानस, १। २. दाहयुक्त [को०]।

दहन[३]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मुख। मुँह। उ०—दहन पा हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७। २. छिद्र। सूराख।

दहन—संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० 'कंजा'।

दहनकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] धूम। धुआँ।

दहनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की पत्नी, स्वाहा [को०]।

दहनर्क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र।

दहनशील—वि० [सं०] जलनेवाला।

दहनसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] पवन। वायु [को०]।

दहना[१]—क्रि० अ० [सं० दहन] १. जलना। बलना। भस्म होना। उ०—जियरा उड़ानो सो डोलै, हियरा धकधोई करै, छाई पियराई, तन सियराई सों दहै।—आनंदघन (शब्द०)। २. क्रोध से संतप्त होना। कुढ़ना।

दहना[२]—क्रि० स० १. जलाना। भस्म करना। उ०—उलटी गाढ़ परी दुर्वासा दहत सुदरसन जाको।—सूर (शब्द०)। २. संतप्त करना। दुःखी करना। कष्ट पहुँचाना। उ०—ये बरहाईं लुगाईं सबै निसि द्यौस निवाज हमैं दहती हैं।—निवाज (शब्द०)। ३. क्रोध दिलाना। कुढ़ाना।

दहना[३]—क्रि० अ० [हिं० दह] १. धँसना। नीचे बैठना। † २. पानी में डूब जाना।

दहना[४]—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दाहिना'।

दहनागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अगर। दाहागुरु [को०]।

दहनाराति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का शत्रु जल जिससे आग बुझती है [को०]।

दहनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दहना] जलने की क्रिया। जलन। उ०—अंतर उदेग दाह, आँखिन आँसू प्रवाह, देखो अटपटी चाह भीजनि दहनि है।—आनंदघन (शब्द०)।

दहनीय—वि० [सं०] जलने या जलाए जाने योग्य।

दहनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि। सूर्यमुखी। आतशी शीशा।

दहनोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] आग की चिनगारी। लुक। लूका [को०]।

दहपट—वि० [फ़ा० दह (= दस, दसो दिशा) + पट (= समतल), जैसे, चौपट] १. गिराकर जमीन के बराबर किया हुआ। ढाया हुआ। ध्वस्त। चौपट नष्ट। उ०—सूरदास प्रभु रघुपति आए दहपट भइ लंका।—सूर (शब्द०)। २. रौंदा हुआ। कुचला हुआ। दलित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दहपटना—क्रि० स० [हिं० दहपट] १. ढाना। ध्वस्त करना। चौपट करना। नष्ट करना। २. रौंदना। कुचलना। दलित करना। उ०—बालिहू गर्व जिय माहिं ऐसो कियो; मारि दहपटि, दियो जम की घानी।—तुलसी। (शब्द०)।

दहपट्टनाⓅ—क्रि० स० [हिं० दहपट] दे० 'दहपटना'। उ०—हाँकि हाँकि दलनि दबाई दहपट्टि दते, बाजी औ बितुंड झुंड झूमत खरे जे हैं।—हम्मीर०, पृ० ५७।

दहबासी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दह (= दस) + बासी (प्रत्य०)] दस सिपाहियों का सरदार।

दहमर्द—वि० [फा० दहमर्दह्] १ असत्यभाषी। झूठा। २. वाचाल। बड़बड़िया। बक्की।

दहर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा चूहा। चुहिया। २. छछूँदर। ३. भ्राता। भाई। ४. बालक। ५. नरक। ६. वरुण। ७. हृदय का गर्त या हृदय (को०)।

दहर[२]—वि० १. स्वल्प। छोटा। २. सूक्ष्म। ३. दुर्बोध।

दहर[३]—संज्ञा पुं० [सं० ह्रद (आद्यंत विपर्यय)] १. दह। नदी में गहरा स्थान। उ०—अति अचगरी करत मोहन फटकि गेंडुरी दहर।—सूर (शब्द०)। २. कुंड। हौज। गड्ढा। पाल।

दहर दहर—क्रि० वि० [अनु० या सं० दहन (= जलना)] लपट फेंकते हुए। धधकते हुए। धायँ धायँ। जैसे, दहर दहर जलना।

दहरनाⓅ[१]—क्रि० अ० [हिं० दहलना] दे० 'दहलना'।

दहरना[२]—क्रि० स० दे० 'दहलाना'। उ०—सूर प्रभु आय गोकुल प्रगट भए संतन दै हरख, दुष्ट जन मन दहर के।—सूर (शब्द०)।

दहराकाश—संज्ञा पुं० [सं०] चिदाकाश। ईश्वर।

दहरोजा—वि० [फ़ा० दहरोजह्] अस्थायी। न टिकनेवाला [को०]।

दहरौरा—संज्ञा पुं० [हिं० दही + बड़ा] [स्त्री० दहरौरी] १. दही में भिगोया हुआ बड़ा। २. एक प्रकार का गुलगुला।

दहल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दहलना] डर से एकबारगी काँप उठने की क्रिया । थरथराहट ।

दहल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ह्रद, हिं० दहर] कुंड । उ०—गोधन खरकि खेत अरु बयार । गोरज दहल नाज अरु ज्वार ।—घनानंद०, पृ० ३०२ ।

दहलना—क्रि० अ० [सं० दर (=डर) + हिं० हलना (=हिलना)] डर से एकबारगी काँप उठना । डर के मारे जी धक से हो जाना । डर से चौंकना । भय से स्तंभित होना । जैसे,—वह राजा की चढ़ाई सुनते ही दहल उठा ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

मुहा०—जी या कलेजा दहलना = डर से हृदय काँपना । डर के मारे छाती धक धक करना ।

दहला[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दह (=दस) + ला (प्रत्य०)] ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें दस बूटियाँ हों । दस चिह्नोंवाला ताश ।

दहला[2]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] थाला । आलवाल । उ०—(क) कोऊ तुरंग मुरार अहै दहला कलपद्रुम भाजन संग को ।—शंभु (शब्द०) । (ख) रोमावली की कहौ दहला यह नाभि को गाड़ लिए सब भाखै ।—शंभु (शब्द०) ।

दहलाना—क्रि० स० [हिं० दहलना] डर से कँपाना । भय से चौंकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहलीज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दहलीज़] दे० 'देहरी' ।

दहलीज—संज्ञा स्त्री [फ़ा० दहलीज़] द्वार के चौखट की नीचेवाली लकड़ी जो जमीन पर रहती है । देहली । देहरी ।

मुहा०—दहलीज का कुत्ता = पिछलग्गू । दहलीज न झाँकना = दरवाजे पर न आना । दहलीज की मिट्टी ले डालना = फेरे पर फेरा करना । बार बार द्वार पर आना ।

दहलेजा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दहलीज] दे० 'दहलीज' ।

दहवट्ट—वि० [फ़ा० दह + पट] ध्वस्त । चौपट । तहपट । उ०—स्वामि ध्रम्म रत्त सु मन जे केई गजवट्ट । डरे रक्खत गिवर डर करैं सत्रु दहवट्ट ।—पृ० रा०, प्रा० ।

दहवाट—संज्ञा पुं० [सं० दश + वर्त्म, प्रा० दहवट्ट, दहवाट] विध्वंस । विनाश । उ०—तैं दाधी दसरथ तणा, दस सिर कर दहवाट ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६० ।

दहशत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] डर । भय । खौफ ।

दहसत, दहसति(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दहशत] दे० 'दहशत' । उ०—(क) तिनकी दहसत क्यों नाहिं मानै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३२ । (ख) दहसत नाहिं करै किसहू की, जिकिर अपानी खोलै हो । पलटू रोसन हुई कमानी, तनहा होइ जब डोलै हो ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८३ ।

दहसनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दह + सन] दस साल के खाते की बही ।

दहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दह] १. मुहर्रम का महीना । २. मुहर्रम की १ से १० तारीख तक का समय । ३. ताजिया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—निकलना ।

दहाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दह (= दस)] १. दस का मान या भाव । २. अंकों के स्थानों की गिनती में दूसरा स्थान जिसपर जो अंक लिखा होता है उससे उतने ही गुने दस का बोध होता है । जैसे, ८० में दहाई के स्थान पर ८ है जिसका मतलब है आठ गुना दस ।

विशेष—दे० 'इकाई' ।

दहाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द । गरज । जैसे, शेर की दहाड़ । २. रोने का घोर शब्द । आर्तनाद । चिल्लाकर रोने की ध्वनि ।

मुहा०—दहाड़ मारना या दहाड़ मारकर रोना = चिल्ला चिल्लाकर रोना ।

दहाड़ना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द करना । गरजना । गुर्राना । जैसे, शेर का दहाड़ना । २. जोर से चिल्लाकर रोना ।

दहन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दहन] अग्नि । उ०—तिनं लोमह जोगं प्रयही ज्वालनं सुप दुद्धह पज्जार मानं ।—पृ० रा०, २ । २५० ।

दहाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दहानह्] १. चौड़ा मुँह । द्वार । २. मुहाना । दर्रा । ३. मशक का मुँह ।

मुहा०—दहाना खोलना = (१) मशक का मुँह खोलना । पानी छोड़ना । (२) पेशाब करना (बाजारू) ।

३. वह स्थान जहाँ नदी दूसरी नदी या समुद्र में गिरती है । मुहाना । ४. मोरी । नाली । ५. लगाम जो घोड़े के मुँह में रहती है ।

दहार—संज्ञा पुं० [सं० व्यार (= प्रदेश)] १. प्रांत । प्रदेश । २. आसपास का प्रदेश । मेंड़ ।

दहिंगल—संज्ञा पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाली आठ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसके परों पर सफेद और काली लकीरें होती हैं । यह फुदक फुदककर अपनी पूँछ ऊपर उठाया करती है ।

दहिऔरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दहिउरी' ।

दहिउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दधि] दे० 'दही' । उ०—भरें कलस तरुनी चलि आईं । दहिउ लेहु ग्वालिनि गोहराईं ।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २११ ।

दहिजरवा—वि० [हिं० दाढ़ीजार] दे० 'दाढ़ीजार' । उ०—तोरी भुनर पर आवुर रीझे, अब दहिजरवा फिर फिर जाय ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६३ ।

दहिजार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाढ़ीजार' ।

दहिड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दहेड़ी + इया (प्रत्य०)] दे० 'दहेड़ी' । उ०—एक दहिड़िया दही जमायो दुसरी परि गई साईं रे । न्यूति जमाऊँ प्रेम को करहा, द्वार मुनिस की डारी रे ।—कबीर ग्रं०, पृ० ११२ ।

दहिन—वि० [सं० दक्षिण] अनुकूल । दक्षिण । उ०—बेरि एक दइय दहिन जब होए, निरधन धन जके धरय गोए ।—विद्यापति, पृ० ३५४ ।

दहिना—वि० [सं० दक्षिण] [स्त्री० दाहिनी] शरीर के दो पार्श्वों में से उस पार्श्व का नाम जिधर के अंगों या पेशियों

अधिक बल होता है। बायाँ का उलटा। अपसव्य। जैसे, दहिना हाथ, दहिना पैर, दहिनी आँख।

मुहा० दहिना कमरतोड़ = दाहिनी ओर मुड़ने का शब्द। दाहिनी ओर घूमना है। (पालकी के कहार)।

दहिनावर्त —वि० [सं० दक्षिणावर्त] दे० 'दक्षिणावर्त'। उ० —पुहमी दैव न दहिनावर्त। नाती पाऊँ फिरौं न मरता। —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०५।

दहिने —क्रि० वि० [हिं० दहिना] दाहिनी ओर को। जैसे, —वह मकान तुम्हारे दहिने पड़ेगा।

यौ० —दहिने होना = अनुकूल होना। प्रसन्न होना। दहिने बाएँ = इधर उधर। दोनों पार्श्व में। दोनों ओर।

दहियक —संज्ञा पुं० [फा० दह (= दस)] दशमांश। दसवाँ हिस्सा।

दहियल —संज्ञा पुं० [फ़ा० दह (= दस) + हिं० इयल (प्रत्य०)] दे० 'दहला'।

दही —संज्ञा पुं० [सं० दधि] खटाई के द्वारा जमाया हुआ दूध। वह दूध जो खटाई पड़ जाने के कारण जमकर थक्के के रूप में हो गया हो।

विशेष —मिट्टी के बरतन में रखे हुए गरम दूध में थोड़ा सा दही (या और कोई खट्टा पदार्थ) डाल देते हैं; जिससे थोड़ी देर में वह थक्के के रूप में जम जाता है। पाश्चात्य देशों की विधि के अनुसार दूध जमाने के लिये लैक्टिक एसिड का प्रयोग किया जाता है। दही दो प्रकार का होता है। एक सजाव या मोटा जिसमें घी या मक्खन निकाला हुआ नहीं होता और जिसमें घी से युक्त मलाई की तह होती है। दूसरा सिंनुआ या [illegible] जो मक्खन निकाले हुए दूध को जमाने से बनता है और खट्टा होता है। घी दही को मथकर ही निकाला जाता है। हिंदुओं के यहाँ दही मंगल द्रव्यों में से है।

वैद्यक में दही अग्निदीपक, स्निग्ध, गुरु, धातव, रक्तपित्तकारक, बलकारक, शुक्रवर्धक, कफवर्धक तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, अतीसार, विषमज्वर इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। यूरप के बड़े बड़े डाक्टरों ने हाल में परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है कि दही से बढ़कर और कोई आयुर्वर्धक पदार्थ मनुष्य के लिये नहीं है। [illegible] उन्होंने [illegible] बतलाया है। [illegible] दही से शरीर में ऐसे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, [illegible] करनेवाले कीटाणुओं को खा जाते हैं।

मुहा० —दही का तोड़ = दही का पानी जो कपड़े में रखकर दही को निचोड़ने से निकलता है। (हाथ पर) दही जमा रहना = (१) किसी का [illegible] (२) किसी घटना या बात के संबंध में एकदम मौन हो जाना, कुछ भी न कहना। दही दही = दहिंगल नाम की चिड़िया की बोली। दही दही करना = किसी चीज का मोल लेने के लिये लोगों से कहते फिरना।

दहीदही‡ —संज्ञा स्त्री० [अनु०] दहिंगल नाम की चिड़िया की बोली।

दहीली —वि० स्त्री० [हिं० दाह + ईली (प्रत्य०) अथवा सं० दग्ध] जली हुई। दग्ध। उ० —नेकु नहीं पिय तें कहुँ बिछुरति, तातें नाहिन काम दहीली। सूर सखी बूझै यह कैहौं, आजु गई यह भेट पहीली। —सूर०, १०।१७७२।

दहुँ(पु) —अव्य० [सं० अथवा] अथवा। या। कि वा। २. स्यात्। कदाचित्।

दहुँवनि —वि० [देश०] दोनों। उ० —सुंदरि बिरहनि के निकट आई बिरहनि कोइ। दुखिया ही दुखिया मिली दहुँवनि दीनो रोइ। —सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६८२।

दहु(पु) —अव्य० [सं० अथवा] दे० 'धौं'। उ० —जनि अवहि सबहि दहु आस कहु, पकलि दोओ अललाए गइ। —कीर्ति०, पृ० ६२।

दहेँगर —संज्ञा पुं० [हिं० दही + घड़ा] दही का घड़ा।

दहेँड़ी —संज्ञा स्त्री० [हिं० दही + हंडी] दही रखने का मिट्टी का बरतन। उ० —अहिरिनि हाथ दहेँड़ि सगुन लेइ आवइ हो। तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

दहेज —संज्ञा पुं० [अ० जहेज] वह धन और सामान जो विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है। दाय। यौतुक।

दहेला(पु)[१] —वि० [हिं० दहला + एला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दहेली, दहेली] १. जला हुआ। दग्ध। २. संतप्त। दुःखी। उ० —(क) सुनु सजनी मैं रही अकेली बिरह दहेली इत गुरुजन अहैं। —(शब्द०)। (ख) कहाँ गए मनमोहन तजि के काहे बिरह दहेली है। —(शब्द०)।

दहेला[२] —वि० [हिं० दहलना] [वि० स्त्री० दहेली] भीगा हुआ। ठिठुरा हुआ। उ० —गाहक सिध सयाननि के जिनकी मति की मति देह दहेली। —केशव (शब्द०)।

दहेँड़ी —संज्ञा स्त्री० [हिं० दही + हंडी] दही की हाँड़ी। उ० —ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी, अछूती दहेँड़ी जमी। —नंद० ग्रं०, पृ० ३६१।

दहोत्तरसौ —संज्ञा पुं० [सं० दशोत्तरशत] एक सौ दस।

दह्यमान —वि० [सं०] जो जल रहा हो। जलनेवाला। उ० —तब क्यों दह्यमान यह जीवन, चढ़ न सका मंदिर में अब तक। —माधवी, पृ० ८।

दह्यौ† —संज्ञा पुं० [हिं० दही] दे० 'दही'। उ० —औरन को दह्यौ छिलाछिलो जामत, मैं तो औटाइ जमायो बाँध छाँव भरिके तमी। —नंद० ग्रं०, पृ० ३६१।

दह्र[१] —वि० [सं०] सूक्ष्म। लघु। छोटा [को०]।

दह्र[२] —संज्ञा पुं० १. हृदय रूपी खात। हृदय रूपी गर्त। हृदय। २. अग्नि। आग। ३. वनाग्नि। दावाग्नि। दावानल [को०]।

दांड —वि० [सं० दाण्ड] [वि० स्त्री० दाण्डी] दंड से संबद्ध। छड़ी या दंड से संबंधित [को०]।

दांडक्य —संज्ञा पुं० [सं० दाण्डक्य] द्वारपाल। छड़ी बरदार। रक्षक। २. एक राजा का नाम [को०]।

दांडाजिनिक¹—संज्ञा पुं० [सं० दाण्डाजिनिक] वह जो दंड और अजिन धारण करके अपना अर्थसाधन करता फिरे। साधु के वेश में लोगों को धोखा देनेवाला आदमी।

दांडाजिनिक²—वि० कपटी। छली (को०)।

दांडिक—संज्ञा पुं० [सं० दाण्डिक] वह जो दंड देने के लिये नियुक्त हो। जल्लाद।

दांत¹—वि० [सं० दान्त] १. जिसका दमन किया गया हो। वशीभूत। दबाया हुआ। उ०—तो क्या मैं भ्रम में थी नितांत। संहार-बध्य असहाय दांत।—कामायनी, पृ० २४०। २. जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। जिसका शरीर तप आदि का क्लेश सह सके। ३. जो दांत का बना हो। ४. दांत संबंधी।

दांत²—संज्ञा पुं० १. मैनफल। २. पहाड़ पर की बावली। ३. विदर्भ के राजा भीमसेन के दूसरे पुत्र जो दमयंती के भाई थे। ४. दानकर्ता। दाता (को०)। ५. दमनक नाम का वृक्ष (को०)।

दांतक—वि० [सं० दान्तक] दाँत से निर्मित। हाथीदाँत से निर्मित। हाथीदाँत का (को०)।

दांता—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ता] एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)।

दांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रियनिग्रह। इंद्रियों का दमन। क्लेश आदि सहने की शक्ति। २. वश्यता। अधीनता। ३. विनय। नम्रता।

दांतिक—वि० [सं० दान्तिक] दे० 'दांतक'।

दांपत्य¹—वि० [सं० दाम्पत्य] स्त्री पुरुष संबंधी। स्त्री पुरुष का सा।

दांपत्य²—संज्ञा पुं० १. दंपती से संबंध रखनेवाले अग्निहोत्र आदि कर्म। २. स्त्री पुरुष के बीच का प्रेम या व्यवहार।

दांभ—वि० [सं० दाम्भ] दे० 'दांभिक'।

दांभिक¹—वि० [सं० दाम्भिक] १. दंभयुक्त। वंचक। पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। धोखेबाज। २. अहंकारी। घमंडी।

दांभिक²—संज्ञा पुं० १. बगला। बक। २. ढोंगी व्यक्ति।

दांभिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम्भिक + ता] ढोंगपन। आडंबरपन। दिखाऊपन।

दाँ¹—संज्ञा पुं० [सं० दा (प्रत्य०); जैसे, एकदा] दफा। बार। बारी। उ०—जोरि तुरंग रथ एक दाँ रवि न लेत विश्राम। तैसे ही नित पवन कों चलवे ही ते काम।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

दाँ²—वि० संज्ञा पुं० [फा०] ज्ञाता। जाननेवाला। जैसे, फारसीदाँ। उर्दूदाँ।

दाँई¹—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'दाई'।

दाँई²—संज्ञा स्त्री० दे० दाईं'।

दाँक—संज्ञा स्त्री० [सं० दाङ्क्ष (= चिल्लाना), हिं०, सं० डाकना] दहाड़। गरज। किसी प्राणी का भीषण स्वर। उ०—लखन वचन की धाक सों परयो समाज सनाक। जिमि सिंधुर गण थाक में परे सिंह की दाँक।—रघुराज (शब्द०)

दाँकना—क्रि० अ० [हिं० दाँक + ना (प्रत्य०)] गरजना। दहाड़ना। उ०—जैसे व्याल बेंग को ढूके परबीरी ताके हो। जैसे सिंह आपु मुख निरखै परे कूप में दाँकै हो।—सूर (शब्द०)।

दाँग¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. छह रत्ती की तौल। २. दिशा। तरफ ओर। ३. छठा भाग।

दाँग²—संज्ञा पुं० [हिं० डंका] नगाड़ा। डंका। उ०—दान दाँग बाजै दरबारा। कीरति गई समुंदर पारा।—जायसी (शब्द०)।

दाँग³—संज्ञा पुं० [हिं० डूंगर] १. टीला। छोटी पहाड़ी। २. पहाड़ की चोटी।

दाँगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डाँगर'।

दाँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डक (= डंडा)] वह लकड़ी जो जुलाहों की कंघी में लगी रहती है।

दाँज†—संज्ञा स्त्री० [सं० उदाहार्य्य] बराबरी। समता। जोड़। तुलना। उ०—(क) जाके रस को इंद्र हू तरसत सुधउ न पावत दाँज।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) न इंदीवरी देह को दाँज पावै। गोराई लखे पीत कंचो लजावै।—रघुराज (शब्द०)।

दाँजा†—संज्ञा पुं० [हिं० दाँज] दे० 'दाँज'।

यौ०—दाँजादाँजी = होड़ाहोड़ी। लागडाँट।

दाँड़ना—क्रि० स० [सं० दण्डन] १. दंड देना। सजा देना। २. जुरमाना करना।

दाँड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] दे० 'डाँड़ा'।

दाँड़ामेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाँड़ा + मेड़] दे० 'डाँड़ामेड़ा'।

दाँड़ी¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डाँड़ी'।

दाँड़ी²—संज्ञा स्त्री० दे० 'डाँड़ी'।

दाँत—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १. अंकुर के रूप में निकली हुई हड्डी जो जीवों के मुँह, तालू, गले और पेट में होती है और आहार चबाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खोदने इत्यादि के काम में आती है। दंत।

विशेष—मनुष्य तथा और दूध पिलानेवाले जीवों में दाँत दाढ़ और ऊपरी जबड़े के मांस में लगे रहते हैं, मछलियों और सरीसृपों में दाँत केवल जबड़ों ही में नहीं तालू में भी होते हैं। पक्षियों में दाँत का काम चोंच से निकलता है, उनके दाँत नहीं होते। असली दाँत मसूड़ों के गड्ढों में जमे रहते हैं। सरीसृप आदि में दाँत का जबड़े की हड्डी से अधिक घनिष्ठ लगाव होता है। रीढ़वाले जंतुओं में मुँह को छोड़ स्रोत (भोजन भीतर ले जानेवाले नल) में और कहीं दाँत नहीं होते। बिना रीढ़वाले क्षुद्र जंतुओं में दाँतों की स्थिति और प्रकृति में परस्पर बहुत विभिन्नता होती है। किसी के मुँह में, किसी की अँतड़ी में अर्थात् स्रोत के किसी स्थान में दाँत हो सकते हैं। केकड़ा, झिंगवा आदि के पेट में महीन महीन दाँत या दरानेदार हड्डियाँ सी होती हैं। जल के बहुत से कीड़ों में जिनका मुँह गोल या चक्राकार होता है, किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दाँतों का मंडल सा होता है। मनुष्य और वनमानुष में दंतावलि पूर्ण होती है, अर्थात् उनमें प्रत्येक प्रकार के दाँत होते हैं।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं—(१) चौका या राजदंत वर्ग (सामने के दो बड़े दाँत अर्थात् राजदंत और उनके दोनों पार्श्ववर्ती दाँत), (२) कुकुरदंत या शूलदंत, जो लंबे और नुकीले होते हैं और राजदंत के बाद दो दो पड़ते हैं, (३) चौभड़ जिनका सिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिनसे पीसा या चबाया जाता है। २१ या २२ वर्ष की अवस्था में जब आखिरी चौभड़ या अकिलदाढ़ निकलती है तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं। बहुत से दूध पिलानेवाले जीवों को दो बार दाँत निकलते हैं। पहले बचपन में जो दूध के दाँत निकलते हैं वे झड़ जाते हैं। पीछे स्थायी दाँत निकलते हैं। दूध के दाँतों और स्थायी दाँतों की संख्या और आकृति में भी भेद होता है। मनुष्य के बच्चे में दूध के दाँत बीस होते हैं। साँप आदि विषधर जंतुओं के दाँत के भीतर एक नली होती है जिसके द्वारा थैली से विष बाहर होता है।

पर्या०—रद। दशन। द्विज। रदन।

यौ०—दाँत का चौका = सामने के चार दाँतों की लड़ी।

मुहा०—दाँत उखाड़ना = (१) दाँत मसूड़े से अलग करना। (२) मुँह तोड़ना। कठिन दंड देना। दाँतों उँगली काटना = दे० 'दाँत तले उँगली दबाना'। दाँतकाटी रोटी = अत्यंत घनिष्ठ मित्रता। गहरी दोस्ती। घना मेल। जैसे,—राम और श्याम की तो दाँतकाटी रोटी है। दाँत काढ़ना = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत किटकिटाना, दाँत किचकिचाना = (१) दाँत पीसना। (२) क्रोध से दाँत पीसना। अत्यंत क्रोध प्रकट करना। दाँत किरकिराना = (क्रि० अ०) नीचे कंकड़ी, रेत आदि पड़ने के कारण दाँतों का ठीक न चलना। दाँत किरकिरे होना = हार मानना। हार जाना। हैरान हो जाना। दाँत कुरेदने को तिनका न रहना = पास में कुछ न रह जाना। सर्वस्व चला जाना। दाँत खट्टे करना = (१) खूब हैरान करना। (२) किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता या लड़ाई में परास्त करना। पस्त करना। जैसे,—मरहठों ने मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए। उ०—नूतन नूतन यंत्र प्रस्तुत कर विलायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिये शतशः प्रयत्न किए जा रहे हैं।—निबंधमालादर्श (शब्द०)। दाँत खट्टे होना = हार जाना। पस्त होना। हैरान होना। (किसी पर) दाँत गड़ना† = दे० '(किसी पर) दाँत लगना।' किसी के दाँतों चढ़ना = (१) किसी के आक्षेप आदि का लक्ष्य होना। किसी को खटकना। (२) बुरी नजर का निशाना बनना। टोक में आना। नजर में आना (स्त्रि०)। जैसे,—बच्चा लोगों के दाँतों चढ़ा रहता है इसी से फल नहीं पाता। (किसी के) दाँतों चढ़ाना = (१) किसी पर आक्षेप करते रहना। बुरी दृष्टि से देखना। पीछे पड़ा रहना। (२) नजर लगाना (स्त्रि०)। दाँत चबाना = क्रोध से दाँत पीसना। क्रोध प्रकट करना। उ०—दाँत चबात चले मधुपुर तें धाम हमारे को।—सूर (शब्द०)। दाँत जमना = दाँत निकलना। दाँत झड़ना = दाँत का टूटकर गिरना। दाँत झाड़ देना = दाँत तोड़ डालना। कठिन दंड देना। दाँत टूटना = (१) दाँत का गिरना। (२) बुढ़ापा आना। दाँत तले उँगली दबाना = (१) अचरज में आना। चकित होना। दंग रहना। (२) खेद प्रकट करना। अफसोस करना। (३) संकेत से किसी बात का निषेध करना। इशारे से मना करना।

विशेष—जब कोई कुछ अनुचित कार्य करने चलता है तब इष्ट मित्र या गुरुजन प्रकट रूप से वारण करने का अवसर न देख दाँतों के नीचे उँगली दबाकर निषेध करते हैं।

दाँत तोड़ना = परास्त करना। पस्त करना। हैरान करना। कठिन दंड देना। उ०—अलाउद्दीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो।—राधाकृष्णदास (शब्द०)। दाँत दिखाना = (१) हँसना। (२) डराना। घुड़कना। (३) अपना बड़प्पन दिखाना। दाँत देखना = घोड़े बैल आदि की उम्र का अंदाज करने के लिये उनके दाँत गिनना। दाँतों धरती पकड़कर = अत्यंत दरिद्रता और कष्ट से। बड़ी किफायत और तकलीफ से। जैसे,—दाँतों धरती पकड़कर किसी प्रकार दो महीने चलाए। दाँत न लगाना = दाँतों से न कुचलना। जैसे,—दाँत न लगाना, दवा यों उतार जाना। दाँत निकलना = बच्चों के दाँत प्रकट होना। दाँत जमना, दाँत निकालना = (१) दाँत उखाड़ना। (२) ओठों को कुछ हटाकर दाँत दिखाना। (३) व्यर्थ हँसना। जैसे,—क्यों दाँत निकालते हो सीधे बैठो। (४) गिड़गिड़ाना। दीनता दिखाना। हा हा खाना। जैसे,—वह दाँत निकाल माँगने लगा, तब कैसे न देते? (५) मुँह बा देना। टें बोल देना। डर या घबराहट से ठक रह जाना। (किसी वस्तु का) दाँत निकालना = फट जाना। दरार से युक्त होना। उधड़ना। जैसे, जूती का दाँत निकालना, दीवार का दाँत निकालना। दाँत निपोरना = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत निशोरना† = दे० 'दाँत निकालना'। दाँत पर न रखा जाना = खटाई के कारण दाँतों को सहन न होना। अत्यंत खट्टा लगना। दाँत पर मैल न होना = अत्यंत निर्धन होना। भुक्खड़ होना। जैसे,—उसके तो दाँत पर मैल भी नहीं वह तुम्हें देगा क्या? दाँतों पर रखना = चखना। मुँह में डालना। दाँतों पसीना आना = कठिन परिश्रम पड़ना। जैसे,—इस काम में दाँतों पसीना आवेगा। (बच्चे का) दाँतों पर होना = उस अवस्था को पहुँचना जिसमें दाँत निकलनेवाले हों। दाँत पीसना = दाँत पर दाँत रखकर हिलाना। दाँत किटकिटाना। दाँत बँधवाना = हिलते हुए दाँतों को तार से कसवाना। दाँत बजना = सरदी से दाढ़ के हिलने या काँपने के कारण दाँत पर दाँत पड़ना। दाँत खट खट होना। दाँत बजाना = दाँत पर दाँत पीसना। दाँत किटकिटाना। दाँत बनवाना = गिरे हुए दाँतों के स्थान में हड्डी या सीप आदि के नकली दाँत लगवाना। दाँत बैठ जाना = मूर्छा, लकवा आदि में पेशियों की स्तब्धता के कारण दाँत की ऊपर नीचेवाली पंक्तियों का परस्पर इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके। नीचे ऊपर के जबड़ों का सट जाना। दाँत मसमसाना या दाँत मीसना = दे० 'दाँत पीसना'।

(किसी का) दाँतों में जीभ सा होना = वैरियों के बीच रहना । शत्रुओं से प्रतिक्षण घिरा रहना । दाँतों में तिनका लेना = दया के लिये बहुत विनती करना । दंड आदि के छुटकारे के लिये बहुत गिड़गिड़ाना । बहुत अधीरता और विनय से क्षमा चाहना । हा हा खाना । (किसी वस्तु पर) दाँत रखना = (१) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । (२) दंश रखना । कीना रखना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव रखना । बैर लेने का विचार रखना । (किसी वस्तु पर) दाँत लगना = (१) दाँत धँसना । दाँत चुभने का घाव होना । (२) लेने की गहरी चाह होना । प्राप्ति की चिंता होना । जैसे,—जबकि उस चीज पर उसका दाँत लगा है तब वह कब तक रह सकती है ।

विशेष—बिल्ली आदि शिकारी जानवर जिस जंतु को एक बार मुँह से पकड़ लेते हैं फिर उसे जाने नहीं देते । इसी से यह मुहा० बना है ।

(किसी वस्तु पर) दाँत लगाना = (१) दाँत धँसाना । (२) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । लेने की घात में रहना । दाँत से दाँत बजना = सरदी के कारण दाढ़ के काँपने से दाँत पर दाँत पड़ना । दाँतों से उठाना = बड़ी कंजूसी से उठाकर रखना । कृपणता से संचित करना । जैसे,—एक दाना गिरे तो यह दाँतों से उठावे । किसी पर दाँत होना = (१) गहरी चाह होना । लेने या पाने की अत्यंत अधिक इच्छा होना । प्राप्ति की इच्छा होना । जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है । (२) किसी के प्रति दंश होना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव होना । किसी से बैर लेने का संकल्प होना । जैसे,—जब कि उसपर तुम्हारा दाँत है तब वह कितने दिनों तक बच सकता है ? (किसी के) तालू में दाँत जमना = बुरे दिन आना । शामत आना । जैसे,—किसके तालू में दाँत जमे हैं जो ऐसी बात मुँह से निकाल सके ?

२. दाँत के आकार की निकली हुई वस्तु । अंकुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतों के साथ एक पंक्ति में हो । दंदाना । दाँता । जैसे,—आरी के दाँत, कंघी के दाँत ।

दाँतघुँघुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + घुँघुनी] पोस्ते के दाने की घुघनी जो बच्चे का पहला दाँत निकलने पर बाँटी जाती है ।

दाँतना†—क्रि० अ० [हिं० दाँत] १. दाँतवाला होना । जवान होना (पशुओं के लिये बोलते हैं) । २. किसी हथियार की धार का इस प्रकार कुंठित होना कि वह कहीं उभर आवे और कहीं दब जाय । मुड़कर जगह जगह गुठला हो जाना । जैसे, कुल्हाड़ी का दाँतना ।

दाँतली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाट] डाट । काग ।

दाँता—संज्ञा पुं० [हिं० दाँत] दाँत के आकार का कँगूरा । दंदा । अंकुर की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतों के साथ एक पंक्ति में हो । दंदाना ।

मुहा०—दाँता पड़ना = किसी हथियार की धार में गुठले होने के कारण उभार और गड्ढे हो जाना ।

दाँताकिटकिट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + किटकिट (अनु०)] १. कहा-सुनी । झगड़ा । वाग्युद्ध । २. गाली गलौज ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना । —होना ।

दाँताकिलकिल—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दाँताकिटकिट' ।

दाँतिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दातन] दे० 'दातुन' । उ०—पाछे दोऊ जन दाँतिन करि स्नान करि मंदिर मों कृष्ण भट जाइ भोग सरायो ।—दो सौ बावन०, भा० १ पृ० ४५ ।

दाँतिया—संज्ञा पुं० [?] रेह का नमक । रेह या सोडा जिसे पीने के तंबाकू में उसे तेज करने के लिये डालते हैं ।

दाँती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] १ हँसिया जिससे घास या फसल काटते हैं । २. वह बड़ा खूँटा जो नाव के घाट पर गड़ा रहता है और जिससे नाव का रस्सा बाँध दिया जाता है । डंडा । ३. भिड़ (बर्रें) की जाति का एक कीड़ा जो बहुत काला होता है । काली भिड़ ।

दाँती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] १. दाँतों की पंक्ति । दंतावलि । बत्तीसी ।

मुहा०—दाँती बैठना या लगना = जबड़ों का परस्पर सट जाना । ऊपर नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके । कच्चा बैठना ।

२. दो पहाड़ों के बीच की सँकरी जगह । दर्रा ।

दाँती[3]—संज्ञा पुं० [सं० दन्ती] बनैला सूअर । उ०—गैंडे, काली गाय, साँड़, हिरन, दुगड दाँती शिकार किया ।—भारतेंदु ग्रं०, पृ० २५ ।

दाँना[1]—क्रि० स० [सं० दमन] पकी फसल के डंठलों को बैलों से इसलिये रौंदवाना जिसमें डंठल से दाना अलग हो जाय । दँवरी करना । उ०—इसलिये यदि यव द्वारा अन्न दाँया जाय तो दो ही तीन दिन में सब दाना भी अलग हो जाय ।—खेती की पहली पुस्तक (शब्द०) ।

दाँना[2]—संज्ञा पुं० [सं० दानव] दानव, दैत्य ।

दाँम—संज्ञा पुं० [सं० दाम] माला । उ०—सेवक बरन बर जीवन निवासघर, बकुलनि को लसत सुंदर परम दाँम ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८ ।

दाँमणी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०—कोर घटा, बग दाँमणी बूँद ...—ढोला०, दू० २५५ ।

दाँय—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दँवरी' ।

दाँयाँ—वि० [हिं० दाहिना] दे० 'दायाँ' ।

दाँव—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाव' ।

मुहा०—दाँव रोपना = पासे के खेल में बाजी पर रुपया लगाना । उ०—दूसरी सहरी अपनी हेकड़ी छेड़ती है और अपने दाँव रोपती हैं ।—फिसाना०, भा० ३ पृ० १०८ ।

दाँवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] १. दामिनी नाम का गहना । २ दे० 'दामिनी' ।

दाँवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी । रज्जु । दामरी । डोरी ।

उ०—बाँवरि ले बाँधन लगी जसुदा ह्वै बेपीर ।—व्यास (शब्द०) ।

दा[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] सितार का एक बोल । जैसे,—दा दिर दा दा इत्यादि ।

दा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्षा । बचाव । २. शोधन । ३. दान । ४. छेद । छेदन । ५. उपताप । ताप [को०] ।

दा[3]—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली । दातृ । (समासांत में प्रयुक्त) ।

दा[4]—प्रत्य० [पंजाबी] संबंधवाचक प्रत्यय । का ।

दाइ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दाय' और 'दाँव' । उ०—तू जिन करि री गहर नवल तिय, आन बन्यो भलि दाइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

दाइजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइज' । उ०—दाइज पाइ अनेक विधि, सुत सुतबधुन समेत ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८५ ।

दाइजा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइजा' । उ०—पाछें वह सब दाइजा को सामान जो हरिदास अपने घर तें ल्याए होते ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २७५ ।

दाइम—क्रि० वि० [अ० दायम] सदा । हमेशा । सर्वदा । उ०—हरदम हाजिर होणा बाबा, जब लग जीवै बंदा । दाइम दिल साँई सौं साबित पंच बखत क्या धंधा ।—दादू०, पृ० २५८ ।

दाइल—वि० [हिं० दावँ] दावँवाली । उ०—हावनि बहु भावनि करति, मनसिज मन उपजाइ । दाइल वह धाइन करत पाइल पाइ बजाइ ।—स० सप्तक० पृ० ३६५ ।

दाईँ[1]—वि० स्त्री० [हिं० दायाँ] दाहिनी । जैसे, दाईँ आँख ।

दाईँ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दाय् (प्रत्य०), हिं० दाँ (प्रत्य०)] बारी । दफा । बार । उ०—तब नहिं जाने पीर पराई । अब कस रोवहु अपनी दाईँ ।—विश्राम (शब्द०) ।

दाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री, फ़ा० दायह्] १. दूसरे के बच्चे को अपना दूध पिलानेवाली स्त्री । धाय ।

यौ०—दाई पिलाई ।

२. वह दासी जो बच्चे की देखरेख रखने या उसे खेलाने के लिये रखी जाय ।

यौ०—दाई खेलाई ।

३. वह स्त्री जो स्त्रियों को बच्चा जनने में सहायता देती हो । प्रसूता के उपचार के लिये नियुक्त स्त्री ।

यौ०—दाई जनाई ।

मुहा०—दाई से पेट छिपाना = जाननेवालों से कोई बात छिपाना । ऐसे मनुष्य से कोई बात गुप्त रखना जो सब रहस्य जानता हो ।

दाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी] १. पिता की माता । दादी । २. बड़ी बूढ़ी स्त्री ।

दाई[3]—वि० [सं० दायिन्] दे० 'दानी' ।

दाउँ—संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दे० 'दाँव' । उ०—सुभ जुआरिहि आपन दाऊँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाउँ[2]—संज्ञा पुं० [सं० दा > दाय् (प्रत्य०), हिं० दावँ] दावँ । दफा । बार । उ०—ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊँ । पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

दाऊ—संज्ञा पुं० [सं० देव या तात (= पिता, पिता का भाई) हिं० ताऊ, दाऊ] १. बड़ा भाई । २. बलदेव । बलराम । कृष्ण के बड़े भाई । उ०—मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो । सूर०, १०।२१५ । ३. पिता का बड़ा भाई ।

दाउद—संज्ञा पुं० [अ०] पारसी, ईसाई और मुसलमानों के एक पैगंबर का नाम ।

दाऊदखानी—संज्ञा पुं० [फा० दाऊदखानी] १. एक प्रकार का चावल । उ०—रायभोग औ काजर रानी । झिन बरूद औ दाऊदखानी ।—जायसी (शब्द०) । २. उत्तम प्रकार का सफेद गेहूँ । दाऊदी गेहूँ । गंगाजली गेहूँ ।

दाऊदिया—संज्ञा पुं० [अ० दाऊद] १. एक प्रकार का गेहूँ । दे० 'दाऊदी' । २. गुलदावदी का फूल । ३. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर दाऊदी फूल की तरह दिखाई पड़ती है । एक प्रकार का कवच ।

दाऊदी[1]—संज्ञा पुं० [अ० दाऊद] एक प्रकार का गेहूँ जिसका छिलका बहुत सफेद और नरम होता है ।

विशेष—कहते हैं, दिल्ली के बादशाह शाह आलम के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊद खाँ था, इस गेहूँ को मिस्र देश से लाए थे । यह सबसे अच्छा गेहूँ समझा जाता है ।

दाउदी[2]—संज्ञा स्त्री [फा० गुलदाऊदी] दे० 'गुलदाउदी' । उ०—बाहर है चाँदी की विस्तृत, झीनी चादर । जिसके आर पार दीखते हैं—बैजंती, दाऊदी, गेंदा औ इमली के पेड़ तनावर ।—चाँदनी०, पृ० २५ ।

दाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान करनेवाला व्यक्ति । दाता । २. यजमान [को०] ।

दाक्खाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राक्षा] अंगूरी शराब । उ०—कैसा पान करोगे ? दाक्खाँ, लाजा, गौड़, माध्वीक, मैरेय ?—वैशाली०, पृ० ८

दाक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण । दक्षिण दिशा [को०] ।

दाक्ष[2]—वि० दक्ष संबंधी [को०] ।

दाक्षायण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । स्वर्ण । २. आभूषण आदि सुनहरी चीजें । ३. स्वर्णमुद्रा । मोहर । अशरफी । ४. दक्ष द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण में है ।

दाक्षायण[2]—वि० १. दक्ष से उत्पन्न । २. दक्ष के गोत्र का । ३. दक्ष का । दक्ष संबंधी । जैसे, दाक्षायण यज्ञ ।

दाक्षायणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्ष की कन्या । २. अश्विनी आदि नक्षत्र । ३. रोहिणी नक्षत्र । ४. दंती वृक्ष । ५. दुर्गा । ६. कश्यप की स्त्री—; अदिति । ७. रेवती नक्षत्र (को०) । ७. दिति का एक नाम जो कश्यप की स्त्री और दैत्यों की माता थी (को०) ।

दाक्षायणी[2]—वि० [सं० दाक्षायणिन्] १ सोने का । सुवर्णयुक्त । २. स्वर्णकुंडलधारी व्यक्ति ।

दाक्षायणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव (को०) ।

दाक्षायरय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । रवि [को०] ।

दाक्षाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिद्ध चिड़िया । गृध्र [को०] ।

दाक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष का पुत्र [को०] ।

दाक्षिकंथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्षिकन्था] वाह्लीक देश ।

दाक्षिण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक होम का नाम (शतपथ ब्राह्मण) । २. उक्त होम में प्राप्त दक्षिणा (को०) ।

दाक्षिण²—वि० १. दक्षिण संबंधी । २. दक्षिणा संबंधी ।

दाक्षिणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'दाक्षिणिक' । २. वह व्यक्ति जो इष्टापूर्त आदि यज्ञों द्वारा चंद्रलोक प्राप्त करे [को०] ।

दाक्षिणात्य¹—वि० [सं०] दक्खिनी । दक्षिण देश का । जैसे, दाक्षिणात्य ब्राह्मण ।

दाक्षिणात्य²—स्त्री० पुं० १. दक्षिण देश । भारतवर्ष का वह भाग जो विंध्याचल के दक्षिण पड़ता है । दक्षिण खंड ।

विशेष—इस खंड के अंतर्गत महाराष्ट्र, मलाबार, कोंकण, तैलंग कर्नाटक इत्यादि प्रदेश हैं । नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी दक्षिण की प्रधान नदियाँ हैं । दे० 'तामिल', 'तैलंग' और महाराष्ट्र ।

२. दक्षिण देश का निवासी । ३. नारियल ।

दाक्षिणिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बंधन जो दक्षिणाप्रधान इष्टापूर्त आदि कर्मों को कामनावश करने से होता है (याज्ञवल्क्य) ।

दाक्षिण्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुकूलता । किसी के हित की ओर प्रवृत्त होने का भाव । प्रसन्नता । २. उदारता । सरलता । सुशीलता । ३. दूसरे के चित्त को फेरने या प्रसन्न करने का भाव । ४. साहित्य में नाटक का एक अंग, जिसमें वाक्य या चेष्टा द्वारा दूसरे के उदासीन या अप्रसन्न चित्त को फेरकर प्रसन्न करने का भाव दिखाया जाता है ।

दाक्षिण्य²—वि० १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । २. दक्षिणा संबंधी ।

दाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्ष की कन्या । २. पाणिनि की माता का नाम ।

यौ०—दाक्षीपुत्र=पाणिनि ।

दाक्षेय—संज्ञा पुं० [सं०] दाक्षीपुत्र पाणिनि [को०] ।

दाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षता । निपुणता । पटुता । कार्य-कुशलता ।

दाख¹—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राक्षा] १. अंगूर । २. मुनक्का । ३. किशमिश ।

दाख²—वि० [सं० दक्ष] दे० 'दक्ष' । उ०—ताकों विहित बखानहीं, जिनकी कविता दाख ।—मतिराम (शब्द०) ।

दाखनिरबिसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाख+निर्विषी ?] हर जेवड़ी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियों और जड़ का औषध रूप में व्यवहार होता है । पुरही ।

दाखना†¹—क्रि० स० [सं० दक्षण, दक्षण] प्रकट करना । दिखाना । उ०—रिण जोधौ रिणछोड़, पड़े खग वाख पराक्रम । पीथल पीठलदास, घार चंद्रभांण सांम ध्रम ।—रा० रू० पृ० १७ ।

दाखना†²—क्रि० स० [प्रा० दक्ख (= बतलाना)] बतलाना । बताना कहना । उ०—(क) ढाढी जे साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ । भाल्यौ सीप विकासियौ, स्वात ज बरसउ आइ ।—ढोला०, दू० ११६ । (ख) बहुत दिलासा दाखतं, दाह दिया सिरपाव । सिरपर हुकुम चढ़ाय लो, कोषी प्रथम कहाव । रा० रू०, पृ० २७ ।

दाखिल—वि० [फ़ा० दाखिल] १. प्रविष्ट । घुसा हुआ । पैठा हुआ । उ०—बीच बगीचा के महल दाखिल भयो प्रशंस ।—गुमान (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दाखिल करना = देना । अदा करना । भर देना । जमा करना । जैसे,—उसने तुरंत जुरमाना दाखिल कर दिया । दाखिल होना = अदा कर देना । उपस्थित करना । लाकर जमा करना ।

२. शरीक । मिला हुआ । जैसे, किसी गरोह में दाखिल होना । ३. पहुँचा हुआ ।

यौ०—दाखिल खारिज । दाखिल दफ्तर ।

दाखिलखारिज—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाखिलखारिज] किसी सरकारी कागज पर से किसी जायदाद के हकदार का नाम काटकर उसपर उसके वारिस या किसी दूसरे हकदार का नाम लिखने का काम ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

दाखिलदफ्तर—वि० [फ़ा० दाखिल दफ्तर] दफ्तर में इस प्रकार डाल रखा हुआ (कागज) जिसपर कुछ विचार न किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

दाखिला—संज्ञा पुं० [फ़ा० दाखिला] १. प्रवेश । पैठ । २. किसी संस्था, कार्यालय आदि में सम्मिलित किए जाने का कार्य । ३. वह कागज जिसमें उस वस्तु का ब्योरा लिखा हो जो कहीं दाखिल या जमा की जाय । ४. वह कागज जिसपर किसी वस्तु के जमा होने, भेजे जाने या पाए जाने की मिति आदि टंकी हो ।

दाखिली—वि० [फ़ा० दाखिली] १. भीतरी । आंतरिक । अंदरूनी । २. हार्दिक । दिली [को०] ।

दाखी—संज्ञा स्त्री० [दाखी, प्रा० दाखी] दे० 'दाक्षी' ।

दाग¹—संज्ञा पुं० [सं० दाघ] १. जलाने का काम । दाह । २. मृतक का दाहकर्म । मुर्दा जलाने की क्रिया ।

मुहा०—दाग देना = मृतक का दाहकर्म करना । मुरदे का क्रिया कर्म करना ।

३. जलन । दाह । उ०—उर मानिक की उरबसी डटत घटत दृग दाग । झलकत बाहर कढ़ि मनौ पिय हिय को अनुराग ।—बिहारी (शब्द०) । ४. जलने का चिह्न ।

दाग²—संज्ञा पुं० [फा० दाग] [वि० दागी] १. किसी वस्तु के तल पर रंग का वह भेद जो थोड़े से स्थान पर अलग दिखाई पड़ता है। धब्बा। चित्ती। जैसे,—(क) उस बिल्ली की पीठ पर कई रंग के दाग हैं (ख) कपड़े पर का यह दाग धोबी से छूटेगा। उ०—तुलसी जो मृग मन मरे परे प्रेम पट दाग।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

विशेष—इस शब्द का अधिकतर प्रयोग ऐसे धब्बे के लिये होता है जो खटकता या बुरा लगता हो।

मुहा०—सफेद दाग = एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। फूल।

२. निशान। चिह्न। अंक। उ०—गुननैनी नैनन भजे लखि वेनी के दाग।—विहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

यौ०—दागबेल।

३. फल आदि पर पड़ा हुआ सड़न का चिह्न। ४. कलंक। ऐब। दोष। लांछन। उ०—पुत्र वही मर जाय जो कुल में दाग लगावै।—गिरिधर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

५. जलने का चिह्न।

दागणा†—संज्ञा पुं० [हिं० दागना] दाहकर्म। उ०—पड़ी देह सनेह पेटा, बार दागण काज बेटा।—रघु० रू०, पृ० ११६।

दागदार—वि० [फा० दागदार] जिसपर दाग लगा हो। २. धब्बेदार।

दागना¹—क्रि० स० [सं० दग्ध, हिं० दाग + ना (प्रत्य०)] १. जलाना। दग्ध करना। उ०—(क) लोग वियोग विषम विष दागे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करि कंद को मंद दुचंद भई फिर दासन के उर दागति हैं।—पद्माकर (शब्द०)। २. तपे लोहे को छुलाकर किसी के अंग को ऐसा जलाना कि चिह्न पड़ जाय। जैसे, साँड़ दागना, घोड़ा दागना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी धातु के तपे हुए साँचे को छुलाकर अंग पर उसका चिह्न डालना। तप्तमुद्रा से अंकित करना। जैसे, शंख चक्र दागना। ४. किसी फोड़े घाव पर ऐसी तेज दवा लगाना जिससे वह जल या सूख जाय। जैसे, कास्टिक या तेजाब से फुंसी दागना।

संयो० क्रि०—देना।

५. भरी हुई बंदूक में बत्ती देना। रंजक में आग लगाना। तोप, बंदूक आदि छोड़ना। जैसे, तोप दागना, बंदूक दागना।

दागना²—क्रि० स० [फा० दाग] रंग आदि से चिह्न डालना। दाग लगाना। अंकित करना। उ०—मदन बैठि पंख भुज धरि के, चोंच सँवारति दागी।—सूर (शब्द०)।

दागबेल—संज्ञा स्त्री० [फा० दाग + हिं० बेलि] भूमि पर फावड़े या कुदाल से बनाए हुए चिह्न जो सड़क बनाने, नींव खोदने आदि के लिये एक सीध में डाले जाते हैं। उ०—सबके सब बराबर एक कतार में लैनडोरी डालकर और दागबेल लगाकर बनाए गए हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दागी—वि० [फा० दाग] १. जिसपर दाग लगा हो। जिसपर धब्बा हो। २. जिसपर सड़ने का चिह्न हो। जैसे, दागी फल। ३. कलंकित। दोषयुक्त। लांछित। ४. दंडित। जिसको सजा मिल चुकी हो।

दाघ—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी। ताप। दाह। जलन। उ०—(क) कहलाने एकत रहत अहि मयूर मृग बाघ। जगत तपोबन सा कियो दीरघ दाघ निदाघ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) बादि ही चंदन चारु घिसे घनसार घनो अँग पंक बनावत। बादि उसीर समीर चहै दिन रैन पुरैनि के पात बिछावत। आपुहि ताप मिटी द्विजदेव सुदाघ निदाघ कि कौन कहावत। बावरि तू नहिं जानति आज मयंक लजावत मोहन आवत।—द्विजदेव (शब्द०)।

दाजा—संज्ञा पुं० [?] १. अंधेरी रात। १. अंधेरा।

दाजन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, हिं० दाझन] दे० 'दाझन'।

दाजना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० दग्ध या दाहन] १. जलना। २. ईर्षा करना। डाह करना। उ०—दाजन दे दुरजीवन को अरु लाजन दे सजना कुल वारे। साजन दे मन को नव नेम निवाजन दे मनमोहन प्यारे। गाजन दे ननदीन 'गुलाब' विराजन दे उर में गुन भारे। भाजन दे गुरु लोगन को डर बाजन दे अब नेह नगारे।—गुलाब (शब्द०)।

दाजना²—क्रि० स० जलाना। दग्ध करना।

दाझण†—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] 'दाझन'।

दाझन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। उ०—पूरे सतगुरु के बिना पूरा शिष्य न होय। गुरु लोभी शिष लालची दूनी दाझन सोय।—कबीर (शब्द०)।

दाझना(पु)¹—क्रि० अ० [सं० दाहन] जलना। संतप्त होना। उ०—कै बिरहिनि को मीचु दे कै आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझना मोपै सहा न जाय।—कबीर (शब्द०)।

दाझना²—क्रि० स० जलाना।

दाटा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'डाट'।

दाटना¹—क्रि० स० [हिं० डाँटना] दे० 'डाँटना'।

दाटना²—क्रि० अ० [देश०] प्रतीत होना। उ०—कै रसराज प्रवाह को मारग बेनी बिहार सों यौं दग दाटी।—घनानंद, पृ० ३३।

दाडक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाढ़। डाढ़। २. दाँत।

दाडव—संज्ञा पुं० [?] भविष्य ब्रह्मखंड के अनुसार काशी से दो योजन पश्चिम एक ग्राम जिसमें कल्कि भगवान् अधर्मी म्लेच्छों का नाश करके शांतिपूर्वक निवास करेंगे।

दाड़स—संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़] एक प्रकार का साँप।

दाडिंब—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम्ब] दे० 'दाडिम'।

दाड़िम—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] १. अनार।

यौ०—दाड़िम प्रिय = सुआ। तोता।

२. इलायची।

दाड़िमपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमपत्रक] दे० 'दाडिमपुष्पक' (को०)।

दाड़िमपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमपुष्पक] रोहितक नामक वृक्ष। रोहेड़ा।

दाड़िमप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमप्रिय] शुक। सुग्गा। तोता।

दाड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिमा] अनार। दाड़िम।

दाड़िमाष्टक—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिमाष्टक] वैद्यक में एक चूर्ण जिसमें अनार का छिलका पड़ता है।

दाड़िमीसार—संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम। अनार (को०)।

दाड़ो—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिम] दे० 'दाड़िम'।

दाड्यौ—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] दे० 'दाड़िम'। उ०—सुंदर बरषा अति भई सूकि गई सब साग। जीव फल्यो बहु भाँति करि लागे दाड्यौ दाग।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७६०।

दाढ़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दंष्ट्र, प्रा० दड्ढ, या दंष्ट्रा, प्रा० दड्ढा। मि० सं० दाढक, दाढा] १. जबड़े के भीतर के मोटे चौड़े दाँत। चौभर।

मुहा०—दाढ़ न लगाना = दाँत से न कुचलना। दाढ़ गरम होना = खाना खाने में आना।

२. शूकर का दाँत जो आगे निकला रहता है और जिससे वह प्रहार करता है। † ३. दाढ़ी। श्मश्रु। (क्व०)।

दाढ़[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. भीषण शब्द। गरज। दहाड़। जैसे, सिंह की दाढ़। २. चिल्लाहट।

मुहा०—दाढ़ मारकर रोना = खूब चिल्ला चिल्लाकर रोना। उ०—रस्सी कटते ही मुर्दा नीचे गिर पड़ा और गिरते ही दाढ़ें मार मार रोने लगा।—(शब्द०)।

दाढ़ना[1]—क्रि० अ० [सं० दाहन] १. जलना। भस्म होना। २. गरजना। चिल्लाना।

दाढ़ना[2]—क्रि० स० [सं० दाहन] १. जलाना। आग में भस्म करना। उ०—दाढ़ा राहु केतु पा दाधा। सूरज जरा चाँद जर आधा।—जायसी (शब्द०)। (ख) देखे लोग बिरह दव दाढ़।—तुलसी। (शब्द०)। (ग) वेई मर्जक निचोल मजे सब देव वहै बिरहानल दाढ़ी।—बेनीप्रवीन (शब्द०)। २. संतप्त करना। दुःखी करना।

दाढ़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० दाढा] १. लंबा दाँत या चौभर। दे० 'दाढ़'। २. समूह। झुंड (को०)। ३. आकांक्षा। इच्छा (को०)।

दाढ़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़] १. बन की आग। दावानल।

क्रि० प्र०—लगना।

२. आग। अग्नि।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. दाह। जलन।

मुहा०—दाढ़ा फूँकना = दाह उत्पन्न करना।

दाढ़ा[3]—वि० दग्ध। जलाया हुआ। पीड़ित।

दाढ़ा[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाढ़ी, तुल० सं० दाढ़ा (= चौभर)] श्मश्रु। दाढ़ी मूँछ।

दाढ़ाला†—वि० [हिं० दाढ़ + वाला] १. शूरवीर। बहादुर। सुभट। २. दढ़ियल। उ०—वेढ मन्नीढा वज्जिया दोय पोहर दाढाल।—रा० रू०, पृ० २७४।

दाढ़ाली—वि० [हिं०] दाढ़ी रखनेवाला। दढ़ियल। दाढ़ीदार। उ०—पाछो जिको आणियो पूंगल, देवी थे दाढ़ाली।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १३८।

दाढ़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढिका] १. दाढ़ी। श्मश्रु। २. दाँत। दंत (को०)।

दाढ़िजार—संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़ीजार] दे० 'दाढ़ीजार'। उ०—अनेक बार में कहीं बुझाय कै बिभीषणं। न मानि दाढ़िजार को कुठार वंश तीक्षणं।—विश्राम (शब्द०)।

दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाढ़] १. चिबुक। २. ठुड्डी और दाढ़ पर के बाल। श्मश्रु।

विशेष—दे० 'दाढ़ी'।

दाढ़ीजार—संज्ञा पुं० [हिं० दाढ़ी + जलना] वह जिसकी दाढ़ी जली हो। एक गाली, जिसे स्त्रियाँ कुपित होने पर पुरुषों को देती हैं। उ०—सोभति सरोवे तजि विषाद मेघनाद देखि बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार का।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दारी (= दासी, लौंडी) + जार (= उपपति), मानते हैं पर यह ठीक नहीं जान पड़ता।

दाण—संज्ञा पुं० [सं० दान] राहदारी। आयातकर। जकात। उ०—जिसमें आबू पर जानेवाले यात्रियों आदि से जो 'दाण' (राहदारी, जगात), मुंडिक (प्रति यात्री से लिया जानेवाला कर), वलावो, (मार्गरक्षा का कर) तथा घोड़े बैल आदि से जो कर लिए जाते थे, उनको माफ करने का उल्लेख है।—राज० इति०, पृ० ६३०।

दात[1]—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य या सं० दात्र (= दान)] दान। उ०—तुम सब ही के गुरु मानो अति पुर पुर भूतल के सुर तुम्हें दीजियत दात है।—हनुमान (शब्द०)।

दात[2]—संज्ञा पुं० [सं० दाता] दे० 'दाता'। उ०—सतगुरु समाने को सगा सोध समानै दात।—कबीर (शब्द०)।

दात[3]—वि० [सं०] १. विभक्त। कटा हुआ। छिन्न। २. धुला हुआ। स्वच्छ किया हुआ। मार्जित। शुद्ध (को०)।

दातव—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य] दान। उ०—पात सुजस अखियात पयरे, दातव अमनर बात दुरे।—रघु० रू०, पृ० १६।

दातव्य—वि० [सं०] १. देने योग्य। २. लौटाने या वापस करने योग्य (को०)। ३. दान से चलनेवाला (को०) जैसे,—दातव्य औषधालय। ४. जहाँ दान के रूप में या बिना मूल्य या शुल्क के कुछ दिया जाता हो (को०)।

दातव्य—संज्ञा पुं० १. देने का काम। दान। २. दानशीलता। उदारता। उ०—बिन दातव्य द्रव्य नहिं भावै। देश विदेश चहो फिर आवै।—विश्राम (शब्द०)।

दाता—संज्ञा पुं० [सं० दातृ] १. वह जो दान दे। दानशील। २. देनेवाला। ३. वह जो कर्ज दे। उत्तमर्ण (को०)। ४. उपदेश। शिक्षा (को०)। ५. अभिभावक (को०)। ६. काटनेवाला। वह

जो कोई वस्तु काटे (को०)। ७. वह जो कन्या या भगिनी का विवाह में दान करता हो (को०)।

दातापन—संज्ञा पुं० [सं० दाता + हिं० पन] दानशीलता।

दातार—संज्ञा पुं० [सं० दातृ का बहु० दातारः] दाता। देनेवाला। उ०—सादर सादर नाम जसु सब अभिमत दातार। फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाष तुम्हार।—तुलसी (शब्द०)।

दाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वितरण। २. दान करने की क्रिया या भाव। ३. छिन्नकरण। विनाश (को०)।

दाती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] देनेवाली। उ०—नहित नैन कफ कंठ विरोध्यो कल न परे दिन राती। माया मोह न छाँड़ै तृष्णा ए दोऊ दुख दाती।—सूर (शब्द०)।

दातुन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन'।

दातुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दातृत्व] दानशीलता। दातृत्व। दान की वृत्ति। उ०—दानी बड़े पै न लीये बिन दरे दातुरी।—घनानंद०, पृ० १५३।

दातून'—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दंती की जड़। २. जमालगोटे की जड़।

दातून²—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन'।

दातृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दानशीलता। देने की प्रवृत्ति।

दातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दानशीलता। देने की प्रवृत्ति।

दातोन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दातुन'। उ०—जंगल गया और दातोन के लिये नीम का एक मोजाह लेकर लौटा।—काले०, पृ० १०।

दातौन—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तधावन] दे० 'दतुवन'।

दात्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पपीहा। चातक। २. मेघ। बादल। ३. जल के समीप रहनेवाला एक पक्षी। जलकुक्कुट (को०)।

दात्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० दात्री] हँसी। हँसिया।

दात्री'—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] देनेवाली।

दात्री²—संज्ञा स्त्री० [सं०] हँसिया। दाती।

दात्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान करनेवाला व्यक्ति। २. यज्ञ की तैयारी। यज्ञ [illegible]।

दाद'—संज्ञा पुं० [सं०] दान (को०)।

यौ०—दादद [illegible]। दान देनेवाला।

दाद²—संज्ञा स्त्री० [सं० दद्रु] एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर उभरे हुए ऐसे चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है। दिनाई।

विशेष—दाद विशेषतः कमर के नीचे और जोड़ के आस पास होती है जहाँ पसीना होकर मरता है। वैद्यक में यह रक्त प्रकार के कोढ़ों में गिना जाता है। डाक्टरों की परीक्षा से पता लगा है कि दाद एक प्रकार का सूक्ष्म कृमि है जो जंतुओं के चमड़े पर उगता और फैलकर जम जाता है और उन्हीं के रक्त आदि से पलती है। दाद प्रायः बरसात में सड़े पानी के संसर्ग से होती है। दाद दो प्रकार की होती है—एक कागजी, दूसरी भैंसिया। कागजी दाद का चकत्ता पतला और छोटा होता है और अधिक नहीं फैलता। भैंसिया दाद भयंकर होती है, इसके चकत्ते बड़े और मोटे होते हैं और कभी कभी शरीर भर में फैलते हैं।

यौ०—दादमर्दन।

दाद³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाद] इंसाफ। न्याय। उ०—तिनसों चाहत दाद तैं मन पन कौन दिमाग। लुगी चलावत हैं गरे जे बेकसक कमाव।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—दाद चाहना = किसी अत्याचार के प्रतिकार की प्रार्थना करना। दाद देना = (१) न्याय करना। उ०—देव तो दयानिकेत देत दादि दीन को पै मेरियै अभाग मेरी बार नाथ ढील की।—तुलसी (शब्द०)। (२) सराहना। वाह-वाह करना।

यौ०—दादख्वाह = न्यायेच्छु। दादख्वाही = न्याय की प्रार्थना। इंसाफ चाहना। दादगर। दादगुस्तर = दे० 'दादगर'। दादरस। दादरसी = न्याय पाना।

दादगर—वि० [फ़ा०] न्यायी। उ०—कही बेखबर कुछ तुझे नई खबर के है पास एक बादशाह दादगर।—दक्खिनी०, पृ० २१२।

दादतलब—वि० [फ़ा०] न्यायेच्छु। इंसाफ चाहनेवाला। फरियादी (को०)।

दादनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह जो देना है। वह रकम जिसे चुकाना है। २. वह रकम जो किसी काम के लिये पेशगी दी जाय। अगता। उ०—दादू दूर दादनी, आसिकों दीदार।—दादू०, पृ० ६७।

दादमर्दन—संज्ञा पुं० [सं० दद्रुमर्दन] एक प्रकार का चकवँड़ जो हिंदुस्तान के बगीचों में प्रायः मिलता है।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि यह पेड़ अमेरिका के टापुओं से लाया गया है, इसी से इसे विलायती चकवँड़ भी कहते हैं। इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से दाद दूर हो जाती है।

दादरस—वि० [फ़ा०] १. सहायक। २. फरियाद सुननेवाला। दादगर। उ०—बारे देखे तेरा यहाँ दादरस कौन। यहाँ आता तेरा फरियादरस कौन।—दक्खिनी०, पृ० ३४०।

दादरा—संज्ञा पुं० [?] १. एक प्रकार का चलता गाना। २. दो अर्धमात्राओं का ताल जिसमें केवल एक आघात होता।

\+ +

खाली इस में नहीं होता जैसे, —धा धिन धा।

दादस—संज्ञा स्त्री० [दादा + सास] ददिया सास। आजिया सास। सास की सास।

दादा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० दादी] १. पितामह। पिता का पिता। आजा। २. बड़ा भाई। ३. बड़े बूढ़ों के लिये आदरसूचक शब्द।

दादि'—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाद] न्याय। इंसाफ। उ०—(क) जानकी जीवन की बलि जैहौं। ... विराजमान बिरदाई महाराज आजु जो न देत दादि दीन की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बड़े दान कह दादि सो सुनि सुजन सदन बधाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कृपासिंधु जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चाहना।—देना।—पाना।—माँगना।

दादि(पु)—संज्ञा [सं॰ दद्रु] दे॰ 'दाद'।

दादी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दादा] पिता की माता। दादा की स्त्री।

दादी²—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दाद] दाद चाहनेवाला। फरियादी। न्याय का प्रार्थी।

यौ॰—दादी फरियादी।

दादु(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दद्रु] दाद। दिनाई। उ॰—ममता दादु कंडु इरषाई। हरख विषाद गरह बहुताई।—तुलसी (शब्द॰)।

दादुर(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दर्दुर] १. मेढक। मंडूक। उ॰—दादुर धुनि चहुँ ओर सोहाई। वेद पढ़ै जनु बटु समुदाई।—तुलसी (शब्द॰)। २. दक्षिण भारत के मलय पर्वत से सटा हुआ एक पर्वत। †३. कलश। मुंडेरा। उ॰—ऊँचा दादुर झलमलई। घरि घरि तुलछी वेद पुराण।—बी॰ रासो, पृ॰ ८१।

दादुरावृत्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दर्दुर+वृत्ति] मेढक की तरह बार बार कहने या दुहराने की क्रिया। पुनरावृत्ति। उ॰—उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रांत उपलब्धि तथा संसार के किसी और साहित्य में मिल सकती है।—हिं॰ का॰ प्र॰, पृ॰ १४७।

दादुल¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दादुर] दे॰ 'दादुर'। उ॰—(क) भई हरिता हरितैं सब ओर। करै पिक दादुल सागर सोर।—रसरतन, पृ॰ २०७। (ख) मिण सियारे प्रीति भई है दादुल सर्प सहाई।—संत॰ दरिया, पृ॰ ११२।

दादुल्ल(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दर्दुर, प्रा॰ दद्दुल] दे॰ 'दादुर'। उ॰—बहु सारसं सारिसारल्ल सोरं। मनो पावसी बुंदि दादुल्ल रोरं।—पृ॰ रा॰, २।०७६।

दादू†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दादा] १. दादा के लिये संबोधन या प्यार का शब्द। २. 'भाई' आदि के समान एक साधारण संबोधन। ३. एक साधु का नाम जिसके नाम पर एक पंथ चला है।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि दादू अहमदाबाद के एक धुनियाँ थे। १२ वर्ष की अवस्था ही में इन्होंने अपना नगर परित्याग किया और अजमेर, कल्याणपुर आदि स्थानों में कुछ दिनों रहकर अंत में ३७ वर्ष की अवस्था मे जयपुर से बीस कोस पर 'नरैन' (नराणा) नामक स्थान में निवास किया। कहते हैं, यहाँ उन्हें आकाशवाणी हुई, जिसके पीछे ये बहुत दिनों तक गुप्त रहे। कबीरपंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू कबीरपंथी थे और गुरुपरंपरा में कबीर से छठे थे। दादू ने भी कबीर के समान ही राम नाम के रूप में निर्गुण परब्रह्म की उपासना चलाई है। अकबर के समय में दादू अच्छे पहुँचे हुए साधुओं में गिने जाते थे।

दादूदयाल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'दादू'–३।

दादूपंथी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दादू+पंथी] दादू नामक साधु का अनुयायी। संत दादू के संप्रदाय का अनुयायी।

विशेष—दादूपंथी तीन प्रकार के होते हैं—विरक्त, नागा और बिस्तरधारी। विरक्त केवल जलपात्र और कौपीन रखते हैं। नागे लोग लड़ाके होते हैं और राजाओं की सेना में भरती होते हैं। बिस्तरधारी गृहस्थ होते हैं।

दाध(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दाह या, सं॰ दग्ध, प्रा॰ दद्ध] जलन। दाह। ताप। उ॰—(क) सही न जाय बिरह कर दाधा।—जायसी (शब्द॰)। (ख) हाड़ चून भे बिरहै दही। जानै सोइ जो दाध इमि सही।—जायसी (शब्द॰)। (ग) जहँ तहँ भूमि जरी भा रेहू। बिरह की दाध भई जनु खेहू।—जायसी (शब्द॰)। (घ) जेहि तन नेह दाध तेहि दूना।—जायसी (शब्द॰)।

विशेष—जायसी ने इस शब्द को कहीं स्त्रीलिंग माना है और कहीं पुल्लिंग।

दाधना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ दग्ध] जलाना। भस्म करना। उ॰—दाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरज जरा चाँद जर आधा।—जायसी (शब्द॰)।

२. दाहना। पीड़ित करना। उ॰—ते यह जिउ डाढ़े पर दाधा। आधा निकस, रहा घट आधा।—जायसी (शब्द॰)।

दाधना(पु)—क्रि॰ अ॰ जलना। संतप्त होना। पीड़ित होना। दाहयुक्त होना। उ॰—दव दाधी आरति सुनत अति दाग्यो तिहि ठाई।—हिंदी प्रेमगाथा॰, पृ॰ २१४।

दाधा—वि॰ [सं॰ दग्ध, प्रा॰ दद्ध, हिं॰ दाधना] [वि॰ स्त्री॰ दाधी] दग्ध। जला हुआ। झुलसा हुआ। उ॰—(क) जीभ न जीभ विगोयनी, दव का दाधा कुपली मेल्ही। जीभ का दाधा नु पाँगुरई, नाल्ह कहइ सुणजई सब कोई।—बी॰ रासो, पृ॰ ३७।

दाधिक¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. एक प्रकार का मद्य।

विशेष—सुश्रुत (उत्तरांश) के अनुसार बीजपूर का रस, घी और इसका चौगुना दही मिलाने से यह तक्र तैयार होता है। यह गुल्म और प्लीहा तथा शूल का निवारक है।

२. दही मिलाकर कोई खाद्य पदार्थ खानेवाला। ३. दधिविक्रेता। दही का व्यवसायी [को॰]।

दाधिक²—वि॰ दही से बना हुआ। दधिमिश्रित [को॰]।

दाधीच, दाधीचि—संज्ञा पुं॰ १ [सं॰] १. दधीचि के वंश का मनुष्य। दधीचि का गोत्रज। २. एक गोत्रवालों की उपाधि।

दान¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. देने का कार्य। जैसे, ऋणदान। २. लेनेवाले से बदले में कुछ न चाहकर या लेकर उदारतावश देने का कार्य। धर्म के भाव से देने की क्रिया। वह धर्मार्थ कर्म जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता है। खैरात।

क्रि॰ प्र॰—करना।—देना।

यौ॰—कन्यादान। गोदान। दानपुण्य। दानदहेज।

विशेष—स्मृतियों में दान के प्रकरण मे अनेक बातों का विचार किया गया है। सबसे अधिक जोर दान ग्रहण करनेवाले की पात्रता पर किया गया है। दान के पात्र ब्राह्मण कहे गए हैं। ब्राह्मणों में वेदपाठी, वेदपाठियों में वेदोक्त

कर्म के कर्ता और उनमें भी शम, दम आदि से युक्त आत्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। दानों का विशेष विधान यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्मों के पीछे है। इस प्रकार का दान अंधे, लूले, लँगड़े, गूँगे आदि विकलांगों को देने का निषेध है। दान के लिये दाता में श्रद्धा होनी चाहिए और उसे लेनेवाले से कुछ प्रयोजनसिद्धि की अपेक्षा न रखनी चाहिए। शुद्धितत्व में दान के छह अंग बतलाए गए हैं - दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्म देश और काल। दान के उत्तम और निकृष्ट होने का विचार इन छह अंगों के अनुसार होता है अर्थात् दाता के विचार से (जैसे, श्वपच, कुलटा आदि का दिया हुआ), प्रतिग्रहीता के विचार से (जैसे, पतित ब्राह्मण को दिया हुआ), श्रद्धा के विचार से (जैसे, तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ), देश के विचार से (जैसे, गंगा के तट पर दिया हुआ), और काल के विचार से (जैसे, ग्रहण के समय का)। इनके अतिरिक्त द्रव्य का भी विचार किया जाता है कि जो धन दान में दिया जाय वह कैसा होना चाहिए। देवल ने लिखा है कि जो धन दूसरे को पीड़ित करके न प्राप्त हुआ हो, अपने परिश्रम से प्राप्त हुआ हो, वही दान के योग्य है। जिस प्रकार दान का फल कहा गया है, उसी प्रकार दान के त्याग का भी फल कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि 'जो प्रतिग्रह में समर्थ अर्थात् दान लेने का पात्र होकर भी प्रतिग्रह नहीं लेता वह दानियों के जो स्वर्ग आदि लोक हैं उन सबको प्राप्त होता है'। इसी से बहुत से स्थानों के ब्राह्मण प्रतिग्रह कभी नहीं लेते। वेदों और स्मृतियों में कहे हुए दानों के अतिरिक्त ग्रहों की शांति आदि के लिये कुछ दान दिए जाते हैं जिनका लेना बुरा समझा जाता है। इनमें शनैश्चर का दान सबसे बुरा समझा जाता है जिसमें तेल, लोहा, काला तिल, काला कपड़ा दिया जाता है। दान के विषय में संस्कृत में अनेक आचार्यों के अनेक ग्रंथ हैं।

३. वह वस्तु जो दान में दी जाय। ४ कर। महसूल। चुंगी। ढँगा। उ० —(क) तुम समरथ की नाम कहा काहु को करिहौ। चोरी जाती बेचि दान सब दिन को भरिहौ।—सूर (शब्द०)। (ख) दानी भए नए माँगत दान सुनै जु पै कंस तो बाँधिकै जैहौ। —रसखान०, पृ० २६। ५. राजनीति के चार उपायों में से एक जिसमें कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध कार्यसाधन की नीति। ६ हाथी का मद। उ०—(क) गीत भृंग संदावली भरत दान मधुनीर। मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर। —बिहारी (शब्द०)। (ख) सुरसरि में दिग्गज दान मलिन जलती भर, कंचन के कमल.पत्र हुए तदीय सरोवर। —महावीरप्रसाद (शब्द०)। (ग) दान देन जो सोभियत दीन नरनि के हाथ। दान सहित त्यों राजहीं मत्त गजन के माथ। —केशव (शब्द०)। ७ छेदन। कर्तन। खंडन। ८. शुद्धि। ९ एक प्रकार का मधु। १०. रक्षण। पालन (को०)।

दान[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पात्र। आधार। रखने की वस्तु। समासांत में, जैसे कलमदान।

दानक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्सित दान। बुरा दान।

दानकाम—[सं०] दान करने की इच्छा रखनेवाला। दानी (को०)।

दानकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का मद।

दानतोय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दानवारि'[२]।

दानधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने का धर्म। दान पुण्य।

दानपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदा दान देनेवाला। २. अक्रूर का एक नाम जो स्यमंतक मणि के प्रभाव से प्रतिदिन दान दिया करता था। ३. एक दैत्य का नाम।

दानपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई संपत्ति किसी को प्रदान की जाय।

विशेष—प्राचीन काल में दानपत्र ताम्रपत्र आदि पर खोदे जाते थे। अनेक राजाओं के ऐसे दानपत्र मिलते हैं जिनसे बहुत सी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है।

दानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो दान पाने के उपयुक्त हो। दान देने के लिये उपयुक्त व्यक्ति।

दानप्रतिभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण दिलाने की जमानत। कर्ज की जमानत।

दानप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह जामिन जो यह कहे कि 'यदि इसने ब्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूँगा'।

दानभिन्न—वि० [सं०] राजनीति में दान देकर फोड़ लिया गया।

दानलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्ण की वह लीला जिसमें उन्होंने ग्वालिनों से गोरस बेचने का कर वसूल किया था। २. कोई ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन किया गया हो।

दानव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दानवी] कश्यप के वे पुत्र जो 'दनु' नाम्नी पत्नी से उत्पन्न हुए। असुर। राक्षस।

विशेष—मायावी दानवों का उल्लेख ऋग्वेद में है। महाभारत के अनुसार दक्ष की कन्या दनु से शंबर, नमुचि, पुलोमा असिलोमा, केशी, विप्रचित्ति, दुर्जय, अयःशिरा, विरूपाक्ष, महोदर, सूर्य चंद्र इत्यादि चालीस पुत्र उत्पन्न हुए। दानवों में जो सूर्य और चंद्र हुए उन्हें देवताओं से भिन्न समझना चाहिए। भागवत में दनु के ६१ पुत्र गिनाए गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि दानव पितरों से उत्पन्न हुए। मरीचि आदि ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितृगणों से देव दानव और देवताओं से यह चराचर जगत् आनुपूर्विक क्रम से उत्पन्न हुआ।

दानवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

दानवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार के अश्व जो देवताओं और गंधर्वों की सवारी में रहते हैं। ये कभी बूढ़े नहीं होते और मन की तरह वेगवान् होते हैं। २. चार वर्णों के क्रम में तृतीय वर्ण अर्थात् वैश्य (को०)।

दानवारि[१]—संज्ञा पुं० [सं० दानव + अरि] १. विष्णु। २. देवता। ३. इंद्र।

दानवारि[२]—संज्ञा पुं० [सं० दान + वारि] हाथी का मद।

दानवी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक दानव की स्त्री। २. दानव जाति की स्त्री। राक्षसी।

दानवी[२]—वि० [सं० दानवीय] दानवों की। दानव संबंधी। जैसे, दानवी माया।

दानवीर —संज्ञा पुं० [सं०] दान देने में साहसी पुरुष। वह जो दान देने से न हटे। अत्यंत दानी।

विशेष —साहित्य में वीर रस के अंतर्गत चार प्रकार के जो वीर गिनाए गए हैं उनमें एक दानवीर भी है। दानवीरता में त्याग के विषय में उत्साह स्थायी भाव है, याचक आलंबन है; अध्यवसाय (तीर्थगमन आदि) और दानसमय, ज्ञान आदि उद्दीपन विभाव है; सर्वस्वत्याग आदि अनुभाव तथा हर्ष और धृति आदि संचारी भाव हैं।

दानवेंद्र —संज्ञा पुं० [सं० दानवेन्द्र] राजा बलि।

दानशील —वि० [सं०] दानी। दान करनेवाला।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की प्रवृत्ति। उदारता।

दानशूर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दानशील'।

दानशौंड—संज्ञा पुं० [सं० दानशौण्ड] दान करनेवाला। दानशील। [को०]।

दानसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महादान जिसका प्रचार बंगदेश में है और जिसमें भूमि, आसन आदि सोलह पदार्थों का दान किया जाता है।

दानांतराय —संज्ञा पुं० [सं० दानान्तराय] जैनशास्त्र के अनुसार वह अंतराय या पापकर्म जिसके उदय से दान के योग्य द्रव्य और पात्र पाकर भी मनुष्य को दान करने में विघ्न होते हैं और वह दान नहीं कर सकता।

दाना[1] —संज्ञा पुं० [फ़ा० दानह्] १. अनाज का एक बीज। अन्न का एक कण। कन।

यौ०—दाना दुनका = अन्न के दो चार कण। थोड़ा सा अन्न। उ०—गली के पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने दुनके और गिलाजत की खोज में धावे करता।—अभिशप्त, पृ० ६४।

मुहा० —दाने दाने को तरसना = अन्न का कष्ट सहना। भोजन न पाना। दाने को मुहताज = अत्यंत दरिद्र। दाना बदलना = एक पक्षी का अपने मुँह का दाना दूसरे पक्षी के मुँह में डालना। चारा बाँटना। दाना भराना = चिड़ियों का अपने बच्चों के मुँह में चारा डालना।

२. अनाज। अन्न। जैसे,—तुम तो इतने दुबले हो कि जान पड़ता है, कभी दाना नहीं पाते।

यौ० —दाना चारा। दाना पानी।

३. भूखा भुना हुआ अन्न। चबेना। चर्वण।

क्रि० प्र० —चबाना।—चाबना।—भुनाना।

४. कोई छोटा बीज जो बाल, फली या गुच्छे में लगे। जैसे, राई का दाना, पोस्ते का दाना। ५. ऐसे फल के अनेक बीजों में से एक जिसके बीज कड़े गूदे के साथ बिलकुल मिले हुए अलग अलग निकलें। जैसे, अनार का दाना।

विशेष —आम, कटहल, लीची इत्यादि फलों के बीजों को दाना नहीं कहते।

६. कोई छोटी गोल वस्तु जो प्रायः बहुत सी एक में गूँथ, पिरो, या जोड़कर काम में लाई जाती हो। जैसे, मोती का दाना। उ०—बरसैं सु बूँदैं मुकतान ही के दाने सी।—पद्माकर (शब्द०)। ७. ऐसी बहुत सी छोटी वस्तुओं (या अंगों) में से एक जिनके एक में गूँथने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो। जैसे, घुँघरू का दाना, बाजूबंद का दाना। ८. माला की गुरिया। मनका। उ०—गले में सोने के बड़े बड़े दाने पड़े हैं।—प्रताप (शब्द०)। ९. गोल या पहलदार छोटी वस्तुओं के लिये संख्या के स्थान पर आनेवाला शब्द। अदद। जैसे, चार दाने मिर्च, चार दाने अंगूर। १०. रवा। कण। कणिका। जैसे, दानेदार घी या शराब। ११. किसी सतह पर के छोटे छोटे उभार जो टटोलने से अलग अलग मालूम हों। जैसे, नारंगी के छिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा। १२. शरीर के चमड़े पर महीन महीन उभार जो खुजलाने या रोग के कारण हो जाते हैं। जैसे, अँभौरी या पित्ती के दाने, चेचक के दाने। १३. बरतन की नक्काशी में गोल उभार (कसेरे)।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—दाने का माल = वह बरतन जिसकी नक्काशी उभारी नहीं जाती।

दाना[2] —वि० [फ़ा० दाना] बुद्धिमान। अक्लमंद।

दानाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अक्लमंदी।

दानाकेश —संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जरदोजी का कपड़ा जो चोगे के ऊपर पहना जाता है।

दानाचारा —संज्ञा पुं० [फ़ा० दाना + हिं० चारा] खानापीना। भोजन। आहार।

क्रि० प्र० —करना।

दानाध्यक्ष —संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य ब्राह्मणों में बाँटा जाय। राजाओं के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी।

दानापानी —संज्ञा पुं० [फ़ा० दाना + हिं० पानी] १. खान पान। अन्न। जल।

क्रि० प्र०— करना।

मुहा०—दाना पानी छोड़ना = अन्न जल ग्रहण न करना। न कुछ खाना न पीना। उपवास करना। दाना पानी छूटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना।

२. भरण पोषण का आयोजन। जीविका।

मुहा० —दाना पानी उठना = जीविका न रहना।

३. रहने का संयोग। जैसे,—जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायँगे।

दानाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा० दाना + बंदी] खड़ी फसल से उपज का अंदाज करने के लिये खेत को नापने का काम।

दानि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दानी] उ०—दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई।—मानस, २।३५।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करनेवाली स्त्री।

दानिया—संज्ञा पुं० [सं० दानी] दे० 'दानी'।

दानिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] समझ। अक्ल। बुद्धि। विवेक।

यौ०—दानिशमंद = चतुर। बुद्धिमान। दानिश्मंद = चतुर। उ०—इसके ऊपर नाज करना दानिश्मंद का काम नहीं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३४। दानिशमंदी = (१) बुद्धिमत्ता। विद्वत्ता। (२) निपुणता। कुशलता।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दानिस्त] १. समझ। बुद्धि। २. राय। संमति।

दानिस्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ज्ञान। जानकारी। अक्ल। बुद्धि। समझ। उ०—बंदगी दम दम की भरों दानिस्त दिखाया। तिनुका ओट पहाड़ है बिन चस्म लगाया।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२।

दानिस्तन—क्रि० वि० [फ़ा०] जानते हुए। जान बूझकर। उ०—कीजे फहम फना को लेके नूर तजल्ली अपना। पलटूदास मकों हू हू का दीद दानिस्तन सुपना।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६२।

दानी[1]—वि० [सं० दानिन्] [वि०स्त्री० दानिनि] जो दान करे। उदार।

दानी[2]—संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति। दाता।

दानी[3]—संज्ञा पुं० [सं० दानीय] १. कर संग्रह करनेवाला। महसूल उगाहनेवाला। दान लेनेवाला। उ०—(क) आय समुंद ठाढ़ भा होइ दानी के रूप।—जायसी (शब्द०)। (ख) परसत ग्वारि ग्वार सब जेंवत मध्य कृष्ण सुखकारी। सूर स्याम दधि दानी कहि कहि आनंद घोषकुमारी।—सूर (शब्द०)। (ग) दानी भए नए माँगत दान सुनै जु पै कंस तो बाँधि के जैहो।—रसखान०, पृ० २६। २. पर्वतिया नैपालियों की एक जाति।

दानीपन—संज्ञा पुं० [सं० दानी + हिं० पन] दानशीलता। उ०—मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६९।

दानीय[1]—वि० [सं०] १. दान करने योग्य। २. दान लेने या ग्रहण करनेवाला। दान, कर या महसूल लेनेवाला।

दानीय[2]—संज्ञा पुं० दान।

दानु[1]—वि० [सं०] १. विजय पानेवाला। विजेता। २. शूर। वीर [को०]।

दानु[2]—संज्ञा पुं० १. वायु। २. बिंदु। बूँद। ३. दानव। ४. संतोष। ५. दान। ६. दाता। दानी। ७. अभ्युन्नति। अभ्युदय [को०]।

दानेदार—वि० [फ़ा०] जिसमें दाने हों। रवादार। जैसे, दानेदार गुड़। दानेदार राब।

दानोⓟ[1]—संज्ञा पुं० [सं० दानव] दे० 'दानव'।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] १. अहंकार। घमंड। अभिमान। गर्व। २. शक्ति। बल। जोर। उ०—रावन बान छुपा नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्साह। उमंग। ४. रोब। दबदबा। आतंक। तेज। प्रताप। ५. क्रोध। उ०—सर संधान कीन्ह करि दापा।—तुलसी (शब्द०)। ६. जलन। ताप। दुःख। उ०—दियो क्रोध करि सिवहि सराप। करी कृपा जु मिटै यह दाप।—सूर (शब्द०)।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दबानेवाला। उ०—सो प्रभु हैं जल थल सब व्यापक। जो है कंस दर्प को दापक।—सूर (शब्द०)।

दापन—संज्ञा पुं० [सं०] दान करने की प्रेरणा। दान की प्रेरणा देना [को०]।

दापनाⓟ—क्रि० स० [हिं० दाप] १. दाबना। दबाना। २. मना करना। रोकना। उ०—माने न जाय गोपाल कै गेह घरी घरी धाय कितेकऊ दापति।—गोकुल (शब्द०)।

दापित—वि० [सं०] १. बाधित। जिसे कुछ देने के लिये बाध्य किया गया हो। २. जिसपर अर्थदंड या जुरमाना लगा हो। ३. निर्णीत [को०]।

दाब—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प, हिं० दाप] १. दबने या दबाने का भाव। एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस ओर को जोर जिस ओर वह दूसरी वस्तु हो। अपनी ओर को खींचनेवाले जोर का उलटा। चाँप।

क्रि० प्र०—पहुँचाना।—लगाना।

२. किसी वस्तु का वह जोर जो नीचे की वस्तु पर पड़े। भार। बोझ। जैसे,—इसपर पत्थर की दाब पड़ी है इसी से यह चिपटा हो गया है।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

मुहा०—किसी की दाब तले होना = किसी के वश में या अधीन होना।

३. आतंक। अधिकार। रोब। आधिपत्य। शासन। बड़े या प्रबल के प्रति छोटे या अधीन का संकोच या भय और छोटे या अधीन के प्रति बड़े या प्रबल का प्रभुत्व।

मुहा०—दाब दिखाना = अधिकार जताना। हुकूमत या डर दिखाना। प्रभुत्व प्रकट करना। दाब मानना = किसी बड़े से डरना या सहमना। प्रभुत्व स्वीकार करना। वश में रहना। जैसे,—वह लड़का किसी की दाब नहीं मानता। दाब में रखना = शासन में रखना। जैसे,—लड़के को दाब में रखो, नहीं तो बिगड़ जायगा। दाब में होना = कब्ज में होना। अधीन होना।

दाबकस—संज्ञा पुं० [हिं० दाब + कसना] लोहारों के छेदने के औजारों (किरकिरा, बरदुआ, आदि) का एक हिस्सा।

दाबदार—वि० [हिं० दाब + फ़ा० दार] रोबदार। आतंक रखनेवाला। प्रभावशाली। प्रतापी। उ०—दाबदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण (शब्द०)।

दाबना—क्रि० स० [हिं० दाब + ना (प्रत्य०)] दे० 'दबाना'।

दाबा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दाब] कलम लगाने के लिये पौधों की टहनी को मिट्टी में गाड़ने या दबाने का काम।

दाबा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] आठ नौ अंगुल लंबी एक मछली जो सिंध, संयुक्त प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है।

दाबिल—संज्ञा पुं० [हिं० दाब] एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चोंच दस बारह अंगुल लंबी और छोर पर पैसे की तरह गोल और चिपटी होती है।

दाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कटी हुई फसल के बराबर बराबर बँधे हुए पूले जो मजदूरी में दिए जाते हैं।

दाभ—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] एक प्रकार का कुश। डाभ। उ०—अधरों थो मग दाभ गिरावत। थकित खुले मुख ते बिखरावत। —शकुंतला, पृ० ८।

दाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] शासन के योग्य। जो शासन में आ सके।

दाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० दामन्] १. रस्सी। रज्जु।

यौ०—दामोदर।

२. माला। हार। लड़ी। उ०—(क) तेहि के रचि रचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कहूँ क्रीड़त कहूँ दाम बनावत कहूँ करत शृंगार।—सूर (शब्द०)। ३. समूह। राशि। ४. लोक। विश्व।

दाम[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०, मिलाओ सं०] जाल। फंदा। पाश। उ०—लोचन चोर बाँधे श्याम। जात ही उन तुरत पकरे कुटिल अलकनि दाम।—सूर (शब्द०)।

दाम[3]—संज्ञा पुं० [हिं० दमड़ी] १. पैसे का चौबीसवाँ या पचीसवाँ भाग। एक दमड़ी का तीसरा भाग। उ०—कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत। बंक बिकारी देत जिमि दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)।

मुहा०—दाम दाम भर देना = कौड़ी कौड़ी चुका देना। कुछ (ऋण) बाकी न रखना। दाम दाम भर लेना = कौड़ी कौड़ी ले लेना। कुछ बाकी न छोड़ना।

२. वह धन जो किसी वस्तु के बदले में बेचनेवाले को दिया जाय। मूल्य। कीमत। मोल। उ०—बिन दामन हित हाट में नेही सहज बिकात।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मुहा०—दाम उठना = किसी वस्तु की कीमत वसूल हो जाना। बिक जाना। दाम करना = (किसी वस्तु का) मोल ठहराना। मूल्य निश्चित करना। कीमत तै करना। मोल भाव करना। दाम खड़ा करना = कीमत वसूल करना। दाम चुकाना = (१) मूल्य दे देना। (२) कीमत ठहराना। मोल भाव तै करना। दाम देने आना = मूल्य देने के लिये विवश होना। किसी वस्तु को नष्ट करने पर उसका मूल्य देना पड़ना। नुकसानी देना पड़ना। दाम भरना = किसी वस्तु को नष्ट करने पर दंडस्वरूप उसका मूल्य दे देना। नुकसानी देना। डाँड़ देना। दाम भर पाना = सारा मूल्य पा जाना।

३. धन। रुपया पैसा। जैसे, दाम करे काम। उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—तुलसी (शब्द०)। ४. सिक्का। रुपया। उ०—जो पै चेराई राम की करतो न लजातो। तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—चाम के दाम चलाना = अधिकार या अवसर पाकर मनमाना अंधेर करना। दे० 'चाम'। उ०—दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री।—परमेश (शब्द०)।

५. दाननीति। राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। उ०—साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।—तुलसी (शब्द०)।

दाम[4]—वि० [सं०] देनेवाला। दाता।

दामकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दामकण्ठ] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

दामक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी के जुए की रस्सी। २. लगाम। बागडोर।

दामग्रंथि—संज्ञा पुं० [सं० दामग्रन्थि] राजा विराट का सेनापति। (महाभारत)।

दामचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दामचन्द्र] द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम।

दामणी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दामिनी। बिजली। उ०—चोमास रहे वे आत सुचंगा साम घटे जस ताजा। देखे राम पयोधर दामण सीत बिरह तन साजा।—रघु० रू०, पृ० १५६।

दामन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस्सी। २. माला। ३. रेखा। लकीर। जैसे, विद्युत् दाम।

दामन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. अंगे, कोट, कुर्ते इत्यादि का निचला भाग। पल्ला। उ०—दग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल। मगजी ज्यों मो मन सियो तुव दामन सों लाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

यौ०—दामनगीर।

२. पहाड़ों के नीचे की भूमि। पर्वत। ३. बादबान। पाल।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

४. नाव या जहाज के जिस ओर हवा का धक्का लगता हो उसके सामने की दिशा। (लश०)।

दामनगीर—वि० [फ़ा०] १. पल्ले पड़नेवाला। सिर होनेवाला। पीछे पड़नेवाला। ग्रसनेवाला। उ०—अपनो पिंड पोषिबे कारन कोटि सहस जिय मारे। इन पापन ते क्यों उबरोगे दामनगीर तिहारे?—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दामनगीर होना = पीछे लगना। ऊपर आ पड़ना। ग्रसना या घेरना (कष्टदायक वस्तु के लिये)। जैसे, बला दामनगीर होना।

२. दावा करनेवाला। दावेदार। उ०—बापुरो आदिलशाह कहाँ कहँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।—भूषण (शब्द०)।

दामनपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दामनपर्वन्] दमनक संबंधी पर्व

या उत्सव । चैत्र शुक्ला चतुर्दशी का पर्व ।

दामनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०- चहूँ ओर क्रोधंत दामनि अंब्यारी ।--हृ० रासो, पृ० २० ।

दामनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्सी । रज्जु ।

दामनी²—संज्ञा स्त्री० [फा०] वह चौड़ा कपड़ा जो घोड़ों की पीठ पर डाला जाता है ।

दामर¹—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. राल जो दरार भरने के लिये नावों में लगाई जाती है । २. दे० 'डामर' ।

दामर²—संज्ञा स्त्री० [?] छोटे कान की भेड़ । (गड़ेरिए) ।

दामरि—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दामरी' ।

दामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी । रज्जु । उ०--ज्ञान भक्ति दोऊ बिना हरि नहिं बाँधे जात । यहै कहत सी दामरी घटि गइ हरि के गात ।—व्यास (शब्द०) ।

दामलिप्त संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त' ।

दामांचन--संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्चन] घोड़े के पैरों को बाँधने की रस्सी [को०] ।

दामांचल -संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्चल] दे० 'दामांचन' ।

दामांजन- संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्जन] दे० 'दामांचन' ।

दामा(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा] दावानल । उ०—नंद के किसोर ऐसो आजु प्रभु को है कहो पान करि लीन्हो ब्रज दीन देखि दामा को ।—विश्राम (शब्द०) ।

दामा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्सी । रज्जु [को०] ।

दामा³—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । कलचिरी ।

दामाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० मिलाओ सं० जामातृ] पुत्री का पति । जमाई । जामाता ।

दामासाह - संज्ञा पुं० [हिं० दाम + साह (= बनिया)] वह दिवालिया महाजन जिसकी जायदाद उसके लहनेदारों के बीच हिस्से के मुताबिक बँट जाय ।

दामासाही संज्ञा स्त्री० [हिं० दामासाह + ई (प्रत्य०)] किसी दिवालिए महाजन की जायदाद में से एक एक लहनेदार को मिलनेवाली रकम का निर्णय ।

दामिन, दामिनि - संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०--(क) नंददास प्रभु रस बरषत जहाँ नव घन दामिन के अनुहोरें ।-- नंद० ग्रं०, पृ० ३७८ । (ख) दामिनि दमक रह न घन माही ४।१४ ।

दामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिजली । विद्युत । उ०—सोहैं साँवरे पथिक पाछे ललना लोनी । दामिनी बरन गोरी लखि सखि तृन तोरी, बीती है बय किसोरी जोबन होनी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६४ । २. स्त्रियों का एक शिरोभूषण जिसे बेंदी या बिंदिया भी कहते हैं । दावनी । उ०-- दामिनी सो दामिनी सुभामिनी सँवारि सीस, कहती कुँवर होन कामिनी के क्यों लजात ।—रघुराज (शब्द०) ।

दामी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाम] कर । मालगुजारी ।

दामी²—वि० कीमती । उ०--होटल में दामी कपड़े पहने हुए पुरुषों की भीड़ लगी हुई थी ।—संन्यासी, पृ० ३३६ ।

दामोद—संज्ञा पुं० [पुं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

दामोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीकृष्ण । २. विष्णु ।

विशेष—इस नाम के तीन भिन्न भिन्न हेतु बतलाए गए हैं । हरिवंश में लिखा है कि यमलार्जुन के गिरने के समय यशोदा ने ताड़ना के लिये श्रीकृष्ण को पेट में रस्सी लगाकर बाँधा था इसी से गोपियाँ उन्हें दामोदर कहने लगीं । यही हेतु सबसे प्रसिद्ध है । विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार ने भी यही व्युत्पत्ति लिखी है । कुछ लोग दाम शब्द से विश्व या लोक का ग्रहण करते हैं—'जिसके उदर में सारा विश्व हो' । कुछ लोग 'दामाद्दामोदरंविदुः' महाभारत के इस वाक्य के अनुसार दम अर्थात् इंद्रियनिग्रह में अत्यंत उदार या श्रेष्ठ अर्थ करते हैं ।

३. एक जैन तीर्थंकर का नाम । ४. बंगाल की एक नदी जो छोटा नागपुर के पहाड़ों से निकलकर भागीरथी में मिलती है ।

दायँ(पु)†¹---संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दे० 'दावँ' ।

दायँ² —संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दाईं' ।

दायँ³—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] दाना और भूसा अलग करने के लिये कटी हुई फसलों के डंठलों को बैलों से रौंदवाने का काम । दवँरी । उ०—कटन धान अरु दायँ जान जब फरवारन महँ--प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४ ।

क्रि० प्र०—जाना ।

दायँ⁴—संज्ञा स्त्री० [?] बराबरी । तुल्यता । दे० 'दाँज' । उ०---विण जुध कारण वाघ रै दूजो नावै दायं । —बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२ ।

दाय¹ --संज्ञा पुं० [सं०] १. देने योग्य धन । वह धन जो किसी को देने को हो । २. दायजे, दान आदि में दिया जानेवाला धन । ३. वह पैतृक या संबंधी का धन जिसका उत्तराधिकारियों में विभाग हो सके । वारिसों में बाँटा जानेवाला धन या मिलकियत । दे० 'दायभाग' ।

विशेष—वह धन जो स्वामी के संबंध निमित्त से ही दूसरे का हो सके, दाय कहलाता है । मिताक्षरा के अनुसार दाय दो प्रकार का है, एक अप्रतिबंध, दूसरा सप्रतिबंध । अप्रतिबंध दाय वह है जिसमें कोई बाधा न हो सके । जैसे, पुत्र पौत्रों का पिता पितामह के धन में स्वत्व । सप्रतिबंध वह है जिसका कोई प्रतिबंधक हो, जिसमें किसी के द्वारा बाधा पड़ सकती हो । जैसे, भाई भतीजों का स्वत्व जो पुत्र के अभाव में होता है, अर्थात् पुत्र का होना जिसका प्रतिबंधक होता है ।

४. दान । ५ विभाग । अंश । हिस्सा (को०) । ६. स्थान । जगह (को०) । ७. क्षति । हानि (को०) । ८. खंडन । विभाजन (को०) ९. सोल्लुंठ भाषण । व्यंग्यपूर्ण कथन (को०) ।

दाय(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० दाव] दे० 'दाव' । उ०—सिर धुनि धुनि पछितात मीजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

दायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दायिका] देनेवाला। दाता। जैसे, मंगलदायक। उ०—बरनहुँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि।—मानस, २।१।

दायज—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दायजा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] वह धन जो विवाह में वर पक्ष को दिया जाय। यौतुक। दहेज। उ०—कहुँ सुत ब्याह कहुँ कन्या को देत दायजो राई।—सूर (शब्द०)।

दायनी(पु)—वि० स्त्री० [सं० दायिनी] देनेवाली। उ०—बिमल कथा हरिपद दायनी।—मानस, ७।५२।

दायभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १ पैतृक धन का विभाग। २. बाप दादे या संबंधी की संपत्ति के पुत्रों, पौत्रों या संबंधियों में बाँटे जाने की व्यवस्था। बपौती या वरासत की मिलकियत को वारिसों या हकदारों मे बाँटने का कायदा कानून।

विशेष—यह हिंदू धर्मशास्त्र के प्रधान विषयों मे से है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में इसके संबंध में विस्तृत व्यवस्था है। ग्रंथकारों और टीकाकारों के मतभेद से पैतृक धनविभाग के संबंध में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। प्रधान पक्ष दो हैं—मिताक्षरा और दायभाग। मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है जिसके अनुकूल व्यवस्था पंजाब, काशी, मिथिला आदि से लेकर दक्षिण कन्याकुमारी तक प्रचलित है। 'दायभाग' जीमूतवाहन का एक ग्रंथ है जिसका प्रचार बंग देश में है।

सबसे पहली बात विचार करने की यह है कि कुटुंबसंपत्ति में किसी प्राणी का पृथक् स्वत्व विभाग करने के पीछे होता है अथवा पहले से रहता है। मिताक्षरा के अनुसार विभाग होने पर ही पृथक् या एकदेशीय स्वत्व होता है, विभाग के पहले सारी कुटुंबसंपत्ति पर प्रत्येक संमिलित प्राणी का सामान्य स्वत्व रहता है। दायभाग विभाग के पहले भी अव्यक्त रूप में पृथक् स्वत्व मानता है जो विभाग होने पर व्यंजित होता है। मिताक्षरा पूर्वजों की संपत्ति में पिता और पुत्र का समानाधिकार मानती है अतः पुत्र पिता के जीते हुए भी जब चाहे पैतृक संपत्ति में हिस्सा बँटा सकते हैं और पिता पुत्रों की सम्मति के बिना पैतृक संपत्ति के किसी अंश का दान, विक्रय आदि नहीं कर सकता। पिता के मरने पर पुत्र जो पैतृक संपत्ति का अधिकारी होता है वह हिस्सेदार के रूप में होता है, उत्तराधिकारी के रूप में नहीं। मिताक्षरा पुत्र का उत्तराधिकार केवल पिता की निज की पैदा की हुई संपत्ति में मानती है। दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश (मृत, पतित या संन्यासी होने के कारण) के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार जब तक पिता जीवित है तब तक पैतृक संपत्ति पर उसका पूरा अधिकार है; वह उसे जो चाहे सो कर सकता है। पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के मरने आदि पर ही होती है।

यद्यपि याज्ञवल्क्य के इस श्लोक में 'भूर्या पितामहोपात्ता निबंधो द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्य पितुः पुत्रस्य चोभयोः,' पिता पुत्र का समान अधिकार स्पष्ट कहा गया है तथापि जीमूतवाहन ने इस श्लोक से खींच तानकर यह भाव निकाला है कि पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति उनके जन्मकाल से नहीं, बल्कि पिता के मृत्युकाल से होती है।

मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार जिस क्रम से उत्तराधिकारी होते हैं वह नीचे दिया जाता है :

मिताक्षरा	दायभाग
१. पुत्र	१. पुत्र
२. पौत्र	२. पौत्र
३ प्रपौत्र	३. प्रपौत्र
४. विधवा	४. विधवा
५. अविवाहिता कन्या	५. अविवाहिता कन्या
६. विवाहिता अपुत्रवती निर्धन कन्या	६. विवाहिता पुत्रवती कन्या
७ विवाहिता पुत्रवती संपन्न कन्या	७. नाती (कन्या का पुत्र)
८. नाती (कन्या का पुत्र)	८. पिता
९. माता	९ माता
१०. पिता	१०. भाई
११. भाई	११. भतीजा
१२. भतीजा	१२. भतीजे का लड़का
१३ दादी	१३. बहन का लड़का
१४. दादा	१४ दादा
१५. चाचा	१५. दादी
१६. चचेरा भाई	१६. चाचा
१७. परदादी	१७. चचेरा भाई
१८. परदादा	१८. चचेरे भाई का लड़का
१९. दादा का भाई	१९. दादा की लड़की का लड़का
२०. दादा के भाई का लड़का	२०. परदादा
२१. परदादा के ऊपर तीन पीढ़ी के और पूर्वज	२१. परदादी
२२. और सपिंड	२२. दादा का भाई
२३. समानोदक	२३. दादा के भाई का लड़का
२४. बंधु	२४. दादा के भाई का पोता
२५ आचार्य	२५. परदादा की लड़की का लड़का
२६. शिष्य	२६. नाना
२७ सहपाठी या गुरुभाई	२७. मामा
२८. राजा (यदि संपत्ति ब्राह्मण की न हो। ब्राह्मण की हो तो उसकी जाति में जाय)।	२८. मामा का लड़का
	२९ मामा का पोता
	३०. मौसी का लड़का
	३१. सकुल्य
	३२. समानोदक
	३३. और बंधु
	३४. आचार्य इत्यादि, इत्यादि

ऊपर जो क्रम दिया गया है उसे देखने से पता लगेगा कि मिताक्षरा माता का स्वत्व पहले करती है और दायभाग पिता का। याज्ञवल्क्य का श्लोक है—पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बंधुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥ इस श्लोक के 'पितरौ' शब्द को लेकर मिताक्षरा कहती है कि 'माता पिता' इस समास में माता शब्द पहले आता है और माता का संबंध भी अधिक घनिष्ठ है, इससे माता का स्वत्व पहले है। जीमूतवाहन कहता है कि 'पितरौ' शब्द ही पिता की प्रधानता का बोधक है इससे पहले पिता का स्वत्व है। मिथिला, काशी और बंबई प्रांत में माता का स्वत्व पहले और बंगाल, मदरास तथा गुजरात में पिता का स्वत्व पहले माना जाता है। मिताक्षरा दायाधिकार में केवल संबंध निमित्त मानती है और दायभाग पिंडोदक क्रिया। मिताक्षरा 'पिंड' शब्द का अर्थ शरीर करके सपिंड से सात पीढ़ियों के भीतर एक ही कुल का प्राणी ग्रहण करती है, पर दायभाग इसका एक ही पिंड से संबद्ध अर्थ करके नाती, नाना, मामा इत्यादि को भी ले लेता है।

मिताक्षरा और दायभाग के बीच मुख्य मुख्य बातों का भेद नीचे दिखाया जाता है :

(१) मिताक्षरा के अनुसार पैतृक (पूर्वजों के) धन पर पुत्रादि का सामान्य स्वत्व उनके जन्म ही के साथ उत्पन्न हो जाता है, पर दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है।

(२) मिताक्षरा के अनुसार विभाग (बाँट) के पहले प्रत्येक सम्मिलित प्राणी (पिता, पुत्र, भ्राता इत्यादि) का सामान्य स्वत्व सारी संपत्ति पर होता है, चाहे वह अंश बाँट न होने के कारण अव्यक्त या अनिश्चित हो।

(३) मिताक्षरा के अनुसार कोई हिस्सेदार कुटुंब संपत्ति को अपने निज के काम के लिये बै या रेहन नहीं कर सकता पर दायभाग के अनुसार वह अपने अनिश्चित अंश को बँटवारे के पहले भी बेच सकता है।

(४) मिताक्षरा के अनुसार जो धन कई प्राणियों का सामान्य धन हो, उसके किसी देश या अंश में किसी एक स्वामी के पृथक् स्वत्व का स्थापन विभाग (बटवारा) है। दायभाग के अनुसार विभाग पृथक् स्वत्व का व्यंजन मात्र है।

(५) मिताक्षरा के अनुसार पुत्र पिता से पैतृक संपत्ति को बाँट देने के लिये कह सकता है, पर दायभाग के अनुसार पुत्र को ऐसा अधिकार नहीं है।

(६) मिताक्षरा के अनुसार स्त्री अपने मृत पति की उत्तराधिकारिणी तभी हो सकती है जब उसका पति भाई आदि कुटुंबियों से अलग हो। पर दायभाग में, चाहे पति अलग हो या शामिल, स्त्री उत्तराधिकारिणी होती है।

(७) दायभाग के अनुसार कन्या यदि विधवा वंध्या या अपुत्रवती हो तो वह उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती। मिताक्षरा में ऐसा प्रतिबंध नहीं है।

याज्ञवल्क्य, नारद आदि के अनुसार पैतृक धन का विभाग इन अवसरों पर होना चाहिए—पिता जब चाहे तब, माता की रजोनिवृत्ति और पिता की विषयनिवृत्ति होने पर, पिता के मृत, पतित या संन्यासी होने पर।

दायम—क्रि० वि० [अ०] हमेशा। निरंतर। सदा। जन्म भर। उ०—बैठे दिन भरते हैं, दायम दरबार तेरे गैर महल करते हैं।—दादू०, पृ० ६८५।

दायमी—वि० [अ० दायम+हिं० ई (प्रत्य०)] नित्य रहनेवाला। स्थायी। जो सदा के लिये हो। उ०—खत न पत्तर गालबन् उनकी बिदाई दायमी साबित हो। —प्रेम० और गोर्की, पृ० ३।

दायमुलहब्स—संज्ञा पुं० [अ०] जीवन भर के लिये कैद। कालेपानी की सजा। दामिल।

दायर—वि० [फ़ा०] १. फिरता हुआ। चलता हुआ। २. चलता। जारी।

मुहा०—दायर करना = मामले मुकदमे वगैरह को चलाने के लिये पेश करना। (व्यवहार या अभियोग) उपस्थित करना। जैसे, मुकदमा दायर करना, नालिश या अपील दायर करना। दायर होना = पेश होना। उपस्थित किया जाना। जैसे, मुकदमा दायर होना।

दायरा—संज्ञा पुं० [अ० दायरह] १. गोल घेरा। कुंडल। मंडल। २. वृत्त। ३. कक्षा। ४. मंडली। ५. खँजड़ी। ६. डफली।

दायाँ—वि० [हिं० दाहिना का संक्षिप्त रूप, बायाँ के अनुकरण पर] दाहिना।

मुहा०—दायाँ बोलना = तीतर का दाहिने हाथ की ओर बोलना जो चोरों के लिये अच्छा शकुन समझा जाता है।

दाया[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दया'। उ०—कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहु जिनके धर्म न दाया।—तुलसी (शब्द०)।

दाया[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'दाई'।

यौ०—दायागरी।

दायागत[१]—वि० [सं०] बाँट बखरे में आया हुआ। मौरूसी हिस्से में पड़ा हुआ।

दायागत[२]—संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह दास जो दाय के रूप में प्राप्त हुआ हो। वह गुलाम जो विरासत में और चीजों के साथ मिला हो। दे० 'दास'।

दायागरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दाई का पेशा या काम।

दायाद[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दायादा] जिसे दाय मिले। जो दाय का अधिकारी हो। जिसे संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा मिले।

दायाद[२]—संज्ञा पुं० १. दाय पाने का अधिकारी मनुष्य। वह जिसका संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा हो। हिस्सेदार। २. पुत्र। बेटा। ३. सपिंड। कुटुंबी।

दायादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] दाय। वह चल अथवा अचल संपत्ति जिसपर सपिंड बंधु बांधवों का अधिकार हो [को०]।

दायाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० दाय+अधिकारिन्] उत्तराधिकारी। वारिस।

दायापवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जायदाद में मिलनेवाले हिस्से की जब्ती।

दायित—वि० [सं०] दिया हुआ। दान किया हुआ।

दायित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. देनदार होने का भाव। २. जिम्मेदारी। जवाबदेही।

दायिनी—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली।

दायी—वि० [सं० दायिन्] [वि० स्त्री० दायिनी] देनेवाला। दाता।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अलग कम होता है, समास में उपपद के रूप में होता है। जैसे, शांतिदायी, सुखदायी, कष्टदायी, वरदायी।

दायँ—क्रि० वि० [हिं० दायाँ] दाहिनी ओर को।

मुहा०—दायें होना = अनुकूल या प्रसन्न होना।

दायोपगतदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो वरासत में मिला हो।

दार¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। पत्नी। भार्या।

यौ०—दारकर्म। दारग्रहण। दारपरिग्रह।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह शब्द पुं० है तथापि हिंदी में स्त्री० ही होता है।

दार²—संज्ञा पुं० [सं० दारु] दे० 'दारु'। उ०—तिलनि माँहि ज्यों तेल है सुंदर पय मैं घीव। दार माँहि है अग्नि ज्यों देह माँहि यों सीव।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१।

दार³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूली। उ०—चढ़ा दार पर जब शेख मंसूर।—कबीर मं०, पृ० ६०६।

दार⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाल] दे० 'दाल'। उ०—(क) मूँग दार बिनु बक्कल साजी। केसरि सहित प्रीत रँग राजी।—रसरतन, पृ० २८८। (ख) चींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार। —कबीर सा०, पृ० ८३।

दार⁵—प्रत्य० [फ़ा०] रखनेवाला। वाला। जैसे,—मालदार, दूकानदार।

दारक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दारिका] १. लौंडा। लड़का। उ०—इक कुमार पुनि मुनिन सँग रहियहि रस की बात। सिख्यो कहाँ ऋषि तियन पहँ को दारक ढिग तात।—विश्राम (शब्द०)। २. पुत्र। बेटा। ३. शावक। छौना (को०)। ४. ग्रामसूकर। सुअर (को०)।

दारक²—वि० [सं०] विदीर्ण करनेवाला। फाड़नेवाला।

दारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दारकर्मन्] भार्याग्रहण। विवाह।

दारक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारकर्म' [को०]।

दारग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह। शादी [को०]।

दारचीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु+चीन] १. एक प्रकार का तज जो दक्षिण भारत, सिंहल और टेनासरिम में होता है।

विशेष—सिंहल में ये पेड़ सुगंधित छाल के लिये बहुत लगाए जाते हैं। भारतवर्ष में यह जंगलों में ही मिलता है और लगाया भी जाता है तो बगीचों में शोभा के लिये। कोंकण से लेकर बराबर दक्षिण की ओर इसके पेड़ मिलते हैं। जंगलों में तो इसके पेड़ बड़े बड़े मिलते हैं पर लगाए हुए पेड़ झाड़ के रूप में होते हैं। पत्ते इसके तेजपत्ते ही की तरह के, पर उससे चौड़े होते हैं और उनमें बीचवाली खड़ी नस के समानांतर कई खड़ी नसें होती हैं। इसके फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फूल के नीचे की दिउली छह फाँकों की होती है। सिंहल में जो दारचीनी के पेड़ लगाए जाते हैं उनके लगाने और दारचीनी निकालने की रीति यह है। कुछ कुछ रेतीली करैल मिट्टी में ४-५ हाथ के अंतर पर इसके बीज बोए जाते या कलम लगाए जाते हैं। बोए हुए बीजों या लगाए हुए कलमों को धूप से बचाने के लिये पेड़ की डालियाँ आस पास गाड़ दी जाती हैं। ६ बर्ष में जब पेड़ ४ या ५ हाथ ऊँचा हो जाता है तब उसकी डालियाँ छिलका उतारने के लिये काटी जाती हैं। डालियों में छुरी से हलका चीरा लगा दिया जाता है जिसमें छाल जल्दी उचट आवे। कभी कभी डालियों को छुरी के बेंट आदि से थोड़ा रगड़ भी देते हैं। इस प्रकार अलग किए हुए छाल के टुकड़ों को इकट्ठा करके दबा दबाकर छोटे छोटे पूलों में बाँधकर रख देते हैं। वे पूले दो या एक दिन यों ही पड़े रहते हैं, फिर छालों में एक प्रकार का हलका खमीर सा उठता है जिसकी सहायता से छाल के ऊपर की झिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा टेढ़ी छुरी से हटा दिया जाता है। अंत में छाल को दो दिन छाया में सुखाकर फिर धूप दिखाकर रख देते हैं।

दारचीनी दो प्रकार की होती है—दारचीनी जीलानी और दारचीनी कपूरी। ऊपर जिस पेड़ का विवरण दिया गया है वह दारचीनी जीलानी है। दारचीनी कपूरी की छाल में बहुत अधिक सुगंध होती है और उससे बहुत अच्छा कपूर निकलता है। इसके पेड़ चीन, जापान, कोचीन और फारमोसा द्वीप में होते हैं और हिंदुस्तान में भी देहरादून, नीलगिरि आदि स्थानों में लगाए गए हैं। भारतवर्ष, अरब आदि देशों में पहले इसी पेड़ की सुगंधित छाल चीन से आती थी, इसी से उसे दारु+चीनी कहने लगे। हिंदुस्तान में कई पेड़ों की छाल दारचीनी के नाम से बिकती है। अमिलतास की जाति का एक पेड़ होता है जिसकी छाल भी व्यापारी दारचीनी के नाम से बेचते हैं पर वह असली दारचीनी नहीं है। असली दारचीनी आजकल अधिकतर सिंहल से ही आती है। दक्षिण में दारचीनी के पेड़ को भी लवंग कहते हैं यद्यपि लवंग का पेड़ भिन्न है और जामुन की जाति का है। तज और दारचीनी के वृक्ष यद्यपि भिन्न होते हैं तथापि एक ही जाति के हैं। दारचीनी से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो दवा के लिये बाहर बहुत जाता है।

२. ऊपर लिखे पेड़ की सुगंधित छाल जो दवा और मसाले के काम में आती है।

दारण१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दारित] १. चीरने या फाड़ने का काम। चीर फाड़। विदीर्ण करने की क्रिया। २. चीरने फाड़ने का अस्त्र या औजार। ३. फोड़ा आदि चीरने का काम। ४. वह औषध जिसके लगाने से फोड़ा आपसे आप फूट जाय।

विशेष—सुश्रुत में चिलबिल, दंती, चित्रक, कबूतर, गीध आदि की बीट तथा क्षार को दारण औषध कहा है।

५. निर्मली का पौधा।

दारण२—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण'। उ०—दारण कर्मा तूँबिया बोना। आनै लिया दिवाली ओला।—रा० रू० पृ० २५३।

दारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा (को०)।

दारद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का विष जो दरद देश में होता है। उ०—जाहि जोहि मारद भई मरी परी दुख कंद। ताहि सुधाधर क्यों कहैं दारद मारद चंद।—स० सप्तक, पृ० २६०। २. पारा। ३. ईंगुर। ४. सागर। समुद्र (को०)।

दारन(पु)—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण'। उ०—पतन को कारन लगे बिचारन। प्रबल पवन नहिं रहि बड़ दारन।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४।

दारना(पु)—क्रि० स० [सं० दारण] १. फाड़ना। विदीर्ण करना। २. नष्ट करना। ध्वस्त करना।

दारपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का ग्रहण। पाणिग्रहण। विवाह।

दारबलिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० दारबलिभुज्] बक। बगुला पक्षी (को०)।

दारमदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. आश्रय। ठहराव। २. कार्य का भार। किसी कार्य का किसी पर अवलंबित रहना। जैसे,—इस काम का दारमदार तुम्हारे ऊपर है।

दारव—वि० [सं०] १. दारु अर्थात् लकड़ी का। लकड़ी का बना हुआ। २. काष्ठ संबंधी।

दारसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] भार्याग्रहण। विवाह।

दारा१—संज्ञा स्त्री० [सं० दारा] स्त्री। पत्नी। भार्या।

विशेष—सं० 'दार' शब्द नित्य बहुवचनांत है, अतः उसका प्रथमा का रूप 'दाराः' होता है पर हिंदी में 'दारा' रूप ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है।

दारा२—संज्ञा पुं० [?] किनारा (लश०)।

दारा३—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की भारी मछली जो हिंदुस्तान में समुद्र के किनारे पाई जाती है। यह लंबाई में तीन हाथ और तौल में दस ग्यारह सेर होती है।

दारा४—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. विश्व का नियंता। ईश्वर। २. राजा। नरेश। ३. धनी। मालदार। ४. ईरान का एक बादशाह (को०)।

दाराई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ग्वारनट की तरह का होता है। दरियाई।

दाराचार्य—संज्ञा पुं० [सं० दार + आचार्य] पढ़ानेवाला। अध्यापन करनेवाला (को०)।

दारि(पु)†१—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल'। उ०—दारि भली है भली विधि सों अरु चाउर हैगो सुगध भरो पू।—सेवक (शब्द०)।

दारि२—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारण। कर्तन। छेदन (को०)।

दारि३—संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दे० 'दारी२'। उ०—चंचल सरस एक काहू पै न रहै दारि।—भूषण ग्रं०, पृ० १२३।

दारिउँ—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] दे० 'दाड़िम'। उ०—बिहँसत हँसत दसन तस चमकै पाहन उठे छरकि। दारिउँ सरि जो न कइ सका फाट्यो हीया दरकि।—जायसी (शब्द०)।

दारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालिका। २. बेटी। पुत्री। कन्या। उ०—ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई।—तुलसी (शब्द०)।

दारिगह(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरगाह] दे० 'दरगाह'। उ०—दारिगह बारिगह निमाजगह खोआरगह।—कीर्ति०, पृ० ५०।

दारित—वि० [सं०] चीरा या फाड़ा हुआ। विदीर्ण किया हुआ।

दारिद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रता। निर्धनता। उ०—देखत दुख दोख दुरित दाह दारिद दरनि।—तुलसी (शब्द०)।

दारिद्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य'।

दारिद्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। गरीबी।

दारिम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] दे० 'दाड़िम'। उ०—लसति जु हँसनि दसन की जोती। को है दारिम को है मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० १२३।

दारिवँ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] दे० 'दाड़िम'। उ०—अधर दसन पर नासिक सोभा। दारिवँ देखि सुआ मन लोभा।—पदमावत, पृ० १०२।

दारी१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग, जिसमें पैर के तलवे का चमड़ा कड़ा हो जाता है और चिड़ चिड़ाकर जगह जगह फट जाता है। बेवाई। खरवा।

विशेष—भावप्रकाश में लिखा है कि जो लोग पैदल अधिक चलते हैं उनको वायु कुपित होकर सूखी हो जाती है, जिससे चमड़ा कड़ा होकर फट जाता है।

दारी२—संज्ञा पुं० [सं० दारिन्] वह पति जिसे कई पत्नियाँ हों। पति (को०)।

दारी३—संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दासी। लौंडी। वह लौंडी जिसे लड़ाई में जीतकर लाया गया हो। कुलटा।

यौ०—दारीजार।

दारीजार—संज्ञा पुं० [हिं० दारी + सं० जार] १. लौंडी का पति। (गाली)।

विशेष—राजा लोग कभी कभी कोई लौंडी रख लिया करते थे। जब उससे अप्रसन्न होते थे तब उसे किसी मनुष्य को दे देते थे और उसके गुजारे के लिये कुछ जागीर दे देते थे। वह मनुष्य उस लौंडी का पति बनता था इसी से वह 'दारीजार' कह-

लाता था। उनसे जो संतान होती थी वह 'दारीजात' कहलाती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'दारीजार' ही से बिगड़कर 'डाढ़ीजार' शब्द बना है। पर यह अनुमान ठीक नहीं जँचता।

२. दासीपुत्र। लौंडीजादा। गुलाम।

दारु¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. काष्ठ। काठ। लकड़ी। उ०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग। दारु विचारु कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग।—मानस, १।१०।

यौ०—दारुकर्म = दे० 'दारुकृत्य'। दारुकृत्य = लकड़ी का काम। दारुगंधा = बिरोजा। दारुगर्भा = कठपुतली। दारुचीनी। दारुपात्र। दारुपुत्रिका। दारुयोषित। दारुवधू।

२. देवदारु का वृक्ष। ३. बढ़ई। कारीगर। शिल्पी। ४. पीतल। ५. दानशील व्यक्ति। दाता (को०)।

दारु²—वि० १. दानशील। देनेवाला। २. खंडनशील। टूटने फूटनेवाला। ३. काटनेवाला। विदारण करनेवाला (को०)।

दारुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदारु। २. श्रीकृष्ण के सारथी का नाम।

विशेष—ये बड़े कृष्णभक्त थे। सुभद्राहरण के समय इन्होंने अर्जुन से कहा था कि मुझे बाँधकर तब आप सुभद्रा को रथ पर ले जाइए; मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हाँक सकता। कृष्ण के स्वर्गवास का समाचार अर्जुन को इन्हीं ने दिया था।

३. काठ का पुतला। ४. योगाचार्य जो शिव के अवतार कहे जाते हैं।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ४४७।

दारुकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली केला। कठकेला।

दारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुकावन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुगन्धा] बिरोजा जो चीड़ से निकलता है

दारुचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दारचीनी'।

दारुज¹—वि० [सं०] १. काष्ठ से उत्पन्न। लकड़ी में पैदा होनेवाला। जैसे, दारुज कीट। २. काष्ठनिर्मित। लकड़ी का बना हुआ।

दारुज²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाजा। मर्दल।

दारुजोषित(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुयोषित] दे० 'दारुयोषित'। उ०—उमा दारुजोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं।—मानस, ४।११।

दारुण¹—वि० [सं०] १. भयंकर। भीषण। घोर। २. कठिन। प्रचंड। विकट। दुःसह। उ०—जा कहँ विधि दारुण दुख दीन्हा। ताकर मति आगे हर लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। ३. विदारक। फाड़नेवाला। ३. निर्दय। क्रूर (को०)। ४. तीक्ष्ण। तीव्र। तीखा (को०)।

दारुण²—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। २. भयानक रस। ३. रौद्र नामक नक्षत्र। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. एक नरक का नाम। उ०—छठवाँ दारुण नरक है जेहि देखत भय होय।—विश्राम (शब्द०)। ७. राक्षस।

दारुणक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर में होनेवाला एक क्षुद्र रोग जिसमें चमड़ा रूखा होकर सफेद भूसी की तरह छूटता है। रूसी।

दारुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्मदाखंड की अधिष्ठात्री देवी। २. भद्राय तृतीया।

दारुणारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

दारुन(पु)—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण'।

दारुनटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुनि—वि० स्त्री० [सं० दारुण] कठोर। निर्दय। उ०—(क) सासु ननदिया दारुनि, उत्तर जनि देहु हो।—धरम०, पृ० ४७। (ख) घर मोरी सासु दारुनि, तो ननद हठीली हो।—धरम०, पृ० ६४।

दारुनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।

दारुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठपात्र। काठ का बरतन।

विशेष—मनु ने यतियों को अलाबुपात्र (तुमड़ी) और दारुपात्र रखने का विधान किया है।

दारुपीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुपुत्रिका, दारुपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुफल—संज्ञा पुं० [सं०] पिस्ता।

दारुमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दारुमयी] काठ का। काठ का बना हुआ।

दारुमुच—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थावर विष का नाम।

दारुमूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि का नाम।

दारुयोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित' (को०)।

दारुयोषित—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुयोषित्] कठपुतली।

दारुयोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित'।

दारुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की गुड़िया। कठपुतली (को०)।

दारुसार—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन (को०)।

दारुसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारचीनी।

दारुहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुहलदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुहरिद्रा] आल की जाति का एक सदाबहार झाड़।

विशेष—यह हिमालय के पूर्वी भाग से लेकर आसाम, पूरबी बंगाल और टनासरिम तक होता है। इसमें सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ की छाल से बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिसका व्यवहार दार्जिलिंग, आसाम आदि के लोग बहुत अधिक करते हैं। इसकी जड़ और डंठल का रंग पीला होता है, इसी से इस पौधे को दारुहलदी कहते हैं। वास्तव में यह हलदी की जाति का नहीं है। दारुहलदी के

नाम से उसकी जड़ और डंठल के टुकड़े बाजार में बिकते हैं। जड़ गाँठ के रूप में नहीं होती। दारुहलदी दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में यह कड़ई, चरपरी, गरम तथा व्रण, प्रमेह, खुजली, चर्मरोग इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है

पर्या०—दार्वी। दारुहरिद्रा। द्वितीयाभा। कपोतक। पीतद्रु। कलियक। पर्चपदा। पर्जनी। काष्ठा। मर्मरी। पीतिका। पीतदारु। कामिनी। कंटकटेरी। पर्जन्या। पीता। दारुनिशा। कामवती। हेमकांती। निर्दिष्टा।

दारुहस्त, दारुहस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ की करछुल [को०]।

दारू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दवा। औषध।

यौ०—दवा दारू। दारू दरमन = चिकित्सा। इलाज।

२. मद्य। शराब। ३. बारूद।

दारूकार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दारू + हिं० कार] शराब बनानेवाला। कलवार।

दारूड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दारू + हिं० ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० दारूड़ी] शराब। मद्य।

दारैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दारा + एषणा] नारी की कामना। जैसे,—लोकैषणा, वित्तैषणा, दारैषणा।

दारो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम, हिं० दारिम, दारिव, दारिउँ, दारयों] दे० 'दारयों'।

दारोगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दारोग़ह्] १. निगरानी रखनेवाला अफसर। देखभाल रखनेवाला या प्रबंध करनेवाला व्यक्ति। जैसे, दारोगा जेल, दारोगा चुंगी, दारोगा अस्तबल। २. पुलिस का वह अफसर जो किसी थाने पर अधिकारी हो। थानेदार।

दारोगाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दारोगा] दारोगा का काम या पद।

दार्ढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता।

दार्दुर—वि० [सं०] दर्दुर संबंधी।

दार्दुर—संज्ञा पुं० १. दक्षिणावर्त शंख का एक भेद। २. जल। पानी (को०)। ३. लाक्षा। लाख (को०)।

दार्दुरक—वि० [सं०] मेढक संबंधी [को०]।

दार्दुरिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।

दार्दुरिक[2]—वि० [सं०] दादुर या मेढक संबंधी। मेढक की भाँति। उ०—भगवदीय कातरंगता के कारण दार्दुरिक अपनी जिह्वा को रसना और वर्हायित नेत्रों को लोचन बनाने में स्नीत स्वामी को देर नहीं लगी।—छीत० (भू०), पृ० १६।

दार्भ—वि० [सं०] दर्भ का। कुश या दर्भ संबंधी।

दारयों(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार। उ०—नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह दारयों से दसन कैसो बीजुरी सो हास है। —केशव (शब्द०)।

दार्वंड—संज्ञा पुं० [सं० दार्वण्ड] [स्त्री० दार्वंडी] वह जिसका अंडा काठ की तरह कड़ा होता है—मयूर। मोर।

दार्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशानकोण में आधुनिक काश्मीर के अंतर्गत पड़ता था।

दार्व[2]—वि० काष्ठनिर्मित। दारुनिर्मित [को०]।

दार्वट—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रणागृह। दार्वाट [को०]।

दार्वाघाट—संज्ञा पुं० [सं०] काठ पर आघात करनेवाला कठफोड़वा नाम का पक्षी।

दार्वाघात—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा पक्षी [को०]।

दार्वाट—संज्ञा पुं० [सं० तुल० फ़ा० 'दरबार' से] मंत्रणागृह। वह कोठरी जहाँ एकांत में बैठकर किसी बात का विचार किया जाय।

दार्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दारुहलदी से निकाला हुआ तूतिया। २. बनगोभी। गोजिया।

दार्विपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिह्वा [को०]।

दार्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दारुहलदी। २. गोजिह्वा। दार्विका (को०)। ३. हरिद्रा। हलदी (को०)। ४. देवदार वृक्ष (को०)।

यौ०—दार्वीक्वाथोद्भव = रसांजन।

दार्श—वि० [सं०] दर्श संबंधी। अमावस्या को होनेवाला [को०]।

दार्शनिक[1]—वि० [सं०] १. दर्शन जाननेवाला। २. दर्शन शास्त्र संबंधी।

दार्शनिक[2]—संज्ञा पुं० दर्शनशास्त्र जाननेवाला मनुष्य। तत्वज्ञानी। तत्ववेत्ता।

दार्षद—वि० [सं०] १. पत्थर पर पीसा हुआ। २. दृषद संबंधी। पाषाणमय। ३. खनिज [को०]।

दार्षद्वत—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक यज्ञ जो दृषद्वती नदी के किनारे किया जाता था।

दार्ष्टांत—वि० [सं० दार्ष्टान्त] दे० 'दार्ष्टांतिक'।

दार्ष्टांतिक—वि० [सं० दार्ष्टान्तिक] दृष्टांत संबंधी। दृष्टांत द्वारा व्यक्त।

दाल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि अथवा दल] १. दलों में किया हुआ अरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर आदि अन्न जो उबालकर खाया जाता है। दली हुई अरहर, मूँग आदि जो सालन की तरह खाई जाती है। जैसे,—मूँग की दाल क्या भाव है?

क्रि० प्र०—दलना।

यौ०—दालमोठ।

विशेष—दाल उन्हीं अनाजों की होती है जिनमें फलियाँ लगती हैं और जिनके बीज दबाने से टूटकर दो दलों या खंडों में हो जाते हैं। जैसे, अरहर, मूँग, उरद, चना, मसूर, मटर।

२. हलदी, मसाले के साथ पानी में उबाला हुआ दला अन्न जो रोटी, भात आदि के साथ खाया जाता है।

मुहा०—दाल गलना = दाल का अच्छी तरह पककर नरम हो जाना। दाल का सीभना। (किसी की) दाल गलना = (किसी का) प्रयोजन सिद्ध होना। मतलब निकलना। कार्यसिद्धि के लिये किसी युक्ति का चलना।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग निषेधात्मक वाक्य में ही अधिकतर होता है जैसे, यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी, बड़े बड़े उस्ताद हैं।

दाल चपाती = (१) दाल रोटी। (२) बच्चों को डराने का एक नाम। दालचप्पू होना = एक दूसरे से लिपटकर एक हो जाना। गुत्थमगुत्था होना। जैसे, दो पतगों का दालचप्पू होना। दाल दलिया = सूखा रूखा भोजन। गरीबों का सा खाना। दाल भात में मूसर होना = दो के मध्य में अनावश्यक, अप्रिय और अनिच्छित रूप में दखल देना। उ०—एकांत विहार में यह दाल भात में मूसर कहाँ से आ गई?—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३५। दाल में कुछ काला होना = कुछ खटके या संदेह की बात होना। कुछ बुरा रहस्य होना। किसी बुरी बात का लक्षण दिखाई पड़ना। दाल में नोन—किसी प्रमुख वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का उतना ही मेल मिलाना जिससे स्वाद में वृद्धि हो जाय। मात्रानुकूल। ठीक अनुमान। उ०—उतना ही, जितना दाल में नोन पड़ सकता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८८। दाल रोटी = सादा खाना। सामान्य भोजन। आहार। दाल रोटी चलना = खाना मिलना। जीविका निर्वाह होना। दाल रोटी से खुश = खाने पीने से सुखी। खाता पीता। जिसे न अधिक धन हो न खाने पीने का कष्ट हो। जूतियों दाल बँटना = खूब लड़ाई झगड़ा होना। गहरी अनबन होना। आपस में न पटना।

३. दाल के आकार की कोई वस्तु। ४. चेचक, फोड़े, फुंसी आदि के ऊपर का चमड़ा जो सूखकर छूट जाता है। खुरंड। पपड़ी।

मुहा०—दाल छूटना = खुरंड अलग होना। दाल बँधना = खुरंड पड़ना।

५. सूर्यमुखी शीशे से होकर आया हुआ किरनों का समूह जो इकट्ठा होकर गोल दाल के आकार का हो जाता है और जिससे आग लग जाती है।

मुहा०—दाल बँधना = प्रकाश का इकट्ठा होकर पड़ना।

६. अंडे की जरदी।

दाल³—संज्ञा पुं० [सं० देवदारु] तुन की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर शिमला तथा आगे पंजाब की ओर होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसकी धरनें और कड़ियाँ मकानों में लगती हैं, पुल और रेल की सड़कों पर बिछाई जाती हैं तथा और भी बहुत से कामों में आती है।

दाल⁴—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मधु। पेड़ के खोड़रे में मिलनेवाला शहद। २. कोदो नाम का अन्न।

दालचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दारचीनी] दे० 'दारचीनी'।

दालिद्दी(पु)†—वि० [सं० दारिद्र्य, दरिद्रता, प्रा० दालिद्द] दरिद्र। गरीब। उ०—सबकी सीसे दामदी देवी देस बिदेस। दारिद भंजन एकही सुंदर कमलाकंत।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६३।

दालन—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग।

दालभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि का नाम।

दालमोठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाल + मोठ (= एक मोटा अन्न जो राजस्थान पंजाब आदि भारत के पश्चिमी भूभाग में ज्यादा होता है।)] घी, तेल आदि में नमक, मिर्च के साथ तली हुई दाल जो नमकीन की तरह खाई जाती है।

दालव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष।

दाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल नाम की लता।

दालान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह लंबा घर जिसके चारों ओर दीवार न हो, एक दो या तीन ओर खंभे आदि हों। मकान में वह छाई हुई जगह जो चारों ओर से घिरी न हो, एक दो या तीन ओर खुली हो। बरामदा। ओसारा।

विशेष—दालान प्रायः मकान के सामने होता है।

दालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाल। २. देवदाली लता। ३. दाड़िम। अनार।

दालिद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य'। उ०—राम जपत दालिद भला, टूटी घर की छानि। ऊँचे मंदिर जालि दे जहाँ भगति न सारँगपानि।—कबीर ग्रं०, पृ० ५३।

दालिद्र—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दारिद्र्य। दरिद्रता। गरीबी। उ०—सुंदर कहत दुख दालिद्र निकंदनी।—सुंदर ग्रं०, भा० १ (जी०), पृ० १६६।

दालिद्री—वि० [सं० दरिद्र] दरिद्रतायुक्त। दरिद्र। उ०—आलस निद्रा जा कहूँ होई। काम क्रोध दालिद्री सोई।—कबीर सा०, पृ० ३६।

दालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाड़िम'।

दालिवँ—संज्ञा पुं० [सं० दालिम] दे० 'दालिव'। उ०—सहजें दालिव फुटल अइसन दान्त।—वर्ण०, पृ० ५।

दाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल'। उ०—मुद्गा, दाली घृत की ब्याली। रस के कंदर सुंदर सालो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

दाल्भ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दल्भ ऋषि के गोत्र का मनुष्य। २. वृक नामक मुनि।

विशेष—इन्द्र इनके बंधु थे। इन्होंने चंद्रसेन राजा की गर्भिणी स्त्री की परशुराम के क्रोध से रक्षा की थी।

दाल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दावँ—संज्ञा पुं० [सं० दाव (= भाग) अथवा सं० प्रत्य० दा या दाच; जैसे एकदा] १. बार। दफा। मरतबा। २. किसी के लिये किसी बात का समय जो कई आदमियों में एक दूसरे के पीछे क्रम से आवे। बारी। पारी। जैसे,—जब तुम्हारा दावँ आवेगा तब जैसा चाहना वैसा करना। उ०—तब नहिं दीनो मो कहँ ठावँ। अब कस रोवत अपने दावँ।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।

३. किसी कार्य के लिये उपयुक्त समय। अवसर। मौका। अनुकूल संयोग। उ०—(क) द्विजदेव की सौं अब चूक मत दावँ, अरे पातकी पपीहा! तू पिया की धुनि गावै ना।—द्विजदेव (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर त्यो साँकरी गली है अति इत उत भाजिबे को दावँ ना लगत है।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लगना।

मुहा०—दावँ करना = घात लगाना। घात में बैठना। दावँ

चूकना = अवसर को हाथ से जाने देना। किसी कार्यसाधन के लिये अनुकूल समय पाकर भी कुछ न करना। मौका खोना। दावँ ताकना – अवसर की ताक में रहना। मौका देखते रहना। दावँ मिलना = दे० 'दावँ लगना'। दावँ लगना = अवसर हाथ में आना। अनुकूल संयोग मिलना। मौका मिलना। दावँ लगना = दे० 'दावँ ताकना'। दावँ लेना = जिसने बुरा व्यवहार किया हो मौका मिलने पर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना। बदला लेना। प्रतिकार करना। उ०—असुर कुपित ह्वै कह्यो बहुत तुम असुर सँहारे। अब लैहौं वह दावँ छाँड़िहौं नहिं बिनु मारे।—सूर (शब्द०)।

४. कार्यसाधन की युक्ति। उपाय। चाल। मतलब गाँठने का ढंग।

मुहा०—दावँ पर चढ़ना = ऐसी स्थिति में होना जिससे किसी का काम निकल सके। किसी के अभिप्राय साधन के अनुकूल प्रवृत्त होना। इस प्रकार वश में होना कि दूसरा अपना मतलब निकाल ले। दावँ पर चढ़ाना = मतलब के मुवाफिक करना। कार्यसाधन के लिये अनुकूल करना। दावँ पर लाना = दे० 'दावँ पर चढ़ाना'। दावँ में आना = दे० 'दावँ पर चढ़ना'।

५. कुश्ती या लड़ाई जीतने के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति। चाल। पेंच। बंद। उ०—(क) तब हरि भिरे मल्लक्रीड़ा करि बहु बिधि दावँ दिखाए।—सूर (शब्द०)। (ख) झटकि दूर फेकत पहुत चलत न कोऊ दावँ (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—दावँ पेंच।

मुहा०—दावँ पर लाना = कुश्ती में जोड़ को ऐसी स्थिति में करना कि उसपर पेंच हो सके।

६. कार्यसाधन की कुटिल युक्ति। छल। कपट।

क्रि० प्र०—चलना।

मुहा०—दावँ खेलना = चाल चलना। धोखा देना। दावँ देना = दे० 'दावँ खेलना'।

७. खेल में प्रत्येक खेलाड़ी के खेलने का समय जो एक दूसरे के पीछे क्रम से आता है। खेलने की बारी। चाल। जैसे,—अब हमारा दावँ है, कौड़ी हम फेंकेंगे।

मुहा०—दावँ चलना = अपनी बारी आने पर शतरंज की गोटी, ताश के पत्ते आदि को रखना। दावँ फेंकना = अपनी बारी आने पर पासा या जुए की कौड़ी आदि डालना। दावँ पर रखना = रुपया पैसा या कोई वस्तु दावँ फेंकनेवाले के सामने रखना जिसमें यदि वह जीत तो उसे ले जाय और हारे तो उतना दे। बाजी पर लगाना। दावँ लगाना = दे० 'दावँ पर रखना'।

८. पासे, जुए की कौड़ी आदि का इस प्रकार पड़ना जिससे जीत हो। जीत का पासा या कौड़ी। उ०—दावँ बलराम को देखि उन छल कियो आप जीत्यो कहन लगे मारे। देववाणी भई, जीत भई राम को, ताहू पै मूढ़ नाहीं सँभारे।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मुहा०—दावँ देना = खेल में हारने पर नियत दंड भोगना या परिश्रम करना (लड़के)। उ०—तुमरे संग कहो को खेलै दावँ देत नहिं करत रुनैया?—सूर (शब्द०)। दावँ लेना = खेल में हारनेवाले से नियत दंड भोगाना या परिश्रम कराना।

†९. स्थान। ठौर। जगह। उ०—वह झाड़ी एक पहाड़ के उतार पर थी इससे सिंह को निकलने का दावँ न था।—गोपाल उपासनी (शब्द०)।

दावँना—क्रि० स० [सं० दमन] दाना और भूसा अलग करने के लिये कटी हुई फसल के सूखे डंठलों को बैलों से रौंदवाना। दाना झाड़ने के लिये माँड़ना।

दावँनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। बंदी।

दावँरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्सी। रज्जु। उ०—दावँरि लै बाँधन लगी जसुदा ह्वै बेपीर। पै गोबंधन बाँधिहै गोपति कों को बीर?—व्यास (शब्द०)।

दाव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन। जंगल। २. वन की आग। ३. आग। अग्नि। ४. जलन। ताप। कष्ट। पीड़ा।

दाव²—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का हथियार। २. एक पेड़ का नाम। दे० 'धावरा'।

दाव³—संज्ञा पुं० [हिं० दावँ] १ अवसर। सुयोग। उ०—ले सँभारि सँवारि आपुहिं मिलहिं नहिं फिर दाव।—जग० बानी, पृ० ३५। †२. रिक्त स्थान। जगह। दावँ। ३. छल। कपट। इष्टसाधन की कुटिल युक्ति या चालबाजी।

यौ०—दावपेंच = दावँपेंच। चालबाजी। उ०—सारे दावपेच खुले पेचीदगी आने पर। यार गिरफ्तार हुआ खून के बहाने पर।—बेला, पृ० ६१।

मुहा०—दाव पेंच चलना = एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये चालें चलना। चतुरता की चालें चलना। उ०—वाह किबला, आपके फेजान सुहबत से हम पोख्ता मगज हो गए हैं ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाव पेंच चले।—फिसाना० भा० १, पृ० ६।

४. कुअवसर। बुरा मौका। उ०—जिससे सुंदरदास जी के मठ वा असबाब को बहुत भारी नुकसान पहुँचने का दाव व संभावना का रूप हो गया है।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १ पृ० १८६।

दावत—संज्ञा स्त्री० [अ० दअवत] १. ज्योनार। भोज। २. खाने का बुलावा। निमंत्रण। न्योता।

क्रि०प्र०—खाना।—देना।—लेना।

यौ०—दावत तवाजा = आदर सत्कार। दावतनामा = निमंत्रण-पत्र। निमंत्रण। दावते जंग = युद्ध की चुनौती। रणनिमंत्रण।

दावदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाउदी] एक पुष्प। दे० 'गुलदावदी'।

दावन¹—संज्ञा पुं० [सं० दमन] १. दमन। नाश। उ०—जातुधान दावन परावन को फल भो।—तुलसी (शब्द०)। २. हँसिया। ३. एक प्रकार का टेढ़ा छुरा। खुखड़ी।

न²—संज्ञा पुं० [फ़ा० दामन] दे० 'दामन'।

ना¹—क्रि० स० [सं० दमन] दे० 'दाँवना'।

ना²—क्रि० स० [हिं० दावन (=नाश)] दमन करना। नष्ट करना। उ०—सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भव-दाप-दावनी।—तुलसी (शब्द०)।

नी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दावँनी'।

र—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. ईश्वर। खुदा। २. न्यायकर्ता। हाकिम। न्यायकारी। उ०—के इस मोहरे के तीन आलम में दावर। है भयी वास्ते कमे हूँ इजाहूर।—दक्खिनी०, पृ० १९६।

रा—संज्ञा पुं० [देश०] धावरा नाम का पेड़।

री¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दावँरी'।

री²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. न्याय। इंसाफ। २. हुकूमत। शासन [को०]।

रीगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] न्यायालय।

ँडोल—वि० [हिं० डाँवाडोल] चंचल। अस्थिर। डाँवाँडोल। उ०—ऐंद्रजालिक चेतना के स्तंभ दावाँडोल दुनियाँ में अडिग विश्वास के।—हरी घास०, पृ० १६।

¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव (=वन)] वन में लगनेवाली आग जो बाँस या और पेड़ों की डालियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है। उ०—चिंता ज्वाल सरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुवाँ नहिं देखिए उर अंतर धुधुवाय।—गिरधर (शब्द०)।

²—संज्ञा पुं० [अ० दा'वा] किसी वस्तु पर अधिकार प्रकट करने का कार्य। किसी वस्तु को जोर के साथ अपना कहना। किसी चीज पर हक जाहिर करना। जैसे,—जब तुम इस मकान ही पर दावा करने लगोगे तो हम क्या करेंगे? उ०—दावा पातसाहन सों कीन्हो सिवराज बीर जेर कीनो देस, हद्द बाँध्यो दरबारे में।—भूषण (शब्द०)। २. स्वत्व। हक। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा क्या दावा है? ३. किसी के विरुद्ध किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्थिर करने के लिये न्यायालय आदि में दिया हुआ प्रार्थनापत्र। किसी जायदाद या रुपए पैसे के लिये चलता हुआ मुकदमा। जैसे, किसी आदमी पर अपने रुपए का दावा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दावा जमाना = मुकदमा ठीक करना। हक साबित करना।

४. नालिश। अभियोग।

मुहा०—दावा खारिज होना = मुकदमा हारना। हक का साबित न होना।

५. अधिकार। जोर। प्रताप। उ०—गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर, दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।—भूषण (शब्द०)। ६. किसी बात को कहने में वह साहस जो उसकी यथार्थता के निश्चय से उत्पन्न होता है। दृढ़ता। जैसे,—मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मैं इस काम को दो दिनों में कर सकता हूँ। ७. दृढ़तापूर्वक कथन। जोर के साथ कहना। जैसे,—उनका तो यह दावा है कि वे एक मिनट में एक श्लोक बना सकते हैं।

दावाअगन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा + अग्नि] दे० 'दावाग्नि'। उ०—दुरग के पुत्र भतीजे और भाई। दावाअगन साह लागे मेघ तें सवाई।—रा० रू०, पृ० ११८।

दावागीर—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फ़ा० गीर] दावा करनेवाला। अपना हक जतानेवाला। उ०—नाहिं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज। हिरनाकुस अरु कंस को गयो दुहुन को राज। गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे। दुसमन दावागीर भए महिमंडल सिगरे।—गिरधर (शब्द०)।

दावाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग।

दावात—संज्ञा स्त्री० [अ० दवात] स्याही रखने का बरतन। मसिपात्र।

दावादार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फ़ा० दार] दावा करनेवाला। अपना हक जतानेवाला।

दावानल—संज्ञा पुं० [सं०] वन की आग जो बाँसों या और पेड़ों की डालियों के एक दूसरे से रगड़ खाने से उत्पन्न होती है और दूर तक फैलती चली जाती है। दावाग्नि।

यौ०—दावानलेश = वन में लगनेवाली आग। दावाग्नि। उ०—ज्यों पियो कृष्ण दावानलेस। त्यों तिक्क नई आयुध देस।—पृ० रा०, १२। ७८।

दाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] १. बिजली। २. स्त्रियों के माथे पर का एक गहना। बेंदी।

दावित—वि० [सं०] पीड़ित। बाधित [को०]।

दावी—संज्ञा पुं० [सं० दव] धव का पेड़।

दावीदार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फ़ा० दार] दे० 'दावागीर' [को०]।

दावेदार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फ़ा० दार] दे० 'दावादार'।

दाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछुआ। धीवर। केवट।

विशेष—निषाद पुरुष और आयोगव स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति को दास कहते हैं। ये नौका चलाते हैं और कैवर्त या केवट भी कहलाते हैं।

यौ०—दाशग्राम = दे० 'दाशपुर'। दाशनंदिनी = सत्यवती। व्यास की माता।

२. भृत्य। नौकर। सेवक।

दाशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धीवरों की बस्ती। २. एक प्रकार का मोथा। कैवर्त मुस्तक।

दाशरथ¹—वि० [सं०] दशरथ संबंधी।

दाशरथ²—संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र।

दाशरथि—संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र आदि।

दाशरात्रिक—वि० [सं०] दशरात्र संबंधी (यज्ञ, कृत्य आदि)।

दाशार्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दशार्ण देश। २. दशार्ण देश का निवासी।

दाशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] दशार्ह के वंश का मनुष्य। यदुवंशी।

दाशेय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दाशेयी] दाश से उत्पन्न ।

दाशेय[2]—संज्ञा पुं० दाश का पुत्र । धीवरपुत्र ।

दाशेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती (को०) ।

दाशेर—संज्ञा पुं० [सं०] धीवरों की संतति ।

दाशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरु प्रदेश । मारवाड़ । २. मारवाड़ का निवासी ।

दाशौदनिक[1]—वि० [सं०] दशौदन यज्ञ संबंधी ।

दाशौदनिक[2]—संज्ञा पुं० दशौदन यज्ञ की दक्षिणा ।

दाश्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] परवरिश । पालन पोषण । देखरेख । रखवारी ।

दाश्ता—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाश्तह्] रखेल । उपपत्नी (को०) ।

दाश्व—वि० [सं०] देनेवाला ।

दाषना†—क्रि० स० [देश०] १. कहना । उ०—दाषै सो दस दोष रो निरणो निपट प्रनूर ।—रघु० रू०, पृ० ३२ । २. देखना ।

दास[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दासी] १. वह जो अपने को दूसरे की सेवा के लिये समर्पित कर दे । सेवक । चाकर । नौकर ।

विशेष—मनु ने सात प्रकार के दास लिखे हैं—ध्वजाहृत, अर्थात् युद्ध में जीता हुआ, भक्तदास, अर्थात् जो भात या भोजन पर रहे; गृहज, अर्थात् जो घर की दासी से उत्पन्न हो; क्रीत, अर्थात् मोल लिया हुआ, दात्रिम, अर्थात् जिसे किसी ने दिया हो; दंडदास, अर्थात् जिसे राजा ने दास होने का दंड दिया हो; और पैतृक, अर्थात् जो बाप दादों से दाय में मिला हो । याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतियों में दास पंद्रह प्रकार के गिनाए गए हैं—गृहजात, क्रीत, दाय में मिला हुआ, अन्नाकालभृत, अर्थात् अकाल या दुर्भिक्ष में पाला हुआ; आहित, अर्थात् जो स्वामी से द्रव्य धन लेकर उसे सेवा द्वारा पटाता हो; ऋणदास, जो ऋण लेकर दासत्व के बंधन में पड़ा हो; युद्धप्राप्त, अर्थात् युद्ध में जीता हुआ, स्वयं उपगत, अर्थात् जो आपसे आप दास होने के लिये आया हो; प्रव्रज्यावसित, अर्थात् जो संन्यास से पतित हुआ हो, कृत, अर्थात् जिसने कुछ काल तक के लिये आपसे आप सेवा करना स्वीकार किया हो; भक्तदास; बड़वाहृत, अर्थात् जो किसी बड़वा या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो, लब्ध, जो किसी से मिला हो; और आत्मविक्रेता, जिसने अपने को बेच दिया हो । ब्राह्मण के लिये दास होने का निषेध है, ब्राह्मण को छोड़ और तीनों वर्ण के लोग दास हो सकते हैं । यदि कोई ब्राह्मण लोभवश दासत्व स्वीकार करे तो राजा उसको दंड दे (मनु) । क्षत्रिय और वैश्य दासत्व से विमुक्त हो सकते हैं पर शूद्र दासत्व से नहीं छूट सकता । यदि वह एक स्वामी का दासत्व छोड़ेगा तो दूसरे स्वामी का दास होगा । दास उसे सब दिन रहना पड़ेगा क्योंकि दासत्व के लिये उसका जन्म ही कहा गया है । दासों के दो प्रकार के कर्म कहे गए हैं,—शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) । दरवाजे पर झाड़ू देना, मल मूत्र उठाना, जूठा धोना आदि बुरे कर्म माने गए हैं ।

२. शूद्र । ३. धीवर । ४. एक उपाधि जो शूद्रों के नामों के आगे लगाई जाती है । ५. दस्यु । ६. वृत्रासुर । ७. ज्ञातात्मा । आत्मज्ञानी । ८. दानपात्र (को०) । ९. कायस्थों की एक उपाधि (बंगाल) ।

दास[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दासन', 'डासन' । उ०—भा निर्मल सब धरति अकासू । सेज सँवारि कीन्ह भल दासू ।—जायसी (शब्द०) ।

दासक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास । सेवक । २. गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि का नाम ।

दासजन—संज्ञा पुं० [सं० दास + जन] भृत्य । सेवक । उ०—विधिकर, किंकर दासजन अनुचर अनुग पदाति ।—अनेकार्थ०, पृ० ७१ ।

दासता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दास का कर्म । दासत्व । सेवावृत्ति ।

दासत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास होने का भाव । २. दास का काम । सेवावृत्ति ।

दासनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दासनन्दिनी] धीवर की कन्या सत्यवती जो व्यास की माता थी ।

दासन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डासन' ।

दासनदासा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दासानुदास] दे० 'दासानुदास' । उ०—सन्यासी मनि त्यागै आसा । प्रणवत नानक दासनदासा ।—प्राण०, पृ० ९२ ।

दासपन—संज्ञा पुं० [सं० दास + पन (प्रत्य०)] दासत्व । सेवाकर्म ।

दासपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोथा । कैवर्त मुस्तक ।

दासप्रथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दास + प्रथा] वह पुरानी प्रथा जिसके अनुसार दास के रूप में निम्न वर्ग के मनुष्यों का क्रय विक्रय होता था । उ०—दासप्रथा दुनिया के बहुत से भागों से बहुत पहिले खतम हो चुकी ।—भा० इ० रू०, पृ० ४६ ।

दासभाव—संज्ञा पुं० [सं० दास्यभाव] भक्ति के ९ भेदों में से एक । उ०—दासभाव सतसगति लीना । दीन हीन मन होइ अधीना ।—घट०, पृ० २४९ ।

दासमीय[1]—वि० [सं०] दसम देश में उत्पन्न ।

दासमीय[2]—संज्ञा पुं० दसम देश का निवासी ।

दासमेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद ।

दासा[1]—संज्ञा पुं० [सं० दासी (= वेदी)] १. दीवार से सटाकर उठाया हुआ बाँध या पुश्ता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिसपर चीज वस्तु भी रख सकें । २. आँगन के चारों ओर दीवार से सटाकर उठाया हुआ चबूतरा जो आँगन के पानी को घर या दालान में जाने से रोकने के लिये बनाया जाता है । ३. वह लकड़ी या पत्थर जो दरवाजे के ऊपर दीवार के आर पार रहता है । ४. दीवार की कुर्सी के ऊपर बैठाया हुआ पत्थर ।

दासा[2]—संज्ञा पुं० [सं० दात्र] हँसिया ।

दासातन—संज्ञा पुं० [हिं० दासापन] (दासता का) भाव । सेवाभाव । उ०—पहिले दासातन करै सो वैराग प्रमान ।—पलटू०, पृ० ४४ ।

दासानुदास—संज्ञा पुं० [सं० दास + अनुदास] सेवक का सेवक। अत्यंत तुच्छ सेवक।

विशेष—नम्रता और शिष्टता दिखाने के लिये इस शब्द का व्यवहार अधिक होता है।

दासायन—संज्ञा पुं० [सं०] दासी का पुत्र [को०]।

दासि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दासी] दे० 'दासी'। उ०—अधर सुधा के लोभ भई हम दासि तिहारी। ज्यों लुबधी पद कमलनि कमला चंचल नारी।—नंद० ग्रं०, पृ० २७।

दासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। उ०—कूबरी भई है रानी हम तौ बिगनी हाय, नऊ बिन दामन की दासिका बने रहौ। नागर जू छेम जुत आपु जग कोटिक लौं, चित की लगन जहाँ मगन बने रहौ।—नट०, पृ० २७।

दासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा करनेवाली स्त्री। टहलनी। लौंडी। २. धीवर या शूद्र की स्त्री।

यौ०—दासीपुत्र।

३. काकजंघा। ४. नीलाम्लान। काला कारोठा नाम का पौधा। ५. कटसरैया। ६. वेदी। ७. वेश्या (को०)।

दासीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] विदुर। उ०—तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी।—पलटू०, पृ० ५०।

दासेय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दासेयी] दास से उत्पन्न।

दासेय[2]—संज्ञा पुं० १. दास। गुलामजादा। २. धीवर।

दासेयी—स्त्री० स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती।

दासेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास। २. कैवर्त। धीवर। ३. ऊँट।

दासेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दासीपुत्र। दासेय। २. ऊँट।

दास्ताँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दास्तान्'। उ०—हाँ, जगत तेरे बिना आबाद वैसा ही रहेगा। दूसरों के कान में वह दास्ताँ अपनी कहेगा।—विश्व०, पृ० ७७।

दास्तान्—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वृत्तांत। २. हाल। कथा। किस्सा। ३. वर्णन। बयान।

दास्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दास्तान्] कथा। वृत्तांत। उ०—जिसमें खतम हो जाए यहीं से इस दास्तान का बयान।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३२३।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व। दासपन। सेवा। उ०—द्रव्य के लोभ से दास्य अंगीकार करूँ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ७४।

विशेष—दास्य, भक्ति के नव भेदों में से एक है।

दास्यमान—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो। जिसे दूसरे को देना हो।

दास्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र।

दाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाने की क्रिया या भाव। भस्मीकरण। उ०—भयो तो दिलो को पति देखत फनाह आज, दाह मिटि गयो तो हमीर नरनाह को।—हम्मीर०, पृ० ३७। २. शव जलाने की क्रिया। मुर्दा फूँकने का काम।

विशेष—शुद्धितत्व में दाहकर्म के विषय में इस प्रकार लिखा है: शव को पुत्रादि श्मशान में ले जाकर रखें और स्नान कर पिंडदान के लिये अन्न पकावें। फिर मृतक के शरीर में घी मलकर उसे मंत्रपाठपूर्वक स्नान करावें, दूसरे नए वस्त्र में लपेटें, और आँख, कान, नाक, मुँह इन सात छेदों में थोड़ा सोना डालें। इतना हो चुकने पर चिता में अग्नि देनेवाला प्राचीनावीत होकर (जनेऊ को दाहिने कंधे पर डालकर) बायाँ घुटना टेककर बैठे और मंत्र पढ़कर कुश से एक रेखा खींचे। फिर उस रेखा पर कुश बिछावे और दाहिने हाथ में तिलसहित जलपात्र लेकर मृतक का नाम, गोत्र आदि उच्चारण करता हुआ जल को कुश पर गिरा दे। इसके अनंतर तिलसहित पिंड लेकर कुश पर विसर्जित करे। जब इतना कृत्य हो जाय तब पुत्रादि चिता तैयार करें। और मुर्दे को उत्तर दक्खिन और सिर करके लेटा दें। जो सामवेदी हों वे शव का मस्तक उत्तर की ओर रखें। फिर अग्नि हाथ में लेकर आग देनेवाला तीन प्रदक्षिणा करे और दक्खिन ओर अपना मुँह करके शव के मस्तक की ओर आग लगा दे। फिर सात लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात प्रदक्षिणा करे और प्रत्येक प्रदक्षिणा में एक एक लकड़ी चिता में डालता जाय। जब शव जल जाय तब एक बाँस लेकर चिता पर सात बार प्रहार करे जिससे कपाल फूट जाय। इतना करके फिर वह चिता की ओर न ताके और जाकर स्नान कर ले।

३. जलन। ताप। ४. एक रोग जिसमें शरीर में जलन मालूम होती है, प्यास लगती है और कंठ सूखता है। वैद्यक के मत से यह रोग दाहपित्त के प्रकोप से होता है।

विशेष—भावप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है,—(१) रक्तजन्य दाह, जिसमें रक्त कुपित होकर सारे शरीर में दाह उत्पन्न करता है। ऐसा जान पड़ता है, मानो सारा शरीर आग से तप रहा है और क्षण क्षण पर प्यास लगती है। (२) रक्तपूर्ण कोष्ठज दाह, जो किसी अंग में हथियार आदि का घाव लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है। (३) मद्यज दाह। (४) तृष्णाविरोधज दाह। (५) धातुक्षयज दाह। (६) मर्माभिघातज दाह, और (७) असाध्य दाह जिसमें रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंढा रहता है, पर भीतर भीतर जला करता है।

५. शोक। संताप। अत्यंत दुःख। डाह। ईर्ष्या। ६. चमकती हुई लालिमा। दीप्त लाल रंग। जैसे, आकाश का।

दाहक[1]—वि० [सं०] जलानेवाला।

दाहक[2]—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष। चीता। लाल चीता। २. अग्नि। आग।

दाहकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण।

दाहकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण।

दाहकरण—संज्ञा पुं० [सं० दाह + √ कृ > करण] जलाने की क्रिया। उ०—बौद्धों के दल का जीने ही वह दाहकरण।—अपरा, पृ० २१४।

दाहकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शवदाह कर्म। मुर्दा फूँकने का काम।

दाहकारक—वि० [सं० दाह+कारक] दे० 'दाहक'।

दाहकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अगर जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं।

दाहक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह कर्म। मृतक को जलाने का संस्कार।

दाहज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन मालूम हो।

दाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाने का काम। २. जलवाने का काम। भस्म कराने की क्रिया।

दाहना[1]—क्रि० स० [सं० दाह] १. जलाना। भस्म करना। २. संतप्त करना। सताना। दुःख पहुँचाना। उ०—ब्याल, अनल, विष ज्वाल ते राखि लई सब ओर। विरह अनल अब दाहिहो हँसि हँसि नंदकिसोर।—नंद० ग्रं०, पृ० १८०।

दाहना[2]—वि० [हिं०] दे० 'दाहिना'।

दाहसर, दाहस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा जलाने का स्थान। श्मशान।

दाहहर, दाहहरण—संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

दाहा—संज्ञा पुं० [फा० दह (= दस)] १. मुहर्रम के दस दिन जिसके भीतर ताजिया रखा जाता है और दफन किया जाता है। २. ताजिया।

दाहागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अगर।

दाहानल—संज्ञा पुं० [सं० दाह+अनल] दे० 'दावानल'। उ०—सुन वे बेपरवाह बिरागी दाहानल बुझाना।—घनानंद० पृ० ४५६।

दाहिन—वि० [सं० दक्षिण] १. दे० 'दाहिना'। २. अनुकूल। उ०—(क) मेला तुरुक लेंगे जागो न देर। दाहिन बचन बाम कए लेर।—विद्यापति, पृ० २०७। (ख) बार बार बिनवो नंदलाला। मोसों दाहिन होहु कृपाला।—सूर (शब्द०)।

दाहिना—वि० [सं० दक्षिण] [वि० स्त्री० दाहिनी] १. उस पार्श्व का जिसके अंगों की पेशियों में अधिक बल होता है। उस ओर का जिस ओर के अंग काम करने में अधिक तत्पर होते हैं। 'बायाँ' का उलटा। दक्षिण। अपसव्य। जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी आँख।

मुहा०—दाहिनी देना = दक्षिणावर्त परिक्रमा करना। प्रदक्षिणा करना। उ०—जनम जनम तनु धरि वृथा और कर्म बँधावै। पुहुमि दाहिनी देहि सुफल काहे न पावे।—सूर (शब्द०) दाहिनो लाना = प्रदक्षिणा करना। उ०—पंचवटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई।—तुलसी (शब्द०)। (किसी का) दाहिना हाथ होना = बड़ा भारी सहायक होना।

२. उधर पड़नेवाला जिधर दाहिना हाथ हो। जैसे, दाहिनी दिशा। ३. अनुकूल। प्रसन्न।

दाहिनावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणावर्त्त] १. प्रदक्षिणा। २. एक प्रकार का शंख। दे० 'दक्षिणावर्त'।

दाहिनो—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'दाहिने'। उ०—सदा अरानो दाहिनी सन्मुख रहै प्रसन्न।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०२।

दाहिने—क्रि० वि० [हिं० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर। उस तरफ जिस तरफ दहिना हाथ हो। दाहिने हाथ की दिशा में। जैसे,—तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े उसी में पुकारना।

मुहा०—दाहिने होना = अनुकूल होना। हित की ओर प्रवृत्त होना। प्रसन्न होना। उ०—पुनि बंदौं खल गन सति भाए। जे बिनु काज दाहिने बाएँ।—तुलसी (शब्द०)।

दाहिमा—संज्ञा पुं० [सं० दाधिमथ या देश०] १. प्राचीन ब्राह्मण वंश, जिसमें कृष्ण पयहारी ने जन्म लिया था। उ०—दाहिमा वंश दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४४०। २. दाहिमा या दाधिमथ नाम का प्रदेश।

दाही[1]—वि० [सं० दाहिन्] [वि० स्त्री० दाहिनी] जलानेवाला। भस्म करनेवाला।

दाही[2]—वि० [अ०] अक्लमंद। बुद्धिमान। उ०—दाही हजार लख है कोई पेशवा है एक।—कबीर मं०, पृ० १२३।

दाहु—वि० संज्ञा पुं० [सं० दाह] दे० 'दाह'। उ०—मिटि गयो हेरत हिय को दाहु।—नंद० ग्रं०, पृ० २२८।

दाहुक—वि० [सं०] दे० 'दाही'[1] (को०)।

दिंक—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्क] जूँ नाम का छोटा कीड़ा जो सिर के बालों में पड़ता है।

दिंड—संज्ञा पुं० [सं० डिण्ड] एक तरह का नाच। उ०—उलथा टेंकी आलम सविड। पद पलटि हरुमयी निशंक चिड।—केशव (शब्द०)।

दिंडि—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डि] १. शिव का एक नाम। २. एक बाजा। डिडिर।

दिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डिर] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

दिंडी—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डी] उन्नीस मात्राओं का एक छंद।

विशेष—इसके अंत में दो गुरु होते हैं और इसमें ९ तथा १० पर विश्राम होता है। इसमें कभी केवल दो चरणों का और कभी चार चरणों का अनुप्रास होता है। मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है।

दिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डीर] डिंडीर। समुद्रफेन।

दिअटा—संज्ञा पुं० [हिं० दीवट] दे० 'दीवट'। उ०—तब विज्ञान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ। चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।—मानस, ७। ११७।

दिअना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दीया'।

दिअरा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दीया'।

दिअला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दीया'।

दिअली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया (= छोटा कसोरा) का स्त्री०, अल्पा०] १. मिट्टी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र। २. फूल के नीचे की हरे रंग की कटोरी जो कई फाँकों में बँटी होती है। ३. दे० 'दिउली'।

दिआ—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीया'। उ०—परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।—मानस, ७।१२०।

विशेष—ज्योतिष में आठ दिशाओं के स्वामी आठ ग्रह माने जाते हैं। यथा दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, नैऋंतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के बृहस्पति।

२. दे० 'दिक्पाल'।

दिक्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता। यथा, पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋंतकोण के नैऋंत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्ध्व दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के अनंत।

विशेष—दे० 'दिक्कन्या'।

२. चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्राएँ लघु होती है। उर्दू का रेख्ता यही है। जैसे,—हरिनाम एक साँचो सब झूठ है पसारा।

दिक्याⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'। उ०—सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिक्या देउँ ज्ञान जेहि पावहु।—मानस, ६।५६।

दिक्शिखा—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व दिशा [को०]।

दिक्शूल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिशाओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है।

विशेष—जिस दिन जिस दिशा में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्शूल माना जाता है, उस दिन उस दिशा की ओर यात्रा करना बहुत ही अशुभ और हानिकारक माना जाता है। कहते हैं, दिक्शूल में यात्रा करने से मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होता. आर्थिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हो जाता है, और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की मृत्यु भी हो जाती है। निम्नलिखित दिशाओं में निम्नलिखित वारों को दिक्शूल माना जाता है—

पश्चिम	की ओर	शुक्र	और	रविवार को
उत्तर	,, ,,	मंगल	,,	बुधवार को
पूर्व	,, ,,	शनि	,,	सोमवार को
दक्षिण	,, ,,	बृहस्पति वार को		

किसी किसी के मत से बुध और बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर, बृहस्पतिवार को चारों कोणों की ओर, रवि तथा शुक्रवार को पश्चिम दिशा की ओर शूल होता है। पहले और प्रधान मत के संबंध में यह श्लोक है—'शनौ चन्द्रे त्यजेत् पूर्वम्, दक्षिणस्याम् दिशो गुरौ। सूर्य शुक्रे पश्चिमायाम्, बुधे भौमे तथोत्तरे।' लोगों ने एक चौपाई भी बना ली है जो इस प्रकार है—सोम सनीचर पुरब न चालू। मंगल बुध उत्तर दिस कालू। आदित शुक्र पश्चिम दिस राहू। बीफै दक्खिन लंक दिस दाहू।

दिक्साधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह उपाय जिससे दिशाओं का ज्ञान हो। जैसे, जिस ओर सूर्य उदय होता हो उस ओर मुँह करके खड़े होना और तब यह समझना कि सामने पूरब, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर है; अथवा कुछ विशेष नियमों के अनुसार धूप में समवृत्त बनाकर और उसमें लकड़ी आदि गाड़कर उस की छाया से दिशा का पता लगाना। सूर्यसिद्धांत आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार दिक्साधन की कई विधियाँ लिखी हैं।

दिकसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्सुन्दरी] दे० 'दिक्कन्या'।

दिक्स्वामी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पति'।

दिच्छा†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दिच्छागुरु†—संज्ञा पुं० [सं० दीक्षागुरु] दे० 'दीक्षागुरु'।

दिच्छित†—वि० [सं० दीक्षित] दे० 'दीक्षित'।

दिखणⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—(क) अंत लघु तगण धननास पत प्रकास, पिता जम मात दिखण हरत पेख।—रघु० रू०, पृ० ५४। (ख) देस निवाणूँ सजल जल, मीठा बोला लोई। मारू कामिणि दिखणि घर हरि दीयइ तउ होइ।—ढोला०, दू० ६६८।

दिखना†—क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना। देखने में आना।

दिखरादेनाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दिखलाना'।

दिखरानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दिखलाना'।

दिखरावनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दिखलाना'। उ०—हो हो करत भरत ही आवत दिखरावत बरजोरी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २६४।

दिखरावनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] १. दिखाने का भाव या क्रिया। दिखाई। २. दे० 'दिखलवाई'। ३. नवबधू का मुख देखकर बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा दिया जानेवाला उपहार।

दिखलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] १. वह धन जो दिखलवाने के बदले में दिया जाय। २. दे० 'दिखलाई'।

दिखलवाना—क्रि० स० [हिं० दिखलाना का प्रे० रूप] दिखलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दिखलाने में प्रवृत्त करना।

दिखलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखलाना] १. दिखलाने की क्रिया। २. दिखलाने का भाव। ३. वह धन जो दिखलाने के बदले में दिया जाय।

दिखलाना—क्रि० स० [हिं० देखना का प्रे० रूप] १. दूसरे को देखने में प्रवृत्त करना। दृष्टिगोचर कराना। दिखाना। जैसे,—उन्होंने हमें तुम्हारा मकान दिखला दिया। २. अनुभव कराना। मालूम कराना। जताना। जैसे,—हम तुम्हें इसका मजा दिखला देंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

दिखलाव—संज्ञा पुं० [हिं० दिखलाना] दे० 'दिखावा'। उ०—अलि! यह क्या केवल दिखलाव, मूक व्यथा का मुखर भुलाव।—पल्लव, पृ० ८७।

दिखलावा†—संज्ञा पुं० [हिं० दिखलाव] दे० 'दिखावा'।

दिखवैया¹—संज्ञा पुं० [हिं० दिखाना+वैया (प्रत्य०)] दिखलानेवाला।

दिखवैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + वैया (प्रत्य०)] देखनेवाला।

दिखहार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + हार (प्रत्य०)] देखनेवाला।

दिखाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिखाना + आई (प्रत्य०)] १. दिखाने का काम। २. दिखाने का भाव। ३. वह धन जो दिखाने के बदले में दिया जाय।

दिखाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आई (प्रत्य०) १. देखने का काम। २. देखने का भाव। ३. वह धन जो देखने के बदले में दिया जाय।

दिखाऊ—वि० [हिं० दिखाना या देखना + आऊ (प्रत्य०)] देखने योग्य। दर्शनीय। २. दिखाने योग्य। ३. जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। ४. दिखौआ। बनावटी।

दिखादिखी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखादेखी। सामना। उ०—जे सब होत दिखादिखी भई अमी इक आँक। दृगैं तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी (शब्द०)।

दिखाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दिखलाना'।

दिखाव—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + आव (प्रत्य०)] १. देखने का भाव या क्रिया। २. दृश्य। जैसे,—इस जगह का दिखाव बहुत अच्छा है।

दिखावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + आवट (प्रत्य०)] १. दिखलाने का भाव या ढंग। ऊपरी तड़क भड़क। बनावट।

दिखावटी—वि० [हिं० दिखावट + ई (प्रत्य०)] जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। दिखौआ।

दिखावनहार(पु)—वि० [हिं० दिखाना + (प्रत्य०) हार (= वाला)] दिखानेवाला। उ०—सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार। लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।—कबीर ग्रं०, पृ० १।

दिखरावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दिखाना'।

दिखावा—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + आवा (प्रत्य०)] आडंबर। झूठा ठाठ। ऊपरी तड़क भड़क।

दिखैया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + ऐया (प्रत्य०)] देखनेवाला।

दिखैया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दिखाना + ऐया (प्रत्य०)] दिखानेवाला।

दिखौआ—वि० [हिं० देखना + औआ (प्रत्य०)] वह जो केवल देखने योग्य हो पर काम में न आ सके। बनावटी। दिखाऊ।

दिखौवा—वि [हिं० देखना + औवा (प्रत्य०)] दे० दिखौआ'।

दिग—संज्ञा पुं० [सं०] सं० 'दिक्' का समस्त-पद-प्रयुक्त रूप। जैसे, दिगंगना, दिगीश, दिग्देवता आदि।

दिगंगना—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगङ्गना] दिशा रूपी कन्याएँ। दिक्कन्या।

दिगंचल[1]—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + अञ्चल] दिशा। दिशा का छोर। दिग्भाग। उ०—नामहीन सौरभ में मज्जित हो उठता उच्छ्वसित दिगंचल।—प्रतिमा, पृ० १२।

दिगंचल(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० दृग् + अञ्चल] पलक जो आँखों को ढँकता है। नेत्रपट। उ०—भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दिगंचल।—मानस, १।२३०।

दिगंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० दिगन्त] १. दिशा का छोर। दिशा का अंत। २. आकाश का छोर। क्षितिज। ३. चारो दिशाएँ। ४. दसो दिशाएँ।

यौ०—दिगंतगामिनी = दिशाओं के छोर तक पहुँचनेवाली। उत्कट प्रतीक्षा दिगंतगामिनी अभिलाषा...समुद्र गर्जन में संगीत की, सृष्टि करने लगी।—आकाश०, पृ० १०१। दिगंतफलक = क्षितिज रूपी फलक या पृष्ठभूमि। उ०—हो गया सांध्य नभ का रक्ताभ दिगंत फलक।—अपरा, पृ० ६५।

दिगंत(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० दृग् + अन्त] आँख का कोना। उ०—राचे पितंबर ज्यों चहुँधा, कछु तैसिये लाली दिगंतन छाई।—द्विजदेव (शब्द०)।

दिगंतर—संज्ञा पुं० [सं० दिगन्तर] दो दिशाओं के बीच का स्थान।

दिगंबर[1]—संज्ञा पुं० [सं० दिगम्बर] १. शिव। महादेव। २. नंगा रहनेवाला जैन यती। दिगंबर यती। क्षपणक। ३. दिशाओं का वस्त्र-अंधकार। तम। अँधेरा। ४. स्कंद का एक नाम (को०)।

दिगंबर[2]—वि० दिशाएँ ही जिसका वस्त्र हों, अर्थात् नंगा। नग्न।

दिगंबरता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगम्बरता] नंगापन। नग्नता।

दिगंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगम्बरी] दुर्गा।

दिगंश—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त का ३६०वाँ अंश।

विशेष—आकाश में ग्रहों और नक्षत्रों आदि की स्थिति जानने के लिये क्षितिज वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त कर लेते हैं और जिस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जानना होता है, उसपर से अधस्स्वस्तिक और खस्वस्तिक को छूता हुआ एक वृत्त ले जाते हैं। यही वृत्त पूर्व बिंदु से क्षितिज वृत्त को दक्षिण अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उतने को उस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश कहते हैं।
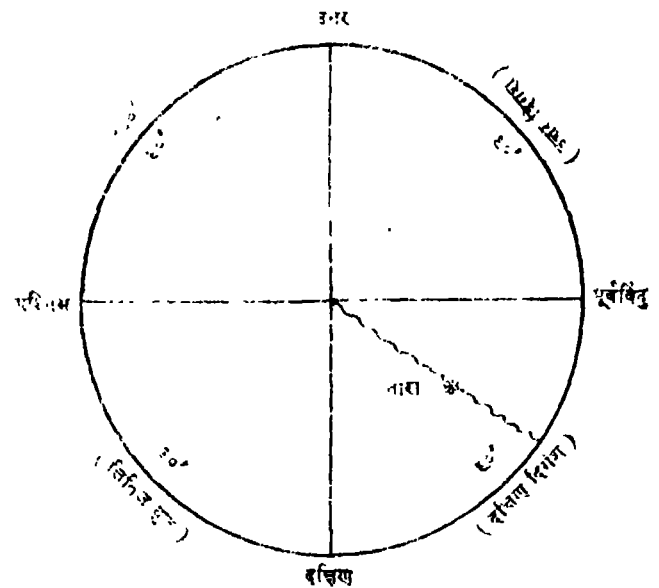
दिगंश यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दिगंशयन्त्र] वह यंत्र जिससे किसी ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जाना जाय।

दिग(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिक्'।

दिगदंति(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्ति] दे० 'दिग्गज'। उ०—कमठ कोल दिगदंति सकल अँग सजग करहु प्रभु काज। चहत चपरि सिव चाप चढ़ावन दसरथ को जुवराज।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१६।

दिगधिप—संज्ञा पुं० [सं०] दिशा का स्वामी। दिग्पाल [को०]।

दिगपाल—संज्ञा पुं० [सं० दिक्-दिग्पाल] दे० 'दिकपाल'। उ०—(क) चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।—केशव (शब्द०)। (ख) दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।—केशव (शब्द०)।

दिगभित्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्भित्ति] दिशारूपी भीत। उ०—महाराज सिवराज तव सुघर धवल धुव किति। छबि छटान सों छुवति सी छिति अमंग दिगभित्ति।—भूषण० ग्रं०, पृ० ७४।

दिगर—वि० [फ़ा०] दे० 'दीगर'। उ०—बाबर न बरोबर बादशाह, मन दिगर न दीदम दर दुनी।—अकबरी०, पृ० ६५।

दिगवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पवन। वायु। हवा [को०]।

दिगवारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिग्वारण] दिग्गज। दिग्वारण। उ०—कहै 'मतिराम' बल विक्रम बिहद्द सुनि, गरजनि परै दिगवारन बिपति में।—मति० ग्रं०, पृ० ३८६।

दिगसिंधुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिक् सिन्धुर] दिशाओं के हाथी। दिग्गज। उ०—चलत कटकु दिगसिधुर डिगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं।—मानस, ६।७८।

दिगागत—वि० [सं०] दूर से आया हुआ। दूरागत [को०]।

दिगिभ—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

दिगीश—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल। दिशाओं के अधिपति।

दिगीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठों दिक्पाल। २. सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रह।

दिगेश—संज्ञा पुं० [हिं० दिग+ईश] दे० 'दिगीश'।

दिग्गज[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वे आठों हाथी जो आठों दिशाओं में पृथ्वी को दबाए रखने और उन दिशाओं की रक्षा करने के लिये स्थापित हैं।

विशेष—दिशाओं के पूर्वादि क्रम से उनके नाम ये हैं—पूर्व में ऐरावत, पूर्वदक्षिण के कोने में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, दक्षिणपश्चिम में कुमुद, पश्चिम में अंजन, पश्चिमउत्तर के कोने में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम और उत्तर पूर्व के कोने में सप्रतीक या सुप्रतीक।

दिग्गज[२]—वि० बहुत बड़ा। बहुत भारी। जैसे, दिग्गज विद्वान्, दिग्गज पंडित।

दिग्गज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिग्गज] दे० 'दिग्गज'। उ०—डगै कोल दिग्गज्ज अग्गे धुधावै।—ह० रासो, पृ० ६६।

दिग्गयंद—संज्ञा पुं० [सं० दिक्+गजेन्द्र, प्रा० गयंद] दिग्गज। उ०—दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर। सुरबिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५७।

दिग्गह†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिक्+ग्रह (=ग्रहण करनेवाले)] दे० 'दिक्पाल'। उ०—रहत दरगह सुपह दिग्गह जीति बिग्रह तुमह जह जह।—रघु० रू०, पृ० २२१।

दिग्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका] दे० 'डिग्गी'।

दिग्घ(पु)†—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दिग्घ] १. लंबा। उ०—सिर दिग्घ दिग्घ दंतह सुभग जरजराइ बंगर जरिय—पृ० रा०, ६।१५५। २. बड़ा। विशाल। उ०—कहै मतिराम सब थावर जंगम जरा जाकी दिग्घ उदर दरी में दरसत है।—मतिराम (शब्द०)।

दिग्जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्विजय।

दिग्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिगंश'।

दिग्दंति(पु), **दिग्दंती**—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्तिन्] दिग्गज। उ०—मेरु कछू न कछू दिग्दंति न कुंडलि कोल कछू न कछू है।—भूषण ग्रं०, पृ० ३४।

दिग्दर्शक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दर्शक यन्त्र] डिबिया के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है। कंपास। कुतुबनुमा।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक सुई लगी होती है जिसके मुँह पर चुंबकत्व की शक्ति रहती है जिसके कारण सुई का मुँह सदा उत्तर दिशा की ओर रहता है। इसका विशेष व्यवहार जहाजों आदि में दिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है। इसे कुतुबनुमा और कंपास भी कहते हैं।

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो कुछ उदाहरण स्वरूप दिखलाया जाय। नमूना। २. नमूना दिखाने का काम। ३. अभिज्ञान। जानकारी। ४. दे० 'दिग्दर्शक यंत्र'।

दिग्दर्शनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्दर्शन] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र'।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैवी घटना जिसमें सूर्यास्त होने पर भी दिशाएँ लाल और जलती हुई सी दिखलाई पड़ती हैं।

विशेष—इसे लोग अशुभ मानते हैं और समझते हैं कि इसके उपरांत युद्ध, दुर्भिक्ष या रोग आदि होता है। बृहत्संहिता में इसके फल आदि का विस्तृत उल्लेख है।

दिग्देवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल'।

दिग्दैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिकपति' [को०]।

दिग्द्योतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र'।

दिग्ध[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विषाक्त बाण। जहर में बुझाया हुआ बाण। २. तेल। ३. अग्नि। ४. प्रबंध। निबंध।

दिग्ध[२]—वि० [सं०] १. विषाक्त। जहर में बुझा हुआ। २. लिप्त। लिपा हुआ।

दिग्पट—संज्ञा पुं० [सं० दिक्पट] १. दिशारूपी वस्त्र। उ०—भुजग विभूषण दिग्पट धारी। अर्ध अंग गिरिराज कुमारी।—सबलसिंह (शब्द०)। २. दिशा रूपी वस्त्र धारण करनेवाला। नंगा। दिगंबर।

दिग्पति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल'।

दिग्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल'।

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार लग्न आदि पर स्थित ग्रहों का बल।

विशेष—यदि लग्न से दसवें स्थान पर मंगल और रवि हों तो दक्षिण, यदि लग्न से सातवें स्थान पर शनि हों तो पश्चिम और यदि चौथे स्थान पर शुक्र और चंद्र हों तो उत्तर दिशा

बली मानी जाती है। इसकी सहायता से दिक्‌निर्णय और दूसरी कई प्रकार की गणनाएँ की जाती हैं।

दिग्बली—संज्ञा पुं० [सं० दिग्बलिन्] १. फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो किसी दिशा के लिये बली हो। २. वह राशि जिसपर किसी ग्रह का बल हो।

विशेष—दे० 'दिग्बल'।

दिग्भ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दिशाओं का भ्रम होना। दिशा भूल जाना।

दिग्भ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्भ्रान्ति] दे० 'दिग्भ्रम'। उ०—लहराई दिग्भ्रांति तिमिरजा स्रोतस्विनी कराली।—अपलक, पृ० ५१।

दिग्मंडल—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्मण्डल] दिशाओं का समूह। संपूर्ण दिशाएं।

दिगराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्‌पाल'।

दिग्वधू—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्वधू] दिशाओं रूपी वधू या स्त्री। दिगंगना। उ०—दिग्वधू की पिक वाणी क्षीण दिगंत उदास।—अनामिका, पृ० ४३।

दिग्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिग्वस्त्र'।

दिग्वस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. नंगा रहनेवाला जैन यती। क्षपणक। ३. नग्न।

दिग्वान्—संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदार। चौकीदार।

दिग्वारण—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

दिग्वास—संज्ञा पुं० [सं० दिग्वासस्] दे० 'दिग्वस्त्र'।

दिग्विजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजाओं का अपनी वीरता दिखलाने और महत्व स्थापित करने के लिये देश देशांतरों में अपनी सेना के साथ जाकर युद्ध करना और विजय प्राप्त करना। यह प्रथा प्राचीन काल में थी। उ०—अश्वमेध करवाय युधिष्ठिर कुल को दोष मिटायो। करि दिग्विजय विजय को जग में भक्त पक्ष करवायो।—सूर (शब्द०)। २. अपने गुण, विद्या या बुद्धि आदि के द्वारा देश देशांतरों में अपनी प्रधानता अथवा महत्व स्थापित करना। जैसे, शंकर दिग्विजय।

दिग्विजयी[1]—संज्ञा पुं० [सं० दिग्विजयिन्] [स्त्री० दिग्विजयिनी] जिसने दिग्विजय किया हो। दिग्विजय करनेवाला। उ०—गज अहंकार बढ्यो दिग्विजयी लोभ छत्र करि सीस। फौज असत संगति की मेरी ऐसे हौं मैं ईस।—सूर (शब्द०)।

दिग्विजयी[2]—वि० दिग्विजय करनेवाला। सभी देशों पर विजय प्राप्त करनेवाला।

दिग्विभाग—संज्ञा पुं० [सं०] दिशा। ओर। तरफ।

दिग्विभावित—वि० [सं०] प्रत्येक दिशा में जिसकी ख्याति हो (को०)।

दिग्व्याप्त—वि० [सं०] दिशाओं में फैला हुआ (को०)।

दिग्व्यापी—वि० [सं० दिग्व्यापिन्] [वि० स्त्री० दिग्व्यापिनी] जो सब दिशाओं में व्याप्त हो।

दिग्व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक व्रत जिसमें वे कुछ निश्चित समय के लिये यह प्रण कर लेते हैं कि अमुक दिशा (अथवा दिशाओं) में इतनी दूर से अधिक न जायेंगे।

दिग्शिखा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्‌शिखा] पूर्व दिशा।

दिग्सिंधुर—संज्ञा पुं० [सं० दिक्‌सिन्धुर] दे० 'दिग्गज'।

दिग्शूल—संज्ञा पुं० [सं० दिक्‌शूल] दे० 'दिक्‌शूल'।

दिघी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिग्घी'।

दिघांच—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी छाती सफेद, डैने काले और कुछ पर सुनहले होते हैं।

दिग्घ(पु)—वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ'। उ०—कवि चंद सोर चिहुँ ओर घन दिग्घ सद्द दिग अंत भौ। संकित नयन जिम रंक उर इम अरन्य आतंक भौ।—पृ० रा०, ६।२०१।

दिङ्—संज्ञा पुं० [सं०] दिश् शब्द का समासगत रूप।

दिङ्नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष नक्षत्र जो फलित ज्योतिष में विशिष्ट दिशाओं में संबद्ध माने जाते हैं।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात सात नक्षत्र प्रत्येक दिशा से संबद्ध माने जाते हैं और इन्हीं के अनुसार किसी प्रश्न के अंतर्गत दिशा आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे, यदि किसी की कोई चीज चोरी गई हो अथवा कोई बालक खो जाय तो चीज के चोरी होने अथवा बालक के खो जाने के समय का नक्षत्र देखकर यह कहा जा सकता है कि चोर अथवा बालक किस दिशा में है।

दिङ्नाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिग्गज। २. एक बौद्ध नैयायिक और आचार्य, जो मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास के समय में हुए थे और उनके बड़े भारी प्रतिद्वंद्वी थे।

दिङ्नारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वेश्या। रंडी। २ बहुत से पुरुषों से प्रेम करनेवाली स्त्री। कुलटा।

दिङ्मंडल—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्मण्डल] दिशाओं का समूह।

दिङ्मातंग—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्मातङ्ग] दिग्गज।

दिङ्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] उदाहरण मात्र। केवल नमूना।

दिङ्मूढ़—वि० [सं०] १. जिसे दिग्भ्रम हुआ हो। जो दिशाएं भूल गया हो। २. मूर्ख। बेवकूफ।

दिङ्मोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिग्भ्रम'।

दिच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० दृश, प्रा० दिट्ठ, दिच्छ] देखना। अवलोकना। उ०—रति भोग भुगति निस सो सदा कबहुँ प्रान न दिच्छ तिय। विधि रीति सकल एकत्र मय पुरुषातन तिन बंध किय।—पृ० रा०, १।३७०।

दिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दिच्छित(पु)—संज्ञा पुं० वि० [सं० दीक्षित] दे० 'दीक्षित'।

दिजराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] दे० 'द्विजराज'।

दिजोत्तम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजोत्तम] दे० 'द्विजोत्तम'।

दिट्ठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] दे० 'दृष्टि'। उ०—दिट्ठि कुतूहल कज्ज रस तो पहुड़ दरबार।—कीर्ति०, पृ० ४६।

दिठ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दीठ'। उ०—एकहि व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म बिलासै। ज्यौं नट मंत्रनि

सों दिठ बाँधत है कछु औरई औरई भासै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

क्रि० प्र०—बाँधना।

दिठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० देवोत्थान] दे० 'देवोत्थान' (एकादशी)।

दिठादिठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीठ (ग्राम्प्रडित)] देखादेखी। सामना। उ०—कहिं सूते घर करु महत दिठादिठी की ईठि। गड़ी सुचित नाहीं करति करि ललचौहीं डीठि।—बिहारी (शब्द०)।

दिठाना[1]—क्रि० स० [हिं० दीठ + आना (प्रत्य०)] नजर लगाना। दृष्टि लगाना। डीठ लगाना।

दिठाना[2]—क्रि० अ० दीठ लगना। नजर लगना।

दिठार—वि० [हिं०] दृष्टिवाला। दिठियार। आँखोंवाला। देखने की क्षमता रखनेवाला। उ०—आंधर कहै सबै हम देखा। तहाँ दिठार बैठि मुख देखा।—कबीर (शिशु०), पृ० १६४।

दिठियार‡—वि० [हिं० दीठ (= दृष्टि) + इयार (प्रत्य०)] देखनेवाला। आँखवाला। जिसे दिखाई देता हो।

दिठोना—संज्ञा पुं० [हिं० दीठ + ओना (प्रत्य०)] दे० 'दिठौना'। उ०—... दागुनो अकु है दिएँ एक ज्यों बिंदु। दिए दिठोना यो ... आनन आभा इंदु।—मति० ग्रं०, पृ० ४५३।

दिठौना†—संज्ञा पुं० [हिं० दीठ (= दृष्टि) + औना (प्रत्य०)] बच्चों के माथे में भौं के कोने के समीप लगा हुआ काजल का बिंदु जो दृष्टि का दोष शांत करने को लगाया जाता है। वह बिंदी जो बच्चों को नजर से बचाने के लिये लगाई जाती है।

क्रि० प्र०—लगाना।

दिढ़Ⓟ†—वि० [सं० दृढ़, प्रा० दिढ़, दिड] दे० 'दृढ़'। उ०—जोगी बार आव सो जेहि भिक्षा कै आस। जो निरास दिढ़ आसन, कत गवनै केहु पास।—जायसी ग्रं०, पृ० २६८।

दिढ़ताⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढ़ता] दे० 'दृढ़ता'।

दिढ़ाईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिढ़ + आई (प्रत्य०)] दे० 'दृढ़ता'।

दिढ़ानाⓅ† —क्रि० स० [सं० दृढ़ + आना (प्रत्य०)] १. पक्का करना। दृढ़ करना। मजबूत करना। २. निश्चित करना। उ०—है दिढ़ाइबे जोग जो ताको करत दिढाव।—भूषण ग्रं०, पृ० ५८।

दिढ़ावⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढ़ता अथवा हिं० दिढ़ + आव (प्रत्य०)] दृढ़ बनना। दृढ़ता युक्त करना। दे० 'दृढ़ता'। उ०—है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।—भूषण ग्रं०, पृ० ५८।

दिणंदⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दिनेंद्र] सूर्य। उ०—निजर परक्खे राठवड़, अकबर तेज दिणंद। जाणे व्योम विमान सम, सोम प्रगट्यो इंद।—रा० रू०, पृ० १०६।

दिणयर, दिणियरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर; प्रा० दिणयर] दे० 'दिनकर'। उ०—झाड़ा डूँगर गुई घणी, ति याँ मिलीजइ एम। मनिड़ खिणहिं न मेल्हइ, चकवो दिणियर जेम।—ढोला०, दू० ७२।

दित—वि० [सं०] विभक्त। कटा हुआ। छिन्न। खंडित [को०]।

दितवार†—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] दे० 'आदित्यवार'।

दिति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की एक कन्या और दैत्यों की माता थीं।

विशेष—जब इनके सब पुत्र (दैत्य) इंद्र और देवताओं द्वारा मारे गए तब इन्होंने अपने पति कश्यप ऋषि से कहा कि अब मैं ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र का भी दमन कर सके। कश्यप ने कहा—इसके लिये तुम्हें सौ वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रतापूर्वक रहना पड़ेगा। दिति को गर्भ हुआ और वह ९९ वर्ष तक बहुत पवित्रतापूर्वक रहीं। अंतिम वर्ष में वह एक दिन रात के समय बिना हाथ पैर धोए जाकर सो रहीं। इंद्र ताक में लगे ही थे; इन्हें अपवित्र अवस्था में पाकर उन्होंने इनके गर्भ में प्रवेश किया और अपने वज्र से जरायु के सात टुकड़े कर डाले। उस समय शिशु इतने जोर से रोया और चिल्लाया कि इंद्र घबरा गए। तब उन्होंने सातों टुकड़ों में से हर एक के फिर सात सात टुकड़े किए। ये ही उनचास खंड मरुत् कहलाते हैं। दे० 'मरुत्'।

विशेष—इस शब्द में 'पुत्र'वाची शब्द लगाने से 'दैत्य' अर्थ होता है। जैसे, दितिसुत, दितितनय, दितिनंदन।

२. तोड़ने या काटने की क्रिया। खंडन। ३ दाता। वह जो देता हो।

दिति[2]—संज्ञा पुं० राजा। नरेश [को०]।

दितिकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यवंश।

दितिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दितिजा] दिति से उत्पन्न दैत्य।

दितितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' [को०]।

दितिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' [को०]।

दितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य। राक्षस। असुर।

दित्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य।

दित्य[2]—वि० जो छेदने या काटने के योग्य हो।

दित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की इच्छा।

दित्सु—वि० [सं०] जो दान करना चाहता हो।

दित्स्य—वि० [सं०] दान करने योग्य। जो दान किया जा सके।

दिदार†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीदार] दे० 'दीदार'। उ०—मोर तोर एतन दिदार बहुरि नाहि पाइब हो।—धरम०, पृ० ६३।

दिदारी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीदार] दीदारी। दर्शन होना। उ०—यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग।—पलटू०, भा० १ पृ० २२।

दिदोरा—संज्ञा पुं० [हिं० ददोरा] दे० 'ददोरा'। उ०—इसकी परवा न रही कि ताजा हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा मिलता है, कपड़े कितने मैले हैं, उनमें कितने चिलवे पड़े हुए हैं कि खुजाते खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं।—काया०, पृ० २८२।

दिदृक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की अभिलाषा ।

दिदृक्षु—वि० [सं०] जो देखना चाहता है ।

दिदृक्षेय—वि० [सं०] दे० 'दिदृक्षेय' ।

दिदृक्षेय—वि० [सं०] दर्शनीय । जो देखने योग्य हो ।

दिद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रंथित वज्र । २. वाण । ३. आकाश । व्योम (को०) ।

दिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. धीरता । धैर्य । २. धारण करने की क्रिया ।

दिधिषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहले एक बार ब्याही हुई स्त्री का दूसरा पति । २. गर्भाधान करनेवाला मनुष्य ।

दिधिषू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके दो ब्याह हुए हों । द्विरूढा । २. वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहन के विवाह के पहले हुआ हो ।

दिधिषूपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'दिधिषु' । २. वह व्यक्ति जो अपने भाई की विधवा स्त्री से विषयरत होता हो (को०) ।

दिधीषू—संज्ञा स्त्री० दे० [सं०] 'दिधिषू' [को०] ।

दिन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतना समय जिसमें सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय । सूर्य की किरणों के दिखाई पड़ने का सारा समय ।

विशेष—पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है । इस परिक्रमा में इसका जो आधा भाग सूर्य की ओर रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है ।

मुहा०—दिन को तारे दिखाई देना = इतना अधिक मानसिक कष्ट पहुँचना कि बुद्धि ठिकाने न रहे । दिन को दिन रात को रात न जानना या समझना = अपने सुख या विश्राम आदि का कुछ भी ध्यान न रखना । जैसे,—इस काम के लिये उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझा । दिन चढ़ना = सूर्योदय होना । सूर्य निकलने के उपरांत कुछ समय बीतना । दिन छिपना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन डूबना = सूर्य डूबना । संध्या होना । दिन ढलना = संध्या का समय निकट आना । सूर्यास्त होने को होना । दिन दहाड़े या दिन दिहाड़े = बिलकुल दिन के समय । ऐसे समय जब कि सब लोग जागते और देखते हों । जैसे,—दिन दहाड़े उनके यहाँ दस हजार की चोरी हो गई । दिन दोपहर या दिन धौले = दे० 'दिन दहाड़े' । दिन दूना रात चौगुना होना या बढ़ना = बहुत जल्दी जल्दी और बहुत अधिक बढ़ना । खूब उन्नति पर होना । जैसे,—आजकल उनकी जमींदारी दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है । उ०—जो दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करता ही चला जाता । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१२ । दिन निकलना = दिन चढ़ना । सूर्योदय होना । दिन बूड़ना = दे० 'दिन डूबना' । दिन मुँदना = दे० 'दिन बूड़ना' । दिन होना = दिन निकलना । सूर्य उदय होना । दिन चढ़ना ।

यौ०—दिन रात = सर्वदा । सदा । हर वक्त ।

२. उतना समय जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है अथवा पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग के दो बार सूर्य के सामने आने के बीच का समय । आठ पहर या चौबीस घंटे का समय ।

विशेष—साधारणतः दिन दो प्रकार का माना जाता है—एक नाक्षत्र, दूसरा सौर या सावन । नाक्षत्र उतने समय का होता है जितना किसी नक्षत्र को एक बार, याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में लगता है । यह समय ठीक उतना ही है जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकती है । इसमें घटती बढ़ती नहीं होती, इसी से ज्योतिषी नाक्षत्र दिनमान का व्यवहार बहुत करते हैं । सूर्य को याम्योत्तर पर से होकर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में जितना समय लगता है उतने समय का सौर या सावन दिन होता है । नाक्षत्र तथा सौर दिन में प्रायः कुछ न कुछ अंतर हुआ करता है । यदि किसी दिन याम्योत्तर रेखा पर एक ही स्थान पर और एक ही समय सूर्य के साथ कोई नक्षत्र भी हो तो दूसरे दिन उसी स्थान पर नक्षत्र तो कुछ पहले आ जायगा पर सूर्य कुछ मिनटों के उपरांत आवेगा । यद्यपि नाक्षत्र और सावन दोनों प्रकार के दिन पृथ्वी के अक्ष पर घूमने से संबंध रखते हैं, और नक्षत्र के याम्योत्तर पर आने में बराबर उतना ही समय लगता है, तथापि सूर्य याम्योत्तर पर ठीक उतने ही समय में सदा नहीं आता, कुछ कम या अधिक समय लेता है, जिसके कारण सौर दिन का मान भी घटता बढ़ता रहता है । अतः हिसाब ठीक रखने और सुभीते के लिये एक सौर वर्ष को तीन सौ साठ भागों में विभक्त कर लेते हैं और उनके एक भाग को एक सौर दिन मानते हैं । हिंदुओं में दिन का मान सूर्योदय से सूर्योदय तक होता है और प्रायः सभी प्राचीन जातियों में सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन का मान होता था । आजकल हिंदुओं और एशिया की दूसरी अनेक जातियों में तथा युरोप के आस्ट्रिया, टर्की और इटली देश में भी सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन माना जाता है । यूरोप के अधिकांश देशों तथा मिस्र और चीन में आधी रात से आधी रात तक दिन माना जाता है । प्राचीन रोमन लोग भी आधी रात से ही दिन का आरंभ मानते थे । आजकल भारतवर्ष में सरकारी कामों मे भी दिन का प्रारंभ आधी रात से ही माना जाता है । पर अपनी गणना के लिये योरोप के ज्योतिषी मध्याह्न से मध्याह्न तक दिन मानते हैं ।

मुहा०—दिन दिन या दिन पर दिन = नित्य प्रति । सदा । हमेशा । हर रोज ।

३. समय । काल । वक्त । जैसे,—(क) इतने दिन की रखी हुई चीज इसने खो दी । (ख) भले दिन, बुरे दिन ।

मुहा०—दिन काटना = समय बिताना । किसी तरह समय गुजार देना । दिन गँवाना = वृथा समय खोना । दिन पूरे करना = निर्वाह करना । समय बिताना । दिन बिगड़ना = बुरे दिन होना । विपत्ति का अवसर आना । दिन भुगताना दिन काटना । समय बिताना ।

यौ०—पतले दिन = नाजुक वक्त । बुरे दिन । खोटे दिन ।

क्रि० प्र०—बिताना ।—बीतना ।

४. नियत या उपयुक्त काल । निश्चित या उचित समय । जैसे, — कोई दिन दिखाकर चलेंगे । (ख) अब इसके दिन पूरे हो गए, यह मरेगा ।

मुहा०—दिन आना = समय पूरा हो जाना । अंतिम समय आना । दिन धरना = दिन ठहराना । दिन निश्चित करना । विवाहिता की बिदाई का दिन स्वीकार करना । दिन धराना = दिन स्थिर कराना । दिन निश्चित कराना । मुहूर्त निकलवाना । उ०—अति परम सुंदर पालना गढ़ि ल्याव रे बढ़ैया । × × × × × पालनो आन्यो सबहि अति मन भाव्यो नीको सो दिन धराइ सखिन मंगल गवाय रंग महल में पोढ्यो है कन्हैया ।—सूर (शब्द०) । [illegible] पूरे होना या दिन पूरे हो जाना = मृत्यु का समय आना । जिंदगी पूरी होना । उ०—रावी, जिंदगी के दिन [illegible] पूरे हो गए । अब दम के दम [illegible] मेहमान है । फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७ ।

५. विशेष रूप से बिताया जानेवाला काल । वह समय जिसके बीच कोई विशेष बात हो । जैसे, अच्छे या बुरे दिन, गर्भ के दिन, जवानी के दिन ।

मुहा०—दिन [illegible] = किसी स्त्री का गर्भवती होना । दिन पड़ना = कुसमय का आना । बुरा समय आना । दिन फिरना = दुर्भाग्य [illegible] सौभाग्य [illegible] आना । बुरे दिनों के बाद अच्छे दिन आना । उ० दिन और रात्रि का सा अंतर हो जाना = बहुत बड़ा फर्क पड़ जाना । महान अंतर हो जाना । [illegible] किंतु इन्हीं पुश्तों के यूरोप और [illegible] में दिन और रात का सा अंतर हो गया है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८५ । दिन [illegible] और कभी कम-जोरी होना । [illegible] दहना का प्रभाव होना । उ०—[illegible] किस काम का । दिन को [illegible] ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२७ । दिन [illegible] न देखना = दिन और मुहूर्त का विचार न करना । उ०—[illegible] दिन घरी न देखा । तब [illegible] ।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० २०६ । दिन छड़ो देना = [illegible] । उ०—[illegible] जो [illegible] देई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०६ । दिन बहुरना = फिर से अच्छे दिन आना । दिन फिरना । उ०—और [illegible] ने हुक्का [illegible] थे । [illegible] अब [illegible] के दिन बहुरे ।—[illegible], पृ० २७ । दिन भरना = दुःख का काल बिताना । बुरे दिन [illegible] । दिन लौटना = दे० 'दिन बहुरना' । दिनों से उतरना = [illegible] । वृद्धावस्था का बीत जाना ।

दिन[२]—क्रि० वि० सदा । हमेशा । दिन प्रतिदिन । उ०—(क) बावरो रावरो नाह भवानी । दानी बड़ो दिन देत दिए बिनु देद बड़ाई भानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) गुरु पितु मातु महेस भवानी । प्रणवउँ दीनबंधु दिन दानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) हिंडोरे झूलत लाल दिन दूलह दुलहिन बिहारी देखि री ललना ।—हरिदास (शब्द०) ।

दिनअर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणअर] सूर्य । दिनकर उ०—(क) कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि राती । कीन्हेसि नखत तराइन पाँती ।—जायसी ग्रं०, पृ० १ । (ख) गहन छूट दिनअर कर ससि सों भएउ मेराव । मंदिर सिंहासन साजा बाजा नगर बधाव ।—जायसी (शब्द०) ।

दिनकंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + हिं० कंत (= कांत)] सूर्य ।

दिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. आक । मंदार ।

यौ०—दिनकरकन्या । दिनकरतनय = दे० 'दिनकरसुत' । दिनकर-तनया, दिनकरसुता = यमुना ।

दिनकरकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना । उ०—सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या । मेकल सुता गोदावरि धन्या ।—मानस, २।१३८ ।

दिनकरसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. शनि । ३. सुग्रीव । ४. अश्विनीकुमार । ५. कर्ण ।

दिनकरसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना ।

दिनकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकेशर, दिनकेशव—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार । अँधेरा ।

दिनक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिथिक्षय' ।

दिनचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिनभर का काम धंधा । दिन भर का कर्तव्य कर्म ।

दिनचारी—संज्ञा पुं० [सं० दिनचारिन्] दिन को चलनेवाला सूर्य ।

दिनज्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० दिनज्योतिस्] १. दिन का उजेला । २. धूप । घाम ।

दिनताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीन, हिं० दिन + ताई (प्रत्य०)] दे० 'दीनता' । उ०—नामहिं गहहु गहहु दुनिया में, गहे रहहु दिनताई ।—जग० श०, भा० २, पृ० ८६ ।

दिनताय†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीनता, हिं० दिनताई] दे० 'दीनता' । उ०—तजहु गर्व गुमान मैं नै हिये रहु दिनताय ।—जग० बानी० पृ० ६९ ।

दिनदानी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दिन + दानी] प्रतिदिन दान करने-वाला । रोज देनेवाला । गरीबपरवर ।

दिन दिन—क्रि० वि० [सं० दिनानुदिन] प्रतिदिन । कालक्रम से रोजमर्रा । उ०—दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ । देखि सराहु महा मुनि राऊ ।—मानस, १ । ३६० ।

दिनदीन(पु)—वि० [सं० दिन + दीन] दिन दिन दीन । अत्यंत दीन । उ०—ऐसे दिनदीन पै दया न आई दई तोहिं । विष भोयो विषम वियोग सर मारतै ।—घनानंद, पृ० ५९ ।

दिनदीप—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिनदुःखित—संज्ञा पुं० [सं०] चकवा पक्षी ।

दिनदूलह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० (प्रति) दिन + हिं० दूल्हा] प्रतिदिन दूल्हा । उ०—सुंदर साँवरे तै दिनदूलह चोप चढ़ूँ विस चौर ढरे जू ।—घनानंद, पृ० १३६ ।

दिनदेव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + देव] रवि। दिनकर। सूर्य। उ०—दिनदेव दिवाकर दिवाकर दीन दयाल।—घनानंद, पृ० ४७६।

दिननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। उ०—चंद जगावहु कुमुदनी पद्मिनि ही दिननाथ।—शकुंतला, पृ० ९७।

दिननायक—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य।

दिननाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + नाथ, प्रा० णाह] दे० 'दिननाथ'।

दिनप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनपति'।

दिनपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक। मंदार। ३. दिन या बार के पति। दे० 'दिन'।

दिनपाकी अजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अजीर्ण जिसमें एक बार का किया हुआ भोजन आठ पहर में पचता है और बीच में भूख नहीं लगती।

दिनपात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिथिक्षय'।

दिनपाल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

दिनबंधु—संज्ञा पुं० [सं० दिनबन्धु] सूर्य। २. आक। मंदार।

दिनबल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह राशि जो दिन के समय बली हो।

विशेष—फलित ज्योतिष में बारह राशियों में से पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं ये छह राशियाँ दिनबल या दिनबली मानी जाती हैं और बाकी रात्रिबल।

दिनभृति—संज्ञा पुं० [सं०] रोजही पर काम करनेवाला मजदूर। प्रतिदिन मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजूरा।

दिनमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। भास्कर। रवि। २. आक। मंदार।

दिनमनि(पु)†—पुं० [सं० दिनमणि] दे० 'दिनमणि'। उ०—सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन, प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०७।

दिनमयूख—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक। मंदार।

दिनमल—संज्ञा पुं० [सं०] मास। महीना।

दिनमान—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का प्रमाण। दिन की अवधि। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का मान।

विशेष—दिन सदा घटता बढ़ता रहता है, अतः सुभीते के लिये हिसाब लगाकर यह जान लिया जाता है कि कौन दिन कितना बड़ा अर्थात् कितनी घड़ियों और कितने पलों का, होगा। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के समय का यही मान दिनमान कहलाता है।

दिनमाली—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनमुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। सबेरा।

दिनमूर्धा—संज्ञा पुं० [सं० दिनमूर्द्धन्] उदयाचल पर्वत [को०]।

दिनरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक। मदार।

दिनराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिनराज, हिं० दिनराइ] दे० 'दिनराज'।

दिनराउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिनराज, हिं० राव, राउ] दे० 'दिनराज'। उ०—विधि हरि हर [illegible] दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ।—मानस १। ३२१।

दिनराज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिनराव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिनराज] सूर्य। उ०—सो भक्तन को यहै सुभाव। जैसे [illegible] दिनराव।—नंद ग्रं०, पृ० २५४।

दिनरैन(पु)—क्रि० वि० [सं० दिन + रजनी] रातदिन। सदा। हमेशा।

दिनशेष—संज्ञा पुं० [सं०] दिनांत। सायंकाल। संध्या।

दिनहीं†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दिनाई'।

दिनांक—संज्ञा पुं० [सं० दिन + अङ्क] दिन का अंक या संख्या। तारीख।

दिनांड—संज्ञा पुं० [सं० दिनाण्ड] अंधकार। अँधेरा।

दिनांत—संज्ञा पुं० [सं० दिनान्त] सायंकाल। संध्या। शाम।

दिनांतक—संज्ञा पुं० [सं० दिनान्तक] अंधकार। अँधियारा।

दिनांध—संज्ञा पुं० [सं० दिनान्ध] वह जिसे दिन को न सूझे। जैसे, उल्लू, चमगादड़ आदि।

दिनांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन के प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल में तीन अंश या विभाग जो इस प्रकार हैं—प्रातःकाल, संगव, मध्याह्न, अपराह्न और सायंकाल। इनमें से प्रत्येक अंश क्रमशः सूर्योदय के उपरांत तीन मुहूर्त तक माना जाता है।

दिना†—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दे० 'दिन'। उ०—बड़ी रैनि तनक से दिना। क्यों [illegible] प्यारे बिना।—नंद० ग्रं०, पृ० १३५।

दिनाइ†—संज्ञा पुं० [देश०] दाद।

विशेष—दे० 'दाद'।

दिनाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दिन + हिं० आई] कोई ऐसी विषाक्त वस्तु जिसके खाने से [illegible] मृत्यु हो जाय। अंतिम दिन (मृत्युकाल) [illegible] उ०—(क) काके सिर पाँव [illegible] दिनाई।—सूर (शब्द०)। (ख) [illegible] प्रभुन दिनाई। तुम्हहि मीच समय बिन आई।—लाल (शब्द०)। (ग) कहै पदमाकर जो कोऊ नर जैसे तैसे, तन देत गंगातीर तजिके महान शोक। [illegible] विष दुसह दिनाई देत, पातन के पुंज को पहारन को ठोक ठोक।—पद्माकर (शब्द०)।

दिनागम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। तड़का। सबेरा।

दिनानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिन + आनी (प्रत्य०)] १. मजदूरों, विशेषत खेत में काम करनेवालों का एक दिन का काम। २. मजदूरों की एक दिन की मजदूरी।

दिनात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] संध्या। सूर्यास्त [को०]।

दिनादि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनागम'।

दिनाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक। मदार।

दिनानुदिन—क्रि० वि० [सं० दिन + अनुदिन] दिन दिन। प्रतिदिन। रोज ब रोज।

दिनाय—संज्ञा स्त्री० [देश० दिनाइ] दाद का रोग।

दिनार¹—संज्ञा पुं० [सं० दीनार] दे० 'दीनार'।

दिनार[२]—वि० [सं० दिन√+हिं० आर (प्रत्य०)] बहुत दिनों का देरदिनी । पुराना ।

दिनारु†—वि० [सं० दिनालु] बहुत दिनों का । पुराना ।

दिनार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दिनावा—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः हाथ भर लंबी एक प्रकार की मछली जो हिमालय तथा आसाम की नदियों में पाई जाती है । हरद्वार में यह बहुत अधिकता से होती है ।

दिनास्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यास्त । दिनांत । संध्या ।

दिनिअर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] दे० 'दिनकर' ।

दिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन या मजदूरी ।

दिनियर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर प्रा० दिणियर] सूर्य ।

दिनी—वि० [हिं० दिन+ई (प्रत्य०)] बहुत दिनों का पुराना । प्राचीन । उ०—भली बुद्धि तेरे जिय उपजी । ज्यों ज्यों दिनी भई त्यों निपजी ।—सूर (शब्द०) ।

दिनेर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, हिं० दिनियर] सूर्य । दिनकर । उ०—अनधन तीन सेर निधि माँहा । हौ दिनेर जेहि के तू छाँहा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । उ०—दिनेश वंश मंडनं । महेश चाप खंडनं । —मानस, ३।४ । २. आक । मदार । ३. दिन के अधिपति ग्रह ।

दिनेशात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य के पुत्र शनि । २. यम । ३. सुग्रीव । ४. कर्ण ।

दिनेशात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना । २. तापती नदी [को०] ।

दिनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनेश' ।

दिनेस—संज्ञा पुं० [सं० दिनेश] दे० दिनेश' । उ०—लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी । —तुलसी ग्रं०, पु० ४६५ ।

दिनोदिन—क्रि० वि० [सं० दिनन्दिन] प्रतिदिन । अनुदिन । उ०—सिर पर बैठा काल दिनोदिन वादा पूजै । —पलटू०, भा० १, पु० २० ।

दिनौंधी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिन+अंध+ई (प्रत्य०)] आँख का एक प्रकार का रोग जिसमें दिन के समय सूर्य की तेज किरणों के कारण बहुत कम दिखाई देता है ।

दिपट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' । उ०—दिपट पटीकै नभ नखत जटीजै चक्र रतन पटीजै रटी राटी चुरवान में ।—पजनेस०, पु० १० ।

दिपति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' ।

दिपना(पु)—क्रि० अ० [सं० दीप्ति] चमकना । प्रकाशमान होना । उ०—कोटि भानु दुति दिपत है मोहन छिगुरी छोर । याते बरनी ओट ह्वै दग हेरत वह ओर ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दिपाना†[१]—क्रि० अ० चमकना । प्रकाशित होना । दे० 'दिपना' । उ०—कनक कलस मुख चंद दिपाहीं । रहस केलि सन आवहिं जाहीं ।—जायसी (शब्द०) ।

दिपाना(पु)[२]—क्रि० स० [हिं० दिपना] दीप्त करना । चमकाना । प्रकाशित करना ।

दिप्त—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति' । उ०—राति नहिं तहँ दिवस नाहीं, अखब दिप्त सुहाय ।—जग० बानी, पु० १२० ।

दिब—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य] वह परीक्षा जो निर्दोषता या अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये कोई दे । जैसे, अग्निपरीक्षा आदि । उ०—(क) काहे को अपराध लगावति कब कीनी हम चोरी ।...जैसे जब चाहो तब तैसे बाम्हन दिब मैं देहौं ।—(शब्द०) । (ख) सौंप सभा सावर लबार भए देव दिब दुसह साँसति कीजै आगे ही या तन की ।—तुलसी (शब्द०) ।

दिबि—वि० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य[१]' । उ०—दिबि दृष्टि करि जब देखिए तब सकल ब्रह्म बिलास रे ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पु० ८३१ ।

दिब्ब†—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य' । उ०—कहि कै सुभ्र छोड़ि दई पाती । जानहु दिब्ब छुअत तसि ताती ।—पद्मावत पु० २७४ ।

दिमंकर‡—संज्ञा पुं० [सं० दिवाकर] सूर्य । सहस्ररश्मि । सहस्रार । उ०—झनक झुनक बाजै आदि अक्षर दिमंकर बजि तार हो । —कबीर सा०, पु० ८८ ।

दिमंकर सो—वि० [सं० द्वि+उत्तर+शत] सौ और दो । एक सौ दो ।

विशेष—इसका व्यवहार पहाड़े में होता है । जैसे, सत्तरह छक्के दिमंकर सो—१७×६=१०२ ।

दिमाक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग] दे० 'दिमाग' । उ०—बैठ्यो बिनोद भरयो दिन दूलह कंत दिली को दिमाक सवाई ।—हम्मीर०, पु० ९ ।

दिमाकदार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'दिमागदार' । उ०—सोहते सवार सरदार जे दिमाकदार जुद्ध माँहि क्रुद्ध जे अदम्य ठहरात हैं । —गोपाल (शब्द०) ।

दिमाग—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग़] १. सिर का गूदा । मस्तिष्क । भेजा ।

मुहा०—दिमाग खाना या चाटना = व्यर्थ की बातें कहना जिससे किसी के सिर में दर्द होने लगे । बहुत बकवाद करना । जैसे,—आजकल वे रोज सबेरे आकर दिमाग चाटते (या खाते) हैं । दिमाग खाली करना = दिमाग चाटना । ऐसा काम करना जिसमें मानसिक शक्ति का बहुत अधिक व्यय हो । मगजपच्ची करना । जैसे,—उन्हें सब बातें समझाने के लिये हमें घटों दिमाग खाली करना पड़ा । दिमाग चढ़ना या आसमान पर होना = बहुत अधिक घमंड होना । अभिमान होना । दिमाग न पाया जाना या न मिलना = दिमाग चढ़ना । दिमाग परेशान करना = दे० 'दिमाग खाली करना' । दिमाग में खलल होना = मस्तिष्क में ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे विवेक शक्ति न रह जाय । सिड़ी होना । पागल होना ।

यौ०—दिमागचट । दिमाग रोशन ।

२. मानसिक शक्ति । बुद्धि । समझ । जैसे,—(क) उनका दिमाग अच्छा है, सब मामला बहुत जल्दी समझ लेते हैं । (ख) जरा दिमाग लगाओ, कोई उपाय निकल ही आवेगा ।

मुहा०—दिमाग लड़ाना = बहुत अच्छी तरह विचार करना ।

खूब सोचना। जैसे,—इस काम में बहुत दिमाग लड़ाने की जरूरत है।

यौ० —दिमागदार।

३. अभिमान। घमंड। शेखी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—दिमाग झड़ना = अहंकार नष्ट होना। अभिमान टूटना।

यौ०—दिमागदार।

दिमागचट—वि० [अ० दिमाग + हिं० चट (= चाटना)] बहुत अधिक बकवाद करके दूसरों को व्याकुल करनेवाला। बक्की।

दिमागदार—वि० [अ० दिमाग़ + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. जिसकी मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो। बहुत बड़ा समझदार। २. अभिमानी। घमंडी।

दिमागदारी -संज्ञा स्त्री० [अ० दिमाग+फ़ा० दार + ई (प्रत्य०)] १. दिमागदार होना। समझदारी। २. मगरूरी। अभिमान।

दिमागरौशन--संज्ञा पुं० [अ० दिमाग़ + फा० रौशन] मगजरौशन। नास। सुंघनी

दिमागी--वि० [अ० दिमाग + हिं० ई (प्रत्य०)] १. दिमाग का। दिमाग संबंधी। २. दे० 'दिमागदार'।

दिमात⑤†[1]--संज्ञा पुं०, वि० [सं० द्विमातृ] दो माताओंवाला। वह जिसकी दो माताएँ हों।

दिमात[2]--वि०, संज्ञा पुं० [सं० द्विमात्र] वह जिसमें दो मात्राएँ हों। दो मात्राओंवाला।

दिमान⑤—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] दीवान। मंत्री। उ०—सुदिमान दूलहजू दिमान खुमान सिंह सुजान में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३।

दिमाना⑤†—वि० [फ़ा० दीवानह्] [वि० स्त्री० दिमानी] दे० 'दिवाना'। उ०—स्याम सघन घन घेरि कै रस बरस्यो रसखानि। भई दिमानी पान करि, प्रेम मद्य मनमानि। —रसखान०, पृ० १९।

दिम्मस†--संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरमट] घ सदार तेलों को जमा करके दुरमट से पीटने की क्रिया।

दियंदा†- -वि० [फ़ा०] देनेवाला। उ० -साजा भला सुमत्थ, दान दियंदा दीह। -बाँकी० ग्रं०, भा० १. पृ० ४६।

दियट --संज्ञा स्त्री० [सं० दीपपट्ट या दीपपृष्ठ या दीपपीठ] दे० 'दीअट'।

दियत† -संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] वह धन जो किसी को मार डालने या अंग भंग करने के बदले में दिया जाय।

दियना⑤[1]—क्रि० अ० [सं० दीप्त] दीप्त होना। दिपना। चमकना। उ० -बाल केलि बात बस झलकि झलमलत सोभा की दीयट मानो रूप दीप दियो है।- तुलसी ग्रं०, पृ० २७३।

दियना‡[2]—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दे० 'दीया'।

दियरा—संज्ञा पुं० [सं० दीप, हिं० दीआ, दीया (= छोटा कसोरा) + रा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का पकवान जिसे मीठा मिले हुए आटे की लोई बनाकर और उसके बीच में अंगूठे से गड्ढा करके घी या तेल में तलकर बनाते हैं। लोई में अंगूठे से गड्ढा करने पर उसका आकार दीए का सा हो जाता है। २. दे० 'दीया'। ३. वह बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं। उ०—सुभग सकल अंग अनुज बालक संग देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९१।

दियरी--संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया] दे० 'दिया'।

दियला‡--संज्ञा पुं० [हिं० दीया + ला (प्रत्य०)] दे० 'दीया'। उ०—उर दियला राख्यौ जु मैं सरस सनेह भराइ। —स० सप्तक, पृ० १८२।

दियवा‡ —संज्ञा पुं० [हिं० दीया] दे० 'दीया'।

दियाँर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दीमक'।

दिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दिया'। उ०—दिशा मंदिर निसि करै अंजोरा। दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा।—जायसी (शब्द०)।

दिया[2]—क्रि० स० [हिं० देना] 'देना' क्रिया का सामान्य भूतकाल का एकवचन रूप।

दियानत—संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत] दे० 'दयानत'।

दियानतदार—वि० [अ० दयानत + फ़ा० दार] दे० 'दयानतदार'।

दियानतदारी—संज्ञा स्त्री०[अ० दयानत + फ़ा० दारी]दे० 'दयानतदारी'।

दियाबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया + बत्ती] (संध्या के समय) दीया जलाने का काम।

दियारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दयार (= प्रदेश)] १. नदी के किनारे की वह जमीन जो नदी के हट जाने पर निकल आती है। कछार। खादर। दरिया बरार। २. दयार। प्रदेश। प्रांत। उ०—का बरनउँ धनि देस दियारा। जहँ अस नग उपजा उँजियारा।—जायसी (शब्द०)।

दियासलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया + सलाई] लकड़ी की वह तीली या सलाई जो रगड़ने से जल उठती है।

विशेष - यह प्रायः एक अंगुल या इससे कुछ कम लंबी और पतली लकड़ी की सलाई होती है जिसके एक सिरे पर गंधक आदि कई भभकनेवाले मसाले लगे होते हैं। इस सिरे को रगड़ने से आग निकलती है जिससे सलाई जलने लगती है। जिस सलाई के सिरे पर गंधक लगी होती है वह हर एक कड़ी चीज पर रगड़ने से जल उठती है; पर जिसके सिरे पर अन्य मसाले लगे होते हैं वह विशिष्ट मसालों से बने हुए तल पर ही रगड़ने से जलती है। इसके अतिरिक्त चिनगारी या आग से इस सिरे का स्पर्श कराने से भी सलाई जल उठती है। छोटी चौकोर डिबिया में दियासलाइयाँ बंद रहती हैं; और उसी डिबिया के पार्श्व पर वह मसाला लगा होता है जिसपर रगड़ने से सलाई जलती है। लकड़ी के अतिरिक्त एक प्रकार की मोम की बनी हुई दियासलाई होती है जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक जलती रहती है। आजकल वैज्ञानिकों ने कागज आदि की भी सलाई बनाई है। सलाई का व्यवहार दीया जलाने और आग सुलगाने आदि के लिये होता है।

क्रि० प्र०—घिसना।—जलाना।—रगड़ना।

मुहा०—दियासलाई लगाना = आग लगाना। जलाना। जैसे,—यह किताब तो दियासलाई लगाने लायक है।

दिरंग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिरंग, दरंग] देर। विलंब। आलस्य। सुस्ती। उ०—गनीमत है फ़ुरसत कहूँ क्या दिरंग। के दुनिया किसी सूँ नहीं एक रंग।—दक्खिनी० पृ० ८१।

दिर—संज्ञा पुं० [अनु०] सितार का एक बोल। जैसे,—दिर दा दिर दारा दारा दा दार दार दा दार। दिर दा दिर दारा दा दिर दारा दा दिर दारा दार दार दा दार।

दिरद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद] दे० 'द्विरद'।

दिरम—संज्ञा पुं० [अ० दरहम] १. मिस्र देश का चाँदी का एक सिक्का। दिरहम। २. साढ़े तीन माशे की एक तौल। ३. फारस का एक पुराना सोने का सिक्का।

दिरमान†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमानह] चिकित्सा। इलाज।

दिरमानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमानह् (= चिकित्सा)+ई (प्रत्य०)] वैद्य। चिकित्सक। इलाज करनेवाला। उ०—मैं हरि साधन करै न जानी। जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी।—तुलसी (शब्द०)।

दिरहम—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरहम] दिरम नाम का सिक्का। दे० 'दिरम'।

दिराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] चंद्रमा। शशि। उ०—दंतन सो दिग्गज दुरंतर दबाइ दीन्हे, दीपति दिराजु चारु घटत छिन्न है।—सुजान०, पृ० ८।

दिरानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरानी] दे० 'देवरानी'। उ०—सुनहु जिठानी सुनहु दिरानी अचरज एक भयो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०२।

दिरियक—संज्ञा पुं० [सं०] कंदुक। गेंद (को०)।

दिरिस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दृश्य] दे० 'दृश्य'।

दिरेस¹—संज्ञा पुं० [अं० ड्रेस] १. महीन कपड़े पर छपी हुई एक प्रकार की छींट। दरेस। २. सँवारने या ठीक करने की क्रिया।

दिरेस²—वि० सँवारा या ठीक किया हुआ। लैस। दुरुस्त।

दिर्हम—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरहम] दे० 'दिरम'।

दिल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कलेजा।

मुहा०—दिल उलटना = दे० 'कलेजा उलटना'। दिल मलना = दे० 'कलेजा मलना'। दिल मसोसकर रह जाना = दे० 'कलेजा मसोसकर रह जाना'। दिल धुकड़ पुकड़ या धुकुर पुकुर करना अथवा होना = दे० 'कलेजा धुकड़ पुकड़ होना'। दिल धक धक करना या होना = दे० 'कलेजा धक धक करना'।

२. मन। चित्त। हृदय। जी।

यौ०—दिलगीर। दिलगुर्दा। दिलचला। दिलचस्प। दिलचोर। दिलजमई। दिलजला। दिलदरिया। दिलदरियाव। दिलदार। दिलबर। दिलरुबा।

मुहा०—(किसी से) दिल लगना = दे० 'जी लगना'। (किसी से) दिल अटकाना = दे० 'जी लगाना'। (किसी पर) दिल आना = दे० (किसी पर) 'जी आना'। दिल उकताना = दे० 'जी उकताना'। दिल उचटना = दे० 'जी उचटना'। दिल उचाट होना = दे० 'जी उचाट होना'। दिल उठना = दे० 'जी हटना'। दिल उमड़ना = दे० 'जी भर आना'। दिल उलटना = (१) दे० 'जी घबराना'। (२) दे० 'जी मिचलाना'। दिल उठाना = चित्त हटाना। मन फेर लेना। दिल कड़ा करना = हिम्मत बाँधना। साहस करना। चित्त में दृढ़ता लाना। दिल कड़ुवा करना = दे० 'दिल कड़ा करना'। दिल कबाब होना = दे० 'जी जलना'। दिल करना = दे० 'जी करना'। दिल का कँवल खिलना = चित्त प्रसन्न होना। मन में आनंद होना। दिल का गवाही देना = मन को किसी बात की संभावना या औचित्य का निश्चय होना। इस बात का विचार में आना कि कोई बात होगी या नहीं; अथवा यह बात उचित है या नहीं। जैसे,—(क) हमारा दिल गवाही देता है कि वह जरूर आवेगा। (ख) उनके साथ जाने के लिये हमारा जी गवाही नहीं देता। दिल का गुबार निकलना = दे० 'जी का गुबार निकलना'। दिल का बादशाह = (१) बहुत बड़ा उदार। (२) मनमौजी। लहरी। दिल का बुखार निकालना = दे० 'जी का बुखार निकालना'। दिल का भर जाना = दे० 'जी भर आना'। दिल की दिल में रहना = दे० 'जी की जी में रहना'। दिल की फाँस = मन की पीड़ा या दुःख। दिल की कली खिलना = चित्त प्रसन्न होना। उ०—शहजादा हुमायूँ फर के दिल की कली खिल गई। मुँहमाँगी मुराद पाई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२४। दिल की सेन बुझाना = मन की मुराद पूरी करना। उ० बैद कोई ऐसा नहिं जिससे दिल की सेन बुझाऊँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६। दिल कुढ़ना = चित्त का दुःखी होना। रंज होना। दिल कुढ़ाना = चित्त को दुःखी करना। रंज करना। दिल कुम्हलाना = चित्त का दुखी वा शोकाकुल होना। मन का सुस्त हो जाना। (किसी के) दिल के दरवाजे खुलना = जी का हाल मालूम होना। मन की बात प्रकट होना। दिल के फफोले फूटना = चित्त का उद्गार निकालना। दिल के फफोले फोड़ना = हृदय का उद्गार निकालना। किसी को भली बुरी सुनाकर अपना जी ठंढा करना। जली कटी कहकर अपना चित्त शांत करना। दिल को करार होना = चित्त में धैर्य या शांति होना। हृदय का शांत या संतुष्ट होना। दिल को पत्थर करना = मन को कड़ा करना। मन में शक्ति लाना। उ०—दिल पत्थर करके सोचा।—किन्नर०, पृ० ३२। दिल को मसोसना = शोक या क्रोध आदि तीव्र मनोवेगों को मन में ही दबा रखना। चित्त के उद्गार को किसी कारणवश निकलने न देना। दिल को लगना = हृदय पर पूरा या गहरा प्रभाव पड़ना। किसी बात का जी में बैठना। चित्त में चुभना। जैसे,—उनकी सब बातें हमारे दिल में लग गईं। दिल खट्टा होना = दे० 'जी खट्टा होना'। दिल खटकना = दे० 'जी खटकना'। दिल खींच लेना = मन मोह लेना। किसी का हृदय आकर्षित करना। उ०—क्यों न दिल खींच ले उपज आला, जो कि उपजी कमाल की कुछ

से।—चोखे०, पृ० ८। दिल खुलना = दे० 'जी खुलना'। दिल खिलना = चित्त प्रसन्न होना। मन का प्रफुल्लित होना। दिल खोलकर = दे० 'जी खोलकर'। दिल चलना = दे० 'जी चलना'। दिल चलाना = दे० 'मन चलाना'। दिल चुराना = दे० 'जी चुराना'। दिल जमना। (१) किसी काम में चित्त लगना। ध्यान या जी लगना। जैसे,—तुम्हारा दिल तो जमता ही नहीं, तुम काम कैसे करोगे ? (२) किसी विषय या पदार्थ की ओर से चित्त का संतुष्ट होना। रुचि के अनुकूल होना। जी भरना। जैसे,—(क) जिस चीज पर दिल ही नहीं जमता उसे लेकर क्या करेंगे ? (ख) अगर तुम्हारा दिल जमे तो तुम भी हमारे साथ चलो। दिल जमाना = काम में ध्यान देना। चित्त लगाना। जी लगाना। जैसे—अगर तुम्हे काम करना हो तो दिल जमाकर किया करो। दिल जलना = दे० 'जी जलना'। दिल जलाना = दे० 'जी जलाना'। (किसी काम में) दिल जान या दिलो जान से लगना = दे० 'जी जान से लगना'। दिल टूटना या टूट जाना = दे० 'जी टूट जाना'। दिल ठिकाने होना = मन में शांति, संतोष या धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। जी ठहराना। दिल ठिकाने लगाना = मन को शांत या संतुष्ट करना। जी को सहारा देना। व्याकुलता दूर करना। दिल ठुकना = दे० 'जी ठुकना'। दिल ठोकना = मन को दृढ़ करना। जी को पक्का करना (क्व०)। दिल डूबना = दे० 'जी डूबना'। दिल तड़पना = चित्त का यों ही, विशेषतः किसी के प्रेम में, बहुत व्याकुल होना। बहुत अधिक घबराहट या बेचैनी होना। उ०—दिल तड़पकर रह गया जब याद आई आपकी। (शब्द०)। दिल तोड़ना = हिम्मत तोड़ना। हतोत्साह करना। साहस भंग करना। दिल दहलना = दे० 'जी दहलना'। दिल दुखना = दे० 'जी दुखना'। दिल देखना = किसी के मन की परीक्षा करना : रुचि या प्रवृत्ति का पता लगाना। जी की थाह लेना। मन टटोलना। जैसे,—हमें रुपयों की कोई जरूरत नहीं है; हम तो खाली तुम्हारा दिल देखते थे। दिल देना = आशिक होना। प्रेम करना। आसक्त होना। मुहब्बत में पड़ना। दिल दौड़ना = दे० 'जी दौड़ना'। दिल दौड़ाना = (१) जी चलाना। इच्छा या लालसा करना। (२) ध्यान दौड़ना। चिंतन करना। सोचना। दिल धड़कना = दे० 'कलेजा धड़कना'। दिल पक जाना = दे० 'कलेजा पक जाना'। दिल पकड़ लेना या दिल पकड़कर बैठ जाना = दे० 'कलेजा पकड़ लेना'। दिल पकड़ा जाना = दे० 'जी पकड़ा जाना'। दिल पकड़े फिरना = ममता से व्याकुल होकर इधर उधर फिरना। विकल होकर घूमना। दिल पर नक्श होना = किसी बात का जी में जम जाना। जी में बैठ जाना। हृदयंगम होना। दिल पर मैल आना = मनमोटाव होना। पहले का सा प्रेम या सद्भाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। जी फट जाना। दिल पर साँप लोटना = दे० 'कलेजे पर साँप लोटना'। दिल पर हाथ रखे फिरना = दे० 'दिल पकड़े फिरना'। दिल पसीजना = दे० 'दिल पिघलना'। दिल पाना = आशय जानना। अंतःकरण की बात जानना। मन की थाह पाना। दिल पीछे पड़ना = दे० 'जी पीछे पड़ना'।

दिल फटना या फट जाना = दे० 'जी फट जाना'। दिल फिरना या फिर जाना = दे० 'जी फिर जाना'। दिल फीका होना = दे० 'जी खट्टा होना'। दिल बढ़ना = दे० 'जी बढ़ना'। दिल बढ़ाना = दे० 'जी बढ़ाना'। दिल बहलना = दे० 'जी बहलना'। दिल बहलाना = दे० 'जी बहलाना'। दिल बुझना = चित्त में किसी प्रकार का उत्साह या उमंग न रह जाना। मन मरना। दिल बुरा होना = दे० 'जी बुरा होना'। दिल बेकल होना = बेचैनी होना। घबराहट होना। दिल बैठा जाना = दे० 'जी बैठा जाना'। दिल भटकना = चित्त का व्यग्र या चंचल होना। मन में इधर उधर के विचार उठना। दिल भर आना = दे० 'जी भर आना'। दिल भरना = दे० 'जी भरना'। दिल भारी करना = दे० 'जी भारी करना'। दिल मसोसना = शोक, क्रोध या किसी दूसरे तीव्र मनोवेग का मन में ही दब रहना। दिल मारना = दे० 'मन मारना'। दिल मिलना = दे० 'जी मिलना' या 'मन मिलना'। दिल पे आना = दे० 'जी मे आना'। दिल मे गड़ना या खुभना = दे० 'जी में गड़ना या खुभना'। दिल मे गाँठ या गिरह पड़ना = दे० 'गाँठ' के अंतर्गत मुहा० । 'मन में गाँठ पड़ना'। दिल में घर करना = दे० 'जी में घर करना'। दिल मे चुटकियाँ या चुटकी लेना = दे० 'चुटकी लेना'। दिल में चुभना = दे० 'जी मे गड़ना या खुभना'। दिल मे चोर बैठना = दे० 'मन में चोर बैठना'। दिल में जगह करना = दे० 'जी मे घर करना'। दिल में फफोले पड़ना = चित्त को बहुत मानसिक कष्ट पहुँचना। मन मे बहुत दुःख होना। दिल में फरक आना = सद्भाव में अंतर पड़ना। मनमोटाव होना। दिल में बल पड़ना = दे० 'दिल में फरक आना'। दिल मे रखना = दे० 'जी मे रखना'। दिल मैला करना = चित्त मे दुर्भाव उत्पन्न करना। मन मैला करना। दिल रुकना = दे० 'जी रुकना'। (किसी का) दिल रखना = दे० 'जी रखना'। दिल लगना = दे० 'जी लगना'। दिल लगाना = दे० 'जी लगाना'। दिल ललचना = दे० 'जी ललचना'। दिल लेना = (१) किसी को अपने पर आसक्त करना। अपने प्रेम में फँसाना। (२) अंतःकरण की बात जानना। मन की थाह लेना। दिल लोटना = दे० 'जी लोटना'। दिल से उतरना या गिरना = दृष्टि से गिर जाना। प्रिय या आदरणीय न रह जाना। विरक्तिभाजन होना। दिल से = (१) जी लगाकर। अच्छी तरह। ध्यान देकर। (२) अपने मन से। अपनी इच्छा से। दिल से उठना = आपसे आप कोई काम करने की प्रवृत्ति होना। जैसे,—जब तुम्हारे दिल से ही नहीं उठता, तब बार बार कहकर तुमसे कोई क्या काम करावेगा ? दिल से दूर करना = भुला देना। विस्मरण करना। ध्यान छोड़ देना। दिल हट जाना = दे० 'जी फिर जाना'। (किसी का) दिल हाथ में रखना = किसी को प्रसन्न रखना। किसी के मन को अपने वश में रखना। दिल हाथ में लेना = किसी को प्रसन्न करके अपने अधिकार में रखना। वशीभूत रखना। दिल हिलना = दे० 'जी दहलना'। दिल ही दिल में = चुपके चुपके। गुप्त भाव से। मन ही मन। दिलो जान से = दे० 'जी जान से'।

३. साहस । दम । जिगट । जीवट ।

मुहा०—दिल दिमाग का (आदमी)=बहुत साहसी और समझदार (आदमी) ।

यौ०—दिलदार ।

४. प्रवृत्ति । इच्छा ।

दिलकश—वि० [फ़ा०] चित्ताकर्षक । मनमोहक (को०) ।

दिलखुश—वि० [फ़ा०] मन को प्रफुल्ल रखनेवाला (को०) ।

दिलगीर—वि० [फ़ा०] १. उदास । २. दुःखी । शोकाकुल ।

दिलगीरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दिलगीर+ई० (प्रत्य०)] १. उदासी । २. रंज । दुःख ।

दिलगुरदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+गुरदा] हिम्मत । साहस । बहादुरी ।

दिलचला—वि० [फ़ा० दिल+हिं० चलना] १. साहसी । हिम्मतवाला । दिलेर । २. शूर । वीर । बहादुर । ३. दाता । दानी । उदार । ४. पागल (क्व०) ।

दिलचस्प—वि० [फ़ा०] जिसमें जी लगे । मनोहर । चित्ताकर्षक ।

दिलचस्पी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दिल का लगना । २. मनोरंजन ।

दिलचोर—वि० [फ़ा० दिल+हिं० चोर] जो काम करने में जी चुराता हो । कामचोर ।

दिलजमई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिल+अ० जमअ़+ई (प्रत्य०)] इतमीनान । तसल्ली । संतोष ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—रखना ।

दिलजला—वि० [फ़ा० दिल+हिं० जलना] जिसका जी जला हो । जिसके चित्त को बहुत कष्ट पहुँचा हो । अत्यंत दुःखी ।

दिलजोई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दिलजमई । तसल्ली । दिलजमई (को०) ।

दिलदरिया—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दरियादिल' ।

दिलदरियाव—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दरियादिल' ।

दिलदार—वि० [फ़ा०] १. उदार । दाता । २. रसिक । ३. प्रेमी । प्रिय । वह जिससे प्रेम किया जाय ।

दिलदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिलदार+ई० (प्रत्य०)] १. उदारता । २. रसिकता । ३. प्रेमिकता ।

दिलदौर—वि० [फ़ा०] दे० 'दिलदार' ।

दिलपसंद[१]—वि० [फ़ा०] मनोहर । जो भला मालूम हो ।

दिलपसंद[२]—संज्ञा पुं० १. फुलवर या चुनरी की तरह का एक प्रकार का कपड़ा जिसपर बेल बूटे आदि छपे हुए होते हैं और जो साड़ी आदि बनाने के काम में आता है । २. एक प्रकार का आम ।

दिलफेंक—वि० [फ़ा० दिल+हिं० फेंकना] सौंदर्य पर मुग्ध होनेवाला ।

दिलबर—वि० [फ़ा०] जिससे प्रेम किया जाय । प्यारा । प्रिय ।

दिलबहार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+बहार] खशखाशी रंग का एक भेद ।

दिलरुबा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह जिससे प्रेम किया जाय । प्यारा । २. एक प्रकार का तंत्रवाद्य ।

दिलवल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

दिलवाना—क्रि० स० [हिं० दिलाना] दे० 'दिलाना' ।

दिलवाला—वि० [फ़ा० दिल+हिं० वाला (प्रत्य०)] १. उदार । दाता । जो खूब देता हो । २. बहादुर । दिलेर । साहसी ।

दिलवैया—वि० [हिं० दिलवाना+ऐया (प्रत्य०)] दिलवानेवाला । जो दूसरे को दिलाता हो ।

दिलहा—संज्ञा पुं० [हिं० दिलना] दे० 'दिलना' ।

दिलहेदार—वि० [हिं० दिल्लेदार] दे० 'दिल्लेदार' ।

दिलाना—क्रि० स० [हिं० देना का प्रे० रूप] १. दूसरे को देने में प्रवृत्त करना । देने का काम दूसरे से कराना । दिलवाना । जैसे, रुपया दिलाना, काम दिलाना । २. प्राप्त करना ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः ऐसी ही बातों के संबंध में होता है जिनकी प्राप्ति किसी तीसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो बल्कि जो स्वयं उसी मनुष्य में उत्पन्न की जा सकें । जैसे, सुख दिलाना, कसम दिलाना, ध्यान दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दिलावर—वि० [फ़ा०] १. शूर । बहादुर । जवाँमर्द । २. उत्साही । साहसी ।

दिलावरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बहादुरी । शूरता । २. साहस ।

दिलावेज—वि० [फ़ा० दिल+आवेज (=लटका लेने वाला)] सुंदर । शुभदर्शन । मनोहर (को०) ।

दिलावेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिल+आवेजी] खूबसूरती । सौंदर्य । शोभा (को०) ।

दिलासा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल+हिं० आसा] तसल्ली । ढाढस । आश्वासन । धैर्य । प्रबोध ।

क्रि० प्र०—देना ।

यौ०—दम दिलासा (१) तसल्ली । धैर्य । (२) दम बुत्ता । धोखा । फरेब ।

दिली[१]—वि० [फ़ा० दिल+ई (प्रत्य०)] १. हार्दिक । हृदय या दिल संबंधी । जैसे, दिली मुराद । २. अत्यंत घनिष्ट । अभिन्न हृदय । जिगरी । जैसे, दिली दोस्त ।

दिली[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्ली] दे० 'दिल्ली' । उ०—बैठ्यो विनोद भर्‌यो दिन दूलह कंत दिली को दिमाक मचाई ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

दिलीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. इक्ष्वाकुवंशी एक ख्यातनाम राजा ।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार दिलीप राजा सगर के परपोते, भगीरथ के पिता और रघु के परदादा थे । लेकिन कालिदास के रघुवंश के अनुसार इन्हीं राजा दिलीप की स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए थे । रघुवंश में लिखा है कि राजा दिलीप एक बार स्वर्ग से मर्त्य लोक में अपनी स्त्री से मिलने के लिये आते समय स्वर्गीय गौ सुरभि की पूजा करना भूल गए थे । इसलिये उसने उन्हें शाप दिया कि जबतक तुम मेरी नंदिनी की सेवा न करोगे तबतक तुम्हें पुत्र

न होगा। जब दिलीप को कोई पुत्र नहीं हुआ तब वशिष्ठ के पास गए और पुत्र पाने की अपनी लालसा उनसे व्यक्त की। वशिष्ठ ने कामधेनु के शाप की बात बताई। उनके आदेश से सपत्नीक दिलीप आश्रम में रहते हुए सुरभि की पुत्री नंदिनी की सेवा करने लगे। कुछ दिन बीतने पर उनकी परीक्षा लेने के लिये एक बार एक शेर ने नंदिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिये शेर पर प्रहार करना चाहा पर उनका हाथ अचल हो गया। निराश राजा दिलीप ने शेर से प्रार्थना की कि वह उनको खाकर अपनी क्षुधा मिटाए और नंदिनी को छोड़ दे। शेर के बहुत समझाने बुझाने पर भी वे न माने और अपने आपको उस शेर के आगे डाल दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और सुदक्षिणा के गर्भ से रघु की उत्पत्ति हुई। लिंगपुराण में लिखा है कि ये बड़े बुद्धिमान थे और इन्होंने तीनों लोकों और तीनों अग्नियों को जीत लिया था। एक बार एक मुहूर्त के लिये ये स्वर्ग से मर्त्य लोक में भी आए थे। आगे चलकर इन्होंने फिर इसी वंश में ऐलिविलि राजा के घर में जन्म लिया था। हरिवंश के अनुसार भी दिलीप राजा सगर के परपोते और अंशुमान के पुत्र थे। आगे चलकर इन्होंने एक बार फिर इसी वंश में जन्म लिया था।

२. चंद्रवंशी राजा कुरु के वंशज एक राजा का नाम।

दिलीर—संज्ञा पुं० [सं०] भुइँफोड़। ढिंगरी।

दिलेर—वि० [फ़ा०] १. बहादुर। शूरवीर। २. साहसी। दिलवाला।

दिलेरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बहादुरी। वीरता २. साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—करना।—दिखाना।

दिल्लगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दिल + हिं० लगना] १ दिल लगाने की क्रिया या भाव। २. वह व्यापार, घटना या बात आदि जिसकी विलक्षणता आदि के कारण चित्त का विनोद और मनोरंजन हो। केवल चित्तविनोद या हँसने हँसाने की बात। ठट्ठा। ठठोली। मजाक। मखौल। मसखरी। जैसे,—(क) आप आजकल बहुत दिल्लगी करने लगे हैं। (ख) कल रातवाले झगड़े में अच्छी दिल्लगी देखने में आई। (ग) दोनों का सामना होगा तो बड़ी दिल्लगी होगी।

मुहा०—किसी बात की दिल्लगी उड़ाना = (किसी बात को) अमान्य और मिथ्या ठहराने के लिये (उसे) हँसी में उड़ा देना। हँसी की बात कहकर टाल देना। उपहास करना। जैसे,—(क) आप तो सब को यों ही दिल्लगी उड़ाया करते हैं। (ख) उन्होंने तुम्हारी किताब की खूब दिल्लगी उड़ाई। दिल्लगी में = केवल दिल्लगी के विचार से। यों ही। हँसी में। जैसे, —मैंने उन्हें दिल्लगी में ही यहाँ से जाने के लिये कहा था, पर वे नाराज होकर चले गए।

दिल्लगीबाज—संज्ञा पुं० [हिं० दिल्लगी + फ़ा० बाज] वह जो सदा दूसरों को हँसानेवाली बात कहता हो। हँसी या दिल्लगी करनेवाला। मसखरा। ठठोल। हँसोड़। मखौलिया।

दिल्लगीबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्लगी + फ़ा० बाजी] १. दिल्लगी करने का काम। २. दे० 'दिल्लगी'।

दिल्ला—संज्ञा पुं० [देश०] किवाड़ के पल्ले में लकड़ी का वह चौखटा जो शोभा के लिये बना या जड़ दिया जाता है। आईना।

विशेष—किवाड़ों में शोभा के लिये या तो चौकोर छेद करके उसमें शीशे की तरह लकड़ी का चौकोर टुकड़ा फिर से बैठा देते हैं अथवा पल्ले का ही कुछ अंश काटकर और कुछ उभाड़दार छोड़कर इस प्रकार बना देते हैं कि वह देखने में एक अलग चौकोर टुकड़ा सा जान पड़ता है। इसी को दिल्ला या दिलहा कहते हैं।
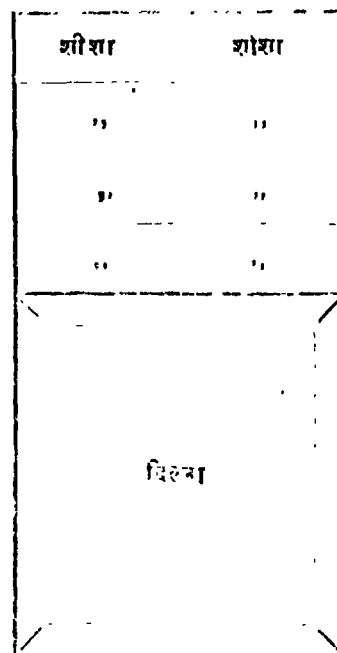
दिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] यमुना नदी के किनारे बसा हुआ उत्तर-पश्चिम भारत का एक बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन नगर जो स्वतंत्र भारत की राजधानी है।

विशेष—यह नगर बहुत दिनों तक हिंदू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और सन् १९१२ ई० में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया। जिस स्थान पर वर्तमान दिल्ली नगर है, उसके चारों ओर १०—१२ मील के घेरे में भिन्न भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा। कुछ लोगों का मत है कि इंद्रप्रस्थ के मयूरवंशी अंतिम राजा दिलु ने इसे पहले पहल बसाया था, इसी से इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी प्रवाद है कि पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने एक बार एक गढ़ बनवाना चाहा था। उसकी नींव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त में लोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगी है जिसके कारण आपके तोमर वंश का राज्य अचल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उखड़वा दी। कील उखाड़ते ही वहाँ से रक्त की धारा निकलने लगी। इसपर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने फिर वही कील उस स्थान पर गड़वाई पर इस बार वह ठीक नहीं बैठी, कुछ ढीली रह गई। इसी से उस स्थान का नाम

'ढीली' पड़ गया जो बिगड़कर दिल्ली हो गया। पर कील या स्तंभ पर जो शिलालेख है उससे इस प्रवाद का पूरा खंडन हो जाता है क्योंकि उसमें अनंगपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार अनंगपाल के किसी पूर्वपुरुष 'बल्हन' नाम के नरेश ने यह किल्ली गड़वाई और नगर बसाया था। उसके बाद अनंगपाल ने फिर किल्ली गड़वाई (दे० पृथ्वीराज रासो 'दिल्ली किल्ली कथा')। नाम के विषय में चाहे जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पहली शताब्दी के बाद मे यह नगर कई बार बसा और उजड़ा। सन् ११९३ में मुहम्मद गोरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी हो गया। सन् १३९८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और १५२६ में बाबर ने इसपर अधिकार किया। तब से यहाँ मोगल साम्राज्य की राजधानी हो गई। सन् १८०३ में इसपर अंगरेजों का अधिकार हो गया। पहले अंगरेजी भारत की राजधानी कलकत्ते में थी; पर सन् १९१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आजकल वर्तमान दिल्ली के पास एक नई दिल्ली बस गई है।

दिल्लीवाल[1]—वि० [हिं० दिल्ली + वाल (प्रत्य०)] १. दिल्ली संबंधी। दिल्ली का। २ दिल्ली का रहनेवाला।

दिल्लीवाल[2]—संज्ञा पुं० दिल्ली का बना हुआ एक प्रकार का देशी जूता।

दिल्लेदार—वि० [देश० दिलहा + फ़ा० दार] दिलहेवाला (किवाड़)। जिसमें दिलहा बना या लगा हो।

दिल्ही†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिल्ली'। उ०—दिल्ही तें परे कोस दोइ पर एक ग्राम है।—दो सौ बावन०, भा० १. पृ० १३६।

दिवंगत—वि० [सं० दिवङ्गत] मृत। स्वर्गीय [को०]।

दिवंगम—वि० [सं० दिवङ्गम] स्वर्ग जानेवाला। मरनेवाला। जिसकी मृत्यु निकट हो [को०]।

दिव्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिव'।

दिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २ आकाश (डिं०)। ३. वन। ४. दिन। ५. नीलकंठ पक्षी (को०)।

दिवकार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिव (= दिन + कर (= कर्ता)] सूर्य। दिनकर। उ०—गुरुद्रोही औ मनमुखी, नारि पुरुष विविचार। ते चोरासी भरमही, जो लगि चंद दिवकार।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० १६९।

दिवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवगृह'।

दिवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पात। क्रांति। आकाशदाह [को०]।

दिवर†—संज्ञा पुं० [सं० द्वि + वर] दे० 'देवर'। उ०—तुम लीजो दिवर हमारे मेरे हाथ अंगूठी भारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१४।

दिवरा†—संज्ञा पुं० [हिं० देवर] दे० 'देवर'। उ० पिउ पीतम पागे पराई तिया दिवरा सोऊ डोलत बागन मैं।—नट०,पृ० १४०।

दिवराज—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का राजा, इंद्र। उ०—सूरदास प्रभु कृपा करहिंगे शरण चलो दिवराज।—सूर (शब्द०)।

दिवरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरानी] दे० 'देवरानी'।

दिवला—संज्ञा पुं० [सं० दीप, प्रा० दीव + ला (प्रत्य०)] दे० 'दीप'। उ०—येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव। लोहू सींचौ तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव।—कबीर सा०, पृ० १६।

दिवली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दिवली'।

दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। वासर। रोज।

दिवस अंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + हिं० अंध] दे० 'दिवांध'।

दिवसकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। दिनकर। २. मदार का पेड़।

दिवसक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का अवसान। सूर्यास्त [को०]।

दिवसचर—संज्ञा पुं० [सं० दिवाचर] १. श्यामा पक्षी। २. चांडाल।

दिवसचारी—वि० [सं० दिवाचारिन्] दिन भर घूमनेवाला।

दिवसनाथ—संज्ञा पुं० [सं० दिवस+नाथ] दे० 'दिवसमणि'। २. अर्क वृक्ष।

दिवसपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दिवापुष्ट] सूर्य। रवि।

दिवसमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिवसमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सबेरा। प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन। एक दिन की तनख्वाह।

दिवससंजात—संज्ञा पुं० [सं० दिवससञ्जात] दिन भर का काम।

विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी जाती थी।

दिवसांतर—वि० [सं०] मात्र एक दिन का।

दिवसाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिवाभिसारिका'।

दिवसावसान—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + अवसान] दिनांत। संध्या। उ०—दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है।—अपरा०, पृ० १३।

दिवसेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिवसेश्वर'।

दिवसेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

दिवस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. तेरहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम।

दिवस्पृश्—संज्ञा पुं० [सं०] (वामनावतार में) पैर से स्वर्ग को छूनेवाले, विष्णु।

दिवांध[1]—वि० [सं० दिवान्ध] जिसे दिन में न सूझे। जिसे दिनौंधी हो।

दिवांध[2]—संज्ञा पुं० १. दिनौंधी का रोग। २. उल्लू।

दिवांधकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धकी] छछूंदर।

दिवांधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धिका] छछूंदर [को०]।

दिवा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन। दिवस। २. २२ अक्षरों का एक वर्णवृत्त। एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ७ भगण और १ गुरु होता है। इसके दूसरे नाम 'मालिनी' और 'मदिरा' भी हैं। जैसे,—भातस गौरि गुसाँइन को बर राम धनू दुइ खंड कियो। ३. दे० 'दीया'।

दिवाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । भास्कर । रवि । २. काक । कौवा । ३. मदार । आक । ४. एक फूल ।

दिवाकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. नापित । नाऊ । नाई । हज्जाम ।

विशेष—प्राचीन काल में नाइयों को केवल दिन के समय ही नगर आदि में घूमने का अधिकार था, इसी से यह नाम पड़ा ।

२. चांडाल । ३. उल्लू ।

दिवाकीर्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामगान जो साल भर में होनेवाले गवानयन यज्ञ में विषुव संक्रांति के दिन गाया जाता है ।

दिवाचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । चिड़िया । २. चांडाल ।

दिवाचारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दिवाचारिन्] दिन को घूमनेवाला [को०] ।

दिवाटन—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कौवा ।

दिवातन[१]—संज्ञा पुं० [सं० दिवा + तन ?] एक दिन की मजदूरी । एक दिन की तनखाह ।

दिवातन[२]—वि० दिन भर का । रोजाना । प्रति दिन का ।

दिवान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] दे० 'दीवान' ।

दिवाना†[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवानह्] [स्त्री० दिवानी] दे० 'दीवाना' ।

दिवानाⓤ‡[२]—क्रि० स० [हिं० देना] दे० 'दिलाना' ।

दिवानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य ।

दिवानी[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो बरमा में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी ईंट के रंग की लाल होती है जिसपर भूरी और नारंगी रंग की धारियाँ पड़ी रहती हैं । इससे मेज, कुरसी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं ।

दिवानी[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवानी] दे० 'दीवानी' । उ०—सूरदास प्रभु मिलि कै बिछुरे ताते भई दिवानी ।—सूर (शब्द०) ।

दिवापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिवाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो दिन के समय अपने प्रेमी से मिलने के लिये, शृंगार करके, संकेतस्थान में जाय ।

दिवाभीत, दिवाभीति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर । तस्कर । २. उल्लू । ३. एक प्रकार का कमल जो रात को खिलता है (को०) ।

दिवामणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. अर्क । मदार ।

दिवामध्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दिवार†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवार] दे० 'दीवार' ।

दिवारात्र—क्रि० वि० [सं०] निरंतर । दिनरात [को०] ।

दिवारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' । उ०—ग्राम ग्राम जनु बरत दिवारिय ।—प० रासो, पृ० १११ ।

दिवाल[१]—वि० [हिं० देना + वाल (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो । जैसे,—यह एक पैसे के दिवाल नहीं है (बाजारू) ।

दिवाल[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवाल] दे० 'दीवार' ।

दिवालय†—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] दे० 'देवालय' ।

दिवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दिया, दिवा + बालना (= जलाना)] १. वह अवस्था जिसमें मनुष्य के पास अपना ऋण चुकाने के लिये कुछ न रह जाय । पूँजी या आय न रह जाने के कारण ऋण चुकाने में असमर्थता । कर्ज न चुका सकना । टाट उलटना ।

विशेष—जब किसी मनुष्य को व्यापार आदि में बहुत घाटा आता है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस ऋण के चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब उसका दिवाला होना मान लिया जाता है । इस देश में प्राचीन काल में अपनी यह असमर्थता प्रकट करने के लिये ऋणी व्यापारी अपनी दूकान का टाट उलट देते थे और उसपर एक चौमुखा दीया जला देते थे जिससे लोग समझ लेते थे कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और इनका दिवाला हो गया । इसी दिया बालने (जलने) से 'दिवाला' शब्द बना है । राजस्थान में पहले दूकान पर उलटा ताला लगा देते थे । आजकल प्रायः सभी सभ्य देशों में दिवाले के संबंध में कुछ कानून बन गए हैं जिनके अनुसार वह मनुष्य जो अपना बढ़ा हुआ ऋण चुकाने में असमर्थ होता है, किसी निश्चित न्यायालय में जाकर अपने दिवाले की दरखास्त देता है और यह बतला देता है कि मुझे बाजार का कितना देना है और इस समय मेरे पास कितना धन या संपत्ति है । इसपर न्यायालय की ओर से एक मनुष्य, विशेषतः वकील या और कोई कानून जाननेवाला नियुक्त कर दिया जाता है जो उसकी बची हुई सारी संपत्ति नीलाम करके और उसका सारा लहना वसूल करके हिस्से के मुताबिक उसका सारा कर्ज चुका देता है । ऐसी दशा में मनुष्य को अपने ऋण के लिये जेल जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

मुहा०—दिवाला निकलना = दिवाला होना । दिवाला निकालना या मारना = दिवालिया बन जाना । ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाना ।

२. किसी पदार्थ का बिलकुल न रह जाना । जैसे, ज्योनारवाले दिन उनके यहाँ पूरियों का दिवाला हो गया ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।—मारना ।

दिवालिया—वि० [हिं० दिवाला + इया (प्रत्य०)] जिसने दिवाला निकाला हो । जिसके पास ऋण चुकाने के लिये कुछ न बच गया हो ।

दिवाली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' ।

दिवाली[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] खराद या सान में लपेटने का वह तस्मा जिसे खींचकर उसे चलाते हैं । दवाली ।

दिवालोक—संज्ञा पुं० [सं० दिव + लोक] १. दिन का प्रकाश । २. स्वर्ग के समान या स्वर्गतुल्य लोक । उ०—कहीं भी, इस दिवालोक में घूमते घूमते संध्या तक कहीं न कहीं शरण मिल ही जायगी ।—इरा०, पृ० ६१ ।

दिवावसु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

दिवाशय—वि० [सं०] दिन में सोनेवाला (को०)।

दिवाशयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन को सोने की आदत या बान (को०)।

दिवास्वप्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन में सोना। २. कल्पनाप्रसूत बात। मनोराज्य (को०)।

दिवास्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. उलूक। उल्लू। २. दिन की निद्रा। दिन में शयन (को०)।

दिवि¹—संज्ञा पुं० [सं० दिव] दे० 'दिव'।

दिवि²—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ पक्षी।

दिवि(पु)³—वि० [सं० दिव्य] दे० 'दिव्य'। उ० दिवि दिस्टि आजा मेत। सब मर्म होत निकेत।—सं० दरिया, पृ० ८।

यौ०—दिविदिस्टि = दिव्य दृष्टि।

दिविज—संज्ञा पुं० [सं०] देव। सुर (को०)।

दिविता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप्ति।

दिविदिवि—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो दक्षिण अमेरिका से भारतवर्ष में आया है।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः धारवार, कनारा, बीजापुर, खानदेश इत्यादि नगरों में अधिकता से उत्पन्न होता है। चमड़ा सिझाने और रँगने के काम में इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार होता है।

दिविर—संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। लिपिक। मुंशी। उ०—राजा की सेवा में बहुत से दिविर या लेखक थे जो बहुधा कायस्थ कहलाते थे और जिनको कल्हण ने अत्याचारी कहकर गालियाँ सुनाई हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५१६।

दिविरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत के अनुसार, पुरुवंशी राजा भूमन्यु के पुत्र का नाम। २. हरिवंश के अनुसार अंग देश के राजा दधिवाहन के पुत्र का नाम।

दिविषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देव। देवता। २. स्वर्गवासी।

दिविष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ।

दिविष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग में रहनेवाले, देवता। २. ईशान कोण के एक देश का नाम जिसका उल्लेख बृहत्संहिता में है।

दिविस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दिविष्ठ। देवता (को०)।

दिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल।

दिवैया—वि० [हिं० देना + ऐया (प्रत्य०)] देनेवाला। जो देता हो।

दिवोका—संज्ञा पुं० [सं० दिवोकस्] दे० 'दिवौका'।

दिवोदास—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र का नाम, जिनका उल्लेख काशीखंड और महाभारत में है।

विशेष—ये इंद्र के उपासक और काशी के राजा थे और धन्वंतरि के अवतार माने जाते हैं। महाभारत में लिखा है कि ये राजा सुदेव के पुत्र थे और इंद्र ने शंबर राक्षस की १०० पुरियों में से ९९ पुरियाँ नष्ट करके बाकी एक पुरी इन्हीं को दी थी। इनके पिता के शत्रु वीतहव्य के पुत्रों ने युद्ध में इन्हें परास्त किया था। इसपर ये भारद्वाज मुनि के आश्रम में चले गए। वहाँ मुनि ने इनके लिये एक यज्ञ किया जिसके प्रभाव से इनके प्रतर्दन नामक एक वीर पुत्र हुआ जिसने वीतहव्य के पुत्रों को युद्ध में मार डाला। सुदास नामक इनका एक पुत्र और था। महादेव ने इन्हीं से काशी ली थी। काशीखंड के अनुसार पहले इनका नाम रिपुंजय था। इन्होंने काशी में बहुत तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें पृथ्वीपालन करने का वर दिया। नागराज ने अपनी अनंगमोहिनी नाम की कन्या इन्हें दी थी। देवताओं ने इन्हें आकाश से पुष्प और रत्न आदि दिए थे, इसी से इनका नाम दिवोदास हो गया।

२. हरिवंश के अनुसार ब्रह्मर्षि इंद्रसेन के पौत्र और वध्रश्व के पुत्र का नाम जो मेनका के गर्भ से अपनी बहन अहल्या के साथ ही उत्पन्न हुए थे। इनके पुत्र मित्रेयु भी महर्षि थे।

दिवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

दिवोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन के समय आकाश से गिरनेवाला चमकीला पिंड या उल्का।

दिवौका—संज्ञा पुं० [सं० दिवौकस्] १. वह जो स्वर्ग में रहता हो। २. देवता। ३. चातक पक्षी। ३. मृग। हिरन (को०)। ४. हस्ती। हाथी (को०)। ५. मधुमक्खी (को०)।

दिव्य¹—वि० [सं०] १. स्वर्ग से संबंध रखनेवाला। स्वर्गीय। २. आकाश से संबंध रखनेवाला। अलौकिक। ३. प्रकाशमान। चमकीला। ४. बहुत बढ़िया या अच्छा। जो देखने में बहुत ही सुंदर या भला मालूम हो। खूब साफ या सुंदर। जैसे,—(क) उन्होंने एक बहुत दिव्य भवन बनवाया था। (ख) आज हमने बहुत दिव्य भोजन किया है। ४. लोक से परे। लोकातीत (को०)।

दिव्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १. यव। जौ। २. गुग्गुल। ३. आँवला। ४. शतावार। ५. ब्राह्मी। ६. सफेद दूब। ७. हड़। ८. लौंग। ९. सूअर। १०. तत्ववेत्ता। ११. हरिचंदन। १२. अष्टवर्ग के अंतर्गत महामेदा नाम की ओषधि। १३. कपूरकचरी। १४. चमेली। १५. जीरा। १६ धूप में बरसते हुए पानी से स्नान। १७. तीन प्रकार के केतुओं में से एक। वे केतु जिनकी स्थिति भूवायु से ऊपर है। १८. तांत्रिकों के आचार के तीन भावों में से एक जिससे पंच मकार, श्मशान और चिता का साधन विधेय है। १९. आकाश में होनेवाला एक प्रकार का उत्पात। २०. तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो। जैसे, इंद्र, राम, कृष्ण आदि।

विशेष—साहित्य ग्रंथों में तीन प्रकार के नायक माने गए हैं दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य। दिव्य नायक स्वर्गीय या अलौकिक होते हैं, जैसे, देवता आदि और अदिव्य नायक सांसारिक या लौकिक, जैसे, मनुष्य। दिव्यादिव्य नायक वे होते हैं जो होते तो मनुष्य हैं पर जिनमें गुण देवताओं के होते हैं। जैसे, नल, पुरुरवा, अर्जुन आदि। इसी प्रकार तीन प्रकार की नायिकाएँ भी होती हैं।

२१. व्यवहार या न्यायालय में प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी मनुष्य का अपराधी या निरपराध होना सिद्ध होता था।

क्रि० प्र०—देना। उ०—सौंप सभा साबर लबार भए देउँ दिव्य दुसह साँसति कीजै आगे ही या तन की।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—ये परीक्षाएँ नौ प्रकार की हैं—घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तंडुल, तप्तमाषक, फूल और धर्मज। इनमें तुला या घट, अग्नि, जल, विष और कोष ये पाँच परीक्षाएँ भारी अपराधों के लिये; तंडुल चोरी के लिये, तप्तमाषक बड़ी भारी चोरी के लिये और फूल तथा धर्मज साधारण अपराधों के लिये है। स्मृतियों आदि में यह भी लिखा है कि ब्राह्मण की तुला से, क्षत्रिय की अग्नि से, वैश्य की जल से और शूद्र की विष से परीक्षा लेनी चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और आतुर की परीक्षा भी घट या तुला विधि से ही होनी चाहिए। स्त्रियों की विषपरीक्षा और शिशिर तथा हेमंत में रोगियों की जलपरीक्षा, कोढ़ियों की अग्निपरीक्षा और शराबियों, लंपटों जुआरियों, धूर्तों और नास्तिकों की कोषपरीक्षा कदापि न होनी चाहिए। शीतकाल में जलपरीक्षा, ग्रीष्म में अग्निपरीक्षा वर्षा में विषपरीक्षा और प्रातःकाल के समय तुलापरीक्षा नहीं होनी चाहिए। धर्मज और तंडुलपरीक्षा सब ऋतुओं में और अग्निपरीक्षा वर्षा, हेमंत और शिशिर में तथा जलपरीक्षा ग्रीष्म में होनी चाहिए। अग्नि, घट और कोषपरीक्षा सबेरे, जलपरीक्षा दोपहर को और विषपरीक्षा रात को होनी चाहिए। बृहस्पति जिस समय सिंहस्थ या मकरस्थ हो अथवा भृगु अस्त हों, उस समय कोई दिव्य या परीक्षा न होनी चाहिए। मलमास में और अष्टमी तथा चतुर्दशी को भी परीक्षा नहीं होनी चाहिए। परीक्षा के दिन से एक दिन पहले परीक्षा देने और लेनेवाले दोनों को उपवास करना चाहिए और कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार राजसभा में सब लोगों के सामने दिव्य या परीक्षा होनी चाहिए। किसी किसी के मत से 'तुलसी' नामक एक और प्रकार का दिव्य भी है, पर इसके विषय में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुलापरीक्षा में शोध्य या अभियुक्त को बड़े तराजू पर दो बार अदल बदल कर तौलते थे। दूसरी बार की तौल में यदि वह बढ़ जाता तो शुद्ध और बराबर उतरता या घट जाता तो दोषी समझा जाता था। अग्निपरीक्षा में तपाए हुए लोहे को अंजली में लेकर सात मंडलों के अंदर धीरे धीरे चलना पड़ता था। यदि हाथ न जलता तो अभियुक्त निर्दोष समझा जाता था। जलपरीक्षा में अभियुक्त को जल में गोता लगाना पड़ता था। गोता लगाने के समय तीन बाण छोड़े जाते थे। तीसरा बाण ठीक उसी समय छूटता था जब अभियुक्त जल में डूबता था। बाण छूटते ही एक आदमी वेग से उस स्थान पर दौड़ जाता था जहाँ बाण गिरता और एक दूसरा आदमी उस बाण को लेकर तुरंत उस स्थान पर दौड़कर आता था जहाँ से बाण छूटा था। यदि इसके वहाँ पहुँचने तक अभियुक्त जल ही में रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विषपरीक्षा में विशेष मात्रा में विष खिलाया जाता था। यदि विष पच जाता तो अभियुक्त निर्दोष माना जाता था। कोषपरीक्षा में किसी देवता के स्नान का तीन अंजलि जल पिलाया जाता था। यदि १४ दिन के भीतर उक्त देवता के कोप से अभियुक्त को कोई घोर दुःख न होता तो वह निर्दोष या सच्चा माना जाता था। इसी प्रकार की और भी परीक्षाएँ थीं।

२२. शपथ, विशेषतः देवताओं आदि की शपथ। सौगंध। कसम।

क्रि० प्र० -देना।

२३. यम का एक नाम (को०)।

दिव्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप। २. एक प्रकार का जंतु।

दिव्यकट—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक देश जो पश्चिम दिशा में था।

दिव्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] १. अलौकिक तनत्राण; देवताओं का दिया हुआ कवच। २. वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से अंगरक्षा हो। जैसे, रामरक्षा, नारायणकवच, देवीकवच।

दिव्यकुंड—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यकुण्ड] कालिका पुराण के अनुसार कामरूप के दक्षिण क्षोभक पर्वत पर स्थित कुंडविशेष (को०)।

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य के द्वारा परीक्षा लेने की क्रिया।

विशेष—दे० 'दिव्य-२१'।

दिव्यगंध—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यगन्ध] १. लौंग। २. गंधक।

दिव्यगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यगन्धा] बड़ी इलायची। २. बड़ी चेंच का साग।

दिव्यगायन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में गानेवाले, गंधर्व।

दिव्यचक्षु¹—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यचक्षुस्] १. ज्ञान रूपी नेत्र। ज्ञानचक्षु। दिव्यदृष्टि। २. अंधा। वह जिसे कुछ भी दिखाई न दे। ३. चश्मा। ऐनक। ४. बंदर। ५. एक प्रकार का गंधद्रव्य। ६. अर्जुन (को०)। ७. ज्योतिषी (को०)।

दिव्यचक्षु²—वि० दिव्य या सुंदर नेत्रोंवाला।

दिव्यतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतरङ्गिणी] कर्नाटकी शैली की एक रागिनी (संगीत)।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दिव्य का भाव। २. देवभाव। ३. सुंदरता। उत्तमता।

दिव्यतेजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतेजस्] ब्राह्मी बूटी।

दिव्यदर्शी—वि० [सं० दिव्यदर्शिन्] १. अलौकिक पदार्थों को देखनेवाला। २. ज्योतिष का ज्ञाता (को०)।

दिव्यदृक्—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यदृश्] ज्योतिषी (को०)।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अलौकिक दृष्टि जिसमें गुप्त, परोक्ष अथवा अंतर्हित पदार्थ दिखाई दें। जैसे,—आपने यहीं बैठे बैठे दिव्यदृष्टि से देख लिया कि बारात वहाँ पहुँच गई। (व्यंग्य)। २. ज्ञानदृष्टि।

दिव्यदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

दिव्यदोहद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी मनोरथ की सिद्धि के अभिप्राय से किसी देवता को अर्पित किया जाय।

दिव्यधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० दिव्यधर्मिन्] वह जिसका स्वभाव बहुत अच्छा हो।

दिव्यनगर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावती नगरी।

दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाशगंगा। २. शिवपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा। देववधू।

दिव्यपंचामृत—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य पञ्चामृत] गाय के घी, दूध, दही, मक्खन या मधु और चीनी इन पाँच चीजों को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत।

दिव्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] करवीर। कनेर।

दिव्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा गूमा जिसका पेड़ मनुष्य के बराबर ऊँचा और फूल लाल होता है। बड़ी द्रोणपुष्पी।

दिव्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग का मदार।

दिव्ययमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामरूप देश की एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है और जिसका माहात्म्य पुराणों में है।

दिव्यरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] चिंतामणि नामक कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह सब कामनाएँ पूरी करता है।

दिव्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का विमान।

दिव्यरस—संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

दिव्यलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मूरहरी। चुरनहार।

दिव्यवस्त्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का प्रकाश।

दिव्यवस्त्र[2]—वि० सुंदर और उत्कृष्ट कपड़े पहने हुए। उत्कृष्ट वस्त्र धारण करनेवाला।

दिव्यवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] देववाणी। आकाशवाणी।

दिव्यवाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषभानु गोप की छह कन्याओं में से एक।

दिव्यश्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कान जिससे सब कुछ सुना जाय।

दिव्यसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी। आकाशगंगा [को०]।

दिव्यसरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यसरित्] आकाशगंगा।

दिव्यसानु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वदेव।

दिव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष। साखू का पेड़।

दिव्यसूरि—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय के बारह आचार्य जिनके नाम ये हैं—(१) कासार, (२) भूत, (३) महत् (४) भक्तिसार, (५) शठारि, (६) कुलशेखर, (७) विष्णुचित्त, (८) भक्तांघ्रिरेणु, (९) मुनिवाह, (१०) चतुष्कविंद्र, (११) रामानुज, (१२) गोदादेवी या मधुकर कवि।—रघुराज (शब्द०)।

दिव्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यांगना। अप्सरा।

दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्याङ्गना] देववधू। अप्सरा।

दिव्यांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँवला। २. बाँझ ककोड़ा। ३. महामेदा। ४. ब्राह्मी जड़ी। ५. बड़ा जीरा। ६. सफेद दूब। ७. हड़। ८. कपूर कचरी। ९. शतावर। १०. तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। देवलोकीय नायिका। देवांगना। स्वर्गीय या अलौकिक नायिका। जैसे, पार्वती, सीता, राधिका आदि। दे० 'दिव्य' (नायक)।

दिव्यादिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह मनुष्य या इहलौकिक नायक जिसमें देवताओं के भी गुण हों। जैसे, नल, पुरुरवा, अभिमन्यु आदि।

विशेष—दे० 'दिव्य' (नायक)।

दिव्यादिव्या—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह इहलौकिक नायिका जिसमें स्वर्गीय स्त्रियों के भी गुण हों। जैसे, दमयंती, उर्वशी, उत्तरा आदि।

दिव्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पुण्यक्षेत्र जहाँ पूर्व काल में भगवान् विष्णु ने तपस्या की थी। कुरुक्षेत्र का वर्णन करके बलदेव जी यहीं से होते हुए हिमालय गए थे।

दिव्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन।

दिव्यास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का दिया हुआ हथियार। २. मंत्रों द्वारा चलनेवाला हथियार।

दिव्येलक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

दिव्योदक—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का पानी। बरसा हुआ पानी।

दिव्योपपादुक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना माता पिता के उत्पन्न देवता।

दिव्यौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिव्यौषधि'।

दिव्यौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

दिश्[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा। दिक्।

दिश्[2]—संज्ञा पुं० एक देवता जो कान के अधिष्ठाता माने जाते हैं।

दिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार। ओर। तरफ। जैसे,—जिस दिशा में घोड़ा भागा था उसी दिशा में वह भी चला। २. क्षितिजवृत्त के किए हुए चार कल्पित विभागों में से किसी एक विभाग की ओर का विस्तार।

विशेष—दिशा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्षितिज वृत्त चार भागों में बाँटा गया है, जिनको पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं। प्रत्येक दिशाओं के बीच में एक कोण भी होता है। पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को अग्निकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोण को नैऋत्य, पश्चिम और उत्तर के बीच के कोण को
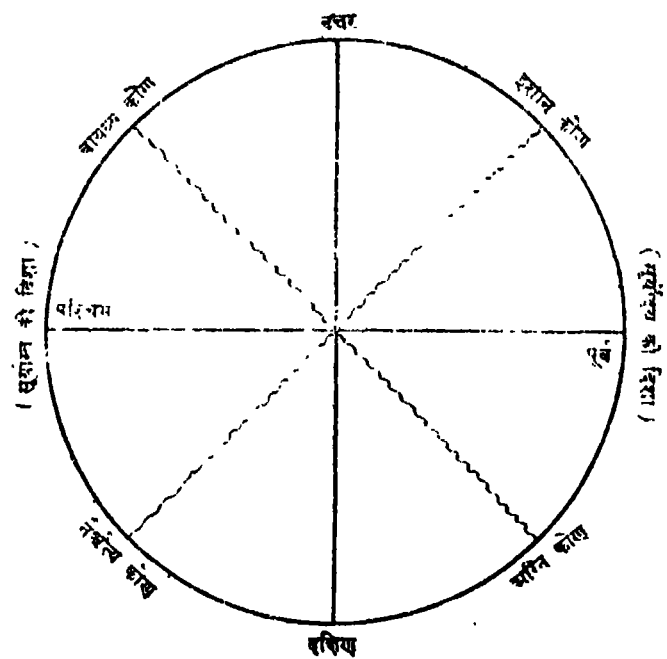
वायव्य कोण और उत्तर तथा पूर्व के बीच के कोण को ईशान कोण कहते हैं। जिस ओर सूर्य उदय होता है उस ओर मुँह करके यदि खड़े हों तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर होता है। इसके अतिरिक्त दो दिशाएँ और भी मानी जाती हैं—एक सिर के ठीक ऊपर की ओर और दूसरी पैर के ठीक नीचे की ओर जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व और अधः कहते हैं। वैशेषिक का मत है कि वास्तव में दिशा एक ही है, काम चलाने के लिये इसके भेद कर लिए गए हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग इसके गुण हैं।

पर्या०—ककुभ। काष्ठा। आशा। हरित्। निवेशिनी। गो। दिश्। दिक्।

३. दस की संख्या। ४. रुद्र की एक स्त्री का नाम। ५. दे० 'दिसा'।

दिशाकाश—संज्ञा पुं० [सं० दिश्+आकाश] दिशाएँ और आकाश। उ०—लोटो लेकर रचना उदास, ताकता हुआ मैं दिशाकाश।—अपरा, पृ० १७३।

दिशागज—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

दिशाचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० दिशाचक्षुस्] पुराणानुसार गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

दिशाजय—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्विजय।

दिशापाल—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल।

दिशाभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दिशाओं के संबंध में भ्रम होना। दिग्भ्रम।

दिशावकाश—संज्ञा पुं० [सं० दिशा+अवकाश] दो दिशाओं के बीच का अंतराल (को०)।

दिशावकाशकव्रत—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों का एक प्रकार का व्रत जिसमें वे प्रातःकाल यह निश्चय कर लेते हैं कि आज हम अमुक दिशा में इतनी दूर तक जायँगे।

दिशावधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा की सीमा। क्षितिज। उ०—दिशावधि में पल विविध प्रकार, अतल में मिलते तुम अविकार।—पल्लव, पृ० १२६।

दिशाशूल—संज्ञा पुं० [सं० दिशा+शूल] दे० 'दिक्शूल'।

दिशासूल—संज्ञा पुं० [सं० दिशा+शूल] दे० 'दिक्शूल'।

दिशि—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश्] दे० 'दिशा'।

दिशिनियम—संज्ञा पुं० [सं० दिशि+नियम] दे० 'दिशावकाशक व्रत'।

दिशेभ—संज्ञा पुं० [सं० दिशा+इभ] दिग्गज।

दिश्य—वि० [सं०] दिशा संबंधी। दिशाविशेष संबंधी उ०—कहलाकर दिश्य संपदा, हम चारों सुख से पली सदा।—साकेत, पृ० ३२७।

दिष्ट[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग्य। २. उपदेश। ३. दारुहरिद्रा। दारुहलदी। ४. काल। ५. वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

दिष्ट[२]—वि० १. नियत। उद्दिष्ट। निश्चित। २. कथित। प्रतिपादित। ३. आदिष्ट। आदेशप्राप्त।

दिष्ट(पु)[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—सुव दिष्ट कुटिल कराल, म्हाँ परिग सोक बिसाल।—प० रासो, पृ० ११।

दिष्टबंधक—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टि+बन्धक] किसी पदार्थ को बंधक या रेहन रखने का एक प्रकार जिसमें रुपए का केवल सूद दिया जाता है, रेहन रखे हुए पदार्थ की आय या भोग आदि से रुपए देनेवाले का कोई संबंध नहीं रहता। वह रेहन जिसमें चीज पर रुपए देनेवाले का कोई कब्जा न हो, उसे सिर्फ सूद मिलता रहे।

दिष्टवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिमत्] दृष्टि। देखने का ढंग। उ०—दिष्टवान मैं ताकर चीन्हा। आद मनुष्य सो जइ छल कीन्हा।—इंद्रा० पृ० १२५।

दिष्टांत—संज्ञा पुं० [सं० दिष्टान्त] मृत्यु। मौत।

दिष्टि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाग्य। २. उपदेश। ३. उत्सव। ४. प्रसन्नता। ५. लंबाई की एक माप (को०)। ६. आदेश। निर्देश (को०)।

दिष्टि(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'।

दिष्णु—वि० [सं०] दाता। देनेवाला (को०)।

दिसंतर(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] देशांतर। विदेश। परदेस। उ०—(क) बैल उलटि नाइक कौं लाद्यो वस्तु माँहि भरि गौनि अपार। भली भाँति को सौदा कीयो आइ दिसंतर या संसार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५५२। (ख) स्वाँगी सब संसार है, साधू कोई एक। हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक।—संतवाणी०, पृ० ८८।

दिसंतर—क्रि० वि० दिशाओं के अंत तक। बहुत दूर तक।

दिसंबर—संज्ञा पुं० [अं० डिसेंबर] अंग्रेजी साल का बारहवाँ या अंतिम महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

दिस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश् या दिशा] दे० 'दिशा'।

दिस[२]—संज्ञा पुं० [सं० दिवस] दिन। दिवस। उ०—यहं अगिन निस दिस जरे, गुरु से चाहे मान। ताको जम नेवता दियो, होउ हमार मेहमान।—कबीर सा० सं०, पृ० ४।

दिसना(पु)—क्रि० अ० [सं० दर्शन; प्रा० दंसण, दस्सण, दिस्सण] दे० 'दिखना'। उ०—हुमा क्या वो कहू खोल हालों मुंजे, के दिसता है पिंजरा सा खाली मुंजे।

दिसा[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा] दे० 'दिशा'।

दिसा[२]†—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा (=ओर)] मलत्याग करने की क्रिया। पैखाने जाना। झाड़ा फिरना।

क्रि० प्र०—जाना।—फिरना।—लगना।—होना।

यौ०—दिशा फरागत।

दिसा[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दिसाउर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देश+अपर; प्रा० देसावर, अप० दिसाउर] दे० 'दिसावर'। उ०—हिरणाखी हसिनइ कहइ, करउ दिसाउर एक।—ढोला०, दू० २२१।

दिसादाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिशा+दाह] दे० 'दिक्दाह'।

दिसावल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

दिसावर—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] दूसरा देश । देशांतर । परदेश । विदेश । उ०—दाता तरवर दया फल उपगारी जीवंत । पंछी चले दिसावरी बिरषा सुफल फलंत ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७७ ।

मुहा०—दिसावर उतरना = जिस स्थान से माल आता हो अथवा जहाँ जाता हो वहाँ का भाव गिरना । विदेश में भाव गिरना । दिसावर चढ़ना = विदेश में बाजार का भाव चढ़ जाना । परदेस में दाम बढ़ जाना ।

दिसावरी—वि० [हिं० दिसावर + ई (प्रत्य०)] विदेश से आया हुआ । बाहर का । बाहरी (माल आदि) ।

दिसाशूल—संज्ञा पुं० [हिं० दिसा + सं० शूल] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसासूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा] दे० 'दिशा' । उ०—देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।—मानस, १ । १८५ ।

यौ०—दिसिबिदिसि ।

दिसिटि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' ।

दिसित्राता—संज्ञा पुं० [हिं० दिसि + सं० त्राता] दिग्पाल । उ०—लोक लोकप्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता ।—मानस, ७ । ८१ ।

दिसिदुरद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दिशाद्विरद] दिग्गज ।

दिसिनायक(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० दिसि + नायक] दे० 'दिक्पाल' । उ०—चौंकि बिरंचि बिरंचि दिसिनायक रहे मूँदि कर कान ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१६ ।

दिसिप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दिसि + सं० प (= रक्षक)] दे० 'दिक्पाल' । उ०—कर जोरे सुर दिसिप बिनीता । भृकुटि बिलोकत सकल सभीता ।—मानस, ५।२० ।

दिसिपति, दिसिपाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दिक्पाल' । उ०—(क) जोय हूँ हूह दिसिपति दिनराऊ ।—मानस, १।३२१ । (ख) असुर नाग किंनर दिसिपाला ।—मानस, २।१३४ ।

दिसिराज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दिक्पाल' । उ०—बिष्णु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज ।—मानस १।६८ ।

दिसैया(पु)†—वि० [हिं० दिसना (= दिखना) + ऐया (प्रत्य०)] १. देखनेवाला । २. दिखलानेवाला ।

दिस्टि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—जहाँ जो ठाँव दिस्टि महँ आवा । दरपन भाव दरस देखरावा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिस्टिबंध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्धन] इंद्रजाल । जादू । उ०—राघव दिस्टिबंध कल्हि खेला । सभा माँझ चेटक अस मेला ।—जायसी (शब्द०) ।

दिस्टिवंत(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिवत्] दे० 'दीठवंत' ।

दिस्ता—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दस्ता' ।

दिस्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा] ओर । तरफ (लश०) ।

दिहंद—वि० [फ़ा०] दे० 'दिहंदा' ।

दिहंदा—वि० [फ़ा०] दाता । देनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में के अंत में होता है । जैसे, गार्तदिहंदा ।

दिहकानियत—संज्ञा स्त्री० [फा० देहकानियत] देहातीपन । गँवारपन (को०) ।

दिहरा†—संज्ञा पुं० [सं० देव + गृह(= हर) (= देवहर)] देवालय । देवमंदिर ।

दिहली—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'दहलीज' । उ०—नाल ओखल पीसो गाढो, दिहली को तब बालक काढो ।—कबीर सा०, पृ० ५३८ ।

दिहाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दिन + हार (प्रत्य०)] १. दुर्गत । बुरी हालत । २. दिन । उ०—रहि दिहाड़े तलब तुसाडी मक्कल इलम उड़ांदा है ।—घनानंद, पृ० १७७ ।

दिहाड़ी†—संज्ञा पुं० [हिं० दिहरा] दे० 'दिहरा' । उ०—पूजै देव दिहाड़ियाँ महा माई मानें । परगट देव निरंजना, ताकी सेव न जानें ।—दादू०, पृ० ५५८ ।

दिहाड़ी[२]—संज्ञा स्त्री० [पंजाबी, हिं० दिहाड़ा + ई (प्रत्य०)] १. दिन । २. दिन भर की मजदूरी ।

दिहात†—संज्ञा स्त्री० [हिं० देहात] दे० 'देहात' ।

दिहाती—वि० [हिं० दिहात + ई] 'देहाती' ।

दिहातीपन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'देहातीपन' ।

दिहुड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'ड्योढ़ी' ।

दिहुला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो पूरब के जिलों में बोया जाता है ।

दिहेज†—संज्ञा पुं० [हिं० दहेज] दे० 'दहेज' ।

दीँ[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दीमक' ।

दीँ(पु)[२]—संज्ञा पुं० [अ० दीन] दे० 'दीन' । उ०—दुश्मन है दीं का खाल सिंह मुख ऊपर तेरे । हिंदू से क्या अजब है अगर काफरी करे ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २४ ।

दीअट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीयट] दे० 'दीयट' ।

दीआ—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीया' ।

दीक—संज्ञा पुं० [देश०] जाल में माँजा देने का एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह तेल काट्टू या हिंगली के पेड़ की छाल से निकलता है और जाल में माँजा देने के काम में आता है । काट्टू के पेड़ दक्षिण में समुद्र के किनारे मिलते हैं ।

दीकरा—संज्ञा पुं० [देश० स्त्री० दीकरी] संतति । बेटा । वत्स । पुत्र । उ०—सहू देईरा दीकरा लीला लाड़े लोक । दई हूँत खाना दिवस, न काटै विण सोक ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २६ ।

दीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा देनेवाला । मंत्र का उपदेश करनेवाला । शिक्षक । गुरु ।

दीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीक्षित] १. दीक्षा देने की क्रिया । २. दे० 'दीक्षांत' । ३. यज्ञोपवीत । उपनयन (को०) ।

दीक्षांत—संज्ञा पुं० [सं० दीक्षान्त] १. वह अवभृत यज्ञ जो किसी यज्ञ के समापनांत में उसकी त्रुटि आदि के दोष की शांति के लिये किया जाता है। २. विश्वविद्यालयों में परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों को उपाधि या प्रमाणपत्र प्रदान करने का अवसर। ३. किसी गुरुकुल या विद्यालय में अध्ययन क्रम की समाप्ति।

यौ०—दीक्षांत भाषण। दीक्षांतोपदेश = उत्तीर्ण स्नातकों को प्रमाणपत्र देने के अनंतर किसी विशिष्ट विद्वान् या कुलपति द्वारा उन स्नातकों को संबोधित कर दिया जानेवाला उपदेश।

दीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यजन। यज्ञकर्म। सोमयागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान। २. गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। मंत्र की शिक्षा जिसे गुरु दे और शिष्य ग्रहण करे।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—वैदिक गायत्री मंत्र के अतिरिक्त आज कल भिन्न भिन्न देवताओं के बहुत से सांप्रदायिक मंत्र तंत्रोक्त रीति के अनुसार प्रचलित हैं। गौतमीय तंत्र, योगिनी तंत्र, रुद्रयामल इत्यादि तंत्र ग्रंथों में दीक्षाग्रहण का माहात्म्य तथा उसके अनेक प्रकार के नियम दिए हुए हैं। विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य इत्यादि की उपासना के भेद से वैष्णव, रामतारक, शैव, शाक्त इत्यादि मंत्र प्रचलित हैं, जो शिष्य के कान में कहे जाते हैं। लोगों का साधारण विश्वास है कि बिना गुरुमंत्र लिए गति नहीं होती। तंत्रों के अनुसार जिन मंत्रों के अंत में 'हुं फट्' हो वे पुं० मंत्र, जिनके अंत में 'स्वाहा' हो वे स्त्री मंत्र और जिनके अंत में 'नमः' हो वे नपुंसक मंत्र कहलाते हैं। योगिनी तंत्र में लिखा है कि पिता, मामा, छोटे भाई और शत्रुपक्षवाले से मंत्र न लेना चाहिए। रुद्रयामल तंत्र पति से मंत्र लेने का भी निषेध करता है, पर उससे सिद्ध मंत्र लेने की आज्ञा देता है। शूद्र को प्रणव या प्रणवघटित मंत्र देने का निषेध है। शूद्र को गोपाल महेश्वर, दुर्गा, सूर्य और गणेश का मंत्र देना चाहिए।

३. उपनयन संस्कार जिसमें आचार्य गायत्री मंत्र का उपदेश देता है। ४. वह मंत्र जिसका उपदेश गुरु करे। गुरुमंत्र। ५. पूजन।

दीक्षागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रोपदेष्टा गुरु।

दीक्षापति—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा या यज्ञ का रक्षक, सोम।

दीक्षित¹—वि० [सं०] १. जिसने सोमयागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। जो किसी यज्ञ में प्रवृत्त हो। २. जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। जिसने दीक्षा ग्रहण की हो।

दीक्षित²—संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद।

दीखना—क्रि० अ० [हिं० देखना] दिखाई देना। देखने में आना। दृग्गोचर होना। जैसे, उसे दूर की चीज नहीं दीखती।

संयो० क्रि०—पड़ना।—पाना। उ०—पुनि जल दीख रूप निज पावा।—मानस, १।१३६।

दीखिआ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'। उ०—कवन गुरु जिसु दीखिआ दीनि। भरथरि प्रणवै रसु प्रवीन।—प्राण०, पृ० १००।

दीगर—वि० [फ़ा०] दूसरा। अन्य।

दीघ—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दिग्घ] बड़ा। विशाल। लंबा।

दीघी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका] बावली। पोखरा तालाब। जैसे, लालदीघी।

दीच्छा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] १. देखने की वृत्ति या शक्ति। आँख की ज्योति। दृष्टि। उ०—पिय की आरति देखि मेरे जिय दया होत पै तेरी दीठ देखि देखि डरत।—नंद०, ग्रं०, पृ० ३६५।

मुहा०—दीठ मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

२. देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। आँख की पुतली की किसी वस्तु की सीध में होने की स्थिति। टक। दृक्पात। अवलोकन। चितवन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—पड़ना।—डालना।

यौ०—दीठबंद। दीठवंती।

मुहा०—दीठ करना = दृष्टि डालना। ताकना। दीठ चूकना = नजर न पड़ना। दृष्टि का इधर उधर हो जाना। दीठ फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दीठ फिरना = क्रुद्ध होना। वक्रदृष्टि होना। उ०—हो गए फेर में पड़े बरसों। आप की दीठ आज भी न फिरी।—चुभते० पृ० २। दीठ फेरना = नजर डालना। ताकना। दीठ फेरना = (१) नजर हटा लेना। दूसरी ओर ताकना। उ०—जिधर दीठ दे दीठ फेरती, उधर मैं तुम्हें ढूँढ़ती।—साकेत पृ० ३१३। (२) कृपादृष्टि न रखना। अप्रसन्न या खिन्न होना। किसी की दीठ बचाना = (१) (किसी के) सामने होने से बचना। आँख के सामने न आना। जान बूझकर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। उ०—मोहन आपनी राधिका को विपरीत को चित्र विचित्र बनाय कै। दीठ बचाय सलोनी की आरसी में चिपकाइ गयो बहराइ कै।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। दीठ बाँधना = इस प्रकार जादू करना कि आँखों को और का और दिखाई दे। इंद्रजाल फैलाना। दीठ लगाना = ताकना। दृष्टि करना। उ०—नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी।—तुलसी (शब्द०)।

३. आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के रूप रंग का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दीठ पर चढ़ना = (१) देखने में श्रेष्ठ या उत्तम जान पड़ना। निगाह में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। भाना। (२) आँखों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। दीठ बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। (२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम से स्वागत करना। दीठ में आना = दिखाई पड़ना। दीठ में पड़ना = दिखाई पड़ना। दीठ में समाना = अच्छा या प्रिय लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना।

दीठ से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना। (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना।

४. अच्छी वस्तु पर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव बुरा पड़े। नजर। उ०—दूनो ह्वै लागी लगन दिए दिठौना दीठ।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—दीठ उतारना या झाड़ना = मंत्र के द्वारा बुरी दृष्टि का प्रभाव दूर करना। दीठ खा जाना = किसी की बुरी दृष्टि के सामने पड़ जाना। टोक में आना। हूँस में आना। (बच्चों के संबंध में अधिक बोलते हैं)। (किसी की) दीठ चढ़ना, दीठ पर चढ़ना = दे० 'दीठ खा जाना'। दीठ जलाना = नजर उतारने के लिये राई लोन या कपड़ा जलाना।

विशेष—जब बच्चों को नजर लगने का संदेह स्त्रियों को होता है तब वे टोटके के लिये उसके ऊपर से राई लोन घुमाकर आग में डालती हैं, अथवा जिस किसी को वे नजर लगानेवाला समझती हैं उसकी आँख की बरौनी किसी युक्ति से प्राप्त करके आग में जलाती हैं।

५. देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखने के लिये खुली हुई आँख।

मुहा०—दीठ उठाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना। दीठ गड़ाना, जमाना = दृष्टि स्थिर करना। एकटक ताकना। दीठ चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न आना। जान बूझ कर दिखाई न पड़ना। दीठ जुड़ना = आँख मिलना। साक्षात्कार होना। देखादेखी होना। दीठ जोड़ना = आँख मिलाना। साक्षात्कार करना। देखादेखी करना। दीठ फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना। आँख में चकाचौंध होना। दीठ भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देखना। जी भरकर ताकना। दीठ मारना = (१) आँख से इशारा करना। पलक गिराकर संकेत करना। (२) आँख के इशारे से रोकना। दीठ मिलना = दे० 'दीठ जुड़ना'। दीठ मिलना = दे० 'दीठ जोड़ना'। दीठ लगना = देखादेखी होने से प्रेम होना। प्रीति होना। उ०—नंददास नंदरानी छबि निरखि वारि पीवत पानी, काहू जिनि दीठ लगे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६। दीठ लड़ना = आँख के सामने आँख होना। घूराघूरी होना। दीठ लड़ाना = आँख के सामने आँख किए रहना। घूरना।

६. देख भाल। देख रेख। निगरानी।

क्रि० प्र०—रखना।

७. परख। पहचान। तमीज। अटकल। अंदाज।

क्रि० प्र०—रखना।

८. कृपादृष्टि। हित का ध्यान। मिहरबानी की नजर। उ०—बिरवा लाइ न सूखइ दीजै। पानी पानि दीठि सो कीजै।—जायसी (शब्द०)। ९. आशा की दृष्टि। आसरे में लगी हुई टकटकी। आस। उम्मीद।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

१०. ध्यान। विचार। संकल्प। उद्देश्य।

क्रि० प्र०—रखना।

दीठना—क्रि० स० [हिं० दीठ + ना (प्रत्य०)] दे० 'देखना'। उ०—काहे काठ जो खाइया खात किनहुँ नहिं दीठ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४१।

दीठबंद—संज्ञा पुं० [हिं० दीठ + सं० बन्ध] इंद्रजाल की ऐसी माया जिसमें लोगों को और का और दिखाई दे। नजरबंद। जादू।

दीठबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीठबंद] इंद्रजाल की ऐसी माया जिससे लोगों को और का और दिखाई दे। नजरबंदी। जादू।

दीठवंत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दीठ + वंत (प्रत्य०)] १. वह जिसे दिखाई देता हो। सुझाखा। २. ज्ञानी।

दीठि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] दे० 'दृष्टि'। उ०—जखने दुहुक दीठि बिछुड़लि दुहु मने दुख लागु।—विद्यापति, पृ० ३७।

दीठिवंत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दीठवंत] दे० 'दीठवंत'। उ०—ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूर। दीठिवंत कहँ नीयरे अंध मूरखहि दूर।—जायसी (शब्द०)।

दीठिमेरावा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टि + मिलन] देखादेखी। एक दूसरे को देखना। परस्पर दर्शन। उ०—होइहि एहिं बिधि दीठिमेरावा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६९।

दीठी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि। नेत्र। उ०—मिलन मार मुसकान बचन मृदु बोली मीठी। पुलकित सीतल गात, सुभट रतनारी दीठी।—पलटू०, भा० १, पृ० १२।

दीत(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य, पुं०हिं० आदीत] सूर्य। (डिं०)।

दीतवार—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] इतवार। रविवार। उ०—माघ सुकल द्वितिया सु तिथि, दीतवार मन हर्ष।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५०।

दीद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दर्शन। दीदार। उ०—दीद बरदीद परतीत आवै नहीं, दूरि की आस विश्वास भारी।—कबीर० रे०, पृ० ५।

यौ०—दीद ए तर = अश्रुपूर्ण नेत्र। आर्द्र आँखें। दीद बरदीद = देखादेखी। आमने सामने। उ०—दीद बरदीद हम नजरों देखा अजया अमर निसानी।—कबीर श०, पृ० ६२। दीदबान = (१) देखभाल करनेवाला व्यक्ति। (२) निगरानी करने के लिये बना ऊँचा स्थान। दीदबानी = निगरानी। देखभाल। उ०—करे घर की सब दीदबानी वही, देवे नेको बद की निशानी वही।—दक्खिनी०, पृ० ८९।

दीदनी(पु)—वि० [फ़ा०] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—जो गुम और गुमोद है और दीदनी और दीद है।—कबीर ग्रं०, पृ० ३७१।

दीदा[1]—संज्ञा स्त्री [फ़ा०] १. दृष्टि। निगाह। नजर। २. दर्शन। अवलोकन। देखादेखी।

दीदा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीदह्] १. आँख। नेत्र। उ०—अँखियाँ के नहर सूँ दीदे का पानी, कर ऐसे बागे गम की बागबानी।—दक्खिनी०, पृ० २३७।

मुहा०—दीदा लगना = जी लगना। ध्यान जमना। चित्त रमना। जैसे,—(क) यहाँ इसका दीदा क्यों लगेगा? (ख) काम में

उसका दीदा नहीं लगता। दीदे का पानी ढल जाना=बुरे काम के करने में लज्जा न रह जाना। निर्लज्ज हो जाना। दीदे का पानी मरना=निर्लज्ज या बेहया हो जाना। उ०—नजीर के दीदे का तो पानी मर गया है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३३६। दीदे निकलना=क्रोध की दृष्टि से देखना। आँखें नीली पीली करना। दीदाधोई=स्त्री जिसकी आँखों में शर्म न हो। बेशर्म। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदे पटम होना=आँखों का फूट जाना। (स्त्रि०)। दीदाफटी=स्त्री जिसकी आँखों में शर्म न हो। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदा फूटना=आँखें फूटना। आँखें अंधी होना। दीदे फाड़कर देखना=अच्छी तरह आँख खोलकर देखना। ध्यानपूर्वक देखना। टकटकी बाँधकर देखना। दीदे मटकाना=हाव भाव सहित आँखों की पुतली चमकाना। आँखे चमकाना।

२. ढिठाई। संकोच का अभाव। अनुचित साहस। जैसे,—उसका इतना बड़ा दीदा कि वह मर्दों के सामने बात करे—(स्त्रि०)।

दीदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. सौंदर्य। छवि। २. दर्शन। देखा देखी। साक्षात्कार। उ०—आरजूए चश्मए कौसर नहीं। तिश्नालब हूँ शरबते दीदार का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

यौ०—दीदारपरस्त=(१) सौंदर्य देखनेवाला। सूरत और शृंगारप्रेमी। (२) दर्शनाभिलाषी। दीदारबाजी=ताक झाँक। आँखें लड़ाना।

दीदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीदार] देखना। दर्शन करना। उ०—नाहक दीदारी है सारी गर न इश्क का तीर लगा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

दीदारू†—वि० [फ़ा० दीदारू] दर्शनीय। देखने योग्य।

दीदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादा (=बड़ा भाई)] बड़ी बहिन को पुकारने का शब्द। ज्येष्ठ भगिनी के लिये संबोधन शब्द।

दीधना†—क्रि० स० [सं०] देना। प्रदान करना स०—पूजो विनायक चाल्यो छइ जान। चौरास्या सहू दीधउ छइ पान।—बी० रासो०, पृ० ११।

दीधिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य, चंद्रमा आदि की किरण। २. उँगली।

दीन[१]—वि० [सं०] १. दरिद्र। गरीब। जिसकी दशा हीन हो। उ०—दानी हो सब जगत में तुम एकै मंदार। दारुन दुख दुखियान के अभिमत फल दातार। अभिमत फल दातार देवगन सेवैं हित सों। सकल संपदा सोह छोह किन राखत चित सों। बरनै दीनदयाल छाँह तव सुखद बखानी। तोहिं सेइ जो दीन रहै तो तू कस दानी?—दीनदयाल (शब्द०)। २. दुःखित। संतप्त। कातर। उ०—आश्रम देख जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दीनदयाल। दीनबंधु। दीनानाथ।

३. उदास। खिन्न। जिसमें किसी प्रकार का उत्साह या प्रसन्नता न हो। जिसका मन मरा हुआ हो। उ०—(क) नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ऐसेई दीन मलीन हुतो मन मेरो भयो अब तो अति आरत।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। ४. दुःख या भय से अधीनता प्रकट करनेवाला। नम्र। विनीत। उ०—दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।—तुलसी (शब्द०)।

दीन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

दीन[३]—संज्ञा पुं० [अ०] मत। मजहब। धर्मविश्वास।

यौ०—दीन ए इलाही, दीने इलाही=सम्राट् अकबर द्वारा चलाया हुआ एक पथ जिसमें हिंदू धर्म तथा अन्य धर्मों की बातों का मिश्रण था। दीनदार। दीन दुखिया=निर्धन। निराश्र। दीन दुनिया=लोक परलोक। दीनदुनी।

दीन[४]—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दे० 'दिन'। उ०—गेल दीन पुनु पलटि न आव।—विद्यापति, पृ० ३०२।

दीनक—वि० [सं०] दुर्दशाग्रस्त। विपन्न। दुःखी [को०]।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दरिद्रता। गरीबी। २. कातरता। आर्तभाव। ३. उदासी। खिन्नता। ४. दुःख से उत्पन्न अधीनता का भाव। नम्रता। विनीत भाव।

विशेष—काव्य या रसनिरूपण में दीनता एक संचारी भाव है।

दीनताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीनता+ई (प्रत्य०)] दे० 'दीनता'।

दीनत्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता।

दीनदयाल—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दीनदयालु] दे० 'दीनदयालु'। उ०—कोमल चित्त अति दीनदयाला।—तुलसी (शब्द०)।

दीनदयालु[१]—वि० [सं०] दीनों पर दया करनेवाला।

दीनदयालु[२]—संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम।

दीनदार—वि० [अ० दीन+फ़ा० दार (प्रत्य०)] अपने धर्म पर विश्वास रखनेवाला। धार्मिक। जैसे, दीनदार मुसलमान।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दीन फ़ा० दारी (प्रत्य०)] धर्माचरण।

दीन दुनिया—संज्ञा पुं० स्त्री० [अ० दीन+फ़ा० दुन्या] धर्म और संसार। उ०—पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोइ। साहिब वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होइ।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

मुहा०—दीन दुनिया से बेखबर होना=न धर्म की परवाह करना और न समाज की। बेहोश होना। उ०—आजादपाशा तमाम रात गफ़लत के आलम में रहे, दीन दुनिया से बेखबर।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०६।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दीन+फ़ा० दुन्या] लोक परलोक।

दीनबंधु—संज्ञा पुं० [सं० दीनबन्धु] १. दुखियों का सहायक। २. ईश्वर का एक नाम।

दीनहित—वि० [सं० दीन+हित] दीनों का हित करनेवाला। उ०—मो सम दीन न, दीनहित तुम समान रघुबीर। अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भवभीर।—मानस, ७।१३०।

दीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषिका। चुहिया।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन+नाथ] १. दीनों का स्वामी या रक्षक। दुखियों का रक्षक। दुखियों का पालक और सहायक। २. ईश्वर का एक नाम।

दीनार—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्णभूषण। सोने का गहना। २. निष्क की तौल। ३. स्वर्णमुद्रा। मोहर।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरोप के बहुत से भागों में था। यह कहीं सोने का, कहीं चाँदी का होता था। देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था। 'हरिवंश' और 'महावीरचरित्' में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है। साँची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट् चंद्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है। अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है। रघुनंदन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था। अकबर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अर्थात् आधे तोले के अंदाज था।

हिंदुस्तान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था। अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था। इसके अतिरिक्त रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था। धात्वर्थ पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्यभाषा ही का प्रतीत होता है। अब प्रश्न यह होता है कि यह सिक्का भारत से फारस, अरब होते हुए रोम में गया अथवा रोम से इधर आया। यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की अधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा।

दीनारी—संज्ञा पुं० [सं० दीनार] लोहारों का ठप्पा।

दीनी—वि० [अ० दीन+फ़ा० ई (प्रत्य०)] धार्मिक। धर्म संबंधी [को०]।

दीपंकर—संज्ञा पुं० [सं० दीपङ्कर] बुद्ध के अवतारों में से एक।

दीप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीया। चिराग। जलती हुई बत्ती।

यौ०—दीपकलिका। दीपकिट्ट। दीपकूपी। दीपदान। दीपध्वज। दीपपुष्प। दीपमाला। दीपवृक्ष। दीपशिखा।

विशेष—किसी कुल या समुदाय का दीप कहने से उस कुल या समुदाय में श्रेष्ठ का अर्थ सूचित होता है; जैसे, निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लिवाई। —तुलसी (शब्द०)।

२. दस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में तीन लघु फिर एक गुरु और फिर एक लघु होता है। जैसे—जय जयति जगबंद, मुनि मन कुमुद चंद। त्रैलोक्य अवनीप। दशरथ कुलदीप।

दीप²—संज्ञा पुं० [सं० द्वीप] दे० 'द्वीप'। उ०—रामतिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिए। सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिए।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०३।

दीपक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीया। चिराग।

यौ०—कुलदीपक = वंश को उजाला करनेवाला पुत्र।

२. एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत (जो वर्णन का विषय हो) और अप्रस्तुत (जो वर्णन का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म कहा जाता है; अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है। जैसे,—(क) सोहत भूपति दान सों फल फूलन आराम। इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अप्रस्तुत आराम' दोनों का एक धर्म सोहत कहा गया है। (ख) ऋषिहिं देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाय। धनुष देखि डरपै महा चिंता चित्त डुलाय। इस उदाहरण में हरखै' 'कुम्हिलाय' 'डरपै' आदि क्रियाओं का एक ही कर्ता 'हियो' कहा गया है।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रधान अलंकारों में से है। तुल्ययोगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर वह या तो कई प्रस्तुतों या कई अप्रस्तुतों का होता है। दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक धर्म का कथन होता है। दीपक चार प्रकार का होता है—आवृत्ति दीपक, कारक दीपक, माला दीपक और देहली दीपक। (१) आवृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद भिन्न भिन्न अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न पद आते हैं। जैसे,—(क) बहैं रुधिर सरिता, बहैं किरवानैं कढ़ि कोस। बीरन बरहिं बरांगना, बरहिं मुमट रन रोस। (ख) दौरहिं संगर मत्त गज धावहिं हय समुदाय। (२) कारक दीपक। उ०—ऊपर देखिए। (३) माला दीपक जिसमें एकावली और दीपक का मेल होता है। जैसे,—जग की रुचि ब्रजवास, ब्रज की रुचि ब्रजचंद हरि। हरि रुचि बंसी 'दास', बंसी रुचि मन बाँधिबो। (४) देहली दीपक में एक ही पद दो ओर लगता है। जैसे,—है नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रह्लाद को संकट भारी। इस उदाहरण में 'हन्यो' शब्द दो ओर लगता है—'मनुजाद हन्यो' और 'भारी संकट हन्यो'।

३. संगीत में छह रागों में से एक।

विशेष—हनुमत् के मत से यह छह रागों में दूसरा राग है। यह संपूर्ण जाति का राग है और षड्ज स्वर से आरंभ होता है। इसके गाने का समय ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्न है। इसका सरगम यह है—स रे ग म प ध नि स।

इसकी पाँच रागिनियाँ मानी जाती हैं—देसी, कामोदी, नाटिका, केदारी और कान्हड़ा। पुत्र आठ हैं—कुंतल, कमल, कलिंग, चंपक, कुसुंभ, राम, लहिल और हिमाल। भरत के मत से दीपक की पत्नियाँ हैं—केदारा, गौरी, गौड़ी, गुर्जरी, रुद्राणी; और पुत्र हैं कुसुम, टंक, नटनारायण, बिहागरा, किरोदस्त, रभसमंगला, मंगलाष्टक और अड़ाना।

४. एक ताल का नाम जिसमें प्लुत, लघु और प्लुत होते हैं। ५. अजवायन (जो अग्निदीपक होती है)। ६. केसर।

कुंकुम। ७. बाज नाम का पक्षी। ८. मयूरशिखा। ९. एक प्रकार की आतिशबाजी।

दीपक[2]—वि० [स्त्री० दीपिका] १. प्रकाश करनेवाला। उजाला फैलानेवाला। दीप्तिकारक। २. जठराग्नि को दीप्त करनेवाला। पाचन की अग्नि को तेज करनेवाला। ३. उत्तेजक। शरीर में वेग या उमंग लानेवाला।

दीपक[3]—संज्ञा पुं० [सं०] एक डिंगल गीत। छंदविशेष। उ०—तुकां वेलिये गीत रो, भाव दुतिय चतुरंत। तिय पद दोय दुमेल तुक, दोपक सो दाखंत।—रघु० रू०, पृ० १०९।

दीपकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, भगण, जगण और गुरु होता है। जैसे,—भामज गो कन्या सखी घरी। देखन हीं मोगे धनू दरी। मंडप के नीचे भरी अनी। दीपकमाला सो लसै लली। २. दीपक अलंकार का एक भेद।

दीपकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की टेम। चिराग की लौ।

दीपकली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपकलिका] चिराग की टेम। दीपशिखा। दीए की लौ।

दीपकवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बड़ा दीवट जिसमें दीप रखने के लिये कई शाखाएँ इधर उधर निकली हों। २. भाड़।

दीपकसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजल।

दीपकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीया बालने का समय। संध्या।

दीपकावृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपक अलंकार का एक भेद। २. पनसाखा।

दीपकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजल।

दीपकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती।

दीपखोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती (को०)।

दीपग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीपक'। उ०—दीपग बरत विवेक को तौ लौं या चित माहिं। जौ लौं नारि कटाक्ष पट झरको लागत नाहिं।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ८८।

दीपगरा—संज्ञा पुं० [सं० दीपगृह] दीयट। दीपाधार।

दीपचंदी—संज्ञा पुं० [सं० दीपचन्द्रिन्] संगीत का एक 'ताल' या ठेका। उ०—कुछ संगीतज्ञों का कहना है कि 'दीपचंदी' ताल का नहीं ठेके का नाम है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३७।

दीपत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] १. कांति। चमक। प्रभा। ज्योति। २. छटा। शोभा। ३. कीर्ति। यश।

दीपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति'। उ०—ब्रजराज मोहि हिंदू तुरुक बादि करत संग्राम। इक दीपति सी दीपियत काबा काशी धाम।—अकबरी०, पृ० ५१।

दीपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी देवता के सामने दीपक जलाने का काम जो पूजन का एक अंग समझा जाता है। २. कार्तिक में बहुत से दीपक जलाने का कृत्य जो राधा दामोदर के निमित्त होता है। ३. एक प्रकार का कृत्य जिसमें मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से आटे के जलते हुए दीये का संकल्प कराया जाता है।

दीपदानी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप + आधान] घी, बत्ती आदि दीया जलाने की सामग्री रखने की डिबिया जो पूजा के सामानों में से है।

दीपध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. काजल। २. दीवट।

दीपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीपनीय, दीपित, दीप्य] १. प्रकाशित। प्रज्वलित या प्रकाशित करने का काम। प्रकाश के लिये जलाने का काम। २. जठराग्नि को तीव्र करने की क्रिया। भूख को उभारने की क्रिया। ३. आवेग उत्पन्न करना। उत्तेजना। जैसे, काम का दीपन।

दीपन[2]—वि० दीपन करनेवाला। जठराग्निवर्धक। अग्निमांद्य दूर करनेवाला।

दीपन[3]—संज्ञा पुं० १. तगरमूल। तगर की जड़ या लकड़ी। २. मयूरशिखा नाम की बूटी। ३. कुंकुम। केसर। ४. पलांडु। प्याज। ५. कासमर्द। कसौंदा। ६. मंत्र के उन दस संस्कारों में से एक जिनके बिना मंत्र सिद्ध नहीं होता। ७. रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का सातवाँ संस्कार।

विशेष—इस दर्शन को माननेवाले रस या पारे ही को संसार-परपार-प्राप्ति का कारण और रस-शास्त्र को देहवेधपूर्वक मुक्ति का साधन मानते हैं।

दीपनगण—संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि को तीव्र करनेवाले पदार्थों का वर्ग। भूख लगानेवाली ओषधियों का वर्ग।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत चीता, धनिया, अजमोदा, जीरा, हाऊ, बेर इत्यादि हैं।

दीपना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० दीपन] प्रकाशित होना। चमकना। जगमगाना।

दीपना[2]—क्रि० स० प्रकाशित करना। चमकाना। उ०—द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगंत है।—पद्माकर (शब्द०)।

दीपनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेथी। २. अजवायन। ३. पाठा।

दीपनी[2]—वि० [सं०] १. दीप्त करने योग्य। प्रकाशन के योग्य। २. उत्तेजित करनेवाली। दीप या अभिवृद्ध करनेवाली (ओषधि)।

दीपनीय[1]—संज्ञा पुं० १. यवानी। अजवायन। २. दे० 'दीपनीय वर्ग'। ३. स्वास्थ्यदायक ओषधि। पुष्टिकर दवा (को०)।

दीपनीयवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार एक ओषधिवर्ग जिसके अंतर्गत पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चीता और नागर हैं। ये सब ओषधियाँ कफ और वातनाशक हैं।

दीपपादप—संज्ञा पुं० [सं०] दीवट।

दीपपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] चंपकवृक्ष। चंपा।

दीपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलते हुए दीपों की पंक्ति। जगमगाते हुए दीयों की श्रेणी। (दीवाली में इस प्रकार दीपक जलाकर पंक्ति में रखे जाते हैं)। २. दीपमाला या आरती के लिये जलाई हुई बत्तियों का समूह।

दीपमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीयों की पंक्ति। जलते हुए

प्रदीपों की श्रेणी (जैसी दीवाली में दिखाई देती है)। २. दीवाली। ३. दीपदान या आरती के लिये जलाई हुई बत्तियों की पंक्ति। उ०—दीपमालिका रचि रचि साजत पुहुपमाल मंडली विराजत।—सूर (शब्द०)।

दीपमाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपमालिका] दीवाली। उ०—आलिनि के संग दीपमाली के विलोकिबे को झोंझकि उझकि जो न झाँकति झरोखे तें।—द्विजदेव (शब्द०)।

दीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी जो कामाख्या में है और जिसके पूर्व शृंगार नाम का प्रसिद्ध पर्वत है।

दीपवर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती [को०]।

दीपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीवट। दीयट। २. प्रकाश(को०)।

दीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग। फतिगा जो दीपक को बुझा देता है।

दीपशलभ—संज्ञा पुं० [सं० दीप + शलभ] जुगनू। खद्योत। उ०—दीपशलभ ने जिसे मिचौनी खेल खेलकर हुलसाया।—वीणा, पृ०।

दीपशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दीए की टेम। चिराग की लौ। प्रदीपज्वाला। उ०—दीपशिखा सम जुबतिजन मन जनि होसि पतंग।—तुलसी (शब्द०)। २. दीए का धुआँ या काजल।

दीपशृंखला—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपशृङ्खला] दीपकों की कतार। दीयों की पंक्ति [को०]।

दीपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल। काजल।

दीपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० दीप + स्तम्भ] वह स्तंभ जिसपर दीप जलता हो। दीपाधार। दीवट।

दीपांकुर—संज्ञा पुं० [सं० दीपाङ्कुर] दीए की टेम। दीपक की लौ [को०]।

दीपाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दीए की टेम की आँच। आँच का एक परिमाण जो धूमाग्नि से चौगुना माना जाता है।

दीपाधार—संज्ञा पुं० [सं० दीप + आधार] दीपक रखने का पात्र या स्थान। दीयट। उ०—दोनों की विवश विह्वलता देख दीपाधार पर जलती दीपशिखा स्तब्ध और निश्चल रह गई।—अभिशप्त, पृ० ११।

दीपान्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की अमावस्या जिसके प्रदोषकाल में लक्ष्मीपूजन और दीपदान आदि होता है। दीवाली।

दीपाराधन—संज्ञा पुं० [सं०] आरती करने की क्रिया। दीप द्वारा पूजन [को०]।

दीपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीपावली' [को०]।

दीपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीपावली' [को०]।

दीपावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक और सरस्वती के योग से उत्पन्न एक रागिनी।

दीपावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीपश्रेणी। दीयों की पंक्ति। २. दीवाली।

दीपावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीपों की पंक्ति। २. दीवाली।

दीपिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा दीया। २. एक रागिनी जो हिंडोल राग की पत्नी मानी जाती है और प्रदोषकाल में गाई जाती है। ३. चाँदनी। चंद्रमा का प्रकाश (को०)।

दीपिका[2]—वि० स्त्री० १. प्रकाश करनेवाली। उजाला फैलानेवाली। २. स्पष्ट कहनेवाली।

दीपिकातैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक आयुर्वेदोक्त तेल जो कान का दर्द दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है।

विशेष—इसे प्रस्तुत करने की रीति यह है कि देवदार, सलई या चीड़ की सात आठ अंगुल लंबी लकड़ी ले और उसे सूए आदि से छलनी की तरह चारों ओर छेद डाले। फिर उसमें रेशम लपेटकर तेल में खूब डुबावे और बत्ती की तरह जला दे। इस प्रकार जलती हुई बत्ती में से जो गरम गरम तेल बूँद बूँद गिरे उसे कान में टपकावे।

दीपित—वि० [सं०] १. प्रकाशित। प्रज्वलित। २. चमकता हुआ। जगमगाता हुआ। ३. उत्तेजित।

दीपी—वि० [सं० दीपिन्] १. जलनेवाला। दीप्त होनेवाला। द्योतित। २. दीपन करनेवाला [को०]।

दीपोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दीवाली।

दीप्त[1]—वि० [सं०] १. प्रज्वलित। जलता हुआ। २. प्रकाशित। जगमगाता हुआ। चमकता हुआ।

दीप्त[2]—संज्ञा पुं० १. स्वर्ण। सोना। २. हींग। ३. नीबू। ४. सिंह। ५. सुश्रुत के अनुसार नाक का एक रोग जिसमें नाक से भाप की तरह गरम गरम हवा निकलती है और नथुनों में जलन होती है।

दीप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। सुवर्ण। २. नाक का एक रोग। दे० 'दीप्त'-५।

दीप्तकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार का पौधा।

दीप्तकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार कार्तिकेय [को०]।

दीप्तकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भागवत के अनुसार दक्षसावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम। २. महाभारत में वर्णित एक राजा का नाम।

दीप्तजिह्व—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीप्तजिह्वा] चलती जबानवाला। झगड़ालू।

दीप्तजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्कामुखी। शृगाली। मादा गीदड़। सियारिन।

विशेष—गीदड़ के मुँह का अगला भाग कुछ कालापन लिए होता है इसी से उसका नाम उल्का (लुआठा) मुख पड़ा। उल्का जलते हुए पिंड या प्रकाश को भी कहते हैं इसी भ्रम से दीप्तजिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है।

दीप्तपिंगल—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तपिङ्गल] सिंह।

दीप्तरस—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ।

विशेष—रात को अँधेरे में केंचुए के शरीर के रस से एक प्रकार की चमक निकलती है इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

दीप्तरोमा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दीप्तरोमन्] एक विश्वेदेव का नाम। (महाभारत)।

दीप्तलोचन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बिल्ली। बिडाल।

दीप्तलोह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तपाया हुआ लाल लोहा। २. काँसा। कांस्य।

दीप्तवर्ण[1]—वि॰ [सं॰] जिसका शरीर कुंदन की तरह दमकता हुआ हो।

दीप्तवर्ण[2]—संज्ञा पुं॰ कार्तिकेय।

दीप्तशक्ति[1]—वि॰ [सं॰] दे॰ 'दीप्तवर्ण'।

दीप्तशक्ति[2]—संज्ञा पुं॰ कुमार कार्तिकेय (को॰)।

दीप्तांग[1]—वि॰ [सं॰ दीप्ताङ्ग] जिसका शरीर चमकता हो।

दीप्तांग[2]—संज्ञा पुं॰ मोर। मयूर।

दीप्तांशु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सूर्य। २. मदार। आक।

दीप्ता[1]—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] १. प्रकाशित। प्रकाशयुक्ता। चमकती हुई। २. (दिशा) जिसमें सूर्य किसी समय स्थित हो। सूर्य से प्रकाशित। जैसे, दीप्ता दिशा।

दीप्ता[2]—संज्ञा पुं॰ १. लांगली वृक्ष। कलियारी। २. ज्योतिष्मती। मालकँगनी। ३. सातला नामक थूहर।

दीप्ताक्ष[1]—वि॰ [सं॰] जिसकी आँखें चमकती हों।

दीप्ताक्ष[2]—संज्ञा पुं॰ बिडाल। बिल्ली।

दीप्ताग्नि[1]—वि॰ [सं॰] १. जिसकी जठराग्नि बहुत तीव्र हो। जिसकी पाचन शक्ति अत्यंत प्रबल हो। २. जिसकी भूख जगी हो। भूखा।

दीप्ताग्नि[2]—संज्ञा पुं॰ अगस्त्य मुनि (जिन्होंने समुद्र को पी लिया था और वातापि नामक राक्षस को पचा डाला था)।

दीप्ति[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. प्रकाश। उजाला। रोशनी। २. प्रभा। आभा। चमक। द्युति। ३. कांति। शोभा। छवि। जैसे, अंग की दीप्ति। ४. ज्ञान का प्रकाश जिससे विवेक उत्पन्न होता है और अज्ञानांधकार दूर हो जाता है (योग)। ५. लाक्षा। लाख। ६. काँसा। थूहर।

दीप्ति[2]—संज्ञा पुं॰ एक विश्वेदेव का नाम (महाभारत)।

दीप्तिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिरखोला। दुग्धपाषाण क्षुप।

दीप्तिमान्[1]—वि॰ [सं॰ दिप्तिमन्] [वि॰ स्त्री॰ दीप्तिमती] १. दीप्तियुक्त। प्रकाशित। चमकता हुआ। २. कांतियुक्त। शोभायुक्त।

दीप्तिमान्[2]—संज्ञा पुं॰ सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

दीप्तोद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ, जिसमें बधुसर नाम की एक नदी है।

विशेष—यहीं परशुराम ने स्नान करके अपना खोया हुआ तेज फिर से प्राप्त किया था। पूर्वकाल में भृगु ने यहीं पर कठोर तपस्या की थी।

दीप्तोपल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूर्यकांत मणि।

दीप्य[1]—वि॰ [सं॰] १. जो जलाया जाने को हो। प्रज्वलित किया जानेवाला। २. जो जलाने योग्य हो। ३. जठराग्नि दीपन करनेवाला।

दीप्य[2]—संज्ञा पुं॰ १. अजवायन। २. जीरा। ३. मयूरशिखा। ४. रुद्रजटा।

दीप्यक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अजवायन। २. अजमोदा। ३. मयूर शिखा। ४. रुद्रजटा।

दीप्यमान—वि॰ [सं॰] चमकता हुआ।

दीप्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पिंड खजूर।

दीप्र[1]—वि॰ [सं॰] दीप्तिमान्। प्रकाशयुक्त।

दीप्र[2]—संज्ञा पुं॰ अग्नि।

दीबाचा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दीबाचह्] प्रस्तावना। भूमिका। प्राक्कथन (को॰)।

दीबाज—संज्ञा पुं॰ [अ॰] एक प्रकार का बहुत बढ़िया और उत्तम रेशमी वस्त्र जिसे दीबा भी कहते हैं।

दीवाणु†—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दीवान] दे॰ 'दीवान'। उ॰—बीने भागु थाइदु निरवानु। गगनंतरि तपति लाय दीवाणु।—प्राण॰, पृ॰ १०६।

दीबो†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ देना] दे॰ 'देना'।

दीमक—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] चींटी की तरह का एक छोटा कीड़ा जिसे जालीदार पर निकलते हैं। यह लकड़ी आदि में लगकर उसे खोखली और नष्ट कर देता है। वल्मीक।

विशेष—इसका धड़ सफेद होता है और सिर लाल या नारंगी रंग का होता है। यह दल बाँधकर रहता है। दीमकें गरम देशों में बहुत होती हैं और मिट्टी का घर बनाती हैं जिसकी दीवारें दानेदार पपड़ी की तरह होती हैं। कहीं कहीं ये घर दूह के आकार के हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं, और वल्मीक या बमोट कहलाते हैं। चींटियों की तरह ये कीड़े भी बड़े नियम और व्यवस्था के साथ रहते हैं। एक दल में अधिक संख्या तो क्लीव कीटों की होती है जो केवल काम करने के लिये होते हैं। कुछ क्लीव कीट बड़े लंबे सिरवाले होते हैं जो सिपाही कहलाते हैं। एक या अधिक स्त्रीकीट या रानियाँ होती हैं जिनका शरीर अंडों से भरे रहने के कारण कभी कभी बहुत फूला दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त नर भी होते हैं जो किसी किसी ऋतु में बहुत दिखाई पड़ते हैं और फतिंगों की तरह उड़ते फिरते हैं। ये कीड़े काष्ठ और जंतुशरीर पर निर्वाह करते हैं। जिस वस्तु पर ये लगते हैं उसे प्रायः मिट्टी की पपड़ी से आच्छादित कर देते हैं और भीतर ही भीतर उसे खाते जाते हैं। बरसात में दीमकें लगती हैं और कागज, लकड़ी आदि को इनसे बचाना कठिन हो जाता है।

मुहा॰—दीमक खाया = (१) जिसे दीमकों ने खाकर नष्ट कर दिया हो। (२) दीमकों की खाई हुई वस्तु की तरह स्थान स्थान पर खुदा हुआ गड्ढेदार। जैसे, शीतला के दागवाला चेहरा। दीमक का चाटना = दीमक का (किसी वस्तु को) खाकर नष्ट करना जैसे,—इस किताब के पन्ने दीमकें चाट गईं।

दीमान(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] राज्यसभा । दे० 'दीवान' । उ०—तुरत सर्व दिमानहि पाए ।—प० रासो, पृ० १०४ ।

दीयट—संज्ञा पुं० [हिं० दीवट] दे० 'दीवट' ।

दीयमान—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे किसी को देना हो । जो देने के लिये हो ।

दीया—संज्ञा पुं० [सं० दीपक, प्रा० दीऊ] १. उजाले के लिये जलाई हुई बत्ती । जलती हुई बत्ती । चिराग ।

क्रि० प्र०—जलना ।—जलाना ।—बलना ।—बालना ।—बुझना ।—बुझाना ।

मुहा०—दीए का हँसना=दीए की बत्ती में फूल या गुल झड़ना । दीए की बत्ती में चमकते हुए गोल गोल रवे दिखाई पड़ना ।—(इससे विवाह होने, लड़का होने आदि का शुभ शकुन समझा जाता है) । दीया जलना=दीया जलने का समय होना । संध्या होना । दीया जलाना=दीवाला निकालना ।

विशेष—पहले जो लोग दीवाला निकालते थे वे टाट उलटकर उसपर एक चौमुखा दीया जलाकर रख देते थे और काम धाम बंद कर देते थे ।

दीया जलने के समय=संध्या को । शाम को । दीया ठंढा करना=दीया बुझाना । (किसी के घर का) दीया ठंढा होना=किसी के मरने से कुल में अंधकार छा जाना । घर में रौनक न रह जाना । दीया दिखाना=रोशनी दिखाना । सामने उजाला करना । दीया बढ़ाना=दीया बुझाना । दीया बत्ती करना=जलाने के लिये दीया, बत्ती आदि ठीक करना । रोशनी का सामान करना । चिराग जलाना । दीये बत्ती का समय=संध्या का समय । दीया लेकर ढूँढ़ना=चारों ओर हैरान होकर ढूँढ़ना । बड़ी छानबीन से खोजना । दीये से फूल झड़ना=दीये की जलती हुई बत्ती से चमकते हुए गोल फुचड़े या रवे निकलना । गुल झड़ना ।

२. [स्त्री० अल्पा० दिवली, दियली] बत्ती जलाने का बरतन । वह बरतन जिसमें तेल भरकर जलाने के लिये बत्ती डाली जाती है ।

विशेष—दीए प्रायः मिट्टी के बनते हैं ।

मुहा०—दीए में बत्ती पड़ना=दीया जलने का समय होना । संध्या का समय होना ।

दीयासलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीया+सलाई] लकड़ी की छोटी सलाई या सींक जिसका एक सिरा रगड़ने से जल उठता है । आग जलाने की सींक या सलाई ।

विशेष—इन सलाइयों का एक सिरा फासफरस, पोटाशियम क्लोरेट आदि रगड़ खाकर जल उठनेवाले पदार्थों में डुबाया रहता है ।

दीयौ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विप] हाथी । उ०—कि मांहुत छुट्टि मदमत । भरिय दीयो कि दुष्ट कंजि ।—पृ० रा०, ५। ५६ ।

दीरग†—वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ०—सतगुर पारस की कनी, दीरग दाग नाहिं ।—दरिया० बानी, पृ० ४ ।

दीरघ(पु)—वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ०—जगत तपोबन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ।—बिहारी ।

दीरघजिह्वा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घजिह्वा] वैरोचन की पुत्री एक राक्षसी । दीर्घजिह्वा । उ०—वैरोचनजा दीरघजिह्वा । सुरपति तेहि लखि लीन्हेसि जिह्वा ।—विश्राम (शब्द०) ।

दीर्घ[1]—वि० [सं०] १. आयत । लंबा । २. बड़ा । (देश और काल दोनों के लिये, जैसे, दीर्घक्षेत्र, दीर्घवस्त्र, दीर्घकाल) ।

विशेष—कणाद में दीर्घत्व को परिमाणभेद कहा है । सांख्य के मत से दीर्घत्व महत्व का अवस्थांतर है ।

३. विस्तृत । फैला हुआ (को०) । ४. ऊँचा (को०) । ५. गहरा । गंभीर । जैसे, दीर्घ श्वास ।

दीर्घ[2]—संज्ञा पुं० १. लता शालवृक्ष । २. माड़ वृक्ष । ३. रामशर । नरकट । ४. ऊँट । ५. ताड़ का पेड़ । ६. गुरु या द्विमात्रिक वर्ण । वह वर्ण जिसका उच्चारण खींचकर हो । ह्रस्व का उलटा ।

विशेष—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दीर्घ स्वर कहलाते हैं । जिन व्यंजनों में ये लगते हैं वे भी दीर्घ कहलाते हैं, जैसे, का की कू इत्यादि । संगीत में भी दो मात्राओं का नाम दीर्घ है । अ—अ को एक साथ उच्चारण करने में जो काल लगता है वह दीर्घ काल कहलाता है ।

७. ज्योतिष में पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं अर्थात् सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक राशि को दीर्घ राशि कहते हैं ।

दीर्घकंटक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घकण्टक] बबूल का पेड़ ।

दीर्घकंठ[1]—वि० [सं० दीर्घकण्ठ] [वि० स्त्री० दीर्घकंठी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंठ[2]—संज्ञा पुं० १. बगला । बक । २. एक दानव का नाम ।

दीर्घकंठक—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दीर्घकण्ठक] दे० 'दीर्घकंधर' ।

दीर्घकंद—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घकन्द] मूली ।

दीर्घकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घकन्दिका] मुसली । तालमूली ।

दीर्घकंधर[1]—वि० [सं० दीर्घकन्धर] [वि० स्त्री० दीर्घकंधरी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंधर[2]—संज्ञा पुं० बगला पक्षी । बक ।

दीर्घकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद जीरा ।

दीर्घकर्ण[1]—वि० [सं०] जिसके कान बड़े बड़े हों ।

दीर्घकर्ण[2]—संज्ञा पुं० एक जाति का नाम जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में है ।

दीर्घकांड—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घकाण्ड] गुंडतृण । गोंदना ।

दीर्घकांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घकाण्डा] पातालगारुड़ी लता । छिरहिटा । छिरेटा ।

दीर्घकाय—वि० [सं०] बड़े डीलडौल का । लंबे चौड़े शरीरवाला ।

दीर्घकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक सीध में ऊपर को गए पेड़ की लकड़ी । शहतीर (को०) ।

दीर्घकील—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दीर्घकीलक' ।

दीर्घकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़ ।

दीर्घकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली ।

दीर्घकूरक—संज्ञा पुं० [सं०] आंध्रप्रदेश में होनेवाला एक प्रकार का धान ।

दीर्घकेश¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घकेशी] लंबे बालोंवाला। जिसके लंबे लंबे बाल हों।

दीर्घकेश²—संज्ञा पुं० १. भालू। २. कूर्म विभाग के पश्चिमोत्तर में स्थित एक देश (बृहत्संहिता)।

दीर्घकोशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' (को०)।

दीर्घकोशिका, दीर्घकोशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति नामक जलजंतु। सुतुही।

दीर्घकोषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' (को०)।

दीर्घगति—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट (जो लंबे लंबे डग रखता है)।

दीर्घग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घग्रन्थि] दीर्घकुल्या। गजपिप्पली (को०)।

दीर्घग्रंथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घग्रन्थिका] गजपिप्पली।

दीर्घग्रीव¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घग्रीवी] जिसकी गरदन लंबी हो।

दीर्घग्रीव²—संज्ञा पुं० १. नील क्रौंच पक्षी। सारस। २. कूर्म विभाग के दक्षिण पश्चिम ओर स्थित एक देश (बृहत्संहिता)।

दीर्घघाटिक¹—वि० [सं०] लंबी गरदनवाला।

दीर्घघाटिक²—संज्ञा पुं० ऊँट।

दीर्घच्छद¹—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों।

दीर्घच्छद²—संज्ञा पुं० ईख। ऊख।

दीर्घजंगल—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजङ्गल] एक प्रकार की मछली। बड़ा झिंगा।

दीर्घजंघ¹—वि० [सं० दीर्घजङ्घ] जिसकी लंबी लंबी टाँगें हों।

दीर्घजंघ²—संज्ञा पुं० १. बक। बगला। २. ऊँट।

दीर्घजिह्व¹—वि० [सं०] जिसकी लंबी जीभ हो।

दीर्घजिह्व²—संज्ञा पुं० १. सर्प। २. दानवविशेष।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विरोचन की पुत्री एक राक्षसी जिसे इंद्र ने मारा था। २. मातृ गणों में से एक जो कार्तिकेय की अनुचरी है।

दीर्घजिह्वी—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजिह्विन्] कुत्ता जिसकी जीभ लंबी होती है।

दीर्घजीवी—वि० [सं० दीर्घजीविन्] जो बहुत दिनों तक जीए। बहुत काल तक जीवित रहनेवाला।

दीर्घतपा¹—वि० [सं० दीर्घतपस्] जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो।

दीर्घतपा²—संज्ञा पुं० १. हरिवंश के अनुसार आयुवंशीय एक राजा जिन्होंने बहुत काल तक तप किया था। २. अहिल्या के पति गौतम का नाम (को०)।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घतमस्] एक ऋषि जो उतथ्य के पुत्र थे।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है। उतथ्य नामक एक तेजस्वी मुनि थे, जिनकी पत्नी का नाम ममता था। ममता जिस समय गर्भवती थी उस समय उतथ्य के छोटे भाई देवगुरु बृहस्पति उसके पास आए और सहवास की इच्छा प्रकट करने लगे। ममता ने कहा 'मुझे तुम्हारे बड़े भाई से गर्भ है अतः इस समय तुम जाओ'। बृहस्पति ने न माना और वे सहवास में प्रवृत्त हुए। गर्भस्थ बालक ने भीतर से कहा—'बस करो ? एक गर्भ में दो बालकों की स्थिति नहीं हो सकती। जब बृहस्पति ने इतने पर भी न सुना तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिशु ने अपने पैरों से वीर्य को रोक दिया। इसपर बृहस्पति ने कुपित होकर गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि 'तू दीर्घतामस में पड़ (अर्थात् अंधा हो जा)'। बृहस्पति के शाप से वह बालक अंधा होकर जन्मा और दीर्घतमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रद्वेषी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से दीर्घतमा का विवाह हुआ, जिससे उन्हें गौतम आदि कई पुत्र हुए। ये सब पुत्र लोभ मोह के वशीभूत हुए। इसपर दीर्घतमा कामधेनु से गोधर्म शिक्षा प्राप्त करके उससे श्रद्धापूर्वक मैथुन आदि में प्रवृत्त हुए। दीर्घतमा को इस प्रकार मर्यादा भंग करते देख आश्रम के मुनि लोग बहुत बिगड़े। उनकी स्त्री प्रद्वेषी भी इस बात पर बहुत अप्रसन्न हुई। एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रद्वेषी से पूछा कि 'तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती है।' प्रद्वेषी ने कहा 'स्वामी स्त्री का भरण पोषण करता है इसी से भर्ता कहलाता है पर तुम अंधे हो, कुछ कर नहीं सकते। इतने दिनों तक मैं तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण पोषण करती रही, पर अब न करूँगी'। दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा—'ले, आज से मैं यह मर्यादा बाँध देता हूँ कि स्त्री एकमात्र पति से ही अनुरक्त रहे। पति चाहे जीता हो या मरा वह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती। जो स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी वह पतित हो जायगी'। प्रद्वेषी ने इसपर बिगड़कर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि 'तुम अपने अंधे बाप को बाँधकर गंगा में डाल आओ।' पुत्र आज्ञानुसार दीर्घतमा को गंगा में डाल आए। उस समय बलि नाम के कोई राजा गंगा-स्नान कर रहे थे। वे ऋषि को इस अवस्था में देख अपने घर ले गए और उनसे प्रार्थना की कि 'महाराज ! मेरी भार्या से आप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए।' जब ऋषि सम्मत हुए तब राजा ने अपनी सुदेष्णा नाम की रानी को उनके पास भेजा। रानी उन्हें अंधा और बुड्ढा देख उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा। दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए। राजा ने यह जानकर फिर सुदेष्णा को ऋषि के पास भेजा। ऋषि ने रानी का सारा अंग टटोलकर कहा 'जाओ, तुम्हें अंग, बंग, कलिंग, पुंड्र और सुंभ नामक अत्यंत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे जिनके नाम से देश विख्यात होंगे'।

ऋग्वेद के पहले मंडल में सूक्त १४० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं। इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिनसे उनके जीवन की घटनाओं का पता चलता है। महाभारत में उनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई मंत्रों में है। सूक्त १५७ मंत्र ५ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने उस समय कहा था जब लोगों ने उन्हें एक संदूक में बंद कर दिया था। इस मंत्र में उन्होंने अश्विनी देवता से उद्धार पाने के लिये प्रार्थना की है।

दीर्घतरु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबाई। बड़ाई।

दीर्घतिमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी। ककंटी।

दीर्घतुंडा[1]—वि० स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डा] जिसका मुँह लंबा हो।

दीर्घतुंडा[2]—संज्ञा स्त्री० छछूंदर।

दीर्घतुंडी—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डी] दे० 'दीर्घतुंडा' (को०)।

दीर्घतृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु निर्बल हो जाते हैं। पल्लिवाह तृण। ताम्रपर्णी।

दीर्घदंड—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घदण्ड] दे० 'दीर्घदंडक'।

दीर्घदंडक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घदण्डक] १. एरंड वृक्ष। अंडी का पेड़। रेंड। २. ताल वृक्ष। ताड़ का पेड़ (को०)।

दीर्घदंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घदण्डी] गोरक्षी। गोरखइमली।

दीर्घदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार। परिणाम आदि का विचार करनेवाली बुद्धि। दूरदर्शिता।

दीर्घदर्शी[1]—वि० [सं० दीर्घदर्शिन्] १. दूर तक की बात सोचनेवाला। बहुत सी बातों का विचार करनेवाला। दूर तक सब बातों का परिणाम सोचनेवाला। दूरदर्शी। २. विचारवान्।

दीर्घदर्शी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भालू। २. गीध।

दीर्घदृष्टि[1]—वि० [सं०] १. जिसकी दृष्टि दूर तक जाय। बहुत दूर तक देखनेवाला। २. दूर तक की बात सोचनेवाला।

दीर्घदृष्टि[2]—संज्ञा पुं० गीध।

दीर्घद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

दीर्घद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

दीर्घद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] विशाल देश के अंतर्गत एक जनपद जो गंडकी नदी के किनारे माना जाता था।

दीर्घनाद[1]—वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले। जिसकी आवाज दूर तक फैले।

दीर्घनाद[2]—संज्ञा पुं० १. शंख। २. कुक्कुट। मुर्गा (को०)। ३ श्वान (को०)।

दीर्घनाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीर्घरोहिष। रोहिस घास। २. गोंदला घास। गुंड तृण। ३. ज्वार। यवनाल।

दीर्घनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत। मरण।

दीर्घनिश्वास—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घनिःश्वास] लंबी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण ली जाती है।

दीर्घपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग पक्षी।

दीर्घपटोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का लताफल।

दीर्घपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजपलांडु। लाल प्याज। २. विष्णुकंद। ३. हरिदर्भ। एक प्रकार का कुश। ४. कुचला। कुचीलु। ५. एक प्रकार की ईख (सुश्रुत)। दे० 'दीर्घपत्रक'।

दीर्घपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल लहसुन। २. एरंड। रेंड़। अंडी। ३. बेतस। बेत। ४. हिज्जल। समुद्रफल। ५. करील। टेंटी का पेड़। ६. जलमधूक। जल महुआ।

दीर्घपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी। २. जंगली जामुन का पेड़ जो छोटा और नदियों के किनारे होता है। ३. चित्रपर्णी। ४. शालपर्णी।

दीर्घपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद वच। २. घृतकुमारी। घीकुआर। ३. शालपर्णी। सरिवन। ४. श्वेत पुनर्नवा। सफेद गदहपुरना।

दीर्घपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पलाशी लता। चौरिया पलाश। वह पलाश जो लता के रूप में फैलता है। २. महाचंचु शाक। बड़ा चेना।

दीर्घपर्ण—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों।

दीर्घपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।

दीर्घपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घपर्वन्] लंबी पोरवाला, इक्षु। ईख आदि।

दीर्घपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़।

दीर्घपाद[1]—वि० [सं०] लंबी टाँगवाला।

दीर्घपाद[2]—संज्ञा पुं० १. कंकपक्षी। २. सारस।

दीर्घपादप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़। २. सुपारी का पेड़।

दीर्घपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दीर्घपृष्ठि] सर्प। साँप।

दीर्घप्रज्ञ[1]—वि० [सं०] दूरदर्शी।

दीर्घप्रज्ञ[2]—संज्ञा पुं० द्वापर के एक राजा वृषपर्वा का नाम जो असुर के अवतार थे।

दीर्घफल—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

दीर्घफलक—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़।

दीर्घफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जतुका लता। पहाड़ी नाम की लता। २. लंबा अंगूर।

दीर्घफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपिल द्राक्षा। लंबा अंगूर। २. जतुका लता।

दीर्घबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमरी। सुरा गाय।

दीर्घबाहु[1]—वि० [सं०] जिसकी भुजा लंबी हो।

दीर्घबाहु[2]—संज्ञा पुं० १. शिव के एक अनुचर का नाम (हरिवंश)। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दीर्घमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

दीर्घमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक यक्ष का नाम। २. शिव का एक दास। ३. हाथी।

दीर्घमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की बेल। मोरट लता। २. वेना की तरह की एक पीली घास। लामज्जक तृण। ३. बिल्वांतर वृक्ष।

दीर्घमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] मूलक। मूली।

दीर्घमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी। सरिवन। २. श्यामा लता। कालीसर।

दीर्घमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] धमासा।

दीर्घयज्ञ[1]—वि० [सं०] जिसने बहुत काल तक यज्ञ किया हो।

दीर्घयज्ञ[२]—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक राजा का नाम जो द्वापर में हुए थे (महाभारत)।

दीर्घरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घरङ्गा] हरिद्रा। हलदी [को०]।

दीर्घरत[१]—वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन मे रत रहे।

दीर्घरत[२]—संज्ञा पुं० कुत्ता।

दीर्घरद[१]—वि० [सं०] जिसके निकले हुए लंबे दाँत हों।

दीर्घरद[२]—संज्ञा पुं० सूअर। शूकर।

दीर्घरसन—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

दीर्घरागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हलदी।

दीर्घरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घरोमन्] १. भालू। २. शिव के एक अनुचर का नाम।

दीर्घरोहिष—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति की रोहिस घास।

विशेष—यह घास मालवा, राजपूताना और मध्यप्रदेश में बहुत होती है। इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो नीबू की सुगंध से मिलती जुलती होती है। इसकी जड़ से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है।

दीर्घरोहिषक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दीर्घरोहिष' [को०]।

दीर्घलोचन[१]—वि० [सं०] बड़ी आँखवाला।

दीर्घलोचन[२]—संज्ञा पुं० १. शिव के एक अनुचर का नाम। २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दीर्घवंश—संज्ञा पुं० [सं०] नरसल। नरकट।

दीर्घवक्त्र[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घवक्त्रा] लंबे मुँहवाला।

दीर्घवक्त्र[२]—संज्ञा पुं० हाथी।

दीर्घवच्छिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीर। घड़ियाल।

दीर्घवर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घड़ियाल। कुंभीर [को०]।

दीर्घवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ा इंद्रायन। महेंद्रवारुणी। २. पातालगारुड़ी लता। छिरेटा। ३ पलाशी लता। कौरिया पलाश।

दीर्घवृंत—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृन्त] १. श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। २. लताशाल।

दीर्घवृंतक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृन्तक] दे० 'दीर्घवृंत' [को०]

दीर्घवृंता—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृन्ता] इंद्रचिर्भिटी लता।

दीर्घवृंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृन्तिका] एलापर्णी।

दीर्घशर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार। जुन्हरी।

दीर्घशाख—संज्ञा पुं० [सं०] १. सन का पेड़। २. शाल। साखू का पेड़।

दीर्घशाखिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलाम्ली नाम का क्षुप [को०]।

दीर्घशिंबिक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घशिम्बिक] क्षव। एक प्रकार की राई।

दीर्घशूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

दीर्घशूकक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का अन्न। राजान्न [को०]।

दीर्घश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घश्रवस्] दीर्घतमा ऋषि के एक पुत्र जिन्होंने अनावृष्टि होने पर जीविका के लिये वाणिज्य कर लिया था। इस बात का उल्लेख ऋग्वेद में है।

दीर्घश्रुत—वि० [सं०] १. जो दूर तक सुनाई पड़े। २. जिसका नाम दूर तक विख्यात हो।

दीर्घसक्थ—वि० [सं०] लंबी जाँघोंवाला [को०]।

दीर्घसक्थि—संज्ञा पुं० [सं०] शकट। गाड़ी [को०]।

दीर्घसत्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यावज्जीवन कर्तव्य अग्निहोत्र। २. एक यज्ञ जो बहुत दिनों में समाप्त होता था। ३. एक तीर्थ का नाम (महाभारत)।

दीर्घसत्र[२]—वि० जिसने दीर्घसत्र यज्ञ किया हो।

दीर्घसुरत—संज्ञा पुं० वह जो देर तक रति करता हो। कुत्ता।

दीर्घसूक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद।

दीर्घसूत्र—वि० [सं०] दे० 'दीर्घसूत्री'।

दीर्घसूत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में विलंब करने का स्वभाव। हर एक काम में देर लगाने की आदत।

दीर्घसूत्री—वि० [सं० दीर्घसूत्रिन्] प्रत्येक कार्य में विलंब करनेवाला। हर एक काम में जरूरत से ज्यादा देर लगानेवाला। प्रत्येक कार्य में अधिक समय बितानेवाला। देर से काम करनेवाला।

दीर्घस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घस्कन्ध] ताड़ का पेड़।

दीर्घस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] द्विमात्रिक स्वर। दे० 'दीर्घ'।

दीर्घा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन। पृश्निपर्णी। २. ८८ हाथ लंबी ११ हाथ चौड़ी और ८८ हाथ ऊँची नाव (युक्तिकल्पतरु)। ३. घर के बाहर ऊँचा सा बैठने का स्थान। गैलरी।

दीर्घाकार—वि० [सं०] लंबे आकार का। बड़े आकारवाला [को०]।

दीर्घाध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लंबी मंजिल चलता हो। हरकारा। धावन।

दीर्घायु[१]—वि० [सं० दीर्घायुस्] जिसकी आयु बड़ी हो। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवी। चिरजीवी।

दीर्घायु[२]—संज्ञा पुं० १. सेमर का पेड़। २. कौवा। काक। ३. मार्कंडेय ऋषि। ४. जीवक वृक्ष।

दीर्घायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंत। २. सुअर। शूकर। ३. साही नाम का जंतु जिसके शरीर में लंबे लंबे काँटे होते हैं [को०]।

दीर्घायुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी आयु। बड़ी आयु [को०]।

दीर्घालर्क—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार।

दीर्घास्य[१]—वि० [सं०] बड़े मुँहवाला।

दीर्घास्य[२]—संज्ञा पुं० १. हाथी। २. शिव के एक अनुचर का नाम। ३. अग्निकोण में स्थित एक देश (बृहत्संहिता)।

दीर्घाहन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्मकाल जिसमें दिन बड़ा होता है।

दीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बावली। छोटा जलाशय। छोटा तालाब।

विशेष—किसी किसी के मत से १०० धनुष लंबे जलाशय को दीर्घिका कहते हैं।

२. हिंगुपत्री। ३. ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ३½ हाथ ऊँची नाव (युक्ति कल्पतरु)।

दीर्घदोल—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी लकड़ी। बँगरी।

दीर्ण—वि० [सं०] १. फटा हुआ। विदारित। दरका हुआ। २. भयभीत। डरा हुआ (को०)।

दील‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० दिल] दे० 'दिल'। उ०—दील कर झोली मन कर तुमा।—रामानंद०, पृ० ५०।

दीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्ली] दे० 'दिल्ली'।

यौ०—दीलीपति = दिल्लीपति। दिल्ली का स्वामी। उ०—समरसिंघ मेवार दंड देवार अजर जर। दीलीपत्ति अनङ्ग लरन अद्दो सुनलोह लरि।—पृ० रा०, ७।२४।

दीवँक‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीमक] दे० 'दीमक'।

दीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपपट्ट, प्रा० दीवट्ट, दीवट्ठ] पीतल, लकड़ी आदि का डंडे के आकार का आधार जिसपर दीया रखा जाता है। दीपाधार। चिरागदान।

दीवड़ा‡—संज्ञा पुं० [सं० दीप+हिं० ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'दीपक'। उ०—सप्तलोक समान पूरिय ले जाके घर लक्ष्मी कुंआरी चंद्र सूरज दीवड़े।—दक्खिनी०, पृ० २६।

दीवला‡—संज्ञा पुं० [हिं० दीवा+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० दिवली, दियली] दीया। दीपक। उ०—सा बाला प्री चितवइ, खिए खिए रयणि विहाइ। तिए हुर हार पर-ट्ठ्यउ, ज्यूं दीवलउ बुझाइ।—ढोला०, दू० ५७८।

दीवली‡—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावलि] दे० 'दीपावली'। उ०—दीवल्यी कई आगही, धूरि दसरावै चाल्यो राव।—बी० रासो, पृ० १०६।

दीवाँन(प)—संज्ञा पुं० [फा० दीवान] राज्यसभा। सभा। दीवान। उ०—यह जानि साहि दीवाँन किय, खाँन बहुत्तरि इक्क हुव।—ह० रासो, पृ० ६४।

दीवा¹—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दीपक। दीया। उ०—मथि करि दीपक कीजिये, सब घटि भया प्रकास। दादू दीवा हाथि करि, गया निरंजन पास।—दादू०, पृ० ७।

दीवा²—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ध्रव'।

दीवाण‡—संज्ञा पुं० [र० दीवान] १. दीवान। प्रधान मंत्री। २. आत्मा। (लाक्ष०)] उ०—दादू गाफिल छोबनै, आहे मंझि मुकाम। दरगह मैं दीवाण तत, पसे न बैठो पांण।—दादू०, पृ० ८८।

दीवान—संज्ञा पुं० [अ०] १. राजा या बादशाह के बैठने की जगह। राजसभा। दरबार। कचहरी।

यौ०—दीवान आम। दीवाने खास।

२. मंत्री। वजीर। राज्य का प्रबंध करनेवाला। प्रधान। उ०—भक्त ध्रुव की अटल पदवी राम के दीवान।—(शब्द०)।

यौ०—दीवानखालसा।

३. गजलों के संग्रह की पुस्तक। ४. एक प्रकार का बड़ा सोफा जिस पर सोया जा सके।

दीवान आम—संज्ञा पुं० [अ०] १. आम दरबार। ऐसा दरबार जिसमें राजा या बादशाह से सब लोग मिल सकते हैं। २. वह स्थान या भवन जहाँ आम दरबार लगता हो।

दीवान आलम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दीवान आम'।

दीवानखाना—संज्ञा पुं० [फा० दीवान खानह्] घर का वह बाहरी हिस्सा या कमरा जहाँ बड़े आदमी बैठते और सब लोगों से मिलते हैं। बैठक।

दीवानखालसा—संज्ञा पुं० [अ० दीवान खालसह्] वह अधिकारी जिसके पास राजा या बादशाह की मुहर रहती है।

दीवानखास—संज्ञा पुं० [अ० दीवानखास] १. खास दरबार। ऐसी सभा जिसमें राजा या बादशाह मंत्रियों तथा चुने हुए प्रधान लोगों के साथ बैठता है। २. वह जगह या मकान जहाँ खास दरबार होता हो।

दीवानगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पागलपन। दीवानापन (को०)।

दीवाना—वि० [फ़ा०] [वि० स्त्री० दीवानी] पागल। सिड़ी। विक्षिप्त।

मुहा०—किसी के पीछे दीवाना होना = किसी के लिये हैरान होना। किसी (वस्तु या व्यक्ति) के लिये व्यग्र होना।

दीवानापन—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवाना+हिं० पन (प्रत्य०)] पागलपन। सिड़ीपन। विक्षिप्तता।

दीवानी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दीवान का पद। दीवान का ओहदा। २. वह अदालत जिसमे दो फरीकों के बीच किसी तरह की हकीयत का फैसला हो। वह न्यायालय जो संपत्ति आदि संबंधी स्वत्व का निर्णय करे। व्यवहार संबंधी न्यायालय।

दीवानी—वि० स्त्री० [फ़ा० दीवाना] पगली। बावली।

दीवार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पत्थर, ईंट मिट्टी आदि को नीचे ऊपर रखकर उठाया हुआ परदा जिससे किसी स्थान को घेर कर मकान आदि बनाते हैं। भीत।

मुहा०—दीवार उठाना = दीवार बनाना। भीत खड़ी करना दीवार खड़ी करना = दीवार बनाना।

२. किसी वस्तु का घेरा जो ऊपर उठा हो। जैसे, टोपी की दीवार, जूते की दीवार, चूल्हे की दीवार।

दीवारगीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दीया आदि रखने का आधार जो दीवार में लगाया जाता है। उ०—सुवर्णमय दीवारगीर तथा मोतियों की झालर बनाओ।—कबीर मं०, पृ० ४५०।

दीवारगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवारगीर] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो दीवार में लगाया जाता है। पिछवाई।

दीवाल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'दीवार'।

दीवालदंड—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवाल+हिं० दंड] एक प्रकार की कसरत या दंड जो दीवार पर हाथ टिकाकर करते हैं।

दीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दिवाला] दे० 'दिवाला'।

दीवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] कार्तिक की अमावास्या को होनेवाला एक उत्सव जिसमें संध्या के समय घर में भीतर

बाहर बहुत से दीपक जलाकर पंक्तियों में रखे जाते हैं और लक्ष्मी का पूजन होता है।

विशेष—जिस दिन प्रदोष काल में अमावास्या रहेगी उसी दिन दीवाली होगी और लक्ष्मी का पूजन किया जायगा। यदि अमावास्या लगातार दो दिन प्रदोषकाल में पड़े तो दूसरे दिन की रात को दीवाली मानी जायगी और वह रात सुखरात्रिका कहलावेगी। यदि अमावास्या प्रदोषकाल में पड़े ही न, तो पहले दिन लक्ष्मीपूजा और दूसरे दिन दीपदान होगा क्योंकि पार्वण श्राद्ध उसी दिन होगा। दीवाली के दिन लोग जूआ खेलना भी कर्तव्य समझते हैं।

दीवि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नाम का पक्षी।

दीवी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीवी] दीवट। चिरागदान।

दीसना—क्रि० अ० [सं० दृश् (= देखना); प्रा० दीसना] दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—(क) बिदुमन प्रभु बिराटमय दीसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जट मुकुट गंग दीसहि उतंग। सोभंत चंद लिल्लाट रंग।—पृ० रा०, ७। १०।

दीसग्ना—क्रि० अ० [सं० दृश, प्रा० दीस] दे० 'दीसना'। उ०—परतष ही दीसरे प्राणी, पिरभू भजण तणों परताप।—रघु० रू०, पृ० २३।

दीसहना(पु)†—क्रि० अ० [सं० दृश; प्रा० दीस] दिखाई पड़ना। दृगोचर होना। उ०—जत गरल कंठ दीसहति बीय। जिम चित्त प्रगट संसारनीय।—पृ० रा०, ७। ६।

दीहंध—संज्ञा पुं० [सं० दिवस प्रा० दीह + सं० अन्ध] वह जो दिन में देख न सके। उलूक। उल्लू।

दीह(पु)[1]—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दीह] लंबा। बड़ा। उ०—बहु तामहँ दीह पताक लसै। जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसै।—केशव (शब्द०)।

दीह(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दिग्रस, दिग्रह, दीह] दिन। दिवस। उ०—सोवे खाय करे नहिं सुकृत, सोवे दीह खलीता।—रघु० रू०, पृ० १६।

दीहड़ा, दीहाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दीह + ड़ा (प्रत्य०)] दिन। दिहाड़ा। उ०—पढ़े सु कवि जो वंस प्रवाड़ा। हुवै बतीत आव दीहाड़ा।—रा० रू०, पृ० १५।

दुंका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] (अनाज का) छोटा कण। कन। दाना। किनकी।

दुंदुक—वि० [सं० दुण्डुक] छली। धूर्त। बेईमान। झूठा (को०)।

दुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डुभ] एक प्रकार का विषहीन साँप।

दुंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. दो मनुष्यों के बीच होनेवाला युद्ध या झगड़ा। २. ऊधम। उत्पात। उपद्रव। हलचल। उ०—तब ही सूरज के सुभट निकट मचायो दुंद। निकसि सकैं नहिं एकहू करथो कटक मसमुंद।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

३. जोड़ा। युग्म। उ०—बरनैं दीनदयाल दरसि पददुंद अनंदौ।—दीनदयाल (शब्द०)।

दुंद[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। उ०—(क) चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बाजत ढोल दुंद औ भेरी। मांदर तूर झाँझ चहुं फेरी।—जायसी (शब्द०)।

दुंदुम—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दम] एक प्रकार का धौंसा या नगाड़ा [को०]

दुंदु[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दु] १. श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का नाम। २. एक प्रकार का नगाड़ा [को०]।

दुंदु(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दुंद] जन्म और मरण का झंझट।

दुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभ] १. नगाड़ा। धौंसा। २. जल का सर्प। डोड़हा (को०)। ३. शिव का एक नाम (को०)। ४. एक प्रकार की लंबी माला [को०]।

दुंदुभि[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभि] १. वरुण। २. विष। ३. क्रौंच द्वीप का एक विभाग। ४. एक पर्वत का नाम। ५. पासे का एक दाँव। ६. एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका था। इसपर मतंग ऋषि ने शाप दिया था, जिसके कारण बालि उस पर्वत के पास नहीं जा सकता था। ७. विष्णु का नाम (को०)। ८. कृष्ण (को०)। ९. संवत्सरों के क्रम में ५६ वें संवत्सर का नाम (को०)।

दुंदुभि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। धौंसा। उ०—सुर सुमन बरसहि हरख संकुल बाज दुंदुभि गहगही। संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही।—मानस, ६।१०२।

दुंदुभिक—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभिक] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

दुंदुभिस्वन—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभिस्वन] सुश्रुत में लिखी हुई एक प्रकार की विषचिकित्सा।

विशेष—बच, आम, गूलर, आँवला, अंकोल इत्यादि बहुत सी लकड़ियों का गोमूत्र में क्षार बनाकर और उसमें और बहुत सी ओषधियाँ मिलाकर लेप बनावे। इस लेप को दुंदुभि, तोरण पताका इत्यादि में पोते। ऐसे तोरण, दुंदुभि आदि के दर्शन, श्रवण से विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

दुंदुभी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'दुंदुभ'। उ०—(क) तब देवन दुंदुभी बजाई।—तुलसी (शब्द०) (ख) मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।—तुलसी (शब्द०)।

दुंदुभी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] १. पासे का एक दाँव। २. एक गंधर्वी का नाम [को०]।

दुंदुभ्याघात—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभ्याघात] दुंदुभी बजानेवाला [को०]।

दुंदुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुमा] धौंसे की आवाज। नगाड़े की ध्वनि [को०]।

दुंदुमार—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुमार] १. दे० 'धुंधुमार'। २. बिडाल। बिलार (को०)। ३. गृह से उद्गत धूम। घर से निकलनेवाला धुआँ (को०)। ४. लाल रंग का एक कीट (को०)।

दुंदुह(५)—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डुभ] पानी का साँप। डेड़हा।

दुंदुर(५)—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] मूसा। मूस।

दुंबक—संज्ञा पुं० [सं० दुम्बक] दे० 'दुंबा' (को०)।

दुंबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुम्बालह्] एक प्रकार का मेढ़ा, जिसकी दुम चक्की के पाट की तरह गोल और भारी होती है।

विशेष—इसका ऊन बहुत अच्छा होता है। इस प्रकार के मेढ़े पंजाब और काश्मीर से लेकर अफगानिस्तान और फारस तक होते हैं। भारतवर्ष में कई स्थानों पर ऐसे मेढ़ों की दोगली जाति उत्पन्न की गई है पर इसमें विशेष सफलता नहीं हुई है। बात यह है कि सीड़वाले प्रदेशों में प्रायः दुम में कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

दुंबाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुबालह्] १. चौड़ी पूँछ। २. नाव की पतवार। ३. जहाज का पिछला हिस्सा।

दुंबुर—संज्ञा पुं० [सं० उदुम्बर] गूलर की जाति का एक पेड़, जो हिमालय के किनारे चेनाब से लेकर पूरब की ओर बराबर मिलता है।

विशेष—यह वृक्ष बंगाल, उड़ीसा और बरमा में भी नदियों या नालों के किनारे पर होता है। इसपर लाख पाई जाती है। इसकी छाल के रेशों से छप्पर का कोरा, थान आदि बाँधी जाती हैं। बरसात में इसके फल पकते हैं और खाए जाते हैं। पर इन फलों का स्वाद फीका होता है। इसकी पत्तियाँ कुछ खरदरी होती हैं और लकड़ी माजने के काम में आती हैं।

दुँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा।

दुँदका—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ना पेरने का कोल्हू।

दुःकुंत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] दे० 'दुष्यंत'।

दुःख—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक हो। कष्ट। क्लेश। सुख का विपरीत भाव। तकलीफ।

विशेष—सांख्यशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने गए हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग, व्याधि आदि शारीरिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख हैं। आधिभौतिक दुःख वह है जो स्थावर, जंगम (पशु, पक्षी साँप मच्छड़ आदि) भूतों के द्वारा पहुँचता है। आधिदैविक जो देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुँचता है, जैसे,—आँधी, वर्षा, वज्रपात, शीत, ताप इत्यादि। सांख्य दुःख को रजोगुण का कार्य और चित्त का एक धर्म मानता है, आत्मा को उससे अलग रखता है। पर न्याय और वैशेषिक दुःख को आत्मा का धर्म मानते हैं। त्रिविध दुःखों की निवृत्ति को सांख्य ने अत्यंत पुरुषार्थ कहा है और आत्मजिज्ञासा का उद्देश्य बतलाया है। प्रधान दुःख जन्म और मरण हैं जिनसे लिंगशरीर की निवृत्ति के बिना चेतन या पुरुष छुटकारा नहीं पा सकता है। इस प्रकार की मुक्ति या अत्यंत दुःखनिवृत्ति तत्वज्ञान द्वारा—प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान द्वारा—ही संभव है। वेदांत ने सुखदुःख ज्ञान को अविद्या कहा है। इसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा हो जाती है।

योग की परिभाषा में दुःख एक प्रकार का चित्तविक्षेप या अंतराय है जिससे समाधि में विघ्न पड़ता है। व्याधि इत्यादि चित्तविक्षेपों के अतिरिक्त योग ने चित्त के राजस कार्य को दुःख कहा है। किसी विषय से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है वही दुःख है। इसी दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है। जब किसी विषय से चित्त को दुःख होगा तब उसमें द्वेष उत्पन्न होगा। योग परिणाम, ताप और संस्कार तीन प्रकार के दुःख मानकर सब वस्तुओं को दुःखमय कहता है। परिणाम दुःख वह है जिसका अन्यथाभाव हो अर्थात् जो भविष्य में अवश्य पहुँचे। ताप दुःख वह है जो वर्तमान काल में कोई भोग रहा हो और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हो।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दुःख उठाना = कष्ट सहना। तकलीफ सहना। ऐसी स्थिति में पड़ना जिससे सुख या शांति न हो। दुःख देना = कष्ट पहुँचाना। दुःख पहुँचना = दुःख होना। दुःख पहुँचाना = दे० 'दुःख देना'। दुःख पाना = दे० 'दुःख उठाना'। दुःख बटाना = सहानुभूति करना। कष्ट या संकट के समय साथ देना। दुःख भरना = कष्ट या संकट के दिन काटना। दुःख भुगतना या भोगना = दे० 'दुःख उठाना'।

२. संकट। आपत्ति। विपत्ति।

मुहा०—(किसी पर) दुःख पड़ना = आपत्ति आना। संकट उपस्थित होना।

३. मानसिक कष्ट। खेद। रंज। जैसे,—उसकी बात से मुझे बहुत दुःख हुआ।

मुहा०—दुःख मानना = खिन्न होना। संतप्त होना। रंजीदा होना। दुःख बिसराना = (१) चित्त से खेद निकालना। शोक या रंज की बात भूलना। (२) जी बहलाना। दुःख लगना = मन में खेद होना। रंज होना।

४. पीड़ा। व्यथा। दर्द। ५. व्याधि। रोग। बीमारी। जैसे,—इन्हें बुरा दुःख लगा है।

मुहा०—दुःख लगना = रोग घेरना। व्याधि होना।

दुःखकर—वि० [सं०] जो दुःख उत्पन्न करे। क्लेश पहुँचानेवाला।

दुःखग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] संसार।

दुःखछिन्न—वि० [सं०] १. कठोर। कठिन। सख्त। २. कष्टग्रस्त। पीड़ित (को०)।

दुःखछेद्य—वि० [सं०] कठिनाई से काटा जाने योग्य। २. कठिन (को०)।

दुःखजीवी—वि० [सं० दुःखजीविन्] कष्ट से जीवन बितानेवाला।

दुःखता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःख होने का भाव। बेचैनी। कष्ट (को०)।

दुःखत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के दुःखों का समूह।

दुःखद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदा] दुःखदायी। कष्ट पहुँचानेवाला। कष्टकर।

दुःखदग्ध—वि० [सं०] कष्ट में पड़ा हुआ । संतप्त । क्लेशित ।

दुःखदाता—संज्ञा पुं० [सं० दुःखदातृ] [स्त्री० दुखदात्री] दुःख पहुँचानेवाला मनुष्य । कष्ट देनेवाला व्यक्ति ।

दुःखदायक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदायिका] दुःख या कष्ट पहुँचानेवाला । जिससे दुःख हो ।

दुःखदायी—वि० [सं० दुःखदायिन्] [वि० स्त्री० दुःखदायिनी] दुःख देनेवाला । जिससे कष्ट पहुँचे ।

दुःखदोह्या—वि० स्त्री० [सं०] (गाय) जो कठिनता से दुही जा सके । जो जल्दी दुहने न दे ।

दुःखनिवह—वि० [सं०] दुःसह ।

दुःखप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट देनेवाला । दुःखद ।

दुःखप्राय—वि० [सं०] दे० 'दुःखबहुल' ।

दुःखबहुल—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखपूर्ण । क्लेश से भरा हुआ ।

दुःखमय—वि० [सं०] दुःखपूर्ण । क्लेश से भरा हुआ ।

दुःखलभ्य—वि० [सं०] जो दुःख या कष्ट से प्राप्त हो सके । जो कठिनता से मिल सके ।

दुःखलोक—संज्ञा पुं० [सं०] संसार ।

दुःखशील—वि० [सं०] कष्टसहिष्णु । दुःख सहने की क्षमता रखनेवाला [को०] ।

दुःखसाध्य—वि० [सं०] दुःख से होने योग्य । मुश्किल से होने योग्य । मुश्किल से होनेवाला (काम) । जिसका करना कठिन हो ।

दुःखांत¹—वि० [सं० दुःखान्त] १. जिसके अंत में दुःख हो । जिसके परिणाम में कष्ट हो । २. जिसके अंत में दुःख का वर्णन हो । जैसे, दुःखांत नाटक ।

विशेष—प्राचीन यूनान के साहित्य ग्रंथों में नाटक दो प्रकार के कहे गए हैं—सुखांत और दुःखांत, दुःखावसानी या त्रासदी अतः योरप के साहित्य में नाटक या उपन्यास के दो भेद माने जाते हैं । पर भारतीय आचार्यों ने इस प्रकार का भेद नहीं किया है ।

दुःखांत²—संज्ञा पुं० १. दुःख का अंत । क्लेश की समाप्ति । २. दुःख की पराकाष्ठा । अत्यंत अधिक कष्ट । तकलीफ की हद ।

दुःखातीत—वि० [सं०] दुःख से परे । कष्ट से मुक्त [को०] ।

दुःखान्वित—वि० [सं०] दुःखी । दुःख में पड़ा हुआ [को०] ।

दुःखायतन—संज्ञा पुं० [सं०] संसार । जगत् ।

दुःखार्त—वि० [सं०] कष्ट से व्याकुल ।

दुःखित—वि० [सं०] पीड़ित । क्लेशित । जिसे कष्ट या तकलीफ हो ।

दुःखिनी—वि० स्त्री० [सं०] जिसपर दुःख पड़ा हो । दुखिया ।

दुःखी—वि० [सं० दुःखिन्] [वि० स्त्री० दुःखिनी] जो कष्ट या या तकलीफ में हो ।

दुःशकुन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शकुन । यात्रा आदि में दिखाई पड़नेवाला कोई ऐसा लक्षण जिसका बुरा फल समझा जाता है । जैसे, यात्रा में तेली का मिलना ।

दुःशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गांधारी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र की कन्या जो सिंधु देश के राजा जयद्रथ को ब्याही थी ।

विशेष—जब महाभारत के युद्ध में जयद्रथ मारा गया तब इसने अपने छोटे से बालक सुरथ को राजसिंहासन पर बैठाकर बहुत दिनों तक राजकाज चलाया था । पांडवों के अश्वमेध के समय जब अर्जुन घोड़े को लेकर सिंधु देश में पहुँचे । तब सुरथ ने अपने पिता को मारनेवाले का युद्धार्थ आगमन सुनकर भय से प्राणत्याग कर दिया । अर्जुन ने इस बात को सुनकर सुरथ के बालक पुत्र को सिंहासन पर बैठाया ।

दुःशासन¹—वि० [सं०] जिसपर शासन करना कठिन हो । जो किसी का दबाव न माने ।

दुःशासन²—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के १०० लड़कों में से एक जो दुर्योधन का अत्यंत प्रेमपात्र और मंत्री था ।

विशेष—यह अत्यंत क्रूरस्वभाव था । पांडव लोग जब जुए में हार गए थे तब यही द्रौपदी को पकड़कर सभास्थल में लाया था और उसका वस्त्र खींचना चाहता था । इसपर भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसका रक्तपान करूँगा और जबतक इसके रक्त से द्रौपदी के बाल न रँगूगा तबतक वह बाल न बाँधेगी । महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अपनी यह भयंकर प्रतिज्ञा पूरी की थी ।

दुःशील—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का । दुर्विनीत ।

दुःशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता । दुःस्वभाव ।

दुःशोध—वि० [सं०] १ जिसका सुधार कठिन हो । २. (धातु आदि) जिसका शोधना कठिन हो ।

दुःश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह दोष जो कानों को कर्कश लगनेवाले वर्णों के आने से होता है । श्रुतिकटु दोष ।

दुःषम—वि० [सं०] निंदनीय । निंद्य ।

दुःषेध—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो ।

दुःसंकल्प¹—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्कल्प] बुरा इरादा । खोटा विचार ।

दुःसंकल्प²—वि० बुरा संकल्प करनेवाला । बुरा इरादा रखनेवाला । खोटी नीयत का ।

दुःसंग—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्ग] बुरा साथ । कुसंग । बुरी सोहबत ।

दुःसंधान—संज्ञा पुं० [सं० दुःसन्धान] केशवदास के अनुसार काव्य में एक रस जो उस स्थल पर होता है जहाँ एक तो अनुकूल होता है और दूसरा प्रतिकूल, एक तो मेल की बात करता है और दूसरा बिगाड़ की । यथा, एक होय अनुकूल जहँ दूजो है प्रतिकूल । केशव दुःसंधान रस शोभित तहाँ समूल । यह पाँच प्रकार के अनरसों में से माना गया है ।

दुःसह—वि० [सं०] जिसका सहन करना कठिन हो । जो कष्ट से सहा जाय । अत्यंत कष्टदायक । जैसे, दुःसह पीड़ा ।

दुःसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी ।

दुःसाध—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य' [को०] ।

दुःसाधी—संज्ञा पुं० [सं० दुःसाधिन्] द्वारपाल ।

दुःसाध्य—वि० [सं०] १. जिसका साधन कठिन हो । जिसका

करना मुश्किल हो। जैसे, दुःसाध्य कार्य। २. जिसका उपाय कठिन हो। जैसे, दुःसाध्य रोग।

दुःसार†—वि० [सं० दुःशल्य] बुरे शल्यवाला (घाव)। वह (घाव या चोट) जो बराबर पीड़ा देती हो। उ०—लालन लोटहि पोट चोट जब्बर उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्राननि में पागी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५।

दुःसाहस—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यर्थ का साहस। ऐसा साहस जिसका परिणाम कुछ न हो, या बुरा हो। ऐसी बात करने की हिम्मत जिसका होना असंभव हो या जिसका फल बुरा हो। जैसे,—उसे इस काम से रोकने जाना तुम्हारा दुःसाहस मात्र है। (ख) चलती गाड़ी से कूदने का दुःसाहस कभी मत करना। २. अनुचित साहस। ऐसी बात करने की हिम्मत जो अच्छी न समझी जाती हो। ढिठाई। धृष्टता। जैसे,—बड़ों की बात का उत्तर देना तुम्हारा दुःसाहस है।

दुःसाहसिक—वि० [सं०] जिसे करने का साहस करना अनुचित या निष्फल हो। जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो। जैसे, दुःसाहसिक कार्य।

दुःसाहसी—वि० [दुःसाहसिन्] बुरा साहस करनेवाला।

दुःस्थ—वि० [सं०] १. जिसकी स्थिति बुरी हो। दुर्दशाग्रस्त। २. निर्धन। दरिद्र। ३. मूर्ख।

दुःस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी अवस्था। दुरवस्था। दुर्दशा।

दुःस्पर्श¹—वि० [सं०] १. न छूने योग्य। जिसका छूना कठिन हो। २. जिसे पाना कठिन हो।

दुःस्पर्श²—संज्ञा पुं० १. कपिकच्छु। केंवाच। २. लता करंज। ३. कंटकारी। ४. आकाशगंगा।

दुःस्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कँटीदार मकोय। दे० 'दुःस्पर्श'।

दुःस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शस्त्र (को०)।

दुःस्वप्न—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वप्न। ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता है। उ०—हुआ एक दुःस्वप्न सा सखि कैसा उत्पात। जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात।—साकेत, पृ० २५१।

विशेष—क्या क्या स्वप्न देखने से क्या क्या फल होता है इसका वर्णन विस्तार के साथ ब्रह्मवैवर्तपुराण में है। स्वप्न में यदि कोई हँसे, नाचना गाना देखे तो समझे कि विपत्ति आनेवाली है। यदि अपने को तेल मलते, गदहे, भैंसे या ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा को जाते देखे तो समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है। इसी प्रकार और बहुत से फल कहे गए हैं।

दुःस्वभाव¹—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा स्वभाव। दुःशीलता। बदमिजाजी।

दुःस्वभाव²—वि० दुःशील। दुष्ट स्वभाव का।

दुःस्वरनाम—संज्ञा पुं० [सं०] वह पापकर्म जिसके उदय से प्राणियों के कठोर और हीन स्वर होते हैं (जैन)।

दु—वि० [सं० द्वि, प्रा० दु या हिं० दो] 'दो' शब्द का संक्षिप्त रूप जो समास बनाने के काम में आता है। जैसे, दुविधा, दुचित्ता।

दुअ(पु)—वि० [सं० द्विक, प्रा० दुअ] दोनों। युगल। उ०—दामिनि चमक चाह अधिकाई। दुअऊ चितै रहै चित लाई।—इंद्रा०, पृ० ६०।

दुअन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस् या दुर्जन] दे० 'दुवन'।

दुअन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि + आणक; प्रा० दु + आणक; हिं० आना] रुपए का अष्टमांश सिक्का जिसका चलन अब बंद हो गई है।

दुअरवा‡—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'दुआर', 'दुवार'। उ०—पियवा आय दुअरवा, उठि किन देख। दुरलभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख।—रहीम (शब्द०)।

दुअरिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वार (=दुआर) + इया (प्रत्य०)] दे० 'दुआरी' 'दुवारी'। छोटा दरवाजा। उ०—झाकहु बइठ दुअरिया, मीजहु पाय। पिय रेखि गरमिया, बिजन डोलाय।—रहीम (शब्द०)।

दुआ¹—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. प्रार्थना। दरखास्त। बिनती। याचना।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दुआ माँगना = प्रार्थना करना।

२. आशीर्वाद। असीस।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—दुआ लगना = आशीर्वाद का फलीभूत होना।

दुआ²—संज्ञा पुं० [हिं० दो] गले में पहनने का एक गहना।

दुआगीर—वि० [अ० दुआ + फ़ा० गीर] दे० 'दुआगो'। उ०—दुआगीर इक्क सुलक्खं सु चल्ले।—ह० रासो०, पृ० ६७।

दुआगो—वि० [अ० दुआ + फ़ा० गो] दुआ करनेवाला। शुभचिंतक। उ०—और कोई दुआगो बनकर पीछा नहीं छोड़ते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

दुआगोई—संज्ञा स्त्री० [अ० दुआ + फ़ा० गोई] दुआ देने की क्रिया या भाव (को०)।

दुआदस(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—ससिमुख अंग मलैगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १८१।

दुआब—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुआबह्] दे० 'दुआबा'।

दुआबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुआबह्] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दुआय†—संज्ञा स्त्री० [अ० दुआ] दे० 'दुआ'। उ०—दुआय सलाम निवाज न कोई।—प्राण०, पृ० १६०।

दुआर†—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] [स्त्री० दुआरी] द्वार। उ०—घरी पहर होइ तो बचाए रहौ मेरी बीर देहरी दुआर दुख आठहू पहर को।—ठाकुर०, पृ० ३।

दुआरा†—संज्ञा पुं० दे० 'दुआर'। उ०—(क) लंका बाँके चारि दुआरा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थोड़ी देर में उस दुखी तिरिया ने कहा, मेरा जी ठिकाने नहीं है, झूठे ही मैं इधर उधर सिर मार रही हूँ, देखो दुआरा यही है, इसको खोलो।—ठेठ०, पृ० ३८।

दुआरी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दुआर] छोटा दरवाजा । उ॰—यह तो संत अविकल अधिकारी । केहि कारण आवै केहु दुआरी । —कबीर सा॰, पृ॰ ४८५ ।

दुआल—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. चमड़ा । चमड़े का तसमा । २. रिकाब का तसमा ।

दुआत्मा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] लकड़ी का एक बेलन जिसे सुनहरी छपी हुई छींटों के छापों को बैठाने के लिये फेरते हैं ।

दुआली—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ द्वाल (=तसमा)] खराद का तसमा । खराद की बद्धी । सान की बद्धी । चमड़े का वह तसमा जिससे कसेरे कुन, सिकलीगर सान और बढ़ई खराद घुमाते हैं ।

दुइ†—वि॰ [सं॰ द्वि] दे॰ 'दो' । उ॰—(क) हमारु एक पउआ दुइ उपस्थित सेव (कें) कह ।—वर्ण॰, पृ॰ १२ । (ख) दुइ अंक अजपा जपहु अंतर तजहु सबै तेवान ।—जग॰ बानी, पृ॰ ८६ । (ग) साधो मन महँ करहु बिचार । दुइ अच्छर भजि उतरहु पार ।—जग॰ बानी, पृ॰ ६७ ।

दुइज(पु)†[२]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ द्वितीय, प्रा॰ दुईज] पाख की दूसरी तिथि । द्वितीया । दूज ।

दुइज—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्विज] दूज का चाँद । द्वितीया का चंद्रमा । उ॰—कहौं ललाट दुइज कइ जोती । दुइजहि जोति कहाँ जग ओती । —जायसी (शब्द॰) ।

दुई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दो + ई] दो की भावना । द्वैत भाव । भेद-भाव । उ॰—कबीरा इश्क का माता दुई को दूर कर दिल से । जो चलना राह नाजुक हैं हुवन सर बोझ भारी क्या ।—कबीर॰ श॰, भा॰ १, पृ॰ ७० ।

दुऊ—वि॰ [सं॰ द्वौ] दे॰ 'दोनों' । उ॰—देखि दुऊ भए पायन लीने । —केशव (शब्द॰) ।

दुओ—वि॰ [सं॰ द्वौ] दे॰ 'दोनों' ।

दुकठिया(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दो+काठी (=शरीर)] दो होने की भावना । द्वैत भाव । अपने परायेपन की भावना । दुई । उ॰—अबको बार दुकठिया छूटे तुम लायक यहि धोरी ।—मीरा॰ श॰, पृ॰ ७२ ।

दुकड़हा—वि॰ [हिं॰ दुकड़ + हा (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ दुकड़ही] १. जिसका मूल्य एक दुकड़ा हो । २. तुच्छ । नाचीज । ३. नीच । कमीना । अनादृत ।

दुकड़ा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्विक + हिं॰ ड़ा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ दुकड़ी] १. वह वस्तु जो एक साथ या एक में लगी हुई दो दो हों । जोड़ा । जैसे, धोतियों का दुकड़ा, अंगोछों का दुकड़ा । २. वह जिसमें कोई वस्तु दो दो हों । वह जिसमें किसी वस्तु का जोड़ा हो । जैसे, चारपाई की दुकड़ी बुनावट, दुकड़ी गाड़ी । ३. दो दमड़ी । छदाम । एक पैसे का चौथाई भाग ।

विशेष—इसका हिसाब कौड़ियों से होता है । कहीं कहीं पाई को दुकड़ा मान लेते हैं यद्यपि उसका मूल्य एक पैसे का तिहाई होता है ।

दुकड़ी[१]—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ दुकड़ा] जिसमें कोई वस्तु दो दो हो ।

दुकड़ी[२]—संज्ञा स्त्री॰ १. चारपाई की वह बुनावट जिसमें दो दो बाध एक साथ बुने जाते हैं । २. दो बूटियोंवाला ताश का पत्ता । ३. दो घोड़ों की बग्घी । उ॰—जो बेगम साहब इस ठस्से से दुकड़ी पर सवार हैं अभी कल तक सराय में अलारक्खी के नाम से मशहूर थी ।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ ३४४ । ४. घोड़ों का सामान जो दोहरा हो ।

दुकड़ी[३]—संज्ञा स्त्री॰[हिं॰ दो+कड़ी]१. वह लगाम जिसमें दो कड़ियाँ होती हैं । २. दो कड़ियों का बर्तन, कड़ाही कंडाल आदि ।

दुकना†—क्रि॰ अ॰ [देश॰] लुकना । छिपना ।

दुकान—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] वह स्थान जहाँ बेचने के लिये चीजें रखी हों और जहाँ ग्राहक जाकर उन्हें खरीदते हों । सौदा बिकने का स्थान । माल बिकने की जगह । हट्ट । हट्टी । जैसे, कपड़े की दुकान, हलवाई की दुकान, बिसाती की दुकान ।

क्रि॰ प्र॰—खोलना ।—बंद करना ।

मुहा॰—दुकान उठाना = (१) कारबार बंद करके दुकान छोड़ देना । (२) दुकान बंद करना । दुकान करना = दुकान लेकर किसी चीज की बिक्री प्रारंभ करना । दुकान जारी करना । दुकान खोलना । जैसे,—एक महीने से उन्होंने चौक में गोटे की दुकान की है । दुकान खोलना=दे॰ 'दुकान करना' । दुकान चलना = दुकान में होनेवाले व्यवसाय की वृद्धि होना । जैसे,—आजकल शहर में उनकी दुकान खूब चलती है । दुकान बढ़ाना = दुकान बंद करना । दुकान में बाहर रखा हुआ माल उठाकर किवाड़े बंद करना । जैसे—(क) उनकी दुकान रात को नौ बजे बढ़ती है । (ख) आज न्यौते में जाना था इसीलिये दुकान जल्दी बढ़ा दी । दुकान लगाना = (१) दुकान का असबाब फैलाकर यथा-स्थान बिक्री के लिये रखना । वस्तुओं को बेचने के लिये फैलाकर रखना । जैसे, —जरा ठहरो दुकान लगा लें तो दें । (२) बहुत सी चीजों को इधर उधर फैलाकर रख देना । जैसे, —वह लड़का जहाँ बैठता है वहाँ दुकान लगा देता है ।

दुकानदार—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] १. दुकान का मालिक । दुकान पर बैठकर सौदा बेचनेवाला । वह जिसकी दुकान हो । दुकान-वाला । २. वह जिसने अपनी आय के लिये कोई ढोंग रच रखा हो । जैसे,—उन्हें साधु या त्यागी कौन कहता है, वे तो पूरे दुकानदार हैं ।

दुकानदारी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. दुकान या बिक्री बट्ट का काम । दुकान पर माल बेचने का काम । २. ढोंग रचकर रुपया पैदा करने का काम । जैसे,—यह सब बाबा जी की दुकानदारी है ।

दुकाना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰ दुकाना] छिपाना । दुराना । उ॰—बाल के बालक जिय कहुँ लहैं । कब लग बाल दुकाए रहै । —नंद ग्रं॰, पृ॰ १४० ।

दुकाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुष्काल] अन्नकष्ट का समय । अकाल । दुर्भिक्ष । उ॰—(क) कलिनाम कामतरु राम को । दलन-

हार वारिद दुकाल दुख दोष घोर घनघाम को।—तुलसी (शब्द०) (ख) कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिन अन्न दुःखी सब लोग मरै।—तुलसी (शब्द०)।

दुकुलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है।

दुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षौम वस्त्र। सन या तीसी के रेशे का बना कपड़ा। २. महीन कपड़ा। बारीक कपड़ा। ३. वस्त्र। कपड़ा। उ०—खग मृग परिजन, नगर वन, बलकल विमल दुकूल। नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल।—तुलसी (शब्द०)। ४. बौद्धों के शाम जातक के अनुसार शाम के पिता का नाम जो एक मुनि थे।

विशेष—शाम जातक में लिखा है कि एक दिन दुकूल अपनी पत्नी परिखा के सहित फलमूल की खोज में बन में गए। वहाँ किसी दुर्घटना से दोनों अंधे हो गए। शाम दोनों को ढूँढ़कर बन से लाए और अनन्य भाव से दोनों की सेवा करने लगे। एक दिन संध्या को वे अंधे मातापिता को छोड़ नदी से जल लाने गए वहाँ किसी राजा ने मृग समझकर उनपर तीर चलाया। तीर लगने से शाम की मृत्यु हो गई। राजा शाम के अंधे मातापिता के पास आए और उन्होंने उनसे सब समाचार कह सुनाया। सबके सब मृत शाम के पास शोक करते पहुँचे। परिखा ने कहा यदि मेरा पुत्र सच्चा ब्रह्मचारी रहा हो और बुद्धदेव में उसकी सच्ची भक्ति रही हो तो मेरा पुत्र जी जाय। इस प्रकार की सत्य क्रिया करने पर शाम जी उठे और एक देवी ने प्रकट होकर उनके माता पिता का अंधापन भी दूर किया।

बौद्धों का यह आख्यान रामायण में दिए हुए अंधक मुनि के आख्यान का अनुकरण है जिसमें उनके पुत्र सिंधु को महाराज दशरथ ने मारा था। अंतर इतना था कि रामायण में दोनों अंधों का पुत्रशोक से प्राणत्याग करना लिखा है और शाम जातक में शाम का जी उठना और अंधों का दृष्टि पाना लिखा गया है।

दुकूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिता। नदी।

दुकृत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कृत] दे० 'दुष्कृत'। उ०—तुम हित कौन दुकृत नहि किए। अन्नग फल पारि में पग दिए।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

दुकेला—क्रि० वि० [हिं० दुक्का+एला (प्रत्य०)] [स्त्री० दुकेली] जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो।

यौ०—अकेला दुकेला=जिसके साथ कोई न हो या एक ही दो आदमी हों। जैसे,—(क) जहाँ कोई अकेला दुकेला निकला कि डाकुओं ने आ घेरा। (ख) कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना।

दुकेले—क्रि० वि० [हिं० दुकेला] किसी के साथ। दूसरे आदमी को साथ लिए हुए।

यौ०—अकेले दुकेले=बिना किसी को साथ लिए या एक ही दो आदमियों के साथ। जैसे,—(क) वह तुम्हें अकेले दुकेले पावेगा तो जरूर मारेगा। (ख) अकेले दुकेले मत निकलना।

दुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० दो+कूँड़] १. तबले की तरह का एक बाजा। यह बाजा शहनाई के साथ बजाया जाता है। इसमें एक कूँड़ बहुत बड़ी और दूसरी छोटी होती है। २. एक में जुड़ी हुई या साथ पटी हुई दो नावों का जोड़ा।

दुक्का[1]—वि० [सं० द्विक] [वि० स्त्री० दुक्की] १. जो एक साथ दो हों। जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो (व्यक्ति)।

यौ०—इक्का दुक्का=अकेला दुकेला।

२. जो जोड़े में हो। जो एक साथ दो हो (वस्तु)। ३. जिसमें कोई वस्तु एक साथ दो हों।

दुक्का[2]—संज्ञा पुं० ताश का वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ बनी हों।

दुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुक्का] ताश का वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ बनी हों।

दुक्ख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दुःख, प्रा० दुक्ख] दे० 'दुःख'। उ०—तेहि क उतर पदुमावति कहा। बिछुरन दुक्ख हिएँ भरि रहा।—पदमावत, पृ० २३६।

दुक्रित(पु)†—वि० [हिं० दु+क्रित] विशाल। भयंकर। अगाध। दे० 'दुष्कृत'। उ०—चिते रिष्षि देखि बिल दुक्रित। उर लग्गी अति चिंत सभिभ हित।—पृ० रा० १।६७३।

दुखंड—वि० पुं० [सं० द्वि+खण्ड] दो टुकड़े। छिन्न भिन्न। उ०—गुरुमुख्य बासा पिंड मे मनमुख्य हूं ब्रह्मंड। रज्जब भीतर मैं नहीं बाहर खंड दुखंड।—रज्जब०, पृ० ७।

दुखंडा—वि० [हिं० दो+खंड] दोतल्ला। जिसमें दो खंड हों। दो मरातिब का। जैसे, दुखंडा मकान। दो खंड या टुकड़ोंवाली वस्तु।

दुखंत†(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यंत] दे० 'दुष्यंत'। उ०—जस दुखंत कहँ साकुंतला। माधोनालहि कामकंदला।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० २५५।

दुखंत[2]—वि० [सं० दुःखान्त] जिसकी समाप्ति दुःखपूर्ण हो। वियोगांत। दुःखांत।

दुख—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख'।

मुहा०—दुख का मारा=विपत्ति में पड़ा। दुःखी। उ०—कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।—कबीर श०, भा० २, पृ० १०३। दुःख का दूर भागना=दुःख मिट जाना। विशोक हो जाना। उ०—जानति नहीं कहँ नहिं देखे मिलि, गई ऐसैं मनहु सगे। सूर स्याम ऐसे तुम देखे मैं जानति दुख दूरि भगे।—सूर०, १०।१७८१।

दुखड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दुख+ड़ा (प्रत्य०)] १. दुःख का वृत्तांत। दुःख की कथा जिसमें किसी के कष्ट या शोक का वर्णन हो। तकलीफ का हाल।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनाना।

मुहा०—दुखड़ा रोना=अपने दुःख का वृत्तांत कहना। अपने कष्ट का हाल सुनाना।

२. कष्ट। तकलीफ। मुसीबत। विपत्ति।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—किसी स्त्री पर दुखड़ा पड़ना = (किसी स्त्री का) रौंड़ हो जाना। विधवा हो जाना। (स्त्रि०)। दुखड़ा पीटना = कष्ट भोगना। बहुत परिश्रम और कष्ट से जीवन बिताना। (स्त्रि०)। दुखड़ा भरना = दे० 'दुखड़ा पीटना'।

दुखतर—संज्ञा स्त्री० [फा० दुख़्तर] पुत्री। लड़की। धी। उ०—शाहजहाँ के खानदान की बची बचाई सब कुछ मुगलानी उर्दू की दुखतर नेक अख्तर बीबी चंद्रिका जोहर कि जिसका इस वृद्धावस्था में विद्यार्थी शौहर हुआ है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४।

दुखदंद—संज्ञा पुं० [सं० दुःखद्वन्द्व] दुःख और कष्ट। दे० 'दुखदुंद'। उ०—कहत रविराम तोहिं सूझत न कछु काम धाम धन भरा धनि मौन दुखदंद में।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२।

दुखद—वि० [सं० दुःखद] दे० 'दुःखद'।

दुखदाइक—वि० [सं० दुःख + दायक] दे० 'दुःखद'। उ०—सब मद तें धनमद दुखदाइक।—नंद० ग्रं०, पृ० २१४।

दुखदाई(पु)—वि० [सं० दुःखदायी] दे० 'दुःखदायी'। उ०—खल कर संग सदा दुखदाई।—तुलसी (शब्द०)।

दुखदानि(पु)—वि० [सं० दुःख + दान] दुःख देनेवाली। तकलीफ पहुँचानेवाली। उ०—यह सुनि गुरुबानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि।—केशव (शब्द०)।

दुखदुंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुःखद्वंद्व] दुःख का उपद्रव। दुःख और आपत्ति। उ०—छन महँ सकल निशाचर मारे। हरे सकल दुखदुंद हमारे।—सूर (शब्द०)।

दुखदैना(पु)—वि० [सं०] दे० 'दुःखदायी'। उ०—खंजन प्रकट किए दुखदैना। संजोगिनि तिय के से नैना।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८।

दुखना—क्रि० अ० [सं० दुःख से नामिक धातु] (किसी अंग का) पीड़ित होना। दर्द करना। पीड़ायुक्त होना। जैसे, आँख दुखना, पैर दुखना।

दुखरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दुख + रा (प्रत्य०)] दे० 'दुखड़ा'। उ०—सुख दुख की साझनि साथिनियाँ मिलि पूछति हैं दुखरा तिय को।—शकुंतला, पृ० ४६।

दुखवना†—क्रि० स० [हिं० दुखाना] दे० 'दुखाना'। उ०—नाहिं नै केशव साख जिन्हें बकि कै तिनसों दुखवै मुख को, री?—केशव (शब्द०)।

दुखहाया†—वि० [हिं० दुख + हाया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दुखहाई] दुःख से भरा हुआ। दुःखित। उ०—दुःखहाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन। लगी फिरै ढूका दिए कानन कानन कान।—बिहारी (शब्द०)।

दुखाना—क्रि० स० [सं० दुःख] १. पीड़ा देना। कष्ट पहुँचाना। व्यथित करना।

मुहा०—जी दुखाना = मानसिक कष्ट पहुँचाना। मन में दुःख उत्पन्न करना। जैसे,—कड़ी बात कहकर क्यों किसी का जी दुखाते हो? २. किसी के मर्मस्थान या पके घाव इत्यादि को छू देना जिससे उसमें पीड़ा हो। जैसे, फोड़ा दुखाना।

दुखारा—वि० [हिं० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी। पीड़ित। उ०—एक कलप सुर देखि दुखारे।—तुलसी (शब्द०)।

दुखारी—वि० [हिं० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी। व्यथित। खिन्न। उ०—जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं बिलोकत पातक भारी।—तुलसी (शब्द०)।

दुखारो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'दुखारा'।

दुखित(पु)—वि० [सं० दुःखित] दे० 'दुःखित'। उ०—गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं न दुखित फिरि आवहिं।—मानस, ६।७२।

दुखिया—वि० [हिं० दुःख + इया (प्रत्य०)] दुःखी। जो दुःख में पड़ा हो। जिसे किसी प्रकार का कष्ट हो। उ०—तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़कर कहाँ गए?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १ पृ० ३११।

यौ०—दीन दुखिया।

दुखियारा—वि० [हिं० दुखिया] [वि० स्त्री० दुखियारी] १. दुखिया। जिसे किसी बात का दुःख हो। २. जिसे कोई शारीरिक पीड़ा हो। रोगी।

दुखी—वि० [सं० दुःखित, दुःखी] १. जिसे दुःख हो। जो कष्ट या दुःख में हो। उ०—धन हीन दुःखी ममता बहुधा।—तुलसी (शब्द०)। २. जिसे मानसिक कष्ट पहुँचा हो। जिसके चित्त में खेद उत्पन्न हुआ हो। जिसके दिल में रंज हो। जैसे,—उसकी बात सुनकर मैं बड़ा दुःखी हुआ। ३. रोगी। बीमार।

दुखीला†—वि० [हिं० दुख + ईला (प्रत्य०)] दुःखपूर्ण। दुःख अनुभव करनेवाला। उ०—गर्भरानी की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुँचकर उसने जो कहा सोई लाया हुआ देखा।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

दुखोहाँ(पु)—वि० [हिं० दुख + औहाँ] [स्त्री० दुखोंही] दुःखदायी। दुःख देनेवाला। उ०—तेहिं पैंडे रहौ चलिये कबहुँ जेहि काँटो लगे पग पीर दुखौंही।—केशव (शब्द०)।

दुख्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुख़्तर का संक्षिप्त रूप] दे० 'दुख्तर'।

यौ०—दुख्ते रज = अंगूरी शराब। उ०—जो बहके दुख्तेरज से हैं वह कब इनसे बहकते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४७।

दुख्तर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुख़्तर] पुत्री। कन्या (को०)।

यौ०—दुख्तरे खाना = कुमारी कन्या। दुख्तरे खोंदा = सौत की लड़की। सौतेली कन्या। दुख्तरे रज = अंगूर की बेटी। अंगूर की शराब।

दुग—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'धुक'।

दुगई—संज्ञा स्त्री० [देश०] ओसारा। बरामदा। उ०—अति अद्भुत भवन की दुगई। गज दंत मुचंदन चित्रमई।—केशव (शब्द०)।

दुगण—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण'।

दुगदुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धुक धुक] १ वह गड्ढा जो गरदन के नीचे और छाती के ऊपर बीचोंबीच होता है। धुकधुकी।

मुहा०—दुगदुगी में दम होना = प्राण का कंठगत होना।

२. गले में पहनने का एक गहना जो छाती के ऊपर तक लटका रहता है।

दुगध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध] दे० 'दुग्ध'। उ०—इही तिथ मी महिमा गाए। धेनु दुगध तें प्रानि न्हवाए। जैसे ध्याए तैसे पाए। इतनी कहि सिव ऊठि सिधाए।—पृ० रा०, १।४००।

यौ०—दुगधनदीस = क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—इंद को अनुज हेरे दुगधनदीस को।—भूषण ग्रं०, पृ० ६७।

दुगधा†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुबधा'।

दुगन¹—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुगना'।

दुगन²—संज्ञा स्त्री० बाजे की दूनी तेज आवाज। दून।

दुगना¹—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दुगनी] किसी वस्तु से उतना और अधिक जितनी कि वह हो। द्विगुण। दूना। जैसे —(क) चार का दुगना आठ। (ख) यह चादर उसकी दुगनी है।

दुगना†²—क्रि० अ० [देश०] दे० 'दुकना'।

दुगनित—वि० [सं० द्विगुणित] दुगुना। दूना। उ०—आजु ब्रज छबि की छूट परै। इत नँदलाल लाडिली उत इत दीपक ज्योति बरै। इत जरतार तास बागो उत भूषण झलक परै। इत नवखंड सीसमहला उत दुगनित बिंब परै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८३।

दुगदनिया बठक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब पहलवान का एक हाथ जोड़ की गरदन पर होता है और जोड़ का वही हाथ पहलवान की गरदन पर होता है। इसमें पहलवान दूसरा खाली हाथ बढ़ाकर जोड़ के जंघों में देता है और बैठक करके गरदन दबाते हुए उसे फेंक देता है।

दुगाँम†—वि० [सं० दुर्गम, प्रा० दुग्गम] दुर्गम। उ०—ते श्रीराम निहस्सिया, दोय घड़ी इक जाम। अजबो बीठलदास रो, पड़ियो खेत दुगाँम।—रा० रू०, पृ० २०७।

दुगाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + गाड़ (= गड्ढा)] १. दुनाली बंदूक। दोनली बंदूक। २. दोहरी गोली।

दुगाना¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुगानह्] वह फल जिसमें दो फल जुड़े हों। जैसे, दुगाना आम।

दुगाना†²—क्रि० स० [देश० दुकना] दुकाना। छिपाना।

दुगासरा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग + आश्रय] वह गाँव जो किसी दुर्ग के किनारे हो। किसी दुर्ग के नीचे या चारों ओर बसा हुआ गाँव। उ०—गहरौ अँधेरन दुरग आसरो। गौर गढ़ो को दढ़ दुगासरो।—लाल (शब्द०)।

दुगुण⁹—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण'।

दुगुन⁹†—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुगना'। उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप देखावा।—तुलसी (शब्द०)।

दुगून—वि० [हिं० दुगुन] दे० 'दुगुन'।

दुगूल⁹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुकूल' (को०)।

दुग्ग⁹—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग, प्रा० दुग्ग] दे० 'दुर्ग'। उ०—सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अंभु। साहि निजाम सखा भयो दुग्ग देवगिरि खंभु।—भूषण ग्रं० पृ० ६।

दुग्गम⁹—वि० [सं० दुर्गम, प्रा० दुग्गम] दे० 'दुर्गम'। उ०—दूर दुग्गम दमसि भञ्जेओ। गाढ़ गढ़ गूढ़ीय गञ्जेओ।—विद्यापति, पृ० १०।

दुग्ध¹—वि० [सं०] १. दुहा हुआ। २. भरा हुआ। परिपूर्ण। ३. खींचा हुआ। चूसा हुआ। बाहर निकाला हुआ (को०)।

दुग्ध²—संज्ञा पुं० १. दूध। २. पौधों का श्वेत रस जो दूध सा होता है (को०)। ३. दोहना। दूहना (को०)।

दुग्धकूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश में लिखा हुआ एक प्रकार का पकवान जो पिसे हुए चावल और दूध के छेने से बनता है।

विशेष—छेने के साथ चावल की गोल लोई बनावे और उसमें गड्ढा करे। फिर इस लोई को थोड़ा घी मे तलकर उसके गड्ढे में खूब गाढ़ा दूध भर दे और गड्ढे का मुँह मैदे से बंद कर दे। फिर इस दूध भरे हुए बड़े को घी में तलकर चाशनी में डाल दे। यह पकवान वायु, पित्त का नाशक, बलकारक, शुक्रवर्धक और रुचिवर्धक होता है।

दुग्धतालीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध का फेन। २. मलाई।

दुग्धदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय। दूध देनेवाली गाय (को०)।

दुग्धपाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध गरम करने या औटाने का पात्र। २. एक प्रकार का नमक (को०)।

दुग्धपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसे बंगाल की ओर खिरगोला कहते हैं।

दुग्धपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ का नाम।

पर्या०—सेवाकाल। नसंकरी। निशाभंगा। दुग्धफेया।

दुग्धपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुग्धपुच्छी' (को०)।

दुग्धपोष्य—वि० [सं०] (बालक) जो माता का दूध पीकर रहता हो। दुधमुहाँ (बच्चा)।

दुग्धफेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध का फेन। २. एक पौधा। क्षीर हिंडीर।

दुग्धफेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा पौधा। पयस्विनी। लूतारि। गोजापर्णी।

दुग्धबंध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धबन्ध] खूँटा जिसमें दूध दुहने के समय गायें बाँधते हैं। दुग्धबंधक (को०)।

दुग्धबंधक—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धबंधक] दे० 'दुग्धबंध' (को०)।

दुग्धबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार। जुन्हरी जिसके दानों में से सफेद रस या दूध निकलता है।

दुग्धशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ध + शाला] वह स्थान जहाँ गायें रखी जाती हैं और दूध का व्यापार होता है।

दुग्धसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र। पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक। क्षीरसागर।

यौ०—दुग्धसमुद्रतनया = लक्ष्मी।

दुग्धांक—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धाङ्क] एक प्रकार का पत्थर। दे० 'दुग्धाक्ष' [को०]।

दुग्धाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नग या पत्थर जिसपर सफेद सफेद छींटे होते हैं।

दुग्धाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] मलाई [को०]।

दुग्धाब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र।

दुग्धाब्धितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

दुग्धाश्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धाश्मन्] दुग्धपाषाण।

दुग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुद्धी नाम की घास या बूटी। २. गंधिका नाम की घास।

दुग्धिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल चिचड़ा। रक्तापामार्ग।

दुग्धी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुधिया नाम की घास। दुद्धी।

दुग्धी[2]—वि० [सं० दुग्धिन्] दूधवाला। जिसमें दूध हो।

दुग्धी[3]—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धिन्] क्षीरवृक्ष।

दुघ—वि० [सं०] (समासांत में प्रयुक्त) देनेवाला। प्रदाता। जैसे, कामदुघ = कामनाओं को देने या पूरा करनेवाला।

दुघड़िया—वि० [हिं० दो घड़ी] दो घड़ी का। जैसे,—दुघड़िया सायत, दुघड़िया मुहूर्त। उ०—लगन दुघड़ियो शुभ अशुभ रामवान अजमान।—राम० धर्म०, पृ० ३२१।

दुघड़िया मुहूर्त—संज्ञा पुं० [हिं० दो घड़ी + मुहूर्त] दो दो घड़ियों के अनुसार निकाला हुआ मुहूर्त। द्विघटिका मुहूर्त।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है। रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त करते हैं और फिर राशि के अनुसार शुभाशुभ समय का विचार करते हैं। इसमें दिन का विचार नहीं किया जाता है। सब दिन सब ओर की यात्रा का विधान है। इस प्रकार का मुहूर्त उस समय देखा जाता है जब यात्रा किसी दूसरे दिन पर टाली नहीं जा सकती।

दुघरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + घड़ी] दुघड़िया मुहूर्त। उ०—दुघरी साध चले ततकाला। किय विश्राम न मगु महिपाला।—तुलसी (शब्द०)।

दुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध देनेवाली गाय। गौ जो दूध देती हो [को०]।

दुचंद—वि० [फ़ा० दोचंद] दूना। द्विगुण। दुगना। उ०—(क) पावन का पौनि महामंद मुख मैली भई, दीपति दुचंद फैली परम समाज की।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) आज नंदनंद जू आनंद भरे खेलैं फाग, कोटि चंद ते दुचंद आसदुति लाल की।—दीनदयाल (शब्द०)।

दुचल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + चाल] वह छन जिसके दोनों ओर ढाल हो।

दुचित—वि० [हिं० दो + चित्त] १. जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो। जो दुबिधे में हो। जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो, कभी दूसरी। अस्थिरचित्त। उ०—दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. चिंतित। फिक्रमंद। उ०—बीत गए तिहुँ काल कछु भयो न ताके बाल। जऊ सुचित सब दुखनि सो दुचित भयो भुपाल।—गुमान (शब्द०)।

दुचितई†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुचित] १. एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव। चित्त की अस्थिरता। दुबिधा। उ०—सोचत जनक पोच पेंच परि गई है। जोरि करकमल निहोरि कहैं कौसिक सों, आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१३। २. खटका। आशंका। चिंता। उ०—शाहु सुवन उर हरि रति बाढ़ी। तासु बिछोह दुचितई गाढ़ी।—रघुराज (शब्द०)।

दुचिताई†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुचित] १. चित्त की अस्थिरता। दुबिधा। संदेह। उ०—(क) साँचो कहहु देखि मुनि के सुख छाँड़हु छिया कुटिल दुचिताई।—केशव (शब्द०)। २. खटका। चिंता। आशंका। उ०—जब आनि भई सबको दुचिताई। कहि केशव काहुपै मेटि न जाई।—केशव (शब्द०)।

दुचित्ता—वि० [हिं० दो+चित्त] [वि० स्त्री० दुचित्ती] १. जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो। जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो और कभी दूसरी। जो दुबिधे में हो। अस्थिरचित्त। अव्यवस्थितचित्त। २. संदेह में पड़ा हुआ। जिसके चित्त में खटका हो। चिंतित।

दुचित्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुचित्ता] दुचित्तापन की स्थिति।

दुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर कचरी। मुरा नामक गंधद्रव्य। गंधकुटी।

दुछ्रणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० द्वेषण (= शत्रु)] सिंह (डिं०)।

दुछताना†—क्रि० अ० [हिं० दुचित या देश०] पछताना। उ०—मेघनाद संगर परि, मदन सुर्ग चितु लाय। कहिय खबर अभुलन तन, मन जू भनि दुछताय।—प० रासो, पृ० १५४।

दुछोलⓅ—वि० [हिं० दु (= दो) छोर] दोनों ओर मिला हुआ। दोरंगा। दो तरह का। दो प्रकार का उ०—पठयो मदन बसीठ ही ढीठ महामद लाल। छिन ओरे छिन ओर सों लाख्यो छैल दुछोल।—छत्र०, पृ० २५।

दुजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० द्विज] १. दे० 'द्विज'। २. पक्षी। उ०—दुज वर कोकिल साखि दे।—विद्यापति, पृ० १०६। ३. दाँत। दशन। उ० प्रफुल अधर, दुज कोटि वज्र दुति ससि घन रूप समाने। कुंचित अलक सिलीमुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ाने।—सूर०, १०। १७६४।

यौ०—दुजगन = दाँतों की पंक्ति। उ०—संजम रासत केस नयन हू काननचारी। मुखहू माँहि पवित्र रहत दुजगन सुखकारी।—ब्रज ग्रं०, पृ० १०२।

दुजड़Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार। उ०—बंस मदध्वकर ऊबरा, दुजड़ उजागर देस।—रा० रू०, पृ० ४४।

दुजड़ो—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। (डिं०)।

दुजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन'। उ०—तापित दुजन कों है देत सुमनै गुलाय लगैं प्रति कानन मैं बात ताप मैं बली।—दीन ग्रं०, पृ० ४५।

दुजनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्जनता] दुष्टता। उ०—देखहु नाथ दुजनता मेरी। महिमा कह्यो चहौं प्रभु केरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २७०।

दुजन्मा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजन्मा] दे० 'द्विजन्मा'।

दुजपति—संज्ञा पुं० [सं० द्विजपति] १. दे० 'द्विजपति'। २. चंद्रमा। उ०—दुजपति अंकहु हिरन इक निम्भय मुभाय प्रति।—पृ० रा०, ६।६६।

दुजबर(पु)—वि० [सं० द्विजवर] ब्राह्मण उ०—दुजबर एकु सुदामा नामा।—नंद० ग्रं०, पृ० २१२।

दुजराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] १. ब्राह्मण। द्विजराज। उ०—देखि राज बिसमित भयौ ब्यासहि लीन बुलाइ। भेड़ लरे क्यों व्याघ्र सो कहो बैन दुजराइ।—पृ० रासो०, पृ० २। २. चद्रमा।

दुजराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] दे० 'द्विजराज'।

दुजाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विज, हिं० दुज+आई (प्रत्य०)] द्विजत्व। ब्राह्मणत्व। उ०—तपस्या ठकुराई छीन थाई मिट दुहाई देश ए। पावर दुजाई पाप माई सुद्ध आई वेश ए।—राम० धर्म०, पृ० २८७।

दुजाति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजाति] दे० 'द्विजाति'।

दुजानू—क्रि० वि० [फ़ा० दोजानू] दोनो घुटने के बल। जैसे, दुजानू बैठना।

दुजीह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजिह्व] दे० 'द्विजिह्व'।

दुजेश—संज्ञा पुं० [सं० द्विजेश] दे० 'द्विजेश'।

दुज्जन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण] दे० 'दुर्जन'। उ०—(क) सुप्रण पसंसइ कव्व मरु, दुज्जन बोलइ मंद।—कीर्ति०, पृ० ४। (ख) दुज्जन को दाह कर दसहू दिसान में।—मतिराम (शब्द०)।

दुज्द—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुज़्द] चोर। उ०—बुजुरगी किया अज मुबारक नबी। बनाया उन्हें दुज्द के पासबी।—कबीर मं०, पृ० १३१।

दुझाल(पु)† —वि० [?] १. असह्य। २. दोनों हाथों स शस्त्र धारण करनेवाला। उ०—निहंगे सर्भ नवल्ल रो, अगे दलाँ दुझाल। हिच पड़ियो रज रंग हुवे, कंदू सुरजमाल।—रा० रू०, पृ० ४०।

दुटूक—वि० [हिं० दो+टूक] दो टुकड़ों में किया हुआ। खंडित। उ०—कियो दुटूक चाप देखत ही रहे चकित सब ठाढ़े।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दुटूक बात = थोड़े में कही हुई साफ बात। बिना घुमाव फिराव की स्पष्ट बात। ऐसी बात जो लगी लिपटी न हो। खरी बात। जैसे,—हम तो दुटूक बात कहते हैं, चाहे बुरी लगे या भली।

दुड़ना‡—क्रि० अ० [हिं० दुरना] छिपना। लुकना। ओट होना। उ०—सोहै अँगिया ओट हरी रंग साज मैं। दुड़िया चकवा दोय सिवाल समाज मैं।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३७।

दुड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुडि] दुलि। कच्छपी।

दुड़ियंद—संज्ञा पुं० [? या सं० द्युति+अप० यद] सूर्य (डिं०)।

दुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+ड़ी (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिसमें दो बूटियाँ होती हैं। दुक्की।

दुत[1]—अव्य० [अनु०] १. एक शब्द जो तिरस्कारपूर्वक हटाने के समय बोला जाता है। दूर हो। २. एक शब्द जो उस मनुष्य के प्रति बोला जाता है जो कोई मूर्खता की या अनुचित बात कहता अथवा करता है। घृणा या तिरस्कारसूचक शब्द।

विशेष—कभी कभी लोग बच्चों को प्यार से भी दुत कह देते हैं।

दुत(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] द्युति। ज्योति। प्रकाश। उ०—पै संजा कीरत मुख पीतौ वारज अनभ मूल दुत वीम।—रघु० रू०, पृ० २४६।

दुतकार—संज्ञा स्त्री० [अनु० दुत+कार] वचन द्वारा किया हुआ अपमान। तिरस्कार। धिक्कार। फटकार।

क्रि० प्र०—देना।—बतलाना।—मिलना।

दुतकारना—क्रि० स० [हिं० दुतकार+ना (प्रत्य०)] १. दुत् दुत् शब्द करके किसी को अपने पास से हटाना। २. तिरस्कृत करना। धिक्कारना।

दुतर(पु)†—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर'। उ०—ममता अह विषय मदमातो यह सुख कबहुँ न दुतर तिरे।—रै० बानी, पृ० ६।

दुतरफा—वि० [हिं० दो+अ० तरफ़] दे० 'दुतर्फा'।

दुतर्फा—वि० [फा० दुतर्फ़ह] [वि० स्त्री० दुतर्फी] दोनों ओर का। जो दोनों ओर हो। जैसे, दुतर्फी चाल, दुतर्फी रंग।

दुतल्ला—वि० [हिं० दो+तल्ला] दो तल्ले का। दो मरातिब का। जैसे, दुतल्ला मकान।

दुतार†—वि० [सं० दुस्तार, प्रा० दुत्तार] कठिन। दुस्तर। उ०—रनकहि पंचस अह हुजार। जद्दव कमोर दल करि दुतार।—पृ० रासो, पृ० ३६।

दुताबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार की तलवार (संभवत: दोहरे ताव की)। उ०—बरबी जिन चाबी दबहि न दाबी दिपति दुताबी दोल परें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

दुतारा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+तार] एक बाजा जिसमें दो तार लगे होते हैं और जो उँगली से सितार की तरह बजाया जाता है।

दुति(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] १. दे० 'द्युति'। उ०—चौसठि कला बिनासजुत बदन कलानिधि पेखि। दुतिया की देखें कला को दुति याकी देखि।—मति० ग्रं०, पृ० ४४७। २. कागद। कागज (लश०)। उ०—दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बाँचिए। बिन कर ताल बजाय चरन बिन नाचिए।—कबीर०, श०, भा० २, पृ० १२३। ३. दावात।

दुतिई(पु)—वि० [सं० द्वितीया] दूसरी। दूजी। पहली के बादवाली।

उ०—दुतिइ उपमा कवि यों मनई। किय अंगन चंद निसा जगई।—पृ० रा०, ८।६२।

दुतिमान(पु)—वि० [सं० द्युतिमान्] दे० 'द्युतिमान्'।

दुतिय(पु)—वि० [सं० द्वितीय] [वि० स्त्री० दुतिया] दे० 'द्वितीय'। उ०—दुतिय समुच्चय ताहि को कहु भूषन कवि मोर।—भूषण ग्रं०, पृ० ५६।

दुतिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दूज। पक्ष की दूसरी तिथि। उ०—दुतिया की देखं कला को दुति याकी देखि।—मति० ग्रं०, पृ० ४४७।

दुतिया(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० द्वित्व] दो का भाव। द्वैतभाव। उ०—ज्ञान होय परगास कुमति जूआ मे हारै। दुतिया खंडन करे एक को बैठि बिचारै।—पलटू०, पृ० ३७।

दुतिवंत(पु)—वि० [हिं० दुति + वंत (प्रत्य०)] १. आभायुक्त। चमकीला। २. सुंदर।

दुतिवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्युतिमत्, द्युतिमान् या हिं० दुति + वान (प्रत्य०)] सूर्य। द्युतिमान्। उ०—चित्रभानु वृहभान रबि बिबस्वान दुतिवान।—अनेक०, पृ० १०२।

दुतो(पु)—वि० [सं० द्वितीय] दे० 'द्वितीय'। उ०—(क) दुती उपमा बरनै कवि चंद। चलै घट रूप दिखावत इंद।—पृ० रा०, २१।१६। (ख) दुती उपमा कवि यो मन लग्गि। कि अंगन चंद निसा महि जग्गि।—पृ० रा०, ८।६३।

यौ०—दुतीभाव = द्वितीय की भावना। द्वैत भाव। उ०—दादू पुरण ब्रह्म बिचारि ले, दुतीभाव करि दूर। सब घटि साहिब देखिये राम रह्या भरपूर।—दादू०, पृ० ४२२।

दुतीय(पु)—वि० [सं० द्वितीय] दे० 'द्वितीय'।

दुतीया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] दे० 'द्वितीया'।

दुत्त(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दूत] दे० 'दूत'। उ०—मति माधव कोविद सुबर, कही बरा गुन जुत्त। तरु साहि गोरी नृपति, फेरि मुक्कले दुत्त।—पृ० रा०, १६।१०।

दुत्तर, दुत्तरु—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर'। उ०—(क) पूछै गोरख देहु बीचारु। क्यौं करि दुत्तर उतरहु पारु।—प्राण०, पृ० ७८। (ख) क्योंकरि दुमधा दुत्तरु तरिया।—प्राण०, पृ० १००।

दुत्ता—अव्य० [हिं० दुत] घृणा या तिरस्कारसूचक शब्द। दे० 'दुत'¹। उ०—मोहि करै दुत्ता लोग, महल मे कौन चलै।—जग० श०, पृ० १०।

दुत्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] दे० 'द्युति'। उ०—मानों कि दुत्ति द्रप्पनह व्योम। निच्चोल स्याम मधि हमिय सोम।—पृ० रा०, २।३७१

दुत्ती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दूती] दूत कार्य करनेवाली स्त्री। दूती। उ०—यों करंत दुत्तिय बियो कथा श्रवन सुनि मंत। जाको तें पतिव्रता लिय सो आयौ अलि कंत।—पृ० रा०, पृ० २५।२८८।

दुत्थोत्थदवीय—संज्ञा पुं० [सं०] ताजिक नीलकंठ के अनुसार वर्ष-प्रवेश में एक योग।

दुथन†—संज्ञा पुं० [देश०] पत्नी। जोरू। (कुमाऊँ)।

दुथरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

दुदकार—संज्ञा स्त्री० [अनु० दुत+कार] धिक्कार। फटकार। दुतकार। उ०—दूर दुदकार देते अभिमानी पशुओं को।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०२।

दुदल¹—वि० [सं० द्विदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर खंड या दल हो जायँ। द्विदल।

दुदल²—संज्ञा पुं० १. दाल। उ०—दुदल प्रकार अनेकन आने। बरन बरन के स्वाद महाने।—रघुराज (शब्द०)। २. एक पौधा जो हिमालय के कम ठंढे स्थानो में तथा नीलगिरि पर्वत पर बहुत होता है।

विशेष—इसकी जड़ ओषधि के काम में आती है और यकृत को पुष्ट करनेवाली, पसीना और पेशाब लानेवाली होती है। जिगर की बीमारी, आँव, चर्मरोग आदि में यह उपकारी होती है। इसे कानफूल और बरन भी कहते हैं।

दुदलाना‡—क्रि० स० [अनु०] दुतकारना। उ०—आवै कोइ आसरा लगाई। लागै दोष देइ दुदलाई।—विश्राम (शब्द०)।

दुदहँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ध + भाण्डिका, हिं० दूध + हाँड़ी] दे० 'दुधहँड़ी'।

दुदामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो मालवे में बहुत बनता था। उ०—दुदामी के थान मालवा में पहले भी बनते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कदरदानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे।—शाहजहाँनामा (शब्द०)।

दुदिला—वि० [हिं० दो + फ़ा० दिल] १. दुचिता। दुबधे में पड़ा हुआ। २. खटके में पड़ा हुआ। चिंतित। व्यग्र। घबराया हुआ। उ०—त्यों रंग भय्यो दिली में औरे। दुदिलो भयो साह कित दौरे।—लाल (शब्द०)।

दुदुकारना†—क्रि० स० [अनु० दुदकार] दे० 'दुतकारना'।

दुदुह—संज्ञा पुं० [सं०] यदुवंशीय एक राजा का नाम। (हरिवंश)।

दुद्धी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक घास।

विशेष—इस घास के डंठलों मे थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं जिनके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है। इन्ही गाँठों पर से पतले डंठल निकलते हैं जिनमे फूलों के गोल गोल गुच्छे लगते हैं। दुद्धी दो प्रकार की होती है—एक बड़ी दूसरी छोटी। बड़ी दुद्धी की पत्ती दो ढाई अंगुल लंबी, एक अंगुल चौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है। अगले सिरे की ओर यह नुकीली और पीछे डंठल की ओर गोल और चौड़ी होती है। छोटी दुद्धी के डंठल बहुत पतले और लाल होते हैं। पत्तियाँ भी बहुत महीन और दोनों सिरों पर गोल होती हैं। वैद्यक में दुद्धी गरम, भारी रूखी, बादी, कड़ुई, मलमूत्र को निकालनेवाली तथा कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। बड़ी दुद्धी से लड़के गोदना गोदने का खेल भी खेलते हैं। वे इसके दूध

से कुछ लिखकर उसपर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिह्न बन जाते हैं।

पर्या०— क्षीरी। मरुद्भवा। ग्राहिणी। कच्छुरा। ताम्रमूला।

२. थूहर की जाति का एक छोटा पौधा, जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में, विशेषकर पंजाब और राजपूताने में होता है। इसका दूध दमें में दिया जाता है।

दुद्धी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] १. एक प्रकार की सफेद मिट्टी। खड़िया मिट्टी। २. सारिवा लता। ३. जंगली नील। ४. एक पेड़ जो मद्रास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है। इसकी लकड़ी सफेद और बहुत अच्छी होती है और बहुत से कामों में आती है।

दुद्धी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध] एक प्रकार का सफेद धान, जिसका नाम सुश्रुत ने कुक्कुटांडक लिखा है।

विशेष—दे० 'दुधिया'।

दुद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] प्याज का हरा पौधा।

दुध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, प्रा० दुध्ध] दूध का समस्त रूप। जैसे, दुधमुहाँ, दुधहँडी।

दुधपिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + पीठी] दे० 'दुधपिठवा'।

दुधपिठवा—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, हिं० दूध + सं० पिष्टक, हिं० पीठा] एक प्रकार का पकवान जो गुँधे हुए मैदे की लंबी लंबी बत्तियों को दूध में पकाने से बनता है।

दुधमुख(पु)†—वि० [हिं० दूध + मुख] दूधपीता। दुधमुहाँ।

दुधमुँहाँ—वि० [हिं० दूधमुँह] दे० 'दूधमुहाँ'।

दुधहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हाँडी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है। दूध की मटकी।

दुधाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हाँडी] दे० 'दुधहँडी'।

दुधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विधा, द्विविधः] दुबिधा। संदेह। भ्रम। उ०— कहीं आन भो मन की दुधा। तिनि जब कही बात यह सुधा। —अर्ध०, पृ० २१।

दुधार[1]—वि० [हिं० दूध + आर (प्रत्य०)] १. दूध देनेवाली। जो दूध देती हो। जैसे, दुधार गैया। २. जिसमें दूध हो।

दुधार[2]—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० दो + धार] दे० 'दुधारा'।

दुधारा[1]—वि० [हिं० दो + धार] दो धाराओं का। जिसमें दोनों ओर धार हो (तलवार, छुरी आदि)। जैसे, दुधारा खाँड़ा।

दुधारा[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का चौड़ा खाँड़ा या तलवार जिसके दोनों ओर तेज धार होती है।

दुधारी[1]—वि० स्त्री० [हिं० दूध + आर (प्रत्य०)] दूध देनेवाली। जो दूध देती हो। जैसे, दुधारी गाय।

दुधारी[2]—वि० स्त्री० [हिं० दो + धार] जिसमें दोनों ओर धार हो। जैसे, दुधारी तलवार।

दुधारी[3]—संज्ञा स्त्री० वह कटारी जिसके दोनों ओर तेज धार हो।

दुधारू—वि० [हिं०] दे० 'दुधार', 'दुधारी'।

दुधित—वि० [सं०] भयभीत। व्याकुल। घबराया हुआ। दुःखी। पीड़ित [को०]।

दुधिया—वि० [हिं० दूध + इया (प्रत्य०)] १. दूध मिला हुआ। जिसमें दूध पड़ा हो। जैसे,—दुधिया भाँग। २. जिसमें दूध होता हो। ३. दूध की तरह सफेद। सफेद जाति का। जैसे दुधिया गेहूँ, दुधिया धान। दुधिया पत्थर, दुधिया कंकड़।

दुधिया[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धिका] १. दुद्धी नाम की घास। २. एक प्रकार की ज्वार या चरी जो बड़ोदे की ओर बहुत होती है और चौपायों को खिलाई जाती है। ३. खड़िया मिट्टी। ४. कलियारी जाति का एक विष। ५. एक चिड़िया जिसे लटोरा भी कहते हैं।

दुधियाकंजई[1]—वि० [हिं० दुधिया + कंजा] सफेदी लिए हुए कंजे रंग का। नीलापन लिए भूरा।

दुधिया कंजई[2]—संज्ञा पुं० एक रंग जो नीलापन लिए भूरा अर्थात् कंजे के रंग से कुछ खुलता होता है।

विशेष—इस रंग में रँगने के लिये कपड़े को पहले हर्रे के काढ़े में डुबाकर धूप में सुखाते है फिर कसीस में रँगते हैं।

दुधिया पत्थर—संज्ञा पुं० [हिं० दुधिया + पत्थर] १. एक प्रकार का मुलायम सफेद पत्थर जिससे प्याले आदि बनते हैं। २. एक नग या रत्न।

विशेष—दे० 'दूधिया'।

दुधियाविष—संज्ञा पुं० [हिं० दुधिया + विष] कलियारी की जाति का एक विष जिसके सुंदर पौधे काश्मीर, चित्राल, हजारा के पहाड़ों तथा हिमालय के पश्चिमी भाग में मिलते हैं।

विशेष—इसका पौधा कलियारी की ही तरह का सुंदर फूलों से सुशोभित होता है। इसकी जड़ में विष होता है। कलियारी की जड से इसकी जड़ छोटी और मोटी होती है। रंग भी कालापन लिए होता है। हजारा में इसे 'मोहरी' और काश्मीर में 'बनबल नाग' कहते हैं। इस विष को 'तेलिया विष' और 'मीठा जहर' भी कहते हैं।

दुधेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध+एली (प्रत्य०) दे० 'दुद्धी[1]'।

दुधैल—वि० [हिं० दूध + एल (प्रत्य०)] बहुत दूध देनेवाली। दुधार। जैसे, दुधैल गाय।

दुध्र—वि० [सं०] १. चोट पहुँचानेवाला। हिंसक। २. दुर्धर्ष। शक्तिशाली। भयानक [को०]।

दुनया—संज्ञा पुं० [सं० द्वि, हिं० दो + सं० नदी, प्रा० णई] वह स्थान जहाँ दो नदियाँ एक दूसरे से मिलती हों। दो नदियों का संगम स्थान।

दुनरना†—क्रि० अ०। क्रि० स० [हिं० दुनवना] दे० 'दुनवना'।

दुनवना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० दो + नवना (=झुकना)] किसी नरम या लचीली वस्तु का इस प्रकार झुकना कि उसके दोनों छोर एक दूसरे से मिल जायँ या पास पास हो जायँ। लचकर दोहरा हो जाना। इस प्रकार नमित होना कि दोनों अर्धभाग प्रायः एक दूसरे के समानांतर हो जायँ। उ०—कटि व सोचिबे

लायक, रमत न भीति। दुनए हैस न टूटत यह परतीति।—रहीम (शब्द०)।

दुनवना[२]—क्रि० स० लचाकर दोहरा कर देना। इस प्रकार झुकाना कि दोनों छोर एक दूसरे से मिल जायँ या पास पास हो जाँय।

दुनाली[१]—वि० स्त्री० [हिं० दो+नाल] दो नालवाली। जैसे, दुनाली बंदूक।

दुनाली[२]—संज्ञा स्त्री० दुनाली बंदूक। वह बंदूक जिसमें दो दो गोलियाँ एक साथ भरी जायँ।

दुनिअँ†—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियह्] दे० 'दुनिया'। उ०—अलहदाद भल तिन्हकर गुरू। दीन दुनिअ रोसन सुरखुरू।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १३३।

दुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संसार। जगत्।

यौ०—दीन दुनियाँ = लोक परलोक।

मुहा०—दुनियाँ के परदे पर = सारे संसार में। दुनिया की हवा लगना = सांसारिक अनुभव होना। संसारी विषयों का अनुभव होना। दुनियाँ भर का = बहुत या बहुत अधिक। जैसे,—(क) दुनियाँ भर का सामान साथ ले जाकर क्या करोगे? (ख) दुनियाँ भर का बखेड़ा। दुनियाँ से उठ जाना = मर जाना। दुनियाँ से चल बसना = मर जाना।

२. संसार के लोग। लोक। जनता। जैसे,—सारी दुनियाँ इस बात को जानती है। उ०—ये तपसी ह्वै गरूर भरे दुनियाँ ते दयानिधि बोलत ना।—दयानिधि (शब्द०)। ३. संसार का जंजाल। जगत् का प्रपंच।

दुनियाई[१]—वि० [अ० दुनिया+ हिं० ई (प्रत्य०)] सांसारिक। उ०—जावत खेह रेह दुनियाई। मेघ बूँद औ गगन तराई।—जायसी (शब्द०)।

दुनियाई[२]—संज्ञा स्त्री० [फा० दुनिया+हिं० ई (प्रत्य०)] संसार। उ०—ते विष बान लिखौं कहँ ताई। रकत जो चुआ भीज दुनियाई।—जायसी (शब्द०)।

दुनियादार[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] सांसारिक प्रपंच में फँसा हुआ मनुष्य। संसारी। गृहस्थ।

दुनियादार[२]—वि० ढंग रचकर अपना काम निकालनेवाला। व्यवहारकुशल।

दुनियादारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दुनियाँ का कारबार। गृहस्थी का जंजाल। २. दुनियाँ में अपना काम निकालने का ढंग। वह व्यवहार जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो। स्वार्थसाधन। ३. दिखाऊ या बनावटी व्यवहार। दुराव। छिपाव।

मुहा०—दुनियादारी की बात = बनावटी बात। इधर उधर की बात जो केवल प्रसन्न करने के लिये कही जाय। लल्लो चप्पो। जैसे,—दुनियादारी की बात रहने दो, अपना ठीक ठीक मतलब बतलाओ।

दुनियापरस्त—वि० [फ़ा०] सांसारिक। कृपण। कंजूस।

दुनियासाज—वि० [फा० दुनियासाज] १. ढंग रचकर अपना काम निकालनेवाला। स्वार्थसाधक। २. अवसर देखकर सुहावेवाली बात करनेवाला। लल्लो चप्पो करनेवाला। चापलूस।

दुनियासाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुनियासाजी] १. अपना मतलब निकालने का ढंग। स्वार्थसाधन की वृत्ति। २. चापलूसी। ३. बात बनाने का ढंग।

दुनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियाँ] संसार। जगत। उ०—(क) सातो द्वीप दुनी सब नये।—जायसी (शब्द०)। (ख) कविवृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषन बात न कोपि गुनी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तुमही जग हौ जग है तुमही में। तुमही बिरची मरजाद दुनी में।—केशव (शब्द०)।

दुनोना, दुनौना—क्रि० अ० क्रि० स० [हिं० दुनवना] दे० 'दुनवना'।

दुपकना—क्रि० अ० [सं० दीपन] १. चमकना। दीप्त होना। २. छा जाना। छादित होना। छिपना। आवृत होना। ढँक जाना (लश०)। उ०—अनेक दीप से दमक रहा गगन। अनेक दीप से दुबक रही अवनि।—मिलन०, पृ० २०७।

दुपटाⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं० दुपट्टा] दे० 'दुपट्टा'। उ०—पौढ़े हुते पलिका पर र्यो मुख ऊपर ओट किए दुपटा को।—सुंदर (शब्द०)।

दुपटीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुपटा] चादर। दुपट्टा। उ०—(क) सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी।—केशव (शब्द०)। (ख) धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहि सामा।—कविता को०, भा० १, पृ० १४६।

दुपट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+पाट] [स्त्री० अल्पा० दुपट्टी] १. ओढ़ने का वह कपड़ा जो दो पाटों को जोड़कर बना हो। दो पाट की चद्दर। चादर।

मुहा०—दुपट्टा तानकर सोना = निश्चित होकर सोना। बेखटके सोना। दुपट्टा बदलना = सहेली बनाना। सखी बनाना। (स्त्री०)।

२. कंधे या गले पर डालने का लंबा कपड़ा।

दुपट्टीⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पाट] दे० 'दुपटी'।

दुपद—संज्ञा पुं० [सं० द्विपद] दे० 'द्विपद'। उ०—चारो बेद पढे मुख आगर है बामन बपुधारी। अपढ दुपद पशुभाषा बूझै अविगत अल्प अहारी।—सूर (शब्द०)।

दुपर्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+फ़ा० पर्दह्] वह मिरजई, फतुही या नीमस्तीन जिसमें दोनों ओर पर्दे हों। बगलबंदी।

दुपलड़ी—वि० [हिं० दो+पलड़ा (= पल्ला)] दो पल्लेवाली। दुपल्ली। उ०—इस दुपलड़ी टोपी को छोड़ो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

दुपलिया[१]—वि० स्त्री० [हिं० दो+पल्ला] दो पल्लेवाली। जिसमें दो पल्ले हों।

दुपलिया[२]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जिसके दोनों पल्ले सीए रहते हैं।

दुपहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पहर] दे० 'दोपहर'। उ०—जेहि निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति। तेहि उसीर की रावटी खरी प्रावटी जाति।—बिहारी (शब्द०)।

दुपहरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुपहरी] दुपहरिया। दोपहर। उ०—दुपहरि तहँ डाइन सी आवै।—नद० ग्रं०, पृ० १४०।

दुपहरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुपहर+इया (प्रत्य०)] † १. मध्याह्न का समय। दोपहर। २. एक छोटा पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है। उ० -पग पग मग अगमन परति चरन अरुन दुति भूलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—यह पौधा डेढ़ दो हाथ ऊँचा और एक सीधे खड़े डंठल के रूप में होता है। इसमें शाखाएँ या टहनियाँ नहीं फूटतीं। पत्तियाँ इसकी आठ दस अंगुल लंबी, अंगुल डेढ़ अंगुल चौड़ी और किनारे पर कटावदार तथा गहरे रंग की होती हैं। फूल इसके गोल कटोरे के आकार के और गहरे लाल रंग के होते हैं। इन फूलों में पाँच दल होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर जो बीजकोश रह जाता है उसमें राई के दाने से काले काले बीज पड़ते हैं। वैद्यक में दुपहरिया मलरोधक, कुछ गरम, भारी, कफकारक, ज्वरनाशक तथा वात पित्त को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—बंधूक। बंधुजीव। रक्त। माध्याह्निक। बंधुर। सूर्यभक्त। ओष्ठपुष्प। अर्कवल्लभ। हरिप्रिय। शारदपुष्प। ज्वरघ्न। सुपुष्प।

३. वह जिसका गर्भाधान दुपहरिया को हुआ हो। हरामजादा। दुष्ट। पाजी। (बाजारू)।

दुपहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोपहर+ई (प्रत्य०)] दे० 'दुपहरिया'। उ०—अरे मीत या बात को देखि हिये कर गौर। रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानो इक ठौर।—स० सप्तक, पृ० १८२।

दुपहिया†—वि० [हिं० दो+पहिया] वह (गाड़ी) जिसमें दो पहिए लगे हों। दो चक्कोंवाली (साइकिल आदि)। उ०—सुबह उठकर एक दुपहिया गाड़ी पर चढ़ बैठते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२६।

दुपालिया—वि० [हिं० दो०+पाली या पल्ला] दो पल्लेवाली। जिसके दो पल्ले हों। उ०- लाल किनारे की धोती पहने, दुपालिया मखी की टोपी लगाए।-श्यामा०, पृ० १५०।

दुपी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विप] हाथी।

दुफसली[1]—वि० [हिं० दो+अ० फस्ल] दोनों फसलों में उत्पन्न होनेवाला। वह जिस को रबी और खरीफ दोनों में हो।

दुफसली[2]—वि० स्त्री० दुबधे का। अनिश्चित। संदिग्ध। जैसे,—दुफसली बात कहना ठीक नहीं।

दुबकना—क्रि० अ० [हिं० दबकना] दे० 'दबकना'।

दुबगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+बगल] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बेत को दोनों बगलों में से निकालकर हाथ ऊँचे करके उसे ऐसा लपेटते हैं कि एक कुंडल सा बन जाता है। फिर दोनों पैरों को सिर की ओर उठाते हुए उसी कुंडल में से निकलकर कलाबाजी के साथ नीचे गिरते हैं।

दुबज्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुब+जेवरी] गले में पहनने का एक गहना जिसकी बनावट गोप की तरह की होती है।

दुबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दूब] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है।

दुबधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १. दो में से किसी एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव। अनिश्चितता। चित्त की अस्थिरता। उ०—दुबधा में दोऊ गए माया मिले न राम।—(शब्द०)।

मुहा०—दुबधे में डालना = अनिश्चित दशा में करना। दुबधे में पड़ना = अनिश्चित अवस्था में पड़ना।

२. संशय। संदेह। जैसे,—दुबधे की बात मत कहो, ठीक ठीक बताओ कि आओगे या नहीं। ३. असमंजस। आगा पीछा। उ०—को जाने दुबधा संकोच में तुम डर निकट न आवै।—सूर (शब्द०)। ४. खटका। चिंता।

दुबर†—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुबरा'।

दुबरा†—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबरी] दुबला। शरीर से क्षीण। उ०—करी खरी दुबरी सु लगि तेरी चाह चुरैल।—बिहारी (शब्द०)।

दुबराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबरा+ई (प्रत्य०)] १. दुर्बलता। कृशता। २. कमजोरी। अशक्तता। उ०—भई यदपि नैसुक दुबराई। बड़े डोल नहिं देत दिखाई।—शकुंतला, पृ० ३१।

दुबराना†—क्रि० अ० [हिं० दुबरा+ना (प्रत्य०)] दुबला होना। शरीर से क्षीण होना। उ०—(क) लखे न कंत सहेटवा फिरि दुबराय। धनियाँ कमल बदनियाँ, गइ कुम्हिलाइ।—रहीम (शब्द०)। (ख) दुबर लंक अधिक दुबराई। झुके कंध मुख पै पियराई।—शकुंतला, पृ० ४८।

दुबरालगोला—संज्ञा पुं० [हिं० दो+अं० बैरल+हिं० गोला] तोप का लंबोतरा गोला।

दुबराल पलंग—संज्ञा पुं० [हिं० दुबराइल+अं० पुलिंग] पाल की वह डोरी जिसे खींचकर पाल के पेटे की हवा निकालते हैं।

दुबला—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबली] १. क्षीण शरीर का। जिसका बदन हलका और पतला हो। कृश।

यौ०—दुबला पतला।

२. अशक्त। कमजोर।

दुबलापन—संज्ञा पुं० [हिं० दुबला+पन] कृशता। क्षीणता।

दुबाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूबे का स्त्री०] दूबे की स्त्री।

दुबागा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+सं० प्रग्रह, हिं० पगहा, बगई] सन की मोटी रस्सी।

दुबारा—क्रि० वि० [फ़ा० दुबारह, हिं० दो+बार] दे० 'दोबारा'।

दुबाल—वि० [हिं० दुबला] दे० 'दुबला'। उ०—देखत बानिदेन अपने मकमूर हाल। परेशान अपने भी फिकर लग दुबाल।—दक्खिनी०, पृ० २६८।

दुबाला—वि० [फ़ा०] दे० 'दोबाला'। उ०—करै है उस परी के बाले जोबन को दुबाला सा।—नजीर (शब्द०)।

दुबाहिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विबाहु] दोनों हाथों से तलवार चलानेवाला योद्धा।

दुबिद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विविद] दे० 'द्विविद'।

दुबिध¹—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुबधा'।

दुबिध²—वि० [सं० द्विविध] दो प्रकार की। द्विविध। उ०—दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी।—मानस, २। ३०१।

दुबिधा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १. दे० 'दुबधा' उ०—को जानै दुबिधा संकोच में तुम डर निकट न आवै।—सूर (शब्द०)। २. दो प्रकार की भावना। भेद भाव। अच्छे बुरे की भावना। उ०—इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो। सो दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो—सूर०, १। २२०।

दुबिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुबधा'। उ०—जेहि निरखत मन मगन, सो दुबिधि नसावई।—केशव० अमी०, पृ० १।

दुबिध्या(पु)†—संज्ञा स्त्री० [द्विविधा] दे० 'दुबधा'। उ०—अहं परम आनंदमय अहं ज्योति निज सोइ। ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया दुबिध्या रही न कोइ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३।

दुबिला—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबला] दे० 'दुबला'। उ०—कबि लक्खन अबला कहंत सबला जोध कहंत। दुबिला तन में प्रगट जिहि, मोहत संत अमंत।—ह० रासो, पृ० २८। †२. औरत। नारी (बाजारू)।

दुबिसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दो+बीस] एक प्रकार का कमीशन जो गवर्नमेंट किसानों को देती है। अर्थात् बीस रुपए के लगान पर दो रुपए।

दुबीचा†—संज्ञा पुं० [हिं० दो+बीच] १. दो बातों के बीच किसी एक बात का निश्चय न होना। दुबधा। २. संशय। संदेह। ३. असमंजस। आगा पीछा। ४. खटका। चिंता।

दुबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] [स्त्री० दुबाइन] ब्राह्मणों का एक भेद।

दुब्धा संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुबधा'। उ०—इससे मेरा जी दुब्धे में पड़ा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १५।

दुभना†—क्रि० स० [देश०] दे० 'दुहना'। उ०—काहे भूमि इतना भार राखे। दुभत धेनु नहिं दुध चाखे।—दक्खिनी०, पृ०, १०२।

दुभाखी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दे० 'दुभाषी'। उ०—अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी।—मानस, १। २१।

दुभाषिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दो भाषाओं का जाननेवाला ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझावे। दो भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलनेवालों के बीच का मध्यस्थ।

दुभाषी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] दुभाषिया।

दुभिख—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भिक्ष] दे० 'दुर्भिक्ष'।

दुभुज—वि० [सं० द्विभुज] दे० 'द्विभुज'।

दुमंजिला—वि० [फ़ा० दु+मंजिल] [वि० स्त्री० दुमंजिली] दो खंडा। दो मरातिब का। जैसे, दुमंजिला मकान।

दुम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. पूँछ। पुच्छ।

मुहा०—दुम के पीछे फिरना = साथ साथ लगा फिरना। पीछे पीछे घूमना। साथ न छोड़ना। दुम दबाकर भागना = डरपोक कुत्ते की तरह डरकर भागना। डर के मारे न ठहरना। दबकर भागना। (कुत्ते जब अपने से बलिष्ठ कुत्ते को देखते हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों टाँगों के बीच दबा लेते हैं)। दुम दबा जाना = (१) डर के मारे हट जाना। डर से भाग जाना। (२) डर के मारे किसी बात से हट जाना। भयवश किसी काम से पीछे हट जाना। डर के मारे किसी काम से अलग हो जाना। दुम में घुसना = गायब हो जाना। दूर हो जाना। जैसे,—एक चाँटा दूँगा मारी बदमाशी दुम में घुस जायगी। दुम में घुसा रहना = खुशामद के मारे साथ लगा रहना। शुश्रूषा के लिये सदा साथ में रहना। दुम में रस्सा बाँधूँ = नटखट चौपाए की तरह बाँधकर रखूँ। (एक विनोदसूचक वाक्य जो प्रायः किसी पर बिगड़कर बोलते हैं। दुम हिलाना = कुत्ते का दुम हिलाकर प्रसन्नता प्रकट करना।

२ पूँछ की तरह पीछे लगी या बँधी हुई वस्तु। जैसे, सितारे की दुम, टोपी की दुम।

यौ०—दुमदार।

३. पीछे पीछे लगा रहनेवाला आदमी। पिछलग्गू। ४. किसी काम का सबसे अंतिम थोड़ा सा अंश। ५. नाम के अंत में जुड़नेवाली उपाधि। डिग्री। (व्यंग्य)।

दुमची—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १ घोड़े के साज में वह तसमा जो पूँछ के नीचे दबा रहता है। २. दोनों नितंबों के बीच की हड्डी। पुट्ठों के बीच की हड्डी। उ०—बरजे दूनी हठ चढ़ै ना सकुचै न सकाय। टूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाय।—बिहारी (शब्द०)।

दुमदार—वि० [फ़ा०] १. पूँछवाला। २. जिसके पीछे पूँछ की सी कोई वस्तु लगी या बँधी हो। जैसे, दुमदार सितारा, दुमदार टोपी।

दुमन—वि० [सं० दुर्मनस्, दुर्मना] अनमना। अप्रसन्न। खिन्न।

दुमना—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मनस्] अनमना। उ०—दुमना यया बिलायती, मरतों सामंत मोह। —रा० रू०, पृ० २६३।

दुमात, दुमाता(पु)—वि० [सं० दुर्मातृ] १. बुरी माता। २. सौतेली माँ। उ०—मात को न मोह, न द्रोह दुमात को, सोच न तात के गात गहे को। राज को लोभ न प्रान को क्षोभ न बंधु न बोधि रहे को।...ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि सोच बिभीषन भूप कहे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दुमाल†, दुमाला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + माला] पाश । फंदा । उ०—ऐसा मतंग फकीर किया संतन का दुमाल, मेरा सुटा बहु जंजाल ।—दक्खिनी०, पु० ६३ ।

दुमाही—वि० [हिं० दु + माह] दो महीने पर होनेवाला । दो महीने का ।

दुमुहाँ—वि० [हिं० दो + मुहाँ] दे० 'दोमुहाँ' । उ०—सूर्य का सतमुहा घोड़ा आवे तब तो यह दुमुहाँ द्वार खुले पर आवे कैसे ।—श्यामा०, पु० १०९ ।

दुयरा†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण, दुयण अथवा फ़ा० दुश्मन, तुलनीय सं० दुर्मनस्] दुश्मन । शत्रु । उ०—दुयणा हाथ दिखाय ।—रा० रू० पु० ३९ ।

दुरँग(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—सहस उभै खुनिया लग साथे । मुड़िया मेछ दुरँग चे माथे ।—रा० रू०, पु० २२२ ।

दुरँग[2]—वि० [हिं० दो + रंग] दुरंगा । उ०—सुरँग दुरँग सोहत पाग लाल के, कुरँग कैसे लोचन अति लोने ।—नंद०, ग्रं० पु० ३४२ ।

दुरंग‡[1]—वि० [हिं० दो + रंग] दे० 'दुरंगा' ।

दुरंग[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—दुंदभि गरज गान न देखे, दुरंग अढंग आयकर देखे ।—रघु० रू०, पु० ११२ ।

दुरंगा—वि० [हिं० दो + रंग] [वि० स्त्री० दुरंगी] १. दो रंगों का । जिसमें दो रंग हों । जैसे, दुरंगा कपड़ा । २. दो तरह का । दो प्रकार का । ३. दो तरह की चाल चलनेवाला । दो पक्ष अवलंबन करनेवाला ।

दुरंगी[1]—वि० [हिं०] स्त्री० दे० 'दुरंगा' । जैसे, दुरंगी चाल । दुरंगी छींट ।

दुरंगी[2]—संज्ञा स्त्री० द्विविधा । कुछ इस पक्ष का कुछ उस पक्ष का अवलंबन । जैसे, –दुरंगी छोड़ दे एक रंग हो जा ।

दुरंत—वि० [सं० दुरन्त] १. जिसका अंत या पार पाना कठिन हो । अपार । बड़ा भारी । उ०—काम कोट मत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।—तुलसी (शब्द०) । २. दुर्गम । दुस्तर । कठिन । जिसे करना या पाना सहज न हो । उ०—वह जो हुती प्रतिमा समीप की सुख सम्पत्ति दुरत जई री ।—सूर (शब्द०) ३. घोर । प्रचंड । भीषण । ४. जिसका अंत या परिणाम बुरा हो । अशुभ । बुरा । कुत्सित । उ०—पुत्र हौं विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत ।—केशव (शब्द०) । ५. दुष्ट । खल ।

दुरंतक—संज्ञा पुं० [सं० दुरन्तक] शिव ।

दुरंधा(पु)—वि० [सं० द्विरन्ध्र] दो छिद्रवाला । आर पार छेदा हुआ । उ०—बंधे कबंधे दुरंधे करे अंग । सोंधे मृगधेनु को पाइ के जंग ।—सूदन (शब्द०) ।

दुर—अव्य० या उप० [सं०] इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है । (१) दूषण (बुरा अर्थ) जैसे, दुरात्मा, दुर्दिन, (२) निषेध, जैसे, दुर्बल । (३) दुःख या कष्ट, जैसे, दुर्गम ।

दुर—अव्य० [हिं० दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कारपूर्वक हटाने के लिये होता है और जिसका अर्थ है 'दूर हो' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कुत्तों के लिये होता है । कभी कभी यों ही प्यार से भी लोग बच्चों या प्रियजनों आदि को 'दुर' कह देते हैं, जैसे,—दुर ! पगली, क्या बकती है ?

मुहा०—दुर दुर करना = तिरस्कारपूर्वक हटाना । कुत्ते की तरह भगाना । दुर दुर फिट फिट = तिरस्कार ।

दुर[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मोती । मुक्ता । २. मोती का वह लटकन जो नाक में पहना जाता है । लोलक । ३. छोटी बाली । उ०—काल्ह कुँवर को कनछेदन है हाथ सोहारी भेली गुर की । ... कंचन के द्वै दुर मंगाय लिए कहौं कहाँ छेदनि आतुर की ।—सूर०, १०।१८० ।

दुरकना—क्रि० अ० [हिं० दुरना] दे० 'दुरना' । उ०—बदन फेरि हँसि हेरि इत करि ललचौहैं नैन । उर उरकी दुरकी लुरक जुर मुरकी कर सैन ।—स० सप्तक, पु० ३९६ ।

दुरकरम—(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दुर,+हिं० करम] दे० 'दुष्कर्म' । उ०—भाई ! सुरी धरम सरसावो । मेछ धरम दुरकरम मिटावो ।—रा० रू०, पु० ३६४ ।

दुरकुच्छी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. अटपटापन । २. ऊब । विरक्ति ।

क्रि० प्र०—लगना ।

दुरक्ष[1]—वि० [सं०] १. दुर्बल दृष्टिवाला । २. जिसकी निगाह अच्छी न हो । बुरी निगाहवाला ।

दुरक्ष[2]—संज्ञा १. जाली पासा । २. बेईमानी का जुआ [को०] ।

दुरखा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० दुरखी] एक प्रकार का फतिंगा जो नील, तमाखू, सरसों, गेहूँ, इत्यादि की फसल को नुकसान पहुँचाता है ।

दुरगंद—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गंध' । उ०—भरे दुरगंद का माँड़ा । बिरला कोई संत ने छाँड़ा ।—तुरसी० श०, पु० ३१ ।

दुरग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—ऐसो ऊँचो दुरग महाबली के जामैं नखतावली सों बहस दीपावलि करत है ।—भूषण ग्रं०, पु० ३९ ।

दुरगत—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' । उ०—सांत रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है । हमें सांत रहना मत सिखाओ ।—काया०, पु० १९१ ।

दुरगति—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' उ०—सब कोई नाम गहो रे भाई । छोड़ो दुरगति औ चतुराई ।—कबीर सा०, पु० ८१४ ।

दुरचुम—संज्ञा पुं० [देश०] दरी के ताने के दो दो सूतों को इसलिये एक में बाँधना जिसमें वे उलझ न जायँ ।

दुरजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति । परति गाँठ दुरजन हिए दई नई यह रीति ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुरजोधन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्योधन] दे० 'दुर्योधन' ।

दुरतिक्रम—वि० [सं०] १. जिसका अतिक्रमण न हो सके । जिसके बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके । प्रबल । उ०—भ्रंकटाहु अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. पाररहित । जिसका पार पाना कठिन हो । अपार ।

दुरत्यय—वि० [सं०] १. जिसका पार पाना कठिन हो। अपार। २. जिसका अतिक्रमण न हो सके। दुस्तर।

दुरथल—संज्ञा पुं० [सं० दुःस्थल] बुरा स्थान। खराब जगह।

दुरद—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद, प्रा० दुरद] दे० 'द्विरद'। उ०—दुरद दुरेफन के दरते ढरत स्वच्छ सुमन गुलाब दल छबि छूत छूटि छूटि।—पजनेस०, पृ० १०।

दुरदाम—वि० [सं० दुर्दम] कठिन। कष्टसाध्य। उ०—हरि राधा राधा रटत जपत मंत्र दुरदाम। बिरह बिराग महायोगी ज्यों बीतत हैं सब याम।—सूर (शब्द०)।

दुरदाल—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद] हाथी।

दुरदुराना—क्रि० स० [हिं० दुरदुर] तिरस्कारपूर्वक दूर करना। अपमान के साथ भगाना या हटाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषतः कुत्तों के लिये होता है।

संयो० क्रि०—देना।

दुरधिगम—वि० [सं०] १. जो पहुँच के बाहर हो। दुष्प्राप्य। २. जो समझ के बाहर हो। दुर्बोध।

दुरधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'दुरधिगम'।

दुरधिष्ठित—वि० [सं०] जो व्यवस्थित न हो। अव्यवस्थित। बेतरतीब (को०)।

दुरधीत[1]—वि० [सं०] उचित ढंग से न पढ़नेवाला। अशुद्ध अध्ययन करनेवाला (को०)।

दुरधीत[2]—संज्ञा पुं० वेद का अशुद्ध ढंग से किया गया अध्ययन (को०)।

दुरध्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुपथ। कुमार्ग। बुरा रास्ता।

दुरनय—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नय] असदाचार। अनीति। उ०—श्याम ननद ये क्रूर हैं मेरो दुरनय जान। करिहैं और अनर्थ जे प्रतिमा संका मान।—स० सप्तक, पृ० ३७२।

दुरना—क्रि० अ० [हिं० दूर] १. आँखों के आगे से दूर होना। ओट में होना। आड़ में जाना। २. न दिखलाई पड़ना। न प्रकट होना। छिपना। उ०—बैर प्रीति नहिं दुरत दुराए।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

दुरन्वय[1]—वि० [सं०] १. दुर्ज्ञेय। जिसे समझना कठिन हो। २. जिसका अनुगमन कठिन हो। ३. जो ठीक न हो। ४. दुष्प्राप्य (को०)।

दुरन्वय[2]—संज्ञा पुं० गलत नतीजा। अशुद्ध निष्कर्ष (को०)।

दुरपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रौपदी] दे० 'द्रौपदी'।

दुरपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवाद। निंदा। अपयश।

दुरबचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुर+हिं० बच्चा] एक मोती। छोटी बाली जिसमें एक मोती हो।

दुरबरन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वर्ण] रजत। चाँदी। रूपा। उ०—रुक्म रजत दुरबरन पुनि जातरूप अर्जुर।—अनेकार्थ०, पृ० ८६।

दुरबल—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुर्बल'।

दुरबास[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दुर्गंध। बुरी गंध।

दुरबास[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दे० 'दुर्वासा'। उ०—ऋषि भए अपर दुरबास नाम। सोइ सुनो स्रवण तिहिं बंस जाम।—ह० रासो, पृ० ६।

दुरबासा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वासस्] दे० 'दुर्वासा'।

दुरबिंद—संज्ञा पुं० [?] दे० 'दूरबीन'। उ०—नैन तो दुरबिंद करि ले चिन्हहु देवता प्रेत।—सं० दरिया, पृ० ११०।

दुरबीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दूरबीन'।

दुरबेश—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरवेश] दे० 'दरवेश'।

दुरभिग्रह[1]—वि० [सं०] कठिनता से पकड़ में आनेवाला।

दुरभिग्रह[2]—संज्ञा पुं० अपामार्ग। चिचड़ी।

दुरभिग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। कपिकच्छु। २. धमासा।

दुरभिच्छ—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भिक्ष] अकाल। कहत। दुर्भिक्ष। उ०—तहाँ अकास चले दुर दोई। अन ना उपजै दुरभिच्छ होई।—स० दरिया०, पृ० २७।

दुरभिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरभिसन्धि] बुरा षट्चक्र। बुरे अभिप्राय से गुट बाँधकर की हुई सलाह। मिल जुलकर की हुई कुमंत्रणा।

दुरभेव—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाव या दुर्भेद] बुरा भाव। मनमोटाव। मनोमालिन्य। उ०—याम दिवस करि ध्यान तहँ नृप चरणामृत लेव। दुर्वासा लिय जानि सब मान्यो मन दुरभेव।—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।

दुरभै—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भय] अपभय। उ०—जन को दीनता जब आवै। रहै अधीन दीनता भावै दुरभै दूर बहावै।—कबीर श०, भा० १, पृ० १००।

दुरमत—संज्ञा स्त्री० [प्रा० हिं०] दे० 'दुर्मति'। उ०—पाँचो यार पचीसो भाई सगरि गोहार बोलाओ। तेगा तरकस कस के बाँधो, दुरमत दूर बहाओ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ७।

दुरमति—वि० [सं० दुर्मति] खल। दुष्ट। दुर्बुद्धि। दुर्मति। उ०—दुरमति दंभ गहे कर में डफ हुबड़ हुबड़ दै तारी।—चरन०, पृ० ६१।

दुरमिस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरमुस'।

दुरमुख—वि० [सं० दुर्मुख] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। उ०—दुरमुख दुस्सासन बिकर्ण निज ब्यूहन बाँचहु।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १०६।

दुरमुट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरमुस'।

दुरमुस—संज्ञा पुं० [सं० दुर् (प्रत्य०) + हिं० मुस (=कूटना)] गदा के आकार का डंडा जिसके नीचे पत्थर या लोहे का भारी टुकड़ा लगा रहता है और जिससे कंकड़ या मिट्टी पीटकर बैठाई जाती है, अथवा मिट्टी तोड़कर महीन बनाई जाती है।

दुररीत—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्, हिं० दुर + रीति] कुचाल। अन्याय। उ०—घटे क्रिया बाँभणाँ, मिटे झालर परसादाँ। ईत प्रजा ऊपजे, निरख दुररीत निसादाँ।—रा० रू०, पृ० २०।

दुरलभ—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ'।

दुरवग्रह—वि० [सं०] जिसे वश में करना या रोकना कठिन हो। जो कठिनाई से काबू में आ सके [को०]।

दुरवस्थ—वि० [सं०] जो अच्छी दशा में न हो।

दुरवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी दशा। खराब हालत। २. हीन दशा। दुःख, कष्ट या दरिद्रता की दशा।

दुरवाप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरवापा] जो कठिनता से प्राप्त हो सके। दुष्प्राप्य।

दुरवेस†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरवेश] दरवेश। संत। फकीर। उ०—हमहीं हैं दुरवेसा और ना दूसर कोई।—पलटू०, भा० १, पृ० १८।

दुरवेसवा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुरवेस+वा (प्रत्य०)] दे० 'दुरवेस'। उ०—ना हुवा ब्रह्मा न बिस्नु महेसवा। ना जोगी जंगम दुरवेसवा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४७।

दुरस[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दो+औरस] सहोदर भाई।

दुरस[2]—वि० [हिं० दो+रस] १ दोरसा। दुहरे रसवाला। उ०—मानिक मलूक मालुम जिसकौ दुरस दिल हुरमाल हैं।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३९९। २† दो प्रकार की मिट्टीवाला। बालू मिली मिट्टीवाला।

दुरस†[3]—वि० [फ़ा० दुरुस्त] ठीक। उचित। यथास्थान। व्यवस्थित। उ०—गुण गजबंध तणा कथ गावै दुरस परायण भी दरसावै।—रा० रू०, पृ० १६।

दुरसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध कवि जो राजस्थान के थे।

दुराउ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुराव'।

दुराक—संज्ञा पुं० [सं०] एक म्लेच्छ जाति का नाम। २. एक देश का नाम।

दुराकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्दी आकृतिवाला। बदसूरत [को०]।

दुराक्रंद—वि० [सं० दुराक्रंद] जोरों से रोता हुआ [को०]।

दुराक्रम—वि० [सं०] दुर्जेय। जिसे जीता न जा सके [को०]।

दुराक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल से किया गया आक्रमण। २. दुर्गम स्थान [को०]।

दुराक्रांत—वि० [सं० दुराक्रान्त] अपराजेय। अविजित। उ०—अयुतलक्ष में रहा जो दुराक्रांत, कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार बार, असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार।—अनामिका, पृ० १५०।

दुरागम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित ढंग से प्राप्ति [को०]।

दुरागमन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] दे० 'द्विरागमन'।

दुरागौन—संज्ञा पुं० [सं० द्विरागमन] बहू का दूसरी बार अपनी ससुराल जाना।

क्रि० प्र०—कराना।

मुहा०—दुरागौन देना = लड़की को दूसरी बार ससुराल भेजना। दुरागौन लाना = बहू को दूसरी बार उसके पिता के घर से लाना।

दुराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बात पर बुरे ढंग से अड़ना। हठ। जिद। २. अपने मत के सिद्ध न होने पर भी उसपर स्थिर रहने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दुराग्रही—वि० [सं० दुराग्रहिन्] १. बिना उचित अनुचित के विचार के अपनी बात पर अड़नेवाला। हठी। जिद्दी। २. अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उसपर स्थिर रहनेवाला।

दुराचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी चाल चलन। खोटा व्यवहार।

दुराचार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आचरण। बुरी चाल चलन। खोटी चाल। निंदित कर्म।

दुराचार[2]—वि० बुरे या निंद्य आचरणवाला [को०]।

दुराचारी—वि० [सं० दुराचारिन्] [वि० स्त्री० दुराचारिणी] दुष्ट आचरण करनेवाला। बुरी चाल चलन का। बुरे काम करनेवाला।

दुराज[1]—संज्ञा पुं० [सं० दुर+राज्य] बुरा राज्य। बुरा शासन। उ०—दिन दिन दूनो देखि दारिद, दुकाल, दुःख, दुरित, दुराज, सुख सुकृत सकोच है।—तुलसी (शब्द०)।

दुराज[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दो+राज्य] १. एक ही स्थान पर दो राजाओं का राज्य या शासन। उ०—(क) जोग बिरह के बीच परम दुख मरियत है यहि दुसह दुराजे।—सूर (शब्द०) (ख) दुसह दुराज प्रजानि कों क्यों न बढ़ै अति दंद। अधिक अंधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंद।—बिहारी (शब्द०)। २. वह स्थान जिसपर दो राजाओं का राज्य हो। दो राजाओं की अमलदारी। उ०—लाज बिलोकन देति नहीं रतिराज बिलोकन ही की दई मति।···लाल निहारिए सौंह कहौं वह बाल भई है दुराज की रैयति।—तोष (शब्द०)। ३. बुरा शासन। दोषपूर्ण शासन।

दुराजी—पु [सं० दुराज्य] दो राजाओं का। जिसमें दो राजा हों। उ०—नगर चैन तब जानिये जब एकै राजा होय। याहि दुराजी राज में सुखी न देखा कोय।—कबीर (शब्द०)।

दुरात्मा—वि० [सं० दुरात्मन्] दुष्टात्मा। नीचाशय। खोटा।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना (= छिपना)] छिपाव। गोपन।

मुहा०—दुरादुरी करके = छिपे छिपे। गुप्त रूप से। उ०—सिय भ्राता के समय भोम तहँ आयउ। दुरादुरी करि नेग, सु नात जनायउ।—तुलसी (शब्द०)।

दुराधन—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधरष—वि० [सं० दुराधर्ष] दे० 'दुराधर्ष'। उ०—सबहिं देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना।—मानस, १।८६।

दुराधर्ष[1]—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो। जो बड़ी कठिनाई से जीता जा सके। जो वश में न आ सके। प्रचंड। प्रबल। उ०—(क) धूमकेतु शतकोटि सम दुराधर्ष भगवंत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दवन दुवन दल दर्प दिल दुराधर्ष दिगदंति। दशरथ के सामंत अस दशदिग कीर्ति करंति।—रघुराज (शब्द०)।

दुराधर्ष[2]—संज्ञा पुं० १. पीली सरसों । २. विष्णु ।

दुराधर्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंडता । प्रबलता ।

दुराधर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटुंबिनी का पौधा ।

दुराधार—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दुरानम—वि० [सं०] जिसे कठिनाई से झुकाया जा सके [को०] ।

दुराना—क्रि० अ० [हिं० दूर] १. दूर होना । हटना । टलना । भागना । उ०—यद्यपि सूर प्रताप श्याम को दूरि दुरात ।—सूर (शब्द०) । २. छिपना । आड़ में होना । अलक्षित होना । उ०—श्री वृषभानु नंदिनी ललिता दोऊ वा मग जात । तुमहूँ आय माधुरी कुंजन पहिलेहि क्यो न दुरात ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

दुराना—क्रि० स० १. दूर करना । हटाना । उ०—रे भैया, केवट ! ले उतराई । रघुपति महाराज इत ठाढ़े तैं कहँ नाव दुराई ।—सूर (शब्द०) । २. छोड़ना । त्यागना । न रखना । उ०—भजहु कृपानिधि कपट दुराई ।—सूर० (शब्द०) । ३. छिपाना । गुप्त रखना । प्रकट न करना । उ०—(क) तुम तो तीन लोक के ठाकुर तुम तें कहा दुराइए ।—सूर (शब्द०) । (ख) बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ ।—मानस, २ । १ ३ ।

दुराप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरापा] कठिनता से मिलनेवाला । दुष्प्राप्य । दुर्लभ ।

दुरावाध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

दुराराध्य[1]—वि० [सं०] कठिनाई से आराधन करने योग्य । जिसको पूजन या संतुष्ट करना कठिन हो । उ०—दुराराध्य पै अहहिं महेसू । आसुतोष पुनि किए कलेसू ।—मानस, १ । ७० ।

दुराराध्य[2]—संज्ञा पुं० विष्णु ।

दुरारुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल । २. नारियल । ३. ताजवृक्ष । खजूर (को०) ।

दुरारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़ ।

दुरारोप—वि० [सं०] जिसको चढ़ाना कठिन हो (धनुष) ।

दुरारोह[1]—वि० [सं०] जिसपर चढ़ना कठिन हो ।

दुरारोह[2]—संज्ञा पुं० ताड़ का पेड़ ।

दुरारोहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेमर का पेड़ । खजूर का पेड़ ।

दुरालभ—वि० [सं० दुरालम्भ] [वि० स्त्री० दुरालंभा] दे० 'दुरालभ' ।

दुरालंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरालम्भा] दे० 'दुरालभा' [को०] ।

दुरालभ—वि० [सं०] जिसका मिलना कठिन हो । दुष्प्राप्य ।

दुरालभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । धमासा । हिंगुवा । २. कपास ।

दुरालाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा वचन । बुरी बातचीत । २. गाली । अपशब्द ।

दुरालाप[2]—वि० दुर्वचन कहनेवाला । कटुभाषी ।

दुरालोक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तेज चमक । चकाचौंध करनेवाला आलोक या प्रकाश [को०] ।

दुरालोक[2]—वि० १. जिसे देखना कठिन हो । २. दुर्दर्श [को०] ।

दुराव—संज्ञा पुं० [हिं० दुराना] किसी बात को दूसरे से छिपाने का भाव । अविश्वास या भय के कारण किसी से बात गुप्त रखने का भाव । उ०—सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । देखहु नारि सुभाउ प्रभाऊ ।—तुलसी (शब्द०) । २. कपट । छल । उ०—भरत सपथ तोहिं सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ । हरष समय बिसमय करसि कारन मोहिं सुनाउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुरावना—क्रि० स० [सं० दूर] छिपाना । दुराना । उ०—(क) सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनी हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३२ । (ख) ताही सकोच मनो मृगलोचनि लोचन बोल दुरावन लागी ।—मति० ग्रं०, पृ० ३८३ ।

दुरावार—वि० [सं०] १. जिसे ढका न जा सके । २. जिसे रोका या रखा न जा सके [को०] ।

दुराश—वि० [सं०] जिसे दुराशा हो । जिसे अच्छी उम्मीद न हो ।

दुराशय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट आशय । बुरी नीयत । २. दुष्ट स्थान । बुरी जगह (को०) । ३. खोटा या बुरा व्यक्ति (को०) ।

दुराशय[2]—वि० जिसका आशय बुरा हो । बुरी नीयतवाला । खोटा ।

दुराशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐसी आशा जो पूरी न होनेवाली हो । व्यर्थ की आशा । झूठी उम्मीद । उ०—दिन दिन अधिक दुराशा लागो सकल लोक भरमायो ।—सूर (शब्द०) । २. अनुचित चाहना । बुरी आकांक्षा ।

दुरास—संज्ञा स्त्री० [सं० दुराशा] दुराशा । निष्फल कामना । न मिलनेवाली वस्तु के मिलने की झूठी या मिथ्या आशा । उ०—दौरयो दुरास मे दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो ।—सुंदर ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० ११४ ।

दुरासद—वि० [सं०] १. दुष्प्राप्य । २. दुःसाध्य । कठिन । उ०—तुम ही महा दुरासद काल । धारे दड प्रचड कराल ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१२ । ३. अद्वितीय । असमान (को०) । ४. जिसे जीतना या वश में करना कठिन हो (को०) ।

दुरासा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुराशा] दे० 'दुराशा' । उ०—सहित दोष दुख दास दुरासा । दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुराह—वि० [सं० दुः + फा० राह] गलत राह पर चलनेवाला । उ०—हिंदू तुरक दुराह सबै इकसार चलाऊँ ।—ह० रासो०, पृ० ७२ ।

दुराही—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुराहो' । उ०—खुदा कुतुबशाह कूँ शहंशाह यर कर सो सारे जगत मे दुराही फिराया ।—दक्खिनी०, पृ० ७३ ।

दुरित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप । पातक । २. उपपातक । छोटा पाप ।

विशेष—उशना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है ।

दुरित²—वि० पापी। पातकी। अघी। उ०—प्रबल दनुज दल दलि पल आध में जीवन दुरित दसावन गहिबो।—तुलसी (शब्द०)।

दुरितदमनी¹—वि० स्त्री० [सं०] पाप का नाश करनेवाली।

दुरितदमनी—संज्ञा स्त्री० शमी वृक्ष।

दुरियाना†—क्रि० स० [सं० दूर] दूर करना। हटाना। २. दुर-दुराना। तिरस्कार के साथ भगाना। उ०—धम की सही न जाय दुर्वासा की क्या गत कीन्हा। भुवन चतुर्दश फिरे सभे दुरियाय जो दीन्हा।—पलटू०, भा० १, पृ० १५।

दुरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। पातक।

विशेष—उशना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है।

२. वह यज्ञ जो मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचारों के लिये किया जाय।

विशेष—स्मृति पुराण आदि में ऐसा यज्ञ करना महापाप लिखा है। विष्णुपुराण में लिखा है कि देवता, ब्राह्मण और पितरों से द्वेष करनेवाला, दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, कृमिभक्ष और कृमीश नरक में जाते हैं।

दुरिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरिष्ट यज्ञ। अभिचारार्थ यज्ञ।

दुरीषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अहित कामना। २. शाप। बददुआ।

दुरुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित कथन। बुरी उक्ति [को०]।

दुरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुचित उक्ति। बुरी बात। दुर्वचन [को०]।

दुरुक्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विरुक्ति] दे० 'द्विरुक्ति'।

दुरुखा—वि० [फ़ा० दुरुखा] १. जिसके दोनों ओर मुँह हो। २. जिसके दोनों ओर कोई चिन्ह या विशेष वस्तु हो। जैसे, दुरुखा कागज। ३. जिसके दोनों ओर दो रंग हों। जैसे, दुरुखा किनारा।

दुरुच्चाय—वि० [सं०] (वह शब्द) जिसका उच्चारण क्लिष्ट हो। कर्णकटु। उ०—दुरुच्चार्य शब्दों की भरमार होने पर अथवा सहसा छंद बदल जाने पर भी भावाप्रवाह नष्ट हो जाता है। आदि०, पृ० २४।

दुरुच्छेद—वि० [सं०] जिसका उच्छेद कठिनता से हो। कष्ट से उच्छेद, विनाश या दूरीकरण योग्य [को०]।

दुरुत्तर¹—वि० [सं०] जिसका पार पाना कठिन हो। जिसे पार करना कठिन हो। दुस्तर।

दुरुत्तर²—संज्ञा पुं० दुष्ट उत्तर। बुरा जवाब।

दुरुद्वह—वि० [सं०] १. जिसका निभाना कठिन हो। २. जिसे वहन न किया जा सके [को०]।

दुरुधरा—संज्ञा स्त्री० [यू० दुरोथोरिया] बृहज्जातक के अनुसार जन्मकुंडली का एक योग जिसमें अनफा और सुनफा दोनों योगों का मेल होता है।

विशेष—जन्मकुंडली में यदि सूर्य को छोड़कर कोई दूसरा ग्रह चंद्रमा से बारहवें घर में हो तो अनफा योग होता है और चंद्रमा से दूसरे घर में हो तो सुनफा योग होता है। जहाँ ये दोनों योग हों वहाँ दुरुधरा योग होता है। इस योग में जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, वीर और विख्यात पुरुष होता है।

दुरुपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा उपयोग। अनुपयुक्त, व्यवहार। किसी वस्तु को बुरी तरह काम में लाना। बुरा इस्तेमाल।

दुरुपयोजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर् + उपयोजन]बुरे ढंग से व्यवहार में लाना। उपयोग करने का गलत या अनुचित ढंग।

दुरुफ—संज्ञा पुं० [?] नीलकंठ ताजिक के अनुसार फलित ज्योतिष का एक योग।

दुरुम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है।

दुरुस्त—वि० [फ़ा०] १. जो अच्छी दशा में हो। जो टूटा फूटा या बिगड़ा न हो। ठीक। जैसे, घड़ी दुरुस्त करना। २. जिसमें दोष या त्रुटि न हो। जिसमें ऐब न हो। ठीक। उ०—दूसरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ३७७।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—किसी को दुरुस्त करना = (१) किसी की चाल सुधारना। (२) किसी को दंड देना।

३. उचित। मुनासिब। ४. यथार्थ। वास्तविक। जैसे,—आपका कहना दुरुस्त है।

दुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सुधार। संशोधन।

दुरूह—वि० [सं०] जो विचार या ऊहा में जल्दी न आ सके। जिसका जानना कठिन हो। समझ में न आने योग्य। गूढ़। कठिन।

दुरेत(पु)—वि० [देश०] ढका हुआ। भरा हुआ। पूर्ण। उ०—दुरित दुरेत अचेत प्रेत मति हतित पतित उद्धार। —छीत०, पृ० ४।

दुरेफ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वि, प्रा० दु + सं० रेफ] दे० 'द्विरेफ'। उ०—मुरल मुख छवि पत्र शाखा दृग दुरेफ चढ्यो।—सूर (शब्द०)।

दुरेषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुरीषणा' [को०]।

दुरैफ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विरेफ] दे० 'द्विरेफ'। उ०—जथा पंकजं वै दुरैफे लुभाए। तथा साह बंध्यो सनेहं सुभाए।—ह० रासो, पृ० ३४।

दुरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआरी। २. जुआ। ३. द्यूत क्रीड़ा। पाशा क्रीड़ा। पासा खेलना।

दुरौंधा—संज्ञा पुं० [सं० द्वारोर्द्ध] दरवाजे के ऊपर की लकड़ी। भरेठा।

दुर्कुल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कुल] दे० 'दुष्कुल'। उ०—अमी विषहु से मलहु से लेहु सोन करि यत्न। नीचहुँ ते उत्तम गुनन दुर्कुल से तिय रत्न।—चाणक्य नीति (शब्द०)।

दुर्गंध—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] बुरी गंध। बुरी महक। कुबास। सुगंध का उलटा।

दुर्गंध¹—संज्ञा पुं० १. काला नमक। २. प्याज। ३. आम का पेड़।

दुर्गंध³—वि० अशुचि गंधवाला । कुवास युक्त । बुरी गंध का [को०] ।

दुर्गंधता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धता] दुर्गंध का भाव ।

दुर्गंधि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धि] दुर्गंध । बुरी गंध ।

दुर्गंधि²—वि० [सं०] अशुचि गंध से युक्त [को०] ।

दुर्ग¹—वि० [सं०] १. जिसमें पहुँचना कठिन हो । जहाँ जाना सहज न हो । २. जिसका समझना कठिन हो । दुर्बोध ।

दुर्ग²—संज्ञा पुं० १. पत्थर आदि की चौड़ी दीवालों से घिरा हुआ वह स्थान जिसके भीतर राजा, सरदार और सेना के सिपाही आदि रहते हैं । गढ़ । कोट । किला ।

विशेष—ऋग्वेद तक में दुर्ग का उल्लेख है । दस्युओं के ९९ दुर्गों को इंद्र ने ध्वस्त किया था । मनु ने छह प्रकार के दुर्ग लिखे हैं—(१) धनुदुर्ग, जिसके चारों ओर निर्जल प्रदेश हो, (२) मही-दुर्ग, जिसके चारो ओर टेढ़ी मेढ़ी जमीन हो, (३) जलदुर्ग (अब्दुर्ग), जिसके चारों ओर जल हो, (४) वृक्ष दुर्ग, जिसके चारो ओर घने वृक्ष हों, (५) नरदुर्ग जिसके चारों ओर सेना हो और (६) गिरिदुर्ग, जिसके चारों ओर पहाड़ हो या जो पहाड़ पर हो । महाभारत में युधिष्ठिर ने जब भीम से पूछा है कि राजा को कैसे पुर में रहना चाहिए तब भीष्म जी ने ये ही छह प्रकार के दुर्ग गिनाए हैं और कहा है कि पुर ऐसे ही दुर्गों के बीच में होना चाहिए । मनुस्मृति और महाभारत दोनों में कोष, सेना, अस्त्र, शिल्पी, ब्राह्मण, वाहन, तृण, जलाशय, अन्न इत्यादि का दुर्ग के भीतर रहना आवश्यक कहा गया है । अग्निपुराण, कालिकापुराण आदि में भी दुर्गों के उपर्युक्त छह भेद बतलाए गए हैं ।

२. एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा । ३. विष्णु का नाम (को०) । ४. गुग्गुल (को०) । ५. एक पर्वत (को०) । ६ सँकरा मार्ग (को०) । ७. ऊबड़खाबड़ जमीन । ऊँची नीची भूमि (को०) । ८. यमदंड (को०) । ९. शोक । दुःख (को०) । १०. दुष्कर्म (को०) । ११. सांसारिक बंधन (को०) । १२. नरक (को०) । १३. भयंकर विघ्न, व्याधि या भयादि (को०) ।

दुर्गकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गकर्मन्] किला बनाने का काम ।

दुर्गकारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्ग बनानेवाला मनुष्य । २. एक वृक्ष का नाम ।

दुर्गकोपक—संज्ञा पुं० [सं०] किले में बगावत फैलानेवाला विद्रोही ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसे कपड़े में लपेटकर जीता जला दिया जाता था ।

दुर्गदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दुर्गच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन दर्शन में एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से मलिन पदार्थों से ग्लानि उत्पन्न होती है ।

दुर्गत—वि० [सं०] १. दुर्दशाग्रस्त । जिसकी बुरी गति हो । २. दरिद्र ।

दुर्गतकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह काम जो अकाल पड़ने पर पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय ।

दुर्गतरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम । सावित्री देवी । (महाभारत) ।

दुर्गसेतुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार टूटे हुए मकानों की मरम्मत का काम जो दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय ।

दुर्गति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी गति । दुर्दशा । बुरा हाल । जिल्लत । जैसे,—(क) मरहटों ने गुलाम कादिर की बड़ी दुर्गति की; उसके नाक कान काटकर उसे पिंजरा में बंद कर दिया ।—(शब्द०) । (ख) पानी बरस जाने से रास्ते में बड़ी दुर्गति हुई । २. वह दुर्दशा जो परलोक में हो । नरक ।

दुर्गति(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः + गति] दुर्गम होने का भाव । दुर्गमता । उ०—दुर्गति दुर्गम ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।—केशव (शब्द०) ।

दुर्गदानी†—वि० पुं० [सं०] दुर्गति देनेवाला । नरक भोग देनेवाला । उ०—चित्रगुप्त दुर्गदानी, सो येहि विधि जाता हो ।—धरम० पृ० ५३ ।

दुर्गपति—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का अधीश्वर । दुर्ग का स्वामी या रक्षक [को०] ।

दुर्गपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का रक्षक । किलेदार ।

दुर्गपुष्पी—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम । केशपुष्पा ।

दुर्गम¹—वि० [सं०] १. जहाँ जाना कठिन हो । जहाँ जल्दी पहुँच न सके । औघट । उ०—दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।—तुलसी (शब्द०) । २. जिसे जानना कठिन हो । जो जल्दी समझ में न आवे । दुर्ज्ञेय । ३. कठिन । विकट । दुस्तर ।

दुर्गम²—संज्ञा पुं० १. गढ़ । दुर्ग । किला । २. विष्णु । ३. वन । ४. संकट का स्थान । कठिन स्थिति । ५. एक असुर का नाम ।

दुर्गमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गम होने का भाव ।

दुर्गमनीय—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । जिसके यहाँ तक जल्दी पहुँच न हो ।

दुर्गम्य—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । उ०—दशाट्य अहसन दुर्गम्य ओषकार देषु । —वर्ण०, पृ० १७ ।

दुर्गरक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] किलेदार । गढ़पति ।

दुर्गलंघन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गलङ्घन] (रेतीले दुर्गम स्थानों को पार करनेवाला) ऊँट ।

दुर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

दुर्गव्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग या किले का कमजोर हिस्सा या त्रुटि [को०] ।

दुर्गसंचर—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गसञ्चर] दुर्गम स्थानों तक पहुँचने का साधन । जैसे, सीढ़ी, पुल, बेड़ा इत्यादि ।

दुर्गसंचार—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गसञ्चार] दे० 'दुर्गसंचर' ।

दुर्गसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन दुर्ग की मरम्मत [को०] ।

दुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदि शक्ति । देवी ।

विशेष—शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेय संहिता में रुद्र की भगिनी अंबिका का उल्लेख इस प्रकार है—हे रुद्र ! अपनी भगिनी अंबिका के साथ हमारा दिया हुआ भाग ग्रहण करो। इससे जाना जाता है कि शत्रुओं के विनाश के लिये जिस प्रकार प्राचीन आर्यगण रुद्र नामक क्रूर देवता का स्मरण करते थे उसी प्रकार उनकी भगिनी अंबिका का भी करते थे। वैदिक काल में अंबिका रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थी। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह आख्यायिका है—एक बार देवताओं ने समझा कि विजय हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिये ब्रह्म यक्ष के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवताओं ने उसे पहचाना नहीं। हाल चाल लेने के लिये पहले अग्नि उसके पास गए। यक्ष ने पूछा 'तुम कौन हो ?' अग्नि ने कहा 'मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ।' इसपर उस यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा 'इसे भस्म करो'। अग्नि ने बहुत जोर मारा पर तिनका ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गए। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब सब देवताओं ने इंद्र से कहा कि इस यक्ष का पता लेना चाहिए कि यह कौन है। जब इंद्र गए तब वह अंतर्धान हो गया। थोड़ी देर पीछे एक स्त्री प्रकट हो गई जो 'उमा हैमवती' देवी थी। इंद्र के पूछने पर उमा हैमवती ने बतलाया कि यक्ष ब्रह्म था, उसकी विजय से तुम्हें महत्व मिला है। तब इंद्र आदिक देवताओं ने ब्रह्म को जाना। अध्यात्म पक्षवाले 'उमा हैमवती' से ब्रह्म विद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक के एक मंत्र में 'दुर्गादेवीं शरणमहं प्रपद्ये' वाक्य आया है और एक स्थान पर गायत्री छंद का एक मंत्र है जिसे सायण ने 'दुर्गा गायत्री' कहा है। देवी भागवत में देवी की उत्पत्ति के संबंध में कथा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी स्त्रियों से मिलकर अपना थोड़ा थोड़ा तेज निकालें। सबके तेज समूह से एक स्त्री निकलेगी जो उस असुर का वध करेगी। महिषासुर को वर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने रौप्य वर्ण का विष्णु ने नील वर्ण का और इंद्र ने विचित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना अपना तेज निकाला और एक तेजस्वरूपा देवी प्रकट हुई, जिसने उस असुर का संहार किया।

कालिकापुराण में लिखा है कि परब्रह्म के अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने तो सृष्टि स्थिति के लिये अपनी अपनी शक्ति को ग्रहण किया पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गए। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे पड़े कि शिव भी किसी स्त्री का पाणिग्रहण करें। पर शिव के योग्य कोई स्त्री मिलती ही नहीं थी। बहुत सोच विचार के पीछे ब्रह्मा ने दक्ष से कहा—'विष्णुमाया के अतिरिक्त और कोई स्त्री नहीं जो शिव को लुभा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ और तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव की पत्नी हो।' वही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्षयज्ञ के विनाश के समय सती ने जब देहत्याग किया तब शिव ने विलाप करते करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा, विष्णु और शनि ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खंड खंड करके गिराने लगे। जहाँ जहाँ सती का अंग गिरा वहाँ वहाँ देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की तब वे शिव के शरीर से निकलीं और शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योगसमाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्या मेनका, संतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करती थी। महामाया ने प्रसन्न होकर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। मार्कंडेय पुराण में चंडी देवी द्वारा शुंभ निशुंभ के वध की कथा लिखी है। जिसका पाठ चंडीपाठ या दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध है और सब जगह होता है। काशी खंड में लिखा है कि रुरु के पुत्र दुर्ग नामक महादैत्य ने जब देवताओं को बहुत तंग किया तब वे शिव के पास गए। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

पर्या०—आद्याशक्ति। उमा। कात्यायनी। गौरी। काली। हैमवती। ईश्वरी। शिवा। भवानी। रुद्राणी। शर्वाणी। कल्याणी। अपर्णा। पार्वती। मृडाणी। चंडिका। अंबिका। शारदा। चंडी। गिरिजा। मंगला। नारायणी। महामाया। वैष्णवी। हिडो। कोट्टवी। षष्ठी। माधवी। जयंती। भार्गवी। रंभा। सती। भ्रामरी। दक्षकन्या। महिषमर्दिनी। हेरंबजननी। सावित्री। कृष्णपिंगला। शूलधरा। भगवती। ईशानी। सनातनी। महाकाली। शिवानी। चामुंडा। विधात्री। आनंदा। महामाया। भीमी। कृष्णा। मातंगी। वाणी। फाल्गुनी। मातृका। तारा। कालिका। कामेश्वरी। भैरवी। भुवनेश्वरी। त्वरिता। महालक्ष्मी। वागीश्वरी। त्रिपुरा। ज्वालामुखी। बगलामुखी। अन्नपूर्णा। अन्नदा। विशालाक्षी। सुभगा। सगुणा। धवला। घोरा। प्रेमा। वटेश्वरी। कीर्तिदा। तुमुला। कामरूपा। जंभणी। मोहनी। शांता। वेदमाता। त्रिपुरसुंदरी। तापिनी। चित्रा। अजंता इत्यादि, इत्यादि।

२. नीली। नील का पौधा। ३. अपराजिता। कोवाठोंठी। ४. श्यामा पक्षी। ५. नौ वर्ष की कन्या। ६. एक रागिनी जो गौरी, मालश्री, सारंग, और लीलावती के योग से बनी है।

दुर्गाढ़, दुर्गाध—वि० [सं०] जिसकी खोज बीन कठिन हो। दुर्थाह्य। जिसे थहाया न जा सके। जो भझाया जाने लायक न हो। दुःखगाह्य [को०]।

दुर्गाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गाधिकारिन्] गढ़ का अधिपति। किलेदार।

दुर्गाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गढ़ का प्रधान। किलेदार।

दुर्गानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिक शुक्ल नवमी। इस दिन जगद्धात्री का पूजन होता है। २. चैत्र शुक्ल नवमी। ३. आश्विन शुक्ल नवमी।

दुर्गापाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसमें किले हों अर्थात् जो सेना रखने के उपयोगी हो।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि एक ओर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी ओर घनी आबादीवाली जमीन तो घनी आबादीवाली जमीन को ही पसंद करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता है, न कि जमीन पर। जनशून्य भूमि से राज्य को आमदनी नहीं हो सकती। घनी आबादीवाली भूमि को, चाणक्य ने पुरुषापाश्रया भूमि लिखा है।

दुर्गा पूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन नवरात्र में होनेवाला दुर्गा जी का पूजनोत्सव। बंगाल की ओर यह एक प्रधान पर्व के रूप में मनाया जाता है।

दुर्गाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन शुक्ल और चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी।

दुर्गाह्य—वि० [सं०] जिसका अवगाहन करना कठिन हो।

दुर्गाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि गुगल।

दुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा गुण। दोष। ऐब। बुराई।

दुर्गेश—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गाध्यक्ष। दुर्गरक्षक। किलेदार।

दुर्गोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गापूजा का उत्सव जो नवरात्र में होता है। दुर्गापूजा।

दुर्ग्रह[1]—वि० [सं०] १. जिसे कठिनता से पकड़ सकें। जो जल्दी से पकड़ में न आवे। २. जो कठिनता से समझ में आवे। दुर्ज्ञेय। ३. जिसे जीतना कठिन हो। दुर्जय (को०)।

दुर्ग्रह[2]—संज्ञा पुं० १. अपामार्ग। चिचड़ो। २. बुरा ग्रह। कुग्रह (को०)। ३. अनुचित आग्रह। बुरा आग्रह (को०)।

दुर्ग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा (को०)।

दुर्ग्राह्य—वि० [सं०] जो आसानी से पकड़ में न आए (को०)।

दुर्घट—वि० [सं०] १. जिसका होना कठिन हो। कष्टसाध्य। मुश्किल से होने लायक। २. जिसका होना संभव न हो। असंभव (को०)।

दुर्घटना—संज्ञा स्त्री० [पुं०] १. अशुभ घटना। ऐसा व्यापार जिससे हानि या दुःख पहुँचे। ऐसी बात जिसके होने से बहुत कष्ट, पीड़ा या शोक हो। बुरा संयोग। वारदात। जैसे,—नदी का पुल टूट गया, इस दुर्घटना से बहुत हानि पहुँची। २. विपद्। आफत। आपत्ति।

दुर्घुरुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो विश्वास करने लायक न हो। २. वह जो शीघ्र किसी पर विश्वास न करे (को०)।

दुर्घोष[1]—वि० [सं०] जो बुरा स्वर निकाले। जो कटु या कर्कश ध्वनि करे।

दुर्घोष[2]—संज्ञा पुं० १. भालू। २. जोरों की चिल्लाहट। कर्णकटु शब्द या आवाज (को०)।

दुर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट जन। खल। खोटा आदमी। उ०—दुर्जन वचन सुनत दुख जैसो। बाण लगे दुख होइ न तैसो।—सूर (शब्द०)।

दुर्जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता। खोटापन।

दुर्जय[1]—वि० [सं०] जिसे जीतना कठिन हो। जो जल्दी जीता न जा सके। उ०—पूर्व पुण्य के क्षय होने तक पापी भी तो दुर्जय है। —साकेत, पृ० ३८०।

दुर्जय[2]—१. विष्णु। २. कूर्मपुराण के अनुसार कार्तवीर्य वंश में उत्पन्न अनंत राजा का एक पुत्र। ३. एक राक्षस का नाम।

दुर्जयता—वि० [सं०] कठिनता से विजय पाने का भाव। अविजेयता। उ०—प्राणवधूटी! अंतर की दुर्जयता तुमने लूटी।—विश्व०, पृ० ३८।

दुर्जयव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह व्यूह जिसमें सेना चार पंक्तियों में खड़ी की जाय।

दुर्जर—वि० [सं०] जो कठिनता से पचे। जो पकाने से जल्दी न पके। जिसका परिपाक करना कठिन हो।

दुर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता। मालकँगनी।

दुर्जात[1]—वि० [सं०] १. जिसका जन्म बुरी रीति से हुआ हो। २. जिसका जन्म व्यर्थ हुआ हो। ३. नीच। कमीना। ४. अभागा। भाग्यहीन।

दुर्जात[2]—संज्ञा पुं० १ व्यसन। २. असमंजस। कठिनता। संकट।

दुर्जाति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी जाति। नीच जाति। २. अभाग्य। दुर्भाग्य। बुरी स्थिति (को०)।

दुर्जाति[2]—वि० १. बुरे कुल का। २. जिसकी जाति बिगड़ गई हो। ३. दुःस्वभाव। बुरे स्वभाव का। नीच। बुरा (को०)।

दुर्जीव[1]—वि० [सं०] दूसरे के दिए अन्न पर रहनेवाला। बुरी जीविका करनेवाला।

दुर्जीव[2]—संज्ञा पुं० बुरा जीवन। निंदित जीवन।

दुर्जेय—वि० [सं०] जिसे जीतना अत्यंत कठिन हो। दुर्जय।

दुर्ज्ञान—वि० [सं०] दे० 'दुर्ज्ञेय' (को०)।

दुर्ज्ञेय[1]—वि० [सं०] कठिनाई से जानने योग्य। जिसे जानना अत्यंत कठिन हो। जो जल्दी समझ में न आ सके। दुर्बोध। उ०—थम लेती दर्शक को वह दुर्ज्ञेय दया की भूखी चितवन। भूल रहा उस छायापट में युग युग का जर्जर जनजीवन —ग्राम्या, पृ० २४।

दुर्ज्ञेय[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम (को०)।

दुर्दंड—वि० [सं० दुर्दण्ड] उग्र। प्रबल। जिसे कठिनाई से दंड दिया जा सके। उ०—ईर्षा वा दुर्दंड दुराचारियों की दृष्टि में...।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४।

दुर्दम¹—वि० [सं०] १. जिसका दमन बड़ी कठिनाई से हो सके। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। २. प्रचंड। प्रबल।

दुर्दम²—संज्ञा पुं० रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

दुर्दमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अदम्यता। प्रचंडता। उ०—उसकी दुर्दमता में तुम भी, अपने स्वर की गूँज मिलाना। यह दीपक जो मैंने बाला, तुम भी इसमें अपने स्वर का स्नेह जलाना।—दी० ज०, पृ० १७८।

दुर्दमन¹—वि० [सं०] जिसका दमन करना बहुत कठिन हो।

दुर्दमन²—संज्ञा पुं० जनमेजय के वंश में उत्पन्न शतानीक राजा का पुत्र।

दुर्दमनीय—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। २. प्रचंड। प्रबल। उ०—विश्व यह दूसरा जहाँ भोजन भरा, रूप की प्रतिकरा हुई दुर्दमनीय।—आराधना, पृ० ७९।

दुर्दम्य¹—वि० [सं०] दे० 'दुर्दम'।

दुर्दम्य²—संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा।

दुर्दर(पु)†—वि० [सं० दुर्धर] दे० 'दुर्धर'।

दुर्दर्श—वि० [सं०] १. जिसे देखना अत्यंत कठिन हो। जो जल्दी दिखाई न पड़े। २. जो देखने में भयंकर हो।

दुर्दर्शन¹—वि० [सं०] दे० 'दुर्दर्श'।

दुर्दर्शन²—संज्ञा पुं० कौरवों का एक सेनापति।

दुर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी दशा। मंद अवस्था। दुर्गति। खराब हालत।

क्रि० प्र०—करना। होना।

दुर्दांत¹—वि० [सं० दुर्दान्त] १. दुर्दमनीय। २. प्रचंड। प्रबल।

दुर्दांत²—संज्ञा पुं० १. गाय का बछड़ा। २. झगड़ा। कलह। ३. शिव।

दुर्दान—संज्ञा पुं० १. [?] रूपा। चाँदी।—अनेकार्थ० (शब्द०)।

दुर्दिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा दिन। २. ऐसा दिन जिसमें बादल छाए हों, पानी बरसता हो और घर से निकलना कठिन हो। मेघाच्छन्न दिन। ३. दुर्दशा का समय। दुःख और कष्ट का समय। बुरा वक्त। ४. घना अंधकार। सूचीभेद्य अंधकार (को०)। ५. वृष्टि। वर्षा (को०)। ६. किसी वस्तु की बौछार या झड़ी (को०)।

दुर्दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुर्दिन'। उ०—इहि भाँति बितावत दुर्दिवस वे सुकृती सुख के भवन।—ब्रज ग्रं०, पृ० १०२।

दुर्दुरूट, दुर्दुरूढ़—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक।

दुर्दृश—वि० [सं०] जिसे देखना कष्टकर हो। अप्रियदर्शन (को०)।

दुर्दृष्ट—वि० [सं०] (व्यवहार) जिसका रोग, लोभ आदि के कारण सम्यक् निर्णय न हुआ हो। (मुकदमा) जिसका घूस, अदावत आदि के कारण ठीक फैसला न हुआ हो।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ऐसे मुकदमे को राजा फिर से देखे और यदि अन्याय हुआ हो तो निर्णय करनेवाले सभ्यों (न्यायाधीश आदि) और मुकदमा जीतनेवालों को उसका दूना दंड दे जितना हारनेवालों को अन्याय से हुआ हो।

दुर्दैव—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्भाग्य। अभाग्य, बुरी किसमत। २. बुरा संयोग। दिनों का बुरा फेर।

दुर्द्धर¹—वि० [सं०] १. जिसे कठिनाई से पकड़ सकें। जो जल्दी पकड़ में न आ सके। २. प्रबल। प्रचंड। ३. जो कठिनता से समझ में आवे।

दुर्द्धर²—संज्ञा पुं० १. एक नरक का नाम। २. पारा। ३. भिलावाँ। भल्लातक। ४. महिषासुर का एक सेनापति। ५. शंबरासुर के एक मंत्री का नाम। धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ७. रावण का एक सैनिक जिसे उसने अशोकवाटिका उजाड़ने पर हनुमान को पकड़ने के लिये भेजा था। यह राक्षस हनुमान के हाथ से मारा गया। ८. विष्णु।

दुर्द्धर्ष¹—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना कठिन हो। जिसे जल्दी वश में न ला सकें। जिसे अधीन न कर सकें। २. जिसे परास्त करना कठिन हो। ३. प्रबल। प्रचंड। उग्र।

दुर्द्धर्ष²—संज्ञा पुं० १. धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम। २. रावण के दल का एक राक्षस।

दुर्धर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदौना। २. कंथारी का पेड़।

दुर्धी—वि० [सं०] बुरी बुद्धि का। मंदबुद्धि।

दुर्धीरूढ़—संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो गुरु की बात जल्दी न माने।

दुर्द्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

दुर्द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] हरितपलांडु। हरा प्याज।

दुर्धर—वि० [सं०] दे० 'दुर्द्धर'। मैं कब कहता हूँ जग मेरी दुर्धर गति के अनुकूल बने।—हत्यलम्, पृ० १३६।

दुर्नय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्नीति। बुरी चाल। नीतिविरुद्ध आचरण। २. अन्याय।

दुर्नाद¹—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शब्द। अप्रिय ध्वनि।

दुर्नाद²—वि० कर्कश ध्वनि करनेवाला।

दुर्नाद³—संज्ञा पुं० राक्षस। उ०—कौणप असुर, पुन्य जन निकषासुत दुर्नाद।—अनेकार्थ०, पृ० ८४।

दुर्नाम—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नामन्] १. बुरा नाम। कुख्याति। बदनामी। २. गाली। बुरा वचन। ३. बवासीर। ४. शुक्ति। सीप। सुतही।

दुर्नामक—संज्ञा पुं० [सं०] अर्श रोग। बवासीर।

दुर्नामा¹—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नामन्] दे० 'दुर्नाम'।

दुर्नामा²—वि० कुख्यात। बदनाम (को०)।

दुर्नामारि—संज्ञा पुं० [सं०] (अर्श रोग को दूर करनेवाला) सूरन।

दुर्नाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ति। सीप। सुतुही।

दुर्निग्रह—वि० [सं०] जिसपर निग्रह न किया जा सके। जिसपर काबू पाना कठिन हो (को०)।

दुर्निमित्त—संज्ञा पुं० [सं०] होनेवाले अरिष्ट को सूचित करनेवाला अपशकुन। बुरा सगुन।

दुर्निरीक्ष—वि०[सं०] १. जिसे देखते न बने। २. भयंकर। ३. कुरूप।

दुर्निरीक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसे देखते न बने। २. भयंकर। ३. कुरूप।

दुर्निवार—वि० [सं०] दे० 'दुर्निवार्य' [को०]।

दुर्निवार्य—वि० [सं०] १. जिसका निवारण करना कठिन हो। जो जल्द रोका न जा सके। जो जल्दी हटाया न जा सके। जिसे जल्दी दूर न कर सकें। ३. जिसका होना प्रायः निश्चित हो। जो जल्दी टल न सके।

दुर्नीत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुचित कर्म। बुरा कर्म। २. अभाग्य। दुर्भाग्य [को०]।

दुर्नीत[2]—वि० १. नीति को न माननेवाला। २ बुरी नीति का। अनैतिक [को०]।

दुर्नीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुनीति। कुचाल। अन्याय। अयुक्त आचरण।

दुर्न्यस्त—वि० [सं०] ठीक ढंग से न रखा हुआ। अनुपयुक्त क्रम में रखा हुआ [को०]।

दुर्बल—वि० [सं०] १. जिसे अच्छा बल न हो। कमजोर। अशक्त। २. कृश। दुबला पतला। ३. शिथिल। थका हुआ (को०)। ४. हलका। छोटा। साधारण (को०)।

दुर्बलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बल की कमी। कमजोरी। २. कृशता। दुबलापन। शैथिल्य। थकावट। शिथिलता।

दुर्बला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलसिरीस का पेड़।

दुर्बाध—वि० [सं०] अनिवार। दुर्निवार्य [को०]।

दुर्बाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसके चमड़े पर रोग हों और बाल झड़ गए हों। गंजा। २. जिसके केश घुँघराले हों (को०)।

दुर्बुध—वि० [सं०] कमजोर बुद्धिवाला। सिड़ी [को०]।

दुर्बोध—वि० [सं०] जिसका बोध कठिनता से हो। जो जल्दी न समझ में आवे। गूढ़। क्लिष्ट। कठिन।

दुर्बोध्य—वि० [सं०] दे० 'दुर्बोध'।

दुर्बोध्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समझ में न आने की क्षमता। दुर्बोध होने का भाव। उ०—प्रतिपाद्य प्रकरण की दुर्बोध्यता के कारण साधारण पाठक उसे समझ नहीं पाता।—शनी, पृ० ६०।

दुर्भक्ष[1]—वि० [सं०] १. जिसे खाना कठिन हो। जो जल्दी न खाया जा सके। २. खाने में बुरा।

दुर्भक्ष[2]—संज्ञा पुं० वह समय जिसमें भोजन कठिनता से मिले। दुर्भिक्ष। अकाल।

दुर्भक्ष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भक्ष] भोजन की कहत। अकाल। दुर्भिक्ष। उ०—बन हरिया उन देसड़ै बारे मास सुकाल। भूख तृषा नहि व्यापई दुर्भक्ष पड़ै न काल।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

दुर्भग—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुर्भगा] जिसका भाग बुरा हो। खोटे प्रारब्ध का। अभागा।

दुर्भगा[1]—वि० स्त्री० [सं०] मंद भाग्यवाली। अभागिन।

दुर्भगा[2]—संज्ञा स्त्री० १. वह स्त्री जो अपने पति के स्नेह से वंचित हो। वह स्त्री जिसे स्वामी न चाहे। विरक्ता। २. बुरे स्वभाव की। कर्कशा। झगड़ालू (को०)। ३. विधवा (को०)।

दुर्भर—वि० [सं०] १. जिसे उठाना कठिन हो। जो लादा न जा सके। २. भारी। गुरु। वजनी।

दुर्भाग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य] दे० 'दुर्भाग्य'।

दुर्भागी—वि० [सं० दुर्भाग्य] अभागा। मंद भाग्य का।

दुर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] मंद भाग्य। बुरा अदृष्ट। खोटी किसमत।

दुर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा भाव। २. द्वेष। मनमोटाव। मनोमालिन्य।

दुर्भावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी भावना। २. खटका। चिंता। अंदेशा।

दुर्भाव्य—वि० [सं०] जिसकी भावना सहज में न हो सके। जो जल्दी ध्यान में न आ सके।

दुर्भिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा समय जिसमें भिक्षा या भोजन कठिनता से मिले। अकाल। कहत।

दुर्भिच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भिक्ष] दे० 'दुर्भिक्ष'।

दुर्भिद—वि० [सं०] दे० 'दुर्भेद' [को०]।

दुर्भेद—वि० [सं०] १. जो जल्दी भेदा न जा सके। जो कठिनता से छिदे। २. जिसके पार कठिनता से जा सकें। जिसे जल्दी पार न कर सकें।

दुर्भेद्य—वि० [सं०] दे० 'दुर्भेद'।

दुर्भृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा नौकर जो आज्ञा का यथावत् पालन न करे। दुष्ट सेवक [को०]।

दुर्मंकु—वि० [सं० दुर्मङ्कु] आज्ञा का पालन न करनेवाला [को०]।

दुर्मंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मन्त्र] बुरी सलाह। कुमंत्र। अहितकर राय या संमति [को०]।

दुर्मंत्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मन्त्रणा] दे० 'दुर्मंत्र' [को०]।

दुर्म(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रुम] दे० 'द्रुम'। उ०—दुर्म डार तहँ अंत घनि छाया, पंछी बसेरा लेइ रे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६८।

यौ०—दुर्मावलि।

दुर्मति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि। कुमति। नासमझी।

दुर्मति[2]—वि० १. दुर्बुद्धि। जिसकी समझ ठीक न हो। कम अक्ल। २. खल। दुष्ट।

दुर्मति[3]—संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से एक जिसमें दुर्भिक्ष होता है। (ज्योतिस्तत्व)।

दुर्मद—वि० [सं०] १. उन्मत्त। नशे आदि में चूर। उ०—कुंभकरन दुर्मद रनरंगा।—तुलसी (शब्द०)। २. अभिमान में चूर। गर्व से भरा हुआ।

दुर्मना—वि० [सं० दुर्मनस्] १. बुरे चित्त का। दुष्ट। २. उदास। खिन्न। अनमना।

दुर्मनुष्य—वि० [सं०] बुरा व्यक्ति। खोटा व्यक्ति [को०]।

दुर्मर—वि० [सं०] जिसकी मृत्यु बड़े कष्ट से हो।

दुर्मरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरे प्रकार से होनेवाली मृत्यु।

दुर्मरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर्वा। दूब।

दुर्मर्ष—वि० [सं०] जिसे सहन करना कठिन हो। दुःसह।

दुर्मर्षण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

दुर्मर्षण[2]—वि० दे० 'दुर्मर्ष'।

दुर्मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्य काव्य के अंतर्गत उपरूपकों में से एक, जिसमें हास्यरस प्रधान होता है।

विशेष—यह चार अंकों में समाप्त होता है। इसमें गर्भांक नहीं होते। इसके तीन अंकों में क्रमशः विट, विदूषक, पीठमर्द आदि की विविध क्रीड़ाएँ रहती हैं।

दुर्मल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुर्मल्लिका'।

दुर्मावलि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्रुमावलि] बाग। उपवन। उ०—एह कवि दुर्मावलि गुनभली। अनबन भाँति बचन फल फली।—चित्रा०, पृ० १२।

दुर्मित्र—वि० [सं०] १. कुमित्र। दुष्ट मित्र। २. शत्रु। दुश्मन [को०]।

दुर्मिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. भरत के सातवें लड़के का नाम। २. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक सगण और दो गुरु होते हैं। इसमें जगण का निषेध है। जैसे—जय जय रघुनंदन असुर-विखंडन, कुलमंडन यश के धारी। जनमन सुखकारी, विपिन-विहारी, नारि अहिल्यहि सी तारी। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ सगण होते हैं। यह एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—सबसों करि नेह भजै रघुनंदन राजत हीरन माल हिये।

दुर्मिल[2]—वि० [सं०] १. जिसे प्राप्त करना कठिन हो। कठिनता से मिलनेवाला। दुर्लभ। उ०—दुर्मिल जो कुछ ऊर्मिल मिल मिलकर हुआ आखंड।—अर्चना, पृ० १०। २. जो मेल का न हो। अनमिल।

दुर्मुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. महिषासुर के एक सेनापति का नाम। ४. रामचंद्र जी का एक गुप्तचर जिसके द्वारा वे अपनी प्रजा का वृत्तांत जाना करते थे। इसी के मुँह से उन्होंने सीता का वह वृत्तांत सुना था जिसके कारण सीता का द्वितीय वनवास हुआ था (उत्तर-रामचरित)। ५. एक नाग का नाम। ६. शिव। ७. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ८. वह घर जिसका द्वार उत्तर की ओर हो। ९. साठ संवत्सरों में से एक। १० एक यक्ष का नाम। ११. गणेश जी का एक नाम। १२ रावण की सेना का एक राक्षस उ०—दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी।—मानस, ६।६१।

दुर्मुख[2]—वि० [सं० स्त्री० दुर्मुखी] १. जिसका मुख बुरा हो। अकुल मुख का। बदसूरत। २. बुरे वचन बोलनेवाला। कटुभाषी। अप्रियवादी।

दुर्मुखी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसे रावण ने जानकी को समझाने के लिये नियत किया था।

दुर्मुखी[2]—वि० बुरे मुँहवाली।

दुर्मुट—वि० [हिं०] दे० 'दुर्मुस'।

दुर्मुस—संज्ञा पुं० [सं० दुर् (प्रत्य०) + मुस (कूटना)] गदा के आकार का एक लंबा डंडा जिसके नीचे लोहे या पत्थर का भारी गोल टुकड़ा रहता है और जिससे सड़कों आदि पर कंकड़ या गिट्टी पीटकर बैठाई जाती है। कंकड़ या गिट्टी पीटने का मुगदर।

दुर्मुहूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ मुहूर्त। बुरी साइत [को०]।

दुर्मूल्य—वि० [सं०] जिसका दाम अधिक हो। महँगा।

दुर्मूल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुमूल्य होने का भाव। महार्घता। दामीपन। उ०—इससे साहित्य का सम्मान होता है या साहित्य की दुर्मूल्यता प्रमाणित होती है।—स० दर्शन, पृ० ४६।

दुर्मेध—वि० [सं० दुर्मेधस्] मंदबुद्धि। नासमझ।

दुर्मेधा—वि० [सं० दुर्मेधस्] दुर्बुद्धि। मूर्ख [को०]।

दुर्मोह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दुर्मोहा] १. कौवाठोठी। २. सफेद घुँघची।

दुर्यश—संज्ञा पुं० [सं० दुर्यशस्] अपयश। अपकीर्ति।

दुर्योग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा योग। दुर्भाग्यसूचक योग। २. मेल न खाता हुआ। अनमेल स्थी।

दुर्योध—वि० [सं०] जो बड़ी बड़ी कठिनाइयों को सहकर भी युद्ध में स्थिर रहे। विकट लड़ाका।

दुर्योधन—संज्ञा पुं० [सं०] कुरुवंशीय राजा धृतराष्ट्र के १०१ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

विशेष—यह अपने चचेरे भाई पांडवों से बहुत बुरा मानता था। सबसे अधिक द्वेष यह भीम से रखता था। बात यह थी कि भीम के समान दुर्योधन भी गदा चलाने में अत्यंत निपुण था, पर वह भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। पहले धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को ही सब में बड़ा समझ युवराज बनाना चाहते थे, पर दुर्योधन ने बहुत आपत्ति की और छल से पांडवों को वन में भेज दिया। वनवास से लौटकर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बसाई और युधिष्ठिर ने धूमधाम से राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांडवों का भारी वैभव देख दुर्योधन जल उठा और उनके नाश का उपाय सोचने लगा। अंत में उसने युधिष्ठिर को अपने साथ पासा खेलने के लिये बुलाया। उस खेल में दुर्योधन के मामा गांधार के राजकुमार शकुनि के छल और कौशल से युधिष्ठिर अपना सारा राज्य और धन यहाँ तक कि द्रौपदी को भी हार गए। दुःशासन द्रौपदी को बलात् सभा में लाया और दुर्योधन उसे अपने जंघे पर बैठने के लिये कहने लगा। इसपर भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन के जंघे को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। अंत में द्यूत के नियमानुसार धृतराष्ट्र ने यह निर्णय किया कि पांडव बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करें। जब अज्ञातवास पूरा हो गया तब कृष्ण दूत होकर कौरवों के पास पांडवों की ओर से गए। पर

दुर्योधन ने पांडवों को राज्य का अंश क्या, पाँच गाँव तक देना अस्वीकार कर दिया। अंत में कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें कौरव मारे गए और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्योधन को युधिष्ठिर 'सुयोधन' कहा करते थे।

दुर्योधन२—वि॰ [सं॰] दे॰ 'दुर्योध'।

दुर्योधनता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अपराजेय होने का भाव। दुर्योध होने का भाव (को॰)।

दुर्योनि—वि॰ [सं॰] जिसका जन्म नीच कुल में हो। नीच कुल का।

दुर्र—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. मोती। उ॰—के दरनक में ज्यूं अमोलक रतन। सदफ में के ज्यूं है ओ दुर्र अदन।—दक्खिनी॰, पृ॰ १५०। २. एक कर्ण भूषण।

दुर्रा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] कोड़ा। चाबुक। धुर्रा।

दुर्रानी—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] अफगानों की एक जाति।

दुर्लंघ्य—वि॰ [सं॰ दुर्लङ्घ्य] दुःख से उल्लंघन करने योग्य। जिसे जल्दी लाँघ न सकें। उ॰—अधिकार के आगे एक दुर्लंघ्य प्रश्नवाचक लगा हुआ है।—अपरा भू॰, पृ॰ ३।

दुर्लक्ष्य१—वि॰ [सं॰] जो कठिनता से दिखलाई पड़े। जो प्रायः अदृश्य हो।

दुर्लक्ष्य२—संज्ञा पुं॰ बुरा उद्देश्य। बुरी नियत।

दुर्लक्ष्यी—वि॰ [सं॰ दुर्लक्ष्यिन् ?] कठिन लक्ष्य का भेदन करनेवाला। उ॰—आहत पीछे हटे, स्तंभ से टिककर मनु ने, श्वास लिया टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने।—कामायनी, पृ॰ २००।

दुर्लभ१—वि॰ [सं॰] १. जो कठिनता से मिल सके। जिसे पाना सहज न हो। दुष्प्राप्य। २. अनोखा। बहुत बढ़िया। ३ प्रिय।

दुर्लभ२—संज्ञा पुं॰ १. कपूर। २. विष्णु।

दुर्ललित—वि॰ [सं॰] दुलार से बिगड़ा हुआ। नटखट। शरारती। उ॰—उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कांत। वह इंद्रचाप सा झिलमिल हो दब जाती अपने आप शांत।—कामायनी, पृ॰ १३९

दुर्ललित२—संज्ञा पुं॰ औद्धत्य। शरारतीपन (को॰)।

दुर्लेख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बुरा लेख। २. दुर्भाग्य का लेख। उ॰—विधि के इस दुर्लेख को अपनी आँखों में देखते देखकर जीना भारी हो जाता है।—सुखदा, पृ॰ ६।

दुर्लेख्य१—वि॰ [सं॰] जो बुरा लिखा हुआ हो। जो ऐसा लिखा हो कि जल्दी पढ़ा न जा सके। (स्मृति)।

दुर्लेख्य२—संज्ञा पुं॰ जाली कागज पत्र (को॰)।

दुर्वच१—वि॰ [सं॰] १. जो दुःख से कहा जा सके। जिसके कहने में कष्ट हो। २. जो कठिनता से कहा जा सके।

दुर्वच२—संज्ञा पुं॰ दुर्वचन। गाली।

दुर्वचन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दुर्वाक्य। कटुवचन। गाली। उ॰—काहु दुर्वचन क्रुद्ध दसकंधर।—मानस, ६।६०।

दुर्वचा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुर्वचस्] कटुवचन बोलनेवाला। कटुभाषी। कटुवादी (को॰)।

दुर्वर्ण१—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बुरा अक्षर। २. चाँदी। रजत। ३. मिश्र। मिलावट। ४. कुष्ठ का एक भेद। श्वेत कुष्ठ (को॰)।

दुर्वर्ण२—वि॰ बुरे वर्ण या रंगवाला (को॰)।

दुर्वर्णा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] चाँदी। एलुवा।

दुर्वस—वि॰ [सं॰] जहाँ रहना या टिकना कष्टकर हो (को॰)।

दुर्वसति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बुरा निवास। रहने का कष्टदायक स्थान या बस्ती (को॰)।

दुर्वह—वि॰ [सं॰] १. जिसका वहन या धारण करना कठिन हो। जैसे, दुर्वह गर्भ। २. जिसे चलना कठिन हो।

दुर्वाच्१—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बुरा वचन। निंदित वाक्य।

दुर्वाच्२—अपशब्द बोलनेवाला। बुरी बातें बकनेवाला (को॰)।

दुर्वाच्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'दुर्वचन'। उ॰—उससे भी अधिक दुर्वाच्यों और कटुभाषण के·······।—प्रेमघन, भा॰ २, पृ॰ ३००।

दुर्वाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अपवाद। निंदा। बदनामी। २. स्तुतिपूर्वक कहा हुआ अप्रिय वाक्य। ३. अनुचित, अयुक्त या निंदित विवाद।

दुर्वादी—वि॰ [सं॰ दुर्वादिन्] कुतर्की। हुज्जती। दुर्वाद करनेवाला।

दुर्वार—वि॰ [सं॰] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वारण—वि॰ [सं॰] दे॰ 'दुर्वार्य' (को॰)।

दुर्वारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कंबोज देश का एक वीर जो महाभारत की लड़ाई में लड़ा था।

दुर्वार्य—वि॰ [सं॰] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोका न जा सके।

दुर्वासना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बुरी इच्छा या खोटी आकांक्षा। दुष्ट कामना। उ॰—दुष्टता दमन दमभवन दुःखौघहर दुर्ग दुर्वासना नासकर्ता।—तुलसी, ग्रं॰ पृ॰ ४८६। २. ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके। उ॰—दुर्वासना कुमुद समुदाई।—मानस, ३।३८।

दुर्वासा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुर्वासस्] एक मुनि जो अत्रि के पुत्र थे।

विशेष—इनके नाम के विषय में महाभारत में लिखा है कि जिसका धर्म में दृढ़ निश्चय हो उसे दुर्वासा कहते हैं। ये अत्यत क्रोधी थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कंदला से विवाह किया था। विवाह के समय इन्होने प्रतिज्ञा की थी कि स्त्री के सौ अपराध क्षमा करेंगे। प्रतिज्ञानुसार इन्होंने सौ अपराध तक क्षमा किए, अनंतर शाप देकर पत्नी को भस्म कर दिया। और्व मुनि ने कन्या के शाप से शोकातुर होकर शाप दिया कि तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा। इसी शाप के कारण राजा अंबरीष के मामले में इन्हें नीचा देखना पड़ा। इनका स्वभाव कुछ सनकी था। इनके शाप तथा बरदान की अनेक कथाएँ महाभारत तथा पुराणादि में भरी पड़ी है।

दुर्वाहित—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दुर्वह बोझ। भारी बोझा (को॰)।

दुर्विगाह—वि० [सं०] जिसका अवगाहन कठिन हो। जिसकी थाह जल्दी न लगे।

दुर्विगाह्य—वि० [सं०] दे० 'दुर्विगाह' (को०)।

दुर्विज्ञेय—वि० [सं०] जिसका कष्ट या कठिनता से ज्ञान हो सके। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विद्—वि० [सं०] जिसे जानना कठिन हो। जो जल्दी जाना न जा सके।

दुर्विदग्ध—वि० [सं०] १. जो अच्छी तरह जला न हो। अधजला। २. जो पूर्ण परिपक्व न हो। साधारण जानकारी से गर्विष्ठ। ३. अहंकारी। घमंडी।

दुर्विदग्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधकचरापन। पूरी निपुणता का अभाव।

दुर्विध—वि० [सं०] १. दरिद्र। २. खल। मूर्ख।

दुर्विधि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी विधि। कुनियम।

दुर्विधि[2]—संज्ञा पुं० दुर्भाग्य।

दुर्विनय—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविनय। औद्धत्य। उद्दंडता (को०)।

दुर्विनीत—वि० [सं०] अविनीत। अशिष्ट। उद्धत। अक्खड़।

दुर्विपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा परिणाम। बुरा फल। २. बुरा संयोग। दुर्घटना।

दुर्विभाव्य—वि० [सं०] जिसकी भावना न हो सके। जो मन में न आवे। जिसका अनुमान न हो सके।

दुर्विलसित—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्कार्य।

दुर्विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा ब्याह। निंदित विवाह।

विशेष—स्मृतियों मे जो आठ प्रकार के विवाह कहे गए हैं उनमें ब्रह्म आदि चार प्रकार के विवाह सुविवाह और असुर आदि चार प्रकार के विवाह दुर्विवाह कहलाते है।

दुर्विष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिनपर विष का कुछ प्रभाव न हुआ।)

दुर्विष[2]—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का। दुर्वृत्त (को०)।

दुर्विषह[1]—वि० [सं०] जिसे सहना कठिन हो। दुःसह।

दुर्विषह[2]—संज्ञा पुं० १. महादेव। शिव। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुर्वीक्ष्य—वि० [सं०] जो दुःख या कठिनता से दिखाई दे। उ०—नाना काक उलूक आदि रव से हो प्रायश पूरिता। देती है वन को भयावह बना दुर्वीक्ष्य वृक्षावली।—पारिजात पृ० ८५।

दुर्वृत्त[1]—वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो। दुश्चरित्र। दुराचारी।

दुर्वृत्त[2]—संज्ञा पुं० बुरा आचरण। बुरा व्यवहार।

दुर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी वृत्ति। बुरा पेशा। बुरा काम। उ०—सेवा समान प्रति दुस्तर दुःखदाई। दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई।—द्विवेदी (शब्द०) २. छल। जाल फरेब। धोखा (को०)। ३. खराब आचरण। अनुचित व्यवहार। दुराचरण (को०)।

दुर्वृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यथावश्यक वर्षा का अभाव। २. सूखा। अनावृष्टि (को०)।

दुर्वेद—वि० [सं०] १. वेदाध्ययन से विमुख ब्राह्मण। २. जो कठिनाई से समझ में आवे। दुर्बोध्य (को०)।

दुर्व्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुप्रबंध। बदइंतजामी।

दुर्व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा व्यवहार। बुरा बर्ताव। २. दुष्ट आचरण। ३. वह मुकदमा जिसका फैसला घूस आदि के कारण ठीक न हुआ हो। दे० 'दुर्दष्ट'।

दुर्व्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी लत। खराब आदतें। किसी ऐसी बात का अभ्यास जिससे कोई लाभ न हो।

दुर्व्यसनी—वि० [सं० दुर्व्यसनिन्] बुरी लतवाला।

दुर्व्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा मनोरथ। नीच आशय।

दुर्व्रत[2]—वि० १. जिसने बुरा व्रत लिया हो। बुरे मनोरथोंवाला। नीचाशय। २. आदेश न माननेवाला। आज्ञा पालन न करनेवाला (को०)।

दुर्हृद[1]—वि० [सं०] दे० 'दुर्हृदय' (को०)।

दुर्हृद[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्हृद] जो सुहृद न हो। अमित्र। शत्रु।

दुर्हृदय—वि० [सं०] कुटिल हृदय का। कुटिल। खोटा (को०)।

दुर्हृषीक—वि० [सं०] अजितेंद्रिय। दुर्बल इंद्रियवाला।

दुलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] घोड़े की एक चाल जिसमें वह चारों पैर अलग अलग उठाकर कुछ उछलता हुआ चलता है।

क्रि० प्र०—चलना।—जाना।

दुलखना†—क्रि० स० [हिं० दो+लक्षण] बार बार बतलाना। बार बार कहना। बार बार दोहराना।

दुलखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक फतिगा जो ज्वार, नील, तमाखू, सरसों और गेहूँ को नुकसान पहुँचाता है।

दुलड़ा[1]—वि० [हिं० दो+लड़] [वि०स्त्री० दुलड़ी] दो लड़ों का।

दुलड़ा[2]—संज्ञा पुं० दो लड़ों की माला।

दुलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+लड़] दो लड़ों की माला।

दुलत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+लात] १. घोड़े आदि चौपायों का पिछले दोनों पैरो को उठाकर लात मारना।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

मुहा०—दुलत्ती छाँटना या झाड़ना = दोनों लातों को चलाना। दोनों लातों से मारना। दुलत्ती फेंकना = दोनों लात चलाना।

२. मालखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों को मालखंभ से अलग दिखाकर ताल आदि ठोकते हैं।

दुलदुल—संज्ञा पुं० [अ०] वह खच्चरी जिसे इसकंदरिया (मिस्र) के हाकिम ने मुहम्मद साहब को नजर में दिया था।

विशेष—साधारण लोग इसे घोड़ा समझते हैं और मुहर्रम के दिनों मे इसकी नकल निकालते हैं। मुहर्रम की आठवीं को अब्बास के नाम का और नवीं को हुसैन के नाम का बिना सवार का घोड़ा भीड़भाड़ के साथ निकाला जाता है।

दुलन†—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'दोलन'। उ०—सूर स्याम सरोज लोचन दुलन जन जल धार।—सूर (शब्द०)।

दुलना—क्रि० अ० [सं० दोलना] दे० 'डुलना'।

दुलभ(पु)—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ'।

दुलरा—वि० [हिं० दुलार] दे० 'दुलारा'।

दुलराना(पु)†[1]—क्रि० स० [हिं० दुलारना] लाड़ करना। बच्चों को बहलाकर प्यार करना। उ०—अब लागी मोको दुलरावन प्रेम करति टरि ऐसी हो। सुनहु सूर तुमरे छित छिन मति बड़ी प्रेम की गैसी हो।—सूर (शब्द०)।

दुलराना[2]—क्रि० अ० दुलारे बच्चों की सी चेष्टा करना। लाड़ प्यार का सा व्यवहार करना।

दुलरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दु+लर] दे० 'दुलड़ी'। उ०—फूलन की दुलरी, हमेल हार फूलन के, फूलन की चंपमाल, फूलन गजरा री।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८०।

दुलरुवा†—वि०, संज्ञा पुं०[हिं० दुलारा+उवा(प्रत्य०)]दे० 'दुलारा'।

दुलह[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दुलहा] १. दे० 'दूल्हा' (लाक्ष०)। २. जीव। उ०—दुलहु घर में नहीं दुलहिन भाँवरि फिरै।—कबीर रे०, पृ० २६।

दुलह(पु)[2]—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ'।

दुलहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा] नवविवाहिता वधू। नई बहू। नई ब्याही हुई स्त्री।

दुलहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दूल्हा'।

दुलहिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहन'। उ०—दुलह घर में नहीं दुलहिन भाँवरि फिरै। अजब अचरज का खेल बूझै।—कबीर०, रे० पृ० २६।

दुलहिनि†, **दुलहिनी**—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुलहन'। उ०—तिहि छिन दुलहिनि दसा भई जो बरनि न जाई।—नंद ग्रं०, पृ० २१०।

दुलहिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलही+इया (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन'। उ०—देह दुलहिया की बढ़ै ज्यों ज्यों जोबन जोति।—बिहारी (शब्द०)।

दुलही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहन'।

दुलहेटा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह+हिं० बेटा] दुलारा लड़का। लाड़ला बेटा। उ०—युग युग जियहि राज दुलहेटा दै असीस द्विजनारी। पाइ भीख लै सीख जाइ घर काउ आवती सुखारी।—रघुराज (शब्द०)।

दुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल (=रुई) हिं० आई (प्रत्य०), हिं० तुलाई, तुराई] ओढ़ने का दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई भरी हो। रुई भरा हुआ ओढ़ना।

दुलाना†—क्रि० स० [सं० दोलन] दे० 'डुलाना'। उ०—पदिमिनि कहुँ जब पौन दुलावै। तब लंपट अलि बैठि न पावै।—नंद० ग्रं०, पृ० ११९।

दुलार—संज्ञा पुं० [हिं० दुलारना] प्रसन्न करने की वह चेष्टा जो प्रेम के कारण लोग बच्चों या प्रेमपात्रों के साथ करते हैं। जैसे, कुछ विलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना इत्यादि। लाड़ प्यार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दुलारना—क्रि० स० [सं० दुर्लालन, प्रा० दुल्लाडन] प्रेम के कारण बच्चों या प्रेमपात्रों को प्रसन्न करने के लिये उनके साथ अनेक प्रकार की चेष्टा करना। जैसे, विलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना, इत्यादि। लाड़ करना। लाड़ना।

दुलारा[1]—वि० [हिं० दुलार] [वि० स्त्री० दुलारी] जिसका बहुत दुलार या लाड़ प्यार हो। लाड़ला। जैसे, दुलारा लड़का।

दुलारा[2]—संज्ञा पुं० लाड़ला बेटा। प्रिय पुत्र। उ०—रोकत मग आज सखी नंद को दुलारो।—सूर (शब्द०)।

दुलारी[1]—वि० स्त्री० [हिं० दुलारा] जिसका अधिक लाड़ प्यार हो। लाड़ली।

दुलारी[2]—संज्ञा स्त्री० लाड़ली बेटी। प्रिय कन्या। उ०—सखियन संग झूलति वृषभानु की दुलारी।—सूर (शब्द०)।

दुलारी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुराई] दे० 'दुलाई'। उ०—इती बात को समुझि ले तू अपने मन बाल। प्रीति दुलारी खुलत है बहि कै मगजी लाल।—रसनिधि (शब्द०)।

दुलाह†—संज्ञा पुं० [देश०] जवासा। हिंगुवा।

दुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी कच्छपी। कच्छपी (को०)।

दुलीचा—संज्ञा पुं० [देश०] गलीचा। कालीन। उ०—ज्ञान दुलीचा झारि बिछावो, नाम के तकिया अरध लगावो।—धरम०, पृ० ७४।

दुलीची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुलैचा'। उ०—मेरुदंड पर डार दुलीची जोगिन तारी लाया।—कबीर श०, भा० १, पृ० २६।

दुलेहटा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुलहा] दे० 'दुलहेटा'।

दुलैचा—संज्ञा पुं० [देश०] गलीचा कालीन।

दुलोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+लोहा] एक प्रकार की तलवार जो लोहे के दो टुकड़ों को जोड़कर बनाई जाती है।

दुल्लभ(पु)—वि० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लभ] दे० 'दुर्लभ'।

दुल्लह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दुलहा] दे० 'दुल्हा'। उ०—अब दुल्लह तब कहेऊ। दुलहिनि दिल में मनस, भेऊ।—सं० दरिया०, पृ० १।

दुल्ला†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा।

दुल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुल्लो] दे० 'दुल्लो'।

दुल्लीच—संज्ञा पुं० [देश०] दुलीचा। कालीन। गलीचा। उ०—रेसंम गिलम दुल्लीच मंडि। जिन जोति होति दुति चित्र चंडि।—पृ० रा०, १४। ३६।

दुल्लो—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+ला (प्रत्य०)] गोली के खेल में वह गोली जो मीर या अगली गोली के पीछे हो। दूसरे नंबर की गोली।

दुल्हैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुलहा+ऐया (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन'। उ०—नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि हरियारी। नवल दूलह प्यारो, नवल दुल्हैया।—नंद० ग्रं०, पृ० १७२।

दुप(पु)—[सं० द्वि] दो।

दुवन—संज्ञा पुं०[सं० दुर्मनस्]१. दुष्ट चित्त का मनुष्य। खल। दुर्जन। बुरा आदमी। उ०—कै अपनी दुर्नीति कै दुवन क्रूरता मानि। आवे उर में सोच अति मो संका पहिचानि। —पद्माकर (शब्द०)। २. शत्रु। वैरी। दुश्मन। उ० —मतिराम सुजस दिन दिन बढ़त सुनत दुवन उर कट्टियत।—मतिराम (शब्द०)। ३. राक्षस। दैत्य। उ०—(क) आरज सुवन को तो दया दुवनहु पर मोहि सोच मोते सब विधि नसानि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पयज बंधाय सेन उतरे कटक कलि आए देखि देखि दूत दारुन दुवन के।—तुलसी (शब्द०)।

दुवरवा†—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] द्वार। दरवाजा। उ०—जाके दुवरवा जर्मिरिया सो कैसे सोइल हो।—धरम०, पृ० ६२।

दुवा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० दुआ] दे० 'दुआ'। उ०—तूँ लीन्हें मन आछसि दुवा। औ जुग मारि चहसि पुनि छुवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३२।

दुवाज संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—नुकरा और दुवाज बोरता है लाँब दूनी।—सूदन (शब्द०)।

दुवादस‡(पु)—वि० [सं० द्वादश] दे० द्वादश'।

दुवादस बानी(पु) वि० [सं० द्वादश (= सूर्य) + वर्ण] बारह बानी का। सूर्य के समान दमकता हुआ। आभायुक्त। खरा। (विशेषतः सोने के लिये)। उ० कनक दुवादस बानि है चह सुहाग वह माँग। सेवा करै नखत सभि तरइ उवै जस गाँग।—जायसी (शब्द०)।

दुवादसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशी] दे० 'द्वादशी'।

दुवार†—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] [स्त्री० दुवारी] दे० 'द्वार'। उ०—खोजि लीन्ह सो सरग दुवारी। वज्र जो मूँदे जाइ उघारी।—पदमावत, पृ० २२८।

दुवारिका‡—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारिका] दे० 'द्वारका पुरी'।

दुवाल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चमड़े का तसमा। २. रिकाब का तसमा। रिकाब में लगा हुआ चमड़े का चौड़ा फ़ीता।

दुवालबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चमड़े का चौड़ा तसमा जो कमर आदि में लपेटा जाय। चपरास या पेटी का तसमा।

दुवाली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] रंगे या छपे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये घोटने का औजार। घोंटा।

दुवाली[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुवाल] चमड़े के चौड़े तसमे का परतला या पेटी जिसमें बंदूक, तलवार आदि लटकाते हैं।

दुवालीबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] परतला आदि लगाए हुए तैयार सिपाही।

दुवाह—वि० [हिं०] १. दे० 'दुबाह'। २. (जमीन) जो दो बार जोती गई हो।

दुविद(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विविद'।

दुविधा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुबधा] दे० 'दुबधा'।

दुवौ, दुवौ(पु)†—वि० [हिं० दुव (=दो) + उ (=ही) दोनों। उ०—दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठी। औ सिवलोक परा तिन्ह डीठी।—जायसी ग्रं० पृ० २६६।

दुशमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दुश्मन'। उ०—याम छबि निरखि नागरि नारि। प्यारी छवि निरखत मनमोहन सकत न नैन पसारि। पिय सकुचत नहिं दिष्टि मिलावत सन्मुख होत लजात। श्रीराधिका निडर अवलोकत अतिहि हृदय हरखात। परस परस मोहनि मोहन मिलि संग गोपी गोपाल। सूरदास प्रभु सब गुण लायक दुश्मन के उर साल।—सूर (शब्द०)।

दुशवार—वि० [फ़ा०] [संज्ञा दुशवारी] १. कठिन। दुरूह। मुश्किल २. दुःसह।

दुशवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कठिनता।

दुशाला—संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट, फ़ा० दोशाला] पशमीने की चद्दरों का जोड़ा जिनके किनारे पर पशमीने की रंग बिरंगी बेलें बनी रहती हैं। ये बहुधा कश्मीर और पेशावर से आती हैं। कश्मीरी दुशाले अच्छे और कीमती होते हैं। उ०—तान तुकताला हैं विनोद के रसाला हैं, सुबाला हैं दुशाला हैं, विशाला चित्रशाला हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

यौ०—दुशालापोश। दुशालाफरोश।

मुहा०—दुशाले में लपेटकर मारना या लगाना = आड़े हाथ लेना। छिपे छिपे आक्षेप करना। मीठी चुटकी लेना।

दुशालापोश—वि० [फ़ा०] १. जो दुशाला ओढ़े हो। २. जो अच्छा कपड़ा पहने हुए हो। ३. अमीर।

दुशालाफरोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दुशाला बेचनेवाला।

दुशासन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुःशासन] दे० 'दुःशासन'।

दुश्चर—वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चरण] जिसका करना कठिन हो। कठिन। दुष्कर।

दुश्चरित[1]—वि०[सं०] १. बुरे आचरण का। बदचलन। २. कठिन।

दुश्चरित[2]—संज्ञा पुं० १. बुरा आचरण। कुचाल। बदचलनी। २. पाप।

दुश्चरित्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुश्चरित्रा] बुरे चरित्रवाला। बदचलन।

दुश्चरित्र[2]—संज्ञा पुं० बुरी चाल। कुचाल। दुराचार।

दुश्चर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुश्चर्मन्] वह पुरुष जिसकी लिंगेंद्रिय के मुख पर ढाकनेवाला चमड़ा न हो।

विशेष—इस प्रकार के लोग जन्म से ही बिना चमड़े के होते हैं। धर्मशास्त्रों का मत है कि गुरुतल्पग जन्मांतर में दुश्चर्मा उत्पन्न होते हैं। ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए कोई काम करने का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए उनका दाह कर्म और मृतक कर्म भी नहीं किया जा सकता।

दुश्चलन—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः + हिं० चलन]दुराचरण। खोटी चाल। उ०—जिस मनुष्य के स्वरूप से दुश्चलन अथवा दुराचरण की आशंका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्णतया हो।—वेनिस का बाँका (शब्द०)।

दुश्चिंत्य—वि० [सं० दुश्चिन्त्य] जो कठिनता से समझ में आवे। जिसकी भावना मन में जल्दी न हो सके।

दुश्चिकित्स—वि० [सं०] दुश्चिकित्स्य। जिसकी चिकित्सा कठिन हो।

दुश्चिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद संबंधी चिकित्सा के नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना। निंदित चिकित्सा।

विशेष—स्मृतियों में इस प्रकार के अनाड़ी या दुष्ट चिकित्सकों के दंड का विधान है।

दुश्चिकित्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से हो सके। जो चिकित्सनीय न हो। दुःसाध्य (रोग)।

दुश्चिकित्स्य—वि० [सं०] १. जिसकी चिकित्सा कठिनाई से हो सके। जिसकी दवा जल्दी न हो सके। दुःसाध्य। २. जिसकी चिकित्सा हो न सके। असाध्य।

दुश्चिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म से तीसरा स्थान।

दुश्चित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. खटका। चिंता। आशंका। २. घब॰ राहट। उद्विग्नता।

दुश्चेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [संज्ञा पुं० दुश्चेष्टित] बुरा काम। कुचेष्टा।

दुश्चेष्टित—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्कर्म। पाप। २. नीच काम। खोटा काम।

दुश्च्यवन¹—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न हो सके। जो जल्दी विचलित न हो।

दुश्च्यवन²—संज्ञा पुं० इंद्र।

दुश्च्याव¹—वि० [सं०] जो जल्दी च्युत न किया जा सके।

दुश्च्याव²—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

दुश्मन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [भाव० दुश्मनी] शत्रु। वैरी। द्वेषी।

दुश्मनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वैर। शत्रुता। विरोध।

दुश्वार—वि० [फ़ा०] मुश्किल। कठिन। दुस्तर। उ०—जिसका बहिष्कार अब एक प्रकार से दुश्वार है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८७।

दुष्कर—वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो। दुःसाध्य। जो मुश्किल से हो सके।

दुष्कर²—संज्ञा पुं० आकाश।

दुष्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुष्कर्म—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर्मन्] बुरा काम करनेवाला। पापी। कुकर्मी।

दुष्कर्मा—वि० [सं० दुष्कर्मन्] दे० 'दुष्कर्मी'।

दुष्कर्मी¹—वि० [सं० दुष्कर्म + ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला। पापी। दुराचारी।

दुष्कर्मी—संज्ञा पुं० पापी। उ०—तुमने अपने को बहुत से दुष्कर्मियों का असमय बना रखा है।—वेनिस का बाँका (शब्द०)।

दुष्काल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा वक्त। कुसमय। २. दुर्भिक्ष। अकाल। ३. महादेव। ४. प्रलय (को०)।

दुष्कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्ति। अपयश। बदनामी।

दुष्कुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल। बुरा खानदान। अप्रतिष्ठित घराना।

दुष्कुल²—वि० नीच कुल का। तुच्छ घराने का।

दुष्कुलीन—वि० [सं०] नीच कुल का। तुच्छ घराने का।

दुष्कुलेय—वि० [सं०] दे० 'दुष्कुलीन'।

दुष्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] पाप। बुरा कर्म (को०)।

दुष्कृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा कर्म। कुकर्म।

दुष्कृति²—वि० [सं०] कुकर्मी। पापी।

दुष्कृती—वि० [सं० दुष्कृतिन्] बुरा काम करनेवाला। कुकर्मी। पापी।

दुष्क्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रामक क्रम। अनुचित क्रम। २. साहित्य में क्रमभंग नामक दोष (को०)।

दुष्क्रीत—वि० [सं०] मोल लेने में जिसका दाम उचित से अधिक दिया गया हो। महँगा।

दुष्ख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुःख'। उ०—हिय दुष्ख वैराग मेटिय।—कीर्ति०, ५६।

दुष्खदिर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ छोटा होता है। इसका कत्था पीला और खाने में कड़ुआ और कसैला होता है। इसे क्षुद्र खदिर भी कहते हैं।

पर्या०—कांबोजी। कालस्कंद। गोरट। अमरज। पत्रतरु। बहुसार। महासार। क्षुद्र खदिर।

दुष्ट¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुष्टा] १. दूषित। दोषग्रस्त। जिसमें दोष हो। जिसमें नुक्स या ऐब हो। २. पित्त आदि दोष युक्त। ३. दुर्जन। खल। दुराचारी। पाजी। खोटा। ४. न्याय में हेतु, व्यभिचार आदि दोषों से युक्त (को०)। ५. छिन्न। त्रुटित (को०)। ६. बेकार का। निकम्मा (को०)। ७. अपराधी। दोषी। पापी (को०)।

दुष्ट²—संज्ञा पुं० १. कुष्ट। कोढ़। २. पाप। अपराध। दोष (को०)।

दुष्टचारी—वि० [सं० दुष्टचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टचारिणी] १. दुराचारी। बुरा आचरण करनेवाला। २. दुर्जन। खल।

दुष्टचेता—वि० [सं० दुष्टचेतस्] १. बुरी चिंतना करनेवाला। बुरे विचार का। २. बुरा चाहनेवाला। अहिताकांक्षी। ३. कपटी।

दुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दोष। नुक्स। ऐब २. बुराई। खराबी। ३. बदमाशी। दुर्जनता।

दुष्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता। खोटाई।

दुष्टधी—वि० [सं०] छली। कपटाचारी। खोटा (को०)।

दुष्टपना—संज्ञा पुं० [हिं० दुष्ट + पन (प्रत्य०)] दुष्टता। खोटाई। उ०—रे सठ रहु न राज मेरे में। है अति दुष्टपनो तेरे में।—गोपाल (शब्द०)।

दुष्टपार्ष्णिग्राह—वि० [सं०] (सेना) जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो।

दुष्टबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'दुष्टधी' (को०)।

दुष्टलांगल—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टलाङ्गल] चंद्रमा की प्राकृति के एक रूप का नाम [को०]।

दुष्टवृष—संज्ञा पुं० [सं०] गरियार बैल। परुवा बैल। वह बैल जो स्वस्थ होते हुए भी काम से जी चुराए।

दुष्टव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रण प्रथवा घाव जिसमें से दुर्गंध प्रावे प्रौर जो अच्छा न हो।

विशेष—यह रोग वैद्यक में असाध्य माना गया है प्रौर धर्मशास्त्र में इस रोग को पूर्वजन्मकृत महापातक का फल माना है। बिना प्रायश्चित्त किए इस रोग का रोगी अस्पृश्य माना गया है प्रौर उसके दाहकर्म प्रौर मृतक संस्कार का निषेध है।

२. नासूर। नाड़ीव्रण (को०)।

दुष्टर—वि० [सं०] दे० 'दुस्तर'।

दुष्टसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टसाक्षिन्] बुरा साक्षी। ऐसा गवाह जो ठीक ठीक गवाही न दे। अयोग्य साक्षी।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि साक्षी सत्यवादी, कर्तव्यपरायण, प्रौर निर्लोभ हो। यदि साक्षी ऐसा हो जिसने कभी झूठी गवाही दी हो, जो व्याधिग्रस्त हो, जिसने महापातक किए हों अथवा जिसका दो पक्षों में से किसी पक्ष के साथ आर्थिक संबंध, शत्रुता या मित्रता हो वह दुष्ट साक्षी है। उसका साक्ष्य ग्रहण न करना चाहिए।

दुष्टा[1]—वि० स्त्री० [सं०] खोटी। बुरे स्वभाव की।

दुष्टा[2]—१. बुरे स्वभाव की स्त्री। दुश्चरित्र स्त्री। दोषयुक्त। २. वारनारी। वेश्या [को०]।

दुष्टाचार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कुचाल। कुकर्म। खोटा काम।

दुष्टाचार[2]—वि० दुराचारी। बुरा काम करनेवाला।

दुष्टाचारी—वि० [सं० दुष्टाचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टाचारिणी] कुकर्मी। जिसके प्राचरण अच्छे न हों। खोटा काम करनेवाला।

दुष्टात्मा—वि० [सं० दुष्टात्मन्] जिसका अंतःकरण बुरा हो। दुराशय। खोटी प्रकृति का। दुरात्मा।

दुष्टान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिगड़ा हुप्रा अन्न। बासी या सड़ा अन्न। २ कुत्सित अन्न। ३. वह अन्न जो पाप से कमाई हो। ४. नीच का अन्न।

दुष्टाशय—वि० [सं०] दे० 'दुष्टात्मा' [को०]।

दुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष। विकार। ऐब।

दुष्पच—वि० [सं०] १. जो कठिनता से पके। २ जो जल्दी न पचे।

दुष्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोर नामक गंधद्रव्य।

दुष्पद—वि० [सं०] दुष्प्राप्य।

दुष्पराजय[1]—वि० [सं०] जिसका जीतना कठिन हो।

दुष्पराजय[2]—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

दुष्परिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जो जल्दी पकड़ में न आ सके। जिसे वश में लाना कठिन हो।

दुष्पर्श—वि० [सं०] १. जिसे स्पर्श करना कठिन हो। जिसे छूते न बने। २. जो जल्दी हाथ न लगे। दुष्प्राप्य।

दुष्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा।

दुष्पार—वि० [सं०] १. जिसे जल्दी पार न कर सके। २. दुःसाध्य। कठिन।

दुष्पूर—वि० [सं०] १. जिसका भरना कठिन हो। जो जल्दी न पूरा हो सके। कठिनता से पूर्ण होनेवाला। २. अनिवार्य।

दुष्प्रकृति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रकृति। खोटा स्वभाव।

दुष्प्रकृति[2]—वि० बुरे स्वभाव का। दुःशील।

दुष्प्रधर्ष[1]—वि० [सं०] जो जल्दी धर पकड़ में न आ सके।

दुष्प्रधर्ष[2]—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुष्प्रधर्षण—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुष्प्रधर्ष' [को०]।

दुष्प्रधर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुष्प्रधर्षिणी' [को०]।

दुष्प्रधर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा। हिंगुवा। २. खजूर।

दुष्प्रधर्षिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंटकारी। भटकटैया। २. बैंगन। भंटा।

दुष्प्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी प्रवृत्ति। २. बुरी खबर। अशुभ समाचार (को०)।

दुष्प्रवेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंथारी वृक्ष।

दुष्प्राप, दुष्प्रापण—वि० [सं०] दे० 'दुष्प्राप्य'।

दुष्प्राप्य—वि० [सं०] जो सहज में न मिल सके। जिसका मिलना कठिन हो।

दुष्प्रेक्ष—वि० [सं०] दे० 'दुष्प्रेक्ष्य'।

दुष्प्रेक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसे देखना कठिन हो। २ दुर्दर्श। भीषण।

दुष्मंत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्मन्त] दे० 'दुष्यंत'।

दुष्यंत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] पुरुवंशी एक राजा जो ऐलि नामक राजा के पुत्र थे।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—एक दिन राजा दुष्यंत शिकार खेलते खेलते थककर कण्व मुनि के प्राश्रम के पास जा निकले। उस समय कण्व मुनि की पाली हुई लड़की शकुंतला वहाँ थी। उसने राजा का उचित सत्कार किया। राजा उसके रूप पर मुग्ध हो गए। पूछने पर राजा को मालूम हुआ कि शकुंतला एक अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र ऋषि की कन्या है। जब राजा ने विवाह का प्रस्ताव किया तब शकुंतला ने कहा 'यदि गांधर्व विवाह में कुछ दोष न हो प्रौर प्राप मेरे ही पुत्र को युवराज बनाएँ तो मैं सम्मत हूँ'। राजा विवाह करके शकुंतला को कण्व ऋषि के प्राश्रम पर छोड़ अपनी राजधानी में चले गए। कुछ दिन बीतने पर शकुंतला को एक पुत्र हुआ जिसका नाम प्राश्रम के ऋषियों ने सर्वदमन रखा। कण्व ऋषि ने शकुंतला को पुत्र के साथ राजा के पास भेजा। शकुंतला ने राजा के पास जाकर कहा 'हे राजन्! यह आपका पुत्र मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है प्रौर प्रापका प्रौरस पुत्र है, इसे युवराज बनाइए'। राजा को सब बातें याद तो थीं पर लोकनिंदा के भय से उन्होंने उन्हें छिपाने की चेष्टा की प्रौर

शकुंतला का तिरस्कार करते हुए कहा—'हे दुष्ट ! तपस्वनी ! तू किसकी पत्नी है ? मैंने तुमसे कोई संबंध कभी नहीं किया, चल दूर हो'। शकुंतला ने भी लज्जा छोड़कर जो जो जी में आया खूब कहा। इसपर देववाणी हुई 'हे राजन् ! यह पुत्र आपही का है, इसे ग्रहण कीजिए। हम लोगों के कहने से आप इसका भरण करें और इस कारण इसका भरत नाम रखें'। देववाणी सुनकर राजा ने शकुंतला का ग्रहण किया। आगे चलकर भरत बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

इसी कथा को लेकर कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक लिखा है। पर कवि ने कौशल से राजा दुष्यंत को दुष्ट नायक होने से बचाने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना की है और यह दिखाया है कि उसी शाप के प्रभाव से राजा सब बातें भूल गए थे। दूसरी बात कवि ने यह की है कि जिस निर्लज्जता और धृष्टता के साथ शकुंतला का बिगड़ना महाभारत में लिखा है उसको वे बचा गए हैं।

दुष्योदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक उदर रोग जो सिंह आदि पशुओं के नख और रोएं अथवा मल, मूत्र, आर्तवमिश्रित अन्न या एक साथ मिला हुआ घी और मधु खाने तथा गंदा पानी पीने से होता है।

विशेष—इसमें त्रिदोष के कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला हो जाता है। उसके शरीर में जलन होती है और कभी कभी उसे मूर्छा भी आती है। जब बदली होती है और दिन खराब रहता है तब यह रोग प्रायः उभरता है।

दुष्ख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख'। उ०—धावो धावो वीर हो, ईहामृग लिये जाय। भगे सबै जन मान लै, महा दुष्ख तन पाय।—पृ० रासो, पृ० १३५।

दुष्खमुष्खी—वि० [सं० दुःखमुखी] दुःखयुक्त मुखवाली। दुखिनी। उ०—उहाँ सीय दिष्षी, हुती दुष्खमुष्षी। दियं मुद्र नाम, सहिग्यान रामं।—पृ० रा०, २।२७।

दुसंग—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्ग] कुसंग। बुरा साथ। दुर्जन का साथ। उ०—ता उपरांत जो कोऊ वैष्णव विचारे गृह छोरे तो दुसंग करि निश्चय भ्रष्ट होइ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३२।

दुसंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] दे० 'दुष्यंत'। उ०—जैस दुसंतहि साकुंतला। मधवानलहि कामकंदला।—जायसी (शब्द०)।

दुसतर(पु)—वि० [सं० दुस्तर] दे० 'दुस्तर'। उ०—सरिता को पति सिंधु सोउ दुस्तर रह्यो होई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०७।

दुसरा(पु)†—वि० [हिं० दूसरा] [वि० स्त्री० दुसरी] दे० 'दूसरा'। उ०—(क) तब तो यह जरिका दूसरे दिन फेरि गुसाईं जी के दरसन को आयो।—दो सौ बावन०, भाग १, पृ० १२८। (ख) तापर कोमल कनक भूमि मनिमय मोहति मन। दिखियत सब प्रतिबिंब मनौं धर महँ दुसरो बन।—नंद० ग्रं०, पृ० ६। (ग) गोबरधन की मुरति दुसरी। श्री गोविंदचंद हित कुसरी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

दुसराना(पु)—क्रि० स० [हिं० दो या दूसरा] दुहराना। उ०—(क) यह कारज अविचारित कीजे। ताहि न फिर दुसराइ सुनीजे।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) मम भाल में हाल लिख्यो बिधि यों, कोउ या ब्रज बोलत भाँकै नहीं। नटनागर हा अब कैसी करौं, दुसराय के द्वार पै झाँकै नहीं।—नट०, पृ० ८१।

दुसरिहा(पु)†—वि० [हिं० दूसर + हा (प्रत्य०)] १. साथ रहनेवाला दूसरा आदमी। साथी। संगी। उ०—कहो कि मृत्युलोक के माहीं। तुम्हरा कोई दुसरिहा नाहीं।—विश्राम (शब्द०)। २. प्रतिद्वंद्वी।

दुसह—वि० [सं० दुःसह] जो सहा न जाय। असह्य। कठिन। उ०—जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू।—तुलसी (शब्द०)।

दुसही†—वि० [हिं० दुःसह+ई (प्रत्य०)] १ जो कठिनता से सह सके। २. डाही। ईर्षालु। जैसे, असही दुसही। उ०—असही दुसही मरहु मनहिं मन बैरिन बढ़हु बिषाद। नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु शंकर गौरि प्रसाद।—तुलसी (शब्द०)।

दुसाखा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + शाखा] एक प्रकार का शमादान जिसमें दो कनखे निकले होते हैं। उ०—झाड़, दुसाखे झाम, बगूला, बरम हथौरा।—सूदन (शब्द०)। २. डंडे के आकार की एक छोटी लकड़ी जिसमें छोर पर दो कनखे फूटे होते हैं। इसमें साफी (छानने का कपड़ा) बाँधकर लोग भाँग छानते हैं।

दुसाध[1]—संज्ञा पुं० [सं० दोषाद या दुःसाध्य] हिंदुओं में एक नीच जाति जो सूअर पालती है।

दुसाध[2]—वि० नीच। अधम। दुष्ट। पाजी। (गाली)।

दुसार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + साल] आरपार छेद। वह छेद जो एक ओर से दूसरी ओर तक हो। उ०—(क) लागत कुटिल कटाछ सर क्यों न होय बेहाल। लगत जु हिये दुसार करि तऊ रहत नटसाल।—बिहारी (शब्द०)। (ख) सहि न सक्यो कछु करि रह्यो बस कर लीनो मार। भेदि दुसार कियो हियो तनदुति भेदै सार।—बिहारी र०, दो० ४४३। (ग) लागी लागी क्या करे लागत रही लगार। लागी तब ही जानिए निकसी जाय दुसार।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

दुसार[2]—क्रि० वि० आरपार। वारपार। एक पार से दूसरे पार तक।

दुसाल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + शल] आरपार छेद। उ०—ढाल ते दुवाल एकक धावते परांत निढि। लाल नैन ज्वाल झाल सी झरी दुसाल दिढ़।—सूदन (शब्द०)।

दुसाल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दो प्रकार का स्वभाव या आचरण। दो बात। उ०—अणभजिया भजिया तणी, दीठ प्रतख दुसाल। त्रिसठा तो वायस भख, मोती भख मराल।—रघु० रू०, पृ० ४१।

दुसाला(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० दुशाला] दे० 'दुशाला'।

दुसास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुस् (= दुर्) + आशा] उच्च

आकांक्षा। ऊँची आशा। दुर्लभ आकांक्षा। उ०—सौवरे पियहि सुमिरि बर बाला। भरइ उसास दुसास बिहाला।—नंद० ग्रं०, पृ० १३४।

दुसासन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुःशासन] दे० 'दुःशासन'।

दुसाहा—संज्ञा पुं० [देश०] दो फसली खेत। वह खेत जिसमें दो फसलें हों।

दुसील—संज्ञा पुं० [सं० दुःशील] दे० 'दुःशील'। उ०—हिरण्यो हनत उर डर भयो भय करि, सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यो है।—सुंदर० ग्रं०, भाग १, पृ० ६०।

यौ०—दुसीलभाव = दुःशीलता।

दुसुमन†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुश्मन] दे० 'दुश्मन'। उ०—सुमन गई ही सो न आई हो सु मन खोय दुसुमन मेरी ता पै बोले हैं बधाई री।—दीन० ग्रं०, पृ० ११।

दुसूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+सूत] एक प्रकार की मोटी चादर जिसमें दो तागों का ताना और बाना होता है। यह पंजाब से आती है और दो या चार तहों की होती है।

दुसेजा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+सेज] बड़ी खाट। पलंग। उ०—बहुत पलंग मचान दुसेजा तखत सरौटी। खरसल स्यंदन बहल बहुत गाड़ी सुनबौटो।—सूदन (शब्द०)।

दुसौ(पु)†—वि० [सं० दुःसह] दे० 'दुःसह'। उ०—लाजपाज सब तोरि कै, अब खेलोंगी फाग। छैल छबीले सों दुसौ, प्रगट करों अनुराग।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २३।

दुस्तर—वि० [सं०] १. जिसे पार करना कठिन हो। २. दुर्घट। विकट। कठिन।

दुस्तार—वि० [सं० दुस्तार] दे० 'दुस्तर'। उ०—तुम भवसागर दुस्तार।—अपरा, पृ० ७१।

दुस्त्यज—वि० [सं० दुस्त्याज्य] जो कठिनाई से छोड़ा जा सके। जिसका त्यागना कठिन हो। उ०—देव गुरु गिरा गौरव दुदुस्त्यज राज्य त्यक्त श्री सकल सौमित्रि भ्राता।—तुलसी (शब्द०)।

दुस्थ—वि० [सं०] १. दुःख में पड़ा हुआ। दुःखी। गरीब। २. पीड़ायुक्त। उद्विग्न। ३. जो अच्छा न हो। जो ठीक न हो। ४. मूर्ख। दुष्ट। ५. लुब्ध। मुग्ध [को०]।

दुस्थित—वि० [सं०] दे० 'दुस्थ'।

दुस्पर्श—वि० [सं०] दे० 'दुष्पर्श' [को०]।

दुस्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुःस्पर्शा' [को०]।

दुस्पृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. हलका स्पर्श। हलकी छुअन। २. जिह्वा का तालु से वह हलका स्पर्श जिससे अंतस्थ वर्ण (य् र् ल् व्) का उच्चारण होता है [को०]।

दुस्फाट—संज्ञा पुं० [सं० दुस्फाट] एक प्रकार का अस्त्र [को०]।

दुस्मर—वि० [सं०] जो कठिनाई से याद आए। जिसे स्मरण रखना कठिन हो [को०]।

दुस्सह—वि० [सं०] दे० 'दुःसह'।

दुस्साध्य—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य'।

दुहकर(पु)†—वि० [सं० दुष्कर] दे० 'दुष्कर'।

दुहता—संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दुहती] बेटी का बेटा। नाती। उ०—नूरजहाँ के साथ हौदे पर उसकी दुहती भी थी।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दुहत्थ(पु)—संज्ञा [सं० द्वि, प्रा० दु+सं० हस्त] दो पंक्तियों का छंद। दे० 'दोहा'। उ०—छंद प्रबंध कवित्त जति साटक गाह दुहत्थ। लघु गुरु मंडित खंडियहि पिंगल अमर भरथ्थ।—पृ० रा०, १।८१।

दुहत्था—वि० [हिं० दो+हाथ] [वि० स्त्री० दुहत्थी] १. दोनों हाथों से किया हुआ। जैसे, दुहत्थी मार। २. जिसमें दो मूठें या दस्ते हों।

दुहत्थाशासन—संज्ञा पुं० [हिं० दुहत्था+सं० शासन] दे० 'द्विदल शासन प्रणाली'।

दुहत्थी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+हाथ] मालखंभ की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी मालखंभ को दोनों हाथों से कुहनी तक लपेटता है और फिर जिधर का हाथ ऊपर होता है उधर की टाँग को उड़ाकर मालखंभ पर सवारी बाँधता है और अपना हाथ पेट के नीचे से निकाल लेता है।

दुहना—क्रि० स० [सं० दोहन] १. स्तन से दूध निचोड़कर निकालना। दूध निकालना। उ०—(क) तिल सी तो गाय है, छौना नौ नौ हाथ। मटकी भर भर दुहिए, पूँछ अठारह हाथ।—कबीर (शब्द०)। (ख) राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरुसेवा करवाये। सुरभी दुहत दोहनी माँगी बाँह पसारि देवाये।—सूर (शब्द०)।

विशेष—'दूध' और 'दूधवाला पशु' दोनों इसके कर्म हो सकते हैं। जैसे, दूध दुहना, गाय दुहना।

२. निचोड़ना। तत्व निकालना। सार निकालना। सार खींचना। उ०—(क) पाछे पृथु को रूप हरि लीन्हें नाना रस दुहि काढ़े। तापर रचना रची विधाता बहु विधि पललन बाढ़े।—सूर (शब्द०)। (ख) दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन दुहि लीन। सब ससि दामिनी भा मिलै वा भामिनि को कीन।—शृं० सत० (शब्द०)।

मुहा०—दुह लेना = (१) निःसार कर देना। सार खींच लेना। (२) धन हर लेना। जहाँ तक हो किसी से लाभ उठाना। लूटना। उ०—बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।—तुलसी (शब्द०)।

दुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहनी] बरतन जिसमें दूध दुहा जाता है। दोहनी।

दुहरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'दोहरना'।

दुहरा—वि० [हिं०] दे० 'दोहरा'।

दुहराना[1]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दोहराना'।

दुहराना[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दोहराने का काम। दोहराने की क्रिया या भाव।

दुहराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहरा+हट (प्रत्य०)] पुनरावर्तन।

दुहराने का भाव या क्रिया। उ०—गान ? जिसपर हों पड़े दुहराहटों के दाग ? गान जिसकी ललक से बुझ जाय अमर चिराग। —हिम कि०, पृ० १३८।

दुहँमना—क्रि० स० [हिं० दुहाना] दे० 'दुहाना'। उ०—खिरक दुहँमन जाति मोहिं, कब ग्रान मिलैगो धाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३३।

दुहाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि० (= दो) + आह्वय (= पुकारना)] १. घोषणा। पुकार। उच्च स्वर से किसी बात की सूचना जो चारों ओर दी जाय। मुनादी।

मुहा०—किसी की दुहाई फिरना = (१) राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा होना। राजा के नाम की सूचना डंके आदि के द्वारा फिरना। उ०—बैठे राम राजसिंहासन जग में फिरी दुहाई। निर्भय राज राम को कहियत सुर नर मुनि सुखदाई।—सूर (शब्द०)। (२) प्रताप का डंका पिटना। प्रभुत्व की डौंडी फिरना। विजय घोषणा होना। जयजयकार। उ०—(क) बिध, उदयगिरि, धौलागिरी। काँपी सृष्टि दुहाई फिरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नगर फिरी रघुबीर दुहाई। तब प्रभु सीतहि बोल पठाई।—तुलसी (शब्द०)।

२. सहायता के लिये पुकार। बचाव या रक्षा के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाने की क्रिया। सताए जाने पर किसी ऐसे प्रतापी या बड़े का नाम लेकर पुकारना जो बचा सके। उ०—तब सतगुरु कहे समुझाई। काहे को तुम देत दुहाई।—कबीर सा०, पृ० ५५७।

मुहा०—दुहाई देना = (संकट या आपत्ति आने पर) रक्षा के लिये पुकारना। अपने बचाव के लिये किसी का नाम लेकर पुकारना। उ०—(क) हम बचानेवाले कौन हैं, राजा दुष्यत की दुहाई दे वही बचाएगा क्योंकि तपोवनों की रक्षा राजा के सिर है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ख) किसी ने आकर दुहाई दी कि मेरी गाय चोर लिए जाता है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

३. शपथ। कसम। सौगंद। जैसे, रामदुहाई। उ०—(क) मन माला तन सुमिरनी हरि जी तिलक दिखाय। दुहाई राजा राम की दुजा दूर किया।—कबीर (शब्द०)। (ख) अब मन मगन हो रामदुहाई। मन, बच, क्रम हरि नाम हृदय धरि जो गुरुवेद बताई।—सूर (शब्द०)। (ग) नाथ सपथ पितु चरन दुहाई। भयउ न भुग्रन भरत सम भाई।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खाना। उ०—ग्राजु ते न जैहो दधि बेचन, दुहाई खाऊँ मैया की, कन्हैया उत ठाढ़ोई रहत है।

दुहाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] १. गाय, भैंस आदि को दुहने का काम। २. दुहने की मजदूरी।

दुहाग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य, प्रा० दुब्भाग दुहाग] १. दुर्भाग्य। २. सोहाग का उलटा। वैधव्य। रँड़ापा।

दुहागिनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहागी] विधवा। सुहागिन का उलटा। उ०—(क) हँसि हँसि के तन पाइया जिन पाया तिन रोय। हाँसी खेलत हरि मिले तो नहीं दुहागिन होय।—कबीर (शब्द०) (ख) सेज बिछावे सुंदरी अंतर परदा होय। तन सौंपे मन दे नहीं सदा दुहागिन सोय।—कबीर (शब्द०)।

दुहागिल† —वि० [हिं० दुहाग + इल (प्रत्य०)] १. अभागा। अनाथ। बिना मालिक का। २. सूना। खाली। उ०—तजि के दिगोसन दुहागिल कै दोनों दिसि भेले ह्वै बदन सहैं सोक की रगर को।—गुमान (शब्द०)।

दुहागी†—वि० [सं० दुर्भागिन्] [वि० स्त्री० दुहागिन] दुर्भागी। अभागा। बदकिस्मत। उ०—सब जग दोखो एकला सेवक स्वामी दोइ। जगत दुहागी राम बिनु साधु सुहागी सोइ।—दादू (शब्द०)।

दुहाजू[1]—वि० पुं० [सं० द्विभार्य] जो पहली स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहाजू[2]—वि० स्त्री० जो स्त्री पहले पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहाना—क्रि० स० [हिं० दुहना का प्रे० रूप] दुहने का काम दूसरे से कराना। दूध निकलवाना। जैसे, दूध दुहाना, गाय दुहाना। उ०—दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो।—रसखानि (शब्द०)।

दुहाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहाना] १. एक प्रथा जिसके अनुसार प्रति वर्ष जन्माष्टमी आदि त्योहारों को किसानों की गाय भैंस का दूध दुहाकर जमींदार ले लेता है। २. वह दूध जो इस प्रथा के अनुसार किसान जमींदार को देता है।

दुहावना—क्रि० स० [सं० दोहन] दे० 'दुहाना'। उ०—मनभावती देहों दुहावनी पै यह गाय तुही पै दुहावनी है।—ग्वाल (शब्द०)।

दुहावनो—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहाना] १. वह धन जो ग्वाले को गाय दुहने के लिये दिया जाता है। दूध दुहने की मजदूरी। उ०—(क) अरु औरन के घर ते हम सों तुम दूनी दुहावनो लेबो करो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) मनभावनो देहौ दुहावनो पै यह गाय तुहीं पै दुहावनी है।—ग्वाल (शब्द०)।

दुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] कन्या। लड़की।

दुहितृपति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। दामाद।

दुहिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्रुहिण] ब्रह्मा। उ०—करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह। जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

दुहुँघा—वि० [प्रा० हिं०] दोनों ओर। दोनों तरफ। उ०—प्रेमपगी तृतियाँ बढ़ुँघा की दुहुँ को लगी अतिही चितचाहीं।—रसखान०, पृ० २५।

दुहुवनि(पु)—वि० [हिं०] दोनों।—शिव शक्ती बरतंत अंत दुहुवनि को नाहीं।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० ५८।

दुहूँ—वि० [दो + हूँ (प्रत्य०)] दोनों ही। उ०—(क) दुहूँ भाँति असमंजसे बाण चले सुख पाय।—केशव (शब्द०)।

(ख) वग्गा लग्गे दुहूँ वग्गे, काल रगे वीरय ।—रा० रू०, पृ० ४६ ।

दुहुँन⑤—वि० [हिं०] दे० 'दुहूँ' । उ०—कबहुँक वे उनके वे उनके हों दुहुँन के इक सारी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६१ ।

दुहेनू†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहना] दूध देनेवाली गाय ।

दुहेला—संज्ञा पुं० [सं० दुर्हेला] दुःख । विपत्ति । मुसीबत । उ०—पदमावति जगरूपमनि कहं लगि कहौं दुहेल । तेहि समुद महँ खोएउँ हौं का जिऔं अकेल ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला[1]—वि० [दुहेला (=कठिन खेल)] [वि० स्त्री० दुहेली] १. दुःखदायी । दुःसाध्य । कठिन । उ०— (क) भक्ति दुहेली राम की नहिं कायर को काम । निस्प्रेही निरधार को आठ पहर संग्राम ।—कबीर (शब्द०) (ख) दादू मारग साधु का खरा दुहेला जान । जीवित मिरतक होइ चलइ रामनाम नीसान ।—कबीर (शब्द०) । (ग) रामची भगती दुहेली रे बापा । सकल निस्तार चीन्ह ले आपा ।—दक्खिनी०, पृ० ३५ । २. दुःखी । दुखिया । दीन । उ०—(क) पदमावति निज कंत दुहेली । बिनु जल कमल सूख जनु बेली ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भई दुहेली टेक बिहूनी । थाँभ नाहं उठि सकै न थूनी ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला[2]—संज्ञा पुं० विकट । दुःखदायक कार्य । उ०—(क) अबहिं बारि तै प्रेम न खेला । का जानसि कस होय दुहेला ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पहिल प्रेम है कठिन दुहेला । दोउ जग तरा प्रेम जेइ खेला ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहैं†—वि० [हिं०] दोनों उ०—ह्रस्व दीरघ दुहै नेम बिण खीजे ।—रघु० रू०, पृ० ५० ।

दुहोतरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दुहोतरी] लड़की का लड़का । कन्या का पुत्र । नाती ।

दुहोतरा⑤[2]—वि० [सं० द्वि, हिं० दो, दु+उत्तर] दो अधिक । दो ऊपर । उ०—ठारे सौ रु दुहोतरा अगहन मास सुजान । बैठि सजल गढ़ नौहि कै किय आखेट विधान ।—सूदन (शब्द०) ।

दुह्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुह्या] दुहने योग्य ।

दुह्यु—संज्ञा पुं० [सं०] शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा के एक पुत्र का नाम ।

विशेष—राजा ययाति जब दिग्विजय कर चुके तब उन्होंने भूमि को अपने पुत्रों में बाँटा था । इस बाँट के अनुसार दुह्यु को पश्चिम दिशा के देश मिले थे । राजा ययाति ने जब इन्हें अपना बुढ़ापा देकर इनसे जवानी माँगी थी तब इन्होंने अस्वीकार कर दिया था । इसपर ययाति ने शाप दिया था कि तुम्हारी कोई प्रिय अभिलाषा पूर्ण न होगी । दे० 'द्रुह्यु' ।

दूँगड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दौंगरा' ।

दूँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दौंगरा' ।

दूँद†—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. ऊधम । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२. दे० 'द्वंद्व' ।

दूँदना†—क्रि० अ० [हिं० दूँद] १. उपद्रव करना । ऊधम मचाना । २. घोर शब्द करना ।

दूँदि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूँद] दे० 'दूँद' ।

दू—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' । उ०—उलग कहइ छइ एकला । दू जण सरिस कहइ घर बास ।—बी० रासो, पृ० ५२ ।

यौ०—दूजण=दो जन । पति पत्नी ।

दूआ[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक गहना जो कलाई पर और सब गहनों के पीछे की ओर पहना जाता है । पछेली ।

दूआ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दो+आ (प्रत्य०)] १. ताश या गंजीफे में वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ या टिप्पियाँ हों । दुक्की । २. सोरही के खेल में, दो कौड़ियों का चित (और बाकी चौदह कौड़ियों का पट) पड़ना (जुआरी) । जैसे, जिसका दूआ, उसका जुआ (कहावत) । ३. किसी, विशेषतः जुएवाले खेल में, वह दाँव जिसका दो चिह्नों, बूटियों और कौड़ियों आदि से संबंध हो ।

दूआ[3]—संज्ञा स्त्री० [अ० दुआ] दे० 'दुआ' ।

दूई‡—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' ।

दूइजा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दूज । द्वितीया ।

दूई‡—वि० [हिं०] दे० 'दो' । उ०—जाड़ा जाय रूई कि दूई । (लोकोक्ति) ।

दूक⑤—वि० [सं० द्वेक] दो एक । कुछ । चंद । उ०—लाभ समै को पालिबो हानि समय की चूक । सदा विचारहिं चारु मति सुदिन कुदिन दिन दूक ।—तुलसी (शब्द०) ।

दूकान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुकान] दे० 'दुकान' ।

दूकानदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दूकानदार] दे० 'दुकानदार' ।

दूकानदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुकानदारी] दे० 'दुकानदारी' ।

दूख†—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख' ।

दूखन—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दे० 'दूषण' ।

दूखना⑤†[1]—क्रि० स० [सं० दूषण+ना (प्रत्य०)] दोष लगाना । ऐब लगाना ।

दूखना[2]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'दुखना' ।

दूखित[1]—वि० [सं० दूषित] दे० 'दूषित' ।

दूखित[2]—वि० [सं० दुःखित] दे० 'दुःखित' ।

दूगला†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दौरा ।

दूगला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दो+गला] दे० 'दोगला' ।

दूगुना—वि० [सं० द्विगुण] दूना । दुगुना ।

दूगू—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का बकरा जो हिमालय की तराई में होता है ।

दूज—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया, प्रा० दुइय, दुइज] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दुइज । द्वितीया ।

मुहा०—दूज का चाँद होना=बहुत दिनों पर दिखाई पड़ना । कम दिखाई पड़ना । कम दर्शन देना ।

दूजण[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दु (=दो) + जन] दो प्राणी। पति पत्नी। उ०—ऊलग कहीय छइ एकलां। दूजण सरिस कहइ घर वास।—वी० रासो, पृ० ५२।

दूजण[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण, दूजण] दे० 'दुर्जन'।

दूजा—वि० पुं० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय, दुइज] दूसरा। अन्य। द्वितीय।

दूजो[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों का आभूषण विशेष। उ०—साखत पेसबंद अरु पूजी। हीरन जटित हैकलैं दूजो।—हम्मीर०, पृ० ३।

दूजो[2]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'दूजा'। उ०—(क) बोली मधुर बचन तिय दूजी।—मानस, २।२२१। (ख) अब जिय चाह करो जनि दूजी। भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६०७।

दूझ—संज्ञा पुं० [सं० द्वंद्व या द्विधा] १. दुःख। कष्ट। २. दुविधा। संदेह। उ०—कबीर सोई सूरमा, मन से माँडे झूझ। पाँचो इंद्री पकरि कै, दूरि करै सब दूझ।—कबीर सा०सं०, पृ० २७।

दूझना[1]—क्रि० अ० [सं० द्विधा, प्रा० दुज्झा] दुष्ट चिंतन करना। दुविधा में पड़ना। उ०—बात अवर कछु अवरहि बूझै। अलप ज्ञान गुनि अनमन दूझै।—नंद० ग्रं०, पृ० १४५।

दूझना(पु)†[2]—क्रि० अ० [सं० दोह्य, प्रा० दुज्झ या हिं० दुहना] दे० 'दूध देना'। उ०—ऐसी एकै गाइ है दूझै बारह मास। सो सदा हमारे संग है दादू आतम पास।—दादू०, पृ० १०६।

दूडभ, दूढम—वि० [सं०] १. व्यसनग्रस्त। पीड़ायुक्त। पीड़ित। २. जिसे ध्वस्त या दग्ध करना कठिन हो (को०)।

दूडाश, दूणाश—वि० [सं०] दे० 'दूडभ,' 'दूढम' (को०)।

दूत—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दूती] १. वह मनुष्य जो किसी विशेष कार्य के लिये अथवा कोई समाचार पहुँचाने या लाने के लिये कहीं भेजा जाय। संदेसा ले जाने या ले आनेवाला मनुष्य। चर। बसीठ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ दूसरे राज्यों में संधि और विग्रह आदि का समाचार पहुँचाने या वहाँ का हालचाल जानने के लिये दूत रखे जाते थे। अनेक ग्रंथों में योग्य दूतों के लक्षण दिए हुए हैं। उनके अनुसार दूत को यथोक्तवादी, देशभाषा का अच्छा जानकार, कार्यकुशल, सहनशील, परिश्रमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, मंत्रणाकुशल और सर्वगुणसंपन्न होना चाहिए। आजकल एक राष्ट्र के प्रतिनिधि दूसरे राष्ट्र में स्थायी रूप से रहते हैं वे भी दूत या राजदूत ही कहलाते हैं।

२. प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेसा प्रेमी तक पहुँचानेवाला मनुष्य।

दूतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत। २. वह कर्मचारी जो राजा की दी हुई आज्ञा का सर्वसाधारण में प्रचार करता है।

दूतकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत का काम। २. दूतक का काम।

दूतकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दूतकर्मन्] संदेसा या खबर पहुँचाने का काम। दूत का काम। दूतत्व।

दूतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी। कदंबपुष्पी।

दूतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूतत्व। दूत का काम।

दूतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम। दूतता।

दूतपन—संज्ञा पुं० [सं० दूत + हिं० पन (प्रत्य०)] दूत का काम। दूतत्व।

दूतर(पु)†—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुस्तर-दूतर] दे० 'दुस्तर'। उ०—तासो नंद कहत सब ऊतर। मूरख जन मनमोहित दूतर।—नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

दूतावास—संज्ञा पुं० [सं० दूत + आवास] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या देश में रहनेवाले किसी दूसरे राज्य या देश के राजदूत या वाणिज्यदूत के अधिकारांतर्गत हो (अं० एम्बैसी)। राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय। राजदूत या वाणिज्य दूत का निवासस्थान। कांस्युलेट। जैसे,—(क) शंघाई में रूसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने चढ़ाई की और कितने ही आदमियों को गिरिफ्तार किया। (ख) महाराज जार्ज के पधारने पर रोम स्थित ब्रिटिश दूतावास में बड़ा आनंद मनाया गया।

दूति—संज्ञा स्त्री० [सं० दूती] दे० 'दूतिका'।

दूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूती।

दूतिर†—वि० [सं० दुस्तर] जो कठिनाई से पार किया जाय। दुस्तर। उ०—अहूँठ हाथ मल कंथा पाई। चंद सूर दोउ थेगली लाई। अट्ठ कोटि दस धागा भरौं। गुरु परसादै दूतिर तिरो।—गोरख०, पृ० २२०।

दूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेमी का संदेसा प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेसा प्रेमी तक पहुँचानेवाली स्त्री। स्त्री और पुरुष को मिलानेवाली या एक का संदेसा दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री। कुटनी।

विशेष—साहित्य में दूतियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। उत्तमा दूती उसे कहते हैं जो मीठी मीठी बातें कहकर अच्छी तरह समझाती हो। मध्यमा दूती उसे कहते हैं जो कुछ मधुर और कुछ कटु बातें सुनाकर अपना काम निकालना चाहती हो। केवल कटु बातें कहकर अपना काम निकालनेवाली दूती को अधमा दूती कहते हैं। सखी, नर्तकी, दासी, संन्यासिनी, धोबिन, चितेरिन, तँबोलिन, बँधिन आदि स्त्रियाँ दूती के काम के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं।

पर्या०—संचारिका। सारिका। दूतिका। कुट्टनी।

दूत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत का भाव। २. दूत का काम।

दूद†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दूध] दे० 'दूध'। उ०—ले आए दूद और नान अपने हमराह। कहे मैं खिज्र पैगंबर हूँ वल्लाह।—दक्खिनी०, पृ० ३१५।

दूद[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धुआँ। भाप। जैसे, दूद कश।

दूद(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] दे० 'दुंद'। उ०—चातक मुख मूँदत नहीं दादुर दूदे देह। बिरहिन हिय खूँदे खरी खूँदे रूँधे लेह।—स० सप्तक, पृ० २६५।

दूदकश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. धुआँ निकलने का मार्ग। वह छिद्र या नल जिससे धुआँ बाहर निकल जाय। धुआँकश। चिमनी। २. एक प्रकार का दमकला जिससे धुआँ देकर पौधों में लगे हुए कीड़े छुड़ाए जाते हैं।

दूदला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे ढढला कहते हैं।

दूदुह(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० दुग्डुभ] पानी का साँप। डेड़हा। (डिं०)।

दूदुह(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभ] दे० 'दुंदुभ'।

दूध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, प्रा० दुद्ध] १. सफेद रंग का वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो स्तनपायी जीवों की मादा के स्तनों में रहता है और जिससे उनके बच्चों का बहुत दिनों तक पोषण होता है। पय। दुग्ध।

विशेष—दूध का स्वाद कुछ मीठा होता है और इसमें एक प्रकार की बिलक्षण हलकी गंध होती है। भिन्न भिन्न जातियों के प्राणियों के दूध के संयोजक अंश तो समान ही होते हैं, पर उसके भाग में बहुत कुछ अंतर होता है। एक ही जाति के भिन्न भिन्न प्राणियों और कभी कभी एक ही प्राणी में भिन्न भिन्न समयों में भी दूध के भाग में कुछ अंतर होता है। दूध का $\frac{4}{5}$ से $\frac{9}{10}$ तक अंश जल होता है और शेष भाग प्रोटीन, चरबी, शर्करा और नमक आदि का होता है। दूध जब थोड़ी देर तक यों ही छोड़ दिया जाता है तब उसकी चरबी ऊपर आ जाती है और वही परिवर्तित होकर मलाई और मक्खन बन जाती है। दूध में जब विशेष प्रकार की और उचित मात्रा में खटाई का अंश मिल जाता है तब वही जमकर दही बन जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूध में से जल और उसके संयोजक अंश अलग हो जाते हैं। इसे दूध का फटना कहते हैं। (मनुष्य जाति की) स्त्रियों के दूध से बहुत अधिक मिलता जुलता दूध गाय या भैंस का होता है, इसी लिये मनुष्य बहुधा गाय या भैंस का दूध पीते, उसका दही जमाते, मिठाइयों के लिये खोआ या छेना बनाते तथा उसमें से मथकर मक्खन आदि निकालते हैं। कहीं कहीं बकरी और ऊँटनी आदि का दूध भी पीया जाता है। वैद्यक में भिन्न भिन्न प्राणियों के दूध के भिन्न भिन्न गुण बतलाए गए हैं। आजकल पाश्चात्य विद्वानों ने दूध का विश्लेषण करके उसके संयोजक पदार्थों के संबंध में जो कुछ निश्चय किया है उसके अनुसार १०० अंश दूध में ८६·८ अंश पानी, ४·८ अंश चीनी, २·६ अंश मेदा (मक्खन), ४·० अंश केसिन और (अंडे की) सफेदी और ०·७ अंश खनिज पदार्थ (जैसे खड़िया, फास्फरस आदि) होता है।

मुहा०—दूध उगलना = बच्चे का दूध पीकर कै कर देना। दूध उछालना = खौलते हुए दूध को ठंढा करने के लिये कड़ाही आदि में से उसे बार बार किसी छोटे बरतन में निकालना और उसमें से धार बाँधकर कड़ाही में दूध गिराना। दूध को ठंढा करने के लिये बार बार उसे धार बाँधकर नीचे गिराना। दूध उतरना = छातियों में दूध भर आना। दूध और काँजी सा मिलना = विरोध लिए मिलना। उ०—कुछ न फल है दूध काँजी सा मिले। जो मिलें तो दूध जल जैसा मिलें।—चुभते०, पृ० ६४। दूध और चीनी सा मिल चलना = दो का मिलकर और उत्तम हो जाना। उ०—नित्य नैमित्तिक व्यवहार में वे दोनों दूध और चीनी की तरह मिल चले थे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४४। दूध और जल सा मिलना = सम भाव से मिलना। अभेद भाव से मिलना। उ०—मिल गए पर चाहिए फटना नहीं। तो परस्पर हों निछावर जो हिलें। कुछ न फल है दूध काँजी सा मिलें। जो मिलें तो दूध जल जैसा मिलें।—चुभते०, पृ० ६४। दूध का दूध और पानी का पानी करना = बिलकुल ठीक ठीक न्याय करना। पूरा पूरा न्याय करना। ऐसा न्याय करना जिसमें किसी पक्ष के साथ तनिक भी अन्याय न हो। जैसे,—आपने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया, नहीं तो ये लोग लड़ते लड़ते मर जाते। उ०—हम जानहिं वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी।—सूर (शब्द०)। दूध का दूध पानी का पानी होना = सच और झूठ का खुल जाना। उ०—मगर खैर, अब तो दूध का दूध और पानी का पानी हो गया।—सैर कु०, पृ० ४२। दूध का बच्चा = वह बच्चा जो केवल दूध के ही आधार पर रहता हो। बहुत ही छोटा और केवल दूध पीनेवाला बच्चा। दूध का सा उबाल = शीघ्र शांत होनेवाला क्रोध या मनोवेग आदि। दूध की मक्खी = तुच्छ और तिरस्कृत पदार्थ। दूध की मक्खी की तरह निकालना या निकालकर फेंक देना = किसी मनुष्य को बिलकुल तुच्छ और अनावश्यक समझकर अपने साथ या किसी कार्य आदि से एकदम अलग कर देना। उस तरह अलग कर देना जिस तरह दूध में से मक्खी अलग की जाती है। जैसे,—सब लोगों ने उनको सभा से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया। उ०—मनसा बचन कर्मना अब हम कहत नहीं कछु राखी। सूर काढ़ि डारयो ब्रज तें ज्यों दूध माँझ ते माखी।—सूर (शब्द०)। मुँह से दूध की बू आना = अभी तक बच्चा और अनुभवहीन होना। विशेष अनुभव और ज्ञान न होना। दूध के दाँत = वे दाँत जो बच्चों को पहले पहल दूध पीने की अवस्था में निकलते हैं और छह सात वर्षों की अवस्था में जिनके गिर जाने पर दूसरे दाँत निकलते हैं। दूध के दाँत न टूटना = अभी तक बच्चा होना। ज्ञान और अनुभव न होना। जैसे,—अभी तक तो उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, वह क्या मेरे सामने बात करेगा। दूध दुहना = स्तनों को दबाकर दूध की धार निकालना। दूध देना = अपने स्तनों में से दूध छोड़ना। अपनी छातियों में से दूध निकालना। जैसे,—उनकी भैंस ८ सेर दूध देती है। दूध चढ़ना = (१) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा का कम होना। जैसे,—इधर कई दिनों से इसकी मा का दूध चढ़ गया है। (२) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा बढ़ना। दूध चढ़ाना = दुहते समय गाय का अपने दूध को स्तनों में ऊपर की ओर खींच लेना जिससे दुहनेवाला उसे खींचकर बाहर न निकाल सके। (प्रायः गाय भैंसें आदि अपने बछड़ों के लिये स्तनों में दूध चुरा रखती हैं, इसी को दूध चढ़ाना कहते हैं।) छठी का दूध याद आना = दे० 'छठी' के मुहा०। दूध छुड़ाना = बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना। किसी को

दूध छोड़ने में प्रवृत्त करना। दूध डालना = बच्चों का पीए हुए दूध की कै कर देना। दूध तोड़ना = (१) गाय आदि का दूध देना बंद या कम कर देना। (२) गरम दूध को ठंढा करने के लिये हिलाना या घंघोलना। दूधों नहाओ पूतों फलो = धन और संतान की वृद्धि हो। संपत्ति और संतान खूब बढ़े (आशीर्वाद)। दूध पिलाना = बालक का मुँह स्तन के साथ लगाकर उसे दूध की धार खींचने देना। दूध पीता बच्चा = गोद का बच्चा। बहुत छोटा बच्चा। दूध पीना = स्तन को मुँह में लगाकर उसमें से दूध की धार खींचना। स्तनपान करना। किसी चीज का दूध पीना = (किसी चीज का) ऐसी दशा में रहना जिसमें उसके नष्ट होने आदि का खटका न रहे। जैसे,—आप घबराइए नहीं, आपके रुपए दूध पीते हैं। दूध फटना = खटाई आदि पड़ने के कारण दूध का जल अलग और सार भाग या छेना अलग हो जाना। दूध बिगड़ना। दूध फाड़ना = किसी क्रिया से दूध का पानी और छेना या सार भाग अलग अलग करना। दूध बढ़ाना = दूध छुड़ाना। बच्चे की दूध पीने की आदत छुड़ाना। उ०—दूध बढ़ाने के पीछे गंगा जी ने दोनों लड़के वालमीक जी को सौंप दिए।—सीताराम (शब्द०)। (स्तनों में) दूध भर आना = बच्चे की ममता या स्नेह के कारण माता के स्तनों में दूध उतर आना। माता का प्रेम बढ़ना।

२. अनाज के हरे बीजों का रस जो पीछे से जमकर सख्त हो जाता है।

मुहा०—दूध पड़ना = अनाज में रस पड़ना। अनाज का तैयारी पर आना।

३. दूध की तरह का वह तरल पदार्थ जो अनेक प्रकार के पौधों की पत्तियों और डंठलों में रहता और उनके तोड़ने पर निकलता है। जैसे, मदार का दूध, बरगद का दूध।

दूधचढ़ी—वि० स्त्री० [हिं० दूध + चढ़ना] दूध देने में बढ़ी हुई। जिसके स्तनों में दूध पूर्व की अपेक्षा बढ़ गया हो। उ०—गैयाँ गनी न जाहि तरुणि सब बच्छ बढ़ीं। ते चरहिं जमुन के कच्छ दूने दूध चढ़ीं।—सूर (शब्द०)।

दूधपिलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + पिलाना] १. दूध पिलानेवाली दाई। २. ब्याह की एक रस्म जिसमें बारात के समय वर के घोड़ा या पालकी आदि पर चढ़ने के पूर्व माता वर को दूध पिलाने की सी मुद्रा करती है। ३. वह धन या नेग जो माता को इस क्रिया के बदले में मिलता है।

दूधपूत—संज्ञा पुं० [हिं० दूध + पूत (= पुत्र)] धन और संतति। उ०—दूधपूत की छाँड़ी आस। गोधन भरता करे निरास। साँचे हित हरि सों कियो।—सूर (शब्द०)।

दूधफेनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धफेनी] एक प्रकार का पौधा जो दवा के काम में आता है।

दूधफेनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + फेनी] फेनी नाम का पकवान जो मैदे का बना हुआ और सूत के लच्छों के रूप में होता है और जो दूध में पकाकर खाया जाता है।

दूधबहन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + बहन] ऐसी बालिका जो किसी ऐसी स्त्री का दूध पीकर पली हो जिसका दूध पीकर और कोई बालिका या बालक भी पला हो।

विशेष—जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री की बालिका को अपना दूध पिलाकर पालती है तब वह बालिका उस पहली स्त्री के लड़कों या लड़कियों की दूधबहन कहलाती है।

दूधभाई—संज्ञा पुं० [हिं० दूध + भाई] [स्त्री० दूधबहिन] ऐसे दो बालकों में से एक जो एक ही स्त्री के स्तन का दूध पीकर पले हों पर जिनमें से कोई एक दूसरे माता पिता से उत्पन्न हो।

विशेष—जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री के बालक को अपना दूध पिलाकर पालती है तब उन दोनों स्त्रियों के बालक परस्पर दूधभाई कहलाते हैं।

दूधमलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + मलाई] एक प्रकार की बूटेदार मलमल।

दूधमसहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + मसहरी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

दूधमुँहा—वि० [हिं० दूध + मुँह] जो अभी तक माता का दूध पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत अभी न टूटे हों। छोटा बच्चा। बालक।

दूधमुख—वि० [हिं० दूध + सं० मुख] छोटा बच्चा। बालक। दुधमुँहा। उ०—नाथ करहु बालक पर छोहू। सुध दूधमुख करिय न कोहू।—तुलसी (शब्द०)।

दूधराज—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की बुलबुल जो भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान में पाई जाती है। भारत में यह स्थिर रूप से रहती है। इसे शाह बुलबुल भी कहते हैं। २. एक प्रकार का साँप जिसका फन बहुत बड़ा होता है।

दूधवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दूध + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० दूधवाली] दूध बेचनेवाला। ग्वाला।

दूधसार—संज्ञा पुं० [हिं० दूध + सं० सार] एक प्रकार का केला।

दूधहंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + हंडी] मिट्टी की वह हाँड़ी जिसमें दूध रखकर आग पर पकाते हैं। मेटिया।

दूधा—संज्ञा पुं० [हिं० दूध] १. एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार हो जाता है और जिसका चावल वर्षों तक रह सकता है। २. अन्न के कच्चे दानों में का रस जो दूध के रंग का होता है।

दूधाधारी‡—वि० [हिं० दूध + सं० आहारी या आधारी] दुग्धाहारी। दूध मात्र पीकर रहनेवाला।

दूधाभाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूध + भात] विवाह की एक रसम जिसमें वर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ से एक दूसरे को दूध और भात खिलाते हैं। यह रसम विवाह से चौथे दिन होती है।

दूधाहारी—वि० [हिं०] दे० 'दूधाधारी'।

दूधिया¹—वि० [हिं० दूध + इया (प्रत्य०)] १. दूध संबंधी। जिसमें दूध मिला हो अथवा जो दूध से बना हो। जैसे, दूधिया भाँग। २. दूध के रंग का। सफेद। श्वेत। ३. कच्चा।

होने के कारण जिसके अंदर का दूध अभी तक सूखा न हो। जैसे, दूधिया सिंघाड़ा।

दूधिया[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का सफेद बढ़िया और चमकीला पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है।

विशेष—कभी कभी इसके रंग में कुछ लाली, भूरापन या हरापन भी रहता है। इसमें रेत का भाग अधिक रहता है और कुछ लोहा भी रहता है। यह कई प्रकार का होता है और इसमें धूपछाँह की सी चमक होती है। अंगूठियों में इसका नग जड़ा जाता है।

२. एक प्रकार का सफेद, घटिया मुलायम पत्थर जिसकी प्यालियाँ आदि बनती हैं जिन्हें पथरी कहते हैं। ३. एक प्रकार का हलुवा सोहन जो दूध मिलाने के कारण कुछ नरम हो जाता है।

दूधियाकंजई—संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + कंजई] दे० 'दूधिया कंजई'।

दूधियाखाकी—संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + खाकी] सफेद राख का सा रंग।

दूधियापत्थर—संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + पत्थर] दे० 'दूधिया'।

दूधियाविष—संज्ञा पुं० [हिं० दूधिया + सं० विष] तेलिया विष। मीठा जहर।

दूधी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुद्धी] दे० 'दुद्धी'।

दून[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूना] १. दूने का भाव।

मुहा०—दून की लेना या हाँकना=बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना। अपनी शक्ति के बाहर की या असंभव बातें कहना। डींग मारना। शेखी हाँकना। दून की सूझना = अपनी शक्ति के बाहर की बातें सूझना। बहुत बड़ी या असंभव बात का ध्यान में आना।

२. जितना समय लगाकर गाना या बजाना आरंभ किया जाय उसके आधे समय में गाना या बजाना। साधारण से कुछ जल्दी जल्दी गाना।

दून[2]—वि० [हिं० दूना] दे० 'दूना'।

दून[3]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणि] दो पहाड़ों के बीच का मैदान। तराई। घाटी।

दूनर(पु)—वि० [सं० द्विनम्र] जो लचककर दोहरा हो गया हो। उ०—दंतनि अधर दाबि दूनर भई सी चापि चौपर पचौपर कै चूनर निचोरै है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८२।

दूनसिरिस—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस का पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है।

विशेष—इसकी छाल हरापन लिए सफेद और हीर की लकड़ी भूरी, चमकदार और मजबूत होती है। तौल इसकी प्रति घनफुट १५ से २० सेर तक होती है। इसकी लकड़ी से ईख पेरने का कोल्हू, मूसल, पहिए, चाय के संदूक और खेती के औजार बनाए जाते हैं। इमारत और पुलों के काम में भी यह आती है और इसका कोयला भी बनाया जाता है। इसमें से तेल बहुत निकलता है और इसके फूल बड़े सुगंधित होते हैं। हिमालय पर्वत पर यह थोड़ी ऊँचाई तक होता है।

दूना—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दूनी] दुगुना। दोचंद। दो बार उतना ही। जैसे,—यह दूनी झंझट का काम है। उ०—अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना।—मानस, २। २१।

मुहा०—दिन दूना होना=मन में खूब उत्साह और उमंग होना। दिन दूना रात चौगुना होना = दे० 'दिन' के मुहा०।

दूनिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनिया] दे० 'दुनियाँ'। उ०—दुनिया दुश्मती सुमति ते बीछुड़ी, धंध धोखा किया कुमति बानी।—कबीर रे०, पृ० ८।

दूनों—वि० [प्रा० दोण्णि, दोन्नि] दोनों। उ०—बिप्र स्राप ते दूनौं भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।—मानस, १।१२२।

दूनौ(पु)[1]—वि० [प्रा० दोण्णि] दे० 'दोनों'।

दूनौ[2]—वि० दे० 'दूना'। उ०—जु कुछ जन्म उत्सव में कीनो। ब्रजपति तातें दूनो दीनो।—नंद० ग्रं०, पृ० २८४।

दूप(पु)—वि० [सं० दृप्त] पुष्ट। बलवान। उ०—उपज्यो अनल अनूपम रूपं। नहि आकृति अवर नर दूपं।—पृ० रा०, १। २५७। (ख) नृप चंद्रगुपत सम चंद रूप। प्रतापसिंह आरेन दूप।—पृ० रा०, १। २८७।

दूप्र—वि० [सं०] शक्तिमान्। बलवान् (को०)।

दूब—संज्ञा स्त्री० [सं० दूर्वा] एक प्रकार की प्रसिद्ध घास जो पश्चिमी पंजाब के थोड़े से बलुए भाग को छोड़कर समस्त भारत में और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की ऊँचाई तक बहुत अधिकता से होती है। दोबी घास। हरियाली।

विशेष—यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ऋतुओं में होती है और बहुत जल्दी तथा सहज में फैल जाती है। इसकी बाहरी गाँठें जहाँ जमीन से छू जाती हैं वहीं जम जाती हैं और उनमें लंबी और बहुत पतली पत्तियाँ निकलने लगती हैं। गाएँ और घोड़े इसे बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उनका बल खूब बढ़ता है। गाएँ और भैंसें आदि इसे खाकर खूब मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। यह सुखाकर भी बरसों रखी जा सकती है। जिस स्थान पर एक बार यह हो जाती है वहाँ से इसे बिलकुल निकालना बहुत कठिन होता है। यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है; —हरी, सफेद और गाँडर [दे० 'गाँडर' २]। वैद्यक में दूब को साधारणतः कसैली, मधुर, शीतल और पित्त, तृषा, अरुचि, दाह, मूर्छा, कफ, मूत्रबाधा और श्रम को दूर करनेवाली कहा है। हिंदू लोग इसका व्यवहार लक्ष्मी और गणेश आदि के पूजन में करते और इसे मंगलद्रव्य मानते हैं।

दूबदू—क्रि० वि० [फ़ा०] सामने सामने। मुकाबले में। आमने सामने। मुहाँमुहँ। जैसे,—जबतक उनसे दूबदू बातें न हों, तबतक इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। उ०—करे गुफ्तगू उनसे जो दूबदू। मती सारे उनके न कोई अदू।—कबीर मं०, पृ० १३२।

दूबर†—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दूबरि] दे० 'दूबरा'। उ०—तुआ गुन सुंदरि अति भेल दूबरि गुनि गुनि प्रेम तोहरि।—विद्यापति, पृ० ११६।

दूबराⓅ†—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दूबरी] १. दुबला। पतला। क्षीण। कृश। उ०—बहू दूबरी होत क्यों यों जब बूझी सास। ऊतर कह्यो न बाल मुख ऊँचे लेत उसास।—मति० ग्रं०, पृ० २९६। २. कमजोर। निर्बल। नाजुक। उ०—बहुत दिन के दूबरे ये कहाँ लौं बिललाहिं।—घनानंद, पृ० ४७५। ३. दबैल। दीन। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्याम कुंजबिहारी कर जोरि मौन ह्वै, दूबरे की रौंधो ओर कहो कौने खाई है?—हरिदास (शब्द०)।

दूबला†—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुबला'।

दूबा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दूर्वा] दे० 'दूब'।

दूबिया—वि० [हिं० दूब + इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंग। हरी घास का सा रंग।

दूबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] द्विवेदी ब्राह्मण।

दूभर—वि० [सं० दुर्भर (= जिसका निर्वाह कठिन हो)] जिसके करने में बहुत कठिनता हो। कठिन। मुश्किल। दुःसाध्य। जैसे,—इस दोपहर को तो उनके यहाँ जाना बहुत दूभर मालूम होता है। उ०—कहीं मुझको स्थान एक तिल, जहाँ भी गया दूभर, झिलमिल। दया दृष्टि ही जो उभरा दिल, छोड़ीं वे जो कड़ियाँ ली थीं।—आराधना, पृ० ८१।

दूमणा†—वि० [सं० दुर् + मन, प्रा० दुम्मण] [वि० स्त्री० दूमणी] उदास। खिन्नमन। उ०—मालवणी मनि दूमणी, आवी बरग बिमासि। रहवारी पूछी करी, आई करहा पासि।—ढोला०, दू० १०२।

दूमनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० द्रुम] हिलना। डोलना। उ०—दूमैं द्रुम डार डार झूमैं पिक बरजोर घूमैं घनघोर मोर जूमैं चहुँ ओर टेरि टेरि।—दीन० ग्रं०, पृ० ४१।

दूमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा थैला जिसमें तिब्बत से चाय भरकर आती है। इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय आती है।

दूमुहाँ—वि० [हिं० दो + मुँह] दे० 'दुमुँहा'।

दूयन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर। ताप [को०]।

दूरंदेश—वि० [फ़ा०] आगापीछा सोचनेवाला। दूर तक की बात विचारनेवाला। होशियार। अग्रसोची। दूरदर्शी।

दूरंदेशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दूर की बात पहले से ही सोच लेना। दूरदर्शिता।

दूर—क्रि० वि० [सं०, मि० फ़ा० दूर] देश, काल या संबंध आदि के विचार से बहुत अंतर पर। बहुत फासले पर। पास या निकट का उलटा। जैसे, —(क) वे टहलते टहलते बहुत दूर चले गए। (ख) आप दूर से ही रास्ता बतलाना खूब जानते हैं। (ग) अभी लड़के की शादी बहुत दूर है। (घ) हमारा इनका बहुत दूर तक का रिश्ता है। (ङ) दिल्लगी करते करते वे बहुत दूर तक पहुँच गए, बाप दादे तक की गालियाँ देने लगे।

मुहा०—दूर करना = (१) अलग करना। जुदा करना। अपने पास से हटाना। (२) न रहने देना। मिटाना। जैसे,—(क) कपड़े का धब्बा दूर कर दो। (ख) दो चार दफे आने जाने से तुम्हारा डर दूर हो जायगा। दूर की कौड़ी लाना = दूर की सूझ। कल्पना की उड़ान। उ०—क्योंकि वह भी बहुत दूर की कौड़ी लाया है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२७। दूर की सुझाना = अनुपस्थित या भविष्य की झलक दिखाना। उ०—सूझकर सूझता नहीं जिनको वे उन्हें दूर से सुझाते हैं।—चोखे०, पृ० ३८। दूर की सूझना = असंबद्ध बात कहना। उ०—बरफ नहीं एक बहू लाओ संखिया इनके लिये बरफ लाओ! क्या दूर की सूझी है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११। दूर क्यों जायँ या जाइए = अपरिचित या दूर का दृष्टांत न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करें। जैसे,—दूर क्यों जायँ अपने अपने पड़ोसी की ही बात लीजिए। दूर दूर करना = पास न आने देना। अत्यंत घृणा और तिरस्कार करना। दूर भागना या रहना = बहुत घृणा या तिरस्कार के कारण बिलकुल अलग रहना। बहुत बचना। पास न जाना। जैसे,—हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं। दूर रहना = कोई संबंध न रखना। बहुत बचना। जैसे,—ऐसी बातों से जरा दूर रहा करो। दूर होना = (१) हट जाना। अलग हो जाना। छूट जाना। (२) मिट जाना। नष्ट हो जाना। न रहना। दूर पहुँचना = (१) साधन या सामर्थ्य के बाहर। शक्ति आदि के बाहर। (२) दूर की बात सोचना। बहुत बारीक बात सोचना। दूर की बात = (१) बारीक बात। (२) कठिन या दुःसाध्य बात। (३) बहुत आगे चलकर आनेवाली बात। अनुपस्थित बात। दूर की कहना = बहुत समझदारी की बात कहना। दूरदर्शिता की बात कहना।

दूर[२]—वि० जो दूर हो। जो फासले पर हो। जैसे, दूर देश।

दूरअंदेशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'दूरंदेशी'। उ०—मनुष्य के मन में जो वृत्ति प्रबल होती है वह उसी के अनुसार काम किया चाहता है और दूरअंदेशी की सब बातों को सहसा भूल जाता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २२६।

दूरग†[१]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग'। उ०—पाई कंकण सिर बंधीयो मोड़। प्रथम पयाणउँ दूरग चीतोड़।—बी० रासो, पृ० १२।

दूरग[२]—वि० [सं०] दूर तक जानेवाला। दूर तक गया हुआ।

दूरगामी—वि० [सं० दूरगामिन्] दूर तक चलनेवाला।

दूरग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर की (अतीत या भविष्य की) वस्तु देखने की शक्ति [को०]।

दूरतः—क्रि० वि० [सं० दूरतस्] दूर से ही [को०]।

दूरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूरत्व'।

दूरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का भाव। अंतर। दूरी। फासला।

दूरदर्शक[१]—वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला।

दूरदर्शक[२]—संज्ञा पुं० पंडित। बुद्धिमान्।

दूरदर्शकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शक + यन्त्र] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं।

दूरदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिद्ध । २. विद्वान् । पंडित । ३. समझदार । ४. दूरबीन ।

दूरदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर की बात सोचने का गुण । दूरंदेशी ।

दूरदर्शी[1]—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शिन्] १. पंडित । २. गृध्र । गीध ।

दूरदर्शी[2]—वि० बहुत दूर की बात सोचने या समझनेवाला । जो पहले से ही बुरा भला परिणाम समझ ले । अग्रसोची । दूरंदेश ।

दूरदृक्—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दूरदर्शी' [को०] ।

दूरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्य का विचार । दूरदर्शिता । दूरंदेशी ।

दूरनिरीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन नाम का यंत्र ।

दूरपात—वि० [सं०] दूर से आने के कारण थकी (सेना) । विशेष दे० 'नवागत'

दूरबा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दूर्वा] दे० 'दूर्वा' ।

दूरबीन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर तक की चीजें साफ साफ दिखलाई पड़ती हैं ।

विशेष—यह यंत्र एक गोल नल के आकार का होता है जिसमें आगे और पीछे दो गोल शीशे लगे होते हैं । आगेवाले शीशे को प्रधान लेंस और पीछेवाले शीशे को उपनेत्र या चक्षुलेंस कहते हैं । प्रधान लेंस अपने सामनेवाले पदार्थ का प्रतिबिंब ग्रहण करके अपने पीछेवाले लेंस पर फेंकता है और पीछे वाला लेंस या उपनेत्र उस प्रतिबिंब को विस्तृत करके आँखों के सामने उपस्थित करता है । आवश्यकतानुसार प्रधान लेंस आगे या पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है । दर्शनीय पदार्थों की आकृति की छोटाई या बड़ाई इन्हीं दोनों लेंसों की दूरी पर निर्भर रहती है । कभी कभी दोनों आँखों से देखने के लिये एक ही तरह के दो नलों को एक साथ जोड़ कर भी दूरबीन बनाई जाती है ।

दूरबीन का आविष्कार पहले पहल हालैंड देश मे सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था । एक बार एक चश्मेवाला अपनी दूकान पर बैठा हुआ काम कर रहा था । इतने में उसकी लड़की सहसा चिल्ला उठी कि देखो वह सामने का बुर्ज कितना पास आ गया । चश्मेवाले ने देखा कि उसकी लड़की दोनों शीशों को आगे पीछे रखकर देख रही है । जब उसने भी इसी प्रकार इन शीशों को रखकर देखा तब उसे उसका उपयोग जान पड़ा । इसके उपरांत उसने अनेक प्रकार की परीक्षाएँ करके कुछ सिद्धांत स्थिर किए और उन्हीं के अनुसार दूरबीन का आविष्कार किया । उसके कुछ ही दिनों के उपरांत प्रसिद्ध ज्योतिषी गैलीलियो ने भी स्वतंत्र रूप से एक प्रकार की दूरबीन का आविष्कार किया था । तब से दूरबीन बनाने के काम में बराबर उन्नति होती आई है । आजकल दूरबीन का उपयोग सैर के लिये, दूर के अच्छे अच्छे दृश्य देखने, युद्धक्षेत्र में शत्रुओं की सेना आदि का पता लगाने और आकाशीय तारों आदि को देखने में होता है । आकाश के तारे आदि देखने के लिये आजकल की वेधशालाओं में जो दूरबीनें होती हैं वे बहुत ही भारी होती हैं । उनके नलों की लंबाई सात फुट तक और व्यास तीन फुट तक होता है ।

२. छोटी दूरबीन के आकार का लड़कों का एक खिलौना जिसमें एक ओर शीशा लगा रहता है और जिसमें आँख लगाकर देखने से रंग बिरंगे फूल आदि दिखाई देते हैं ।

दूरभिन्न—वि० [सं०] अत्यधिक आहत । बहुत घायल [को०] ।

दूरमूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज ।

दूरयायी—वि० [सं० दूरयायिन्] दूर जानेवाला । दूरगामी [को०] ।

दूरवर्ती—वि० [सं० दूरवर्तिन्] दूर का । दूरस्थ । जो दूर हो ।

दूरवस्त्रक—वि० [सं०] निर्वस्त्र । नग्न [को०] ।

दूरवासी—वि० [सं० दूरवासिन्] दूर का रहनेवाला [को०] ।

दूरवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन ।

दूरवेधी—वि० [सं० दूरवेधिन्] दूर से मारनेवाला । दूर ही से लक्ष्य पर प्रहार करनेवाला [को०] ।

दूरस्थ—वि० [सं०] जो दूर हो । दूर का । समीपस्थ का उलटा ।

दूरस्थित—वि० [सं०] 'दे० 'दूरस्थ' ।

दूरांतरित—वि० [सं० दूरान्तरित] दूर रहनेवाला [को०] ।

दूरागत—वि० [सं०] दूर से आया हुआ । उ०—आज किसी के मसले तारों की वह दूरागत झंकार ।—यामा, पृ० १४ ।

दूरात्—क्रि० वि० [सं०] दूर से [को०] ।

दूरान्वय—संज्ञा [सं०] विशेष्य विशेषण, कर्ता क्रिया आदि का इतनी दूर होना जिससे अर्थव्यक्ति में बाधा पड़े । काव्य का एक दोष [को०] ।

दूरापात—संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूर से फेंककर मारा जाय ।

दूरारूढ—वि० [सं० दूरारूढ] १. गहरा । २. बद्धमूल । ३. तीव्र । ४. दूर पहुँचा या चढ़ा हुआ [को०] ।

दूरि(पु)[1]—वि० [सं० दूर] दे० 'दूर' । उ०—भगति पच्छ हठ नहिं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।—मानस, ७ । ४६ ।

दूरिट्ठ†—वि० [सं० दूरस्थित, प्रा० दूरिट्ठ] दे० 'दूरस्थ' । पूगल पिंगल राउ, नल राजा नरवरे नयरे । अदिठ: दूरिट्ठा ये, सगाई दईव संयोग ।—ढोला०, दू० १ ।

दूरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हि० दूर + ई (प्रत्य०)] दो वस्तुओं के मध्य का स्थान । दूरत्व । अंतर । फासला । बीच । अवकाश । जैसे,—जरा इन दोनों खंभों के बीच की दूरी तो नापो ।

दूरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] खाकी रंग की एक प्रकार की लवा (चिड़िया) ।

दूरीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर करना । दूर हटाना [को०] ।

दूरुढा—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग ।

दूरेअमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] उनचास मरुतों में से एक मरुत् का नाम ।

दूरेचर—वि०[सं०]१. दूर रहनेवाला । २. दूर दूर घूमनेवाला [को०] ।

दूरेरितेक्षण—वि० [सं०] ऐंचाताना (को०)।

दूरेश्रवा—वि० [सं० दूरेश्रवस्] जिसका यश दूर तक सुनाई पड़े। बहुत प्रसिद्ध।

दूरोह—संज्ञा पुं० [सं०] आदित्यलोक जहाँ चढ़कर जाना असंभव है।

दूरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दूर्य—संज्ञा पुं० [सं० दूर्य] १. छोटा कचूर। २. विष्टा। पुरीष। मल।

दूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब नाम की घास।

विशेष—दे० 'दूब'।

यौ०—दूर्वांकुर=दूब का नवीन, कोमल, आगे का अँखुवा।

दूर्वाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के भाई वृक की स्त्री का नाम।

दूर्वाद्य घृत—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक विशिष्ट प्रकार से बनाया हुआ बकरी का घी जिसमें दूब, मजीठ, एलुआ, सफेद चंदन आदि मिलाया जाता है और जिसका व्यवहार आँख, मुँह, नाक, कान आदि से रक्त जाने में होता है।

दूर्वाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी, जिस दिन व्रत आदि करते हैं।

दूर्वासोम—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की सोमलता।

दूर्वेष्टिका, दूर्वेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की वेदी में काम आनेवाली एक प्रकार की ईंट।

दूलन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'दोलन'।

दूलभ†—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दूलभ'।

दूलभ†—वि० [सं० दुर्लभ] कठिनता से प्राप्त होने योग्य। दुर्लभ।

दूलह—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह] १. वह मनुष्य जिसका विवाह अभी हाल में हुआ हो या शीघ्र ही होने को हो। दुलहा। वर। नौशा। २. पति। स्वामी। खाविंद। ३. हिंदी के अलंकार ग्रंथ 'कविकुलकंठाभरण' के रचयिता एक कवि।

दूलहु(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० दूलह] दे० 'दूलहा'। उ०—जस दूलहु तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता।—मानस, १।९४।

दूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूली'।

दूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील। नील का पेड़।

विशेष—दे० 'नील' का विशेष।

दूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह] दे० 'दूलह'।

दूवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दूआ'।

दूवार—(पु) संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार'। उ०—कई पंडव पंच संचर्ड, कइ जाव सेवसूं गंग दुवार।—बी० रासो, पृ० ४४।

दूश्य—संज्ञा पुं० [सं०] तंबू। खेमा।

दूषक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष लगानेवाला मनुष्य। वह जो किसी पर दोषारोपण करे। उ०—ऐसे दरिद्र दूषक अरे तिनहूँ सों जो कहत धन, धिक्कार जनम वा अधम को सदा सर्वदा मलिन मन।—ब्रज ग्रं०, पृ० ११२। २. वह जो दोष उत्पन्न करे। दोष उत्पन्न करनेवाला पदार्थ।

दूषक²—वि० १. दोषजनक। बुरा। २. दोष करनेवाला। अपराधी। ३. निंदक। कलंकित करनेवाला (को०)।

दूषण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष। ऐब। बुराई। अवगुण। उ०—तब हरि कह्यो हत्यो बिन दूषण हलधर भेद बताओ। वह जादू खोज तुम कीजो द्वारावति धरि आयो।—सूर (शब्द०)। २. दोष लगाने की क्रिया या भाव। ऐब लगाना। उ०—संदेह के अनंतर स्वपक्ष के स्थापन और प्रतिपक्ष के दूषण करने पर जो अर्थ का अवधारण होता है सो निर्णय कहलाता है।—सिद्धांतसंग्रह (शब्द०)। ३. रावण के भाई एक राक्षस का नाम जो खर के साथ पंचवटी में शूर्पणखा की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था और जो शूर्पणखा की नाक और कान कट जाने पर पीछे रामचंद्र के हाथ से मारा गया। ४. जैनियों के सामयिक व्रत में ३२ त्याज्य बातें या अवगुण जिनमें १२ कायिक, १० वाचिक और १० मानसिक हैं। ५. दोष। अपराध (को०)। ६. पारस्परिक समझौता तोड़ना। विरोध या प्रतिवाद करना (को०)।

दूषण²—वि० [सं०] विनाशक। संहारक। मारनेवाला। उ०—लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न रीह दानव दल दूषण।—केशव (शब्द०)।

दूषणारि—संज्ञा पुं० [सं०] दूषण को मारनेवाले रामचंद्र।

दूषणीय—वि० [सं०] दोष लगाने योग्य। जिसमें ऐब लगाया जा सके।

दूषन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दे० 'दूषण'।

दूषना(पु)†—क्रि० स० [सं० दूषण] दोष लगाना। कलंकित करना।

दूषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका'।

दूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख की मैल। २ कूँची। कलम। तूलिका (को०)। ३. एक प्रकार का चावल (को०)।

दूषित¹—वि० [सं०] जिसमें दोष हो। खराब। बुरा। दोषयुक्त। कलंकित।

दूषित²—धोखा। छल (को०)।

दूषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो विवाह के पूर्व दूषित हो। दूषणप्राप्त कन्या (को०)।

दूषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषि' (को०)।

दूषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका'।

दूषीविष—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में रहनेवाला एक प्रकार का विष जो धातु को दूषित करता है और जिसे हीन विष भी कहते हैं।

विशेष—यदि किसी प्रकार का स्थावर, जंगम या कृत्रिम विष शरीर में प्रविष्ट हो जाने के उपरांत पूरा पूरा बाहर नहीं निकलता, उसका कुछ अंश शरीर में रहकर जीर्ण हो जाता

है अथवा विषनाशक औषधों से दबाने या नष्ट करने पर भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता, तब वह कफ से आच्छादित होकर दूषी विष कहलाता और बरसों तक शरीर में व्याप्त रहता है। जिसके शरीर में यह विष रहता है उसका रंग पीला पड़ जाता है, मल का रंग बदल जाता है, मुँह में दुर्गंधि और विरसता होती है, प्यास लगती है, मूर्च्छा और कै होती है और दूष्योदर के से लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जब यह विष पक्वाशय में रहता है तब मनुष्य के सिर और शरीर के बाल झड़ जाते हैं। जब इसका कोप होने लगता है तब जँभाई आती है, अंग टूटते हैं, रोएँ खड़े हो जाते हैं, शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं, हाथ पैर सूज जाते हैं तथा इसी प्रकार के और उपद्रव होते हैं।

दूष्य¹—वि० [सं०] १. दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाया जा सके। २. निंदनीय। निंदा करने योग्य। ३. तुच्छ। ४. राज्य को हानि पहुँचानेवाला (मनुष्य)।

दूष्य²—संज्ञा पुं० १. कपड़ा। वस्त्र। तंबू। खेमा ३. पीब। पूय (को०)। ४. विष।

दूष्यमहामात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायाधीश या महामात्र नामक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

दूष्ययुक्त—वि० [सं०] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दूष्ययुक्त तथा दूष्यपार्ष्णिग्राह (जिसके पीछे की सेना दूष्य हो) सेना मे दुष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि आप्त पुरुषों के आधिपत्य में वह लड़ सकती है, पर पीछे के आक्रमण से घबड़ाई हुई दुष्ट पार्ष्णिग्राह सेना नहीं लड़ सकती है।

दूष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी को बाँधने का चमड़े का तस्मा या बंधन।

दूष्योदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदररोग। उ०—परिश्रम करने से शोथ होय तो इसको दूष्योदर ऐसा कहते हैं। —माधव०, पृ० १६५।

दूसना—क्रि० स० [सं० दूषण] दे० 'दूषना'। उ०—कहि रेसम के सम दूसत हैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २१०।

दूसर†—वि० [हिं०] दे० 'दूसरा'।

दूसरा—वि० [हिं० दो] [वि० स्त्री० दूसरी] १. जो क्रम में दो के स्थान पर हो। पहले के बाद का। द्वितीय। जैसे,—गली में बाएँ हाथ का दूसरा मकान उन्हीं का है। २. जिसका प्रस्तुत विषय या व्यक्ति से संबंध न हो। अन्य। अपर। और। गैर। जैसे,—हम लोग आपस में लड़ें और चाहें झगड़ें, दूसरे से मतलब ?

मुहा०—दूसरों के सिर ठोकरा फोड़ना = दूसरों पर दोष मढ़ना। उ०—दूसरों को उबार लेते हैं एक दो बीर हो विपद में गिर। पर बहुत लोग चाक बनते हैं ठोकरा फोड़ दूसरों के सिर।—चुभते०, पृ० १२।

यौ०—दूसरी माँ = जो अपनी माँ न हो। सौतेली माँ।

दूहना—क्रि० स० [सं० दोहन] दे० 'दुहना'।

दूहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दोहनी'।

दूहा⑮†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दोहा'।

दूहिया†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चूल्हा।

दृंभू—संज्ञा पुं० [सं० दृम्भू] दे० 'दृम्भू'।

दृक्—संज्ञा पुं० [सं०] दृश का समासप्राप्त रूप। दे० 'दृग'।

दृक¹—संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र। छेद।

दृक²—संज्ञा पुं० [?] हीरा। उ०—निःकंपा दृक वज्र पुनि हीरा पदक जु ऐन। निष्क सकुच तिय निरखि तन भूप भवन छबि मैन।—नंददास (शब्द०)।

दृकाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्रक्काण'।

दृक्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] साँप। चक्षुश्रवा।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि साँप सुनने का काम भी आँख से ही लेता है।

दृक्कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया या संस्कार जो ग्रहों को अपने क्षितिज पर लाने के लिये किया जाता है और जिससे ग्रहों के योग, चंद्रमा की शृंगोन्नति तथा ग्रहों और नक्षत्रों के उदयास्त का पता चलता है। यह संस्कार दो प्रकार का होता है—आक्षदृक् और आयनदृक्।

दृक्काण—संज्ञा पुं० [यू० डेकानस, तुल० सं० द्रेक्काण] फलित ज्योतिष में एक राशि का तीसरा भाग जो दस अंशों का होता है।

विशेष—प्रत्येक राशि तीस अंशों की होती है। राशि को तीन भागों में विभक्त करके एक एक भाग को दृक्काण कहते हैं। इस प्रकार किसी एक राशि मे प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन दृक्काण होते हैं। उस राशि का ही अधिपति प्रथम दृक्काण का स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशि का द्वितीय दृक्काण का, और उससे नवीं राशि का तृतीय दृक्काण का। जैसे, मेष राशि का स्वामी मंगल है। अतः मेष राशि के प्रथम दृक्काण का स्वामी मंगल, द्वितीय दृक्काण का रवि, (जो मेष से पाँचवीं राशि, सिंह का स्वामी है) और तृतीय दृक्काण का बृहस्पति (जो मेष से नवीं राशि, धनु, का स्वामी है) होगा। यह दृक्काण फलित ज्योतिष में काम आता है। शुभ ग्रहों के दृक्काण का नाम 'जल' और अशुभ ग्रहों के के दृक्काण का 'दहन' है। जल दृक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु जल मे होती है और दहन दृक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्नि से होती है। राशियों के अनुसार दृक्काणों के अनेक नाम कल्पित किए गए हैं।

दृक्क्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि शक्ति का ह्रास। आँखों का कमजोर होना (को०)।

दृक्क्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टिपात। अवलोकन। २. दशम लग्न के नतांश की भुज ज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण के स्पष्टीकरण में पड़ता है। मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित कर गुणनफल को त्रिज्या

से भाग देते हैं फिर भागफल को वर्ग करके और उसमें मध्य ज्या के वर्ग को घटाने से जो शेष अंक रहता है उसका वर्गमूल निकालते हैं। यही वर्गमूल का अंक दृक्क्षेप कहलाता है।

दृक्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का मार्ग। दृष्टि की पहुँच।

मुहा०—दृक्पथ में आना = दिखाई पड़ना।

दृक्पात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात। अवलोकन।

दृक्प्रसाद—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलत्था। कुलत्थांजन।

दृक्प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांति। शोभा। सुंदरता।

दृक्शक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाशरूप चैतन्य। २. आत्मा।

दृक्श्रुति—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

दृगंचल—संज्ञा पुं० [सं० दृगञ्चल] पलक। उ०—भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुच निमि भए दृगंचल।—तुलसी (शब्द०)।

दृग्—संज्ञा पुं० [सं०] दृश का समासगत रूप। नेत्र। आँख [को०]।

दृग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृश, समास दृक्] १. आँख। उ०—जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—दृग डोलना या देना = नजर डालना। देखना। उ०—पाइँ परे हुती प्रीतम त्यों कहि केशव क्यों हूँ न मैं दृग दीनी।—केशव (शब्द०)। दृग फेरना = आँख फेरना। अप्रसन्न रहना। उ०—दुःख और मैं कासों कहौं को सुनै ब्रज की बनिता दृग फेरे रहैं।—पद्माकर (शब्द०)।

२. देखने की शक्ति। दृष्टि। उ०—श्रवण घटहु पुनि दृग घटहु घटो सकल बल देहु। इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेहु। —(शब्द०)। ३. दो की संख्या।

दृगध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का एक नाम [को०]।

दृगनवंत(पु)—वि० [हिं० दृगन (बहु०) + वंत] आँखवाला। दृष्टिवाला। उ०—भीजि बसन सुंदर तन लपटनि। दृगनवंत कहँ अति सुख दपटनि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६०।

दृगमिचाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मीचना] आँख मिचौली का खेल। उ०—मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग सु दृगमिचाउ नेक ख्यालन हिते।—पद्माकर (शब्द०)।

दृगमिचाव—संज्ञा पुं० [हिं० दृग + मिचाव] दे० 'दृगमिचाउ'।

दृग्गणित—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का वेध करके गणित करना।

दृग्गणितैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को किसी समय पर गणित से स्पष्ट करके फिर उसे वेध कर मिलाना और न्यूनता या अधिकता प्रतीत होने पर उसमें संस्कार करना जिससे ग्रहों के वेध और स्पष्ट में आगे भेद न पड़े।

दृग्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि की गति या पहुँच। २. वलमलग्न की नतांश कोटिज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण निकालने में पड़ता है। इसकी रीति यह है कि मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित करे और गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे। फिर भागफल का वर्ग करे और वर्गफल से त्रिज्या का वर्ग घटावे। इस प्रकार जो शेष अंक बचेगा उसका वर्गमूल दृग्गति कहलावेगा।

दृग्गोचर—वि० [सं०] जो आँख से दिखाई दे।

दृग्गोल—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसे ऊर्ध्व स्वस्तिक और अधःस्वस्तिक में होता हुआ कल्पित करके जिधर ग्रहों का उदय होता है ऊधर घुमाकर उनकी स्थिति का पता चलाया जाता है। इसे दृङ्मंडल और दृग्वलय भी कहते हैं।

दृग्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृङ्मंडल या दृग्गोल के खस्वस्तिक से जो ग्रह जितना लटका रहता है उसे नतांश कहते हैं और इसी नतांश की ज्या दृग्ज्या कहलाती है।

दृग्भू—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. सूर्य। ३. सर्प।

दृग्लंबन—संज्ञा पुं० [सं० दृग्लम्बन] ग्रहण स्पष्ट करने में जब सूर्य चंद्र गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं, पर पृष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में नहीं आते तब उन्हें पृष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में लाने के लिये जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्लंबन कहते हैं।

दृग्विष—संज्ञा [सं०] वह साँप जिसकी आँखों में विष होता है।

दृग्वृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज।

दृङ्नति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में सूर्य चंद्र का जब प्रभातकालीन स्पष्ट करते हैं और वे गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं पर पृष्ठाभिप्राय से नहीं आते, तब पृष्ठाभिप्राय से उन्हें एक सूत्र मे लाने के लिये जो याम्योत्तर संस्कार किया जाता है उसे दृङ्नति कहते हैं।

दृङ्मंडल—संज्ञा पुं० [सं० दृङ्मण्डल] दृग्गोल।

दृड्ढ—वि० [सं० दृढ] दे० 'दृढ'। उ०—महा बंक गढ़ दृड्ढ बुरजि कंगुर बर सोहैं।—हम्मीररासो०, पृ० १७।

दृढ़[1]—वि० [सं० दृढ] १. जो शिथिल या ढीला न हो। जो खूब कसकर बँधा या मिला हो। प्रगाढ़। जैसे,—दृढ़ बंधन या गाँठ, दृढ़ आलिंगन। २. जो जल्दी न टूटे फूटे। पुष्ट। मजबूत। कड़ा। ठोस। जैसे,—इस फल का छिलका बहुत दृढ़ होता है। ३. बलवान्। बलिष्ट। हृष्ट पुष्ट। जैसे, दृढ़ अंग। ४. जो जल्दी दूर, नष्ट या विचलित न हो सके। स्थायी। जैसे, दृढ़ आसन, दृढ़ संकल्प, दृढ़ सिद्धांत। ५. जो अन्यथा न हो सके। निश्चित। ध्रुव। पक्का। जैसे, किसी बात का दृढ़ होना। ६. ढीठ। कड़े दिल का। जैसे, दृढ़ मनुष्य।

दृढ़[2]—संज्ञा पुं० १. लोहा। २. विष्णु। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. संगीत में सात रूपकों में से एक। ५. तेरहवें मनु रुचि के एक पुत्र का नाम। ६. गणित में वह अंक जो दूसरे अंक से पूरा पूरा विभाजित न हो सके। जैसे,—१, ३, ५, ७, ११, १७, इत्यादि।

दृढ़कंटक—संज्ञा पुं० [सं० दृढकण्टक] क्षुद्रफलक वृक्ष।

दृढ़कर्मा—वि०—[सं० दृढकर्मन्] जो अपने कर्म में दृढ़ रहे। धैर्य और स्थिरता के साथ काम करनेवाला।

दृढ़कव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दृढकव्यूह] कौटिल्य कथित वह व्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ पीछे हटे हों।

दृढ़कांड—संज्ञा पुं० [सं० दृढकाण्ड] १. वह वस्तु जिसके पोर या गाँठें पुष्ट हों । २. बाँस । ३. रोहिस घास ।

दृढ़कांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढकाण्डा] छरेंटा । पातालगारुड़ी लता ।

दृढ़कारी—वि० [सं० दृढकारिन्] १. दृढ़ता से काम करनेवाला । २. मजबूत करनेवाला ।

दृढ़क्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० दृढक्षत्र] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़क्षुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढक्षुरा] बल्वजा तृण । सागे बागे ।

दृढ़गात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढगात्रिका] राब । खाँड़ ।

दृढ़ग्रंथि[1]—वि० [सं० दृढग्रन्थि] जिसकी गाँठें मजबूत हों ।

दृढ़ग्रंथि[2]—संज्ञा पुं० बाँस ।

दृढ़चेता—वि० [सं० दृढचेतस्] दृढ विचारवाला । पक्के इरादे का (आदमी) ।

दृढ़च्छद—संज्ञा पुं० [सं० दृढच्छद] दीर्घ रोहिष तृण । बड़ी रोहिस ।

दृढ़च्युत—संज्ञा पुं० [सं० दृढच्युत] अगस्त्य मुनि के एक पुत्र का नाम जो परपुरंजय नामक राजा की कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । (भागवत) ।

दृढ़तरु—संज्ञा पुं० [सं० दृढतरु] धव का पेड़ ।

दृढ़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढता] १. दृढ़ होने का भाव । दृढत्व । २. मजबूती । ३. स्थिरता । ४. पक्कापन ।

दृढ़तृण—संज्ञा पुं० [सं० दृढतृण] मूँज नाम की घास ।

दृढ़तृणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढतृण] बल्वजा तृण ।

दृढ़त्व—संज्ञा पुं० [सं० दृढत्व] दृढ़ता ।

दृढ़त्वच्[1]—वि० [सं० दृढत्वच्] जिसकी त्वचा या छाल कड़ी हो ।

दृढ़त्वच्[2]—संज्ञा पुं० १ ज्वार का पेड़ । २. एक प्रकार का सरपत ।

दृढ़दंशक—संज्ञा पुं० [सं० दृढदंशक] एक जलजंतु ।

दृढ़दस्यु—संज्ञा पुं० [सं० दृढदस्यु] एक ऋषि जो दृढच्युत के पुत्र थे ।

दृढ़धन—संज्ञा पुं० [सं० दृढधन] शाक्य मुनि । बुद्ध ।

दृढ़धन्वा—संज्ञा पुं० [सं० दृढधन्वन्] १ जो धनुष चलाने में दृढ़ हो या जिसका धनुष दृढ़ हो । २. एक पुरुवंशीय राजा का नाम ।

दृढ़धन्वी—वि० [सं० दृढधन्विन्] १. जिसका धनुष दृढ़ हो ।

दृढ़नाभ—संज्ञा पुं० [सं० दृढनाभ] वाल्मीकि के अनुसार अस्त्रों की एक रोक जिसे विश्वामित्र जी ने रामचंद्र जी को बतलाया था ।

दृढ़निश्चय—वि० [सं० दृढनिश्चय] जो अपनी बात पर जमा रहे । जो अपने संकल्प पर दृढ़ रहे । स्थिरप्रतिज्ञ ।

दृढ़नीर—संज्ञा पुं० [सं० दृढनीर] नारियल, जिसके भीतर का जल धीरे धीरे जमकर कड़ा हो जाता है ।

दृढ़नेत्र—संज्ञा पुं० [सं० दृढनेत्र] वाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्वामित्र जी के चार पुत्रों में से एक । (वाल्मीकि) ।

दृढ़नेमि[1]—वि० [सं० दृढनेमि] जिसकी नेमि दृढ़ हो । जिसकी धुरी मजबूत हो ।

दृढ़नेमि[2]—संज्ञा पुं० अजमीढ़वंशीय एक राजा का नाम जो सत्यधृत के पुत्र थे ।

दृढ़पत्र[1]—वि० [सं० दृढपत्र] जिसके पत्ते दृढ़ हों ।

दृढ़पत्र[2]—संज्ञा पुं० बाँस ।

दृढ़पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढपत्री] बल्वजा तृण । सागे बागे ।

दृढ़पद—संज्ञा पुं० [सं० दृढपद] तेईस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें १३ और १० मात्राओं पर विश्राम होता है और अंत में दो गुरु होते हैं । इसे उपमान भी कहते हैं । जैसे,—बाहु बंध करमूल में आछावलि राजै । लपटे फणि श्रीखंड की लतिका जनु राजै । कुंड जु रच्यो सुहोम को, जनु नाभि सुहाई । रोमावलि मिस धूम की रेखा चलि आई ।

दृढ़पाद[1]—वि० [सं० दृढपाद] दृढ़निश्चयी । विचार का पक्का ।

दृढ़पाद[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मा का एक नाम [को०] ।

दृढ़पादा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढपादा] यवतिक्ता ।

दृढ़पादी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढपादी] भूम्यामलकी । भूआँवला ।

दृढ़प्रतिज्ञ—वि० [सं० दृढप्रतिज्ञ] जो अपनी प्रतिज्ञा से न टले ।

दृढ़प्ररोह—संज्ञा पुं० [सं० दृढप्ररोह] वट । बरगद ।

दृढ़फल—संज्ञा पुं० [सं० दृढफल] नारियल ।

दृढ़बंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढबन्धिनी] अनंतमूल नाम की लता । श्यामा और सारिवा भी इसी को कहते हैं ।

दृढ़बीज[1]—संज्ञा पुं० [सं० दृढबीज] १. चक्रमर्द । चकवँड़ । २. अमरूद । ३. कीकर । बबूर । ४. बंदरीफल । बेर । ५. वट । बरगद [को०] ।

दृढ़बीज[2]—वि० कड़े बीजवाला [को०] ।

दृढ़भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढभूमि] योगशास्त्र में मन को एकाग्र और स्थिर करने का एक अभ्यास, जिसमें मन अविचल हो जाता है, इधर उधर नहीं जाता । इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वैराग्य की प्राप्ति निकट हो जाती है ।

दृढ़मुष्टि[1]—वि० [सं० दृढमुष्टि] १. जो मुट्ठी में जोर से पकड़े । कसकर पकड़नेवाला । २. कृपण । कंजूस ।

दृढ़मुष्टि[2]—संज्ञा पुं० (मुट्ठी में पकड़कर चलाए जानेवाले) खड्गादि अस्त्र ।

दृढ़मूल—संज्ञा पुं० [सं० दृढमूल] १. मूँज । २. मथाना नाम की घास जो तालों में होती है । मंथानक तृण । ३. नारियल ।

दृढ़रंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढरङ्गा] फिटकिरी (जिससे रंग पक्का होता है) ।

दृढ़रोह—संज्ञा पुं० [सं० दृढरोह] पाकर का पेड़ । पक्कड़ ।

दृढ़लता—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढलता] पातालगारुड़ी लता । छिरेंटा ।

दृढ़लोम[1]—वि० [सं० दृढलोमन्] [स्त्री० दृढलोम्नी, दृढलोमा] जिसके रोएँ कड़े हों ।

दृढ़लोम[2]—संज्ञा पुं० सूअर ।

दृढ़लोमा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दृढलोमन्] दे० 'दृढ़लोम' [को०] ।

दृढ़वर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दृढवर्मन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़वल्कल[1]—वि० [सं० दृढवल्कल] जिसकी छाल कड़ी हो ।

दृढ़वल्कल[2]—संज्ञा पुं० १. सुपारी का पेड़ । २. लकुच का पेड़ ।

दृढ़वल्का—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दृढ़वल्का] अंबष्ठा ।

दृढ़वीज¹—वि॰ [सं॰ दृढवीज] जिसके बीज कड़े हों ।

दृढ़वीज²—संज्ञा पुं॰ १. चकवड़ । २. बेर । ३. बबूल ।

दृढ़वृक्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढवृक्ष] नारियल ।

दृढ़व्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढव्य] एक ऋषि का नाम ।

दृढ़व्रत¹—वि॰ [सं॰ दृढव्रत] स्थिरसंकल्प । अपने संकल्प पर जमा रहनेवाला ।

दृढ़व्रत²—संज्ञा पुं॰ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को॰] ।

दृढ़संध¹—वि॰ [सं॰ दृढसन्ध] संकल्प का पक्का । प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला ।

दृढ़संध²—संज्ञा पुं॰ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़संधि—वि॰ [सं॰ दृढसन्धि] १. जो एक में मिलकर सट गया हो । मजबूती से मिला हुआ । २. जिसके अंग के जोड़ पुष्ट हों [को॰] ।

दृढ़सूत्रिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दृढसूत्रिका] मूर्वा नाम की लता । मुर्रा ।

दृढ़स्कंध—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढस्कन्ध] १. पिंड खजूर । २. खिरनी का पेड़ ।

दृढ़स्यु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढस्यु] लोपामुद्रा के गर्भ से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़हस्त¹—वि॰ [सं॰ दृढहस्त] जो हथियार आदि पकड़ने में पक्का हो ।

दृढ़हस्त²—संज्ञा पुं॰ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़ांग¹—वि॰ [सं॰ दृढाङ्ग] जिसके अंग दृढ़ हों । कड़े बदन का । हृष्ट पुष्ट ।

दृढ़ांग²—संज्ञा पुं॰ जीरक । जीरा (या हीरा) ।

दृढ़ाई(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दृढ़] दृढ़ता । मजबूती । उ॰—तेन्ह के ज्ञान जग रहे समाई । घर घर आए कुल बान दृढ़ाई ।—कबीर सा॰, पृ॰ ६१३ ।

दृढ़ाना¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ दृढ़+ना (प्रत्य॰)] दृढ़ करना । पक्का करना । मजबूत करना । उ॰—(क) वहै बात जो जनक दृढ़ाई । देहै धरे विदेह कहाई ।—कबीर (शब्द॰) । (ख) चलत गगन भइ गिरा सुहाई । जय महेस भलि भक्ति दृढ़ाई ।—तुलसी (शब्द॰) । (ग) बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत विहंग कुलह जनु खोली ।—तुलसी (शब्द॰) । (घ) पाछे विविध ज्ञान जननी को दीन्हों कपिल दृढ़ाय । सांख्य योग अरु ज्ञान भक्ति दृढ़ बरनी विविध बनाय ।—सूर (शब्द॰) ।

दृढ़ाना²—क्रि॰ अ॰ १. कड़ा होना । पुष्ट या मजबूत होना । २. स्थिर या पक्का होना ।

दृढ़ायु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढायुष्] १. तृतीय मनु सावर्णि के एक पुत्र का नाम । २. महाभारत में वर्णित उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न ऐल राजा का एक पुत्र ।

दृढ़ायुध¹—वि॰ [सं॰ दृढायुध] अस्त्र ग्रहण करने में पक्का । युद्ध में तत्पर ।

दृढ़ायुध²—संज्ञा पुं॰ १. शिव का एक नाम । २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़ाश्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दृढाश्व] हरिवंश पुराण के अनुसार धुंधुमार के एक पुत्र का नाम ।

दृढ़ेषुधि—वि॰ [दृढ़ेषुधि] दृढ़ तरकस या तूणीरवाला [को॰] ।

दृत—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ दृता] १. सम्मानित । आदृत । २. शीर्ण । विदीर्ण (को॰) ।

दृता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] जीरा ।

दृताग्रवेग¹—वि॰ [सं॰] (सेना) जिसका अग्रभाग नष्ट हो गया हो ।

दृताग्रवेग²—वि॰ दे॰ 'प्रतिहत' ।

दृति—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चमड़ा । खाल । २. खाल का बना हुआ पात्र । ३. मशक । ४. मेघ । ५. एक प्रकार की मछली । ६. गलकंबल । गाय, बैल आदि के गले के नीचे झूलता हुआ चमड़ा ।

दृतिधारक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक पौधा जिसे वंग देश में आकनपाता कहते हैं ।

पर्या॰—आनंदी । वामन ।

दृतिवातवतोरयन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक अयनसत्र का नाम । एक प्रकार का यज्ञ ।

दृतिहरि¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (खाल या चमड़ा चुरानेवाला) कुत्ता ।

दृतिहरि²—वि॰ [सं॰] गलकंबलवाला (पशु) । जिसे गलकंबल हो [को॰] ।

दृतिहार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मशक ढोनेवाला । भिश्ती ।

दृन्फू¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. सर्प । साँप । २. वज्र । विद्युत् । ३. चक्र । पहिया [को॰] ।

दृन्फू²—संज्ञा पुं॰ सूर्य [को॰] ।

दृन्भू—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वज्र । २. सूर्य । ३. राजा । ४. साँप । ५. पहिया । ६. यम । अंतक (को॰) ।

दृप्त¹—वि॰ [सं॰] १. गर्वित । इतराया हुआ । २. हर्ष से फूला या चमकता हुआ ।

दृप्त²—संज्ञा पुं॰ विष्णु का एक नाम [को॰] ।

दृप्र—वि॰ [सं॰] १. प्रचंड । प्रबल । २. इतराया हुआ । घमंडी ।

दृब्ध¹—वि॰ [सं॰] १. ग्रंथित । गुँथा हुआ । २. भीत । डरा हुआ ।

दृब्ध—संज्ञा पुं॰ १. भय । खौफ । डर । २. डोरा । धागा । डोरी [को॰] ।

दृश¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ दृश्य] १. देखना । दर्शन । २. प्रदर्शक । दिखानेवाला । ३. देखनेवाला ।

दृश²—संज्ञा स्त्री॰ १. दृष्टि । २. आँख । ३. दो की संख्या । ४. ज्ञान ।

दृशद्—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'दृषद्' ।

दृशद्वती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'दृषद्वती' ।

दृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख ।

दृशाकांक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० दृशाकाङ्क्ष्य] कमल ।

दृशान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश । आभा । २. विरोचन नाम का दैत्य । ३. आचार्य । गुरु । ४. प्रजा का पालन करनेवाला राजा । लोकपाल । ५. ब्राह्मण ।

दृशालु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

दृशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृशी' ।

दृशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि । २. प्रकाश । ३. चेतन पुरुष । ४. शास्त्र ।

दृशोपम—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत कमल । पुंडरीक ।

दृश्य[1]—वि० [सं०] १. जो देखने में आ सके । जिसे देख सकें । दृग्गोचर । जैसे, दृश्य पदार्थ । २. जो देखने योग्य हो । दर्शनीय । ३. मनोरम । ४. जानने योग्य । ज्ञेय ।

दृश्य[2]—संज्ञा पुं० १. देखने की वस्तु । वह पदार्थ जो आँखों के सामने हो । नेत्रों का विषय । जैसे, वन और पर्वत का दृश्य । २. तमाशा । वह मनोरंजक व्यापार जो आँखों के सामने हो । ३. वह काव्य जो अभिनय द्वारा दर्शकों को दिखलाया जाय । नाटक । ४. गणित में ज्ञात या दी हुई संख्या ।

दृश्यमान—वि० [सं०] १. जो दिखाई पड़ रहा हो । २. चमकीला । सुंदर ।

दृश्यावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्यों की पंक्ति । दर्शनीय वस्तुओं का समूह । उ०—दृश्यावली सुघर वर्णक दर्शिका मनोहर । अपरा, पृ० १६४ ।

दृषत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिला । पर्वत की चट्टान । २. सिल । पट्टी । ३. पत्थर ।

दृषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृषत्' ।

दृषद्वती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है । इसे आजकल घग्घर और राखी कहते हैं । यह थानेश्वर से १३ मील दक्षिण है । महाभारत में यह कुरुक्षेत्र के अंतर्गत मानी गई है । मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त की सीमा पर लिखा है । २. विश्वामित्र की एक पत्नी का नाम । ३. दुर्गा का एक रूप (को०) ।

दृषद्वती[2]—वि० [सं०] पथरीली ।

दृषद्वान्—वि० [सं० दृषद्वत्] [वि० स्त्री० दृषद्वती] पाषाणयुक्त । शिलामय । पथरीला ।

दृष्ट[1]—वि० [सं०] १. देखा हुआ । २. जाना हुआ । ज्ञात । प्रकट । ३. लौकिक और गोचर । प्रत्यक्ष ।

विशेष—पातंजल दर्शन में दो प्रकार के विषय दृष्ट बतलाए गए हैं अर्थात् स्त्री, अन्न, पान आदि लौकिक विषय जिन्हें इंद्रियाँ भोगती हैं और आनुश्रविक विषय जो वेद प्रतिपादित स्वर्ग आदि से संबंध रखते हैं । इन दोनों प्रकार के विषयों से एक साथ निस्पृह हो जाने से वशीकार नामक वैराग्य उत्पन्न होता है ।

दृष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. दर्शन । २. साक्षात्कार । ३. सांख्य में तीन प्रकार के प्रमाणों में से एक । प्रत्यक्ष प्रमाण । ४. स्वचक्र और परचक्र से होनेवाला भय (को०) । ५. डाकुओं का डर (को०) ।

दृष्टकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहेली । २. कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दों के वाचकार्थ से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग या रूढ़ अर्थों से जाना जाय । जैसे,—हरिसुत पावक प्रगट भयो री । मारुत सुत भ्राता पितु प्रोहित ता प्रतिपालन छाँड़ि गयो री । हरसुत वाहन ता रिपु भोजन सों लागत अंग अनल भयो री । मृगमद स्वाद मोद नहिं भावत दधिसुत भानु समान भयो री । वारिधि सुतपति क्रोध कियो सखि मेटि धकार सकार लयो री । सूरदास प्रभु सिंधुसुता बिनु कोपि समर कर चाप लयो री ।—सूर (शब्द०) ।

दृष्टनष्ट—वि० [सं०] जो एक बार दिखाई देकर लुप्त हो जाय [को०] ।

दृष्टपृष्ठ—वि० [सं०] पीठ दिखानेवाला । युद्धभूमि से भागा हुआ [को०] ।

दृष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कर्म का व्यक्त परिणाम (दर्शन) ।

दृष्टमान(पु)—वि० [सं० दृश्यमान] प्रकट । व्यक्त । उ०—(क) दृष्टमान नास सब होई । साक्षी व्यापक नसै न सोई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दृष्टमान सब बिनसी अदृष्ट लखै न कोइ । कोन कोइ गाहक मिलै बहुतै सुख सो होइ ।—कबीर (शब्द०) ।

दृष्टरजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टरजस्] वह लड़की जिसका रजोदर्शन हो गया हो ।

दृष्टवत्—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष के समान । २. लौकिक । सांसारिक ।

दृष्टवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष को ही मानता है ।

दृष्टवान्—वि० [सं० दृष्टवत्] जो प्रत्यक्ष के तुल्य हो । देखे हुए के समान [को०] ।

दृष्टांत—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टान्त] १. अज्ञात वस्तुओं या व्यापारों आदि का धर्म आदि बतलाते हुए समझाने के लिये समान धर्मवाली किसी ऐसी वस्तु या व्यापार का कथन जो सबको विदित हो । उदाहरण । मिसाल । जैसे,—(क) बहुत से पत्ते गोल होते हैं, जैसे, कमल के । (ख) जब मनुष्य एक बार पतित हो जाता है तब बराबर पतित ही होता जाता है । जैसे,—पत्थर का गोला जब पहाड़ पर से लुढ़कता है तब गिरता ही जाता है ।

इस दूसरे वाक्य में पत्थर के गोले के दृष्टांत द्वारा मनुष्य के पतित होने की दशा समझाई गई है ।

विशेष—न्याय के सोलह पदार्थों में से दृष्टांत भी एक है । न्याय के अनुसार जिस पदार्थ के संबंध में लौकिक (साधारण) जनों और परीक्षकों (तार्किकों) का एक मत हो उसे दृष्टांत कहते हैं । ऐसी प्रत्यक्ष बात जिसे सब जानते या मानते हों दृष्टांत है । 'जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है', इस बात को कहकर किसी ने कहा 'जैसे रसोईघर में' तो यह दृष्टांत हुआ । न्याय के अवयवों में उदाहरण के लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टांत का व्यवहार तर्क में होता है उसे उदाहरण कहते हैं ।

२. एक अर्थालंकार जिसमें एक ओर तो उपमेय और उसके साधारण धर्म का वर्णन और दूसरी ओर बिंब प्रतिबिंब भाव से उपमान और उसके साधारण धर्म का वर्णन होता है। जैसे,—दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न करे अति दंद। अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रविचंद।—बिहारी। यहाँ उपमेय दुराज में अधिक द्वंद्व या अँधेरे का होना और उसी के अनुसार उपमान रविचंद मिलन में अधिक अँधेरे का होना वर्णित है। प्रतिवस्तूपमा से इस अलंकार में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में शब्दभेद से एक ही वस्तु का कथन होता है पर इसमें धर्म भिन्न भिन्न (जैसे, द्वंद्व होना और अँधेरा होना) होते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने इन दोनों में बहुत कम भेद माना है और कहा है कि इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद समझना चाहिए।

३. शास्त्र। ४. मरण।

दृष्टार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो। २. वह शब्द जिसके श्रवण से श्रोता को किसी ऐसे अर्थ का बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस संसार में होता हो। जैसे, 'गंगा' इस शब्द के श्रवण मात्र से मनुष्य को एक ऐसी नदी का बोध होता है जो भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह अदृष्टार्थ शब्द का विरोधी है। जैसे, स्वर्ग, नरक, क्षीरसमुद्र, अप्सरा, देवता आदि जो किसी स्थल में प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

दृष्टि—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. देखने की वृत्ति या शक्ति। आँख की ज्योति।

मुहा०—दृष्टि मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

२. देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। देखने के लिये आँख की पुतली के किसी वस्तु के सीध में होने की स्थिति। टक। दृक्पात। अवलोकन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—डालना।

मुहा०—दृष्टि करना = दृष्टि डालना। ताकना। दृष्टि चलाना = नजर डालना। दृष्टि चूकना = नजर का इधर उधर हो जाना। आँख का दूसरी ओर फिर जाना। जैसे,—जहाँ चूकी गिरे। दृष्टि देना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। आँख का दूसरी ओर हो जाना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दृष्टि फेंकना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फेरना = नजर हटा लेना। दूसरी ओर देखना। (किसी ओर) ताकते न रहना। (किसी से) दृष्टि फेरना = (किसी पर) कृपादृष्टि न रखना। अप्रसन्न या विरक्त होना। खिन्न होना। (किसी की) दृष्टि बचाना = (१) सामने होने से बचना। किसी के आँख के सामने न आना। जान बूझकर दिखाई न पड़ना। (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। दृष्टि बाँधना = इस प्रकार का जादू करना कि आँखों को और का और दिखाई पड़े। इंद्रजाल फैलाना। दृष्टि जमाना = (१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। (२) (किसी ओर देखने के लिये) आँख ले जाना। ताकना। उ०—दसौ दुवार ताल का लेखा। उलटि दृष्टि जो लाव सो देखा।—जायसी (शब्द०)।

३. आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के अस्तित्व, रूप, रंग आदि का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दृष्टि आना = दे० 'दृष्टि में आना'। दृष्टि पड़ना = दिखाई पड़ना। उ०—(क) दृष्टि परी इंद्रासन पुरी।—जायसी (शब्द०)।—(ख) मेरी दृष्टि परे जा दिन तें ज्ञान मान हरि लीनो री।—सूर (शब्द०)। दृष्टि पर चढ़ना = (१) देखने में बहुत अच्छा लगना। निगाह में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। भाना। जैसे,—वह छड़ी तुम्हारी दृष्टि पर चढ़ी हुई है। (२) आँखों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जैसे,—तुम उसकी दृष्टि पर चढ़े हुए हो, वह तुम्हें बिना मारे न छोड़ेगा। दृष्टि बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। उ०—पवन स्वास तासों मन लाई। जोवै मारग दृष्टि बिछाई।—जायसी (शब्द०)। (२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम प्रकट करना। दृष्टि में आना = देखने में आना। दिखाई पड़ना। उ०—जग कोउ दृष्टि न आवै पूरन होय सकाम।—जायसी (शब्द०)। दृष्टि में पड़ना दिखाई पड़ना (क्व०)। दृष्टि से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना। (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना। तुच्छ या बुरा ठहरना।

४. देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखने के लिये खुली हुई आँख।

मुहा०—दृष्टि उठाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना। दृष्टि गड़ाना या जमाना = दृष्टि स्थिर करना। एकटक ताकना। (किसी से) दृष्टि चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न आना। जान बूझकर दिखाई न पड़ना। नजर बचाना। (किसी से) दृष्टि जुड़ना = आँख मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। (किसी से) दृष्टि जोड़ना = आँख मिलाना। देखादेखी करना। साक्षात्कार करना। दृष्टि फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना। आँख में चकाचौंध होना। दृष्टि भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी ही देर तक देखना। जी भर कर ताकना। उ०—करु मन नंदनंदन ध्यान। सेइ चरन सरोज सीतल तजु विषय रसपान। सूर श्री गोपाल की छवि दृष्टि भरि लखि लेहि। प्रानपति की निरखि शोभा पलक परन न देहि।—सूर (शब्द०)। दृष्टि मारना = (१) आँख से इशारा करना। पलक गिराकर संकेत करना। (२) आँख के इशारे से रोकना। दृष्टि मिलना = नजर में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में बना रहना। भाना। उ०—वह सभों की दृष्टि में समा गया।—बेनिस का बाँका (शब्द०)। दृष्टि मिलना = दे० 'दृष्टि जोड़ना'। उ०—बिहुरत हिया करहु पिय टेका। दृष्टि मया करि मिलवहु एका।—जायसी (शब्द०)। (किसी वस्तु

पर) दृष्टि रखना = किसी वस्तु को देखते रहना जिससे वह इधर उधर न हो जाय निगरानी रखना। (किसी पर) दृष्टि रखना = देख रेख में रखना। चौकसी में रखना। दशा का निरीक्षण करते रहना। जैसे,—इस लड़के पर भी दृष्टि रखना, इधर उधर खेलने न पावे। दृष्टि लगना = (१) नजर पड़ना। दृष्टिपात होना। (२) देखा देखी होने से प्रेम होना। प्रीति होना। दृष्टि लगाना = (१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। उ०—भूलि चकोर दृष्टि जो लावा। मेघ घटा मह चंद दिखावा।—जायसी (शब्द०)। (२) किसी ओर देखने के लिये आँख ले जाना। ताकना। (३) प्रेम करना। प्रीति करना। (४) नजर लगाना। बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। (किसी से) दृष्टि लड़ना = (१) (किसी की) आँख के सामने आँख होना। घूरा घूरी होना। देखादेखी होना। (२) प्रेम होना। (किसी से) दृष्टि लड़ाना = आँख के सामने आँख किए रहना। घूरना। खूब ताकना। देर तक आँख से आँख मिलाना।

५. परख। पहचान। तमीज। अटकल। अंदाज। ६ कृपा-दृष्टि। हित का ध्यान। मिहरबानी की नजर। जैसे,—आज कल आपकी वह दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है। उ०—(क) तपै बीज जस धरती सूख बिरह के घाम। कब सो दृष्टि करि बरसै तन तरुवर होइ जाम।—जायसी (शब्द०)। (ख) बिरवा लाइ न सूखन दीजै।—जायसी (शब्द०)। ७. आशा की दृष्टि। आसरे में लगी हुई टकटकी। आस। उम्मीद। ८. ध्यान। विचार। अनुमान। जैसे,—मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना अनुचित है। ९. उद्देश्य। अभिप्राय। नीयत। जैसे,—कुछ बुरी दृष्टि से मैंने ऐसा नहीं किया।

दृष्टिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दृष्टकूट'।

दृष्टिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शक। २. स्थल पद्म।

दृष्टिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दृष्टिकृत्' [को०]।

दृष्टिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] देखने या समझने का अंदाज। विचार।

दृष्टिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टिपात।

दृष्टिगत[१]—वि० [सं०] जो दिखाई पड़ा हो। जो देखने में आया हो।

क्रि० प्र०—होना। उ०—जो दृश्य न दृष्टिगत हुए तुम्हें हो सके किसे वे दृष्टिगम्य।—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगत[२]—संज्ञा पुं० १. नेत्र का विषय। २. आँख का एक रोग।

दृष्टिगम्य—वि० [सं०] जो देखने में आ सके। दृष्टिगोचर। उ०—जो दृश्य दृष्टिगत हुए तुम्हें हो सके किसे वे दृष्टगम्य।—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगुण—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्य। निशाना [को०]।

दृष्टिगोचर—वि० [सं०] नेत्रेंद्रिय के द्वारा जिसका बोध हो। जो देखने में आ सके।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखने का दूषित ढंग। २. देखने का बुरा प्रभाव। नजर।

दृष्टिधृक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

दृष्टिनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि फेंकना। नजर डालना। देखने की क्रिया। उ०—उसने क्षुधापीड़ित और क्षुब्ध मानवता की ओर दृष्टिनिक्षेप किया।—बी० श० महा०, पृ० ४२।

दृष्टिनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दृष्टिपात'।

दृष्टिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का फैलाव। नजर की पहुँच।

मुहा०—दृष्टिपथ में आना = दिखाई पड़ना।

दृष्टिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि डालने की क्रिया या भाव। ताकने या देखने की क्रिया। अवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिपूत—वि० [सं०] १. जो देखने में शुद्ध हो। जो देखने में शुद्ध जान पड़े। २. जिसके देखने से आँखें पवित्र हों। ३. अच्छी तरह देखा भाला हुआ।

दृष्टिफल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक राशि में स्थित ग्रह का दूसरी राशि में स्थित ग्रह पर दृष्टि फेरने से होनेवाला फल।

विशेष—दे० 'दृष्टिस्थान'।

दृष्टिबंध—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्ध] १. वह क्रिया जिससे देखनेवालों की दृष्टि में भ्रम हो जाय। दीठबंदी। इंद्रजाल। माया। जादू। २. चालाकी। हाथ की सफाई। हस्तलाघव। उ०—राघो दृष्टिबंध कलिहु खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिबंधु—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्धु] खद्योत। जुगनू।

दृष्टिभंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टिभङ्गी] देखने का ढंग। उ०—साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वच्छंद दृष्टि विकसित हुई थी।—हिं० का० प्र०, पृ० १४१।

दृष्टिमांद्य—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिमान्द्य] दृष्टि का कमजोर होना। कम दिखाई देना।

दृष्टिमान्—वि० [सं० दृष्टिमत्] [वि० स्त्री० दृष्टिमती] जिसे दृष्टि हो। दीठवाला। आँखवाला।

दृष्टिराग—संज्ञा पुं० [सं०] देखने का ढंग। दृष्टि का प्रभाव। २. दर्शनजन्य अनुराग [को०]।

दृष्टिरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टि की रोक। नजर पहुँचने में रुकावट। २. आड़। ओट। व्यवधान।

दृष्टिवंत—वि० [सं० दृष्टि + वंत (प्रत्य०)] दृष्टिवाला। २. ज्ञानी। ज्ञानवान्। जानकार। उ०—ना वह मिला न बिहुरा ऐस रहा भरपूर। दृष्टिवंत कहँ नियरे अंध मूरुखहि दूर।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सिद्धांत जिसमें दृष्टि या प्रत्यक्ष प्रमाण ही की प्रधानता हो। २. जैनियों के बारह अंगों में से एक जिनकी रचना गणधर लोग तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर करते हैं।

विशेष—ये द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ हैं। ग्यारह अंग तो मिलते हैं पर यह दृष्टिवाद नहीं मिलता। जैनाचार्य सकल-

कीर्ति रचित 'तत्वार्थसारदीपक' में इसका जो उल्लेख मिलता है उससे पाया जाता है कि इसमें चंद्र, सूर्य आदि की गति आयु आदि, प्राणापान चिकित्सा, मंत्र, तंत्र तथा अनेक प्रकार के विषय संमिलित हैं।

दृष्टिविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटाक्ष। तिरछी नजर। २. अवलोकन। देखना (को०)।

दृष्टिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकाश विज्ञान। आलोक विज्ञान।

दृष्टिविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का विलास। दृष्टिविक्षेप।

दृष्टिविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दृष्टिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडली में वह स्थान जिसपर किसी दूसरे स्थान में स्थित ग्रह की दृष्टि पड़ती हो।

विशेष—ग्रहों की दृष्टि का साधारण नियम यह है कि जिस स्थान में ग्रह हो उससे तीसरे और दसवें स्थानों को एक चरण से, नवें और पाँचवें को दो चरणों से, चौथे और आठवें को तीन चरणों से और सातवें को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

दृष्ट्याकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश की ओर दृष्टि लगाए हुए। आकाश की ओर देखता हुआ। उ०—ऊर्ध्व लक्ष करै इहिं भाँती। दृष्ट्याकाश रहै दिन राती।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १०५।

देंबका†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दीमक'।

देंह—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] देह। शरीर। उ०—कैसे आरत करौ तिहारी। महामलिन गति देंह हमारी।—धरनी०, पृ० १६।

देंही—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] दे० 'देह'। उ०—होता बीज औंट के लोहू सो देंही का राजा।—मलूक०, पृ० १२।

दे¹—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द। उ०—यह छबि सूरदास सदा रहै बानी। नँदनंदन राजा राधिका दे रानी।—सूर (शब्द०)।

दे²—संज्ञा पुं० [सं० देव] बंगाली कायस्थों का एक भेद।

देइ†—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] दे० 'देवी—२'। उ०—भनइ विद्यापति एहु रस जान, राजा सिवसिंघ रूपनरायन लखिमा देइ रमान।—विद्यापति, पृ० ५८।

देई—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] १. देवी। उ०—देव देई सुंदर सघन बन देखियत कुंजन में सुनियत गुंजन अलीन की।—देव (शब्द०)। २. स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द।

देउ‡—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—पुनि रे चलब घर आपुन पूजि बिसेसर देउ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४६।

देउर‡¹—संज्ञा पुं० [सं० देवर] दे० 'देवर'।

देउर†²—संज्ञा पुं० [सं० देवर] देवल। मंदिर। देहुरा। उ०—धोमा-उरि थाने मविरा साँध। देउर भाँगि मसीद बाँध।—कीर्ति०, पृ० ४४।

देउरानी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० देवर] दे० 'देवरानी'।

देउल†—संज्ञा पुं० [हिं० देवल] दे० 'देवल'। उ०—देउल के पीछे नामा अल्लख पुकारे। जिदर जिदर नामा उदर देउल ही फीरे।—दक्खिनी०, पृ० १८।

देख—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखने की क्रिया या भाव। अवलोकन। जैसे, देख रेख, देखभाल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकेले कम होता है, समस्त पदों में में होता है।

मुहा०—देख में = आँख के सामने। समक्ष।

देखन(प)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] देखने की क्रिया या भाव। २. देखने का ढंग।

देखनहारा(प)†—संज्ञा पुं० [हिं० देखना + हारा (प्रत्य०) [स्त्री० देखनहारी] देखनेवाला। उ०—सखि सब कौतुक देखनहारे।—तुलसी (शब्द०)।

देखना—क्रि० स० [सं० दृश्, द्रक्ष्यति, प्रा० देक्खइ] १. किसी वस्तु के अस्तित्व या उसके रूप, रंग आदि का ज्ञान नेत्रों द्वारा प्राप्त करना। अवलोकन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—देखना भालना = निरीक्षण करना। जाँच करना।

मुहा०—देखना सुनना = जानकारी प्राप्त करना। जानना बूझना। पता लगाना जैसे,—बिना देखे सुने उसके विषय में कोइ क्या कह सकता है? देखने में = (१) बाह्य लक्षणों के अनुसार। बाहरी चेष्टाओं से। साधारण व्यवहार में। जैसे,—देखने में तो वह बहुत सीधा है पर बड़ी बड़ी चालें चलता है। (२) रूप रंग में। वर्ण, आकृति आदि में। जैसे,—यह पेड़ देखने में बड़ा सुंदर है। किसी के देखते = रहते हुए। समक्ष। सामने। उपस्थिति में। मौजूद रहते। जैसे,—(क) उसके देखते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। (ख) मेरे देखते क्या कोई चीज ले जा सकता है। देखते देखते = (१) आँखों के सामने। (२) तुरंत। फौरन। चटपट। जैसे,—देखते देखते वह घड़ी उड़ा ले गया। देखते रह जाना = हक्का बक्का रह जाना। चकपका जाना। चकित हो जाना। ऐसी स्थिति में हो जाना जिसमें कुछ करते धरते न बने। किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाना। जैसे,—वह एकबारगी आकर उसे मारने लगा, मैं देखता रह गया। देखना चाहिए देखा चाहिए, देखो या दीखए = (क्या होगा) मालूम नहीं। (आगे की बात) कौन जाने? कह नहीं सकते (कि ऐसा होगा कि नहीं) (हम) देख लेंगे = उपाय करेंगे। प्रतिकार करेंगे। जो कुछ करना होगा करेंगे। जैसे,—उन्हें जो जी में आवे करने दो, हम देख लेंगे। देखा जायगा = (१) फिर विचार किया जायगा। (२) पीछे जो कुछ करना होगा किया जायगा। जैसे,—इस समय तो इन्हें टालो, फिर देखा जायगा। देखो = (१) ध्यान दो। विचारो। सोचो। जैसे,—देखो, इसी रुपए के लिये लोग कितना कष्ट उठाते हैं। (२) सावधान रहो। ख्याल रखो। खबरदार। जैसे,—देखो, फिर कभी ऐसा न करना। (३) सुनो। इधर आओ। (पुकारने का शब्द) सुनो।

२. जाँच करना। दशा या स्थिति जानने के लिये निरीक्षण करना। मुआयना करना। जैसे,—कल इंस्पेक्टर साहब स्कूल देखने आवेंगे। ३. ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। पता

लगाना। जैसे,—तुम अपने संदूक में तो देखो, शायद उसी में हो। ४. परीक्षा करना। आजमाना। अनुभव करना। परखना। जैसे,—(क) इस औषध का गुण देख लें तब कुछ कहें। (ख) सबको देख लिया है, उस समय किसी ने मेरा साथ नहीं दिया। ५. किसी वस्तु पर ध्यान रखना जिसमें वह इधर उधर न होने पावे। निगरानी रखना। ताकते रहना। जैसे,—मेरा सामान भी देखते रहना, मैं थोड़ा पानी पी आऊँ। ६. समझना। सोचना। विचारना। जैसे, भलाई बुराई देखकर काम करना चाहिए। ७. अनुभव करना भोगना। जैसे,—(क) उसने अपने जीवन में बहुत दुःख देखा। (ख) इन्होंने अच्छे दिन देखे हैं। उ०—एक यहाँ दुख देखत केशव होत वहाँ सुरलोक बिहारी।—केशव (शब्द०)। ८. पढ़ना। बाँचना। जैसे,—उन्होंने बहुत ग्रंथ देखे हैं। ९. त्रुटि आदि जानने या दूर करने के लिये अवलोकन करना। परीक्षा करना। जाँचना। गुण दोष का पता लगाना। जैसे,—(क) देखो इस अँगूठी का सोना कैसा है। (ख) मेरे इस लेख को देख जाओ। १०. ठीक करना। संशोधित करना। शोधना। जैसे, प्रूफ देखना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

देखनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] दे० 'देखन'।

देखनु देखनो(पु)†—क्रि० स० [हिं० देखना] देखने का ढंग। देखन। उ०—(क) मोर मुकुट छबि देत, मंद हँसनि, दग देखनु।—नंद ग्रं०, पृ० ३९५। (ख) सखि मोर मुकुट छबि देति, बंक दगन हँसि देखनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८५।

देखभाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + भालना] १. जाँच पड़ताल। निरीक्षण। निगरानी। २. दर्शन। देखादेखी। साक्षात्कार।

देखराना(पु)†—क्रि० स० [हिं० दिखलाना] दे० 'दिखलाना'।

देखरावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० दिखलाना] दे० 'दिखलाना'।

देखरेख—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + सं० प्रेक्षण] देख भाल। निरीक्षण। निगरानी। जैसे,—उनकी देखरेख में यह काम हो रहा है।

क्रि० प्र०—रखना।

देखाऊ—वि० [हिं० देखना] १. जो केवल देखने के लिये हो। जो केवल ऊपर से देखने में भड़कीला या सुंदर हो, काम का न हो। झूठी तड़क भड़कवाला। जैसे, देखाऊ चीजें। देखाऊ सामान। २. जो ऊपर से दिखाने के लिये हो, वास्तविक न हो। बनावटी। जैसे, देखाऊ प्रेम।

देखादेखी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना] आँखों से देखने की दशा या भाव। दर्शन। साक्षात्कार। अवलोकन। उ०—कहन सुनन की है नहीं, देखादेखी नाय। सार सबद जो चिन्ही, सोइ मिलेगा आय।—कबीर सा०, पृ० ४७५।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देखादेखी²—क्रि० वि० दूसरों को करते देखकर। दूसरों के अनुकरण पर। जैसे,—(क) देखादेखी पाप, देखादेखी पुण्य। (ख) उसकी देखादेखी तुम भी ऐसा करने लगे।

विशेष—यह वास्तव में संज्ञा शब्द है जिसके आगे 'से' विभक्ति लुप्त है अतः लिंग ज्यों का त्यों रहता है।

देखाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० दिखाना] दे० 'दिखाना'।

देखाभाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० देखना + भालना] दे० 'देखभाल'।

देखाव—संज्ञा पुं० [हिं० देखना] १. दृष्टि की सीमा। नजर की पहुँच।

मुहा०—देखाव में = नजर के सामने। समक्ष।

२. रूप, रंग दिखाने की क्रिया या भाव। बनाव। ३. ठाटबाट। तड़क भड़क।

देखावना—क्रि० स० [हिं० देखाना] दे० 'दिखाना'।

देखौआ—वि० [हिं० देखाऊ] दे० 'देखाऊ'।

देग¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० देग] चौड़े मुँह और चौड़े पेटे का बड़ा बरतन जिसमें खाना पकाया जाता है। तौंबिया।

यौ०—देगअंदाज = बावर्ची। रसोइया।

देग²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाज पक्षी।

देगचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० देगचह्] [स्त्री० अल्पा० देगची] छोटा देग।

देगची—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० देगचा] छोटा देगचा।

देदीप्यमान—वि० [सं०] अत्यंत प्रकाशयुक्त। चमकता हुआ। दमकता हुआ।

देन—संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] १. देने की क्रिया या भाव। दान। २. दी हुई चीज। प्रदत्त वस्तु। जैसे,—यह तो ईश्वर की देन है।

देनदार—संज्ञा पुं० [हिं० देना + फ़ा० दार] ऋणी। कर्जदार।

देनदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देन + फ़ा० दारी] ऋणी होने की अवस्था।

देनलेन—संज्ञा पुं० [हिं० देना + लेना] ब्याज पर रुपया उधार देने का व्यापार। महाजनी का व्यवसाय।

देनहार(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'देनहरा'।

देनहारा(पु)†—वि० [हिं० देना + हारा (प्रत्य०)] देनेवाला।

देना¹—क्रि० स० [सं० दान] १. किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर उसपर दूसरे का स्वत्व स्थापित करना। दूसरे के अधिकार में करना। प्रदान करना। जैसे,—(क) उसने अपना मकान एक ब्राह्मण को दे दिया। (ख) जो दे उसका भला, जो न दे उसका भला।

संयो क्रि०—डालना।—देना।

२. अपने पास से अलग करना। सौंपना। हवाले करना। जैसे,—इसे हमें दे दो हम रखे रहें, जब काम पड़े ले लेना। ३. हाथ पर या पास रखना। थमाना। जैसे,—(क) छड़ी उसे दे दो और छाता तुम ले लो, तब चलो। (ख) जरा यह चिट्ठी उन्हें तो दे दो, वे पढ़कर देख लें। ४. रखना, लगाना या डालना। स्थापित, प्रयुक्त या मिश्रित करना। जैसे,—(क) सिर पर टोपी देना। (ख) छाता देना। (ग) जोड़ में पच्चड़ देना। (घ) तरकारी में चीनी देना। (ङ) यहाँ से लेकर वहाँ तक लकीर देना। उ०—बक बिकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)। ५. मारना। प्रहार करना। जैसे,—थप्पड़ देना, चाँटा देना, पेट में कटारी देना।

मुहा०—दे मारना = पटक देना। (किसी व्यक्ति को)। पकड़ कर जमीन पर गिरा देना।

६. अनुभव कराना। भोगाना। जैसे,—कष्ट देना, दुःख देना, सुख देना, आराम देना। ७. उत्पन्न करना। निकालना। जैसे,—(क) यह गाय कितना दूध देती है? (ख) इस बकरी ने दो बच्चे दिए हैं। ८. बंद करना। भिड़ाना। जैसे,—किवाड़ देना, बोतल में डाट देना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्राय: सब सकर्मक क्रियाओं के साथ संयो० क्रि० के रूप में होता है जैसे, कर देना, मार देना, गिरा देना, दे देना, बना देना, बिगाड़ देना, निकाल देना इत्यादि। बहुत सी क्रियाओं में तो इसे लगाने से यह भाव निकलता है कि वे क्रियाएँ दूसरे के लिये हैं। जैसे,—मेरा या उनका यह काम कर दो। मेरी घड़ी बना दो।

जो क्रियाएँ केवल कर्ता ही के लिये होती हैं दूसरे के लिये नहीं, उनके साथ 'लेना' का प्रयोग होता है। जैसे, खा लेना, पी लेना। एक ही क्रिया केवल कर्ता के लिये भी हो सकती है और दूसरे के लिये भी। जैसे,—अपना काम कर लो, मेरा काम कर दो। अपनी घड़ी बना लो, मेरी घड़ी बना दो। स० क्रि० के अतिरिक्त कुछ अ० क्रि० के साथ भी संयो० क्रि० के रूप में 'देना' का प्रयोग होता है, जैसे,—चल देना, हँस देना, रो देना इत्यादि।

देना[2]—संज्ञा पुं० ऋण जिसे चुकाना हो। कर्ज। उधार लिया हुआ रुपया। जैसे,—तुम अपना सब देना चुकता कर दो।

यौ०—देना पावना।

देनिहारा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० देना + हारा (= वाला)] देनेवाला। दाता।

देमान(पु)‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] मंत्री। अमात्य। उ०—देमान सब दगल गइ घर, कुरु वक वैलल अदप कइ।—कीर्ति०, पृ० ६२।

देय—वि० [सं०] देने योग्य। दान योग्य। दातव्य।

देयधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान धर्म।

विशेष—शिलालेखों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है।

देयासी†—संज्ञा पुं० [सं० देवोपासिन्] देवता का उपासक। ओझा।

देर[1]—संज्ञा पुं० [प्रा० देर (= द्वार)] द्वार। दरवाजा। उ०—काली बीसल दे कियो, बरब सिलातल देर। विमल कियो बघराज यह, अरब समपि अजमेर।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५७।

देर[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अतिकाल। विलंब। नियमित, उचित या आवश्यक से अधिक समय। जैसे,—(क) देर हो रही है, चलो। (ख) इस काम में देर मत करो।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

२. समय। वक्त। जैसे—तुम कितनी देर में आओगे।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग तभी होता है जब उसके पहले कोई परिमाणवाचक विशेषण होता है। जैसे,—कितनी देर, बहुत देर।

देरा(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं० डेरा] दे० 'डेरा'। उ०—घड़ी घड़ी का लेखा लेहु। कर्मादिक देरा भर देहूँ।—रामानंद०, पृ० २१।

देरी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'देर'। उ०—यों ही शंख असंख्य हो गए लगी न देरी।—साकेत, पृ० ५१०।

देवंग†—संज्ञा पुं० [सं० दैवज्ञ] दैवज्ञ। ज्योतिर्विद्। ज्योतिषी। गणक। उ०—एक सुदिन देवंग सों बोलिय राज नरिंद। देउ मुहूरत दुज सु गुर तिहि हम करैं अनंद।—पृ० रा०, २४। ३५४।

देवँका(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दीमक'।

देवँकार†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दीमक'।

देव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] १. स्वर्ग में रहने या क्रीड़ा करनेवाला अमर प्राणी। दिव्य शरीर धारी। देवता। सुर। २. पूज्य व्यक्ति। ३. तेजोमय व्यक्ति। ४. ब्राह्मणों की एक उपाधि। ५. बड़ों के लिये एक आदरसूचक शब्द या संबोधन। ६. राजा के लिये आदरसूचक शब्द या संबोधन। ७. मेघ। बादल। ८. पारा। ९. देवदार। १०. देवर। ११. ज्ञानेंद्रिय। १२. ऋत्विक्। १३. विष्णु (को०)। महादेव। शिव (को०)। १५. सुरराज। इंद्र (को०)। १६. इंद्रिय (को०)। १७. ईश्वर। परमात्मा (को०)। १८. स्नेही। प्रेमी (को०)। १९. (को०)। २० शिशु। वत्स। बच्चा (को०) २१. मूर्ख। बेवकूफ (को०)।

देव[2]—वि० १. देव संबंधी। देवों से संबद्ध। २. स्वर्गिक। स्वर्गीय। स्वर्गसंबंधी। ३. संमान्य। पूज्य। आदरणीय। ४. ज्योतित। दीप्त। चमकदार [को०]।

देव[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दैत्य। राक्षस। दानव। २. दानव सा भीमकाय व्यक्ति (को०)।

देवअंशी—वि० [सं० देव + अंशिन्] जो देवता के अंश से उत्पन्न हो। जो किसी देवता का अवतार हो।

देवऋण—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्तव्य। यज्ञादि।

देवऋषि—संज्ञा दे० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. एक यदुवंशी राजा जो देवकी के पिता अर्थात् श्री कृष्णचंद्र के नाना थे। इन्हें चार पुत्र और तीन कन्याएँ थीं। सभी कन्याओं का विवाह इन्होंने वसुदेव के साथ कर दिया था। उग्रसेन इनके बड़े भाई थे। ३. युधिष्ठिर के एक पुत्र का नाम।

देवक[2]—वि० १. देवतुल्य। देवसंबंधी। देवसदृश। २. क्रीड़ाशील। खेलाड़ी [को०]।

देवकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवकन्या'।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री। देवी।

देवकपास—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरमा । मनवा । राम कपास ।

देवकर्दम—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंध द्रव्य, जो चंदन, अगर, कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है ।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं० देवकर्मन्] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म । जैसे, यज्ञ, बलिवैश्वदेव इत्यादि ।

देवकाँडर—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + काण्ड] एक बहुत छोटा पौधा जिसकी पत्तियों और डंठलों में राई की सी झाल होती है ।

विशेष—यह ऊँचे करारेवाली बड़ी नदियों के किनारे होती है । गंगा के तट पर बहुत मिलती है । इसकी पत्तियाँ कटावदार और फाँकों में विभक्त होती है । यह पौधा उभरी हुई गिलटी बैठाने की अच्छी दवा है । अचार भी इसका पड़ता है । इसे लटपुरिया भी कहते हैं ।

देवकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया हुआ कर्म । होम, पूजा आदि ।

देवकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार ।

देवकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मेघराग की भार्या मानी जाती है ।

ललिता मालती गोरी नाट देवकिरी तथा ।
मेघरागस्य रागिण्यो भवंतीमा सुमध्यमाः ।
—संगीत दामोदर ।

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता ।

विशेष—जब वसुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने आकर मथुरा के राजा कंस से कहा कि मथुरा में तुम्हारी जो चचेरी बहन देवकी है, उसके आठवें गर्भ से एक ऐसा बालक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा । कंस ने एक एक करके देवकी के छह बच्चों को मरवा डाला । जब सातवाँ शिशु गर्भ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति से उस शिशु को देवकी के गर्भ से आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में कर दिया । आठवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा पहरा बैठाया गया । आठवें महीने में भादो बदी अष्टमी की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ । उसी रात को यशोदा को एक कन्या हुई । वसुदेव रातोंरात देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यशोदा को दे आए और यशोदा की कन्या को लाकर उन्होंने देवकी के पास सुला दिया । कंस ने उस कन्या का वध करने के लिये उसे पटक दिया । कहते हैं, कन्या, जो योगमाया थी, उसके हाथ से छूटकर आकाशमार्ग से उड़कर विंध्य पर्वत पर आई । इधर कृष्ण यशोदा के यहाँ बड़े हुए । दे० 'कृष्ण' ।

देवकीनंदन—संज्ञा पुं० [सं० देवकीनन्दन] श्रीकृष्ण ।

देवकीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में भी घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख है ।

देवकीमातृ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी हैं) ।

देवकीसुनु—संज्ञा पुं० [सं०] देवकी के पुत्र, श्रीकृष्ण [को०] ।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी । देवता का ।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं० देवकुण्ड] १. प्राकृतिक जलाशय । आपसे आप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल । २. वह जलाशय जो किसी देवता के निकट या नाम पर होने के कारण पवित्र माना जाता है ।

देवकुट—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय । देवमंदिर [को०] ।

देवकुरुंबा—संज्ञा पुं० [सं० देवकुरुम्बा] बड़ा गूमा । गोमा ।

देवकुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के छह खंडों में से एक खंड जो सुमेरु और निषध के बीच माना गया है । (जैन हरिवंश) ।

देवकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का देवमंदिर, जिसका द्वार अत्यंत छोटा हो । २. देवताओं का समूह । देवताओं का वर्ग (को०) ।

देवकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. मरीचि और पूर्णिमा की कन्या ।

देवकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग । लौंग । उ०—देवकुसुम श्री संग पुनि जायक जाको नाउ ।—अनेकार्थ० पृ० ८६ ।

देवकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के आठ पुत्रों में से एक, जो शिवपूजन के लिये सूँघकर कमल ले गया या जिसके कारण वह कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्ण चंद्र द्वारा मारा गया । २. एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था । (महाभारत) ।

देवकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें लपसी, शाक, दूध, दही, घी, इनमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन दिन तक खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक वायु पर ही रहते थे ।

देवकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपुन्नाग । एक प्रकार का पुन्नाग ।

देवखर†—संज्ञा पुं०[सं० देवगृह]देवघर । देवस्थान उ०—भूत परेतन देव बहाई । देवखर लीपै मोर बलाई ।—मलूक०, पृ० ६ ।

देवखरा†—संज्ञा पुं० [हिं० देवखरा] [स्त्री० अल्पा० देवखरी] दे० 'देवहरा' । उ०—(क) हिंदू पूजैं देवखरा, मुसलमान महजीद । पलटू पूजैं बोलता जो खाय दीद बर दीद ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११० । (ख)माटी देवखरी बाँधि मुए की पूजा लावै । —पलटू०, पृ० ७३ ।

देवखात—संज्ञा पुं० [सं०] १. अकृत्रिम जलाशय । ऐसा ताल या गड्ढा जो आपसे आप बन गया हो । २. देवमंदिर के पास निर्मित जलाशय । देवमंदिर का तालाब ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर, गर्भ और प्रस्रवण में नित्य स्नान करना चाहिए ।

३. गुफा । खोह । कंदरा ।

देवखातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवरात' [को०] ।

देवगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगङ्गा] एक छोटी नदी का नाम जो आसाम में है । इसे वहाँ 'दिवंग' कहते हैं ।

देवगंधर्व—संज्ञा पुं० [सं० देवगन्धर्व] १. नारद । २. गायन की पद्धति-विशेष [को०] ।

देवगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगन्धा] महामेदा ।

देवगंधार—संज्ञा पुं० [सं० देवगान्धार] दे० 'देवगांधार' ।

देवगऊ(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + गौ] कामधेनु । उ०—कामना

बानि खुमान लखे न कछू सुरकुल न देवगऊ है।—भूषण ग्रं०, पृ० ३४।

देवगढ़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

देवगण—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का वर्ग। देवताओं का अलग अलग समूह।

विशेष—वैदिक देवताओं के ये गण हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य। इनमें इंद्र और प्रजापति मिला देने से ३३ देवता होते हैं (शतपथ ब्राह्मण)। पीछे से इन गणों के अतिरिक्त ये गण और माने गए—३० तुषित, १० विश्वेदेवा, १२ साध्य, ६४ आभास्वर, ४९ मरुत्, २२० महाराजिक। इस प्रकार वैदिक देवताओं के गण और परवर्ती देवगणों की कुल संख्या ४१८ होती है। बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं।

२. फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण है। ३. किसी देवता का अनुचर।

देवगणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा। स्वर्वेश्या [को०]।

देवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मरने के उपरांत उत्तम गति। स्वर्गलाभ। उ०—श्री रघुनाथ धनुष कर लीनो लागत बाण देवगति पाई।—सूर (शब्द०)। २. मरने पर देवयोनि की प्राप्ति।

देवगनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० देवगण] दे० 'देवगण'।

देवगर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन। बादल का गरजना [को०]।

देवगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के वीर्य से उत्पन्न हो। जैसे, कर्ण, जो सूर्य से उत्पन्न हुए थे।

देवगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देवगान्धार] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें ऋषभ और धैवत कोमल लगते हैं। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे।

देवगांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगान्धारी] एक रागिनी जो श्रीराग की भार्या मानी जाती है। यह शिशिर ऋतु में तीसरे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है।

देवगायक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगायन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी। संस्कृत।

देवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] रैवतक पर्वत जो गुजरात में है। गिरनार। २. दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आजकल दौलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है।

विशेष—यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा। प्रसिद्ध कलचुरि वंश का जब अधःपतन हुआ तब इसके आसपास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया। कई शिलालेखों में इन यादव राजाओं की जो वंशावली मिली है वह इस प्रकार है—

सिंघन (१ ला)
|
मल्लुगि
|
भिल्लम (शक सं० ११०६–१११३)
|
जैतुगि (१ ला) वा जैत्रपाल, जैत्रसिंह (शक १११३–११३१)
|
सिंघन (२रा) वा त्रिभुवनमल्ल (शक ११३१–११६९)
|
जैतुगि (२ रा) या जैत्रपाल
|
कृष्ण या कन्हार (शक ११६९–११८२) | महादेव (शक ११८३–११९३)
|
रामचंद्र या रामदेव (शक ११९३–१२३१)

द्वितीय सिंघन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ। महादेव की सभा में बोपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे। कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। शक सं० १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर अकस्मात् चढ़ाई कर दी। राजा जहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक लड़े पर अंत में दुर्ग के भीतर सामग्री घट जाने से उन्होंने आत्मसमर्पण किया। शक सं० १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार कर दिया उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था। उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा। राजा हार गए। अलाउद्दीन ने सम्मानपूर्वक उन्हें फिर देवगिरि भेज दिया। इधर मलिक काफूर दक्षिण के और राज्यों में लूटपाट करने लगा। कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगाकर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा। छह वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया। अंत में शक सं० १२४० में दिल्ली के बादशाह ने उसपर चढ़ाई की और कपटयुक्ति से उसको परास्त करके मार डाला। इस प्रकार यादव राज्य की समाप्ति हुई। मुहम्मद तोगलक पर जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले जाने की सनक चढ़ी थी तब उसने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा था।

देवगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो सोमेश्वर के मत से वसंत राग की, भरत के मत से हिंदोल राग के पुत्र नागध्वनि की, संगीतदर्पण के मत से नटकल्याण की और हनुमंत के मालकोश राग की भार्या मानी जाती है।

विशेष—यह हेमंत ऋतु में दिन के चौथे पहर से लेकर आधी रात तक गाई जाती है। किसी के मत से यह रागिनी संकर है और शुद्ध पूर्वी और सारंग के मेल से और किसी के मत से सरस्वती, मालश्री और गांधारी के मेल से बनी है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

देवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के गुरु । बृहस्पति । २. देवताओं के गुरु अर्थात् पिता । कश्यप ।

देवगुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती ।

देवगुह्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु । २. वह रहस्य जो केवल देवताओं को ही ज्ञात हो [को०] ।

देवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर । देवालय । २. राजभवन । राजमहल (को०) ।

देवग्गि(५)—संज्ञा पुं० [सं० दैवज्ञ, प्रा० देवग्ग] दे० 'दैवज्ञ' । उ०—सुभ संजोग अंतर घरी कहत बचन देवग्गि । सोइ सु दिन आनंद करि चलो सुराज गुनग्गि ।—पृ० रा०, २४ । ३५६ ।

देवघन—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो बगीचों में लगाया जाता है ।

देवचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] गवामयन यज्ञ के अभिप्लव का नाम ।

देवचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवपूजा । देवार्चन [को०] ।

देवचाली—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताल के छह भेदों में से एक ।—(संगीत दामोदर) ।

देवचिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्विनीकुमार । २. दो की संख्या ।

देवचेली—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + हिं० चेली] देवदासी । उ०—देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किसी निर्धन की लड़की खरीदकर मंदिर में अर्पण कर देते हैं और वह देवचेली (देवदासी) कहलाने लगती है ।—नेपाल०, पृ० ७ ।

देवछंद—संज्ञा पुं० [सं० देवच्छन्द] एक प्रकार का हार, जो किसी के मत से १०० या १०८ लड़ियों का और किसी के मत से ८१ लड़ियों का होता है ।

देवज[1]—वि० [सं०] देवता से उत्पन्न । देवसंभूत ।

देवज[2]—संज्ञा पुं० १. सामभेद । २. सूर्यवंशीय संयम राजा के एक पुत्र का नाम ।

देवजग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण । रोहिस घास ।

देवजाधक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवजग्ध' ।

देवजन—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेव । गंधर्व ।

देवजनविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधर्वविद्या । संगीत विद्या ।

देवजानी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवयानी] दे० 'देवयानी' ।—वर्ण०, पृ० ५ ।

देवजुष्ट—वि० [सं०] देवता को चढ़ा हुआ ।

देवट—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पी । कारीगर ।

देवठान—संज्ञा पुं० [सं० देवोत्थान] १. विष्णु भगवान् का सोकर उठना । २. कार्तिक शुक्ला एकादशी । इस दिन विष्णु भगवान् सोकर उठते हैं इससे इसका माहात्म्य बहुत माना जाता है ।

देवड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति । उ० केई खीची केई देवड़ा केई गहिलोत सरिस परमार ।—बी० रासो, पृ० १७ ।

देवडोंगरी—संज्ञा पुं० [सं० देव + देश० डोंगरी] देवदाली लता । बंदाल ।

देवढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ड्योढ़ी] दे० 'ड्योढ़ी' ।

देवतरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के वृक्ष ।

विशेष—स्वर्ग के वृक्ष पाँच माने जाते हैं,—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन ।

२. चैत्य पर का वृक्ष । चैत्यवृक्ष (को०) ।

देवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवताओं का नाम ले लेकर पानी देने की क्रिया ।

देवता—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाला अमर प्राणी ।

विशेष—वेदों में देवता शब्द से कई प्रकार के भाव लिए गए हैं । साधारणतः वेदमंत्रों के जितने विषय हैं वे देवता कहलाते हैं । सिल, लोढ़े, मूसल, ओखली, नदी, पहाड़ इत्यादि से लेकर घोड़े, मेढक, मनुष्य (नाराशंस), इंद्र, वरुण, आदित्य इत्यादि तक वेदमंत्रों के देवता हैं । कात्यायन ने अनुक्रमणिका में मंत्र के वाच्य विषय को ही उसका देवता कहा है । निरुक्तकार यास्क ने 'देवता' शब्द को दान, दीपन और द्युस्थानगत होने से निकाला है । देवताओं के संबंध में प्राचीनों के चार मत पाए जाते हैं,—ऐतिहासिक, याज्ञिक, नैरुक्तिक और आध्यात्मिक । ऐतिहासिकों के मत से प्रत्येक मंत्र भिन्न भिन्न घटनाओं या पदार्थों को लेकर बना है । याज्ञिक लोग मंत्र ही को देवता मानते हैं जैसा जैमिनि ने मीमांसा में स्पष्ट किया है । मीमांसा दर्शन के अनुसार देवताओं का कोई रूपविग्रह आदि नहीं, वे मंत्रात्मक हैं । याज्ञिकों ने देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—सोमप और असोमप । अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार ये ३३ सोमप देवता कहलाते हैं । एकादश प्रयाजा, एकादश अनुयाजा और एकादश उपयाजा ये असोमप देवता कहलाते हैं । सोमपायी देवता सोम से संतुष्ट हो जाते हैं और असोमपायी यज्ञपशु से तुष्ट होते हैं । नैरुक्त लोग स्थान के अनुसार देवता लेते हैं और तीन ही देवता मानते हैं; अर्थात् पृथिवी का अग्नि, अंतरिक्ष का इंद्र या वायु और द्युस्थान का सूर्य । बाकी देवता या तो इन्हीं तीनों के अंतर्भूत हैं अथवा होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता आदि के कर्मभेद के लिये इन्हीं तीनों के अलग अलग नाम हैं । ऋग्वेद में कुछ ऐसे मंत्र भी है जिनमें भिन्न भिन्न देवताओं को एक ही के अनेक नाम कहा है, जैसे, बुद्धिमान लोग इंद्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं ''। इनके एक होने पर भी इन्हें बहुत बतलाते हैं । (ऋग्वेद १ । १६४ । ४६) । ये ही मंत्र आध्यात्मिक पक्ष या वेदांत के मूल बीज हैं । उपनिषदों में इन्हीं के अनुसार एक ब्रह्म की भावना की गई है ।

प्रकृति के बीच जो वस्तुएँ प्रकाशमान, ध्यान देने योग्य और उपकारी देख पड़ीं उनकी स्तुति या वर्णन ऋषियों ने मंत्रों द्वारा किया । जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ आदि होते थे उनकी कुछ विशेष स्थिति हुई । उनसे लोग धनधान्य युद्ध में जय, शत्रुओं का नाश आदि चाहते थे । क्रमशः देवता शब्द से ऐसी ही अगोचर सत्ताओं का भाव समझा जाने लगा और धीरे धीरे पौराणिक काल में रुचि के अनुसार और भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई । ऋग्वेद में जिन देवताओं के नाम आए हैं उनमें से कुछ ये हैं,—अग्नि, वायु, इंद्र, मित्र,

वरुण, अश्विद्वय, विश्वेदेवा, मरुद्गण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, त्वष्टा, सूर्य, विष्णु, पृश्नि, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, उशना, त्रित, वैनत, अहिर्बुध्न, अज, एकपात, ऋभुक्षा, गुरुत्मान इत्यादि। कुछ देवियों के नाम भी आए हैं, जैसे,—सरस्वती, सुनृता, इला, इंद्राणी, होत्रा, पृथिवी, उषा, आग्नेयी, रोदसी, राका, सिनीवाली, इत्यादि।

ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य तथा इंद्र और प्रजापति। ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३९ कही गई है। (३।९।९)। शतपथ ब्राह्मण और सांख्यायन श्रौतसूत्र में भी यह संख्या दी हुई है। इसपर सायण कहते हैं कि देवता ३३ ही हैं, ३३३९ नाम महिमा प्रकाशक हैं। देवता मनुष्यों से भिन्न अमर प्राणी माने जाते थे। इसका उल्लेख ऋग्वेद में स्पष्ट है—'हे असुर वरुण! देवता हों या मर्त्य (मनुष्य) हों, तुम सबके राजा हो। (ऋक् २।२७।१०)।

पीछे पौराणिक काल में, जिसका थोड़ा बहुत सूत्रपात शुक और सूत के समय में हो चुका था, वेद के ३३ देवताओं से ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। इंद्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, इत्यादि वैदिक देवताओं के रूप रंग, कुटुंब आदि की भी कल्पना की गई। द्युस्थान के वैदिक देवता विष्णु (जो १२ आदित्यों में थे) आगे चलकर चतुर्भुज, शंखचक्र-गदापद्मधारी, लक्ष्मी के पति हो गए। वैदिक रुद्र जटी, त्रिशूल-धारी, पार्वती के पति, गणेश और स्कंद के पिता हो गए और वैदिक प्रजापति वेद के वक्ता, चार मुँहवाले ब्रह्मा हो गए। देवताओं की भावना और उपासना में यह भेद महाभारत के समय से ही कुछ कुछ पड़ने लगा। कृष्ण के समय तक वैदिक इंद्र की पूजा होती थी जो पीछे बंद हो गई, यद्यपि इंद्र देवताओं के राजा और स्वर्ग के स्वामी बने रहे। आजकल हिंदुओं में उपासना के लिये पाँच देवता मुख्य माने गए हैं—विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और दुर्गा। ये पंचदेव कहे जाते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पुराणों के अनुसार इंद्र, चंद्र आदि देवता कश्यप से उत्पन्न हुए। पुराणों में लिखा है कि कश्यप की दिति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति नाम की स्त्री से देवता उत्पन्न हुए।

बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं को साधारण आदमी मानते हैं और इसी पौराणिक रूप में; भेद केवल इतना ही है कि वे देवताओं को बुद्ध, बोधिसत्व या तीर्थंकरों से निम्न श्रेणी का मानते हैं। बौद्ध लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं, जैसे,—चातुरमहाराजिक, तुषितक आदि। जैन लोग चार प्रकार के देवता मानते हैं वैमानिक या कल्पभव, कल्पातीत, ग्रैवेयक और अनुत्तर। वैमानिक १२ हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेंद्र, ब्रह्म, अंतक, शुक्र सहस्रार, नत, प्राणत, आरण और अच्युत।

देवताड़—संज्ञा पुं० [सं० देवताड] १. एक प्रकार का तृण या पौधा जिसमें इधर उधर टहनियाँ नहीं निकलतीं, तलवार की तरह दो ढाई हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ी से चारों ओर निकलते हैं।

विशेष—यह पौधा अपने लंबे और कड़े पत्ते के कारण देखने में घीकुँवार के पौधे सा मालूम होता है। इस पौधे के पत्ते कड़े और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके बीच का कांड डंडे की तरह छह सात हाथ ऊपर निकल जाता है जिसके सिरे पर फूलों के गुच्छे लगते हैं। पत्तों के रेशों से बहुत मजबूत रस्से बनते हैं। इसे रामबाँस भी कहते हैं।

२. दे० 'देवताड़ी'। ३. राहु (को०)। ४. अग्नि (को०)।

देवताड़क—संज्ञा पुं० [सं० देवताडक] दे० 'देवताड़' (को०)।

देवताड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवताडी] १. देवदाली लता। बँदाल। २. तुरई। तरोई।

देवतात—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप जिनसे देवता उत्पन्न हुए। २. देवकार्य। यज्ञ (को०)।

देवताति—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। ईश्वर। २. एक यज्ञ (को०)।

देवतात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ वृक्ष जिसमें देवता रहते हैं। २. हिमवान् पर्वत जो देवनिवास के कारण देवस्वरूप है (को०)।

देवताधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

देवताध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

देवतापित्तर—संज्ञा पुं० [सं० देव + पितृ] देवता और पितर। उ०—मैं तो बतेरा देवता पित्तर मनाता रहा।—किन्नर०, पृ० ८३।

देवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवपूजा के लिये उपयुक्त समय। २. अँगूठे को छोड़ उंगलियों का अग्रभाग जिससे होकर संकल्प या तर्पण का जल गिरता है।

देवतुमुल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल की ध्वनि. मेघ की गरज। (को०)।

देवतुष्टिपति—संज्ञा पुं० [सं०] देवपूजक। पुजारी।

देवत्त[१]—वि० [सं०] देवता का दिया हुआ। देवदत्त।

देवत्त[२]—संज्ञा पुं० [सं० देवता] दे० 'देवता'। उ०—देवत्त देव देवाधिवर। नीत न मानत अजि सुवर। कह्यिंत गोप गोपी सु वर। विधि विधान निरमान नर।—पृ० रा०, २।३४०।

देवत्य(पु)—वि० [सं० दैव, या देवत्व] विवाह का एक भेद जिसे दैव कहते हैं। उ०—देवत्य ब्याह बहुमांन कीन।—पृ० रा०, २१।१३६।

देवत्रयी—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन देवताओं का समूह।

देवत्रिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० देवस्त्री] देवांगना। स्वर्वेश्या। अप्सरा। उ०—गंगा संगम देवत्रिय, जान बिमान अनंतु।—केशव ग्रं०, १।१३५।

देवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] देवता होने का भाव या धर्म।

देवदंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवदण्डा] नागबला। गंगेरन।

देवदत्त¹—वि० [सं०] १. देवता का दिया हुआ। देवता से प्राप्त। २. जो देवता के निमित्त दिया गया हो।

देवदत्त²—संज्ञा पुं० १. देवता के निमित्त दान की हुई संपत्ति। २. शरीर की पाँच वायुओं में से एक जिससे जँभाई आती है। ३. अर्जुन के शंख का नाम। ४. अष्टकुल नागों में से एक। ५. शाक्यवंशीय एक राजकुमार जो गौतम बुद्ध का चचेरा भाई था और उनसे बहुत बुरा मानता था।

विशेष—बुद्ध और देवदत्त दोनों ही साथ पले थे, इससे सब बातों में बुद्ध को विशेष कुशल और तेजस्वी देखकर वह मन ही मन बहुत चिढ़ता था। यशोधरा से पहले यही विवाह करना चाहता था। जब यशोधरा ने बुद्ध को स्वीकार कर लिया तब यह और भी जला और बदला लेने की ताक में रहने लगा। गौतम के बुद्धत्व प्राप्त करने पर भी इसने द्वेष न छोड़ा। अवदानशतक में लिखा है कि बुद्ध जिस समय जेतवन आराम में ठहरे थे, देवदत्त ने उन्हें मारने के लिये बहुत से घातक भेजे थे। पीछे से यह बुद्ध के संघ में मिल गया था और अनेक प्रकार के उपाय बुद्ध और संघ को हानि पहुँचाने के लिये किया करता था। कौशांबी में आनंद और सारिपुत्र मौद्गल्यायन की प्रधानता से कुढ़कर यह संघ छोड़कर राजगृह चला गया और वहाँ अजातशत्रु को मिलाकर उसने बुद्ध को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाए, उनपर मत्त हाथी छुड़वाया, पत्थर लुढ़कवाया। अंत में जब वह कुष्ठ रोग आदि से पीड़ित और जीवन से निराश हुआ तब बुद्ध से क्षमा माँगने के लिये चला। बुद्ध ने उसे आता सुनकर कहा वह मेरे पास नहीं आ सकता। संयोगवश वह आने के पहले तालाब में नहाने घुसा और वहीं कीचड़ में फँसकर मर गया।

देवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता का दर्शन। २. नारद ऋषि का एक नाम (भागवत)।

देवदानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी तोरई।

देवदार—संज्ञा पुं० [सं० देवदारु] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर ६००० फुट से ८००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है।

विशेष—देवदार के पेड़ अस्सी गज तक सीधे ऊँचे चले जाते हैं और पश्चिमी हिमालय पर कुमाऊँ से लेकर काश्मीर तक पाए जाते हैं। देवदार की अनेक जातियाँ संसार के अनेक स्थानों में पाई जाती हैं। हिमालयवाले देवदार के अतिरिक्त एशियाई कोचक (तुर्की का एक भाग) तथा लुबना और साइप्रस टापू के देवदार प्रसिद्ध हैं। हिमालय पर के देवदार की डालियाँ आँधी और कुछ नीचे की ओर झुकी होती हैं, पत्तियाँ महीन महीन होती हैं। डालियों के सहित सारे पेड़ का घेरा ऊपर की ओर बराबर कम अर्थात् गावदुम होता जाता है जिससे देखने में यह शंकु के आकार का जान पड़ता है। देवदार के पेड़ डेढ़ डेढ़ दो दो सौ वर्ष तक पुराने पाए जाते हैं। ये जितने ही पुराने होते हैं उतने ही विशाल होते हैं। बहुत पुराने पेड़ों के धड़ या तने का घेरा १५-१५ हाथ तक का पाया गया है। इसके तने पर प्रति वर्ष एक मंडल या छल्ला पड़ता है, इसलिये इन छल्लों को गिनकर पेड़ की अवस्था बतलाई जा सकती है। इसकी लकड़ी कड़ी, सुंदर, हलकी, सुगंधित और सफेदी लिए बादामी रंग की होती है और मजबूती के लिये प्रसिद्ध है। इसमें घुन कीड़े कुछ नहीं लगते। यह इमारतों में लगती है और अनेक प्रकार के सामान बनाने के काम आती है। काश्मीर में बहुत से ऐसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ बरस की देवदार की धरनें आदि लगी हैं और अभी ज्यों की त्यों हैं। काश्मीर में देवदार की लकड़ी पर नक्काशी बहुत अच्छी होती है। काँगड़े में इसे घिसकर चंदन के स्थान पर लगाते हैं। इससे एक प्रकार का अलकतरा और तारपीन की तरह का तेल भी निकलता है, जो चौपायों के घाव पर लगाया जाता है। देवदार को दियार, केलू और कहीं कहीं केलोन भी कहते हैं।

पर्या०—शक्रपादप। पारिभद्रक। भद्रदारु। द्रुकिलिम। पीतुदारु। दारु। पूतिकाष्ठ। सुरदारु। स्निग्धदारु। दारुक। अमरदारु। शांभव। भूतहारि। भवदारु। भद्रवत्। इंद्रदारु। देवकाष्ठ।

देवदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की स्त्री। अप्सरा। उ०—जिसे देखने के लिये ये देवदारा और गंधर्व कन्याएँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११६।

देवदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार।

देवदार्वादि—संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक क्वाथ जिसे प्रसूता स्त्री को पिलाने से ज्वर, दाह, सिर की पीड़ा, अतीसार, मूर्छा आदि उपद्रव शांत हो जाते हैं।

विशेष—इस काढ़े में ये वस्तुएँ बराबर बराबर पड़ती हैं—देवदार, बच, कुट, पिप्पली, सोंठ, चिरायता, कायफल, मोथा, कुटकी, धनिया, हड़, गजपिप्पली, जवासा, गोखरू, भटकटैया (कंटकारि), गुलंचकंद, काकड़ासींगी और स्याहजीरा। काढ़ा तैयार हो जाने पर उसमें हींग और नमक डाल देना चाहिए।

देवदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल वृक्ष।

देवदाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता जो देखने में तुरई की बेल से मिलती जुलती होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ भी तुरई की पत्तियों के समान पर उनसे छोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होतीं। फल ककोड़े (खेखसे) की तरह काँटेदार होते हैं। वैद्यक में यह कड़ुई, तीक्ष्ण, वमनकारक, विरेचक, विषनाशक, क्षयरोगनाशक, तथा ज्वर, खाँसी, अरुचि, हिचकी, कृमि, चूहे के विष इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—जीमूतक। कंटफला। गरागरी। वेणी। सहा। कोशफला। कटुफला। घोरा। कर्बुदा। विषहा। कर्कटी। सारमूषिका। आखुविषहा। वृत्तकोषा। धोषा। विषघ्नी। दाली। लोमशपत्रिका। तुरंगिका।

देवदास—संज्ञा पुं० [सं०] देवता का दास। देवोपासक। २. देवमंदिर का दास या सेवक [को०]।

देवदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। २. मंदिरों की दासी या नर्तकी।

विशेष—ये जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के प्रायः सब मंदिरों में नाचती गाती हैं और वेश्यावृत्ति करती हैं। इनके माता, पिता बचपन ही में उन्हें मंदिर को दान कर देते हैं, जहाँ उस्ताद लोग इन्हें नाचना गाना सिखाते हैं। मदरास के चिंगलपट जिले के कोरियों (कपड़ा बुननेवालों) में यह रीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी लड़की को किसी मंदिर को दान कर देते हैं। इस प्रकार की दान की हुई कुमारियों को महाराष्ट्र देश में 'मुरली' और तैलंग देश में 'वसवा' कहते हैं। इन्हें मंदिरों से गुजारा मिलता है। मरने पर इनका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है। मंदिरों में देवदासियाँ रखने की प्रथा प्राचीन है। कालिदास के मेघदूत में महाकाल के मंदिर में वेश्याओं के नृत्य करने की बात लिखी है। मिस्र, यूनान, बाबिलन आदि के प्राचीन देवमंदिरों में भी देवनर्तकियाँ होती थीं।

३. जंगली बिजौरा नीबू। बिजौरा नीबू।

देवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दीपक जो किसी देवता के निमित्त जलाया गया हो। २. आँख। नेत्र।

देवदुंदुभि—संज्ञा पुं० [सं० देवदुन्दुभी] १. लाल तुलसी। २. देवताओं का नगाड़ा। ३. इंद्र का एक नाम (को०)।

देवदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. देवताओं का दूत (को०)।

देवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की अप्सरा। २. बिजौरा नीबू।

देवदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. ब्रह्मा। ३. विष्णु। ४. गणेश। ५. इंद्र। उ०—तहँ राजा दशरथ लसैं देवदेव अनुरूप।—केशव (शब्द०)।

देवधुर—संज्ञा पुं० [सं०] भरतवंशीय एक राजा जो देवाजित् के पुत्र थे (भागवत)।

देवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष, पारिजात आदि स्वर्ग के वृक्ष। देवतरु। उ०—सूकी तरु सेवत कहा बिहँग देवद्रुम सेव।—दीन० ग्रं०, पृ० २२२। २. देवदार।

देवद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरघा जिसमें स्वयंभू लिंग स्थापित किया जाता है। २. देवयात्रा। किसी देवता की मूर्ति को बाजे गाजे के साथ ग्राम में घुमाना।

देवधन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन। उ०—यों ही बहुतेरे चिल्ला रहे हैं कि देवधन के विषय में...।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

देवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरपुरी। इंद्रपुरी (को०)।

देवधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वार।

देवधाम—संज्ञा पुं० [सं० देवधामन्] तीर्थस्थान। देवस्थान।

मुहा०—देवधाम करना = तीर्थयात्रा करना।

देवधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी। उ०—तुम्हहि अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरुधरनि देवधुनि धारा।—तुलसी (शब्द०)।

देवधूप—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल। गूगुल।

देवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

देवनंदी—संज्ञा पुं० [सं० देवनन्दिन्] इंद्र का द्वारपाल।

देवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार। २. किसी से बढ़ चढ़कर होने की वासना। जिगीषा। ३. क्रीड़ा। खेल। ४. लीलोद्यान। बगीचा। ५. पद्म। कमल। ६. परिवेदना। खेद। रंज। शोक। ७. द्युति। कांति। ८. स्तुति। ९. गति। १०. द्यूत। जुआ। ११. पासे का खेल। चौसर।

देवनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वे नक्षत्र जो यम नक्षत्र से भिन्न हों। दक्षिणायन के प्रारंभिक १४ नक्षत्र (को०)।

देवनटी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + नटी (= नाचनेवाली)] अप्सरा। उ०—निर्तति देवनटी छबि जटी। लटके जनु कि छूटन की छटी।—नंद० ग्रं०, पृ० २२७।

देवनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा। उ०—देवनदी अहियान पदी महिमान बढ़ी स्तुति सास्त्र बिसेखी।—घनानंद०, पृ० १४८। २. सरस्वती और दृषद्वती नदी।

देवनल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकट या नरसल।

देवना—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा। खेल। २. सेवा। ३. द्यूतक्रीड़ा (को०)। ४. शोक (को०)।

देवनागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी आदि देशभाषाएँ लिखी जाती हैं।

विशेष—'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खंड का प्रमाण देते हैं। नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी हैं, गुर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् ४५६ (ई० स० ७०६) का ताम्रपत्र है। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्तो मम श्री जयभटस्य) उत्तरीय भारत की लिपि में है जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात

में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुंड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी जो सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह ब्राह्मी ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तर' में जो उन ६४ लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो बुद्ध को सिखाई गईं, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम है। 'ललितविस्तर' का चीनी भाषा में अनुवाद ई० स० ३०८ में हुआ था। जैनों के 'पन्नवणा' सूत्र और 'समवायांग सूत्र' में १८ लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगवतीसूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिविए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार ४५३ ई० के पहले का बना है। 'नित्याषोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि' में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य तत्। नागरलिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेरफार होते होते आजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है जो सिंध नदी के पार के प्रदेशों (गांधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व के अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नैपाल की तराई में 'पिप्रवा' नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर बड़ली नामक ग्राम में मिला है जो [महा] वीर संवत् ८४ (= ई० स० पूर्व ४४३) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराय' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिलकुल निराली और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यों या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के 'प्रज्ञापनासूत्र' में लिखा है कि 'अर्धमागधी भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अर्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अतः ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमशः उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में मिलने लगती है। किस प्रकार अशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नकशे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। वह नकशा यहाँ अलग छापकर लगा दिया गया है जिससे नागरी लिपि का क्रमशः विकास स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप अशोक लिपि का है उसके उपरांत, दूसरे, तीसरे, चौथे रूप क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न भिन्न प्राचीन लेखों से चुने गए हैं।

मि० शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा।

देवनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

देवनामा—संज्ञा पुं० [सं० देवनामन्] १. कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम। २. कुशद्वीप के राजा हिरण्यरेता के एक पुत्र।

देवनायक—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

देवनाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरसल। बड़ा नरकट।

देवनिंदक—संज्ञा पुं० [सं० देवनिन्दक] देवताओं की निंदा करनेवाला। नास्तिक [को०]।

देवनिंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवनिन्दा] देवताओं की निंदा। नास्तिकता [को०]।

देवनिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का समूह। २ देवताओं का स्थान। स्वर्ग।

देवनिर्मित—वि० [सं०] १. प्राकृतिक। नैसर्गिक। २ देवताओं द्वारा निर्मित [को०]।

देवनिर्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़ूची। गुरच।

देवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव+नी (हिं०)] देव की स्त्री। उ०—तो मैं क्या करूँ। आप भी तो देवनी से आजमाने चले। आज आपको मालूम हो जायगा कि मैं इससे क्यों इतना दबता हूँ।—काया०, पृ० २५४।

देवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति। इंद्र।

देवपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] सोमनाथ नामक देवस्थान जो काठियावाड़ में है।

विशेष—पुराणों में इस स्थान या क्षेत्र का नाम प्रभास और शिलालेखों में देवपत्तन मिलता है। इसे देवनगर भी कहते थे।

देवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री। २. मध्वालु। एक प्रकार का कंद।

देवपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. छायापथ। आकाश। २. वह मार्ग जो किसी देवमंदिर की ओर जाता हो।

देवपद्मिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में बहनेवाली गंगा का एक नाम।

देवपर—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर कोई उद्योग न करे, किसी देवता का भरोसा किए बैठा रहे।

देवपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] माचीपत्र।

देवपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता के नाम उत्सर्ग किया हुआ पशु। २. देवता का उपासक।

देवपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

देवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या आश्रयदाता के लिये प्रयुक्त आदरव्यंजक शब्द।

देवपान—संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का एक पात्र।

देवपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के एक पर्वत का नाम।

देवपालित—वि० [सं०] १. (देश०) जिसमें वृष्टि ही के जल से खेती आदि का काम चलता हो। २. देवताओं द्वारा रक्षित (को०)।

देवपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवपुत्री] देवता का पुत्र।

देवपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवपुत्री'।

देवपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की पुत्री। २. इलायची। ३. कपुरी साग।

देवपुर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती।

देवपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की राजधानी अमरावती जो स्वर्ग में है।

देवपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति। देवगुरु (को०)।

देवपू—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती। देवपुरी (को०)।

देवपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं का पूजन।

देवपूज्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु। बृहस्पति (को०)।

देवप्रतिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवप्रतिमा'।

देवप्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पाषाण या धातु आदि से निर्मित मूर्ति (को०)।

देवप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में टिहरी जिले के अंतर्गत एक तीर्थ जो गंगा और अलकनंदा के संगम पर है। स्कंदपुराण के हिमवद् खंड में इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णित है।

देवप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्रश्न जो नक्षत्र, ग्रह, ग्रहण आदि के संबंध में हो। २. शुभाशुभ संबंधी वह प्रश्न जो किसी देवता के प्रति समझा जाय और जिसका उत्तर किसी युक्ति से निकाला जाय।

देवप्रसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी (को०)।

देवप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरी का नाम जो कुरुक्षेत्र से पूर्व पड़ती थी और जिसका राजा सेनाबिंदु था।

देवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगस्त का पेड़ या फूल। २. पीत भृंगराज। पीली भँगरैया। ३. देवताओं के प्रिय, शिव (को०)।

देवबंद—संज्ञा पुं० [सं० देवबन्द] घोड़ों की एक भँवरी जो उनकी छाती पर होती है और शुभ लक्षण गिनी जाती है। जिस घोड़े में यह भँवरी हो उसमें यदि और दोष भी हों तो वे निष्फल समझे जाते हैं।

देवबला—संज्ञा पुं० [सं०] सहदेई। सहदेइया नाम की बूटी।

देवबल्लभा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० देवबल्लभ] दे० 'देवबल्लभ'। उ०—कासमीर कुंकुम रुधिर देवबल्लभा नाउँ।—अनेकार्थ०, पृ० २३।

देवबाँस—संज्ञा पुं० [सं० देव + हिं० बाँस] एक प्रकार का मजबूत और ऊँचा बाँस।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल और आसाम में बहुत होता है और उड़ीसा तक पाया जाता है। यह १५-२० हाथ से ४०-४५ हाथ तक ऊँचा होता है। यह मजबूत होता है और मकानों की छाजन मे लगाने तथा चटाई, टोकरा आदि बनाने के काम में आता है। इसके नरम कल्लों का अचार भी पड़ता है।

देवब्रह्मन—संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

देवब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो किसी देवता की पूजा करके जीवननिर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

देवभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर या स्थान। २. स्वर्ग। ३. अश्वत्थ। पीपल।

देवभाग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को दिया जानेवाला भाग। किसी वस्तु या संपत्ति का वह अंश जो देवता के लिये निकाला गया हो।

देवभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत भाषा।

देवभिषक्—संज्ञा पुं० [सं० देवभिषज्] अश्विनीकुमार।

देवभू[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवभूमि'।

देवभू[2]—संज्ञा पुं० देवता (को०)।

देवभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का ऐश्वर्य। २. मंदाकिनी।

देवभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग।

देवभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का भरण करनेवाले) १. इंद्र। २. विष्णु।

देवभोज्य—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

देवमंजर—संज्ञा पुं० [सं० देवमञ्जर] कौस्तुभ मणि।

देवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० देवमन्दिर] वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति आदि स्थापित हो। देवालय।

देवमई(पु) -वि० [सं० देवमयी] देव-अंश-युक्त। दिव्य। उ०—देवक जादव के इक कन्या। देवमई देवकी सुधन्या।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

देवमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. कौस्तुभ मणि। ३. घोड़े की भँवरी। ४. महामेदा नाम की ओषधि।

देवमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० देवमातृ] १. देवता की माता। २. अदिति। ३. दाक्षायणी।

देवमातृक—वि० [सं०] (देश) जिसमें खेती आदि के लिये वर्षा का ही जल यथेष्ट हो। जहाँ इतनी वर्षा होती हो कि खेती आदि का सब काम उसी से चल जाता हो।

देवमादन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को मोहित या मत्त करनेवाला, सोम।

देवमान—संज्ञा पुं० [सं०] काल की गणना में देवताओं का मान। जैसे, मनुष्यों के एक सौर वर्ष का देवताओं का एक दिन।

देवमानक—संज्ञा पुं० [सं०] देवमणि। कौस्तुभ मणि।

देवमाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की माया। २. परमेश्वर की माया जो अविद्या रूप होकर जीवों को बंधन में डालती है।

देवमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान।

देवमास—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का आठवाँ महीना।

विशेष—आठवें महीने मे गर्भ में स्मृति और ओज की उत्पत्ति हो जाती है। इससे उसे देवमास कहते हैं।

२. देवताओं का महीना जो मनुष्यों के तीस वर्ष के बराबर होता है।

देवमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शाकल्य ऋषि का एक नाम।

देवमित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी एक मातृका।

देवमीढ़—संज्ञा पुं० [सं० देवमीढ] १. वाल्मीकि रामायण में वर्णित मिथिला के एक प्राचीन राजा जो कीर्तिरथ के पुत्र और जनक (सीरध्वज) के पूर्वज थे। २. यदुवंशीय एक राजा।

देवमीढुष—संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के पितामह का नाम।

देवमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी। कामांध्रा।

देवमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारद ऋषि। २. सुर नामक ऋषि।

देवमूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (गर्गसंहिता)।

देवमूर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] देवता की प्रतिमा।

देवयजन—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की वेदी।

देवयजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

देवयजि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता की आराधना करनेवाला व्यक्ति। पुजारी [को०]।

देवयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] होमादि कर्म जो पंचयज्ञों में से एक है और गृहस्थों का प्रतिदिन का कर्तव्य है।

विशेष—दे० 'पंचयज्ञ'।

देवयात—वि० [सं०] देवत्व प्राप्त। जो देवता हो गया हो।

देवयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवता या पूज्य महापुरुष की सवारी निकालने का पर्व [को०]।

देवयात्री—संज्ञा पुं० [सं० देवयात्रिन्] हरिवंश में वर्णित एक दानव का नाम।

देवयान—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से अलग होने के उपरांत जीवात्मा के जाने के लिये दो मार्गों में से वह मार्ग जिससे होता हुआ वह ब्रह्मलोक को जाता है।

विशेष—उपनिषदों मे जीवात्मा के उत्क्रमण अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर या एक लोक से दूसरे लोक की प्राप्ति की कथा बहुत आई है। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि संवत्सर ही प्रजापति है। दक्षिण और उत्तर उसके दो अयन हैं। जो कोई इष्टापूर्त और कृत (यज्ञ आदि कर्मकांड) की उपासना करते हैं वे चांद्रमस लोक को प्राप्त होते हैं और फिर वहाँ से लौटकर दक्षिणायन को पाते हैं। जो 'रयी' (खाद्य, धान्य) या पितृयाण कहलाता है। इसी प्रकार जो तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से आत्मा का अन्वेषण करते हैं वे उत्तरायण मार्ग से आदित्य लोक को प्राप्त करते हैं। इस मार्ग से गमन करनेवाले नहीं लौटते। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जो श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे अर्चि (आग की लौ) को पाते हैं। अर्चि से अह्न (दिन), अह्न से आपूर्यमाण या शुक्ल पक्ष, आपूर्यमाण पक्ष से उत्तरायण के छह महीनों को, उत्तरायण से संवत्सर, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चंद्रमा को, चंद्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं और वहाँ अमानव (अर्थात् देव) हो जाते हैं। इसी मार्ग को देवयान कहते हैं जिससे मरनेवाला ब्रह्म को पाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में सूर्य से एकबारगी विद्युत् को प्राप्त होना लिखा है, चंद्रमा को छोड़ दिया है और 'अमानव' के स्थान पर 'अमानस' शब्द आया है जिसका अभिप्राय वही है। देवयान और पितृयाण का अभिप्राय केवल यही है कि ब्रह्मज्ञानी मरने पर उत्तरोत्तर प्रकाशमान् लोकों या स्थितियों में होते हुए ब्रह्मलोक या ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। और कर्मकांड में रत मनुष्य धूमरात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि उत्तरोत्तर अंधकार की स्थिति को प्राप्त करते हैं और लौटकर फिर जन्म लेते हैं। सारांश यह कि एक ओर प्रकाश की उत्तरोत्तर वृद्धिपरंपरा का क्रम रखा गया है और दूसरी ओर अंधकार की। वेदांतसूत्र के तीसरे और चौथे अध्याय में जीव के इन दोनों मार्गों पर बहुत ऊहापोह किया गया है। गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भी इन मार्गों का उल्लेख किया है। उपनिषद् में जो उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृयाण कहा गया, इस कारण सूर्य जब उत्तरायण रहता है तब मरना मोक्षदायक माना जाता है। इसीलिये महाभारत में भीष्म का

उत्तरायण सूर्य होने तक शरशय्या पर पड़ा रहना लिखा गया है।

देवयानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्राचार्य की कन्या जो राजा ययाति को ब्याही थी।

विशेष—बृहस्पति का पुत्र कच मृतसंजीवनी विद्या सीखने के लिये दैत्यगुरु शुक्राचार्य का शिष्य हुआ। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी उसपर अनुरक्त हुई। असुरों को जब यह विदित हुआ कि कच मृतसंजीवनी विद्या लेने के लिये आया है तब उन्होंने उसको मार डाला। इसपर देवयानी बहुत विलाप करने लगी। तब शुक्राचार्य ने अपनी मृतसंजीवनी विद्या के बल से उसे जिला दिया। इसी प्रकार कई बार असुरों ने कच का विनाश करना चाहा पर शुक्राचार्य उसे बचाते गए। एक दिन असुरों ने कच को पीसकर शुक्राचार्य के पीने की सुरा में मिला दिया। शुक्राचार्य कच को सुरा के साथ पी गए। जब कच कहीं नहीं मिला तब देवयानी बहुत विलाप करने लगी और शुक्राचार्य भी बहुत घबराए। कच ने शुक्राचार्य के पेट में से ही सब व्यवस्था कह सुनाई। शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि 'कच तो मेरे पेट में है, अब बिना मेरे मरे उसकी रक्षा नहीं हो सकती।' पर देवयानी को इन दोनों में से एक बात भी नहीं मंजूर थी। अंत में शुक्राचार्य ने कच से कहा कि यदि तुम कच रूपी इंद्र नहीं हो तो मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभाव से बाहर निकल आओ। कच ने मृतसंजीवनी विद्या पाई और वह पेट से बाहर निकल आया। तब देवयानी ने उससे प्रेमप्रस्ताव किया और विवाह के लिये वह उससे कहने लगी। कच गुरु की कन्या से विवाह करने पर किसी तरह राजी न हुए। इसपर देवयानी ने शाप दिया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या फलवती न होगी। कच ने कहा कि यह विद्या अमोघ है। यदि मेरे हाथ से फलवती न होगी तो जिसे मैं सिखाऊँगा उसके हाथ से होगी। पर तुमने मुझे व्यर्थ शाप दिया। इससे मैं भी शाप देता हूँ कि तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा।

दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी में परस्पर सखी भाव था। एक बार दोनों किनारे पर कपड़े रख जलाशय में जलविहार के लिये घुसीं। इंद्र ने वायु का रूप धरकर दोनों के वस्त्र एक स्थान पर कर दिए। शर्मिष्ठा ने जल्दी में देखा नहीं और निकलकर देवयानी के कपड़े पहन लिए। इसपर दोनों में झगड़ा हुआ और शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएँ में ढकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझकर कि देवयानी मर गई, अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजा का पुत्र ययाति शिकार खेलने आया था। उसने देवयानी को कुएँ से निकाला और उससे दो चार बातें करके वह अपने नगर की ओर चला गया। इधर देवयानी ने एक दासी से अपना सब वृत्तांत शुक्राचार्य के पास कहला भेजा। शुक्राचार्य ने आकर अपनी कन्या को घर चलने के लिये बहुत कहा पर उसने एक भी न सुनी। वह शुक्राचार्य से कहने लगी कि 'शर्मिष्ठा तुम्हारा बहुत तिरस्कार करती थी, अतः मैं अब दैत्यों की राजधानी में कदापि न जाऊँगी।'

यह सब सुनकर शुक्राचार्य भी दैत्यों की राजधानी छोड़ अन्यत्र जाने को तैयार हुए। यह खबर राजा वृषपर्वा को लगी और वह आकर शुक्राचार्य से बड़ी विनती करने लगा। शुक्राचार्य ने कहा 'देवयानी को प्रसन्न करो'। वृषपर्वा देवयानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। देवयानी ने कहा, 'मेरी इच्छा है कि शर्मिष्ठा सहस्र और कन्याओं सहित मेरी दासी हो। जहाँ मेरा पिता मुझे दान करे वहाँ वह मेरी दासी होकर जाय'। वृषपर्वा इसपर सम्मत हुआ और अपनी कन्या शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर शुक्राचार्य के घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी सब दासियों के सहित कहीं क्रीड़ा कर रही थी कि राजा ययाति वहाँ आ पहुँचे। देवयानी ने ययाति से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। राजा ययाति ने स्वीकार कर लिया और शुक्राचार्य ने कन्यादान कर दिया। कुछ दिन पीछे ययाति से शर्मिष्ठा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब देवयानी ने पूछा तब शर्मिष्ठा ने कह दिया कि यह लड़का मुझे एक तेजस्वी ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ है। इसके उपरांत देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अणु और पुरु ये तीन पुत्र हुए। ययाति से शर्मिष्ठा को तीन पुत्र हुए, यह जानकर देवयानी अत्यंत कुपित हुई और अपने पिता के पास इसका समाचार भेजा। शुक्राचार्य ने क्रोध में आकर ययाति को शाप दिया कि 'तुमने अधर्म किया है इसलिये तुम्हें बहुत शीघ्र बुढ़ापा घेरेगा'। ययाति ने शुक्राचार्य से विनयपूर्वक कहा—'महाराज मैंने कामवश होकर ऐसा नहीं किया, शर्मिष्ठा ने ऋतुमती होने पर ऋतुरक्षा के लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करना मैंने पाप समझा। मेरा कुछ दोष नहीं'। शुक्राचार्य ने कहा 'अब तो मेरा कहा हुआ निष्फल नहीं हो सकता। पर यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा ले लेगा तो तुम फिर ज्यों के त्यों जवान हो जाओगे।'

देवयु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर। देवता।

देवयु[2]—वि० १. धर्मात्मा। पुण्यात्मा। धार्मिक। २. देवकार्य में सहयोग देनेवाला [को०]।

देवयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग।

देवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग, अंतरिक्ष, आदि में रहनेवाले उन सब जीवों की सृष्टि जो देवताओं के अंतर्गत माने जाते हैं।

विशेष—अमरकोश में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक और सिद्ध ये देवयोनि के अंतर्गत गणित हैं।

देवयोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवस्त्री। अप्सरा [को०]।

देवर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवरानी] १. पति का छोटा भाई। २. पति का भाई (छोटा या बड़ा)।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि यदि किसी विधवा को अपने पति से कोई संतान न हो तो वह अपने देवर या पति के किसी अन्य सपिंड से एक संतान उत्पन्न करा ले, एक से अधिक नहीं। पर पराशर ने कलिकाल में इसका निषेध किया है।

देवरक्षित¹—वि० [सं०] जो देवताओं के द्वारा रक्षित हो।

देवरक्षित²—संज्ञा पुं० देवक राजा के एक पुत्र का नाम।

देवरक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक राजा की एक कन्या।

देवरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का रथ। विमान। २. सूर्य का रथ।

देवरा¹—संज्ञा पुं० [सं० देव + हिं० रा (प्रत्य०)] [स्त्री० देवरी] छोटा मोटा देवता। उ०—पुरुष पूजै देवरा, तिय पूजै रघुनाथ। —रहीम (शब्द०)।

देवरा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन जो सुतली बनाने के काम में आता है।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के राजा इंद्र। २. बुद्ध का नाम (को०)। ३. राजा। नरेश (को०)।

देवराजा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देवराज] देवराज इंद्र। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये।—केशव (शब्द०)।

देवराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

देवरात—संज्ञा पुं० [सं०] १. (देवताओं से रक्षित) राजा परीक्षित। २. निमिवंश का एक राजा जो सुकेतु का पुत्र था। ३. शुनःशेप का एक नाम जो विश्वामित्र के यहाँ जाने पर पड़ा था। उ०—शुनःशेप का दूसरा नाम देवरात कहा जाता है।—प्रा० भा० प०, पृ० १५३। ४. याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता का नाम। ५. एक प्रकार का सारस।

देवरानी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवर] देवर की स्त्री। पति के छोटे भाई की स्त्री।

देवरानी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० देव + रानी] देवराज इंद्र की रानी, शची। इंद्राणी। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।—केशव (शब्द०)।

देवराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देवराज] दे० 'देवराज'।

देवरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] असुर। दैत्य (को०)।

देवरिषि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देवर्षि] दे० 'देवर्षि'। उ०—होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदय धरि राखा।—मानस, १।६८।

देवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरा] छोटी मोटी देवी।

देवर्द्धि—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक प्रसिद्ध स्थविर का नाम जिन्होंने जैन सिद्धांत लिपिबद्ध किया था।

देवर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं में ऋषि। २. नारद ऋषि का नाम (को०)।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो देवताओं की पूजा करके जीविका-निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

विशेष—देवल ब्राह्मण पतित माना जाता है। हव्य, कव्य, श्राद्ध आदि में ऐसे ब्राह्मणों का निषेध है।

२. धार्मिक पुरुष। ३. देवर। ४. नारद मुनि। ५. धर्मशास्त्र के वक्ता एक मुनि जो असित के पुत्र और वेदव्यास के शिष्य माने जाते हैं। ६. एक स्मृतिकार।

देवल²—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] देवालय। देवमंदिर। उ०—रूप अपूरब पेखीयई, इसी अस्त्री नहीं सयल संसार। ईसीय न देवल पूतली, अइ घरि आवी भोज कुँवार।—बी० रासो०, पृ० २८।

देवल³—संज्ञा पुं० [सं० देव ?] एक प्रकार का चावल। उ०—धनिया देवल और अजाना। कहँ लगि बरनत आवौ धाना।—जायसी (शब्द०)।

देवलक—संज्ञा पुं० [सं०] देवल। पुजारी ब्राह्मण। पंडा।

देवलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका। नेवारी।

देवलांगुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० देवलाङ्गुलिका] वृश्चिकाली।

देवला¹—संज्ञा पुं० [हिं० दीया, दिवला] [स्त्री० अल्पा० देवली] छोटा दीया।

देवली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिउली'।

देवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। देवताओं का लोक। उ०—देवलोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक, बैकुंठ के सुखलों गणितानंद गायो है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२२।

२. भूः, भुवः आदि सात लोक।

विशेष—मत्स्यपुराण में भू, भुव, इत्यादि सातों लोक देवलोक कहे गए हैं।

देववक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का मुँह) अग्नि।

विशेष—देवताओं के निमित्त हव्य, कव्य आदि का अग्नि में हवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा।

देववती—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रामणी नामक गंधर्व की कन्या जो सुकेश राक्षस की पत्नी और माल्यवान, सुमाली और माली की माता थी।

देववधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री। २. देवी। अप्सरा।

देववर्णिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित भरद्वाज मुनि की कन्या जो विश्रवा मुनि की पत्नी और कुबेर की माता थी।

देववर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० देववर्त्मन्] आकाश।

देववर्द्धकि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा।

देववर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा देवक के एक पुत्र का नाम। देवकी के एक भाई और श्रीकृष्ण के मामा (भागवत)।

देववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्वीप का नाम (भागवत)।

देववल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी। सहदेई नाम की बूटी।

देववल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं को प्रिय। २. सुरपुन्नाग वृक्ष। ३. केसर।—अनेकार्थ (शब्द०)।

देववाणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. संस्कृत भाषा। २. आकाशवाणी। किसी अदृश्य देवता का वचन जो अंतरिक्ष में सुनाई पड़े। उ॰—देखि बलराम को देखि उन छल कियो दवम जीत्यो कहन लगे सारे। देववाणी भई जीत भई राम की ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे।—सूर (शब्द॰)।

देववात—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक वैदिक ऋषि का नाम।

देववाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ देव+वाद] वह वाद या मत जिसके अनुसार प्राकृतिक दृश्यों और वस्तुओं में देवत्व की कल्पना की जाती है। उ॰—प्राचीन आर्य काव्य में—क्या भारत के क्या योरप के—रहस्यवाद का नाम तक नहीं, सीधा देववाद है।—चिंतामणि, भा॰ २, पृ॰ १३८।

देववायु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

देववाहन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अग्नि (जो देवताओं का हव्य ले जाकर पहुँचाते हैं)।

देवविद्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. देवताओं की विद्या। २ निरुक्त [को॰]।

देवविभाग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. देवता का अंश। देवांश। २. उत्तर दिशा। उदीची (को॰)।

देवविसर्ग—संज्ञा पुं॰[सं॰] देने योग्य किसी वस्तु को दे देना (को॰)।

देवविहाग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ देवविभाग] एक राग जो कल्याण और बिहाग अथवा सारंग और पूरबी के योग से बना है। यह संपूर्ण जाति का है।

देववृक्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. मंदार वृक्ष। २. गूगल। ३. सतिवन।

देवव्रत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. भीष्म पितामह का नाम। २. एक प्रकार का सामगान। ३. देवताओं का प्रिय भोजन। ४. कार्तिकेय। स्कंद (को॰)।

देवशत्रु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] असुर। राक्षस।

देवशाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक संकर राग जो शंकराभरण, कान्हड़ा और मल्हार से मिलकर बना है। इसमें गांधार कोमल लगता है। इसका गानसमय १७ दंड से २० दंड तक है।

देवशिल्पी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ देवशिल्पिन्] विश्वकर्मा।

देवशुनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] देवलोक की कुतिया, सरमा।

विशेष—इस देवशुनी की कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है,—राजा जनमेजय कोई बड़ा यज्ञ कर रहे थे। इसी बीच एक कुत्ता वहाँ आया। जनमेजय के भाइयों ने उसे मारकर भगा दिया। उस कुत्ते ने अपनी माता सरमा से जाकर कहा—'मैंने कोई अपराध नहीं किया था, यज्ञ की कोई सामग्री नहीं छुई थी, इसपर भी बिना अपराध के लागों ने मुझे मारा'। देवशुनी सरमा यह सुनकर जनमेजय के पास आकर बोली—'मेरे इस पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया था। तुम्हारा घी आदि कुछ भी नहीं चाटा था। तुमने मेरे इस पुत्र को बिना अपराध के मारा, इससे तुम्हारे ऊपर अकस्मात् कोई दुःख पड़ेगा'। यह शाप देकर देवशुनी चली गई। विशेष—दे॰ 'सरमा'।

देवशेखर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दमनक। दौने का पौधा।

देवशेष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] यज्ञ में देवताओं का अंश निकालने से बचा हुआ भाग [को॰]।

देवश्रवा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ देवश्रवस्] १. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। २. वसुदेव के भाई।

देवश्री[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] लक्ष्मी।

देवश्री[2]—संज्ञा पुं॰ यज्ञ [को॰]।

देवश्रुत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ईश्वर। २. विष्णु (को॰)। ३. नारद। ४. शास्त्र। ५. शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम। ६. अवसर्पिणी के एक जिन का नाम।

देवश्रेणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. देवताओं की पंक्ति। २. मूर्वा। मरोरफली। मुर्री।

देवश्रेष्ठ—वि॰ [सं॰] २. देवताओं में श्रेष्ठ। २. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

देवसंघ—वि॰ [सं॰ देवसन्ध] दैवी। दैविक। अमानवीय (को॰)।

देवसंसद्—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ देवसंसद्] दे॰ 'देवसभा'।

देवस(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दिवस] दे॰ 'दिवस'। उ॰—एक देवस कोनिउ तिथि आई। मानसरोदक चली अन्हाई।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ १५८।

देवसखा—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बाल्मीकि रामायण में वर्णित उत्तर दिशा का एक पर्वत।

देवसत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक यज्ञ का नाम।

देवसद्—संज्ञा पुं॰ [सं॰] देवस्थान।

देवसदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. देवताओं का आधार। २. पीपल का वृक्ष। ३. देवालय। मंदिर। ४. स्वर्ग।

देवसभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. देवताओं का समाज। २. राजसभा। ३. सुधर्मा नामक सभा जिसे मय ने अर्जुन या युधिष्ठिर के लिये बनाया था। ४. द्यूतगृह। जुआघर (को॰)।

देवसभ्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. देवता का पुजारी। देवाराधक। २. जुआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआड़ी। ३. वह व्यक्ति जो जुआ खिलाता हो। जुआ खिलानेवाला [को॰]।

देवसमाज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सुधर्मा नाम की सभा।

देवसरि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गंगा नदी। उ॰—उतरि देवसरि दूसर बासु। रामसखा सब कीन्ह सुपासु।—मानस, २।३२१।

देवसरित्—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'देवसरि' (को॰)।

देवसर्षप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की सरसों।

देवसहा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सफेद फूल का दंडोत्पल।

देवसाक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ देवशाक] दे॰ 'देवशाक'।

देवसायुज्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] देवता में लीन हो जाना। देवस्वरूप प्राप्त करना [को॰]।

देवसार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] इंद्रताल के छह भेदों में से एक।

देवसावर्णि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तेरहवें मनु का नाम (भागवत)।

देवसिंह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव [को॰]।

देवसृष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। मद्य।

देवसेक(पु)†—क्रि० वि० [सं० दिवस+एक] एक दिन। उ०—देवसेक आइ हाथ पै मेला। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३१।

देवसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवताओं की सेना। २. प्रजापति की कन्या जो सावित्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। इनका दूसरा नाम षष्ठी या महाषष्ठी भी है। ये मातृकाओं में श्रेष्ठ हैं और शिशुओं का पालन करनेवाली हैं।

विशेष—महाभारत में कथा है कि इनको एक बार केशी दानव हर ले गया। इंद्र ने इनकी रक्षा की और स्कंद के साथ इनका विवाह करा दिया। विवाह में बृहस्पति ने होम, जप आदि किया था। ब्राह्मणों ने देवसेना को षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृत्ति और अपराजिता नामों से पुकारा। जिस पंचमी तिथि को स्कंद श्रीयुक्त हुए थे, वह श्रीपंचमी कहलाई। जिस षष्ठी को स्कंद कृतकार्य हुए थे वह षष्ठी महातिथि कहलाई।

देवसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद।

देवसेनाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवसेनापति' [को०]।

देवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के रहने की जगह। २. देवालय। ३. एक ऋषि का नाम (महाभारत)।

विशेष—इन्होंने पांडवों को उस समय सदुपदेश दिया था जब वे वनवास करते थे। पीछे जब युधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त किया तब इन्होंने अनेक प्रकार के उपदेश देकर उन्हें राज्य छोड़ने से रोका था।

देवस्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता की सेवा के लिये अर्पित किया हुआ धन। वह जायदाद जो किसी देवता की पूजा आदि के लिये अलग निकाल दी जाय। २. यज्ञशील मनुष्य का धन (मनुस्मृति)।

विशेष—जो इस धन को लोभ से हरता है वह परलोक में गीध का जूठा खाकर जीता है।

देवहंस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख।

देवहर—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह] देवमंदिर। देवालय। उ०—देवहर पूजत समय सिरानी, कोऊ संग न जाती।—गुलाल०, पृ० ६।

देवहरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० देव+घर] देवालय। मंदिर।—उ०—पलटू तन कर देवहरा मन कर सालिगराम।—पलटू०, पृ० ९५।

देवहरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव।

देवहवि—संज्ञा स्त्री० [सं० देवहविस्] देवता के निमित्त यज्ञ का पशु [को०]।

देवहा†—संज्ञा स्त्री० [सं० देवहा या देविका] सरयू नदी।

देवहू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का आह्वान। २. अनाज से भरी गाड़ी। ३. बायाँ कान (भागवत)। ४. एक ऋषि का नाम।

देवहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का आवाहन (को०)। स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कर्दम ऋ[षि] को ब्याही थी। उ०—देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मु[नि] कर्दम के प्रिय नारी।—मानस, १। १४२।

विशेष—भागवत में इनके संबंध में लिखा है कि महर्षि कर[्दम] ने इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें दिव्य ज्ञान दिया। इनके गर्भ से नौ कन्याएँ और एक पुत्र हुआ। सांख्यशास्त्र [के] कर्ता कपिल इन्हीं के पुत्र हैं।

देवहेडन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के प्रति किया गया अपराध [को०]।

देवहेति—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवास्त्र।

देवह्रद—संज्ञा पुं० [सं०] श्री पर्वत पर एक सरोवर जिसमें स्नान करने से यज्ञ का फल होता है। (महाभारत)।

देवांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० देवाङ्गना] १. देवताओं की स्त्री। स्वर्ग की स्त्री। अमरी। २. अप्सरा।

देवांतक—संज्ञा पुं० [सं० देवान्तक] एक राक्षस जो रावण का पुत्र था और जिसे हनुमान ने राम-रावण-युद्ध में मारा था।

देवांधस—संज्ञा पुं० [सं० देवान्धस्] १. अमृत। २. देवता के नैवेद्य का अन्न।

देवांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता का भाग। २. ईश्वर का अंशभूत। परमात्मा का अंशावतार [को०]।

देवा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पद्मचारिणी लता। २. पटसन।

देवा²†—वि० [हिं० देना] देनेवाला। जैसे, पानीदेवा। † २. देनदार। ऋणी।

देवाक्रीड—संज्ञा पुं० [सं० देवाक्रीड] देवताओं का उद्यान। इंद्र का बगीचा।

देवागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवभवन' [को०]।

देवाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा करनेवाला। पुजारी। पंडा।

देवाजीवी—वि० [सं० देवाजीविन्] दे० 'देवाजीव' [को०]।

देवाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरिहर क्षेत्र नामक तीर्थ (वाराहपुराण)।

देवातन—संज्ञा पुं० [सं० देवायतन] देवालय। मंदिर। उ०—देव को देवातन गयो तो कहा भयो बीर। पीतरि को मोल सुनो नाहिं कछु गयो है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४९६।

देवातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी एक राजा का नाम (भागवत)।

देवातिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. दे० 'देवाधिदेव'।

देवात्मा—संज्ञा पुं० [देवात्मन्] १. देवस्वरूप। २. अश्वत्थ। पीपल।

देवाधिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। सर्वश्रेष्ठ देवता। २. शिव जी। ३. विष्णु। ४. बुद्ध [को०]।

देवाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के अधिपति। २. परमेश्वर। ३. इंद्र।

देवान(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] १. दरबार। कचहरी। राजसभा। उ०—मारे बागवान ते पुकारत देवान पे जवारे

बाग अंगद देखाए घाय तन में।—तुलसी (शब्द०)। २. अमात्य। मंत्री। वजीर। ३. प्रबंधकर्ता।

देवानांप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० देवानाम्प्रिय] १. देवताओं को प्रिय। २. बकरा। ३. मूर्ख।

देवाना¹—वि० [फ़ा० दीवानह्] दे० 'दीवाना'।

देवाना²—संज्ञा पुं० एक चिड़िया।

देवानीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं की सेना। २. तीसरे मनु सावर्णि के एक पुत्र का नाम। ३. सगर के वंश का एक राजा।

देवानुग—संज्ञा पुं० [सं० देव+अनुग] १. देवता का उपासक। २. दे० 'देवानुचर' [को०]।

देवानुचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के साथ चलनेवाले विद्याधर आदि उपदेव। २. दे० 'देवानुग'।

देवानुयायी—संज्ञा [सं० देवानुयायिन्] दे० 'देवानुग' [को०]।

देवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] हवि। चरु।

देवापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, गंगा [को०]।

देवापि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

विशेष—इस राजा के संबंध में वैदिक कथा इस प्रकार है। ऋषिषेण राजा के दो पुत्र थे—देवापि और शांतनु। दोनों में देवापि बड़े थे पर राज्य शांतनु को मिला और देवापि तपस्या में लगे। शांतनु के राज्य में १२ वर्ष की अनावृष्टि हुई। ब्राह्मणों ने कहा कि तुम जेठे भाई के रहते राजसिंहासन पर बैठे हो इससे देवता लोग रुष्ट होकर पानी नहीं बरसाते हैं। इसपर शांतनु ने देवापि को सिंहासन पर बैठाया। देवापि ने शांतनु से कहा कि तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे। देवापि ने यज्ञ कराया जिससे खूब पानी बरसा। (निरुक्त २।१०)।

महाभारत के अनुसार देवापि, पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र थे। महाराज प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवापि शांतनु और बाह्लीक। इनमें देवापि अत्यंत धर्मात्मा थे। इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणत्व लाभ किया। ये बाल्यावस्था से ही संसारत्यागी हो गए थे। ये अबतक सुमेरु पर्वत पर कलापग्राम में योगी के रूप में हैं। कलियुग समाप्त होने पर सत्ययुग में ये चंद्रवंश स्थापित करेंगे।

देवाभ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लेई जो धामर, गोंद, चूना, चीकन और पानी मिलाकर बनाई जाती है।

देवाभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी ऐसे देवता का शरीर में प्रवेश जो अनुचित कर्म करावे। (जैन)।

देवाभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

देवायतन—संज्ञा पुं० [सं०] देवमंदिर। देवालय। [को०]

देवायु—संज्ञा स्त्री० [सं० देवायुस्] देवताओं की आयु। देवताओं का जीवनकाल जो बहुत अधिक होता है।

देवायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का अस्त्र। २. इंद्रधनुष।

देवार¹†—संज्ञा पुं०[सं० फ़ा० दयार या हिं०+वारि ?]दे० 'दियारा'। जैसे,—इसका कछारा जिसको बोली में देवार कहते हैं बहुत विस्तृत और चौड़ा होता है।

देवार(पु)†²—वि० [देश०] देनेवाला। देवाला। जैसे, दंड देवार।

देवारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का वन या उपवन। २. एक तीर्थ का नाम (महाभारत)।

देवाराधन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा।

देवारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर।

देवारी‡—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली'। उ०—अबहूँ निठुर आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।—जायसी (शब्द०)।

देवार्चन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवाराधन'।

देवार्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवाराधन'।

देवार्पण—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त किसी वस्तु का दान।

देवार्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्हत के एक गण का नाम (जैन)।

देवार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपर्ण। मारीपत्र।

देवाला¹—वि० [हिं० देना] देनेवाला। दाता।

देवाल²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवार] दे० 'दीवार'। उ०—पलटू देवाल कहकहा मत कोउ झाँकन जाय।—पलटू०, पृ० ३।

देवालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २. वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति रखी जाय। मंदिर।

देवाला¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दिवाला'।

देवाला²—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] दे० 'देवालय'।

देवालिया†—वि० [हिं० दिवाला] दे० 'दिवालिया'। उ०—ए बाजै देवालिया ऊँचा ताला मार।—बाँकी० ग्रं०, भा०, २, पृ० ६६।

देवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीवाली] दे० 'दिवाली'।

देवालेई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० देना+लेना] देने और लेने का काम। लेनदेन।

देवावसथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय [को०]।

देवावास—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल का पेड़। २. स्वर्ग। ३. देवता का मंदिर।

देवावृध—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत (हरिवंश)।

देवावृध—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम (हरिवंश)।

देवाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] उच्चैःश्रवा। इंद्र का घोड़ा।

देवासुर—संज्ञा पुं० [सं०] देवता और दैत्य। उ०—सृष्टि के आरंभ ही से देवता और दैत्यों के साथ ही उत्पत्ति का प्रमाण पाते और देवासुर संग्राम की कथा सुनाते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३६।

देवाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

देवाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।

देविक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० देविकी] १. देवता संबंधी। देवता का। २. दिव्य। स्वर्गिक। ३. धर्मप्राण [को०]।

देविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाघरा नदी, जिसमें मिलने के कारण सरजू को लोग देवहा कहते हैं। एक नदी का नाम जिसमें कालिकापुराण के मत से सरजू मिली है।

विशेष—पद्मपुराण के मत से यह आधा योजन चौड़ी और पाँच योजन लंबी है। मत्स्यपुराण के मत से यह नदी हिमालय के पाददेश से निकली है।

देविता—संज्ञा पुं० [सं० देवितृ] द्यूतक्रीड़क। जुआरी (को०)।

देविल—वि० [सं०] दे० 'देविक'।

देवी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की स्त्री। देवपत्नी। २. दुर्गा। ३. वह रानी जिसका राजा के साथ विवाह हुआ हो। पटरानी। ४. ब्राह्मण स्त्रियों की एक उपाधि। ५. दिव्य गुणवाली स्त्री। सुशीला और सदाचारिणी स्त्री (आदरसूचक)। ६. मूर्वा। मरोरफली। मुर्रा। ७. पृक्का नाम की सुगंधित घास। असबरग। ८. आदित्यभक्ता। हुलहुल। हुरहुर। ९. लिंगिनी लता। पँचगुरिया। १०. वन ककोड़ा। बाँझ ककोड़ा। ११. शालपर्णी। सरिवन। १२. महाद्रोणी। बड़ा गूमा। १३. पाठा। १४. नागरमोथा। १५. सफेद इंद्रायन। १६. हरीतकी। हड़। हर्रे। १७. अलसी। तीसी। १८. श्यामा पक्षी। उ०—(क) अहि सुरंग मनि दुत्ति देवि मंडै तंडव गति। बाल्मीक बिल अग्र इक्क फनि कुटिल क्रोध भरि।—पृ० रा०, १७।३०। (ख) इतें देवि उड़ि बैठि चंच, चंचु गिराइय साग। दौरि महूर तब हृध्य किय, लै नरिंद तुम भाग।—पृ० रा० (उ०), पृ० २०५। १९. रवि संक्रांति जो बड़ी पुण्यजनक समझी जाती है। २०. सरस्वती का नाम (को०)। २१. सावित्री का एक नाम (को०)।

देवी[2]—संज्ञा पुं० [सं० देविन्] जुआड़ी। वह जो द्यूत खेलता हो (को०)।

देवी[3]—संज्ञा स्त्री० [अं० डेविट्स] १. लकड़ी का एक मजबूत चौखटा, जिसमें दो खड़े खंभों के ऊपर आड़ा बल्ला लगा रहता है। यह मस्तूल आदि के सहारे के लिये होता है। २. जहाज के किनारे पर लकड़ी या लोहे को दो चोंच की तरह बाहर की ओर झुके हुए खंभे जिसमें घिरनियाँ लगी होती हैं। इन घिरनियों पर पड़े हुए रस्सों के द्वारा किश्तियाँ जहाज पर चढ़ाई या जहाज से नीचे उतारी जाती हैं (लश०)।

देवीकोट—संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी शोणितपुर का दूसरा नाम।

देवीगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवी दुर्गा का मंदिर। देवीमंदिर। २. पट्टमहिषी का भवन (को०)।

देवीपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण, जिसमें देवी का माहात्म्य आदि वर्णित है।

देवीबीज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवीवीर्य'।

देवीभागवत—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराण जिसकी गणना बहुत से लोग उपपुराणों में और कुछ लोग पुराणों में करते हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत के समान इस पुराण में भी बारह स्कंध और १८००० श्लोक हैं। अतः इसका निर्णय कठिन है कि कौन पुराण है और कौन उपपुराण। पुराणों में एक दूसरे का विषय, श्लोक संख्या आदि दी हुई है जिसके अनुसार पुराणों की प्रामाणिकता का प्रायः निर्णय किया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि 'जिस ग्रंथ में गायत्री का अवलंबन करके धर्मतत्व का सविस्तर वर्णन हो और वृत्रासुर के वध का पूरा वृत्तांत हो, जिसमें सारस्वत कल्प के बीच नरों और देवताओं की कथा हो - - - और १८००० श्लोक हों, वही भागवत पुराण है। शैवपुराण के उत्तर खंड में लिखा है कि 'जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो वह भागवत है, देवी पुराण नहीं'। इसी प्रकार की व्यवस्था कालिका नामक उपपुराण में भी दी है। यह तो शैव और शाक्त पुराणों का साक्ष्य हुआ। अब वैष्णव पुराणों की व्यवस्था सुनिए। पद्मपुराण में लिखा है कि 'सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है, जिसमें प्रति पद में ऋषियों द्वारा कहा हुआ कृष्ण का माहात्म्य है। इस कथा को परीक्षित की सभा में बैठकर शुकदेव जी ने कहा था'। नारद पुराण में भागवत उसको कहा गया है, जिसके दशम स्कंध में कृष्ण का बाल और कौमारचरित्, ब्रज में स्थिति, किशोरावस्था में मथुरावास, यौवन में द्वारकावास और भूभारहरण आदि विषय हों।

देवी भागवत में प्रथम ही त्रिपदा गायत्री है किंतु विष्णु भागवत में नहीं, उसमें केवल 'धीमहि' इतना ही पद आया है। वृत्रासुर के वध की कथा दोनों में है। पर मत्स्यपुराण में बतलाया हुआ सारस्वतकल्प प्रसंग विष्णुभागवत में नहीं है, उसमें पाद्मकल्पप्रसंग है। मत्स्यपुराण में जो लक्षण दिया हुआ है उसमें सांप्रदायिक भाव की गंध नहीं जान पड़ती। शैव और वैष्णव विद्वानों में इन दोनों पुराणों के विषय में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। दुर्जनमुखचपेटिका, दुर्जनमुखमहाचपेटिका, दुर्जनमुखपदपद्मपादुका आदि कई ग्रंथ इस विवाद में लिखे गए। बात यह है कि वे दोनों पुराण सांप्रदायिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भागवत नाम का कोई प्राचीन पुराण था, जो लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म के उपरांत हिंदूधर्म की जब फिर नए रूप में स्थापना हुई और शैवों वैष्णवों की प्रबलता हुई तब पुराणों में दिए गए लक्षण के अनुसार वैष्णव पंडितों ने श्रीमद्भागवत की और शैव पंडितों ने देवी भागवत की रचना की। रचना के विचार से यदि देखा जाय तो देवी भागवत की शैली अधिक अनुकूल और भागवत की शैली पांडित्यपूर्ण काव्य की शैली को लिए हुए है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दार्शनिक भावों की प्रधानता है उसी प्रकार देवीभागवत में तांत्रिक भावों की है। इसमें देवी के गिरिजा, काली, भद्रकाली, महामाया आदि रूपों की उपासना की गई है। पार्वती के पीठस्थानों का वर्णन है। भैरव और वैताल विधि की उत्पत्ति और उनकी पूजा की विधि बतलाई गई है। यहाँ तक कि इसमें आसाम देश के कामरूप देश और कामाक्षी देवी का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। अस्तु, अपने वर्तमान रूप में देवी भागवत ईसा की ९ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच बना होगा।

देवीभोया†—संज्ञा पुं० [हिं० देवी + भोयना (= भुलाना)] देवी को माननेवाला। ओझा। सोखा।

देवीवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

देवीसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद शाकल संहिता का एक सूक्त जिसका देवता देवी है । २. मार्कंडेय पुराणांतर्गत दुर्गा सप्तशती का एक सूक्त या स्तोत्र ।

देवेंद्र—वि० [सं० देवेन्द्र] देवताओं का राजा, इंद्र ।

देवेज्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति । देवगुरु (को०) ।

देवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का राजा, इंद्र । २. परमेश्वर । ३. महादेव । ४. विष्णु ।

देवेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।

देवेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । २. देवी ।

देवेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] देवेश । इंद्र ।

देवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं को प्रिय । २. गुग्गुल । महामेद ।

देवेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा बिजौरा ।

देवै (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० देवकी] दे० 'देवकी' । उ०—देवै कूख न औतरि आवा । ना जसवै ले गोद खिलावा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २४३ ।

देवैया—संज्ञा पुं० [हिं० देना] देनेवाला ।

देवोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जो किसी देवता के नाम अलग निकाल दी गई हो । देवता को अर्पित किया हुआ धन ।

देवोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का शेष की शैया पर से उठना जो कार्तिक शुक्ला एकादशी को होता है ।

देवोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बगीचे जो चार हैं—नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वतोभद्र । त्रिकांडशेष के अनुसार चार बगीचों के नाम ये हैं—वैभ्राज, चैत्ररथ, मिश्रक और सिध्रकावण ।

देवोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद ।

विशेष—देवोन्माद में रोगी पवित्र रहता है, सुगंधित फूलों की माला पहनता है, आँखें बंद नहीं करता और संस्कृत बोलता है । यह देवता के कोप से होता है । सुश्रुत में अमानुष प्रतिषेध के अंतर्गत इसका उल्लेख है ।

देवौकस्—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान । सुमेरु पर्वत ।

देव्युन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या रोग ।

विशेष—इस उन्माद में रोगी को पक्षाघात होता है, शरीर सूख जाता है, मुँह और हाथ पाँव टेढ़े हो जाते हैं तथा स्मरण शक्ति जाती रहती है । कहीं कहीं इसे बिलासनी देवी या मायल्या भी कहते हैं ।

देश—संज्ञा पुं० [सं०] १. विस्तार, जिसके भीतर सब कुछ है । दिक् । स्थान ।

विशेष—न्याय या वैशेषिक के अनुसार जिसके आगे पीछे, ऊपर नीचे, उत्तर दक्षिण आदि का प्रत्यय होता है वह देश या दिग्द्रव्य है । काल के समान संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग देश के भी गुण हैं । देश के विभु और एक होने पर भी उपाधिभेद से उत्तर दक्षिण, आगे पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं । देश संबंधी 'पूर्व' और 'पर' का विपर्यय हो सकता है, पर काल संबंधी पूर्वापर का नहीं । पश्चिमी दार्शनिकों में कांट आदि ने देश (और काल) को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है, अंतःकरण का आरोप मात्र कहा है जो वस्तु संबंध ग्रहण के लिये वह अपनी ओर से करता है । दे० 'काल' ।

यौ०—देशकाल ।

२. पृथ्वी का वह विभाग जिसका कोई अलग नाम हो, जिसके अंतर्गत कई प्रांत, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकांश एक जाति के और एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हों । जनपद ।

विशेष—देश तीन प्रकार के होते हैं—जांगल्य, अनूप और साधारण । तीन प्रकार के और देश माने गए हैं—देवमातृक (जिसमें वर्षा ही के जल से खेती आदि के सारे कार्य हों), नदीमातृक और उभयमातृक ।

३. वह भूभाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन अथवा एक शासनपद्धति के अंतर्गत हो । राष्ट्र । ४. स्थान । जगह । ५. शरीर का कोई भाग । अंग । जैसे, स्कंध देश, कटि देश । ६. एक राग जो किसी के मत से संपूर्ण जाति का और किसी के मत से षाड़व (ऋषभवर्जित) है । ७. जैनशास्त्रानुसार चौथा पंचक जिसके द्वारा अर्थानुसंधानपूर्वक तरस्या अर्थात् गुरु, जन, गुहा, श्मशान और रुद्र की वृद्धि होती है ।

देशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपदेश करनेवाला । उपदेशक । उपदेष्टा । २. शासन करनेवाला । शास्ता (को०) । ३. शिक्षक । शिक्षा देनेवाला (को०) । ४. निर्देशक (को०) ।

देशकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें गांधार कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं ।

देशकार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो सबेरे एक दंड से पाँच दंड दिन चढ़े तक गाया जाता है ।

विशेष—यह राग परज, सोरठ और सरस्वती को मिलाने से बनता है । यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है । इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि +

अथवा

ध नि स ऋ ग म प +

देशकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी ।

विशेष—हनुमत के मत से यह मेघ राग की पत्नी है और किसी किसी के मत से हिंडोल राग की पत्नी मानी जाती है । यह संपूर्ण जाति की है । इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि स +

इसके गाने का काल वर्षा ऋतु का निशांत या प्रातःकाल है ।

देशगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देशगान्धार] एक राग जो सबेरे एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता ।

देशचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] देश की प्रथा । रवाज । (को०) ।

देशचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म ।

विशेष—इसके १२ भेद हैं—(१) प्राणातिपात विरमण व्रत । (२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत । (३)- थूल अदत्तदान विरमण व्रत । (४) मैथुन विरमण व्रत । (५) स्थूल परिग्रह विरमण व्रत । (६) दिश परिमाण व्रत । (७) भोगोपभोग विरमण व्रत । (८) अनर्थ दंड विरमण व्रत । (९) सामयिक व्रत । (१०) दिशावकाशिक व्रत । (११) पोषधोपवास व्रत । (१२) अतिथि संविभाग व्रत ।

देशज¹—वि० [सं०] देश में उत्पन्न ।

देशज²—संज्ञा पुं० शब्द के तीन विभागों में से एक । वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृत का अपभ्रंश, बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से यों ही उत्पन्न हो गया हो ।

देशज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] देश का हाल जाननेवाला । देश की दशा, रीति, नीति आदि जाननेवाला ।

देशदूषण—वि० [सं०] देश का कलंक रूप । जिससे देश दूषित हो । उ० —जो लेखक······देश जाति के हिताहित का ध्यान नहीं रखते या परखते वे······देशदूषण ही ठहरते हैं ।—रस क०, पृ० ६ ।

देशद्रोही—वि० [सं० देश+द्रोहिन्] देश के साथ विश्वासघात करनेवाला । उ०—उधर विभीषण ने रावण को पुन: प्रेमवश समझाया । पर उस साधु पुरुष ने उलटा देशद्रोही पद पाया—साकेत, पृ० ३६० ।

देशधर्म संज्ञा पुं० [सं०] देश की रीति नीति, आचार व्यवहार । देश का आचार व्यवहार ।

विशेष—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे ।

देशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश (जैन) ।

देशनिकाला—संज्ञा पुं० [हिं० देश+निकालना] देश से निकाल दिए जाने का दंड ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—होना ।

देशपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] देशकारी रागिनी का दूसरा नाम ।

देशपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० देशपीडन] प्रजा पर अत्याचार । राष्ट्र को हानि पहुँचाना (को०) ।

देशभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] देशहित के लिये सर्वस्व निछावर कर देनेवाला व्यक्ति । वह जो व्यक्तिगत से देशहित को श्रेयस्कर समझे ।

देशभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] देश के प्रति अनुराग । देशप्रेम ।

देशभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भाषा जो किसी देश या प्रांत विशेष में ही बोली जाती हो । जैसे, बंगला, मराठी, गुजराती, इत्यादि ।

देशमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर लगते हैं ।

देशमुख—संज्ञा पुं० [सं०] देश का मुख्य या प्रधान । अगुआ । पथ-प्रवर्तक । उ०—···विरोधियों का यह कहना कि कांग्रेस कदापि देशमुख नहीं हो सकती, अनर्गल है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७२ ।

देशरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देश को शत्रुओं से बचाना । राष्ट्र की बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करना । उ०—भृत्यभरण उपजाप सेना प्रचार देशरक्षा बलाबलज्ञान संचय व्यूह-रचना ।—वर्ण०, पृ० ३ ।

देशराज—संज्ञा पुं० [सं०] आल्हा ऊदल के पिता का नाम जो राजा परमाल (परमर्दिदेव) के सामंतों में थे ।

देशरूप—संज्ञा पुं० [सं०] देश के अनुरूप । औचित्य । मुनासिबत । उपयुक्तता [को०] ।

देशव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी देश की चाल या रस्म । देश विशेष की प्रथा या व्यवहार [को०] ।

देशस्थ¹—वि० [सं०] देश में स्थित । देश में रहनेवाला ।

देशस्थ²—संज्ञा पुं० महाराष्ट्र ब्राह्मणों का एक भेद ।

विशेष—महाराष्ट्र ब्राह्मणों में दो भेद होते हैं—कोंकणस्थ और देशस्थ ।

देशांकी—संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी । हनुमत् के मत से जिसका स्वरग्राम यों है—ग म प ध नी सा ग, अथवा ग म प ध नि सा रे ग ।

देशांतर—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] १. अन्य देश । विदेश । परदेश । २. भूगोल में ध्रुवों से होकर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्व-मान्य मध्य रेखा से पूर्व या पश्चिम की दूरी । लंबांश ।

विशेष—भारतवर्ष में पहले यह मध्य रेखा लंका या उज्जयिनी से सुमेरु तक मानी जाती थी । अब यह यूरप और अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों से गई हुई मानी जाती है । इस मध्य रेखा से किसी स्थान की दूरी उस कोण के अंशों के हिसाब से बतलाई जाती है जो उस स्थान पर से होकर गई हुई रेखा ध्रुव पर मध्य रेखा से मिलकर बनाती है ।

देशांतरित पराय—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तरित पराय] देसावरी माल । विदेशी माल । दूर देश का माल (को०) ।

देशांतरी—वि० [सं० देशांतरिन्] परदेशी । विदेशी [को०] ।

देशांश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देशांतर' ।

देशाका—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी । इसका सरगम यह है—प म प ध नि स + ।

देशाखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से हिंडोल की दूसरी रागिनी है । यह षाडव जाति की है । स्वर गांधार होता है । गाने का समय वसंत ऋतु का मध्याह्न है ।

देशाचार—संज्ञा पुं० [सं०] देश की चाल या देश का व्यवहार ।

देशाटन—संज्ञा पुं० [सं०] देशभ्रमण । भिन्न भिन्न देशों की यात्रा ।

देशातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी अन्य देश से आया हो । परदेशवासी । विदेशी [को०] ।

देशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] बादशाह । सम्राट् । उ०—एक दिन बीरबल देशाधिपति सों रजा लेकर श्री गोकल में दर्शन कुं आयो ।—अकबरी०, पृ० ६१ ।

देशाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] देश का स्वामी। राजा। नृपति। उ०—जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग ढंग बदल जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११।

देशावकाशिक (व्रत)—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक शिक्षाव्रत, जिसमें स्वार्थ के लिये सब दिशाओं में आने जाने का जो प्रतिबंध है उनको और भी संक्षिप्त और कठिन करके पालन किया जाता है।

देशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथिक। बटोही। २. गुरु। शिक्षक। उपदेशक (को०)। ३. निर्देशक (को०)। ४. स्थानीय व्यक्ति (को०)।

देशिक[2]—वि० देश का। देशसंबंधी (को०)।

देशित—वि० [सं०] १. आदेशप्राप्त। आज्ञप्त। २. उपदिष्ट। जिसे उपदेश दिया गया हो।

देशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूची। २. तर्जनी अंगुली।

देशी[1]—वि० [सं० देशीय] १. देश का। देश संबंधी। २. स्वदेश का। अपने देश का। ३. अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ। जैसे, देशी चीनी, देशी माल।

मुहा०—देशी कौवा मरहठी भाषा = देश का होते हुए भी विदेशी आचार विचार की नकल करना। उ०—देशी कौवा मरहठी भाषा बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५६।

देशी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक रागिनी।

विशेष—हनुमत् के मत से यह दीपक राग की भार्या है। इसमें पंचम वर्जित है। इसके गाने का समय ग्रीष्म काल का मध्याह्न है। यह मधुमाधव, सारंग पहाड़ी और टोड़ी के योग से बनी है।

२. संगीत के दो भेदों में से एक।

विशेष—संगीतदर्पण में नाचने, गाने और बजाने तीनों को संगीत कहा है। संगीत दो प्रकार का है—मार्ग अर्थात् शास्त्रीय और देशी अर्थात् देशविशेष का संगीत।

३. तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें अंगविक्षेप अधिक और अभिनय कम होता है।

देशीय—वि० [सं०] दे० 'देशी'।

देशोपकारक—वि० [सं०] देश का उपकार या भला करनेवाला। उ०—कांग्रेस से सब प्रकार का देशोपकारक कार्य होगा।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २३२।

देश्य[1]—वि० [सं०] १. दे० 'देशी[1]'। २. स्थानीय। ३. देश में उत्पन्न होनेवाला (को०)।

देश्य[2]—संज्ञा पुं० १. पूर्व पक्ष। प्रमाणित किया जानेवाला विषय। २. प्रत्यक्षदर्शी। ३. देशवासी।

देष्णु[1]—वि० [सं०] १. उदार। २. धृष्ट। ढीठ (को०)।

देष्णु[2]—संज्ञा पुं० रजक। धोबी (को०)।

देसंतर—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] दे० 'देशांतर'। उ०—तरवर छाना फल नहीं, पिरथी से बनराय। सतगुरु छाना सिख नहीं, दूर देसंतर जाय।—दरिया० बानी, पृ० ३६।

देस—संज्ञा पुं० [सं० देश] दे० 'देश'।

देसकार—संज्ञा पुं० [सं० देशकार] दे० 'देशकार'।

देसदुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० देश + अ० दुनिया] देश दुनियाँ। संसार। जगत्। उ०—अकेली क्यों है, जो देसदुनी का रखवाला है सो तो तेरे पास बैठा है।—शकुंतला, पृ० ५६।

देसपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देशपति] राजा। नृपति।

देसरा†—संज्ञा पुं० [सं० देश + रा (प्रत्य०)] उ०—नहि पावस ओहि देसरा, नहि हेवंत बसंत।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८।

देसवाल—वि० [हिं० देश+वाला] स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं (मनुष्य के लिये)। जैसे, देसवाल बनिया।

देसवाल[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पटसन।

देसांतर—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] दे० 'देशांतर'। उ०—तीति रजनिआँ तिनि जुगे जनिआ दीठिहुक ओत देसांतर रे।—विद्यापति०, पृ० ६८।

देसाधिपति—संज्ञा पुं० [सं० देशाधिपति] देश का स्वामी। राजा। उ०—पाछें देसाधिपति सों मिलि कै गोधरा के हाकिम को पट्टा बढ़ाई कै गोधरा में आए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६।

देसावर—संज्ञा पुं० [सं० देश+अपर] अन्य देश। विदेश। परदेस। देशांतर। जैसे, देसावर का माल।

देसावरी—वि० [हिं० देसावर + ई (प्रत्य०)] देसावर का। दूसरे देश से आया हुआ (वस्तु या माल के लिये)। जैसे, देसावरी माल।

देसिल(पु)†—वि० [सं० देशीय] देशी। उ०—देसिल बयना सब जन मिट्ठा। तं तैसन जंपओ अवहट्टा।—कीर्ति०, पृ० ६।

देसी—वि० [सं० देशीय] स्वदेश का। दूसरे देश का नहीं। जैसे, देसी आदमी, देसी माल।

देहंभर—वि० [सं० देहम्भर] अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला।

देह[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० देही] २. शरीर। तन। बदन। उ०—(क) नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपराध बिना ऋषि देह धरी।—केशव (शब्द०)। (ग) है हिय रहति हई छई नई युक्ति यह जोय। आँखिन आँखि लगी रहै देह दूबरो होय।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—शरीर आरंभ काल में कुछ दिनों तक बराबर बढ़ता है इससे उसका नाम देह (दिह = वृद्धि) है। न्याय के मत से पार्थिव देह दो प्रकार की होती है योनिज और अयोनिज। जरायुज और अंडज योनिज तथा स्वेदज और उद्भिज्ज अयोनिज कहलाते हैं। शुक्र शोणित आदि की योजना से स्वतंत्र अलौकिक देह को (जैसे, नारद आदि की) भी अयोनिज कहते हैं। इसी प्रकार सांख्य आदि के मत से स्थूल

और सूक्ष्म आदि भी शरीर के भेद माने गए हैं। विशेष दे० 'शरीर'।

मुहा०—देह छूटना = जीवन समाप्त होना। मृत्यु होना। देह छोड़ना = मरना।—उ०—मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा।—तुलसी (शब्द०)। देह धरना = जन्म लेना। उ०—देह धरे कर यह फल पाई। भजहु राम सब काम बिहाई।—तुलसी (शब्द०)। देह लेना = दे० 'देह धरना'। देह बिसारना = तन की सुधि न रखना। होश हवास न रखना।

२. शरीर का कोई अंग। ३. जीवन। जिंदगी। उ०—(क) सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।—तुलसी (शब्द०)। ४. विग्रह। मूर्ति। चित्र।

देह²—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाँव। खेड़ा। मौजा। जैसे, गंगा अहीर, साकिन देह···।

यौ०—देहकान। देहात।

देहकर—संज्ञा पुं० [सं०] जनक। पिता [को०]।

देहकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० देहकर्तृ] १. पिता। २. सूर्य। ३. पंच महाभूत (क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और वायु)। ४. ईश्वर [को०]।

देहकान—संज्ञा पुं० [फ़ा० देहक़ान] १. किसान। कृषक। २. गँवार। ग्रामीण।

देहकानियत—संज्ञा स्त्री० [अ० देहक़ानियत] देहातीपन। गँवारपन [को०]।

देहकानी—वि० [फ़ा० देहक़ानी] गँवारू। ग्रामीण।

देहकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. पंच महाभूत [को०]।

देहकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चमड़ा। २. पंख। पक्ष। [को०]।

देहज—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

देहजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। कन्या [को०]।

देहत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहद—संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

देहदीप—संज्ञा पुं० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

देहदसा—संज्ञा स्त्री० [सं० देह + दशा] देह की अवस्था। शरीर की दशा। शरीरस्थिति। उ०—सो यह पालने को भाव रँडा सुनिके देहदसा भूलि गए।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७२।

देहधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा। २. शरीर को धारण करनेवाला। ३. अस्थि। हाड़।

देहधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीररक्षा। जीवनरक्षा। २. जन्म।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहधारी—संज्ञा पुं० [सं० देहधारिन्] [स्त्री० देहधारिणी] शरीर को धारण करनेवाला। जिसे शरीर हो। शरीरी।

देहधि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। चिड़ियों का पंख। डैना।

देहधृक—संज्ञा पुं० [सं० देहधृज्] दे० 'देहधृज्'।

देहधृज्—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर को धारण करनेवाला) वायु।

देहपात—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत।

क्रि० प्र०—होना।

देहपुर†ⓟ—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। कायागढ़। उ०—करत पयान जपत वह नाऊँ। लिहे न बसेर देहपुर गाऊँ।—इंद्रा०, पृ० २६।

देहबंध—संज्ञा पुं० [सं० देहबन्ध] शरीर का ढाँचा [को०]।

देहभाक्—संज्ञा पुं० [सं० देहभाज्] १. शरीरधारी। २. मनुष्य [को०]।

देहभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देहभुज्' [को०]।

देहभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देहाभिमानी जीव। २. सूर्य।

देहभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव।

देहयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीररूपी छड़ी। उ०—देहयष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखंड टुकड़े से यत्नपूर्वक खोदाई कर गढ़ी थी।—वै० न०, पृ० २०।

देहयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मरण। मृत्यु। २. भरण पोषण। पालन। ३. भोजन।

देहर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० देवह्लद] वह नीची भूमि जो किसी नदी के किनारे हो और जहाँ नदी के बढ़ने पर पानी आ जाता हो।

देहर²—संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] दे० 'देहरा'। उ०—रहस के देहर माव बाज्या। एहि कारण भेख जटा धारि निकस्या। जा उथान माम पकरि रह्या।—रामानंद०, पृ० १६।

देहरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० देव + घर] देवावास। देवालय। उ०—(क) नेव बिहूना देहरा, देव बिहूना देव। कबिरा तहाँ बिलंबिया करे अलख की सेव।—कबीर (शब्द०)। (ख) दरसे वा सुभ देहरो रामो पीर उदार।—रा० रू०, पृ० ३०५।

देहरा²—संज्ञा पुं० [हिं० देह + रा (प्रत्य०)] नरशरीर। नरदेह। उ०—कोठे ऊपर दौरना सुख नींदरी न सोय। पुण्ये पाया देहरा ओछी ठौर न खोय।—कबीर (शब्द०)।

देहरिⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहरी'। उ०—संगहि सखिए, सुत देहरि अइसुरे। कइसे कए बाहर होएत बाजत नेपूरे।—विद्यापति, पृ० १५३।

देहरिया†ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० देहली] दे० 'देहरी' उ०—समधिन की तो अतिहि चिकनी फिसिल फिसिल सब जात। देहरिया रँग भीनि रही जहँ प्रविसत सबै बरात।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७९।

देहरी†ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १. द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँघते हुए लोग भीतर घुसते हैं। दहलीज। उ०—(क) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार।—तुलसी (शब्द०) (ख) एक पग भीतर सु एक

देहरी पै धरे, एक कर कंज एक कर है किंवार पर।—पद्माकर (शब्द०)। २ दे० 'देहुर'।

देहलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का तिल [को०]।

देहला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर को पुष्टि देनेवाली) मदिरा। शराब।

देहली—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार की चौखट की वह लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँघकर लोग भीतर घुसते हैं। दहलीज।

देहलीदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देहली पर रखा हुआ दीपक जो भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है।

यौ०—देहलीदीपक न्याय = देहली पर रखे हुए दोनों ओर प्रकाश फैलानेवाले दीपक के समान दोनों ओर लगनेवाली बात।

२. एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक मध्यस्थ शब्द का अर्थ दोनों ओर लगाया जाता है। उ०—ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहलाद को संकट भारी। दास विभीषणै लंक दई निज रंक सुदामा को संपति भारी। द्रोपदी चीर बढ़ायो जहान में पांडव के जस की उजियारी। गर्विन के खनि गर्व बहावत दीनन के दुख श्री गिरधारी।—(शब्द०)।

विशेष—ऊपर लिखे हुए सवैए के प्रत्येक चरण में यह अलंकार है। हन्यो, दई, बढ़ायो और बहावत शब्दों का अर्थ दोनों ओर लगता है। इस अलंकार का लक्षण यह है—परे एक पद बीच में दुहु दिस लागे सोय। सो है दीपक देहरी जानत हैं सब कोय।

देहवंत[1]—वि० [सं० देहवत् का बहुव०] जिसके देह हो। जो तनुधारी हो। उ०—(क) देहवंत प्राणी जो कसकवंत होतो कहूँ सोने में सुगंध के सराहिबे को को हुतो।—ठाकुर (शब्द०)। (ख) नाक नथुनो के गज मोतिन की आभा, कैधौं देहवंत प्रगटित हिये को हुलास है।—(शब्द०)।

देहवंत[2]—संज्ञा पुं० वह जो शरीरवान् हो। शरीरधारी व्यक्ति। प्राणी। शरीरी। उ०—संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए।—तुलसी (शब्द०)।

देहवान्[1]—वि० [सं०] शरीरधारी।

देहवान्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीरधारी व्यक्ति। देही। २. सजीव प्राणी।

देहशंकु—संज्ञा पुं० [सं० देहशङ्कु] पत्थर का खंभा।

देहशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर को शुद्ध करने की प्रक्रिया। देहशुद्धि। उ०—मलसंचय को मुखवास द्वारा ऊपर को अथवा गुद द्वारा नीचे को निकाल दे, तिसको देहशोधन कहते हैं।—शार्ङ्गधर सं०, पृ० ३७।

देहसंचारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहसञ्चारिणी] कन्या। लड़की।

देहसार—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा धातु।

देहांत—संज्ञा पुं० [सं० देहान्त] मृत्यु। मरण। मौत।

क्रि० प्र०—होना।

देहांतर—संज्ञा पुं० [सं० देहान्तर] १. दूसरा शरीर। २. दूसरे शरीर की प्राप्ति। जन्मांतर। उ०—बहुरयो ताहि पोहिनी बने। देहांतर बिनु कैसें बने।—नंद० ग्रं०, पृ० २११। ३. मृत्यु। मरण।

यौ०—देहांतरप्राप्ति = मृत्यु के अनंतर आत्मा का दूसरे शरीर को प्राप्त करना।

देहात—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० देहाती] गाँव। गँवई। ग्राम।

देहाती—वि० [फ़ा० देहात] १. गाँव का। गाँव में होनेवाला। जैसे, देहाती चीज। २. गाँव में रहनेवाला। ग्रामीण। ३. गँवार।

देहातीपन—संज्ञा पुं० [हिं० देहाती + पन] देहाती होने का भाव। ग्रामीण होने का भाव। गँवारपन।

देहातीत—वि० [सं०] १. जो शरीर से परे हो। जो देह से परे हो। जो देह से स्वतंत्र हो। २. जिसे देहाभिमान न हो। जिसे शरीर की ममता न हो।

देहात्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक दार्शनिक सिद्धांत। चार्वाक मत [को०]।

देहात्मवादी—संज्ञा पुं० [सं० देहात्मवादिन्] वह जो शरीर के अतिरिक्त आत्मा को न माने शरीर ही को आत्मा माने, जैसा चार्वाक मानता है।

देहाध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] देहधर्म को ही आत्मा समझने का भ्रम। देह या शरीर का मिथ्या ज्ञान। उ०—देहाध्यास इनको व्यापी नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४५।

देहानुसंधान—संज्ञा पुं० [सं० देहानुसन्धान] शरीर की सुध बुध। उ०—सो देहानुसंधान न रह्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११।

देहावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कवच। जिरह बकतर। २. शरीर रूपी आवरण। ३. अँगरखा। वस्त्र [को०]।

देहावसान—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। देहांत। शरीरांत। उ०—देहावसान सबसे अधिक निश्चित एक भीषण तथ्य है।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ६६।

देहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कीड़े का नाम।

देही—संज्ञा पुं० [सं० देहिन्] (देह को धारण करनेवाला) जीवात्मा। आत्मा।

विशेष—देह चैतन्य नहीं है पर देही चैतन्य है। आत्मा देह के आश्रय से सुख दुःख आदि का भोगनेवाला होता है। पर शुद्ध देही नित्य, अवध्य आदि है। वि० दे० 'आत्मा', 'जीवात्मा'।

देहुरा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'देहरा'। उ०—नीव बिहूणा देहुरा देह बिहूणा देव। कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलख की सेव।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१।

देहेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] देहाधिष्ठाता आत्मा।

दैंत‡—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—रावण सहत चल्यौ सब राखस वाकण दैंत वहल्ले।—रघु० रू०, पृ० ६५।

देंती†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दरांती'।

दै†—प्रत्य० [हिं०] से । उ०—झट दै उचकि लियो गिरि ऐसे । साँप बेठना को सिसु जैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०८ ।

दैउ(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव' । उ०—सुनि अस लिखा उठा जरि राजा । जानो दैउ तड़पि घन गाजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दैजा†—संज्ञा पुं० [हिं० दायजा] दे० 'दहेज', 'दायजा' ।

दैत—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य' । उ०—नहिं हरिनाकुस उदर बिदारा । दैत अनेग नहि छलि छलि मारा ।—सं० दरिया, पृ० ४ ।

दैतेय¹—वि० [सं०] दिति से उत्पन्न ।

दैतेय²—संज्ञा पुं० १. दिति की संतान । दैत्य । २. राहु का एक नाम ।

यौ०—दैतेयगुरु, दैतेयपुरोधा, दैतेयपूज्य = दे० 'दैत्यपुरोधा' । दैतेयनिपूदन = विष्णु । दैतेयमाता = दे० 'दैत्यमाता' । दैतेय मेदजा = पृथिवी का नाम ।

दैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिति की संतति । कश्यप के वे पुत्र जो दिति नाम्नी स्त्री से पैदा हुए थे । असुर । २. लंबे डील या असाधारण बल का मनुष्य । जैसे,—वह पूरा दैत्य है । ३. अति करनेवाला आदमी । जैसे,—वह खाने में दैत्य है । ४. दुराचारी । नीच । दुष्ट व्यक्ति । ५. लोहा ।

दैत्यगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य ।

दैत्यदेव—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के देवता—१. वरुण । २. वायु ।

दैत्यद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड के पुत्रों में से एक (महाभारत) ।

दैत्यधूमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी की तांत्रिक उपासना में एक मुद्रा जिसमें उल्टी हथेलियों को मिलाकर विशेष उँगलियों को एक दूसरे से फँसाते हैं ।

दैत्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के अधिपति—१. हिरण्यकशिपु । २. प्रह्लाद । ३. बलि (भागवत) ।

दैत्यपुरोधा—संज्ञा पुं० [सं० दैत्यपुरोधस्] दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य ।

दैत्यमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० दैत्यमातृ] दैत्यों की माता दिति ।

दैत्यमेदज—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुग्गुल । गूगल ।

दैत्यमेदजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरित्री । दैतेय मेदजा ।

विशेष—पुराणानुसार पृथिवी को उत्पत्ति मधुकैटभ की मज्जा से कही गई है ।

दैत्ययुग—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का युग जो देवताओं के १२ हजार बरसों या मनुष्यों के चार युगों के बराबर होता है ।

दैत्यसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजापति की एक कन्या ।

विशेष—यह देवसेना की बहन थी और केशी दानव को बहुत चाहती थी । केशी इसे हर ले गया था और उसने इसके साथ विवाह किया था ।

दैत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दैत्य जाति की स्त्री । २. मुरा । कपूर कचरी । ३. चंडोषधि । ४. मद्य । मदिरा ।

दैत्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के शत्रु—१. विष्णु । २. इंद्र । ३. देवता मात्र ।

दैत्याहोरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों का एक रात दिन जो मनुष्य के वर्ष के बराबर होता है ।

दैत्येंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दैत्येन्द्र] १. दैत्यों का राजा । २. गंधक ।

दैत्येज्य—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ।

दैधिषव्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

दैनंदिन¹—वि० [सं० दैनन्दिन] प्रतिदिन का । दिन दिन होनेवाला । नित्य का ।

दैनंदिन²—क्रि० वि० १. प्रतिदिन । रोज रोज । २. दिनों दिन ।

दैनंदिनी¹—संज्ञा पुं० [सं० दैनन्दिन] पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है । मोहरात्रि ।

दैनंदिनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० दैनन्दिन + हिं० ई (प्रत्य०)] प्रति दिन का कार्य व्यापार आदि लिखने की पुस्तिका । डायरी । रोजनामचा ।

दैन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीन होने का भाव । दीनता । २. शोक । दुःख । पश्चात्ताप (को०) । ३. निम्नता । नीचता (को०) । ४. निर्बलता (को०) ।

दैन²—वि० [सं०] दिन संबंधी ।

दैन³—संज्ञा स्त्री० [हिं० देना] दे० 'देय' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में विशेषणवत् भी होता है जैसे,—सुखदैन—सुख देनेवाला । उ०—नैन सुखदैन मन मैन मलय लेखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दैन—संज्ञा पुं० [अ०] ऋण । कर्ज । उ०—बंदगी होय उसकी सब पर फर्ज ऐन । खल्क ऊपर ज्यों सर बसर मानिंद दैन ।—दक्खिनी०, पृ० १९३ ।

दैनिक¹—वि० [सं०] १. प्रतिदिन का । रोज रोज का । २. जो रोज हो । नित्य होनेवाला । ३. जो एक दिन में हो । ४. दिन संबंधी ।

दैनिक²—संज्ञा पुं० एक दिन का वेतन । रोजाना मजदूरी ।

दैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीनता । दरिद्रता । २. गर्व या अहंकार के प्रतिकूल भाव । विनीत भाव । अपने को तुच्छ समझने का भाव । ३. काव्य के संचारी भावों में से एक, जिसमें दुःखादि से चित्त अति नम्र हो जाता है । कातरता ।

दैय†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव' । उ०—सिंघल दीप राज घर बारी । महा सरूप दैय अवतारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५५ ।

दैयत—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दैत्य । दानव । राक्षस । असुर । उ०—(क) वह हरी हठि हरिनाक्ष दैयत दलि सुंदर देह सो । —केशव (शब्द०) । (ख) आपन ही रँग रच्यो साँवरो शुक ज्यों बैठि पढ़ावै । दासी हुती असुर दैयत की अब कुलवधू कहावै । —सूर (शब्द०) ।

दैया†¹—संज्ञा पुं० [हिं० दई] दई । दैव ।

मुहा०—दैयन के = दई दई करके । किसी प्रकार । कठिनता से ।

दैया[2]—अव्य० आश्चर्य, भय या दुःखसूचक शब्द जिसे स्त्रियाँ बोलती हैं। हे दई! हे परमेश्वर! उ०—बूझिहैं चवैया तब कहौं कहा, दैया! इत पारिगो को, मैया, मेरी सेज पै कन्हैया को।—पद्माकर (शब्द०)।

दैया[3]—संज्ञा स्त्री० दे० 'दाई'।

दैयागति‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दैवगति'।

दैर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] इबादतगाह। देवमंदिर (को०)।

यौ०—दैरोहरम = मंदिर और मस्जिद। उ०—दैरो हरम को इबादत को क्यों मुझसे छुड़वाया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६१।

दैर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैर्घ्य' (को०)।

दैर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घता। लंबाई। बड़ाई।

दैव[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दैवी] १. देवता संबंधी। जैसे, दैव कार्य, दैवश्राद्ध। २. देवता के द्वारा होनेवाला। जैसे, दैवगति, दैवघटना। ३. देवता को अर्पित।

दैव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह आँखें बंद करके चारों ओर देखता है (मार्कंडेय पुराण)। २. वह अर्जित शुभाशुभ कर्म जो फल देनेवाला हो। प्रारब्ध। अदृष्ट। भाग्य। होनेवाली बात या फल। होनी।

विशेष—मत्स्यपुराण में जब मनु ने मत्स्य से पूछा कि दैव और पुरुषकार दोनों में कौन श्रेष्ठ है, तब मत्स्य ने कहा—'पूर्व जन्म के जो भले बुरे अर्जित कर्म रहते हैं वे ही वर्तमान जन्म में दैव या भाग्य होते हैं। दैव यदि प्रतिकूल हो तो पौरुष से उसका नाश भी हो सकता है। यदि पूर्व जन्म के कर्म अच्छे हों तो भी बिना पौरुष के वे कुछ भी फल नहीं दे सकते अतः पौरुष श्रेष्ठ है।

यौ०—दैवगति। दैवज्ञ।

२. विधाता। ईश्वर। जैसे,—दुर्बल को दैव भी सताता है।

मुहा०—(किसी को) दैव लगना = (किसी पर) ईश्वर का कोप होना। बुरे दिन आना। शामत आना।

३. आकाश। आसमान।

मुहा०—दैव बरसना = मेंह बरसना। पानी बरसना।

४. एक प्रकार का श्राद्ध। दैवश्राद्ध (को०)। ५. दे० 'दैवतीर्थ' (को०)।

दैवकृत—वि० [सं०] दे० 'दैवी'।

दैवकृतदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य द्वारा कथित वह स्थान जो प्राकृतिक रूप से ही दुर्ग के समान दृढ़ और चारों ओर रक्षित हो।

दैवकोविद—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का विषय जाननेवाला। २. दैवज्ञ। ज्योतिषी।

दैवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वरीय बात। दैवी घटना। २. भाग्य। कर्म। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दैवचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० दैवचिन्तक] ज्योतिषी।

दैवज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दैवज्ञा] १. ज्योतिषी। गणक। २. बंग देश में ब्राह्मणों की एक जाति।

दैवतंत्र—वि० [सं० दैवतन्त्र] भाग्याधीन।

दैवत[1]—वि० [सं०] देवता संबंधी।

दैवत[2]—संज्ञा पुं० १. देवता संबंधी प्रतिमा आदि। २. देवता। ३. निरुक्त का वह भाग जिससे वेदमंत्रों के देवताओं का परिचय होता है।

दैवतपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दैवत-संयोग-ख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवी देवता के साथ संबंध प्रसिद्ध करना। यह बात फैलाना कि हमें अमुक देवता इष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है या युद्ध में अमुक देवता हमारी सहायता पर है।

विशेष—कौटिल्य ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साहित करने के लिये यह नीति या ढंग बतलाया है। उसने कई प्रयोग कहे हैं। सुरंग के द्वारा देवमूर्ति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सहसा प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्सी में बँधी कोई वस्तु तैरा कर फिर उसे गायब कर देना।

दैवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करने में उँगलियों के अग्रभाग का नाम। उँगलियों की नोक।

दैवत्त(पु)[1]—वि० [सं० दैवत] देवतुल्य। देवसदृश। उ०—दैवत्त बाँह द्रिग कमल रूप। अनपुच्छ लोह जानियै भूप।—पृ० रा०, १२।२०।

दैवत्त[2]—संज्ञा पुं० [सं० दैवत या दैवत्य] दैव। भाग्य। देवता। उ०—जब दैवत्त दिवाइहै तब सच्चा मुक्ख बैन। मृगतिस्ना ज्यों देखिये, प्यास न बुझ्झै नैन।—पृ० रा०, १७।२६।

दैवत्य—संज्ञा पुं० [सं०] देव। देवता (को०)।

दैवदत्त—वि० [सं०] नैसर्गिक। प्राकृतिक (को०)।

दैवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्र। आँख (को०)।

दैवदुर्विपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दैव की प्रतिकूलता। भाग्य की खोटाई।

दैवदोष—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य। भाग्य दोष (को०)।

दैवपर—वि० [सं०] भाग्य को सब कुछ माननेवाला। भाग्यवादी।

दैवप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे।

विशेष—चाणक्य के मत से ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए। निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा कष्ट देंगे।

दैवप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. भविष्य कथन। २. ज्योतिष। ३. देववाणी। आकाशवाणी। ४. भविष्य संबंधी शुभाशुभ की जिज्ञासा (को०)।

दैवयुग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का युग, जो मनुष्यों के चारों युगों के बराबर होता है।

विशेष—मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक रात दिन होता है।

दैवयोग—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का आकस्मिक फल। संयोग। इत्तिफाक। जैसे,—दैवयोग से वह हमें मार्ग ही में मिल गया।

दैवल—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवल ऋषि की संतति। २. दे० 'दैवलक' (को०)।

दैवलक—संज्ञा पुं० [सं०] भूतसेवक। भोत। प्रेतपूजक [को०]।

दैवलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का वर्ष जो १३१५२१ सौर दिनों का होता है।

दैववश—क्रि० वि० [सं०] संयोग से। दैवयोग से। अकस्मात्। कदाचित्।

दैववशात्—क्रि० वि० [सं०] दे० 'दैववश'।

दैववाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाशवाणी। २. संस्कृत।

दैववादी—संज्ञा पुं० [सं० दैववादिन्] १. भाग्य के भरोसे रहनेवाला। पुरुषार्थ न करनेवाला। २. आलसी। निरुद्योगी।

दैववद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में लिखे आठ प्रकार के विवाहों में से एक।

विशेष—ज्योतिष्टोम आदि बड़ा यज्ञ करनेवाला यदि उसी यज्ञ के समय ऋत्विज या पुरोहित को अलंकृत कन्या दान करे तो यह दैवविवाह हुआ।

दैवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्राद्ध जो देवताओं के उद्देश्य से हो।

दैवसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की सृष्टि।

विशेष—सांख्य कारिका में कहा है कि इसके अंतर्गत आठ भेद हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐंद्र, पैत्र, गांधर्व, यक्ष, राक्षस और पैशाच।

दैवहीन—वि० [सं०] भाग्यहीन। अभागा। दुर्भाग्यग्रस्त [को०]।

दैवाकरि—संज्ञा पुं० [सं०] दिवाकर अर्थात् सूर्य के पुत्र—१. यम, २. शनि।

दैवाकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) यमुना नदी।

दैवागत—वि० [सं०] दैवी। आकस्मिक। सहसा होनेवाला।

दैवात्—क्रि० वि० [सं०] अकस्मात्। दैवयोग से। इत्तिफाक से। अचानक। उ०—दैवात्, दो तीन वर्ष यदि उक्त कारणों से किसान को कुछ न मिला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६८।

दैवात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] दैवकृत उत्पात। अचानक आपसे आप होनेवाला अनर्थ।

दैवाधीन—वि० [सं०] भाग्य के अधीन। दैवतंत्र [को०]।

दैवायत्त—वि० [सं०] दे० 'दैवाधीन' [को०]।

दैवारिप—संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

दैवाहोरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का दिन। देवताओं का रात दिन [को०]।

दैविक—वि० [सं०] १. देवता संबंधी। देवताओं का। जैसे, दैविक श्राद्ध। २. देवताओं का किया हुआ। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहुइ नहिं व्यापा।—तुलसी (शब्द०)।

दैवी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. देवता संबंधिनी। २. देवताओं की की हुई। जैसे, दैवी लीला। ३. आकस्मिक। प्रारब्ध या संयोग से होनेवाली। जैसे, दैवी घटना। ४. सात्विक। जैसे, दैवी संपत्ति।

दैवी[2]—संज्ञा स्त्री० १. दैव विवाह द्वारा ब्याही हुई पत्नी। २. एक वैदिक छंद।

दैवी[3]—संज्ञा पुं० [सं० दैविन्] ज्योतिषी। गणक [को०]।

दैवी गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वर की की हुई बात। २. प्रारब्ध। भावी। होनहार। अदृष्ट।

दैव्य[1]—वि० [सं०] देवता संबंधी।

दैव्य[2]—संज्ञा पुं० १. दैव। २. भाग्य।

दैशिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दैशिकी] १. देश संबंधी। राष्ट्रीय। २. स्थानीय। ३. प्रदर्शक। बतानेवाला।

दैशिक[2]—संज्ञा पुं० १. गुरु। विद्यादान करनेवाला। २. राह दिखानेवाला। पथप्रदर्शक [को०]।

दैष्टिक[1]—वि० [सं०] भाग्य में लिखा हुआ। बदा हुआ [को०]।

दैष्टिक[2]—संज्ञा पुं० नियतिवादी। भाग्य पर विश्वास रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

दैहिक—वि० [सं०] १. देह संबंधी। शारीरिक। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा।—तुलसी (शब्द०)। २. देह से उत्पन्न।

दैह्य[1]—वि० [सं०] देह संबंधी। दैहिक [को०]।

दैह्य[2]—संज्ञा पुं० आत्मा। रूह [को०]।

दोंकना†—क्रि० अ० [देश०] गुर्राना।

दोंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] धौंकनी।

दोंगा—संज्ञा पुं० [हिं० द्विरागमन] दे० 'गौना'।

दोंचा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोंच] दे० 'दोच'।

दोंचना—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबोचना या दोचना] दे० 'दोचना'।

दोंचना†—क्रि० स० [हिं० दोचन] दबाव में डालना। उ०—तंदुल माँगि दोंचि के लाई सो दीन्हों उपहार।—सूर (शब्द०)। २. दबा देना। दबाना।

दोंर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

दोः—संज्ञा पुं० [सं० दोस्] भुजा। बाहु [को०]।

दो—वि० [सं० द्वि] एक और एक। तीन से एक कम।

मुहा०—दो एक = कुछ। थोड़े। जैसे,—उनसे दो एक बातें करके चले आवेंगे। दो गाल हँसने बोलने का मौका मिलना = दो चार बातें कर लेने का सुअवसर प्राप्त करना। उ०—अब्बासी—(अपने दिल में) खुदा करें आएं। दो गाल हँसने बोलने का मौका मिले।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४०। (आँखें) दो चार होना = सामना होना। उ०—दो चार अब

तुझसे क्यों कर होए हमचश्मी के दावे से।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४३। दो दिन का = बहुत ही थोड़े समय का। दो दो दाने को फिरना = बहुत ही दरिद्र दशा में दूसरों से माँगते हुए फिरना। दो दो बातें करना = संक्षिप्त प्रश्नोत्तर करना। कुछ बातें पूछना और कहना। दो नावों पर पैर (पाँव) रखना = दो पक्षों का अवलंबन करना। दो पदार्थों का आश्रय लेना। उ०—दुइ तरंग दुइ नाव पावँ धरि ते कहि कवन न मूठे।—सूर (शब्द०)। किसके दो सिर हैं? = किसे फालतू सिर है? किसमें असंभव सामर्थ्य है। कौन इतना समर्थ है कि मरने से नहीं डरता। उ०—अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर, केहि जम चह लीन्हा?—तुलसी (शब्द०)।

दोग्रक्खी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + आँख] भेद दृष्टि। एक नजर से न देखना। भेदभाव का बरताव करना। उ०—अभी घंटे भर वहाँ बैठे चिकनी चुपड़ी बातें करते रहे तो नहीं देर हुई, मैं क्षण भर को बुलाती हूँ तो भागे जाते हो। इसी दोग्रक्खी की तो तुम्हें सजा मिल रही है।—काया०, पृ० १२१।

दोग्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० दुआ] दे० 'दुआ'। उ०—फेरि दोग्रा पढ़ि, आमुखता सुनि, सबक पढ़ावै।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २१८।

दोग्रातशा—वि० [फ़ा०] जो दो बार भभके में खींचा या चुआया गया हो। दो बार का खींचा या उतारा हुआ। जैसे, दो आतशा शराब, दो आतशा गुलाब।

विशेष—एक बार अर्क या शराब आदि खींच चुकने पर कभी कभी उसको बहुत तेज करने के लिये फिर से खींचते या चुआते हैं। ऐसे ही अर्क या शराब आदि को दोआतशा कहते हैं।

दोग्राब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दो नदियों के बीच का प्रदेश। किसी देश का वह भाग जो नदियों के बीच में पड़ता हो।

दोग्राबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोआब] दे० 'दोआब'।

दोइ[1]—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दो'। उ०—द्वै दल जाइ दोइ में कीन्हा।—घट०, पृ० २३७।

दोइ[2]—संज्ञा पुं० दे० 'दो'।

दोइत, दोइति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वैत] द्वैत। दो का भाव। दुविधा। उ०—गुरु चेला दोइत विधि साजा।—घट०, पृ० ११२। (ख) साध हमारी आतमा हम साधन के दास। पलटू जो दोइति करै होय नरक में बास।—पलटू०, भा० ३, पृ० १०६।

दोई—वि० [देश०] दे० 'दोइ'[1]। उ०—नौलख कँवल पार दल दोई परे चारि दल सोई हो।—घट०, पृ० ३३।

दोउ(पु)†—वि० [हिं० दो] दोनों।

दोऊ(पु)†—वि० [हिं० दो] दोनों।

दोक—संज्ञा पुं० [हिं० दो + का (प्रत्य०)] दो वर्ष की उम्र का बछेड़ा।

दोकड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोकरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोकला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + कल] १. दो कल या पेंचवाला ताला। वह ताला जिसके अंदर दो कलें या पेंच होते हैं। २. एक प्रकार की मजबूत बेड़ी।

दोकोहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+कोह (= कूबर)] दो कूबरवाला ऊँट। वह ऊँट जिसकी पीठ पर दो कूबर हों।

दोखंभा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + खंभा] एक प्रकार का नैचा जिसमें कुल्फी नहीं होती। यह नैचा काटकर लोहे की कमानी पर बनाया जाता है।

दोख(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष'। उ०—चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

दोखना(पु)†—क्रि० स० [हिं० दोष + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना। ऐब लगाना।

दोखी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० दोष] १. दे० 'दोषी'। २. ऐबी। जिसमें कोई ऐब हो। ३. शत्रु। द्वेषी। बैरी (डिं०)।

दोगंग—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + गंगा] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दोगंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + गंडी = (गोल घेरा या चिह्न)] १. वह चित्तो या इमली का चीआँ जिसे लड़के जुआ खेलने में बेईमानी करने के लिये दोनों ओर से घिस लेते हैं और जिसके दोनों ओर का काला अंश निकल जाता और सफेद अंश निकल आता है। २. झगड़ा बखेड़ा करनेवाला मनुष्य। फसादी। उत्पाती। उपद्रवी।

दोगर†—संज्ञा पुं० [हिं० डूंगर (= पहाड़ी)] दुग्गर देश का निवासी जिसे डोगरा कहते हैं।

दोगला—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोगलह्] [स्त्री० दोगली] १. वह मनुष्य जो अपनी माता के असली पति से नहीं बल्कि उसके यार से उत्पन्न हुआ हो। जारज। २. वह जीव जिसके माता पिता भिन्न भिन्न जातियों के हों। जैसे, देशी और विलायती से उत्पन्न दोगला कुत्ता।

दोगला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + कल] बाँस की कमचियों का बना एक गोल और कुछ गहरा (टोकरी का सा) पात्र जिससे किसान लोग पानी उलीचते हैं।

दोगा—संज्ञा पुं० [सं० द्विक, हिं० दुक्का] १. एक प्रकार का लिहाफ जो मोटे देशी कपड़े पर बेल बूटे छापकर बनाया जाता है। उ०—दोगा पहुरे लाल बनात का कनपोट दिए···उन्हीं के पीछे खड़ा था।—श्यामा०, पृ० १४५। २. पानी में घोला हुआ चूना जिससे सफेदी की जाती है।

दोगाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + गाड़ (= गड्ढा)?] दोनली बंदूक।

दोगुना—वि० [हिं०] दे० 'दुगना'।

दोगार्ड—वि० [देशी] जोड़ा। जुड़वाँ। युग्मक।—देशी०, पृ० २०३।

दोचंद—वि० [फ़ा०] दुगना।

दोच—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबोच] १. दुबधा। असमंजस। २. कष्ट। दुःख। उ०—मनहि यह परतीत आई दूरि हरिहौ दोच। सूर

प्रभु हिलि मिलि रहौंगी लाज डारौं मोच ।—सूर (शब्द०) । ३. दबाव । दबाए जाने का भाव ।

दोचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबोचन] १. दुबधा । असमंजस । २. दबाव में पड़ने का भाव । ३. कष्ट । दुःख । उ०—भवन मोहिं भाटी सो लागत मरत सोचही सोचन । ऐसी गति मेरी तुम आगे करत कहा जिय दोचन ।—सूर (शब्द०) ।

दोचना—क्रि० स० [हिं० दोच] दबाव डालना । कोई काम करने के लिये बहुत जोर देना ।

दोचल्ला—संज्ञा पुं० [हिं० दो + चल्ला (= पल्ला) ?] वह छाजन जो बीच में उभरी हुई और दोनों ओर ढालुई हो । दोपलिया छाजन ।

दोचित्ता—वि० [हिं० दो + चित्त] [वि० स्त्री० दोचित्ती] जिसका चित्त एकाग्र न हो, दो कामों या बातों में बँटा हो । उद्विग्न-चित्त ।

दोचित्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + चित्त] दोचित्त होने का भाव । चित्त की उद्विग्नता । ध्यान का दो कामों या बातों में बँटा रहना ।

दोचोबा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + फ़ा० चोब] वह बड़ा खेमा जिसमें दो दो चोबें लगती हों ।

दोज[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] पक्ष की द्वितीया तिथि । दूज । उ०—दोज ससी ज्यों प्रेम, राजत स्याम चकार में । भाग्यो मीत जु नेम, ता ऊपर हो देख ले ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दोज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में अष्टताल का एक भेद ।

दोजई—संज्ञा स्त्री० [देश०] नक्काशों का एक औजार जो गोलाकार वृत्त बनाने के काम में आता है । यह छेनी के आकार का होता है ।

दोजक—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोज़ख] दे० 'दोजख'। उ०—माल लेवूँ तो दोजक पड़ूँ, दीन छोड़ दुनियाँ को भरूँ ।—दक्खिनी०, पृ० २० ।

दोजकि(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोज़ख] दे० 'दोजख'। उ०—ते पापी ओइ दोजकि जाहिं ।—प्राण०, पृ० ३३ ।

दोजख[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोज़ख़] १. मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार नरक जिसके सात विभाग हैं और जिसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रखे जाते हैं । उ०—दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४८० । २. पेट ।

दोजख[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसके फूल बहुत सुंदर होते हैं ।

दोजखी—वि० [फ़ा० दोज़ख़ी] १. दोजख संबंधी । दोजख का । २. पापी । बहुत बड़ा अपराधी जो दोजख में भेजे जाने के योग्य हो ।

दोजग†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोज़ख] दे० 'दोजख'। उ०—आगल सुरग कपाट अघ, दोजग अगुणो देख ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६ ।

दोजरबा—वि० [फ़ा०] दो बार भभके में खींचा या चुआया हुआ । दो आतशा । जैसे,—दोजरबा शराब । दोजरबा अरक ।

दोजर्बा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दोनली बंदूक ।

दोजा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दो] वह पुरुष जिसका दूसरा विवाह हो । दोबारा ब्याहा हुआ आदमी । कल्याणभार्य ।

दोजा[2]—वि० [हिं० दूजा] दे० 'दूजा' ।

दोजानू—क्रि० वि० [फ़ा० दोज़ानू] घुटनों के बल या दोनों घुटने टेककर (बैठना) ।

दोजिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + जी या जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + जीरा] एक प्रकार का चावल ।

दोजीवा—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोटूक—वि० [हिं० दो + टुकड़ा] स्पष्ट । साफ साफ । खरी (बात) ।

दोटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दोड़ना' । उ०—नाखे बारंबार निसासा, हत्था तेग गही चंद्रहासा । क्रोधो दारुण काप प्रकासा, दोट सिया सिर देणु ।—रघु० रू०, पृ० २१ ।

दोढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ड्योढ़ी] दे० 'ड्योढ़ी' । उ०—दोढ़ी सिरे दवार नरेह निहारती । मिल कोसल्या मात, उतारी आरती ।—रघु० रू०, पृ० ९५ ।

दोत†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दवात] दे० 'दावात' ।

दोतरफा[1]—वि० [फ़ा०] दोनों तरफ का । दोनों ओर संबंधी ।

दोतरफा[2]—क्रि० वि० दोनों तरफ । दोनों ओर ।

दोतर्फा—वि० पुं० [फ़ा०] दे० 'दोतरफा' ।

दोतला—वि० [हिं०] दे० 'दोतल्ला' ।

दोतल्ला—वि० [हिं० दो + तल] दो खंड का । दोमंजिला । का । दोमंजिला जैसे, दोतल्ला मकान ।

दोतही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + तह] १. एक प्रकार की देसी मोटी चादर जो दोहरी करके बिछाने के काम में आती है । २. दोसूती ।

दोता—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दोतही' ।

दोतारा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + तार (= सूत)] एक प्रकार का दुशाला ।

दोतारा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + तार (= धातु)] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा । एकतारे की अपेक्षा इसमें यह विशेषता होती है कि इसमें बजाने के लिये एक के बदले दो तार होते हैं ।

विशेष—दे० 'एकतारा' ।

दोदना—क्रि० स० [हिं० दो (= दोहराना)] किसी की कही प्रत्यक्ष बात से इनकार करना । प्रत्यक्ष बात से मुकरना ।

दोदरी—संज्ञा स्त्री० [नैपाली] एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जो दारजिलिंग, सिकिम, भूटान और पूर्वी बंगाल में पाया जाता है । इसकी लकड़ी काली, चिकनी और कड़ी होती है और इमारत के काम में आती है ।

दोदल—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल] १. चने की दाल या तरकारी। २. कचनार की कलियाँ जिसकी तरकारी बनती है और अचार भी पड़ता है।

दोदस्ता—वि० [फा० दुदस्तह्] दोनों ओर। दुतरफा (को०)।

दोदस्ता खिलाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोदस्ता खिलाल] ताश के तुरुप के खेल में किसी एक खिलाड़ी का एक साथ बाकी दोनों खिलाड़ियों को मात करना।

दोदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दोनों हाथों तलवार चलाना। २. कुश्ती का एक दाँव (को०)।

दोदा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा कौवा (पक्षी), जिसकी लंबाई डेढ़ दो हाथ होती है।

विशेष—इसका रंग काला, तथा चोंच और पैर चमकीले होते हैं। यह गाँव, देहात या जंगलों में बहुत होता है। इसकी आदतें मामूली कौवे की सी होती हैं। यह ऊँचे वृक्षों पर घोंसला बनाता है और पूस से फागुन तक अंडे देता है। एक बार में इसके पाँच अंडे होते हैं।

दोदाना—क्रि० स० [हिं० दोदना] किसी को दोदने में प्रवृत्त करना। दोदने का काम दूसरे से कराना।

दोदामी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुदामी'।

दोदिन—संज्ञा पुं० [देश०] रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों का व्यवहार साबुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है। इसके पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं और बीज दवा के काम में आते हैं।

दोदिला—वि० [फ़ा० दुदिलह्] १. जिसका मन दो कामों या बातों में बँटा हो, एकाग्र न हो। जिसका चित्त एक बात पर जमा न हो बल्कि दो तरफ बँटा हो। दोचित्ता। चिंतित। २. वहमी।

दोदिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दिल] दोदिला होने का भाव। चित्त की अस्थिरता। दोचित्ती।

दोध—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दोधी] १. ग्वाला। अहीर। २. बछड़ा। गाय का बच्चा। ३. वह कवि जो पुरस्कार के लिये कविता करता हो।

दोधक—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसमें तीन भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। इसका दूसरा नाम 'बंधु' भी है। जैसे,—भागु न तो दुहि दे नदलाला। पाणि गहे कहती ब्रजबाला। दोध करै सब भारत बानी। ना मिस लै घर जायँ सयानी।

दोधार—संज्ञा पुं० [हिं० दो + धार] भाला। बरछा (डिं०)।

दोधारा[१]—वि० [हिं० दो + धार] [वि० स्त्री० दोधारी] दोहरी बाढ़ का। जिसके दोनों ओर धार या बाढ़ हो।

दोधारा[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का थूहर।

दोन[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणि] दो पहाड़ों के बीच की नीची जमीन।

दोन[२]—संज्ञा पुं० [हिं० दो + नद] १. दो नदियों के बीच की जमीन। दोआबा। २. दो नदियों का संगम स्थान। ३. दो नदियों का मेल। ४. दो वस्तुओं की संधि या मेल। उ०—तिय तिथि तरणि किशोर वय पुन्यकाल सम दोन। काहू पुन्यनि पाइयत बैस संधि संक्रोन। —बिहारी (शब्द०)।

दोन[३]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] काठ का वह लंबा और बीच से खोखला टुकड़ा जिससे धान के खेतों में सिंचाई की जाती है।

विशेष—यह धान कूटने की ढेकली के आकार का होता है और उसी की तरह जमीन पर लगा रहता है। पानी लेने के लिये इसका एक सिरा बहुत चौड़ा होता है जो एक ताल में रहता है। इस सिरे को पहले ताल में डुबाते हैं और जब उसमें पानी भर आता है तब उसे ऊपर की ओर उठाते हैं, जिससे उसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोखले मार्ग से पानी नालों में चला जाता है।

२. अन्न की एक माप। द्रोण।

दोनली—वि० [हिं० दो + नल] दो नालवाली। जिसमें दो नालें हों। जैसे, दोनली बंदूक।

दोनौ—संज्ञा पुं० [हिं० दोना] दे० 'दोना'। उ०—दोनी मवरा चंपक फूला। तामै जीव बसै कर तूला।—कबीर ग्रं०, पृ० २४०।

दोना[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० दोनी] पत्तों का बना हुआ कटोरे के आकार का छोटा गहरा पात्र जिसमें खाने की चीजें आदि रखते हैं। उ०—कंदमूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—दोना चढ़ाना = किसी की समाधि आदि पर फूल चढ़ाना। दोना देना = (१) दोना चढ़ाना। (२) अपने भोजन के थाल में से कुछ भोजन किसी को दे देना जिससे देनेवाले की प्रसन्नता और पानेवाले का सम्मान प्रगट होता है। दोना खाना या चाटना = बाजार की मिठाई आदि खाना। दोनों की चाट पड़ना = बाजारी भोजन का चस्का पड़ना।

दोना[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दौना' (मरुवा)।

दोनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० अल्पा०] छोटा दोना। उ०—यक दोनिया महँ दियो बतासा। कह्यो देहु यक यक सब पासा।—रघुराज (शब्द०)।

दोनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोना का स्त्री० अल्पा०] छोटा दोना। उ०—(क) तुलसी स्वामी स्वामिनी जोहे मोही हैं भामिनी, सोभा सुधा पियें करि अँखियाँ दोनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दूध भात की दोनी देहौं सोने चोंच मढ़ैहौं। जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं।—तुलसी (शब्द०)।

दोनु(पु)—वि० [हिं०] दे० 'दोनों'। उ०—तुम दोनु ही एक समान करी।—नट०, पृ० ३३।

दोनों—वि० [हिं० दो + नों (प्रत्य०)] एक और दूसरा। ऐसे विशिष्ट दो (मनुष्य या पदार्थ) जिनका पहले कुछ वर्णन हो चुका हो और जिनमें से कोई भी छोड़ा न जा सकता हो। उभय। जैसे,—(क) राम और कृष्ण दोनों गए। (ख) वह

कल और आज दोनों बिन आया। (ग) वह धन और मान दोनों चाहता है। (घ) उसके माँ बाप दोनों अंधे हैं।

दोपंथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पंथ] एक प्रकार की दोहरे खाने की जाली, स्त्रियाँ प्रायः जिसकी कुरतियाँ बनाती हैं।

दोपट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुपट्टा'।

दोपलका—वि० [हिं० दो+पलक या फलक] १. दो पल्ले का नगीना। वह नगीना जिसके भीतर नकली या हलका नग हो और ऊपर असली या बढ़िया हो। दोहरा नगीना। २. एक प्रकार का बबूतर।

दोपलिया†—वि०, संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पल्ला] दे० 'दोपल्ली'।

दोपल्ली[1]—वि० [हिं० दो+पल्ला+ई (प्रत्य०)] दो पल्लेवाला। जिसमें दो पल्ले हों।

दोपल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० मलमल, अद्धी आदि की एक प्रकार की टोपी जिसमें कपड़े के दो टुकड़े एक साथ सिले होते हैं। इसका व्यवहार लखनऊ, प्रयाग और काशी आदि में अधिकता से होता है।

दोपहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पहर] मध्याह्नकाल। सबेरे और संध्या के बीच का समय। वह समय जब सूर्य मध्य आकाश में रहता है।

मुहा०—दोपहर ढलना = दोपहर के उपरांत और समय बीतना।

दोपहरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दोपहर'।

दोपहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दोपहर'। उ०—आ आकर विचित्र पशु पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी।—पंचवटी, पृ० ८।

दोपीठा[1]—वि० [हिं० दो+पीठ] दोरुखा। दोनों ओर समान रूप रंग का।

दोपीठा[2]—संज्ञा पुं० कागज आदि का एक ओर छपने के उपरांत दूसरी ओर छपना (मुद्रण)।

दोपौवा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+पाव] १. पान की आधी ढोली। (तंबोली)। २. किसी वस्तु का आधा।

दोप्याजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोप्याज़ा] एक प्रकार का पका हुआ मांस जिसमें तरकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है। एक प्रकार का मांस जिसमें पानी नहीं पड़ता केवल प्याज पड़ता है। उ०—कोर्मा होता, कलिया होती पुलाव दोप्याजे की तश्तरियाँ होतीं और रात रात भर बोतल के काग फटाफट खुलते रहते।—शराबी, पृ० १०४।

दोफसली—वि० [हिं० दो+अ० फ़सल+ई (प्रत्य०)] १. दोनों फसलों के संबंध का। जैसे, दोफसली जमीन। २. जो दोनों ओर लग सके। दोनों ओर काम देने योग्य। जैसे, दो फसली बात।

दोबल—संज्ञा पुं० [देश०] दोष। अपराध। उ०—(क) दोबल कहा देति मोहिं सजनी तू तो बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही रहति न तेरी आन।—सूर (शब्द०)। (ख) दोबल देति आन।—सूर (शब्द०)। (ग) दोबल देति सबै मोही को उन पठयो मैं आयो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

दोबारा[1]—क्रि० वि० [फ़ा०] दूसरी बार। दूसरी दफा। एक बार होने के उपरांत फिर एक बार।

दोबारा[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दो बार का खींचा शराब। २. दो बार का खींचा अरक आदि। ३. दो बार साफ की हुई चीनी। ४. एक बार तैयार होने के उपरांत उसी तैयार चीज से फिर दूसरी बार तैयार की हुई चीज।

दोबाला—वि० [फ़ा० दुबाला] दूना। दुगुना।

दोभा(पु)†—वि० [देश०] ढीला। मुलायम। उ०—ओछा कुल में अपना दोभा डाबड़ियाँह। होले बोले होट में मूरख मावड़ियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १७।

दोभाषिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुभाषिया'।

दोमंजिला—वि० [फ़ा० दुमंजिलह्] दो खंड का। दोखंडा। जिसमें दो मंजिलें हों। जैसे, दोमंजिला मकान।

दोमट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+मिट्टी] वह भूमि जिसकी मिट्टी में कुछ बालू भी मिला हो। दूमट भूमि।

दोमहला—वि० [हिं० दो+महल] दो खंड का। दोमंजिला। जैसे, दोमहला मकान।

दोमरगा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+मार्ग] एक प्रकार का देशी मोटा कपड़ा जिसकी जनानी धोतियाँ बनाई जाती हैं। यह मिर्जापुर में बहुत बनता है।

दोमाहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुमाहह्] दो महीने का वेतन या तनखाह (को०)।

दोमुहाँ—वि० [हिं० दो+मुँह] १. दो मुँहवाला। जिसे दो मुँह हों। जैसे, दोमुहाँ साँप। २. दोहरी चाल चलने या बात करनेवाला। कपटी।

दोमुहाँ साँप—संज्ञा पुं० [हिं० दोमुहाँ+साँप] १. एक प्रकार का साँप जो प्रायः हाथ भर लंबा होता है और जिसकी दुम मोटी होने के कारण मुँह के समान जान पड़ती है।

विशेष—न तो इसमें विष होता है और न यह किसी को काटता है। इसके विषय में लोगों में यह प्रसिद्ध है कि छह महीने इसकी दुम का सिरा मुँह बन जाता है और पहलेवाला मुँह दुम बन जाता है।

२. दो तरह की बातें कहनेवाला। कुटिल और कपटी व्यक्ति।

दोमुही—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+मुँह] सोनारों का एक औजार जो नक्काशी के काम में आता है।

दोय(पु)†[1]—वि० [सं० द्वौ] १. दे० 'दो'। २. दे० 'दोनों'।

दोय[2]—संज्ञा पुं० दे० 'दो'।

दोयज(पु)—वि० [हिं० दोय+सं० ज] दुविधेवाला। उलझन से भरा। चिंताजनक। उ०—दोयज धंधा जगत का लागि रहै दिन रैन। कुटुंब महा दुख देत है कैसे पावै चैन।—सहजो०, पृ० ५०।

दोयण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जण, दुयण] १. दे० 'दुर्जन'। २. शत्रु। दुश्मन। उ०—जाहर जग जीवाड़णो, मारै दोयण मेह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१।

दोयम—वि० [फ़ा०] दूसरा। दूसरे नंबर का। जो क्रम में दो के स्थान पर हो।

दोयरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली पेड़ जो दारजिलिंग के जंगलों में बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है और संदूक आदि बनाने तथा इमारत के काम आती है। इसकी लकड़ी का कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत देर तक ठहरता है।

दोयल—संज्ञा पुं० [देश०] बया पक्षी।

दोरंगा—वि० [हिं० दो+रंग] १. दो रंग का। जिसमें दो रंग हों। जैसे, दोरंगा किनारा, दोरंगा कागज। २. जो दोमुँहा या दोतरफा हो। जो दोनों ओर लग या चल सके। दोनों पक्षों में आ सकनेवाला। ३. जो व्यभिचार से उत्पन्न हुआ हो। वर्णसंकर। दोगला (क्व०)।

दोरंगी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+रंग+ई (प्रत्य०)] १. दोरंगे या दोमुँहे होने का भाव। दोनों ओर चलने या लगने का भाव। २. छल। कपट।

दोरंगी[2]—वि० स्त्री० [हिं० दोरंगा] दे० 'दोरंगा'-२.। उ०—यह दुनिया दोरंगी भाई। जिव गहु चरण असुर की जाइ।—कबीर सा०, पृ० ८१६।

दोरा[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दोबारा जोती हुई जमीन। वह जमीन जो दो दफे जोती गई हो।

दोर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं०] डोर। रस्सी। उ०—मन खेलार तन चंग नव उड़त रग रस डोर। दूरिहि दोर बटोर जब जब पारे तब ठोर।—स० सप्तक, पृ० २५१।

दोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. डोरी। डोर। २. धागा। डोरा। वीणा के पर्दों को बाँधने में काम आनेवाली तांत [को०]।

दोरदंड(पु)†[1]—वि० [सं० दुर्दण्ड] दे० 'दुर्दंड'।

दोरदंड(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० दोर्दण्ड] दे० 'दोर्दंड'।

दोरना‡—क्रि० अ० [हिं० दौड़ना] दे० 'दौड़ना'। उ०—तब रूप चबनेदा दोरे ई आए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६२।

दोरस†—संज्ञा पुं० [हिं० दो+रस] दे० 'दोमट'।

दोरसा[1]—वि० [हिं० दो+रस] दो प्रकार के स्वाद या रसवाला। जिसमें दो तरह के रस या स्वाद हों।

दोरसा[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पीने का तमाकू जिसका धुआँ कड़ुआ और मीठा मिला हुआ होता है।

दोरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] हल के मुठिया के पास लगी हुई बाँस की वह नली जिसमें बोने के लिये बीज डाला जाता है। भाला।

दोरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० दोरक] डोरा। दोर। दोरक।

दोराना†—क्रि० स० [हिं० दोरना] दे० 'दौड़ाना'। उ०—तब तत्काल नाव दोराई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११०।

दोराहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+राह] वह स्थान जहाँ से आगे की ओर दो मार्ग जाते हों।

दोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोर] दे० 'डोरी'।

दोरुखा—वि० [फ़ा० दोरुख़ह्] १. जिसके दोनों ओर समान रंग या बेल बूटे हों। जैसे, दोरुखा कपड़ा, दोरुखी साड़ी, दोरुखा साफा। २. जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो। कपड़ों की इस प्रकार की रँगाई प्राय: लखनऊ और बीकानेर में होती है। ३. सोनारों का एक औजार जो हँसुली बनाने के काम में आता है।

दोरेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नील की वह दूसरी फसल जो पहले साल की फसल कट जाने के उपरांत उसकी जड़ों से फिर होती है।

दोर्—संज्ञा पुं० [सं०] दो: का समासप्राप्त रूप।

दोर्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यसिद्धांत के अनुसार वह ज्या जो भुज के आकार की हो।

दोर्दंड—संज्ञा पुं० [सं० दोर्दण्ड] भुजदंड।

दोल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झूला। हिंडोला। उ०—राधा माधव झूलिबौं, अलि को अलि प्रति बैन। तेई दोल अनमोल हैं, लोल लसी सुख दैन।—दीन० ग्रं०, पृ०४। २. डोली। चंडोल। ३. एक उत्सव। दोलोत्सव।

दोल[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] डोल। कुएँ से पानी निकालने का बर्तन [को०]।

दोलड़ा†—वि० [हिं० दो+लड़] [वि० स्त्री० दोलड़ी] दो लड़ों का। जिसमें दो लड़ें हों।

दोलत्ती—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुलत्ती'।

दोलना—क्रि० अ० [सं० दोलन] १. हिलना। काँपना। लरजना। उ०—हरी बिछली घास। दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।—हरी घास०, पृ० ५७। २. डोलना। घूमना। उ०—दिन दिन गढ जोधांणी ढोला। रसता झपट मिटै नह रोला।—रा० रू०, पृ० २८४।

दोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़। २. हिंडोला। झूला। ३. डोली या चंडोल। ४. दे० 'दोलायंत्र' (को०)। ५. अनिश्चयात्मक स्थिति (को०)।

दोलाधिरूढ़—वि० [सं० दोलाधिरूढ] १. झूले या हिंडोले पर चढ़ा हुआ। २. अनिश्चित (लक्ष०)।

दोलायंत्र—संज्ञा पुं० [दोलायन्त्र] वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से वे ओषधियों के अर्क उतारते हैं।

विशेष—एक घड़े में कुछ द्रव पदार्थ (तेल, घी, पानी आदि) भर कर उसे आग पर चढ़ाते हैं। कुछ ओषधियों की पोटली बाँधकर उस पोटली को एक डोरे से घड़े के मुँह पर रखी हुई लकड़ी से इस तरह लटकाते हैं कि वह पोटली उस द्रव पदार्थ के बीच में रहे पर घड़े की पेंदी से न छू जाय। इस प्रकार उन ओषजियों का अर्क उस तरल पदार्थ में उतर आता है।

दोलायमान—वि० [सं०] १. झूलता हुआ। हिलता हुआ। २. अस्थिर। चंचल। डुलमुल (को०)। ३. झूलता हुआ संशयात्मा। संशयग्रस्त (को०)।

दोलायित—वि० [सं०] दोलित। झूलता हुआ (को०)।

दोलायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें बार बार दोनों पक्षों की हार जीत होती रहे और जल्दी किसी एक पक्ष की अंतिम विजय न हो।

दोलावा†—संज्ञा पुं० [?] वह कुआँ जिसमें दोनों ओर दो गराड़ियाँ लगी हों।

दोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिंडोला। झूला। उ०—झूलत पिय नंदलाल, झुलवत सब ब्रज की बाल, वृंदा बन नवल-कुंज लोल दोलिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ३६३। २. डोली। पालकी।

दोलित—वि०[सं०] १. झूलता हुआ। २. कंपित। हिलता हुआ। उ०—ऊपर शोभित मेघ छत्र सित, नीचे अमित नील जल दोलित।—अपरा, पृ० २४।

दोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोली। पालकी। २. झूला।

दोलू—संज्ञा पुं० [?] दाँत (डिं०)।

दोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक त्योहार जिसमें वे अपने ठाकुर जी को फूलों के हिंडोले पर झुलाते हैं। यह उत्सव फागुन की पूर्णिमा को होता है।

दोलोही†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुलोही'।

दोवटी(पु)**†**—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुपट्टी] दे० 'दुपटी'। उ०—सैन तेरी कोई न समझै जीभ पकरी आनि। पाँच गज दोवटी माँगी चून लीयौ सानि।—कबीर ग्रं०, पृ० १६४।

दोवड़(पु)—वि० [देशी] दे० 'दोहरा'। उ०—दूजा दोवड़ चोवड़ा, ऊँट कटालउ खाँण। जिण मुख नागरिवेलियाँ सो करहउ केकाँण।—ढोला०, दू० ३०६।

यौ०—दोवड़ चोवड़।

दोवण(पु)**†**—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस्, हिं० दुवन] शत्रु। वैरी। उ०—महाराजधिराज सुग्रीव मर्मारा मारा कारज सारे। कीधो भूप पुरी केकंधा दोवण दूर बिदारे।—रघु० रू०, पृ० १५६।

दोवा†—संज्ञा पुं० [हिं० देवबाँस] देवबाँस नाम का बाँस जो बंगाल में बहुत होता। वि० दे० 'देवबाँस'।

दोश—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लाख जिसका व्यवहार रंग बनाने में होता है।

दोशमाल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह अँगोछा या तौलिया जो कसाई अपने पास रखते हैं।

दोशाखा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुशाखह्] १. वह शमादान जिसमें दो बत्तियाँ हों। दो डाला की दीवारगीर। २. भाँग छानने की लकड़ी जिसमें दो शाखें होती हैं और जिसमें साफी बाँध कर भाँग छानते हैं। इसका आकार ऐसा होता है—८

दोशाला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दुशाला'।

दोशीजगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दोशीज़गी] अल्हड़ अवस्था। कुवाँरापन (को०)।

दोशीजा[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दोशीजह्] कुमारी कन्या। अल्हड़ और युवा लड़की। अंकुरितयौवना।

दोशीजा[२]—वि० अंकुरितयौवना। अल्हड़। उ०—कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा दोशीजा कलियों को फागुन।—ठंढा०, पृ० २७।

दोष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरापन। खराबी। अवगुण। ऐब। नुक्स। जैसे, आँख या कान का दोष, लिखने या पढ़ने का दोष, शासन के दोष आदि।

मुहा०—दोष लगाना = किसी के संबंध में यह कहना कि उसमें अमुक दोष है। दोष का आरोप करना। दोष निकालना = दोष का पता लगाना। अवगुण को प्रसिद्ध या प्रकट करना।

यौ०—दोषकर, दोषकारी = दे० 'दोषकृत्'। दोषग्राही। दोषज्ञ। दोषत्रय = कफ, पित्त और वायु। दोषदृष्टि। दोषपत्र। दोषभाक् = दोषी। अपराधी। दोषदर्शी = दोष दिखलानेवाला। ऐब दिखलानेवाला।

२. लगाया हुआ अपराध। अभियोग। लांछन। कलंक।

मुहा०—दोष देना या लगाना = लांछन या कलंक का आरोप करना।

यौ०—दोषारोपण = दोष देना या लगाना।

३. अपराध। कसूर। जुर्म। ४. पाप। पातक। ५. वैद्यक के अनुसार शरीर में रहनेवाले वात, पित्त और कफ, जिनके कुपित होने से शरीर में विकार अथवा व्याधि उत्पन्न होती है। ६. न्याय के अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणा से मनुष्य भले या बुरे कार्यों में प्रवृत्त होता है। ७. नव्य न्याय में वह त्रुटि जो तर्क के अवयवों का प्रयोग करने में होती है। यह तीन प्रकार की होती है—अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असद्भाव। ८. मीमांसा में वह अदृष्टफल जो विधि के न करने या उसके विपरीत आचरण से होता है। ९. साहित्य में वे बातें जिनसे काव्य के गुण में कमी हो जाती है।

विशेष—यह पाँच प्रकार का होता है—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष। इनमें से हर एक के अलग अलग कई गौण भेद हैं।

१०. भागवत के अनुसार आठ वसुओं में से एक का नाम। ११. प्रदोष। गोधूलिकाल। १२. विकार। खराबी (को०)। १३. अशुद्धि। गलती (को०)। १४. भ्रम। बछड़ा (को०)।

दोष[२]—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष] द्वेष। विरोध। शत्रुता। उ०—सो जन जगत जहाज है जाके राग न दोष। तुलसी तृष्णा त्यागि कै गह्यो उ शील संतोष।—तुलसी (शब्द०)।

दोषक—संज्ञा पुं० [सं०] बछड़ा। गौ का बच्चा।

दोषकृत्—वि० [सं०] दोष करनेवाला। बुराई करनेवाला। अहितकर (को०)।

दोषग्राही—संज्ञा पुं० [सं० दोषग्राहिन्] दुष्ट। दुर्जन।

दोषघ्न[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिससे कुपित कफ, वात और पित्त का दोष शांत हो।

दोषघ्न[२]—वि० दोषों का शमन करनेवाला (को०)।

दोषज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

दोषण†¹—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । उ०—वयण सगाई वेण, मिल्या साँच दोषण मिटैं ।—रा० रू०, पृ० १३ ।

दोषण²—संज्ञा पुं० [सं०] दोष लगाना [को०] ।

दोषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष का भाव ।

दोषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दोष का भाव ।

दोषदृष्टि—वि० [सं०] बुराई ढूंढनेवाला । छिद्रान्वेषी । दोष देखनेवाला [को०] ।

दोषनⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । दूषण । अपराध । उ०—महरि तुमहिं कछु दोषन नाहीं । हमको देखि देखि मुसकाहीं ।—सूर (शब्द०) ।

दोषनाⓅ†—क्रि० स० [सं० दूषण + हिं० ना (प्रत्य०) अथवा सं० दोषण] दोष लगाना । अपराध लगाना । उ०—(क) चोरी होय सूलि पर मोखी । देय जो सूरी तेहि नहिं दोखी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कह कह फेरा नित यह दोषे । बारहिं बार फिरै संतोषे ।—जायसी (शब्द०) ।

दोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसपर किसी अपराधी के अपराधों का विवरण लिखा हो । फर्द करारदाद जुर्म ।

दोषरण—संज्ञा पुं० [सं० दोष + रण] १. वह जो दोषों को मिटा दे । वह जो भक्तों के दोष को दूर करे । २. दोषों से युद्ध । दोष का संघर्ष । उ०—चलता नहीं हाथ, कोई नहीं साथ, उन्नत, विनत माथ, दो शरण, दोषरण ।—गीतगुंज, पृ० ५० ।

दोषल—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें दोष हो । दोषयुक्त । दूषित ।

दोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रात ।

यौ०—दोषाकर ।

२. संध्या । ३. भुजा । बाँह ।

दोषाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. दोषों का आकर । दोष समूह (को०) ।

दोषाक्लेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी ।

दोषाचार—संज्ञा पुं० [सं०] लगाया हुआ अपराध । अभियोग ।

दोषातिलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीपक । दीया ।

दोषारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर दोष का आरोप करना । कलंक लगाना ।

दोषावह—वि० [सं०] दोषयुक्त । दोषपूर्ण । जिसमें दोष हो ।

दोषास्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीप । दीया [को०] ।

दोषिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] रोग । बीमारी ।

दोषिक²—वि० दे० 'दूषित' ।

दोषित—वि० [सं० दूषित] दोषवाला । दोषयुक्त । ऐबी [को०] ।

दोषिनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोषी] १. अपराधिनी । २. पाप करनेवाली स्त्री । ३. वह कन्या जिसने कुँवारेपन ही में पुरुषप्रसंग किया हो ।

दोषिल†—संज्ञा पुं० [प्रा० दोसिल्ल] दे० 'दोषल' । उ०—लाग दोष गोहूँ के खाये । बिछुरा प्रीतम दोषिल पायें ।—इंद्रा०, पृ० ८५ ।

दोषी—संज्ञा पुं० [सं० दोषिन्] [स्त्री० दोषिणी] १. अपराधी । कसूरवार । २. पापी । ३. मुजरिम । अभियुक्त । ४. जिसमें दोष हो । जिसमें ऐब या बुराई हो ।

दोषैकदृक्, दोषैकदृष्टि—वि० [सं०] छिद्रान्वेषी । दोष मात्र ही देखनेवाला [को०] ।

दोसⓅ†¹—संज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष' ।

दोसⓅ²—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोस्त] दोस्त । मित्र । जैसे, दोसदार, दोसदारी में 'दोस' ।

दोसतⓅ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोस्त] दे० 'दोस्त' । उ०—दादू दोसत जीव का जन रज्जब जग माँहि । के जिन सिरजे सो सही तीजा कोई नाँहि ।—रज्जब०, पृ० ३ ।

दोसदारⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोस्तदार] मित्र । यार । उ०—किनायत अजब गंज है पायदार । फना जिसको हरगिज नहीं दोसदार ।—दक्खिनी०, पृ० २१२ ।

दोसदारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दोस्तदारी] मित्रता । दोस्ती ।

दोसर†—वि० [हिं०] दे० 'दूसरा' उ०—नायिकाक दोसर शरीर अइसन श्यामाजाति सखी ।—वर्ण०, पृ० ५ ।

दोसरता‡—संज्ञा पुं० [हिं० दूसरा + ना (प्रत्य०)] द्विरागमन । गौना । मकलावा ।

दोसरा†—वि० [हिं० दूसरा] [वि० स्त्री० दोसरि, दोसरी] दे० 'दूसरा' । उ०—(क) भलेहिं रंग तोहि आछरि राता । मोहि दोसरें सौं भाव न बाता ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१ । (ख) जौं जोगिहि सुठि बंदर काटा । एकै जोग न दोसरि बाटा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६८ ।

दोसरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दो बार जोती हुई जमीन ।

दोसरी²—वि० स्त्री० [हिं० दूसरा] दे० 'दूसरा' । उ०—सोवारी रहट घाट चौसीस प्रकार पुरविन्यास, कथा कहुओका, जनि दोसरी अमरावति क अवतार भा ।—कीर्ति०, पृ० २८ ।

दोसा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दोषा] दे० 'दोषा' ।

दोसा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है । इसका बहुत अंश पानी में डूबा रहता है और इसमें एक प्रकार के दाने अधिकता से होते हैं ।

दोसाध—संज्ञा पुं० [हिं० दुसाध] दे० 'दुसाध' ।

दोसाल—संज्ञा पुं० [देश०] बरमा के हाथियों की एक जाति ।

विशेष—इस जाति का हाथी कुमरिया से कुछ छोटा होता है और साधारणतः लकड़ियाँ आदि ढोने या सवारी आदि के काम में आता है ।

दोसाला†¹—वि० [हिं० दो + साल (= वर्ष)] दो वर्ष का । दो वर्ष का पुराना ।

दोसाला²—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुशालह्] दे० 'दुशाला' । उ०—केसरि को यह तिलक पीतंमर दोसाला ।—सं० दरिया, पृ० १०३ ।

दोसाही†—वि० [हिं० दो + ?] दोफसला । (जमीन) जिसमें साल में दो फसलें पैदा हों ।

दोसी¹—संज्ञा पुं० [देश०] दही ।

दोसी²—संज्ञा पुं० [सं० दोषी] दे० 'दोषी'।

दोसूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+सूत] दोतही या दुसूती नाम की मोटी चादर जो बिछाने के काम में आती है।

दोस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मित्र। स्नेही। २. वह जिससे अनुचित संबंध हो। यार (बाजारू)।

दोस्तदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दोस्त'।

दोस्तदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'दोस्ती'।

दोस्ताना¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोस्तानह्] १. दोस्ती। मित्रता। २. मित्रता का व्यवहार।

दोस्ताना²—वि० दोस्ती का। मित्रता का।

दोस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. मित्रता। स्नेह। २. अनुचित संबंध। याराना (बाजारू)।

दोस्ती रोटी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दोस्ती+हिं० रोटी] एक प्रकार की रोटी जो आटे की दो लोइयों के बीच में घी लगाकर और एक को दूसरी पर रखकर बेलते और तब तवे पर घी लगाकर पकाते हैं। दो परत की रोटी। दुपड़ी।

विशेष—पकने पर इसमें की दोनों लोइयाँ अलग हो जाती हैं।

दोस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नौकर। दास। २. सेवा। दासत्व। ३. खेल। क्रीड़ा। ४. खेलनेवाला व्यक्ति [को०]।

दोह(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० द्रोह] दे० 'द्रोह'।

दोह²—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोहन। दूहना। २. दुग्ध। दूध। ३. दूध दुहने का बर्तन। ४. किसी से लाभ उठाना। किसी वस्तु से फायदा प्राप्त करना [को०]।

यौ०—दोहापनय। दोहज।

दोहग†—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य या दुर्भग, प्रा० दोहग्ग] विपरीत भाग्य। दुर्भाग्य। उ०—मन मिलिया तन गड्डिया दोहग दूरि गयाह। सज्जण पाणी खीर ज्यूं खिल्लोखिल्ल थयाह।—ढोला०, दू० ५५३।

दोहगा†—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्भगा] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो और जिसको किसी दूसरे पुरुष ने रख लिया हो। रखनी। सुरैतिन। उपपत्नी। उ०—दोहगा सुतिय सोहागिन मेरी। गून जाति अच्छुन कुल केरी।—विश्राम (शब्द०)।

दोहज—संज्ञा पुं० [सं०] दूध।

दोहता†—संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] [स्त्री० दोहती] लड़की का लड़का। नाती। नवासा।

दोहती‡¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दोस्ती] दे० 'दोस्ती रोटी'।

दोहती†²—संज्ञा स्त्री० [सं० दौहित्र] लड़की की लड़की। बेटी की बेटी। नतिनी।

दोहत्थड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+हाथ या देश० हत्थल] दोनों हाथों से मारा हुआ थप्पड़।

क्रि० प्र०—पीटना।—मारना।

दोहत्था¹—क्रि० वि० [हिं० दो+हाथ] दोनों हाथों से। दोनों हाथों के द्वारा।

दोहत्था²—वि० दोनों हाथों का। जो दोनों हाथों से हो।

दोहद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गर्भवाली स्त्री की इच्छा। उकौना। उ०—प्रथम दोहदै क्यों करौं निष्फल सुनि यह बात।—केशव (शब्द०)। २. गर्भवती स्त्री की मतली इत्यादि। ३. गर्भावस्था। ४. गर्भ का चिह्न। ५. गर्भ। ६. एक प्राचीन विश्वास। कविसमय। कविप्रसिद्धि।

विशेष—इसके अनुसार सुंदर स्त्री के स्पर्श से प्रियंगु, पान की पीक थूकने से मौलसिरी, चरणाघात से अशोक, दृष्टिपात से तिलक, आलिंगन से कुरबक, मृदुवार्ता से मंदार, हँसी से पटु, फूँक मारने से चंपा, मधुर गान से आम और नाचने से कचनार इत्यादि वृक्ष फूलते हैं। इस संबंध में संस्कृत साहित्य में निम्नांकित श्लोक प्रचलित है—'स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति बकुलः सीधुगंडूष सेकात्। पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम्। मंदारो नर्मवाक्यात् पटु मृदुहसनात् चम्पको वक्त्रवातात्। चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः।

७. फलित ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय दिशा, वार या तिथि के भेद से उनके दोष की शांति के लिये खाए या पीए जानेवाले कुछ निश्चित पदार्थ।

विशेष—इनको अलग अलग दिग्दोहद, वारदोहद और तिथिदोहद कहते हैं। जैसे,—यदि पूर्व की ओर जाने में कोई दोष हो, तो उसकी शांति घी खाने से होती है। पश्चिम जाने में कोई दोष हो तो वह मछली खाने से, दक्षिण की ओर का दोष तिल की खीर खाने से और उत्तर की ओर का दोष दूध पीने से शांत होता है। इसी प्रकार रविवार को घी, सोमवार को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, बृहस्पति को दही, शुक्र को जौ और शनिवार को उड़द खाने से यात्रा संबंधी वारदोष की शांति हो जाती है। प्रतिपदा को मदार का पत्ता, द्वितीया को चावल का धोया हुआ पानी, तृतीया को घी आदि खाने से यात्रा संबंधी तिथिदोष की शांति हो जाती है। इस प्रकार दोहद से किसी दिशा, वार या तिथि की यात्रा से होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट फलों का निवारण हो जाता है।

दोहदलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का लक्षण या चिह्न। २. गर्भशिशु। भ्रूण। ३. अवस्थांतर। जीवन की एक अवस्था से दूसरी में गमन या प्रवेश [को०]।

दोहदवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी। गर्भवती स्त्री जिसने गर्भ धारण किया हो।

दोहदान्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दोहदवती'।

दोहदी—वि० [सं० दोहदिन्] अत्यंत इच्छुक। प्रबल इच्छायुक्त [को०]।

दोहदोहीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत या साम।

दोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुहना। गाय भैंस इत्यादि के स्तनों से दूध निकालना। २. दोहनी।

दोहना(पु)—क्रि० स० [सं० द्रोह, प्रा० दोह+हिं० ना (प्रत्य०) अथवा सं० दोष+ना (प्रत्य०)] १. दोष लगाना। दूषित ठहराना। २. तुच्छ ठहराना। उ०—बेनी नवबाला की बनाय गुही बलभद्र, कुसुम असन पाट मन मोहियत है। काली

लटकारी नीकी राजत नितंब नीचे पन्नग की नारिन की देह दोहियत है।—बलभद्र (शब्द०)।

दोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूध दुहने की हाँड़ी। मिट्टी का वह बरतन जिसमें दूध दुहते हैं। उ०—दोहनी हाथ की हाथे रही न रह्यो मनमोहनी को मन हाथ में।—शंभु (शब्द०)। २. दूध दुहने का काम।

दोहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो+पड़ (=तह)] एक प्रकार की चादर जो कपड़ों की दो परतों को एक में सीकर बनाई जाती है।

विशेष—इसके चारों ओर गोट लगी रहती है। इसमें कभी कभी कपड़े की दोनों तहें एक ही कपड़े की होती हैं और कभी एक तह किसी मोटे कपड़े या छींट आदि की होती है और दूसरी तह मलमल आदि महीन कपड़े की।

दोहरना[१]—क्रि० अ० [हिं० दोहरा] १. दो बार होना। दूसरी आवृत्ति होना। २. दोहरा होना। दो परतों का किया जाना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

दोहरना[२]—क्रि० स० दोहरा करना।

संयो० क्रि०—देना।

दोहरफ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धिक्कार। लानत।

क्रि० प्र०—भेजना।

दोहरा[१]—वि० पुं० [हिं० दो+हरा (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० दोहरी] १.दो परत या तह का। २. दुगना।

दोहरा[२]—संज्ञा पुं० १. एक ही पत्ते में लपेटे हुए पान के दो बीड़े (तंबोली)। २. कतरी हुई सुपारी। सुपारी के छोटे छोटे टुकड़े। सुपारी, कत्था, लौंग, तंबाकू, चूने का मिश्रण। ३. दोहा नाम का छंद। उ०—साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान। भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५१। वि० दे० 'दोहा'।

दोहराना—क्रि० स० [हिं० दोहरा] १. किसी बात को पुनः करना या किसी काम को पुनः करना। किसी बात को दूसरी बार कहना या करना। किसी काम या बात की पुनरावृत्ति करना। † २. किसी कपड़े या कागज आदि की दो तहें करना। दोहरा करना।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

दोहराहट—संज्ञा पुं० [हिं० दोहरा+हट (प्रत्य०)] दोहराने की क्रिया या भाव। दुहरापन। उ०—प्रभाव का अर्थ दोहराहट नहीं और यदि अन्यत्र कहीं हो तो भी मध्य प्रदेश में बिलकुल नहीं।—शुक्ल अभि० ग्रं० (सा०), पृ० ८६।

दोहरी पट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी+पट] कुश्ती का एक पेंच।

दोहरी मखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहरी+मखी] कुश्ती का एक पेंच।

दोहल—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छा। दोहद।

दोहलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

दोहला—वि० [हिं० दो+हल्ला] दो बार की ब्याई हुई (गौ आदि) (वह गौ आदि) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अशोक का वृक्ष। २. आक का पेड़। मंदार।

दोहली[२]—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो ब्राह्मण को दी गई हो।

दोहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो+हा (प्रत्य०)] १. एक हिंदी छंद, जिसमें होते तो चार चरण हैं, पर जो लिखा दो पंक्तियों में जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा और चौथा चरण दूसरी पंक्ति में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण का तुकांत मिलना चाहिए। जैसे,—राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार।

विशेष—इसी को उलट देने से सोरठा हो जाता है।

२. संकीर्ण राग का एक भेद।

दोहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुहाई'। उ०—धरम की दोहाई देने, पाप पाप करने का कौन काम है।—ठेठ०, पृ० २९।

दोहाका†—संज्ञा पुं० [सं० दौर्भाग्य] दे० 'दोहाग'।

दोहाग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दौर्भाग्य] दुर्भाग्य। बदनसीबी। बदकिस्मती। अभाग्य। उ०—परम सोहाग निबाहि न पारी। भा दोहाग सेवा जब हारी।—जायसी (शब्द०)।

दोहागणी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोहाग] दुर्भाग्यवती। अभागिन स्त्री। उ०—नामि बिना दोहागणी भूली आवउ जाउँ।—प्राण०, पृ० २१७।

दोहागा†—संज्ञा पुं० [हिं० दोहाग] [स्त्री० दोहागिन] अभागा। बदकिस्मत।

दोहागिण(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दुहागिणी, हिं० दोहागिन] दे० 'दुहागिन'। उ०—उत्तर आज म उत्तरउ, सीय पड़ेसी बट्ट। सोहागिण घर आंगणइ, दोहागिण रह घट्ट।—ढोला०, दू० २६०।

दोहान†—संज्ञा पुं० [देश०] नौजवान बैल। बछवा।

दोहापनय—संज्ञा पुं० [सं०] दूध।

दोहाब—संज्ञा पुं० [हिं० दूहना] काश्तकारों की गौओं का वह दूध जो जमींदार के घर जाता है।

दोहित[१]—वि० [सं०] दूहा हुआ। जिसे दुह लिया गया हो (को०)।

दोहित†[२]—संज्ञा पुं० [सं० दौहित्र] बेटी का बेटा। नाती।

दोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] पुत्री। लड़की। तनया। उ०—सुता दोहिता कंठ लगाइ। लिए वस्त्र भूखन पहिराइ।—अर्ध०, पृ० ५।

दोहिया—संज्ञा पुं० [देश० ?] एक प्रकार का पौधा।

दोही[१]—संज्ञा पुं० [हिं० दो] एक छंद जो दोहे की भाँति चार चरणों का होने पर भी दो ही पंक्तियों में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में पंद्रह पंद्रह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक लघु होना चाहिए। जैसे—बिरद सुमिरि सुधि करत नित हो, हरि तुव चरन निहार। यह भव जल निधि तें मुहि तुरत, कब प्रभु करिहहु पार।

दोही[२]—संज्ञा पुं० [सं० दोहिन्] १. दूध दुहनेवाला। २. ग्वाला।

दोहो(पु)†³—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दुहाई] दे॰ 'दुहाई'। उ॰—दीठि को ओर कहूँ नहि ठौर फिरी दग रावरे रूप की दोही।—घनानंद, पृ॰ ६।

दोहुरा†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] वह भूमि जिसमें बालू अधिक हो। बलुई जमीन।

दोह्य¹—वि॰ [सं॰] दूहने योग्य। जो दूहा जा सके।

दोह्य²—संज्ञा पुं॰ १. दूध। २. गाय भैंस आदि जानवर जो दूहे जाते हैं।

दौं(पु)¹—अव्य॰ [सं॰ अथवा] वा। अथवा।

विशेष—दे॰ 'धौं'।

दौं(पु)²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दव] दे॰ 'दौ'।

दौंकना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ दमकना] दे॰ 'दमकना'।

दौंगड़ा†, दौंगरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दौ (=आग या गरमी)] वह हलकी वर्षा जो गरमी के दिनों में तपी हुई धरती पर होती है। बौछार।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।

दौंच—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] ? १॰ दोच'। २. दाब पड़ने से धातु में पड़ी हुई खरोंच या बिटापन।

दौंचना(पु)†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ दबोचना] १. दबाव डालकर लेना। किसी न किसी प्रकार लेना। २. लेने के लिये पड़ना। उ॰—तंदुल माँगि दौंचि कै लाई सो दीनों उपहार। फाटे बसन बाँधि के दिनबर प्रति दुर्बल तन हार।—सुर (शब्द॰)।

दौंजा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] नगाना। पाड़।

दौंरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दौना या दाँवना] १. एक साथ रस्सी में बँधे हुए बैलों का झुंड जो कटी फसल के डंठलों पर दाना झाड़ने के लिये फिराया जाता है।

क्रि॰ प्र॰—नाधना।—चलाना।—नाधना।—हाँकना।

२. वह रस्सी जिसे उन बैलों के गले में डालते हैं जो दौने के लिये फिराए जाते हैं। ३. झुंड।

दौ(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दव] १. आग। जंगल की आग। उ॰—(क) मन पाँचों के बस परा मन के बस नही पाँच। जित देखो तित दौ लगी, जित भागों तित आँच।—कबीर (शब्द॰)। (ख) तो लौं मातु आपु नीके रहिबो। जौ लौं हौ ल्यावौं रघुबीरहि दिन दस और दुसह दुख सहिबो।...लंक दाह उर आनि मानिबो साँचु रामसेवक को कहिबो। तुलसी प्रभु को सुर सुजस गैहैं मिटि जैहैं सबको सोच दौ दहिबो।—तुलसी (शब्द॰)। २. संताप। ताप। जलन। उ॰—ससि ते शीतल मोको लागै माई री तरनि। याके उए बरति अधिक अंग अंग दौ, वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि। सब विपरीत भये माधो बिनु, हित जो करत अनहित सत की करनि। तुलसीदास स्यामसुंदर बिरह की दुसह दसा सो मोपै परति नहीं बरनि।—तुलसी (शब्द॰)।

दौकूल¹—वि॰ [सं॰] कपड़े का। दुकुल संबंधी।

दौकूल²+संज्ञा पुं॰ १. उत्कृष्ट सिल्क। उत्तम चीनांशुक। २. रथ या गाड़ी जो रेशमी वस्त्रों से आच्छादित हो [को॰]।

दौगूल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'दौकूल²' [को॰]।

दौड़—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दौड़ना] १. दौड़ने की क्रिया या भाव। साधारण से अधिक वेग के साथ गति। द्रुतगमन। धावा। तेजी से चलने या जाने की क्रिया।

यौ॰—दौड़ मारना=(१) वेग के साथ जाना। (२) दूर तक पहुँचना। लंबी यात्रा करना। जैसे,—कलकत्ते से यहाँ आ पहुँचे, बड़ी लंबी दौड़ मारी। दौड़ लगाना=दे॰ 'दौड़ मारना'। जैसे,—बड़ी लंबी दौड़ लगाई।

२. धावा। वेगपूर्वक आक्रमण। चढ़ाई। ३. उद्योग में इधर उधर फिरने की क्रिया। प्रयत्न।

मुहा॰—दौड़ मारना=उद्योग में इधर उधर फिरना। कोशिश में हैरान होना।

४. द्रुतगति। वेग।

मुहा॰—मन की दौड़ (दौर)=चित्त की सूझ। कल्पना। उ॰—भक्ति रूप भगवंत की भेष जो मन की दौर।—कबीर (शब्द॰)।

५. गति की सीमा। पहुँच। जैसे,—मुल्ला की दौड़ मसजिद तक। ६. उद्योग की सीमा। प्रयत्नों की पहुँच। अधिक से अधिक उपाय या यत्न जो हो सके। ७. बुद्धि की गति। अक्ल की पहुँच। जैसे,—जहाँ तक जिसकी दौड़ होगी वहीं तक न अनुमान करेगा। ८. विस्तार। लंबाई। आयत। जैसे, दुशाले की बेल या हाशिये की दौड़। ९. सिपाहियों का दल जो अपराधियों को एकबारगी पकड़ने के लिये जाय। जैसे, पुलिस की दौड़।

क्रि॰ प्र॰—आना।—जाना।—पहुँचना।

१०. जहाज पर की वह चरखी जिसमें लकड़ी डालकर घुमाने से वह जंजीर खिसकती है जिसमें पतवार बँधा रहता है। ११. दौड़ने की प्रतियोगिता। जैसे,—इस बार की दौड़ में वह प्रथम आया है।

दौड़धपाड़—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दौड़+धपाड़] दे॰ 'दौड़धूप'।

दौड़धूप—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ दौड़+धूप] किसी कार्य के लिये इधर उधर फिरने की क्रिया या भाव। किसी काम के लिये बार बार चारों ओर आना जाना। परिश्रम। प्रयत्न। उद्योग। जैसे,—(क) उसने बहुत दौड़धूप की है। (ख) अभी रोग का आरंभ है दौड़धूप करोगे तो अच्छा हो जायगा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

दौड़ना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ धोरण, हिं॰ धोरना] १. साधारण से अधिक वेग के साथ गमन करना। द्रुतगति से चलना। मामूली चलने से ज्यादा तेज चलना। जैसे,—(क) दौड़कर न चलो गिर पड़ोगे। (ख) वह लड़का उधर दौड़ा जा रहा है।

संयो॰ क्रि॰—आना।—जाना।

मुहा०—दौड़ पड़ना = एकबारगी वेग के साथ गमन करना। जैसे,—जहाँ वह दिखाई दिया कि आप उसकी ओर दौड़ पड़े। चढ़ दौड़ना = चढ़ाई करना। धावा करना। आक्रमण करना। दौड़ दौड़कर आना = जल्दी जल्दी आना। बार बार आना। जैसे,—मेरे पास क्या दौड़ दौड़कर आते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता। दौड़ दौड़कर जाना = जल्दी जल्दी जाना। बार बार जाना। जैसे,—उसके घर क्या रखा है जो दौड़ दौड़कर जाते हो ?

२. सहसा प्रवृत्त होना। झुक पड़ना। ढलना। जैसे,—तुम बुरा भला नहीं देखते हो, जो बात हुई उसी के पीछे दौड़ पड़ते हो।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. किसी प्रयत्न में इधर उधर फिरना। किसी काम के लिये चारों ओर बार बार आना जाना। उद्योग करना। कोशिश में हैरान होना। उपाय या चेष्टा करना। जैसे,—(क) नौकरी के लिये बहुत दौड़ा, पर न मिली। (ख) उसकी बीमारी में वह बहुत दौड़ा।

यौ०—दौड़ना धूपना।

४. फैलना। व्याप्त होना। छा जाना। जैसे, स्याही दौड़ना, लाली दौड़ना, चेहरे पर खून दौड़ना।

क्रि० प्र०—जाना।

दौड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ + आई (प्रत्य०)] १. दौड़ने का भाव या क्रिया। २. परेशानी। दौड़ धूप।

दौड़ादौड़[1]—क्रि० वि० [हिं० दौड़ + दौड़] [संज्ञा दौड़ादौड़ी] अविश्रांत। बेतहाशा। बिना कहीं रुके हुए। जैसे,—अभी वहाँ से दौड़ादौड़ चला आ रहा हूँ।

दौड़ादौड़[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'दौड़ादौड़ी'।

दौड़ादौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] १. दौड़धूप। २. बहुत से लोगों की एक साथ इधर उधर दौड़ने की क्रिया। ३ रवारवी। आतुरता। हड़बड़ी। जैसे,—दौड़ादौड़ी में कोई काम ठीक नहीं होता।

दौड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] १. दौड़ने की क्रिया या भाव। द्रुतगमन। २. वेग। झोंक। ३. सिलसिला। ४. फेरा। बारी। पारी।

दौड़ाना—क्रि० स० [हिं० दौड़ना का सकर्मक रूप] १. दौड़ने की क्रिया कराना। साधारण से अधिक वेग से चलाना। द्रुतगमन कराना। जैसे, घोड़ा दौड़ाना, सिपाही दौड़ाना।

संयो० क्रि० —देना।

२. बार बार आने जाने के लिये कहना या विवश करना। हैरान करना। जैसे,—चार रुपए के लिये क्यों बार बार दौड़ाते हो ? । ३. किसी वस्तु को यहाँ से वहाँ तक ले जाना। एक जगह से खींचकर दूसरी जगह करना। जैसे,—इस चारपाई को जरा उधर दौड़ा दो।

संयो० क्रि० —देना।

४. फैलाना। पोतना। जैसे, स्याही दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

५. फेरना। जैसे, दीवार पर कूँची दौड़ाना।

दौड़ाहा—संज्ञा पुं० [हिं० दौड़ + हा (प्रत्य०)] दौरा करनेवाला हाकिम। उ०—दौड़ाहा (दौरा करनेवाला हाकिम) किसानों के भूमि संबंधी झगड़ों को निपटाने के लिये अपनी पल्टन लेकर तराई में दौरा करने के लिये राणा सरकार की ओर से दूसरे तीसरे वर्ष भेजा जाता था।—नेपाल०, पृ० १२०।

दौढ़ा—वि० [सं० द्वि + अर्ध] डेढ़। उ०—दोढ़ पहर हिंदू तुरक, कहर लड़े रिण ढाँण।—रा० रू०, पृ० २७२।

दौत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम।

दौन⑤[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमन'।

दौना[2]—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मनस्, हिं० दुवन] शत्रु। वैरी। उ०—महा सुरा पूरा कौन अहिनिशि सूझै दुरजन दौन।—प्राण०, पृ० २७०।

दौना[1]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ गुलदाऊदी की तरह कटावदार होती हैं और जिनमें से तेज पर कड़ई सुगंध आती है।

विशेष—इस पौधे की डालियों के सिरे पर एक पतली सींक में मंजरी लगती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर उस मंजरी के बीजकोशों में छोटे छोटे दाने पड़ते हैं जो पकने पर झड़ जाते हैं। पौधे बीजों से उत्पन्न होते और बरसात में उगते हैं पर पुराने पेड़ भी सालों रह जाते हैं। वैद्यक में दौना शीतल, कड़ुआ, कसैला, हृदय को हितकारी तथा खुजली, विस्फोटक आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

दौना[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दोना'। उ०—अरी माई मेरो मन हरि लीन्हों नंद को ढोटौना। चितवन में वाके कछु टौना। ...बोलत नहीं रहत वह मौना। दधि लै छीनि खात रह्यो दौना।—सूर (शब्द०)।

दौना[3]—क्रि० स० [सं० दमन, हिं० दौन] दमन करना। उ०—केकई करी धौं चतुराई कौन ? राम लखन सिय बनहिं पठाए पति पठए सुरभौन। कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन।—तुलसी (शब्द०)।

दौनागिरि—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणगिरि] द्रोणगिरि नामक पर्वत जो क्षीरोद समुद्रस्थ लिखा गया है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान जी यहीं औषधि लेने के लिये भेजे गए थे। उ०—दौनागिरि हनुमान सिधाए। संजीवनी को भेद न पायो तब सब शैल उपायो।—सूर (शब्द०)।

दौनाचल⑤—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणाचल] दे० 'दौनागिरि'।

दौर[1]—संज्ञा पुं० [अ० दौर] १. चक्कर। भ्रमण। फेरा। २. दिनों का फेर। कालचक्र। ३. अभ्युदय काल। बढ़ती का समय।

यौ०—दौरदौरा = (१) प्रधानता । प्रबलता । चलती । उ०—क्रामवेल के समय में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित होने पर प्युरिटन लोगों का जैसा दौरदौरा ग्रेट ब्रिटेन में था, वैसा ही, इस समय अमेरिका के न्यू इंगलैंड नामक सूबे में है।—स्वाधीनता (शब्द०) । (२) आतंक । उ०—दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास की विवेचना में अभी तक इसी लाल बुझक्कड़ व्याख्याशैली का जोर रहा है और विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकों में तो उसका एकमात्र दौरदौरा है।—भारत० नि०, पृ० ७ ।

४. प्रताप । प्रभाव । हुकूमत । ५. दे० 'दौरा' । उ०—वीर जीत पूरब दिसि लीन्हो । वीर दौर पश्चिम को कीन्हो ।—लाल (शब्द०) । ६. बारी । पारी ।

मुहा०—दौर चलना = शराब के प्याले का बारी बारी से सबके सामने लाया जाना ।

७. बार । दफा । जैसे,—दूसरे दौर में यह इतना काम भी पूरा हो जायगा ।

दौर(पु)²—संज्ञा स्त्री० १. दे० 'दौड़' । २. धावा । आक्रमण । उ०—एक दौर करो रौर मेरो भर कौर कपि एक बार सिंधुधार सबको बहायहौ ।—हनुमान (शब्द०) । ३. वेग । द्रुतगति । उ०—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर ।—कबीर (शब्द०) । ४. प्रयत्नों की पहुँच या सीमा । उ०—सीतापति रघुनाथ जी तुम लगि मेरी दौर ।—(शब्द०) ।

दौरना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० दौड़ना] १. दे० 'दौड़ना' । २. फैलना । छा जाना । उ०—दूरि लौ दौरत दंतन की दुति ज्यों अधरा उघरैं अति मीठे ।—तोष (शब्द०) ।

दौरानी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवर] दे० 'देवरानी' । उ०—आवो, आवो, दौरानी मेरी आवो ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१३ ।

दौरा¹—संज्ञा पुं० [अ० दौर] १. चारो ओर घूमने की क्रिया । चक्कर । भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. फेरा । भ्रमण । गश्त । इधर उधर जाने या घूमने की क्रिया । ३. अफसर का अपने इलाके में जाँच पड़ताल या देखभाल के लिये घूमना । निरीक्षण के लिये भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दौरे पर रहना या होना = जाँच पड़ताल या देखभाल के लिये सदर से बाहर रहना या होना । (असामी या मुकदमा) दौरा सुपुर्द करना = (असामी या मुकदमे को) विचार या फैसले के लिये सेशन जज के पास भेजना । (फौजदारी के भारी मुकदमों को मजिस्ट्रेट सेशन जज के पास भेज देते हैं ।) दौरा सुपुर्द होना = सेशन जज के पास विचार के लिये भेजा जाना । उ०—हाकिम ने उन्हें दौरा सुपुर्द कर दिया ।—सेवा०, पृ० १४ ।

४. ऐसा आना जाना जो समय समय पर होता रहता है । सामयिक आगमन । फेरा । जैसे,—डाकुओं के दौरे अब इधर फिर होने लगे हैं । ५. बार बार होनेवाली बात का किसी बार होना । ऐसी बात का प्रकट होना जो समय समय पर होती रहती है । ६. किसी ऐसे रोग का लक्षण प्रकट होना जो समय समय पर होता हो । आवर्तन । जैसे, मिरगी का दौरा । पागलपन का दौरा ।

दौरा²—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अल्पा० दौरी] बाँस की फट्टियों, कास, मूँज, बेंत आदि का बना हुआ टोकरा ।

दौरात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुरात्मा का भाव । दुर्जनता । २. दुरात्मा का काम । दुष्टता । उ०—कुछ भी मुझको ज्ञान न था यह सौष्ठव का दौरात्म्य विशेष । मैं न जानता था जग में है, उदासीनता ही निःशेष ।—कुंकुम, पृ० १३ ।

दौरादौर†—क्रि० वि० [हिं० दौड़ना] १. लगातार । अविश्रांत । २. धुन से । तेजी से ।

दौरादौरी†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौड़ना] दे० 'दौड़ादौड़ी' । उ०—आनंद प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरादौरी । आरती उतारैं सरबस वारैं अपनी अपनी पौरी ।—केशव (शब्द०) ।

दौरान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दौरा । चक्र । २. कालचक्र । दिनों का फेर । ३. फेरा । बारी । पारी । ४. सिलसिला । झोंक ।

दौराना†(पु)—क्रि० स० [हिं० दौड़ाना] दे० 'दौड़ाना' । उ०—(क) भयो रजायसु जन दौराये ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दौरावत चहुँ ओर हय देखत वात लजात ।—गुमान (शब्द०) ।

दौरित—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति । हानि ।

दौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दौरा] बाँस या मूँज की छोटी टोकरी । चँगेरी । डलिया ।

दौर्गंध्य—संज्ञा पुं० [सं० दौर्गन्ध्य] दुर्गंधि । बदबू [को०] ।

दौर्ग—वि० [सं०] १. दुर्ग संबंधी । दुर्ग का । २. दुर्गा संबंधी । दुर्गा का ।

दौर्गत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गति । बुरी हालत । २. गरीबी । ३. व्यथा । पीड़ा [को०] ।

दौर्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] कठिनाई [को०] ।

दौर्गह—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ [को०] ।

दौर्जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । दुष्टता ।

दौर्बल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बलता । कमजोरी ।

दौर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य ।

दौर्भ्रात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाई भाई का आपसी झगड़ा । भाइयों का कलह [को०] ।

दौर्मनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] 'दुर्मनस' होने का भाव । दुर्जनता । चित्त की खोटाई ।

दौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दूरी । उ०—ज्योतिष वसिष्ठादि ऋषियों की कृत है । उसमें वेद, अनध्याय तथा रेखा बीजगणित तथा सूर्यादि ग्रहों का दौर्य, सामीप्य और आपस का संयोग वियोग आदिक व्यवहार लिखे हैं ।—श्रद्धाराम (शब्द०) ।

दौर्योधनि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्योधन के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति ।

दौर्वृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुराचार । दुर्वृत्त का भाव [को०] ।

दौहार्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्हृद होने का भाव। दुष्ट स्वभाव। २. दुर्भाव। बैर।

दौहृद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृदय की खोटाई। दुष्टता। २. दोहद।

दौहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रुता। वैर। २. मन की मलिनता [को०]

दौहृदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी स्त्री [को०]।

दौलत—संज्ञा पुं० [अ०] धन। संपत्ति।

क्रि० प्र०—उठाना।—खर्चना।—लगाना।

दौलतखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दौलतख़ाना] निवासस्थान। घर।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दूसरे के लिये आदरार्थक होता है। अपने लिये गरीबखाना लाया जाता है। जैसे,—आपका दौलतखाना कहाँ है ? मेरा गरीबखाना देहली है।

दौलतमंद—वि० [फ़ा०] धनी। संपन्न।

दौलतमंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] संपन्नता। मालदारी। धनाढ्यता।

दौलतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दौलत] दे० 'दौलत'। उ०—साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लिए हैं। भूषन ते बिनु दौलति ह्वै के फकीर ह्वै देसबिदेस गए हैं। लोग कहैं दमि दच्छिन जेय सिसोदिया रावरे हाल ठए हैं ? देत रिसाय के उत्तर यों हमही दुनिया ते उदास भए हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० ७०।

दौलीं†—अव्य० [देश०] चारों ओर। उ०—दौली चौकी साहुरी, बिच दिल चकल सभाग। सोहै फिर सामुद्र मैं, ज्वालवती बड़वाग।—रा० रू०, पृ० ३१।

दौलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुवा।

दौल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दौवारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल। २. एक प्रकार का वास्तु देव।

दौवारिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिहारी। द्वारपालिका [को०]।

दौवालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। उस देश का निवासी।—(महाभारत)।

दौश्चर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुश्चर्मा होने का भाव। दे० 'दुश्चर्मा'।

दौश्चर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्टता। २. बुरा आचरण। बुरा कर्म [को०]।

दौषबुद्धि†—संज्ञा स्त्री० [सं० दोषबुद्धि] दे० 'दोषबुद्धि'। उ०—सो काहे ते ? जो याते वैष्णव पर दौषबुद्धि कीनी, (और) तासों द्वेष कियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४२।

दौष्कुल—संज्ञा पुं० [सं०] निम्न वंश या हीन वंश में उत्पन्न [को०]।

दौष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्टता। नीचता (को०)।

दौष्मंत—संज्ञा पुं० [सं० दौष्मन्त] १. दुष्मंत (दुष्यंत) का पुत्र। २. दुष्मंत के कुल में उत्पन्न व्यक्ति।

दौष्मंति—संज्ञा पुं० [सं० दौष्मन्ति] दे० 'दौष्मंत'।

दौष्यंति—संज्ञा पुं० [सं० दौष्यन्ति] १. दुष्यंत का पुत्र भरत, जिसका बचपन का नाम सर्वदमन था। २. दुष्यंत के वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

दौहनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दोहन] दे० 'दोहन'। उ०—कोइ गमनी तजि सोहन, दौहन, भोजन सेवा। अंजन भंजन, चंदन द्विज पतिदेव निषेवा।—नंद० ग्रं०, पृ० ४०।

दौहित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दौहित्री] १. लड़की का लड़का। नाती।

विशेष—धर्मशास्त्र में पौत्र और दौहित्र में कोई विशेष अंतर नहीं माना गया है। पौत्र के समान दौहित्र पिंडदान आदि द्वारा उद्धार करता है। जबतक दौहित्र न हो जाय, पिता कन्या के घर भोजन आदि नहीं कर सकता। यदि करे तो नरकगामी होता है।

२. खड्ग। तलवार। ३. तिल। ४. गाय का घी।

दौहित्रक—वि० [सं०] दौहित्र संबंधी।

दौहित्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] दौहित्र का पुत्र [को०]।

दौहित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या की कन्या। नतिनी [को०]।

दौहीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुहाई] दे० 'दुहाई'। उ०—दस दिसा साह दौही फिरे। घन बीरा रस भुग्गिहै।—पृ० रा०, २४।३२४।

दौहृद—संज्ञा पुं० [सं०] वह इच्छा जो स्त्रियों को गर्भिणी होने की दशा में होती है। दोहद।

दौहृदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

द्यविद्यवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन।

द्याकार—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र। चतुर्थ वर्ण का व्यक्ति। उ०—ये सब राजकुमार इस समय द्याकारों (शूद्रों) और सुनारों के घरों में छिपे हैं।—प्रा० भा० प०, पृ० १६२।

द्यानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० दिलाना] १. देना का प्रेरणार्थक रूप। दिलवाना। दिलाना। उ०—फिरि सुधि दै सुधि द्याइयों इहि निरदई निरास। नई नई बहुर्‌यो दई दई उसास उसास।—बिहारी (शब्द०)। २. देना। प्रदान करना। उ०—अंब तजइ नहिं कोइलां, सरवर साजुराह। राज द्विजइ मा पीतरउ, मा धण द्याउ अवराँह।—ढोला०, दू० ८।

द्यावना†Ⓟ—क्रि० स० [हिं० द्याना] दे० 'दिलाना'।

द्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन। २. आकाश। ३. स्वर्ग। ४. अग्नि। ५. सूर्यलोक।

द्युक—संज्ञा पुं० [सं०] उलूक। उल्लू [को०]।

द्युकारि—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ। वायस [को०]।

द्युग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में गमन करनेवाला प्राणी। २. पक्षी। खग।

द्युगण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की मध्यगति के साधक अंग दिन।

द्युचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह। २. पक्षी।

द्युज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहोरात्र वृत्त की व्यासरूप ज्या।

द्युत्—संज्ञा पुं० [सं०] किरण।

द्युत—वि० [सं०] प्रकाशवान।

द्युति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति। कांति। चमक। २. शोभा। छवि। ३. लावण्य। ४. रश्मि। किरण।

द्युति[2]—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम जो चतुर्थ मनु के समय में थे। (हरिवंश)।

द्युतिकर[1]—वि० [सं०] प्रकाश उत्पन्न करनेवाला। चमकनेवाला।

द्युतिकर—संज्ञा पुं० ध्रुव।

द्युतित—वि० [सं०] दे० 'द्योतित' [को०]।

द्युतिधर[2]—वि० [सं०] प्रकाश या कांति को धारण करनेवाला।

द्युतिधर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

द्युतिमंत—वि० [सं० द्युतिमत्] दे० 'द्युतिमान्'।

द्युतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति + मा (प्रत्य०)] प्रभा। प्रकाश। तेज। उ०—अग जग मग वासी लखि कहई। द्युतिमा भवन कवन में अहई।—विश्राम (शब्द०)।

द्युतिमान्[1]—वि० [सं० द्युतिमत्] [वि० स्त्री० द्युतिमती] प्रकाशवाला। जिसमें चमक या आभा हो।

द्युतिमान्[2]—संज्ञा पुं० १. स्वायंभुव मनु के एक पुत्र का नाम। २. शाल्व देश के एक राजा का नाम (महाभारत)। ३. प्रियव्रत राजा के पुत्र जिन्हें क्रौंच द्वीप का राज्य मिला था (विष्णुपुराण)।

द्युधुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी। आकाशगंगा [को०]।

द्युन—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवाँ स्थान।

द्युनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्युधुनि' [को०]।

द्युनिवासी—संज्ञा पुं० [सं० द्युनिवासिन्] देवता [को०]।

द्युनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहर्निश। दिन रात।

द्युपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. इंद्र।

द्युपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमार्ग।

द्युमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार। ३. परिशोधित ताँबा। शोधा हुआ ताँबा।

द्युमत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्व देश के एक राजा जो सत्यवान् के पिता थे। ये दुर्भाग्यवश अंधे हो गए। जब सब लोगों ने षड्यंत्र करके इन्हें गद्दी पर से उतार दिया तब ये अपनी पत्नी और शिशु को लेकर वन में चले गए। वि० दे० 'सत्यवान्', 'सावित्री'।

द्युमद्गान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सामगान।

द्युमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या। सूर्य की पत्नी।

द्युमान्—वि० [सं० द्युमत्] [वि० स्त्री० द्युमती] प्रकाशवाला। कांतियुक्त। चमकीला।

द्युम्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन। २. सूर्य। ३. अन्न। ४. बल। ५. कांति (को०)।

द्युयोषित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा। स्वर्वेश्या [को०]।

द्युलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्गलोक।

विशेष—वैदिक ग्रंथों में द्युलोकको तीन कक्षाएँ कही गई हैं, पहली 'उदन्वती', दूसरी 'पीलुमती' और तीसरी 'प्रद्यौ' है। इन तीन कक्षाओं को ही क्रमशः नाक, स्वर्ग और पितृलोक कहते हैं। उदन्वती कक्षा में चंद्रमा हैं, पीलुमती कक्षा में सूर्य हैं और तीसरी प्रद्यौ कक्षा में अनेक लोक लोकांतर हैं। इन लोकों में जाना ही अश्वमेध आदि बड़े बड़े यज्ञों का फल कहा गया है।

द्युवन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. स्वर्ग।

द्युषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. नक्षत्र। ३. ग्रह।

द्युसद्म—संज्ञा पुं० [सं० द्युसद्मन्] स्वर्ग।

द्युसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

द्युसिंधु—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युसिन्धु] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी।

द्युसैंधव—संज्ञा पुं० [सं० द्युसैन्धव] उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा। इंद्र का अश्व [को०]।

द्यू—वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

द्यूत—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ। वह खेल जिसमें दाँव बदा जाय और हारनेवाला जीतनेवाले को कुछ दे।

विशेष—मनु ने लिखा है कि राजा को चाहिए कि जुआ और पशु पक्षियों का दंगल अपने राज्य में न होने दे। जो जुआ खेले या खेलावे उसे राजा वध तक का दंड दे सकता है। याज्ञवल्क्य ने कूटद्यूत का इसी प्रकार निषेध किया है।

द्यूतकर—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलनेवाला जुआरी।

द्यूतकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्यूतकर'।

द्यूतकारक, द्यूतकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्यूतकर' [को०]।

द्यूतक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुए का खेल। जुआ खेलना [को०]।

द्यूतदास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्यूतदासी] वह दास जो जुए की जीत में मिला हो।

द्यूतपूर्णिमा—संज्ञा पुं० [सं०] कोजागरी। आश्विन की पूर्णिमा। इस दिन प्राचीन काल में जुआ खेला जाता था और लोग रात को जागते थे।

द्यूतिप्रतिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्यूतप्रतिपत्] कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा। इस दिन लोग जुआ खेलते हैं।

द्यूतफलक—संज्ञा पुं० [सं०] वह चौकी, तख्ता आदि जिसके ऊपर पासा बिछाया या खेला जाय। वह चौकी जिसपर जुए की कौड़ी फेंकी जाय।

द्यूतबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कौड़ी।

द्यूतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ जुआ खेला जाय। जुआखाना।

द्यूतमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुआ खेला जाय।

द्यूतवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी जीविका द्यूत हो। जुआ खेलनेवाला। २. जुआ खेलानेवाला [को०]।

द्यूतसमाज—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुआ खेला जाय।

द्यूताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकीय अधिकारी जो जुए का निरीक्षण करता था और जुआरियों से राजकीय भाग ग्रहण करता था।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि स्थान स्थान पर बने हुए जुए

के सरकारी अड्डे इसी के निरीक्षण में रहते थे। जो कोई किसी दूसरे स्थान पर जूआ खेलता था उसे १२ पण जुर्माना देना होता था।

द्यूताभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] जुआ संबंधी मुकदमा।—(को०)।

द्यूतावास—संज्ञा पुं० [सं०] जुआखाना।—(को०)।

द्यून—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवीं राशि।

द्यो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग। २. आकाश। ३. शतपथ ब्राह्मण और देवीभागवत के अनुसार आठ वसुओं में से एक।

विशेष—महाभारत, अग्निपुराण और भागवत में आठ वसुओं के के जो नाम दिए गए हैं उनमें यह नाम नहीं है। देवीभागवत में इस वसु के संबंध में यह कथा लिखी है। एक बार सब वसु अपनी स्त्रियों को लेकर क्रीड़ा कर रहे थे। वे घूमते, फिरते वसिष्ठ के आश्रम पर जा निकले। द्यो की स्त्री ने वसिष्ठ की गाय नंदिनी को देखा और अपने स्वामी से उसे लेने के लिये कहा। द्यो गाय को हर ले गया। इसपर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। इस शाप के कारण द्यो का पृथ्वीतल पर भीष्म के रूप में जन्म हुआ।

द्योकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह कारीगर जो प्रासादादि बनाने का काम करता हो। थवई। राजगीर।

द्योत—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। २. आतप। धूप।

द्योतक—वि० [सं०] १. प्रकाशक। प्रकाश करनेवाला। २. दर्शक। ३. बतलानेवाला।

द्योतन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्योतित] १. दर्शन। २. प्रकाशन। प्रकाशित करने या जलाने का काम। ३. दिग्दर्शन। दिखाने का काम। ४. दीपक। ५. प्रकाश। ६. वह जो प्रकाश करे। प्रकाशक (को०)।

द्योतन[2]—वि० १. प्रकाशमान्। चमकीला। २. बतलाने या दिखानेवाला। सूचक (को०)।

द्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० द्योतिस्] १. ज्योति। आभा। २. तारा (को०)।

द्योतित—वि० [सं०] प्रकाशित।

द्योतिरिंगण—संज्ञा पुं० [सं० द्योतिरिङ्गण] खद्योत। जुगनू।

द्योभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

द्योषद्—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

द्योस(पु)—पुं० [सं० दिवस्] दे० 'द्यौस'।

द्योहरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह] दे० 'देवघर'।

द्योंहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह या देवस्थान] देवस्थान। वह स्थान जहाँ देवता स्थापित हों। उ०—डागल उपरि दौरणां, सुख नीदड़ी न सोइ। पुंनैं पायें द्योंहड़े, ओछी ठौर न खोइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २७।

द्यौ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिवस। दिन। २. आकाश। व्योम। उ०—द्यौ अर्थात् आकाश एक देवता है।—३. अग्नि। ४. स्वर्ग। हिंदु० सभ्यता, पृ० ४१।

द्यौरानी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरानी] देवर की स्त्री। देवरानी।

उ०—तुम लीजों द्यौरानी हमारी मेरे हाथ अरमिया मारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१४।

द्यौस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस्] दिन। उ०—राति गँवाई सोइ के, द्यौस गँवाया खाय। हीरा जनम अमोल है कौड़ी बदले जाय।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—द्यौस निसि = दिवस निशि। दिन रात। उ०—दुःख देखि के देखिहौ तब सुख आनँदकंद। तपन ताप तपि द्यौस निसि, जैसे शीतल चंद—केशव (शब्द०)।

द्यौसक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, हिं० द्यौस + क (प्रत्य०)] दिन। दिवस। वो एक दिन। उ०—(क) औरै गति औरै बचन भयो बदन रँग और। द्यौसक तें पिय चित चढ़ी, कहै चढ़ौहै त्यौर।—बिहारी (शब्द०)।

द्रंक्षण—संज्ञा पुं० [सं० द्रङ्क्षण] तोलने का एक मान जो दो कर्ष अर्थात् एक तोले के बराबर होता था। उ०—कोल को क्षुद्रम वा वटक या द्रंक्षण नामों से भी बोलते हैं।—शार्ङ्गधर सं० पृ० ७।

पर्या०—कोल। वटक। कर्षार्द्ध।

द्रंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रङ्ग] १. वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कर्बट से छोटा हो। २. दुर्ग। गढ़। किला। उ०—साहिब कह्यउ न आइयइ जहाँ परेरउ द्रंग।—ढोला०, दू० २२६।

द्रकट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्रगड़'।

द्रग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृग] नेत्र। आँख। चक्षु। उ०—मुहियत द्रगनि के अचरिज मारे। चलहि आन तन आनहि मारे।—नंद० ग्रं०, पृ० १२२।

द्रगड, द्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। दगड़ा।

द्रढ़िमा—संज्ञा पुं० [सं० द्रढिमन्] दृढ़ता।

द्रढिष्ठ—वि० [सं०] अधिक दृढ़। बहुत दृढ़।

द्रप्पन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दर्पण। आइना। उ०—द्रप्पन सम आकास स्रवत जल अंमृत हिमकर। उज्जल जल ललिता सु सिद्धि सुंदर सरोज सर।—पृ० रा०, ६१।४२।

द्रप्स[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्ठा। ३. रस। ४ शुक्र। ५. दही। दधि (को०)।

द्रप्स[2]—वि० १. द्रुतगति युक्त। तेज चलनेवाला। २. चूने या रिसने वाला। प्रस्रवणशील।

द्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्ठा। ३. शुक्र। ४. रस।

द्रमिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। दे० 'तामिल'।

द्रम्म—संज्ञा पुं० [सं० मि० यू० फ़ा० दिरम] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का (लीलावती)।

विशेष—मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व इसका व्यवहार विशेष रूप से था। लीलावती मे प्रश्न आदि निकालने में इसी का प्रयोग किया गया है। उसमें लिखा है कि २० कौड़ी बराबर एक काकिणी के, ४ काकिणी बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रम्म के तथा १६ द्रम्म बराबर १ निष्क के होता है।

द्रवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रवन्ती] १. नदी। २. मूषकपर्णी। मूसाकानी। चोंटा।

द्रव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवण । २. बहाव । ३. पलायन । दौड़ । ४. वेग । ५. आसव । ६. रस । ७. परिहास । क्रीड़ा । ८. द्रवत्व ।

द्रव²—वि० १. तरल । पानी की तरह पतला । २. आर्द्र । गीला ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. पिघला हुआ । आँच खाकर पानी की तरह फैला हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवक—वि० [सं०] १. भागनेवाला । भगेड़ू । २. बहनेवाला । प्रवाहयुक्त । ३. रसनेवाला । चूनेवाला । क्षरणशील ।

द्रवज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जो रस से बनाई जाय । २. गुड़ ।

द्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्रवित] १. गमन । गति । दौड़ । २. क्षरण । बहाव । ३. पिघलने या पसीजने की क्रिया या भाव । ४. हृदय पर करुणापूर्ण प्रभाव पड़ने का भाव । चित्त के कोमल होने की वृत्ति । ५. पलायन । भागना (को०) ।

द्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रवत्व' ।

द्रवत्पत्री—संज्ञा [सं०] एक पौधा जिसे कहीं कहीं बंगोनी कहते हैं । बंगाल में इसे शिमुड़ी भी कहते हैं । यह औषध के काम में आता है ।

द्रवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहने का भाव । पानी की तरह पतला होने का भाव ।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार यह एक गुण है जो द्रव्यों में रहता है । यद्यपि वैशेषिक दर्शन में गुणों की परिगणना में द्रवत्व गुण नहीं आया है तथापि प्रशस्तपाद भाष्य में इसे गुण लिखा है । इस गुण के होने से वस्तुओं का बहना होता है । प्राचीन काल के विद्वानों ने द्रवत्व को भूत और सामान्य गुण माना है और द्रवत्व के दो भेद किए हैं—सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणों से उत्पन्न हो । ऐसे लोगों का मत है, कि स्वाभाविक या सांसिद्धिक द्रवत्व केवल जल में है और पृथ्वी में नैमित्तिक द्रवत्व है जो संसर्ग से आ जाता है । आधुनिक विद्वान् द्रवत्व को द्रव्य का एक रूप या उसकी अवस्था मात्र मानते हैं । उस पदार्थ का, जिसमें यह गुण होता है, कोई निज का आकार नहीं होता, किंतु जिस वस्तु के आधार में वह रहता है उसी के आकार का वह हो जाता है । वही पानी जब बोतल में भर दिया जाता है तब बोतल के आकार का और जब कटोरे, लोटे, गिलास आदि में रहता है तब उन उन पात्रों के आकार का हो जाता है । द्रवत्व और विभुत्व में भेद केवल इतना ही है कि द्रव पदार्थ परिमित अवकाश को घेरता है और विभु पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है ।

२. बहना । ढलना ।

द्रवना(पु)—क्रि० अ० [सं० द्रवण] १. प्रवाहित होना । बहना । २. पिघलना । उ०—निज परिताप द्रवइ नवनीता । परदुख द्रवहिं सुसंत पुनीता ।—तुलसी (शब्द०) । ३. पसीजना । दयार्द्र होना । दया करना । उ०—(क) मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन । जासु कृपा, सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहियत परम उदार कृपानिधि अंतर्यामी त्रिभुवन तात । द्रवत हैं आपु देत दासन को रीझत हैं तुलसी के पात ।—सूर (शब्द०) ।

द्रवरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख । लाह ।

द्रवशील—वि० [सं०] द्रवित होनेवाला । द्रवणशील ।

द्रवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंजलि । चुल्लू । २. लघु पात्र । छोटा बर्तन (को०) ।

द्रविड़—संज्ञा पुं० [सं० द्रविड, ता० तिरमिक] १. दक्षिण भारत का एक देश जो उड़ीसा के दक्षिण पूर्वीय सागर के किनारे रामेश्वर तक है । २. द्रविण देश का रहनेवाला ।

विशेष—मनु ने द्रविड़ों को सवर्णा स्त्री से उत्पन्न व्रात्य क्षत्रियों की संतति कहा है । महाभारत में भी लिखा है कि परशुराम के भय से बहुत से क्षत्रिय दूर दूर के पहाड़ों और जंगलों में भाग गए । वहाँ वे अपने कर्म ब्राह्मणों के अदर्शन आदि के कारण भूल गए और वृषलत्व को प्राप्त हो गए । वे ही द्रविड़, आभीर, शबर, पुंड्र आदि हुए । दे० 'तामिल' ।

३. ब्राह्मणों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पाँच ब्राह्मण हैं—आंध्र, कर्णाटक, गुर्जर, द्राविड़ और महाराष्ट्र ।

मुहा०—द्रविड़ प्राणायाम = दे० 'द्राविड़ी प्राणायाम' ।

द्रविड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविडी] एक रागिनी का नाम ।

द्रविण—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन । २. कांचन । सोना । ३. पराक्रम । बल । ४. पृथु राजा का एक पुत्र । ५. भागवत के अनुसार कुशद्वीप का एक सीमापर्वत । ६. क्रौंच द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष । ७. महाभारत के अनुसार धुर नामक वसु के एक पुत्र का नाम । ८. पदार्थ । वस्तु (को०) । ९. आकांक्षा । अभिलाषा (को०) ।

द्रविणनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन । सहिजन का पेड़ ।

विशेष—स्मृतियों में शोभांजन भक्षण का निषेध है ।

द्रविणप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

द्रविणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर । धनपति (को०) ।

द्रविणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर (को०) ।

द्रविणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] धन की प्राप्ति (को०) ।

द्रविणोदा¹—संज्ञा पुं० [सं० द्रविणोदस्] वेद का एक देवता जो धन देनेवाला कहा गया है । अग्नि ।

द्रविणोदा²—वि० धन देनेवाला ।

द्रवित—वि० [सं०] दे० 'द्रवीभूत' ।

द्रवीभूत—वि० [सं०] १. जो द्रव हो गया हो । जो पानी की तरह पतला हो गया हो । २. पिघला हुआ । गला हुआ । ३. पसीजा हुआ । दयार्द्र । दयालु ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवेतर—वि० [सं०] द्रव पदार्थ से भिन्न । कड़ा । ठोस (को०) ।

द्रवोत्तर—वि० [सं०] अत्यधिक पतला या तरल (को०) ।

द्रव्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तु । पदार्थ । चीज । वह पदार्थ जो क्रिया और गुण अथवा केवल गुण का आश्रय हो । वह पदार्थ जिसमें गुण और क्रिया अथवा केवल गुण हो और जो समवायि कारण हो ।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य नौ कहे गए हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आत्मा और मन ये छह द्रव्य ऐसे हैं जिनमें क्रिया और गुण दोनों हैं। आकाश, दिक् और काल ये तीन ऐसे हैं जिनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं। पाँच द्रव्यों में से केवल चार सावयव हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। ये चार द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले माने गए हैं। ये परमाणु रूप से नित्य और कार्य (स्थूल) रूप से अनित्य हैं। इन्हीं परमाणुओं के योग से सृष्टि होती है। प्रशस्तपाद भाष्य में लिखा है कि जीवों के कर्मफल भोग का समय जब आता है तब जीवों के अदृष्ट के बल से वायु के परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है। इस चलन से परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है। दो दो परमाणुओं के मिलने से 'द्व्यणुक' और तीन द्व्यणुकों के मिलने से 'त्रसरेणु' उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक महान् वायु की उत्पत्ति होती है। महान् वायु में परमाणुओं के संयोग से क्रमशः जल द्व्यणुक, जल त्रसरेणु और फिर महान् जलनिधि उत्पन्न होता है। इस जल में पृथ्वी परमाणुओं के परस्पर संयोग द्वारा द्व्यणुकादि क्रम से महापृथ्वी की उत्पत्ति होती है। फिर उसी जलनिधि में तैजस् परमाणुओं के परस्पर संयोग से तैजस द्व्यणुकादि क्रम से महान् तेजोराशि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वैशेषिक ने चार भूतों के अनुसार चार तरह के परमाणु माने हैं,—पृथ्वी परमाणु जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु परमाणु। इन्हीं परमाणुओं से ये चार भूत उत्पन्न होते हैं। पाँचवाँ द्रव्य आकाश निरवयव, विभु और नित्य है, न उसके टुकड़े होते हैं और न उसका नाश होता है। आकाश की ही तरह काल और दिक् भी विभु और नित्य हैं। आत्मा एक अमूर्त द्रव्य है जो ज्ञान का अधिकरण और किसी किसी के मत से ज्ञान का समवायिकारण है। मन नित्य और मूर्त माना गया है, क्योंकि यदि मूर्त न होता तो उसमें क्रिया न होती। वैशेषिक मन को अणुरूप मानता है क्योंकि एक क्षण में एक ही इंद्रिय का संयोग उसके साथ हो सकता है। जैनों के अनुसार द्रव्य गुणों और पर्यायों का स्थान है और सदा एकरस रहता है, उसके भीतर भेद नहीं पड़ता। जैन ६ द्रव्य मानते हैं—जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश और काल।

पदार्थज्ञान में आजकल पश्चिम के देशों में बहुत उन्नति हुई है। सावयव सृष्टि के वैशेषिक में चार मूल भूत कहे गए हैं और उसी के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी माने गए हैं पर आजकल की परीक्षाओं से ये चारों मूलभूत कहे जानेवाले पदार्थ कई मूल द्रव्यों के योग से बने पाए गए हैं। जल और वायु कई मूल द्रव्यों के योग से बने परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। पाश्चात्य रसायन में शताधिक मूल द्रव्य माने गए हैं, जिनके परमाणुओं के रासायनिक संयोग से भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं। अतः इस हिसाब से भी परमाणु शताधिक प्रकार के हुए। मूल द्रव्यों परमाणुओं के गुरुत्व का यदि परस्पर मिलान किया जाय तो उनमें एक हिसाब से चलता हुआ क्रम पाया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि ये सब मूल द्रव्य भी एक ही परम द्रव्य से निकले हैं।

३. सामग्री। सामान। उपादान। वह जिससे कोई वस्तु बनी हो। ४. धन। दौलत। रुपया पैसा। ५. पीतल। ६. औषध। भेषज। ७. मद्य। ८. लेप। ९. गोंद। १०. गाय (को०)। ११. शिष्टता। विनय। विनम्रता (को०)।

द्रव्य²—वि० १. द्रुम संबंधी। पेड़ का। पेड़ से निकला हुआ। २. पेड़ के ऐसा।

द्रव्यक—वि० [सं०] किसी द्रव्य या पदार्थ को उठाने या ले जानेवाला [को०]।

द्रव्यकृश—वि० [सं०] गरीब। धनहीन [को०]।

द्रव्यगण—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्र में सैंतीस समान द्रव्यों का समूह [को०]।

द्रव्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्य का भाव। द्रव्यपन।

द्रव्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष के अनुसार भिन्न भिन्न द्रव्यों या पदार्थों की अधिपति भिन्न भिन्न राशियाँ। जैसे,—कंबल, मसूर, गेहूँ, शाल वृक्ष, जौ इत्यादि की अधिपति मेष राशि है। इसी प्रकार धान, कपास, लता इत्यादि मिथुन राशि के अधीन हैं। २. द्रव्य का स्वामी। धनी। धनवाला।

द्रव्यपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] धनसंचय। द्रव्य इकट्ठा करना [को०]।

द्रव्यमय—वि० [सं०] १. धन से युक्त। धनवान्। २. किसी द्रव्य से निर्मित। [को०]।

द्रव्यवती—वि० स्त्री० [सं० द्रव्यवत्] धनवती। संपत्तिशाली [को०]।

द्रव्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ियों के लिये रक्षित वन। वह जंगल जहाँ से लकड़ी आती हो।

द्रव्यवन भोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जांगलिक पदार्थों की बहुतायत हो।

विशेष—प्राचीन आचार्य ऐसे ही उपनिवेश को पसंद करते थे जिसमें जांगलिक पदार्थ बहुतायत से हों। परंतु चाणक्य का मत है कि लकड़ियाँ तथा जांगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं। इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हों।

द्रव्यवनादीपिक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ी आदि के लिये रक्षित जंगल में आग लगानेवाला।

द्रव्यवाचक—वि० [सं०] वह शब्द जिससे किसी द्रव्य का ज्ञान हो।

द्रव्यवान्—वि० [सं० द्रव्यवत्] [वि० स्त्री० द्रव्यवती] धनवान्। धनी।

द्रव्यशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी द्रव्य या वस्तु को निर्मल करना। किसी चीज को धोकर साफ करना [को०]।

द्रव्यसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाले वस्तुओं की सफाई [को०]।

द्रव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुमूल्य पदार्थ। उपयोगी पदार्थ।

द्रव्यांतर—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्यान्तर] दूसरा द्रव्य।

द्रव्याधीश—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

द्रव्यार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] धन पैदा करना। संपत्ति कमाना [को०]।

द्रव्याश्रित—वि० [सं०] दौलत पर मुनहसर। द्रव्य में निहित (को०)।

द्रष्टव्य—वि० [सं०] १. देखने योग्य। दर्शनीय। २. जिसे दिखाना हो। जो दिखाया जानेवाला हो। ३. जिसे बतलाना या जताना हो। ४. साक्षात् कर्तव्य। ५. सुंदर। मोहक (को०)। ६. समझने योग्य। विचारणीय (को०)।

द्रष्टा[1]—वि० [सं० द्रष्टृ] १. देखनेवाला। २. साक्षात् करनेवाला। ३. दर्शक। प्रकाशक।

द्रष्टा[2]—संज्ञा पुं० १. सांख्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा।

विशेष—आत्मा द्रष्टा और अंतःकरण दृश्य माना जाता है। इन दोनों का संयोग ही दुःख का कारण है। सुख, दुःख आदि ये बुद्धिद्रव्य के विकार हैं। इंद्रियों का संबंध होने से अंतःकरण या बुद्धिद्रव्य ही विषय या सुख दुःख रूप में परिणत होता है, आत्मा नहीं। आत्मा द्रष्टा के रूप में रहता है।

२. निर्णायक। जज। विचारपति। न्यायाधीश (को०)।

द्रष्टार—संज्ञा पुं० [सं०] विचारक। द्रष्टा (को०)।

द्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. ह्रद। ताल। झील। २. वह स्थान जहाँ गहरा जल हो। दह।

द्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख। अंगूर।

द्राधिमा—संज्ञा पुं० [सं० द्राघिमन्] १. दीर्घता। लंबाई। २. वे कल्पित रेखाएँ जो भूमध्य रेखा के समानांतर पूर्व पश्चिम को मानी गई हैं। इन रेखाओं से अक्षांश सूचित होता है।

द्राघिष्ठ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। भल्लूक। रीछ (को०)।

द्राघिष्ठ[2]—वि० सबसे लंबा। बहुत लंबा (को०)।

द्राण[1]—वि० [सं०] १. सुप्त। सोया हुआ। २. पलायित। भगेड़ू।

द्राण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वप्न। २. पलायन। भागना।

द्राप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. कौड़ी। ३. मूर्ख व्यक्ति (को०)। ४. शिव का एक नाम (को०)। ५. कर्दम। कीचड़। पंक (को०)।

द्राप[2]—वि० १. मूर्ख। २. सुप्त।

द्रामिल[1]—वि० [सं० द्राविड] द्रमिल या द्रविड़ देशवासी।

द्रामिल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य का एक नाम।

द्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन। २. क्षरण। ३. बहने या पसीजने की क्रिया। गलने या पिघलने की क्रिया। ४. अनुताप। ५. ताप। ऊष्मा (को०)।

द्रावक—वि० [सं०] १. द्रवरूप में करनेवाला। ठोस चीज को पानी की तरह पतला करनेवाला। २. बहानेवाला। ३. गलानेवाला। ४. पिघलानेवाला। ५. हृदय पर प्रभाव डालनेवाला। जिससे चित्त आर्द्र हो जाय। ६. चतुर। चालाक। ७. पीछा करनेवाला। भगानेवाला। ८. चुरानेवाला। चोर। ९. हृदयग्राही।

द्रावक[2]—संज्ञा पुं० १. चंद्रकांत मणि। २. जार। व्यभिचारी। ३. मोम। ४. सुहागा।

द्रावककंद—संज्ञा पुं० [सं० द्रावककन्द] तैलकंद तिलकंदरा।

द्रावकर—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

द्रावण—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवीभूत करने का कार्य या भाव। गलाने या पिघलाने की क्रिया या भाव। २. भगाने का काम। ३. रीठा।

द्राविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लार। २. मोम।

द्राविड़[1]—वि० [सं० द्राविड] [वि० स्त्री० द्राविड़ी] द्रविड़ देशवासी। द्रविड़ संबंधी।

द्राविड़[2]—संज्ञा पुं० [सं० द्रविड] १. द्रविड़ देश। २. कचूर। ३. आमिया हल्दी।

द्राविड़क—संज्ञा पुं० [सं० द्राविडक] १. विट्लवण। सोंचर नमक। २. कचिया हल्दी।

द्राविड़गौड़—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो रात के समय गाया जाता है। इसमें शृंगार और वीर रस अधिक गाया जाता है।

द्राविड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राविडी] छोटी इलायची।

द्राविड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविड] १. द्रविड़ जाति की स्त्री।

द्राविड़ी[3]—वि० द्रविड़ संबंधी। द्रविड़ देश का।

मुहा०—द्राविड़ी प्राणायाम = किसी सीधी तरह होनेवाली बात को बहुत घुमाव फिराव के साथ करना।

विशेष—इस मुहा० की उत्पत्ति ठीक ठीक नहीं मालूम होती। द्रविड़ लोग प्राणायाम करने में पहले दाहिने हाथ की चुटकी बजाते हुए सिर के पास हाथ घुमाते हैं, पीछे नाक दबाकर प्राणायाम करते हैं। शायद इसी में विशेषता देखकर उत्तरीय भारत के लोग ऐसा कहने लगे हों।

द्रावित—वि० [सं०] १. द्रव किया हुआ। २. गलाया या पिघलाया हुआ। ३. भगाया हुआ।

द्राह्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम। ये द्रह्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुए थे। सामवेद के कल्प, श्रौत और गृह्यसूत्र इनके बनाए हुए हैं।

द्रिग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृक्, दृग्] दे० 'दृग'। उ०—धर तर्प चंद मन दर्प करि तामस द्रिग विकराल मन। सम गवरि अंग अंग सिंघ उखिघ नृपति समंतन असुर बन।—पृ० रा०, १। ५०५।

द्रिढ़(पु)—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़'। उ०—ज्यूँ सुख त्यूँ दुख द्रिढ़ मन राखै एकादसी इकतार करै।—कबीर ग्रं०, पृ० १५०।

द्रिष्टि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—ज्यूँ घर सूँ घर बंधिया यूँ बंधे सब लोई। जाके आत्म द्रिष्टि है। साचा जन सोई।—कबीर ग्रं०, पृ० १४१।

द्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। २. शाखा। ३. लकड़ी। काष्ठ (को०)। ४. काष्ठ निर्मित कोई भी यंत्र (को०)।

द्रुकिलिम—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु।

द्रुगंध(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गंध'। उ०—बहुत सुगंध द्रुगंध करि भरिये भाजन अंबु। सुंदर सब मैं देखिये सूरय को प्रतिबिंबु।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१।

द्रुग्ध[1]—वि० [सं०] १. जिससे द्रोह किया गया हो। जिसके विरुद्ध चाल चली गई हो। २. आहत (को०)।

द्रुग्ध[2]—संज्ञा पुं० बुरा कर्म। जुर्म। अपराध (को०)।

द्रुघण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे का मुगदर। २. परशु या फरसे के आकार का एक अस्त्र, जिसका सिरा मुड़ा हुआ होता था। इससे झुकाने, गिराने, फोड़ने और चीरने का काम लेते थे। ३. कुठार। कुल्हाड़ी। ४. ब्रह्मा। ५. मूसंघा।

द्रुघ्नी संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी (को०)।

द्रुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष। २. खड्ग। ३. बिच्छू। भृंगी कीड़ा। ५. दुष्ट या कुटिल व्यक्ति (को०)।

द्रुणस—वि० [सं०] जिसकी नाक लंबी हो। लंबी नाकवाला (को०)।

द्रुणह—संज्ञा पुं० म्यान। कोश (को०)।

द्रुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष की ज्या। धनुष की डोरी।

द्रुणि, द्रुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कछुही। कच्छपी। २. कनखजूरा। ३. कठवत। काष्ठपात्र।

द्रुत[1]—वि० [सं०] १. द्रवीभूत। पिघला या गला हुआ। २. शीघ्रगामी। तेज। ३. भागा हुआ। ४. शीघ्रतायुक्त। त्वरायुक्त (को०) ५. अस्पष्ट। विकीर्ण (को०)।

द्रुत[2]—संज्ञा पुं० १. बिच्छू। २. वृक्ष। ३. बिल्ली। ४. ताल की मात्रा का आधा जिसका चिह्न ० है। इसके देवता शिव और इसकी उत्पत्ति जल से मानी जाती है। इसका उच्चारण चिड़िया की बोली के समान होता है।

पर्या०—बिंदु। व्यंजन। सन्य। अर्धमात्रक। आकाश। व्यंजन। कूप। वलय।

५. वह लय जो मध्यम से कुछ तेज हो। द्रुत।

द्रुतगति[1]—वि० [सं०] शीघ्रगामी।

द्रुतगति[2]—संज्ञा स्त्री० तीव्र वेग। तेज गति (को०)।

द्रुतगामी—वि० [सं० द्रुतगामिन्][वि०स्त्री० द्रुतगामिनी] शीघ्रगामी। तेज चलनेवाला।

द्रुतत्रिताली—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रुत+त्रिताल] दे० 'द्रुत तिताला'।

द्रुतपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं, जिसमें चौथा, ग्यारहवाँ और बारहवाँ अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं।

द्रुतपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पाठ जो बच्चों को ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन के लिये सहायक हो। तेजी से पढ़ना। उ०—द्रुतपाठ शिक्षण के उद्देश्य साधारण गद्यपाठ की अपेक्षा भिन्न होते हैं।—भा० शिक्षण, पृ० १२७।

द्रुतमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्धसमवृत्त का नाम। इसके प्रथम और तृतीय पाद में ३ भगण और २ गुरु होते हैं (SII SII SII SS) तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १ नगण, २ जगण और १ यगण (III ISI ISI ISS) होता है। जैसे,—रामहि सेवहु रामहि गाओ। तन मन दै नित सीस नवाओ। जन्म अनेकन के अघ जारो। हरि हरि गा निज जन्म सुधारो।

द्रुतविलंबित—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रुतविलम्बित] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ नगण, २ भगण और एक रगण (न भ भ र) (III, SII, SII SIS) होता है। इसे सुंदरी भी कहते हैं। जैसे,—भज न जो सखि बालमुकुंद को। जग न सोहत यद्यपि सुंदरी।

द्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रव। २. गति।

द्रुतै(पु)—क्रि० वि० [सं० द्रुत] जल्दी ही। शीघ्र ही।

द्रुनख—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा।

द्रुपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार उत्तर पांचाल का एक राजा।

विशेष—यह चंद्रवंशी पृषत का पुत्र था। द्रोणाचार्य और द्रुपद बचपन में एक साथ खेला करते थे और दोनों में बड़ी मित्रता थी। पृषत के मर जाने पर द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। हुआ। उस समय द्रोणाचार्य जी उसके पास गए और उन्होंने अपनी बचपन की मित्रता का परिचय देना चाहा, पर द्रुपद ने उनका तिरस्कार कर दिया। जब द्रोणाचार्य जी को भीष्म जी ने कौरवों और पांडवों को शिक्षा देने के लिये बुलाया और द्रोण जी ने उनको बाण विद्या की उत्तम शिक्षा दी तब गुरुदक्षिणा में उन्होंने कौरवों और पांडवों से यही माँगा कि तुम द्रुपद को बाँधकर मेरे सामने ला दो। कौरव तो उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सके पर पांडवों ने द्रुपद को जीता और उसे बाँधकर अपने गुरु को अर्पित किया। द्रोणाचार्य जी ने द्रुपद से कहा कि तुम गंगा के दक्षिण किनारे राज्य करो, उत्तर के किनारे का राज्य हम करेंगे। द्रुपद उस समय तो मान गया पर उसके मन में द्रोणाचार्य की ओर से द्वेष बना रहा। उसने याज और उपयाज नामक दो ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिये, जो द्रोणाचार्य का नाश कर सके, यज्ञ करना प्रारंभ किया। यज्ञ के प्रसाद से धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की एक कन्या हुई। द्रुपद के एक और पुत्र था जिसका नाम शिखंडी था। कृष्णा अर्जुन आदि पांडवों से ब्याही गई थ। द्रुपद महाभारत के युद्ध में मारा गया।

२. खंभे का पाया। ३. खड़ाऊँ।

द्रुपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋचा जिसके आदि में द्रुपद शब्द आता है।

द्रुपदात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रुपदात्मजा] १. शिखंडी। २. धृष्टद्युम्न।

द्रुपदादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काशीखंड के अनुसार सूर्य की एक मूर्ति जिसे द्रौपदी ने स्थापित किया था।

द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। २ पारिजात। ३. कुबेर। ४. एक राजा का नाम जो पूर्वजन्म में शिबि नामक दैत्य था।

५. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र के एक पुत्र का नाम जो रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ था।

द्रुमकंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रुमकण्टिका] सेमर का पेड़।

द्रुमनख—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा।

द्रुमपातन—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ गिराना। पेड़ काटना। उ०—व्याध को पिता कह द्रुमपातन की शिक्षा ली।—अपरा, पृ० २११।

द्रुमव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. लाह। लाख। लाक्षा।

द्रुमभर—संज्ञा पुं० [सं०] काँटा। कंटक।

द्रुमवासी—संज्ञा पुं० [सं० द्रुमवासिन्] बंदर। कपि।

द्रुमशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का सिरा। २. एक प्रकार की छत या गोल मंडप जो पेड़ की तरह फैला हुआ होता है। ३. ताड़ का पेड़ (को०)।

द्रुमश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

द्रुमषंड—संज्ञा पुं० [सं० द्रुमषण्ड] पेड़ों का झुरमुट। तरुनिकुंज। वृक्षावली (को०)।

द्रुमसार—संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम। अनार। उ०—अस्तबीज हानीक कर शुक पीक द्रुमसार। ये दाड़िम हमि देख बलि कछु तुम दसनाकार।—नंददास (शब्द०)।

द्रुमसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौरवों के पक्ष का एक योद्धा जो धृष्टद्युम्न के हाथ से मारा गया था। २. महाभारत के अनुसार एक राजा जो पूर्वजन्म में गविष्ठ नाम का असुर था।

द्रुमामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. लाक्षा। लाख।

द्रुमारि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

द्रुमालय—संज्ञा पुं० [सं०] जंगल।

द्रुमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृक्षों की पंक्ति। पेड़ों की कतार। उ०—उद्यानों की आज देखिए, कैसी छटा निराली है। नए पल्लवों से आभूषित मन मोहती द्रुमाली है।—संचिता, पृ० १४४।

द्रुमाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] (जो पेड़ पर चले) गिरगिट।

द्रुमिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन। जंगल।

द्रुमिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दानव का नाम। यह सौभ देश का राजा था। २. नव योगेश्वरों में से एक।

द्रुमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में गुरु होता है तथा १० और १८ मात्रा पर यति होती है। जैसे,—उतरत यह देके दूत पठे के असदखान यह रोस भर्यो। बोल्यो सब बीरन कुल के धीरन, जिन न चरन रन उलटि धर्यो। तुम करो तयारी सब इस बारी, मैं दिल यह इतकाद करयो। भुभको तो करना देर न करना आहद साह को काज करयो। —सूदन (शब्द०)।

द्रुमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. ताल। ताड़ का पेड़। ३. पारिजात।

द्रुमोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कर्णिकार वृक्ष। कनकचंपा। कनियारी।

द्रुवय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी की माप। पैमाना। २. परिमाण।

द्रुसल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष। चिरौंजी का पेड़।

द्रुह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रुही] १. पुत्र। २. वृक्ष। ३. झील।

द्रुहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. शिव (को०)। ३. विष्णु (को०)।

द्रुहिण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। दे० 'द्रुहण'।

द्रुहिन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्रुहिण] ब्रह्मा। उ०—स्रष्टा चतुरानन विधन द्रुहिन स्वयंभू सोइ।—अनेकार्थ०, पृ० ६६।

द्रुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

द्रुह्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन आर्यों का एक वंश या जनसमूह। उ०—राजवंशों की तालिका देते हुए पार्जिटर ने यादव, हैहय द्रुह्यु तथा दक्षिणी पंचाल को गिनाया है।—प्रा० भा०, प०, पृ० २१। २. शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा का ज्येष्ठ पुत्र, जिसने ययाति का बुढ़ापा लेना अस्वीकार किया था।

विशेष—ययाति से इसने कहा था—जराग्रस्त मनुष्य, स्त्री, रथ, हाथी इत्यादि को नहीं भोग सकता। ययाति ने इसपर इसे शाप दिया कि 'तेरी कोई अभिलाषा पूरी नहीं होगी। जहाँ रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी ही नहीं होती, जहाँ कूद फाँदकर चलना पड़ता है, जहाँ 'राजा' शब्द का व्यवहार ही नहीं है वहाँ तुझे रहना पड़ेगा। द्रुह्यु के वंश में कोई राजा नहीं हुआ (महाभारत)। पर आसाम के पास स्थित त्रिपुरा के राजवंश की जो वंशावली 'राजमाला' नाम की है उसमें त्रिपुरा राजवंश का चंद्रवंशी एक राजा द्रुह्यु से चलना लिखा गया है। पर विष्णुपुराण और हरिवंश के अनुसार द्रुह्यु को बभ्रु और सेतु नामक दो पुत्र हुए। सेतु के पौत्र का नाम गांधार था जिसके नाम से देश का नाम पड़ा। अस्तु, पुराणों के अनुसार द्रुह्यु भारत के पश्चिमी कोने पर गया था न कि पूर्वी। राजमाला की कथा कल्पित है।

द्रू—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

द्रूघाण—संज्ञा पुं० [सं०] हथौड़ा। द्रुघण (को०)।

द्रूण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृश्चिक। बिच्छू। २. धनुष। धन्वा (को०)।

द्रूणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ी का धनुष।

द्रेका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महानिंब। बकायन।

द्रेक्क—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'दृक्काण'।

द्रेक्कण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्रेक्काण' (को०)।

द्रेक्काण—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'दृक्काण'।

द्रेष्काण—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'दृक्काण'। उ०—सूर्य चंद्र जिस ग्रह के राशि द्रेष्काण में बैठे हों। —बृहत्०, पृ० ३३४।

द्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी का एक कलश या बरतन जिसमें वैदिक काल में सोम रखा जाता था। २. जल आदि रखने का लकड़ी का बरतन। कठवत। ३. एक प्राचीन माप जो

चार आढ़क या १६ सेर और किसी किसी के मत से १२ सेर की मानी जाती थी।

पर्या०—घट। कलश। उन्मान। उल्वण। अर्मण।

४. पत्ते का दोना। ५. नाव। डोंगा। ६. अरणी की लकड़ी। ७. लकड़ी का रथ। ८. डोम कौआ। काला कौआ। उ०—करता रव दूर द्रोण था।—साकेत, पृ० ३०६। ९. बिच्छू। १०. वह जलाशय या तालाब जो चार सौ धनुष लंबा चौड़ा हो। यह पुष्करिणी और दीर्घिका से बड़ा होता है। ११ मेघों के एक नायक का नाम। जिस वर्ष यह मेघनायक होता है उस वर्ष वर्षा बहुत अच्छी होती है। १२. वृक्ष। पेड़। १३. द्रोणाचल नाम का पहाड़।

विशेष—रामायण के अनुसार यह पर्वत क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिसपर विशल्यकरिणी नाम की संजीवनी जड़ी होती है। पुराणों के अनुसार यह एक वर्षपर्वत है।

१४. एक फूल का नाम। १५. नील का पौधा। १६. केला। १७. महाभारत के प्रसिद्ध ब्राह्मण योद्धा जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी। दे० 'द्रोणाचार्य'।

द्रोणक—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रतट पर बसा हुआ चारों ओर से सुरक्षित नगर [को०]।

द्रोणकलश—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का एक पात्र जिसमें यज्ञों में सोम छाना जाता था। यह वैकंक की लकड़ी का बनाया जाता था।

द्रोणकाक, द्रोणकाकल—संज्ञा पुं० [सं०] काला कौआ। डोम कौआ।

द्रोणक्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दोना दूध देनेवाली गाय [को०]।

द्रोणगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणगन्धिका] रास्ता।

द्रोणगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विशेष—पुराणानुसार यह एक वर्षपर्वत है। वाल्मीकीय रामायण में इसे क्षीरोद समुद्र में लिखा है। हनुमान विशल्यकारिणी संजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गए थे।

द्रोणदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा' [को०]।

द्रोणदुग्धा, द्रोणदुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा'।

द्रोणपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूकदली।

द्रोणपुष्पी—संज्ञा स्त्री [सं०] गूमा।

द्रोणमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गाँव जो ४०० गाँवों के बीच प्रधान हो। २. चार सौ गाँवों के बीच का किला।

द्रोणमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] गहरी वर्षा करनेवाला बादल। दे० 'द्रोण'–११ [को०]।

द्रोणवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोण नामक बादल से होनेवाली वर्षा [को०]।

द्रोणशर्मपद—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

द्रोणस—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

द्रोणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गूमा।

द्रोणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत। द्रोणगिरि।

द्रोणाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। गंगाद्वार (हरद्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे। वे एक दिन गंगास्नान करने जाते थे, इसी बीच घृताची नाम की अप्सरा नहाकर निकल रही थी। उसका वस्त्र छूटकर गिर पड़ा। ऋषि उसे देखकर कामार्त हुए और उनका वीर्यपात हो गया। ऋषि ने उस वीर्य को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा। उसी द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम द्रोण पड़ा। भरद्वाज ने अपने शिष्य अग्निवेश को जो अस्त्र दिए थे अग्निवेश ने वे सब द्रोण को दिए। भरद्वाज के शरीरपात के उपरांत द्रोण ने शरद्वान् की कन्या कृपी के साथ विवाह किया जिससे उन्हें अश्वत्थामा नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़े के समान घोर शब्द किया। द्रोण ने महेंद्र पर्वत पर जाकर परशुराम से अस्त्र और शस्त्र की शिक्षा पाई। वहाँ से लौटने पर इनके दिन दरिद्रता में बीतने लगे। पृषत नामक एक राजा भरद्वाज के सखा थे। उनका पुत्र द्रुपद आश्रम पर आकर द्रोण के साथ खेलता था। द्रुपद जब उत्तर पांचाल का राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए और उन्होंने उसे अपनी बालमैत्री का परिचय दिया। पर द्रुपद ने राजमद के कारण उनका तिरस्कार कर दिया। इसपर दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गए और वहाँ अपने साले कृपाचार्य के यहाँ ठहरे। एक दिन युधिष्ठिर आदि राजकुमार गेंद खेल रहे थे। उनका गेंद कूएँ में गिर पड़ा। बहुत यत्न करने पर भी वह गेंद नहीं निकलता था, इसी बीच में द्रोण उधर से निकले और उन्होंने अपने बाणों से मार मारकर गेंद को कूएँ के बाहर कर दिया। जब यह खबर भीष्म को लगी तब उन्होंने द्रोण को राजकुमारों की अस्त्रशिक्षा के लिये नियुक्त किया। तब से वे द्रोणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं की शिक्षा के प्रताप से कौरव और पांडव ऐसे बड़े धनुर्धर और अस्त्रकुशल हुए। द्रोणाचार्य के सब शिष्यों में अर्जुन श्रेष्ठ थे। अस्त्रशिक्षा दे चुकने पर द्रोणाचार्य ने कौरवों और पांडवों से कहा,—'हमारी गुरुदक्षिणा यही है कि द्रुपद राजा को बाँधकर हमारे पास लाओ।' कौरवों और पांडवों ने पंचाल देश पर चढ़ाई की। अर्जुन द्रुपद को युद्ध में हराकर उसे द्रोणाचार्य के पास पकड़कर लाए। द्रोणाचार्य ने द्रुपद को यही कहकर छोड़ दिया कि 'तुमने कहा था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, अतः भागीरथी के दक्षिण में तुम राज्य करो, उत्तर में मैं राज्य करूँगा।' द्रुपद के मन में इस बात की बड़ी कसक रही। उन्होंने ऋषियों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से किया। यज्ञ के प्रभाव से उसे धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा (द्रौपदी) नाम की कन्या हुई। कुरुक्षेत्र के युद्ध में द्रोणाचार्य ने दो दिन तक कौरवों की ओर से घोर युद्ध किया।

अंत में जब युधिष्ठिर के मुख से 'अश्वत्थामा मारा गया हाथी'''यह सुना तब पुत्रशोक में नीचा सिर करके वे डूब गए। इसी अवसर पर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

द्रोणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा। २. अष्टम मन्वंतर के एक ऋषि।

द्रोणि[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'द्रोणी'।

द्रोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पौधा। २. पात्र। बाल्टी (को०)।

द्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोंगी। २. दोनियाँ। छोटा दोना। ३. लकड़ी का बना हुआ पात्र। कठवत। ४. काठ का प्याला। डोकिया। ५. दो पर्वतों के बीच की भूमि। दून। ६. केला। ७. दर्रा। ८. इंद्रायन। ९. एक नदी। १०. द्रोण की स्त्री, कृपी। ११. नील का पौधा। १२. एक परिमाण जो दो सूर्प या १२८ सेर का होता था। १३. एक प्रकार का नमक। १४. सींचना।

द्रोणीदल—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

द्रोणीलवण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो कर्णाटक देश के आसपास होता है। इसे बिरिया लोन भी कहते हैं। यह अति उष्ण, भेदक, स्निग्ध, शूलनाशक और अल्प पित्तवर्धक माना गया है।

पर्या०—द्रोणेय। वर्णेय। द्रोणीज। वारिज। वार्धिभव। द्रोणी। चित्रकूट। लवण।

द्रोणोदन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहहनु के पुत्र का नाम जो शाक्य मुनि बुद्ध के चाचा थे।

द्रोण्यामय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के भीतर का एक रोग।

द्रोन(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] दे० 'द्रोण'।

द्रोनाकार(पु)—वि० [सं० द्रोणाकार] चार सौ धनुष लंबा और इतना ही चौड़ा जलाशय आदि। उ०—हिम सँनिन सों घिरयो अद्रि मंडल यह करो। सोहत द्रोनाकार भूमि सुखमा सुख-पूरो।—का० सुषमा, पृ० ५।

द्रोपदी, द्रोपदी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रौपदी] दे० 'द्रौपदी'। उ०—अहिल्या ब्राह्मनी से इंद्र ने छल किया। द्रोपदी पंच भरतार कीन्हीं।—कबीर रे०, पृ० ४५।

मुहा०—द्रोपदी (द्रोपती) का चीर होना = किसी चीज का अंत न होना। असीमित होना। अपार होना। उ०—केता हो उड़ाया तो न पाया पार लोगो। देवो त्रंस दुरम द्रोपती को चीर होगो।—शिखर०, पृ० ९०।

द्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री०, द्रोही] दूसरे का अहितचिंतन। प्रतिहिंसा का भाव। बैर। द्वेष। अपराध। त्रुटि। हिंसन।

द्रोहचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोहचिन्तन] किसी का अहित विचारना। अनिष्टचिंतन। बुरा सोचना (को०)।

द्रोहबुद्धि[1]—वि० [सं०] शत्रुता की बुद्धि रखनेवाला। अनिष्ट चाहने-वाला (को०)।

द्रोहबुद्धि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता की बुद्धि। अनिष्ट करने की नीयत (को०)।

द्रोहभाव—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता की भावना। बुरी नीयत (को०)।

द्रोहाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैडाल व्रतिक। ऊपर से देखने में साधु पर भीतर भीतर बुराई रखनेवाला व्यक्ति। २. मृगलुब्धक। शिकारी। व्याध। ३. वेद की एक शाखा। ४. ढोंगी या झूठा व्यक्ति (को०)।

द्रोही[1](पु)—[सं० द्रोहिन्] [वि० स्त्री० द्रोहिणी] द्रोह करनेवाला। बुराई चाहनेवाला। विरोध करनेवाला।

द्रोही[2]—संज्ञा पुं० वह जो द्रोह रखे। वैरी। शत्रु।

द्रौणायन—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थामा।

द्रौणायनि—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थामा। द्रोणाचार्य का पुत्र।

द्रौणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थामा। २. एक ऋषि जो पुराणा-नुसार उनतीसवें द्वापर में होंगे।

द्रौणिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें एक द्रोण (३८ सेर) बीज बोया जाय।

द्रौणिक[2]—वि० द्रोण संबंधी।

द्रौणिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बरतन जिसमें एक द्रोण परिमाण की वस्तु आवे।

द्रौणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काठ का पात्र। कठवत। २. पर्वत की घाटी (को०)।

द्रौणेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक (को०)।

द्रौनी(पु)—वि० [सं० द्रावणी] प्रवाहित करनेवाली। द्रवित करने वाली। उ०—कै बसुधा पै सुधाधार ब्रह्मद्रव द्रौनी।—का० सुषमा, पृ० ६। २. पर्वतों के बीच की। पर्वतों के मध्य में स्थित (भूमि)।

द्रौपद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रौपदी] द्रुपद का पुत्र।

द्रौपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा द्रुपद की कन्या कृष्णा जो पाँचो पांडवों को ब्याही गई थी।

विशेष—राजा द्रुपद ने जब द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया था तब उसे धृष्टद्युम्न नाम का एक पुत्र और कृष्णा नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। जब कन्या बड़ी हुई तब द्रुपद ने उसका विवाह अर्जुन से करना विचारा। पर लाक्षागृह में आग लगने के उपरांत जब पांडवों का पता बहुत दिनों तक न लगा तब द्रुपद ने उपयुक्त वर प्राप्त करने के लिये धूमधाम से एक स्वयंवर रचा। उसमें ऊपर एक मछली टाँग दी गई जिसके कुछ नीचे हटकर एक चक्र घूम रहा था। द्रुपद ने प्रतिज्ञा की कि जो कोई उस मछली की आँख को बाण से बेधेगा उसी को द्रौपदी दी जायगी। स्वयंवर में बहुत दूर दूर से राजा लोग आए थे, पाँचो पांडव भी घूमते घूमते ब्राह्मण के वेश में वहाँ पहुँचे। जब कोई क्षत्रिय लक्ष्यभेद न कर सका तब कर्ण उठा। पर द्रौपदी ने कहा कि मैं सूतपुत्र के साथ विवाह नहीं कर सकती। अंत में ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन ने उठकर लक्ष्यभेद किया। पाँचो पांडव उन दिनों गुप्त रूप से एक

ब्राह्मण के यहाँ माता सहित रहते थे। अतः द्रौपदी को लेकर पाँचो भाई ब्राह्मण के आश्रम पर गए और द्वार पर माता को पुकार कर बोले माँ, आज हम लोग एक रमणीय भिक्षा माँगकर लाए हैं। कुंती ने भीतर से कहा, अच्छी बात है, पाँचो भाई मिलकर भोग करो। माता के वचन की रक्षा के लिये पाँचो भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया। नारद के सामने यह प्रतिज्ञा की गई कि जिस समय एक भाई द्रौपदी के पास हो उस समय दूसरा वहाँ न जाय, यदि जाय तो बारह वर्ष उसे बनवास करना पड़े। दुर्योधन के सथ जुआ खेलते खेलते युधिष्ठिर जब सब कुछ हार गए तब द्रौपदी को भी हार गए। इसपर दुर्योधन ने भरी सभा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ बुलाया। दुःशासन भरी सभा के बीच उसका वस्त्र खींचना चाहता था पर वस्त्र न खिंच सका। इस अपमान पर कुपित होकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन, जिस जंघे को तूने द्रौपदी को दिखाया है उसे मैं अवश्य तोड़ूँगा और दुःशासन का बायाँ हाथ तोड़कर उसके कलेजे का रक्तपान करूँगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। पुराणों में द्रौपदी की गणना पंचकन्याओं में है।

पर्या०—कृष्णा। पांचाली। सैरिंध्री। नित्ययौवना। याज्ञसेनी। वेदिजा।

द्रौपदेय—संज्ञा पुं० [सं०] द्रौपदी के पुत्र।

द्रौह्य—संज्ञा पुं० [सं०] द्रुह्य के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

द्वंद्व[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। मिथुन। जोड़ा। उ०—ध्वज कुलिश अंकुश कंजयुत बन फिरत कंटक जिन लहे। पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।—तुलसी (शब्द०)। २. जोड़ा। प्रतिद्वंद्वी। ३. द्वंद्व युद्ध। दो आदमियों की परस्पर लड़ाई। ४. झगड़ा। कलह। बखेड़ा। उ०—धनि यह द्वैज लख्यो अहो नज्यो रमनि दुख द्वंद्व। तुव आगमि पूरब उयो जहाँ अपूरब चंद।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

५. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, गर्मी सर्दी, राग द्वेष, सुख दुःख, दिन रात इत्यादि। उ०—रघुनंद निकंदय द्वंद्व घनं। महिपाल बिलोकिय दीनजनं।—तुलसी (शब्द०)। ६. उलझन। बखेड़ा। झंझट। जंजाल। उ०—जो मन लागै रामचरन अस। देह गेह सुत बित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। द्वंद्व रहित गतमान ज्ञानरत बिषयबिरत खटाइ नानाकस।—तुलसी (शब्द०)। ७. कष्ट। दुःख। उ०—सोरह सहस्र घोष कुमारि। देखि सबको श्याम रीझे रहीं भुजा पसारि। बोलि लीन्हीं कदम के तर इहाँ आवहु नारि। प्रगट भए तहाँ सबनि को हरि काम द्वंद्व निवारि।—सूर (शब्द०)। ८. उपद्रव। झगड़ा। ऊधम। उ०—कहा करौं हरि बहुत खिझाई। सहि न सकी रिस ही रिस भरि गई बहुतै ढीठ कन्हाई। मेरो कह्यो नेकु नहिं मानत करत आपनी टेक। भोर होत उरहन लै आवत ब्रज की बधू अनेक। फिरत जहाँ तहँ द्वंद्व मचावत घर न रहत छन एक। सूर श्याम त्रिभुवन को करता यशुमति कहति जनेक।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचाना।

९. रहस्य। गुप्त बात। १०. आशंका। भय। डर। ११. दुबिधा। दोचित्तापन। संशय। १२. वह घड़ियाल जिसपर घटा बजाया जाय (को०)। १३. व्याकरण में समास का एक भेद।

विशेष—दे० 'द्वंद्व'।

द्वंद्व[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] 'दुंदुभी'। उ०—बाजे ढोल द्वंद्व औ भेरी। मदिर तूर झाँझ चहु फेरी।—जायसी (शब्द०)।

द्वंदज—वि० [सं०] दे० 'द्वंद्वज'।

द्वंदजुद्ध, द्वंदयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] दे० 'द्वंद्वयुद्ध'। उ०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गभीर। द्वंदजुद्ध देखहु सकल स्रमित भए अति बीर।—मानस, ६। ८८।

द्वंदर(पु)—वि० [सं० द्वन्द्वालु] झगड़ालू। उ०—दीन गरीबी दीन को द्वंदर को अभिमान। द्वंदर तो विष से भरा दीन गरीबी जान।—कबीर (शब्द०)।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। दो वस्तुएँ जो एक साथ हों। जोड़ा। २. स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। ३. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, शीत उष्ण, सुख दुःख, भला बुरा, पाप पुण्य, स्वर्ग नरक इत्यादि। ४. रहस्य। भेद की बात। गुप्त बात। ५. दो आदमियों की लड़ाई। ६. झगड़ा। बखेड़ा। कलह।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

७. एक प्रकार का समास, जिसमें मिलनेवाले सब पद प्रधान रहते हैं और उनका अन्वय एक ही क्रिया के साथ होता है जैसे, हाथ पाँव बाँधो, रोटी दाल खाओ।

विशेष—यह समास और आदि संयोजक पदों का लोप करके बनाया जाता है। जैसे, हाथ और पाँव से 'हाथ पाँव', रात और दिन से 'रात दिन'।

८. दुर्ग। किला। ९. शंका। संदेह (को०)। १०. मिथुन राशि (को०)। ११. एक प्रकार का रोग (को०)।

द्वंद्वचर[1]—वि० [सं० द्वन्द्वचर] जोड़े के साथ चलने या रहनेवाला।

द्वंद्वचर[2]—संज्ञा पुं० चक्रवाक। चकवा।

द्वंद्वचारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वचारिन्] [स्त्री० द्वंद्वचारिणी] चकवा।

द्वंद्वज—वि० [सं० द्वन्द्वज] १. सुख दुःख, राग द्वेष आदि द्वंद्वों से उत्पन्न (मनोवृत्ति)। २. कलह से उत्पन्न। ३. वात, पित्त और कफ नाम के त्रिदोषों में से दो दोषों से उत्पन्न (रोग)।

यौ०—द्वंद्वज गुल्म = वात, पित्त और कफ आदि त्रिदोषों में से किन्हीं दो दोषों से उत्पन्न गुल्म रोग। उ०—गुल्म के मिश्र लक्षण को द्वंद्वज गुल्म कहते हैं।—माधव०, पृ० १६७। द्वंद्वज बवासीर = बवासीर नामक रोग जो दो दोषों के कारण होता है। उ०—दो दो दोषों के कारण और लक्षण मिलें तो द्वंद्वज बवासीर भई।—माधव, पृ० ५४।

द्वंद्वतर्क—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वतर्क] द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का तर्क

या बनील। उ०—मनोद्भूत इतिहासभूत सक्रिय, सकरण, जड़ चेतन। द्वंद्वतर्क से अभिव्यक्ति पाता युग युग में नूतन।—युगवाणी, पृ० १६।

द्वंद्वभि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'दुंदुभी'। उ०—पंचम घंटा नाद षष्ठ बीणा धुनि होई। सप्तम बज्जहि भेरि अष्टमं द्वंद्वभि दोई।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ४६।

द्वंद्वभूत—वि० [सं० द्वन्द्वभूत] अनिश्चित। संदेहास्पद (को०)।

द्वंद्वमोह—संज्ञा पुं० [सं०] दुबिधे के कारण उत्पन्न कष्ट। संदेहजन्य दुःख (को०)।

द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] वह लड़ाई जो दो पुरुषों के बीच में हो। कुश्ती। हाथा पाई।

द्वंद्वी—वि० [सं० द्वन्द्विन्] १. कलहप्रिय। झगड़ालू। २. जोड़ा तैयार करनेवाला। ३. विषम। परस्पर प्रतिकूल (को०)।

द्वय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वयी] १. दो। २. द्वैत संबंधी।

द्वय[2]—संज्ञा पुं० १. युग्म। युगल। जोड़ा (समासांत में प्रयुक्त)। २. दो भिन्न प्रकार का स्वभाव या वृत्ति। ३. व्याकरण में पुं० और स्त्रीलिंग।

द्वयवादी—वि० [सं० द्वयवादिन्] १. दुबधे की बातें करनेवाला। २. २. द्वैत वाद को माननेवाला (को०)।

द्वयहीन—वि० [सं०] जो द्वय अर्थात् पुलिंग और स्त्रीलिंग न हो। नपुंसक लिंग का। नपुंसक (व्याकरण)।

द्वयाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चीता।

द्वयातिग—वि [सं०] जिसके सत्वगुण ने शेष दो गुणों अर्थात् रजस् और तमोगुण को दबा लिया हो। जिसमें सत्वगुण प्रधान हो, और शेष दो गुण दबकर अधीन हो गए हों।

द्वाःस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल। २. नंदिकेश्वर।

द्वाःस्थित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वास्थ'।

द्वाआ(पु)—संज्ञा स्त्री [अ० दुआ] दे० 'दुआ'। उ०—द्वाआ दे दरवेस पाव नहिं गारि गारि जा।—कीर्ति०, पृ० ४२।

द्वा—वि० [सं० द्वि] संस्कृत द्वि का समासगत रूप।

द्वाचत्वारिंश—वि० [सं०] बयालीसवाँ।

द्वाचत्वारिंशत्[1]—वि० [सं०] जो संख्या में चालीस से दो अधिक हो। बयालीस।

द्वाचत्वारिंशत्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] बयालीस की संख्या।

द्वाज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री का वह पुत्र जो उसके पति से उत्पन्न न हो, दूसरे पुरुष से उत्पन्न हो। जारज। दोगला।

द्वात्रिंश—वि० [सं०] बत्तीसवाँ।

द्वात्रिंशत्[1]—वि० [सं०] जो संख्या में तीस और दो हो। बत्तीस।

द्वात्रिंशत्[2]—संज्ञा पुं० बत्तीस की संख्या या अंक।

द्वादश[1]—वि० [सं०] १. जो संख्या में दस और दो हो। बारह। २. बारहवाँ।

द्वादश[2]—संज्ञा पुं० बारह की संख्या या अंक।

द्वादशक—वि० [सं०] बारह का।

द्वादशकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। २. बृहस्पति। ३. कार्तिकेय का एक अनुचर। ४. हर्षण योग।

द्वादशपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का द्वादशाक्षर मंत्र। २. ब्रह्मा द्वारा सनत्कुमार को उपदिष्ट योगविशेष।

द्वादशपवन—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार वह साँस जो बारह अंगुल तक प्रसारित होती है। उ०—द्वादस पवन भर पीता। उलट घर पीक को चढ़ाना।—रामानंद०, पृ० ६।

द्वादशभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जन्मकुंडली के बारह घर जिनके क्रम से तनु आदि नाम फलानुसार रखे गए हैं।

विशेष—जन्मकालीन लग्न से पहले घर से तनु (अर्थात् शरीर क्षीण होगा कि स्थूल, सबल कि निर्बल, नाटा कि लंबा इत्यादि), दूसरे घर से धन और कुटुंब; तीसरे से युद्ध और विक्रम आदि; चौथे से बंधु, वाहन, सुख और आलय; पाँचवें से बुद्धि, मंत्रणा और पुत्र; छठे से चोट और शत्रु, सातवें से काम, स्त्री और पथ; आठवें से आयु, मृत्यु, अपवाद आदि; नवें से गुरु, माता, पिता, पुण्य आदि; दसवें से मान, आज्ञा और कर्म; ग्यारहवें से प्राप्ति और आय, बारहवें घर से मंत्री और व्यय का विचार किया जाता है।

द्वादशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ।

द्वादशलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

द्वादशवर्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में नीलकंठ ताजिक के अनुसार वर्षकाल में ग्रहों का फलाफल निकालने में बारह वर्गों की समष्टि।

विशेष—बारह वर्ग ये हैं—क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, पंचमांश, षष्ठांश, सप्तमांश, अष्टमांश, नवमांश, दशमांश, एकादशांश और द्वादशांश।

द्वादशवार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्ष का एक व्रत जो ब्रह्महत्या लगने पर किया जाता है।

विशेष—इसमें हत्यारे को वन में कुटी बनाकर, सब वासनाओं को त्याग करके रहना पड़ता है। यदि वनफलों से निर्वाह न हो तो एक चिह्न धारण करके बस्ती में भिक्षा माँगनी पड़ती है।

द्वादशशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णव संप्रदाय में तंत्रोक्त बारह प्रकार की शुद्धि।

विशेष—देवगृह परिष्कार, देवगृह गमन, प्रदक्षिणा, ये तीन प्रकार की पदशुद्धि हैं। पूजा के लिये फूल पत्ते तोड़ना, प्रतिमोत्तलन (स्पर्श आदि) यह हस्तशुद्धि हुई। भगवान् का नामकीर्तन वाक्यशुद्धि है। हरिकथा श्रवण, प्रतिमा उत्सव आदि का दर्शन नेत्रशुद्धि हुई। विष्णुपादोदक और निर्माल्यधारण तथा प्रणाम सिर की शुद्धि तथा निर्माल्य और गंध पुष्पादि का सुँघना घ्राणशुद्धि है।

द्वादशांग[1]—वि० [सं० द्वादशाङ्ग] जिसके १२ अंग या अवयव हों।

द्वादशांग[2]—संज्ञा पुं० १. बारह गंधद्रव्यों के योग से बनी हुई पूजा में जलाने की धूप।

विशेष—बारह द्रव्य ये हैं—गुग्गुल, चंदन, तेजपात, कुट, अगर, केशर, जायफल, कपूर, जटामासी, नागरमोथा, तज और खस ।

२. जैनों का वह ग्रंथसमूह जिसे वे गणधरों का बनाया मानते हैं ।

विशेष—इसके बारह भेद हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समावायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञानधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतकृद्दशांग, अनुत्तरोपपत्तिकांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद ।

द्वादसांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशाङ्गी] जैनों के द्वादश अंगग्रंथों का समूह ।

द्वादशांगुल—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशाङ्गुल] एक बालिश्त । एक बित्ता परिमाण । बारह अंगुल की नाप [को०] ।

द्वादशांशु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

द्वादशा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशाक्ष] १. कार्तिकेय । उ०—उभै अष्टदश द्वादशा अरु कहिए पुनि बीस । है सहस्र लोचन थके सुंदर ब्रह्म न दीस ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७६५ ।

द्वादशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. बुद्धदेव ।

द्वादशाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक मंत्र जिसमें बारह अक्षर हैं । वह मंत्र यह है, 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' ।

द्वादशाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

द्वादशात्मा—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशात्मन्] १. सूर्य । २. आक का पेड़ ।

द्वादशायतन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दर्शन के अनुसार पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन और बुद्धि का समुदाय ।

द्वादशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारह दिनों का समुदाय । २. एक यज्ञ जो बारह दिनों में किया जाता था । ३. वह श्राद्ध जो किसी के निमित्त उसके मरने से बारहवें दिन किया जाय ।

द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक पक्ष की बारहवीं तिथि ।

द्वादस—वि० [हिं०] दे० 'द्वादश' ।

यौ०—द्वादसनगर = पाँच तत्व, तीन गुण, मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार इन्हीं बारह से बना शरीररूपी नगर । द्वादशायतन । उ०—द्वादसनगर मंझार जो पुरुष बिराजहीं ।—धरम०, पृ० ४१ । द्वादस नाड़ी = द्वादश कला युक्त नाड़ी । पिंगला नाड़ी । उ०—षोडस नाड़ी चंद्र प्रकास्या द्वादशनाड़ी भानं । सहस्र नाड़ी प्राण का मेला जहाँ असंख कला सिव थानं ।—गोरख०, पृ० ३७ ।

द्वादसबानी(पु)—वि० [देश०] दे० 'बारहबानी' । उ०—वह पदमिनि चितउर जो आनी । काया कुंदन द्वादसबानी ।—जायसी (शब्द०) ।

द्वादसा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्वादश] प्राणवायु । उ०—द्वादसा पलट करि सुरति दो दल धरी । दसो परकार अनहद बजायो ।—चरण० बानी, पृ० १३६ ।

द्वादसि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशी] दे० 'द्वादशी' । उ०—एक समै द्वादसि दिसि भोरी । उठे नंद कछु मति भई भोरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१४ ।

द्वापर—संज्ञा पुं० [सं०] बारह युगों में तीसरा युग । पुराणों में यह युग ८,६४,००० वर्ष का माना गया है ।

विशेष—भादों की कृष्ण त्रयोदशी बृहस्पतिवार को इस युग की उत्पत्ति मानी गई है । मत्स्यपुराण के अनुसार द्वापर लगते ही धर्म आदि में घटती आरंभ हुई । जिनके करने से त्रेता में पाप नहीं लगता था वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे । प्रजा लोभी हो चली । अज्ञान के कारण श्रुति स्मृति आदि का यथार्थ बोध लुप्त होने लगा । नाना प्रकार के भाष्य आदि बनने और मतभेद चलने लगे । उक्त पुराण के अनुसार द्वापर में मनुष्यों की परमायु दो हजार वर्ष की थी ।

द्वाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० दोआबा] दो नदियों के बीच का भूभाग । उ०—प्राय: बीस वर्ष तक गंगा यमुना का द्वाब का भूभाग दक्षिण भारत के शासक के हाथों में रहा ।—पू० म० भा०, पृ० ४० ।

द्वाभा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि + आभा] रात दिन की संधिवेला । संध्या या उष:काल । उ०—जाड़ों की सूनी द्वाभा में झूल रही निशि छाया गहरी । डूब रहे निष्प्रभ विषाद में खेत, बाग, गृह, तरु, तट लहरी ।—ग्राम्या, पृ० ६४ ।

द्वामुष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुरुष जो दो मनुष्यों का पुत्र हो (एक का औरस और दूसरे का दत्तक) । २. वह पुरुष जो दो ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । ३. उद्दालक मुनि का नाम । ४. गौतम मुनि का नाम ।

द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी ओट करनेवाली या रोकनेवाली वस्तु (जैसे, दीवार परदा आदि) में वह छिद्र या खुला स्थान जिससे होकर कोई वस्तु आरपार या भीतर बाहर जा आ सके । मुख । मुहाना । मुहड़ा । जैसे, गंगाद्वार । २. घर में आने जाने के लिये दीवार में खुला हुआ स्थान । दरवाजा ।

मुहा०—(किसी बात के लिये) द्वार खुलना = किसी बात के बराबर होने के लिये मार्ग या उपाय निकलना । द्वार द्वार फिरना = (१) कार्यसिद्धि के लिये चारों ओर बहुत से लोगों के यहाँ जाना । (२) घर घर भीख माँगना । द्वार लगना = (१) किवाड़ बंद होना । (२) किसी आसरे में दरवाजे पर खड़ा रहना । उ०—यह जान्यो जिय राधिका द्वारे हरि लागे । गर्व कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुरागे ।—सूर (शब्द०) । (३) चुपचाप किसी बात की आहट लेने के लिये किवाड़ के पीछे छिपकर खड़ा होना । द्वार लगाना = किवाड़ बंद करना ।

३. इंद्रियों का मार्ग या छेद । जैसे, आँख, कान, मुँह, नाक आदि । उ०—नौ द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन । रहने को आश्चर्य है, गए अचंभा कौन ।—कबीर (शब्द०) । ४. उपाय । साधन । जरिया । जैसे,—रुपया कमाने का द्वार ।

विशेष—सांख्यकारिका में अंत:करण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसका द्वार बतलाई गई हैं ।

द्वारकंटक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारकण्टक] १. किवाड़ । कपाट । २. द्वार की अर्गला या सिटकिनी ।

द्वारकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वार या दरवाजे का पल्ला [को०] ।

द्वारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठियावाड़ गुजरात की एक प्राचीन नगरी। उ०—धर पिच्छम निरखण मनधारे। परसण हरि द्वारका पधारे।—रा० रू०, पृ० १२।

विशेष—पुराणानुसार यह सात पुरियों में मानी गई है। यहाँ द्वारकानाथ जी का मंदिर है। हिंदू लोग इसे चार धामों में मानते हैं और बड़ी श्रद्धा से यहाँ आकर छाप लेते हैं। इसे द्वारावती भी कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्णचंद्र जरासंध के उत्पातों के कारण मथुरा छोड़कर जा बसे थे। यही उस समय यादवों की राजधानी थी। पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण के देहत्याग के पीछे द्वारका समुद्र में मग्न हो गई। पोरबंदर से १५ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अबतक बतलाते हैं। द्वारका का एक नाम कुशस्थली भी है।

द्वारकाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीकृष्णचंद्र। २. कृष्ण की वह मूर्ति जो द्वारका में है।

द्वारकानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्णचंद्र। २. कृष्णचंद्र की वह मूर्ति जो द्वारका में है।

द्वारकेश—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारकानाथ।

द्वारगोप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वाररक्षक। द्वारपाल [को०]।

द्वारचार—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + चार (= व्यवहार)] वह रीति जो लड़कीवाले के दरवाजे पर बारात पहुँचने पर पर होती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

द्वारछेँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० द्वार + छेंकना] १. विवाह में एक रीति। जब वर विवाह कर वधू समेत अपने घर आता है तब कोहबर के द्वार पर उसकी बहन उसकी राह रोकती है। उस समय वर कुछ नेग देता है तब वह राह छोड़ देती है। २. वह नेग जो द्वारछेंकाई में दिया जाता है।

द्वारदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० द्वारदर्शिन्] द्वारपाल। दरबान [को०]।

द्वारदारु—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन की लकड़ी [को०]।

द्वारनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारप' [को०]।

द्वारपंडित—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपण्डित] १. किसी राजा के यहाँ का प्रधान पंडित। २. विद्यार्थियों की जाँच पड़ताल करके उन्हें गुरुकुल या विद्यालय के द्वार के भीतर प्रवेश की अनुमति देनेवाला पंडित। उ०—द्वारपंडित (विद्यार्थियों को प्रवेश करानेवाले) धर्मकोष आदि प्रमुख विश्वविद्यालय के कर्मचारी थे।—प्रा० भा०, पृ० ४६३।

द्वारप—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल। उ०—उपवभूप तब कोपित वेशा। दियो द्वारपन तुरत संदेशा।—सबल (शब्द०)। २. विष्णु।

द्वारपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्वारपर टँगा हुआ परदा। चिक [को०]

द्वारपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारपटी' [को०]।

द्वारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्वारपाली, द्वारपालिन] १. वह पुरुष जो दरवाजे पर रक्षा के लिये नियुक्त हो। ड्योढ़ीदार। दरबान।

पर्या०—प्रतीहार। द्वाःस्थ। द्वारप। दर्शक। दौःसाधिक। वर्तरूप। गर्वाट। द्वारस्थ। क्षत्ता। दौवारिक। दंडी।

२. तंत्र के अनुसार वह देवता जो किसी मुख्य देवता के द्वार का रक्षक हो। इन देवताओं की पूजा पहले की जाती है। ३. एक तीर्थ। महाभारत में इसे सरस्वती के किनारे लिखा है।

द्वारपालक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपाल]।

द्वारपिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारपिण्डी] देहली। ड्योढ़ी। दहलीज।

द्वारपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] अरगल। दरवाजा बंद करने के लिये लगी हुई किल्ली [को०]।

द्वारपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाह में एक कृत्य जो कन्यावाले के द्वार पर उस समय होता है जब बारात के साथ वर पहले पहल आता है। कन्या का पिता द्वार पर स्थापित कलश आदि का पूजन करके अपने इष्ट मित्रों सहित वर को उतारता और मधुपर्क देता है। २. जैनों की एक पूजा।

द्वारबलिभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बक। बगला। २. काक। कौआ।

द्वारबलिभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारबलिभुक्'।

द्वारयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० द्वारयन्त्र] ताला।

द्वारवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारावती। द्वारका।

द्वारसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पुराना नगर।

विशेष—यहाँ कर्नाटक के राजाओं की राजधानी थी। इसके खंडहर अब तक श्रीरंगपट्टन से वायुकोण पर सौ मील पर हैं।

द्वारस्थ[1]—वि० [सं०] जो द्वार पर बैठा हो।

द्वारस्थ[2]—संज्ञा पुं० द्वारपाल।

द्वारा (पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] १. द्वार। दरवाजा। फाटक। उ०—धुनि के शब्द मँडफ झनकारा। बैठेउ आय पुरुष के द्वारा।—जायसी (शब्द०)। २. मार्ग। राह। उ०—साधन धाम मोच्छ करि द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।—तुलसी (शब्द०)।

द्वारा[2]—अव्य० [सं० द्वारात्] जरिए से। वसीले से। साधन से। हेतु से। कारण से। कर्तृत्व से। मार्फत।

मुहा०—किसी के द्वारा = (१) किसी के करने से। जैसे,—यह कार्य उसी के द्वारा हुआ है। (२) किसी के योग या सहायता से। किसी की मध्यस्थता द्वारा। किसी के मारफत। जैसे,—चिट्ठी आदमी के द्वारा भेज दो। (३) किसी वस्तु के उपयोग से जैसे,—मशीन के द्वारा काम जल्दी होगा।

द्वाराचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारचार'।

द्वारादेयशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार द्वार पर देय कर। दरवाजे पर लिया जानेवाला महसूल। चुंगी।

द्वाराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल।

द्वाराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वाराधिप' [को०]।

द्वारापुर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + पुर] द्वारकापुरी। द्वारावती। उ०—द्वारहिं ते बेहाल, स्वप्न द्वारापुर आयो। चौंकि चकित ह्वै रहे रूप बेरी को छायो।—नट०, पृ० ४२।

द्वारामती—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती'। उ०—द्वारामती शरीर न छाड़ा। जगननाथ ले प्यंड नगाड़ा।—कबीर ग्रं०, पृ० २४३।

द्वारावति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती'। उ०—अहो चंद रस कंद हो, जात अमहि उहि देस। द्वारावति नँदनंद सों, कहियो बलि संदेस।—नंद०, ग्रं०, पृ० १६२।

द्वारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका।

द्वारासन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वैकुंठ के द्वार पर स्थित आसन जिसके द्वारपाल जय और विजय कहे गए हैं। उ०—हिरनाकुश पर जन्म धराई। सो द्वारासन लेही भाई।—कबीर सा०, पृ० ८४६।

द्वारिक—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल। दरबान।

द्वारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्वारका'। उ०—पूर्व में सखिया परशुराम कुंड से द्वारिका तक ही पहुँच पाए।—किन्नर०, पृ० १०२।

द्वारी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वार + ई (प्रत्य०)] छोटा द्वार। दरवाजा। उ०—द्वारी निहारि पछीति की भीति में टेर सखी मुख बात सुनाई।—प्रताप (शब्द०)।

द्वारी²—संज्ञा पुं० [सं० द्वारिन्] द्वारपाल।

द्वाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुवाल] दे० 'दुवाल'।

द्वालबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुवालबन्द] दे० 'दुवालबंद'। उ०—द्वालबंद कर कसे कमाने तीर अचूक ना होई।—स० दरिया, पृ० ११०।

द्वाला(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दल, छंद या गीत का चरण। उ०—विच अवर अवर द्वालो बणै आत विरुध सो जाण जै।—रघु० रू०, पृ० १४।

द्वाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुवाली'।

द्वाविंश—वि० [सं०] बाईसवाँ।

द्वाविंशति—वि० [सं०] जो संख्या में बीस और दो हो। बाईस।

द्वाषष्ठ—वि० [सं०] बासठवाँ।

द्वाषष्ठि—वि० [सं०] जो गिनती में साठ और दो हो। बासठ।

द्वासप्तत—वि० [सं०] बहत्तरवाँ।

द्वासप्तति—वि० [सं०] जो गिनती में सत्तर और दो हो। बहत्तर।

द्वास्थ—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल।

द्विः—अव्य० [सं० द्विर्] दो दफा। दो बार (को०)।

द्वि—वि० [सं०] दो।

द्विक¹—वि० [सं०] १. जिसमें दो अवयव हों। २. दोहरा। ३. दूसरा। द्वितीय (को०)।

द्विक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. काक। २. कोक। चकवा।

द्विककार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवाक। चकवा। २. कौवा (को०)।

द्विककुद्—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

द्विकर—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों हाथ। उ०—अहो मेरे द्विकर, अहो, मेरे अधर, अहो मेरे इतर, अहो मेरे नयन।—आराधना, पृ० ४७।

द्विकर्मक—वि० [सं०] (क्रिया) जिसके दो कर्म हों।

द्विकल—संज्ञा पुं० [हिं० द्वि + कला] छंदशास्त्र या पिंगल में दो मात्राओं का समूह।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है : एक में तो तीनों मात्राएँ पृथक् पृथक् रहती हैं, जैसे,—जल, चल, बन, धन इत्यादि और दूसरे में एक ही अक्षर दो मात्राओं का होता है जैसे,—खा, जा, ला, था, का इत्यादि।

द्विक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] शोरा और सज्जी।

द्विगु¹—वि० [सं०] जिसे दो गाएँ हों।

द्विगु²—संज्ञा पुं० वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद संख्यावाचक हो।

विशेष—यह समास तीन प्रकार का होता है—तद्धितार्थ, जैसे—पंचगु अर्थात् जिसे पाँच गो देकर मोल लिया हो; उत्तरपद, जैसे,—पचकोण अर्थात् जिसमें पाँच कोण हों; और समाहार, जैसे, त्रिलोकी, अर्थात् तीनों लोक, त्रिभुवन। पाणिनि ने इस समास को कर्मधारय के अंतर्गत रखा है पर और वैयाकरण इसे एक स्वतंत्र समास मानते हैं।

द्विगुण—वि० [सं०] दुगना। दूना।

द्विगुणित—वि० [सं०] १. दो से गुणा किया हुआ। जिसे दुगना किया गया हो। २. दूना। दुगना। उ०—नौका मेरी गति से चल रही। झरना, पृ० ३४।

द्विगूढ़—संज्ञा पुं० [सं० द्विगूढ] लास्य के दस अंगों में से एक। वह गीत जिसमें सब पद सम और सुंदर हों, संधियाँ वर्तमान द्विगुणित हों तथा रस और भाव सुसपन्न हों (नाट्यशास्त्र)।

द्विघटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो घड़ियों के हिसाब से निकाला हुआ मुहूर्त।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है। रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त कर देते हैं और फिर शुभाशुभ का विचार करते हैं। इस मुहूर्त में दिन का विचार नहीं होता। सब दिन सब ओर की यात्रा हो सकती है। इसका व्यवहार उस अवसर पर होता है जहाँ कई दिन ठहरने का अवसर नहीं रहता।

द्विचत्वारिंश—वि० [सं०] बयालीसवाँ।

द्विचत्वारिंशत्—वि० [सं०] जो चालीस से दो अधिक हो। बयालीस।

द्विचरण—संज्ञा पुं० [सं०] दो पैर वाले प्राणी (को०)।

द्विज¹—संज्ञा पुं० [सं०] जो दो बार उत्पन्न हुआ हो। जिसका जन्म दो बार हुआ हो।

द्विज²—संज्ञा पुं० [सं०] १ अंडज प्राणी। २. पक्षी। ३. हिंदुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के पुरुष जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। मनु के धर्मशास्त्र के अनुसार यज्ञोपवीत मनुष्य का दूसरा जन्म माना गया है। ४. ब्राह्मण। उ०—जीवो कोरि बरीस असीसत द्विज बंदीजन बोलत बिरदाय।—घनानंद, पृ० ४८०। ५. चंद्रमा।

विशेष—पुराणों में कथा है कि चंद्रमा का दो बार जन्म हुआ था। एक बार ये ऋषिपुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र के मंथन के समय समुद्र से निकले थे।

६. दाँत। उ०—द्विज पंछी को कहत कवि, द्विज कहिए पुनि दंत। तीनि बहुन द्विज तब भले, जब जाने भगवंत।—अनेकार्थ०, पृ० १३५। ७. तुंबुरु। नैपाली धनियाँ। ८. तारा। तारका (को०)। ६. अश्वचिकित्सा के अनुसार एक प्रकार का घोड़ा। अश्व का एक भेद (को०)।

द्विजचक्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण वर्ग। ब्राह्मणों का समूह। उ०—मंद करी मुख रुचि चंद चकता की कियो भूषन भुषित द्विजचक्र दान पान सों।—भूषण ग्रं०, पृ० ४१।

द्विजजानि—संज्ञा पुं० [सं०] दो पत्नीवाला पुरुष। वह जिसकी दो पत्नियाँ हों (को०)।

द्विजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणत्व। द्विजत्व। उ०—द्विजता तक आततायिनी, वध में है कब दोषदायिनी।—साकेत, पृ० ३७५।

द्विजदंपति—संज्ञा पुं० [सं० द्विज + दम्पती] चाँदी का एक पत्तर जिसपर स्त्री पुरुष या लक्ष्मीनारायण का युगल चित्र खुदा रहता है। यह स्त्रियों के मृतक कर्म में दशाह के बाद ब्राह्मण को दान में दिया जाता है।

द्विजदेव—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह का कविता में प्रयुक्त उपनाम। उ०—गिरिधरदास (भारतेंदु के पिता) और द्विजदेव (अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह) और सेवक बहुत अच्छे कवि हुए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६।

द्विजनारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विज + नारी] ब्राह्मणी। उ०—जसुमति महाप्रबीन एक द्विजनारि बुलाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४।

द्विजन्मा[1]—वि० [सं० द्विजन्मन्] जिसका दो बार जन्म हुआ हो।

द्विजन्मा[2]—संज्ञा पुं० दे० 'द्विज'।

द्विजपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. चंद्र। ३. कपूर। ४. गरुड़।

द्विजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोम।

द्विजबंधु—संज्ञा पुं० [सं० द्विजबन्धु] संस्कार या कर्महीन द्विज। नाममात्र का द्विज।

द्विजब्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाममात्र का द्विज, जिसका जन्म तो द्विज माता पिता से हुआ हो पर वह स्वयं द्विजों के संस्कार और कर्म से हीन हो। २. ब्राह्मणब्रुव। नाम मात्र का ब्राह्मण।

द्विजराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. चंद्रमा। ३. कपूर। ४. गरुड़। ५. श्रेष्ठ ब्राह्मण।

द्विजलिंगी—संज्ञा पुं० [द्विजलिङ्गिन्] १. शूद्र या दूसरे वर्ण का होकर ब्राह्मण का वेश धारण करनेवाला मनुष्य।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड वध लिखा है।

२. क्षत्रिय।

द्विजवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

द्विजव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग। दंतार्बुद।

द्विजशप्त—संज्ञा पुं० [सं०] बर्बट। भटवाँस। (ब्राह्मण इसे नहीं खाते)।

द्विजसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] द्विज का सेवक। शूद्र [को०]।

द्विजांगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विजाङ्गिका] कुटकी।

द्विजांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विजाङ्गी] कुटकी।

द्विजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्राह्मण या द्विज की स्त्री। २. रेणुका। संभालू का बीज। यह गंधद्रव्यों में है। ३. पालक का शाक (यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है। ४. भारंगी। ५. पान की बेल। उ०—तांबूली, अहिवल्लरी, द्विजा, पान की बेलि।—नंद ग्रं०, पृ० १०६।

द्विजाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। द्विज। २. ब्राह्मण। ३. अंडज। ४. पक्षी। ५. दाँत।

द्विजानि—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके दो स्त्रियाँ हों।

द्विजायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञोपवीत।

द्विजिह्व[1]—वि० [सं०] १. जिसे दो जीभें हों। २. इधर उधर लगानेवाला। सूचक। चुगलखोर। ३. खल। दुष्ट। ४. चोर। ५. दुःसाध्य।

द्विजिह्व[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप। २. एक रोग।

द्विजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० द्विजेन्द्र] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. गरुड़ ४. कपूर।

द्विजेंद्रलाल—संज्ञा पुं० [सं०] बँगला भाषा के ख्यातनाम कवि और नाटककार का नाम।

द्विजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. कपूर। ४. गरुड़।

द्विजोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] द्विजों में श्रेष्ठ। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विट—संज्ञा पुं० [सं०] द्विष् शब्द का समासगत रूप।

द्विट्सेवी—संज्ञा पुं० [सं० द्विट्सेविन्] राजशत्रुसेवी। वह जो राजा के शत्रु से मिला हो या मित्रता रखता हो।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड वध लिखा है।

द्विठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विसर्ग। २. स्वाहा।

द्वित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देवता का नाम। २. एक ऋषि का नाम जो तीन भाई थे—एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वितयी] १. जिसके दो अंश हों। जो दो से मिलकर बना हो। २. दोहरा।

द्वितय[2]—संज्ञा पुं० जोड़ा। मिथुन [को०]।

द्वितिय(पु)—वि० [सं० द्वितीय] [वि० स्त्री० द्वितीया] दे० 'द्वितीय'। उ०—(क) बाएँ दाहिने है सहिदानी। एक द्विज धर्म द्वितिय धर्म बानी।—कबीर सा०, पृ० ८१। (ख)

प्रथमा, द्वितिया, बहुरि तृतीया जानिए ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५२१ ।

द्वितीय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वितीया] दूसरा ।

द्वितीय[2]—संज्ञा पुं० १. पुत्र ।

विशेष—आत्मा ही पुत्र रूप से जन्म ग्रहण करता है । इससे यह नाम पड़ा ।

२. साथी । सहायक । मित्र (विशेषत. समासांत में प्रयुक्त) । ३. जोड़ । समकक्ष (को०) । ४. वर्ग का दूसरा अक्षर—ख, छ, ठ, थ और फ (को०) । ५. मध्यम पुरुष (व्याकरण) । ६. आधा । अर्धभाग (को०) ।

द्वितीय—क्रि० वि० [सं० द्वितीयम्] दूसरी बार । फिर (को०) ।

द्वितीयक—वि० [सं०] दूसरा ।

द्वितीयत्रिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभारी ।

द्वितीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि । दूज । २. वाम मार्ग के अनुसार मांस । ३. पत्नी । स्त्री । सहधर्मिणी (को०) ।

द्वितीयाकृत—वि० [सं०] खेत जो दो बार जोता गया हो ।

द्वितीयाभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी ।

द्वितीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] गार्हस्थ्य आश्रम ।

द्वित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो भाव । २. दोहरे होने का भाव । ३. दो की संख्या (को०) ।

द्विदंत—वि० [सं० द्विदन्त] दो दाँतोंवाला । जिसे दो दाँत हों ।

द्विदल[1]—वि० [सं०] १. जिसमें दो दल या पिंड हों । जो दो ऐसे खंडों से मिलकर बना हो जो खूब जुड़े हों, पर कूटने, दबाने आदि से अलग हो सकें । जैसे, अरहर, चना आदि अन्न । २. जिसमें दो पत्ते हों । ३. जिसमें दो पटल या पंखड़ियाँ हों । ४. जिसमें दो दल हों । जिसमें दो गुट हों ।

द्विदल[2]—संज्ञा पुं० वह अन्न जिसमें दो दल हों । दाल ।

द्विदल शासनप्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो भिन्न व्यक्तियों के हाथ में रहता है । द्वैध शासनप्रणाली । दुहरा शासन । वि० दे० 'डायार्की' ।

द्विदश—वि० [सं० द्वि + दश] बारह । उ०—वे कार्य भी द्विदश वत्सर की अवस्था । ऊधो न क्यों फिर नुरत्त मुकुंद होंगे ।—प्रिय०, पृ० १६६ ।

द्विदामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्विदाम्नी' । २. दो रस्सियों से बँधी हुई घोड़ी । उ०—दो रस्सियों में बँधी हुई घोड़ी द्विदामा तथा खुली हुई घोड़ी उद्दामा कही जाती थी ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २८४ ।

द्विदाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दो रस्सियों से बँधी हो । नटखट गाय ।

द्विदेवता[1]—वि० [सं०] १. दो देवताओं से संबंध रखनेवाला (चरु आदि) । जो दो देवताओं के लिये हो । २. जिसके दो देवता हों ।

द्विदेवता[2]—संज्ञा पुं० विशाखा नक्षत्र ।

द्विदेह—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

विशेष—पुराणों में कथा है कि गणेश का सिर एक बार कट गया था, फिर हाथी का सिर जोड़ा गया था ।

द्विद्वादश—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष का एक योग । जब वर के जन्मलग्न से कन्या का जन्मलग्न दूसरे पड़े और कन्या के जन्मलग्न से वर का जन्मलग्न बारहवें पड़े तो उसे 'द्विद्वादश' कहते हैं । यह विवाह की गणना में अतिशय अशुभ माना गया है ।

द्विध—वि० [सं०] दो भागों में बँटा हुआ ।

द्विधा[1]—क्रि० वि० [सं०] १. दो प्रकार से । दो तरह से । २. दो खंडों में । दो टुकड़ों में ।

द्विधा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुबधा] दे० 'दुबधा' । उ०—द्विधा रहित अपलक नयनों की भूखभरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी, पृ० १२ ।

द्विधाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] दो हिस्सों में बाँटना । दो भागों में विभाजन (को०) ।

द्विधागति—संज्ञा पुं० [सं०] १. उभयचर जंतु । २. मगर । ३. केकड़ा (को०) ।

द्विधातु[1]—वि० [सं०] जो दो धातुओं के संयोग से बना हो ।

द्विधातु[2]—संज्ञा पुं० १. दो धातुओं मेल से बनी हुई मिश्रित धातु । २. गणेश ।

द्विधात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल ।

द्विधाद्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्विधाद्वन्द्व] १. संदेह । भ्रम । २. विघ्न । बाधा (को०) ।

द्विधालेख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल का पेड़ ।

द्विनग्नक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुश्चर्मा' ।

द्विनवति—वि० [सं०] बानबे ।

द्विनेत्रभेदी—संज्ञा पुं० [सं० द्विनेत्रभेदिन्] वह मनुष्य जिसने किसी की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

विशेष—कौटिल्य ने यह लिखा है कि जो लोग यह अपराध करते थे उनकी दोनों आँखें योगांजन लगाकर फोड़ दी जाती थीं । जुरमाने के रूप मे ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच सकते थे ।

द्विपंचमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विपञ्चमूली] दशमूली ।

द्विपंचाशत्—वि० [सं०] बावन ।

द्विपंचाशत्तम—वि० [सं० द्विपञ्चाशत्तम] बावनवाँ ।

द्विप—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी । २. नागकेसर ।

द्विपक्ष[1]—वि० [सं०] १. जिसके दो पर हों । २. जिसमें दो पक्ष हों ।

द्विपक्ष[2]—संज्ञा पुं० १. पक्षी । चिड़िया । २. महीना । मास ।

द्विपक्षमूली—संज्ञा पुं० [सं०] दशमूल ।

द्विपटवान—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार दोहरे अर्ज का कपड़ा ।

द्विपथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दो पथ आकर मिलते हों। दोराहा।

द्विपद[1]—वि० [सं०] १. जिसके दो पैर हों; जैसे, मनुष्य, पक्षी। २. जिसमें दो पद या शब्द हो।

द्विपद[2]—संज्ञा पुं० १. वह जंतु जिसके दो पैर हों। २. मनुष्य। ३. ज्योतिष के अनुसार मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु लग्न का पूर्व भाग। ४ वास्तुमंडल का एक कोठा।

द्विपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ऋचा जिसमें केवल दो पद या पाद हों।

द्विपदिक—संज्ञा पुं० [सं०] गुद्धगान का एक भेद।

द्विपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्विपदी' [को०]।

द्विपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह छंद या श्लोक जिसमें दो पद हों। २. दो पदों का गीत। ३. एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें किसी दोहे आदि का शब्दों को तीन पंक्तियों में लिखते हैं।

विशेष—यह चित्रकाव्य इस प्रकार लिखते हैं कि दोहे के पहले चरण का आदि अक्षर पहले कोठे में, फिर एक एक अक्षर छोड़कर पहली पंक्ति के कोठों में भरते हैं, इसके उपरांत छूटे हुए अक्षरों को दूसरी पंक्ति के कोठों में एक एक करके रख देते हैं। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के कोठों में दोहे के दूसरे चरण के अक्षर, एक एक अक्षर छोड़ते हुए, रखते हैं। इन्हीं तीन कोष्ठ पंक्तियों से पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़ने का क्रम यह होना चाहिए कि पहले कोठे के अक्षर को पढ़कर उसके नीचेवाले कोठे के अक्षर को पढ़े, फिर पहली पंक्ति के दूसरे अक्षर को पढ़कर उसके नीचे के (दूसरी पंक्ति के दूसरे) कोठे के अक्षर को पढ़े। तीसरी पंक्ति के कोठों के अक्षरों को नीचे से ऊपर इस क्रम से पढ़े अर्थात् प्रथम द्वितीय कोष्ठ के क्रम से पढ़कर फिर तृतीय द्वितीय कोष्ठ के अक्षरों को पढ़े, जैसे,—

रा	दे	न	दे	ग	ग	गु	र	म	धा
म	व	र	व	नि	र	ध	न	द	रि
वा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

रामदेव नरदेव गनि, परगु धरन मद धारि।
वामदेव गुरदेव गनि पर कुपगन हद धारि।

द्विपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार के जंगली बेर का पेड़। बनकोली।

द्विपाद[1]—वि० [सं०] १ जिसे दो पैर हों। दो पैरोंवाला (पशु)। २. जिसमें दो पद या चरण हों (छंद आदि)।

द्विपाद[2]—संज्ञा पुं० मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जंतु।

द्विपादवध—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों पैर काटने का दंड।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि जो लोग मृत पुरुष की जायदाद आदि की चोरी करते थे, उन्हें यह दंड दिया जाता था।

द्विपाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] निर्दिष्ट दंड से दूना दंड [को०]।

द्विपायी—संज्ञा पुं० [सं० द्विपायिन्] [स्त्री० द्विपायिनी] हाथी।

द्विपास्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश (जिनका मुख हाथी के मुख के समान है)।

द्विपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के नौ वासुदेवों में से एक।

द्विबाहु[1]—वि० [सं०] जिसके दो बाहु हों। द्विभुज।

द्विबाहु[2]—संज्ञा पुं० मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव।

द्विबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० द्विबिन्दु] विसर्ग (:)।

द्विभात—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश। चमक। द्याभा [को०]।

द्विभाव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दो भाव। दुराव।

द्विभाव[2]—वि० जिसमें दो भाव हों। कपटी। बुरे स्वभाव का।

द्विभाषी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] [स्त्री० द्विभाषिणी] वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो। दुभाषिया।

द्विभुज[1]—वि० [सं०] जिसके दो हाथ हों। दो हाथवाला।

द्विभुज[2]—संज्ञा पुं० कोण। वह स्थान जहाँ दो भुज मिलें।

द्विभूम—वि० [सं०] दोतल्ला (घर)।

द्विमातृ—संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) जरासंध।

द्विमातृज—संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) १. जरासंध। २. गणेश।

द्विमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जो दो मात्राओं का हो। दीर्घ। जैसे,—आ, ऊ, ई इत्यादि।

द्विमीढ—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्ति का एक पुत्र। यह अजमीढ़ का भाई था।

द्विमुख[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्विमुखा] जिसके दो मुँह हों।

द्विमुख[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के कृमि जो पेट के मल में उत्पन्न हो जाते हैं। २. दो मुँहवाला साँप। मुँगो।

द्विमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

द्विमुखी[1]—वि० स्त्री० [सं०] दो मुँहवाली।

द्विमुखी[2]—संज्ञा स्त्री० १. वह गाय जो बच्चा दे रही हो।

विशेष—बच्चा देते समय गाय के पीछे की ओर बच्चे का मुँह निकलता है, इससे देखने में गाय के दोनों ओर मुख दिखाई पड़ता है। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है।

द्वियजुष[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट जो यज्ञों में यज्ञकुंड, मंडप आदि बनाने में काम आती थी।

द्वियजुष[2]—संज्ञा पुं० यजमान।

द्विर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विरेफ' [को०]।

द्विरद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। १. दुर्योधन का एक भाई। उ०—द्विरदहि बहुरि बोलाइ नरेशा। सौंपि गयंद यूथ उपदेशा।—सबल (शब्द०)।

द्विरद[2]—वि० दो रद अर्थात् दाँतोंवाला।

द्विरदांतक—संज्ञा पुं० [सं० द्विरदान्तक] सिंह [को०]।

द्विरदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

द्विरसन—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

द्विरसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साँपिन। सर्पिणी। २. दो प्रकार की बातें करनेवाली स्त्री। धूर्ता स्त्री। उ०—जी द्विरसने हम- को मार, कठिन तेरा उचित न्याय विचार।—साकेत, पृ० १७१।

द्विरागमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनरागमन। फिर दूसरी बार आना। २. वधू का अपने पति के घर दूसरी बार आना। गौना।

द्विरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो रातों में होनेवाला एक यज्ञ।

द्विराप—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

द्विरुक्त¹—वि० [सं०] दो बार कहा गया। दुहराकर कहा गया।

द्विरुक्त²—संज्ञा पुं० पुनरुक्त कथन। दो बार कही गई बात (को०)।

द्विरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो बार कथन।

द्विरूढा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे पति से विवाह हुआ हो। पुनर्भू।

द्विरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो भिन्न भिन्न पशुओं से उत्पन्न पशु। जैसे, घोड़े और गदहे से उत्पन्न खच्चर। २. दोगला।

द्विरेता—संज्ञा पुं० [सं० द्विरेतस्] दोगला पशु (को०)।

द्विरेफ—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा। उ०—दुर्जन द्विरेफ दारुण झंकार के मचाने में कमी न चूकेंगे।—श्यामा०, पृ० ४।

द्विवक्त्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोमुहाँ साँप। २. एक कृमिरोग।

द्विवक्त्र²—वि० दो मुँहवाला (को०)।

द्विवचन—संज्ञा पुं० [सं०] दो का बोध करानेवाला वचन (व्याकरण)।

द्विवज्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वह घर जिसमें सोलह कोण हों। सोलहकोना घर।

द्विवाहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूला। हिंडोला (को०)।

द्विविंदु—संज्ञा पुं० [सं० द्विबिन्दु] विसर्ग।

द्विविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण के अनुसार एक बंदर जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था। २. विष्णुपुराणादि के अनुसार एक बंदर। यह नरकासुर का मित्र था। इसे बलदेव जी ने मारा था।

द्विविध¹—वि० [सं०] दो प्रकार का।

द्विविध²—क्रि० वि० दो प्रकार से।

द्विविधा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्विविध] दुबधा।

द्विवेद—वि० [सं०] दो वेद पढ़नेवाला।

द्विवेदी—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदिन्] ब्राह्मणों की एक उपजाति। दुबे।

द्विवेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो पहियों की छोटी गाड़ी।

द्विव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के व्रण या घाव।

विशेष—सुश्रुत ने व्रण दो प्रकार के माने हैं। एक शारीर दूसरा आगंतुक। जो घाव वायु, रक्त, पित्त और कफ से फोड़े आदि के रूप में होता है उसे शारीर व्रण और जो किसी जंतु के काटने आदि से हो उसे आगंतुक व्रण कहते हैं।

द्विशत—वि० [सं०] दो सौ।

द्विशत्य—वि० [सं०] दो सौ देकर खरीदा गया (को०)।

द्विशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके खुर फटे हों। दो खुर- वाला पशु। जैसे, गाय, भेंड़, हिरन इत्यादि।

द्विशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार कन्या, मिथुन, धनु और मीन राशियाँ, जिनका प्रथमार्ध स्थिर और द्वितीयार्ध चर माना जाता है।

द्विशिर—वि० [हिं० द्वि + शिर] दो सिरवाला। जिसके दो सिर हों।

मुहा०—कौन द्विशिर है ?=किसे फालतू सिर है ? किसे अपने मरने का भय नहीं है ? उ०—तुम्हारे दुःख का कारण न जानने से हमको बड़ा क्लेश होता है। क्या हमसे कोई अपराध हुआ अथवा और किसी ने द्विशिर होना चाहा है ?—कादंबरी (शब्द०)।

द्विशीर्ष¹—वि० [सं०] जिसके दो सिर हों।

द्विशीर्ष²—संज्ञा पुं० अग्नि।

द्विषंतप—वि० [सं०] शत्रुओं को ताप देनेवाला (को०)।

द्विष्¹—वि० [सं०] द्वेष रखनेवाला।

द्विष्²—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्विष¹—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन।

द्विष²—वि० दे० 'द्विष्¹'।

द्विषत्—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विष'।

द्विष्ट¹—वि० [सं०] जिससे द्वेष हो।

द्विष्ट²—संज्ञा पुं० ताम्र। ताँबा।

द्विष्ठ—वि० [सं०] दो में संमिलित। उभयनिष्ठ (को०)।

द्विसप्तति¹—वि० [सं०] १. बहत्तर। २. बहत्तरवाँ।

द्विसप्तति²—संज्ञा स्त्री० बहत्तर की संख्या।

द्विसप्ताह—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पाख। पंद्रह दिन (को०)।

द्विसम—वि० [सं०] दो समान अंश या भागवाला (को०)।

द्विसमत्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसकी कोई दो रेखाएँ समान हों (को०)।

द्विसहस्र—वि० [सं०] १. दो हजार में क्रीत। २. दो हजार (को०)।

द्विसहस्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शेष नाग (को०)।

द्विसाहस्र—वि० [सं०] दे० 'द्विसहस्र' (को०)।

द्विसीत्य—वि० [सं०] एक बार लंबाई और फिर चौड़ाई में जोता हुआ। दो बार जोता हुआ (खेत आदि)।

द्विस्विन्नान्न—संज्ञा पुं० [सं०] उबाले हुए धान का चावल। भुजिया चावल।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में यति, विधवा और ब्रह्मचारी के लिये इसका खाना निषिद्ध कहा गया है। देवपूजन आदि में भी इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है।

द्विहन्—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी (जो सूँड़ से मारता है)।

द्विहरिद्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दारुहल्दी ।

द्विहृदय—वि॰ [सं॰] दे॰ 'द्वितीय' (को॰) ।

द्विहा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्विहन्] हाथी । करी ।

द्विहायन—वि॰ [सं॰] दो वर्ष का (को॰) ।

द्विहायनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दो वर्ष की गाय (को॰) ।

द्विहृदया—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] गर्भिणी । गर्भवती ।

द्वींद्रिय—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्वीन्द्रिय] वह जंतु जिसके दो ही इंद्रियाँ हों ।

द्वीत(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्वैत] दे॰ 'द्वैत' । उ॰—सुंदर समुझै एक है अनसमझै को द्वीत । उभै रहित सद्गुरु कहै सोहै बचनातीत ।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ६७१ ।

द्वीपंती(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ द्वीपवती] नदी । सरित् । उ॰—शैवालनि, स्रोतस्विनी, द्वीपंती, जलमाल । आप मान को बार में, सोच कहा है बाल ।—नंद ग्रं॰, पृ॰ ६८ ।

द्वीप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. स्थल का वह भाग जो चारों ओर जल से घिरा हो ।

विशेष—बड़े द्वीपों को महाद्वीप कहते हैं । बहुत से छोटे छोटे द्वीपों के समूह को द्वीपपुंज या द्वीपमाला कहते हैं । द्वीप दो प्रकार के होते हैं —साधारण और प्रवालज । साधारण द्वीप दो प्रकार से बनते हैं - एक तो भूगर्भस्थ अग्नि के प्रकोप से समुद्र के नीचे से उभड़ आते हैं । दूसरे आसपास की भूमि के धँस जाने से और वहाँ पानी आ जाने से बनते हैं । प्रवालज द्वीपों की सृष्टि मूँगों से होती है । ये बहुत सूक्ष्म कृमि हैं जो थूहर के पेड़ के आकार के पिंड बनाकर समुद्रतल में जमे रहते हैं । इन्हीं छोटे छोटे कीड़ों के शरीर से सहस्रों वर्ष में इकट्ठा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्र के ऊपर निकल आता है जिसे प्रवालज द्वीप कहते हैं । इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का द्वीप भी होता है जिसे मरिद्भव कह सकते हैं । इस प्रकार के द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियों के मुहानों पर, जहाँ वे समुद्र में मिलती हैं, बन जाते हैं । उन द्वीपों में कितने तो इतने छोटे होते हैं कि समुद्र में एक छोटे से टीले से अधिक नहीं दिखाई पड़ते पर बड़े द्वीप भी होते हैं जिनमें पेड़ पौधे होते हैं और पशु पक्षी मनुष्य आदि रहते हैं ।

२. पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग ।

विशेष—पुराणों में पृथ्वी सात सात द्वीपों में विभक्त की गई है । समुद्र और द्वीपों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा है । महाराज प्रियव्रत ने यह सोचा कि एक बार में सूर्य पृथिवी के एक ही ओर उजाला करता है जिससे दूसरी ओर अंधकार रहता है । उन्होंने एक पहिए की एक चमत्कारी गाड़ी पर सवार होकर सात बार पृथिवी की परिक्रमा की । गाड़ी के पहिये के धँसने से पृथिवी पर सात वर्तुलाकार गड्ढे पड़ गए जो सात समुद्र बन गए । इन्हीं सातों समुद्रों से वेष्ठित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई । इनमें सबके बीच में जंबूद्वीप है जो चारों ओर से क्षार समुद्र से वेष्ठित है और जिसके बीच में मेरु पर्वत है । क्षार समुद्र के उस पार दूसरा द्वीप प्लक्षद्वीप है जो जंबूद्वीप से दूना बड़ा है । तीसरा द्वीप शाल्मली द्वीप है, यह प्लक्षद्वीप से भी द्विगुण है । चौथे द्वीप का नाम कुशद्वीप है जो शाल्मली का भी दूना है । पाँचवाँ द्वीप क्रौंचद्वीप है, जो कुशद्वीप का दूना है । छठवाँ द्वीप शाकद्वीप क्रौंच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम पुष्करद्वीप है । यह क्रौंचद्वीप का दूना है । पर भास्कराचार्य जी का मत है कि पृथ्वी के आधे भाग में क्षारसमुद्र से वेष्ठित जंबूद्वीप है और आधे में शेष प्लक्षद्वीपादि छह द्वीप हैं । ये सातों द्वीप यथाक्रम क्षार, लवण, क्षीर, दधि, रस आदि समुद्रों से आवेष्ठित हैं ।

३. अवलंबन का स्थान । आधार । ४. व्याघ्रचर्म ।

द्वीपकर्पूर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] चीनी कपूर ।

द्वीपकुमार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जैन मतानुसार एक प्रकार का देवता । यह भुवनपति नामक देवगण के अंतर्गत है ।

द्वीपखर्जूर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महा पारेवत ।

द्वीपवत्—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. समुद्र । २. नद ।

द्वीपवती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. एक नदी का नाम । २. भूमि ।

द्वीपवान्¹—वि॰ [सं॰ द्वीपवत्] द्वीपोंवाला । जिसमें द्वीप हों (को॰) ।

द्वीपवान्²—संज्ञा पुं॰ १. समुद्र । २. नद (को॰) ।

द्वीपशत्रु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शतावरी । सतावर ।

द्वीपिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शतावरी । सतावर ।

द्वीपिनख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बाघ का नख । २. एक सुगंध द्रव्य (को॰) ।

द्वीपी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्वीपिन्] १. व्याघ्र । बाघ । २. चीता । ३. चित्रक वृक्ष । चीता ।

द्वीप्य¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वेदव्यास । २. एक प्रकार का कौआ । ३. रुद्र (को॰) ।

द्वीप्य²—वि॰ द्वीप में उत्पन्न (को॰) ।

द्वीश¹—वि॰ [सं॰] १. जो दो का स्वामी हो । २. जिसके दो स्वामी हों । ३. (चरु आदि) जो दो देवताओं के लिये हो ।

द्वीश²—संज्ञा पुं॰ विशाखा नक्षत्र ।

द्वृच—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. दो ऋचाओं का समूह । ४. वह सूक्त जिसमें दो ही ऋचाएँ हों ।

द्वेष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] चित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति । चिढ़ । शत्रुता । वैर ।

विशेष—योगशास्त्र में द्वेष उस भाव को कहा गया है जो दुःख का साक्षात्कार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है ।

द्वेषण¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. शत्रु । २. वैर । दुश्मनी । ३. घृणा । ४. शत्रुता (को॰) ।

द्वेषण²—वि॰ द्वेष करनेवाला (को॰) ।

द्वेषी¹—वि॰ [सं॰ द्वेषिन्] [वि॰ स्त्री॰ द्वेषिणी] विरोधी । वैरी । चिढ़ रखनेवाला ।

द्वेषी²—संज्ञा पुं॰ शत्रु । वैरी ।

द्वेष्टा—वि० [सं० द्वेष्टृ] [स्त्री० द्वेष्ट्री] द्वेष करनेवाला। विरोधी। वैरी। शत्रु।

द्वेष्य¹—वि० [सं०] जिससे द्वेष किया जाय।

द्वेष्य²—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

द्वेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष] दे० 'द्वेष'। उ०—नेह दुरावत दुहुन को द्वेस देत सुख मूरि। राति मिलत है रति हँसत होत रुखाई दूरि।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

द्वै(पु)†—वि० [सं० द्वय] दो। दोनों। उ०—(क) पुर तें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दियो मग ज्यों डग द्वै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुन गेह सनेह को भाजन सों सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।—तुलसी (शब्द०)।

द्वैक(पु)—वि० [हिं०] दो एक।

द्वैगुणिक—वि० [सं०] द्विगुणग्राही। दूना ब्याज लेनेवाला। दूना सूद खानेवाला (महाजन)।

द्वैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों में से किन्हीं दो से युक्त। २. द्वैत। ३. दूना द्रव्य या दूना परिमाण [को०]।

द्वैज(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय] द्वितीया। दूज। उ०—द्वैज सुधा दीधित कला, यह लखि दीठ लगाय। मनो अकाम अगस्तिया, एकै कली लखाय।—बिहारी (शब्द०)।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो का भाव। युग्म। युगल। २. अपने और पराए का भाव। भेद। अंतर। भेदभाव। उ०—संवत साधु द्वैत भय भागी। श्री रघुबीर चरन चित लागी।—तुलसी (शब्द०)। ३. दुबधा। भ्रम। उ०—सुख संगति गुरु द्वैत सों समुझै नाहि गवाँर। बात करै अद्वैत की पढ़ि गुनि भया लबार।—कबीर (शब्द०)। ४. अज्ञान। उ०—माधव अब न द्रवहु केहि लेखे। प्रणतपाल प्रण तोर, मोर प्रण जियहुँ कमलपद देखे। ··जनक जननि गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी। द्वैत रूप तम कूप परौं नहीं सो कछु जतन बिचारी।—तुलसी (शब्द०)। ५. द्वैतवाद।

द्वैतवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक तपोवन, जिसमें युधिष्ठिर ने वनवास के समय कुछ काल तक निवास किया था।

द्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है।

विशेष—उत्तरमीमांसा या वेदांत को छोड़ शेष पाँचो दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं। द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म और जीव का भेद नित्य है पर अद्वैतवादी कहते हैं कि यह भेदज्ञान भ्रम है। जिस समय जीव अपने को ब्रह्म स्वरूप समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है। केवल उपाधि के कारण जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता है, उपाधि हट जाने पर वह ब्रह्म में मिल जाता है। द्वैतवादी जीव की उपाधि को नित्य मानते हैं पर अद्वैतवादी उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादी 'तत्वमसि' उपनिषद् के इस महावाक्य को मुख्य मानकर चलते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी। पर दोनों उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं। अद्वैतवादी 'तत्वमसि' का सीधा अर्थ लेते हैं कि 'तुम वही (ब्रह्म) हो', पर द्वैतवादी मध्वाचार्य ने खींच तानकर उसका अर्थ लगाया है 'तस्य त्वं असि' अर्थात् तुम उसके हो। न्याय और वैशेषिक में तीन नित्य पदार्थ माने गए हैं—जीवात्मा, परमेश्वर और परमाणु। इस प्रकार के द्वैतवाद का खंडन ही शंकर ने अपने अद्वैतवाद द्वारा किया है। जिस प्रकार शंकराचार्य ने वेदांतसूत्र का भाष्य करके अपना अद्वैतवाद स्थापित किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य ने उक्त सूत्र का एक भाष्य रचकर द्वैतवाद का मंडन किया है। उनके मत से परमेश्वर स्वतंत्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है। वेदांती लोग जो जगत् को ईश्वर से अभिन्न अथवा रज्जु सर्पवत् मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप करते हैं वह ठीक नहीं। जगत् और जीव सत्य हैं और ईश्वर से भिन्न हैं। 'एकमेवाद्वितीयं' वाक्य का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जैसा कि अद्वैतवादी करते हैं। उसका अर्थ है कि ईश्वर बहुत नहीं एक ही है। 'एव' शब्द से मध्वाचार्य यह ध्वनि निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व उसका स्वभाव है वह अनेक हो नहीं सकता। अद्वितीय का अर्थ यह है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं है। जीव और जगत् उसकी सृष्टि है। इस प्रकार मध्वाचार्य ने द्वैतभाव का मंडन किया है। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद द्वैत और अद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें बहुत अधिक भेद नहीं है। दे० 'वेदांत'।

२. वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें भूत और चित्शक्ति अथवा शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं।

द्वैतवादी—वि० [सं० द्वैतवादिन्] [वि० स्त्री० द्वैतवादिनी] द्वैतवाद को माननेवाला। ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला।

द्वैतात्मिका—वि० स्त्री० [सं०] द्विरूपात्मिका। द्वैतभाव से युक्त। उ०—लोकदृष्टि से ब्रह्म को अगोचर रखनेवाली कौतुकशीला द्वैतात्मिका माया की क्रीड़ा है।—शैली, पृ० ३।

द्वैती—वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी।

द्वैतीयीक—वि० [सं०] द्वितीय। दूसरा [को०]।

द्वैध—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध। परस्पर विरोध। राजनीति के षड्गुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और प्रकट स्वभाव रखना पड़ता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रखकर दूसरा उद्देश्य प्रकट किया जाता है।

द्वैधशासन प्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्विदल शासनप्रणाली'।

द्वैधीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना।

द्वैधीभाव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्विधा भाव। अनिश्चय। २. भीतर कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव।

द्वैधीभाव²—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ संधि करना। २. दोनों ओर मिलकर रहना।

विशेष—कामंदक ने लिखा है कि जो राजा सबल न हो और जिसके इधर उधर बलवान राज्य हों वह द्वैधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आपको दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे।

द्वैप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाघ से संबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। २. व्याघ्रचर्म। बाघ का चमड़ा। ३. द्वीप से संबंधित या उत्पन्न (वस्तु आदि)।

द्वैपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यास जी का एक नाम।

विशेष—वेदव्यास का जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

२. एक ह्रद या ताल जिसमें कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भागकर छिपा था।

द्वैप्य—वि० [सं०] द्वीप संबंधी [को०]।

द्वैमातुर[1]—वि० [सं०] जिसकी दो माताएँ हों।

द्वैमातुर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश।

विशेष—स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश वरेण्य नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से त्रैलोक्य की विघ्नशांति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी आकृति और तेज आदि को देखकर राजा डर गए और उन्हें पार्श्वमुनि के आश्रम के पास एक जलाशय में फेंकवा दिया। वहाँ मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का नाम द्वैमातुर पड़ा।

२. जरासंध।

द्वैमातृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या देश जहाँ खेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती हो।

द्वैयह्निक—वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय या दो दिन का हो।

द्वैराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य।

विशेष—इसी को वैराज्य भी कहते थे। कौटिल्य ने इसे असंभव कहा है। परंतु कहीं कहीं इस प्रकार का राज्य होने का प्रमाण मिलता है।

द्वैविध्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो प्रकार होने का भाव। २. दुबधा।

द्वैषणीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली का एक भेद।

द्वैसमिक—वि० [सं०] दो वर्ष का [को०]।

द्वैसात(पु)—वि० [सं० द्वि+सप्त] चौदह। उ०—चौदे (यह) एकारांत है, पुरुष लिंग विख्यात। क्रम सों धरे विभक्ति को रूप होत द्वैसात।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५१४।

द्वैहायन—संज्ञा पुं० [सं०] दो साल का समय [को०]।

द्वौ(पु)[1]—वि० [हिं० दो+ऊ, दोउ] दोनों।

द्वौ[2]—वि० दे० 'द्व'।

द्व्यक्ष—वि० [सं०] दो नेत्रोंवाला। दो आँखवाला [को०]।

द्व्यगबल विभाग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य द्वारा वर्णित वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे शत्रु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो।

द्व्यणुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो दो अणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो अणुओं का एक संघात। एक मात्रा जो दो अणुओं की हो।

द्व्यर्थ—वि० [सं०] दो अर्थ रखनेवाला। दूहरे अर्थवाला [को०]।

द्व्यर्थक—वि० [सं०] दे० 'द्व्यर्थ' [को०]।

द्व्यशीति—वि० [सं०] जो गिनती में अस्सी से दो अधिक हो। बयासी।

द्व्यष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र। ताँबा।

द्व्यहायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्व्याग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चीता वृक्ष [को०]।

द्व्यात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] दो स्वभाव की राशियाँ जो ये हैं—मिथुन, कन्या, धनु और मीन।

द्व्यामुष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसे अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पिंडदान देता है और दोनों की संपत्ति का अधिकारी होता है। वि० दे० 'दत्तक'।

ध

ध—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्नीसवाँ व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंतमूल है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की नोक ऊपरी दाँतों की जड़ में लगानी पड़ती है। बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष महाप्राण हैं।

धंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धक] क्रुद्ध होना। कुढ़ना। खीजना। उ०—सुननंकि बान गजि गोम धंक। कायर पुलंत सुरा निसंक।—पृ० रा०, ११६५८।

धंका(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'धक्का'। उ०—सिंह की सिंह चपेट सहै गजराज सहै गजराज को धंका।—भूषण ग्रं०, पृ० ६५। २. चोट। आघात।

धंग(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] कीर्ति। यश। उ०—अब गाढ़ी हरकाय दे धवल धंग हिरदेश।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ८८।

धंगर—संज्ञा पुं० [देश०] चरवाहा। ग्वाल। अहीर।

धंगरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धींगरी'। उ०—बात कहत मुँह फारि खात है मिली चमघुसरि धंगरिया—कबीर सा० सं०, पृ० २६।

धंगा—संज्ञा पुं० [देश०] खाँसी। ठाँसी।

धंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] धंधा। व्यवसाय। उ०—कीन्हेसि दुख औ कोटि धनंदू। कीन्हेसि दुख चिंता औ धंदू।—जायसी०, ग्रं०, पृ० २।

धंदर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

धंध(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुंध'। उ०—राम बिना संसार धंध कुहेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० १६५।

धंध(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] धोखा। कपट। छल। उ०—धंध धोखा किया कुमति ठानी।—कबीर रे०, पृ० ८।

धंध(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धंधा'। उ०—दादू सतगुरु सो सगा, दूजा धंध विकार।—दादू०, पृ० २७।

धंध(पु)[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'द्वंद्व'। उ०—पंच बिस जीव तत्व करत हैं धंध जू।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८८।

धंध(पु)[5]—संज्ञा पुं० [देश०] ज्वाला। उ०—तूलन तोपिके ह्वै मतिमंध हुतासन धंध प्रहारन चाहै।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८१।

धंधक[1]—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आडंबर। जंजाल। बखेड़ा। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरमध्वज धंधकधोरी।—तुलसी (शब्द०)।

धंधक[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का ढोल।

धंधकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधक + धोरी] काम धंधे का बोझ लादे रहनेवाला। हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिक धरमध्वज धंधकधोरी।—तुलसी (शब्द०)।

धंधका—संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० अल्पा० धंधकी] एक प्रकार का ढोल।

धंधरक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] काम धंधे का आडंबर। जंजाल। बखेड़ा।

धंधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधरक + धोरी] काम धंधे का बोझ लादे रहनेवाला। हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला।

धंधा—संज्ञा पुं० [सं० धनधान्य या देश०] १. धन या जीविका के लिये उद्योग। काम काज। जैसे,—वह घर का कुछ काम धंधा नहीं करती।

यौ०—काम धंधा। गोरखधंधा।

२. उद्यम। व्यावसाय। कार बार। पेशा। रोजगार। जैसे, (क) उसे किसी काम धंधे में लगा दो। (ख) आजकल कोई काम धंधा नहीं है, खाली बैठे हैं।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग लिखने पढ़ने की भाषा में 'काम' शब्द के साथ अधिक होता है।

धंधार—संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का लंबा औजार जो भारी पत्थरों या लकड़ियों के उठाने के काम में आता है।

धंधार[2]—वि० [देश०] एकाकी। अकेला।

धंधार[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० धूमधार या देश०] ज्वाला। लपट।

धंधारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] गोरखधंधा जिसे गोरखपंथी साधु लिये रहते हैं।

धंधारी[2]—संज्ञा स्त्री० १. एकांत। निर्जनता। अकेलापन। २. सुनसान। सन्नाटा।

धँधाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा] कुटनी। दूती। दल्लाल।

धंधालू—वि० [हिं० धंधा] काम धंधे में लगा रहनेवाला। उ०—बहु धंधालू आव धरि कासूँ करइ वदेम।—ढोला०, दू० १७८।

धंधु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] उद्यम। काम। उ०—धंधु धंधु अवलोकि तुव जानि परै सब ढंग। बीम बिसे यह बसुमती जैहै तेरे संग।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२।

धंधूणो(पु)—क्रि० वि० [सं० धूज, प्रा० धुण] हिला डुलाकर। उ०—बोलइ नहीं ज बाल, धण धंधूणी जोइयउ।—ढोला०, दू० ६०३।

धंमिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तथा प्रा० धम्मिल्ल] स्त्रियों के बालों का जूड़ा। उ०—सीस जटा कवि गोविंद एनहि, ओपन सों अति धंमिल जाल है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३५।

धंस(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'ध्वंस'। उ०—राम कृष्ण जय सूर ससि, करन मोह भ्रम धंस।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३५७।

धँधरक—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा या ढंग + रख < ढोंग + रच] दे० 'धंधरक'। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धँधरक धोरी।—तुलसी (शब्द०)।

धँधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हिं० धंधरक + धोरी] दे० 'धंधरकधोरी'। उ०—तिनमहँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धँधरक धोरी।—तुलसी (शब्द०)।

धँधला—संज्ञा पुं० [हिं० धंधा] १. छल छंद। कपट का आडंबर। झूठा ढोंग। ढंग। उ०—अंत काल कोइ काम न आवै। फोकट फाकट धंधला।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ९०६। २. हीला। बहाना। (क्व०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—(किसी को) धंधले आते हैं = छल छंद का अभ्यास है।

धँधलाना—क्रि० अ० [हिं० धँधला] छल छंद करना। ढंग रचना।

धँधार—संज्ञा पुं० [हिं०] ज्वाला। लपट। उ०—कंथा जरै आगि नभ लाई। बिरह धँधार जरत न बुझाई।—जायसी (शब्द०)।

धँधारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धंधा + री (प्रत्य०)] दे० 'धंधारी'। उ० मेखल सिंघी चक्र धँधारी। जोग हाथ तिरसूल सँभारी।—जायसी (शब्द०)।

धंधेरा—संज्ञा पुं० [देश०] राजपूतों की एक जाति।

धँधोर—संज्ञा पुं० [अनु० धायँ धायँ (= आग दहकने की ध्वनि)] १. होलिका। होली। २ आग की लपट। ज्वाला। उ०—(क) रही प्रेम मन उरझा लटा। बिरह धँधोर परहिं सिर जटा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कंथा जरै अगिनि जनु लाए। बिरह धँधोर जरत न जराए।—जायसी (शब्द०)।

धँस—संज्ञा पुं० [हिं० धँसना] जल आदि में प्रवेश। डुबकी। गोता।

क्रि० प्र०—लेना।

धँसन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धँसना] १. धँसने की क्रिया या ढंग । २. घुसने या पैठने का ढंग । गति । चाल । उ०—तुलसी मेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान ।—तुलसी (शब्द०) ।

धँसना¹—क्रि० अ० [सं० दंशन (=दाँत चुभना)] १. किसी कड़ी वस्तु का किसी नरम वस्तु के भीतर दाब पाकर घुसना । गड़ना । जैसे, पैर में काँटा धँसना, दीवार में कील धँसना, कीचड़ या दलदल में पैर धँसना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—'चुभना' और 'धँसना' में अंतर यह है कि 'चुभना' का प्रयोग विशेषत: जीवधारियों के शरीर में घुसने के अर्थ में होता है । जैसे, पैर में काँटा चुभना । दूसरी बात यह है कि 'चुभना' नुकीली वस्तुओं के लिये आता है, जैसे, काँटा, सुई आदि ।

मुहा०—जी या मन में धँसना = (१) चित्त में प्रभाव उत्पन्न करना । मन में निश्चय या विश्वास उत्पन्न करना । दिल में असर करना । जैसे,—उसे लाख समझाओ उसके मन में कोई बात धँसती ही नहीं । (२) हृदय में अंकित होना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में बराबर रहना । चित्त से न हटना । ध्यान पर बराबर चढ़ा रहना । उ०—मन महँ धँसी मनोहर मूरति टरति नहीं वह टारे ।—सूर (शब्द०) ।

२. किसी ऐसी वस्तु के भीतर जाना जिसमें पहले से अवकाश न रहा हो । अपने लिये जगह करते हुए घुसना । इधर उधर दबाकर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पैठना । जैसे, पानी में धँसना, भीड़ में धँसना, दलदल में धँसना । उ०—(क) जोर जगी जमुना जल धार में धाय धँसी जलकेलि की माती ।—(शब्द०)। (ख) आयो जौन तेरी धौरी धारा में धँसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । पड़ना ।

ⓟ†३. नीचे की ओर धीरे धीरे जाना । नीचे खसकना । उतरना । उ०—(क) खरी लसति गोरे गरे धँसति पान की पीक ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) जनु कलिंदनंदिनि मनि इंद्रनील सिखर परसि धँसति लसति हंस श्रेणि संकुलन अधिकौहै । —तुलसी (शब्द०) । (ग) पति पहिचानि धँसी मंदिर तें, भूर, तिया अभिराम । आवहु कंत लखहु हरि को हित पाँव धारिए धाम ।—सूर (शब्द०) । ४. तल के किसी अंश का दबाव आदि पाकर नीचे हो जाना जिससे गड्ढा सा पड़ जाय । नीचे की ओर बैठ जाना । जैसे,—(क) जहाँ गोला गिरा वहाँ जमीन नीचे धँस गई । (ख) बीमारी से उसकी आँखें धँस गई हैं ।

विशेष—पोली वस्तु के लिये इस अर्थ में 'पचकना' का प्रयोग होता है ।

५. किसी गड़ी या नीवँ पर खड़ी वस्तु का जमीन में और नीचे तक चला जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके । बैठ जाना । जैसे,—इस मकान की नीवँ कमजोर है, बरसात में यह धँस जायगा ।

धँसनाⓟ²—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] ध्वस्त होना । नष्ट होना । मिटना । उ०—निज आतम अज्ञान ते है प्रतीति जग वेद । धँसै सु ताके बोध ते यह भाखत मुनि वेद ।—विचारसागर (शब्द०) ।

धँसनिⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धँसन' ।

धँसान—संज्ञा स्त्री० [हिं० धँसना] १. धँसने की क्रिया या ढंग । २. ऐसी जमीन जिसपर कीचड़ के कारण पैर धँसता हो । दलदल । ३. ऐसी जमीन जिसपर नीचे की ओर पैर फिसले । ढाल । उतार ।

धँसाना—क्रि० स० [हिं० धँसना] १. गड़ाना । चुभाना । नरम चीज में घुसाना । २. पैठाना । प्रवेश कराना । जैसे, जल में धँसाना । ३. तल या सतह को दबाकर नीचे की ओर करना । नीचे की ओर बैठाना ।

धँसाव—संज्ञा पुं० [हिं० धँसना] १. धँसने की क्रिया । २. ऐसी जमीन जिसपर पैर धँसे । दलदल ।

ध²—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा । २. कुबेर । ३. गुण । नैतिक गुण । ४. धैवत स्वरसंकेत (संगीत) । ५. धर्म । ६. धन । संपत्ति [को०] ।

ध²—[प्रत्य०] धारण करनेवाला [को०] ।

धई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जिसकी जड़ या कंद को छोटा नागपुर की पहाड़ी जातियों के लोग खाते हैं ।

धउरहर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौरहर' ।

धउलⓟ—वि० [हिं०] दे० 'धवल' । उ०—साने धरती धउल प्रकास ।—प्राण०, पृ० १ ।

धक¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दिल के धड़कने का शब्द या भाव । हृत्कंप का शब्द या भाव । हृदय के जल्दी जल्दी चलने, कूदने का भाव या शब्द । (भय या उद्वेग होने अर्थात् किसी बात से चौंक पड़ने पर जी में धड़कन होती है) । उ०—गुंघर हौं निरखौं अब लौं मुख पीरी परी छतियाँ धक छाई ।—गुंघर (शब्द०) ।

मुहा०—जी धक धक करना = भय या उद्वेग से जी धड़कना । जी धक हो जाना = (१) भय या उद्वेग से जी धड़क उठना । डर से जी दहल जाना । (२) चौंक उठना । जी धक होना, या धक से होना = (१) उद्वेग या घबराहट होना । (२) आशंका होना । भय होना । जी दहलना । धक से रह जाना = दे० 'जी धक होना या धक से रह जाना' । उ०—हुस्न आरा और उनकी कुल बहनें और भी मुगलानी और अब्बासी धक से रह गई ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २६१ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग खट, पट आदि और अनु० शब्दों के समान प्राय: 'से' विभक्ति सहित क्रि०वि० वत् ही होता है ।

२. उमंग । उद्वेग । चोप । उ०—रहत अछक पै मिटै न धक जोवन की निपट जो नाँगी डर काहू के डरै नहीं ।—भूषण (शब्द०) ।

धक²—क्रि० वि० अचानक । एकबारगी । उ०—आनन सीकर सी कहिए धक सोवत तें अकुलाय उठी क्यों ?—केशव (शब्द०) ।

धक³—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] छोटी जूँ । लीख से बड़ी जूँ ।

धकधक—क्रि॰ वि॰ [अनु॰] धक धक की ध्वनि के साथ । दहकता हुआ । उ॰—भाव अनल धक धक कर जला ।—अपरा, पृ॰ ६ ।

क्रि॰ प्र॰—जलना ।

धकधकाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰ धक] १. (हृदय का) धड़कना । भय, उद्वेग आदि के कारण हृदय का जोर जोर से जल्दी जल्दी चलना । उ॰—धकधकात जिय बहुत डेरा रे । क्यों मारौं सो बुद्धि विचारे ।—सूर (शब्द॰) । †२. (आग का) दहकना । भभकना । लपट के साथ जलना ।

धकधकाहट—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰ धक] १. जी धक धक करने की क्रिया या भाव । धड़कन । २. खटका । आशंका । ३. आगा पीछा ।

धकधकी—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰ धक] १. जी धक धक करने की क्रिया या भाव । जी की धड़कन । उ॰—(क) आवत देख्यो विप्र जोरि कर रुक्मिनि धाई । कहा कहैगो आनि हिये धकधकी लगाई ।—सूर (शब्द॰) । (ख) दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनुधारि ।—तुलसी (शब्द॰) । (ग) खरहू के खरकत धकधकी धरकत, मौन कोन सकुरत सरकत जातु है ।—भिखारी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ३३ । २. गले और छाती के बीच का गड्ढा जिसमें स्पंदन मालूम होता है । धुकधुकी । दुगदुगी ।

मुहा॰—धुकधुकी धरकना = छाती धड़कना । जी धकधक करना । अकस्मात् आशंका या खटका होना । उ॰—मिथिनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ।—तुलसी (शब्द॰) ।

धकनाⓅ†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'दहकना' । उ॰—बिथरा उड्यो सो डोलै हियरो धक्योई करै ।—घनानंद॰, पृ॰ ७६ ।

धकपक¹—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] जी की धड़कन । धकधकी । उ॰—(क) बुझत हकीम खाँ अमीरनु के धक सो औ धकसी के बिय में परी है धकपक सी ।—सूदन (शब्द॰) । (ख) इंद्र जू को धकधक, धाताजू की धकपक, संभू जी की सकपक केसोदास को कहै ?—केशव (शब्द॰) ।

धकपक²—क्रि॰ वि॰ धड़कते हुए जी के साथ । दहलते हुए । डरते हुए ।

धकपकाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰ धक] जी में दहलना । दहशत खाना । डरना । उ॰—भूषन भनत दिल्लीपति सों धकपकात धाक सुनि राव छत्रसाल मरदाने की ।—भूषन (शब्द॰) ।

धकपकनाⓅ—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ धकपक] दहल जाना । डरना । उ॰—धरनि धसत धकपक्क धीर धाराधर भुक्कत ।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ २८५ ।

धकपेल—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰ धक + पेलना] धक्कमधक्का । रेलापेल । उ॰—धमकंत सोंग करें धकपेल ।—सूदन (शब्द॰) ।

धकाⓅ†¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धक्का' । उ॰—दुर्जय कुंभ कुम्हार का, एकै धका दरार ।—संतवाणी॰, पृ॰ २० ।

धका²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] ओर । तरफ । उ॰—खान अरक्के लै गयो एक धके मलमाल ।—रा॰ रू॰, पृ॰ ३१३ ।

धकाधक—वि॰ [अनु॰] अत्यधिक मात्रा में । बहुत । उ॰—आज तो तूने चकाचक भाँग और धकाधक जबुआन की अच्छी ठहराई ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ १७० ।

धकाधकी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धक्का] धक्कम धक्का । उ॰—कोमी धकाधकी रिस मन मैं न आइये ।—भक्तमाल, पृ॰ ४८८ ।

धकाधूम—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰ धक + धूम] भीड़भाड़ । रेलपेल ।

धकाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ दहकाना] दहकाना । सुलगाना । जलाना । उ॰—धूनी ध्यान धकाओ रैन दिन फिकिर फाहुरी खोई ।—कबीर (शब्द॰) ।

धकापेल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धक्का + पेलना] धक्कम धुक्का । भीड़भाड़ में होनेवाली धक्केबाजी ।

धकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ध अक्षर ।

धकारा†—संज्ञा पुं॰ [अनु॰ धक] धकधकी । आशंका । खटका । उ॰—तुम तो लीला करत सुरन मन परो धकारो ।—सूर (शब्द॰) ।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना ।—होना ।

धकियाⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धक्का] धाक । प्रभाव । उ॰—काल कराल जँजाल डरहिंगे अबिनासी की धकिया ।—मीखा॰ श॰, पृ॰ ७२ ।

धकियाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ धक्का] धक्का देना । ढकेलना ।

धकेलना—क्रि॰ स॰ (हिं॰ धक्का) ढकेलना । ठेलना । धक्का देना । उ॰—मेघों को एकत्रित करती हवा, हाथियों को धकेलती, उड़ चलो अरे लोगों उस निर्बल पुण्य पुरुष की करो मदद कुछ, तुम्हें चाहता था जो इतना ।—वंदन॰, पृ॰ १०२ ।

संयो॰ क्रि॰—देना ।

विशेष—दे॰ 'ढकेलना' ।

धकेलू—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धकेलना] ढकेलनेवाला । धक्का देनेवाला ।

धकैत—वि॰ [हिं॰ धक्का + ऐत (प्रत्य॰)] धक्का देनेवाला । धक्कम धक्का करनेवाला । उ॰—द्रुत धीर धकैत गयो धँसि कै ।—गोपाल (शब्द॰) ।

धकोना—क्रि॰ सं॰ [हिं॰] दे॰ 'धकियाना' ।

धकौⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धक्का] आक्रमण । हमला । उ॰—धकौ न साहै मीरजाँ, बाहे सार गरज्ज ।—रा॰ रू॰, पृ॰ ४६ ।

धक्क‡¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धक' ।

धक्कⓅ²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धक्का' । उ॰—हा कहत उड़त हौ कहत ठड्ढ । गिर परत धक्क जिन कोट गड्ढ ।—पृ॰ रा॰, ६।११५ ।

धक्कपक्क—संज्ञा स्त्री॰ क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'धकपक' । उ॰—धक्क धक्क, पक्क पक्क थरथरात आवित जात ।—सूदन (शब्द॰) ।

धक्कमधक्का—संज्ञा पुं० [हिं० धक्का] १. बार बार बहुत अधिक या बहुत से आदमियों का परस्पर धक्का देने का काम। धक्कापेल। २. ऐसी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। रेलापेल। जैसे, -मंदिर के भीतर बहुत धक्कमधक्का है।

धक्का—संज्ञा पुं० [सं० धम, हिं० धमक, धोंक या सं० धक्क (= नष्ट करना)] १. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ ऐसा वेगयुक्त स्पर्श जिससे एक या दोनों पर एकबारगी भारी दबाव पड़ जाय अथवा गति के वेग का वह भारी दबाव जो एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु के एकबारगी आ लगने से एक या दोनों पर पड़ता है। आघात या प्रतिघात। टक्कर। रेला। झोंका। जैसे,—(क) सिर में दीवार का धक्का लगना। (ख) चलती गाड़ी के धक्के से गिर पड़ना।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—मारना।—लगना।—लगाना।—सहना।

यौ०—धक्कापेल। धक्कमधक्का।

विशेष—केवल गुरुत्व के कारण जो दबाव पड़ता है उसे 'धक्का' नहीं कह सकते, गति के वेग के अवरोध से जो दबाव एकबारगी पड़ जाता है उसी को धक्का कहते हैं।

२. किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी जगह से हटाने, खिसकाने गिराने आदि के लिये वेग से पहुँचाया हुआ दबाव अथवा इस प्रकार का दबाव पहुँचाने का काम। ढकेलने की क्रिया। झोंका। चपेट। जैसे,—इसे धक्का देकर निकाल दो।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मारना।—लगाना।—सहना।—होना।

मुहा० -धक्का खाना = धक्का सहना। उपेक्षित होना। धक्के देकर निकालना = तिरस्कार और अपमान के साथ सामने से हटाना।

३. ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। कशमकश। कसमस। जैसे,—मंदिर के भीतर बड़ा धक्का है, मत जाओ। ४. शोक या दुःख का आघात। दुःख की चोट। संताप। जैसे, भाई के मर जाने से उसे बड़ा धक्का पहुँचा।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—पहुँचाना।

५. आपदा। विपत्ति। आफत। दुर्घटना। ६. हानि। टोटा। घाटा। नुकसान। जैसे,—इस व्यापार में उसे लाखों का धक्का बैठा।

क्रि० प्र०—खाना।—बैठना।

७. कुश्ती का एक पेंच जिसमें बायाँ पैर आगे रखकर विपक्षी की छाती पर दोनों हाथों से गहरा धक्का या चपेट देकर उसे गिराते हैं। छाप। ठोढ़।

धक्काड़—वि० [हिं० धक्का + अड़ना] प्रभावशाली। जिसकी खूब चलती हो।

धक्कामुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का + मुक्का] ऐसी लड़ाई जिसमें एक दूसरे को ढकेलें और घूसों से मारें। मुठभेड़। मारपीट।

धखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धकना] जलना। प्रज्वलित होना। उ०—मद चक्कर भक्खर कोप धखे। —पृ० रासो, पृ० २१८।

धगड़—संज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] जार। उपपति।

धगड़बाज—वि० स्त्री० [हिं० धगड़ + फ़ा० बाज] जार के पास आने जानेवाली व्यभिचारिणी। कुलटा।

धगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] किसी स्त्री का जार। उपपति।

धगड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं० धगड़ा] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा स्त्री।

धगधागना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धकधकाना] धकधक करना। धड़कना (छाती या जी का)। उ०—जब राजा तेहि मारन लाग्यो। देवी काली मन धगधाग्यो।—सूर (शब्द०)।

धगरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धगड़ा'।

धगरिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाँगर] धाँगर जाति की स्त्री जो जन्मे हुए बच्चों का नाल काटती है।

धगवरी—वि० [हिं० धगड़ा (= पति या यार)] १. पति की दुलारी। खसम की मुँहलगी। २. कुलटा। छिनाल। व्यभिचारिणी। उ०—जननी के खीझत हरि रोये झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।—सूर (शब्द०)।

धगा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धागा' (तागा)। उ०—सूरजदास कांच अरु कंचन एकहि धगा पिरोयो।—सूर (शब्द०)।

धगुला†—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ में पहनने का कड़ा।

धग्गड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धगड़'।

धचकचाना†—क्रि० स० [देश०] डराना। दहलाना।

धचकना†—क्रि० अ० [देश०] दलदल में धँसना।

धचका—संज्ञा पुं० [देश०] धक्का। झटका। झोंका। आघात।

मुहा०—धचका उठाना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

धच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० धर्षण, हिं० धड़चना] मारना। वध करना। उ०—सुद्ध सहसच्छ के बिपच्छिन के पच्छिन को मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं। —पद्माकर ग्रं०, पृ० २४३।

धज—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज (= चिह्न, पताका)] १. सजावट। बनाव। सुंदर रचना।

यौ०—सजधज = तैयारी। साज सामान। जैसे,—बरात बड़ी सजधज से निकली।

२. सुंदर ढंग। मोहित करनेवाली चाल। तरह। ३. बैठने उठने का ढब। ठवन। ४. ठसक। नखरा। ५. रूप रंग। शोभा। आकृति या डील डौल। ६. झंडा। ध्वजा। पताका। उ०—रथ ऊपर धज फरहरई। मेहाडंबर नवि सूझइ भाण।—बी० रासो, पृ० १२।

धजना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धज] सजधज करना। सजना।

उ०—आदर कियो है धजि के रीभेहि आए भजि के।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ९१।

धजनेज(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० धज + नेजा] नेजे में लगी हुई ध्वजा। उ०—धजनेज मोज नीसान ढल मनु वसंत रंज्जिय विपन।—पृ० रा०, १। ६१७।

धजबड़(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० धज (= ध्वजा)+बड़ (= बढ़ानेवाला)] तलवार। (डिं०)। उ०—धजबड़ बल मेवाड़ धर, जीतो तूँ यह जोध।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७२।

धजा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] १. ध्वजा। पताका। उ०—सुभै सेत छत्रं धजा नेज माही।—पृ० रा०, १। ६३२। २. कपड़े की धज्जी। कतरन। चीर। ३. धज। रूपरंग। डीलडौल।

धजा(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धज] सजधज। सजावट। उ०—विज्यी रिष्षि भारी। दियो काम डारी। भयो पुत्र तब्बं। धजा मोद सब्बं।—पृ० रा०, १। ५७।

धजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धज्जी'। उ०—लाज लपेटी कहाँ लौं रहिय घुनि धीरज की करति धजी है।—घनानंद, पृ० १४७।

धजीला—वि० [हिं० धज + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० धजीली] सजीला। तरहदार। सुंदर ढंग का।

धज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० धटी] १. कपड़े, कागज, चमड़े इत्यादि (चद्दर के रूप की वस्तुओं) की फटी हुई लंबी पतली पट्टी। फटा हुआ लंबा पतला टुकड़ा। २. लोहे की चद्दर या लकड़ी के पतले तख्ते की अलग की हुई लंबी पट्टी।

मुहा०—धज्जियाँ उड़ना = (१) फट या कटकर टुकड़े टुकड़े हो जाना। विदीर्ण होना। पुरजे पुरजे होना। (२) (किसी की) खूब दुर्गति होना। निंदा या तिरस्कार होना। दोषों का खूब उधेड़ा जाना। धज्जियाँ उड़ाना = (१) टुकड़े टुकड़े करना। विदीर्ण करना। खंड खंड करना। (२) (किसी के) दोषों को खूब उधेड़ना। दुर्गति करना। निंदा या उपहास करना। उ०—धज्जियाँ उड़ाते दहलते जो नहीं। सिर उतारते किसलिये वे सी करें।—चुभते०, पृ० ९। (३) मारकर टुकड़े टुकड़े करना। बोटी बोटी काट डालना। धज्जियाँ लगना = गरीबी से कपड़े फटे रहना। बहुत गरीबी आना। धज्जियाँ लेना = निंदा या उपहास करना। (किसी के) दोषों को उधेड़ना। बनाना। दुर्गति करना। धज्जी हो जाना = सूखकर ठठरी हो जाना। बहुत दुबला पतला हो जाना। अत्यंत दुर्बल और अशक्त हो जाना (रोग आदि के कारण)।

धट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुला। तराजू। २. तुला राशि। ३. तुलापरीक्षा। ४. धर्म।

धटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तौल जो ४२ रत्तियों की होती थी।

धटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाँच सेर की एक तौल। पंसेरी। २. चीर। वस्त्र। ३. कौपीन। लँगोटी। ४ गर्भ के पश्चात् स्त्री द्वारा पहना जानेवाला वस्त्र (को०)।

धटी[1]—संज्ञा [स्त्री०] १. चीर। कपड़े की धज्जी। २. कौपीन। लिंगोटी। ३. वह वस्त्र जो स्त्रियों को गर्भाधान के पीछे पहनने को दिया जाता था।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार गर्भाधान के पीछे मूल, श्रवण, हस्त, पुष्य, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्र या मृगशिरा नक्षत्रों मे स्त्री को अच्छे दिन धटी वस्त्र पहनाना चाहिए।

यौ०—धटीदान = गर्भाधान के बाद स्त्री को पुराना वस्त्र देना।

धटी[2]—वि० [सं० धटिन्] [वि० स्त्री० धटिनी] तुलाधारक। डाँड़ी पकड़नेवाला।

धटो[3]—संज्ञा पुं० १. तुला राशि। २. शिव। ३. व्यापारी। बनिया (को०)।

धड़ंग—वि० [हिं० धड़ + अंग] नंगा।

यौ०—नंग धड़ंग।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नंग' शब्द के साथ समस्त रूप में होता है।

धड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० धर(= धारण करनेवाला)] १. शरीर का स्थूल मध्य भाग जिसके अंतर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं। सिर और हाथ पैर (तथा पशु पक्षियों में पूँछ और पंख) को छोड़ शरीर का बाकी भाग। सिर और हाथों को छोड़ कटि के ऊपर का भाग। उ०— धड़ सूली सिर कंगुरे, तउ न बिसारूँ तुज्झ।—संतवाणी०, पृ० ३९।

यौ०—धड़टूटा।

मुहा०—धड़ में डालना या उतारना = पेट में डालना। खा जाना। (किसी का) धड़ रह जाना = शरीर स्तब्ध हो जाना। देह सुन्न हो जाना। लकवा मार जाना। धड़ से सिर अलग करना = सिर काट लेना। मार डालना।

२. पेड़ का वह सब मोटा कड़ा भाग जो जड़ से कुछ दूर ऊपर तक रहता है और जिससे निकलकर डालियाँ इधर उधर फैली रहती हैं। पेड़ी। तना।

धड़[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी वस्तु के एकबारगी गिरने, वेग से गमन करने आदि से होता है। जैसे,—(क) वह धड़ से नीचे गिरा। (ख) गाड़ी धड़ से निकल गई।

यौ०—धड़ धड़।

विशेष—'झट' 'पट' आदि अनु० शब्दों के समान प्रायः इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि० वत् ही होता है।

धड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु० धड़] १. हृदय का स्पंदन। हृदय के आकुंचन प्रसारण की क्रिया जो हाथ रखने से मालूम होती है। दिल के चलने या उछलने की क्रिया। हृदय के स्पंदन का शब्द। दिल के कूदने की आवाज। तड़प। तपाक। ३. भय, आशंका आदि के कारण हृदय का अधिक स्पंदन। अंदेशे या दहशत से दिल का जल्दी जल्दी और जोर जोर से कूदना। जी धक धक करने की क्रिया। ४. आशंका। खटका। अंदेशा। भय।

यौ०—बेधड़क = बिना किसी खटके के। बिना किसी असमंजस

या आगा पीछा के। निर्द्वंद्व। बिना किसी रुकावट या संकोच के। जैसे,—तुम बेधड़क भीतर चले आओ।

५. हिचक। झिझक। संकोच।

धड़कन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धड़क] हृदय का स्पंदन। दिल का कूदना।

धड़कना—क्रि० अ० [हिं० धड़क] १. हृदय का स्पंदन करना। दिल का उछलना या कूदना। छाती का धक धक करना।

संयो० क्रि०—उठना।

मुहा०—छाती, जी या दिल धड़कना = भय या आशंका से हृदय का जोर जोर से और जल्दी जल्दी उछलना। जी दहलना। हृदय काँपना।

२. धड़ धड़ शब्द करना। किसी भारी वस्तु के गिरने का सा शब्द करना। जैसे, गोला धड़कना।

धड़का—संज्ञा पुं० [अनु० धड़] १. दिल की धड़कन। २. दिल के धड़कने का शब्द। ३. खटका। अंदेशा। भय।

मुहा०—धड़का खुलना = साहस होना। भय जाता रहना।

४. गिरने पड़ने का शब्द। ५. पयाल का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँड़ी आदि जिसे चिड़ियों को डराकर भगाने के लिये खेतों में रखते हैं। धोखा।

धड़काना—क्रि० स० [हिं० धड़क] १. दिल में धड़क पैदा करना। जी धक धक कराना। २. जी दहलाना। डराना। खटका या आशंका उत्पन्न करना।

संयो० क्रि०—देना।

३. धड़ धड़ शब्द उत्पन्न कराना। कोई ऐसी वस्तु फेंकना, गिराना या छोड़ना जिससे भारी शब्द हो। जैसे, गोला धड़काना।

धड़क्का—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धड़का'।

यौ०—धूम धड़क्का = खूब भीड़ भाड़ और धूम धाम। गहरा समारोह और ठाटबाट।

धड़चना(पु)†—क्रि० स० [सं० धर्षण] १. मारना। उ०—जोरावरी बीस भुज जेहाँ, धड़चै सो तू हिज अवधेस।—रघु० रू०, पृ० २८३। फाड़ना। विदीर्ण करना। उ०—धड़च कनातौ धार सूँ, गोरहवास अभ्भार।—रा० रू०, पृ० २८३।

धड़चा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धड़का] भय। आशंका।

धड़च्छना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] १. दे० 'धड़कना'। उ०—सुत आणंद महेस, लगे पँडवेस धड़च्छे।—रा० रू०, पृ० २०६।

धड़टूटा—वि० [हिं० धड़+टूटना] १. जिसकी कमर झुकी हुई हो। २. कुबड़ा।

धड़धड़¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भारी वस्तु के एकबारगी गिरने, फेंके जाने, गमन करने या छूटने से उत्पन्न लगातार होनेवाला भीषण शब्द। २. धड़कन। उ०—वैसा उनके क्षुब्ध हृदय में धड़ धड़ धड़ था।—साकेत, पृ० ४०३।

धड़धड़²—क्रि० वि० १. धड़ धड़ शब्द के साथ। जैसे, धड़ धड़ गोले छूट रहे हैं। २. बेधड़क। बिना रुकावट के।

धड़धड़ाना—क्रि० अ० [अनु० धड़धड़] धड़ धड़ शब्द करना। भारी चीज के गिरने, पड़ने की सी आवाज करना। जैसे,—गोले धड़धड़ा रहे हैं।

मुहा०—धड़धड़ाता हुआ = (१) धड़ धड़ शब्द और वेग के साथ। गड़गड़ाहट और झोंक के साथ। जैसे,—गाड़ी धड़धड़ाती हुई निकल गई। (२) बिना रुकावट के और झोंक के साथ। बिना किसी प्रकार के खटके या संकोच के। बेधड़क। जैसे,—तुम धड़धड़ाते हुए भीतर चले जाना।

धड़ल्ला—संज्ञा पुं० [अनु० धड़] १. धड़ धड़ शब्द। धड़ाका। वेग के साथ गिरने, पड़ने, गमन करने आदि का शब्द।

मुहा०—धड़ल्ले से या धड़ल्ले के साथ = (१) बिना किसी रुकावट के। झोंक से। (२) बेधड़क। बिना किसी प्रकार के भय या संकोच के। जैसे, जो कुछ कहना हो धड़ल्ले के साथ कहो।

२. धूमधड़क्का। भीड़ भाड़ और धूमधाम। ३. कसमकस। कसामस। गहरी भीड़।

धड़वा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैना।

धड़वाई—संज्ञा पुं० [हिं० धड़ा] तौलनेवाला।

धड़हड़ना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] काँपना। लरजना। उ०—सुंदर धरती धड़हड़ै गगन लगै उडि धूरि।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३१।

धड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० धट] १. पत्थर लोहे आदि का बोझ जो बँधी हुई तौल का होता है और जिसे तराजू के एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर उसी के बराबर चीज रखकर तौलते हैं। बाट। बटखरा।

मुहा०—धड़ा करना = कोई वस्तु रखकर तौलने के पहले तराजू के दोनों पलड़ों को बराबर कर लेना।

विशेष—जब किसी वस्तु को बरतन के सहित तौलना रहता है तब पहले बरतन को पलड़े पर रखकर दोनों पलड़ों को बराबर कर लेते हैं। इसी को धड़ा करना कहते हैं।

धड़ा बाँधना = (१) दे० 'धड़ा करना'। (२) दोषारोपण करना। कलंक लगाना।

२. चार सेर की एक तौल।

विशेष—कहीं कहीं पाँच सेर का धड़ा माना जाता है।

३. तराजू। तुला।

मुहा०—धड़ा उठाना = तौलना। वजन करना।

धड़ा²—संज्ञा पुं० [हिं० धड़क्का] दल। जत्था। झुंड। समूह।

मुहा०—धड़ा बाँधना = दल बाँधना।

धड़ाक†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'धड़ाका'।

धड़ाका†—संज्ञा पुं० [अनु० धड़] 'धड़' 'धड़' शब्द। किसी भारी चीज के गिरने, छूटने, चलने आदि से उत्पन्न घोर शब्द। धमाके या गड़गड़ाहट का शब्द। जैसे, बंदूक का धड़ाका, दीवार गिरने का धड़ाका।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—धड़ाके से = झट से। जल्दी से। चटपट। बिना रुकावट के। जैसे,—धड़ाके से यह काम कर डालो।

धड़ाधड़—क्रि० वि० [अनु० धड़] १. लगातार 'धड़' 'धड़' शब्द के साथ। बार बार धड़ाके के साथ। जैसे,—ऊपर से धड़ाधड़ ईंटें गिर रही हैं। उ०—(क) धक्कों की धड़ाधड़ मतंग की मदाधड़ में, ह्वै रहे कड़ाकड़ सुदंतों की कड़ाकड़ी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०७। (ख) चली तोप धाँ धाँ धधों धाँह अग्गी। धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होने लग्गी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११। २. एक दूसरे के पीछे लगातार। बराबर जल्दी जल्दी। बिना रुके हुए। जैसे,—वह सब बातों का धड़ाधड़ जवाब देता गया।

धड़ाबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धड़ा + फ़ा० बंदी] १. धड़ा बाँधने का काम। २. लड़ाई के पहले दो पक्षों का अपनी अपनी सेना का बल एक दूसरे के बराबर करना।

धड़ाम—संज्ञा पुं० [अनु० धड] ऊपर से एकबारगी कूद या गिरकर जोर से जमीन पानी आदि पर पड़ने का शब्द। जैसे,—छत पर से वह धड़ाम से कूद पड़ा।

विशेष—खट, पट आदि अनु० शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग केवल 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है।

धड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका, घटी] १. चार या पाँच सेर की एक तौल। उ०—कहा बोझ सीरा में कहिये सौ ऊपर एक धड़ी।—संतबाणी० पृ० ७७।

मुहा०—धड़ी भरना = वजन करना। धड़ी धड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना। इस प्रकार लुटना कि पास में कुछ भी न रह जाय। धड़ी धड़ी करके लूटना = तिनका तिनका लूटना। खूब लूटना। कुछ भी न छोड़ना। धड़ियों = ढेर का ढेर। बहुत सा। बहुत अधिक।

२. पाँच सौ रुपए की रकम। ३. रेखा। लकीर। ४. वह लकीर जो मिस्सी लगाने या पान खाने से ओठों पर पड़ जाती है।

क्रि० प्र०—जमाना = ओठों पर मिस्सी की तह जमाना। —लगाना = दे० 'धड़ी जमाना'।

धडुकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धड़कना] गरजना। गड़गड़ाना। उ०—धुरि असाढ़ धडुकया मेह।—बी० रासो, पृ० ७०।

धण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धन्या] स्त्री। पत्नी। उ०—धणक बोल धस्यो मने माँहि।—बी० रासो, पृ० ३३।

धणी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धनी] स्वामी। मालिक। अधिपति। उ०—सोनीगरा का हूँ कहूँ बषाण, हाडा बुंदी का धणी।—बी० रासो, पृ० ३१८।

धत्—अव्य० [अनु०] १. दुतकारने का शब्द। तिरस्कार के साथ हटाने का शब्द। दूर हो। हट जा। २. हाथी को पीछे हटाने का शब्द।

धत—संज्ञा स्त्री० [सं० रत, हिं० लत] लत। बुरी बान। खराब आदत। टेव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

धतकारना—क्रि० स० [अनु० धत्] १. दुतकारना। दुरदुराना। तिरस्कार के साथ हटाना। २. धिक्कारना। लानत मलामत करना।

संयो० क्रि०—देना।

धता—वि० [अनु० धत्] चलता। हटा हुआ। जो दूर हो गया हो या किया गया हो। जो भागा या भगाया गया हो (बाजारू)।

मुहा०—धता करना = चलता करना। हटाना। भगाना। टालना। धता बताना = (१) चलता करना। हटाना। उ०—जब सौ डेढ़ सौ रुपए हो जाते, तो वह नौकरी को धता बता देते। किन्नर०, पृ० १००। (२) जो किसी बात के लिये पकड़ा हो उससे इधर उधर का बहाना करके अपना पीछा छुड़ाना। धोखा देकर टालना। टालटूल करना। धता होना = चलता होना। चल देना।

धतिंगड़—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धतींगड़'।

धतिया—वि० [हिं० धत] जिसे किसी बात की धत पड़ गई हो। बुरी लत वाला। लती।

धतींगड़—संज्ञा पुं० [देश०] १. बड़े डील का। बेडौल आदमी। मोटा ताजा आदमी। मुस्टंड। २. जारज। दोगला।

धतींगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धतींगड़'।

धतूर[1]—संज्ञा पुं० [सं० धत्तूर] दे० 'धतूरा'।

धतूर[2]—संज्ञा पुं० [अनु० धू + सं० तूर] नरसिंहा नाम का बाजा। तुरु। सिंहा। तुरही। उ०—दसएँ मास मोहन भए मेरे आँगन बाजें धतूर।—सूर (शब्द०)।

धतूरा—संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर अथवा सं० धत्तूरक] दो तीन हाथ ऊँचा एक पौधा जिसके पत्ते सात आठ अंगुल तक लंबे और पाँच छह अंगुल चौड़े तथा कोनदार होते हैं।

विशेष—इसमें घंटो के आकार के बड़े बड़े और सुहावने सफेद फूल लगते हैं। फल इसके भंडी के फलों के समान गोल और काँटेदार पर उनसे बड़े बड़े होते हैं। भंडी के फल के ऊपर जो काँटे निकले होते हैं वे घने लंबे और मुलायम होते हैं, पर धतूरे के फल के ऊपर काँटे कम, छोटे और कुछ अधिक कड़े होते हैं। कंटकहीन फलवाला धतूरा भी होता है। फलों के भीतर बीज भरे होते हैं जो बहुत विषैले होते हैं। जब ये बीज पुष्ट हो जाते हैं तब फल फट जाते हैं। धतूरे कई प्रकार के होते हैं पर मुख्य भेद दो माने जाते हैं। सफेद धतूरा और काला धतूरा। कहीं कहीं पीला धतूरा भी मिलता है। इसके फूल सुनहले रंग के होते हैं। काले धतूरे के डंठल, टहनियाँ और पत्तों की नसें गहरे बगनी रंग की होती हैं तथा फूलों के निचले भाग भी कुछ दूर तक रक्तकृष्णाभ होते हैं। साधारणत: लोगों का विश्वास है कि काला धतूरा अधिक विषैला होता है, पर यह भ्रम है। औषध में लोग काले धतूरे का व्यवहार अधिक करते है। वैद्य लोग धतूरे के बीज तथा पत्ते के रस का दमें में सेवन कराते और वात की पीड़ा में उसका बाहरी प्रयोग करते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन दोनों रोगों में धतूरे को बहुत उपकारी पाया है। सूखे पत्तों या बीजों के धूएँ से भी दमे का कष्ट दूर होता है। पहले डाक्टर

धनदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

धनधन(पु)—वि० [हिं० धन + धन] धन्य। धन्य धन्य। उ०—गुरु देव संग भाँवरि लेइहौं धन धन भाग हमार।—कबीर श०, पृ० ८०।

धनधन्नि(पु)—वि० [हिं० धनधन] धन्य धन्य। उ०—धनधन्नि नरिंद सुलोह नरं।—पृ० रा०, १२।१४१।

धनधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजाना [को०]।

धनधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धन और अन्न आदि। सामग्री और संपत्ति। जैसे, धन-धान्य-पूर्ण देश।

धनधाम—संज्ञा पुं० [सं०] घरबार और रुपया पैसा।

धनधारी—संज्ञा पुं० [सं० धन + धारी] १. कुबेर। उ०—राम निछावरि लेन को हठि होत भिखारी। बहुरियत तेहि देखिए मानहु धनधारी।—तुलसी (शब्द०)। २. बहुत बड़ा अमीर। परम धनवान्।

धननंद—संज्ञा पुं० [सं० धननन्द] सिंहल के महावंश नामक ग्रंथ के अनुसार मगध के नंदवंश का अंतिम राजा जिसका चाणक्य द्वारा नाश हुआ। दे० 'नंदवंश'।

धननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर।

धनपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर। २. पुराण के अनुसार वायु का नाम।

विशेष—वराहपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि की तब उनके मुख से वायु देवता निकले। ब्रह्मा ने उनसे मूर्तिमान होकर शांत भाव धारण करने के लिये कहा और वर दिया कि 'देवताओं का जितना धन है सबके रक्षक तुम हो। जो एकादशी के दिन आग में पका अन्न न खायगा उसके प्रति प्रसन्न होकर तुम धनधान्य दोगे'।

धनपत्ति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धनपति] दे० 'धनपति'। उ०—जीव जीव धनपत्ति सुहाइय।—प० रासो, पृ० १४।

धनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बही खाता।

धनपातर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धनपात्र] दे० 'धनपात्र'। उ०—पूछेसि इहाँ साहु कोउ अहई। धनपातर जा कहँ जग कहई।—चित्रा०, पृ० २३४।

धनपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धनवान। धनी।

धनपाल[१]—वि० [सं०] १. धन का रक्षक। २. खजांची (को०)।

धनपाल[२]—संज्ञा पुं० कुबेर।

धनपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थपिशाच'।

धनपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविवेकपूर्वक धनसंग्रह करने की वृत्ति। धनलोलुपता। (को०)।

धनपिशाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनलोलुपता [को०]।

धनप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] धन को किसी व्यापार में लगाने या ब्याज पर उधार देने का कार्य। रुपया लगाने का काम।

विशेष—मुहूर्तचिंतामणि, ज्योतिप्रकाश आदि फलित ज्योतिष के ग्रंथों में इस बात का विचार किया गया है कि किन किन नक्षत्रों या दिनों में धनप्रयोग करना चाहिए, किन किन में नहीं।

धनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा जामुन।

धनमद—संज्ञा पुं० [सं०] धन का घमंड।

धनमान(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धनवान'। उ०—संमति हम लोग अपने विख्यात कुलीन धनमानों को देंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७६।

धनमाली—संज्ञा पुं० [सं० धनमालिन्] एक असुर का संहार।

धनमूल—संज्ञा सं० [सं०] पूँजी। मूलधन [को०]।

धनराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धन + राज] धनी। धनवान। उ०—थाभि गध्थिरा दामा दयाल। धनराज कीओ भोमी भुपाल।—पृ० रा०, ६६।१५३।

धनवंत—वि० [हिं०] दे० 'धनवान'। उ०—(क) आशा तृष्णा जेहि घर व्यापे धनवंता सो सो चाह मिलापे।—कबीर सा०, पृ० ४८५। (ख) तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलिकौतुक तात न जात कही।—मानस, ७।

धनवती[१]—वि० स्त्री० [सं०] धन रखनेवाली।

धनवती[२]—संज्ञा स्त्री० धनिष्ठा नक्षत्र।

धनवा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० धान] एक प्रकार की घास।

धनवा[२](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धन्वा'। उ०—भए कर अगले अंग जाके। खैंचत बार बार धनवा के।—शकुंतला, पृ० ३१।

धनवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धनवती] जिसके पास धन हो। धनी। दौलतमंद।

धनवारा(पु)—वि० [हिं० धन + वाला (प्रत्य०)] धनी। उ०—सोऊ नहीं मनभावन नायक, आवन जो बहुते धनवारो।—मति० ग्रं०, पृ० २९०।

धनशाली—वि० [सं० धनशालिन्][वि०स्त्री० धनशालिनी] धनवान्। धनिक।

धनसार—संज्ञा पुं० [हिं० धान + सार (शाला)] अनाज भरने की कोठरी या घेरा जिसमें केवल दो खिड़कियाँ अनाज रखने और निकालने के लिये होती हैं।

धनसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + श्री] एक चिड़िया।

धनसुंघा—संज्ञा पुं० [हिं० धन + सुँघना] धन सुँघनेवाले। सुँघकर धन की जानकारी करनेवाले। उ०—कुछ लोग धनसुंघा होते हैं, और बिना देखे ही जान जाते हैं कि किस चीज में रुपया छिपाया गया है।—जिप्सी, पृ० ३३।

धनसू—संज्ञा पुं० [सं०] धनेस नाम की चिड़िया।

धनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजाना। २. कुंडली में लग्न से दूसरा स्थान जिसमें पड़े ग्रहों की स्थिति के आधार पर किसी का धनी या निर्धन होना जाना जाता है [को०]।

धनस्यक[१]—वि० [सं०] धन की लालसा रखनेवाला।

धनस्यक[२]—संज्ञा पुं० गोक्षुरक। गोखरू।

धनस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० धनस्वामिन्] कुबेर।

धनहटा—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + हिं० हाट] धान्यहाट। अनाज की मंडी। उ०—मधुर पोरैचन पथ सम्हार सम्हीत, धनहटा,

हट्टा, पनहट्टा, पक्कानहट्टा, मछहट्टा करेओ सुख रवकथा कहते।—कीर्ति॰, पृ॰ २८।

धनहर¹—वि॰ [सं॰] धन हरनेवाला।

धनहर²—संज्ञा पुं॰ १. चोर। लुटेरा। २. चोर नामक गंधद्रव्य। ३. उत्तराधिकारी। वारिस (को॰)।

धनहार्य—वि॰ [सं॰] जिसे धन देकर वशीभूत किया जाय (को॰)।

धनहीन—वि॰ [सं॰] निर्धन। दरिद्र। कंगाल।

धना¹—संज्ञा स्त्री॰ [?] एक रागिनी।

धना(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धनिका, हिं॰ धनिया (=युवती)] युवती। वधू (गीत या कविता)।

धनाढ्य—वि॰ [सं॰] धनवान्। मालदार।

धनाधिकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धन या संपत्ति का अधिकार (को॰)।

धनाधिप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुबेर।

धनाधीश—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धन+अधीश] धनपति। धनिक। उ॰—जो सैकड़ों धनाधीशों की कामना है।—ज्ञान॰, पृ॰ ५०।

धनाध्यक्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. खजानची। २ कुबेर।

धनाना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ धेनु (=नवसूतिका गाय)] १. गाय का गर्भवती होना। बच्चे से होना। २. गाय का बरदाना। गाय का साँड़ से संयोग करना।

धनानी(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धन] धनी। धनिक। उ॰—किन्नर अरु विद्याधरा यक्षादि धनानी।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २०६।

धनापहार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अर्थदंड। २. लूट। (को॰)।

नार्चित—वि॰ [सं॰] मूल्यवान उपहारों को देकर संतुष्ट किया हुआ (को॰)।

नावह—वि॰ [सं॰ धन+वाह] धनी। धनपति। उ॰—मेरा पति धनावह श्रेष्ठि सहस्रभार स्वर्ण का अधिपति था।—वैशाली॰, पृ॰ १७१।

नाशा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धनप्राप्ति की आशा (को॰)।

नाश्री—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक रागिनी जो हनुमान् के मत से श्री राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है।

विशेष—इसकी जाति षाड़व, ऋषभ वर्जित गृहांशन्यास षड्ज है। गाने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर है। इसका प्रयोग वीर रस में विशेष होता है। इसका सरगम इस प्रकार है—
स। ग। म। प। ध। नि। स।

भरत के मत से यह गांधार राग की भार्या और कल्लिनाथ के मत से मेघराग की चतुर्थ भार्या है।

नि(पु)**¹**—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धनी] युवती। वधू। उ॰—धनि वै धनि साजन की रतियाँ पिय की छतियाँ लगि सोवति हैं।—(शब्द॰)।

नि²—वि॰ [सं॰ धन्य] दे॰ 'धन्य'। उ॰—धनि धनि भारत की छत्रानी।—हरिश्चंद्र (शब्द॰)।

नि(पु)**³**—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धनी'। उ॰—धी ने धनि का हुकुम किया। धी ने बोध का प्याला पिया।—दक्खिनी॰, पृ॰ १२२।

धनिक¹—वि॰ [सं॰] १. धनी। जिसके पास धन हो। २. गुणयुक्त (को॰)।

धनिक²—संज्ञा पुं॰ १. धनी मनुष्य। २. पति। स्वामी। ३. रुपया उधार देनेवाला मनुष्य। महाजन। उत्तमर्ण। ४. धनिया। ५. ईमानदार बनिया। व्यापारी (को॰)। ६. प्रियंगु का पेड़ (को॰)।

धनिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. धनी स्त्री। २. अच्छी स्त्री। वधू। युवती। ३. प्रियंगु वृक्ष।

धनिता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धनीपना। धनाढ्यता।

धनिप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धनी। स्वामी। उ॰—पट्टाम सहस पर जित्ति चलिय दिल्लिय धनिप।—प॰ रासो, पृ॰ ३८।

धनिया¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धन्याक, धनिका अथवा धनीयक] एक छोटा पौधा जिसके सुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं।

विशेष—यह पौधा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है। प्राचीन काल में धनिया प्रायः भारतवर्ष ही से मिस्र आदि पश्चिम के देशों में जाता था पर अब उत्तरी अफ्रिका तथा रूस, हंगरी आदि योरप के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है। धनिए का पौधा हाथ भर से बड़ा नहीं होता था। इसकी टहनियाँ बहुत नरम और लता की तरह लचीली होती हैं। पत्तियाँ बहुत छोटी और कुछ बोलाई लिए होती हैं पर उनमें टेढ़े मेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं। इन पत्तियों की सुगंध बड़ी मनोहर होती है जिससे वे चटनी में हरी पीसकर डाली जाती हैं। टहनियों के छोर पर इधर उधर कई सीकें निकलती हैं जिनके सिरों पर छत्ते की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे लंबोतरे फल लगते हैं जो सुखाकर काम में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न ऋतुओं में होती है। जैसे, बंगाल और उत्तरप्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मदरास में शिशिर ऋतु में। मसाले के अतिरिक्त योरप में धनिए का तेल भी भभके से अर्क निकालकर निकाला जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धनिया शीतल, स्निग्ध, दीपन, पाचन, वीर्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तज्वर, खाँसी, प्यास और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है। डाक्टर लोग भी पेट की वायु दूर करने और शरीर में फुरती लाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

पर्या॰—धन्याक। धनिक। धानक। धनिका। छत्राधान्य। कुस्तुंबुरु। वितुन्नक। सुगंधि। सूक्ष्मपत्र। जनप्रिय। वेधक। वधिधान्य।

मुहा॰—धनिए की खोपड़ी में पानी पिलाना = प्यासों मारना। बहुत कठिन दंड देना। बहुत तंग करना। (स्त्रि॰)।

धनिया(पु)**²**—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धनिका (=युवती)] युवती। वधू। स्त्री। उ॰—सहसानन गुन गनैं गनत न बनियाँ। सूर स्याम सब भूलीं गोप धनियाँ।—सूर (शब्द॰)।

धनियामाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनी + माला] गले में पहनने का एक गहना।

धनिष्ठ—वि० [सं०] धनी। धनाढ्य।

धनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताईस नक्षत्रों में से तेईसवाँ नक्षत्र जो ६ ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पाँच तारे संयुक्त हैं। इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी आकृति मृदंग की सी है। फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाय, कामातुर, कफयुक्त, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कीर्तिमान् होता है।

पर्या०—श्रविष्ठा। वसुदेवता। भूति। निधान। धनवती।

विशेष—दे० 'नक्षत्र'।

धनी[1]—वि० [सं० धनिन्] १. धनवान्। जिसके पास धन हो। मालदार। रुपए पैसेवाला। दौलतमंद।

यौ०—धनी धोरी = मर्यादावाला। धाकवाला। धनी मानी = धनी और प्रतिष्ठित।

मुहा०—बात का धनी = बात का सच्चा। दृढ़प्रतिज्ञ।

२. जिसके पास कोई गुण आदि हो। दक्षतासंपन्न। जैसे, तलवार का धनी।

धनी[2]—संज्ञा पुं० १. धनवान पुरुष। मालदार आदमी। २. रखनेवाला आदमी। वह जिसके अधिकार में कोई हो। अधिपति। मालिक। स्वामी। जैसे, कोशलधनी। उ०—सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।—तुलसी (शब्द०)। ३. पति। शौहर।

धनी[3]—संज्ञा स्त्री [सं०] युवती स्त्री। वधू। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्याम तमाले उठँगि बैठी धनी।—हरिदास (शब्द०)।

धनीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती। तरुणी (को०)।

धनीमानी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धन + मान + ई (प्रत्य०)] धनी। धनवान्। उ० सभी धनीमानी एवं गुणी व्यक्तियों में साहित्यिक अभिरुचि जाग्रत थी।—अकबरी०, पृ० ११।

धनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष।

धनुःशाखा—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष।

धनुःश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्वा। मुर्रा। २. महेंद्रवारुणी।

धनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुस्। चाप। कमान।

विशेष—दे० 'धनुस्'।

२. ज्योतिष की बारह राशियों में से नवीं राशि जिसके अंतर्गत मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ा का एक चरण आता है। इसे तौक्षिक भी कहते हैं।

विशेष—दे० 'राशि'।

३. फलित ज्योतिष में एक लग्नविशेष जिसका परिमाण ५। १७। २० है।

विशेष—प्रत्येक दिन रात में बारह लग्न माने जाते हैं। पूस के महीने में सूर्योदय धनु लग्न में होता है।

४. हठयोग के एक आसन का नाम। ५. पियाल वृक्ष। ६. चार हाथ की एक माप। ७. गोल क्षेत्र के आधे से कम अंश का क्षेत्र। ८. रेतीला तट (को०)। ९. तीरंदाज (को०)।

धनुआ—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्, धन्वा] १. धनुष। कमान। २. तांत की डोरी की लंबी कमान जिससे धुनिए रुई धुनते हैं।

धनुई†—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु + ई (प्रत्य०)] छोटा धनुष।

धनुक—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्] दे० 'धनुष'। उ०—भौंहैं धनुक धनुक पै हारा। नैनन्हि साध बान बिष मारा।—जायसी (शब्द०)।

धनुकना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'धुनकना'।

धनुकबाई—संज्ञा पुं० [हिं० धनुक + बाई] लकवे की तरह का एक वायुरोग जिसमें जबड़े बैठ जाते हैं, और मुँह नहीं खुलता।

धनुजाग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धनु + यज्ञ] धनुर्यज्ञ। उ०—हिय मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनुजाग की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५।

धनुधर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धनुर्धर'-१। उ०—जनु धनुधर मपनि लखन मारत धार सो धाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

धनुराकार—वि० [सं०] धनुष की आकृति का। वक्र। टेढ़ा (को०)।

धनुरासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसन (को०)।

धनुर्—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् का समासगत रूप।

धनुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी। पतंचिका। चिल्ला।

धनुर्गुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। मरोर फली। चुरनहार।

धनुर्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुर्धर। २. धनुर्विद्या। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. एक परिमाण जो २७ अंगुल के बराबर थी (को०)।

धनुर्ग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर (को०)।

धनुर्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा (को०)।

धनुर्द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

धनुर्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मरुस्थल से सुरक्षित स्थान (को०)।

धनुर्धर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष धारण करनेवाला पुरुष। कमनैत। तीरंदाज। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ३. विष्णु (को०)। ४. धनु राशि (को०)।

धनुर्धारी[1]—वि० [सं० धनुर्धारिन्] [स्त्री० धनुर्धारिणी] धनुष धारण करनेवाला।

धनुर्धारी[2]—संज्ञा पुं० धनुर्धर। कमनैत। वीर योद्धा।

धनुर्भृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष धारण करनेवाला योद्धा। वीर। २. विष्णु (को०)। ३. धनु राशि (को०)।

धनुर्मख—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्यज्ञ।

धनुर्मार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की तरह टेढ़ी रेखा (को०)।

धनुर्माला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। चुरनहार। मरोरफली। मुर्रा।

धनुर्मास—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवधि जब सूर्य धनु राशि में स्थित होता है (को०)।

धनुर्मुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ अंगुल का एक परिमाण [को०] ।

धनुर्यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी उत्सव । एक यज्ञ जिसमें धनुस् का पूजन तथा उसके चलाने आदि की परीक्षा भी होती थी ।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के विवाहार्थ वर चुनने के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था । कंस ने भी छलपूर्वक कृष्ण को बुलाने के लिये इस प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।

धनुर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा ।

धनुर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोमलता । २. धनुष (को०) ।

धनुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम ।

धनुर्वात—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुकबाई । २. एक वायुरोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुककर टेढ़ा हो जाता है ।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुस् चलाने की विद्या । तीरंदाजी का हुनर ।

विशेष—दे० 'धनुर्वेद' ।

धनुर्वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. धामिन का पेड़ । २. बाँस । ३. भिलावाँ । ४. पीपल का पेड़ ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुष चलाने की विद्या का निरूपण हो ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सब सभ्य देशों में इस विद्या का प्रचार था । भारत के अतिरिक्त फारस, मिस्र, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और चित्रों आदि के देखने से उन सब देशों में इस विद्या के प्रचार का पता लगता है । भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े बड़े ग्रंथ थे जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा है । आजकल इस विद्या का वर्णन कुछ ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिलता है । जैसे, शुक्रनीति, कामंदकीनीति, अग्निपुराण, वीरचिंतामणि, वृद्धशार्ङ्गधर, युद्धजयार्णव, युक्तिकल्पतरु, नीतिमयूख, इत्यादि । धनुर्वेदसंहिता नामक एक अलग पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता में संदेह है ।

अग्निपुराण में ब्रह्मा और महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्ता कहे गए हैं । पर मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था, यजुर्वेद का उपवेद वही है । उन्होंने अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त ब्योरा भी दिया है । उसमें चार पाद हैं—दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद । प्रथम दीक्षापाद में धनुर्लक्षण (धनुस् के अंतर्गत सब हथियार लिए गए हैं) और अधिकारियों का निरूपण है । आयुध चार प्रकार के कहे गए हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यंत्रमुक्त । मुक्त आयुध, जैसे चक्र । अमुक्त आयुध, जैसे, खड्ग । मुक्तामुक्त, जैसे, भाला, बरछा । मुक्त को अस्त्र और अमुक्त को शस्त्र कहते हैं । अधिकारी का लक्षण कहकर फिर दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदि का वर्णन है । संग्रहपाद में आचार्य का लक्षण तथा अस्त्रशस्त्रादि के संग्रह का वर्णन है । तृतीयपाद में संप्रदाय सिद्ध विशेष विशेष शस्त्रों के अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं । प्रयोग नामक चतुर्थ पाद में देवार्चन, सिद्धि, अस्त्रशस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण है ।

वैशंपायन के अनुसार शार्ङ्ग धनुस् में तीन जगह झुकाव होता है पर वैणव अर्थात् बाँस के धनुस् का झुकाव बराबर क्रम से होता है । शार्ङ्ग धनुस् ६॥ हाथ का होता है और अश्वारोहियों तथा गजारोहियों के काम का होता है । रथी और पैदल के लिये बाँस का ही धनुस् ठीक है । अग्निपुराण के अनुसार चार हाथ का धनुस् उत्तम, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम माना गया है । जिस धनुष के बाँस में नौ गाँठें हों उसे 'कोदंड' कहना चाहिए । प्राचीन काल में दो डोरियों की गुलेल भी होती थी जिसे उपलक्षेपक कहते थे । डोरी पाट की और कनिष्ठा उँगली के बराबर मोटी होनी चाहिए । बाँस छीलकर भी डोरी बनाई जाती है । हिरन या भैंसे की ताँत की डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है ।—(वृद्धशार्ङ्गधर) ।

बाण दो हाथ से अधिक लंबा और छोटी उँगली से अधिक मोटा न होना चाहिए । शर तीन प्रकार के कहे गए हैं—जिसका अगला भाग मोटा हो वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुषजातीय और जो सर्वत्र बराबर हो वह नपुंसक जातीय कहलाता है । स्त्रीजातीय शर बहुत दूर तक जाता है । पुरुषजातीय भिदता खूब है और नपुंसक जातीय निशाना साधने के लिये अच्छा होता है । बाण के फल अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे, आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचंद्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदंत, द्विभल्ल, कर्णिक, काकतुंड, इत्यादि । तीर में गति सीधी रखने के लिये पीछे पंखों का लगाना भी आवश्यक बताया गया है । जो बाण सारा लोहे का होता है उसे नाराच कहते हैं ।

उक्त ग्रंथ में लक्ष्यभेद, शराकर्षण आदि के संबंध में बहुत से नियम बनाए गए हैं । रामायण, महाभारत, आदि में शब्दभेदी बाण मारने तक का उल्लेख है । अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के संबंध में भी प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण मारते थे ।

धनुर्वेदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० धनुर्वेदिन्] शिव । महादेव [को०] ।

धनुर्वेदी[2]—वि० धनुर्वेद जाननेवाला [को०] ।

धनुवाँⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धनुआ' । उ०—सुरति मोह नरियर को फोड़ो । अगम पान चढ़ि धनवाँ तोड़ो ।—घट०, पृ० २४५ ।

धनुष—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्] दे० 'धनुस्' ।

धनुषधरनⓅ—वि० [सं० धनुष्+हिं० धरना] धनुष धारण करनेवाला । धनुर्धर । उ०—मोहि अवधेश मोहीं ब्रज जीवन, धनुषधरन अरु माखनचोर ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२३ ।

धनुषमख—संज्ञा पुं० [सं०] धनुषयज्ञ। उ०—रामहिं चले लिवाइ धनुषमख मिसु करि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८।

धनुषाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष का आकार या आकृति। उ०—मेटत मेटत ह्वै धनुषाकृति मेचकताई की रेख गई रहि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १०१।

धनुषाकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का। धनुष जैसा झुका हुआ [को०]।

धनुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुर्धर। २. धनुषनिर्माता [को०]।

धनुष्कांड—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्काण्ड] धनुष और बाण [को०]।

धनुष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष बनानेवाला [को०]।

धनुष्कोटि—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष का छोर। २. एक तीर्थ जो बदरिकाश्रम के मार्ग में स्थित है (को०)। ३. रामेश्वर के दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित एक तीर्थ (को०)।

धनुष्कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर से दक्षिणपूर्व एक स्थान जहाँ समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य है।

धनुष्पाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में धनुष हो [को०]।

धनुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्मत्] १. उत्तर दिशा का एक पर्वत। (बृहत्संहिता)। २. धनुर्धर (को०)।

धनुस—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलदार तीर फेंकने का वह अस्त्र जो बाँस या लोहे के लचीले डंडे को झुका कर और उसके दोनों छोरों के बीच डोरी या ताँत बाँधकर बनाया जाता है। कमान।

यौ०—धनुर्धर। धनुर्विद्या। धनुर्वेद।

विशेष—दे० 'धनुर्वेद'।

२. ज्योतिष में एक राशि। धनु राशि। ३. एक लग्न। ४. हठयोग का एक आसन। ५. पियाल वृक्ष। ६. चार हाथ की एक माप। ७. गोल क्षेत्र के आधे से कम अंश का क्षेत्र।

धनुस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्तम्भ] वातजन्य एक रोग जिसमें शरीर धनुष के समान टेढ़ा हो जाता है। उ०—जो वायु धनुष के समान शरीर को बाँका कर दे उसको धनुस्तंभ कहते हैं।—माधव, पृ० १३८।

धनुहा†—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्] [स्त्री० धनुही] धनुष।

धनुहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु + हाई] धनुस् की लड़ाई। उ०—परम कृपाल जे नृपाल लोक, पालनि पै धनुहाई ह्वै है मन अनुमान कै।—तुलसी (शब्द०)।

धनुहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धनुहीं'।

धनुही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धनु+ही (प्रत्य०)] लड़कों के खेलने की कमान। उ०—बहु धनुही तोरेउँ लरिकाई।—तुलसी (शब्द०)।

धनू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष। २. अन्न का भंडार [को०]।

धनूर्कⓊ—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्] दे० 'धनुक'। उ०—धनूर्क पिनाकं धरे वाम हस्ते।—पृ० रा०, १।३१०।

धनेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन का स्वामी। २. कुबेर। ३. लग्न से दूसरा स्थान। ४. विष्णु।

धनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन का स्वामी। २. कुबेर। ३. विष्णु।

धनेस¹—संज्ञा पुं० [सं० धनस् ?] बगले के आकार की एक चिड़िया जिसकी गरदन और चोंच लंबी होती है।

विशेष—यह बैर, बरगद आदि के पेड़ों पर रहती है। लोग खाने के लिये इसका शिकार करते हैं। इसे पकाकर एक प्रकार का तेल भी निकालते हैं जो वात के दर्द में लगाया जाता है।

धनेसⓊ**²**—संज्ञा पुं० [सं० धनेश] कुबेर। उ०—कहै पदमाकर प्रमानमाला पुन्यन की गंगाजू की धार धनमाला है धनेस को।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६१।

धनैयाⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु+इया (प्रत्य०)] छोटा धनुष। उ०—नंददास प्रभु जानि तोर्‌यो है पिनाक तानि बाँस की धनैया जैसे बालक तनक की।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

धनैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन की इच्छा [को०]।

धनैषी—वि० [सं० धनैषिन्] धन का इच्छुक। धन चाहनेवाला।

धनोष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० धनोष्मन्] धन की गरमी [को०]।

धन्नⓊ—वि० [सं० धन्य] धन्य। उ०—सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७३।

धन्नधानⓊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धनधान्य'। उ०—कप्पूर चीर सायर सुचीर। सह धन्नधान जौहर सुहीर।—पृ० रा०, ४।१६

धन्ना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरना'।

धन्नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसका ग्रह षड्ज है और जो ऋषभवर्जित है। यह वीर और शृंगार रस के लिये गाई जाती है।

धन्नासेठ—संज्ञा पुं० [हिं० धन + सेठ] बहुत धनी आदमी। प्रसिद्ध धनाढ्य। भारी मालदार।

मुहा०—धन्नासेठ का नाती = बहुत धनाढ्य कुल का (व्यंग्य)।

धन्निⓊ**†**—वि० [सं० धन्य] धन्य। उ०—धन्नि पुरुष अस नवै न नाए। औ सुपुरुष होइ देस पराए।—जायसी (शब्द०)।

धन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० (गो) धन] १. गायों बैलों की एक जाति जो पंजाब में नमकवाले पहाड़ों के आसपास पाई जाती है। २. घोड़े की एक जाति। उ०—धन्नी, धीमाथली, काठिया, मारवाड़, मधिदेशी।—रघुराज (शब्द०)। ३. बेगार का आदमी।

धन्यंमन्य—वि० [सं०] अपने आपको भाग्यशाली या धन्य माननेवाला [को०]।

धन्य¹—वि० [सं०] १. पुण्यवान्। सुकृती। श्लाघ्य। प्रशंसा के योग्य। बड़ाई के योग्य। कृतार्थ। भाग्यशाली।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधुवाद देने के लिये प्रायः होता है। जैसे, किसी को कोई अच्छा काम करते देख या सुनकर लोग बोल उठते हैं—धन्य! धन्य!! २. धन देनेवाला। जिससे धन प्राप्त हो।

धन्य²—संज्ञा पुं० १. अश्वकर्ण वृक्ष। २. धनिया। ३. विष्णु। ४. नास्तिक। ५. भाग्यशाली व्यक्ति (को०)।

धन्य³—अव्य० साधुवाद या धन्यवाद का व्यंजक [को०]।

धन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्य होने की स्थिति [को०]।

धन्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधुवाद। शाबाशी। प्रशंसा। वाह वाह। २. किसी उपकार या अनुग्रह के बदले में प्रशंसा। कृतज्ञतासूचक शब्द। शुक्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

धन्यधाम—संज्ञा पुं० [सं० धन्य+धाम] भाग्यशाली घर। अच्छा घर। उ०—देखा 'सरोज' को धन्यधाम।—अनामिका, पृ० १२८।

धन्या¹—वि० स्त्री०[सं०]प्रशंसायोग्य। पुण्यशील। भाग्यशालिनी।

धन्या²—संज्ञा स्त्री० १. उपमाता। २. वनदेवी। ३. मनु की एक कन्या जिसका विवाह ध्रुव के साथ हुआ था। ४. आमलकी। छोटा आँवला। ५. धनियाँ।

धन्याक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धन्वंग—संज्ञा पुं० [सं० धन्वङ्ग] धामिन का पेड़।

धन्वंतर—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्तर] चार हाथ की एक माप।

धन्वंतरि—संज्ञा पुं०[सं० धन्वन्तरि] १. देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमंथन के समय और सब वस्तुओं के साथ समुद्र से निकले थे।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि जब ये समुद्र से निकले तब तेज से दिशाएँ जगमगा उठीं। ये सामने विष्णु को देखकर ठिठक रहे, इसपर विष्णु भगवान् ने इन्हें अब्ज कहकर पुकारा। भगवान् के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि यज्ञ में मेरा भाग और स्थान नियत कर दिया जाय। विष्णु ने कहा भाग और स्थान तो बँट गए हैं पर तुम दूसरे जन्म में विशेष सिद्धिलाभ करोगे, अणिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भ से ही प्राप्त रहेंगी और तुम सशरीर देवत्वलाभ करोगे। तुम आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करोगे। द्वापर युग में काशिराज 'धन्व' ने पुत्र के लिये तपस्या और अब्जदेव की आराधना की। अब्जदेव ने धन्व के घर स्वयं अवतार लिया और भरद्वाज ऋषि से आयुर्वेद शास्त्र अध्ययन करके प्रजा को रोगमुक्त किया।

भावप्रकाश में लिखा है कि इंद्र ने आयुर्वेद शास्त्र सिखाकर धन्वंतरि को लोक के कल्याण के लिये पृथ्वी पर भेजा। धन्वंतरि काशी में उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के वर से काशी के राजा हुए। महाराज विक्रमादित्य की सभा के जो नवरत्न गिनाए गए हैं उनमें भी एक धन्वंतरि का नाम है। पर जब नवरत्नवाली बात ही कल्पित है तब इन धन्वंतरि का पता लगना कठिन ही है।

२. विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक (को०)। ३. सूर्य (को०)।

धन्वंतरिग्रस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० धन्वन्तरिग्रस्ता] कुटकी।

धन्व¹—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्] १. मरुभूमि। मरुस्थल। २. तट। तीर। ३. आकाश। ४. धनुष [को०]।

धन्व²—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुस्। २. मरुस्थल। रेगिस्तान (को०)।

धन्वचर—वि० [सं०] १. मरुस्थल में चलने या रहनेवाला [को०]।

धन्वज—वि० [सं०] मरुदेश में उत्पन्न।

धन्वदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे दुर्ग या गढ़ जिनके चारों ओर पाँच पाँच योजन तक निर्जल और मरुभूमि हो।

धन्वधि—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की खोली [को०]।

धन्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धामिन का पेड़। २. धनुष (को०)। ३. इंद्रधनुष (को०)। ४. धनु राशि (को०)।

धन्वयवास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा। जवासा।

धन्वयवासक—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा। जवासा [को०]।

धन्वयास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा। जवासा [को०]।

धन्वा—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्] १. धनुस्। कमान। उ०—प्रभु धन्वा न चढ़ा सके यदि ?—साकेत, पृ० ३५५। २. जलहीन देश। मरुभूमि। रेगिस्तान। ३. स्थल। सूखी जमीन। ४. आकाश। अंतरिक्ष।

धन्वाकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का। कमान की सूरत का। गोलाई के साथ झुका हुआ। टेढ़ा।

धन्वायी¹—वि० [सं० धन्वायिन्] धनुर्धर।

धन्वायी²—संज्ञा पुं० रुद्र।

धन्विन—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

धन्वी¹—वि० [सं० धन्विन्] १. धनुर्धर। कमनैत। उ०—फूल सरन को मुगधनि बस कै जाहिरे भो जग मनमथ धन्वी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१४। २. निपुण। चतुर। चालाक।

धन्वी²—संज्ञा पुं० १. दुरालभा। जवासा। २. अर्जुन वृक्ष। ३. बकुल। मौलसिरी। ४. अर्जुन पांडव। ५. विष्णु। ६. शिव। ७. तामस मनु के एक पुत्र। ८. धनु राशि (को०)।

यौ०—धन्वीस्थान=धनुर्धर की एक मुद्रा या स्थिति। धन्वियों की मुद्राएँ वैष्णव, समपाद, वैशाख, मंडल, लीढ और प्रत्यालीढ कही गई हैं—वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा। प्रत्यालीढं तथा लीढं स्थान्येतानि धन्विनाम्।

धप¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द।

धप²—संज्ञा पुं० धौल। धप्पड़। तमाचा।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

धपना—क्रि० अ० [सं० धावन या हिं० धाप] १. जोर से चलना। दौड़ना। २. झपटना। लपकना। उ०—सीला नाम स्वामिनी तेहि गहे कृष्ण धपि धाइ हो।—सूर (शब्द०)।

धपाड़†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धपना] धपने की क्रिया या स्थिति।

धपाना†—क्रि० स० [हिं० धपना] १. दौड़ाना। २. इधर उधर फिराना। घुमाना। सैर कराना। टहलाना।

धप्पा—संज्ञा पुं० [अनु० धप] १. थप्पड़। धौल। तमाचा। २. हानि का आघात। घाटा। टोटा। नुकसान।

क्रि० प्र०—बैठना।—लगना।

मुहा०— धप्पा मारना = नुकसान करा देना। धोखा देकर कुछ माल ले लेना। उड़ा लेना।

धप्पाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० धप] दौड़।

धब धब—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द। २. भद्दे, मोटे आदमी के पैर रखने का शब्द।

धबला—संज्ञा पुं० [देश०] १. कटि के नीचे का अंग ढाँकने के लिये कोई ढीलाढाला पहनावा। ढीला पायजामा। २. स्त्रियों का लहँगा। घाघरा।

धबीला—वि० [हिं० धब्बा + ईला (प्रत्य०)] धब्बेदार। धब्बेवाला।

धब्बा—संज्ञा पुं० [देश०] १. किसी सतह के ऊपर थोड़ी दूर तक फैला हुआ ऐसा स्थान जो सतह के रंग के मेल में न हो और भद्दा लगता हो। दाग पड़ा हुआ चिह्न जो देखने में बुरा लगे। निशान। जैसे, कपड़े पर स्याही का धब्बा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

२. कलंक। दोष। ऐब।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—नाम में धब्बा लगाना = कीर्ति को मिटानेवाला काम करना। (किसी पर) धब्बा रखना = कलंक लगाना। दोषारोपण करना।

धमंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धमक] त्रस्त होना। दहलना। उ०—तहाँ तेज सो हैं तबल्लो तमंके। गजे बीर बानैत धू लौं धमंके।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २४८।

धम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कृष्ण। ३. यमराज। ४. ब्रह्मा [को०]।

धम²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भारी चीज के गिरने का शब्द। धमाका। जैसे, धम से गिरना, धम से कुएँ में कूदना।

विशेष—खट, पट, आदि और अनु० शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् होता है।

धम(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धर्म'।

धमक¹—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम] १. भारी वस्तु के गिरने का शब्द। भार डालते हुए जमीन पर पड़ने की ध्वनि। आघात का शब्द। २. पैर रखने की आवाज। पैर की आहट। ३. वह कंप जो किसी भारी वस्तु की गति के कारण इधर उधर मालूम हो। आघात आदि से उत्पन्न कंप या विचलता। जैसे,—(क) पत्थर इतने जोर से गिरा कि धमक से मेज हिल गई। (ख) रेल के पास आने पर जमीन में धमक सी मालूम होती है। ४. आघात। चोट। ५. वह आघात जो किसी भारी शब्द से हृदय पर मालूम हो। दहल। ६. नड्डा (पालकीवाले)।

धमक²—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धमिका] १. धौंकनेवाला। २. लोहार। कर्मकार।

धमकना—क्रि० अ० [हिं० धमक] १. धम शब्द के साथ गिरना। धमाका करना।

मुहा०—आ धमकना = आ पहुँचना। तुरंत आ जाना। देखते देखते उपस्थित होना। जा धमकना = जा पहुँचना। धमक पड़ना = दे० 'आ धमकना'।

२. आघात सा होता हुआ जान पड़ना। रह रहकर दर्द करना। व्यथित होना। (सिर के लिये)। जैसे, सिर धमकना। ३. धूम धाम करना। उ०—रमकि झमकि चमकत चपला सी धमकत मिलि इकठोरी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६५। ४. बजना। उ०—धमकत ढोल, बजत डफ, झाँझ अनेक एक संग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४। ५. वेग दिखलाना। उ०—(क) प्रथम पैठि पाताल सूँ धमकि चढ़ै आकास।—दरिया०, पृ० १३। (ख) ते ऊँचे चढ़ि कै खरहरे। धमकि धमकि नरकन में परे।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

धमका—संज्ञा पुं० [सं० धमा] गरमी। ऊमस। उ०—सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत धमका बिषम, ज्यों न पात खरकत है।—कवित्त०, पृ० ५८।

धमकाना—क्रि० स० [हिं० धमक] १. डराना। भय दिखाना। दंड देने या अनिष्ट करने का विचार प्रकट करना। २. डाँटना। घुड़कना।

संयो० क्रि०—देना।

धमकार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० धमक] धमक की आवाज। उ०—धम धमकार टेर सुन मुरली फुरक फुरक फुरकाना।—राम० धर्म०, पृ० ३६७।

धमकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दंड देने या अनिष्ट करने का विचार जो भय दिखाने के लिये प्रकट किया जाय। डर दिखाने की क्रिया। त्रास दिखाने की क्रिया। २. घुड़की। डाँट डपट।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धमकी में आना = डराने से डरकर कोई काम कर बैठना।

धमक्का‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धमाका'।

धमगजर—संज्ञा पुं० [अनु० धम + सं० गर्जन] १. उत्पात। ऊधम। उपद्रव। २. लड़ाई। युद्ध।

धमण(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धौंकनी'। उ०—जब ते आरण धमण जिमि, दम गमिया बहु दीह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४०।

धमधम¹—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के गण जो पार्वती के क्रोध से उत्पन्न हुए थे (हरिवंश)।

धमधम²—संज्ञा पुं० [अनु०] धूमधाम। ठाटबाट। उ०—तुम्ह जानहु आवै पिय साजा। यह धमधम सब मोकहँ बाजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११।

धमधमाना—क्रि० अ० [अनु० धम] 'धम धम' शब्द करना। कूद फाँद या चल फिरकर कंप और शब्द उत्पन्न करना। जैसे,—घोड़े धमधमाते हुए आ पहुँचे।

धमधुसरि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धमधूसर'। उ०—बात कहत मुँह फारि खातु है मिलो धमधुसरि धंगरिया।—कबीर श०, भा० २, पृ० ५६।

धमधूसर—वि०[अनु० धम + सं० धूसर (=मटमैला या गदहा)]भद्दा। मोटा आदमी। स्थूल और बेडौल मनुष्य। उ०—धमधूसर होइ रहे बात में सबसे लड़ते।—पलटू०, भा० १, पृ० १८।

धमन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा से फूँकने का काम। २. पोली नली जिसमें हवा भरकर फूँके। फुँकनी। धौंकनी। ३. नरकट। नरसल। नल नामक तृण। ४. गलाना। पिघलाना (को०)।

धमन²—वि० १. फूँकनेवाला। २. क्रूर। निष्ठुर (को०)।

धमना¹—क्रि० स० [सं० धमन] धौंकना। फूँकना। नल आदि में हवा भरकर वेग से छोड़ना।

धमना(पु)²—क्रि० अ० जलना। प्रज्वलित होना। उ०—जति जनि धमिय पवन, अधिक बिमन हेम।—विद्यापति, पृ० १०२।

धमनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धमनी। नाड़ी। २. प्रह्लाद के भाई ह्लाद की स्त्री। वातापि और इल्वल की माँ। ३. वाक्। शब्द। ४. नरकट (को०)। ५. कंठ। ग्रीवा (को०)।

धमनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूर। तुरही। बाजा। (को०)।

धमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के भीतर की वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदि का संचार होता रहता है।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धमनियाँ २४ हैं और नाभि से निकलकर १० ऊपर की ओर गई हैं, १० नीचे की ओर तथा चार बगल की ओर। ऊपर जानेवाली धमनियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रश्वास, जँभाई, छींक, हँसना, रोना, बोलना इत्यादि व्यापार होते हैं। ये ऊर्ध्वगामिनी धमनियाँ हृदय में पहुँचकर तीन तीन शाखाओं में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं। इनमें से २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ रक्तवहा और २ रसवहा, दस तो ये हैं। इनके अतिरिक्त ८ शब्द, रूप, रस और गंध को वहन करनेवाली हैं। फिर २ से मनुष्य बोलता है, २ से घोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, २ धमनियाँ अश्रुवाहिनी हैं और २ स्त्रियों के स्तनों से दूध या पुरुषों के शरीर से शुक्र प्रवर्तित करनेवाली हैं। यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियों की बात। अब इसी प्रकार अधोगामिनी धमनियाँ वात, मूत्र, पुरीष, वीर्य, आर्तव इनको नीचे की ओर ले जाती हैं। ये धमनियाँ पहले पित्ताशय में जाकर खाए पीए हुए रस को उष्णता से शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यग्गामिनी धमनियों तथा सारे शरीर में पहुँचाती हैं। ये १० अधोगामिनी धमनियाँ भी आमाशय और पक्वाशय के बीच में पहुँचकर तीन तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं। इनमें से दो दो धमनियाँ वायु, पित्त, कफ, रक्त और रस को वहन करने के लिये हैं। आँतों में लगी हुई २ अन्नवाहिनी हैं, २ जलवाहिनी हैं और २ मूत्रवाहिनी। मूत्रवस्ति से लगी हुई २ धमनियाँ शुक्र उत्पन्न करनेवाली और २ प्रवर्तित करने या निकालनेवाली हैं। मोटी आँत से लगी हुई २ मल को निकालती हैं। बाकी ८ धमनियाँ तिरछी जानेवाली धमनियों को पसीना देती हैं। ४ तिर्यग्गामिनी धमनियाँ हैं। उनकी सहस्रों लाखों शाखाएँ होकर शरीर के भीतर जाल की तरह फैली हुई हैं।

२. वह नली जिसमें हृदय से शुद्ध लाल रक्त हृदय के स्पंदन द्वारा क्षण क्षण पर जाकर शरीर में फैलता रहता है। नाड़ी (आधुनिक)।

विशेष—'धमनी' शब्द 'धम' धातु से बना है जिसका अर्थ है धौंकना। हृदय का जो स्पंदन होता है वह भाथी के फूलने पचकने के समान होता है। अतः शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों को धमनी कहना बहुत उपयुक्त है। दे० 'नाड़ी'।

३. हलदी। ४. कंठ। ग्रीवा। गरदन (को०)। ५. वाक्। वाणी (को०)। ६. नरकट (को०)।

धमनील—वि० [सं०] धमनी से युक्त (को०)।

धमरोल—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहुतायत। अधिकता। उ०—चौथा सुंदर आप हूवै दूधाँ की धमरोल।—सुंदर० ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ४३।

धमल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धवल'। उ०—नैन तैं धमल ताको समय आयो।—रा० रू०, पृ० १६०।

धमस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. धमक। अनुभूति। धमाका। उ०—प्यारी की वह हुमस धमस और तार पसीने बहने के।—मिट्टी०, पृ० ६८। २. चोट। आघात। उ०—ज्यों धोबी की धमस सहि ऊजल होय सुनीर।—कबीर०, पृ० २०।

धमसा—संज्ञा पुं० [हिं०] धौंसा। नगाड़ा।

धमसोल(पु)—संज्ञा पुं० [अनु० धम + सोल (= शोर, गैर)] ऊधम। धमाचौकड़ी। उ०—धम धम धरै हूहा करै अध धंध धमसोल।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१३।

धमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. भारी वस्तु के गिरने का शब्द। ऊपर से वेग के साथ नीचे पड़ने या टूटने का शब्द। २. बंदूक का शब्द। ३. आघात। धक्का। ४. पथरकला बंदूक। हाथी पर लादने की तोप।

धमाचौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धम + हिं० चौकड़ी] १. उछल कूद। कूदफाँद। कई आदमियों का एक साथ दौड़ना, कूदना, हाथ पैर चलाना या ऊधम करना। उपद्रव। ऊधम। जैसे,—लड़को, यहाँ धमाचौकड़ी मत मचाओ और जाकर खेलो। २. धींगाधींगी। मारपीट।

क्रि० प्र०—मचाना। मचना।

मुहा०—धमाचौकड़ी मचना = [illegible] होना। उ०—आखिर में कुछ कहते थे वह [illegible] धमाचौकड़ी मची थी।—किसाना०, भा० ३, पृ० २५५।

धमड़ना¹—क्रि० स० [अनु०] [illegible] करना।

धमाधम¹—क्रि० वि० [अनु० धम] १. लगातार कई बार 'धम' 'धम' शब्द के साथ। लगातार कई आघातों के साथ। लगातार गिरने का शब्द करते हुए। जैसे, [illegible] धमाधम नीचे गिरे। २. लगातार कई प्रहार [illegible]। कई आघातों के शब्द के साथ। लगातार [illegible] चोटों की आवाज के साथ। जैसे—(क) वह उसे धमाधम मार रहा है। (ख) इसपर धमाधम मत मारो नहीं तो यह टूटेगा।

धमाधम²—संज्ञा स्त्री० १. कई बार गिरने से लगातार धम धम शब्द। लगातार गिरने पड़ने की आवाज। २. आघात। प्रतिघात। प्रहार। मार पीट। उपद्रव। उत्पात।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।—होना।

धमार¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. उछलकूद। उपद्रव। उत्पात। धमाचौकड़ी। उ०—बसंत झलकी आम के मौर लगे जिन पर भौर के डेरा जमे, धमार की मार होने लगी।—श्यामा०, पृ० ८०।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।—होना।

२. नटों की उछलकूद। कलाबाजी।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।

३. विशेष प्रकार के साधुओं की दहकती आग पर कूदने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धमार²—संज्ञा पुं० १. होली के गाने का एक ताल। २. होली में गाने का एक प्रकार का गीत।

धमारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] धमाचौकड़ी। उ०—विधि न करए हर खेलए पासा सारि। सापक संगे सिवे रचलि धमारि।—विद्यापति, पृ० ५११।

धमारिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० धमार] १. उछलकूद करनेवाला नट। कलाबाज। २. होली के धमार गानेवाला। ३. आग में कूदनेवाला। साधु।

धमारिया²—वि० उपद्रव करनेवाला। शांत न रहनेवाला। उत्पाती।

धमारी¹—वि० [हिं० धमार] उपद्रवी। उत्पाती।

धमारी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं० धमार] धमाचौकड़ी। उत्पात। उ०—पिउ संजोग धनि जोबन बारी। भँवर पुहुप सन करहिं धमारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४८।

धमाल—संज्ञा पुं० [हिं०धमार] दे० 'धमार'। उ०—लगु गुरु मोहरा लेखवै धारो गीत धमाल।—रघु० रू०, पृ० १२८।

धमासा†—संज्ञा पुं० [सं० यवासा] जवासा। हिंगुवा। दुलाह।

धमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूँकने की क्रिया [को०]।

धमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहारिन। लोहार की स्त्री।

धमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] आग जलाने का एक साधन। धौंकनी [को०]।

धमिल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धम्मिल्ल'। उ०—धमिल खोलि कहुँ पकरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७।

धमूका—संज्ञा पुं० [अनु० धम] १. धमाका। प्रहार। आघात। उ०—सतगुरु शब्दी खेल है सहै धमूका साध।—चरण० बानी, पृ० ३। २. घूँसा। मुक्का।

धमेख—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मचक्र] काशी से दो कोस पर वह स्तूप जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ बुद्धदेव ने अपना धर्मचक्र अर्थात् धर्मोपदेश आरंभ किया था। दे० 'सारनाथ'।

धमोड़ना(पु)—क्रि० स० [अनु०] आघात करना। प्रहार करना। उ०—(क) घत सत्रां मुँह आखु घोड़े, घोव पाड़िया सेल धमोड़े।—रा० रू०, पृ० २५८। (ख) उर सेल धमोड़े वेल प्रम।—रा० रू०, पृ० २४१। (ग) पुगा हाथी खात रे, देता कुंत धमोड़।—रा० रू०, पृ० ८७।

धम्म(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धम'। उ०—मजदूर लकड़ी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चित हुआ।—गीतिका (भू०), पृ० ९।

धम्मन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास। दे० 'धरवा'।

धम्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०]।

धम्माल—संज्ञा स्त्री० पुं० [हिं० धमाल] दे० 'धमार'।

धम्मिल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०]।

धम्मिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. लपेटकर बाँधे हुए बाल। बँधी चोटी। जूड़ा। २. मोतियों, फूलों आदि से सजाया हुआ जूड़ा या केशकलाप (को०)।

धम्हा†—संज्ञा पुं० [देश०] धातु गलाने की भट्ठी।

धय—वि० [पुं०] पीनेवाला। चूसनेवाला। जैसे, स्तनंधय।

विशेष—केवल समासांत रूप में इसका व्यवहार होता है।

धयना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दौड़ना। उ०—देवीसिंह उदंत अखैसिंह बीर हैं। ए सुजान के संग धए अरि धीर हैं।—सुजान०, पृ० १२३।

धरंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धड़'। उ०—तरफंत सीसं धरंगं निनारे।—पृ० रा०, १३।११७।

धरंत—वि० [हिं० धरना] धरा हुआ। रखा हुआ।

धरंता(पु)†—वि० [हिं० धरना] धरनेवाला। पकड़नेवाला।

धरंनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] दे० 'धरणी'। उ०—पृ० रा०, पृ० १४०।

धर¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धरा, धरी] १. धारण करनेवाला। ऊपर लेनेवाला। सँभालनेवाला। जैसे, अक्षधर, अंशुधर, असृग्धर, गदाधर, गंगाधर, दिव्यांबरधर, भूधर, महीधर आदि। उ०—स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के।—मानस, १।२०। २. ग्रहण करनेवाला। थामनेवाला। जैसे, चक्रधर, धनुर्धर, मुरलीधर।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग समस्त पदों में ही होता है।

धर²—संज्ञा पुं० १. पर्वत। पहाड़। २. कपास का ढोंढ़ा। ३. कूर्मराज। कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिए है। ४. एक वसु का नाम। ५. विष्णु। ६. श्रीकृष्ण। ७. विट। व्यभिचारी पुरुष।

धर³—संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी। धरती। उ०—(क) धर, कोइ जीव न जानौं मुख रे बकत कुबोल।—जायसी ग्रं०, पृ० ८३। (ख) कान्ह जनमदिन सुर नर फूले। नभ धर निसिबासर समतूले।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२१।

धर⁴—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] धरने या पकड़ने की क्रिया।

यौ०—धर पकड़ = भागते हुए आदमियों को पकड़ने का व्यापार। गिरफ्तारी। उ०—जैसे, जब धर पकड़ होने लगी तब लुटेरे इधर उधर भाग गए।

धर(पु)⁵—संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी। धरती। उ०—(क) मानहु नेष असेषधर धरनहार बरिबंड।—केशव (शब्द०)। (ख) सरजू सरिता तट नगर बसै बर। अवधनाम यशधाम धर।—केशव (शब्द०)।

धर(पु)†⁶—संज्ञा सं० [हिं० धड़] दे० 'धड़'। उ०—लाल अधर में कै सुधा, मधुर किए बिनु पान। कहा अधर में लेत हौ, धर में रहत न प्रान।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २४२।

धरक(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धड़क'।

धरक²—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज की मंडी में अनाज तोलने का काम करनेवाला। बया।

धरकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'धड़कना'। उ०—धरकी हमारी फेरि छतियाँ कहूँ घौं बीर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २१५।

धरकार—स्त्री० पुं० [देश०] बाँस की डलिया आदि बनानेवाली एक जाति। बँसोर।

धरक्कना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'धरकना'। उ०—धरक्के धरनी करक्के सुसोयं।—प० रासो, पृ० ८५।

धरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. धारण। रखने, थामने, ग्रहण करने या सँभालने की क्रिया। २. एक तोल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ माशे, कहीं 1/10 शतमान, कहीं १९ निष्पाव, कहीं 1/2 कर्ष, कहीं 1/10 पल की मानी गई है। ३. बाँध। पुल। ४. संसार। जगत्। ५. सूर्य। ६. स्तन। ७. धान। ८. एक नाग का नाम। ९. पहाड़ का किनारा (को०)। १०. हिमालय (को०)। ११. सहारा। आधार (को०)।

धरणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जैन देवी जो १९ वें अर्हत के अनुशासन में रहती है (को०)।

धरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. शाल्मलि वृक्ष। ३. नाड़ी (को०)। ४. शहतीर (को०)।

धरणिधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी को धारण करनेवाला। २. कच्छप। ३. पर्वत। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. शेषनाग। ७ राजा (को०)।

धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। उ०—केवल उनके ही लिये नहीं यह धरणी। है औरों की भी भार धारिणी भरिणी।—साकेत, पृ० २१३। २. शाल्मलि वृक्ष। ३. नाड़ी। ४. शहतीर (को०)।

धरणीकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद का नाम। बनकंद।

धरणीकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] (पृथ्वी को कील की तरह दबाए रहनेवाला) पर्वत। पहाड़।

विशेष—पुराणों के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ दबाकर सँभाले हुए हैं।

धरणीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] एक कोश ग्रंथ जिसके रचयिता का नाम धरणीदास था।

धरणीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकासुर (को०)।

धरणीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीधर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धरणिधर'।

धरणीधृत—संज्ञा पुं०[सं०] १. पर्वत। २. विष्णु। ३. शेषनाग (को०)।

धरणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धरणीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकासुर। (को०)।

धरणीपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीपूर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

धरणीप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र (को०)।

धरणीभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. पर्वत। ३. विष्णु। ४. शेषनाग (को०)।

धरणीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० धरणीमण्डल] भूमंडल (को०)।

धरणीय—वि० [सं०] १. जिसे धारण किया जा सके। २. जिसका सहारा लिया जा सके (को०)।

धरणीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष (को०)।

धरणीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु। ३. शिव (को०)।

धरणीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकासुर।

धरणीसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

धरता—संज्ञा पुं० [हिं० धरना या वैदिक धर्तृ] १. किसी का रुपया धरनेवाला। देनदार। ऋणी। कर्जदार। २. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ बँधा हक या धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना। कटौती। ३. धारण करनेवाला। कोई कार्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला।

यौ०—कर्ता धरता = सब कुछ करने धरनेवाला।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] १. पृथ्वी। जमीन।

मुहा०—धरती का फूल = (१) खुमी। छत्रक। कुकुरमुत्ता। (२) नया उभरा हुआ धनी। नया निकला हुआ अमीर। (३) मेढक। धरती बाहना = (१) जमीन जोतना। (२) परिश्रम करना। मशक्कत करना।

२. संसार। दुनिया। जगत्।

धरत्ती(पु)—संज्ञा स्त्री० [धरती] दे० 'धरती'। उ०—चूँडो बीरम धर चक्कवत्ती। धार सार मुँह लयी धरत्ती।—रा० रू०, पृ० १४।

धरधर(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धराधर'।

धरधर²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धड़धड़'।

धरधर³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरहर'।

धरधरा(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] धड़कन। धकधकाहट। उ०—कर धर देखो धरधरा अजौं न उर ते जात।—बिहारी (शब्द०)।

धरधराना¹(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'धड़धड़ाना'।

धरधराना²—क्रि० स० दे० 'धड़धड़ाना'।

धरधार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धराधर'। उ०—धरी एक रव रंग, तुट्टि धरधार यही धर।—पृ० रा०, १।६५४।

धरन¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] १. धरने की क्रिया, भाव, ढंग।

उ०—ऐसी धरन धरै जो कोई, निश्चय पार पाइहै सोई।—कबीर० सा०, पृ० १०१७। २. लकड़ी लोहे आदि का वह लंबा लट्ठा जो इसी प्रकार के और लट्ठों के साथ दो खड़ो समानांतर दीवारों या ऊँचे पर ठहराए हुए दो समानांतर लट्ठों पर इस लिये आड़ा रखा जाय जिसमें उसके ऊपर पाटन (छत आदि) या कोई बोझ ठहर सके। कड़ी। धरनी। ३. वह नस जो गर्भाशय को दबाए में जकड़े रहती है जिससे वह इधर उधर नहीं टलता। गर्भाशय का आधार।

मुहा०—धरन टलना, डिगना, खसकना = गर्भाशय की नस का अपनी जगह से हट जाना जिससे गर्भाशय इधर उधर हो जाता है।

४. गर्भाशय। ५. टेक। हठ। अड़।

धरन[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरना'। उ०—मिथुलीर रघुबीर गए पुन किया धरन उत्पन जो।—रघुराज (शब्द०)।

धरन†—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणि] धरती। जमीन।

धरनां—वि० [सं० धरण] धारण करनेवाला। उ०—कलप कमल बर विमल बैन, मधु जीवन के बंधु लाल लीला के धरन है।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २५।

धरनहार—वि० [हिं० धरना + हार (प्रत्य०)] धारण करनेवाला। उ०—धनुष बाण कर धरनहार हरिचंद।—कबीर (शब्द०)।

धरना[१]—क्रि० स० [सं० धरण] १. किसी वस्तु को इस प्रकार दृढ़ता से स्पर्श करना या हाथ में लेना कि वह जल्दी छूट न सके अथवा इधर उधर जा या हिल न सके। पकड़ना। थामना। ग्रहण करना। जैसे,—(क) चोर धरना। (ख) इसका हाथ जोर से धरे रहो, नहीं तो भाग जायगा। (ग) यह चिमटी अच्छी तरह धरती नहीं।

यौ०—करना धरना। धरना पकड़ना।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—धर दबाना या दबोचना = (१) पकड़कर वश में कर लेना। लड़ाई में पछाड़ देना। किसी पर इस प्रकार आ पड़ना कि वह विरोध या बचाव न कर सके। आक्रांत करना। जैसे—कुत्ते ने बिल्ली को धर दबोचा। (२) तर्क या विवाद में परास्त करना। धर पकड़कर = जबरदस्ती। बलात्। जैसे, धर पकड़कर कहीं काम होता है?

२. स्थापित करना। स्थित करना। रखना। ठहराना। जैसे,—(क) पुस्तक इस जगह पर धर दो। (ख) बोझ सिर पर धर लो। उ०—लोल कुंडल कपोल सुंदरी चारु नखक्षत अंगद के तरु। दोउ भ्रू भाल के समभार बड़े बल के धरती पग भू पर।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २३७।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. पास रखना। रक्षा में रखना। जैसे,—(क) वह हमारी पुस्तक धरे हुए है, देता नहीं। (ख) यह चीज उनके यहाँ धर दो, कहीं जायगी नहीं।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

यौ०—धर रखना।

मुहा०—धरा ढका = समय पर काम आने के लिये बचाकर रखी हुई वस्तु। संचित वस्तु। जैसे,—कुछ धरा ढका होगा, लाओ। धरा रह जाना = काम न आना। व्यर्थ हो जाना।

४. धारण करना। देह पर रखना। पहनना। जैसे, सिर पर टोपी धरना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

५. आरोपित करना। अवलंबन करना। अंगीकार करना। जैसे, रूप धरना, वेश धरना, धर्य धरना। ६. व्यवहार के लिये हाथ में लेना। ग्रहण करना। जैसे, हथियार धरना। ७. सहायता या सहारे के लिये किसी को घेरना। पल्ला पकड़ना। आश्रय ग्रहण करना। जैसे,—उन्हीं को धरो, वे ही कुछ कर सकते हैं। ८. किसी फैलनेवाली वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में लगना या छू जाना। जैसे,—फूस गीला है इसी से आग धरती नहीं है। ९. किसी स्त्री को रखना। बैठा लेना। रखेली की तरह रखना। उ०—ब्याही लाख, धरी दस कुबरी अंतहि कान्ह हमारो।—सूर (शब्द०)। १०. गिरवी रखना। गहन रखना। रेहन रखना। बंधक रखना। जैसे,—(क) अपनी चीज धरकर तब रुपया लाए है। (ख) कोई चीज धरकर भी तो रुपया नहीं देता। ११. अपनाना। ग्रहण करना। उ०—पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे वे औरों को भी तार पार उतरेंगे।—साकेत, पृ० २१६।

धरना[२]—संज्ञा पुं० कोई बात या प्रार्थना पूरी कराने के लिये किसी के पास या द्वार पर अड़कर बैठना और जबतक वह बात या प्रार्थना पूरी न कर दी जाय तबतक अन्न न ग्रहण करना। जैसे,—हमारा रुपया न दोगे तो हम तुम्हारे दरवाजे पर धरना देंगे। दे० 'धरन'।

क्रि० प्र०—देना।—बैठना।

धरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणि] दे० 'धरणी'। उ०—धुरवी होहिं न अलि यहै धुआँ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६५।

धरनिधनी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धरणि + हिं० धनी (= स्वामी)] राजा। भूपति। उ०—या जग में धनि धन्य तू मनुज सलोने गात। धरनिधनी जो बस किये कहा और की बात।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०।

धरनिधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धरणिधर] १. पर्वत। भूधर। उ०—गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि। मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६। २. हिमालय। पार्वती के जनक। उ०—लोक वेद बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर। कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१। ३. दे० 'धरणीधर'।

धरनिसुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणिसुता] जानकी। सीता। उ०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि। धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु विचारि।—मानस, २।२८५।

धरनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] दे० 'धरणी'। उ०—सगमित पूरन ससि मनो धरनी पर धावै।—घनानंद, पृ० ४५५।

मुहा०—धरनी मिलाना = मिट्टी में मिलाना। समाप्त करना। उ०—हते अष्टक सुर धरनी मिलायो।—प० रासो, पृ० ४५।

धरनी२—संज्ञा स्त्री० [हिं० धारना या सं० धारण] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक अड़े रहना। टेक। उ०—तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी।—तुलसी (शब्द०)।

धरनीतल—संज्ञा पुं० [हिं० धरनी + तल] पृथ्वी की सतह। समस्त पृथ्वी। उ०—दारिद दो करि बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८।

धरनीधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धरणीधर] १. शेषनाग। उ०—तुलसी जिन्हें धाए धुकै धरनीधर धौर धकानि सों मेरु हले हैं। ते रनतीर्थनि लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६०। २. विष्णु या राम। उ०—जड़ पंच मिले जेहि देह करो, करनी लख धौं धरनीधर की। जन की कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०४। ३. दे० 'धरणीधर'।

धरनीधरन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरणीधर'। उ०—शेष, महाअहि, सर्पपति, धरनीधरन, अनंत।—अनेकार्थ०, पृ० ६०।

धरनैत—संज्ञा पुं० [हिं० धरना + एत (प्रत्य०)] धरना देनेवाला। किसी बात के लिये अड़कर बैठनेवाला।

धरन्नी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धरनी'। उ०—अनल पख मनु परिय टूटि आकास धरन्निय। भयो सोर बर सद्द परयौ महि छत्र बरन्निय।—हम्मीर रा०, पृ० ११३।

धरपकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना + पकड़ना] १. गिरफ्तारी। पकड़ धकड़। २. रोकथाम। नियंत्रण।

धरपत्ती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर + पति] राजा। उ०—भर हुर धंस हुए धरपत्ती।—रा० रू०, पृ० ६।

धरम(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० 'धर्म'।

धरमदुवार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धरम + दुवार] धर्मद्वार। स्वर्ग। उ०—धरम दुवार गयो छोडे धर।—रा० रू०, पृ० २६४।

धरमपरण(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धर्मपरायण'। उ०—ग्यारह रुद्र एकादशी प्राणपूर पति धरमपरण।—रघु० रू०, पृ० ३।

धरमबहिर्मुख—वि० [हिं० धरम + सं० बहिर्मुख] धर्मविरोधी। उ०—जैन असर्पा निंदक नास्तिक धरम बहिर्मुख।—नंद० ग्रं०, पृ० २४।

धरमराइ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धरम + राइ] धर्मराज। उ०—धरमराइ नीरंजन होई।—घट०, पृ० २१४।

धरमसार†—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] १. धर्मशाला। २. सदावर्त। खैरातखाना। उ०—रानी धरमसार पुनि साजा। बंदि मोख जेहि पावहि राजा।—जायसी (शब्द०)।

धरमाक्षेप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आक्षेप] धर्मक्षेप। उ०—धर्माच्छेप सदा कहै बरनत सब सुख पाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४५८।

धरमाधी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधीन] धर्मात्मा। धार्मिक। उ०—विक्रमजीत धरमाधी राजा।—धरनी०, पृ० ५३।

धरमावतार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अवतार] दे० 'धर्मावतार'। उ०—अरु हृदय भए अति उदार। करदन तें भो धरमावतार।—हम्मीर रा०, पृ० ५।

धरमी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धर्मी'। उ०—(क) अब यह तुम्हारो रूप धरम के धरमीहि मोहै।—नंद ग्रं०, पृ० ११। (ख) जे अनभजतनि भजें तीन धरमी सुखकारी।—नंद० ग्रं० पृ० ३१।

धरम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० धर्म'। उ०—अड़ पूँतारे आपरा धारे सांच धरम्म।—रा० रू०, पृ० २६०।

धरम्मूरत—वि० [हिं० धरम + मूरत] धर्ममूर्ति। साधु। धरम्मूरत मै तो आवैई हो।—श्री निवास० ग्रं०, पृ० ५६।

धरवान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धर] धरा। पृथ्वी। भूमि। उ०—जाइ सपत्ती समर चंपि दिल्ली धरवानं। चहुआना रे हुक्‍व दूत दीनो फुरमान।—पृ० रा०, २४। ३६।

धरवाना—क्रि० स० [हिं० धरना का प्रे० रूप] १. धरने का काम कराना। पकड़ाना। थमाना। २. रखवाना। ३. गिरफ्तार या बंदी कराना।

धरषना(पु)—क्रि० स० [सं० धर्षण] १. दबाना। मर्दन करना। उ०—(क) रिपुदल धरषि हृदय कपि बालितनय बलपुंज। पुलक सरीर नयन जल गहे राम पदकंज।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हने दिग्कुंजर कमठ कोल कलमले डोले धराधर धारि धराधर धरषा।—तुलसी (शब्द०)। २. चूर्ण करना (को०)। ३. फाड़ना (को०)।

धरसना१—क्रि० अ० [सं० धर्षण] दब जाना। डर जाना। सहम जाना। उ०—बिलसत उर बगहार लसत मणि उडुगन धरसत।—गोपाल (शब्द०)।

धरसना२—क्रि० स० दबाना। अपमानित करना।

धरसनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धर्षणी'।

धरहरा†१—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना + हर (प्रत्य०)] १. धर पकड़। लोगों को इस प्रकार पकड़ने का कार्य कि वे इधर उधर भाग न सकें। गिरफ्तारी।

क्रि० प्र०—होना।

२. दो या अधिक लड़नेवालों को धर पकड़कर लड़ाई बंद करने का कार्य। बीच बिचाव। उ०—ललित भ्रकुटि निकर मनहु भ्रमि सन भ्रमर लरत धरहरि करत अलि जनु जुग फनी।—तुलसी (शब्द०)। ३. मारे या नष्ट जाने से बचाने का काम। बचाव। रक्षा। ४. धैर्य। धीरज। उ०—सन सूक्यो, बीत्यो बनो, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजों धर धरहर जिय नारि।—बिहारी (शब्द०)।

धरहर(पु)२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरहरा'। उ०—धरहर तिपं बरषे इंदु।—प्राण०, पृ० ६६।

धरहरना(प)—क्रि० अ० [अनु०] धड़धड़ाना। धड़ धड़ शब्द करना। उ०—रथ राजत चाका धरहरे घर घरजा का घर हरे।—गोपाल (शब्द०)।

धरहरा—संज्ञा पुं० [सं० धवल गृह] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धौरहर। मीनार। जैसे, माधवराय का धरहरा।

धरहराना(प)—क्रि० अ० [हिं० धरहरना] घबराना। धड़कन पैदा होना। उ०—थरथरात देश देश के गणपति सुन धाक धरहरात।—अकबरी ०, पृ० १०८।

धरहरि(प)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धरहर[2]'। उ०—(क) जो पहिले अपुने सिर परई। सो का काहु के धरहरि करई।—जायसी ग्रं०, पृ० २५७। (ख) जब जमजाल पसार परैगो हरि बिनु कौन करैगो धरहरि।—सूर (शब्द०)।

धरहरि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० धैर्य ?] दृढ़ विश्वास। निश्चय। उ०—जम करि मुँह तरहरि पर्यो इहिं धरहरि चित लाउ। विषयतृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ।—बिहारी (शब्द०)।

धरहरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० धरहरि] बीच बिचाव करा देनेवाला। धर पकड़ करके बचानेवाला। बचाव करनेवाला। रक्षक। उ०—जनहु दीन्ह ठगलाडू देख आय तस मीच। रहा न कोउ धरहरिया करै जो दोउ महँ बीच।—जायसी (शब्द०)।

धरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। जमीन। धरती। २. संसार। दुनिया। उ०—धरा को प्रमाण यही तुलसी जो फरा सो भरा सो बरा लो बुताना।—तुलसी (शब्द०)। ३. गर्भाशय। ४. एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और गुरु होता है। जैसे,—राधा कहो। बाधा टरै। श्यामा कहो। कामा सरै। ५. मेद। ६. नाड़ी। ७. भेंट। भेंट या दान स्वरूप ब्राह्मणों को दी जानेवाली स्वर्ण आदि की राशि (को०)। ८. मज्जा (को०)।

धरा[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धड़ात्] १. तौल की बराबरी। किसी वस्तु की तौल के बराबर का बाट या बोझ। बटखरा।

क्रि० प्र०—बाँधना।—साधना।

२. चार सेर की एक तौल।

धराउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. धरोहर। २. जतन से रखी हुई चीज या वस्तु।

धराऊ—वि० [हिं० धरना + आऊ (प्रत्य०)] जो साधारण से अधिक अच्छा होने के कारण नित्य व्यवहार में न लाया जाय, यत्न के साथ रखा रहे और कभी कभी विशेष अवसरों पर निकाला जाय। मामूली से अच्छा। बहुमूल्य। जैसे, धराऊ कपड़ा, धराऊ जोड़ा।

धराक(प)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धड़ाक'।

धराकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धराकदम्ब] एक प्रकार का कदंब। धाराकदंब।

धराका†—संज्ञा पुं० [हिं० धड़ाका] दे० 'धड़ाका'।

धरातल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी। धरती। २. सतह। केवल लंबाई चौड़ाई का गुणनफल जिसमें मोटाई गहराई या ऊँचाई का कुछ भी विचार न किया जाय। ३. रकबा। लंबाई और चौड़ाई का गुणनफल।

धरात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगलग्रह। २. नरकासुर।

धरात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

धरादेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण [को०]।

धराधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पृथ्वी को धारण करे। राजा। उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो, और धराधरन को मेट्यो अहमेव है।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१। २. शेषनाग। ३. पर्वत। ४. विष्णु।

धराधरन(प)—संज्ञा पुं० [सं० धरा + धरण] दे० 'धराधर'।

धराधरा—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल का नाम।

धराधव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु [को०]।

धराधार—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग।

यौ०—धराधारधारी = महादेव।

धराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०]।

धराधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराधीश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराना—क्रि० स० [हिं० धरना का प्रे० रूप]। १. पकड़ाना। थमाना। २. धारण कराना। पहनाना। उ०—तब श्री गुसाईं जी ने एक बागा तो श्री नवनीतप्रिय जी कों धरायो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १७२।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. स्थिर करना। ठहराना। निश्चित कराना। मुकर्रर कराना। जैसे, दिन धराना, नाम धराना। उ०—(क) राम तिलक हित लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुदिन, सुनखत, सुघरी सोचाई। बेगि वेद विधि लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)।

धरापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु [को०]।

धरापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंगलग्रह। उ०—धरापुत्र ज्यों स्वर्णमाला प्रकाशै।—केशव (शब्द०)।

धरापृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० धरा + पृष्ठ] धरती की सतह। धरतीतल। भूतल। पृथ्वी। उ०—अब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची।—कंकाल, पृ० ७८।

धराभुक्—संज्ञा पुं० [सं० धराभुक् या धराभुज्] राजा [को०]।

धराभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत [को०]।

धरामर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण [को०]।

धरारी(प)—वि० [हिं० धरना] धारण करनेवाली। उ०—चित्ररेख अपछरि सगीन अति रूप धरारी।—पृ० रा०, २५।७२।

धराव—संज्ञा पुं० [हिं० धरना + आव(प्रत्य०)] १. पकड़ने की क्रिया या स्थिति। २. पकड़। ३. पहुँच।

धरावट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+आवट (प्रत्य०)] जमीन की वह माप या क्षेत्रफल जो कूतकर मान लिया गया हो।

धरावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'धराना'।

धराशायी—वि० [सं० धराशायिन्] १. धरती पर गिरा हुआ। गिरा हुआ। पराजित। उ०—आज धराशायी है मानव, गिरा नजर से मैं तो क्या!—मिट्टी०, पृ० १०६। २. धरती पर सोनेवाला। ३. युद्ध में मृत।

धरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धरासूनु' (को०)।

धरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण। उ०—भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो।—तुलसी (शब्द०)।

धरासूनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगलग्रह। २. नरकासुर (को०)।

धरास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र।

विशेष—विश्वामित्र और वशिष्ठ की लड़ाई में विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था।

धराहर—संज्ञा पुं० [हिं० धुर (=ऊपर)+घर] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ लगी हों। मीनार। उ०—देखि धराहर कर उजियारा। छिपि गए चाँद सुरुज औ तारा।—जायसी (शब्द०)।

धरिंगा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल।

धरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती। पृथ्वी।

यौ०—धरित्रीभृत् = राजा।

धरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० धरिमन्] १. तराजू। २. आकार। शकल (को०)।

धरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरना] पृथ्वी। धरती। उ०—पवन को पलट कर सुन्न मे घर किया, धरिया मे अधर भरपूर देखा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६६।

धरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरा] चार सेर की एक तौल।

धरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना] रखनी। रखेली स्त्री।

धरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढार] ढार। ढरिया। कान में पहनने का स्त्रियों का एक गहना।

धरुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. स्वर्ग। ३. जल। पानी। ४. संमति। राय। ५. वस्तु को सुरक्षित रखने का स्थान। ६. अग्नि। ७. दूध पीनेवाला बछड़ा। ८. आधार। सहारा। ९. कड़ी मिट्टी। १०. हौज (को०)।

धरेखा—संज्ञा पुं० [हिं० धरना+एखा (प्रत्य०)] दे० 'धरेला'।

धरेजा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—चलत चक्र त्रिसूल सुनेजा। सक्ति पास धनु बान धरेजा।—हम्मीर रा०, पृ० १०५।

धरेजा†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० धरना+एजा (प्रत्य०)] १. किसी स्त्री को रख लेना। रखनी रखना। २. छोटी जातियों में एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री को बिना ब्याह किए पत्नी की तरह रखना।

विशेष—इसमें भात लेकर बिरादरीवाले उस स्त्री को जाति के भीतर स्थान देते हैं।

धरेजा[3]—संज्ञा स्त्री० दे० 'धरेल'।

धरेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+एला (प्रत्य०)] रखेली स्त्री। ऐसी स्त्री जिसे कोई बिना ब्याह के घर में रख ले।

धरेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+एल (प्रत्य०)] उपपत्नी। रखेल।

धरेला—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+एला (प्रत्य०)] वह पति जिसे कोई स्त्री बिना ब्याह के ही ग्रहण कर ले।

धरेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना+एली (प्रत्य०)] उपपत्नी। रखेली।

धरेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धरेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर+ईश] राजा। धरापति। उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो, और धरानरन को मेटो अहमेव है।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१।

धरैया†—संज्ञा पुं० [हिं० धरना+ऐया (प्रत्य०)] १. धरनेवाला। पकड़नेवाला। २. धारण करनेवाला। उ०—(क) धँसि-धँसि धरनि धर के धरैया कहत जमकातर रुठे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६। (ख) धौंसा धुकारन धसमसैं धर के धरैया कसमसैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८।

धरोड़†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धरोहर'।

धरोहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरना (धर)+देशी० ओहर] वह वस्तु या द्रव्य जो किसी के पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका स्वामी जब माँगेगा तब वह दे दिया जायगा। थाती। अमानत। उ०—(क) प्रान धरोहर हैं घन आनंद लेहु न तो अब लेहिंगे गाहक।—घनानंद (शब्द०)। (ख) जो कोई धरी धरोहर नाटै। अरु पच्छिन के पर जो काटै। साधुहिं दोष लगावे जोई। सोइ विष्ठा कर कीरा होई।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—धरना।—रखना।

धरोहरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरहरा' उ०—जम घुम्मी के धरोहरा, जस बालू के रेत। हवा लगे सब मिटि गए, जस करतब के प्रेत।—धरम०, पृ० ८।

धरौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो भारतवर्ष में प्राय: सब जगह विशेषत: हिमालय की तराई में व्यास नदी के किनारे से लेकर सिक्किम तक पाया जाता है। यह अफ्रिका और आस्ट्रेलिया के गरम भागों में भी होता है।

विशेष—इसकी टहनियाँ लंबी और पत्तियाँ सींक के दोनों ओर आमने सामने लगती हैं। इसमें सफेद लाल या पीले फूल लगते हैं। इस पेड़ के किसी भाग में यदि घाव किया जाय तो उसमें से पीला दूध निकलता है जिसे पानी में घोलने से खासा पीला रंग तैयार हो सकता है। इसके बीजों के ऊपर कुछ रोईं सी होती है। बीजों का तेल दवा के काम में आता है। छाल और जड़ साँप काटने और बिच्छू के डंक मारने की दवा समझी जाती है। लकड़ी इसकी भीतर से सफेद चिकनी और मजबूत निकलती है और इसपर खराद और नक्काशी का काम बहुत अच्छा होता है।

धरौवा—संज्ञा पुं० [हिं० धरना+औवा(प्रत्य०)] बिना विधिपूर्वक विवाह किए स्त्री को रखने की चाल।

धर्णस, धर्णसि, धर्णी—वि० [सं०] १. टेकनेवाला। २. बलवान्। समर्थ। ३. टिकाऊ। सुदृढ़ (को०)।

धर्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० वैदिक धर्तृ] १. धारण करनेवाला। २. कोई काम ऊपर लेनेवाला।

धर्ता⑤†[2]—वि० [हिं० धरना या धार] ऋणी। कर्जदार।

यौ०—कर्ता धर्ता = जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो।

धर्ती‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० धरती] दे० 'धरती'।

धर्तूर—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा (को०)।

धर्नि⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धरणी'। उ०—सो फरो धर्नि मुच्छा सु म्याय।—हम्मीर रा०, पृ० ४६।

धर्नी⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] दे० 'धरणी'। उ०—हन्यौ अस्व मलखान धर्नी मिलायं।—प० रा०, पृ० ८४।

धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। भवन। २. यज्ञ। ३. गुण। नैतिकता। ४. सहारा। टेक। ५. पुण्य (को०)।

धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो। प्रकृति। स्वभाव, नित्य नियम। जैसे, आँख का धर्म देखना, शरीर का धर्म वर्धित होना, सर्प का धर्म काटना, दुष्ट का धर्म दुःख देना।

विशेष—ऋग्वेद (१। २२। १८) में धर्म शब्द इस अर्थ में आया है। यह अर्थ सबसे प्राचीन है।

२. अलंकार शास्त्र में वह गुण या वृत्ति जो उपमेय और उपमान में समान रूप से हो। वह एक सी बात जिसके कारण एक वस्तु की उपमा दूसरी से दी जाती है। जैसे, कमल के ऐसे कोमल और लाल चरण, इस उदाहरण में कोमलता और ललाई साधारण धर्म है। ३. किसी मान्य ग्रंथ, आचार्य या ऋषि द्वारा निर्दिष्ट वह कर्म या कृत्य जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के अर्थ किया जाय। वह कृत्य या विधान जिसका फल शुभ (स्वर्ग या उत्तम लोक की प्राप्ति आदि) बताया गया हो। जैसे, अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, होम इत्यादि। शुभादृष्ट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—धर्म कर्म।

विशेष—मीमांसा के अनुसार वेदविहित जो यज्ञादि कर्म हैं उन्हीं का विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है। जैमिनि ने धर्म का जो लक्षण दिया है उसका अभिप्राय यही है कि जिसके करने की प्रेरणा (वेद आदि में) हो, वही धर्म है। संहिता से लेकर सूत्रग्रंथों तक धर्म की यही मुख्य भावना रही है। कर्मकांड का विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले ही धार्मिक कहे जाते थे। यद्यपि श्रुतियों में 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' आदि वाक्यों द्वारा साधारण धर्म का भी उपदेश है पर वैदिक काल में विशेष लक्ष्य कर्मकांड ही की ओर था।

४. वह कर्म जिसका करना किसी संबंध, स्थिति या गुणविशेष के विचार से उचित और आवश्यक हो। वह कर्म या व्यापार जो समाज के कार्यविभाग के निर्वाह के लिये आवश्यक और उचित हो। वह काम जिसे मनुष्य को किसी विशेष कोटि या अवस्था में होने के कारण अपने निर्वाह तथा दूसरों की सुगमता के लिये करना चाहिए। किसी जाति, कुल, वर्ग, पद इत्यादि के लिये उचित ठहराया हुआ व्यवसाय या व्यवहार। कर्तव्य। फर्ज। जैसे, ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय का धर्म, माता पिता का धर्म, पुत्र का धर्म इत्यादि।

विशेष—स्मृतियों में आचार ही को परम धर्म कहा है और वर्ण और आश्रम के अनुसार उसकी व्यवस्था की है, जैसे ब्राह्मण के लिये पढ़ना पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, क्षत्रिय के लिये प्रजा की रक्षा करना, दान देना, वैश्य के लिये व्यापार करना और शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा करना। जहाँ देश काल की विपरीतता से अपने अपने वर्ण के धर्म द्वारा निर्वाह न हो सके वहाँ शास्त्रकारों ने आपद्धर्म की व्यवस्था की है जिसके अनुसार किसी वर्ण का मनुष्य अपने से निम्न वर्ण की वृत्ति स्वीकार कर सकता है, जैसे ब्राह्मण—क्षत्रिय या वैश्य की, क्षत्रिय—वैश्य की, वैश्य या शूद्र—शूद्र की, पर अपने से उच्च वर्ण की वृत्ति ग्रहण करने का आपत्काल में भी निषेध है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी इनके धर्मों का भी अलग अलग निरूपण किया गया है। जैसे ब्रह्मचारी के लिये स्वाध्याय, भिक्षा माँगकर भोजन, जंगल से लकड़ी चुनकर लाना, गुरु की सेवा करना इत्यादि। गृहस्थ के लिये पंच महायज्ञ, बलि, अतिथियों को भोजन और भिक्षुक, संन्यासियों आदि को भिक्षा देना इत्यादि। वानप्रस्थ के लिये सामग्री सहित गृह्य की अग्नि को लेकर वन में वास करना, जटा, नख, श्मश्रु आदि रखना, भूमि पर सोना, शीत-ताप सहना, अग्निहोत्र दर्शपौर्णमास, बलिकर्म आदि करना इत्यादि। संन्यासी के लिये सब वस्तुओं को त्याग अग्नि और गृह से रहित होकर भिक्षा द्वारा निर्वाह करना, नख आदि को कटाए और दंड कमंडलु लिए रहना। यह तो वर्ण और आश्रम के अलग अलग धर्म हुए। इन दोनों के संयुक्त धर्म को वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। जैसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी का पलाशदंड धारण करना। जो धर्म किसी गुण या विशेषता के कारण हो उसे गुणधर्म कहते हैं—जैसे, जिसका शास्त्रोक्त रीति से अभिषेक हुआ हो, उस राजा का प्रजापालन करना। निमित्त धर्म वह है जो किसी निमित्त से किया जाय। जैसे शास्त्रोक्त कर्म न करने या शास्त्रविरुद्ध करने पर प्रायश्चित्त करना। इसी प्रकार के विशेष धर्म कुलधर्म, जातिधर्म आदि हैं।

५. वह वृत्ति या आचरण जो लोक या समाज की स्थिति के लिये आवश्यक हो। वह आचार जिससे समाज की रक्षा और सुख शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम गति मिले। कल्याणकारी कर्म। सुकृत। सदाचार। श्रेय। पुण्य। सत्कर्म।

विशेष—स्मृतिकारों ने वर्ण, आश्रम, गुण और निमित्त धर्म के अतिरिक्त साधारण धर्म भी कहा है जिसका मानना ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक के लिये समान रूप से आवश्यक है। मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा की तुष्टि को धर्म का साक्षात् लक्षण बताकर साधारण धर्म

में दस बातें कही हैं—धृति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इंद्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध। मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है वही समाज को धारण करनेवाला है, उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती। मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है। अतः प्रत्येक सभ्य देश के जनसमुदाय के बीच श्रद्धा भक्ति, दया प्रेम, आदि चित्त की उदात्त मनोवृत्तियों से संबंध रखनेवाले परोपकार धर्म की स्थापना हुई है, यहाँ तक कि परलोक आदि पर विश्वास न रखनेवाले योरप के आधिभौतिक तत्ववेत्ताओं को भी समाज की रक्षा के निमित्त इस सामान्य धर्म का स्वीकार करना पड़ा है। उन्होंने इस धर्म का लक्षण यह बताया है कि जिस कर्म से अधिक मनुष्यों को अधिक सुख मिले वह धर्म है। बौद्ध शास्त्रों में इसी धर्म को शील कहा गया है। जैन शास्त्रों ने अहिंसा को परम धर्म माना है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—धर्म कमाना=धर्म करके उसका फल संचित करना। धर्म की धूम=धर्म का अत्यधिक प्रचार। उ०—पवित्र वैदिक धर्म की ही धूम थी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७५। धर्म खाना=धर्म की शपथ खाना। धर्म की दुहाई देना। धर्म बिगाड़ना=(१) धर्म के विरुद्ध आचरण करना। धर्मभ्रष्ट करना। (२) स्त्री का सतीत्व नष्ट करना। धर्म रखना=धर्म के विरुद्ध आचरण करने से बचना या बचाना। धर्म लगती कहना=धर्म का ध्यान रखकर कहना। ठीक ठीक कहना। सत्य कहना। उचित बात कहना। जैसे,—हम तो धर्म लगती कहेंगे, चाहे किसी को भला लगे या बुरा। धर्म से कहना=सत्य सत्य कहना। ठीक ठीक कहना। उचित बात कहना।

६. किसी आचार्य या महात्मा द्वारा प्रवर्तित ईश्वर, परलोक आदि के संबंध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली। उपासनाभेद। मत। संप्रदाय। पंथ। मजहब। जैसे, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, इसलाम धर्म।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—बदलना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन नहीं है।

७. परस्पर व्यवहार संबंधी नियम जिसका पालन राजा, आचार्य या मध्यस्थ द्वारा कराया जाय। नीति। न्यायव्यवस्था। कायदा। कानून। जैसे, हिंदू धर्मशास्त्र।

यौ०—धर्मराज। धर्माधिकारी। धर्माध्यक्ष।

विशेष—आचार और व्यवहार दोनों का प्रतिपादन स्मृतियों में हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति में आचाराध्याय और व्यवहाराध्याय अलग अलग हैं। दायविभाग, सीमाविवाद, ऋणादान, दंडयोग्य अपराध आदि सब विषय अर्थात् दीवानी और फौजदारी के सब मामले व्यवहार के अंतर्गत हैं। राजसभा में या धर्माध्यक्ष के सामने इन सब व्यवहारों (मुकदमों) का निर्णय होता था।

८. उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति। न्यायबुद्धि। विवेक। ईमान। उ०—जैसा तुम्हारे धर्म में आवे करो, मारो चाहे छोड़ो।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

मुहा०—धर्म में आना=अंतःकरण में उचित जान पड़ना।

९. धर्मराज। यमराज। १०. धनुष। कमान। ११. सोमपायी। १२. वर्तमान अवसर्पिणी के १५ वें अर्हत् का नाम (जैन)। १३. जन्मलग्न से नवें स्थान का नाम जिसके द्वारा यह विचार किया जाता है कि बालक कहाँ तक भाग्यवान् और धार्मिक होगा। १४. युधिष्ठिर। धर्मराज (को०)। १५. सत्संग (को०)। १६. प्रकृति। स्वभाव। तरीका। ढंग। १७. आचार (को०)। १८. अहिंसा (को०)। १९. एक उपनिषद् (को०)। २०. आत्मा (को०)। २१. निष्पक्ष होने का भाव या स्थिति (को०)।

धर्मकथक—संज्ञा पुं० [सं०] विधि, नियम या कानून का व्याख्याता [को०]।

धर्मकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कर्म या विधान जिसका करना किसी धर्मग्रंथ में आवश्यक ठहराया गया हो। जैसे, संध्योपासन आदि। २. विहित या उचित कर्म (को०)।

धर्मकाम—वि० [सं०] १. धर्मकृत्य में संलग्न। उचित कार्य करनेवाला [को०]।

धर्मकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. एक जैन मुनि [को०]।

धर्मकारण—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का प्रेरक हेतु [को०]।

धर्मकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक कृत्य। धर्म का काम [को०]।

धर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] १. राज्यशासन। शासन। २. पति (को०)।

धर्मकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के विचार से किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय, यह द्वैधीभाव। धर्मपालन के मार्ग में उत्पन्न बाधक स्थिति [को०]।

धर्मकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक कार्य या कर्मकांड [को०]।

धर्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यपवंशीय सुकेतु राजा के पुत्र का नाम २. बुद्धदेव।

धर्मकोश, धर्मकोष—संज्ञा पुं० [सं०] कानूनों या नियमों का संग्रह। विधानकोश [को०]।

धर्मक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक कृत्य। धर्मकार्य [को०]।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुरुक्षेत्र। २. भारतवर्ष जो धर्म के संचय के लिये कर्मभूमि माना गया है। ३. धार्मिक पुरुष (को०)।

धर्मगुप्त[१]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

धर्मगुप्त[२]—वि० धर्म का रक्षण और पालन करनेवाला [को०]।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० धर्मग्रन्थ] वह ग्रंथ या पुस्तक जिसमें किसी जनसमाज के आचार व्यवहार और उपासना आदि के संबंध में शिक्षा हो।

धर्मघट—संज्ञा पुं०[सं०] सुगंधित जल से भरा हुआ घड़ा जिसके वैशाख

में दान देने का माहात्म्य काशीखंड, हेमाद्रि दानखंड आदि में है।

धर्मघड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धर्म + हिं॰ घड़ी] बड़ी घड़ी जो ऐसे स्थान पर लगी हो जिसे सब कोई देख सके।

धर्मघ्न—वि॰ [सं॰] धर्मघातक। धर्महीन। अधार्मिक [को॰]।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. धर्म का समूह। २. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र (वाल्मीकि॰)। ३. बुद्ध की धर्मशिक्षा जिसका आरंभ काशी से हुआ था। ४. बुद्धदेव। ५. अशोक स्तंभ पर निर्मित चक्र जो तिरंगे झंडे पर है। उ॰ धर्मचक्र रक्षित तिरंग ध्वज उठ अविजित फहराता।—युगपथ, पृ॰ ८८।

धर्मचरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'धर्मचर्या' [को॰]।

धर्मचर्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धर्म का आचरण।

धर्मचारिणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पत्नी। २. पतिव्रता [को॰]।

धर्मचारी—वि॰ [सं॰ धर्मचारिन्] [वि॰ स्त्री॰ धर्मचारिणी] धर्म का आचरण करनेवाला।

धर्मचिंतक—वि॰ [सं॰ धर्मचिन्तक] १. धर्म का विचार करनेवाला। २. स्मृतिकार [को॰]।

धर्मचिंतन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धर्मचिन्तन] धर्म की भावना। धर्मसंबंधी बातों का विचार।

धर्मचिंता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धर्मचिन्ता] दे॰ 'धर्मचिंतन' [को॰]।

धर्मच्छल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धर्म का अतिक्रमण या उल्लंघन [को॰]।

धर्मच्युत—वि॰ [सं॰] धर्मभ्रष्ट। पतित [को॰]।

धर्मज[1]—वि॰ [सं॰] धर्म से उत्पन्न।

धर्मज[2]—संज्ञा पुं॰ १. धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम औरस पुत्र (क्योंकि उसके द्वारा पिता पितृऋण से मुक्त होता है)। २. धर्मपुत्र युधिष्ठिर। ३. एक बुद्ध का नाम। ४. नरनारायण।

धर्मजन्मा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धर्मजन्मन्] युधिष्ठिर [को॰]।

धर्मजन्य—वि॰ [सं॰] धर्म से संबंधित। धर्म विषयक [को॰]।

धर्मजिज्ञासा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. धर्म के विषय में जानकारी करने की इच्छा। २. धर्मानुकूल आचरण की जिज्ञासा [को॰]।

धर्मजीवन[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धर्मकृत्य कराकर जीविका अर्जन करनेवाला ब्राह्मण।

धर्मजीवन[2]—वि॰ १. जाति धर्म के अनुकूल आचरण करनेवाला। धर्मानुकूल आचरण करनेवाला [को॰]।

धर्मज्ञ—वि॰ [सं॰] धर्म को जाननेवाला।

धर्मण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. धामिन वृक्ष। २. धामिन साँप। ३. धामिन पक्षी।

धर्मतः—अव्य॰ [सं॰] धर्म से। धर्म का ध्यान रखते हुए। धर्म को साक्षी करके। सच सच। जैसे,—जो कुछ हुआ हो मुझसे धर्मतः कहो।

धर्मतात—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धर्म+तात] युधिष्ठिर। उ॰—धर्मतात सू अजातरिपु कौंतेय कुरराइ।—अनेकार्थ॰, पृ॰ ३४।

धर्मत्याग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. धर्म का आचरण न करना। २. अपना धर्म छोड़ देना [को॰]।

धर्मद[1]—वि॰ [सं॰] अपने धर्म का फल दूसरे को देनेवाला [को॰]।

धर्मद[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कार्तिकेय का एक अनुचर [को॰]।

धर्मदक्षिणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धार्मिक कर्म करानेवाले को दिया जानेवाला द्रव्य या धन [को॰]।

धर्मदा—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ धर्म + दा] धर्म प्रदान करनेवाली। उ॰—धरा जिनको देहदा। जिनको न भूमा धर्मदा।—अपरा॰, पृ॰ ६२।

धर्मदान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह दान जो किसी निमित्त से या विशेष फल की प्राप्ति (जैसे, ग्रहों की शांति आदि) के अर्थ न किया जाय, केवल धर्म या सात्विक बुद्धि की प्रेरणा से किया जाय।

धर्मदापन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] समझाने बुझाने से या अपने आप जब ऋणी ऋण का धन लौटावे, तो उसको धर्मदापन कहते हैं।

धर्मदार—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धर्मपत्नी।

धर्मदारा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धर्मपत्नी। ब्याह कर लाई हुई स्त्री [को॰]।

धर्मदुघा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह गाय जिसका दूध केवल धार्मिक कार्यों के लिये दुहा जाता हो [को॰]।

धर्मदेशक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धर्मोपदेशक [को॰]।

धर्मद्रवी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गंगा नदी।

धर्मद्रोही[1]—वि॰ [सं॰] धर्म न माननेवाला। अधर्मी [को॰]।

धर्मद्रोही[2]—संज्ञा पुं॰ राक्षस। दैत्य [को॰]।

धर्मधक्का—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धर्म + हिं॰ धक्का] १. वह कष्ट जो धर्म के लिये उठाना पड़े। वह हानि या कठिनाई जो परोपकार आदि के लिये सहनी पड़े। २. वह कष्ट या प्रयत्न जिससे निज का कोई लाभ न हो। व्यर्थ का कष्ट।

धर्मधातु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बुद्धदेव।

धर्मधारी—वि॰ [सं॰ धर्म + धारिन्] धार्मिक। धर्मानुकूल आचरण करनेवाला। उ॰—महा धर्मधारी करमचंद भूप। तिनके रतनसिंघ मनमथस्वरूपं।—प॰ रासो, पृ॰ ६।

धर्मधुर्य—वि॰ [सं॰] जो न्याय करने में सबसे आगे हो [को॰]।

धर्मध्वज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. धर्म का आडंबर खड़ा करके स्वार्थ साधनेवाला मनुष्य। धार्मिकों का सा वेश और ढंग बनाकर लोगों से पुजानेवाला मनुष्य। पाखंडी। उ॰—धिक धर्मध्वज धंधक धोरी।—तुलसी (शब्द॰)। २. मिथिला के एक जनकवंशीय राजा जिनकी कथा महाभारत के शांतिपर्व में है। ये संन्यासधर्म और मोक्षधर्म के जाननेवाले परम ब्रह्मज्ञानी राजा थे।

विशेष—एक बार सुलभा नाम की एक संन्यासिनी सारी पृथ्वी पर घूमती हुई धर्मध्वज की परीक्षा के लिये उनकी सभा में योगबल से अत्यंत मनोहर रूप धारण करके आई। राजा चकित होकर उसका परिचय आदि पूछ ही रहे थे कि उसने

अपनी बुद्धि द्वारा राजा की बुद्धि में और नेत्र द्वारा राजा के नेत्र में यह देखने के लिये प्रवेश किया कि वे मोक्षधर्म के वेत्ता हैं या नहीं। राजा उसका अभिप्राय समझ गए और लिंग शरीर धारण करके उससे उसका परिचय पूछने लगे और उसे उसके आचरण के लिये भला बुरा कहने लगे। राजा ने कहा—तुमने अपनी बुद्धि द्वारा जो हमारे शरीर में प्रवेश किया उससे अनुचित संयोग हुआ, इससे तुम्हें तो व्यभिचार दोष लगा ही, मैं भी उसका भागी हुआ। सुलभा ने आत्मज्ञान की अनेक बातें कहकर राजा को इस प्रकार समझाया—'मेरा संपर्क तो अपने शरीर के साथ नहीं है, आपके शरीर के साथ क्योंकर हो सकता है? मैंने अपने सत्वगुण के बल से आपके शरीर में प्रवेश किया। यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपका कोई अपकार नहीं हो सकता। वन के बीच शून्य कुटी में प्रवेश करना संन्यासी का धर्म है अतः मैंने भी आपके चेष्टाशून्य शरीर में प्रवेश किया है और आज भर रहकर कल चली जाऊँगी'। राजा यह सुनकर चुप हो रहे।

धर्मध्वजी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मध्वजिन्] पाखंडी। दे० 'धर्मध्वज'।

धर्मनंदन—संज्ञा पुं० [सं० धर्मनन्दन] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मनंदी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मनन्दिन्] एक बौद्ध पंडित जिन्होंने कई बौद्धशास्त्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

धर्मनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनों के पंद्रहवें तीर्थंकर।

विशेष—जैन ग्रंथों के अनुसार ये रत्नपुरी नाम की नगरी में इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम भानुराज और माता का नाम सुव्रता देवी था। इनका डील ४५ धनुष का और आयु दस लाख वर्ष की थी। दीक्षा के लिये इन्होंने दो दिन का उपवास किया था। दधिपर्ण वृक्ष इनका दीक्षावृक्ष था। शुक्ला माघशुक्ल त्रयोदशी को इनको दीक्षा हुई थी। दीक्षा के पीछे दो वर्षों तक ये छद्मस्थ रहे, फिर पूस की पूर्णिमा को इन्होंने ज्ञानलाभ किया।

धर्मनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. एक राजा का नाम।

धर्मनिरपेक्ष—वि० [सं० धर्म+निरपेक्ष] (वह राज्य या शासन) जहाँ किसी धर्म की मुख्यता न हो, सभी धर्मों का समान आदर हो।

धर्मनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म में भक्ति या निष्ठा [को०]।

धर्मनिष्ठ—वि० [सं०] धर्मपरायण। धर्म में जिसकी आस्था हो। धार्मिक।

धर्मनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म में आस्था। धर्म में श्रद्धा, भक्ति और प्रवृत्ति।

धर्मनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कर्तव्यपालन। २. नैतिक या धार्मिक आचरण [को०]।

धर्मपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यवस्थापत्र जो किसी राजा या धर्माधिकारी की ओर से दिया जाय।

धर्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष। धर्मात्मा। २. वरुण देवता।

धर्मपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार कूर्मविभाग में दक्षिण देश के पास का एक जनस्थान जो कदाचित् आधुनिक धर्मपटम (जिला मलाबार) के आसपास रहा हो। २. श्रावस्ती नगरी। ३. गोल मिर्च।

धर्मपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्र की रीति से विवाह हुआ हो। विवाहिता स्त्री।

विशेष—दक्षस्मृति में लिखा है कि प्रथमा स्त्री ही धर्मपत्नी है। ब्याह कर लाई दूसरी स्त्री को कामपत्नी कहा गया है।

धर्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गूलर (जिसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्यों में काम आते हैं)।

धर्मपथ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्ममार्ग। नैतिक मार्ग [को०]।

धर्मपर—वि० [सं०] धर्मानुयायी। धर्मानुकूल आचरण करनेवाला [को०]।

धर्मपरायण—वि० [सं०] धर्मानुयायी। धर्मानुसार कार्य करनेवाला [को०]।

धर्मपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] योग दर्शन के अनुसार सब भूतों और इंद्रियों के रूप या स्थिति से दूसरे रूप या स्थिति में प्राप्त होने की वृत्ति। एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति। जैसे, मिट्टी के पिंडतारूप धर्म के निवृत्त होने पर घटस्वरूप धर्म की प्राप्ति।

विशेष—पतंजलि ने अपने योगदर्शन में चित्त के जिस प्रकार निरोध, समाधि और एकाग्रता ये तीन परिणाम कहे हैं उसी प्रकार सूक्ष्म, स्थूल भूतों तथा इंद्रियों के भी तीन परिणाम बतलाए हैं—धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम। पुरुष के अतिरिक्त और सब वस्तुएँ इन परिणामों के अधीन अर्थात् परिणामी हैं। प्रत्येक धर्मी अर्थात् प्राकृतिक द्रव्य तीन प्रकार के धर्मों से युक्त है—शांत, उदित और अव्यपदेश्य। वस्तु का जो धर्म अपना व्यापार कर चुका हो, वह शांतधर्म कहलाता है। जैसे, घट के फूट जाने पर घटत्व, बीज के अंकुरित हो जाने पर बीजत्व। जो धर्म विद्यमान रहता है उसे उदित कहते हैं, जैसे, घट के बने रहने पर घटत्व। जो धर्म प्राप्त होनेवाला है और व्यक्त या निर्दिष्ट न हो सकने पर भी शक्ति रूप से स्थित या निहित रहता है उसे अव्यपदेश्य कहते हैं, जैसे बीज में वृक्ष होने का धर्म।

धर्मपरिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मसभा। न्याय करनेवाली सभा। न्यायाध्यक्षों का मंडल।

धर्मपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र का अध्यापक [को०]।

धर्मपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का पालन या रक्षा करनेवाला। २. दंड (जिसके भय से लोग धर्म का पालन करते हैं)। ३. राजा दशरथ के एक मंत्री का नाम।

धर्मपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का प्रधान स्थान । २. काशी । ३. वह स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिले ।

धर्मपीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मपीडा] धर्म या न्याय के विरुद्ध आचरण ।

धर्मपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म के पुत्र युधिष्ठिर । २. नरनारायण । ३. धर्मानुसार पुत्र कहकर जिसका ग्रहण किया गया हो ।

धर्मपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमपुरी जहाँ शरीर छूटने पर प्राणियों के किए हुए धर्म अधर्म का विचार होता है । २ कचहरी । न्यायालय ।

धर्मपुस्तक—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + पुस्तक] धर्म विषयक पुस्तक । धर्मग्रंथ [को०] ।

धर्मप्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] (लाक्ष०) तलवार [को०] ।

धर्मप्रतिरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] परायों को दिया हुआ ऐसे सशक्त और संपन्न मनुष्य का दान जिसके अपने लोग (कुटुंबी आदि) कष्ट में हों ।

विशेष—मनु ने कीर्ति, यश आदि के लिये दिए हुए ऐसे दान को धर्म नहीं कहा है, धर्म का प्रतिरूपक (नकल) कहा है ।

धर्मप्रधान—वि० [सं०] जिसमें धर्म मुख्य या निर्दिष्ट हो [को०] ।

धर्मप्रभास—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम ।

धर्मप्रवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० धर्मप्रवक्तृ] १. नियम या कानून का व्याख्याता । २. धर्म का अध्यापक [को०] ।

धर्मप्रवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम । २. धर्म की व्यवस्था या कर्तव्यशास्त्र (को०) । ३. नियम या कानून की व्याख्या (को०) ।

धर्मबल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के आचरण का बल [को०] ।

धर्मवाणिजिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो बनिए के समान धर्म द्वारा लाभ पाने की चेष्टा करता है । २. वह जो धार्मिक कार्य फलाशा से करता है, जैसे लाभ की आशा से बनिया व्यापार करता है [को०] ।

धर्मबाह्य—वि० [सं०] धर्मविरुद्ध [को०] ।

धर्मबुद्धि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म अधर्म का विवेक । भले बुरे का विचार ।

धर्मबुद्धि[2]—वि० १. धर्मानुकूल आचरण करनेवाला । २. उचित अनुचित का विचार करनेवाला [को०] ।

धर्मभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जो धर्म के नाते बहन हो । २. गुरुकन्या [को०] ।

धर्मभागिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपरायण पत्नी [को०] ।

धर्मभाणक—संज्ञा पुं० [सं०] कथा पुराण बाँचनेवाला । कथक्कड़ ।

धर्मभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० धर्मभ्रातृ] १. गुरुभाई । २. धर्म के नाते भाई । ३. गुरुपुत्र [को०] ।

धर्मभिक्षुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने धर्मार्थ भिक्षावृत्ति ग्रहण की हो ।

विशेष—मनु ने नौ प्रकार के धर्मभिक्षुक गिनाए हैं—पुत्र की कामना से विवाह चाहनेवाला; यज्ञ की इच्छा रखनेवाला; पथिक; जो यज्ञ में अपना सर्वस्व लगाकर निर्धन हो गया हो; गुरु माता और पिता के भरणपोषण के लिये धन चाहनेवाला; अध्ययन की इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी और रोगी । ये नव धर्मभिक्षुक ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं । इन्हें यज्ञ की वेदी के भीतर बैठाकर दक्षिणा के सहित अन्नदान देना चाहिए । इनके अतिरिक्त जो और ब्राह्मण हों उन्हें वेदी के बाहर बैठाना चाहिए ।

धर्मभीरु—वि० [सं०] जिसे धर्म का भय हो । जो अधर्म करते हुए बहुत डरता हो ।

धर्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । २. धर्मपरायण व्यक्ति । धर्मनिष्ठ व्यक्ति [को०] ।

धर्मभ्रष्ट—वि० [सं०] वह जो धर्म से पतित हो गया हो । धर्मच्युत [को०] ।

धर्ममति—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मबुद्धि' ।

धर्ममहापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मविभाग का मंत्री [को०]

धर्ममूल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के आधार वेद [को०] ।

धर्ममेघ—संज्ञा पुं० [सं०] योग में असंप्रज्ञात समाधि के अंतर्गत एक समाधि जिसमें वैराग्य के अभ्यास से चित्त सब वृत्तियों से रहित हो जाता है, अर्थात् इतना असमर्थ हो जाता है कि उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है, केवल कुछ संस्कार मात्र रह जाता है ।

धर्मयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा यज्ञ जिसमें किसी की बलि न दी जाय [को०] ।

धर्मयुग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ययुग ।

धर्मयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह युद्ध जिसमें किसी प्रकार का अन्याय या नियम का भंग न हो । २ धर्म की रक्षा या प्रचार के लिये किया जानेवाला युद्ध । जिहाद ।

धर्मयूप, धर्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

धर्मरक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] योग (यवन) देशीय एक बौद्ध धर्मोपदेशक या स्थविर जिसे महाराज अशोक ने अपरांतक (बिलूचिस्तान) देश में उपदेश देने के लिये भेजा था ।

धर्मरत—वि० [सं०] धर्मानुयायी । धर्मपरायण । [को०] ।

धर्मरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मानुराग । धर्मप्रेम [को०] ।

धर्मरति[2]—वि० धर्मपरायण [को०] ।

धर्मराइ, धर्मराई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + राज] दे० 'धर्मराज' । उ०—तीजे प्रकास रहे धर्मराई । नर्क सुर्ग जिन लीन बनाई । करमन फल जीवन भुगताई । ऐसा प्रबल पसारा है ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६२ ।

धर्मराज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का पालन करनेवाला, राजा । २. युधिष्ठिर । ३. यमराज । ४. जिन । ५. न्यायकर्ता । न्यायाधीश । उ०—सेनापति बुधजन, मंगल गुरुगण, धर्मराज मन बुद्धि घनी ।—केशव (शब्द०) ।

धर्मराज[२]—वि० धर्मशील [को०]।

धर्मराज[३]—संज्ञा पुं० [सं० धर्मराजन्] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मराजपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृतियों के अनुसार धर्म में अभियुक्त दोषी है या निर्दोष, इसकी एक दिव्य परीक्षा।

विशेष—बृहस्पति, पितामह आदि स्मृतिकारों ने जो विधान लिखे हैं वे थोड़े बहुत भिन्न होने पर भी वस्तुतः एक ही से हैं। धर्म और अधर्म की दो श्वेत और कृष्ण मूर्तियाँ भोजपत्र पर बनाकर और उनकी प्राणप्रतिष्ठापूर्वक पूजा करके मिट्टी के दो बराबर पिंडों में उन्हें रखे। फिर दोनों पिंडों को दो नए घड़ों में रखकर अभियुक्त को बुलाने और किसी घड़े पर हाथ रखने के लिये कहे। यदि उसका हाथ धर्मपिंडवाले घड़े पर पड़े तो उसे निर्दोष समझे।

धर्मराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारनाथ का एक बौद्ध स्तूप [को०]।

धर्मराय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्मराज] यम। दे० 'धर्मराज'। उ०—धोखे जीव विगोयहो धर्मराय धरि खाय।—कबीर सा०, पृ० १५२२।

धर्मरोधी—वि० [सं० धर्मरोधिन्] धर्मविरुद्ध। अन्यायपूर्ण। [को०]।

धर्मलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म या व्यवस्था का मूल चिह्न या लक्षण। २. वेद [को०]।

धर्मलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा दर्शन [को०]।

धर्मलुप्ता उपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा जिसमें धर्म अर्थात् उपमान और उपमेय में समान रूप से पाई जानेवाली बात का कथन न हो। दे० 'उपमा'।

धर्मलोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ अधर्म। अनाचार। २. कर्तव्य का लोप [को०]।

धर्मवत्सल—वि० [सं०] जिसे धर्म वा कर्तव्य प्यारा हो [को०]।

धर्मवर्ती—वि० [सं० धर्मवर्तिन्] धार्मिक। धर्मानुयायी। धर्माचरण करनेवाला [को०]।

धर्मवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

धर्मवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० धर्मवर्मन्] धर्मरक्षक [को०]।

धर्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म या कर्तव्य के विषय में उत्पन्न वाद पर विचार [को०]।

धर्मवान्—वि० [सं० धर्मवत्] धर्मनिष्ठ। धर्मात्मा [को०]।

धर्मवासर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्णिमा। २. बीता हुआ दिन या कल [को०]।

धर्मवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसका वाहन धर्म हो। शिव। २. धर्मराज का वाहन महिष। भैंसा।

धर्मविजयी—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नम्रता या विनय ही से संतुष्ट हो जाय।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार दुर्बल राजा को पहले धर्मविजयी राजा का सहारा लेना चाहिए।

धर्मविद्—वि० [सं०] धर्मज्ञाता [को०]।

धर्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मविधान या कर्तव्य का ज्ञान [को०]।

धर्मविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धर्म संबंधी व्यवस्था। २. नियम या कानून की व्यवस्था [को०]।

धर्मविप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का व्यतिक्रम। २. धार्मिक क्रांति या उथल पुथल [को०]।

धर्मविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मपरिवर्तन। उ०—अकबर के पूर्व मुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे उनमें मूर्तियों के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्मविपर्यय आदि के दृश्यों ने जनता में अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी।—अकबरी० (भू०), पृ० ३।

धर्मविवेचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म के संबंध में चिंतन। २. धर्म अधर्म का विचार। ३. दूसरे के किए हुए कर्म का विचार कि वह सदोष है या निर्दोष। किसी के दोषी या निर्दोष होने का निर्णय।

धर्मवीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो धर्म करने में साहसी हो।

विशेष—रसनिर्णय के ग्रंथों में वीररस के अंतर्गत चार प्रकार के वीर कहे गए हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर।

धर्मवृद्ध—वि० [सं०] जो धर्माचरण द्वारा श्रेष्ठ हो।

धर्मवैतंसिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पाप के द्वारा धन कमाकर लोगों को दिखाने और धार्मिक प्रसिद्धि होने के लिये बहुत दानपुण्य करता हो।

धर्मव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी प्रश्न पर अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रदत्त धर्मानुमोदित मत या निर्णय। २. निर्णय। फैसला [को०]।

धर्मव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिलापुर निवासी एक व्याध जिसने कौशिक नामक एक तपस्वी वेदाध्यायी ब्राह्मण को धर्म का तत्व समझाया था।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में इसकी कथा इस प्रकार है। कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठकर वेदपाठ कर रहे थे, इतने में एक बगली ने पेड़ पर से उनके ऊपर बीट कर दी। कौशिक ने कुछ क्रुद्ध होकर उसकी ओर देखा और वह मरकर गिर पड़ी। इसपर कौशिक को बड़ा दुःख हुआ और वे भिक्षा माँगने के लिये एक परिचित गृहस्थ के घर पहुँचे। उसकी गृहिणी उन्हें बैठाकर भीतर अन्न आदि लाने गई। पर इसी बीच में उसका पति भूखा प्यासा कहीं से आ गया और वह उसकी सेवा में लग गई। पीछे जब उसे द्वार पर बैठे हुए ब्राह्मण की सुध हुई तब वह भिक्षा लेकर तुरंत बाहर आई और विलंब का कारण बताकर क्षमाप्रार्थना करने लगी। कौशिक इसपर बहुत बिगड़े और ब्राह्मण के कोप का भयंकर फल बताकर उसे डराने लगे। इसपर उस स्त्री ने कहा—'मैं बगली नहीं हूँ। आपके क्रोध से मेरा क्या हो सकता है? मैं पति को अपना परम देवता समझती हूँ। उनकी सेवा से छुट्टी पाकर तब मैं भिक्षा लेकर आई हूँ। क्रोध बहुत बुरी वस्तु है। जो क्रोध के वश में नहीं होता देवता उसी को ब्राह्मण समझते हैं। यदि आपको धर्म का यथार्थ

तत्व जानना हो तो मिथिला में धर्मव्याध के पास जाइए'। कौशिक अवाक् हो गए और अपने को धिक्कारते हुए मिथिला की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि धर्मव्याध नाना प्रकार के पशुओं का मांस रखकर बेच रहा है। धर्मव्याध ने ब्राह्मण देवता को देखते ही आदर से उठकर बैठाया और कहा —'आपको एक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा है।' कौशिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने धर्मव्याध से कहा—'तुम इतने ज्ञानसंपन्न होकर ऐसा निकृष्ट कर्म क्यों करते हो'? धर्मव्याध ने कहा, 'महाराज ! यह पितृपरंपरा से चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है; अतः मैं इसी में स्थित हूँ। मैं अपने माता पिता और अतिथियों की सेवा करता हूँ, देवपूजन और शक्ति के अनुसार दान करता हूँ, झूठ नहीं बोलता, बेईमानी नहीं करता। जो मांस बेचता हूँ वह दूसरों के मारे हुए पशुओं का होता है। मेरी वृत्ति भयंकर अवश्य है, पर किया क्या जाय ? मेरे लिये यही निर्दिष्ट की गई है। यही मेरा कुलोचित कर्म है, उसका त्याग करना उचित नहीं। पर साथ ही सदाचार के आचरण में मुझे कोई बाधा नहीं।' इसके उपरांत धर्मव्याध ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत इस प्रकार सुनाया —मैं पूर्वजन्म में वेदाध्यायी ब्राह्मण था। मैं एक दिन अपने मित्र एक राजा के साथ शिकार में गया और वहाँ जाकर मैंने एक मृग के ऊपर तीर चलाया। पीछे जान पड़ा कि मृग के रूप में एक ऋषि थे। ऋषि ने मुझे शाप दिया कि 'तूने मुझे बिना अपराध मारा इससे तू शूद्रयोनि में जाकर एक व्याध के घर उत्पन्न होगा।'

धर्मव्रत - वि० [सं०] धर्म का व्रत लेनेवाला। धर्मपरायण [को०]।

धर्मव्रता —संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वरूपा के गर्भ से उत्पन्न धर्म नामक एक राजा की कन्या।

विशेष—वायुपुराण में लिखा है कि इसने पातिव्रत्य की प्राप्ति के लिये घोर तप किया था। मरीचि ऋषि ने इसे पृथ्वी पर सब से बड़ी पतिव्रता देख उसके साथ विवाह किया था।

धर्मशाला—संज्ञा पुं० [सं०] वह मकान जो पथिकों या यात्रियों के टिकने के लिये धर्मार्थ बना हो और जिसका कुछ भाड़ा आदि न लगता हो। २. वह स्थान जहाँ पुण्य के लिये नियमपूर्वक दान आदि दिया जाता हो। सत्र। ३. वह स्थान जहाँ धर्म अधर्म का निर्णय हो। न्यायालय। कचहरी।

धर्मशासन —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मशास्त्र' [को०]।

धर्मशास्त्र —संज्ञा पुं० [सं०] किसी जनसमूह के लिये उचित आचार व्यवहार की व्यवस्था जो किसी महात्मा या आचार्य की ओर से होने के कारण मान्य समझी जाती हो। वह ग्रंथ जिसमें समाज के शासन के निमित्त नीति और सदाचार संबंधी नियम हों। जैसे, मानव धर्मशास्त्र।

विशेष— हिंदुओं के धर्मशास्त्र 'स्मृति' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें मनुस्मृति सबसे प्रधान समझी जाती है। मनु के अतिरिक्त यम, वशिष्ट, अत्रि, दक्ष, विष्णु, अंगिरा, उशना, बृहस्पति, व्यास, आपस्तंब, गौतम, कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य, पराशर, संवर्त्त, शंख और हारीत भी स्मृतिकार हुए हैं। दे० 'स्मृति'।

धर्मशास्त्री—संज्ञा पुं० [सं० धर्मशास्त्रिन्] धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवस्था देनेवाला। धर्मशास्त्र जाननेवाला पंडित।

धर्मशील—वि० [सं०] धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला।

धर्मशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशील होने का भाव। धर्माचरण की वृत्ति।

धर्मसंकट—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसङ्कट] विवेक की वह स्थिति जिसमें किसी कार्य का करना भी उचित लगे और न करना भी उचित। कार्य को करने की कठिनाई [को०]।

धर्मसंग—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसङ्ग] १. धर्मानुराग। धर्म से लगाव। २. ढोंग [को०]।

धर्मसंगीति—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मसङ्गीति] १. धर्म के संबंध में वाद-विवाद। २. बौद्धों का धर्मसम्मेलन [को०]।

धर्मसंघ —संज्ञा पुं० [सं० धर्म + सङ्घ] धर्म का संगठन। धर्मसभा [को०]

धर्मसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधि विधानों का समुच्चय, जिनकी रचना मनु और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों ने की है [को०]।

धर्मसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न्यायालय। कचहरी। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश न्याय करे। अदालत। उ०—धर्मसभा महँ रामहिं आना। श्वान चलो निज पीर बखानो। —केशव (शब्द०)। २. वह स्थान जहाँ धार्मिक विषयों की चर्चा या उपदेश हो।

धर्मसमय—संज्ञा पुं० [सं०] नियम या कानून की अनिवार्यता [को०]।

धर्मसहाय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों में साथ देनेवाला [को०]।

धर्मसार —संज्ञा पुं० [सं०] १. पुण्य कर्म। उत्तम कर्म। २. धर्मतत्व [को०]।

धर्मसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] धर्मशाला। उ०—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।...झूँठ पैड दे बसुधा हमको नहीं रची धर्मसारी।—सूर (शब्द०)।

धर्मसावर्णि —संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार ग्यारहवें मनु।

धर्मसीलता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशीलता] दे० 'धर्मशीलता'। उ०—यह काँपै धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी।—मानस, ६।२२।

धर्मसुत —संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मसू —संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मप्रेरक। २. धूम्याट पक्षी।

धर्मसूत्र —संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि प्रणीत धर्मनिर्णय पर एक ग्रंथ।

धर्मसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] सेतु की तरह धर्म को धारण करनेवाला।

धर्मसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन महास्थविर या बौद्ध महात्मा जो ऋषिपत्तन (सारनाथ, काशी) संघ के प्रधान थे।

विशेष—अनुराधापुर (सिंहलद्वीप) के राजा दुष्टगामिनी ने जब महास्तूप की स्थापना की थी (ई० पू० १५७) तब ये बारह हजार अनुचरों के साथ उपस्थित हुए थे।

२. जैनों के द्वादश अंगविदों में से एक।

धर्मसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का आचरण या पालन [को०]।

धर्मस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० धर्मस्कन्ध] धर्मास्तिकाय पदार्थ। (जैन)।

धर्मस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश।

विशेष—भारतीय आर्यों में लोक को व्यवस्थित करनेवाले नियम जिनका पालन राज्य करता था, धर्म ही कहलाते थे। कानून भी धर्म कहलाते थे। कानून धर्म से अलग नहीं माना जाता था।

धर्मस्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक कार्य करनेवाली संस्था या समाज [को०]।

धर्मस्व[2]—वि० धर्मकार्यों के लिये समर्पित (द्रव्य आदि)।

धर्मस्थीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय।

धर्मस्थीय[2]—वि० धर्म विषयक। नियम या कानून संबंधी [को०]।

धर्मस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मस्वामिन्] बुद्ध [को०]।

धर्मांग—संज्ञा पुं० [सं० धर्माङ्ग] बक। बगला (जिसका अंग धर्म के समान शुभ्र होता है)।

धर्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अन्तर] भिन्न धर्म।

धर्मांतरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अन्तरण] धर्म परिवर्तन। भिन्न धर्म स्वीकार करना [को०]।

धर्मांध—वि० [सं० धर्म + अन्ध] धर्म में अंध श्रद्धा रखनेवाला। कट्टर धार्मिक [को०]।

धर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

धर्मांसु(ु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मांशु'। उ०—उदित धर्मांसु संताप संपाति नवपन्थ जीवन दिव्य देह दाता।—तुलसी (शब्द०)।

धर्मा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धर्म'। उ०—कर्मा धर्मा स्रावग जैसो।—घट०, पृ० २६३।

धर्मागम—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आगम] धर्मग्रंथ [को०]।

धर्माचरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आचरण] धर्मानुसार आचरण। पुण्य कृत्य [को०]।

धर्माचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म की शिक्षा देनेवाला गुरु। २. ऋग्वेदियों में उन ऋषियों में एक जिनके निमित्त तर्पण किया जाता है।

धर्मातिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अतिक्रमण] धर्म का उल्लंघन। धर्म या औचित्य का विरोध [को०]।

धर्मात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मात्मा—वि० [सं० धर्मात्मन्] धर्मशील। धर्म करनेवाला। धार्मिक।

धर्मादा—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + दाय] धर्म कार्य के लिये निकाला हुआ धन [को०]।

धर्माधर्म—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधर्म] धर्म और अधर्म [को०]।

धर्माधर्मविद्—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधर्म + विद्] धर्म और अधर्म का ज्ञाता। मीमांसक [को०]।

धर्माधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ राजा व्यवहारों (मुकदमों) पर विचार करता है। विचारालय।

धर्माधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म अधर्म की व्यवस्था देनेवाला। विचारक। न्यायाधीश [को०]।

धर्माधिकरणी—संज्ञा पुं० [सं० धर्माधिकरणिन्] दे० 'धर्माधिकरणिक' [को०]।

धर्माधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मकृत्यों का निरीक्षण। २. न्याय व्यवस्था। ३. न्यायाधीश का पद [को०]।

धर्माधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म अधर्म की व्यवस्था देनेवाला। विचारक। न्यायाधीश। २. वह जो किसी राजा या बड़े आदमी की ओर से धर्मार्थ निकाले हुए द्रव्य को पात्रापात्र का विचार करके बाँटने आदि का प्रबंध करता है। पुण्य खाते का प्रबंधकर्ता। दानाध्यक्ष।

धर्माधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अधिकृत] धर्माध्यक्ष। [को०]।

धर्माधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय [को०]।

धर्माध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्माधिकारी। २. विष्णु। ३. शिव।

धर्मानुप्राणित—वि० [सं० धर्म + अनुप्राणित] धर्म से प्रभावित। धर्ममय। उ०—भारतीय प्रत्येक कार्य धर्मानुप्राणित होता है।—स० शास्त्र, पृ० १२१।

धर्मानुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माचरण।

धर्मानुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + अनुस्मृति] धर्म के विषय में चिंतन [को०]।

धर्मापेत[1]—वि० [सं०] धर्मरहित। अन्यायपूर्ण [को०]।

धर्मापेत[2]—संज्ञा पुं० १. पाप। २. अन्याय [को०]।

धर्माभास—संज्ञा पुं० [धर्म + आभास] धर्म का आभास। श्रुति स्मृति से भिन्न शास्त्रों द्वारा निरूपित कर्म, धर्म [को०]।

धर्माभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अभिनिवेश] धर्म का प्रवेश। धर्म का ग्रहण। उ०—वह कहते हैं कि धर्माग्रह (धर्माभिनिवेश) दो प्रकार का है: सहज और विक्षिप्त।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३१६।

धर्मारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपोवन। २. एक तीर्थ जिसके विषय में वराहपुराण में यह कथा लिखी है कि जब चंद्रमा ने गुरुपत्नी तारा का हरण किया तब धर्म व्याकुल होकर एक सघन वन में घुस गया। उस वन का नाम ब्रह्मा ने धर्मारण्य रखा। ३. गया के अंतर्गत एक तीर्थस्थान। ४. कूर्मविभाग के मध्य भाग में एक देश (बृहत्संहिता)।

धर्मार्थ—क्रि० वि० [सं०] धर्म के निमित्त। केवल धर्म या पुण्य के उद्देश्य से। परोपकार के लिये। जैसे,—उसने (१००) धर्मार्थ दिए हैं।

धर्मावतार—संज्ञा पुं० [सं०] १. साक्षात् धर्मस्वरूप। अत्यंत धर्मात्मा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संबोधन के रूप में छोटों की ओर से बड़ों के प्रति आदरार्थ होता है।

२. धर्माधर्म का निर्णय करनेवाला पुरुष। न्यायाधीश। ३. युधिष्ठिर।

धर्मावसथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी।

विशेष—चाणक्य के समय में इसका कार्य यात्रियों तथा वैरागियों को शहर में ठहरने के लिये स्थान देना था।

कारीगर तथा शिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिश्तेदारों, साधुओं संन्यासियों तथा श्रोत्रियों को अपने मकान में बसाते थे। यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी।

धर्मावस्थीयी--संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी। दे० 'धर्मावसथि'।

धर्माश्रित—वि० [सं०] १. धर्मानुसारी। धर्मसम्मत। २. न्यायपूर्ण [को०]।

धर्मासन--संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन या चौकी जिसपर बैठकर न्यायाधीश न्याय करता है। उ०—हे प्रतिहारी, तू हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत जागने से हममें धर्मासन पर बैठने की सामर्थ नहीं रही इसलिये जो कुछ काम काज प्रजासंबंधी हो, लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)।

धर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार छह द्रव्यों में से एक जो एक अरूपी पदार्थ है और जीव और पुद्गल की गति का आधार या सहायक होता है।

धर्मिणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी। २ रेणुका।

धर्मिणी[2]—वि० धर्म करनेवाली।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग समस्त पदों में ही होता है, जैसे, सहधर्मिणी।

धर्मिष्टी(पु)—वि० [सं० धर्मिक] धर्माचरण करनेवाला। धार्मिक। उ०—बरनौ राजकुँअर की बानी। धर्मिष्टी औ पंडित ज्ञानी। --इद्रा०, पृ० ६।

धर्मिष्ठ—वि० [सं०] धार्मिक। पुण्यात्मा। सदाचारी।

धर्मी[1]--वि० [सं० धर्मिन्] [स्त्री० धर्मिणी] १. जिसमें धर्म हो। धर्म या गुणविशिष्ट। जैसे, प्रसवधर्मी। २. धार्मिक। पुण्यात्मा। ३. मत या धर्म को माननेवाला। जैसे, मिश्रधर्मी।

धर्मी[2]—संज्ञा पुं० १. धर्म का आधार। गुण या धर्म का आश्रय। जैसे द्रवत्व धर्म का आधार जल है। २. धर्मात्मा मनुष्य। ३. विष्णु।

धर्मीपुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] नट। नाटक का कोई पात्र या अभिनयकर्ता।

धर्मेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० धर्मेन्द्र] १. यमराज। २. युधिष्ठिर [को०]।

धर्मेयु—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी राजा रौद्राश्व का एक पुत्र।

धर्मेश, धर्मेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] यमराज [को०]।

धर्मोत्तर--वि० [सं० धर्म + उत्तर] धर्म से परे। धर्म से बड़ा। महान्। दैवी। उ०—है काम तुम्हारा धर्मोत्तर।—अपरा, पृ० १७८।

धर्मोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० धर्म+उन्माद] धार्मिक या साम्प्रदायिक कट्टरता या असहिष्णुता जनित पागलपन।

धर्मोपदेश--संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म की शिक्षा। वह कथन या व्याख्यान जो धर्म का तत्व समझाने या धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिये हो। २. धर्म की व्यवस्था। धर्मशास्त्र।

धर्मोपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का उपदेश देनेवाला।

धर्मोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धर्म्य—वि० [सं०] जो धर्म के अनुकूल हो। धर्म या न्याययुक्त।

धर्म्यविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में जो विवाह गिनाए गए हैं उन में से ब्राह्म, दैव, आर्ष, गांधर्व और प्राजापत्य ये पाँच धर्म्यविवाह कहलाते हैं।

धर्राट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धड़धड़ाहट १'। उ०—घोड़ों और सामान का बाहर निकलना था कि तबेला 'धरर धर्राट' करके गिर गया।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० ३६।

धर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविनीत व्यवहार। अविनय। धृष्टता। गुस्ताखी। संकोच या शिष्टता का अभाव। २. असहनशीलता। तुनुकमिजाजी। ३. धैर्य का अभाव। अधीरता। बेसब्री। ४. शक्तिबंधन। अशक्त होने या करने का भाव। बेकाम करने या होने का भाव। ५. रोक। दबाव। ६. नामर्द करने या होने का भाव। ७. नामर्द। नपुंसक। हिजड़ा। ८. हिंसा। जी दुखाने का कार्य। ९. अनादर। अपमान। हतक। १०. (स्त्री का) सतीत्वहरण।

धर्षक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबानेवाला। दमन करनेवाला। २. अपमान करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। ३. असहनशील। ४. सतीत्वहरण करनेवाला। व्यभिचारी। ५. अभिनय करनेवाला। नकल करनेवाला। नट।

धर्षक[2]—वि० १. दमन करनेवाला। २. अपमान या तिरस्कार करनेवाला। ३. व्यभिचारी। ४. ढिठाई करनेवाला [को०]।

धर्षकारी—वि० [सं० धर्षकारिन्] [वि० स्त्री० धर्षकारिणी] १. दबाने या दमन करनेवाला। हरानेवाला। नीचा दिखानेवाला। २. अपमान करनेवाला। अवज्ञा करनेवाला।

धर्षकारिणी—वि० [सं०] जिसका सतीत्व नष्ट हुआ हो। असती। व्यभिचारिणी।

धर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धर्षणीय, धर्षित] १. अनादर। अपमान। अवज्ञा। २. दबोचना। आक्रमण। दबाव या दमन करने का कार्य। हराने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३. असहनशीलता। ४. एक अस्त्र का नाम। ५ स्त्रीप्रसंग। रति। ६. शिव।

धर्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवमानना। अवज्ञा। अपमान। हतक। २. दबाने या हराने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३. सतीत्वहरण। ४. संभोग। रति।

धर्षणि--संज्ञा स्त्री० [सं०] असती स्त्री। कुलटा [को०]।

धर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] असती स्त्री। कुलटा।

धर्षणीय--वि० [सं०] धर्षण के योग्य।

धर्षित[1]—वि० [सं०] १. जिसका धर्षण किया गया हो। दबाया या दमन किया हुआ। परिभूत। हराया हुआ। २. जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

धर्षित[2]—संज्ञा पुं० १. रति। मैथुन। २. अभिमान (को०)। ३. असहिष्णुता (को०)।

धर्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। व्यभिचारिणी स्त्री [को०]।

धर्षी—वि० [सं० धर्षिन्] [वि० स्त्री० धर्षिणी] १. धर्षण करनेवाला। २. धर दबानेवाला। आक्रमण करनेवाला। दबोचनेवाला। ३. हरानेवाला। ४. नीचा दिखानेवाला। ५. अपमान करनेवाला। ५. संभोग करनेवाला (को०)।

धलंड—संज्ञा पुं० [सं० धलण्ड] अंकोल का पेड़। ढेरा।

धव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक जंगली पेड़ जिसकी पत्तियाँ अमरूद या शरीफे की पत्तियों जैसी होती हैं। उ०—कुतक खिदर धव काठरा, विदर पलावण वेस।—बाँकी०. ग्रं०, भा० २, पृ० ८६।

विशेष—इसकी छाल सफेद और चिकनी तथा हीर की लकड़ी बहुत कड़ी और चमकीली होती है। फल छोटे छोटे होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं जो हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण भारत तक पाई जाती हैं। बड़ी जाति का जो पेड़ होता है उसे धौरा या बाकली कहते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और नाव, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है। कोयला भी इसका बहुत अच्छा होता है। पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है। इसके पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छींट छापनेवाले काम में लाते हैं। छोटी जाति का पेड़ विंध्य पर्वत पर तथा दक्षिण भारत की ओर होता है। धव के नाम से प्रायः यही अधिक प्रसिद्ध है और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धव चरपरा कसैला, कफवातनाशक, पित्तनाशक, दीपन, रुचिवर्धक और पांडुरोग को दूर करनेवाला माना जाता है। पत्ती, फल और जड़ तीनों दवा के काम में आते हैं।

पर्या०—पिशाचवृक्ष। शकटाख्य। धुरंधर। दृढ़तरु। गौर। कषाय। मधुरत्वक्। शुक्लांग। पांडुतरु। धवल। पांडुर। धट। नदितरु। स्थिर। पीतफल।

२. पति। स्वामी। जैसे, माधव। ३. पुरुष। मर्द। ४ धूर्त आदमी। ५. एक वसु का नाम।

धवई—संज्ञा स्त्री० [सं० धातकी, धावनी] एक पेड़ जो हिमालय से लेकर सारे उत्तरीय भारत में अधिकता से होता है। दक्षिण में यह कम मिलता है। इसे धाय भी कहते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अनार की पत्तियों से मिलती जुलती पर कुछ नीलापन लिए और खुरदुरी होती हैं। फूल लाल रंग के होते हैं और दवा तथा रँगाई के काम में आते हैं। ये फूल शिशिर से वसंत तक लगते हैं और इकट्ठे करके सुखाए जाते हैं। ज्वर रोग में वैद्य लोग इन फूलों का काढ़ा देते हैं। छाल भी दवा के काम में आती है। वैद्यक में धवई या धाय चरपरी, शीतल, कसैली, मदकारक, कड़ुई, रक्तप्रवाहिका, तथा पित्त, तृषा विसर्प व्रण, कृमि और अतिसार को दूर करनेवाली मानी जाती है। पर और अंगों की अपेक्षा फूलों में अधिक गुण कहा जाता है। धवई के पेड़ से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

पर्या०—धाय। धातकी। ताम्रपुष्पी। धात्री। धावनी। धातुपुष्पिका। वह्निपुष्पी। अग्निज्वाला। सुभिक्षा। पार्वती। कुमुदा। सीधुपुष्पी। कुंजरा। मद्यवासिनी। गुच्छपुष्पी। वह्निशिखा इत्यादि।

धवणि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धवनी'। उ०—धवणि धवंती रह गई, बुझि गये अंगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

धवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धावन'। उ०—पृथिवी रमन धवन नहीं करिया। पैठि पताल नहीं बलि छलिया।—कबीर बी० पृ० २६६।

धवना(पु)—क्रि० स० [हिं० धौंकना] धौंकना। उ०—धवणि धवंती रहि गई बुझि गए अंगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

धवनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० धमनी] लोहारों की धौंकनी। भाथी। उ०—भट्ठी मोह कृशानु रवि धवनि स्वास मद दारु। निसि दिन धन दरवी बरष क्रम कुट काल लोहारु।—(शब्द०)।

धवनी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] शालिपर्णी। सरिवन।

धवर¹—संज्ञा पुं० [सं० धवल] एक पक्षी जिसका कंठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है।

विशेष—भावप्रकाश में धवल पक्षी का मांस वातघ्न बताया गया है।

धवर(पु)²—वि० [सं० धवल] सफेद। उजला।

धवरहर—संज्ञा पुं० [सं० धवल + गृह] खंभे की तरह ऊपर दूर तक गया हुआ मकान का एक भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा। मीनार। उ०—चढ़ि धवरहर विलोकि दखिन दिसि बूझ धौं पथिक कहाँ ते आए वे हैं।—तुलसी (शब्द०)।

धवरा†—वि० [सं० धवल] [वि० स्त्री० धवरी] उजला। सफेद।

धवराना(पु)—क्रि० स० [?] स्तन पिलाना। उ०—पेट घरे जायो पेछे, धवरायो मल धोय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३०।

धवराहर—संज्ञा पुं० [हिं० धवरहर] दे० 'धवरहर'। उ०—सात खंड धवराहर साजा।—जायसी (शब्द०)।

धवरी¹—वि० स्त्री० [हिं० धवरा] सफेद। उजली।

धवरी²—संज्ञा स्त्री० १. धवर पक्षी की मादा। २. सफेद रंग की गाय।

धवल¹—वि० [सं०] १ श्वेत। उजला। सफेद। २. निर्मल। झकाझक। ३. सुंदर। मनोहर।

धवल²—संज्ञा पुं० १. धव का पेड़। २. चीनिया कपूर। ३. सिंदूर। ४. सफेद मिर्च। ५. धवर पक्षी। सफेद परेवा। ६. भारी बैल। महोक्ष। उ०—तू धूं गणपत नाम लै, जोति धवलो ज्यार।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ३७। ७. छप्पय छंद का ४५वाँ भेद। ८. अर्जुन वृक्ष। ९. श्वेत कुष्ठ। सफेद कोढ़। १०. एक राग जो भरत के मत से हिंडोल राग का आठवाँ पुत्र माना जाता है। ११. सफेद रंग। श्वेत वर्ण (को०)।

धवल(पु)³—संज्ञा पुं० [सं०]महल। आराम करने का स्थान। निवास ? उ०—गुरु वारं सुभ जोगं। राजा संपन्न धवल मभभेनं।—पृ० रा०, २४। ५८२।

धवलकोष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० धवलकोष्ठिन्] वैश्यों की एक जाति ।

धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम । धवलागिरि ।

धवलगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूना से पुता हुआ ऊँचा भवन । २. महल [को०] ।

धवलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी । उजलापन ।

धवलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सफेदी । उजलापन ।

धवलनाⓅ—क्रि० स० [सं० धवल] उज्वल करना । निखारना । चमकाना । प्रकाशित करना । उ०—स्वामिकाज करिहौं रन-रारी । जस धवलिहौं भुवन दस चारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धवलपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्ल पक्ष । उजला पाख । २. हंस (जिसके पर सफेद होते हैं) ।

धवलमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खरिया मिट्टी । दुद्धी ।

धवलश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें पंचम और गांधार वर्जित हैं ।

धवलहरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धवरहर' । उ०—धणी बिहूँणा धवलहर ढहि ढहि ढेर थियाह ।—राम० धर्म०, पृ०६८ ।

धवलांग—संज्ञा पुं० [सं० धवलाङ्ग] हंस ।

धवला[१]—वि० स्त्री० [सं०] सफेद । उजली ।

धवला[२]—संज्ञा स्त्री० १. सफेद गाय । २. गोर वर्णवाली स्त्री (को०) ।

धवला[३]—संज्ञा पुं० [सं० धवल] सफेद बैल ।

धवलाⓅ[४]—संज्ञा पुं० [देश०] लहँगा । उ०—लाला की मौसी आवैगी, धवला में मौंरि ... ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९२५ ।

धवलाⓅ[५]—संज्ञा पुं० [सं० धवल] १. सफेदी । श्वेतता । २. वृद्धावस्था । उ०—जब जोबन जामी धवला आसी तब करि बैठासी ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३६ ।

धवलाई†—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल + आई (प्रत्य०)] सफेदी । उजलापन ।

धवलागिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवल + गिरि] हिमालय पहाड़ की एक प्रख्यात चोटी ।

धवलित—वि० [सं०] १. जो सफेद किया गया हो । जैसे, तुषार-धवलित शृंग । २. जो साफ झक किया गया हो ।

धवलिमा—संज्ञा पुं० [सं० धवलिमन्] १. सफेदी । श्वेतता । २. पीलापन । पांडुर वर्ण [को०] ।

धवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद गाय । २. एक रोग जिसमें बाल सफेद हो जाते हैं । ३. सफेद मिर्च ।

धवलीकृत—वि० [सं०] जो सफेद किया गया हो ।

धवलीभूत—वि० [सं०] जो सफेद हुआ हो ।

धवलोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद ।

धवसⓅ—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'धौंसा' । उ०—यह कहि पुकार धवसन लगिय सत्तर सहस पमानियर ।—प० रासो, पृ० १३४ ।

धवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धव' ।

धवाणक—संज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

धवानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुआँ' । उ०—धवान दै दवान की कृपान हीय सज्जियो ।—सुजान०, पृ० ३० ।

धवाना—क्रि० स० [हिं० धावना का प्रे० रूप] दौड़ाना । उ०—(क) तहाँ सुधन्वा रथहिं धवाई । अर्जुन दल बानन झरि लाई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) तिनके काज अहीर पठाए । बिलम करहु जिनि तुरत धवाए ।—सूर (शब्द०) ।

धवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन के चमड़े का पंखा [को०] ।

धस—संज्ञा पुं० [हिं० धंसना(= पैठना)] १. जल आदि में प्रवेश । डुबकी । गोता । उ०—(क) जो पथ मिला महेसहिं सेई । गयो समुद ओही धस लेई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जस धस लीन्ह समुद मरजीया ।—जायसी (शब्द०) । (ग) तेहि का कहिय रहन कहँ जो है प्रीतम लाग । जो वहि सुनै लेइ धस, का पानी का आग ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२. एक प्रकार की जमीन या मिट्टी जो भुरभुरी होती है ।

धसक[१]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है । २. सूखी खाँसी । ठसक ।

धसक[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] किसी के लाभ या बढ़ती को देख दुःख से दब जाने की वृत्ति । डाह । ईर्ष्या ।

धसक[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धसकना] १. धसकने की क्रिया या भाव । २. डर । भय । दहशत । जैसे,—उनके मन में कुछ धसक बैठ गई ।

धसकन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धसक' ।

धसकना[१]—क्रि० अ० [हिं० धंसना] १. नीचे को धंस जाना । नीचे को खसक जाना । दब जाना । बैठ जाना । उ०—(क) जोबन पंद्र रेत में नए खोज या द्वार । आगे उठि पाछे धसकि रहे नितंबन भार । लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । (ख) तजो धीर धरनि धरनिधर धसकत धराधर धीर भार सहि न सकत है ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी का लाभ या बढ़ती देख दुःख से दबना । डाह करना । ईर्ष्या करना ।

धसकना[२]—क्रि० अ० [हिं० धंसना] मन में भय उत्पन्न होना । जी दहलना । उ०—गवनचार पदमावति सुना । उठा धसकि जिउ औ सिर धुना ।—जायसी (शब्द०) ।

धसका—संज्ञा पुं० [हिं० धसक] चौपायों का एक रोग जो फेफड़ों में होता है । यह रोग छूत से फैलता है ।

धसनाⓅ[१]—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन] ध्वस्त होना । नष्ट होना । मिटना । उ०—निज आतम अज्ञान ते है प्रतीत जग खेद । धसै सु ता के बोध ते यह भाखत मुनि वेद ।—निश्चल (शब्द०) ।

धसना[२]—क्रि० अ० [हिं० धंसना] दे० 'धंसना' । उ०—उनके मग में जग जय मसका । उनके डग से कुल भय धसका ।—अर्चना, पृ० ४७ ।

धसनि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धंसनि', 'धसन' ।

धसमसकना(पु)—[हिं० धसना + मसकना] धसमसाना । काँपना । उ०—धसमसक धरणी कसक कूरम, ससक नासा सेस ।—रघु० रू०, पृ० २२० ।

धसमसाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० धँसना] धँस जाना । धरती में समाना । उ०—मेरु धसमसै समुद सुखाई ।—जायसी (शब्द०) ।

धसरना—क्रि० अ० [हिं० धसना का अनु०] धँसना । प्रवेश करना । उ०—बर बारन ज्यों जल में धसरे । सत सत धनु यहुँ दिसि पय पसरे ।—नद० ग्रं०, पृ० २८० ।

धसान[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धँसना] दे० 'धँसान' ।

धसान[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दशार्ण] एक छोटी नदी जो पूर्वी मालवा और बुंदेलखंड से होकर बहती है ।

विशेष—पूरबी मालवा प्राचीन काल में दशार्ण देश कहलाता था और यह नदी भी उसी नाम से प्रसिद्ध थी ।

धसाना—क्रि० स० [हिं० धँसाना] दे० 'धँसाना' ।

धसाव—संज्ञा पुं० [हिं० धँसाव] दे० 'धँसाना' ।

धसोरा(पु)—संज्ञा पुं० [?] दोष अन्याय । धाँधली । उ०—हरै धन बिराना धसोरा लगावै ।—धरनी० पृ० ६ ।

धह(पु)—क्रि० वि० [सं० धावन्] दौड़कर । उ०—धह मंगि मंगि मंगल रवन । सबै होइ जोजन समन ।—पृ० रा०, २५।५३ ।

धहधहाना—क्रि० अ० [अनु०] धधकना । उ०—हाँ अब तक एक कलेजे में दुःख की आग धहधहा रही है, अब तक एक जन की आँखों से आँसू बहता है, वह देवबाला के लिये बावला बन रहा है ।—ठेठ०, पृ० ७६ ।

धहलना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दहलना] दहलना । डरना । उ०—इम उलट कमला कदम आयो, पुरी लंक प्रजाल । जो लंकाल जो लंकाल कायर धहलियों लंकाल ।—रघु० रू०, पृ० १६४ ।

धांधा—संज्ञा स्त्री० [सं० धान्या] इलायची ।

धाँक—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जिसको रहन सहन भीलों से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

धाँख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धाम] उमंग । उ०—रिणवास पधारे सुर कज मारे अग अपार धाँख धरे ।—रघु० रू०, पृ० २३५ ।

धाँगड़—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक अनार्य जंगली जाति जो विंध्य और कैमोर पहाड़ियों पर रहती है । २. एक जाति जो कुएँ और तालाब खोदने का काम करती । उ०—अब कत धाँगड़ देखि भोंड आइ लें । गोरु मारि मिसिमल कए थाइलें ।—कीर्ति०, पृ० ६० ।

धाँगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाँगड़' ।

धाँदल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धाँधल' । उ०—मुल्का पो चढ़ के दुश्मन धाँदल मँचाया देखो ।—दक्खिनी०, पृ० २६६ ।

धाँधना—क्रि० स० [देश०] १. बंद करना । भेड़ना । उ०—(क) बारह पासहि अगम बाँधो । राख्यो ताहि कोठरी धाँधो ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) पुनि लकरी पट अंगनि बाँधी । आगि लगायो कोठरि धाँधी ।—कबीर (शब्द०) । २. बहुत अधिक खा लेना । ठूसना ।

धाँधल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ऊधम । उपद्रव । नटखटी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२. फरेब । धोखा । दगा । ३. बहुत अधिक जल्दी । जैसे,—तुम तो आते ही खाने के लिये धाँधल मचाने लगते हो ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

धाँधलपन—संज्ञा पुं० [हिं० धाँधल + पन (प्रत्य०)] १. पाजीपन । शरारत । २. धोखेबाजी । दगाबाजी ।

धाँधला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाँधल'—२ । उ०—धारे ऊहड़ धाँधला साम तणै छल सार । रा० रू०, पृ० ७१ ।

धाँधली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाँधल] १. गड़बड़ी । अव्यवस्था । २. धोखेबाजी । ३. मनमानी । ४. अनाचार । उपद्रव । ५. शीघ्रता । जल्दबाजी ।

धाँधली[2]—वि० १. ऊधम करनेवाला । उपद्रवी । २. धूर्त । धोखेबाज ।

धाँधालो—वि० [हिं० धाँधल + ई (प्रत्य०)] १. उपद्रवी । शरीर । पाजी । नटखट । २. धोखेबाज । दगाबाज ।

धाँम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाम' । उ०—अवसथ, वसति, व आवसति, धाम, कुंज सुखवाम ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०८ ।

धाँय—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धायँ' ।

धाँस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सूखे तंबाकू या मिर्च आदि की तेज गंध जिससे खाँसी आने लगती है ।

धाँसना—क्रि० अ० [अनु०] पशुओं का खाँसना ।

धाँसी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़े की खाँसी ।

धा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा । २. बृहस्पति ।

धा[2]—वि० धारक । धारण करनेवाला ।

धा[3]—प्रत्य० तरह । भाँति । प्रकार । जैसे, नवधा भक्ति । उ०—देखि देही सबै कोटिधा कै मनो । जीव जीवेश के बीच माया मनो ।—केशव (शब्द०) ।

धा[4]—संज्ञा पुं० [सं० धैवत] संगीत में धैवत शब्द या स्वर का संकेत ।

धा[5]—संज्ञा पुं० [अनु०] तबले का एक बोल । जैसे, धा धा धिनता ।

धा[6]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धाय' ।

धा[7]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धव' ।

धाइ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाय] दे० 'धाय' । उ०—हौ तो धाइ तिहारे सुत की मया करत ही रहियो ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५७ ।

धाइ—संज्ञा पुं० [सं० धव] धव का पेड़ । उ०—राजति है यह ज्यों कुलकन्या । धाइ बिराजति है सँग धन्या ।—केशव (शब्द०) ।

धाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाय] दे० 'धाय' ।

धाउ—संज्ञा पुं० [सं० धाव] नाच का एक भेद । उ०—बहु उड़ति तिर्यंगपति अड़ाल । अरु लाग धाउ रायउ रँगाल ।—केशव (शब्द०) ।

धाऊ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० धावन] वह आदमी जो आवश्यक कामों के लिये दौड़ाया जाय। हरकारा। उ०—नाऊ बारी महर सब धाऊ धाय समेत। नेगचार पाए अमित रह्यो जासु जस हेत। —रघुराज (शब्द०)।

धाऊ[2]—संज्ञा पुं० [सं० धातकी] धव का पेड़।

धाक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृष। २. आहार। भोजन। भात। ३. अन्न। अनाज। ४. स्तंभ। खंभा। ५. आधार। ६. हौज (को०)। ७. ब्रह्मा (को०)।

धाक[2]—संज्ञा स्त्री० १. रोब। दबदबा। आतंक। उ०—(क) धरम धुरंधर धरा में धाक धाए ध्रुव ध्रुव सों समुद्धत प्रताप सर्व काल है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) महाधीर शत्रुसाल नंदराय भाव सिंह तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय से।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—धाक जमना = प्रभाव होना। रोब या दबदबा होना। धाक बँधना—रोब या दबदबा होना। आतंक छाना। जैसे,—शहर में उसके बोलने की धाक बँध गई। धाक बाँधना = रोब जमाना। जैसे,—ये जहाँ जाते हैं वहाँ धाक बाँध देते हैं। धाक होना = आतंक होना। प्रभाव होना। रोब होना। उ०—देश देश में हमारी धाक थी। —शुभते० (भू०), पृ० २।

२. प्रसिद्धि। शोहरत। शोर। उ०—सूरदास प्रभु खात ग्वाल संग ब्रह्मलोक यह धाक।—सूर (शब्द०)।

धाक[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] ढाक। पलाश।

धाकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धाक + ना (प्रत्य०)] धाक जमाना। रोब जमाना। उ०—दास तुलसी के बिरुद्ध बरतन बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाके।—तुलसी (शब्द०)।

धाकर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] १. कान्यकुब्ज और सरजूपारी ब्राह्मणों में वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलों के अंतर्गत न हो और इससे नीचा समझा जाता हो। २. राजपूतों की एक जाति जो आगरे के आसपास पाई जाती है। ३. पंजाब का एक धान जो बिना पानी के पैदा होता है।

धाकर†[2]—वि० दोगला।

धाका†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाक] दे० 'धाक'।

धाखा†—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश का पेड़।

धागा†—संज्ञा पुं० [हिं० तागा] बटा हुआ सूत। डोरा। तागा।

यौ०—धागा गंडा = तंत्र मंत्र से पवित्र किया हुआ वह डोरा जो हाथ की कलाई में बाँधा जाता है। उ०—उसके माता पिता ने बड़े बड़े गुणी तथा पंडितों को बुलाकर धागा गंडा बँधवाया।— कबीर मं०, पृ० ४७७।

मुहा०—धागा भरना = कपड़े के छेद आदि में तागे भरकर उसे रफू करना। धागे धागे करना = किसी कपड़े के बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े करना। चिथड़े चिथड़े करना।

धाग्ड़ांग—संज्ञा पुं० [अनु०] मृदंग का धमाका। उ०—शोर हँसी हुल्लड़, हुड़दंग। धमक रहा धाग्ड़ांग मृदंग।—ग्राम्या, पृ० ४६।

धाजा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्वजा'। उ०—दिवि द्रिस्टि धाजा सेत। सब मर्म होत निकेत।—सं० दरिया, पृ० ८।

धाड़†[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. दे० 'डाढ़'। २. दे० 'दहाड़'। ३. दे० 'ढाड़'।

मुहा०—धाड़ मारकर = जोर से चिल्लाकर।

धाड़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धार] १. डाकुओं का आक्रमण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. जल्दी। शीघ्रता।

मुहा०—धाड़ पड़ना = बहुत जल्दी होना। बहुत शीघ्रता होना। जैसे,—ऐसी कौन सी धाड़ पड़ी है जो अभी उठकर चले।

३. लुटेरों का समूह। उ०—धाड़े पुकार पड़ लाखि धाड़। रवि उदय अस्तलग पंच राहु।—रा० रू०, पृ० ७३। ४. जत्था। झुंड। गिरोह। जैसे, धाड़ की धाड़ बंदर आ गए।

धाड़ना[1]—क्रि० अ० [हिं० दहाड़ना] दे० 'दहाड़ना'।

धाड़ना(पु)[2]—क्रि० अ० [हिं० धाड़] डाका मारना। उ०—दिन दिन धाड़ें दौड़ती, दूवै सांवण मास।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

धाड़वी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धाड़] डाकू। उ०—रामदास जी महाराज के वास्ते एक दुष्ट धाड़वी ने बुरी नजर से देखा कि कहाँ चले गए इनको रास्ते के बीच ही खोस लेऊँगा।—राम० धर्म०, पृ० २८८।

धाड़स†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढारस'।

धाड़ा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धाड़'—१। उ०— उ०—गरा सखि रात को धाड़ा।—घट०, पृ० ३०६।

धाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धाड़] भारी लुटेरा या डाकू।

धाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का परिमाण। २. एक अनार्य छोटी जाति।

धाणा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाड़'। उ०—कर कर वाड़ा कपटरा धाणा पाड़ण धाम।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

धात[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु] दे० 'धातु'। उ०—मर्दनीक मर्दन करै, बढै धात तन बेल।—पृ० रा०, ६। १३०।

धात[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु (वैद्यक)] उ०—इस धात उम्र खरच कीता आखिर फिर पछताया।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

धातकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धव का फूल। २. एक प्रकार का झाड़ जो सारे भारत में होता है और जिसके फूलों का व्यवहार रँगाई के काम में होता है।

विशेष—साल में एक बार इसके पत्ते झड़ जाते हैं।

धातविक—वि० [सं०] १. धातु से निर्मित। २. धातु से संबंधित (को०)।

धाता[1]—संज्ञा पुं० [सं० धातृ] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। महादेव। ४. भृगुमुनि के पुत्र का नाम। ५. ४९ वायुओं में से एक। ६. शेषनाग। ७. १२ सूर्यों में से एक। ८. ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। ९. विधाता। विधि। १०. साठ संवत्सरों में से एक। ११. टगण के आठवें भेद की संज्ञा (।।।ऽ।)। १२.

स्रष्टा (को०)। १३. रक्षक। धारक (को०)। १४. आत्मा (को०)। १५. सर्पिष (को०)। १६. जार। उपपति (को०)। १७. प्रबंधक। व्यवस्थापक (को०)। १८. पोषक (को०)।

यौ०—धातापुत्र = सनत्कुमार।

धाता[2]—वि० १. पालक। पालनेवाला। २. रक्षक। रक्षा करनेवाला। ३. धारण करनेवाला।

धातापुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं० धातृ + पुष्पिका] धातकी (को०)।

धातापुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० धातृ + पुष्पी] धातकी (को०)।

धातु[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह मूल द्रव्य जो अपारदर्शक हो, जिसमें एक विशेष प्रकार की चमक हो, जिसमें से होकर ताप और विद्युत् का संचार हो सके तथा जो पीटने अथवा तार के रूप में खींचने से खंडित न हो। एक खनिज पदार्थ।

विशेष—प्रसिद्ध धातुएँ हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा और राँगा। इन धातुओं में गुरुत्व होता है, यहाँ तक कि राँगा जो बहुत हलका है वह भी पानी से सात गुना अधिक घना या भारी होता है। ऊपर लिखी धातुओं में केवल सोना, चाँदी और ताँबा ही विशुद्ध रूप में मिलते हैं; इससे इन पर बहुत प्राचीन काल में ही लोगों का ध्यान गया। कहीं कहीं, विशेषतः उल्कापिंडों में, लोहा भी विशुद्ध रूप में मिलता है। युरोपियनों के जाने के पहले अमेरिकावाले उल्कापिंडों के लोहे के अतिरिक्त और किसी लोहे का व्यवहार नहीं जानते थे। सीसा और राँगा विशुद्ध धातु के रूप में प्रायः नहीं मिलते, बल्कि खनिज पिंडों को गलाकर साफ करने से निकलते हैं। राँगा, सीसा, जस्ता आदि शुद्ध रूप में न मिलनेवाली धातुओं का ज्ञान लोगों को कुछ काल पीछे, जब वे मिश्र धातु आदि बनाने लगे, तब हुआ। बहुत दिनों तक लोग पीतल तो बना लेते थे पर जस्ते को अच्छी तरह नहीं जानते थे। यही हाल राँगे का भी समझिए। पारे को भी लोग बहुत दिनों से जानते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पारा शुद्ध धातु के रूप में भी बहुत मिलता है। पारा अर्धद्रव अवस्था में मिलता है इसी से युरोप में बहुत दिनों तक लोग उसे धातुओं में नहीं गिनते थे। पीछे मालूम हुआ कि वह सरदी से जम सकता है और उसका पत्तर बन सकता है। मूल धातुओं के योग से मिश्र धातुएँ बनती हैं—जैसे ताँबे और राँगे के योग के काँसा आदि। इनके अतिरिक्त अब अलुमिनियम, प्लेटिनम, निकल, कोबाल्ट आदि बहुत सी नई धातुओं का पता लगा है। इस प्रकार धातुओं की संख्या अब बहुत हो गई है। रेडियम नामक धातु का पता लगे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।

यद्यपि साधारणतः धातु उन्हीं द्रव्यों को कहते हैं जो पीटने से बिना खंडित या चूर हुए बढ़ सकें, तथापि अब धातु शब्द के अंतर्गत चूर होनेवाले द्रव्य भी लिए जाते हैं और अर्धधातु कहलाते हैं, जैसे संखिया, हरताल, सुरमा, सज्जीखार इत्यादि। इस प्रकार क्षार उत्पन्न करनेवाले मूल पदार्थ भी धातु के अंतर्गत आ गए हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि धातुओं की गणना मूल द्रव्यों में है। आधुनिक रसायन शास्त्र में मूल द्रव्य उसको कहते हैं जिसका विश्लेषण करने पर किसी दूसरे द्रव्य का योग न मिले। इन्हीं मूल द्रव्यों के अणुयोग से जगत् के भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं। आज तक १०० से अधिक मूल द्रव्यों का पता लग चुका है जिनमें से गंधक, फासफरस, अम्लजन, उज्जन, इत्यादि १३ की गणना धातुओं में नहीं हो सकती बाकी सब धातु ही माने जाते हैं।

तपे हुए लोहे, सीसे, ताँबे आदि के साथ जब अम्लजन नामक वायव्य द्रव्य का योग होता है तब वे विकृत हो जाते हैं (मुरचा इसी प्रकार का विकार है)। विकृत होकर जो पदार्थ उत्पन्न होता है, उसे भस्म या क्षार कह सकते हैं, यद्यपि वैद्यक में प्रचलित भस्म और दूसरे प्रकार से प्राप्त द्रव्यों को भी कहते हैं। वैसे वैद्य भस्म, क्षार और लवण में प्रायः भेद नहीं करते, कहीं कहीं तीनों शब्दों का प्रयोग वे एक ही पदार्थ के लिये करते हैं। पर आधुनिक रसायन में क्षार और अम्ल के योग से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनको लवण कहते हैं। इस प्रकार आजकल वैज्ञानिक व्यवहार में लवण शब्द के अंतर्गत तूतिया, हीरा, कसीस आदि भी आ जाते हैं। ताँबे के चूर को यदि हवा में (जिसमें अम्लजन रहता है) तपा या गलाकर उसपर थोड़ा सा गंधक का तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्ल गुण नष्ट हो जाएगा और इस योग से तूतिया उत्पन्न होगा। अतः तूतिया भी लवण के अंतर्गत हुआ।

इधर के वैद्यक के ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, लोहा, सीसा और जस्ता ये सात धातु माने गए हैं। सोनामाखी, रूपामाखी, तूतिया, काँसा, पीतल, सिंदूर और शिलाजतु ये सात उपधातु कहलाते हैं। पारे को रस कहा है। गंधक, ईंगुर, अभ्रक, हरताल, मैनसिल, सुरमा, सुहागा, रासटी, चुबक, फिटकरी, गेरू, खड़िया, कसीस, खपरिया, बालू, मुरदासंख, ये सब उपरस कहलाते हैं। धातुओं के भस्म का सेवन वैद्य लोग अनेक रोगों में कराते हैं।

२. शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य। शरीर को बनाए रखनेवाले पदार्थ।

विशेष—वैद्यक में शरीरस्थ सात धातुएँ मानी गई हैं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। सुश्रुत में इनका विवरण इस प्रकार मिलता है। जो कुछ खाया जाता है उससे जो द्रव रूप सूक्ष्म सार बनता है वह रस कहलाता है और उसका स्थान हृदय है जहाँ से वह धमनियों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है। यही रस यकृत और प्लीहा में तेज (पित्त के कार्य) के साथ मिश्रित होकर लाल रंग का हो जाता है और रक्त कहलाता है। रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है। वात, पित्त और कफ की भी धातु संज्ञा है।

३. बुद्ध या किसी महात्मा की अस्थि आदि जिसे बौद्ध लोग डिब्बे में बंद करके स्थापित करते थे।

यौ०—धातुगर्भ।

४. शुक्र। वीर्य।

मुहा०—धातु गिरना = पेशाब के साथ या यों ही वीर्य गिरने का रोग होना। प्रमेह होना।

धातु[४]—संज्ञा पुं० १. मूल। तत्व। उ०—जाके उदित नचत नाना विधि गति अपनी अपनी। सूरदास सब प्रकृति धातुमय अति विचित्र सजनी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—पंचभूतों और पंचतन्मात्र को भी धातु कहते हैं। बौद्धों में अठारह धातुएँ मानी गई हैं—चक्षुधातु, घ्राणधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, रूपधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्प्रष्टव्यधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञानधातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु।

२. शब्द का मूल। क्रियावाचक प्रकृति। वह मूल जिससे क्रियाएँ बनी हैं या बनती हैं। जैसे, संस्कृत में भू, कृ, घृ इत्यादि (व्याकरण)।

विशेष—यद्यपि हिंदी व्याकरण में धातुओं की कल्पना नहीं की गई है, तथापि की जा सकती है। जैसे, करना का 'कर' हँसना का 'हँस' इत्यादि।

३. परमात्मा।

धातुकाल—संज्ञा पुं० [सं० धातु + काल] इतिहास में वह युग जब मनुष्य ने पहले पहल पत्थर के स्थान में धातु का प्रयोग करना सीखा। धातुयुग। उ०—बहुत सी जातियाँ पाषाणकाल के उत्तरकाल में से धातुकाल तक पहुँच गई थीं।—प्रा० भा० प० (भू०), पृ० ग।

धातुकाशीश—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

धातुकासीस—संज्ञा पुं० [सं०] कसीस।

धातुकुशल—संज्ञा पुं० [सं०] धातु के कार्य में निपुण (को०)।

धातुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाँसी का रोग जिससे शरीर क्षीण हो जाता है। २. प्रमेह आदि रोग जिनमें शरीर से बहुत वीर्य निकल जाता है। क्षयरोग।

धातुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह कटोरेदार डिब्बा या पात्र जिसमें बौद्ध लोग बुद्ध या अपने दूसरे आचार्य महात्माओं के दाँत या हड्डियाँ आदि रखते हैं। देहगोप।

धातुगोप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धातुगर्भ'।

धातुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिससे शरीर का धातु नष्ट हो। जैसे, काँजी, पारा आदि।

धातुचैतन्य—वि० [सं०] धातु (वीर्य) को उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुज—संज्ञा पुं० [सं०] खान या पर्वत से उत्पन्न तेल (को०)।

धातुद्रावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा, जिसके डालने से सोना आदि गल जाता है।

धातुनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धातुघ्न'।

धातुप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर में का वह रस या पतला धातु जो भोजन के उपरांत तुरंत ही तैयार होता है और जिससे शेष धातुओं का पोषण होता है।

विशेष—दे० 'धातु'।

धातुपाक—संज्ञा पुं० [सं० धातु + पाक] शुक्रजन्य एक रोग जिसमें रोग की वृद्धि के साथ साथ बल क्षीण होता जाता है। उ०—धातुपाक कहिए उत्तरोत्तर रोग की वृद्धि और बल की हानि होकर शुक्रादि धातु सहित मूत्रादिकों का जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं।—माधव०, पृ० २८।

धातुपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि की व्याकरणिक पद्धति पर निर्मित धातुओं की सूची।

विशेष—इन धातुओं की रचना संभवतः पाणिनि ने ही अपने सूत्रों के परिशिष्ट के रूप में की है।

धातुपुष्ट—वि० [सं०] वीर्य को गाढ़ा करनेवाला। जिससे वीर्य गाढ़ा होकर बढ़े।

धातुपुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातुओं की पुष्टि। धातुपोषण (को०)।

धातुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल।

धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल।

धातुप्रधान—संज्ञा पुं० [हिं०] वीर्य।

धातुभृत्[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

धातुभृत्[२]—वि० जिससे धातु का पोषण हो।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवैरिन्] गंधक।

धातुमत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातुमान् होने का गुण या भाव (को०)।

धातुमय—वि० [सं०] खनिज पदार्थों से परिपूर्ण। जिसमें खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो (को०)।

धातुमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कच्ची धातु को साफ करना, जो ६४ कलाओं के अंतर्गत है। धातुवाद। उ०—सूचिकर्म धातुमर्म सूत्र क्रीड़नोलिंग।—विश्राम (शब्द०)।

धातुमल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार कफ, पित्त, पसीने, नाखून, बाल, आँख या कान की मैल आदि जिसकी सृष्टि किसी धातु के परिपक्व हो जाने पर उसके बचे हुए निरर्थक अंश या मल से होती है। २. सीसा (को०)।

धातुमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नाम की उपधातु।

धातुमान्—वि० [सं० धातुमत्] जिसमें या जिसके पास धातुएँ हों (को०)।

धातुमारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुहागा।

धातुमारी—संज्ञा पुं० [सं० धातुमारिन्] गंधक (को०)।

धातुयुग—संज्ञा पुं० [सं० धातु + युग] दे० 'धातुकाल'।

धातुराग—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं से निकला हुआ रंग। जैसे, ईंगुर, गेरू, मैनसिल आदि। उ०—सिय अंग लिखै धातुराग सुमनन भूषन विभाग तिलक करनि क्यों कहौं कलानिधान को।—तुलसी (शब्द०)।

धातुराजक—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र या वीर्य जो शरीर के सब धातुओं में श्रेष्ठ माना जाता है।

धातुरेचक—वि० [सं०] वीर्य को बहानेवाला। जो वीर्य को बहाकर निकाल दे।

धातुवर्द्धक, धातुवर्धक—वि॰ [सं॰] वीर्य को बढ़ानेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुवल्लभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सोहागा।

धातुवाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चौंसठ कलाओं में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ करते, तथा एक में मिली हुई अनेक धातुओं को अलग अलग करते हैं। २. रसायन बनाने का काम। ३. ताँबे से सोना बनाना। ४. कीमियागिरी। उ॰—धातुवाद निरुपाधि सन सद्गुरु लाभ सुमीत। देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत।—तुलसी (शब्द॰)।

धातुवादी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धातुवादिन्] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारंधमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवैरी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धातुवैरिन्] गंधक।

धातुशेखर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. कसीस। २. सीसा।

धातुशोधन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सीसा [को॰]।

धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सीसा।

धातुसंभव—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धातुसम्भव] सीसा [को॰]।

धातुसाम्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वात, पित्त, कफ की सम्यक् अवस्था। अच्छा स्वास्थ्य [को॰]।

धातुस्तंभक—वि॰ [सं॰ धातुस्तम्भक] वीर्य को रोकनेवाला। जिससे वीर्य का स्तंभन हो और वह देर में स्खलित हो।

धातुहन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गंधक।

धातू—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धातु] दे॰ 'धातु'।

धातूपल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] खड़िया मिट्टी। खरी। दुधिया या दुद्धी।

धातृपुत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार।

धातृपुष्पिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धव के फूल।

धातृपुष्पी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धव के फूल।

धात्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पात्र। बरतन।

धात्रिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] आँवला।

धात्री—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. माता। माँ। २. वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लालन पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। दाई। उ॰—धात्री कहिए आँवले धात्री धाय बखान।—अनेकार्थ॰, पृ॰ १३६। ३. गायत्री स्वरूपिणी भगवती। ४. गंगा। ५. आँवला। ६. भूमि। पृथ्वी। ७. सेना। फौज। ८. गाय। ९. आर्या छंद का एक भेद जिसमें १९ गुरु और १९ लघु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीकर्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धात्रीकर्मन्] धाय का काम। दाई का काम [को॰]।

धात्रीपत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तालीस पत्र। २. आँवले की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नट। धाय का लड़का।

धात्रीफल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आँवला। आमला।

धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह विद्या जिसकी सहायता से दाइयाँ गर्भवती स्त्रियों को प्रसव कराती और प्रसूता तथा शिशु की रक्षा आदि करती हैं। लड़का जनाने और उसे पालने आदि की विद्या।

धात्रेयिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धात्री। धाय। दाई। [को॰]।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धात्री। धाय। दाई।

धात्वर्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धातु से निकलनेवाला (किसी शब्द के) अर्थ। मूल और पहला अर्थ।

धात्वीय—वि॰ [सं॰] १. धातुनिर्मित। २. धातु से संबंधित [को॰]।

धाधक हाहु(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] कष्ट। पीड़ा। हाहाकार। उ॰—बड़े कमठ कहँ दाह कराहू। ... धाधक हाहू।—इंद्रा॰, पृ॰ ९८।

धाधना†—क्रि॰ स॰ [देश॰] देखना।

धाधिन—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] ढोल के बजने का एक स्वर या ताल। उ॰—उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन।—ग्राम्या, पृ॰ ३१।

धानंतर(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धन्वन्तरि] दे॰ 'धन्वंतरि'। उ॰—लछी रूप हरि भगति, धरम हिंद धान्नंतर।—रा॰ रू॰, पृ॰ १८०।

धान¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धान्य] तृण जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अच्छे अन्नों में है। शालि। व्रीहि।

विशेष—भारतवर्ष तथा प्रायद्वीपों के कुछ भागों में यह जंगली होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, बरमा, मलाया, अमरिका (संयुक्त राज्य और ब्रेजिल) तथा थोड़ी बहुत इटली और स्पेन आदि यूरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर जमीन और गरमी चाहिए। यह संसार के उन्हीं गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती है या सिंचाई के लिये खूब पानी मिलता है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आ रही है इसी से उसके अनंत भेद हो गए हैं।

ऋग्वेद में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ सायण ने कूटा हुआ जौ किया है, पर 'धान्य' का अर्थ दूसरा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद, शांखायन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौतसूत्र इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न-मात्र के अर्थ में भी है। तैत्तिरीय संहिता, वाजसनेय संहिता आदि में व्रीहि शब्द बार बार आया है। कृष्णयजुर्वेद में शुक्ल और कृष्ण व्रीहि का उल्लेख है। फारसी में भी 'बिरंज' शब्द चावल के लिये व्यवहृत है जो निश्चय ही व्रीहि से संबंध रखता है। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन आर्यों को धान का पता उस समय भी था जब उनका विस्तार मध्य एशिया तक था। ईसा से २८०० वर्ष पूर्व शिननंग राजा के समय में चीन में एक त्योहार मनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्नों की बुवाई आरंभ होती थी। उन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जंगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती आ रही है।

जापान, चीन, हिंदुस्तान, बरमा, मलाया इत्यादि में चावल बहुत खाया जाता है। यद्यपि इसमें मांस बनानेवाला अंश बहुत कम होता है तथापि गरम देशों के लिये यह अन्न बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सबसे अधिक धान बंगाल में होता है। वहाँ इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं—(१) आमन (अगहनी), जो जेठ असाढ़ में बोया जाता है, और अगहन पूस में कटता है। (२) आउस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुआर में कटता है, और (३) जो पूस माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाकर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि वह जाड़े में तैयार होता है। यों तो भिन्न भिन्न स्थानों में धान की बोआई पूस से लेकर आषाढ़ तक होती है और कटाई जेठ से अगहन तक, पर उत्तरीय भारत में अधिकतर धान असाढ़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुआर तक तैयार हो जाता है पर जड़हन अगहन में कटता है। महीन चावल के धान अच्छे समझे जाते हैं। अच्छी जाति के बढ़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में अजायबघर में रखने के लिये जो चावलों का संग्रह हुआ था उसमें पाँच हजार प्रकार के चावल बतलाए गए थे। इस संख्या को ठीक न मानकर आधी तिहाई भी लें तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगंधित चावलों में बासमती सबसे प्रसिद्ध है। जड़हनिया चावलों में बासमती के अतिरिक्त लटेरा, रामभोग, रानीकाजर, तुलसीबास मोतीचूर, समुद्र-फेन, कनकजीरा इत्यादि भी अच्छे चावल समझे जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं; जैसे, बगरी, दुद्धी, साठी, सरया, रामजवाइन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तर जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे, कांगड़े में, हृषीकेश के पास तपोवन में तथा जम्मू प्रांत में कश्मीर में भी अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे चावल होते हैं।

मुहा०—धान का सेत पयार से जानना=फल अथवा अर्थ से कार्य का महत्व समझना। उ०—ज्यों कछु भक्ष किए उदगारत भेद न प्रगटि सके न अघानी। सुंदरदास प्रसिद्धि दिपावन धान को पत पयार ते जानी।—सुंदर० ग्रं०, भा २, पृ० ६३०।

धान(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० धाना] दे० 'धाना'। उ०—हुन्न मीनो पंजर हुई। तन सु भाई तिन्ना सरि न्हाण।—बी० रासो, पृ० ६७।

धान(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्यान'। उ०—धान न भावे नींद न आवे, बिरह सतावे मोय—संतवाणी०, पृ० ७१।

धानक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. एक रत्ती का चौथाई भाग।

धानक²—संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] १. धनुष चलानेवाला। धनुर्धारी। तीरंदाज। कमनैत। उ०—भौंह धनुष धन धानक दूसर सरि न कराय। गगन धनुक जो उगवै लाजहिं सो छिपि जाय।—जायसी (शब्द०)। २. धुनिया। रूई धुननेवाला। ३. एक पहाड़ी जाति का नाम जो पूरब में पाई जाती है।

धानकी—संज्ञा पुं० [हिं० धानुक] १. धनुर्धर। धनुर्धारी। २. कामदेव (डिं०)।

धानख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धनुष]एक विशेष प्रकार का धनुष जिसकी लंबाई साढ़े तीन हाथ होती है। उ०—हाथी तहवर खान री, गो सी ध्यानख भज्ज।—रा० रू०, पृ० ४६।

धानजई—संज्ञा पुं० [हिं० धान+जई] एक प्रकार का धान।

धानपान¹—संज्ञा पुं० [हिं० धान+पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें वर पक्ष की ओर से कन्या के घर धान और हल्दी भेजी जाती है।

विशेष—जहाँ तिलक होता है वहाँ प्रायः तिलक के बाद यह रसम होती है। इस रसम के उपरांत विवाह संबंध प्रायः पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है।

धानपान²—वि० दुबला पतला। नाजुक। (बाजारू)।

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के चलाए हुए अस्त्र को रोकने की एक क्रिया। उ०—प्रभु विनीत तिमि मत्तहि प्रसमन तैमहि मार विमाली। रुचिर वृत्ति मत पितृ सौमनस धन धानहु धृत माली।—रघुराज (शब्द०)।

धानष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] दे० 'धानुक'। उ०—धानष पर धानष चढ़ि आए।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २२४।

धाना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूना हुआ जौ या चावल। बहुरी। २. धनिया। ३. अन्न का कण। खुद्दी। ४. सत्तू। ५. धान। ६. अन्न मात्र।

धाना(पु)²—क्रि० अ० [सं० धावन] १. दौड़ना। तेजी से चलना। भागना। उ०—धूम श्याम धोरी घन धाए। सेत धुजा बग पाँति दिखाए।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—धाय पूजना=दूर रहना। अलग रहना। हाथ जोड़ना। संबंध न रखना। जैसे,—धाय पूजे इस नौकरी से २. कोशिश करना। प्रयत्न करना।

धानाचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सत्तू।

धानाभर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भूनना (को०)।

धानातवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।

धानी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो धारण करे। वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। २. स्थान। जगह। जैसे, राजधानी। उ०—समथल ऊँच नीच नहिं कतहूँ पूर्ण धर्म धन धानी। सरस सुरस रंजित नीरस हृत कोसलपति रजधानी।—रघुराज (शब्द०)। ३. पीलू का पेड़। ३. धनिया।

धानी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० धान+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग जो धान की पत्ती के रंग का सा होता है। तोतई।

विशेष—यह प्रायः पीले और नीले रंग को मिलाकर बनाया जाता है।

धानी[2]—वि० धान की पत्ती के रंग का। हलके हरे रंग का।

धानी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० धाना] भूना हुआ जौ या गेहूँ।

यौ०—गुड़धानी।

धानी(पु)†[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धान्य'।

धानी[5]—संज्ञा स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी।

धानुक—संज्ञा पुं० [सं० धानुष्क] १. धनुर्धर। धनुर्धारी। धनुष चलानेवाला। कमनैत। २. एक जाति। इस जाति के लोग प्रायः ब्याह शादी में तुरही आदि बजाते हैं।

धानुर्दंडिक—संज्ञा पुं० [सं० धानुर्दण्डिक] दे० 'धानुष्क' (को०)।

धानुपंधर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धनुष + धर] धनुष धारण करनेवाला। धनुर्धर। धनुर्धारी। उ०—अनेक धानुपंधरं अनेक चक्र संवर। चले अबद्ध भेदयं धरे भरेति नेदयं।—पृ० रा०, २।११४।

धानुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् चलाकर अपनी जीविका का निर्वाह करनेवाला। कमनैत। धनुर्धर।

धानुष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

धानुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस।

धानेय, धानेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार तिल का एक परिमाण या तौल। २. धनिया। ३. कैवर्ती मुस्तक। एक प्रकार का नागरमोथा। ४. धान। छिलके समेत चावल। ५. अन्न मात्र।

विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं। किसी किसी स्मृति में लिखा है कि खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न के दाने को धान्य कहते हैं।

यौ०—धनधान्य।

६. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिसका प्रयोग शत्रु के अस्त्र निष्फल करने में होता था और जो वाल्मीकि के अनुसार विश्वामित्र से रामचंद्र को मिला था।

धान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. धान्य। धान।

धान्यकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न के दाने का छिलका (को०)।

धान्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न रखने का स्थान। बखार (को०)।

धान्यकोश—संज्ञा पुं० [सं०] बखार (को०)।

धान्यकोष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धान्यकोष्ठक' (को०)।

धान्यकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भरने के लिये बना हुआ घर या बरतन। कोठिला। गोला।

धान्यक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] धान का खेत (को०)।

धान्यचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ा (को०)।

धान्यचारी—संज्ञा पुं० [सं० धान्यचारिन्] पक्षी (को०)।

धान्यजीवी—संज्ञा पुं० [सं० धान्यजीविन्] पक्षी (को०)।

धान्यतुषोद—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्यधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक कल्पित गाय जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है।

विशेष—इसका दान विषुव संक्रांति या कार्तिक मास में सब प्रकार का सुख, सौभाग्य और पुण्य संचय करने के लिये होता है।

धान्यपंचक—संज्ञा पुं० [सं० धान्यपञ्चक] १. भावप्रकाश के अनुसार शालि, व्रीहि, शूक, शिंबी और क्षुद्र ये पाँचों प्रकार के धान। २. वैद्यक में एक प्रकार का पाचक पानी जो पाँचों प्रकार के धान, बेल और आम आदि को मिलाकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार आम, शूल तथा अतिसार आदि रोगों में होता है। ३. वैद्यक में एक पाचक औषध, जिसे धनिया, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा और त्रायमाण को मिलाकर बनाते हैं।

विशेष—इसका व्यवहार आमातिसार तथा उदरशूल आदि रोगों में होता है।

धान्यपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चावल। २. जौ।

धान्यपानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पन्ना जो धनिए से बनाया जाता है।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले धनिए को सिल पर पीसकर पानी के साथ छान लेते हैं और तब उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगंधित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं।

धान्यबीज—संज्ञा पुं० [सं०] १ धनिया। २. धान का बीज।

धान्यभोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या जागीर जिसमें अन्न बहुत होता हो।

धान्यमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रावण के यहाँ रहनेवाली एक राक्षसी जिसे उसने जानकी को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विशेष—किसी किसी का मत है कि रावण की स्त्री मंदोदरी का ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था।

धान्यमाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ अनाज का व्यापारी। २. अन्न तौलनेवाला (को०)।

धान्यमाष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो धान के बराबर होता था।

धान्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चीरफाड़ में होता था।

धान्यमूल—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययूष—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययोनि—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्यराज—संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

धान्यवर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न का ढेर (को०)।

धान्यवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पाँचों प्रकार के धान। धान्यपंचक।

धान्यवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न उधार देने का व्यवहार जिसमें ऋणी से डेवढ़ा या सवाया लिया जाता है।

धान्यवाप—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह स्थान जिसमें अन्न बहुतायत से पैदा होता हो।

धान्यबीज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धान्यबीज'।

धान्यवीर—संज्ञा पुं० [सं०] उरद। माष।

धान्यशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी मिला हुआ धनिए का पानी जो प्रतर्दाह शांत करने के लिये पिया जाता है।

धान्यशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] धान की मंजरी।

धान्यशुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० धान्यशुण्ठी] वैद्यक में एक औषध जो ज्वरातिसार और कफ के प्रकोप को शांत करता है।

विशेष—इसे बनाने के लिये एक तोला धनिया और २ तोला सोंठ कूटकर आध सेर पानी में मिलाते और उसे आग पर चढ़ा देते हैं, और जब आध पाव पानी बच जाता है तब उसे उतार लेते हैं।

धान्यशूक—संज्ञा पुं० [सं०] टूँड़ (को०)।

धान्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दान करने के लिये वह कल्पित पर्वत जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है।

विशेष—कहते हैं कि इसके दान करनेवाले को स्वर्ग में सेवा के लिये अप्सराएँ और गंधर्व मिलते हैं और यदि वह किसी प्रकार इस लोक में आ जाय तो राजा होता है।

धान्यसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० धान्यसङ्ग्रह] अनाज का भंडार (को०)।

धान्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] तंडुल। चावल।

धान्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

धान्याक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्याकृत—संज्ञा पुं० [सं०] खेतिहर। कृषक।

धान्याभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक में भस्म बनाने के लिये धान की सहायता से शोधा और साफ किया हुआ अभ्रक।

विशेष—पहले अभ्रक को सुखाकर खरल में खूब महीन पीस लेते हैं और तब उस चूर्ण को चौथाई धान के साथ मिलाकर एक कंबल में बाँधकर तीन दिन तक पानी में रखते हैं। तीन दिन बाद उस पोटली को हाथ से इतना मलते हैं कि वह छनकर नीचे पानी में गिर जाता है। उसी अभ्रक को निथारकर सुखा लेते हैं। भस्म बनाने के लिये ऐसा अभ्रक बहुत अच्छा समझा जाता है।

२. अभ्रक को इस प्रकार शोधने की क्रिया।

धान्याम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] धान से बनाई हुई खटाई या काँजी।

विशेष—दूने जल के साथ धान को एक बंद बरतन में रखकर गाड़ दे। सात दिन पीछे उसे निकालकर उसका पानी छान ले। यही खट्टा पानी काँजी है।

धान्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] चूहा।

धान्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] चावल या अनाज के रूप में संपत्ति (को०)।

धान्याशय—संज्ञा पुं० [सं०] अन्नशाला। भंडार घर।

धान्यास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूसी (को०)।

धान्योत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] शालि। धान।

धान्वंतर्य—संज्ञा पुं० [सं० धान्वन्तर्य] धन्वंतरि देवता के होम आदि। वह होम आदि जिनमें धन्वंतरि आदि देवता प्रधान हों।

धान्व—वि० [सं०] धन्व देश संबंधी। धन्व देश का।

धान्वन—वि० [सं०] दे० 'धान्व' (को०)।

धाप[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] १. दूरी की एक नाप जो प्रायः एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है। २. लंबा चौड़ा मैदान। ३. खेत की नाप या लंबाई चौड़ाई।

धाप[2]—संज्ञा पुं० [हिं० धार] पानी की धार (लश०)।

धाप[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धापना] जी भरना। तृप्ति। संतोष।

धापना[1]—क्रि० अ० [सं० तर्पण ?] संतुष्ट होना। तृप्त होने। अघाना। जी भरना। उ०—(क) लपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी। भक्ष अभक्ष अपेय पान करि कबहुँ न मनसा धापी। —सूर (शब्द०)। (ख) दूतन कह्यो बड़ो यह पापी। इन तो पाप किए हैं धापी। —सूर (शब्द०)। (ग) कबिरा औंधी खोपड़ी कबहूं धापै नाहिं। तीन लोक की संपदा कब आवै घर माँहि। —कबीर (शब्द०)।

धापना[2]—क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना।

धापना[3]—क्रि० अ० [सं० धावन ?] दौड़ना। भागना। जल्दी जल्दी चलना। उ०—द्रुमन चढे सब सखा पुकारत मधुर सुनावहु बैन। जनि धापहु बलि चरन मनोहर कठिन काँट मग ऐन।—सूर (शब्द०)।

धाबरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कबूतरों का दरबा।

धाबा—संज्ञा पुं० [देश०] १. छत के ऊपर का कमरा। अटारी। २. वह स्थान जहाँ पर कच्ची या पक्की रसोई (मोल) मिलती हो।

धाभाई—संज्ञा पुं० [हिं० धा (=धाय) + भाई] दूधभाई।

धाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक प्रकार के देवता। २ विष्णु।

धाम[2]—संज्ञा पुं० [सं० धामन्] १. गृह। घर। मकान। उ०—अप्पनै अपनै धाम कहूँ, कुच मवासिन कौन।—पृ० रासो, पृ०, १०७। २. देह। शरीर। तन। ३. बागडोर। लगाम। ४. शोभा। ५. प्रभाव। ६. देवस्थान या पुण्यस्थान। जैसे, परम धाम, चारो धाम आदि। ७. जन्म। ८. विष्णु। ९. ज्योति। १०. ब्रह्म। ११. चारदीवारी। शहरपनाह। १२. किरण। १३. तेज। १४. परलोक। १५. स्वर्ग १६. अवस्था। गति।

धाम[3]—संज्ञा पुं० [देश०] फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन से छह इंच तक लंबी और गोलाई लिए होती हैं।

धामक—संज्ञा पुं० [सं०] माशा (तौल)।

धामक धूमक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूमधाम'। उ०—वस्तु अलप है बहुत पसारा धामक धूमक भरि कोइ चले।—रामानंद०, पृ० ३५।

धामकेशी—संज्ञा पुं० [सं० धामकेशिन्] सूर्य [को०]।

धामच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

धामन¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. फालसे की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो देहरादून से आसाम तक साल आदि के जंगलों में होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी प्रायः बहँगी के डंडे या कुल्हाड़ी आदि के दस्ते बनाने के काम में आती है।

२. एक प्रकार का बाँस।

धामन²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धामिन'।

धामन(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० दामन्] एक प्रकार की घास जो नरम और रेतीली भूमि में बहुत अधिकता से होती है।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है।

धामनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी'।

धामनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

धामनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी'।

धामभाज्—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञस्थान में भाग लेनेवाला देवता।

धामश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ दंड से २८ दंड तक है।

धामसधूमस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूमधाम'। उ०—धामस धूमस लगि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारे।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४११।

धामा†—संज्ञा पुं० [सं० धाम] १. भोजन का निमंत्रण। खाने का नेवता। २. अनाज आदि रखने का बड़ा टोकरा। (पश्चिम)।

धामार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चिचड़ा। २. घीयातोरी।

धामासा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धमासा'।

धामिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धामा(=दौड़ना ?)] १. एक प्रकार का साँप जो कुछ हरापन या पीलापन लिए सफेद रंग का होता है।

विशेष—यह बहुत लंबा होता है और इसकी पूँछ में बहुत विष होता है। यह काटता नहीं बल्कि पूँछ से ही कोड़े की तरह मारता है। शरीर के जिस स्थान पर इसकी पूँछ लग जाती है उस स्थान का मांस गल गलकर गिरने लगता है। यह बहुत तेज दौड़ता है।

२. एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत, राजपूताने तथा आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मेज कुरसी और अलमारी आदि बनाने के काम में आती है।

धामिनो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धाम'। उ०—यामन मैं तुम भाय गए अब, छाँड़ि दए घर के पुर धामिनि। नट०, पृ० ४१।

धामिया—संज्ञा पुं० [हिं० धाम] एक पंथ का नाम। २. इस पंथ का आदमी।

धायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी पदार्थ के जोर से गिरने या तोप, बंदूक आदि छूटने का शब्द।

विशेष—खट, पट, आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही प्रायः होता है।

धायँ धायँ—क्रि० वि० [अनु०] १. धायँ धायँ की आवाज के साथ। २. वेग के साथ जलते हुए।

धाय¹—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] वह स्त्री जो किसी दूसरे के बालक को दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करने के लिये नियुक्त हो। धात्री। दाई।

धाय²—संज्ञा पुं० [सं० धातकी] धवई का पेड़।

विशेष—दे० 'धवई'।

धाय³—वि० [सं०] धायक [को०]।

धायक—वि० [सं०] अधिकार में रखनेवाला। स्वत्व में रखनेवाला [को०]।

धाय भाई—संज्ञा पुं० [हिं० धाय+भाई] धाय से उत्पन्न होने के कारण भाई जैसा।

धाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जानेवाला वेदमंत्र [को०]।

धायी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धाय'

धाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धाय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वेदमंत्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पढ़ा जाता है।

धार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोर से पानी बरसना। जोर की वर्षा। उ०—धार से निखरे हुए ऋतु के सुहाए बाग में। आम भरने के न झोले बन गए तो क्या हुआ?—बेला, पृ० ६६। २. इकट्ठा किया हुआ वर्षा का जल जो वैद्यक के अनुसार त्रिदोषनाशक, लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तृप्तिकर और पाचक तथा मूर्छा, तंद्रा, दाह, थकावट और प्यास आदि को दूर करनेवाला है। कहते हैं, सावन और भादों में यह जल बहुत ही हितकारक होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यह जल दो प्रकार का होता है—गांग और सामुद्र। आकाशगंगा से जल लेकर मेघ जो जल बरसाते हैं वह गांग कहलाता है और अधिक उत्तम माना जाता है; और समुद्र से जो जल लेकर मेघ वर्षा करते हैं वह जल सामुद्र कहलाता है। आश्विन मास में यदि सूर्य स्वाती और विशाखा नक्षत्र में हो तो उस महीने की वर्षा का जल गांग होता है। इसके अतिरिक्त शेष जल सामुद्र होता है। साधारणतः सामुद्र जल खारा, नमकीन, शुक्रनाशक, दृष्टि के लिये हानिकारक, बलनाशक और दोषप्रदायक माना जाता है। पर अगस्त तारे के उदय होने के उपरांत सामुद्र जल भी गांग जल की तरह गुणकारी माना जाता है।

३. ऋण। उधार। कर्ज। ४. प्रांत। प्रदेश।

धार²—वि० [सं०] गंभीर। गहरा।

धार³—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. किसी आधार से लगे हुए

अथवा निराधार द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा । अखंड प्रवाह । पानी आदि के गिरने या बहने का तार । जैसे, नदी की धार, पेशाब की धार, खून की धार । उ०—गुरु सिष सार धार एक जानी । ज्यों जल मिलि जलधार समानी ।—घट०, पृ० २४६ ।

यौ०—धारधूरा ।

मुहा०—धार चढ़ाना = किसी देवी देवता या पवित्र नदी आदि पर दूध, जल आदि चढ़ाना । धार टूटना = गिरने का प्रवाह खंडित होना । लगातार गिरना या निकलना बंद हो जाना । धार देना = (१) दूध देना । (२) कोई उपयोगी काम करना । (व्यंग्य) । जैसे,—यहाँ बैठे हुए क्या धार देते हो ? (३) दे० 'धार चढ़ाना' । धार निकलना = दूध दुहना । स्तनों से दूध निकालना । धार मारना = जोर से पेशाब करना । (किसी चीज पर) धार मारना या (किसी चीज को) धार पर मारना = किसी चीज को बहुत ही तुच्छ और अग्राह्य समझना । जैसे, हम ऐसे रुपए पर धार मारते हैं, या ऐसा रुपया धार पर मारते हैं । धार बँधना = किसी तरल पदार्थ का धार बनकर गिरना । धार बाँधना = किसी तरल पदार्थ को इस प्रकार गिराना जिसमें उसकी धार बन जाय ।

३. पानी का सोता । चश्मा । ४. जल अपक्षमध्य (लश०) । ५. किसी काटनेवाले हथियार का वह तेज सिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं । बाढ़ । जैसे, तलवार की धार चाकू की धार, कैंची की धार ।

मुहा०—धार बँधना = मंत्र आदि के बल से काटनेवाले अस्त्र की धार का निकम्मा हो जाना । धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से किसी हथियार की धार को निकम्मा कर देना ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था कि मंत्र के बल से हथियार की धार निकम्मी की जा सकती है और तब वह हथियार काट नहीं सकता ।

६. किनारा । सिरा । छोर । ७ सेना । फौज । ८. किसी प्रकार का डाका, आक्रमण या हमला । उ० जात सबन कहँ देखिए कहै कबीर पुकार । चेतना होहु तो चेत ले दिवस परत है धार ।—कबीर (शब्द०) । ९. ओर । तरफ । दिशा । उ०—महरि पैठत सदन भीतर छींक बाईं धार ।—सूर (शब्द०) । १०. जहाजों के तख्तों की संधि या जोड़ । दरजुगा (लश०) ।

धार⁶—संज्ञा पुं० [सं० धारण] चोबदार या द्वारपाल (डिं०) ।

धार⁷—संज्ञा पुं० [सं० धारण] वह पेड़ का तना या काठ का टुकड़ा जो कच्चे कुएँ के मुँह पर इसलिये लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग अंदर न गिरे ।

धारक¹—वि० [सं०] १. धारण करनेवाला । थामनेवाला । २. रोकनेवाला । ३. ऋण लेनेवाला । कर्जदार ।

धारक²—संज्ञा पुं० [सं०] कलश । घड़ा ।

धारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि । स्त्री की मूत्रेंद्रिय ।

धारण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ को अपने ऊपर रखना अथवा अपने किसी अंग में लेना । थामना, लेना या अपने ऊपर ठहराना । जैसे, शेष जी का पृथ्वी को धारण करना, शिव जी का गंगा को धारण करना, हाथ में छड़ी या अस्त्र धारण करना । २. परिधान । पहनना । जैसे, वस्त्र या आभूषण धारण करना । ३. सेवन करना । खाना या पीना । जैसे, शिव जी का विष धारण करना, औषध धारण करना । ४. अवलंबन करना । अंगीकार करना । ग्रहण करना । जैसे, पदवी धारण करना । मौन धारण करना । ५. ऋण लेना । कर्ज लेना । उधार लेना । ६. कश्यप के एक पुत्र का नाम । ७. शिव जी का एक नाम ।

धारणक—संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी । कर्जदार [को०] ।

धारणशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारण करने की शक्ति । टिकाए रखने की क्षमता ।

धारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ धारण करने की क्रिया या भाव । २. वह शक्ति जिसमें कोई बात मन में धारण की जाती है । समझने या मन में धारण करने की वृत्ति । बुद्धि । अक्ल । समझ । ३. दृढ़ निश्चय । पक्का विचार । ४. मर्यादा । जैसे,—नीति की यह धारणा है कि पानी में मुँह न देखा जाय । ५. मन या ध्यान में रखने की वृत्ति । याद । स्मृति । ६. योग के आठ अंगों में से एक । मन की वह स्थिति जिसमें कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है ।

विशेष—उस समय मनुष्य केवल ईश्वर का चिंतन करता है, उसमें किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न उसकी इंद्रियाँ विचलित होती हैं । यही धारणा पीछे स्थायी होकर 'ध्यान' में परिणत हो जाती है ।

७. बृहत्संहिता के अनुसार एक योग जो ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी से एकादशी तक एक विशिष्ट प्रकार की वायु चलने पर होता है ।

विशेष—इससे इस बात का पता लगता है कि आगामी वर्षा ऋतु में यथेष्ट पानी बरसेगा या नहीं । यह वर्षा के गर्भधारण का योग माना जाता है, इसी लिये इसे धारणा कहते हैं ।

धारणायोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंभीर समाधि । २. एक प्रकार का योग । दे० 'धारण'—७ [को०] ।

धारणावान्—संज्ञा पुं० [सं० धारणावत्] [स्त्री० धारणावती] वह जिसकी धारणा शक्ति बहुत प्रबल हो । मेधाशाली ।

धारणाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० धारणा + शक्ति] किसी बात या तथ्य को अधिक समय तक मस्तिष्क में धारण किए रहने की क्षमता [को०] ।

धारणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋणी । धरता । कर्जदार । २. वह आदमी या कोठी जिसके पास धन जमा किया गया हो ।

धारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाड़िका । नाड़ी । २. श्रेणी । पंक्ति । ३. धारण करनेवाली । पृथ्वी । ४. सीधी लकीर । ५. बौद्ध तंत्र का एक अंग जो प्रायः हिंदू तंत्र के कवच के समान है ।

विशेष—इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, तथा बरमा के बौद्धों में अधिकता से है । बौद्ध तांत्रिक इसे अभीष्टसिद्धि और दीर्घ

जीवन का साधन मानते हैं। इसके अधिकांश के उपदेष्टा बुद्ध और श्रोता आनंद या वज्रपाणि माने जाते हैं।

६. १६० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची नाव। (युक्तिकल्पतरु)।

धारणीमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि।

धारणीय[१]—वि० [सं०] धारण करने योग्य। जो धारण किया जा सके। रखने योग्य।

धारणीय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक प्रकार का यंत्र जो सोने की कलम से केसर, रोचन, लाख, कस्तूरी, चंदन और हाथी के मद से लिखा जाता है।

विशेष—यह यंत्र पूजा के यंत्र से भिन्न होता है और शरीर पर धारण किया जाता है। जमीन या शव से छू जाने, जलने अथवा लाँघे जाने से यह यंत्र अशुद्ध हो जाता है और धारण करने योग्य नहीं रहता।

धारणीया[१]—वि० [सं०] धारण करने योग्य। रखने योग्य। जो धारण किया जा सके। उ०—बड़ों की बात है अविचारणीया, मुकुट मणि तुल्य शिरसा धारणीया।—साकेत, पृ० ६३।

धारणीया[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धारणीकंद। २. दे० 'धारणीय'[२]।

धारदार—वि० [हिं० धार + फ़ा० दार] धारवाला। पैना।

धारधूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धार + धूरा (=धूल)] नदी की रेत से बनी हुई या नदी के हट जाने से निकली हुई जमीन। गंगबरार।

धारन—संज्ञा पुं० [सं० धारण] १. हाथी के खिलाने के लिये तैयार की हुई दवा। २. दे० 'धारण'।

धारना[१]—क्रि० स० [सं० धारण] १. धारण करना। अपने ऊपर लेना। २. ऋण करना। उधार लेना।

धारना[२]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढारना'।

धारयिता—संज्ञा पुं० [सं० धारयितृ] [स्त्री० धारयित्री] धारण करनेवाला।

धारयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण करनेवाली। २. पृथ्वी।

धारयिष्णु—वि० [सं०] धारण या ग्रहण करने योग्य (को०)।

धारयिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धैर्य (को०)।

धारस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढारस'।

धारांकुर—संज्ञा पुं० [सं० धाराङ्कुर] १. सरल का गोंद। २. धनोपल। ओला। बिनौरी।

धारांग—संज्ञा पुं० [सं० धाराङ्ग] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। २. खड्ग।

धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की चाल।

विशेष—प्राचीन भारतवासियों ने घोड़ों की पाँच प्रकार की चालें मानी थीं—आस्कंदित, धारितक, रेचित, वल्गित और प्लुत।

२. किसी द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा। पानी आदि का बहाव या गिराव। अखंड प्रवाह। धार। ३. लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। ४. पानी का झरना। सोता। चश्मा। ५. काटनेवाले हथियार का तेज सिरा। बाढ़। धार। ६. बहुत अधिक वर्षा। ७. समूह। झुंड। ८. सेना अथवा उसका अगला भाग। ९. घड़े आदि में बनाया हुआ छेद या सुराख। १०. संतान। औलाद। ११. उत्कर्ष। उन्नति। तरक्की। १२. रथ का पहिया। १३ यश। कीर्ति। १४. प्राचीन काल की एक नगरी का नाम जो दक्षिण देश में थी। १५. महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। १६. वाक्यावलि। पंक्ति। १७. लकीर। रेखा। १८. पहाड़ की चोटी। १९. मालवा की एक राजधानी जो राजा भोज के समय में प्रसिद्ध थी। कहते हैं, भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा लाए थे। २०. बाग का घेरा (को०)। २१. रात्रि (को०)। २२. हल्दी (को०)। २३. कान का सिरा (को०)। २४. वाणी (को०)। २५. कर्ज। ऋण (को०)। २६. एक प्रकार का पत्थर (को०)। २७. अफवाह। चर्चा (को०)। २८. क्रम। पद्धति। २९. नियम या विधान का एक अंश। दफा (को०)। ३०. साहित्यिक प्रवृत्ति अथवा उपविभाजन। साहित्य का कोई प्रवाह या उपविभाग। जैसे, छायावादी काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा।

धाराकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धाराकदम्ब] एक प्रकार का कदम का पेड़।

धारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान या घर जिसमें फुहारा लगा हो।

धाराग्र—संज्ञा पुं० [सं०] बाण का चौड़ा सिरा (को०)।

धाराट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चातक। २. मेघ। बादल। ३. घोड़ा। ४. मस्त हाथी।

धाराधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. खड्ग। तलवार।

धारानिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा (को०)।

धारापात—संज्ञा पुं० [सं०] जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा (को०)।

धारापूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूवा (पकवान) जो मैदे को घी मिले हुए दूध मे सानकर और तब घी में छानकर बनाया जाता है और जिसमें पीछे से खाँड़ या चीनी मिला दी जाती है।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह बलकारक, रुचिकारक और पित्त तथा वातनाशक है।

धाराप्रवाह—वि० [सं० धारा + प्रवाह] लगातार। अविराम (को०)।

धाराफल—संज्ञा पुं० [सं०] मदनवृक्ष। मैनफल वृक्ष।

धारायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० धारायन्त्र] वह यंत्र जिससे पानी की धार छूटे। फुहारा।

धाराल—वि० [सं०] १. जिसकी धार तेज हो। धारदार (हथियार)। २. धारा में बहनेवाला (को०)।

धाराली—संज्ञा स्त्री० [सं० धाराल] १. तलवार। खड्ग। कटारी। (डिं०)।

धारावनि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

धारावर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

धारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] लगातार वृष्टि । अविराम वृष्टि [को०] ।

धारावर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] धारावर्ष [को०] ।

धारावाहिक—वि० [सं०] धाराप्रवाह । अविराम गति से चलनेवाला [को०] ।

धारावाहिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० धारावाहिक+ता (प्रत्य०)] धारावाहिक होने की स्थिति । निरंतरता । उ०—पद के अंत में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिकता के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है ।—रजत० (विज्ञप्ति) ।

धारावाही—वि० [सं०] जो धारा के रूप में आगे बढ़ता हो । बिना रोक टोक बढ़ने या चलनेवाला ।

धाराविष—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग । तलवार ।

धारासंपात—संज्ञा पुं० [सं० धारासम्पात] बहुत तेज और अधिक वृष्टि । जोरों की बारिश ।

धारासभा—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा+सभा] व्यवस्थापिका सभा ।

धारासार—वि० [सं०] लगातार वृष्टि । बराबर पानी बरसना ।

धारास्नुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिधारा थूहर ।

धारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. दे० 'धार' । २. समूह । झुंड । उ०—(क) धावौ धावौ धरौ सुनि धाए जातुधान धारि बारिधार उलदि जलद ज्यों नसावनो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रामरूप अवरेख सुभागी । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण और एक लघु होता है । जैसे,—री लखी न । जात कौन । वस्त्र हारि । मौन धारि ।

धारिणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धरणी । पृथ्वी । भूमि । जमीन । २. शाल्मली । सेमर का पेड़ । ३. चौदह देवताओं की स्त्रियाँ जिनके नाम ये हैं—शची । वनस्पति । गार्गी । धूम्रोर्णा । रुचिराकृति । सिनीवाली । कुहू । राका । अनुमति । आयाति । प्रज्ञा । सेना । वेला ।

धारिणी[2]—वि० स्त्री० धारण करनेवाली ।

धारित[1]—वि० [सं०] १. धारण किया हुआ । २. सम्हाला हुआ । रखा हुआ [को०] ।

धारित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक चाल [को०] ।

धारितक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक चाल । धारित [को०] ।

धारी[1]—वि० [सं० धारिन्] [स्त्री० धारिणी] १. धारण करनेवाला । जिसने धारण किया हो ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, छत्रधारी ।

२. किसी ग्रंथ के तात्पर्य को भली भाँति जाननेवाला । ३. ऋण लेनेवाला । कर्जदार । ३. पीलू का पेड़ ।

धारी[2]—संज्ञा पुं० १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में पहले तीन जगण और तब एक यगण होता है । जैसे,—जु काल मँह छबि देखत बीते । तुम्हार प्रभु गुण गावत ही ते । कृपा करि देहु वहै गिरिधारी । याचौं कर जोरि सुभक्ति तिहारी । २. दे० 'धारि'—३ । ३. पीलू का पेड़ ।

धारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. सेना । फौज । २. समूह । झुंड । ३. रेखा । लकीर । जैसे,—यदि इस कपड़े पर कुछ धारियाँ होतीं तो और भी अच्छा होता ।

यौ०—धारीदार ।

४. पुश्ता ।

धारी(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [प्रा० धाडय] लुटेरों की एक जाति । उ०—सतगुरु नायक के संग मिलि चल लूट सकै नहिं धारी ।—चरण० बानी, पृ० ९७ ।

धारीदार—वि० [हिं० धारी+फ़ा० दार] जिसमें लंबी लंबी धारियाँ या लकीरें पड़ी अथवा बनी हों । जैसे, धारीदार मलमल ।

धारूजल—संज्ञा पुं० [डिं०] खड्ग । तलवार ।

धारोष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] थन से निकला हुआ ताजा दूध जो प्राय. कुछ गरम होता है और स्तन से निकलने के कुछ समय बाद तक गरम रहता है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दूध अमृत के समान और श्रम हरनेवाला, निद्रा लानेवाला, वीर्य और पुरुषार्थ बढ़ानेवाला ? पुष्टिकारक, अग्नि को बढानेवाला, अति स्वादिष्ट और त्रिदोष को हरनेवाला होता है ।

धार्तराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. काले रंग की चोंच और पैरों वाला हंस । २. एक नाग का नाम । ३. [स्त्री० धार्तराष्ट्री] धृतराष्ट्र के वंश का आदमी ।

धार्तराष्ट्रपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता । लाल रंग का लज्जालु ।

धार्म—वि० [सं०] धर्म संबंधी ।

धार्मिक—वि० [सं०] १. धर्मशील । धर्मात्मा । धर्माचरण करनेवाला । पुण्यात्मा । जैसे,—आप बड़े ही धार्मिक हैं । २. धर्मसंबंधी । जैसे, धार्मिक क्रियाएँ ।

धार्मिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशीलता । धार्मिक होने का भाव ।

धार्मिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धार्मिकता' ।

धार्मिण—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक व्यक्तियों की सभा [को०] ।

धार्मिणेय—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक स्त्री का पुत्र [को०] ।

धार्मिणेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक स्त्री की पुत्री [को०] ।

धार्य[1]—वि० [सं०] धारण करने के योग्य । धारणीय ।

धार्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र । कपड़ा ।

धार्यत्व—संज्ञा पुं० [सं० धार्यत्व] धारण करने का भाव या क्रिया ।

धालना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढालना' । उ०—उपजो ग्यान ध्यान प्रेम रस धाला ।—रामानंद०, पृ० ५० ।

धार्ष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता ।

धार्ष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता [को०] ।

धाव¹—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक प्रकार का लंबा और बहुत सुंदर पेड़ जिसे गोलरा, धावरा, बकली और खरधाया भी कहते हैं।
विशेष—दे० 'धव'।

धाव²—संज्ञा स्त्री० [?] लंबाई। उ०—प्रथम ही अयोध्या नगर जिसका उणाव, बारै जोजन तो चोड़े सोलै जोजन को धाव।—रघु० रू०, पृ० २३७।

धाव³—वि० [सं०] धोनेवाला। साफ करनेवाला [को०]।

धावक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दौड़कर चलनेवाला। हरकारा। उ०—धावक आप महोब गहें, सोम बवी सुनु वत्त।—प० रासो, पृ० ११०। २. धोबी। रजक। ३. संस्कृत साहित्य के एक आचार्य और कवि जिनका नाम कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक तथा काव्यप्रकाश और साहित्यसार में आता है।

धावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० धव + ड़ा (प्रत्य०)] धव का पेड़।

धावण—संज्ञा पुं० [सं० धावन] दूत। हरकारा (डिं०)।

धावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत जल्दी या दौड़कर जाना। २. दूत। हरकारा। चिट्ठी या संदेशा पहुँचानेवाला। उ०—(क) द्विविद करि कोप हरि पुरी आयो। नृप सुदक्षिणा जर्यो जरी वाराणसी धाय धावन जबहिं यह सुनायो।—सूर (शब्द०)। (ख) एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ। गुरु अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेस मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। ३. धोने या साफ करने का काम। ४. वह चीज जिससे कोई चीज धोई या साफ की जाय। उ०—निद्रा हास्य मदर्णत बोले। नजि रद धावन भूठ न बोले।—विश्राम (शब्द०)।

धावना(पु)†—क्रि० अ० [सं० धावन (=गमन)] वेग से चलना। दौड़ना। भागना। जल्दी जल्दी जाना। उ०—धाराधर धावत धरा पै गरजत है।—हम्मीर०, पृ० २४।

धावनि(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० धावन (= गमन)] १. जल्दी जल्दी चलने की क्रिया या भाव। दौड़। उ०—वा पट पीत की फहरान। कर धरि चक्र चरन की धावनि नहिं बिसरति वह बान।—सूर (शब्द०)। २. धावा। चढ़ाई। उ०—सिंधु पार परे सब आनंद सो भरे कपि गाजे शंख बाजे शंख बाजे सब लंका पर धावनि।—हनुमान (शब्द०)।

धावनि²—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी लता।

धावनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंटकारिका। कटेरी। २. पिठवन। पृश्निपर्णी। ३. कँटीली मकोय।

धावनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृश्निपर्णी लता। पिठवन। २. कंटकारी। ३. धव का फूल।

धावमान—वि० [सं०] दौड़ता हुआ।

धावर—वि० [सं० धाव + र (ड) (प्रत्य०)] दौड़नेवाला। धावक। उ०—धावर सुकन्हि बहुप्रान की। बोलि बीर चल्चिग महर।—पृ० रा०, १७।३०।

धावरा¹—संज्ञा पुं० [सं० धव + हिं० रा (प्रत्य०)] दे० 'धव'।

धावरा²—संज्ञा पुं० [हिं० धवरा] दे० 'धवरा'।

धावरी(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] सफेद गाय। धौरी।

धावरी²—वि० सफेद। उज्वल। उ०—गगन लता तें बलित हैं जहँ तमाल तरुजाल। धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल।—रामसहाय (शब्द०)।

धावल्य—संज्ञा पुं० [सं०] धवलता। सफेदी [को०]।

धावा—संज्ञा पुं० [सं० धावन] १. शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित तैयार होकर जाना। आक्रमण। हमला। चढ़ाई।
मुहा०—धावा बोलना = (१) अधिकारी का अपने सैनिकों को आक्रमण करने की आज्ञा देना। (२) चढ़ाई कर देना। (३) किसी काम के लिये जल्दी जल्दी जाना। दौड़। धावा मारना = जल्दी जल्दी चलना। जैसे,—इस धूप में हम तीन कोस का धावा मारकर आ रहे हैं।

धावित—वि० [सं०] १. स्वच्छ किया हुआ। धोया हुआ। २. दौड़ता हुआ। ३ तेजी से जाता हुआ [को०]।

धावितृ—संज्ञा पुं० [सं० धावितृ] दौड़कर जानेवाला। धावक [को०]।

धाह¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] जोर से चिल्लाकर रोना। धाड़। उ०—(क) देखि नंद चले घर आवन। पैठत पौरि छींक भइ बाँई रोइ दाहिने धाह सुनावन।—सूर (शब्द०)। (ख) ऊनै आई बादरी बरसन लगा अँगार। उठि कबीरा धाह दे दाझत है संसार।—कबीर (शब्द०)। (ग) जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाईं।—तुलसी (शब्द०)।
मुहा०—धाड़ मारना = दे० 'धाड़ मारना'। धाह मेलना = जोर जोर से रोना।

धाह(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढाड'। उ०—जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ।—दादू०, पृ० ७३।

धाहड़ना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धाह] पुकारना। उ०—(क) मंझे मेड़ो मुच थईला, कैंदरि करिया धाहड़े।—दादू० पृ० ५३०। (ख) देवलि देवलि धाहड़ो। कबीर ग्रं०, पृ० ११।

धाहना(पु)—क्रि० स० [सं० ध्वंसन] ढाहना। ध्वंस करना। नष्ट करना। उ०—देवगिर दुग्ग है पुरनि धाहि। बालका जीति दै जग्य धाहि।—पृ० रा०, १। ३७५।

धाही(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। धाय। उ०—तस्य देवान धृष्टबुधि नामा। रही आइ धाही तेहि धामा।—विश्राम (शब्द०)।

धिंग—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्ग या अनु० धींगाधींगी] धींगाधींगी। ऊधम। उपद्रव। शरारत। उ०—अब त्यों भवानी सिंह। गढ़ लैन रुप्पिय धिंग।—सूदन (शब्द०)।

धिंगड़—संज्ञा, पुं० [हिं०] दे० धींगरा'—२.। उ०—आगु ने दूसरा धिंगड़ ठाढ़ा किया।—कबीर रे०, पृ० ३२।

धिंगरा—संज्ञा पुं० [हिं० धींगरा] दे० 'धींगरा'।

धिंगा†—संज्ञा पुं० [सं० दृढाङ्ग] १. बदमाश। शरीर। उपद्रवी। २. बेशर्म। निर्लज्ज।

धिंगाई—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] १. शरारत। उपद्रव। ऊधम। बदमाशी। उ०—जानि बूझि इन करी धिंगाई। मेरी बलि पर्वतहि चढ़ाई।—सूर (शब्द०)। २. बेशर्मी। निर्लज्जता।

धिंगाधिंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धींगाधींगी'।

धिंगाना‡—संज्ञा पुं० [हिं० धिंग] धींगाधींगी करना। उपद्रव करना। ऊधम मचाना।

धिंगी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] बदमाश स्त्री। निर्लज्ज स्त्री। हुड़दंगी औरत।

धि—संज्ञा पुं० [सं०] भांडार। आगार [को०]।

विशेष—यह समास के अंत में प्रयुक्त होता है। जैसे, उदधि, इषुधि, वारिधि, जलधि।

धिआ†—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीआ] १. बेटी। कन्या। २. कोई छोटी लड़की।

धिआन(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान] दे० 'ध्यान'।

धिआना(पु)† —क्रि० स० [हिं०] दे० 'ध्याना' या 'ध्यावना'।

धिक—अव्य० [सं०] १. तिरस्कार, अनादर या घृणासूचक एक शब्द। लानत। २. निंदा। शिकायत।

धिक अव्य० [सं० धिक्] धिक्। लानत। उ०—धिक धर्मध्वज धंधकधोरी।—तुलसी (शब्द०)।

धिकना†—क्रि० अ० [सं० दग्ध या हिं० दहकना] गरम होना। तप्त होना। आग की गरमी से लाल हो जाना। उ०—जरहिं जो पर्वत लाग अकासा। बनखंड धिकहिं पलास कोपासा।—जायसी (शब्द०)।

धिकवना(पु) —क्रि० स० [हिं० धिकना] गरम करना। तपाना। उ०—तोहि से परिहि सो बपरा जम धिकवै भाथी। स्वारथ के सब लोग औसर के कोऊ न साथी।—पलटू०, भा० १, पृ० ५५।

धिकाना†—क्रि० स० [सं० दग्ध या हिं० दहकाना] तपाना। खूब गरम करना। तपाकर लाल करना।

धिक्कार—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार, अनादर या घृणाव्यंजक शब्द। लानत फटकार।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

धिक्कारना—क्रि० स० [सं० धिक्] धिक् कहकर बहुत तिरस्कार करना। बहुत बुराभला कहना। लानत मलामत करना। फटकारना।

धिक्कृत—वि० [सं०] जो धिक्कारा जाय। जिसे धिक् कहा जाय। जिसका तिरस्कार हो।

धिक्कृत —संज्ञा पुं० [सं०] तिरस्कार। लताड़ [को०]।

धिक्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धिक्कार'।

धिक्पारुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] डाँट फटकार। निंदा [को०]।

धिख(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'धिक'। उ०—भिंडपाल गजगल विटप भड़, धिख रदा व भीषण उवरधर।—रघु० रू०, पृ० २२४।

धिग(पु)—अव्य० [सं० धिक] दे० 'धिक्कार'।

धिगानो(पु)—वि० [हिं० धिग] तिरस्करणीय। धिक्कार के योग्य। उ०—श्याम हौ इठावत है लायो तू धिगानो रे।—ब्रज० ग्रं०, १३२।

धिग्दंड—संज्ञा पुं० [सं० धिग्दण्ड] दंड के रूप में धिक्कार [को०]।

धिग्वण—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति जो ब्राह्मण पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न मानी जाती है।

धिग्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] तिरस्कारपूर्ण वाक्य या वचन [को०]।

धित—वि० [सं०] १. रखा हुआ। २. संतुष्ट। तृप्त [को०]।

धिप्सु—वि० [सं०] १. धोखा देने की इच्छा करनेवाला। २. धोखेबाज [को०]।

धिमचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की इमली।

धिजाइ(पु)—क्रि० स० [हिं० धीरज] धीरज दिलाकर। विश्वास उत्पन्न करके। उ०—बुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि।—दादू०, पृ० २८७।

धिजावना(पु)—क्रि० स० [?] पुकारना। बुलाना। उ०—दुष्ट धिजावै बहुत बिधि भ्रांति नवावै सीस।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२३।

धिड़ंग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धड़ंग'। उ०—दुर्बल रोगी, नग धिड़ंग जिनके शिशुगन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६।

धिद्धर(पु)—वि० [सं० धृष्ट] धृष्ट। ढीठ। उ०—तेन सहस्सं तेय दस्सं, सुभक्ष जस्स धिद्धरं।—पृ० रा०, ६। ११८।

धिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धन्य'। उ०—तृतीय बंदि धिन संतएँ, सब के लागूँ पाय।—राम० धर्म०, पृ० १८५।

धिनी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धन्य'। उ०—जग धिनी पंखी जात, सुख पंख जेण सु गात।—रा० रू०, पृ० ६८।

धिन्न(पु)— वि० [हिं०] दे० 'धन्य'। उ०—दिल्ली सेतन छंडियौ, धारण चारण धिन्न।—रा० रू०, पृ० ४०।

धिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] १. कन्या। बेटी। उ०—धर्मी गरभ मे अनल ज्यों त्यों तेरी धिय मंत। धारति तेज दियो जो तुर प्रजा हेत दुष्यंत।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। २. लड़की। बालिका।

धियांपति—संज्ञा पुं० [सं० धियाम्पति] बृहस्पति [को०]।

धिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धिय'।

धियान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ध्यान'। उ०—वामदेव से देव बलि जाको धरत धियान।—नंद० ग्रं०, पृ० ६२।

धिरकार†—संज्ञा स्त्री० [सं० धिक्कार] दे० 'धिक्कार'। उ०—नाम बिना धिरकार है, सुंदर धनवंत भूप।—संतवाणी०, पृ० १५५।

धिरग(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'धिक्'। उ०—धन छोडा पन सुख महा धिरग बड़ाई ख्वार।—सहजो०, पृ० ३६।

धिरज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धीरज'। उ०—परतिरि मानव जीति धिरजै मनोभव जीति।—विद्यापति, पृ० १५७।

धिरवना†—क्रि० स० [सं० धर्षण] धमकाना। उ०—(क) समय परे की बात बाज कहूँ धिरवै फुदकी।—गिरधर (शब्द०)। (ख) सुख भगरति आनंद उर धिरवति है घर जाहु।—सूर (शब्द०)। (ग) कोउ उठि भागत पुनि नहिं आवत धिरवत अंगुलि दिखाई।—रघुराज (शब्द०)।

घिराना(पु)†¹—क्रि० स० [हिं० घिरवना] डराना। धमकाना। भय दिखाना। उ०—(क) जाति पाँति सों कहाँ अचगरी यह कहि सुतहिं घिरावति।—सूर (शब्द०)। (ख) आना मारन मोहिं घिरावै देखे मोहिं न भावत।—सूर (शब्द०)।

घिराना²—क्रि० अ० [सं० धीर] १. धीमा होना। गति में मंद पड़ना। उ०—उपचार विचार किए न घिरानो।—केशव (शब्द०)। २. स्थिर होना। धैर्य धारण करना।

धियावसु—संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती के वर्ग के एक वैदिक देवता जो 'धी' अर्थात् बुद्धि के देवता माने जाते हैं।

धिषण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति। २. ब्रह्मा। ३. नारायण। विष्णु। ४. गुरु। शिक्षक। ५. निवास। वासस्थान (को०)।

धिषण²—वि० [सं०] बुद्धिमान। अक्लमंद। समझदार।

धिषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। अक्ल। २. स्तुति। ३. वाक्शक्ति। ४. पृथ्वी। ५. स्थान। ६. प्याला (को०)।

धिषणाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

धिषन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] दे० 'धिषण'। उ०—स्रष्टा चतुरानन धिषन, द्रुहिन स्वयंभू सोइ।—अनेकार्थ०, पृ० ६६।

धिष्ट(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धृष्ट'। उ०—और अरिष्ट भय दिष्ट धिष्ट धारन धर धुम्मर।—पृ० रा०, १२।१४७।

धिष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान। जगह। २. घर। ३. नक्षत्र। ४ आग। ५. शक्ति। ६. शुक्राचार्य।

धिष्ण्य¹—वि० [सं०] १. जिसकी प्रशंसा की जाय। २. जिसके विषय में गंभीर रूप से सोचा जाय। ३. जो उच्च स्थान का अधिकारी हो। ४. सजग। सावधान। ५. उदार। दयालु (को०)।

धिष्ण्य²—संज्ञा पुं० १. हवन कुंड। २. शुक्राचार्य। ३ शुक्र ग्रह। ४. शक्ति। बल। ५. स्थान। ६. भवन। घर। ७. उल्का। ८. अग्नि। ९. तारा (को०)।

धिस्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] दे० 'धिषण'। उ०—अपन धिस्न पुनि आसपद आतप निलय निकेत।—अनेकार्थ०, पृ० ४३।

धिस्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धिषण] भवन। घर। उ०—गेह, वेस्म, संकेत, लय, मंडप, धिस्म आमपद।—नंद० ग्रं०, पृ० १०८।

धींग¹—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (= शठ) या दढांग] हट्टा कट्टा मनुष्य। उ०—धींगरी धींग बावरि करैं मोहिं बुलावत साँझ।—सूर (शब्द०)।

धींग²—वि० १. मजबूत। जोरावर। २. शरीर। बदमाश। उपद्रवी। ३. कुमार्गी। पापी। बुरा। उ० प्रगनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो।—तुलसी (शब्द०)।

धींगड़†—वि० [सं० डिङ्गर] [स्त्री० धींगड़ी] १. पाजी। बदमाश। दुष्ट। २. हट्टा कट्टा। हृष्ट पुष्ट। ३. वर्णसंकर। दोगला। हरामी।

धींगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धींगड़'।

धींगधुकड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग] १. धींगामुश्ती। २. पाजीपन।

धींगमधूँगा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धींगाधींगी'। उ०—अरे हाँ रे पलटू आखिर बड़े से बड़े दिन चार का धींगमधूँगा।—पलटू०, भा०, पृ० ७७।

धींगरा—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर] १. हट्टा कट्टा। मुसंड। मोटा ताजा। २. शठ। बदमाश। कुकर्मी। गुंडा।

धींगरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग + री (प्रत्य०)] पाजी। उपद्रव करनेवाली स्त्री। उ०—धींग तुम्हारो पूत धींगरी हमको कीन्ही।—सूर (शब्द०)।

धींगा—संज्ञा पुं० [सं० डिंगर (= शठ)] शरीर। बदमाश। उपद्रवी। पाजी।

यौ०—धींगामुश्ती।

धींगाधींगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धींग] १. शरारत। बदमाशी। उपद्रव। पाजीपन। २. जबरदस्ती। बलप्रयोग।

धींगामस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धींगामुश्ती'।

धींगामुश्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० धींगा + मस्ती] १. शरारत। बदमाशी उपद्रव। पाजीपन। २. जबरदस्ती लड़ना। हाथाबाँही।

धींद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० धीन्द्रिय] वह इंद्रिय जिससे किसी बात का ज्ञान किया जाय। जैसे, मन, आँख, कान, त्वक्, जीभ, नाक। ज्ञानेंद्रिय।

धींवर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धीवर'।

धी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। अक्ल। समझ।

विशेष—दे० 'बुद्धि'।

२. मन। ३. कर्म। ४. कल्पना (को०)। ५. विचार (को०)। ६. भक्ति (को०)। ७. यज्ञ (को०)। ८. उद्देश्य (को०)।

धी²—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीआ] लड़की। बेटी। उ०—झंडे ले लेकर निकली धी और बहूटी पहित की।—बेला, पृ० ४७।

धी(पु)³—वि० धैर्यवान। सुस्थिर। उ०—नाटक प्रमान कथ्यं। मुनि राजन धी ढिल्लीसं।—पृ० रा०, २५।१।

धीआ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धीया'।

धीगम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धींगा] मनमानी। अन्याय। उ०—अधरम आठो गाँठि न्याव बिनु धीगम सूझा।—पलटू०, भा० १, पृ० १०२।

धीगुण—सं० पुं० [सं०] सुश्रूषा, श्रवण आदि बुद्धि के आठ धर्म (को०)।

धीजना—क्रि० स० [सं० √धृ, धार्य, धैर्य] १. ग्रहण करना। स्वीकार करना। अंगीकार करना। उ०—(क) पाती लै कै चल्यो विप्र छिप्रवहिं पुरी गयो, नयो चाव जान्यो एपै कैसे तिया धीजिए। कह्यो तुम जाइ रानी बैठी सब आई मोको बोल्यो न सोहाय प्रभु सेवा माँझ धीजिए।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) धरिया कूँ धीजूँ नहीं गहूँ अधर की बाँहि। धरिया अधर पहिचानियाँ तो कछू धरावहि नाँहि।—कबीर

(शब्द०)। २. धीरज धरना। धैर्य युक्त होना। उ०—माय मिली अलिन में, लालन की ध्यान हिये, पिये मद मानो गृह आई तब धीजी है।—प्रियादास (शब्द०)। ३. अति प्रसन्न होना। संतुष्ट होना। उ०—(क) धरे सब जाय प्रभु सुकर बनाय दियो कियो सरबोपरि ले चल्यो मति धीजिए।—प्रियादास (शब्द०)। (ख) उज्वल देखि न धीजिए बग ज्यों माँड़े ध्यान। धीरे बैठि चपेटि सी यों ले बूड़े ज्ञान।—कबीर (शब्द०)।

धीट(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धृष्ट'। उ०—ऊ पच्छम मोड गयो अणभंगी धीट बडा वृध धारिया।—रघु० रू०, पृ० १५८।

धीठ—वि० [हिं०] दे० 'धृष्ट'।

धीढर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धृष्ट'। उ०—लीकं सुबच्छं सुदृध कच्छं, हूअ गच्छं धीढरं।—पृ० रा०, ६।११६।

धीण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धेनु] गाय। उ०—घर घर में धीणाँ घणाँ घर घर धूमै माट।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ६१।

धीत—वि० [सं०] १. जो पिया गया हो। २. जिसका अनादर हुआ हो। ३. जिसकी आराधना की जाय। ४. विचारित। चिंतित सोचा हुआ (को०)।

धीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पान करने की क्रिया। पीना। २. प्यास। ३. विचार। चिंतन (को०)। ४. भक्ति। आराधना। श्रद्धा (को०)। ५. अनादर (को०)।

धीदा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता का प्रा० रूप] १. कन्या। कुँआरी लड़की। २. पुत्री। बेटी। ३. मनीषा (को०)।

धीदा[2]—वि० स्त्री० बुद्धि प्रदान करनेवाली (को०)।

धीदाता—वि० [सं० धी+दातृ] बुद्धि देनेवाला। ज्ञान देनेवाला। उ०—सो धीदाता पलक में तिरै, तिरावण जोग।—दादू०, पृ० ६।

धीन—संज्ञा पुं० [देश०] लोहा। (डिं०)।

धीपति—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

धीमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० धीमन्त्री] संमति देनेवाला मंत्री। सलाहकार (को०)।

धीम(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'धीमा'।

धीमर—संज्ञा पुं० [हिं० धीवर] दे० 'धीवर'। उ०—परे मच्छ पहिना औ रोहू। धीमर मारत करै नहि छोहू।—जायसी (शब्द०)।

धीमा—वि० [सं० मध्यम ?] [वि० स्त्री० धीमी] १. जिसका वेग या गति मंद हो। जिसकी चाल में बहुत तेजी न हो। जो आहिस्ता चले। जैसे, धीमी चाल, धीमी हवा। २. जो अधिक प्रचंड, तीव्र या उग्र न हो। हलका। जैसे, धीमी आँच, धीमी रोशनी। ३. कुछ नीचा और साधारण से कम (स्वर)। जैसे, धीमा स्वर, धीमी आवाज। ४. जिसका जोर घट गया हो। जिसकी तेजी कम हो गई हो। जैसे,—(क) पहले तो वह बहुत बिगड़ा पर पीछे धीमा हो गया। (ख) जब उनका गुस्सा कुछ धीमा हुआ तब उसने सारा हाल उनसे कह सुनाया।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

धीमा तिताला—संज्ञा पुं० [हिं० धीमा+तिताला] संगीत में सोलह मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली होता है। इसके मृदंग के बोल ये हैं,—

× ३ ०
धेत धेत धेने नाग, देगे तेटे केटे ताग, गदेताक धागे; तेटेक तागदि धेने। और तबले के बोल ये हैं।

\+ ३
धा दिन दिन धा, दिन् धागे तेरेकेटे दिन नादिन तिन ता,
१
दिन धागे तेरेकेटे दिन। धा ॥

धीमान्—संज्ञा पुं० [सं० धीमत्] [स्त्री० धीमती] १. बृहस्पति। २. बुद्धिमान्। समझदार। अक्लमंद। उ०—धीमान् कहते हैं तुम्हें लोग, जयसिंह, सिंह हो तुम, खेलो शिकार खूब हिरनों का।—अपरा, पृ० ८६।

धीमे—अव्य० [हिं० धीमा] धीमी गति से। धीरे धीरे।

धीय†—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] १. दे० 'धी'। उ०—बुद्धि मनीषा सेमुषी मेधा धिषना धीय।—अनेकार्थ०, पृ० ६६। २. जमाई। जामाता। दामाद (डिं०)।

धीया—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीदा धीया] लड़की। बेटी।

धीर[1]—वि० [सं०] १. जिसमें धैर्य हो। जो जल्दी घबरा न जाय। दृढ़ और शांत चित्तवाला। उ०—जीवन में सुख दुःख निरंतर आते जाते रहते हैं। सुख तो सभी भोग लेते हैं, दुःख धीर ही सहते हैं।—साकेत, पृ० ३७१। २. बलवान्। ताकतवर। ३. विनीत। नम्र। ४ गंभीर। ५. मनोहर। सुंदर। ६. मंद। धीमा।

धीर[2]—संज्ञा पुं० १. केसर। २. ऋषभ नामक ओषधि। ३. मंत्र। ४. राजा बलि।

धीर(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] १. धैर्य। धीरज। ढाढ़स। मन की स्थिरता। २. संतोष। सब्र।

क्रि० प्र०—करना।—धरना।—रखना।

धीरक—संज्ञा पुं० [सं० धीर] 'धैर्य'। उ०—दिये धीरक उसे इस वजा बेहिसाब, उड्या बाते दरहाल तोता शिताब।—दक्खिनी०, पृ० ६१।

धीरज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] दे० 'धैर्य'। उ०—होइ न कहूँ अनंद अजीरन। तासों धरु धीरज चंचल मन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६०७।

धीरचेता—वि० [सं० धीरचेतस्] दृढ़मति। स्थिर चित्तवाला (को०)।

धीरजता—संज्ञा स्त्री० [हिं० धीरज+ता (प्रत्य०)] धीरज। धैर्य। उ०—बेटा! स्याबास तेरी धीरजता को।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०२।

धीरजमान—संज्ञा पुं० [हिं० धीरज+मान] दे० 'धैर्यवान्' या 'धीर'।

धीरट—संज्ञा पुं० [?] हंस पक्षी। (डिं०)।

धीरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्त की स्थिरता। मन की दृढ़ता। धैर्य। २. स्थिरता। ३. संतोष। सब्र। ४. चतुराई (को०)। ५. पांडित्य। बुद्धिमत्ता (को०)। ६. गंभीरता (को०)।

धीरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] धीर होने का भाव। धीरता।

धीरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीकंद।

धीरप्रशांत—संज्ञा पुं० [सं० धीरप्रशान्त] दे० 'धीरशांत'।

धीरमति—वि० [सं० धीर + मति] धैर्यवान्। धीरज रखनेवाला। उ०—वे धरम धुरंधर धीरमति सूर सिरोमन संत जन।—व्रज० ग्रं०, पृ० ६५।

धीरललित—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सदा बना-ठना और प्रसन्नचित्त रहता हो।

धीरवना(पु)—क्रि० अ० [सं० धीर] धैर्य धरना। धीरतायुक्त होना। उ०—जइ धीरा मन धीरवइ, तउ मन भीतर खाइ।—ढोला०, दू० २१६।

धीरशांत—संज्ञा पुं० [सं० धीरशान्त] साहित्य में वह नायक जो सुशील, दयावान्, गुणवान् और पुण्यवान् हो।

धीरा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साहित्य में वह नायिका जो अपने नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर व्यंग्य से कोप प्रकाशित करे। ताने से अपना क्रोध प्रकट करनेवाली नायिका। २. गुरिच। गिलोय। ३. काकोली। ४. माल-कंगनी।

धीरा[2]—वि० [सं० धीर] मंद। धीमा।

धीरा[3]—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] धीरज। धैर्य।

धीराधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ [को०]।

धीराधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जतला दे।

धीरावी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

धीरी—संज्ञा स्त्री० [?] आँख की पुतली।

धीरे—क्रि० वि० [हिं० धीर] १. आहिस्ते से। मंद मंद। धीमी गति से। 'जोर से' का उलटा। २. चुपके से। इस प्रकार जिसमें कोई सुन या देख न सके। इस प्रकार जिसमें किसी को आहट न मिले। जैसे,—धीरे से चल दो।

धीरे धीरे—अव्य० [हिं० धीरे + धीरे] १. आहिस्ते। मंद मंद गति से। क्रमशः। ३. धीमे स्वर में।

धीरोदात्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. साहित्य के अनुसार वह नायक जो निरभिमानी, दयालु, क्षमाशील, बलवान्, धीर, दृढ़ और योद्धा हो। जैसे, रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि। २ वीर-रस-प्रधान नाटक का मुख्य नायक।

धीरोद्दात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धीरोदात्त] दे० 'धीरोदात्त'। उ०—जेण विधे प्रभेद जनाव धीरोद्दात धीरललितादि धन।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, ११५।

धीरोद्धत—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो बहुत प्रचंड और चंचल हो और दूसरे का गर्व न सह सके और सदा अपने ही गुणों का बखान किया करे। जैसे, भीमसेन।

धीरोध्रत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धीरोद्धत'। उ०—जेण विधे प्रभेद जताव धीरोद्दात और ललितादि धन। धीर सांत धीरोध्रत धाव।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १५०।

धीरोष्णी—संज्ञा पुं० [सं० धीरोष्णिन्] एक विश्वदेव [को०]।

धीर्ज—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] दे० 'धीरज'। उ०—धीर्ज शब्द सों छत्र उजियारा, सुमत शब्द सों बस्त्र पसारा।—कबीर सा०, पृ० ६०२।

धीर्य(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कातर।

धीर्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धैर्य'। उ०—पापा प्रपंच देय धीर्य दृढ़ता गहौ। क्षमा शील संतोष दया धारे रहौ।—भक्ति प०, पृ०, ७८।

धीलटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। कन्या [को०]।

धीलटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। कन्या [को०]।

धीवर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धीवरी] १. एक जातिविशेष जो प्रायः मछली पकड़ने और बेचने का काम करती है। इस जाति का छुआ जल द्विज लोग ग्रहण करते हैं। मछुवा। मल्लाह। केवट। उ०—सुनो, मैं शुक्रावतार का धीवर हूँ।—शकुंतला, पृ० १०१। २. खिदमतगार। सेवक। ३. काला मनुष्य। ४. मत्स्यपुराण के अनुसार एक देश। ५. उक्त देश का निवासी।

धीवरक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह। मछुवा [को०]।

धीवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मल्लाहिन। २. मछली मारने की कँटिया। ३. मछली रखने की टोकरी (को०)।

धीहड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धी] पुत्री। लड़की।

धुंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द। गरज। गड़गड़ाहट। उ०—धुंकार धौंसन की बड़ी हुंकार भूमिपतीन की।—गोपाल (शब्द०)।

धुंजा—वि० [हिं० धुंध] धुँधली। मंददृष्टि। उ०—बिनु गोपाल बैरिनि भइ कुंजै।...सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को मग जोवत अँखियाँ भइ धुंजै।—सूर (शब्द०)।

धुंद[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध] दे० 'धुंध'।

धुंद[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दुंद] दे० 'दुंद'।

धुंदा—वि० [हिं० धुंध] अंध।

धुंदुल—संज्ञा पुं० [देश०] मझोले कद का एक पेड़।

विशेष—यह बंगाल और मलाबार में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी सफेद रंग की होती है और गाड़ियों के पहिए तथा मेज कुरसी आदि बनाने के काम में आती है। इसके फलों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो जलाया और सिर में लगाया जाता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है।

धुंध[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० धूम्र + अन्ध] १. वह अंधेरा जो हवा में मिली धूल के कारण हो।

यौ०—अंधाधुंध।

२. हवा में उड़ती हुई धूल। ३. आँख का एक रोग जिसके कारण ज्योति मंद हो जाती है और कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती।

धुंध(पु)[2]—वि० घना। अत्यधिक। उ०—साधो ऐसा धुंध अँधियारा। इस घट अंतर बाग बगीचे इसी में सिरजनहारा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६३।

धुंधक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुंध'।

धुंधकार—संज्ञा पुं० [हिं० धुंकार] १. धुंकार। गरज। गड़गड़ाहट। २. अंधकार। अंधेरा।

धुंधकारी—संज्ञा पुं० [सं० धुन्धुकारिन्] १. गोकर्ण के भाई का नाम जो अपने भाई से भागवत सुनकर तर गया था। २. उपद्रवी या अनाचारी व्यक्ति (ला०)।

धुंधमई—वि० [हिं० धुंध+मई (प्रत्य०)] धुंधला। मलीन। जो साफ दिखाई न पड़े। अस्पष्ट। उ०—धुंधमई का मेला नाहीं, नहीं गुरू नहिं चेला। सकल पसारा जिहि दिन नाहीं, जिहि दिन पुरुष अकेला।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६१।

धुंधमार—संज्ञा पुं० [धुन्धुमार] दे० 'धुंधुमार'। उ०—बिक्रम मैं बिक्रम धरम सुत धरम मैं, धुंधमार धीर मैं, धनेस बार्गे धन मैं।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३७३।

धुंधमाल—संज्ञा पुं० [सं० धुन्धुमार] दे० 'धुंधुमार'।

धुंधर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध] १. गर्द गुबार। हवा में उड़ती हुई धूल। २. गर्द या धूल उड़ने के कारण होनेवाला अंधेरा। तारीकी।

धुंधरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० धुंधर'। उ०—दसौ दिसा धुंधरि रहिय, जलद श्रोण बरषत।—पृ० रासो, पृ० ३२।

धुंधु—संज्ञा पुं० [सं० धुन्धु] एक राक्षस का नाम जो मधु राक्षस का पुत्र था।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि धुंधु एक बार मरुभूमि में बालू के नीचे छिपकर संसार को नष्ट करने की कामना से कठिन तपस्या कर रहा था। वह जब साँस लेता था तब उसके साथ धुंआ और अंगारे निकलते थे, भूकंप होता था और बड़े बड़े पहाड़ तक हिलने लगते थे। जब महाराज बृहदश्व वानप्रस्थ ग्रहण करके और अपना राज्य अपने लड़के कुवलयाश्व को देकर वन की ओर जाने लगे तब महर्षि उतंक ने जाकर उनसे धुंधु की शिकायत की और कहा कि यदि आप इस दुष्ट राक्षस को न मारेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। बृहदश्व ने कहा कि मैं तो वानप्रस्थ ग्रहण कर चुका हूँ और अब अस्त्र नहीं उठा सकता। हाँ मेरा लड़का कुवलयाश्व उसे अवश्य मार डालेगा। तदनुसार कुवलयाश्व अपने सौ लड़कों को लेकर उतंक के साथ धुंधु को मारने चला। उस समय विष्णु ने भी लोकहित के विचार से उसके शरीर में प्रवेश किया था। कुवलयाश्व और उसके लड़कों को देखकर धुंधु क्रोध से फुफकार छोड़ने लगा जिससे कुवलयाश्व के ९७ लड़के मारे गए। अंत में कुवलयाश्व ने उसे मार डाला। तभी से कुवलयाश्व का नाम धुंधुमार पड़ गया।

धुंधुकार—संज्ञा पुं० [हिं० धुंधु+कार] १. अंधकार। अंधेरा। २ धुंधलापन। ३. नगाड़े का शब्द। धुंकार। उ०—धराधर धूजैं धरधर धुंधुकारन सों धार नर तजैंगे धरैया बल बाहु के।—गुमान (शब्द०)।

धुंधुमार—संज्ञा पुं० [सं० धुन्धुमार] १. राजा त्रिशंकु का पुत्र। २. कुवलयाश्व का एक नाम।

विशेष—दे० 'धुंधु'।

धुंधुरि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध] गर्द गुबार या धूएँ के कारण होनेवाला अंधेरा। उ०—ढोल बजाती गावती गीत मचावती धुंधरि धूरि के धारनि।—द्विजदेव (शब्द०)। (ख) और अबीर की धुंधरि में कछु फेर सों कै मुख फेरि कै झाँकी।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) विकट कटक सजि नल के चलत दल धुंधुरि प्रताप जिमी धूम मलिनाई है।—गुमान (शब्द०)।

धुंधुरित—वि० [हिं० धुंधुर+इत (प्रत्य०)] १. धुंधला किया हुआ। धूमिल। उ०—भुवन धुंधुरित धूलि धूलि धुंधुरित धुधमहु।—पद्माकर (शब्द०)। २. दृष्टिहीन। धुंधली दृष्टिवाला। उ०—कलि गुलाल सों धुंधुरित सकल ग्वालिनी ग्वाल। रोरी मोहन के सुमिस गोरी गहे गुपाल।—पद्माकर (शब्द०)।

धुंधूकार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुंधकार'। उ०—प्रलय होय जब धुंधूकारा।—कबीर सा०, पृ० २८८।

धुंधूकारि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुंधुकार'। उ०—आपि गुरू आपे ही चेला। धुंधूकारि प्रभु रहे अकेला।—प्राण०, पृ० ६७।

धुंसक(पु)—वि० [हिं०] दे० ध्वसक'। उ०—आयो रच्छक जदुबंस को। धुंसक असुर बंस कंस को।—नंद० ग्रं०, पृ० २२७।

धुँआ—संज्ञा पुं० [सं० धूमक] दे० 'धुआँ'।

धुँआँस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुवाँस' [को०]।

धुआँसा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ] अत्यधिक धूँआ लगने से उत्पन्न कालिख [को०]।

धुआँसा†[2]—वि० १. धुएँ के कारण काला। २. धुएँ के स्वाद का।

धुँआना—क्रि० स० [हिं० धुँआ] धुंए से युक्त होना। अधिक धुआँ के कारण काला होना।

धुँआयँध—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँआ] धुंए की गंध। धुंए के कारण उत्पन्न गंध।

धुँआरा—वि० [हिं० धुंआ] धुएँ के रंग का काला।

धुँई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूनी'।

धुँकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि+कार] जोर का शब्द। गरज। गड़गड़ाहट। उ०—कहै पद्माकर त्यों दुंदुभी धुंकार सुनि अकबक बोले यों गनीम औ गुनाही हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

धुँगार—संज्ञा स्त्री० [सं० धूम्र+आधार] बघार। तड़का। छौंक। उ०—तुरई चचेंड़े टेंड़स तरे। जीर धुंगार मेल सब धरे।—जायसी (शब्द०)।

धुँगारना[1]—क्रि० स० [हिं० धुंगार] बघारना। छौंकना। तड़का देना। उ०—छांछ छबीली धरी धुंगारी। झहरे उठत झार की न्यारी।—सूर (शब्द०)।

धुँगारना[2]—क्रि० स० [अनु०] मारना। पीटना।

धुँदला (पु)—वि० [हिं०] दे० 'धुंधला'। उ०—उसका मस्तिष्क धुंदला हो गया।—ज्ञानदान, पृ० १५७।

घुँघ⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुंदुभि'। उ०—जोगी होइ निसरा जो राजा। सून नगर जानहुं घुंघ बाजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६७।

घुँधका—संज्ञा पुं० [हिं० धूआँ] दीवार या छत पर बना हुआ वह बड़ा छेद जो धूआँ निकलने के लिये बनाया जाता है। धोंधका। धुँवारा।

घुँधराना—क्रि० अ० [हिं० धुँधला] दे० 'धुँधलाना'। उ०—नव-पल्लव दीखत धुँधराये। होम धुआँ जिन ऊपर छाये।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

घुँधलका[१]—वि० [हिं० धुँधलका] दे० 'धुंधला'। उ०—इस कारण उनकी कथाओं का वातावरण प्रायः रहस्यमय, धुँधलका और कुछ कुछ भय भीगा रोमांच जगा देनेवाला सा हो गया है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ६२।

घुँधलका[२]—संज्ञा पुं० वह स्थिति जब कुछ उजाला और कुछ अंधकार के कारण चीजें धुँधली दिखती हैं। यह स्थिति सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पूर्व हुआ करती है।

घुँधला—वि० [हिं० धुंध+ला] १. कुछ कुछ काला। धुएँ के रंग का। २. अस्पष्ट। जो साफ दिखाई न दे। ३. कुछ कुछ अंधेरा।

मुहा०—धुँधले का वक्त = वह समय जब कुछ अंधेरा हो जाय और स्पष्ट दिखाई न दे। बहुत सबेरे या संध्या का समय।

घुँधलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँधला+आई (प्रत्य०)] दे० 'धुंधलापन'।

घुँधलाना—क्रि० अ० [हिं० धुँधला] धुँधला पड़ना।

घुँधलापन—संज्ञा पुं० [हिं० धुँधला+पन] धुँधले या अस्पष्ट होने का भाव। कम दिखाई देने का भाव।

घुँधली[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुँधल+ई (प्रत्य०)] दे० 'धुंध'।

घुँधली[२]—वि० स्त्री० [हिं० धुंध] अस्पष्ट। धूमिल। वह दृष्टि जिससे कम दिखाई दे। उ०—आज जब ब्राह्मण ने आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएँ से उसकी दृष्टि धुँधली हो रही थी, आहुति अग्नि ही में पड़ी।—शकुंतला, पृ० ६७।

घुँधियाला—संज्ञा पुं० [हिं० धुँधला] धुँधलापन। अंधेरा। उ०—ज्यों मौन शिशिर में धुँधियाली बन व्यथा किया करती क्रीड़ा।—दीप०, पृ० १०६।

घुँधुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० धुंधु] धुआँ निकलने के लिये छत में बना हुआ मोखा या बड़ा छेद।

घुँधुआना—क्रि० अ० [हिं० धुआँ] धुएँ के साथ जलना। धुआँ देते हुए जलना।

घुँधुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंधुरि] १. गर्द गुबार से उत्पन्न अंधेरा। २. धुँधलापन। ३. आँख का धुंध नामक रोग।

घुँधुरी—वि० [हिं०] दे० 'धुँधुली'। उ०—धुंधुरी दिस दिस्स सबग दिसा। दिसि पीत सु पत्तिय अद्ध निसा।—पृ० रा०, २४।१८४।

घुँधुवाना⑤†—क्रि० अ० [सं० धूम्र, हिं० धुआँ] धुआँ देना। धुआँ दे देकर जलना। उ०—चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर (शब्द०)।

घुँघेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुंध या धुंधुरि] धुंध। गर्द गुबार के कारण होनेवाला अंधेरा। उ०—दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि, धूरि की धुँधेरी सों अंधेरी आभा भानु की।—गुमान (शब्द०)।

घुधेला†—संज्ञा पुं० [हिं० धुंध+ऐला (प्रत्य०)] १. बदमाश। पाजी। २. दगाबाज। धोखेबाज।

घुँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० धूम] दे० 'धुआँ'।

घुँवाँकश—संज्ञा पुं० [हिं० धुँवा+कश] दे० 'धुआँकश'।

घुँवादान—संज्ञा पुं० [हिं० धुँवा+फ़ा० दान (प्रत्य०)] दे० 'धुआँदान'।

घुँवाधार[१]—वि० [हिं० धुआँधार] दे० 'धुआँधार'।

घुँवाधार[२]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'धुआँधार'।

घुँअ—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव'। उ०—उवरधो नाक सु नाग धुअ दिव अस्तुति परमान।—पृ० रा०, १।१६६।

घुँआँ—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] १. सुलगती या जलती हुई चीजों से निकलकर हवा में मिलनेवाली भाप जो कोयले के सूक्ष्म अणुओं से लदी रहने के कारण कुछ नीलापन या कालापन लिए होती है। धूम। उ०—चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुँधुवाय।—गिरिधर (शब्द०)।

यौ०—धुआँ धक्कड़ = (१) धुआँ होना। धुआँ फैलना। (२) शोरगुल। हल्ला गुल्ला। उ०—गरमागरम कचौड़ी मसालेदार चिल्लाते धुआँ धक्कड़ मचाते हलुवाई लोग अपनी दुकान की नौकायें बढ़ाते चले जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४।

क्रि० प्र०—उठना।—छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—होना।

मुहा०—धुएँ का धौरहर = थोड़े ही काल में मिटने या नष्ट होनेवाली वस्तु या आयोजन। क्षणभंगुर वस्तु। उ०—(क) कबिरा हरि की भक्ति बिन धिक जीवन संसार। धूआँ का सा धौरहर जात न लागे बार।—कबीर (शब्द०)। (ख) धुआँ को सो धौरहर देखि तू न भूले रे।—तुलसी (शब्द०)। धुएँ के बादल उड़ाना = भारी गप हाँकना। झूठ मूठ बड़ी बड़ी बातें कहना। धुआँ देना = (१) सुलगती हुई वस्तु का धुआँ छोड़ना। धुआँ निकालना। जैसे,—यह तेल जलने में बहुत धुआँ देता है। (२) धुआँ लगाना। धुआँ पहुँचाना। जैसे,—उसकी नाक में मिर्चो का धुआँ दो। धुआँ निकालना या काढ़ना = बढ़ बढ़कर बातें कहना। शेखी हाँकना। उ०—जस अपने मुहँ काढ़े धुआँ। चाहेसि परा नरक के कुआँ।—जायसी (शब्द०)। धुआँ रमना = धुएँ का छाया रहना। धुआँ सा मुँह होना = चेहरे की रंगत उड़ जाना। चेहरा फीका पड़ जाना। लज्जा से मुख मलिन हो जाना। (किसी वस्तु का) धुआँ होना = काला पड़ना। झाँवरा होना। धूमला होना। मुँह धुआँ होना = दे० 'धुआँ सा मुँह होना'।

२. घटाटोप। उमड़ती हुई वस्तु। भारी समूह। ३. धुर्रा। धज्जी। उ०—धुर्रा देखि खरदूषण केरा। जाय सुपनखा रावण प्रेरा।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धुएँ उड़ाना = धज्जियाँ उड़ाना। छिन्न भिन्न करना। टुकड़े टुकड़े करना। नाश करना। धुएँ बखेरना = दे० धुएँ उड़ाना।

धुआँकश—संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ + फ़ा० कश (= खींचना)] भाप के जोर से चलनेवाली नाव या जहाज। अग्निबोट। स्टीमर।

धुआँदान—संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ + सं० आधान से हिं० प्रत्य० दान] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद। चिमनी।

धुआँधार[1]—वि० [हिं० धुआँ + धार] १. धुएँ से भरा। धूममय। २. गहरे रंग का। भड़कीला। तड़क भड़क का। भव्य। ३. धुएँ का सा। काला। स्याह। ४. बड़े जोर का। बड़े वेग का और बहुत अधिक। प्रचंड। घोर। जैसे, धुआँधार वर्षा, धुआँधार घटा, धुआँधार नशा। उ०—भट्ठी नाँहि सिल लोढ़ा नहिं घोरधार। पलभन को फेरन मे चढ़त धुआँधार।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८७।

धुआँधार[2]—क्रि० वि० बड़े वेग से और बहुत अधिक। बहुत जोर से। जैसे, धुआँधार बरसना।

धुआँना—क्रि० अ० [हिं० धुआँ से नामिक धातु] धुएँ से बस जाना। अधिक धुएँ में रहने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ जाना (पकवान आदि के लिये)।

धुआँयँध[1]—वि० [हिं० धुआँ + गंध] जिसमें धुएँ की महक बस गई हो। धुएँ की तरह महकनेवाला।

धुआँयँध[2]—संज्ञा स्त्री० अन्न न पचने के कारण आनेवाली डकार। धूम।

धुआँरा—संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ + रा (प्रत्य०)] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या खिड़की। चिमनी।

धुआँस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुवाँस'।

धुआँसा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० धुआँ] घर की छत में जमी हुई धुएँ की कालिमा। आग जलने के स्थान के ऊपर की छत में जमा कालिख या धुआँ।

धुआँसा[2]—वि० धुएँ से बसा हुआ। आँच ठीक न लगने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ा हुआ (पकवान आदि के लिये)।

धुआ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] नाश। मरण।

धुईं(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूईं'। उ०—धन पुंड लिलाट रेखा चक्र अंग सुहावनं। चंद्रहास सिंगार डोरी धुईं ध्यान जरावनं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४।

धुकंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] आग। अग्नि। ज्वाला। दाह। उ०—विरहा जारी भाड़ जिउँ, गया धुकंती मेल्ह।—ढोला०, दू० १६३।

धुक—संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू बटने की सलाई।

धुकड़पुकड़—संज्ञा पुं० [अनु०] १. भय आदि की आशंका से होनेवाली चित्त की अस्थिरता। घबराहट। २. आगा पीछा। पसोपेश।

धुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी थैली। बटुआ।

धुकधुकी—संज्ञा स्त्री० [धुक धुक से अनु०] १. वक्षस्थल का वह भाग जो नीचे होता है। पेट और छाती के बीच का भाग जो कुछ गहरा सा होता है। २. कलेजा। हृदय। ३. कलेजे की धड़कन। कंप। उ०—आज धुकधुकी में मेरी भी ऐसा ही उद्दीप्त प्रतीत।—साकेत, पृ० २८३। ४. डर। भय। खौफ।

क्रि० प्र०—लगना।

५. एक गहना जो गले में पहना जाता है और छाती पर लटकता रहता है। पदिक। जुगनू।

धुकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० झुकना] नीचे की ओर ढलना। निहुरना। नवना। उ०—डगमगात गिरि परत पद्न पर भुज भ्राजत नंदलाल। जनु श्रीधर श्रीधरत अधोमुख धुकत धरनि मानो नमि नाल।—सूर (शब्द०)। २. गिर पड़ना। उ०—(क) लेत उसास नयन जल भरि भरि धुकि जु परो धरि धरणी।—सूर (शब्द०)। (ख) रुंड पर रुंड धुकि परे धरि धरणि पर गिरत ज्यों सग करि बज्र मारे।—सूर (शब्द०)। ३. वेग से टूटना। झपटना। टूट पड़ना। उ०—(क) तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि अकनि गीध धुकि धायो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि ज्यों धुकि धायो।—तुलसी (शब्द०)। ४. आतंकित होना। त्रस्त होना। घबड़ाना। उ०—राजन रान सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहै हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० १२७।

धुकनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूनी'। उ०—सुगंध की धुकनी से अम्लान नाकों में दम आ गया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२।

धुका—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का बाजा। उ०—बाजे बाजन जूझि के, धुका दमामा भार।—चित्रा०, पृ० १६१।

धुकान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धमकना] धुंधकार। धुंकार। घोर शब्द। गड़गड़ाहट का शब्द। उ०—सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल, चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।—गुमान (शब्द०)।

धुकाना(पु)†[1]—क्रि० स० [हिं० धुकना] १. झुकाना। नवाना। उ०—भूपन को भ्रम औरंग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।—भूषण ग्रं०, पृ० ६५। २. गिराना। ढकेलना। ३. पछाड़ना। पटकना। उ०—करत सरस जल केलि कबहुँ मीनहिं गहि लावन। कबहुँ ह्वै असवार धाय झड्ढार धुकावत।—सूदन (शब्द०)।

धुकाना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० धूम + करण] धूनी देना।

धुकार—संज्ञा स्त्री० [धु से अनु०] १. नगाड़े का शब्द। उ०—दै दुंदुभी धुकार गगन महँ बरसे फूल अमाने।—रघुराज (शब्द०)।

२. ध्वनि। आवाज। उ०—मननात गोलिन की मनक जनु धुनि धुकार झिलीन की।—हिम्मत०, छद ८०।

धुकारी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुकार+ई (प्रत्य०)] दे० 'धुकार'।

धुकुरपुकुर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'धुकड़पुकड़'।

धुक्कना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० धुकना] दे० 'धुकना'।

धुक्करना—क्रि० अ० [हिं० धुकार] गरजना। चिल्लाना। चीखना। उ०—मदजल धार बरषत जिमि धाराधर, धक्कनि सों धुक्करे धरनिधर धाए तें।—मति० ग्रं०, पृ० ३८९।

धुक्कारना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'धुकाना'।

धुखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धुकना] जलना। भभकना। उ०—धड़कै डर कातर धोर धुखै।—रा० रू० पृ० ३४।

धुगधुगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुकधुकी'।

धुज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज] दे० 'ध्वजा'।

धुजटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि'।

धुजा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजा] १. दे० 'ध्वजा'। २. विष्णु के तलवे का झंडे का चिह्न। उ०—बिलसत जुग प्रफुलित जलज, करि कलि केक समान। धुजा भुजा की छाँह में, देहु अभय पद दान।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६२१।

धुजाना(पु)—क्रि० स० [सं० √धू (=कंपन), गुज० धुजवुं] १. कंपित करना। उ०—मुगट उतार सुघट दसमुखरा, लेकर उधट धुजाई लंका।—रघु० रू०, पृ० १८०। २. उड़ाना। फैलाना। उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावैं धुरि।—हम्मीर०, पृ० २३।

धुजिनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजिनी] सेना। फौज। उ०—करि धुजिनी महँ धँसे धाय खल खलभल भयो न थोरा।—रघुराज (शब्द०)।

धुज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज हिं० धुज] दे० 'धुज'। उ०—गुंजत निसान फहरात धुज्ज।—ह० रासो, पृ० ८१।

धुडंगी(पु)‡—वि० [हिं० धूर+अंगी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, केवल धूल ही धूल हो।

धुणि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ध्वनि'। उ०—आसण धरती धुणि अकास। उर्ध कमल मुखि कीया बिगासु।—प्राण०, पृ० १३४।

धुत¹—वि० [सं०] १. कंपित। हिलता हुआ। २. त्यक्त। तजा हुआ। ३. तिरस्कृत। डाँटा या लताड़ा हुआ (को०)।

धुत²—अव्य० [हिं०] दे० 'दुत'।

धुतकार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुतकार'।

धुतकारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दुतकारना'।

धुताई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूत+आई (प्रत्य०)] दे० 'धूर्तता'।

धुतारा(पु)—वि० [सं० धूर्त (=धुत)+हिं० आरा (प्रत्य०)] धूर्त। पाजी। दुष्ट। उ०—पीसुन मिले सबहिं धुतारा सबहीं झाव लाबनहारा।—कबीर सा०, पृ० ५३७।

धुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिलना। काँपना (को०)।

धुतू—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'धूतू'।

धुतूरा—संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर] दे० 'धतूरा'।

धुत्त†—वि० [अनु०] बेहोश। बेसुध। नशे में चूर।

धुत्ता¹†—संज्ञा पुं० [सं० धूर्तता] धूर्तता। दगाबाजी। कपट। छल।

क्रि० प्र०—देना।—बताना।

धुत्ता²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

धुधराना(पु)—क्रि० स० [हिं० धंध] जलाना। उजाड़ना। नष्ट करना। उ०—इन मुँहिरन मेरा घर धुधरावा।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१७।

धुधुकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'धधकना'। उ०—जेहि बिधि धुधुकत नाद अनाहद तेहि बिधि सुरत लगावै।—भीखा० श०, पृ० १७।

धुधुकार—संज्ञा स्त्री० [धुधु से अनु०] १. धू धू शब्द का शोर। घोर शब्द। कड़ा शब्द। गरज के समान शब्द। उ०—बाजन अवाजन को कहाँ लौं गनावै कोउ धनकनि धौंसा की धुकारन नी धुधुकार।—गोपाल (शब्द०)।

धुधुकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुधुकार'। उ०—माची धौंसन की धुधुकारी।—रघुराज (शब्द०)।

धुधुकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धुधुकार'।

धुन¹—संज्ञा पुं० [सं० धुन, धातुरूप धुनोति से] काँपने की क्रिया या भाव। कंपन।

धुन²—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुनना] १. किसी काम को निरंतर करते रहने की अनिवार्य प्रवृत्ति। बिना आगा पीछा सोचे और रुके कोई काम करते रहने की इच्छा। लगन। जैसे,—आज कल उन्हें रुपया पैदा करने की धुन है।

क्रि० प्र०—लगना।—समाना।

यौ०—धुन का पक्का=वह जो आरंभ किए हुए काम को बिना पूरा किए न छोड़े।

२. मन की तरंग। मौज। जैसे,—धुन ही तो है, उठे और चल पड़े। ३. सोच। विचार। फिक्र। चिंता। खयाल। जैसे,—इस समय वे किसी धुन में बैठे हैं, उनसे बोलना ठीक नहीं।

मुहा०—धुन समा जाना=विचार में आ जाना। मति निश्चित हो जाना। उ०—एक दिन धुन जो समाई तो आजाद मिरजा ऐन वक्त कचहरी से नदारत हो गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५०।

धुन³—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] १. स्वरों के उतार चढ़ाव आदि के विचार से किसी गीत को गाने का ढंग। गाने का तर्ज। जैसे,—यह भजन कई धुनों में गाया जा सकता है। २. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। ३. दे० 'ध्वनि'।

मुहा०—धुन धुन रोना=सिर धुन धुन कर रोना। अत्यधिक दुःखी होना। उ०—सुख तजि जम के बसि परे मूढ़ धुने धुन रोत।—प्राण०, पृ० २५३।

धुनकना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'धुनना'।

धुनकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] ध्वनि। आवाज। स्वर। उ०—पंच शब्द धुनकार धुन, बाजै गगन निसान।—कबीर सा० सं०, पृ० १०।

धुनकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुस्] १. धुनियों का वह धनुस के आकार का औजार जिससे वे रुई धुनते हैं। पिंजा। फटका।
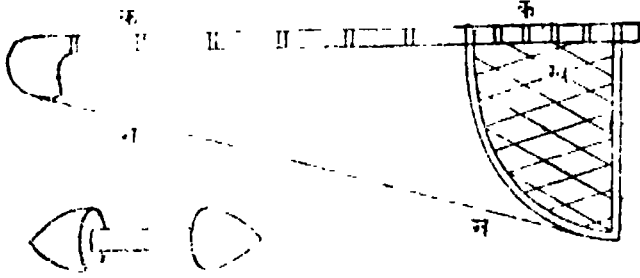
विशेष—इसमें (दे० चित्र) क क हलकी पर मजबूत लकड़ी का एक डंडा होता है और इसके सिरे पर काठ का एक और टुकड़ा ख होता है। इस सिरे से क क लकड़ी के दूसरे सिरे तक एक तांत ग ग खूब कसकर बँधी होती है। धुननेवाला क क डडे को बाँए हाथ में पकड़कर उकड़ूँ बैठ जाता है और तांत को रुई के ढेर पर रखकर उसपर बार बार प्राय: हाथ भर लंबी लकड़ी के एक दस्ते से, जिसके दोनों सिरे अधिक मोटे और लट्टूदार होते हैं और जिसे मुठिया, बेलन या हत्था कहते हैं, आघात करता है जिससे रुई के रेशे अलग अलग हो जाते और बिनौले निकल जाते है। कभी कभी अधिक सुबीते के लिये क क डंडे को ऊपर छत में लटकते हुए किसी छोटे धनुष से भी बाँध देते हैं।

२. छोटा धनुस् जो प्राय: लड़कों के खेलने अथवा कभी कभी थोड़ी बहुत रुई धुनने के भी काम में आता।

धुनना—क्रि० स० [हिं० धुनकी] १. धुनकी से रुई साफ करना जिसमें उसके बिनौले अलग हो जायँ, गर्द निकल जाय और रेशे अलग अलग हो जायँ। २. खूब मारना पीटना।

मुहा०—धुन के रख देना = बहुत अधिक पीटना। बहुत मारना। उ०—तुम लोगों की कजा आई है। अब मैं धुन के रख दूँगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३००।—सिर धुनना = दे० 'सिर' के० मुहा०।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

३. बार बार कहना। कहते ही जाना। जैसे,—तुम तो अपनी ही धुनते हो दूसरे की सुनते ही नहीं। ४. किसी काम को बिना रुके बराबर करते जाना। जैसे,—धुने चलो अब थोड़ी ही दूर है।

धुनवाना—क्रि० स० [हिं० 'धुनना' का प्रे० रूप] धुनने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को धुनने में प्रवृत्त कराना। २. संयोग कराना (बाजारू)।

धुनवी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुनकी'।

धुनही(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुष] धनुष। धनुही। उ०—तीन पनच धुनहीं करन। बड़े कटन तंडीर।—पृ० रा०, ७।७१।

धुना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुनियाँ'।

धुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुनना] १. पिटाई। मरम्मत। २. धुनने का पारिश्रमिक।

धुनि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी। उ०—वा जमुना के तीर सोई धुनि आँखिन आवै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३२।

धुनि²—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] १. दे० 'ध्वनि'। उ०—आनन सरद सुधाकर सम तसु बोले मधुर धुनि बानी।—विद्यापति, पृ० २१८। २. चक्र और कुंडलिनी शक्ति के संपर्क से उत्पन्न ध्वनि। उ०—बाँधिया मूल देखिया अस्थूल, गगन गरजंत धुनि ध्यान लागा।—रामानंद०, पृ० ३।

धुनिआ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धुनिया] दे० 'धुनिया'।—वर्णरत्नाकर, पृ० १।

धुनिकारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि'। उ०—निर्झर झरे अनहद धुनिकारि।—प्राण०, पृ० १११।

धुनियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० धुनना] वह जो रुई धुनने का काम करता हो। बेहना।

विशेष—भारत में प्राय: मुसलमान ही रुई धुनने का काम करते हैं।

धुनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुनी'। उ०—कोठा ऊपर कोठरी, जोगी धुनिया रमाया हो। अंग भभूत लगायके जोगी रैन गँवाया हो।—कबीर श०, भा० २, पृ० ७७।

धुनिहावाँ†—संज्ञा पुं० [देश०] हड्डी में का दर्द।

धुनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

यौ०—सुरधुनी।

धुनी(पु)†²—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि'।

धुनी³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूनी'।

धुनीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र।

धुनेचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के सन का पौधा जिसे बंगाल में काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिये लगाते हैं।

धुनेहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुनियाँ'।

धुन्नना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'धुनना'। उ०—धम्म सुमिर निज सीस धुन्नइ।—कीर्ति०, पृ० १८।

धुन्नी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ध्वनि'। उ०—बजे बाज अन्नेक धुन्नी अपारं।—पृ० रा०, पृ० १७७।

धुपना†—क्रि० अ० [हिं० धुलना] धुलना। धोना। उ०—(क) सेहुँड को सों आँक तपाये प्रगट लखायो। नैन नीर सों धुप्यो और हू जन चमकायो।—व्यास (शब्द०)। (ख) सूरत नैन समाय धुपै केहुँ नहि धोये।—व्यास (शब्द०)।

धुपाना¹†—क्रि० स० [हिं० धूप(= सुगंधि द्रव्य)] धूप देना। धूप के धूएँ से सुवासित करना। उ०—मनसा मंदिर माहि धूप धुपाइये। प्रेम प्रीति की माल राम चढ़इये।—रै० बानी, पृ० ६९।

धुपाना²—क्रि० स० [हिं० धूप(= सूर्यातप)] किसी चीज को सुखाने आदि के लिये धूप में रखना। धूप दिखाना।

धुपेना†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप+एना (प्रत्य०)] वह पात्र जिसमें आग रखकर ऊपर से घी डाल देते हैं। धूप सुलगाने का पात्र। धूपदानी।

धुपेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप+एला (प्रत्य०)] गरमी में पसीने के कारण निकलनेवाली फुंसी। अँभौरी। पित्ती।

धुप्पल†—संज्ञा स्त्री० [बोल०] धोखा। छल। प्रवंचना।

धुप्पस†—संज्ञा स्त्री० [बोल०] धुप्पल।

धुप्पु—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धूप'। उ०—वह जागि न सोवै खाइ न भुख्या जिसदै धुप्पु न छाही।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० २०६।

धुब(पु)—वि० [सं० धूम्र, हिं० धूप] क्रोध से जलते हुए। उ०—प्रतिसेन तहव्वर भारहने। मिल लाख चले धुब एक मतै।—रा० रू०, पृ० ८१।

धुबला†—संज्ञा पुं० [सं०] लहँगा। घघरा।

धुबिया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोबी'। उ०—धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

धुबे(पु)—वि० [हिं० धूप (=प्रचंड) वेग] प्रबल (वेग)। भयंकर। उ०—अबना राठोड़ाँ धुबे जंग। उण दिसा भीम आयो अभंग।—रा० रू०, पृ० ७३।

धुमई[1]—वि० [सं० धूम्र+ई (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। जिसका रंग धूएँ की तरह काला हो।

धुमई[2]—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] वह बैल जिसका रंग धूएँ का सा हो।

विशेष—ऐसा बैल साधारणतः मजबूत और तेज समझा जाता है।

धुमक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धमक'। उ०—तदनंतर भउ कहसन, धुमक सम्मार—वर्ण०, पृ० १५।

धुमरा†—वि० [सं० धूम+हिं० रा० (प्रत्य०)] दे० 'धूमिल'।

धुमला†—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र+हिं० ला (प्रत्य०)] जिसे दिखाई न दे। अंधा।

धुमलाई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूमिल+आई (प्रत्य०)] १. धूमिल होने का भाव। २. अंधकार। अँधेरा।

धुमारा—वि० [सं० धूम्र+आरा (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। धूमिल।

धुमिला—वि० [हिं०] दे० 'धूमिल'।

धुमिलना†—क्रि० अ० [हिं० धूमिल] धूमिल होना। धुँधलाना।

धुमिलाना—क्रि० स० [हिं० धूमिल से नामिक धातु] धूमिल करना। धुँधला करना

धुमेला—वि० [हिं] दे० 'धूमिल' उ०—मुख तांबुल देई अधर सुरग लेह सो काहे भेल धुमेला।—विद्यापति, पृ० ८४।

धुमैला—वि० [हिं०] दे० 'धुमेला'।

धुमैली—वि० [हिं० धूमिल] अस्पष्ट। धुँधली। उ०—छः वर्ष तक हम लोग श्री नगर में रहे। मुझे वहाँ की बहुत ही धुमैली सी याद है।—त्रिप्ती, पृ० ४१।

धुम्म(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धूम'। उ०—भुजाय भाग मेर नाग इंद्र दाग दभभ्भयं। बरन्न धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुज्जयं।—पृ० रा०, २। १४७।

धुम्मर(पु)—वि० [हिं० धूमिल] धूमिल। धुँधला। उ०—भुजाय भाग मेर नाग इंद्र दाग दभभ्भयं। बरन्न धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुज्जयं।—पृ० रा०, २। १४७।

धुरंधर[1]—वि० [सं० धुरन्धर] १. भार उठानेवाला। २. जो सब में बहुत बड़ा, भारी या बली हो। जैसे, धुरंधर पंडित। ३. श्रेष्ठ। प्रधान।

धुरंधर[2]—संज्ञा पुं० १. बोझ ढोनेवाला जानवर। जैसे, बैल, खच्चर, गधा आदि। २. वह जो बोझ ढोता हो। बोझ ढोनेवाला कोई जीव। ३. रामायण के अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्त का मंत्री था। ४. धौ का पेड़।

धुर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुआ जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। २. बोझ। भार। ३. गाड़ी आदि का धुरा। अक्ष। ४. खूँटा। ५. शीर्षस्थान। अच्छी और ऊँची जगह। ६. उंगली। ७. चिनगारी। ८. भाग। अंश। ९. धन। संपत्ति। १०. गंगा का एक नाम।

धुर[2]—संज्ञा पुं० [सं० धुर] १. गाड़ी या रथ आदि का धुरा। अक्ष। २. शीर्ष या प्रधान स्थान। ३. भार। बोझ। उ०—जो न होत जग जन्म भरत को। सकल धर्म धुर धरणि धरत को।—तुलसी (शब्द०)। ४. आरंभ। शुरू। उ०—धुर ही ते खोटो खायो है लिए फिरत सिर भारी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—धुर सिर से=बिलकुल आरंभ से। बिलकुल शुरू से। जैसे,—तुमने बना बनाया काम बिगाड़ दिया, अब हमें फिर धुर सिर से करना पड़ेगा।

५. जुआ जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। ६. जमीन की माप जो बिस्वे का बीसवाँ भाग होता है। बिस्वांसी। ७. प्रथम। उ०—जलवा काज नरकी जादम। धुर ऊठी पतिबरत तणी प्रम।—रा० रू०, पृ० १७। ८. आसामी। उ०—बदले तुसरे वाणिजाँ, धुर गौढ़ा ले धान।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६५।

धुर[3]—अव्य० [सं० धुर] न इधर न उधर। बिलकुल ठीक। सठीक। सीधे। जैसे, धुर ऊपर, धुर नीचे। उ०—अंतःपुर धुर जाय उतारैं आरती। निरखि पुत्र को रूप सरूप बिसारती।—रघुनाथ (शब्द०)। २. एक दम दूर। बिल्कुल दूर। उ०—मोती लादन पिय गए धुर पटना गुजरात।—गिरिधर (शब्द०)।

धुर[4]—वि० [सं० ध्रुव] पक्का। दृढ़।

धुरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुर+ई] कुएँ के खंभों आदि के बीच में आड़े टिकाए हुए वे दोनों बाँस या लंबी लकड़ियाँ जिनके जमीन पर वाले सिरे आपस में सटाकर मजबूती से बाँधे रहते हैं और दूसरे सिरों के बीच में वह छोटी लकड़ी या खूँटो जड़ी रहती है जिसमें गराड़ी पहनाई होती है।

धुरकट—संज्ञा पुं० [हिं० धुर (=सिर या आगे, आरंभ) + कुट (=कटौती या कूत)] वह लगान जो असामी जमींदार को जेठ में पेशगी देते हैं।

धुरकिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० धुरा + कील] गाड़ी में वह कील जो धुरी को आँक से अटकाने के लिये भीतर की ओर धुरी के सिरे पर लगा दी जाती है।

धुरचट—संज्ञा पुं० [?] अधिकता। प्रचुरता।

धुरजटीⓅ—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि हिं०] दे० 'धूर्जटि'।

धुरड्डी† संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुलेंडी'।

धुरनाⓅ†—क्रि० स० [सं० धूर्वण] १. पीटना। मारना। २. बजाना। उ०—पहुँचे जाय राजगिरि द्वारे धुरे निशान सुदेश। —सूर (शब्द०)। ३. दाएँ हुए धान के पयाल को भूसा बनाने के लिये फिर से दाँना। पुआरी करना।

धुरपद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्रुपद'।

धुरमुट†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरमुस'।

धुरवा‡—संज्ञा पुं० [सं० धुर् + वाह] बादल। मेघ। उ० जालरंध्र मुख अगर धूम जनु जलधर धुरवा। —नंद० ग्रं०, पृ० २०३।

धुरहट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुलेंडी'। उ० -दोपहर को धुरड्डा खेलने के समय नशे में रहने के कारण कुछ लोगों में दंगा हो गया।—प्रतिट०, पृ० ६६।

धुरहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुलेंडी'। उ०--फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ५०५।

धुरा¹—संज्ञा पुं० [सं० धुर] लकड़ी या लोहे का वह डंडा जो पहिए की गराड़ी के बीचोबीच रहता है। वह डंडा जिसमें पहिया पहनाया रहता है और जिसपर वह घूमता है। अक्ष।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं०] भार। बोझ।

धुराधुरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० धुरा] सहारा। आधार।

धुराना—संज्ञा पुं० [पुराना का अनु०] अंत का। छोर का। उ०— अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे धुराने पुराने डाग, बड़े धाघ वह खटराग लाए ·· ··· ····· । -ठेठ० (उपोद्‌घात), पृ० २।

विशेष—इसका प्रयोग पुराना के साथ ही होता है। जैसे- पुराना धुराना। पुरानी धुरानी। ..

धुरियाधुरंग—वि० [देश०] वह गाना जो बाजे या साज के साथ न गाया जाय। जिस (गाने) को बाजे या साज की अपेक्षा न हो। २. अकेला। जिसके साथ और कोई न हो।

धुरियाना¹†—क्रि० स० [हिं० धूर] १. किसी वस्तु को धूल से ढँकना। किसी वस्तु पर धूल डालना। २. ऊख के खेत को पहले पहल गोड़ना। ३. किसी ऐब या बदनामी को किसी युक्ति से दबा देना।

धुरियाना—क्रि० अ० १. किसी चीज का धूल से ढँका जाना। २. ऊख के खेत का पहले पहल गोड़ा जाना। ३. किसी ऐब या बदनामी का किसी प्रकार दबना या दबाया जाना।

धुरियामल्लार—संज्ञा पुं० [देश० धुरिया + मल्लार] एक प्रकार का मल्लार जो संपूर्ण जाति का है और जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुरी संज्ञा स्त्री० [हिं० धुरा] दे० 'धुरा'।

धुरीण—वि० [सं०] १. बोझ सँभालनेवाला। २. मुख्य। प्रधान। ३. धुरंधर। ४. जिसे कोई काम सौंपा जाय। जिसे कोई उत्तरदायित्व प्रदान किया जाय।

धुरीण²—संज्ञा पुं० १. रथ आदि में जोते जानेवाले घोड़े आदि। २. कार्यभार सँभालनेवाला व्यक्ति। ३. प्रमुख व्यक्ति। अग्रणी पुरुष।

धुरीन—वि० [सं० धुरीण] दे० 'धुरीण'।

धुरीय—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'धुरीण' [को०]।

धुरीराष्ट्र - संज्ञा पुं० [हिं० धुरी + सं० राष्ट्र] प्रमुख राष्ट्र। बड़े देश। दूसरे महायुद्ध के पहले जर्मनी, इटली और जापान जिनका विश्व की राजनीति में एक गुट था।

धुरेंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुलेंडी'।

धुरेटनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० धूर + एटना (प्रत्य०)] धूल से लपेटना। धूल से ढँकना। धूल लगाना। उ०—(क) सग कुँवरेटे चारु पट को लपेटे अंग गोरज धुरेटे ये हैं बेटे नंदराय के। -दीनदयाल (शब्द०)। (ख) त्यों द्विजदेव जू नाहक ही मुख भोरे घने अरविंद धुरेटत। -द्विजदेव (शब्द०)।

धुरेटाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० धूल] धूल।

धुर्मपानⓅ— संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धूम्रपान'। उ०—का जल सयन साधे निमु व्याकुल का धुर्मपान धुँआ दिग राता।— सं० दरिया, पृ० ६१।

धुर्य¹—संज्ञा पुं० [सं० धुर्य] १. ऋषभ नामक ओषधि जो लहसुन की तरह होती और हिमालय पर मिलती है। २. विष्णु। ३. बैल।

धुर्य²—वि० [सं० धुर्य] १. धुरंधर। २. श्रेष्ठ। ३. बोझ ढोनेवाला।

धुर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० धूर] किसी चीज का अत्यंत छोटा भाग। कण। रजकण। जर्रा। भुआ।

मुहा०—धुर्रे उड़ाना या उड़ा देना = (१) किसी वस्तु के अत्यंत छोटे छोटे टुकड़े कर डालना। ध्वस्त व्यस्त या नष्ट भ्रष्ट कर डालना। बहुत दुर्गति करना। (२) बहुत अधिक मारना या पीटना। धुर्रे बिगाड़ना = दे० 'धुर्रे उड़ाना'।

धुलना--क्रि० अ० [हिं० धोना का अ० रूप] १. पानी की सहायता से साफ या स्वच्छ किया जाना। धोया जाना। जैसे,—कपड़े धुल गए हों तो ले आओ। २. लगातार पानी पड़ने या बहने से जमीन आदि का कटना।

धुलवाना--क्रि० स० [हिं० धुलना का प्रे० रूप] धोने का काम दूसरे से कराना। किसी को धोने में प्रवृत्त करना।

धुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोना] १. धोने का काम। २. धोने

का भाव। ३. धोने की मजदूरी। ४. मारने पीटने का काम। पिटाई (लश०)।

धुलाना—क्रि० स० [सं० धवल] धोने का काम दूसरे से कराना। धुलवाना।

धुलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूल'। उ०—धुलि क समूह, झंझानिल क वेग।—वर्ण०, पृ० १६।

धुलियापीर—संज्ञा पुं० [हिं० धूल + फ़ा० पीर] एक कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल आदि में लिया करते हैं।

धुलियामिटिया—वि० [हिं० धूल + मिट्टी] १. जिसपर धूल या मिट्टी पड़ी हो अथवा डाली गई हो। २. दबाया या शांत किया हुआ (झगड़ा बखेड़ा आदि)।

धुलेंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूल + उड़ाना या धूल + डाँड़ी] १. हिंदुओं का एक त्योहार जो होली जलने के दूसरे दिन चैत बदी १ को होता है। इस दिन प्रातःकाल लोग होली की राख मस्तक पर लगाते और दूसरों पर अबीर गुलाल आदि सूखे चूर्ण डालते हैं। उ०—फिर तो धुलेंडी मच जाती है। कीचड़, गोबर राख कुछ नहीं बचने पाता।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १४०। २. उक्त त्योहार का दिन।

धुव(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव'। उ०—धुव ते ऊँच पेम धुव उवा। सिर दै पाउ देइ सो छुवा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०२।

धुव²—संज्ञा पुं० [डिं०] कोप। क्रोध। गुस्सा।

धुवका†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्रुवक] गीत का पहला पद। टेक।

धुवच्छर(पु)—वि० [सं० ध्रुव + अक्षर] अविनाशी। अनश्वर। उ०—सनकादिक शिवदेव हुम मोहनी धुवच्छर।—सुजान०, पृ० ३।

धुवन¹—संज्ञा पुं० [सं०] आग।

धुवन²—वि० धजानेवाला। कँपानेवाला। हिलानेवाला।

धुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० धूम, हिं० धुआँ] दे० 'धुआँ'। उ० नवपल्लव दीपत धुंधराए, होम धुवाँ जिन ऊपर छाए।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

धुवाँकश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुआँकश'।

धुवाँधार—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'धुआँधार'।

धुवाँधज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धूमध्वज] अग्नि। (डिं०)।

धुवाँरा—संज्ञा पुं० [हिं० धुवाँ+द्वार] छत में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या खिड़की। चिमनी।

धुवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूर + माष। या 'धुमसी'] उरद का आटा जिससे पापड़ या कचौड़ी बनती है।

धुवाना—क्रि० स० [हिं० 'धोना' क्रिया का प्रे० रूप] दे० 'धुलाना'।

धुवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का पंखा जो हिरन के चमड़े आदि से बनाया जाता था और जिसका व्यवहार याज्ञिक लोग यज्ञ की आग दहकाने के लिये करते थे। २. ताड़ का पंखा (को०)।

धुस्तुर—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा (को०)।

धुस्तूर—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

धुस्स—संज्ञा पुं० [सं० ध्वंस] १. गिरे हुए घरों की मिट्टी या ईंट पत्थर का ढेर। मिट्टी आदि का ऊँचा ढेर। टीला। २. नदी आदि के किनारे पर बाँधा हुआ बाँध। बंद। ३. चोट या ठोकर जिसमें खून न निकले।

धुस्सा—संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट] मोटे ऊन की लोई जो ओढ़ने के काम आती है।

धूँकल(पु)—संज्ञा पुं० [?] उपद्रव। उ०—तुरक घड़ा नव तेरही तेरह सास्र कमंध। इल धूँकल कलि ऊपजे ज्यों कपिदल दसकंध।—रा० रू०, पृ० ७०।

धूँढ़ना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढूँढ़ना'। उ०—बम्मन आया धूँढ़त धूँढ़त लगत लगत गाँव मों।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

धूँए(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुन'। उ०—रज्जब पीवे धूँए दे। दीरघ दावे गाय।—रज्जब०, पृ० १०।

धूँध—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुंध'। उ०—घूम घूँघ छाई धर अंबर चमकत बिच बिच जाल।—सूर (शब्द०)।

धूँधय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धुंध'। उ०—गिरे भय धोम सु धूँधय भार।—पृ० रा०, १६।२२०।

धूँधर—वि० [सं० धुंध] धुँधला।

धूँधर—संज्ञा स्त्री० १. हवा में छाई हुई धूल। उ०—फिर पिचकारी की मची आँधी उड़त गुलाल। यह धुँधरि धँसि लीजिए पकरि छबीले लाल।—स० सप्तक, पृ० ३६०। २. अँधेरा जो हवा में छाई हुई धूल के कारण हो। ३. धूमधाम। उत्सव। उ०—धुँधर करो भली हिलि मिलि कै अंधाधुंध मचो री। न सूझत कछु चहुँ ओरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७१२।

धूँधरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूँधर'। उ०—धूँधरि चिलक चौंध बीच कौंध सो टिकै।—घनानंद, पृ० ४४।

धूँधरी—वि० स्त्री० [हिं० धूँधर] दे० 'धुँधली'। उ०—कुसुम धूरि धूँधरी सु कुंजें।—नंद० ग्रं०, पृ० १६५।

धूँधला†—वि० [हिं० धुँधला] दे० 'धुँधला'।

धूँधाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० धुँध] धुआँ देना। धुआँ देते हुए धीरे धीरे जलना। उ०—दव की दाधी लाकड़ी सिलगे सिलग धूँधाय।—राम० धर्म०, पृ० १६।

धूँधूँकार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुंधुकार'। उ०—उनमन जोगी दसवें द्वार। नाद ब्यंद ले धूँधूँकार।—गोरख०, पृ० ४७।

धूँसा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौंसा'।

धू(पु)¹—वि० [सं० ध्रुव] स्थिर। अचल।

धू(पु)²—संज्ञा पुं० १. ध्रुव तारा। २. दे० 'ध्रुव'। उ०—रामकथा वरनी न बनाय, सुनी कथा प्रह्लाद न धू की।—तुलसी (शब्द०)। ३. धुरी। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा को समयो अब नीको हिलि मिलि केलि प्रगट भई धू पर।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

धू³—संज्ञा पुं० [?] सिर। उ०—प्रदुम महान बातें सुनि धू धुन्यो करे।—नट०, पृ० ६६।

धू(पु)[४]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुहिता] दे॰ 'धी'। उ॰—पिंगल राजा तास धू मेल्हा थाकर पास।—ढोला॰, दू॰ ११९।

धूआँ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धूआँ'।

मुहा॰—धूआँ धक्कड़ मचाना = हलचल पैदा करना। उपद्रव करना।

धूआँधार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धुआँधार'।

धूँई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धूआँ] धूनी।

धूक[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वायु। २. धूर्त मनुष्य। ३. काल। ४. अग्नि (को॰)।

धूक[२]—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दूक (= तकला)] कलाबत्तू बटने की सलाई।

धूकना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ढुकना] किसी ओर बढ़ना या झुकना। उ॰—हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका।—जायसी (शब्द॰)।

धूजट(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धूर्जटि] शिव। महादेव।

धूड़(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धूल'। उ॰—मोती धूड़ मिलाविया, तैं सादूल तमाम।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ३५।

धूड़ि—संज्ञा स्त्री [हिं॰] दे॰ 'धूल'। उ॰—खोजे बाबू हृथ्थडा, धूड़ि मरेसी मूठि।—ढोला॰, दू॰ ३६१।

धूणक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूप का धुआँ या धूनी (को॰)।

धूत[१]—वि॰ [सं॰] १. कंपित। कँपता हुआ। थरथराता हुआ। डगमगाता हुआ। हिलता हुआ। २. जो धमकाया गया हो। जो डाँटा गया हो। ३. त्यक्त। छोड़ा हुआ। ४. तर्कित। सुविचारित। उ॰—धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत।—अपरा, पृ॰ २०२।

धूत(पु)†[२]—वि॰ [सं॰ धूर्त] धूर्त। दगाबाज। उ॰—(क) ऐसेई जन धूत कहावत।—सूर (शब्द॰)। (ख) समय सगुन मारग मिलहिं छन मलीन खल धूत।—तुलसी (शब्द॰)।

धूत(पु)[३]—वि॰ [सं॰ धावन] दौड़ा हुआ। दौड़कर पहुँचा हुआ। उ॰—धूत दूत कलधौत तन हंग सरूप विराज।—पृ॰ रा॰, २५। ८२।

धूत(पु)[४]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ द्यूत] जुआ। उ॰—कै करि चोरी धूत हि खेलो। कै काहू को गुरभा झेलो।—चरण॰ बानी, पृ॰ २१८।

धूतकल्मष—वि॰ [सं॰] पापमुक्त। निष्पाप। पवित्र (को॰)।

धूतगुण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सदाचार। २. सद्विचार। सदुपदेश (को॰)।

धूतना(पु)[१]—क्रि॰ स॰ [हिं॰ धूत] धूर्तता करना। धोखा देना। ठगना। उ॰—(क) हौं तेरे हो संग जरौंगी यह कहि त्रिया धूति धन लायो।—सूर (शब्द॰)। (ख) सत्य वचन मानस विमल कपट रहित करतूति। तुलसी रघुबर सेवकहिं सकै न कलियुग धूति।—तुलसी (शब्द॰)। (ग) तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति। तात कैकइहि दोष नहिं गई गिरा मति धूति।—तुलसी (शब्द॰)।

धूतना(पु)[२]—वि॰ वंचना करनेवाली। छलनेवाली। उ॰—इनके वेष मात्र पूतना। महापापिनी जगत धूतना।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २७३।

धूतपाप—वि॰ [सं॰] जिसके पाप दूर हो गए हों। जो पाप या दोष से रहित हो गया हो।

धूतपापा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] काशी की एक पुरानी छोटी नदी या नाला जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पंचगंगा के पास गंगा में मिलती थी। यह नदी अब पट गई है।

विशेष—काशीखंड में इसके माहात्म्य के संबंध में एक कथा है। पूर्व काल में वेदशिरा नामक एक ऋषि वन में तपस्या कर रहे थे। उस वन में शुचि नाम की एक अप्सरा को देख मुनि ने कामातुर होकर उसके साथ संभोग किया। संभोग से धूतपापा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पिता की आज्ञा से वह कन्या घोर तप करने लगी। अंत में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया तू संसार में सबसे पवित्र होगी, तेरे रोम रोम में सब तीर्थ निवास करेंगे। एक दिन धूतपापा को अकेले देख धर्म नामक एक मुनि उससे विवाह करने के लिये कहने लगे। धूतपापा ने पिता की आज्ञा लेने के लिये कहा। पर धर्म बार-बार उसी समय गांधर्व विवाह करने का हठ करने लगे। इस पर धूतपापा ने क्रुद्ध होकर शाप दिया, 'तुम बड़ नद होकर बहो'। धर्म ने धूतपापा को शाप दिया, 'तुम पत्थर हो जाओ'। पिता ने जब यह वृत्तांत सुना तब कन्या से कहा, 'अच्छा तू काशी में चंद्रकांत नाम की शिला होगी। चंद्रोदय होने पर तुम्हारा शरीर द्रवीभूत होकर नदी के रूप में बहेगा और तुम अत्यंत पवित्र होगी। उसी स्थान पर धर्म भी धर्मनद होकर बहेगा और तुम्हारा पति होगा।

महाभारत (भीष्म पर्व ९ अ॰) में भी धूतपापा नाम की एक नदी का उल्लेख है पर कुछ विवरण नहीं है। इससे कहा नहीं जा सकता कि इसी नदी से अभिप्राय है या किसी दूसरी से।

धूता[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] स्त्री। भार्या।

धूता(पु)[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धूर्तता'। उ॰—माता सों हम कीन्ही धूता।—कबीर सा॰, पृ॰ २४८।

धूतारा(पु)—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'धूर्त'। उ॰—धूतारा ते जे धूर्त आप, मिथ्या भोजन नहीं संताप।—गोरख॰, पृ॰ १६।

धूताई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धूत] धूर्तता। छल। कपट।

धूति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. कंपन। हिलना। २. हवा करना। ३. हठयोग के अंतर्गत शरीरशुद्धि की एक क्रिया (को॰)।

धूती—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक चिड़िया। उ॰—बाँसा बटेर लव और सिचान। धूती रु चिप्पका चटक भान।—सूदन (शब्द॰)।

धूधल(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धूँधर'[२]। उ॰—मैं भइ धूधल तू सूरज मेरा।—माधवानल॰, पृ॰ ११६।

धूधू—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] आग के दहकने का शब्द। आग की लपट उठने का शब्द। उ॰—चार जने मिल खाट उठाइन चहुँ दिस धूधू ऊठल हो। कहत कबीर सुनो भाई साधो जग से नाता छूटल हो।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ३।

धून[1]—वि० [सं०] १. कंपित । २. गरमी अथवा प्यास से पीड़ित (को०) ।

धून[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दून' ।

धूनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाने डुलानेवाला । चालाक । २. साल का गोंद । राल । ३. धूप ।

धूनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा । २. कंपन । ३. विचलन । क्षोभ [को०] ।

धूनना(पु)[1]—क्रि० स० [हिं० धूनी] धूनी देना । किसी वस्तु को जलाकर उसका धुआँ उठाना । सुलगाना । जलाना । उ०—पाँवरनि पाँवड़े परे हैं पुर पौरि लगि धाम धाम धूपनि के धूम धूनियत हैं ।—देव (शब्द०) ।

धूनना[2]—क्रि० स० [हिं० धुनना] दे० 'धुनना' ।

धूना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० धूनी] गुग्गुल की जाति का एक बड़ा पेड़ जो आसाम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुत होता है ।

विशेष—इसका गोंद भी धूप की तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनाने के काम में आता है ।

धूना[2](पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'धूनी' । उ०—पंचम नाम हरी पद सूना । छठवाँ चदर अधर पर धूना ।—घट०, पृ० १६ ।

धूनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलाना । कँपाना [को०] ।

धूनित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ध्वनित' । उ०—ताकरि सब बन धुनित कियो । काहू माँझ रह्यो नहिं हियो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २९३ ।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूई] १. गुग्गुल, लोबान आदि गंधद्रव्यों या और किसी वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । धूनी । धूप ।

मुहा०—धूनी देना = गंध मिश्रित या विशेष प्रकार का धुआँ उठाना या पहुँचाना । जैसे, इसे मिर्चों की धूनी दो तो भूत छोड़ेगा ।

२. वह आग जिसे साधु या तो ठंढ से बचने के लिये अथवा शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाए रहते हैं । साधुओं के तापने की आग । उ०—विरहागिन धूनी चारों ओर लगाई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४२६ ।

मुहा०—धूनी जगना या लगना = (साधुओं के पास की) (१) आग जलना । (२) शरीर तपाना । तप करना । (३) साधु होना । विरक्त होना । योगी होना । धूनी रमाना = (१) सामने आग जलाकर शरीर तपाने बैठना । तप करना । (२) साधु हो जाना । विरक्त हो जाना । घर बार छोड़ देना ।

धूनी(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुनिया' । उ०—रजं मोद बंकी करक्की कमानं । धुनै तूल धूनी मनो कट्ठु यानं ।—पृ० रा०, १२ । ३१६ ।

धूप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवपूजन में या सुगंध के लिये कपूर, आग, गुग्गुल, आदि गंधद्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । सुगंधित धूम ।

क्रि० प्र०—देना ।

२. गंधद्रव्य जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठता और फैलता है । जलाने पर महकनेवाली चीज ।

विशेष—धूप के लिये पाँच प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी का व्यवहार होता है—(१) निर्यास अर्थात् गोंद । जैसे, गुग्गुल, राल । (२) चूर्ण । जैसे, जायफल का चूर्ण । (३) गंध । जैसे, कस्तूरी । (४) काष्ठ । जैसे, अगर की लकड़ी । (५) कृत्रिम अर्थात् कई द्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप । कृत्रिम धूप कई प्रकार की होती है; जैसे, पंचांग धूप, अष्टांग धूप, दशांग धूप, द्वादशांग धूप, षोडशांग धूप । इनमें से दशांग धूप अधिक प्रसिद्ध है जिसमें दस चीजों का मेल होता है । ये दस चीजें क्या क्या होनी चाहिए इसमें मतभेद है । पद्मपुराण के अनुसार कपूर, कुष्ठ, अगर, चंदन, गुग्गुल, केसर, सुगंधबाला तेजपत्ता, खस और जायफल ये दस चीजें होनी चाहिएँ । सारांश यह कि साल और सलई का गोंद, मैनसिल, अगर, देवदार, पद्माख, मोचरस, मोथा, जटामासी इत्यादि सुगंधित द्रव्य धूप देने के काम में आते हैं ।

धूप[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] १. सूर्य का प्रकाश और ताप । घाम । आतप । जैसे,—धूप में मत निकलो ।

मुहा०—धूप खाना = इस स्थिति में होना कि धूप ऊपर पड़े । धूप में गरम होना या तपना । जैसे,—(क) चार दिन धूप खायगी तो लकड़ी सूख जायगी । (ख) जाड़े में लोग बाहर धूप खाते हैं । धूप खिलाना = धूप में रखना । धूप लगने देना । धूप चढ़ना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश और ताप फैलना । घाम आना । धूप पड़ना = सूर्य का ताप अधिक होना । धूप में बाल या चूँड़ा सफेद करना = बूढ़ा हो जाना और कुछ जानकारी न प्राप्त करना । बिना कुछ अनुभव प्राप्त किए जीवन का बहुत सा भाग बिता देना । धूप लेना = गरमी के लिये शरीर को धूप में रखना । धूप ऊपर पड़ने देना । जैसे, जाड़े में धूप लेने के लिये बाहर बैठना ।

२. चीढ़ या धूप सरल नाम का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है । वि० दे० 'चीढ़' ।

धूपक—संज्ञा पुं० [सं०] धूप आदि सुगंधित वस्तुएँ बेचनेवाला । गंधी [को०] ।

धूपघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + घड़ी] एक यंत्र जिससे धूप में समय का ज्ञान होता है ।

विशेष—काठ या धातु का एक गोल चक्कर बनाकर उसके चार भाग कर ले और एक एक भाग में छह छह समान भाग करे और उस चक्कर की कोर थोड़ा छोड़ दे । उस कोर में साठ भाग करे और बीच में एक एक अंगुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगावे जिनसे उस चक्कर के चार विभाग पूरे हो जायँ । दोनों पट्टियाँ जहाँ मिलें वहीं बीचोबीच एक छेद करके एक कील लगा दे और चुंबक की सुई से या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले । उस स्थान के जितने अक्षांश हों उतनी वह कील उत्तर की ओर उठी रहे । उस कील की छाया मध्याह्न से पहले पश्चिम की ओर और मध्याह्न के पीछे पूर्व की ओर पड़ेगी । मध्याह्न के चिह्न से

पश्चिम की ओर जिस चिह्न पर छाया हो उतनी ही घड़ी मध्याह्न में घटती जाने। इसी प्रकार पूर्व का भी जान ले।

धूपछाँव—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + छाँव] धूप और छाया। प्रकाश और छाया।

मुहा०—धूपछाँव होना = कभी धूप कभी छाया की तरह बराबर बदलते रहना। उ०—जमाना क्या धूपछाँव है। यही जोगिन अभी कल तक खाना खराब थी आज यह ठाठ है कि सदहा आदमी इनके सबब से परवरिश पाते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १।

धूपछाँह—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + छाँह] एक रंगीन कपड़ा जिसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़ता है कभी दूसरा।

विशेष—यह कपड़ा इस प्रकार बुना जाता है कि ताने का सूत एक रंग का होता है और बाने का दूसरे रंग का। इसी से देखनेवाले की स्थिति और कपड़े की स्थिति के अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा। दो रंगों में से एक रंग लाल होता है, दूसरा हरा, नीला या बैंगनी।

यौ०—धूपछाँह का रंग = दो इस प्रकार मिले हुए रंग कि एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़े, कभी दूसरा।

धूपछाँही—वि० [हिं० धूपछाँह] विविध। वह रूप जिसमें एक प्रकट होता है और दूसरा छिपता है। उ०—उन सभी साहित्यकारों की वाणी में ओज, शक्ति, आशा तथा सरस आकांक्षा के अनेक धूपछाँही रूप सजीव हो उठे हैं।—इति०, पृ० २२।

धूपट(पु)—क्रि० वि० [?] पूर्ण रूप से। उ०—धूपट तीनूँ लोक मुलायो, जैत करी जम जीत।—रघु० रू०, पृ० २११।

धूपदान—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूपदान] १. धूप रखने का डिब्बा या बरतन। २. वह बरतन जिसमें गंधद्रव्य या धूपबत्ती रखकर सुगंध के लिये जलाई जाती है। अगियारी।

धूपदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूपदान] धूप रखने का छोटा बरतन।

धूपन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धूपित] १. धूप देने की क्रिया। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ उठाने का कार्य। २. धूप द्रव्य (को०)। ३ केतु का प्रदर्शन (ज्योतिष) (को०)।

धूपना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० धूपन] धूप देना। गंधद्रव्य जलाना।

धूपना[2]—क्रि० स० धूप देना। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ पहुँचाना। सुगंधित धुएँ से बासना। उ०—बारन धूपि अगारन धूपि कै धूम अँध्यारी पसारी महा है।—मतिराम (शब्द०)।

धूपना[3]—क्रि० स० [सं० धूपन (= संतप्त वा श्रांत होना)] दौड़ना। हैरान होना।

विशेष—केवल समस्त पद में इसका प्रयोग होता है।

यौ०—दौड़ना धूपना।

धूपपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धूप रखने का बरतन। वह बरतन जिसमें गंध द्रव्य जलाकर धूप देते हैं।

धूपबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूप + बत्ती] मसाला लगी हुई सींक या बत्ती जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठकर फैलता है।

धूपवास—संज्ञा पुं० [सं०] स्नान के पीछे सुगंधित धुएँ से शरीर, बाल आदि बासने का कार्य।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवासी स्नान के उपरांत कुछ काल सुगंधित धुएँ में रहकर गीले शरीर या बाल को सुखाते थे जिसमें वह सुगंध से बस जाय। रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों में इस प्रथा का उल्लेख है।

धूपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सलई या गुग्गुल का पेड़ जिसका गोंद धूप की सामग्री है। सरल वृक्ष।

धूपसरल—संज्ञा पुं० [सं० सरल] चीड़ का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० 'चीड़'।

धूपांग—संज्ञा पुं० [सं० धूपाङ्ग] सरल का पेड़ [को०]।

धूपायित—वि० [सं०] १. सुगंधित धुएँ से बसा हुआ। धूप दिया हुआ। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूपिक—संज्ञा पुं० [सं०] धूप आदि सुगंधित वस्तुएँ बेचनेवाला।

धूपित—वि० [सं०] १. धूप दिया हुआ। सुगंधित धुएँ से बसा हुआ। उ०—सेज बसन सब धूपित करै।—नंद० ग्रं०, पृ० १५५। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ। धूआँ।

पर्या०—मरुद्वाह। खतमाल। शिखिध्वज। अग्निवाह। तरी।

२. अजीर्ण या अपच में उठनेवाली डकार। ३ विशेष प्रकार का धुआँ जिसका कई रोगों में सेवन कराया जाता है।

विशेष—सुश्रुत ने पाँच प्रकार के धूम कहे हैं प्रायोगिक (जो मसाले से लपेटी हुई सींक जलाने से हो), स्नेहन (जो बत्ती में मसाला लपेटकर घी या तेल से जलाने से हो), वैरेचन (जो पिप्पली, विडंग, अपामार्ग इत्यादि नस्य द्रव्यों की बत्ती से हो), कासघ्न (जो कंटकारी, कंटकारी, बृहती आदि कासघ्न ओषधों की बत्ती से हो), और वामनीय (जो स्नायु, चमड़े, सींग, सूखी मछली या कृमि आदि को जलाने से हो)।

४. धूमकेतु। ५ उल्कापात। ६. एक ऋषि का नाम।

धूम[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० धूम (= धुआँ)] १ बहुत से लोगों के इकट्ठे होने, आने जाने, और गुल करने, हिलने डोलने आदि का व्यापार। रेलपेल। हलचल। आंदोलन। जैसे, मेले तमाशे की धूम, उत्सव की धूम। लूटमार की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

२. हल्ला और उछल कूद। उपद्रव। उत्पात। ऊधम। जैसे,—यहाँ धूम मत मचाओ, और जगह खेलो। उ०—बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

मुहा०—धूम डालना = ऊधम करना। हल्ला गुल्ला करना। उ०—तेरे रुखसार व कद ने धूम डाला है गुलिस्ताँ में। उधर बुलबुल सिसकती है इधर कुमरी बिलखती है।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३।

३. भीड़ भाड़ और तैयारी। ठाट बाट। समारोह। भारी आयोजन। जैसे,—बारात बड़ी धूम से निकली। उ०—धाई धाम धाम धूम धौसा की धुकार धूरि।—हम्मीर०, पृ० २४।

यौ०—धूमधड़क्का । धूमधाम ।

४. कोलाहल । हल्ला । शोर । उ०—टूट्यो धनुष धूम भइ भारी ।—कबीर सा०, पृ० ३७ । ५. चारों ओर सुनाई देनेवाली चर्चा । जनरव । शुहरत । प्रसिद्धि । जैसे,—शहर में इस बात की बड़ी धूम है ।

मुहा०—धूम होना = धाक या प्रतिष्ठा होना । प्रभाव होना । उ०—स्वर्ग में हमारी धूम थी ।—चुभते० (दो दो बातें), पृ० १ ।

धूम²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो तालों में होती है ।

धूमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ । २. एक शाक का नाम ।

धूमकधूमा—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूम] उछल कूद और हल्ला गुल्ला । उपद्रव । उत्पात । शोरगुल ।

क्रि० प्र०—मचना । मचाना ।

धूमकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । २. केतु ग्रह ।

धूमकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । २. केतुग्रह (जिसका चिह्न है धुएँ या भाप के आकार की पूँछ) । पुच्छल तारा ।

विशेष—दे० 'केतु' ।

३. शिव । महादेव । ४. वह घोड़ा जिसकी पूँछ में भँवरी हो ।

विशेष—ऐसा घोड़ा बहुत अमंगल समझा जाता है ।

५. रावण की सेना का एक राक्षस । उ०—कुमुख, अकंपन, कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

धूमगंधि—संज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धि] रोहिष तृण । रूसा घास ।

धूमगंधिक—संज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धिक] धूमगंधि [को०] ।

धूमग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] राहुग्रह ।

धूमज—संज्ञा पुं० [सं०] १. (धुएँ से उत्पन्न) बादल । २. मुस्तक । मोथा ।

धूमजांगज—संज्ञा पुं० [सं० धूमजाङ्गज] नवक्षार । नौसादर ।

धूमजात—संज्ञा पुं० [सं०] बादल । उ०—रूख रूखे भौहें सतर नहिं सोहे ठहरात । मान हितू हरि वात तें धूमजात लौं जात ।—स० सप्तक, पृ० २६७ ।

धूमदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० धूमदर्शिन्] वह मनुष्य जिसकी आँख के सामने धुआँ सा दिखाई पड़ता हो । धुँधला देखनेवाला आदमी ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार धुँधला दिखाई पड़ने का रोग शोक, श्रम और सिर की पीड़ा के कारण होता है ।

धूमधड़क्का—संज्ञा पुं० [हिं० धूम + धड़ाका] भीड़ भाड़ और तैयारी समारोह । भारी आयोजन । ठाट बाट । जैसे,—व्याह में धूम धड़क्का मत करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूमधर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

धूमधाम—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूम + अनु० धाम] भीड़ भाड़ और तैयारी । ठाट बाट । समारोह । भारी आयोजन । जैसे,—बड़ी धूम धाम से सवारी निकली । उ०—धूमधाम धुंधारित भूमि असमान न सुज्झै ।—हम्मीर०, पृ० ३१ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूमधामी—वि० [हिं० धूमधाम] १. धूमधाम से युक्त । तड़क भड़कवाला । २. आडंबरपूर्ण । दिखावटी ।

धूमध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

धूमन—संज्ञा पुं० [सं०] केतु का प्रदर्शन या अस्पष्टता [को०] ।

धूमप—वि० [सं०] केवल होम का धुआँ पीकर तपस्या करनेवाला [को०] ।

धूमपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ निकलने का रास्ता । २. पितृयान ।

धूमपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार विशेष प्रकार का धुआँ जो नल के द्वारा रोगी को सेवन कराया जाता है ।

विशेष—नेत्ररोग तथा फोड़े फुंसी आदि में सुश्रुत ने कुछ मसालों तथा ओषधियों के धुएँ को नल के द्वारा मुँह में खींचने का विधान बताया है ।

२. तमाकू, चुरुट आदि पीने का कार्य ।

धूमपोत—संज्ञा पुं० [सं०] धुआँकस । अग्निबोट ।

धूमप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक जो सदा धुएँ से भरा रहता है ।

धूमयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] (धुएँ से उत्पन्न) बादल ।

धूमर¹—वि० [हिं०] दे० 'धूसल' । उ०—धूमर धूलि थान रथ जोती ।—हिं० क० का०, पृ० २२३ ।

धूमर(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] दे० 'धूम्र' । उ०—उण ठोड़ जिण रा रिखां आश्रम जाग धूमर जागिया ।—रघु० रू०, पृ० १२६ ।

धूमरज—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का धुआँ । २. घर के धुएँ की कालिख जो छत और दीवार में लग जाती है ।

धूमरा—वि० [सं० धूम्र] [वि० स्त्री० धूमरी] कृष्ण लोहित वर्ण का । धुएँ के रंग का । कालापन लिए हुए लाल । सुँघनी रंग का ।

धूमरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का खेल । वि० दे० 'झूमर' । उ०—बड़े खिरकि में धूमरि खेलन ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८७ ।

धूमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा [को०] ।

धूमल¹—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । लालिमा युक्त काले रंग का । सुँघनी रंग का ।

धूमल²—संज्ञा पुं० १. बैंगनी रंग । २. एक वाद्य [को०] ।

धूमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] टेढ़े मेढ़े धुएँ की राशि । कुंचित धूमराशि [को०] ।

धूमला—वि० [सं० धूमल] [स्त्री० धूमली] १. धुएँ के रंग का । ललाई लिए काले रंग का । सुँघनी रंग का । २. धुँधला । जो चटकीला न हो । जो शोख न हो । ३. जिसकी कांति मंद हो । मलिन । उ०—जैसे, यह बात सुनते ही उसका चेहरा धूमला पड़ गया ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

धूमली¹—वि० [हिं० धूमिल] धुँधला । धूमिल । उ०—धूमली रत्ति में बंक पथ, मनों चंद ह्वै विस्तरिय ।—पृ० रा०, ११।३५३ ।

धूमली²—क्रि॰ स॰ [?] कँपाना। हिलाना। उ॰—धजा पताक धूमली, समूह सत्त संमली। दईत दून दोरयं, करें सनाह जोरयं।—पृ॰ रा॰, २।११५।

धूमवान्—वि॰ [सं॰ धूमवत्] [स्त्री॰ धूमवती] जिसमें या जहाँ धुआँ हो। धुएँवाला।

विशेष—बाहुल्य या अधिकता के अर्थ में धूमी विशेषण होता है।

धूमसंहति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धूमराशि [को॰]।

धूमसपूत(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धूम+सपूत] मेघ। उ॰—मुंदिर बलाहक तड़ितपति कामुक धूमसपूत।—अनेकार्थ॰, पृ॰ ८२।

धूमसार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] घर का धुआँ।

धूमसी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. धूमसी। उरद का आटा।

विशेष—यह शब्द भावप्रकाश में मिलता है, किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं; इससे गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

२. उरद का बड़ा (को॰)।

धूमांग¹—वि॰ [सं॰ धूमाङ्ग] जिसका अंग धुएँ के समान हो।

धूमांग²—संज्ञा पुं॰ शीशम का पेड़।

धूमाक्ष—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ धूमाक्षी] धुएँ के रंग की आँखोंवाला [को॰]।

धूमाग्नि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बिना ज्वाला या लपट की आग (जैसी लपट निकल जाने पर गोहरे या उपले की होती है।)

धूमाभ—वि॰ [सं॰] धुएँ के रंग का।

धूमायन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. धुआँ देना। भाप देना। २. गरमी। ताप [को॰]।

धूमायमान—वि॰ [सं॰] धुएँ से भरपूर्ण [को॰]।

धूमावती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दश महाविद्याओं में से एक देवी।

विशेष—तंत्रों में इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। एक बार पार्वती को बहुत भूख लगी और उन्होंने महादेव से कुछ खाने को माँगा। महादेव ने थोड़ा ठहरने के लिये कहा। पर पार्वती क्षुधा से अत्यंत आतुर होकर महादेव को निगल गईं। महादेव को निगलने पर पार्वती के शरीर से धुआँ निकलने लगा। अंत में महादेव ने प्रकट होकर कहा—'तुमने जब मुझे खाया तब विधवा हो चुकी। हमारे वर से तुम इस वेश में पूजी जाओगी।' धूमावती देवी का रूप बड़ा मलिन और भयंकर बताया गया है।

धूमिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कोहरा [को॰]।

धूमित¹—वि॰ [सं॰] १. जिसमें धुआँ लगा हो। २. जो धुएँ से धुँधला हो गया हो (को॰)।

धूमित²—संज्ञा पुं॰ तंत्रों के अनुसार वह दूषित मंत्र जो साढ़े अक्षरों का हो।

धूमिता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह दिशा जिसमें सूर्य आनेवाला हो।

धूमिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'धूमी²' [को॰]।

धूमिल(पु)—वि॰ [सं॰ धूमल] १. धुएँ के रंग का। ललाई लिए काला रंग का। २. धुँधला। उ॰—मुख अरविंद धार मिलि सोभित धूमिल नील अगाध। मनहु बाल रवि रस समीर संकित तिमिर कूट ह्वै आध।—सूर (शब्द॰)।

धूमिलता—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धूमिल+ता (प्रत्य॰)] धूमिल होने का भाव। धुँधलापन। उ॰—तुम विश्वास करो मेरे कंचन तन, चंदन मन पर, धूमिलता की रेख नहीं लग पाएगी।—ठंडा॰, पृ॰ ४३।

धूमी¹—वि॰ [सं॰ धूमिन्] जिसमें या जहाँ बहुत धुआँ हो। धुएँ से भरा हुआ।

विशेष—जहाँ बाहुल्य या अधिकता का भाव नहीं होता वहाँ धूमवान् रूप होता है।

धूमी²—संज्ञा स्त्री॰ १. अजमीढ की एक पत्नी का नाम। २. अग्नि की एक जिह्वा का नाम।

धूमोत्थ¹—वि॰ [सं॰] धुएँ से निकला हुआ।

धूमोत्थ²—संज्ञा पुं॰ वज्रक्षार। नौसादर।

धूमोद्गार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अजीर्ण या अपच के कारण आनेवाली धुएँ की सी कड़वी डकार।

धूमोपहत¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक रोग [को॰]।

धूमोपहत²—वि॰ धुएँ के कारण जिसका गला घुट गया हो [को॰]।

धूमोर्णा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. यमपत्नी। २. मार्कंडेय पत्नी।

धूम्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] धूमराशि [को॰]।

धूम्याट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक पक्षी। भिंगराज नाम की एक चिड़िया। भृंग।

धूम्र¹—वि॰ [सं॰] धुएँ के रंग का। कृष्णलोहित। ललाई लिए काले रंग का। सुँघनी या भूरे रंग का। बैंगनी।

धूम्र²—संज्ञा पुं॰ १. कृष्णलोहित वर्ण। ललाई लिए काला रंग। सुँघनी या भूरा रंग। २. शिलारस नाम का गंधद्रव्य। ३. एक असुर का नाम। ४. शिव। महादेव। ५. मेढ़ा। ६. कुमार के एक अनुचर का नाम। ७. फलित ज्योतिष में एक योग का नाम। ८. मानिक या लाल का धुँधलापन जो एक दोष समझा जाता है। ९. राम की सेना का एक भालु। १०. पाप (को॰)। ११. शरारत। दुष्टता (को॰)। १२. ऊँट (को॰)।

धूम्रक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ऊँट।

धूम्रकांत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धूम्रकान्त] एक रत्न या नग का नाम।

धूम्रकेतु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भरतराजा के पुत्र का नाम (भागवत)।

धूम्रकेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. राजा पृथु के एक पुत्र का नाम। २. कृशाश्व का एक पुत्र जो अर्चि नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था (भागवत)।

धूम्रपत्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक पौधे का नाम जो आयुर्वेद में तीता, रुचिकारक, गरम, अग्निदीपक तथा शोथ, कृमि और खाँसी को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या॰—सुलभा। स्वयंभुवा। गृध्रपत्रा। गृध्राणी। कृमिघ्नी।

धूम्रपान—संज्ञा पुं० [सं० धूम्रपान] दे० 'धूमपान' (को०)।

धूम्रमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली नामक तृण।

धूम्ररुक्—वि० [सं० धूम्ररुच्] कृष्ण लोहित वर्ण का (को०)।

धूम्रलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कबूतर। २. शुंभ नामक दानव का एक सेनापति।

विशेष—शुंभ निशुंभ के वध के लिये जब देवी ने एक परम सुंदरी का रूप धारण करके कहा था कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा उसे मैं वरमाला पहनाऊँगी तब शुंभ ने उन्हें पकड़ने के लिये इसी धूम्रलोचन को भेजा था।

धूम्रलोहित¹—संज्ञा पुं० [सं०] शंकर। शिव (को०)।

धूम्रलोहित²—वि० गहरा लाल या गुलाबी (को०)।

धूम्रवर्ण¹—वि० [सं०] धुएँ के रंग का। ललाईपन लिए काला। धूमला।

धूम्रवर्ण²—संज्ञा पुं० १. धुएँ का रंग। ललाई लिए काला रंग। २. लोबान (को०)।

धूम्रवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] माँद में रहनेवाला एक जानवर। लोमड़ी (को०)।

धूम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

धूम्रशूक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

धूम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की ककड़ी। २. दुर्गा (को०)। ३. सूर्य की बारह कलाओं में से एक (को०)।

धूम्राक्ष¹—वि० [सं०] जिसकी आँखें धूमले रंग की हों।

धूम्राक्ष²—संज्ञा पुं० १. रावण का एक सेनापति जो राम-रावण-युद्ध में हनुमान के हाथ से मारा गया था। २. विशुवंशीय राजा हेमचंद्र के पुत्र। (भागवत)।

धूम्राक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] भद्दे रंग का मोती (को०)।

धूम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] धूम्याट पक्षी। भिंगराज।

धूम्राभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। २. वायुमंडल (को०)।

धूम्रार्चि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में से एक। (शारदातिलक)।

धूम्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

धूम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़।

धूर(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूल'। उ०—मानुस हो कोइ मुवा नहिं मुवा सो उगर धूर।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६५।

धूर²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक घास।

धूर³—अव्य० [हिं०] दे० 'धुर'। उ०—गर्व गुमान में जो है पूरा रहै सदा सो धूर अधूरा।—कबीर सा०, पृ० ५८६।

धूरकट—संज्ञा पुं० [हिं०] लगान का कुछ पेशगी जिसे असामी जेठ असाढ़ में जमींदार को देते हैं।

धूरजटी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि'।

धूरडाँगर—संज्ञा पुं० [देश०] सींगवाला चौपाया। ढोर।

धूरत(पु)‡—वि० [सं० धूर्त] दे० 'धूर्त'। उ०—कपट रूप तुम सौं मिले करि धूरत का भेष।—अर्ध०, पृ० ४४।

धूरतताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरत+ताई (प्रत्य०)] धूर्तता। छल। उ०—धूरतताई कोर नदलाल।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६८।

धूरधान—संज्ञा पुं० [हिं० धूर+धान] धूल की राशि। गर्द का ढेर। उ०—बानन के वाहिबे को कर में कमान कसि धाई धूरधान आसमान में मढ़ै लगी।—पद्माकर (शब्द०)।

धूरधानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूरधान] १. गर्द की ढेरी। धूल की राशि। २. ध्वंस। विनाश। उ०—लंकपुर जारि, मकरी विदारि बार बार जातुधान धारि धूरधानी करि डारी है।—तुलसी (शब्द०)। ३. पत्थरकला बंदूक।

धूरवा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ध्रुव'। उ०—तीजै सुनी जब धूरवा मीति, कछू बिभिचार को मारग नीजै।—नट०, पृ० ५६।

धूरसंझा†—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि+संध्या] गोधूली का समय। संध्या।

धूरा—संज्ञा पुं० [हिं० धूर] १. धूल। गर्द। २. चूर्ण। बुकनी। चूरा।

मुहा०—धूरा करना या देना = शीत से अंग सुन्न होने पर गरम मसाला, सोंठ की बुकनी आदि मलना। धूरा देना = इधर उधर की बात कहकर या चापलूसी करके गों पर लाना। अपने अनुकूल करना। बहकाना। धोखा देना।

धूरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि] दे० 'धूल'। उ०—कंटके कवलु कलेवर मुख मालन धूरि।—विद्यापति, पृ० २६५।

मुहा०—धूर लपेटा मानिक = धूलि में लिपटने से छिपा हुआ माणिक। सामान्य वेश में असामान्य जन। उ०—फेरे भेख रहै भा तपा। धूरि लपेटा मानिक छपा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

धूरिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [हिं० धूरि+क्षेत्र] पृथ्वी। धरती। उ०—धूरिक्षेत्र में आइ रूप करि, हरि रस पावै।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६।

धूरियाबेला—संज्ञा पुं० [हिं० धूर+बेला] एक प्रकार का बेला।

धूरिया मल्लार—संज्ञा पुं० [हिं० धूर+मल्लार] मल्लार राग का एक भेद।

धूरेरा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'धुरीण'। उ०—धुरीण विद्वान् बना दिया।—कबीर ग्रं०, पृ० २४०।

धूर्जटि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

धूर्जटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि'। उ०—जटी, पिनाकी, धूर्जटी, नीलकंठ, मृडु, सोइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ९२।

धूर्त¹—वि० [सं० धूर्त] १. मायावी। छली। चालबाज। २. वंचक। प्रतारक। धोखा देनेवाला। दगाबाज। ३. लंपट (को०)। ४. क्षतिग्रस्त (को०)।

धूर्त²—संज्ञा पुं० १. साहित्य में शठ नायक का एक भेद। २. विट्

धूलधानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूल + धान] चूर चूर होने का भाव। ध्वंस। विनाश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

धूला—संज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा। खंड। कतरा। उ०—इंद्री बग रंग कीन्हो धूला।—घट०, पृ० २८७।

धूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धूल। गर्द। रेणु। रज।

धूलिकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धूलिकदम्ब] एक प्रकार का कदंब।

धूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महीन जलकणों की झड़ी। २. कुहरा।

धूलिकुट्टिम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढूह। धुस्स। २. जोता हुआ खेत (को०)।

धूलिकेदार—संज्ञा पुं० [सं०] ढूह। धुस्स। २. जोता हुआ खेत (को०)।

धूलिगुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] अबीर जो होली में डाला जाता है।

धूलिधूसर—वि० [सं० धूलि + धूसर] १. जो धूल से भरा हुआ हो। २. जो धूल लगने से भूरे रंग का हो गया हो (को०)।

धूलिधूसरित—वि० [सं० धूलि+धूसरित] दे० 'धूलिधूसर' (को०)।

धूलिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

धूलिपटल—संज्ञा पुं० [सं०] धूल या गर्द का बादल (को०)।

धूलिपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

धूलिपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी (को०)।

धूलियापीर—संज्ञा पुं० [हिं० धूलि+फ़ा० पीर] एक प्रकार का कल्पित पीर जिसका नाम बच्चे खेल खेल में लिया करते हैं।

धूवाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धुआँ'।

धूसना—क्रि० स० [ध्वंसन] १ मर्दित करना। मलना। दलना। मींजना। २. ठूसना।

धूसर[1]—वि० [सं०] १. धूल के रंग का। खाकी। ईषत् पांडु वर्ण। मटमैला। मटीला। उ०—संध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में।—लहर०, पृ० ६१। २. धूल लगा हुआ। जिसमें धूल लिपटी हो। धूल से भरा। उ०—(क) धूसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि बोलनि वचन रसाल की।—सूर (शब्द०)। (ख) धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—धूलधूसर=धूल से भरा। जिसे धूल लिपटी हो।

धूसर[2]—संज्ञा पुं० १ मटमैला रंग। पीलापन लिए सफेद रंग। भूरा रंग। २. गदहा। ३. ऊँट। ४. कबूतर। ५ बनियों की एक जाति। ६. तेली (को०)। ७. मटीले रंग की कोई वस्तु (को०)।

धूसरच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद बोना।

धूसरता—संज्ञा स्त्री० [हिं० धूसर + ता (प्रत्य०)] मटमैलापन। मलिनता। उ०—संध्या की उस धूसरता में उमड़ा करुणा का उद्रेक।—साकेत, पृ० ३६८।

धूसरपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथीसूँड़ का पौधा।

धूसरा[1]—वि० [सं० धूसर] [स्त्री० धूसरी] १. धूल के रंग का। मटमैला। खाकी। २. धूल लगा हुआ। जिसमें धूल लिपटी हो। उ०—नियम करत बीते दिवस दूबर अंग लखात। सीस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

धूसरा[2]—संज्ञा स्त्री० पांडुफली।

धूसरित—वि० [सं०] १ धूसर किया हुआ। जो धूल से मटमैला हुआ हो। २. धूल से भरा हुआ। जिसमें धूल चिपटी हो। उ०—बाल बिभूषन बसन धर धूरि धूसरित अंग। बालकेलि रघुपति करत बालबधु सब संग।—तुलसी (शब्द०)।

धूसरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी।

धूसरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धूसर'। उ०—धूरि धूसरी खेह रज रेनु सरकरा गर्द।—अनेकार्थ०, पृ० ४४।

धूसला—वि० [हिं०] दे० 'धूसरा'। उ०—धुरी धरा धूमली धूम धुंधार। मानो प्रलैकाल को घोर अंधार।—सूदन (शब्द०)।

धूस्तुर—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा (को०)।

धूस्तूर—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरा।

धूहा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० धूह] दे० 'धूह'।

धूहा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० धूह] १. ढूह। २. चिड़ियों को उड़ाने का पुतला, काली हाँड़ी आदि।

धृक—अव्य० [सं० धिक्] दे० 'धिक'। उ०—तुम्हहि बिना मन धृक अरु धृक घर। तुमहि बिना धृक धृक माता पितु धृक धृक धृक जीवन कौन काज बर।—सूर (शब्द०)।

धृग—अव्य० [हिं०] दे० 'धृक'। उ०—अरु ह्याँ सब कोउ धृग धृग करै।—नंद० ग्रं०, पृ० २२५।

धृत[1]—वि० १. धरा हुआ। पकड़ा हुआ। उ०—हुए जीवन मरण के बंधन धृत से वे।—साकेत, पृ० २१। २. धारण किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। ३. स्थिर किया हुआ। निश्चित। ४. पतित। ५. तौला हुआ (को०)। ६. तैयार किया हुआ। प्रस्तुत (को०)।

धृत[2]—संज्ञा पुं० १. तेरहवें मनु रौच्य के पुत्र का नाम। २. द्रुह्यु वंशीय धर्म का पुत्र (भागवत)।

धृत[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरना। पतन। २. अविनश्वर। स्थिरता। ३ ग्रहण। पकड़। ४. धारण करने की क्रिया। पहनना। ५. लड़ने का एक पद्धति (को०)।

धृतकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टकेतु के बहनोई (गर्गसंहिता)।

धृतदंड—वि० [सं० धृतदण्ड] १. दंड देनेवाला। २. जिसको दंड दिया गया हो (को०)।

धृतदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि (को०)।

धृतदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक की एक कन्या का नाम।

धृतपट—वि० [सं०] जिसने वस्त्र धारण किया हो (को०)।

धृतमानस—वि० [सं०] दृढ़निश्चय (को०)।

धृतमाली—संज्ञा पुं० [सं० धृतमालिन्] अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र। अस्त्रों का एक संहार (रामायण)।

धृतराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जो अच्छे राजा के शासन में हो। २. वह जिसका राज्य दृढ़ हो। ३. एक कौरव राजा जो दुर्योधन के पिता और विचित्रवीर्य के पुत्र थे।

विशेष—इनकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है।

पुरुवंश में शांतनु नाम के एक राजा हुए जिन्होंने गंगा से विवाह किया। गंगा से उन्हें देवव्रत नामक पुत्र हुए जो भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके अपने पिता का विवाह सत्यवती या मत्स्यगंधा से होने दिया। यह सत्यवती जब क्वाँरी थी तभी उसे पराशर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम द्वैपायन पड़ा था। यही द्वैपायन महाभारत के कर्ता प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यास हुए। सत्यवती के गर्भ से शांतनु को दो पुत्र हुए। विचित्रवीर्य और चित्रांगद। चित्रांगद युवावस्था के पूर्व ही एक गंधर्व द्वारा मारे गए। विचित्रवीर्य राजा हुए और उन्होंने काशिराज की अंबिका और अंबालिका नाम की दो कन्याओं से विवाह किया। कुछ दिन पीछे विचित्रवीर्य बिना कोई संतान छोड़े मर गए। वंश स्थिर रखने के लिये सत्यवती ने अपने पुत्र वेदव्यास को बुलाकर दोनों पुत्रवधुओं के साथ नियोग करने के लिये कहा। अंबिका ने समागम के समय वेदव्यास का कृष्णवर्ण और जटाजूट देख आँखें मूँद लीं। इसपर वेदव्यास ने कहा कि इसके गर्भ से परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा, पर वह अपनी माता के दोष से अंधा होगा। अंबालिका के साथ नियोग होने पर पांडु की उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासी के साथ नियोग होने पर विदुर का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिये पांडु राजा हुए। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार देश के राजा की कन्या गांधारी से हुआ था। इन्हीं गांधारी के गर्भ से दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, चित्रसेन इत्यादि सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए और महाभारत के युद्ध में पांडवों के हाथ से मारे गए।

४. एक नाग का नाम। ५. गंधर्वों के एक राजा का नाम (बौद्ध)। ६. जनमेजय के एक पुत्र का नाम। ७. एक प्रकार का हंस।

धृतराष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप ऋषि की पत्नी ताम्रा से उत्पन्न ५ कन्याओं में से एक जो हंसों की आदिमाता थी। २. धृतराष्ट्र की स्त्री।

धृतलक्ष्य—वि० [सं०] जो अपना लक्ष्य प्राप्त करने में लगा हो [को०]।

धृतवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० धृतवर्म्मन्] १. वह जो कवच धारण किए हो। २. त्रिगर्त का राजकुमार जिसके साथ अर्जुन को उस समय युद्ध करना पड़ा था जब वे अश्वमेध के घोड़े के साथ गए थे।

धृतविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तौलकर कोई पदार्थ बेचना (को०)।

धृतव्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने व्रत धारण किया हो। २. पुरुवंशीय जयद्रथ के पुत्र विजय का पौत्र। ३. इंद्र (को०)। ४. वरुण (को०)। ५. अग्नि (को०)।

धृतव्रत[2]—वि० १. जिसने कोई व्रत धारण किया हो। धार्मिक क्रिया करनेवाला। निष्ठाशील। जिसकी निष्ठा दृढ़ हो।

धृतात्मा[1]—वि० [सं० धृतात्मन्] आत्मा को स्थिर रखनेवाला। धीर।

धृतात्मा[2]—संज्ञा पुं० १. धीर पुरुष। २. विष्णु।

धृति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण। धरने या पकड़ने की क्रिया। २. स्थिर रहने की क्रिया या भाव। ठहराव। ३. मन की दृढ़ता चित्त की अविचलता। धैर्य। धीरता। उ०—कृश देह, विभा भरी भरी, धृति सूखी, स्मृति ही हरी हरी।—साकेत, पृ० ३२१।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भावों में से एक है। मनु ने इसे धर्म के दस लक्षणों में कहा है।

४. सोलह मातृकाओं में से एक। ५. अठारह अक्षरों के वृत्तों की संज्ञा। ६. दक्ष की एक कन्या और धर्म की पत्नी। ७. अश्वमेध की एक आहुति का नाम। ८. फलित ज्योतिष में एक योग। ९. चंद्रमा की सोलह कलाओं में से एक। १०. संतोष। आनंद (को०)। ११. विचार। सावधानता (को०)। १२. अठारह (१८) की संख्या (को०)। १३. यज्ञ (को०)।

धृति[2]—संज्ञा पुं० १. जयद्रथ राजा का पौत्र। २. एक विश्वदेव का नाम। ३. यदुवंशीय बभ्रु का पुत्र।

धृतिगृहीत—वि० [सं०] धृतिशील। धृतिमान् [को०]।

धृतिमान्—वि० [सं० धृतिमत्] १. धैर्यवान। धीर। उ०—देखकर भी न कदापि अधीर हुए तुम लोकोत्तर धृतिमान्।—सागरिका, पृ० ८। २. संतुष्ट (को०)।

धृतिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह कार्य में किया जानेवाला होम [को०]।

धृत्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।

धृत्वा—संज्ञा पुं० [सं० धृत्वन्] १. विष्णु। २. ब्रह्मा। ३. सद्गुण। धार्मिकता। ४. आकाश। ५. समुद्र। ६. चतुर आदमी [को०]।

धृम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धर्म'। उ०—च्यारि अंग लच्छी प्रमान धृम द्वादश अंग दिट्ठा।—पृ० रा०, २४।४५७।

धृमजधट(पु)†—संज्ञा पुं० [?] धर्मयुद्ध। उ०—उठे सुण धृमजधट धायो धोम क्रोध उर दारे।—रघु० रू०, पृ० १५३।

धृषित—वि० [सं०] बहादुर। वीर। साहसी [को०]।

धृषु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ढेर। राशि। समूह [को०]।

धृषु[2]—वि० १. बहादुर। वीर। २. चतुर। होशियार [को०]।

धृष्ट[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धृष्टा] १. संकोच या लज्जा न करनेवाला। जो कोई अनुचित या बेढंगा काम करते हुए कुछ भी न सहमे। निर्लज्ज। बेहया। प्रगल्भ।

विशेष—साहित्य में 'धृष्ट नायक' उसको कहते हैं जो अपराध करता जाता है, अनेक प्रकार का तिरस्कार सहता जाता है, पर अनेक बहाने करके बातें बनाकर नायिका के पीछे लगा ही रहता है।

२. अनुचित साहस करनेवाला। ढीठ। गुस्ताख। उद्धत। ३. बहादुर। साहसी (को०)। ४. आत्मविश्वासी (को०)। ५. निर्दयी। क्रूर।

धृष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. वेदिवंशीय कुंति का पुत्र (हरिवंश)। २. सप्तम मनु के एक पुत्र का नाम (भागवत)। ३. अस्त्रों का संहार (वाल्मीकि०)। ४. साहित्य के अनुसार वह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान

रहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार बातें बनाकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज धरै मन में नहीं, नायक धृष्ट निदान।—मतिराम (शब्द०)।

धृष्टकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चेदि देश के राजा शिशुपाल का पुत्र जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था और द्रोणाचार्य के हाथ से मारा गया था। २. जनकवंशीय सुधृति के पुत्र (रामायण)। ३. मनु रोहित के पुत्र। ४. सन्नति राजवंशीय सुकुमार का एक पुत्र (हरिवंश)।

धृष्टता—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढिठाई। अनुचित साहस। गुस्ताखी। २. निर्लज्जता। संकोच का भाव। बेहयाई।

धृष्टद्युम्न—संज्ञा पुं० [सं०] राजा द्रुपद का पुत्र और द्रौपदी का भाई जो पांडवों की सेना का एक नायक था।

विशेष—पृषत राजा का द्रुपद नामक एक पुत्र था। पृषत राजा से भरद्वाज ऋषि की बहुत मित्रता थी, इससे वे नित्य द्रुपद को लेकर ऋषि के आश्रम पर जाया करते थे। क्रमशः द्रुपद और ऋषिपुत्र द्रोण में बड़ा स्नेह हो गया था। द्रुपद जब राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए; पर उसने उनकी अवज्ञा की। इसपर द्रोण दीन भाव से इधर उधर घूमने लगे और अंत में उन्होंने कौरवों और पांडवों की अस्त्रशिक्षा का भार लिया। अर्जुन गुरु के अपमान का बदला चुकाने के लिये द्रुपद को बंदी करके लाए। द्रुपद ने द्रोण को आधा राज्य देकर छुटकारा पाया। इस अपमान का बदला लेने के लिये द्रुपद ने याज और अनुयाज नामक दो ऋषिकुमारों की सहायता से एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ से एक अत्यंत तेजस्वी पुरुष खड्ग, चर्म, धनुर्बाण से सुसज्जित उत्पन्न हुआ। देववाणी हुई कि यह राजपुत्र द्रुपद के शोक का नाश करेगा और द्रोणाचार्य का वध इसी के हाथ से होगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिस समय द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की बात सुनकर योग में मग्न हुए थे उस समय इसी धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काटा था। महाभारत के युद्ध के पीछे अश्वत्थामा ने अपने पिता का बदला लिया और सोते में धृष्टद्युम्न का सिर काट लिया।

धृष्टधी—वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया (को०)।

धृष्टमानी—वि० [सं० धृष्टमानिन्] १. अपने को बहुत बड़ा समझनेवाला। २. धृष्ट। ढीठ (को०)।

धृष्टवादी—वि० [सं० धृष्टवादिन्] १. अशिष्टतापूर्वक बात करनेवाला। २. दृढ़ता या साहस से बात करनेवाला (को०)।

धृष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] असती स्त्री। कुलटा (को०)।

धृष्टि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरण्याक्ष का एक पुत्र। २. दशरथ के एक मंत्री का नाम। ३. एक यज्ञपात्र।

धृष्टि[2]—वि० दृढ़। साहसी (को०)।

धृष्टि[3]—संज्ञा स्त्री० दृढ़ता। साहस (को०)।

धृष्णक्—वि० [सं० धृष्णज्] १. बहादुर। साहसी। २. निर्लज्ज। बेहया (को०)।

धृष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता।

धृष्णत्व—संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टता।

धृष्णि—संज्ञा पुं० [सं०] किरण।

धृष्णु[1]—वि० [सं०] १. धृष्ट। प्रगल्भ। २. ढीठ। उद्धत। ३. निर्लज्ज। बेहया (को०)। ४. दृढ़। शक्तिशाली (को०)।

धृष्णु[2]—संज्ञा पुं० १. वैवस्वत मनु के एक पुत्र। २. सावर्ण मनु के एक पुत्र। ३. एक रुद्र का नाम।

धृष्णवोजा—संज्ञा पुं० [सं० धृष्णवोजस्] कार्तवीर्य के एक पुत्र।

धृष्य—वि० [सं०] धर्षण योग्य। धर्षणीय।

धेख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष ?] ईर्ष्या। उ०—करबा एक राह मन कीधो। लेख प्रमाण धेख व्रत लीधो।—रा० रू०, पृ० ५७।

धेठौं(पु)—वि० [सं० धृष्ट] ढीठ। धृष्ट। उ०—धेठौं भणी इमारत धारे। बात करे उर घात विचारे।—रा० रू०, पृ० २२५।

धेड़(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धेर'। उ०—जा तन सूं मुजे कछु नहिं प्यार। असते के नहिं हिंदु धेड चंमार।—दक्खिनी०, पृ० १००।

धेड़ी कौवा—संज्ञा पुं० [देश० धेड़ो + हिं० कौवा] बड़ा काला कौवा। डोम कौवा।

धेधक धीना(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] रास रंग। ताल धिनाधिन। नाच। गान। उ०—धेधक धीना ह्वै गये सु हरिबोलो हरिबोल।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० ३१६।

धेन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. नद।

धेन(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० धेनु] दे० 'धेनु'। उ० बधो धेन मारे। प्रलंबं प्रहारे।—पृ० रा० २।४६।

धेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २. वाणी। ३. दुही गाय (को०)।

धेनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया (को०)।

धेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह गाय जिसे बच्चा जने बहुत दिन न हुए हों। सवत्सा गो।

पर्या०—नवप्रसूतिका। नवसूतिका।

२. गाय। उ०—कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. पृथ्वी (को०)। ४. भेंट (को०)।

धेनुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम जिसे बलदेव जी ने मारा था (हरिवंश)। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ। यहाँ स्नान करके तिल की धेनु दान करने का विधान है। ३. रतिमंजरी के अनुसार सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक।

धेनुकसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] बलराम (को०)।

धेनुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धेनु। २. हस्तिनी स्त्री। ३. उपहार। भेंट (को०)। ४. मादा पशु (को०)। ५. धनिया (को०)। ६. कटार (को०)। ७. पार्वती (को०)।

धेनुदुग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का दूध। २. चिर्भिटा।

धेनुदुग्धकर—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर।

धेनुमाक्षिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बड़े मच्छड़ जो चौपायों को लगते हैं। डाँस। डंस।

धेनुमती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. गोमती नदी। २. भरतवंशीय देवद्युम्न की पत्नी।

धेनुमुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गोमुख नाम का बाजा। उ॰—बाजे विपुल शंख घरियारा। और धेनुमुख पंवरि दुवारा।—सबलसिंह (शब्द॰)।

धेनुष्टरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह सवत्सा गाय जिसने दूध देना बंद कर दिया (को॰)।

धेनुष्या—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेय¹—वि॰ [सं॰] १. धारण करने योग्य। धार्य। ध्येय। उ॰—धेय महा पद अंबुज सार। अगणित गुण महिमा जु अपार।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३२६। २. पोषण करने योग्य। पोष्य। ३. पीने योग्य। पीने का। पेय।

धेय²—संज्ञा पुं॰ १. पोषण। २. पान। ३. पकड़। पहुण (को॰)।

धेयना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ ध्यान] ध्यान करना। उ॰—सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी।—तुलसी (शब्द॰)।

धेर—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक अनार्य जाति।

विशेष—इस जाति के लोग राजपूताने, पंजाब और कहीं कहीं उत्तर प्रदेश में बाहर रहते हैं। राजस्थान में मरे हुए गाय बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये चमारों के हाथ बेचते हैं। राजस्थान के धेर सूअर का मांस नहीं खाते।

धेरा—वि॰ [सं॰] भेंगा।

धेरिया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धी] लड़की। पुत्री।

धेलचा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धेला] पुराने आधे पैसे के बराबर का सिक्का। अधेले के मूल्य का सिक्का।

विशेष—अब यह सिक्का कहीं नहीं बनता।

धेला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अधेला'।

धेली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अधेल] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

धैताल—वि॰ [अनु॰ धै+हिं॰ ताल] १. [illegible] चंचल। ३. उजड्ड। उ॰—[illegible] का धैताल।—अनाथ (शब्द॰)।

धैनव¹—वि॰ [सं॰] गाय से उत्पन्न।

धैनव²—संज्ञा पुं॰ गाय का बछड़ा।

धैना¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ धरना] पकड़ना। उ॰—बिहुतर कदद्दू होय भैन मे नइ कि चलिए। जुरे सो आगे धरे गोद धै सेवा करिए।—पलटू॰, भा॰ १, पृ॰ ५१।

यौ॰—धै कै—पकड़ करके। उ॰—बंदिन गून पिउ अनते बसा। सेन नागिनी धै धै डसा।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ ३५६।

धैना(पु)²—क्रि॰ स॰ [हिं॰ धरना या धंधा] १. पकड़ी हुई टेव। आदत। स्वभाव। उ॰—कह गिरधर कविराय फूहर के याही धैना। कजरौटा नहिं होइ लुकाठे आँजे नैना।—गिरिधर (शब्द॰)। २. काम धंधा।

धैनु(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धेनु'। उ॰—धौरी धूमरि धैनु बिबिध रंग सोभित ठाऊँ ठाऊँ।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३४६।

धैनुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. एक रतिबंध। २. गायों का झुंड।—संपूर्णा॰ अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ २४६।

धैया धामक धैया(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] नृत्य का ताल। उ॰—धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट। गरे जाल झांझि परझन कत्त कत्त त त त त त धैया धामक धैया।—अकबरी॰, पृ॰ ४५।

धैर्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धैर्य] १. धीरता। चित्त की स्थिरता। संकट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर घबराहट का न होना। अव्यग्रता। अव्याकुलता। धीरज। जैसे,—बुद्धिमान् विपत्ति में धैर्य रखते हैं। २. उतावला न होने का भाव। हड़बड़ी न मचाने का भाव। सब्र। जैसे, थोड़ा धैर्य धरो, अभी वे आते होंगे। ३. चित्त में उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव। निर्विकारचित्तता।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार धैर्य नायक या पुरुष के आठ सत्वज गुणों में से एक है।

क्रि॰ प्र॰—छोड़ना।—धरना।—रखना।

४. साहस (को॰)। ५. धृष्टता (को॰)।

धैवत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] संगीत के सात स्वरों में से छठा स्वर जो मध्यम के आगे खींचा जाता है।

विशेष—नारदीय शिक्षा के अनुसार घोड़े के हिनहिनाने के समान जो स्वर निकले वह धैवत है। तानसेन ने इस स्वर को मेढक के स्वर के समान कहा है। संगीतदामोदर के मत से जो स्वर नाभि के नीचे आकर बस्ति स्थान से फिर ऊपर दौड़ता हुआ कंठ तक पहुँचे वह धैवत है। संगीतदर्पण के मत से यह स्वर ऋषिकुल में उत्पन्न और क्षत्रिय वर्ण का है। इसका वर्ण पीत, जन्मस्थान श्वेतद्वीप, ऋषि तुंबरु, देवता गणेश और छंद उष्णिक् (मतांतर से जगती) माना गया है। यह षाड़व जाति का स्वर माना गया है। इसकी ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येक के ४८ भेद होने से सब ३४,५६० तानें हुईं। श्रुतियाँ इसकी तीन हैं—रम्या, रोहिणी और मदंती।

धैवत्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] चतुराई। होशियारी (को॰)।

धोँक(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धोखा'। उ॰—सत गुरु के परताप सो, मिट गए सबही धोक।—कबीर सा॰, पृ॰ ८५७।

धोँढाल—वि॰ [हिं॰ धोंधा ?] (जमीन या मिट्टी) जिसमें ढेले, कंकड़ पत्थर के ढोंके हों।

धोँधकारी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धूम्र, हिं॰ धुआँ] [स्त्री॰ धोंधकी] घर का धुआँ निकलने के लिये चोंगे की तरह निकला हुआ छेद।

धोँधा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुण्ढि] १. लोंदा। बेडौल पिंड। उ॰—मैं भी मिट्टी का धोंधा ही हूँ।—सरस्वती (शब्द॰)। २. भद्दा और बेडौल शरीर। मोटी और बेडौल मूर्ति।

मुहा०—मिट्टी का धोंधा =(१) मूर्ख। नासमझ। जड़। (२) निकम्मा। आलसी।

धोंधों पोंपों—संज्ञा स्त्री० [अनु०] धोंधों पोंपों की ध्वनि। उ०—इतने में बाजों की धोंधों पोंपों सुनाई दी।—काया०, पृ० ३५८।

धोश्रन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोवन'। उ०—दूसरी ने कहा था, रमानाथ तो उसके पाँवों का धोवन भी नहीं है।—ठेठ, पृ० ३१।

धोश्राउरि(पु)—वि० [हिं० धोना] धुला हुआ। उ०—धोश्राउरि धाने मदिरा साध, देउरि भाँगि मसीद बाँध।—कीर्ति०, पृ० ४४।

धोई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोना] १ छिलका निकाली हुई उरद या मूंग की दाल।

विशेष—पानी में भिगोई हुई दाल को हाथ से मलकर छिलका अलग करते हैं इसी लिये दाल को धोई कहते हैं।

२. अफीम के बरतन का धोवन।

धोई(पु)²—संज्ञा पुं०[हिं० थवई] राजगीर। थवई। उ०—राजा केर लाग गढ धोई। फूटै जहाँ सँवारै सोई।—जायसी (शब्द०)।

धोक(पु)¹—संज्ञा पुं० [?] नमस्कार। साष्टांग प्रणाम। उ०—गह चढ़िया संतोष गज, धर पड़ ज्यौं तूं धोक। चढ़िया ज्यौं तूं चहुरजे, लालच गरधभ धोक।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६।

धोक(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोखा'। उ०—आ काठां चढ़सी अवस, धरणीधर दे धोक।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २।

धोकड़—वि० [देश०] हट्टा कट्टा। मोटा ताजा। हृष्ट पुष्ट। मुस्टंडा।

धोकड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो राजस्थान में होता है।

धोका‡¹—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक, प्रा० थोक] पाँच मुट्ठी भर डंठलों का पूला।

धोका²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोखा'।

धोख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोखा'। उ०—(क) धोख दगा माया काया में, एक तखत बना है।—रामानंद०, पृ० ३६। (ख) भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि। सुनि सरोष बोले सुभट वीर अधीन न होहि।—तुलसी (शब्द०)।

धोखा—संज्ञा पुं० [सं० धूकता(=धूर्तता)] १. मिथ्या व्यवहार जिससे दूसरे के मन में मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो। धूर्तता या छल जिससे दूसरा भ्रम में पड़े। ऐसी युक्ति या चालाकी जिसके कारण दूसरा कोई अपना कर्तव्य भूल जाय। भुलावा। छल। दगा। जैसे, हमारे साथ ऐसा धोखा!

यौ०—धोखा धड़ी। धोखेबाज।

२. किसी की धूर्तता, चालाकी, झूठ बात आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति। ऐसी बात का विश्वास जो ठीक न हो और जो किसी के रंग ढंग या बात चीत आदि से हुआ हो। दूसरे के छल द्वारा उपस्थित भ्रांति। डाला हुआ भ्रम। भुलावा।

मुहा०—धोखा खाना =किसी की धूर्तता या चालाकी न समझकर कोई ऐसा काम कर बैठना जो विचार करने पर ठीक न ठहरे। किसी के छल या कपट के कारण भ्रम में पड़ना। ठगा जाना। प्रतारित होना। उ०—और न धोखा देत जो आपुहि धोखा खात।—व्यास (शब्द०)। धोखा देना = (१) ऐसी मिथ्या प्रतीति उत्पन्न करना जिससे दूसरा कोई अयुक्त कार्य कर बैठे। भ्रम में डालना। भुलावा देना। बुत्ता देना। छलना। जैसे,—लोगों को धोखा देने के लिये उसने यह सब ढंग रचा है। (२) भ्रम में डाल या रखकर अनिष्ट करना। झूठा विश्वास दिलाकर हानि करना। विश्वासघात करना। किसी को ऐसी हानि पहुँचाना जिसके संबंध में वह सावधान न हो। जैसे, यह नौकर किसी न किसी दिन धोखा देगा। उ०—रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय। छाँह न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय। जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा देहै। जा दिन बहै बयार टूटि वह जर से जैहै।—गिरिधर (शब्द०)। (३) अकस्मात् मरकर या नष्ट होकर दुःख पहुँचाना। जैसे, (क) इस बुढ़ापे में वह पुत्र को लेकर दिन काटता था, उसने भी धोखा दिया (अर्थात् वह चल बसा)। (ख) यह खंभा बहुत कमजोर है किसी दिन धोखा देगा।

३. ठीक ध्यान न देने या किसी वस्तु के बाहरी रूप रंग आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति। असत् धारणा। भ्रम। भ्रांति। भूल। जैसे, (क) इस रंग पत्थर को देखने से असल नग का धोखा होता है। (ख) तुम्हारे सुनने में धोखा हुआ, मैंने ऐसा कभी नहीं कहा था। उ०—पीउ हिये परे नहि धोखा।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—धोखा खाना = भ्रम में पड़ना। भ्रांत होना। और का और समझना। उ०—जिमि कपूर के हंस सों हंसी धोखा खाय।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। धोखा पड़ना =भूल चूक होना। भ्रम होना।

४. ऐसी वस्तु या विषय जिससे मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो। भ्रांति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या आयोजन। भ्रम में डालनेवाली वस्तु। असत् वस्तु। माया। जैसे,—(क) यह संसार धोखा है। (ख) राम भरोसा भारी है और सब धोखा धारी है।

मुहा०—धोखे की टट्टी =(१) वह परदा या टट्टी जिसकी ओट में छिपकर शिकारी शिकार खेलते हैं। (२) यथार्थ वस्तु या बात को छिपानेवाली वस्तु। भ्रम में डालनेवाली चीज। उ० मैं इनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (३) ऐसी वस्तु जिसमें कुछ तत्व न हो। दिखाऊ चीज। धोखा खड़ा करना या रचना = भ्रम में डालने के लिये आडंबर खड़ा करना। माया रचना। उ०—चित चोखा, मन निर्मला, बुधि उत्तम, मति धीर। सो धोखा नहिं बिरचहीं सतगुरु मिले कबीर।—कबीर (शब्द०)।

५. जानकारी का अभाव। ध्यान का न होना। अज्ञान।

मुहा०—धोखे में या धोखे से = जान में नहीं। जान बूझकर नहीं। भूल से। जैसे,—धोखे से लग गया क्षमा करना।

उ०—(क) त्रिमि धोखे मदपान करि सचिव सोच तेहि भाँति।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काज कहा नरतन धरि सारयो। पर-उपकार सार श्रुति को सो धोखेहु में न बिचारयो।—तुलसी (शब्द०)।

६. अनिष्ट की संभावना। जोखों। जैसे,—(क) यह बड़े धोखे का काम है। (ख) इसमें जान जाने का धोखा रहता है।

मुहा०—धोखा उठाना = झूठी बात का विश्वास करके हानि सहना। भ्रम में पड़कर हानि या कष्ट उठाना। सावधान न रहने के कारण नुकसान सहना। उ०—अच्छी तरह जान लिया करो, नहीं तो धोखा उठाओगे।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

७. अन्यथा होने की संभावना। जैसा समझा या कहा जाय उसके विरुद्ध होने की आशंका। संशय। शक। उ०—(क) या में कछु धोखो नहीं नेही सूर समान। दोऊ सम्मुख सहत हैं दग अनियारे बान।—रतनहजारा (शब्द०)।

मुहा०—धोखा पड़ना = अन्यथा होना। और का और होना। जैसा समझा या कहा जाय उसके विरुद्ध होना। उ०—पंडितन कहा परा नहिं धोखा। कौन अगस्त समुद्रहि सोखा।—जायसी (शब्द०)।

८. भूल। चूक। प्रमाद। त्रुटि। कसर। जैसे, जितना काम मुझसे हो सकेगा उसमें धोखा नहीं लगाऊँगा।

मुहा०—धोखा लगना = चूक या कसर होना। त्रुटि होना। कमी होना। उ०—हीरामन तैं प्रान परेवा। धोख न लाग करत तुव सेवा।—जायसी (शब्द०)। धोखा लगाना = चूक या कसर करना। त्रुटि करना। कमी करना। जैसे,—कहने में अपनी ओर से मैं धोखा नहीं लगाऊँगा।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग प्रायः निषेधवाक्य (या काकु से प्रश्न) में ही होता है।

९. लकड़ी में पयाल, कपड़ा आदि लपेटकर बनाया हुआ पुतला जिसे किसान चिड़ियों को डराने के लिये खेत में खड़ा करते हैं। बिजुखा। धुनकाक। उ०—नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। ... भट बटोरि सबके बल जोते। परसुराम से सूर सिरोमनि पल महँ भए खेत के धोखे।—तुलसी (शब्द०)। १०. रस्सी बँधी हुई लकड़ी जो फलदार पेड़ों पर इसलिये बाँधी जाती है कि नीचे से रस्सी खींचने से खट खट शब्द हो और चिड़िया दूर रहें। खटखटा। ११. बेसन का एक पकवान जिसके भीतर नरम कटहल, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखने से कबाब का भ्रम होता है।

धोखेबाज—वि० [हिं० धोखा + फ़ा० बाज़] [संज्ञा धोखेबाजी] धोखा देनेवाला। छली। कपटी। धूर्त।

धोखेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोखेबाज] छल। कपट। धूर्तता।

धोटा—सं० पुं० [हिं० या देश०] दे० 'ढोटा'।

धोड़—संज्ञा पुं० [सं० धोड़] एक प्रकार का साँप।

धोतर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अधोवस्त्र] एक मोटा कपड़ा जो गाढ़े की तरह का होता है। धोतीहर।

धोतरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धोती'।

धोतरा⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धतूरा'। उ०—धोतरा न पीवो रे अवधू भाँगि न खावो रे भाई।—गोरख०, पृ० ७६।

धोति—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धोती'। उ०—गजमोतियन को चौक सो तहाँ पुराइए। तापर नारियर धोति, मिष्टान्न धराइए।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ४।

धोती—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोवस्त्र, हिं० अधोतर या सं० धौत (धौतवस्त्र)] वह दस हाथ लंबा और दो ढाई हाथ चौड़ा कपड़ा जो पुरुष की कमर से लेकर घुटनों के नीचे तक का शरीर और स्त्रियों का प्रायः सर्वांग ढाकने के लिये कमर में लपेटकर खोंसा या ओढ़ा जाता है। उ०—सूरज जेहि की तपै रसोई। निनहि बसंदर धोती धोई।—जायसी (शब्द०)। (ख) पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल रवि दामिनि जोती।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पहनना।

मुहा०—धोती बाँधना = (१) धोती पहनना। उ०—मुद्रा श्रवन जनेऊ काँधे। कनक पत्र धोती कटि बाँधे।—जायसी (शब्द०)। (२) तैयार होना। सन्नद्ध होना। धोती ढीली करना = डर जाना। भयभीत होना। डरकर भागना। धोती ढीली होना = भय होना। डर होना। उ०—यह सामान देखकर चंद्रापीड़ की धोती ढीली हुई।—गदाधरसिंह (शब्द०)।

धोती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० धौति] १. योग की एक क्रिया। दे० 'धौति'। २. एक अंगुल चौड़ी और चौवन (५४) अंगुल लंबी कपड़े की धज्जी जिसे हठयोग की 'धौति' क्रिया में मुँह से निगलते हैं।

धोती[3]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाज जिसकी मादा को बेसरा कहते हैं।

धोना—क्रि० स० [सं० धावन] पानी डालकर किसी वस्तु पर से मैल गर्द आदि हटाना। पानी से साफ करना। जल से स्वच्छ करना। प्रक्षालित करना। पखारना।

विशेष—जिस वस्तु पर से गर्द मैल आदि हटाई जाती है तथा जो लगी हुई वस्तु (गर्द मैल आदि) हटाई या छुड़ाई जाती है दोनों का प्रयोग कर्म में होता है। जैसे, हाथ धोना, कपड़ा धोना, घर धोना, बरतन धोना। इसी प्रकार मैल धोना, कालिख धोना, रंग धोना इत्यादि। उ०—(क) जिन एहि बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सूरदास हरि कृपा बारि सों कलिमल धोय बहावै।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—(किसी वस्तु से) हाथ धोना = खो देना। गँवा देना। वंचित रहना। जैसे,—जो कुछ उसके पास था वे उससे भी हाथ धो बैठे। हाथ धोकर पीछे पड़ना = सब काम धाम छोड़कर प्रवृत्त होना। सब छोड़कर लग जाना। धोया धाया = (१) निष्कलंक। निर्दोष। साफ। (२) ऐसा मनुष्य जो बुराई करके भी औरों के सामने उसी प्रकार लज्जित न हो जिस प्रकार निर्दोष आदमी। निर्लज्ज। बेहया। धृष्ट।

२. दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—(क) करी गोपाल की सब होय। जो अपने पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोय। साधन मंत्र, यंत्र, उद्यम, बल यह सब डारो धोय। जो कछु लिखि राखी नंदनंदन मेटि सकै नहिं कोय।—सूर (शब्द०)। (ख) तू ने शकुंतला के अपमान का दुख सब धो दिया है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—धो बहाना = न रहने देना। छोड़ देना या खो देना।

धोप⁰† —संज्ञा स्त्री० [सं० धर्षा; धर्षन् (= काटनेवाला) ?] तलवार। खंग। उ०—(क) छत्रमाल जेहि दिमि पिलै काढ़ि धोप कर माहिं। तेहि दिसी सीस गिरीस पै बनत बटोरत नाहिं।—लाल (शब्द०)। (ख) भूषण हालि उठे गढ़ भूमि पठान कबंधन के धमके ते। मीरन के अवसान गये मिटि धोपनि सों चपला चमके ते।—भूषण (शब्द०)। (ग) एक हाथ धोप है सों कोप यह जनावत है एक तोय हाथ पर टोंक्यो एक भाल मो।—हनुमान (शब्द०)। (घ) अंगद सुग्रीव एऊ दोनों गए राम ढिग सुनो महराज भिधु करी बात धोप की।—हनुमान (शब्द०)।

धोब—संज्ञा पुं० [हिं० धोवना] धुलावट। धोए जाने की क्रिया।

मुहा०—धोब पड़ना=धोया जाना। धुलने की क्रिया होना। जैसे,—इस कपड़े पर कई धोब पड़े पर रंग नहीं उड़ा।

धोबइन† —संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबिन] दे० 'धोबिन'-३। उ०—धोबइन, तलीचटैया कोड़ेनी चभ्भा इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

धोबन† —संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धोबिन'।

धोबिघटा—संज्ञा पुं० [हिं० धोबी+घाट] वह घाट जहाँ धोबी कपड़ा धोते हैं।

धोबिन¹ —संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी] १. कपड़ा धोनेवाली स्त्री। धोबी जाति की स्त्री। २ धोबी की स्त्री। ३. दस बारह अंगुल लंबी एक चिड़िया जो जल के किनारे रहती है। उ०—आएँ अकासी धोबिनि आई। लोवा हरमन धाइ देखाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२।

विशेष—यह पत्थर आदि के नीचे अंडे देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

धोबिन² —संज्ञा स्त्री० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है।

विशेष—इसकी लकड़ी परतदार होती है। अर्थात् इसमें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उसपर काले रंग की बहुत पतली एक और तह होती है। इसी तह पर से इस लकड़ी के तख्ते बहुत सहज में चीरे जा सकते हैं।

धोबिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धोबी'। उ०—नैहर में दाग लगाय आइ चुँदरी। ऊ रँगरेजवा को मरम न जानै, नहिं मिलै धोबिया कौन करै उजरी।—कबीर श०, भा० १, पृ० २३।

धोबी—संज्ञा पुं० [हिं० धोवन] [स्त्री० धोबिन] १. कपड़ा धोनेवाला। वह जो मैले कपड़ों को धो और साफ करके अपनी जीविका करता हो। रजक। उ०—गुरु धोबी, सिख कापड़ा साबुन सिरजनहार। सुरति सिला पर धोइए निकसै रंग अपार।—कबीर (शब्द०)। २. वह जाति जो कपड़ा धोने का व्यवसाय करती है।

विशेष—हिंदुओं में यह जाति पहले नीच और अस्पृश्य समझी जाती थी।

मुहा०—धोबी का कुत्ता = वह जो एक ठिकाने जमकर कोई काम न करे। व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा आदमी। धोबी का छैला = (१) दूसरे के माल पर इतरानेवाला। मँगनी या पराई चीज का घमंड करनेवाला। (२) मँगनी कपड़े पहनकर निकलनेवाला।

धोबीघास—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोबी+घास] बड़ी दूब। दूर्वा।

धोबी पछाड़—संज्ञा पुं० [हिं० धोबी+पछाड़ना] कुश्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ का हाथ पकड़कर कंधे की ओर खींचते हैं और उसे कमर पर लादकर चित गिरा देते हैं।

धोबीपाट—संज्ञा पुं० [हिं० धोबी+पाट] दे० 'धोबीपछाड़'।

धोम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धूम'। उ०—मंगाय अगिनि तब कियौ होम। षट स्वान मांस पनिवास धोम।—पृ० रा०, १।३७७।

धोयी¹ —संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक कवि।

विशेष—इसका उल्लेख जयदेव ने गीत गोविंद में किया है जिससे यह पता चलता है कि यह कहीं का राजा था। इसका रचा हुआ वायुदूत ग्रंथ अब तक मिलता है और मेघदूत के ढंग का है।

धोयी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० धोया] उड़द, मूँग आदि की बिना छिलके की दाल।

धोर—संज्ञा स्त्री० [सं० धर (= किनारा)] १. पास। सामीप्य। निकटता। २. किनारा। धार। बाढ़। उ०—छोदि लई मणिकर्णिका, भूमि चक्र की धोर। सो थल भरयो प्रस्वेदजल भयो हरन अघ घोर।—केशव (शब्द०)।

धोरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ सवारी। २. घोड़े की सरपट चाल। ३. दौड़।

धोरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रेणी। परंपरा। २. निरंतर गति। अबाध गति (को०)।

धोरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धोरणि' [को०]।

धोरित—संज्ञा पुं० [सं०] १. आघात करना। चोट पहुँचाना। २. गति। गमन। ३. घोड़े की दुलकी चाल। घोड़े की तेज चाल [को०]।

धोरी—संज्ञा पुं० [सं० धौरेय] १. धुरे को उठानेवाला। भार उठानेवाला। उ०—(क) फेरत मनहिं मातुकृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धंधक धोरी।—तुलसी (शब्द०)। २. बैल। वृषभ। उ०—समरथ धोरी कंध धरि रथ ले और निबाहि। मारग माहिं न मेलिए

पीर्छाह विरुव लजाहि ।—दादू (शब्द०)। ३. प्रधान। मुखिया। सरदार। उ०—(क) मन मैं मंजु मनोरथ ओरी। सोहर गौरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनी भोरी। कुअँर कुअँरि सब मंगल मूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। राज समाज भूरि भागी जिन्ह चौगुन लाहु लही एहि ठौरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब यह फौज लूट हो लीजै। धोरिन घाउ न कोऊ कीजै।—लाल (शब्द०)। ४. श्रेष्ठ पुरुष। बड़ा आदमी। उ०—म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी। तिनतें भरवावत द्विज धोरी।—निश्चल (शब्द०)।

धोरे(पु)†—क्रि० वि० [सं० धर (=किनारा)] पास। निकट। समीप। उ०—उज्ज्वल देखि न धीजिए बग ज्यों माँडे ध्यान। धोरे बैठि चपेटसी यों ले बूड़े ज्ञान। —कबीर (शब्द०)। (ख) बिनवै चतुरानन कहि भोरें। तुव प्रताप जान्यों नहि प्रभु पू कर स्तुति कर जोरें। अपराधी मतिहीन नाथ हो चूक परी निज धोरें। हम कृत दोष छमो करुणामय ज्यों भू परसत भोरे। —सूर (शब्द०)। (ग) झाँझरियाँ झनकैंगी खरी खनकैंगी चुरी तनिको तन तोरे। दास जू जागतीं पास अलीं परिहास करेंगीं सबै उठि भोरे। सौंह तिहारी हौं भागि न जाहुँगी आइ हौं लाल तिहारे ही धोरें। केलि को रैनि परी है घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे- दास (शब्द०)।

यौ०—धोरे धोरे=आस पास।

धोरे(पु)²—वि० [सं० धवल] १. धवल। २. धुले हुए। उ०—देखन के सब गोरे नव नव पानिप धोरे।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५।

धोल(पु)¹—वि० [हिं०] दे० 'धवल'। उ०—मोति सु आई नीयरो भयो श्याम तें धोल। सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१७।

धोल†²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'धौल'।

धोलचक—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

धोलहरा(पु) संज्ञा पुं० [हिं० धौरहर] महल। भवन। उ०—धोल-हरां चमरां ढुले, उ भाराणी भाण।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २।

धोला—संज्ञा पुं० [सं० दुरालभा] जवासा। यमासा। हिंगुवा।

धोलाना†—क्रि० स० [हिं० धुलाना] दे० 'धुलाना'।

धोली(पु)—वि० स्त्री० [पं०] भोली। सीधी सादी। उ०—सेंडरी जिद तुमाहँ नाल लगी प धोली ब्रजमोहन मतवालिया।—घनानंद, पृ० ५१९।

धोवनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोवस्त्र] धोती। (क्व०)। उ०—टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति।—बिहारी (शब्द०)।

धोवन—संज्ञा पुं० [हिं० धोना] १. धोने का भाव। पखारने की क्रिया। २. वह पानी जिससे कोई वस्तु धोई गई हो। जैसे, पैर का धोवन, चावल का धोवन।

मुहा०—किसी के पैर का धोवन होना=किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना। किसी के मुकाबले बिलकुल नाचीज होना।

धोवना(पु)†—क्रि० स० [हिं० धोना] जल की सहायता से साफ करना। धोना। उ०—मुँह धोवति एड़ी घसति हँसति अनगवति तीर। धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर। —बिहारी (शब्द०)।

धोवा(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० धोना] १. धोवन। २. जल। अर्क। उ०—संग नील बधू लिये दोई अटा पर बैठे बिलोकत जोन्ह भरी। रघुनाथ गुलाब को धोवो बनाइ मँगाइ के वारुणी पास धरी।—रघुनाथ (शब्द०)।

धोवा²—वि० स्त्री० धोई हुई। जैसे, धोवा दाल।

धोवाना(पु)†¹—क्रि० स० [हिं० धोना] धुलाना। उ०—कोउ परात कोउ लोटा लाई। शाह सभा सब हाथ धोवाई।—जायसी (शब्द०)।

धोवाना²—क्रि० अ० [हिं० धोना का अकर्मक०] धुलना। धो जाना। साफ होना। उ०—गोये गोय न जाहि से धोये हे न धोवाहि। भली लाल लाली जुहै लोयन कोयन माहि।—शृं० सत० (शब्द०)।

धोसा—सं० पुं० [हिं० ठोस] गुड़ आदि का सूखा हुआ लोंदा। भिस्सा। भेली।

धौं(पु)†—अव्य० [सं० अथवा हिं० दहुँ, दहुँ] १. एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का भाव अधिक होता है। विचिकित्सा सूचक एक शब्द। न जाने। कौन जाने। मालूम नहीं। कहा नहीं जा सकता। उ०—(क) कौन मोहनी धौ हुत तोही। जो तोहि बिथा सो उपजो मोही।—जायसी (शब्द०)। (ख) कला निधान सकल गुन आगर गुरु धौ कहा पढ़ाए।—सूर (शब्द०)। (ग) सीय स्वयंवर देखिय जाई। ईस काहि धौं देहि बड़ाई।—तुलसी (शब्द०)। (घ) चितवत मोहि लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ ते धौं आए।—तुलसी (शब्द०)। २. प्रश्न के रूप में आनेवाले दो विकल्प या संदेहसूचक वाक्यों में से दूसरे या दोनों के पहले लगनेवाला शब्द। कि। या। अथवा। (इस अर्थ में प्रायः 'कि' या 'के' के साथ आता है)। उ०—(क) सुनत सुदामा जात मनहि मन चीन्हैंगे धौं नाहीं।—सूर (शब्द०)। (ख) की धौं वह पर्णकुटी कहुँ और, किधौं वह लक्ष्मण होय नही।—केशव (शब्द०)। ३. एक शब्द जिसका प्रयोग जोर देने के लिये ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'भला' के अर्थ में होता है जिनका उत्तर काकु से 'नहीं' होता है। यह प्रायः 'कहु' या 'कहो' के साथ आता है और 'कहो तो' का अर्थ देता है। उ०—(क) तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ समर्थ सो सेवत रीझत थोरे। कहा भवभीर परी तेहि धौं बिचरैं धरनी तिनसों तिन तोरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कंध न देइ मसखरी करई। कहु धौं कौन भाँति निस्तरई।—जायसी (शब्द०)। (ग) मोहि परतीति यहि भाँति नहि आवई। प्रीति कहु धौं सु नर बानरहि क्यों भई।—केशव (शब्द०)। (घ) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहो धौं उदार कौन की भई।—केशव (शब्द०)। ४. किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे

मिले हुए प्रश्नवाक्य का प्रारंभसूचक शब्द जो 'कि' अर्थ देता है। उ०—(क) हमहु न जानैं धौं सो कहाँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहो सो विपिन है धौं केति दूर?—तुलसी (शब्द०)। ५. विधि, आदेश आदि वाक्यों के पहले आनेवाला एक शब्द जो केवल जोर देने के लिये उसी प्रकार आता है जिस प्रकार 'सोचिए तो', 'कर तो', 'समझ तो' आदि वाक्यों में 'तो'। उ०—जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद बिनु जिमि जामिनी। तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझ धौं जिय भामिनी।—तुलसी (शब्द०)।

धौंक—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौकना] १. आग दहकाने के लिये भाथी को दबाकर निकाला हुआ हवा का झोंका। अग्नि पर पहुँचाया हुआ वायु का आघात।

क्रि० प्र०—मारना—लगाना।

२. गरमी की लपट। ताप। लू।

मुहा०—धौंक लगना = शरीर पर ताप का प्रभाव पड़ना। लू लगना।

धौंकना—क्रि० स० [सं० धम् (= धौंकना, फूँकना)। धमक = धौंकनेवाला] १. आग पर, उसे दहकाने के लिये, भाथी दबाकर हवा का झोंका पहुँचाना। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये उसपर वायु का आघात पहुँचाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. ऊपर डालना। भार डालना या सहन कराना। ३. दंड आदि लगाना। जैसे, किसी पर जुरमाना धौंकना।

धौंकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] १. बाँस या धातु की एक नली जिससे लोहार सोनार आदि आग फूँकते हैं। फुँकनी। २. भाथी।

मुहा०—धौंकनी लगना = साँस चढ़ना। दम फूलना।

धौंकल(पु)—वि० [देश०] उपद्रव। उ०—अजबशाह अमपत्तियाँ, प्रगट दिखायौ पाँण। उगै दिन धौंकल हुवा, ऊगै दिन आरांण।—रा० रू०, पृ० २०२।

धौंका—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंकना] गरमी में चलनेवाली गरम हवा। तप्त वायु। लू।

क्रि० प्र० = चलना।

मुहा०—धौंका लगना = गरमी के दिनों में तपी हुई हवा का शरीर में असर करना। लू लगना।

धौंकिया—संज्ञा पुं० [हिं० धौंकना] १. भाथी चलानेवाला। आग फूँकनेवाला। २. एक प्रकार के व्यापारी जो भाथी आदि लिए नगरों की गलियों में फिरकर फूटे बरतनों की मरम्मत किया करते हैं।

धौंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धौंकना] धौंकनी।

धौंज—संज्ञा स्त्री [हिं० धौंजना] १. दौड़ धूप। धाव धूप। उ०—एक करै धौंज एक सौज लै निकारै एक औंजि पानी पीकै सीकै बनत न आवनो।—तुलसी (शब्द०)। २. घबराहट। उद्विग्नता। हैरानी। व्याकुलता। उ०—आयो आयो आयो सोइ बानर बहुरि भयो सोर चहुँ ओर लंका आये युवराज के। एक काढ़ै सौज एक धौंज करै कहा ह्वै है पोच भई महा सोच सुभट समाज के।—तुलसी (शब्द०)।

धौंजन—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंज] दे० 'धौंज'।

धौंजना[1]—क्रि० स० [सं० ध्वञ्जन (= चलना फिरना)] दौड़ना धूपना। दौड़धूप करना।

धौंजना[2]—क्रि० स० १. किसी वस्तु को पैरों से रौंदना। २. रौंदकर या मल दलकर तह बिगाड़ना (कपड़े आदि की)। जैसे, बिस्तर धौंजना।

धौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० अंध + ओट] कोल्हू में चलनेवाले बैल की आँखों का ढक्कन। अँधियारी। ढोका।

धौंताल—वि० [हिं० धत + ताल] १. जिसे किसी बात की धुन लग जाय। फुरतीला। चुस्त चालाक। काम को कुछ न समझनेवाला। २. साहसी। दृढ़। ३. हट्टा कट्टा। मजबूत। हेकड़। ४. निपुण। पटु। तेज। जैसे,—वह खाने में बड़ा धौंताल है। ५. शरारती। उ०—होरी के दिन चारिक ते तुम भए हो निपट धौंताल हो।—घनानंद, पृ० ५६६।

धौंधौं—संज्ञा पुं० [अनु०] दमामा बजाने से निकलनेवाली आवाज। उ०—बसन धुजा पताका अति फरफरात गरजि गरजि धौं धौं दमामो री बजायो।—नंद० ग्रं० पृ० ३७३।

धौंधौंमार—संज्ञा स्त्री० [अनु० धमधम + हिं० मार] हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

धौंना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'धौना'। उ०—ना थिर रहै न हुटका माने, पलक पलक उठि धौंना।—जग० श०, पृ० ६५।

धौंर—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक प्रकार की ईख जो सफेद होती है।

धौंस—संज्ञा स्त्री० [सं० दंश] १. धमकी। घुड़की। डाँट। डपट। उ०—कोई रोता है कोई हँसता है कोई नाचै है कोई गाता है। कोई छीने झपटे ले भागे कोई धौंस का डर दिखलाता है।—नजीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दिखाना।—देना।

२. धाक। अधिकार। रोब दाब।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।—बँधना।—बाँधना।

३. झाँसा पट्टी। भुलावा। धोखा। छल।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—धौंसपट्टी।

मुहा०—धौंस की चलना = चाल चलना।

४. वह रुपया जो मालगुजारी या लगान ठीक समय पर न देने के कारण दंडस्वरूप जमींदार या असामी से वसूल किया जाय। बाकी वसूल होने का खर्च जो जमींदार या असामी को देना पड़े।

मुहा०—धौंस बाँधना = खर्च जिम्मे करना। खर्चा मढ़ना।

धौंसना—क्रि० स० [सं० दंवंसन, दशन] १. दबाना। दंड देना। दमन करना। धमकी देना। घुड़की देना। डराना। उ०—

अपने नृप को यहै सुनायो। ब्रजनारी बटपारिन हैं सब चुगली आपुहि जाय लगायो। राजा बड़े बात यह समझी तुम को हम पै धौंसि पठायो। फँसिहारिन कैसे तुम जानी तुम कहुं नाहिन प्रकट देखायो। ब्रजवनिता फँसिहारी जो सब महतारी काहे न बनायो। फंदा फाँसि धनुष बिष काहू सूर श्याम नहिं हमै बतायो।—सूर (शब्द०)। ३. मारना। पीटना।

धौंसपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौंस + पट्टी] भुलावा। झाँसा पट्टी। दम दिलासा।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धौंस पट्टी में आना = भुलावे में आना। बहकाने से कोई काम कर बैठना।

धौंसा—संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] १. बड़ा नगाड़ा। डंका। उ०—(क) दादुर दमामें झाँझ झिल्ली गरजनि धौंसा दामिनि मसाले देखि दुरे जगजीव से।—देव (शब्द०)। (ख) जरासंध सब असुर सेना ले धौंसा दे चला।—लल्लू (शब्द)। (ग) धुंकार धौंसन की बढ़ी हुंकार भूमिपतीन की।—गोपाल (शब्द०)। (घ) धौंसा लगे घहरान संख लगे हहरान छत्र लागे थहरान केतु लगे फहरान।—गोपाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बजवाना।—बजाना।

मुहा०—धौंसा देना या बजाना = चढ़ाई का डंका बजाना। चढ़ाई की घोषणा करना। उ०—जरासंध सब असुर सेना ले धौंसा दे चला।—लल्लू (शब्द०)।

२. सामर्थ्य। शक्ति। हौसला। बूता। उ०—उसका क्या धौंसा है जो इतना खर्च उठावे।

धौंसिया—संज्ञा पुं० [हिं० धौंसना] १. धौंस जमानेवाला। धौंस से काम चलानेवाला। २. झाँसा पट्टी देनेवाला। धोखेबाज। ३. धौंसेवाला। नगाड़ा बजानेवाला। ४ वह जो मालगुजारी के बाकीदारों से मालगुजारी वसूल करने का खर्च लेता है।

धौ—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक ऊँचा झाड़ या सदाबहार पेड़ जो हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक होता है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जंगलों में मिलता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अमरूद की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और छाल सफेद होती है जो चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसके फूल को रगमाज अन्य के रंग में मिलाकर लाल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे छीपी रंगों में मिलाकर कपड़ा छापते हैं। लकड़ी इसकी सफेद होती है और हल, मूसल, कुल्हाड़ी का बेट आदि बनाने के काम में आती है। इसका प्रयोग औषध में भी होता है और वैद्यक में यह चरपरा, कसैला, कफ-वात-नाशक, रुचिकारक और दीपन बतलाया गया है। वैद्य लोग इसका प्रयोग पांडुरोग प्रमेह, अर्श और वात रोग में करते हैं।

पर्या०—विशालवृक्ष। धुरंधर। गौर। पांडुर। नंदितरु। स्थिर। शुक्ल तरु। धवल। शकटाख्या।

धौकरा—संज्ञा पुं० [सं० धव] बाकली की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और मध्यप्रदेश में पाया जाता है।

विशेष—इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में आती है।

धौत[1]—वि० [सं०] १. धोया हुआ। साफ। जैसे, धौत वसन। धौत पाप इत्यादि। २. उजला। जैसे, धौत शिला। ३. नहाया हुआ। स्नात। उ०—हरि को विमल यश गावत गोपांगना। मणिमय आँगन नंदराय को बाल गोपाल तहाँ करैं रंगना। गिरि गिरि परत घुटुरुवनि टेकत खेलत हैं दोउ छगन मंगना। धूसरि धूरि धौत तनु मंडित मानि यशोदा लेत उछंगना।—सूर (शब्द०)।

धौत[2]—संज्ञा पुं० रूपा। चाँदी।

धौतकट—संज्ञा पुं० [सं०] मोटे कपड़े का थैला [को०]।

धौतकोपज—संज्ञा पुं० [सं०] माड़ी किया हुआ या स्वच्छ किया हुआ रेशम [को०]।

धौतकौशेय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धौतकोषज' [को०]।

धौतखंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० धौतखण्डी] मिश्री [को०]।

धौतय—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक [को०]।

धौतशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

धौतात्मा—वि० [सं० धौतात्मन्] जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई हो। पवित्रात्मा।

धौति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुद्धि। २. हठयोग की एक क्रिया जो शरीर को भीतर और बाहर से शुद्ध करने के लिये की जाती है।

विशेष—घेरंडसंहिता में इसका पूरा वर्णन है। उसमें धौति चार प्रकार की कही गई है—अंतर्धौति; दंतधौति; हृद्धौति और मूलशोधन। अंतर्धौति के भी चार भेद हैं—वातसार, वारिसार, वह्निसार, और बहिष्कृत। वातसार में मुँह को कौवे की चोंच की तरह निकालकर हवा खींचकर पेट में भरते हैं और उसे फिर मुँह से निकालते हैं। वारिसार में गले तक पानी पीकर अधोमार्ग से निकालते हैं। अग्निसार में साँस को रोककर और पेट को पचकाकर नाभि को सौ बार मेरुदंड (रीढ़) में लगाना पड़ता है। बहिष्कृत में कौवे की चोंच की तरह मुँह करके पेट में हवा भरते हैं और उसे चार दंड वहीं रखकर अधोमार्ग से निकालते हैं। इसके पीछे नाभि तक जल में खड़े होकर आँतों को बाहर निकालकर मल धोते हैं और फिर उन्हें उदर में स्थापित करते हैं। दंतधौति भी पाँच प्रकार की होती है—दंतमूल, जिह्वामूल, रंध्र, कर्णद्वार और कपालरंध्र। इनमें से जिह्वामूल की शुद्धि जीभ को खिमटी से खींचकर करते हैं। रंध्र धौति में नाक से पानी पीकर मुँह से और मुँह से सुड़ककर नाक से निकालना पड़ता है। इसी प्रकार और भी शुद्धियों को समझिए।

३. योग की एक क्रिया।

विशेष—इसमें दो अंगुल चौड़ी और आठ दस हाथ लंबी कपड़े की धज्जी मुँह से पेट के नीचे उतारते हैं, फिर पानी पीकर उसे धीरे धीरे बाहर निकालते हैं। इस क्रिया से आँतें शुद्ध हो जाती हैं।

४. योग की क्रिया में काम आनेवाली कपड़े की लंबी धज्जी।

धौती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'धौति' [को॰]।

धौतेय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेंधा नमक [को॰]।

धौम्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. एक ऋषि जो देवल के भाई और पांडवों के पुरोहित थे।

विशेष—ये उत्कोच नामक तीर्थ में रहते थे। चित्ररथ के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने इन्हें अपना पुरोहित बनाया था।

२. एक ऋषि जो महाभारत के अनुसार व्याघ्रपद नामक ऋषि के पुत्र और बड़े शिवभक्त थे।

विशेष—ये सतयुग में थे और बचपन में ही माँ से रुष्ट होकर शिव का तप करके अजर अमर और दिव्यज्ञान सपन्न हो गए थे।

३. एक ऋषि का नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे।

विशेष—इनके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामक तीन पुत्र थे।

४. एक ऋषि जो तारा रूप में पश्चिम दिशा में स्थित हैं।

विशेष—इनका नाम महाभारत में उषंगु, कवि और परिव्याध के साथ आया है।

धौम्र¹—वि॰ [सं॰] धुएँ के रंग का। धुमैला [को॰]।

धौम्र²—संज्ञा पुं॰ धूम्र वर्ण [को॰]।

धौर¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धौरा (=सफेद)] एक चिड़िया। सफेद परेवा।

धौर(पु)²—वि॰ [सं॰ धवल] श्वेत। सफेद। उ॰—हाड़ देखि के तजत तिय ज्यों कोली के कूप। त्यों ही धौरे केस लखि बुरो लगत नर रूप।—ब्रज॰ ग्रं॰, पु॰ ७८।

धौरहर(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धौराहर'। उ॰—नए धौरहर सुखद सुपासा। जनु घर पर दूसर कैलासा।—नंद॰ ग्रं॰, पु॰ ११९।

धौरहरिया(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'धौराहर'। उ॰—सैयाँ मोर सुनल धौरहरिया।—धरम॰, पु॰ ६३।

धौरा¹—वि॰ [सं॰ धवल] [वि॰ स्त्री॰ धौरी] श्वेत। सफेद। उजला। उ॰—धूम, श्याम, धवरे घन धाए। श्वेत धुजा बग पाँति दिखाए।—जायसी (शब्द॰)। (ख) धौरी धेनु बजावन कारन मधुरे बेनु बनावै।—सूर (शब्द॰)। (ग) आयो जौन तेरी धौरी धारा में धंसत जात तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।—पद्माकर (शब्द॰)।

धौरा²—संज्ञा पुं॰ १. धौ का पेड़। २. सफेद रंग का बैल। ३. एक पक्षी। एक प्रकार का पंडुक जो कुछ बड़ा और खुलते रंग का होता है। उ॰—धौरी पंडुक कहि पिय ठाऊँ। जो चित रोख न दूसर नाऊँ।—जायसी (शब्द॰)।

धौरा³—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'बाकली'।

धौरादित्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिवपुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

धौराहर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ धुर (=ऊपर) + घर] ऊँची अटारी। भवन का वह भाग जो खंभे की तरह बहुत ऊँचा गया हो और जिसपर चढ़ने के लिये भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा। बुर्ज। उ॰—(क) पदमावति धौराहर चढ़ी।—जायसी (शब्द॰)। (ख) राम जपु राम जपु राम जपु बावरे। घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।...जग नभ वाटिका रही है फलि फूलि रे। धुआँ कैसो धौराहर देखि तू न भूलि रे।—तुलसी (शब्द॰)। (ग) बौरे मन रहन अटल करि जाना। धन दारा सुत बंधु कुटुंब कुल निरखि निरखि बौरान। जीवन जन्म सपनों सो समुझि देखि अल्पमन माहीं। बादर छाहँ धूम धौराहर जैसे थिर न रहाहीं।—सूर (शब्द॰)।

धौरितक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] घोड़े की पाँच चालों में से एक।

धौरिय(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धौरेय] बैल। उ॰—नैनन कंधे धौरियन धरे नहीं धुर लाइ। कैसे मन को बोझ धरि घर लौं सकै चलाइ।—रसनिधि (शब्द॰)।

धौरिया†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धौरेय] दे॰ 'धौरेय'।

धौरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ धौरा] १. सफेद रंग की गाय। कपिला। उ॰—साँझ की कारी घटा घिरि आई महा झर सों बरसे भरि सावन। धौरिहु कारिहु आइ गई सु रम्हाइ कै धाइ कै लागी चुखावन।—देव (शब्द॰)। २. एक प्रकार की चिड़िया। उ॰—धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जो चित रोख न दूसर ठाऊँ।—जायसी (शब्द॰)।

धौरी²—वि॰ स्त्री॰ श्वेत। सफेद।

धौरी³—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'बाकली'।

धौरे—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'धोरे'।

धौरेय¹—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ धौरेयी] १. धुर खींचनेवाला। रथ आदि खींचनेवाला। २. भार या बोझ ले जाने योग्य (को॰)।

धौरेय²—संज्ञा पुं॰ १. वह बैल जो गाड़ी खींचता है। २. घोड़ा (को॰)। ३. बोझ ले जानेवाला जानवर (को॰)। ४. मुखिया। प्रधान। नेता (को॰)।

धौरेहरा(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'धौराहर'। उ॰—पलटू नर तन जात है घास के ऊपर सीत। धूआँ का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत।—पलटू॰, भा॰ १, पु॰ २२।

धौर्तक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूर्तता। बेईमानी। दुष्टता [को॰]।

धौर्तिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूर्तता [को॰]।

धौर्त्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूर्तता।

धौर्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धौर्य्य] घोड़े की एक चाल। धोरण।

धौल¹—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] १. हाथ के पंजे का भारी आघात जो सिर या पीठ पर पड़े। धप्पा। चाँटा। थप्पड़। उ॰—पुनि आवइ तो इक धौल लगै सब पद्धति दूर दुरै घट तें।—गोपाल (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—देना।—पड़ना।—मारना।—लगना।—लगाना।

यौ॰—धौल थप्पड़। धौल धप। धौल धक्का। धौल धप्पा।

मुहा॰—धौल कसना, या जमाना = चाँटा लगाना, थप्पड़ मारना। धौल खाना = चाँटा सहना। थप्पड़ की मार सहना।

२. हानि का आघात। नुकसान का धक्का। हानि। टोटा। जैसे,—बैठे बैठाए ५००) की धौल पड़ गई।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।—लगना।

धौल[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] १. धौर नाम की ईख जिसकी खेती कानपुर, बरेली आदि में होती है। २ ज्वार का हरा डंठल।

धौल[३]—संज्ञा पुं० [सं० धवल] धौ का पेड़। धौरा। बकली।

धौल[४]—वि० [सं० धवल] उजला। सफेद। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे। देखि मिटैं अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे। सोहै सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरे। मानो हरो तृन चारु चरै बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धौल धूत = गहरा धूर्त। पक्का चालबाज। उ०—ऊधो हम यह कैसे मानें। धन धौल लंपट जैसे पट हरि तैसे औरन जाने।—सूर (शब्द०)।

धौल[५]—संज्ञा पुं० [हिं० धौराहर] धरहरा। धौराहर। उ०—कंटक बनाए बेग राम ही को जायो पापी मेरो मन धुआँ को सो धौल नभ छायो है।—हनुमान (शब्द०)।

धौल(पु)[६]—संज्ञा पुं० [सं० धवल] हाथी। उ०—धौल मंदलिया बैलर बाबी।—कबीर ग्रं०, पृ० ९२।

धौलधक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धक्का] मारपीट। दंगा। ऊधम। उपद्रव।

धौलधक्का(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धक्का] आघात। चपेट। उ०—तुलसी जिन्हैं धाए धुकै धरनी धर, धौलधकान तें मेरु हले हैं।—तुलसी (शब्द०)।

धौलधक्का—संज्ञा पुं० [हिं० धौल+धक्का] आघात। चपेट।

धौलधप्पड़—संज्ञा पुं० [हिं० धौल + धप्पा] १. मारपीट। धक्का मुक्का। २. दंगा। उपद्रव। ऊधम।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

धौलधप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० धौल+धप्पा] दे० 'धौलधप्पड़'। उ०—धौलधप्पा उस सरापा नाज का शेवा नहीं। हम ही कर बैठे थे गालिब पेशदस्ती एक दिन।—गालिब०, पृ० १८५।

धौलहर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० धौराहर] धौराहर। उ०—कबिरा हरि की भक्ति बिनु धिक जीवन संसार। धूँआ का सा धौलहर जात न लागे बार।—कबीर (शब्द०)।

धौलहरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौरहर'।

धौलांजर—संज्ञा पुं० [सं० धवलाचल] एक पर्वत जो पंजाब के कांगड़ा जिले में है।

धौला[१]—वि० [सं० धवल] [वि० स्त्री० धौली] सफेद। उजला। श्वेत। उ०—दादू काले थे धौला भया।—दादू०, पृ० २०७।

धौला[२]—संज्ञा पुं० १. धौ का पेड़। धौरा। २. सफेद रंग।

धौल(पु)[३]—संज्ञा पुं० [सं० धवल] धवलता। श्वेतता। सफेदी। उ०—सहजो धौले आइया भजन लागे दाँत। तन गुंभल पड़ने लगी सुखन लागी आँत।—सहजो० पृ० २९।

धौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० धौल + आई (प्रत्य०)] सफेदी। उजलापन।

धौला खैर—संज्ञा पुं० [हिं० धौला+खैर] बबूल की जाति का एक पेड़ जिसकी छाल सफेद होती है। यह बंगाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारत में होता है।

धौलागिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] दे० 'धवलगिरि'।

धौलाधर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'धौराहर'। उ०—साठ कोठा धौलाधर नाऊँ। तीनो लोक मही तेहि ठाँऊँ।—घट०, पृ० ४६।

धौली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक बड़ा पेड़ जो जाड़े में पत्तियाँ झाड़ता है।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम और भूरी होती है तथा पालकी, खिलौने, खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी भीतर की छाल दवाओं में पड़ती है और चमड़ा सिझाने के काम में भी आती है। यह पेड़ पंजाब, अवध, मध्यप्रदेश तथा मद्रास में भी थोड़ा बहुत होता है।

धौली[२]—संज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] एक पर्वत जो उड़ीसा में भुवनेश्वर के दक्षिण में है।

विशेष—यहाँ अनेक प्राचीन मंदिर हैं। इसके शिखर पर महाराज अशोक के अनुशासन खुदे हैं।

ध्मांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० ध्माङ्क्ष] दे० 'ध्वांक्ष'।

ध्मांक्षजंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षजङ्घा] काकजंघा [को०]।

ध्मांक्षजंबु—संज्ञा पुं० [सं० ध्माङ्क्षजम्बु] काकजंबु [को०]।

ध्मांक्षतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षतुण्डी] एक प्रकार की लता। काकनासा [को०]।

ध्मांक्षदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षदन्ती] काकतुंडी [को०]।

ध्मांक्षनखी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षनखी] काकतुंडी [को०]।

ध्मांक्षनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षनाशिनी] हाऊबेर।

ध्मांक्षपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० ध्माङ्क्षपुष्ट] कोकिल [को०]।

ध्मांक्षवल्ली—संज्ञा स्त्री० [ध्माङ्क्षवल्ली] कौआठोठी। काकनासा।

ध्मांक्षादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षादनी] काकतुंडी।

ध्मांक्षाराति—संज्ञा पुं० [सं० ध्मांक्षाराति] उल्लू [को०]।

ध्मांक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षी] १. ककोलिका। शीतलचीनी। २. कौवे की मादा [को०]।

ध्मांक्षोली—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माङ्क्षोली] काकोली।

ध्माकार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

ध्मात—वि० [सं०] १. फुलाया हुआ। २. फूँककर बजाया हुआ। ३. उत्तेजित किया हुआ। उभारा हुआ। क्षुब्ध किया हुआ [को०]।

ध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] (फूँककर) बजाने की क्रिया [को०]।

ध्मापन—संज्ञा पुं० [सं०] फूँककर फुलाने की क्रिया [को०]।

ध्मापित—वि० [सं०] राख किया हुआ। राख में परिणत [को०]।

ध्यंम(पु)—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'धम'। उ०—नाचंत तेन भैरव सुथल धरनि ध्यंम धुज्जिय धसकि।—पृ० रा०, ६। ११३।

ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचार। चिंतन [को०]।

ध्यात—वि० [सं०] चिंतित। विचारा हुआ। ध्यान किया हुआ।

ध्यातव्य—वि० [सं०] १. ध्यान देने योग्य। विचारणीय। २. जिसपर ध्यान दिया जाय। ध्यान देने योग्य। विचारणीय। ३. ध्यान में लाने योग्य [को०]।

ध्याता—वि० [सं० ध्यातृ] [वि० स्त्री० ध्यातृ] १. ध्यान करनेवाला। २. विचार करनेवाला। उ०—ज्ञाता ज्ञेयउरु ज्ञान जो ध्याता धेयउरु ध्यान। द्रष्टा दृश्यरु दरश जो त्रिपुरी शब्दामान।—कबीर (शब्द०)।

ध्यात्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचार। मनन [को०]।

ध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना केवल मन में लाने की क्रिया या भाव। अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव। मानसिक प्रत्यक्ष। जैसे, किसी देवता का ध्यान करना, किसी प्रिय व्यक्ति का ध्यान करना। उ०—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू ?—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—ध्यान में डूबना या मग्न होना = कोई बात इतना मन में लाना कि और सब बातें भूल जायँ। ध्यान धरना = मन में स्थापित करना। स्वरूप आदि को मन में लाना। (किसी के) ध्यान में लगना = मन में लाकर मग्न होना। उ०—परसत पोंछत लखि रहत लगि कपोल के ध्यान। कर लै पिय पाटल विमल प्यारी पठए पान।—बिहारी (शब्द०)।

२. सोच विचार। चिंतन। मनन। जैसे,—आजकल तुम किस ध्यान में रहते हो। ३. भावना। प्रत्यय। विचार। ख्याल। जैसे,—(क) चलते समय तुम्हें यह ध्यान न हुआ कि धोती लेते चलें ?। (ख) मन में इस बात का ध्यान बना रहता है।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ध्यान आना = भावना होना। विचार उत्पन्न होना। ध्यान जमना = विचार स्थिर होना। खयाल बैठना। ध्यान बँधना = विचार का बराबर या बहुत देर तक बना रहना। लगातार खयाल बना रहना। जैसे,—उसे जिस बात का ध्यान बँध जाता है, वह उसके पीछे पड़ जाता है। ध्यान रखना = विचार बनाए रखना। न भूलना। ध्यान लगना = मन में विचार बराबर बना रहना। बराबर खयाल बना रहना। जैसे, मुझे तुम्हारा ध्यान बराबर लगा रहता है। उ०—ध्यान लगो मोहिं तोरा रे।—गीत (शब्द०)।

४. रूपों या भावों को भीतर लेने या उपस्थित करनेवाला अंतःकरण विधान। चित्त की ग्रहण वृत्ति। चित्त। मन। जैसे,—तुम्हारे ध्यान में यह बात कैसे आई कि मैंने तुम्हारे साथ ऐसा किया होगा।

क्रि० प्र०—में आना।—में लाना।

मुहा०—ध्यान में न लाना = (१) चिंता न करना। परवाह न करना। (२) न सोचना समझना। न विचारना।

५. चित्त का अकेले या इंद्रियों के सहित किसी विषय की ओर लक्ष्य जिससे उस विषय का ध्यान अंतःकरण में सबके ऊपर हो जाय। किसी के संबंध में अंतःकरण की जाग्रत स्थिति, चेतना की प्रवृत्ति। चेत। खयाल। जैसे,—(क) इसकी कारीगरी को ध्यान से देखो तब खूबी मालूम होगी। (ख) मेरा ध्यान दूसरी ओर था, फिर से कहिए। (ग) इधर ध्यान दो और सुनो।

मुहा०—ध्यान जमना = मन का एक ही विषय के ग्रहण में बराबर तत्पर रहना। खयाल इधर उधर न जाना। चित्त एकाग्र होना। ध्यान जाना = चित्त का किसी ओर प्रवृत्त होना। दृष्टि पड़ना और बोध होना। जैसे,—जब मेरा ध्यान उधर गया तब मैंने उसे टहलते देखा। ध्यान दिलाना = दूसरे का चित्त प्रवृत्त करना। खयाल कराना, दिखाना या जताना। चेत कराना। चेताना। सुझाना। ध्यान देना = (अपना) चित्त प्रवृत्त करना। चित्त प्रवृत्त करना। चित्त एकाग्र करना। खयाल करना। गौर करना। ध्यान पर चढ़ना = मन में स्थान कर लेना। चित्त से न हटना। अच्छे लगने या और किसी विशेषता के कारण न भूलना। जैसे,—तुम्हारे ध्यान पर तो वही चीज चढ़ी हुई है, और कोई चीज पसंद ही नहीं आती। ध्यान बँटना = चित्त का इधर भी रहना उधर भी। चित्त एकाग्र न रहना। खयाल इधर उधर होना। जैसे,—काम करते समय कोई बातचीत करता है तो ध्यान बँट जाता है। ध्यान बँटाना = चित्त को एकाग्र न रहने देना। खयाल इधर उधर ले जाना। ध्यान बँधना = किसी ओर चित्त स्थिर होना। चित्त एकाग्र होना। ध्यान लगना = चित्त प्रवृत्त होना। मन का विषय के ग्रहण में तत्पर होना। चित्त एकाग्र होना। जैसे,—उसका ध्यान लगे तब तो वह पढ़े। ध्यान लगाना = दे० 'ध्यान देना'।

६. बोध करनेवाली वृत्ति। समझ। बुद्धि।

मुहा०—ध्यान पर चढ़ना = दे० 'ध्यान में आना'। ध्यान में जमना = मन में बैठना। चित्त में निश्चित होना। विश्वास के रूप में स्थिर होना।

७. धारणा। स्मृति। याद।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ध्यान आना = स्मरण होना। याद होना। ध्यान दिलाना = स्मरण कराना। याद दिलाना। जैसे,—जब भूलोगे तब तुम्हें ध्यान दिला देंगे। ध्यान पर चढ़ाना = स्मृति में आना। स्मरण होना। याद होना। ध्यान रखना = स्मृति बनाए रखना। याद रखना। न भूलना। ध्यान रहना = स्मृति में न रहना। याद न रहना। विस्मृत होना। भूलना।

८. चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक विषय (जैसे, परमात्मचिंतन) पर स्थिर करने की क्रिया। चित्त को एकाग्र करके किसी ओर लगाने की क्रिया। जैसे, योगियों का ध्यान लगाना।

विशेष—योग के आठ अंगों में 'ध्यान' सातवाँ अंग है। यह धारणा और समाधि के बीच की अवस्था है। जब योगी प्रत्याहार द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर

लेता है तब उन्हें चारों ओर से हटाकर नाभि आदि स्थानों में से किसी एक में लगाता है। इसे धारणा कहते हैं। धारणा जब इस अवस्था को पहुँचती है कि धारणीय वस्तु के साथ चित्त के प्रत्यय की एकतानता हो जाती है तब उसे ध्यान कहते हैं। यही ध्यान जब चरमावस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता अर्थात् ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है। बौद्ध और जैन धर्मों मे भी ध्यान एक आवश्यक अंग है। जैन शास्त्र के अनुसार उत्तम संहनन युक्त चित्त के अवरोध का नाम ध्यान है।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—ध्यान छूटना = चित्त की एकाग्रता का नष्ट होना। चित्त इधर उधर हो जाना। उ०—रोवन लाग्यो सुत मृतक जान। रुदन करत छूटयो ऋषि ध्यान।—सूर (शब्द०)। ध्यान धरना = ध्यान लगाना। परमात्मचिंतन आदि के लिये चित्त को एकाग्र करके बैठना।

ध्यानगम्य—वि० [सं०] केवल ध्यान से प्राप्य [को०]।

ध्यानतत्पर—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानना(पु)—क्रि० स० [सं० ध्यान] ध्यान करना। (क्व०)। उ०—जिमु हरि भक्त सब जगत की यही रीति भयो हरि भक्ति को अनत पद ध्यानिये।—प्रियादास (शब्द०)।

ध्याननिम्न—वि० [सं०] ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानपर—वि० [सं०] ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमग्न—वि० [सं०] ध्यानलीन। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवी या देवता का ध्यान करने की विहित मुद्रा [को०]।

ध्यानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान अंग हो। २. तंत्र या इंद्रजाल की एक क्रिया जिसके द्वारा मन में किसी आकृति की कल्पना करके शत्रु का नाश किया जाता है।

ध्यानरत—वि० [सं०] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानरम्य—वि० [सं० ध्यान + रम्य] ध्यान करने में प्रिय। जिसका ध्यान करना अच्छा लगे। उ०—नहिं ज्ञाता नहिं ज्ञान गम्य नहि ध्याता नहि ध्यान रम्य।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८।

ध्यानलीन—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानशील—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानसाध्य—वि० [सं०] ध्यान से साधित या सिद्ध होनेवाला [को०]।

ध्यानस्थ—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानलीन [को०]।

ध्याना(पु)—क्रि० स० [सं० ध्यान] १. ध्यान करना। उ०—(क) हिंदू ध्यावहिं देहुरा मुसलमान मसीत। दास कबीर तहँ ध्यावहिं जहाँ दोनों परतीत।—कबीर (शब्द०)। (ख) भजु मन नंद नंदन चरन। परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन। सनक संकर जाहि ध्यावत निगम अबरन बरन। सेष सारद ऋषि सुनारद संत चिंतत चरन।—सूर (शब्द०)। २. स्मरण करना। सुमरना। उ०—हरि हरि हरि सुमरो सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।............ हरिहि मित्रविंदा चित ध्यायो। हरि तहाँ जाइ बिलंब न लायो।—सूर (शब्द०)।

ध्यानाभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान लगाने का अभ्यास। समाधि [को०]।

ध्यानावचार—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवता।

ध्यानावस्थित—वि० [सं० ध्यान + अवस्थित] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यान में मग्न। उ०—अथवा बैठे होंगे आप रहस्य शिखर पर। अमर लोक के, निभृत मौन में ध्यानावस्थित।—युगपथ, पृ० ११४।

ध्यानिक—वि० [सं०] ध्यानसाध्य। जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो। ध्यान से सिद्ध होने योग्य।

ध्यानिबुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बुद्ध।

विशेष—इनकी संख्या कोई ५ या ६ और कोई १० से भी अधिक बताते हैं।

ध्यानिबोधिसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ध्यानिबुद्ध' [को०]।

ध्यानी—वि० [सं० ध्यानिन्] १. ध्यानयुक्त। समाधिस्थ। २. ध्यान करनेवाला। जो ध्यान में रहता हो।

ध्याम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दमनक। दौना। २. गंधतृण।

ध्याम[2]—वि० १. श्यामल। साँवला। २. गंदा। मैला (को०)।

ध्यामक—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिस घास। रोहिस सोंधिया।

ध्यावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ध्याना[1]'। उ०—सदा निरभय राज नित सुख, सोई कैसव ध्यावनं।—केशव० अमी०, पृ० २।

ध्येय[1]—वि० [सं०] १. ध्यान करने योग्य। २. जिसका ध्यान किया जाय। जो ध्यान का विषय हो।

ध्येय[2]—संज्ञा पुं० १. ध्यान की वस्तु। ध्यान का विषय। २. लक्ष्य। ध्येय [को०]।

ध्रंगड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुर्ग'। उ०—कै जासी सुर ध्रंगड़े, कै आसो रणजीत—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ८।

ध्र—वि० [सं०] धारण करनेवाला।

विशेष—यह समासांत में प्रयुक्त होता है। जैसे, महीध्र, ऋध्र।

ध्रजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेगपूर्ण गति (वायु आदि की) [को०]।

ध्रतारा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्रुवतारा'। उ०—ध्रतारो कम छंडइ ठामि?—बी० रासो०, पृ० ६०।

ध्रम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० 'धर्म'। उ०—रहि जुगन बीच सुचित्त, ध्रम स्वामि धरि हरि मित्त।—प० रासो, पृ० ८०।

ध्रमसुत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसुत] दे० 'धर्मसुत'। उ०—एकादस सै पंचदह विक्रम जिमि ध्रमसुत्त। त्रतिय साक प्रथिराज को लिख्यौ विप्र गुन गुत्त।—पृ० रा०, १। ३९५।

ध्रवना(पु)—वि० स० [सं० ध्रै + प्रापय्] तृप्त करना। उ०—धन मुधरी पुहमी ध्रवै, दुसह निवार दुकाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५३।

ध्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख।

ध्राजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेगपूर्ण गति। २. प्रवृत्ति। ३. आँधी। तूफान [को०]।

ध्रोह—संज्ञा स्त्री० [?] ध्वनि। आवाज। धाह। उ०—सखी अमीणो साहिबो सुणे नगारा ध्रोह।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६।

ध्रुअ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ध्रुव'। उ०—ध्रुअ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १।२६।

ध्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधि। भाग्य। २. अधोगति। कदाचार [को०]।

ध्रुपद—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवपद] एक गीत जिसके चार तुक होते हैं—अस्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। कोई मिलातुक नामक इसका एक पाँचवाँ तुक भी मानते हैं। इसके द्वारा देवताओं की लीला, राजाओं के यश तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग रागिनियों से युक्त गाया जाता है।

विशेष—इसके गाने के लिये स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यकता नहीं। इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है, तथापि यह विस्तृत स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला मालूम होता है। किसी किसी ध्रुपद में अस्थायी और अंतरा दो ही पद होते हैं। ध्रुपद कानड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। इस राग को संस्कृत में ध्रुवक कहते हैं। संगीतदामोदर के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार का होता है—जयत, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुतल, कमल, सानंद, चंद्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कदर्प, जयमंगल, तिलक और ललित। इनमें से जयंत के पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक अक्षर अधिक होता जाता है; इस प्रकार ललित में सब २६ अक्षर होते हैं। छह पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम और चार का अधम होता है।

ध्रुव१—वि० [सं०] १. सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला। इधर उधर न हटनेवाला। स्थिर। अचल। २. सदा एक ही अवस्था में रहनेवाला। नित्य। ३. निश्चित। दृढ़। ठीक। पक्का। जैसे,—उनका आना ध्रुव है।

ध्रुव२—संज्ञा पुं० १. आकाश। २. शंकु। कील। ३. पर्वत। ४. स्थाणु। खंभा। थून। ५. वट। बरगद। ६. आठ वसुओं में से एक। ७. ध्रुवक। ध्रुपद। ८. एक यज्ञपात्र। ९. खरारि नामक पक्षी। १०. विष्णु। ११. हर। १२. फलित ज्योतिष में एक शुभ योग जिसमें उत्पन्न बालक बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान् और प्रसिद्ध होता है। १३. ध्रुवतारा। १४. नाक का अगला भाग। १५. गाँठ। १६. पुराणों के अनुसार राजा उत्तानपाद के एक पुत्र जिनकी माता का नाम सुनीति था।

विशेष—राजा उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थीं; सुरुचि और सुनीति। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को बहुत चाहते थे। एक दिन राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे इसी बीच में ध्रुव खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे और राजा की गोद में बैठ गए। इसपर उनकी विमाता सुरुचि ने उन्हें अवज्ञा के साथ वहाँ से उठा दिया। ध्रुव इस अपमान को सह न सके; और घर से निकलकर तप करने चले गए। विष्णु भगवान् उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें वर दिया कि 'तुम सब लोकों और ग्रहों नक्षत्रों के ऊपर उनके आधार स्वरूप होकर अचल भाव से स्थित रहोगे और जिस स्थान पर तुम रहोगे वह ध्रुव लोक कहलावेगा। इसके उपरांत ध्रुव ने घर आकर पिता से राज्य प्राप्त किया और शिशुमार की कन्या भ्रमि से विवाह किया। इला नाम की इनकी एक और पत्नी थी। भ्रमि के गर्भ से कल्प और वत्सर तथा इला के गर्भ से उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार इनके सौतेले भाई उत्तम को यक्षों ने मार डाला इसलिये इन्हें उनसे युद्ध करना पड़ा जिसे पितामह मनु ने शांत किया। अंत में छत्तीस हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णु के दिए हुए ध्रुवलोक में चले गए।

१७. शरीर की भौंरी।

विशेष—वक्षस्थल, मस्तक, रंध्र, उपरंध्र, भाल और अपान इन स्थानों की भौरियाँ ध्रुव कहलाती हैं। (शब्दार्थचिंतामणि)।

१८. भूगोल विद्या में पृथ्वी का अक्ष देश। पृथ्वी के वे दोनों सिरे जिससे होकर अक्षरेखा गई हुई मानी जाती है।

विशेष—सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी लट्टू की तरह घूमती हुई करती है। एक दिन रात में उसका इस प्रकार का घूमना एक बार हो जाता है। जिस प्रकार लट्टू के बीचोबीच एक कील गई होती है जिसपर वह घूमता है उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भकेंद्र से गई हुई एक अक्षरेखा मानी गई है। यह अक्षरेखा जिन दो सिरों पर निकली हुई मानी गई है उन्हें 'ध्रुव' कहते हैं। ध्रुव दो हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या कुमेरु। इन स्थानों से २३½ अंश पर पृथ्वी के तल पर एक एक वृत्त माने गए हैं जिन्हें उत्तर और दक्षिण शीतकटिबंध कहते हैं। ध्रुवों और इन वृत्तों के बीच के प्रदेश अत्यंत ठंडे हैं। उनमें समुद्र आदि का जल सदा जमा रहता है। ध्रुव प्रदेश में दिन रात २४ घंटों का नहीं होता, वर्ष भर का होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तब तक उत्तर ध्रुव पर दिन और दक्षिण ध्रुव पर रात और जब तक दक्षिणायन रहते हैं तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और उत्तर ध्रुव पर रात रहती है। अर्थात् मोटे हिसाब से कहा जा सकता है कि वहाँ छह महीने की रात और छह महीने का दिन होता है। इसी प्रकार वहाँ संध्या और उषा काल भी लंबा होता है। वहाँ सूर्य और चंद्रमा पूर्व से पश्चिम जाते हुए नहीं मालूम होते बल्कि चारों ओर कोल्हू के बैल की तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं। ध्रुव प्रदेश में उषा काल और संध्या काल की ललाई क्षितिज के ऊपर दोनों दिन तक घूमती दिखाई पड़ती है। यही तक नहीं, ग्रह-नक्षत्र-युक्त राशिचक्र भी ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखाई पड़ता है।

शब्द की गति ध्रुव प्रदेश में बहुत तेज होती है, मीलों पर होनेवाला शब्द ऐसा जान पड़ता है कि पास ही हुआ है। इस भूभाग में सबसे मनोहर मेरुज्योति है जो चित्र विचित्र और नाना वर्णों के आलोक के रूप में कुछ काल तक दिखाई देती है।

१९. फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रगण जिसमें उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तर भाद्रपद और रोहिणी है। २०. रगण का अठारहवाँ भेद जिसमें पहले एक लघु, फिर एक गुरु और फिर तीन लघु होते हैं। २१. तालु का एक रोग जिसमें ललाई और सूजन आ जाती है। २२. सोमरस का वह भाग जो प्रातःकाल से सायंकाल तक बिना किसी देवता को अर्पित हुए रखा रहे।

ध्रुवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थाणु। थून। खंभा। २. ध्रुपद नामक गीत। ३. ध्रुपद की टेक (को०)। ४. नक्षत्र की दूरी।

विशेष—मीन राशि के शेष से जिस नक्षत्र का योग तारा जितनी दूर पर रहता है उतने को उस नक्षत्र का ध्रुवक कहते हैं।

ध्रुवका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुपद।

ध्रुवकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु तारा।

विशेष—इस प्रकार के केतुओं का न तो आकार नियत है, न वर्ण या प्रमाण, यहाँ तक कि उनकी गति भी नियत या नियमित नहीं होती। देखने में वे स्निग्ध होते हैं और फलित ज्योतिष में इनके तीन भेद माने गए हैं, दिव्य, आंतरिक्ष और भौम। इनका फल भी अनियत है कभी अच्छा, कभी बुरा, कभी सम।

ध्रुवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृढ़ या अच्युत स्थिति [को०]।

ध्रुवचरण—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रताल के बारह भेदों में से एक भेद।

ध्रुवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थिरता। अचलता। उ०—किस सकथ बल से मानव तेरी ध्रुवता को गाते, हो आर्थी, प्रत्याशी वे उसको है शीश नवाते।—हत्याम्, पृष्ठ ७४। २. दृढ़ता। पक्कापन। ३. निश्चय।

ध्रुवतारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ध्रुवतारा' [को०]।

ध्रुवतारा—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव + तारक, हिं० तारा] वह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है इधर उधर नहीं होता है।

विशेष—यह तारा बहुत चमकीला नहीं है और सप्तर्षि के सिरे पर के दो तारों की सीध में उत्तर की ओर कुछ दूर पर दिखाई पड़ता है। इसकी पहचान यही है कि यह अपना स्थान नहीं बदलता। सारा राशिचक्र इसके किनारे फिरता हुआ जान पड़ता है और यह अपने स्थान पर अचल रहता है। रात के प्रत्येक पहर में उठ उठकर इसके साथ सप्तर्षि को ही देखने से इसका अनुभव हो सकता है। जिस प्रकार सप्तर्षि में सात तारे हैं उसी प्रकार जिस शिशुमार नामक तारकपुंज के अंतर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातों में ध्रुव पहला और सबसे उज्वल है। ध्रुव तारा सदा एक ही नहीं रहता। पृथ्वी के अक्ष या मेरु से जिस तारे का व्यवधान सबसे कम होता है अर्थात् पृथ्वी के अक्षबिंदु की सीध से जो तारा सबसे कम हटकर होता है वही ध्रुवतारा होता है। आजकल जो ध्रुवतारा है वह मेरु या अक्षबिंदु से १½ अंश पर है। अयनवृत्त के चारों ओर नाडीमंडल के मेरु की पीछे छोड़ता हुआ उसकी सीध से बहुत हट जायगा और तब अभिजित् नामक नक्षत्र ध्रुवतारा होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले थूबन नामक तारा ध्रुवतारा था। वर्तमान ध्रुव का व्यवधानांतर आजकल मेरु से १½ अंश है पर सन् १७८५ ई० में २ अंश २ कला था और दो हजार वर्ष पहले १२ अंश था।

भारतवासियों को ध्रुव का परिचय अत्यंत प्राचीन काल से है। विवाह के वैदिक मंत्र में ध्रुवतारा का नाम आता है। भारतीय ज्योतिर्विदों के मतानुसार दो ध्रुवतारे हैं—एक उत्तर ध्रुव की सीध में, दूसरा दक्षिण ध्रुव की सीध में।

ध्रुवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवता [को०]।

ध्रुवदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तर्षिमंडल। २. कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के संस्कार के अंतर्गत एक कृत्य जिसमें वर वधू को मंत्र पढ़कर ध्रुवतारा दिखाया जाता है।

ध्रुवधार्य—वि० [सं० ध्रुव + धार्य] निश्चित रूप से धारण करने योग्य। उ०—इस रसकलस में भी ध्रुवधार्य प्राचीन काल के आदर्श उपस्थित कर .... सफल प्रयास किया है।—रसक०, पृ० ५।

ध्रुवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो दुहते समय चुपचाप खड़ी रहे।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवनन्द] नंद के एक भाई का नाम।

ध्रुवना(पु)—क्रि० स० [हिं० ध्रुवा] बरसना। उ०—पुट्ठे पाहरण हंस पनेरू ध्रुवे चखां जलधारा।—रघु० रू०, पृ० १३६।

ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुवक। ध्रुपद।

ध्रुवमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिसके द्वारा दिशाओं का ज्ञान होता है। कुतुबनुमा (नवीन)।

ध्रुवरत्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मातृका जो कुमार या कार्तिकेय की अनुचरी है।

ध्रुवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक लोक जो सत्यलोक के अंतर्गत है और जिसमें ध्रुव स्थित हैं।

ध्रुवसंधि—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवसन्धि] सूर्यवंशीय राजा सुसंधि के पुत्र (रामायण)।

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञपात्र जो वैकंड की लकड़ी का बनता है। २. मूर्वा। मरोड़फली। ३. शालपर्णी। सरिवन। ४. ध्रुपदगीत। ५. साध्वी स्त्री। सती स्त्री। ६. दोहनकाल में स्थिर रहनेवाली गाय (को०)। ७. प्रत्यंचा। धनुष की डोरी (को०)। ८. संगीत का एक ताल जिसमें मात्रा का निश्चय करतल की ध्वनि से होता है (को०)। ९. ऊर्ध्व स्थिति (को०)।

ध्रुवाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

ध्रुवाधिकरण—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव+अधिकरण] भूमिकर का अधिकारी ।—प्रा० भा०, पृ० ४४५ ।

ध्रुववार्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ घोड़ों की भौंरी जो ललाट, केश, रंध्र, उपरंध्र, वक्ष इत्यादि में होती है । २. वह घोड़ा जिसके ऐसी भौंरियाँ होती हैं ।

ध्रुवि—वि० [सं०] ध्रुव । अचल । अटल । निश्चित (को०) ।

ध्रुवीय—वि० [सं० ध्रुव] १. ध्रुव संबंधित । २. ध्रुव प्रदेश का (को०)

ध्रू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] ध्रुव । उ०—फिरि ध्रू प्रहलाद बिभीषन से मन धारि कै नाथ यो भीर करी ।—नट०, पृ० ३१ ।

ध्रूव(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ध्रुव' । उ०- दिव्ये सु नयन पुहु करि प्रसिद्ध । कियो पाप इन ध्रूव करि ।—पृ० रा०, १।५८२ ।

ध्रोह(पु)—स्त्री० पुं० [हिं०] दे० 'द्रोह' । उ०—जाल पसारया सगला ध्रोह ।—प्राण०, पृ० ३ ।

ध्रौव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्रुवत्व । ध्रुवता २. निश्चयत्व । ३. स्थायित्व (को०) ।

ध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनाश । नाश । क्षय । हानि ।

विशेष—न्याय और वैशेषिक में 'ध्वंस' एक अभाव माना गया है । पर सत्कार्यवादी सांख्य और वेदांत ध्वंस का अभाव नहीं मानते केवल तिरोभाव मानते हैं । वे वस्तु का नाश नहीं मानते; उसका अवस्थांतर मानते हैं ।

२. भवन या इमारत का ढहना या गिरना (को०) ।

ध्वंसक—वि० [सं०] नाश करनेवाला ।

ध्वंसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ध्वंसनीय, ध्वंसित, ध्वस्त] १. नाश करने की क्रिया । २. नाश होने का भाव । क्षय । विनाश । तबाही ।

ध्वंसावशेष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वंस+अवशेष] ध्वंस से बचे हुए भाग । खंडहर ।

ध्वंसित—वि० [सं०] १. विनाशित । नष्ट किया हुआ । २. अलग किया हुआ । हटाया हुआ (को०) ।

ध्वंसी[1]—वि० [सं० ध्वंसिन्] १. नाश करनेवाला । विनाशक । २. नश्वर । नष्ट हो जानेवाला (को०) ।

ध्वंसी[2]—संज्ञा पुं० पहाड़ी पीलू का पेड़ ।

ध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिह्न । निशान । २. वह लंबा या ऊँचा डंडा जिसे किसी बात का चिह्न प्रकट करने के लिये खड़ा करते हैं या जिसे समारोह के साथ लेकर चलते हैं । बाँस, लोहे, लकड़ी आदि की लंबी छड़ जिसे सेना की चढ़ाई या और किसी तैयारी के समय साथ लेकर चलते हैं और जिसके सिरे पर कोई चिह्न बना रहता है, या पताका बँधी रहती है । निशान । झंडा ।

विशेष—राजाओं की सेना का चिह्नस्वरूप जो लंबा दंड होता है वह ध्वज (निशान) कहलाता है । यह दो प्रकार का होता है—सपताक और निष्पताक । ध्वजदंड बकुल, पलाश, कदंब आदि कई लकड़ियों का होता है । ध्वजा परिमाणभेद से आठ प्रकार की होती है—जया, विजया, भीमा, चपला, वैजयंतिका, दीर्घा, विशाला और लोला । जया पाँच हाथ की होती है, विजया छह हाथ की, इसी प्रकार एक एक हाथ बढ़ता जाता है । ध्वज में जो चौखूँटा या तिकोना कपड़ा बँधा होता है उसे पताका कहते हैं । पताका कई वर्णों की होती है और उनमें चित्र आदि भी बने रहते हैं । जिस पताका में हाथी, सिंह आदि बने हों वह जयंती, जिसमें द्रुम, मोर आदि बने हों वह सुमंगला कहलाती है; इसी प्रकार और भी समझिए । (युक्तिकल्पतरु) ।

३. ध्वजा लेकर चलनेवाला आदमी । शौंडिक ।

विशेष—मनु ने शौंडिक को अतिशय नीच लिखा है ।

४ खाट की पट्टी । ५. लिंग । पुरुषेंद्रिय ।

यौ०—ध्वजभंग ।

६. दर्प । गर्व । घमंड । ७ वह घर जिसकी स्थिति पूर्व की ओर हो । ८. हुदहुदी का निशान । ९. मदिरा का व्यवसायी । कलाल (को०) ।

ध्वजगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें झंडा रखा जाय (को०) ।

ध्वजग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस (रामायण) ।

ध्वजदंड—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज+दंड] ध्वजा का डंडा । उ०- वह ध्वजदंड बना यह तिनका, सून पथ का एक सहारा ।—इत्यलम्, पृ० १८७ ।

ध्वजद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] ताल । ताड़ का पेड़ ।

ध्वजनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज+नी (प्रत्य०)] सेना । उ०—प्रतनी, ध्वजनी, वाहिनी, चमू, बरूथिन सेन ।—नंद० ग्रं०, पृ० ८८ ।

ध्वजपट—संज्ञा पुं० [सं०] झंडा (को०) ।

ध्वजपात—संज्ञा पुं० [सं०] क्लीबता । नपुंसकता (को०) ।

ध्वजप्रहरण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु (को०) ।

ध्वजभंग—संज्ञा पुं० [सं० ध्वजभङ्ग] एक रोग जिसमें पुरुष को स्त्रीसंभोग की शक्ति नहीं रह जाती । क्लीबता । नपुंसकता ।

विशेष—इस रोग में पुरुषेंद्रिय की पेशियाँ और नाड़ियाँ शिथिल पड़ जाती हैं । चरक आदि आयुर्वेद के आचार्यों के मतानुसार यह रोग अम्ल, क्षार आदि के अधिक भोजन से, दुष्ट योनि-गमन से, क्षत आदि लगने से, वीर्य के प्रतिरोध से तथा ऐसे ही और कारणों से होता है । भावप्रकाश में लिखा है कि संयोग के समय भय, शोक, क्रोध आदि का संचार होने से अनभिप्रेता या द्वेष रखनेवाली स्त्री के साथ गमन करने से मानस क्लैब्य उत्पन्न होता है । यह रोग अधिकतर अधिक शुक्रक्षय और इंद्रियचालन से उत्पन्न होता है ।

ध्वजमूल—संज्ञा पुं० [सं०] शुंगोचर की सीमा (को०) ।

ध्वजयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वजा का डंडा (को०) ।

ध्वजवान्—वि० [सं० ध्वजवत्] [वि० स्त्री० ध्वजवती] १. ध्वजवाला । जो ध्वजा या पताका लिए हो । २. चिह्नवाला । चिह्नयुक्त । ३. जो (ब्राह्मण) अन्य ब्राह्मण की हत्या करके प्राय-

प्रायश्चित्त के लिये उसकी खोपड़ी लेकर भिक्षा माँगता हुआ तीर्थों में घूमे (स्मृति) । ४. शौंडिक । कलवार ।

ध्वजांशुक – संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजपट [को०] ।

ध्वजा —संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] १. पताका । झंडा । निशान । उ०— (क) ध्वजा फरक्कै शून्य में बाजे अनहद तूर । तकिया है मैदान में पहुँचेगे कोहनूर ।—कबीर (शब्द०) । (ख) करि कपि कटक चले लंका को छिन में बाँध्यो सेत । उतरि गए पहुँचे लंका पै विजय ध्वजा संकेत ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—दे० 'ध्वज' ।

मुहा०—ध्वजा फहराना = कीर्ति प्राप्त करना । यशस्वी बनना । उ०—श्वासा मार तार जोरिग्राना । अधर अमान ध्वजा फहराना ।—कबीर सा०, पृ० १५३८ ।

२. एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है एक मलखंभ पर की दूसरी चौरंगी । मलखंभ पर यह कसरत तौल के ही समान की जाती है । केवल विशेष इतना ही करना पड़ता है कि इसमें मलखंभ को हाथ से लपेटकर उसकी एक बगल में सारा शरीर सीधा दंडाकर तौलना पड़ता है । इसे संस्कृत में 'ध्वज' कहते हैं । चौरंगी में हाथ पाँव खूँटों से बाँध खड़े रखे जाते हैं ।

३. छंदःशास्त्रानुसार ठगण का पहला भेद जिसमें पहले लघु फिर गुरु आता है ।

ध्वजादि गणना –संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार की गणना जिससे प्रश्न के फल कहे जाते हैं ।

विशेष—इसमें नौ कोठों का एक ध्वजाकार चक्र बनाया जाता है । इनमें से पहले घर में प्रश्न रहता है, फिर आगे यथाक्रम ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांक्ष रहते हैं । प्रश्नकर्ता को किसी फल का नाम लेना पड़ता है, फिर फल के आदि वर्ण के अनुसार उसका वर्ग निश्चय करके ज्योतिषी राशि ग्रहादि द्वारा फल बतलाता है । 'ध्वज' के कोठे में स्वर, धूम में कवर्ग, सिंह में तवर्ग, श्वान में टवर्ग, वृष में तवर्ग, खर में पवर्ग, गज में अंतस्थ, ध्वांक्ष में श ष स ह समझना चाहिए ।

ध्वजारोपण —संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजा स्थापित करना । झंडा गाड़ना [को०] ।

ध्वजारोहण –संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वजा स्थापित करना । झंडा गाड़ना [को०] । २. झंडा फहराना । ध्वजोत्तोलन ।

ध्वजाहृत – संज्ञा पुं० [सं०] १. स्मृतियों के अनुसार पंद्रह प्रकार के दासों में से एक । वह दास जो लड़ाई में जीतकर पकड़ा गया हो । २. वह धन जो लड़ाई में शत्रु को जीतने पर मिले ।

विशेष—यह धन अविभाज्य कहा गया है ।

ध्वजिक—वि० [सं०] धर्मध्वजी । पाखंडी ।

ध्वजिनी – संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक । वह सीमा या हद जिसपर निशान के लिये पेड़ आदि लगे हों । २. सेना का एक भेद जिसका परिमाण कुछ लोग वाहिनी का दूना मानते हैं ।

ध्वजी[1] —वि० [सं० ध्वजिन्] [वि० स्त्री० ध्वजिनी] १. ध्वजवाला । जो ध्वजा पताका लिए हो । २. चिह्नवाला । चिह्नयुक्त ।

ध्वजी[2] —संज्ञा पुं० १. ब्राह्मण । २. पर्वत । ३. रथ । संग्राम । ४. साँप । घोड़ा । मयूर । मोर । ७. सीपी । ८. ध्वजा लेकर चलनेवाला । शौंडिक । कलवार ।

ध्वजोत्तोलन—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज + उत्तोलन] झंडा फहराना । झंडोत्तोलन [को०] । ध्वजारोहण ।

ध्वजोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के संमान में उत्सव । इंद्रध्वज महोत्सव [को०] ।

ध्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि । २. गुंजार । भनभनाहट ।

ध्वनमोदी—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनमोदिन्] भौंरा [को०] ।

ध्वनन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । ध्वनि करना । उ०—शब्द विश्वव्यापी सत्ता है । जिसका व्यापार ध्वनन है ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ११२ ।

ध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रवणेंद्रिय में उत्पन्न संवेदन अथवा वह विषय जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय में हो । शब्द । नाद । आवाज । जैसे, मृदंग की ध्वनि, कंठ की ध्वनि ।

विशेष—भाषापरिच्छेद के अनुसार श्रवण के विषय मात्र को ध्वनि कहते हैं, चाहे वह वर्णात्मक हो, चाहे अवर्णात्मक । दे० 'शब्द' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ध्वनि उठना = शब्द उत्पन्न होना या फैलना ।

२ शब्द का स्फोट । शब्द का फूटना । आवाज की गूँज । नाद का तार । लय । जैसे, मृदंग की ध्वनि, गीत की ध्वनि ।

विशेष—शरीरक भाष्य में ध्वनि उसी को कहा है जो दूर से ऐसा सुना जाय कि वर्ण वर्ण अलग और साफ न मालूम हो । महाभाष्यकार ने भी शब्द के स्फोट को ही ध्वनि कहा है । पाणिनि दर्शन में वर्णों का वाचकत्व न मानकर स्फोट ही के बल से अर्थ की प्रतिपत्ति मानी गई है । वर्णों द्वारा जो स्फुटित या प्रकट हो उसको स्फोट कहते हैं, वह वर्णातिरिक्त है । जैसे, 'कमल' कहने से अर्थ की जो प्रतीति होती है वह 'क' 'म' और 'ल' इन वर्णों के द्वारा नहीं, इनके उच्चारण से उत्पन्न स्फोट द्वारा होती है । वह स्फोट नित्य है ।

३. वह काव्य या रचना जिसमें शब्द और उसके साक्षात् अर्थ से व्यंग्य में विशेषता या चमत्कार हो । वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो ।

विशेष—जिस काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ की अपेक्षा प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेषता होती है वह 'ध्वनि' कहलाता है । वह उत्तम माना गया है । वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ से अतिरिक्त जो अर्थ सूचित होता है वह व्यंजना द्वारा । जैसे, छूट्यो सबै कुच के तट चंदन, नैन निरंजन दूर बहाई । रोम उठे तब बात

लखातऽऽ साफ भई अधरान ललाई। पीर हितून की जानति तू न, अरी ! वच बोलत झूठ सदाई। न्हायबे बापी गई इतसों, तिहि पापी के पास गई न तहाँई।—(शब्द०)। अपनी दूती से नायिका कहती है कि तेरी पान की ललाई, चंदन, अंजन आदि छूटे हुए हैं, तू बावली मे नहाने गई, उधर ही से जरा उस पापी के यहाँ नहीं गई. यहाँ यहाँ चंदन, अंजन आदि का छूटना नायक के साथ समागम प्रकट करता है। 'पापी' शब्द भी 'तू समागम करने गई थी' यह बात व्यंग्य से प्रकट करता है। इस पद्य मे व्यंग्य ही प्रधान है—इसी में चमत्कार है।

४. आशय। गूढ़ अर्थ। मतलब। जैसे,—उनकी बातों से यह ध्वनि निकलती थी कि बिना गए रुपया नहीं मिल सकता।

ध्वनिक—वि० [सं० ध्वनि] ध्वनि से संबंधित [को०]।

ध्वनिकार—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक आनंदवर्धनाचार्य। इनका ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' है। उ०—फिर भी ध्वनिकार ने कहा है कि कवि को एकमात्र रस में सावधानी के साथ प्रयत्नशील होना वांछनीय है।—बी० श० महा०, पृ० ३।

ध्वनिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + काव्य] वह काव्य जिसमें व्यंग्य की प्रधानता हो। व्यंग्यप्रधान काव्य [को०]।

ध्वनिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनंदवर्धनाचार्य [को०]।

ध्वनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कान।

ध्वनित[1]—वि० [सं०] १. शब्दित। २. व्यंजित। प्रकट किया हुआ। ३. बजाया हुआ। वादित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वनित[2]—संज्ञा पुं० बाजा। जैसे मृदंग आदि।

ध्वनिनाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वीणा। २. वेणु।

ध्वनिवाद—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + वाद] ध्वनि को काव्य का मुख्य गुण मानने का सिद्धांत।

ध्वनिसिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + सिद्धान्त] दे० 'ध्वनि ३'।

ध्वन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंग्यार्थ। २. एक प्राचीन राजा जो लक्ष्मण का पुत्र था। इसका नाम ऋग्वेद में आया है। ३. ध्वनित होने योग्य (को०)। ४. ध्वनित होनेवाला (को०)।

ध्वनिविकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय या दुःखजन्य स्वरपरिवर्तन। २. काकु [को०]।

ध्वन्यमान—वि० [सं०] ध्वनित होनेवाला। साहित्य शास्त्रानुसार जिसकी ध्वनि निकले। उ०—आचार्यों ने कुछ दिन के बाद तीसरा भेद किया जिसे वे ध्वन्यमान अर्थ कहने लगे।—स० शास्त्र, पृ० ४।

ध्वन्यात्मक—वि० [सं०] १. ध्वनि स्वरूप या ध्वनिमय। २. (काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो। उ०—अतएव ऐसे शब्द को ध्वन्यात्मक कहते हैं क्योंकि वह ध्वनि पर ही अवलंबित है।—रस० क०, पृ० २।

ध्वन्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं० ध्वन्यार्थ] वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ से न होकर केवल ध्वनि या व्यंजना से हो।

ध्वस्त—वि० [सं०] १. च्युत। गलित। गिरा पड़ा। २. खंडित। टूटा फूटा। भग्न। ३. नष्ट। भ्रष्ट। ४. परास्त। पराजित। उ०—जय जयकार किया मुनियों ने, दस्युराज यों ध्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७९।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वरित—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश।

ध्वांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वाङ्क्ष] १. काक। कौआ। २. मछली खानेवाली एक चिड़िया। ३. तक्षक। ४. भिक्षुक।

ध्वांत—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्त] १. अंधकार। अँधेरा। उ०—वह पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देखता पड़ा क्लांत। फैला था चारों ओर ध्वांत।—कामायनी, पृ० १६०। २. एक नरक का नाम। तमिस्र। ३. एक मरुत् का नाम।

ध्वांतचर—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तचर] निशाचर। राक्षस। उ०—जैति मंगलागार संसार भारापहर वानराकार विग्रह पुरारी। राम रोषानल ज्वालमालामिषध्वांतचर सलभ संहारकारी।—तुलसी (शब्द०)।

ध्वांतवित्त—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तवित्त] खद्योत। जुगनू।

ध्वांतशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तशत्रु] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. चंद्रमा। ४. श्वेत वर्ण। ५. श्योनाक। छोटा।

ध्वांतशात्रव—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तशात्रव] दे० 'ध्वांतशत्रु' [को०]।

ध्वांताराति—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्ताराति] दे० 'ध्वांतशत्रु' [को०]।

ध्वांतोन्मेष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तोन्मेष] जुगनू। खद्योत [को०]।

ध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। २. गुंजन। भनभन (को०)।

न

न—एक व्यंजन जो हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का बीसवाँ और तवर्ग का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारणस्थान दंत है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न और जीभ के अगले भाग का दाँतों को जड़ से स्पर्श होता है; और बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण है। काव्य आदि में इस वर्ण का विन्यास सुखद होता है।

नंकना(पु)—क्रि० [सं० लङ्घन, हिं० नाँघना] दे० 'नाँघना'। उ०—पढ़त वेद बानीन सह सब विद्या अवगाहि। घने जने नंकत गयो जहाँ तँवरपति आहि।—पृ० रासो, पृ० ४।

नंखना—क्रि० स० [सं० नङ्क्ष, प्रा० णंख] फेंकना। उ०—पारस मनि नृप नंखियो, करि कंचन के ग्राम। अंतरीछ उड़ि के गयो, नरवाहन के धाम।—पृ० रासो, पृ० ३४।

नंग¹—संज्ञा पुं० [सं० नग्न] १. नग्नता। नंगापन। नंगे होने का भाव। २. गुप्त अंग। जैसे,—(क) उसने अपना नंग दिखा दिया। (ख) मैंने उसका नंग देखा।

नंग²—वि० बदमाश और बेहया। लुच्चा। नंगा। जैसे,—उससे कौन बोले, वह तो बड़ा नंग है।

नंग³—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लज्जा। शर्म। २. दोष [को०]।

यौ०—नंगे इंसानियत=मानवता को कलंकित करनेवाला कार्य। नंगे खानदान=कुलांगार। नंगोनाम, नंगोनामूस=(१) लज्जा। गैरत। इस्मत। (२) मर्यादा। प्रतिष्ठा।

नंगधड़ंग—वि० [हिं० नंगा+धड़ंग (अनु०) अथवा धड़+अंग (=ऊपरी शरीर और गुप्तांग)] बिलकुल नंगा। जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र न हो। दिगम्बर। विवस्त्र। जैसे, आवाज सुनकर वह नंगधड़ंग बाहर निकल आया।

नंगमुनंगा—वि० [हिं०] दे० 'नंगधड़ंग'।

नंगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'लंगर'।

नंगरबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर+वाला] समुद्र में चलनेवाली वह साधारण नाव जो तूफान के समय किसी रक्षित स्थान पर लंगर डालकर ठहर जाती हो। (लश०)।

नंगा¹—वि० [सं० नग्न] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। जो कोई कपड़ा न पहने हो। दिगंबर। विवस्त्र। वस्त्रहीन।

यौ०—नंगा उघाड़ा=जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। विवस्त्र। अलिफ नंगा या नंगा मादरजाद=बिलकुल नंगा।

२. निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म। ३. लुच्चा। पाजी।

यौ०—नंगालुच्चा=बदमाश और पाजी।

४. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो। जो किसी तरह ढँका न हो। खुला हुआ। जैसे, नंगा सिर (जिस सिर पर पगड़ी या टोपी आदि न हो), नंगे पैर (जिन पैरों में जूता आदि न हो), नंगी तलवार (म्यान से बाहर निकली हुई तलवार), नंगी पीठ (जिस घोड़े आदि की पीठ पर जीन आदि न हो)।

नंगा²—संज्ञा पुं० [हिं०] १. शिव। महादेव। २ काश्मीर की सीमा पर एक बहुत बड़ा पर्वत।

नंगाझोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नंगाझोली'।

नंगाझोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० नंगा+झोरना (=किसी चीज को गिराने के लिये हिलाना)] किसी के पहने हुए कपड़े आदि को उतरवाकर अथवा यों ही अच्छी तरह देखना जिसमें उसकी छिपाई हुई चीज का पता लग जाय। कपड़ों की तलाशी। जामातलाशी। जैसे,—इस लड़के ने जरूर पेंसिल चुराई है, इसकी नंगाझोली लो।

विशेष—जब यह संदेह होता है कि किसी मनुष्य ने अपने कपड़ों में कोई चीज छिपाई है, तब उसकी नंगाझोली ली जाती है।

क्रि० प्र०—लेना।—देना।

नंगाबुंगा—वि० [हिं० नंगा+बुंगा (अनु०)] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। २. जिसके ऊपर कोई आवरण न हो।

नंगाबुच्चा, नंगाबूचा—वि० [हिं० नंगा+बूचा (=खाली)] जिसके पास कुछ भी न हो। बहुत दरिद्र।

नंगा मादरजाद—वि० [हिं० नंगा+फ़ा० मादरजाद] ऐसा नंगा जैसा माँ के पेट से निकलने के समय (बालक) होता है। जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो। बिलकुल नंगा। अलिफ नंगा।

नंगामुनंगा—संज्ञा पुं० [हिं० नंगा+मुनंगा (अनु०)] बिलकुल नंगा।

नंगालुच्चा—वि० [हिं० नंगा+लुच्चा] नीच और दुष्ट। बदमाश।

नंचना(पु)—क्रि० अ० [सं० नृत्य, प्रा० नच्च, नंच+हिं० ना नाचना] नृत्य करना। नाचना। उ०—करि मन कोप जंग को नचे।—ह० रासो०, पृ० ७४।

नंदंत¹—संज्ञा पुं० [सं० नन्दन्त] १. बेटा। २. राजा। ३. मित्र।

नंदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दन्ती] पुत्री। बेटी [को०]।

नंद—संज्ञा पुं० [सं० नन्द] १. आनंद। हर्ष। २. सच्चिदानंद परमेश्वर। ३. पुराणानुसार नौ निधियों में से एक। ४. स्वामी कार्तिक के एक अनुचर का नाम। ५. एक नाग का नाम। ६. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ७. वसुदेव के एक पुत्र का नाम जो मदिरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ८ क्रौंच द्वीप के एक वर्ष पर्वत का नाम। ९. विष्णु। १०. मेढक। ११. भागवत के अनुसार यज्ञेश्वर (परमात्मा) के एक अनुचर का नाम। १२. एक प्रकार का मृदंग। १३. चार प्रकार की वेणुओं या बाँसुरियों में से एक।

विशेष—वह ग्यारह अंगुल की होती और उत्तम समझी जाती है। इसके देवता ६६ माने जाते है।

१. एक राग का नाम।

विशेष—इसे कोई कोई मालकोस राग का पुत्र मानते हैं।

१५. पिंगल में ठगण के दूसरे भेद का नाम।

विशेष—इसमें एक गुरु और एक लघु होता है—(ऽ।) और जिसे ताल तथा ग्वाल भी कहते है। जैसे, राम। लाल। तान।

१६. लड़का। बेटा। पुत्र। १७ गोकुल के गोपों के मुखिया।

विशेष—इनके यहाँ श्रीकृष्ण को उनके जन्म के समय, वसुदेव जाकर रख आए थे। श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था इन्हीं के यहाँ बीती थी। इनकी स्त्री का नाम यशोदा था। कंस के भय से ये पीछे श्रीकृष्ण को लेकर वृंदावन जा रहे थे। जब कृष्ण ने मथुरा में कंस को मारा था तब वे भी उनके साथ ही थे। इसके उपरांत जब कृष्ण मथुरा से वृंदावन नहीं लौटे तब ये बहुत दुःखी हुए थे। इसके बहुत दिन बाद जब हंस और डिंभक का दमन करने के लिये वे गोवर्धन गए थे तब इन्होंने उन्हें बहुत रोकना चाहा था, पर कृष्ण ने नहीं माना। भागवत में लिखा है कि एक बार ये एकादशी का व्रत करके रात के समय यमुना में स्नान करने गए थे। उस समय वरुण के दूत इन्हें पकड़कर वरुण की सभा में ले गए। उस समय कृष्ण ने वहाँ

जाकर इन्हें छुड़ाया। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी लिखा है कि नंद पूर्व जन्म में दक्षप्रजापति थे और यशोदा उनकी स्त्री थी। जब यज्ञ में सती ने शिव जी की निंदा सुनकर अपने प्राण त्याग दिए तब दक्ष दुःखी होकर अपनी स्त्री सहित तपस्या करने के लिये चले गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सती ने प्रकट होकर उनसे कहा था कि द्वापर में फिर एक बार मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगी पर उस समय न मैं अधिक समय तक तुम्हारे पास रहूँगी और न तुम मुझे पहचान सकोगे। तदनुसार सती ने कन्यारूप में नंद के यहाँ यशोदा के गर्भ से जन्म लिया था। श्रीकृष्ण को नंद के यहाँ रखकर वसुदेव इसी कन्या को अपने साथ ले गए थे जिसे पीछे से कंस ने जमीन पर पटक दिया था और जो जमीन पर गिरते ही आकाश में चली गई थी।

१८. महात्मा बुद्ध के भाई जो उनकी विमाता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। बुद्ध ने बोधिज्ञान प्राप्त करने के उपरांत कपिलवस्तु में आकर इन्हें दीक्षित किया था।

विशेष—जब ये बुद्ध के साथ जा रहे थे तब कई बार अपनी स्त्री भद्रा को देखने के लिये ये लौटना चाहते थे, पर बुद्ध ने इन्हें लौटने नहीं दिया था। बुद्ध ने इन्हें भिक्षु बनाकर सांसारिक बंधनों से छुड़ाकर स्वर्ग और नरक के दृश्य दिखलाए थे।

१९. मगध देश के कई राजाओं का नाम जिनका राज्य विक्रम संवत् से २५० वर्ष पहले तक रहा और जिनके पीछे मौर्य वंश का राज्य हुआ। दे० 'नंदवंश'।

नंदक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दक] १. श्रीकृष्ण का खंग। २. मेंढक। ३. स्कंद का एक अनुचर। ४. धृतराष्ट्र का एक पुत्र। ५. एक नाग का नाम। ६. राजा नंद जिनके यहाँ कृष्ण बाल्यावस्था में रहते थे। ७ प्रसन्नता।

नंदक[2]—वि० १. आनंददायक। २. कुलपालक। ३ संतोष देनेवाला।

नंदकि—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दकि] पीपल।

नंदकिशोर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकिशोर] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदकी—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकिन्] विष्णु।

नंदकुँवर—संज्ञा पुं० [सं० नन्द+हिं० कुँवर] दे० 'नंदकुमार'।

नंदकुमार—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकुमार] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदगाँव—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] वृंदावन का एक गाँव।

विशेष—यह मथुरा से चौदह कोस पर है और यहाँ नंद गोप रहते थे।

नंदगोपिता—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दगोपिता] रास्ना या रायसन नामक ओषधि।

नंदग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] १. नंदगाँव। २. नंदिग्राम। अयोध्या के समीप का एक गाँव जहाँ बैठकर राम के वनवास काल में भरत ने तपस्या की थी। उ०—अवधि में पूरन धरम रहै। नंदिग्राम में नहीं थोरि हैं ये ही अरथ कहैं।—देवस्वामी (शब्द०)।

नंददू—संज्ञा पुं० [सं० नन्दद] आनंद देनेवाला, पुत्र। बेटा। लड़का।

नंददुलारोⓅ—संज्ञा पुं० [सं० नन्द+हिं० दुलारो (=दुलारा)] कृष्ण। उ०—निकसो नंददुलारो आज बनि ठनि ब्रज खेलन फाग।—नंद० ग्रं०, ३६५।

नंदनंद—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्द] नंद के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र।

नंदनंदन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नन्द के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनन्दिनी] नंद की कन्या, दुर्गा। योगमाया। वसुदेव कंस के भय से श्रीकृष्ण को नंद के घर रखकर इसी कन्या को साथ ले गए थे, और जब कंस ने इसे पटका था तब यह उड़कर आकाश में चली गई थी।

विशेष—दे० 'नंद' १७।

नंदनंदनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] दे० 'नंदनंदन'। उ०—नंददास दनंदन सुं होन लागे नयनों पलक की ओट मानु री बीते जुग चार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५५।

नंदन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र के उपवन का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह सब स्थानों से सुंदर माना जाता है और जब मनुष्यों का भोगकाल पूरा हो जाता है तब वे इसी वन में सुखपूर्वक बिहार करने के लिये भेज दिए जाते हैं।

२. कामाख्या देश का एक पर्वत।

विशेष—पुराणानुसार जिसपर कामाख्या देवी की सेवा के लिये इंद्र सदा रहते हैं। इस पर्वत पर जाकर लोग इंद्र की पूजा करते हैं।

३. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। ४. एक प्रकार का विष। ५. महादेव। शिव। ६ विष्णु। ७. मेंढक। ८. वास्तु शास्त्र के अनुसार वह वह मकान जो षटकोण हो, जिसका विस्तार बत्तीस हाथ हो और जिसमें सोलह शृंग हों। ९. केसर। १०. चंदन। ११. लड़का। बेटा। जैसे, नंदनंदन। १२. एक प्रकार का अस्त्र। उ०—ये सब अस्त्र देव धारत नित जोन तुम्हें सिखवाऊँ। महा अस्त्र विद्याधर लीजै पुनि नंदन जेहि नाऊँ।—रघुराज (शब्द०)। १३. मेघ। बादल। १४. एक वर्णवृत्त जिसमें प्रत्येक चरण में क्रम से नगण, जगण, भगण, जगण और दो रगण (।।। ।ऽ। ऽ।। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ।ऽ) होते हैं। यथा—भजत संतोष सो सुमति जीन मोह के जाल को। १५. साठ संवत्सरों में से छब्बीसवाँ संवत्सर।

विशेष—कहते हैं कि इस संवत्सर में अन्न खूब होता है, गौएँ खूब दूध देती हैं और लोग नीरोग रहते हैं। १६. आनंद (को०)।

नंदन[2]—वि० आनंद देनेवाला। प्रसन्न करनेवाला।

नंदनक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनक] बेटा। पुत्र।

नंदनकानन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनकानन] इंद्र का उपवन।

नंदनज—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनज] १. हरिचंदन। २. श्रीकृष्ण।

नंदनदाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नंदनंदन। श्रीकृष्ण। उ०—उपमा कहै ना नटनागर वो नंदनदा, ताने ससि अंक बीच भौम सरसैदा है।—नट०, पृ० ६३।

नंदनद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनद्रुम] नंदन वन का वृक्ष (को०)।

नंदनप्रधान—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनप्रधान] नंदनवन के स्वामी, इंद्र ।

नंदनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनमाला] पुराणानुसार एक प्रकार की माला जो श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय थी ।

नंदनवन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनवन] १. इंद्र की वाटिका । २. कपास ।

नंदना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० नन्दन] आनंदित होना । प्रसन्न होना ।

नंदना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दना] पुत्री । लड़की । बेटी ।

नंदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नंदिनी' ।

नंदपाल—संज्ञा पुं० [सं० नन्दपाल] वरुण ।

नंदपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दपुत्री] दे० 'नंदनंदिनी' ।

नंदप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं० नन्दप्रयाग] बदरिकाश्रम के निकट का एक तीर्थ जो सात प्रयागों में से है ।

नंदरानी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्द+हिं० रानी] नंद की स्त्री यशोदा ।

नंदरूख—संज्ञा पुं० [हिं० नन्द + रूख] अश्वत्थ की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खाने के लिये दी जाती हैं ।

नंदलाल—संज्ञा पुं० [सं० नन्द+हिं० लाल (=बेटा)] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण ।

नंदवंश—संज्ञा पुं० [सं० नन्दवंश] मगध का एक विख्यात राजवंश जिसका अंतिम राजा उस समय सिंहासन पर था जिस समय सिकंदर ने ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व पंजाब पर चढ़ाई की थी ।

विशेष—इस वंश का उल्लेख विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मांडपुराण आदि में मिलता है । विष्णुपुराण में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से महानंदि का पुत्र महापद्मनंद होगा जो समस्त क्षत्रियों का विनाश करके पृथिवी का एकछत्र भोग करेगा । उसके सुमालि आदि आठ पुत्र होंगे जो क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से नंदों का नाश होगा और मौर्य लोग राजा होंगे । इसी प्रकार का वर्णन भागवत में भी है । ब्रह्मांडपुराण में कुछ विशेष ब्योरा है । उसमें लिखा है कि राजा विंध्यसार (कदाचित् बिंबसार जो गौतमबुद्ध के समय तक था और जिसका पुत्र अजातशत्रु बुद्ध का शिष्य हुआ था) २८ वर्ष तक, उसका पुत्र अजातशत्रु २५ वर्ष तक, फिर उदायी ३३ वर्ष तक, नंदिवर्धन ४२ वर्ष तक और महानंदि ४० वर्ष तक राज्य करेंगे । शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न महानंदि का पुत्र क्षत्रियों का नाश करनेवाला नंद होगा । वह और उसके आठ पुत्र सारे हिसाब से १०० वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कौटिल्य के हाथ से सब मारे जायँगे ।

कथासरित्सागर में भी नंद का उपाख्यान एक रोचक कहानी के रूप में इस प्रकार दिया गया है । इंद्रदत्त, व्याडि और वररुचि अर्थोपार्जन के लिये नंद की सभा में पहुँचे । पर उनके पहुँचने के कुछ पहले नंद मर गए । इंद्रदत्त ने योगबल से नंद के मृत शरीर में प्रवेश किया जिससे नंद जी उठे । व्याडि इंद्रदत्त के शरीर की रक्षा करने लगे । राजा के जी उठने पर मंत्रि शकटार को कुछ संदेह हुआ और उसने आज्ञा दे दी कि नगर में जितने मुर्दे हों सब तुरंत जला दिए जायँ । इस प्रकार इंद्रदत्त का पहला शरीर जला दिया गया और उनकी आत्मा नंद के शरीर में ही रह गई । नंद देहधारी इंद्रदत्त योगानंद नाम से प्रसिद्ध हुए । योगानंद ने ब्रह्महत्या का अपराध लगाकर शकटार को सपरिवार कैद कर लिया और अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा । शकटार के सब पुत्र तो यंत्रणा से मर गए, पर शकटार ने प्रतिकार की इच्छा से अपनी प्राणरक्षा की । वररुचि योगानंद के मंत्री हुए । उनके कहने से नंद ने शकटार को छोड़ दिया । धीरे धीरे नंद अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा । एक दिन उसने वररुचि पर क्रुद्ध होकर उन्हें मार डालने की आज्ञा दी । शकटार ने उन्हें छिपा रखा । एक दिन राजा फिर वररुचि के लिये व्याकुल हुए । इसपर शकटार ने उन्हें लाकर उपस्थित किया । पर वररुचि ने उदास हो वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया ।

शकटार यद्यपि नंद के मंत्री रहे तथापि उसके विनाश का उपाय सोचते रहे । एक दिन उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण कुशों को उखाड़ उखाड़कर गड्ढा खोद रहा है । पूछने पर उसने कहा, 'ये कुश मेरे पैर में चुभे थे, इससे उन्हें बिना समूल नष्ट किए न रहूँगा ।' वह ब्राह्मण कौटिल्य चाणक्य था । शकटार ने चाणक्य को अपने कार्यसाधन के लिये उपयोगी समझकर उसे नंद के यहाँ जाने के लिये श्राद्ध का निमंत्रण दे दिया । चाणक्य नंद के प्रासाद में पहुँचे और प्रधान आसन पर बैठ गए । नंद को यह सब खबर नहीं थी; उसने वह आसन दूसरे के लिये रखा था । चाणक्य को उसपर बैठा देख उसने उठ जाने का इशारा किया । इसपर चाणक्य ने अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा—'सात दिन में नंद की मृत्यु होगी' । शकटार ने चाणक्य को घर ले आकर राजा के विरुद्ध और भी उत्तेजित किया । अंत में अभिचार क्रिया करके चाणक्य ने सात दिन में नंद को मार डाला । इसके उपरांत योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त को मारकर उसने नंद के पुत्र चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और आप मंत्री का पद ग्रहण किया ।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी नंद का वृत्तांत मिलता है पर भेद इतना है कि पुराणों में तो महापद्मनंद को महानंदि का पुत्र माना है, चाहे शूद्रा के गर्भ से सही; पर जैन और बौद्ध ग्रंथों में उसे सर्वथा नीच कुल का और अकस्मात् आकर राजसिंहासन पर बैठनेवाला लिखा है । कथासरित्सागर में चंद्रगुप्त को जो नंद का पुत्र लिखा है उसे इतिहासज्ञ ठीक नहीं मानते । मौर्यवंश एक दूसरा राजवंश था । कोई कोई इतिहासज्ञ 'नवनंद' शब्द का अर्थ नए नंद करते हैं जो शूद्र थे । उनके अनुसार नंदवंश शुद्ध क्षत्रियवंश था और 'नवनंद' शूद्र थे ।

नंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दा] १. दुर्गा । २. गौरी । ३. एक प्रकार की कामधेनु । ४. एक मातृका का बालग्रह ।

विशेष—इसके विषय में यह माना जाता है कि इसके कारण

बालक अपने जीवन के पहले दिन, पहले मास और पहले वर्ष में ज्वर से पीड़ित होकर बहुत रोता और अचेत हो जाता है।

५. शुभ। उत्तम। किसी पक्ष की प्रतिपदा षष्ठी और एकादशी तिथि। उ०—परिवा, छट्ठि एकादसि नंदा। दुइजि, सत्तमी द्वादसि भंदा।—जायसी (शब्द०)। ६ संपत्ति। संपदा। ७. एक प्रकार की संक्रांति। ८. दूर्व की स्त्री।

विशेष—यहाँ 'प्रसन्नता' से तात्पर्य है।

९. संगीत में एक मूर्च्छना का नाम। १०. एक अप्सरा का नाम। ११ विभीषण की कन्या का नाम। १२ वर्तमान अवसर्पिणी के दसवें अर्हत् की माता का नाम (जैन)। १३ पुराणानुसार कुबेर की पुरी के निकट बहनेवाली नदी का नाम। १४. मिट्टी का घड़ा या झंझर आदि जिसमें पानी रखते हैं। १५. पुराणानुसार शाकद्वीप की एक नदी का नाम। १६. पति की बहन। ननद। १७. एक तीर्थ का नाम। विशेष दे० 'नंदातीर्थ'। १८ बरवै छंद का एक नाम। १९. आनंद देनेवाली।

नंदातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दातीर्थ] एक नदी और तीर्थ जो हेमकूट पर्वत पर है।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि यहाँ सदा बहुत तेज हवा बहती रहती है, जोर से पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुँच नहीं सकते, और सदा वेदध्वनि सुनाई पड़ती है पर कोई वेद पढ़नेवाला दिखाई नहीं देता। सवेरे और संध्या यहाँ अग्निदेव के दर्शन होते हैं। यहाँ बैठकर यदि कोई तपस्या करना चाहे तो उसे मक्खियाँ काटने लगती हैं। युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ एक बार इस तीर्थ में गए थे।

नंदात्मज—संज्ञा पुं० [सं० नन्दात्मज] श्रीकृष्ण।

नंदात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दात्मजा] योगमाया।

नंदादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दादेवी] दक्षिणी हिमालय की एक चोटी।

विशेष—यह २५००० फुट से अधिक ऊँची है और यमुनोत्तरी के पूर्व है।

नंदापुराण—संज्ञा पुं० [सं० नन्दापुराण] एक उपपुराण जिसमें नंदामाहात्म्य दिया गया है।

विशेष—इसके वक्ता कार्तिक हैं। मत्स्य और शिवपुराण के मत से यह तीसरा उपपुराण है।

नंदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० नन्दार्थ] शाकद्वीपी ब्राह्मणों का एक संप्रदाय।

नंदालय—संज्ञा पुं० [सं० नन्दालय] नंद का भवन। उ०—सो प्रेमलता की आसक्ति बाललीला में बहोत हैं। ताते ये नंदालय में अष्ट प्रहर रहति हैं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृष्ठ १०८।

नंदाश्रम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दाश्रम] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

नंदि—संज्ञा पुं० [सं० नन्दि] १. आनंद। २. वह जो आनंदमय हो। ३. सच्चिदानंद परमेश्वर। ४ शिव के द्वारपाल बैल का नाम। नंदिकेश्वर। ५. शिव। ६. विष्णु (को०)। ७. द्यूत कर्म (को०)। ८. वह जो नाटक में प्रस्तावना या भरतवाक्य का पाठ करता है (को०)। ९. समृद्धि। संपन्नता (को०)।

नंदिक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिक] १. नंदीवृक्ष। तुन का पेड़। २. धव का पेड़। ३. आनंद। ४. जल का छोटा कलश (को०)। ५. शिव का एक गण। नंदी (को०)।

नंदिकर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकर] शिव।

नंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दिका] १. मिट्टी की नाँद जिसमें पानी रखते हैं। २. नंदन वन जहाँ इंद्र क्रीड़ा करते हैं। ३. किसी पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि। ४. हँसमुख स्त्री।

नंदिकावर्त—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकावर्त] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का मणि।

नंदिकुंड—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकुण्ड] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ।

नंदिकेश—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकेश] १. शिव के द्वारपाल, नंदिकेश्वर। २. शिव (को०)।

नंदिकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिकेश्वर] १. शिव के द्वारपाल बैल का नाम। २. एक उपपुराण जो नंदी का कहा हुआ और चौथा उपपुराण माना जाता है। इसे नंदीश्वर और नंदिपुराण भी कहते हैं। ३. शिव (को०)।

नंदिग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिग्राम] अयोध्या से चार कोस पर एक गाँव।

विशेष—यहाँ भरत ने राम के वियोग में चौदह वर्ष तक तप किया था।

नंदिघोष—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिघोष] १. अर्जुन के रथ का नाम जिसे उन्हें अग्निदेव ने प्रसन्न होकर दिया था। उ०—सप्रसुन गांडिव धनु लीन्हों। नंदिघोष रथ हुतभुक दीन्हों।—सबल (शब्द०)। २. बंदीजनों की घोषणा। ३. किसी प्रकार की शुभ या मंगल घोषणा।

नंदित¹—वि० [सं० नन्दित] आनंदित। सुखी। आनंदयुक्त। प्रसन्न। उ०—सुखी समीर नव गंधित, बह चली छंद से नंदित। उग आया सलिल कमल सित, कोमल सुगंध नभ छाया।—गीतगुंज, पृ० ६०।

नंदित(पु)²—वि० [हिं० नादना] बजता हुआ।

क्रि० प्र०—करना। उ०—नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर। जानति हौं, नंदित करी यह दिसि नंदकिसोर।—बिहारी र०, दो० ४६९।—होना।

नंदितरु—संज्ञा पुं० [सं० नन्दितरु] धव का पेड़।

नंदितूर्य—संज्ञा पुं० [सं० नन्दितूर्य] प्राचीनकाल का एक प्रकार का बाजा जो उत्सव या आनंद के क्षणों में बजाया जाता था।

नंदिन¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल और आसाम में पाई जाती है।

विशेष—यह तीन फुट तक लंबी होती है और तौल में आध मन तक की होती है।

नंदिन²(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नन्द (=बेटा)] लड़की। बेटी। पुत्री।

नंदिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नन्दिनी] १. कन्या। पुत्री। लड़की। बेटी। २. रेणुका नामक गंधद्रव्य। ३. जटामासी। बालछड़। ४. उमा। ५. गंगा का एक नाम। ६. ननद। पति की बहन। ७. दुर्गा का एक नाम। ८. तेरह अक्षरों के एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसमें एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत में एक गुरु होता है। इसे कलहंस और सिंहनाद भी कहते हैं। जैसे,—सजि सों सिंगार कलहंस गती सों। चलि आइ राम छवि मंडप दीसी। ९. वशिष्ठ की कामधेनु का नाम जो सुरभि की कन्या थी।

विशेष—राजा दिलीप ने इसी गौ को वन में चराते समय सिंह से उसकी रक्षा की थी और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया था। महाभारत में लिखा है कि द्यो नामक वसु अपनी स्त्री के कहने से इसे वशिष्ठ के आश्रम से चुरा लाया था जिसके कारण वसिष्ठ के शाप से उसे भीष्म बनकर इस पृथिवी पर जन्म लेना पड़ा था। जब विश्वामित्र बहुत से लोगों को अपने साथ लेकर एक बार वसिष्ठ के यहाँ गए थे तब वसिष्ठ ने इसी गौ से सब कुछ लेकर सब लोगों का सत्कार किया था। यह विशेषता देखकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से यह गौ माँगी; पर जब उन्होंने इसे नहीं दिया तब विश्वामित्र उसे जबरदस्ती ले चले। रास्ते में इसके चिल्लाने से इसके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में से म्लेच्छों और यवनों की बहुत सी सेनाएँ निकल पड़ीं जिन्होंने विश्वामित्र को परास्त किया और इसे उनके हाथ से छुड़ाया।

१०. पत्नी। स्त्री। जोरू। ११. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। १२. व्याडि मुनि की माता का नाम।

यौ॰—नंदिनीतनय, नंदिनीसुत = व्याडि मुनि।

नंदिपटह—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिपटह] तूर्य (को॰)।

नंदिपुराण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिपुराण] देवी पुराण का एक उपपुराण (को॰)।

नंदिमुख¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिमुख] १. एक प्रकार का पक्षी। २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल। ३. शिव का एक नाम।

नंदिमुख(पु)²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नान्दीमुख] दे॰ 'नांदीमुख'। उ॰—किय श्राद्ध नंदिमुख वेद वृत्ति। सो जातकर्म किन्नौ सु सुद्ध।—हम्मीर॰, पृ॰ ३२।

नंदिमुखी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नन्दिमुखी] १. तंद्रा। २. भावप्रकाश के अनुसार वह पक्षी जिसकी चोंच का ऊपरी भाग बहुत कड़ा और गोल हो।

विशेष—ऐसे पक्षी का मांस पित्तनाशक, चिकना, भारी, मीठा, और वायु, कफ, बल तथा शुक्रवर्धक माना जाता है।

नंदिरुद्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिरुद्र] शिव का एक नाम।

नंदिवर्धन¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिवर्धन] १. शिव। २. पुत्र। बेटा। ३. मित्र। दोस्त। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का विमान। ५. वास्तु शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का मंदिर।

विशेष—प्राचीन वास्तु शास्त्र के अनुसार वह मंदिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियों से युक्त हो और जिसमें २० शृंग हों।

६. मगध के राजा बिंबसार के लड़के अजातशत्रु के परपोते का नाम। ७. शुक्ल पक्ष की द्वितीया या पूर्णिमा तिथि (को॰)।

नंदिवर्धन²—वि॰ आनंद बढ़ानेवाला। जो आनंद बढ़ावे।

नंदिवारलक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिवारलक] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है।

नंदिषेण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिषेण] कुमार के एक अनुचर का नाम।

नंदी¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिन्] १. धव का पेड़। २. गर्दभांड वृक्ष। पाखर का पेड़। ३. वट वृक्ष। बरगद का पेड़। ४. तुन का पेड़। ५. शिव के एक प्रकार के गण।

विशेष—ये तीन प्रकार के होते हैं—कनकनंदी, गिरिनंदी, और शिवनंदी।

६. शिव का द्वारपाल, बैल।

विशेष—कहते हैं कि पूर्वजन्म में यह शालंकायण मुनि का पुत्र था।

७. शिव के नाम पर दागकर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल। ८. वह बैल जिसके शरीर पर गाँठें हों।

विशेष—ऐसा बैल खेती के काम का नहीं होता। इसे फकीर लोग लेकर घुमाते और लोगों को उसके दर्शन कराके पैसे माँगते हैं।

९. विष्णु। १०. जैनों के एक श्रुतिपारग। ११. उड़द (डिं॰)। १२. बंगाल की कायस्थ, तेली, नाई आदि कई जातियों की उपाधि।

नंदी²—वि॰ आनंदयुक्त। जो प्रसन्न हो।

नंदीगण—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नंदी + सं॰ गण] १. शिव के द्वारपाल, बैल। २. दागकर उत्सर्ग किया हुआ बैल। साँड़।

नंदीघंटा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नंदी + घंटा] बैलों के गले में बाँधने का बिना डाँड़ी का घंटा।

नंदीपति—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दीपति] शिव। महादेव।

नंदीमुख(पु)¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नान्दीमुखी] दे॰ 'नांदीमुख'।

नंदीमुख(पु)²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दिमुख] दे॰ 'नंदिमुख'।

नंदीवृक्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दीवृक्ष] १. तुन का पेड़। २. महासिंगी।

नंदीश—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दीश] १. शिव। २. तालों के साठ भेदों में से एक (संगीत)। ३. नंदी।

नंदीश्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नन्दीश्वर] १. शिव। २. नंदीश ताल। ३. वृंदावन का एक तीर्थ। ४. शिव का एक गण।

विशेष—यह पुराणानुसार तोटक का अवतार माना जाता है। कहते हैं कि यह वामन है, इसका रंग काला है और सिर मुँड़ा हुआ तथा मुँह बंदर का सा है।

नंदेऊ(पु)† —संज्ञा पुं० [हिं० नंदोई] दे० 'नंदोई'।

नंदोई—संज्ञा पुं० [हिं० ननद+ग्रोई (प्रत्य०)] ननद का पति। पति की बहन का पति। पति का बहनोई।

नंदोसी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नंदोई'।

नंद्यावर्त—संज्ञा पुं० [सं० नन्द्यावर्त्त] १. एक प्रकार की इमारत। ऐसी इमारत के पश्चिम ग्रोर द्वार नहीं रहना चाहिए। २. तगर का पेड़।

नंबर—वि० [ग्रं०] १. संख्या। ग्रंक। ग्रदद। जैसे,—उसपर ग्रंगरेजी में कुछ नंबर लिखा हुग्रा था।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. गिनती। गणना। ३. किसी सामयिक पत्र या पुस्तक ग्रादि की कोई एक संख्या या ग्रंक। जैसे,—(क) उस मासिक पत्र के ग्रभी तीन ही नंबर निकले हैं। (ख) तुम्हारी पुस्तकमाला का चौथा नंबर ग्रभी तक नहीं ग्राया। ४. कपड़े ग्रादि नापने का लोहे का वह गज जो ३ फुट या ३६ इंच लंबा होता है। ५. स्त्रीप्रसंग। भोग। (बाजारू)।

मुहा०—नंबर दागना या लगाना = स्त्री प्रसंग करना।

नंबरदार—संज्ञा पुं० [ग्रं० नंबर+फ़ा० दार] गाँव का वह जमींदार जो ग्रपनी पट्टी के ग्रौर हिस्सेदारों से मालगुजारी ग्रादि वसूल करने में सहायता दे।

नंबरवार—क्रि० वि० [ग्रं० नंबर+फ़ा० वार (प्रत्य०)] यथाक्रम। सिलसिलेवार। क्रमश:। एक एक करके। जैसे,—इन सब किताबों को नंबरवार लगा दो।

नंबरिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे रसीदों, टिकटों ग्रादि पर क्रमसंख्या छापते हैं।

नंबरी—वि० [ग्रं० नंबर+ई (प्रत्य०)] १. नंबरवाला। जिस पर नंबर लगा हो। २. प्रसिद्ध। मशहूर। कुख्यात जैसे, नंबरी डाकू, नंबरी चोर।

नंबरी गज—संज्ञा पुं० [हिं० नंबरी+फ़ा० गज] दे० 'नंबर'-४।

नंबरी सेर—संज्ञा पुं० [हिं० नंबरी+सेर] तौलने का सेर जो ग्रंगरेजी रुपयों से ८० भर का होता है। ग्रंगरेजी सेर। ग्रीसगंडी सेर।

नंबूदरी—संज्ञा पुं० [मल० नंबूतिरि] मालाबार प्रांत के ब्राह्मणों की एक जाति।

विशेष—ग्राद्य शंकराचार्य केरलीय ब्राह्मणों की इसी शाखा में पैदा हुए थे।

नंषना(पु)—क्रि० स० [हिं०] डालना। गिराना। छोड़ना। उ०—थप्पो सुवस ग्रबुंद उरग। सुरनि सीस नंषे सुमन।—पृ० रा०, १।६७।

नंस(पु)[१]—वि० [सं० नाश] जिसका नाश हुग्रा हो। नष्ट। उ०—कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूंदहिं कुरलहिं जनु सर हंसा।—जायसी।

नंस[२]—संज्ञा पुं० नाश। बरबादी।

नंसना(पु)†—क्रि० स० [सं० नाश] नाश करना। विनाश करना।

नंगटा†—वि० [हिं० नंग+टा (प्रत्य०)] दे० 'नंगा'।

नँगपैरा†—वि० [हिं० नंगा+पैर+ग्रा (प्रत्य०)] जिसके पाँव नंगे हों। जिसके पैरों में जूता न हो।

नँगियाना[१]—क्रि० स० [हिं० नंगा से नामिक धातु] १. नंगा करना। शरीर पर वस्त्र न रहने देना। २. सब कुछ छीन लेना। कुछ भी पास न रहने देना।

नँगियाना[२]†—क्रि० ग्र० १. नंगा होना। २. नंगेपन पर उतर ग्राना। बेशर्म होना।

नँगियावना†—क्रि० स० [हिं० नंगा से नामिक धातु] नंगा करने की क्रिया।

नँग्याना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'नँगियाना'।

नँग्यावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] नंगा करना। उ०—भीम कहा बपुरो ग्ररु ग्रर्जुन नारि नँग्यावत ही बल गीतो।—केशव ग्रं० पृ० १४०।

नँदरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नंदरानी। यशोदा। उ०—नंददास प्रभु मुदित नँदरानी ही हो रस सागर में झेलत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८७।

नँदलाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नंदलाल'। उ०—ग्राए नहीं नँदलाल पहिरे फूल माला।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५।

नँदसुवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] कृष्ण। उ०—नंददास नँदसुवन मुरलि सुर मगन होति ब्रजबाल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७७।

नँदोला†—संज्ञा पुं० [हिं० नाँद+ग्रोला (प्रत्य०)] मिट्टी की बड़ी ग्रथवा छोटी नाँद।

न[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपमा। २. रत्न। ३. सोना। ४. बुद्ध। ५. बंध। ६. मोती (को०)। ७. गणेश (को०)। ८. धन। संपत्ति (को०)। ९. युद्ध (को०)। १०. ग्राहार (को०)।

न[२]—वि० १. पतला। २. रिक्त। शून्य। ३. ग्रनुरूप। सदृश। वही। ४. ग्रश्रांत। न थका हुग्रा। ५. प्रशमित। ६. ग्रविभक्त। ग्रविभाजित (को०)।

न[३]—ग्रव्य० १. निषेधवाचक शब्द। नहीं। मत। जैसे,—तुम न जाग्रो तो कोई हर्ज है? (ख) उसे कुछ न देना ही ठीक है।

विशेष—विधि, ग्रनुज्ञा, हेतुहेतुमद् भाव ग्रादि कुछ विशेष स्थलों पर भी 'नहीं' के स्थान में 'न' ग्राता है।

जैसे,—२. कि नहीं? या नहीं। (क) तुम वहाँ जाग्रोगे न? (ख) वे दिनभर तो वहाँ रहेंगे न?

विशेष—इस ग्रर्थ में इसका प्रयोग प्रश्नात्मक वाक्य के ग्रंत में ही होता है।

नइ(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नई] दे० 'नई'। उ०—को तिनहूँ ते ग्रधिक प्रशंसित सुर जुन गति नइ। सबको छोंकि छबीली ग्रद्भुत पान करत भइ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४।

नइ[२]—प्रत्य० [हिं० कर्मकारक का प्रत्यय ने। ग्रन्य रूप नूं, नूँ, कौं, को, कहुँ] को। उ०—(क) उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण सामहियाँह। कुरझाँ एक संदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह।—ढोला०, दू० ६४। (ख) भाई कहि बतलावसूँ नागरबेल निरेस। हउ हउ करहा, कुँवर नइ, मत ले जाय विदेस।—ढोला०, दू० ३२६।

नइ[3]—अ० [सं० अन्यत् ?] निश्चयसूचक अव्यय। दे० 'और'। उ०—बाबहियउ नइ बिरहणी, दुहुवाँ एक सहाव। जब ही बरसइ घण घणउ तबही कहइ प्रियाव।—ढोला०, दू० २७।

विशेष—इसके अन्य रूप हैं—'अनइ', 'अने', 'ने'।

नइण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नयन] दे० 'नयन'[1]। उ०—ऊनमि आई बद्दली, ढोलउ आयउ चित्त। यो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त।—ढोला०, दू० ४१।

नइया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] नाव। उ० हो अपराधी बहुत जुगन को नइया मोर उबारो।—धरम०, पृ० २५।

नइवेद(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नैवेद्य'। उ०—ज्वालनिय माल तृप्पय नृपति अति सुदेव नइवेद जुत।—पृ० रा०, २४।२७६।

नइहर† - संज्ञा पुं० [सं० ज्ञातिगृह, हि० नेहर] स्त्रियों की माता का घर। पीहर। मायका।

नई(पु)[1] - वि० पुं० [सं० नय + हि० ई (प्रत्य०)] नीतिवान्। नीतिज्ञ।

नई[2] —वि० स्त्री० [सं० नव] नया' का स्त्री० रूप।

नई(पु)†[3] संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी'।

नई(पु)[4]— संज्ञा स्त्री० [हि०] नवमी तिथि। उ० —कातं जागण भद्रा नहीं पुप नक्षत्र नई कातिक मास।—बी० रासो, पृ० ४०।

नउँजी†—संज्ञा स्त्री० [हि० लीची] लीची नामक फल। उ०—कोई नारग कोइ झार चिरउँजी। कोई कटहर बड़हर कोइ नउँजी।—जायसी (शब्द०)।

नउ(पु)—वि० [सं० नव] १. दे० 'नव'। उ०—ताकहँ गुरू करइ असमाया। नउ अउतार देइ नइ काया।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'नौ'। उ०— नउ पउरी बाँकी नउ खंडा। नउ ऊजो चढ़इ जाइ ब्रह्मांडा।— जायसी (शब्द०)।

नउआ† - संज्ञा पुं० [हि० नाऊ] [स्त्री० नउनियाँ] दे० 'नाऊ'। उ०—रोवत देखि जननि अकुलानी लियो तुरत नउआ को झरको।—सूर (शब्द०)।

नउका(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका] दे० 'नौका'।

नउत(पु)†—वि० [हि० नवना, नवत] नीचे की ओर झुका हुआ। उ० बिवछि गयो मन लागि ज्यों ललित त्रिभंगी संग। सूधो होत न और लगि नउत रहै वह अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

नउतोया(पु)†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नवतहरी'। उ०—राजमती कउ रचउ वीवाह अपारी मंड जीव नउतोया, मिल्या हो चउरासिया अंत न पार।—बी० रासो, पृ० ३७।

नउन†—वि० [हि०] झुका हुआ। नम्र। नत।

नउनियाँ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाइन'। उ० अति बड़ भाग नउनियाँ छुए नख हाथ सों हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५।

नउनिया(पु)† - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नउनियाँ'। उ०—नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

नउमि(पु)†—वि० स्त्री० [सं० नवमी] नौवाँ। नवी। उ०—नउमि दसा दखि गेलाहे नहाए दसमि दसा उगपति भेलि आए।—विद्यापति, पृ० ५२८।

नउरंग†—संज्ञा स्त्री० [हि० नारंगी] दे० 'नारंगी'।

नउर†—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला'।

नउरता(पु)†—संज्ञा पुं० [हि०] नवरात्र। उ०—नव दिन पूंगा नउरता बलि वाकुल पूजा रचो टाई।— बी० रासो, पृ० ५०।

नउलि(पु)†—वि० [सं० नवल] नया। नवीन। ताजा। उ०—सबइ नउलि पिय संग न सोई। कंवल पास जनु बिगसी कोई।—जायसी (शब्द०)।

नऊढ़ा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोढा] दे० 'नवोढ़ा'। उ०—प्रथमहि मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि बिश्रब्ध नऊढ़ा सोय।—नंद० ग्रं०, पृ० १४५।

नएपंज संज्ञा पुं० [फ़ा०] पाँच वर्ष की अवस्था का घोड़ा। जवान घोड़ा। (चाबुक सवार)

नओढ़(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोढा] दे० 'नवोढ़ा'।

नकंद संज्ञा पुं० [ ] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो कांगड़े में होता है।

नककटा - वि० [हि० नाक + कटना] [वि० स्त्री० नककटी] १. जिसकी नाक कटी हो। २. जिसकी बहुत दुर्दशा हुई हो। ३. जिसकी अप्रतिष्ठा या बदनामी हुई हो। ४. जिसके कारण अप्रतिष्ठा हो। ५. निर्लज्ज। बेहया। बेशर्म।

नककटापंथ—संज्ञा पुं० [हि० नककटा + पंथ] एक कल्पित पथ का नाम।

विशेष—एक कहानी है कि एक बार किसी प्रकार एक आदमी की नाक कट गई। तब उसने और लोगों को भी अपने ही समान बनाने के उद्देश्य से लोगों से यह कहना आरंभ कर दिया कि नाक के कट जाने के कारण ही मुझे ईश्वर के दर्शन होने लगे हैं। उसकी बात पर विश्वास करके बहुत से लोगों ने नाक कटा डाली। ईश्वर के दर्शन तो किसी को न होते थे, पर नककटे होने के अपवाद से बचने और दूसरों को भी अपने समान बनाने के लिये वे उस पहले नककटे की बात का खूब समर्थन करते थे। इसी कहानी के आधार पर लोगों ने इस 'नककटा पंथ' की कल्पना कर ली।

नककटी† संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + कटना] १. नाक कटने की क्रिया। २. दुर्दशा, ३. अप्रतिष्ठा या बदनामी आदि।

नकघिसनी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + घिसनी] १. नाक को जमीन पर रगड़ना। जमीन पर नाक रगड़ने की क्रिया। २. बहुत अधिक दीनता। आजिजी।

नकचिपटा—वि० [हि० नाक + चिपटा] [वि० स्त्री० नकचिपटी] बैठी नाकवाला।

नकचढ़ा—वि० [हि० नाक + चढ़ना] [वि० स्त्री० नकचढ़ी] चिड़चिड़ा। बदमिजाज।

नकछिकनो संज्ञा स्त्री० [सं० छिक्कनी] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ महीन महीन और कटावदार होती हैं।

विशेष—इसके फूल घुंडी के आकार के और गुलाबी होते हैं जिन्हें सूंघने से छींक आने लगती है। वैद्यक में इसे चरपरी, रूखी,

गरम, रुचिकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कुष्ट, कृमि, रक्तविकार और दृष्टिदोष का नाशक माना है।

पर्या०—क्षवकृत। तीक्ष्णा। छिक्किका। घ्राणदुःखदा। उग्रा। संवेदनापटु। उग्रगंधा। क्षवक। छिक्कनी।

नकटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + कटना] [वि० स्त्री० नकटी] १. वह जिसकी नाक कट गई हो। २. एक प्रकार का गीत।

विशेष—इसे स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाह के समय गाती हैं।

३. वह अवसर या उत्सव जब उक्त गीत गाया जाता है। ४. एक प्रकार की चिड़िया।

नकटा²—वि० १. जिसकी नाक कटी हो। २. निर्लज्ज। बेशर्म। बेहया। ३. अप्रतिष्ठित। जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो।

नकटेसर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

नकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नाक] बैलों का एक रोग।

विशेष—इसमें उनकी नाक सूज आती है और इसके कारण उन्हें साँस लेने में बहुत कठिनता होती है।

नकत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नक्त] नक्तव्रत। रात्रिकाल में किया जानेवाला व्रत। उ०—करतहु नकत करतहु रोजा।—कीर्ति०, पृ० ४२।

नकतोड़—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + तोड़ना] कुश्ती का एक पेंच।

नकतोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + तोड़ (= चाल)] अभिमानपूर्वक नाक भौं चढ़ाकर नखरा करना अथवा कोई बात कहना।

मुहा०—नकतोड़े उठाना = अनुचित अभिमान सहना। नखरा बरदाश्त करना। नकतोड़े तोड़ना = बहुत अधिक और अनुचित नखरा करना।

नकतोरा—संज्ञा पुं० [हिं० नकतोड़ा] दे० 'नकतोड़ा'। उ०—'आबरू' तू नहीं कम जर्फ की सुहबत का दिमाग। किसको बरदाश्त है टुक वक्त के नकतोरों की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

नकद¹—संज्ञा पुं० [अ० नक़्द] तैयार रुपया। रुपया पैसा। धन जो सिक्कों के रूप में हो। जैसे,—उनके पास नकद बहुत है।

नकद²—वि० १. (रुपया) जो तैयार हो। (धन) जो तुरंत काम में लाया जा सके। प्रस्तुत (द्रव्य)। जैसे,—हम नकद रुपया लेंगे कोई चीज नहीं लेंगे। २. खास।

नकद³—क्रि० वि० तुरंत दिए हुए रुपए के बदले में। तुरंत रुपया पैसा देकर या लेकर। 'उधार' का उलटा। जैसे—हमने सब माल नकद लिया है या बेचा है।

नकद⁴—संज्ञा पुं० [हिं० नगद] दे० 'नगद'।

नकदाबा—संज्ञा पुं० [देश०] चने या मटर की दाल के साथ पकाई हुई बरी या कुम्हड़ौरी।

नकदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नकद + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. रोकड़। धन। रुपया पैसा। सिक्का। २. जमई। वह भूमि जिसका लगान नकद रुपयों में लिया जाय।

नकना(पु)†¹—क्रि० स० [सं० लङ्घन हिं० नाकना] १. उल्लंघन करना। लाँघना। डाँकना। फाँदना। उ०—(क) औरहु विविध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) घाटी नकी गिरिन की ठाढ़ी। देखो तहाँ भीमरा बाढ़ी।—लाल (शब्द०)। २. चलना। उ०—मारहू ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि आए री मनावन सयान सब नकि कै।—केशव (शब्द०) ३. त्यागना। छोड़ना। तजना।

नकना²—क्रि० अ० [हिं० नकियाना] नाक में दम होना। हैरान होना।

नकना³—क्रि० स० नाक में दम करना।

नकन्याना‡—क्रि० अ० [हिं०] नाकों दम होना। परेशान होना।

नकपोड़ा‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाक'।

नकफूल—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + फूल] नाक में पहनने की लौंग या कील। उ०—तन सुख सारी लाही अँगिया अतलस अँतरौटा छबि चारि चारि चुरी पहुँचीनि पहुँची झमकि बनी नकफूल जेब मुख बारि चौका कौंधे सभ्रम भूली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

नकब—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़ब] चोरी करने के लिये दीवार में किया हुआ वह बड़ा छेद जिसमें से होकर चोर किसी कमरे या कोठरी आदि में घुसता है। सेंध।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

नकबजन—संज्ञा पुं० [अ० नक़ब + फ़ा० जन] वह जो चोरी करने के लिये दीवार में छेद करे। सेंध लगानेवाला।

नकबजनी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़ब + फ़ा० जनी] सेंध लगाने की क्रिया।

नकबानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + बानी ?] नाक में दम। हैरानी। उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—होना।

नकबेसर—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + बेसर] नाक में पहनने की छोटी नथ। बेसर। उ०—नकबेसर कनफूल बन्यो है छबि कापै कहि आवै जू।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

नकमोती—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + मोती] नाक में पहनने का मोती जिसे लटकन भी कहते हैं।

नकल—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़्ल] ? वह जो सच्चा, खरा या असल न हो बल्कि असल को देखकर रूप, रंग, आकृति आदि में उसी के अनुसार बनाया गया हो। वह जो किसी दूसरे के ढंग पर या उसकी तरह तैयार किया गया हो। अनुकृति। कापी। जैसे,—(क) वह मकान उस सामनेवाले की नकल है। (ख) इस नकल ने तो असल को भी मात कर दिया। २. एक के अनुरूप दूसरी वस्तु बनाने का कार्य। अनुकरण

क्रि० प्र० —उतारना।—करना। बनाना।—होना।

३. लेख आदि की अक्षरशः प्रतिलिपि। कापी। जैसे,—(क) इस शिलालेख की एक नकल हमारे पास भी आई है। (ख) इस दस्तावेज की नकल करा लो तो बड़ा काम हो।

क्रि० प्र० उतारना।—करना।—होना।—होना।

४. किसी के वेश, हाव भाव या बातचीत आदि का पूरा पूरा अनुकरण। स्वाँग। जैसे,—(क) वह उनकी खूब नकल उतारता है। (ख) कल महफिल में भाँड़ों ने नवाब साहब की एक बहुत अच्छी नकल की थी।

क्रि० प्र० उतरना। उतारना।—करना।—बनना।—होना।

५. अद्भुत और हास्यजनक आकृति। जैसे,—आज तो आप बिलकुल नकल बनकर आए है। उ०—नकल है कोई आदम घरे सूँ उने शहर कूँ आया तमाशा देखने।—दक्खिनी०, पृ० ३८१। ६. हास्य रस की कोई छोटी मोटी कहानी या बात चीत। चुटकुला।

नकलची—वि० [हिं० नकल + ची (प्रत्य०)] नकल करनेवाला।

नकलनवीस—संज्ञा पुं० [अ० नकल + फ़ा० नवीस] वह आदमी, विशेषतः अदालत या दफ्तर आदि का मुहर्रिर जिसका काम केवल दूसरे के लेखों की नकल करना होता है।

नकलनवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नकल + फ़ा० नवीसी] १. नकलनवीस का काम। २. नकलनवीस का पद।

नकलनोर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की चिड़िया जिसे मुनिया भी कहते हैं। विशेष—दे० 'मुनिया'।

नकलपरवाना—संज्ञा पुं० [अ० नकल + फ़ा० परवाना] पत्नी का भाई। साला। (हास्य)।

नकलबही—संज्ञा स्त्री० [हिं० नकल + बही] दफ्तरों या दूकानों की वह बही या कापी आदि जिसमें भेजी जानेवाली चिट्ठियों की नकल रहती है।

नकली—वि० [अ० नकल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. जो नकल करके बनाया गया हो। जो असली न हो। कृत्रिम। बनावटी। जैसे, नकली हीरा, नकली केसर, नकली घड़ी।

विशेष—नकली चीज प्रायः निकम्मी और निकृष्ट समझी जाती है और लोगों में इसका आदर नहीं होता।

२. जो असली न हो। खोटा। जाली। झूठा। जैसे,—नकली दस्तावेज बनाने के अपराध में उनको दो बरस की सजा हो गई।

नकलेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + एल (प्रत्य०)] १. नाव खींचने के लिये गोनरस्से में लगी हुई वह रस्सी जो और सब रस्सियों से आगे रहती है। २. दे० 'नकेल'।

नकलोनी[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'नकलनोर'।

नकलोला[2]—वि० [हिं०] १. भद्दी या बेडौल नाकवाला। बेवकूफ।

नकवानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नकबानी'। उ०—भरि भरि सूँडनि डारत पानी डारत मोहि भरत नकवानी।—नंद० ग्रं०, पृ० १६७।

नकवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. नया अंकुर। कल्ला। २. सुई का वह छेद जिसमें तागा पिरोया जाता है। नाका। ३. तराजू की डंडी का वह छेद जिसमें पलड़े की रस्सियाँ पिरोकर बाँधी जाती है।

नकवानी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नकबानी'।

नकश—संज्ञा पुं० [अ० नक्श] १. दे० 'नक्श'।

विशेष—नकश के यौगिक शब्दों के लिये दे० 'नक्श' के यौगिक।

२. एक प्रकार का जूआ जो दो या अधिक आदमी ताश के पत्तों से खेलते हैं।

विशेष—इसमें सब खिलाड़ियों को पहले एक एक पत्ता बाँट दिया जाता है और तब एक एक खिलाड़ी को अलग अलग उसके माँगने पर और पत्ते दिए जाते हैं। इसमें पत्तों की बूटियों को गिनकर हार जीत होती है।

नकशमार—संज्ञा पुं० [अ० नक्श + हिं० मारना] नकश नामक जूआ जो ताश के पत्तों से खेला जाता है। विशेष—दे० 'नकश'।

नकशा—संज्ञा पुं० [अ० नक्शह्] दे० 'नक्शा'।

नकशानवीस—संज्ञा पुं० [अ० नक्श + फ़ा० नवीस] दे० 'नक्शानवीस'।

नकशी—वि० [अ० नक्श + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'नक्शी'।

नकशीमेना—संज्ञा स्त्री० [हिं० नकशा + मैना] तेलिया नाम की एक प्रकार की मैना।

नकशोनिगार(पु)—संज्ञा पुं० [अ० नक्श + फ़ा० निगार] १. फूलपत्ती। बेलबूटा। २. मूर्ति। प्रतिमा। आकृति। उ०—हरमानी मतन में न बदर नकशोनिगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६०।

नकसमार—संज्ञा पुं० [हिं० नकशमार] दे० 'नकशमार'।

नकसा†—संज्ञा पुं० [हिं० नक्शा] दे० 'नक्शा'।

नकसिक†—संज्ञा पुं० [सं० नखशिख] दे० 'नखशिख'। उ०—हुजूर नकसिक से कितनी दुरुस्त हैं!—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५।

नकसीर—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + सं० क्षीर (= जल)] आपसे आप नाक से रक्त बहना जो प्रायः गरमी के दिनों में होता है।

विशेष—वैद्यक में इसे रक्तपित्त रोग के अंतर्गत माना है। रक्तपित्त में मुँह नाक, आँख, कान, गुदा और योनि या लिंग से रक्त बहता है। यदि यह रक्त अधिक मात्रा में बहे तो मनुष्य थोड़ी ही देर में मर भी सकता है। अधिक आँच या धूप लगने, रास्ता चलने और शोक, व्यायाम या मैथुन करने से भिन्न भिन्न मार्गों से रक्त बहने लगता है। स्त्रियों का रज रुक जाने से भी यह रोग हो जाता है। विशेष—दे० 'रक्तपित्त'।

क्रि० प्र०—फूटना।

मुहा०—नकसीर भी न फूटना = कुछ भी हानि न पहुँचना। जरा भी तकलीफ या नुकसान न होना।

नकाना(पु)†[1]—क्रि० अ० [हिं० नकियाना] नाक में दम होना। बहुत परेशान होना। उ०—तहँ आओ इक औघट आयो। दब करि चंपत राय नकायो—लाल (शब्द०)।

नकाना②²—क्रि० स० [हिं० नकियाना] नाक में दम करना। बहुत परेशान करना।

नकाब—संज्ञा स्त्री० पुं० [अ० नकाब] १. महीन रंगीन कपड़े या जाली का वह टुकड़ा जो मुँह छिपाने के लिये सिर पर से गले तक डाल लिया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः अरब देश की स्त्रियों में और उनके संसर्ग से युरोप की स्त्रियों में भी होता है। मुसलमान स्त्रियाँ अपना चेहरा छिपाने के उद्देश्य से इसका व्यवहार करती हैं, पर युरोपियन स्त्रियाँ धूल और कीड़े पतंगों आदि से बचने तथा शोभा बढ़ाने के लिये करती हैं। प्राचीन काल में कहीं कहीं आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे।

क्रि० प्र०—उठाना।—डालना।

मुहा०—नकाब उलटना = चेहरे पर से नकाब हटाना।

यौ०—नकाबपोश जिसके चेहरे पर नकाब हो। जो चेहरे पर नकाब डाले हो।

२. साड़ी या चादर का वह भाग जिससे स्त्रियों का मुँह ढँका रहता है। घूँघट।

क्रि० प्र०—उठाना।—डालना।

मुहा०—नकाब उलटना = मुँह पर से घूँघट हटाना।

नकार—संज्ञा पुं० [सं०] न या नहीं का बोधक शब्द या वाक्य। नहीं। २. इनकार। अस्वीकृति। ३. 'न' अक्षर।

नकारची—संज्ञा पुं० [हिं० नक्कारची] दे० 'नक्कारची'।

नकारना—क्रि० अ० [हिं० नकार + ना (प्रत्य०)] इनकार करना। अस्वीकृत करना।

नकारा‡¹—वि० [फ़ा० नाकार] खराब। बुरा। निकम्मा। जो किसी काम का न हो।

नकारा②²—संज्ञा पुं० [हिं० नक्कारा] दे० 'नक्कारा'। उ०—मुसाफिर उठ तुझे चलना है मंजिल। बजे है कूच का हरदम नकारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४१।

नकारात्मक—वि० [सं०] अस्वीकार्य। जो न मानने योग्य हो।

नकारात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकार। अस्वीकार।

नकाश—संज्ञा पुं० [हिं० नक्काश] दे० 'नक्काश'।

नकाशना†—क्रि० स० [हिं० नकाश से नामिक धातु] किसी पदार्थ पर बेल बूटे आदि बनाना। धातु, पत्थर आदि पर खोदकर चित्र फूल पत्ती आदि बनाना।

नकाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नक्काशी] दे० 'नक्काशी'।

नकाशीदार—वि० [अ० नक्काशी + फ़ा० दार] जिसपर नक्काशी हो। बेल बूटेदार।

नकास†¹—संज्ञा पुं० [हिं० नक्काश] दे० 'नक्काश'।

नकास†²—संज्ञा पुं० [हिं० नखास] दे० 'नखास'।

नकासना—क्रि० स० [हिं० नकाशना] दे० 'नकाशना'।

नकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नक्काशी] दे० 'नक्काशी'। उ०—रचित प्रभा सी भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१।

नकासीदार—वि० [हिं० नकाशीदार] दे० 'नकाशीदार'।

नकिंचन—वि० [सं० नकिञ्चन] जिसके पास कुछ न हो। अकिंचन। अत्यन्त दरिद्र [को०]।

नकियाना¹†—क्रि० अ० [हिं० नाक + आना (प्रत्य०)] १. नाक से बोलना। शब्दों का अनुनासिकवत् उच्चारण करना। २. नाक में दम आना। बहुत दुःखी या हैरान होना। उ०—हाय बुढ़ापा तुम्हरे मारे हम तो अब नकियाय गयन। करत धरत कछु बनतै नाहिन कहाँ जान अरु कैस करन।—प्रतापनारायण (शब्द०)।

नकियाना†²—क्रि० स० नाक में दम करना। बहुत परेशान या तंग करना।

नकीब—संज्ञा पुं० [अ० नक़ीब] १. वह आदमी जो राजाओं आदि के आगे उनके तथा उनके पूर्वजों के यश का गान करता हुआ चलता है। चारण। बंदीजन। भाट।

विशेष—बादशाहों या नवाबों के यहाँ के नकीब केवल सवारी के आगे विरुदावली का बखान करते ही नहीं चलते, बल्कि किसी को उपाधि या पद आदि मिलने के समय अथवा किसी बड़े पदाधिकारी के दरबार में आने के पूर्व उसकी घोषणा भी करते हैं।

२. कड़खा गानेवाला पुरुष। कड़खैत।

नकुच—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़।

नकुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक।

नकुनियाँ②†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तराजू की डंडी के दोनों सिरे। उ०—धाट बाट मोध लेइ सम रहै नकुनियाँ। बिसरै ना सुरति वाहि फेरि होय तानयाँ।—मलूक०, पृ० २५।

नकुरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + उरा (प्रत्य०)] नाक। नासिका।

नकुल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेवला नाम का प्रसिद्ध जंतु। विशेष दे० 'नेवला'। २. पांडु राजा के चौथे पुत्र का नाम जो अश्विनीकुमार द्वारा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जिस समय पांडु शाप के कारण अपनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर वन में रहते थे उस समय जब कुंती को तीन लड़के हुए तब माद्री ने पांडु से पुत्र के लिये कहा था। उस समय कुंती ने माद्री से कहा कि तुम किसी देवता का स्मरण करो। इसपर माद्री ने अश्विनीकुमारों का स्मरण किया जिससे दो बालक हुए। उनमें से बड़े का नाम नकुल और छोटे का सहदेव था। नकुल बहुत ही सुंदर थे और नीति, धर्मशास्त्र तथा युद्धविद्या में बड़े पारगत थे। पशुओं की चिकित्सा की विद्या भी इन्हें ज्ञात थी। अज्ञातवास के समय जब पांडव बिराट के यहाँ रहते थे तब नकुल का नाम तांत्रपाल था और ये गौएँ चराने का काम करते थे। युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ किया था तब इन्होंने पश्चिम की ओर जाकर महेत्थ और पंचनद

आदि देशों को परास्त किया था, और तदुपरांत द्वारका में दूत भेजकर वासुदेव से भी युधिष्ठिर की प्रधीनता स्वीकृत कराई थी। इनका विवाह चेदिराज की कन्या करेणुमती से हुआ था जिसके गर्भ से निरमित्र नामक एक पुत्र भी हुआ था।

३. बेटा। पुत्र। ४. शिव। महादेव। ५. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। ६. वह जो नीच कुल में उत्पन्न हुआ हो (को०)।

नकुल²—वि० १. जिसका कोई कुल न हो। कुलरहित। २. नीच कुल में उत्पन्न (को०)।

नकुल³—संज्ञा पुं० [अ० नुक्ल (= चाट)] वह जो दोपहर के समय पुर आदि चलानेवालों को पीने के लिये दिया जाता है।

नकुलकंद—संज्ञा पुं० [सं० नकुलकन्द] गंधनाकुली या रास्ना नामक कंद।

नकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गहना। २. रुपया आदि रखने की एक प्रकार की थैली।

नकुलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल।

विशेष—यह नेवले के मांस में बहुत सी दूसरी ओषधियाँ मिलाकर बनाया जाता है। इसका व्यवहार पान, अभ्यंग और वस्तिक्रिया में होता है। वैद्यक के अनुसार इससे आमवात, शरीर के सब अंगों का कंप और कमर, पीठ, जाँघ आदि का वात का दर्द दूर होता है।

नकुलांधता—संज्ञा स्त्री० [सं० नकुलान्धता] दे० 'नकुलांध रोग'।

नकुलांध रोग—संज्ञा पुं० [सं० नकुलान्ध रोग] सुश्रुत के अनुसार आँख का एक रोग।

विशेष—इसमें आँखें नेवले की आँखों की तरह चमकने लगती हैं और चीजें रंग बिरंगी दिखाई देने लगती हैं। इस रोग में पित्तवर्धक पदार्थों का सेवन करना मना है।

नकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

नकुला¹—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला'।

नकुला²—संज्ञा पुं० [हिं०] वह जिसका कुल से संबंध न हो। अज। अजन्मा। उ०—नमो निकलंक नमो नकुला नमो नित्य नरायनम। नमो अमर नमो अधर नमो पीव परायनम।—राम० धर्म०, पृ० ५१।

नकुलाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली। नकुलकंद।

नकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जटामासी। २. केसर। ३. शंखिनी। ४. नेवले की मादा।

नकुलीश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक भैरव का नाम।

नकुलीश पाशुपतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] एक दर्शन जिसका उल्लेख सर्वदर्शनसंग्रह में है।

विशेष—इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इसमें शिव ही परमेश्वर और सब प्राणी उनके पशु माने गए हैं। जीवों के अधिपति होने के कारण महादेव पशुपति कहलाते हैं। इस दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की कही गई है—अत्यंत दुःखनिवृत्ति और परमैश्वर्यप्राप्ति। दृक्शक्ति और क्रियाशक्ति के भेद से परमैश्वर्य प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है। दृक्शक्ति या ज्ञान द्वारा पदार्थ ज्ञानपथ में आते हैं और क्रियाशक्ति द्वारा वे संपन्न होते हैं।

नकुलेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नकुलीश'।

नकुलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना। रायसन।

नकुलोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो तारों से बजाया जाता था।

नकुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + उवा (प्रत्य०)] १. नाक। २. तराजू की डंडी का सुराख।

नकेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + एल (प्रत्य०)] १. ऊँट की नाक में बँधी हुई रस्सी जो लगाम का काम देती है और जिसके सहारे ऊँट चलाया जाता है। मुहार।

मुहा०—किसी की नकेल हाथ में होना = किसी पर सब प्रकार का अधिकार होना। किसी से बलपूर्वक मनमाना काम करा लेने की शक्ति होना। जैसे,—उनकी चिंता मत कीजिए, उनकी नकेल तो हमारे हाथ में है।

२. भालू की नाक में पहनाई हुई रस्सी।

नक्का¹—संज्ञा पुं० [हिं० नाक] सूई का वह छेद जिसमें डोरा पहनाया जाता है। सूई में डोरा पिरोने का छेद। नाका।

नक्का²—संज्ञा पुं० १. ताश के पत्तों में का एक्का। २. दे० 'नक्की' और 'नक्कीमूठ'। ३. कौड़ी।

नक्का दूआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नक्कीमूठ'।

नक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। अवहेलना।

नक्कारखाना—संज्ञा पुं० [अ० नक्कारह् + फ़ा० खानह्] वह स्थान जहाँ पर नक्कारा बजता है। नौबत बजने का स्थान। नौबतखाना।

विशेष—ऐसा स्थान प्रायः बड़े बड़े मकानों में बाहर के दरवाजे के ठीक ऊपर बना रहता है।

मुहा०—नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है = (१) बहुत भीड़ भाड़ या शोर गुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटे आदमियों की बात कोई नहीं सुनता।

नक्कारची—संज्ञा पुं० [अ० नक्कारह् + तु० ची (प्रत्य०)] नगाड़ा बजानेवाला। वह जो नक्कारा बजाता हो।

नक्कारा—संज्ञा पुं० [अ० नक्कारह्] डुगडुगी या बाएँ की तरह का एक बहुत बड़ा बाजा जिसमें एक बहुत बड़े कूँड़े के ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। नगाड़ा। डंका। नौबत। दुंदुभी।

विशेष—इसके साथ में इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनों को आमने सामने रखकर लकड़ी के दो डंडों से, जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं।

मुहा०—नक्कारा बजाते फिरना = डुगडुगी पीटते फिरना। चारों ओर प्रकट करते फिरना। नक्कारा बजा के = खुल्लमखुल्ला। डंके की चोट। नक्कारा हो जाना = फूलकर बहुत बढ़ना। बहुत फूलना।

नक्काल—संज्ञा पुं० [अ० नक़्क़ाल] १. अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। २. भाँड़। ३. बहुरूपिया।

नक्काली—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्क़ाली] नकल करने का काम। नकल करने की क्रिया या विद्या। २. भाँड़ का काम या विद्या। बहुरूपिए का काम या विद्या।

नक्काश—संज्ञा पुं० [अ० नक़्क़ाश] नक्काशी का कारीगर। वह जो खोदकर बेल बूटे आदि बनाता हो।

नक्काशी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्क़ाशी] १. धातु या पत्थर आदि पर खोदकर बेल बूटे आदि बनाने का काम या विद्या। २. वे बेल बूटे आदि जो इस प्रकार खोदकर बनाए गए हों।

नक्काशीदार—वि० [अ० नक्काशी + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसपर खोदकर बेल बूटे बनाए गए हों।

नक्की[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक] १. नक्कीमूठ खेल में 'एक' का दाँव (दे० 'नक्कीमूठ')। ताश के पत्तों में का एक्का। (क्व०)। ३. जूए के किसी खेल में वह दाँव जिसके लिये 'एक' का चिह्न नियत हो अथवा जिसकी जीत किसी प्रकार के 'एक' चिह्न के आने से हो।

नक्की[2]—वि० [हिं० एक] १. ठीक। दुरुस्त। २. पक्का। ३. पूरा। ४. चुकाया हुआ। चुकता। सफा (हिसाब)।

नक्कीपूर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नक्कीमूठ'।

नक्कीमूठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नक्की + मूठ (= मुट्ठी)] जूए का एक खेल जो प्रायः स्त्रियाँ और बालक कौड़ियों से खेलते हैं। नक्कीपूर।

विशेष—इस खेल में एक दूसरी को काटती हुई दो सीधी लकीरें खींचते हैं और उनके चारों सिरों में से एक सिरे पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियाँ बना दी जाती हैं। इनको क्रमशः नक्की, दूआ, तीया और पूर कहते हैं। इसमें दो से चार तक खिलाड़ी होते हैं जो एक एक दाँव ले लेते हैं। एक खिलाड़ी अपनी मुट्ठी में कुछ कौड़ियाँ लेकर अपने दाँव पर मुट्ठी रख देता है। तब बाकी खिलाड़ी अपने अपने दाँव पर कुछ कौड़ियाँ लगाते हैं। इसके उपरांत वह पहला खिलाड़ी अपनी मुट्ठी की कौड़ियाँ गिनकर चार का भाग देता है। जब भाग देने पर १ कौड़ी बचे तो नक्कीवाले की, २ बचें तो दूएवाले की, ३ बचें तो तीएवाले की और कुछ भी न बचे तो पूरवाले की जीत होती है। जिसकी जीत होती है दूसरी बार वही मूठ लाता है। यदि मूठ लानेवाले का दाँव आता है तो वह दाँव पर रखी हुई सबकी कौड़ियाँ जीत लेता है, नहीं तो जिसकी जीत होती है उसको उसे उतनी ही कौड़ियाँ देनी पड़ती हैं जितनी उसने दाँव पर लगाई हों।
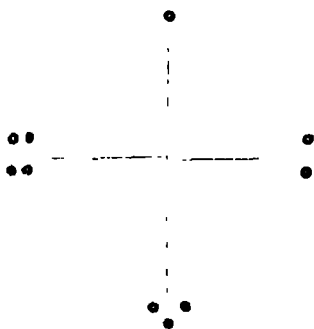
नक्कू—वि० [हिं० नाक] १. बड़ी नाकवाला। जिसकी नाक बड़ी हो। अपने आपको बहुत प्रतिष्ठित समझनेवाला। जैसे,—यह भी बड़े नक्कू बनते हैं। (बोलचाल)। २. जिसके आचरण आदि सब लोगों के आचरण के विपरीत हों। सबसे अलग और उलटा काम करनेवाला, जो प्रायः बुरा समझा जाता है। जैसे,—हमें क्या गरज पड़ी है जो हम नक्कू बनने जायँ।

नक्ख(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक] दे० 'नाक'। उ०—नपुंसक बालक बृद्ध सु दीन। धरे मुख नक्ख सुबैन सहीन।—हृ० रासो, पृ० ८।

नक्तंचर[1]—संज्ञा पुं० [सं० नक्तञ्चर] [स्त्री० नक्तंचरी] १. गुग्गुल। गूगल। २. राक्षस। ३. चोर। ४. बिल्ली। ५. उल्लू।

नक्तंचर[2]—वि० रात के समय विचरण करनेवाला।

नक्तंचरी—वि० [सं० नक्तञ्चरी] राक्षसी।

नक्तंचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्तञ्चर्या] रात का विचरण [को०]।

नक्तंचारी—वि० पुं० [सं० नक्तञ्चारिन्] [वि० स्त्री० नक्तंचारिणी] दे० 'नक्तचारी'।

नक्तंजात—संज्ञा पुं० [सं० नक्तञ्जात] बहुत प्राचीन काल की एक प्रकार की ओषधि जिसका उल्लेख वेदों में है।

नक्तंदिन—अव्य० [सं० नक्तन्दिन] रात दिन।

नक्तंदिव—अव्य० [सं० नक्तन्दिव] दे० 'नक्तंदिन'।

नक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह समय जब दिन केवल एक मुहूर्त ही रह गया हो। बिलकुल संध्या का समय। २. रात। रात्रि। ३. एक प्रकार का व्रत जो अगहन महीने के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को किया जाता है।

विशेष—इसमें दिन के समय बिलकुल भोजन नहीं किया जाता; केवल रात को तारे देखकर भोजन किया जाता है। किसी किसी के मत से इस व्रत में ठीक संध्या के समय, जब दिन केवल मुहूर्त भर रह गया हो, भोजन करना चाहिए। यह व्रत प्रायः यति और विधवाएँ करती हैं। इस व्रत में रात के समय विष्णु की पूजा भी की जाती है।

४. शिव। ५. राजा पृथु के पुत्र का नाम।

नक्त[2]—वि० लज्जित। जो शरमा गया हो।

नक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैला या गंदा कपड़ा। २. जीर्ण शीर्ण वस्त्र [को०]।

नक्तचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात को घूमनेवाला। २. महादेव। शिव। ३. राक्षस। ४. उल्लू।

नक्तचारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० नक्तचारिन्] [स्त्री० नक्तचारिणी] १. बिल्ली। २. उल्लू।

नक्तचारी²—वि० [वि० स्त्री० नक्तचारिणी] रात के समय विचरण करनेवाला ।

नक्तभोजी—वि० [नक्तभोजिन्] १. रात को भोजन करनेवाला । २. नक्त नामक व्रत करनेवाला ।

नक्तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष । कंजे का पेड़ ।

नक्तमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात ।

नक्तव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नक्त' ।

नक्तांध—संज्ञा पुं० [सं० नक्तान्ध] वह जिसे रात को दिखाई न दे । वह जिसे रतौंधी होती हो ।

नक्तांध्य—संज्ञा पुं० [सं० नक्तान्ध्य] आँख का वह रोग जिसमें रात के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता । रतौंधी ।

नक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियारी नामक विषैला पौधा । २. हलदी । ३. रात ।

नक्ताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष । कंजा ।

नक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात ।

नक्द—संज्ञा पुं० [अ० नक्द] दे० 'नकद' । उ०—छोड़ते कब हैं नक्द दिल को सनम । जब य करते हैं प्यार की बातें ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २४ ।

नक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाक नामक जलजंतु । २. मगर नामक जलजंतु । ३. घड़ियाल या कुंभीर नामक जलजंतु । ४. नाक । ५. पटाव । भरेठ (को०) । ६. वृश्चिक राशि (को०) । ७. चौखट की ऊपरी लकड़ी (को०) ।

नक्रकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'मकरकेतन' [को०] ।

नक्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ियाल । २. मगर । ३. नाक नामक जलजंतु ।

नक्रहारक—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा जलजंतु । नाक ।

नक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाक । नासिका । २. भौंरों या भिड़ का झुंड (को०) ।

नक्ल—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्ल] दे० 'नकल' ।

नक्लनवीस—संज्ञा पुं० [अ० नक्ल+फ़ा० नवीस] दे० 'नकलनवीस' ।

नक्लनवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्ल+फ़ा० नवीसी] दे० 'नकलनवीसी' ।

नक्लपरवाना—संज्ञा पुं० [अ० नक्ल+फ़ा० परवानह्] दे० 'नकल परवाना' ।

नक्लबही—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्ल+हिं० बही] दे० 'नकलबही' ।

नक्श¹—वि० [अ० नक्श] जो अंकित या चित्रित किया गया हो । खींचा, बनाया या लिखा हुआ ।

मुहा०—मन में नक्श करना या कराना = किसी के मन में कोई बात अच्छी तरह बैठना या बैठाना । किसी बात का निश्चय करना या कराना । जैसे,—हमने यह बात उनके मन में नक्श करा दी है । नक्श होना = किसी बात का अच्छी तरह मन में जम जाना । पूर्ण निश्चय हो जाना ।

नक्श²—संज्ञा पुं० १. तसवीर । चित्र । २. खोदकर या कलम से बनाया हुआ बेलबूटे या फूलपत्ती आदि का काम ।

यौ०—नक्शनिगार ।

३. मोहर । छाप ।

मुहा०—नक्श बैठाना = अच्छी तरह अधिकार जमाना । रंग जमाना । नक्श बिगाड़ना = अधिकार या प्रभाव न रह जाना । रंग उखड़ना ।

४. सारणी या कोष्ठक के रूप में बना हुआ यंत्र । तावीज ।

विशेष—यह अनेक प्रकार के रोगों आदि को दूर करने के लिये कागज भोजपत्र आदि पर लिखकर बाँह या गले आदि में पहनाया जाता है ।

५. जादू । टोना । ६. एक प्रकार का गाना जो प्रायः कव्वाल गाया करते हैं । ७ एक प्रकार का ताश का जूआ । दे० 'नक्श' । ८. सिक्का (को०) । ९. प्रभाव । असर (को०) । १०. चरणचिह्न (को०) ।

नक्शदार—वि० [अ० नक्श+फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसपर नक्श हो (को०) ।

नक्शनिगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० नक्श व निगार] बनाए हुए बेल बूटे आदि । नकाशी ।

नक्शबंद—संज्ञा पुं० [अ० नक्श+फ़ा० बंद] नकशा या चित्र बनानेवाला व्यक्ति [को०] ।

नक्शबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक्श+फ़ा० बंद] नकशा या चित्र बनाने का काम [को०] ।

नक्शमार—संज्ञा पुं० [अ० नक्श+हिं० मार] दे० 'नकशमार' ।

नक्शा—संज्ञा पुं० [अ० नक्शह्] १. चित्र । प्रतिमूर्ति । तसवीर । रेखाओं द्वारा आकार आदि का निर्देश ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—खींचना ।—बनाना ।

मुहा०—(आँखों के सामने) नक्शा खिंच जाना = किसी के सामने न रहने पर भी उसके रूप रंग आदि का ठीक ठीक ध्यान हो जाना ।

२. बनावट । आकृति । शक्ल । ढाँचा । गढ़न । जैसे,—उनका रंग चाहे जैसा हो, पर नक्शा अच्छा है । ३. किसी पदार्थ का स्वरूप । आकृति । जैसे,—तुमने छह महीने में ही इस मकान का सारा नक्शा बिगाड़ दिया । ४. चाल ढाल । तरज । ढंग । ५. अवस्था । दशा । हाल । जैसे,—(क) आजकल उनका कुछ और ही नक्शा है । (ख) एक ही मुकदमे ने उनका सारा नक्शा बिगाड़ दिया । ६. ढाँचा । ठप्पा ।

मुहा०—नक्शा जमना = बहुत अधिक प्रभाव होना । खूब चलती होना । जैसे,—आजकल शहर के रईसों में उनका नक्शा भी खूब जमा हुआ है । नक्शा जमाना = खूब प्रभाव डालना । रंग बाँधना । नक्शा तेज होना = दे० 'नक्शा जमना' ।

७. किसी धरातल पर बना हुआ वह चित्र जिसमें पृथिवी या खगोल का कोई भाग अपनी स्थिति के अनुसार अथवा और किसी विचार से चित्रित हो ।

विशेष—साधारणतः पृथिवी या उसके किसी भाग का जो नक्शा

होता है उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, झीलें और नगर आदि दिखलाए जाते है। कभी कभी इस बात का ज्ञान कराने के लिये कि अमुक देश में कितना पानी बरसता है, या कौन कौन से अन्नादि उत्पन्न होते हैं अथवा इसी प्रकार की किसी और बात के लिये नक्शे मे भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिए जाते हैं। कभी कभी ऐसे नक्शे भी बनाए जाते हैं जिनमें केवल रेल लाइनें, नहरें अथवा इसी प्रकार की और चीजें दिखलाई जाती है। महाद्वीपों आदि के अतिरिक्त छोटे छोटे प्रदेशों और यहाँ तक कि जिलों, तहसीलों और गाँवों तक के नक्शे भी बनते हैं। शहरों या गाँवों आदि के भिन्न भिन्न भागों के ऐसे नक्शे भी बनते हैं जिनमें यह दिखलाया जाता है कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौन से मकान, खँडहर, अस्तबल या कूएँ आदि हैं। इसी प्रकार खेतों और जमीन आदि के भी नक्शे होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहाँ है और उसकी आकृति कैसी है। खगोल के चित्रों मे इसी प्रकार यह दिखलाया जाता है कि कौन सा तारा किस स्थान पर है।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।

नक्शानवीस—संज्ञा पुं० [अ० नक़्शह्+फ़ा० नवीसह्] किसी प्रकार का नक्शा लिखने या बनानेवाला।

नक्शानवीसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़्शह् + फ़ा० नवीसी] नक्शा बनाने का काम।

नक्शी—वि० [अ० नक़्श + फ़ा० ई (प्रत्य०)] जिसपर बेल-बूटे बने हों।

नक्शोनिगार—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़्श + फ़ा० व + निगार] दे० 'नक्शनिगार'। उ०—मोर आया बाद अर्जी आपुस सवार। जिसके हर एक पर में कई नक्शोनिगार।—दक्खिनी०, पृ० १७५।

नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का वह समूह या गुच्छ जिसका पहचान के लिये आकार निर्दिष्ट करके कोई नाम रखा गया हो।

विशेष—इन तारों को ग्रहों से भिन्न समझना चाहिए जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं और हमारे इस सौर जगत् के अतर्गत हैं। ये तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं हैं। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जितनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो चार पास पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लिये यदि हम उन सब तारों के मिलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारकपुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का विभाग इसीलिये और इसी प्रकार किया गया है। चंद्रमा २७–२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है। खगोल में यह भ्रमणपथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़नेवाले तारों के अलग अलग दल बाँधकर एक एक तारकपुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में विभक्त होकर नक्षत्र चक्र कहलाता है। नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं—

नक्षत्र	तारासंख्या	आकृति और पहचान
अश्विनी	३	घोड़ा
भरणी	३	त्रिकोण
कृत्तिका	६	अग्निशिखा
रोहिणी	५	गाड़ी
मृगशिरा	३	हरिणमस्तक वा विडालपद
आर्द्रा	१	उज्वल
पुनर्वसु	५ या ६	धनुष या घर
पुष्य	१ वा ३	माणिक्य वर्ण
अश्लेषा	५	कुत्ते की पूँछ वा कुलालचक्र
मघा	५	हल
पूर्वाफाल्गुनी	२	खट्वाकार × उत्तर दक्षिण
उत्तराफाल्गुनी	२	शय्याकार × उत्तर दक्षिण
हस्त	५	हाथ का पंजा
चित्रा	१	मुक्तावत् उज्वल
स्वाती	१	कुंकुम वर्ण
विशाखा	५ व ६	तोरण या माला
अनुराधा	७	सूप या जलधारा
ज्येष्ठा	३	सर्प या कुंडल
मूल	९ या ११	शंख या सिंह की पूँछ
पूर्वाषाढ़ा	४	सूप या हाथी का दाँत
उत्तराषाढ़ा	४	सूप
श्रवण	३	बाण या त्रिशूल
धनिष्ठा	५	मर्दल बाजा
शतभिषा	१००	मंडलाकार
पूर्वभाद्रपद	२	भारवत् या घंटाकार
उत्तरभाद्रपद	२	दो मस्तक
रेवती	३२	मछली या मृदंग

इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त अभिजित् नाम का एक और नक्षत्र पहले माना जाता था पर वह पूर्वाषाढ़ा के भीतर ही आ जाता है, इससे अब २७ ही नक्षत्र गिने जाते हैं। इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए है। जिस महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पूर्णिमा को चंद्रमा कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा, अग्रहायण

की पूर्णिमा को मृगशिरा वा आर्द्रा पर; इसी प्रकार और समझिए।

जिस प्रकार चंद्रमा के पथ का विभाग किया गया है उसी प्रकार उस पथ का विभाग भी हुआ है जिसे सूर्य १२ महीनों में पूरा करता हुआ जान पड़ता है। इस पथ के १२ विभाग किए गए हैं जिन्हें राशि कहते हैं। जिन तारों के बीच से होकर चंद्रमा घूमता है उन्हीं पर से होकर सूर्य भी गमन करता हुआ जान पड़ता है; अतः पथ एक ही है, विभाग में अंतर है। राशिचक्र के विभाग बड़े हैं जिनमें से किसी किसी के अंतर्गत तीन तीन नक्षत्र तक आ जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह राशि-विभाग पहले पहल मिस्रवालों ने किया जिसे यवन लोगों (यूनानियों) ने लेकर और और स्थानों में फैलाया।

पश्चिमी ज्योतिषियों ने जब देखा कि बारह राशियों से सारे अंतरिक्ष के तारों और नक्षत्रों का निर्देश नहीं होता है तब उन्होंने और बहुत सी राशियों के नाम रखे। इस प्रकार राशियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती गई। पर भारतीय ज्योतिषियों ने खगोल के उत्तर और दक्षिण खंड में जो तारे हैं उन्हें नक्षत्रों में बाँधकर निर्दिष्ट नहीं किया। नक्षत्र या तारे ग्रहों की तरह छोटे छोटे पिंड नहीं हैं, वे बड़े बड़े सूर्य हैं जो हमारे इस सूर्य से बहुत दूरी पर हैं। इनकी संख्या अपरिमित है। वर्तमान काल के युरोपीय ज्योतिषियों ने बड़ी बड़ी दूरबीनों आदि की सहायता से खगोल का बहुत अनुसंधान किया है। उन्होंने तारों का वार्षिक लंबन (किसी नक्षत्र से एक रेखा सूर्य तक और दूसरी पृथ्वी तक खींचने से जो कोण बनाता है उसे उस नक्षत्र का लंबन कहते हैं) निकालकर, उनकी दूरी निश्चित करने में बड़ा उद्योग किया है। यदि किसी नक्षत्र का यह कोण एक सेकंड है तो समझना चाहिए कि उसकी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा २०६०० गुनी अधिक है। कोई नक्षत्र कम दूरी पर हैं, कोई अधिक; जैसे स्वाती, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्र रविमार्ग से बहुत दूर हैं और रोहिणी, पुष्य और चित्रा उनकी अपेक्षा निकट हैं। जो तारे औरों की अपेक्षा निकट हैं उनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में तीन साढ़े तीन वर्ष लग जाते हैं, दूरवालों का प्रकाश तीन तीन चार चार सौ वर्ष में पहुँचता है। प्रकाश की गति एक सेकंड में १८६००० मील ठहराई गई है। इसी से इनकी दूरी का अंदाजा हो सकता है।

२. तारा। तारक (को०)। ३. मोती (को०)। ४. वह हार जिसमें २७ मोती गुँथे गए हों (को०)।

नक्षत्रकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का एक परिशिष्ट जिसमें चंद्रमा की स्थिति आदि का वर्णन है।

नक्षत्रकांतिविस्तार—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रकान्तिविस्तार] सफेद ज्वार। ज्वार या मायनाल का सफेद गुच्छा।

नक्षत्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों का अलग अलग समूह या गण।

विशेष—मुहूर्त्तसंहिता में लिखा है कि रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफाल्गुनी इन चारों नक्षत्रों को ध्रुवगण कहते हैं। ध्रुवगण में अभिषेक, शांति, वृक्ष, नगर धर्म, बीज और ध्रुव कार्य का आरंभ करना उचित है। मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा और आश्लेषा के स्वामी तीक्ष्ण हैं इसलिये इनके समूह को तीक्ष्णगण कहते हैं। इनमें अभिघात, मंत्रसाधन, वेताल, बंध, वध, और भेद संबंधी कार्य सिद्ध होते हैं। पूर्वाषाढ़ा, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, भरणी और मघा ये पाँचो नक्षत्र उग्रगण कहलाते हैं, उजाड़ने, नष्ट करने, शठता करने, बंधन, विष, दहन और शस्त्राघात आदि की सिद्धि के लिये इस गण के नक्षत्र बहुत उपयुक्त हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य के समूह को लघुगण कहते हैं, इसमें पुण्य, रति, ज्ञान, भूषण, कला, शिल्प आदि के कार्य की सिद्धि होती है। अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा और रेवती को मृदुगण कहते हैं और ये वस्त्र, भूषण, मंगल गीत और मित्र आदि के संबंध में हितकारी और उपयुक्त हैं। विशाखा और कृत्तिका को मृदुतीक्ष्णगण कहते हैं, इनका फल मृदु और तीक्ष्ण गणों के फल का मिश्रण होता है। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति ये पाँचों 'चरगण' कहलाते हैं, और इनमें चरकर्म हितकारी होता है।

नक्षत्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तांत्रिकों के अनेक चक्रों में से एक।

विशेष—इसके अनुसार दीक्षा के समय नक्षत्रों आदि के विचार से गुरु यह निश्चय करता है कि शिष्य को कौन सा मंत्र दिया जाय।

२. राशिचक्र।

नक्षत्रचिंतामणि—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रचिन्तामणि] एक प्रकार का कल्पित रत्न।

विशेष—इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उससे जो कुछ माँगा जाय वह मिलता है।

नक्षत्रदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो नक्षत्र देखता हो। २. ज्योतिषी।

नक्षत्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न पदार्थों का दान।

विशेष—जैसे, रोहिणी नक्षत्र में घी, दूध और रत्न, मृगशिरा नक्षत्र में बछड़े सहित गौ, आर्द्रा में खिचड़ी, हस्त में हाथी और रथ, अनुराधा में उत्तरीय सहित वस्त्र, पूर्वाषाढ़ा में बरतन समेत दही और माना हुआ सत्तू, रेवती में काँसा, उत्तराभाद्रपद में मांस आदि। इस प्रकार के दान से बहुत अधिक पुण्य होता है और स्वर्ग मिलता है।

नक्षत्रनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विशेष—पुराणानुसार दक्ष की अश्विनी आदि सत्ताईस (नक्षत्रों) कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ हुआ था, इसीलिये चंद्रमा को नक्षत्रनाथ कहते हैं।

नक्षत्रनेमि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का एक नाम। २. चंद्रमा। ३. ध्रुवतारा (को०)।

नक्षत्रनेमि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] रेवती नामक नक्षत्र (को०)।

नक्षत्रप—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

नक्षत्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्रों के चलने का मार्ग । २. तारों भरा आकाश (को०) ।

नक्षत्रपदयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार का योग जो उस समय होता है जब सूर्य जन्मराशि से छठे स्थान में अथवा मेष राशि में हो और चंद्रमा वृष राशि में हो ।

विशेष—कहते हैं, इस योग में यदि राजा युद्ध के लिये यात्रा करे तो वह अपने शत्रु को उसी प्रकार परास्त कर सकता है जिस प्रकार हवा बादलों को उड़ा देती है ।

नक्षत्रपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी [को०] ।

नक्षत्रपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पुरुष जिसकी कल्पना भिन्न भिन्न नक्षत्रों को उसके भिन्न भिन्न अंग मानकर की जाती है ।

विशेष—बृहत्संहिता मे लिखा है कि मूल नक्षत्र को नक्षत्रपुरुष के पाँव, रोहिणी और अश्विनी को जाँघ, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा को ऊरु, उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी को गुह्य, कृत्तिका को कमर, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वाभाद्रपदा को पार्श्व, रेवती को कोख, अनुराधा को छाती, धनिष्ठा को पीठ, विशाखा को बाँह, हस्त को कर, पुनर्वसु को उंगलियाँ, अश्लेषा को नाखून, ज्येष्ठा को गरदन, श्रवण को कान, पुष्य को मुख, स्वाति को दाँत, शतभिषा को हास्य, मघा को नाक, मृगशिरा को आँख, चित्रा को ललाट, भरणी को सिर और आर्द्रा को बाल मानकर नक्षत्रपुरुष की कल्पना करनी चाहिए । वामन पुराण के अनुसार इसका व्रत सुंदरता प्राप्त करने के उद्देश्य से चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को, जब चंद्रमा मूलनक्षत्रयुक्त हो, किया जाता है । व्रत के दिन विष्णु और नक्षत्रों की पूजा करके दिन भर उपवास करना चाहिए । नक्षत्रपुरुष के पैरोंवाले नक्षत्र से आरंभ करके प्रतिमास हर एक अंग के नक्षत्र के नाम से भी व्रत करने का विधान है ।

नक्षत्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र के रहने का समय । नक्षत्रकाल ।

नक्षत्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह हार जिसमें सत्ताईस मोती हों । २. तारक समूह (को०) । ३. चंद्रमा के मार्ग के नक्षत्रों की स्थिति । ४. हार जो हाथियों को पहनाया जाता है (को०) ।

नक्षत्रमालिनी[1]—वि० [सं० नक्षत्र+मालिनी] नक्षत्रों की मालावाली । उ०—नक्षत्रमालिनी प्रकृति हीरे नीलम से जड़ी पुतली के समान उसकी आँखों का खेल बन गई ।—आकाश०, पृ० १०१ ।

नक्षत्रमालिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलोंवाली एक लता का नाम । जाती [को०] ।

नक्षत्रयाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदि के दोषों की शांति कराता हो ।

विशेष—महाभारत के अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और प्रायः चांडाल के समान होता है ।

नक्षत्रयोग—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों के साथ ग्रहों का योग ।

नक्षत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जो विवाह के लिये निषिद्ध हो ।

नक्षत्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों के स्वामी, चंद्रमा ।

नक्षत्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुमार वह लोक जिसमें नक्षत्र हैं । यह लोक चंद्रलोक से ऊपर माना जाता है ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि जब दक्ष कन्या ने महादेव के लिये कठिन तपस्या की थी तब उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें ज्योतिषचक्र में चंद्रलोक से ऊपर एक स्वतंत्र लोक में रहने का वर दिया था ।

नक्षत्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रवर्त्मन्] आकाश [को०] ।

नक्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या [को०] ।

नक्षत्रवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों के बीच का कल्पित मार्ग ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों में एक वीथि होती है । स्वाति, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि होती है; रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा मे गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा में ऐरावत; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में वृषभ; अश्विनी, रेवती और पूर्वा एवं उत्तरा भाद्रपद में गोवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जरद्गववीथि, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में मृगवीथि, हस्त, विशाखा और चित्रा में अजावीथि, तथा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में दहनावीथि । इस प्रकार २७ नक्षत्रों में ९ वीथियाँ होने पर प्रत्येक वीथि तीन बार होती है अतः इनमें तीन तीन वीथियाँ सूर्यमार्ग के उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं । फिर इनमें से भी प्रत्येक यथाक्रम उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं—जैसे, तीन नागवीथियाँ हैं, उनमें से प्रथम उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमार्गस्था हुई । इन वीथियों का विचार फलित में होता है—जैसे, शुक्र जिस समय उत्तरवीथि में होकर उदित वा अस्त होता है उस समय सुभिक्ष और मंगल होता है, मध्यवीथि में होने से मध्यफल और दक्षिण वीथि में होने से मंदफल होता है ।

नक्षत्रवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा टूटना । उल्कापात होना ।

नक्षत्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र जिसमें यह दिखलाया जाता है कि किन किन पदार्थों और जातियों आदि का स्वामी कौन नक्षत्र है ।

विशेष—बृहत्संहिता के १५वें अध्याय में लिखा है—सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, भूत की भाषा जाननेवाले, खान में काम करनेवाले, हज्जाम, द्विज, कुम्हार, पुरोहित और वर्षफल जाननेवाले कृत्तिका नक्षत्र के अधीन हैं । सुव्रत, पुण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गो, बैल, जलचर, किसान, और पर्वत रोहिणी के अधिकार में हैं । पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, पक्षी, मृग, यज्ञ में सोमपान

करनेवाले, गंधर्व, कामी और पत्रवाहक मृगशिरा के अधिकार में हैं। वध, बंध, परदारहरण, शठता और भेद करनेवाले आर्द्रा के अधिकार में हैं। इसी प्रकार और भी भिन्न भिन्न पदार्थों आदि के संबंध में यह बतलाया है कि वे किस नक्षत्र के अधिकार में हैं।

नक्षत्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह व्रत जो किसी विशिष्ट नक्षत्र के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—जिस नक्षत्र के उद्देश्य से व्रत किया जाता है, व्रत के दिन उस नक्षत्र के स्वामी देवता का पूजन भी किया जाता है।

नक्षत्रशूल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में काल का वह वास जो किसी विशिष्ट दिशा में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने के कारण माना जाता है।

विशेष—यदि पूर्व दिशा में श्रवण या ज्येष्ठा, दक्षिण में अश्विनी या उत्तराभाद्रपद, पश्चिम में रोहिणी या पुष्य और उत्तर में उत्तर फाल्गुनी या हस्त नक्षत्र हों तो उस दिशा में यात्रा आदि के लिये नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्षत्रसन्धि] चंद्रमा आदि ग्रहों का पूर्व नक्षत्र भोग में से उत्तर नक्षत्र में संक्रमण।

नक्षत्रसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक विशेष प्रकार का यज्ञ जो नक्षत्रों के निमित्त किया जाता है।

विशेष—यह यज्ञ नक्षत्रमास के अनुसार होता है।

नक्षत्रसाधक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

नक्षत्रसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौन सा ग्रह कितने समय तक रहता है।

नक्षत्रसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्योतिषी जो स्वयं सारी गणना आदि न कर सकता हो, केवल दूसरों के मत के अनुसार ज्योतिष संबंधी साधारण काम करता हो।

नक्षत्रसूची—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रसूचिन्] दे० 'नक्षत्रसूचक'।

नक्षत्रामृत—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा आदि कार्यों के लिये एक बहुत ही उत्तम योग।

विशेष—यह किसी विशेष दिन में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने पर माना जाता है। जैसे, रविवार को हस्त, पुष्य, रोहिणी या मूल आदि नक्षत्रों का होना, सोमवार को श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, अश्विनी या हस्त आदि का होना, मंगलवार को रेवती, पुष्य, आश्लेषा, कृत्तिका या स्वाती आदि का होना, आदि आदि। ऐसे योग में व्यतीपात आदि के दोषों का नाश हो जाता है।

नक्षत्रेद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जिनका नक्षत्रों में रहना माना जाता है।

नक्षत्रिय—वि० [सं०] १. नक्षत्र से संबंध रखनेवाला। २. क्षत्रिय से भिन्न। ३. सत्ताईस।

नक्षत्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रिन्] १. चंद्रमा। २. विष्णु।

नक्षत्री[2]—वि० [सं० नक्षत्र + ई (प्रत्य०)] जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो। भाग्यवान्। खुशकिस्मत।

नक्षत्रेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कपूर।

नक्षत्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

नक्षत्रेष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नक्षत्रों के उद्देश्य से किया जाय।

नक्सगीरीⓟ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नक्श गीरी] धातु या पत्थर पर चित्र या बेल बूटे बनाने का काम। उ०—जड़े पाथरे नक्सगीरी कराये।—धरनी०, पृ० ६।

नख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ या पैर का नाखून।

विशेष—दे० 'नाखून'।

पर्या०—पुनर्भव। कररुह। नखर। कामांकुश। करज। पाणिज। कराग्रज। करकंटक। स्मरांकुश। रतिपथ। करचंद्र। कराकुश।

२. एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जो सीप या घोंघे आदि की जाति के एक प्रकार के जानवर के मुँह का ऊपरी आवरण या ढकना होता है।

विशेष—इसका आकार नाखून के समान चंद्राकार या कभी कभी बिलकुल गोल भी होता है। यह छोटा, बड़ा, सफेद, नीला कई प्रकार और रंग का होता है; जिनमें से छोटा और सफेद रंग का अच्छा माना जाता है। छोटे को वैद्यक ग्रंथों में क्षुद्रनखी और बड़े को शखनखी, व्याघ्रनखी, बृहन्नखी कहते हैं। किसी किसी का आकार घोड़े के सुम या हाथी के कान के समान भी होता है। इसे जलाने से बदबू निकलती है, पर तेल में डालने से खुशबू निकलती है। इसका व्यवहार दवा के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह हलका, गरम, स्वादिष्ट, शुक्रवर्धक और व्रण, विष, श्लेष्मा, वात, ज्वर, कुष्ट और मुख की दुर्गंध दूर करनेवाला है।

३. खंड। टुकड़ा। ४. बीस की संख्या (को०)। ५. क्लीब। नपुंसक (को०)।

नख[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नख] १. एक प्रकार का बटा हुआ महीन रेशमी तागा जिससे गुड्डी उड़ाते और कपड़ा सीते हैं। २. गुड्डी उड़ाने के लिये वह पतला तागा जिसपर माँझा दिया जाता है। डोर।

नखकर्तनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाखुन काटने का औजार। नहरनी।

नखकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] हज्जाम। नाई।

नखक्षत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दाग या चिह्न जो नाखून के गड़ने के कारण बना हो। २. स्त्री के शरीर पर का, विशेषतः स्तन आदि पर का, वह चिह्न जो पुरुष के मर्दन आदि के कारण उसके नाखूनों से बन जाता है।

नखखादी—संज्ञा पुं० [नखखादिन्] वह जो दाँतों से अपने नाखून कुतरता हो।

विशेष—मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य का बहुत जल्दी नाश हो जाता है।

नखगुच्छफला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की सेम।

नखचारी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नखचारिन्] पंजे के बल चलनेवाला जीव।

नखच्छत(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नखक्षत] दे॰ 'नखक्षत'।

नखछोलिया(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नख + हिं॰ छोलना] दे॰ 'नखक्षत'।

नखजाह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नाखून का पिछला भाग, नखमूल।

नखत(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्र] दे॰ 'नक्षत्र'।

नखतपति(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्रपति] दे॰ 'नक्षत्रपति'। उ॰—जिमि फारि महातम निकर को निकरत नभ में नखतपति।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ४०४।

नखतर(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्र] दे॰ 'नक्षत्र'।

नखतराज(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्रराज] चंद्रमा।

नखतराय—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्रराज] दे॰ 'नखतराज'।

नखता—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की चिड़िया जो भारत के सिवा और कहीं नहीं होती।

विशेष—यह बरसात के प्रारंभ में दिन भर उड़ा करती है और भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न स्थानों पर रहती है। यह कीड़े मकोड़े और फल आदि खाती है और पाली भी जा सकती है।

नखतालो(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्रावली] नक्षत्रपंक्ति। नक्षत्रसमूह। उ॰—सरसी गंभीर और हंसनि की जासु तीर तहाँ उदय ह्वै रहीं विचित्र नखतालो री।—दीन॰ ग्रं॰, पृ॰ ८।

नखदान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'नखक्षत'। उ॰—श्यामा का नखदान मनोहर मुक्ताओं से ग्रथित रहा।—स्कंद॰, पृ॰ १६।

नखदारण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नहरनी। २. बाज। श्येन पक्षी (को॰)।

नखतेस(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्रेश] दे॰ 'नक्षत्रेश'।

नखत्र(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नक्षत्र] दे॰ 'नक्षत्र'।

नखना¹—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ नाखना] उल्लंघन होना। डाँका जाना।

नखना²—क्रि॰ स॰ उल्लंघन करना। पार करना। उ॰—मानहिं मान ते मानिनि केशव मानस ते कुछ मान नखैगो। मान है री सु जु माने नहीं परिमान नखे अभिमान नखैगो।—केशव (शब्द॰)।

नखना³—क्रि॰ स॰ [सं॰ नष्ट] नष्ट करना। उ॰—जो लौं इह तन प्रान पठान न रखिहौं। मऊ फरक्काबाद खोदि कै नखिहौं।—सूदन (शब्द॰)।

नखनिष्पाव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की सेम।

नखपद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नाखून धँसने से बना चिह्न। नखक्षत (को॰)।

नखपर्णी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बिछुआ घास।

नखपुंजफला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नखगुच्छफला] सफेद सेम।

नखपुष्पी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पृक्का या असबरग नाम का गंधद्रव्य।

नखपूर्विका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] हरी सेम।

नखफलिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सेम (को॰)।

नखबान(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नख] नख। नाखून। उ॰—सेज मिलत सामी कहँ लावै उर नखबान। जेहि गुन सबै सिंघ के सो सखिनि, सुलतान।—जायसी (शब्द॰)।

नखबिंदु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नखबिन्दु] दे॰ 'नखबिंदु' (को॰)।

नखमुच—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चिरौंजी का पेड़। २. धनुष (को॰)।

नखरंजनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नखरञ्जनी] नहरनी।

नखर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नख। नाखून। २. प्राचीन काल का एक अस्त्र।

नखरा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नखरह्] १. वह चुलबुलापन, चेष्टा या चंचलता आदि जो जवानी की उमंग में अथवा प्रिय को रिझाने के लिये की जाती है। चोचला। नाज। हाव भाव। जैसे,—उसे बहुत नखरा आता है।

यौ॰—नखरातिल्ला। नखरेबाज।

क्रि॰ प्र॰—करना।—दिखाना।—निकालना।

मुहा॰—नखरा बघारना = नखरा करना।

२. साधारण चपलता या चुलबुलापन। बनावटी चेष्टा। ३. बनावटी इनकार। जैसे,—(क) जब कहीं चलने का काम होता है तब तुम एक न एक नखरा निकाल बैठते हो। (ख) ये सब इनके नखरे हैं, ये करेंगे वही जो तुम कहोगे।

नखरातिल्ला—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नखरा + हिं॰ तिल्ला (अनु॰)] नखरा। चोचला। नाज।

नखरायुध—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. शेर। २. चीता। ३. कुत्ता। ४. मुरगा (को॰)।

नखराह्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कनेर का पेड़।

नखरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नख नाम का गंधद्रव्य।

नखरीला†—वि॰ [फ़ा॰ नखरा + हिं॰ ईला (प्रत्य॰)] चोचलेबाज। नखरा करनेवाला।

नखरेख(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नख + रेखा] शरीर में लगा हुआ नखों का चिह्न जो संभोग का चिह्न माना जाता है। नखरौट। उ॰—मरकत भाजन सलिलगत इंदुकला के बेख। भीन झगा मैं झलमले स्यामगात नखरेख।—बिहारी (शब्द॰)।

नखरेखा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. नखक्षत। नाखून का दाग। २. कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो बादलों की माता थी। उ॰—दारा ते तृणवृक्ष जोन लागत पर काजै। नखरेखा सुत मेघ कोटि छप्पन उपराजै।—विश्राम (शब्द॰)।

नखरेबाज—वि॰ [फ़ा॰ नखरह् + बाज] जो बहुत नखरा करता हो। नखरा करनेवाला।

नखरेबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नखरह् + बाजी (प्रत्य॰)] नखरा करने की क्रिया या भाव।

नखरौट—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नख + हिं॰ खरोट] नाखून की खरोट। शरीर पर का वह निशान जो नाखून चुभाने से होता है।

नखबिंदु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नखबिन्दु] वह गोल या चंद्राकार चिह्न जो स्त्रियाँ नाखून के ऊपर मेंहदी या महावर से बनाती हैं।

उ०—बागत अनेक तामैं जावक को बिंदु औ अनेक नखविदुन की कला सरसत है।—चरण (शब्द०)।

नखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके नाखूनों में विष हो। जैसे, मनुष्य, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मगर, मेंढक गोह, छिपकली आदि।

नखविष्किर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जानवर जो अपने शिकार को नाखून से फाड़कर खाता हो। जैसे, शेर, बाज आदि।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार ऐसे जानवरों का मांस नहीं खाना चाहिए।

नखवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नील का पेड़।

नखव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून से बनी खरोंच। नखक्षत।

नखशंख—संज्ञा पुं० [सं० नखशङ्ख] छोटा शंख।

नखशस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] नहरनी।

नखशिख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नख से लेकर शिख तक के सब अंग।

मुहा०—नखशिख से=सिर से पैर तक। ऊपर से नीचे तक। जैसे,—वह नखशिख से दुरुस्त है।

२. वह काव्य जिसमें किसी देवता या नायक नायिका के सभी अंगों का वर्णन हो।

नखशिख[2]—क्रि० वि० आमूलचूल। पूर्णतया। उ०—विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपांतर।—ग्राम्या, पृ० ५२।

नखशूल—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून का वह रोग जिसमें उसके आस पास या जड़ में पीड़ा होती है।

नखसिख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नखशिख] दे० 'नखशिख'। उ०—नख सिख से रचि नेत नायिका, इसे बनाया को। उसी को खोज करो बावा।—रामभ०, पृ० ५७।

नखहरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नहरनी।

नखांक—संज्ञा पुं० [सं० नखाङ्क] १. व्याघ्रनखी। व्याघ्रनख। विशेष—दे० 'नख'। २. नाखून गड़ने का चिह्न।

नखांग—संज्ञा पुं० [सं० नखाङ्ग] १. नख नामक गंधद्रव्य। २. नलिका या नली नामक गंधद्रव्य।

नखाघात—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाखून का आघात। नखक्षत।

नखानखि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी लड़ाई जिसमें दोनों दल परस्पर नाखून का प्रयोग करें।

नखायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. शेर। २. चीता। ३. कुत्ता। ४. मुरगा (को०)।

नखारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

नखालि—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा शंख।

नखालु—संज्ञा पुं० [सं०] नील वृक्ष। नील का पेड़।

नखाशी[1]—संज्ञा पुं० [सं० नखाशिन्] उल्लू।

नखाशी[2]—वि० जो नाखूनों की सहायता से खाता हो।

नखास—संज्ञा पुं० [अ० नख्खास] १. वह बाजार जिसमें पशु, विशेषतः घोड़े बिकते हैं। २. साधारणतः कोई बाजार।

मुहा०—नखास पर भेजना या चढ़ाना=बेचने के लिये बाजार भेजना। नखास की घोड़ी या नखासवाली=कसब कमानेवाली स्त्री। खानगी। (बाजारू)।

नखियाना(पु)†—क्रि० स० [सं० नख+इयाना (प्रत्य०)] नाखून गड़ाना या नाखून से खरोंचना।

नखी[1]—संज्ञा पुं० [सं० नखिन्] १. शेर। २. चीता। ३. वह जानवर जो नाखून से किसी पदार्थ को चीर या फाड़ सकता हो। ४. बढ़े हुए नाखूनवाला। उ०—लाखों मौनी फिरैं लाखों बाघंबरी। उर्धमुखी औ नखी लाखों लोह लंगरी। लाखों जल में पड़े (लाखों) धूरि को छानतें। अरे हाँ पलटू जामें राजी राम औ कोउ नहिं जानते।—पलटू०, भा० २, पृ० ९२।

नखी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

नखेदा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निषेध'[1]। उ०—ब्रह्मा हाथ चार छिप वेदा। तीन लोक महँ करत नखेदा।—कबीर सा०, पृ० २४८।

नखोटना(पु)†—क्रि० स० [सं० नख+ओटना (प्रत्य०)] नाखून से खरोचना या नोचना। उ०—कान्ह बलि जाउँ ऐसी आरि न कीजै।·········बरजत बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने। धरत धरणि पर लोटे। माता को चीर नखोटे। अंग आभूषण सब तोरे। लवनी दधि भाजन फोरे।—सूर (शब्द०)।

नखोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] निमोना। हरी मटर आदि से बनाया गया सालन।

नख्खास—संज्ञा पुं० [अ० नख़्ख़ास] दे० 'नखास'।

नग[1]—वि० [सं०] १. न गमन करनेवाला। न चलने फिरनेवाला। अचल। स्थिर।

नग[2]—संज्ञा पुं० १. पर्वत। पहाड़। २. पेड़। वृक्ष। ३. सात की संख्या। ४. सर्प। साँप। ५. सूर्य। ६. कोई वनस्पति (को०)।

नग[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० नगीना, सं० नग] १. शीशे या पत्थर आदि का रंगीन बढ़िया टुकड़ा जो प्रायः अँगूठियों आदि में जड़ा जाता है। नगीना।

मुहा०—नग बैठाना=नग जड़ना।

२. अदद। संख्या। जैसे, पाँच नग लोटा।

नगचाना‡—क्रि० अ० [हिं० नगीच से नामिक धातु] दे० 'नगिचाना'।

नगज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

नगज[2]—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हो।

नगजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. पाषाणभेदा लता। पखानभेद।

नगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र में तीन लघु अक्षरों का एक गण (।।।)। जैसे, कमल, मदन, चरण, शरण, समर नयन आदि।

विशेष—इस गण से छंद का प्रारंभ करना शुभ माना जाता है।

नगणु¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

नगण्य—वि० [सं०] जो गणना करने के योग्य न हो। बहुत ही साधारण या गया बीता। तुच्छ। जैसे.—इस विषय पर केवल एक ही पुस्तक मिली; परंतु वह भी नगण्य ही है।

नगदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नगदन्ती] विभीषण की स्त्री का नाम। उ०—नगदंती केहरि मुख जाई। सो बल्लभा विभीषण पाई।—विश्राम (शब्द०)।

नगद¹—संज्ञा पुं० [अ० नक़द] दे० 'नकद'।

नगद²—वि० १. तैयार (रुपया)। २. खास। उ०—हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

नगद³—संज्ञा पुं० [सं० नागदमनी] नागदमनी।

नगदनारायण—संज्ञा पुं० [अ० नक़द+सं० नारायण] द्रव्य। रुपया पैसा।

नगदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नक़द + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'नकदी'।

नगधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत के धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचंद्र। गिरिधर। उ०—कहा कहौं अंग अंग की सोभा नगधर पिय सों तू अनुरागी।—छीत०, पृ० ७१।

नगधरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नगधारण] दे० 'नगधर'।

नगनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नगनन्दिनी] पार्वती जो हिमालय की कन्या मानी जाती है।

नगन(पु)†—वि० [सं० नग्न] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। २ जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

नगनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी जो किसी पहाड़ से निकली हो।

नगना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नग्ना] दे० 'नग्ना'।

नगनिका—संज्ञा स्त्री० [?] १. संगीत में संकीर्ण राग का एक भेद। २. क्रीड़ा नामक वृत्त का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक यगण और एक गुरु होता है। उ०—उगै चारो। हरो तारो। करो क्रीड़ा। रखो बीड़ा (शब्द०)।

नगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नग्ना] १. वह कन्या जो रजोधर्म को प्राप्त न हुई हो। वह कन्या जिसके स्तन न उठे हों और जो अपना ऊपरी शरीर खोले घूम फिर सकती हो। २. कन्या। पुत्री। बेटी। उ०—ऋषि तनया कह्यो मोहिं बिवाहि। कन्व कह्यो तू गुरु नगनी आहि।—सूर (शब्द०)। ३ नंगी स्त्री।

नगनिकाछंद—संज्ञा पुं० [हिं० नगनिका + छंद] दे० 'नगनिका'।

नगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमालय पर्वत। २. चंद्रमा (वृक्ष, वनस्पति, ओषधि के स्वामी होने से)। ३. कैलाश के स्वामी, शिव। ४. सुमेरु। उ०—चतुरानन बल संभारि मेघनाद आयो। मानो घन पावस में नगपति है छायो।—सूर (शब्द०)।

नगपेच(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] सिर या कपाल का एक गहना। उ०—शिव सेखर सनचंद जटित नगपेच बिब धरि। स्याम सचिक्कन चिकुर धाम सों स्याम भए धिरि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३३३।

नगफँग—वि० [?] नटखट। शरीर। उ०—हौ भले नगफँग परे गढ़ीबे अब ए गढ़न महरि मुख जोए।—तुलसी (शब्द०)।

नगभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पखानभेद लता। २. प्राचीन काल का पत्थर तोड़ने का एक प्रकार का अस्त्र। ३. इंद्र।

विशेष—पुराणानुसार इंद्र ने पहाड़ों के पर काटे थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

नगभू¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी पखानभेद लता। २. पहाड़ी जमीन।

नगभू²—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हुआ हो।

नगमा—संज्ञा पुं० [अ० नग्मह्] १. मधुर स्वर। २. गीत। गाना। ३. राग। उ०—कोकिलो, तुमको नई ऋतु के नए नगमे मुबारक।—मिलन०, पृ० १२८।

नगमासंज—वि० [अ० नग्मह् + फ़ा० सज] गाना गानेवाला (को०)।

नगमासंजी—संज्ञा स्त्री० [अ० नग्मह् + फ़ा० सज + ई (प्रत्य०)] गाना। गीत (को०)।

नगमूर्धा—संज्ञा पुं० [सं० नगमूर्धन्] पर्वत का शिखर। चोटी (को०)।

नगरंध्रकर—संज्ञा पुं० [सं० नगरन्ध्रकर] कार्तिकेय का एक नाम।

नगवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

नगर—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदि से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशों के लोग रहते हों। शहर।

विशेष—हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस स्थान पर बहुत सी जातियों के अनेक व्यापारी और कारीगर रहते हों और प्रधान न्यायालय हो, उसे नगर कहते हैं। युक्तिकल्पतरु नामक ग्रंथ में लिखा है कि राजा को शुभ मुहूर्त में लंबा, चौकोर, तिकोना या गोल नगर बसाना चाहिए। इसमें से तिकोना और गोल नगर बुरा समझा जाता है। लंबा नगर बहुत ही शुभ और स्थायी तथा चौकोर नगर चारों प्रकार के फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) का देनेवाला माना जाता है।

पर्या०—पुर। पुरी। नगरी। पत्तन। पट्टन। पटभेदन। निगम। कटक। स्थानीय। पट्ट।

यौ०—राजनगर। नगरबसेरा। नगरनारि। नगरकीर्तन, आदि।

नगरकाक—संज्ञा पुं० [सं०] नीच या कुत्सित व्यक्ति (को०)।

नगरकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] वह गाना बजाना या कीर्तन, विशेषतः ईश्वर के नाम का भजन या कीर्तन, जिसे नगर की गलियों और सड़कों में घूम घूमकर कुछ लोग करें।

नगरघात—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

नगरतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात प्रांत का एक प्राचीन तीर्थ जहाँ किसी समय शिव का निवास माना जाता था।

नगरनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नगर + नायिका] वेश्या। रंडी।

नगरनारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नगरनारी] वेश्या।

नगरनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंडी। वेश्या।

नगरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका काम सब प्रकार के उपद्रवों आदि से नगर की रक्षा करना हो।

नगरपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर की व्यवस्था आदि करनेवाली संस्था। अं० म्युनिसपैलिटी।

नगरप्रदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मूर्ति के साथ नगर की परिक्रमा करना [को०]।

नगरप्रांत—संज्ञा पुं० [सं० नगरप्रान्त] नगर के समीप का भाग या भूमि [को०]।

नगरमंडना—संज्ञा पुं० [सं० नगरमण्डना] वेश्या। रंडी।

नगरमर्दी—संज्ञा पुं० [सं० नगरमर्दिन्] मस्त हाथी।

नगरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] शहर में का बड़ा और चौड़ा रास्ता। राजमार्ग।

नगरमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

नगररक्षी—संज्ञा पुं० [सं० नगररक्षिन्] शहर की रक्षा करनेवाला। शहर का पहरेदार।

नगरवा—संज्ञा पुं० [देश०] ईख की एक प्रकार की बीमारी जो मध्यप्रदेश के उन प्रांतों में होती है जहाँ की मिट्टी काली या करेली होती है। पलवार।

विशेष—इसमें खेतों के सींचने की आवश्यकता नहीं होती; बल्कि बरसात के बाद जब ईख के अंकुर फूटते हैं तब जमीन पर इसलिये पत्तियाँ बिछा देते हैं जिसमें उसमें का पानी भाप बनकर उड़ न जाय।

नगरवासी—संज्ञा पुं० [सं० नगरवासिन्] नागरिक। शहर में रहनेवाला। पुरवासी।

नगरविवाद—संज्ञा पुं० [सं० नगर + विवाद] दुनिया के झगड़े बखेड़े। उ०—धनमद जोवनमद राजमद भूल्यो नगर विवादि। —स्वामी हरिदास (शब्द०)।

नगरसेठ—संज्ञा पुं० [सं० नगर + हिं० सेठ] नगर का प्रमुख धनपति या प्रधान व्यापारी। उ०—रूप नगर में बसत है नगरसेठ तुव नैन।—स० सप्तक, पृ० १८४।

नगरहा—संज्ञा पुं० [हिं० नगर + हा (प्रत्य०)] शहर में रहनेवाला। नागरिक।

नगरहार—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन भारत का एक नगर जो किसी समय वर्तमान जलालाबाद के निकट बसा था।

विशेष—चीनी यात्री हुएनसांग ने अपनी यात्रा में इसका वर्णन किया है। उस समय यह नगर कपिशा राज्य के अधीन था। किसी समय इस नाम का एक राज्य भी था जो उत्तर में काबुल नदी और दक्षिण में सफेद कोह तक था।

नगरा¹—संज्ञा पुं० [हिं०] देशी हल का वह भाग जिसमें हरीस, मुठिया और फाल लगा रहता है।

नगराँ²—संज्ञा पुं० [सं० नगर + हिं० आ (प्रत्य०)] छोटा गाँव।

नगराई पु†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नगर + आई (प्रत्य०)] १. नागरिकता। शहरातीपन। २. चतुराई। चालाकी। उ०—
सूरदास स्वामी रति नागर नागरि देखि गई नगराई। —सूर (शब्द०)।

नगरादि,सन्निवेश—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्थापन और निर्माण। शहर बनाना या बसाना।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि शहर बसाने के लिये राजा को पहले एक या आधा योजन लंबा सुंदर स्थान चुनना चाहिए और बाजार आदि बनवाने चाहिए। नगर में अग्निकोण में सुनारों आदि के लिये दक्षिण में नाचने गानेवालों और वेश्याओं आदि के लिये, नैऋत्य में नटों और कैवर्तों आदि के लिये, पश्चिम में रथ और अस्त्र आदि बनानेवालों के लिये वायुकोण में नौकर चाकरों और दासों आदि के लिये, उत्तर में ब्राह्मणों, यति और सिद्धों आदि के लिये, ईशान कोण में फल फलहरी और अन्न आदि बेचनेवालों के लिये और पूर्व में योद्धाओं आदि के रहने के लिये स्थान बनवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त पूर्व में क्षत्रियों के लिये, दक्षिण में वैश्यों के लिये और पश्चिम में शूद्रों के लिये स्थान बनाना चाहिए; और नगर के चारों ओर सेना रखनी चाहिए। दक्षिण में श्मशान, पश्चिम में गौओं आदि के रहने और चरने आदि के लिये परती जमीन और उत्तर में खेत होने चाहिए। नगर में स्थान स्थान पर देवमंदिर होने चाहिए।

नगराधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] नगररक्षकों का प्रधान अधिकारी।

नगराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगराध्यक्ष'।

नगराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्वामी या रक्षक। वह जिसपर नगर की रक्षा आदि का पूरा पूरा भार हो।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि प्राचीन काल में राजा की ओर से शासन और न्याय आदि के कामों के लिये जो अधिकारी नियुक्त किया जाता था वह नगराध्यक्ष कहलाता था।

नगराभ्याश, नगराभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] नगर की निकटता या समीपता [को०]।

नगरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर। शहर।

नगरी²—संज्ञा पुं० [सं० नगरिन्] शहर में रहनेवाला मनुष्य। नागरिक। शहराती।

नगरीकाक—संज्ञा पुं० [सं०] बगला।

नगरीबक—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ [को०]।

नगरीय—वि० [सं०] नगर का। नगर से संबंधित। नागरिक।

नगरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।

नगरोपांत—संज्ञा पुं० [सं० नगरोपान्त] नगर का बाहरी भाग। उपनगर।

नगरौका—संज्ञा पुं० [सं० नगरौकस्] शहर का निवासी। नागरिक।

नगरौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला।

नगवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] शत्रु को बाँधने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फंदा। नागपाश।

नगवासी(पु)—वि० [हिं० नगवास + ई] नागपाश का। नागपाश संबंधी। उ०—जान पुहार जो भा बनबासी। रोंव रोंव परे फद नगवासी।—जायसी (शब्द०)।

नगवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

नगस्वरूपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण मे एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होता है। इसे प्रमाणी और प्रमाणिका भी कहते हैं। जैसे—जरा लगाव चित्त ही। भजो जु नंद नद ही। प्रमाणिका हिये गहो। जु पार भौ लगा चहो। (शब्द०)।

नगा(पु)—वि० [हिं० नागा] दे० 'नग'। उ०—बग्ग माहिं नगा। सेन सेन ग्रगा। सार धारं मगा। जुट्ट जुट्टं बगा।—पृ० रा०, १। ६४६।

नगाटन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर। कपि।

नगाटन[2]—वि० पहाड़ पर विचरण करनेवाला।

नगाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नगारा] दे० 'नगारा'।

नगाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमालय पर्वत। २. सुमेरु पर्वत।

नगाधिपति, नगाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगाधिप' (को०)।

नगारा—संज्ञा पुं० [अ० नक्कारह्] डुगडुगी या बाएँ की तरह का एक प्रकार का बहुत बड़ा और प्रसिद्ध बाजा। नगाड़ा। डंका। धौंसा। उ०—गज ते आसन अधरहिं धारा। चले राथ तब बजे नगारा।—कबीर सा०, पृ० ४८७।

विशेष—जिसमे एक बहुत बड़ी कूँडी के ऊपर चमड़ा मढ़ा रहता है। कभी कभी इसके साथ इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा भी होता है। इन दोनों को सामने सामने रखकर लकड़ी के दो डंडों से, जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं। मुहावरों के लिये दे० 'नक्कारा'।

नगारि—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र, पुराणानुसार जिन्होंने पर्वतों के पर काटे थे।

नगावास—संज्ञा पुं० [सं०] मोर।

नगाश्रय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीकंद।

नगाश्रय[2]—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला। पर्वतीय।

नगिचाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० नगीच से नामिक धातु] नजदीक आना। समीप आना। उ०—गोता लीजै साथ नाम के सरवर माँही। अनभि आइ नगिचान दौर फिर ऐसा नाहीं।—पलटू०, भा० १, पृ० २४।

नगी(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नगीनह् से हिं० नंग + ई (प्रत्य०)] रत्न। मणि। नगीना। नग। उ०—कंचन की भल रूप डबीन मैं खोल धरो मानो नील नगी है।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

नगी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नग (=पर्वत)] १ पर्वत की कन्या। पार्वती। उ०—नगी किधौ पन्नग की जाई। कमला किधौं देह धरि आई।—सबल (शब्द०)। २. पर्वत पर रहनेवाली स्त्री। पहाड़ी स्त्री। उ०—पन्नगी नगी कुमारि आसुरी निहारि डारों वारि किन्नरी नरी गमारि नारिका।—केशव (शब्द०)।

नगीच†—क्रि० वि० [फ़ा० नजदीक] दे० 'नजदीक'। उ०—चंदन कीच चढ़ायहूँ बीच परे नहिं रौन। मीच नगीच न आ सके लहि बिरहानल भौन।—स० सप्तक, पृ० २५७।

नगीना—संज्ञा पुं० [फ़ा० नगीनह्, तुल० सं० नग] १. पत्थर आदि का वह रंगीन चमकीला टुकड़ा जो शोभा के लिये अंगूठी आदि में जड़ा जाता है। रत्न। मणि।

मुहा०—नगीना सा = बहुत छोटा और सुंदर। २. एक प्रकार का कारखानेदार देशी कपड़ा।

नगीनागर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नगीनह् + गर (प्रत्य०)] दे० 'नगीनासाज'।

नगीनासाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० नगीनह् + साज (प्रत्य०)] वह जो नगीना बनाता या जड़ता हो। नगीना बनाने या जड़ने का काम करनेवाला।

नगेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नगेन्द्र] पर्वतराज। हिमालय।

नगेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नगेंद्र'।

नगेसरि(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नागकेशर] नागकेशर।

नगोच्छ्राय—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत की ऊँचाई (को०)।

नगौक—संज्ञा पुं० [सं० नगौकस्] १. पक्षी। चिड़िया। २. सिंह। शेर। ३. कौआ।

नग्ग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नाग] दे० 'नाग[2]'। उ०—सजे अग्ग पंती मद मोष नग्गं। तिन अग्ग आतस्स भार उतगं।—पृ० रा०, १। ६३७।

नग्गर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नगर] दे० 'नगर'। उ०—ये ही बाजार है जिसे पहाड़ के लोग गर्व से नग्गर कहते हैं।—भस्मावृत०, पृ० १३०।

नग्न[1]—वि० [सं०] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। २. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

नग्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के दिगंबर जैन जो कौपीन और कषाय वस्त्र पहनते हैं।

विशेष—ये पाँच प्रकार के होते हैं—द्विकच्छ, कच्छशेष, मुक्तकच्छ, एकवासा और अवासा।

२. पुराणानुसार वह जिसे शास्त्रों आदि का ज्ञान न हो और जिसके कुल में किसी ने वेद न पढ़ा हो।

विशेष—ऐसे आदमियों का अन्न ग्रहण करना वर्जित है।

३. वह जो गृहस्थाश्रम के उपरांत बिना वानप्रस्थ ग्रहण किए ही संन्यासी हो गया हो।

विशेष—पुराणानुसार ऐसा आदमी पातकी समझा जाता है।

नग्नक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० नग्न'।

नग्नक्षपणक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध संन्यासी या भिक्षु।

नग्नजित्—संज्ञा पुं० [सं०] १. गांधार के एक बहुत पुराने राजा का नाम जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है। २. पुराणानुसार

कोशल के एक राजा का नाम जिसकी सत्या या नाग्नजिती नामक कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था।

नग्नता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नंगे होने का भाव। नंगापन। वस्त्रविहीनता।

नग्नपर्ण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नग्नमुषित—वि॰ [सं॰] जिसका सब कुछ लुट गया हो, यहाँ तक कि उसके पास शरीर का वस्त्र भी न रह गया हो।

नग्नाट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह जो सदा नंगा रहता हो, २ दिगंबर संप्रदायी जैन या बौद्ध भिक्षु [को॰]।

नग्नाटक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'नग्नाट' [को॰]।

नग्मा—संज्ञा पुं॰ [अ॰ नग्मह्] दे॰ 'नगमा'।

यौ॰ नग्मासंज = दे॰ 'नगमासंज'। नग्मासाज = दे॰ 'नगमासाज'।

नग्र(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नगर] दे॰ 'नगर'। उ०—यसो नग्र रम्यं रच्यो भूप वरो। किये चारु चौकंत ययंत हेरो।—हम्मीर रा०, पृ० १७६।

नग्री(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नगरी] दे॰ 'नगरी'। उ०—धार नग्री आयो बीसल राव। जानो बानउ दीवो तिणि ठाव।—बी॰ रासो, पृ॰ १६।

नग्रोध(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ न्यग्रोध] वटवृक्ष। बड़ का पेड़।

नघना—क्रि॰ स॰ [सं॰ लंघन] नाँघना। लाँघना। डाँकना। पार करना। उ॰—भीमसेन अर्जुन दोउ धाए। हेरत हेरत पुर नघि आए।—रघुराज (शब्द०)।

नघाना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ लङ्घन] लँघाना। उल्लंघन कराना। डंका देना। उ॰—बोले बचन पुकारिकै विपिन जो देइ नघाय। द्वै मै मुद्रा ताहि हम देहैं तुरत गहाय।—रघुराज (शब्द०)।

नघु(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'नहुष'। उ०—दुजन दोष नघु कृत क्रिता अप्पनो सु हुथ्यो।—पृ॰ रा॰, ५५। ४६।

नघुख(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नहुष] दे॰ 'नहुष'। उ॰—नघुष राजसू जग्य हुर कर कुट्ट कूप जन।—पृ॰ रा॰, ५५। ३६।

नचन(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नृत्य] दे॰ 'नाच'। उ०—हरि की सी बानि बन ते आवनि गावनि रस रंगी। हरि की सी गेंदुक रचन नचन पुनि होन त्रिभंगी।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २६।

नचना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ नाचना] नाचना। नृत्य करना। उ॰—(क) सजनी सज नीरद निरखि हरषि नचत इत मोर।—केशव (शब्द॰)। (ख) काली की फनाली पै नचत बनमाली है।—पद्माकर (शब्द॰)।

नचना²—वि॰ १. जो नाचता हो। नाचनेवाला। २. जो बराबर इधर उधर घूमता रहता हो, एक स्थान पर न रहता हो।

नचनि(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नाचना] नाच। नृत्य।

नचनिया†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नाचना + इया (प्रत्य॰)] नाचनेवाला। नृत्य करनेवाला।

नचनी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नाचना] करघे की वे दोनों लकड़ियाँ जो बेसर के कुलबाँसे से लटकती होती हैं।

विशेष—इन्हीं के नीचे चकडोर से दोनों राछें बँधी रहती हैं। इन्हीं की सहायता से राछें ऊपर नीचे जाती और आती हैं। इन्हें चक या कलहुरा भी कहते हैं।

नचनी²—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ नाचना] १. नाचनेवाली। जो नाचती हो। २. बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री (स्त्री॰)।

नचवाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नाचना + वाई (प्रत्य॰)] १. नृत्य। नाच। २. नाचने का ढंग या पद्धति। ३. नाचने का पारिश्रमिक या ठहरौनी।

नचवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ नाचना का प्रे॰ रूप] दे॰ 'नचाना'।

नचवैया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नाचना + वैया (प्रत्य॰)] नाचनेवाला। जो नाचता हो।

नचाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ नाचना का प्रे॰ रूप] १. दूसरे को नाचने में प्रवृत्त करना। नाचने का काम दूसरे से कराना। नृत्य कराना। जैसे, रंडी नचाना, बंदर नचाना। २. किसी को बार बार उठने बैठने या और कोई काम करने के लिये विवश करके तंग करना। अनेक व्यापार कराना। हैरान करना। उ॰—(क) जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे। भृकुटि विलास नचावै ताही। अस प्रभु छाँड़ि भजिय कहु काही।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।—तुलसी (शब्द॰)।

मुहा॰—नाच नचाना = घुमाने फिरने या और कोई काम करने के लिये विवश करके तंग करना या हैरान करना। उ॰—कबिरा बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावै नाच।—कबीर (शब्द॰)।

संयो॰ क्रि॰—डालना।—मारना।

३. किसी चीज को बार बार इधर उधर घुमाना या हिलाना। चक्कर देना। भ्रमण कराना। जैसे, हाथ में छड़ी या ताली लेकर नचाना। लट्टू नचाना।

मुहा॰—आँखें (या नैन) नचाना = चंचलतापूर्वक आँखों की पुतलियों को इधर उधर घुमाना। उ०—(क) नैन नचाय कही मुसकाय लला फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर (शब्द॰)। (ख) कछु नैन नचाय नचावति भौंह नचै कर दोऊ और आप नचै (शब्द॰)।

४. इधर उधर दौड़ाना। हैरान या परेशान करना।

नचिंत(पु)—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'निश्चिंत'। उ०—चित लिखी सुरतांण नूं, हुवो नचिंत नबाब।—रा॰ रू॰, पृ॰ ३३८।

नचिकेता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नचिकेतस्] १. वाजश्रवा ऋषि का पुत्र जिसने मृत्यु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।

विशेष—वाजश्रवा ने एक बार दक्षिणा में अपना सर्वस्व दे डाला था। उस समय नचिकेता ने अपने पिता से कई बार पूछा था कि मुझे किसको प्रदान करते हैं। पिता ने खिजलाकर कह दिया कि मैं तुमको मृत्यु के अर्पित करता हूँ। इसपर वह मृत्यु

के पास चला गया था और वहाँ तीन दिन तक निराहार रहकर उससे उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।

२. अग्नि।

नचिर—वि० [सं०] थोड़ी देर रहनेवाला। अल्पकालवाला। क्षणस्थायी (को०)।

नचीतⓟ—वि० [हिं०] दे० 'निश्चित'। उ०—भक्तवछल को बिरद सुनि रज्जब दीन्हो रोय। जब सुनियो पावन पतित रह्यो नचीतो सोय।—राम० धर्म०, पृ० २६७।

नचीलाⓟ—वि० [हिं०] [स्त्री० नचीली] नाचनेवाला। अस्थिर। चंचल।

नचौहाँⓟ†—वि० [हिं० नाचना + औहाँ (प्रत्य०)] जो सदा नाचता या इधर उधर घूमता रहे। चंचल। अस्थिर उ०—देत रचौहैं चित्त कहँ नेह नचौहैं नैन।—बिहारी (शब्द०)।

नच्चनाⓟ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'नाचना'। उ०—हरषी जु हरषि अच्छर हरषि जुग्गिन वृंद सु नाचयव।—हम्मीर रा०, पृ० १२३।

नच्छत्रⓟ—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र'। उ०—कि नील पर्वत की इक सिखर पर, गिरा है नच्छत्र टूट ऊपर।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८९।

नच्यंतⓟ—वि० [हिं०] दे० 'निश्चिंत'। उ०—काम सिहर्णा यौं खड़ा जागि पियारे म्यंत। राम सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

नछत्तरⓟ—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र'। उ०—भर्म सूत सबही छुटे री हेली शौन नछत्तर भाल।—चरण० बानी०, पृ० १४५।

नछत्र—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र'।

नछत्रीⓟ†—वि० [सं० नक्षत्र + ई(प्रत्य०)] भाग्यवान्। भाग्यशाली। जिसका जन्म अच्छे नक्षत्र में हुआ हो। उ०—परम नक्षत्री ख्यात जात छत्रीवर बलधर।—गोपाल (शब्द०)।

नछित्तⓟ—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र'। उ०—सब सभा पूरि जैसे नछित्त। चहुआन बीच जनु चंद रत्त।—पृ० रा०, १। ३६८।

नजदीक—वि० [फ़ा० नज़दीक] [संज्ञा नज़दीकी] निकट। पास। करीब। समीप।

नज़दीकी१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नज़दीकी] पास या नजदीक होने का भाव। सामीप्य।

नजदीकी२—वि० निकट का।

नजदीकी३—संज्ञा पुं० निकट का संबंधी।

नजम—संज्ञा स्त्री० [अ० नज्म] कविता। पद्य। छंद।

नजर१—संज्ञा स्त्री० [अ० नज़र] १. दृष्टि। निगाह। चितवन।

मुहा०—नजर अंदाज करना = ध्यान न देना। नजर हटा लेना। नजर आना = दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—नजर आता है कोई अपना न पराया मुझको।—अमानत (शब्द०)। नजर करना = देखना। उ०—जब मैंने उधर नजर की तब देखा कि आप खड़े हैं। नजर पर चढ़ना = पसंद आ जाना। भा जाना। भला मालूम होना। नजर पड़ना = दिखाई देना। देखने में आना। जैसे, कई दिन से तुम नजर नहीं पड़े। नजर फिसलना = चमक या चकाचौंध के कारण किसी वस्तु पर दृष्टि का अच्छी तरह न जमना। नजर फेंकना = (१) दूर तक देखना। दृष्टि डालना। (२) सरसरी नजर से देखना। नजर में आना = दिखलाई पड़ना। दिखाई देना। नजर में तौलना = देखकर किसी के गुण और दोष आदि की परीक्षा करना। नजर बाँधना = जादू या मंत्र आदि के जोर से किसी की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न कर देना। कुछ का कुछ कर दिखाना।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि जादू के जोर से दृष्टि में भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है। आजकल भी कुछ लोग इस बात को मानते हैं।

२. कृपादृष्टि। मेहरबानी से देखना। जैसे, आपकी नजर रहेगी तो सब कुछ हो जायगा।

मुहा०—नजर रखना = कृपादृष्टि रखना। मेहरबानी रखना।

३. निगरानी। देख रेख। जैसे, जरा आप भी इस काम पर नजर रखा करें।

क्रि० प्र०—रखना।

४. ध्यान। खयाल। ५. परख। पहचान। शिनाख्त। जैसे, इन्हें भी जवाहिरात की बहुत कुछ नजर है। ६. दृष्टि का वह कल्पित प्रभाव जो किसी सुंदर मनुष्य या अच्छे पदार्थ आदि पर पड़कर उसे खराब कर देनेवाला माना जाता है।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था और अब भी बहुत से लोगों का विश्वास है कि किसी किसी मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव होता है कि जिसपर उसकी दृष्टि पड़ती है उसमें कोई न कोई दोष या खराबी पैदा हो जाती है। यदि ऐसी दृष्टि किसी खाद्य पदार्थ पर पड़े तो वह खानेवाले को नहीं पचता और भविष्य में उस पदार्थ पर से खानेवाले की रुचि भी हट जाती है। यह भी माना जाता है कि यदि किसी सुंदर बालक पर ऐसी दृष्टि पड़े तो वह बीमार हो जाता है। अच्छे पदार्थों आदि के संबंध में माना जाता है कि यदि उनपर ऐसी दृष्टि पड़े तो उनमें कोई न कोई दोष या विकार उत्पन्न हो जाता है। किसी विशिष्ट अवसर पर केवल किसी विशिष्ट मनुष्य की दृष्टि में ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव माना जाता है।

मुहा०—नजर उतारना = बुरी दृष्टि के प्रभाव को किसी मंत्र या युक्ति से हटा देना। नजर खाना या खा जाना = बुरी दृष्टि से प्रभावित हो जाना। नजर जलाना = दे० 'नजर झाड़ना'। नजर झाड़ना = बुरी दृष्टि का प्रभाव हटाना। नजर लगाना = बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। नजर होना या हो जाना = दे० 'नजर लगना'।

७. विचार। गौर (को०)।

नजर²—संज्ञा स्त्री० [अ० नज़्र] १. भेंट। उपहार। जैसे, (क) सौदागर ने अकबर शाह को एक सौ घोड़े नजर किए। (ख) अगर यह किताब आपको इतनी ही पसंद है तो लीजिए यह आपकी नजर है। (ग) भरि भरि कौरि सुघर कहारा। तिमि भरि शकटन ऊँट अपारा। धनानंद प्रद सचिव लिवाई। कोशलपाल नजर कराई। —रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। —देना।

२. अधीनता सूचित करने की एक रस्म जिसमें राजाओं, महाराजाओं और जमींदारों आदि के सामने प्रजावर्ग के या दूसरे अधीनस्थ और छोटे लोग दरबार या त्योहार आदि के समय अथवा किसी विशेष अवसर पर नकद रुपया या अशरफी आदि हथेली में रखकर भेंट करते हैं।

विशेष—यह धन कभी तो प्रत्यक्ष रूप से लिया जाता है कभी केवल छूकर छोड़ दिया जाता है।

क्रि० प्र०—करना। —गुजारना। —देना।

नजरअंदाज—क्रि० वि० [अ० नजर+फ़ा० अंदाज] दृष्टि का का हटना। ध्यान न देना। उ०—मैंने एहराम कहीं नजरअंदाज नहीं होने दिया है। —आदान, पृ० २३।

नजरअंदाजी—संज्ञा पुं० [अ० नजर+फ़ा० अंदाजी] जाँच। निरीक्षण। —[हिं०]।

नजरना(पु)—क्रि० अ० [अ० नजर से नामिक धातु] १. देखना। उ०—(क) कालीमहल में करी बहुत नजरी गई तो काहू ने भलाई। —बेनी प्रवीन (शब्द०)। (ख) नजरेई सब रहत है पहरुआ चौर। नजरेही में चोर ही चित बित लुट लेवौ। —रसनिधि (शब्द०)। (ग) न जरे जो नजरे रहै प्रेम घुम घुम चढ़ै। —रसनिधि (शब्द०)। २. नजर लगाना। दे० 'नजर'।

नजरबंद¹—वि० [अ० नजर+फ़ा० बंद] जो किसी ऐसे स्थान पर कड़ी निगरानी में रखा जाय जहाँ से वह कहीं आ जा न सके। जिसे नजरबंदी की सजा दी जाय। उ०—कुल लोभी नैन सो प्रान रहा बाँध बाल। मग जारै देखे इन्हें नजरबंद कर राख। —रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—रखना। —होना।

नजरबंद²—संज्ञा पुं० [अ० नजर+फ़ा० बंद] जादू या इंद्रजाल आदि का वह खेल जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास रहता है कि वह लोगों की नजर बाँधकर किया जाता है। लोगों की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करके किया जानेवाला खेल। जैसे, वह मदारी नजरबंद के बहुत से खेल किया करता है।

नजरबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर+फ़ा० बंदी] १. राज्य की ओर से एक दंड जिसमें दंडित व्यक्ति किसी सुरक्षित या नियत स्थान पर रखा जाता है और उसपर निगरानी रहती है। जिसे यह दंड मिलता है उसे कहीं आने जाने या किसी से मिलने जुलने की आज्ञा नहीं होती। २. नजरबंद होने की दशा। ३. लोगों की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करने की क्रिया। जादूगरी। बाजीगरी।

नजरबाग—संज्ञा पुं० [अ० नजर+फ़ा० बाग] वह बाग जो महलों या बड़े बड़े मकानों आदि के सामने या चारों ओर उनके अहाते के अंदर ही रहता है।

नजरबाज—वि० [अ० नजर+फ़ा० बाज (प्रत्य०)] आँखें लड़ानेवाला। प्रेम की दृष्टि से देखनेवाला।

नजरबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर+फ़ा० बाजी] १. नजरबाज होने की क्रिया या भाव। २. आँख लड़ाना।

नजरसानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी किए हुए कार्य या लिखे हुए लेख आदि को, उसमें सुधार या परिवर्तन करने के लिये फिर से देखना। पुनर्विचार या पुनरावृत्ति।

नजरहा—वि० [हिं० नजर+हा (प्रत्य०)] दे० 'नजरहाया'। उ०—नजरहा छैला रे नजर लगाये चला जाय, नजर लगी बेहोस भई मैं जिया मोरा अकुलाय। —भारतेंदु ग्रं०, पृ० १८८।

नजरहाया—वि० [अ० नजर+हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० नजरहाई] जो नजर लगावे। जिसकी नजर पड़ते ही कोई दोष उत्पन्न हो। नजर लगानेवाला।

नजरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नजर'। उ०—नानक नजरा निहाल पलक में निकाला। —तुरसी श०, पृ० ३४६।

नजराना(पु)¹—क्रि० स० [हिं० नजर से नामिक धातु] १. भेंट में देना। उपहार स्वरूप देना। २. नजर लगाना। दे० 'नजर ६'।

नजराना²—क्रि० अ० [हिं० से नामिक धातु] नजर लग जाना। बुरी दृष्टि के प्रभाव में आना। जैसे, मालूम होता है कि यह लड़का कहीं नजरा गया है।

नजराना³—क्रि० स० नजर लगाना।

नजराना⁴—संज्ञा पुं० [अ० नज्राह] १. भेंट। उपहार। २. जो वस्तु भेंट में दी जाय।

नजरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० नज़र] दे० 'नजर¹'।

नजला—संज्ञा पुं० [अ० नज़्लह्] १. यूनानी हिकमत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें गरमी के कारण सिर का विकारयुक्त पानी ढलकर भिन्न भिन्न अंगों की ओर प्रवृत्त होता और जिस अंग की ओर ढलता है उसे खराब कर देता है।

विशेष—कहते हैं, यदि नजले का पानी सिर में ही रह जाय तो बाल सफेद हो जाते हैं। आँखों पर उतर आवे तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उतरे तो आदमी बहरा हो जाता है, नाक पर उतरे तो जुकाम होता है, गले में उतरे तो खाँसी होती है और अंडकोश में उतरे तो उसकी वृद्धि हो जाती है।

क्रि० प्र०—उतरना। —गिरना।

२. जुकाम। सरदी।

नजलाबंद—संज्ञा पुं० [अ० नज़्लह+फ़ा० बंद (प्रत्य०)] अफीम और चूने आदि का वह फाहा जो नजले को गिरने से रोकने के लिये दोनों कनपटियों पर लगाया जाता है।

नजाकत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नजाकत] १. नाजुक होने का भाव सुकुमारता। कोमलता। मृदुलता। २. सूक्ष्मता। बारीकी (को०)। ३. क्षीणता (को०)। ४. नाजुकमिजाजी (को०)।

नजात—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मुक्ति। मोक्ष। २. छुटकारा। रिहाई।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

नजामत—संज्ञा स्त्री० [अ० नजामत] १. नाजिम का पद। २. नाजिम का महकमा या विभाग। ३. नाजिर का दफ्तर, जहाँ बैठकर नाजिर काम करता हो।

नजारत—संज्ञा स्त्री० [अ० नजारत] १. नाजिर का पद। २. नाजिर का महकमा। ३. नाजिर का दफ्तर, जहाँ बैठकर नाजिर काम करता हो।

नजारा—संज्ञा पुं० [अ० नज्जारह] १. दृश्य। २. दृष्टि। नजर। ३. दर्शन। दृश्य। ४ स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को लालसा या प्रेम की दृष्टि से देखना। (बाजारू)।

क्रि० प्र०—लड़ना।—लड़ाना।—मारना।

५. सैर। दृश्य। तमाशा (को०)।

नजारेबाजी—संज्ञा स्त्री [हिं० नजारा + फ़ा० बाजी] स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को प्रेम या लालसा की दृष्टि से देखना (बाजारू)।

नजिकाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० नजीक (= नजदीक) + आना (प्रत्य०)] निकट पहुँचना। नजदीक पहुँचना। पास पहुँचना उ०—(क) जोर करि ज्यों ज्यों मृग बन नजिकात त्यों त्यों मो तें महीपति को मन नजिकात है।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। (ख) सकल सुग्रीव सहित सो सुदिवस आइ जबहिं नजिकाना।—रघुराज (शब्द०)। (ग) [illegible] नजिकाने निधि तीर।—हनुमान (शब्द०)। (घ) मरण अवस्था जब नजिकाई। [illegible] के मन यह आई।—सूर (शब्द०)।

नजिस—वि० [अ०] मैला। गंदा। अपवित्र। अशुद्ध। उ०—मगर यहाँ तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं, यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं।—कायाकल्प, पृ० ५०।

नजीक(पु)†—क्रि० वि० [फ़ा० नजदीक] निकट। पास। समीप। उ०—(क) है नजीक वहाँ जहाँ क्षिति में विभूषित है खरे।—गुमान (शब्द०)। (ख) कौन की सीख भरी मन में बलि के बलि काहे नजीक न जाति है।—प्रताप (शब्द०)।

नजीब—संज्ञा पुं० [अ०] कुलीन व्यक्ति जिसका खानदान शुद्ध हो। उ०—नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो। जहाँ पूछो वही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं।—शेर०, पृ० २१०।

नजीम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० नाजिम] दे० 'नाजिम'। उ०—बँगाली हूँ में को नजीम नहीं बतायो। मेरो नाम मुतवज्जा मोलसो बतायो।—शिखर०, पृ० ६३।

नजीर—संज्ञा स्त्री० [अ० नजीर] १. उदाहरण। दृष्टांत। मिसाल। २. किसी मुकदमे का वह फैसला जो उसी प्रकार के किसी दूसरे मुकदमे में वैसे ही फैसले के लिये उपस्थित किया जाय।

क्रि० प्र०—दिखलाना।—देना।

नजूम—संज्ञा पुं० [अ०] ज्योतिष विद्या।

नजूमी—संज्ञा पुं० [अ०] ज्योतिषी।

नज्जारा—संज्ञा पुं० [अ० नज्जारह] १. दर्शन। दीदार। २. सैर। दृश्य। तमाशा (को०)।

यौ० नज्जारागाह = सैरगाह। विनोद का स्थान। नज्जारा-पसंद = जिसे नज्जारा करना पसंद हो। जो अच्छे अच्छे दृश्य देखने का शौकीन हो। नज्जाराफरेब = निगाह को लुभानेवाला। नज्जाराबाज = (१) नजारा देखने का शौकीन। (२) ताक झाँक करनेवाला। नज्जाराबाजी = ताक झाँक। ताकाझाँकी। आँखें लड़ाना या सेकना।

नज्ल[1]—संज्ञा पुं० [अ० नुजूल] सरकारी मकान। शहर की वह जमीन जो सरकार के अधिकार में हो।

नज्ल[2]—संज्ञा पुं० [अ० नज्लह्] दे० 'नजला'।

नट—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृश्य काव्य का अभिनय करनेवाला मनुष्य। वह जो नाट्य करता हो। नाट्यकला में प्रवीण पुरुष। २. प्राचीन काल की एक संकर जाति।

विशेष—इसकी उत्पत्ति शौचकी स्त्री और क्षत्रिय पुरुष से मानी गई है और इसका काम गाना बजाना बतलाया गया है।

३. मनु के अनुसार क्षत्रियों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति व्रात्य क्षत्रियों से मानी जाती है। ४. पुराणानुसार एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति मालाकार पिता और शूद्रा माता से मानी जाती है। ५. एक नीच जाति जो प्रायः गा बजाकर और तरह तरह के खेल तमाशे आदि करके अपना निर्वाह करती है। उ०—दीठि बरत बाँधी अटनि चढ़ि धावत न डरात। इत उत तें मन दुहुन के नट लौं आवत जात।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—उत्तर प्रदेश में इस जाति के जो लोग पाए जाते हैं वे बाँसों पर तरह तरह की कसरतें करने और रस्सों पर अनेक प्रकार से चलने हैं। बंगाल में इस जाति के लोग प्रायः गाने बजाने का पेशा करते हैं।

६. एक नाग का नाम।

विशेष—इसे भट नामक एक दूसरे नाग के साथ मथुरा के निकट उरुमुंड नामक पर्वत पर बुद्धदेव ने बौद्धधर्म में दीक्षित किया था। इनके नाम पर उस स्थान पर दो विहार भी बनवाए गए थे।

७. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

विशेष—कुछ आचार्य इसे मालकोश राग का और कुछ आचार्य इस श्री राग का पुत्र मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह आसावरी, मल्लार और पूरिया के मेल से बना हुआ है और किसी के मत से इमन, पूरबी, केदारा और बिलावल के मेल से बना हुआ संकर राग है। रागमाला में इसे राग नहीं बल्कि रागिनी माना है। एक और शास्त्रकार ने इसे दीपक राग की रागिनी बतलाया है। उनके मत से यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। भिन्न भिन्न रागों के साथ इसे मिलाने से अनेक

संकर राग भी बनते हैं। जैसे, केदारनट, छायानट, कामोदनट आदि।

८. अशोक वृक्ष। ९. श्योनाक वृक्ष। १०. नर्तक (को०)। ११. एक प्रकार का वेतस या बेत (को०)।

नटई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. गला। गरदन। २. गले की घंटी। घाँटी।

नटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नाट्य करता हो। अभिनेता (को०)।

नटखट—वि० [हिं० नट + अनु० खट] १. जो सदा कुछ न कुछ उपद्रव करता रहे। ऊधमी। उपद्रवी। चंचल। शरीर। २. चालाक। चालबाज। धूर्त। मक्कार।

नटखटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नटखट] बदमाशी। शरारत। पाजीपन।

नटचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिनय।

नटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट का भाव। २. नट का काम।

नटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य करना। नाचना। २ अभिनय करना (को०)।

नटना¹—क्रि० अ० [सं० नट] १. नाट्य करना। उ०—कहूँ नटत नट कोटि, भाँट बर गावत गुण गनि।—गुमान (शब्द०)। २. नाचना। नृत्य करना।

नटना(पु)†²—क्रि० अ० [हिं०] इनकार करना। कहकर बदल जाना। मुकरना। उ०—(क) मोहन मूरति मुख नटनि आँखिन सो लपटाति।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजि जात।—बिहारी (शब्द०)।

नटना³—क्रि० स० [सं० नष्ट] नष्ट करना। उ०—नटै लोक दोऊ हठी एक ऐसे।—केशव (शब्द०)।

नटना⁴—क्रि० अ० नष्ट होना।

नटना⁵—संज्ञा पुं० [देश०] १. बाँस की बनी छलनी जिससे रस छाना जाता है। २. मछली पकड़ने का वह बड़ा टोकरा जिसका पेंदा कटा होता है। टाप।

नटनागर—संज्ञा पुं० [सं० नट + नागर] कृष्ण। उ०—जिन हठ करि री नटनागर सों। तेरो ही है दैव काल।—नंद० ग्रं०, ३६७।

नटनायक—संज्ञा पुं० [सं०] नटों में प्रधान, श्रीकृष्ण। उ०—नटनायक नंदलाल को मन पकरि नचावै।—घनानंद पृ० ४८५।

नटनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का तीसरा पुत्र और भरत के मत से दीपक राग का पुत्र है। लेकिन सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मत से यह छह रागों में से एक है और कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी और नट हंबीरा ये छह इसकी रागिनियाँ हैं।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का एक राग है, इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह हेमंत ऋतु में रात के समय २१ दंड से २६ दंड तक गाया जाता है। कुछ लोग इसे मधुमाध, बिलावल के मेल से बना हुआ संकर राग भी मानते हैं। एक और शास्त्रकार के मत से यह षाड़व जाति का राग है। इसमें निषाद वर्जित है और यह बरसात में तीसरे पहर गाया गाया जाता है। उसके अनुसार बिलावल, कामोदी, सावेरी, सूहवी और सोरठ इसकी रागिनियाँ और शुद्धनट, मेघनट, हम्मीरनट, सारंगनट, छायानट, कामोदनट, केदारनट, मेघनट, गौड़नट, भूपालनट, जयजयनट, शंकरनट, हीरनट, श्यामनट, वराड़ीनट, विभासनट, बिहागनट, और शंकराभरणनट इसके पुत्र हैं। पर वास्तव में ये सब संकर राग हैं जो नट तथा भिन्न भिन्न रागों के मेल से बनते हैं।

नटनि(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [सं० नटन] नृत्य। नाच।

नटनि²—संज्ञा स्त्री० [हिं० नटना] इनकार। अस्वीकृति। उ०—सनख हिये खिनखिन नटनि अनख बढ़ावत लाल।—बिहारी (शब्द०)।

नटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नट + नी (प्रत्य०)] १. नट की स्त्री। २. नट जाति की स्त्री। उ०—नटनी डोमिन ढाढ़िनि सहनायन परकार। निरतन नाद विनोद सों बिहँसत खेलत नार।—जायसी (शब्द०)।

नटपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

नटवट्टा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नट + वट] नट का गेंद। उ०—आगे खबर फिरे ओहट्टा। बाटी दूतथ या नटवट्टा।—रा० रू०, पृ० ६१।

विशेष—नट या बाजीगर खेल दिखाते समय कई गेंद हाथ में लेकर एक साथ हवा में उछालते हैं। गेंदों का ऊपर जाना और आना बड़ी तेजी से होता है और ऐसा लगता है मानो जो गेंद ऊपर जा रही थी वह बीच से ही वापस लौट आई हो।

नटबाजी—संज्ञा स्त्री० [सं० नट + हिं० बाजी] नट का कार्य। अभिनय। उ०—यह नटबाजी नट जेंव नाचे किमि करि या गति कीड़ा।—सं० दरिया, पृ० १६३।

नटभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

नटमंडन—संज्ञा पुं० [सं० नटमण्डन] हरताल। (डिं०)

नटमंडल—संज्ञा पुं० [सं० नटमण्डल] हरताल।

नटमल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग।

नटमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मल्लार के योग से बनता है।

नटरंग—संज्ञा पुं० [सं० नटरङ्ग] १. रंगमंच। २. वह वस्तु जो भ्रम हो (ला०) (को०)।

नटराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. निपुण नट। नटों में प्रधान या श्रेष्ठ नट। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज।—केशव (शब्द०)। २. श्रीकृष्ण। ३. भगवान् शंकर। ४. शिव की एक प्रसिद्ध मूर्ति का नाम।

नटवना(पु)—क्रि० स० [सं० नट से नामिक धातु] नाट्य करना। अभिनय करना। स्वाँग भरना। उ०—माधो जू सुनिये ब्रज

व्योहारा एक ग्वालि नटवति बहु लीला एक कर्म गुन गावति। —सूर (शब्द०)।

नटवर¹—वि० [सं०] बहुत चतुर। चालाक।

नटवर²—संज्ञा पुं० १. प्रधान नट। नाट्यकला में बहुत प्रवीण मनुष्य। २. श्रीकृष्ण जो नाट्यकला और नाटक शास्त्र के आचार्य थे। ३. सूत्रधार (को०)।

नटवा(पु)¹—संज्ञा पुं० [हिं० नाटा] [स्त्री० नटिया] छोटे कद का या कम उमर का बैल।

नटवा(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० नट] नट। उ०—बिन पग नटवा निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताल।—धरम०, पृ० ५६।

नटवासरसों—संज्ञा पुं० [हिं० नाटा (=छोटा) + सरसों] साधारण सरसों।

विशेष—दे० 'सरसों'।

नटसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोदंती। हरताल। २. नट। अभिनेता।

नटसार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाट्यशाला'।

नटसारा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाट्यशाला'।

नटसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नटसार'। उ०—जिनि नटवै नटसारी साजी। जो खेले सो दीसै बाजी।—कबीर ग्रं०, पृ० २०७।

नटसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० नष्ट (=तिरोहित) + शल्य] काँटे का वह भाग जो निकाल लिए जाने पर भी टूटकर शरीर के भीतर रह जाता है। उ०—लगन जो हिए दुसार करि तऊ रहत नटसाल।—बिहारी (शब्द०)। २. बाण की गाँसी जो शरीर के भीतर रह जाय। ३. फाँस जो बहुत छोटी होने के कारण नहीं निकाली जा सकती। उ०—सालति है नटसाल सी क्यों हूँ निकसति नाहि।—बिहारी। (शब्द०)। ४. कसक। पीड़ा। ऐसी मानसिक व्यथा जो सदा तो न रहे पर समय समय पर किसी बात या मनुष्य के स्मरण से होती हो। उ०—उठे सदा नटसाल सो सौतिन के उर मालि।—बिहारी (शब्द०)।

नटांतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नटान्तिका] लज्जा। शरम।

विशेष—लज्जा होने से नाट्य नहीं हो सकता, इसलिये इसे 'नटांतिका' कहते हैं।

नटाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] जोलाहों का वह औजार जिससे किनारे का ताना तावा जाता है।

नटित¹—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनय। हावभाव (को०)।

नटित²—वि० ऊबा हुआ। थका हुआ (को०)।

नटिन—संज्ञा स्त्री० [सं० या हिं० नट] १. नट की स्त्री। २. नट जाति की स्त्री।

नटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट जाति की स्त्री। २. नाचनेवाली स्त्री। नर्तकी। उ०—बाजत ताल मृदंग धुनि, नाचति नटी नवीन।—हम्मीर०, पृ० ३३। ३. अभिनय करनेवाली स्त्री। अभिनेत्री। ४. अभिनय करनेवाले नट की स्त्री। ५. वेश्या। ६. नली नामक गंधद्रव्य। ७. मुख्य अभिनेत्री जो सूत्रधार की पत्नी होती थी (को०)।

नटुआ‡¹—संज्ञा पुं० [हिं० नट + उआ (प्रत्य०)] दे० 'नट'।

नटुआ†²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नटई'।

नटुवा(पु)†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नट'। उ०—ब्रजनिधि नेह निधान निपट नव नागर नटुवा। रह्यौ रीझि मैं झूमि झूमि घूमत ज्यों लटुवा।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १८।

नटुवा†²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नटई'।

नटेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नटेश्वर'। उ०—देखा मनु ने नर्तित नटेश, हत चेत पुकार उठे विशेष।—कामायनी, पृ० २५४।

नटेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नट्ट—संज्ञा पुं० [सं० नट या हिं० नट] [स्त्री० नट्टिन] दे० 'नट'।

नट्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संगीत में एक प्रकार की रागिनी जो प्रायः नट के समान होती है। २. नटों की मंडली।

नठना†(पु)¹—क्रि० स० [सं० नष्ट] नष्ट करना। उ०—नठैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे।—केशव (शब्द०)।

नठना†(पु)²—क्रि० अ० [सं० नष्ट] नष्ट होना।

नड¹—संज्ञा पुं० [सं० नड] १. नरसल। नरकट। २. एक गोत्र प्रवर्तक ऋषि का नाम। ३. एक जाति जिसका पेशा शीशे की चूड़ियाँ बनाना है।

नड²—संज्ञा पुं० [सं० नद, हिं० नाला] दे० 'नाला'। उ०—मारू देस उपन्नियाँ, नड जिम निसरे याँह।—ढोला०, दू० ८८३।

नडक—संज्ञा पुं० [सं० नडक] १. कंधों के मध्य की हड्डी। २. हड्डी के भीतर का छेद (को०)।

नडनेरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य (को०)।

नडप्राय—वि० [सं०] नरसल की अधिकता से पूर्ण (को०)।

नडभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ नरसल की बहुतायत हो (को०)।

नडमीन—संज्ञा पुं० [सं० नडमीन] झिंगा मछली।

नडवन—संज्ञा पुं० [सं०] नरसल का वन (को०)।

नडश—वि० [सं०] नरसल से भरा हुआ या ढका हुआ (को०)।

नडह—वि० [सं०] लडह। सुंदर। सुघर। खूबसूरत। सुरूप (को०)।

नडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नडिनी] १. वह नदी जिसमें सरपत अधिक हो। नरसल का ढेर।

नडिल, नड्वान्—वि० [सं० नडिल, नड्वत्] [वि० स्त्री० नड्वती] नरसल की बहुतायतवाला (को०)।

नड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नली ?] एक प्रकार की आतिशबाजी।

नड्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सरपत की चटाई। २. वह प्रदेश जहाँ

पर नरपत या नरसल या घास बहुत अधिक हो। ३. एक वैदिक देवता का नाम।

नड्वला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पुराणानुसार वैराज मनु की स्त्री का नाम। २. नरसल की राशि या ढेरी (को॰)।

नड्वाभू—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तल। फर्श। कुट्टिम (को॰)।

नढ़ना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ नद्ध, प्रा॰ नड्ढ से नामिक धातु] १. गूँथना। पिरोना। २. बाँधना। कसना। उ॰—छोटउ जन बैकुंठ जात को लागे परिकर नढ़न।—देव (शब्द॰)।

नतंबⓟ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नितम्ब] उ॰—कुटिल केस बय स्याम गोर गुन वाम काम रति। चोर धनी उन्नित नतंब (जानि) रवि बिंब बीय गति।—पृ॰ रा॰, १२।२४८।

नत[1]—वि॰ [सं॰] १. मुड़ा हुआ। टेढ़ा। २. नम्र। विनीत। झुका हुआ। ३. प्रणत। नमन करता हुआ। ४. पराजित। परास्त (को॰)।

नत[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तगर की जड़। तगरमूल। २. मध्याह्न रेखा से खमध्य या किसी ग्रह की दूरी। ३. झुकने की स्थिति। ४. नितंब। जैसे नततट (को॰)।

नतइत‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'नतैत'।

नतकाज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] याम्योत्तर या खमध्य से काल संबंधी दूरी (ज्यो॰)।

नतकुर†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नाती] बेटी का बेटा। बेटी की संतान नवासा। नाती।

नतगुआ†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] चोंघा।

नतघटिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक घंटा या घड़ी का कोण (ज्यो॰)।

नतद्रुम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का शालवृक्ष जिसे लताशाल कहते हैं।

नतनाडिका, नतनाडी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. खमध्य से किसी तारे की कालगत दूरी। २. मध्याह्न के बाद और अर्धरात्रि के बीच जन्म की कोई घड़ी या जन्मकाल (को॰)।

नतनासिक—वि॰ [सं॰] चिपटी नाकवाला (को॰)।

नतपाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नत + पालक] प्रणाम करनेवाले का पालन करनेवाला। प्रणतपाल। शरणपाल। उ॰—कान्ह कृपाल बड़े नतपाल गए खल खेचर खीस खलाई।—तुलसी (शब्द॰)।

नतभ्रू—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] तिरछी भौंहोंवाली (को॰)।

नतम—वि॰ स्त्री॰ [सं॰ नत (= टेढ़ा)] बाँका (डिं॰)।

नतमी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का वृक्ष जो आसाम प्रदेश में बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और लाल रंग की होती है, और उससे मेज, कुरसियाँ और नाव आदि बनाई जाती है।

नतरⓟ†[1]—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'नतरु'।

नतरⓟ[2]—वि॰ [हिं॰] निरंतर। नित्य। हमेशा। उ॰—फागुन मास सुहावनों, ब्रजनिधि आए होत। नतर कुलाहल करत हैं, भौर और पिक गोत।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ २२।

नतरकⓟ—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ न + तो] नहीं तो। उ॰—कहत सबै कवि कमल से मो मत नैन पखान। नतरक कत इन बिय लगत उपजत बिरह कृशान।—बिहारी (शब्द॰)।

नतरुⓟ†—क्रि वि॰ [हिं॰ न + तो] नहीं तो। अन्यथा। उ॰—(क) नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) नतरु लखन सिय राम वियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा।—तुलसी (शब्द॰)।

नतशिर—वि॰ [सं॰] नम्र। विनीत। उ॰—मेरे उस यौवन के मधु अभिषेक में नतशिर देख मुझे।—लहर, पृ॰ ६६।

नतांग—वि॰ पुं॰ [सं॰ नताङ्ग] १. जिसका अंग या शरीर झुका हो। २. झुका हुआ। नत (को॰)।

नतांगी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नताङ्गी] १. स्त्री। औरत।

नतांगी[2]—वि॰ झुके हुए अंगोंवाली। विनीता।

नतांश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह वृत्त जिसका केंद्र भूकेंद्र पर होता है और जो विषुवत रेखा पर लंब होता है।

विशेष—यह वृत्त ग्रहों आदि की स्थिति निश्चित करने में काम आता है।

नतामुल—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट पर्वत पर बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे मेज कुरसी आदि बनती है। इसके रेशे मजबूत होते हैं जिनसे रस्से बनाते हैं। इसके पेड़ से एक प्रकार की जहरीली राल निकलती है जिसे तीरों में लगाकर उन्हें जहरीला बनाते हैं। इसे जसूँद भी कहते हैं।

नति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. झुकाव। उतार। २. नमस्कार। प्रणाम। ३. विनय। विनती। ४. नम्रता। खाकसारी। ५. ज्योतिष में एक प्रकार की गणना। ६. वक्रता। टेढ़ाई (को॰)।

नतिनी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नाती का स्त्री॰ रूप] लड़की की लड़की। नातिन।

नतीजा—संज्ञा पुं॰ [अ॰ नतीजह्] १. परिणाम। फल। उ॰—तुम्हें देखि पावै, सुख पावै बहु भाँति, ताहि दीबै नेकु निरखि, नतीजा नेह नाते को।—कालिदास (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—निकलना।—निकालना।—पाना।—मिलना।

२. परीक्षाफल (को॰)। ३. अंत (को॰)।

नतुⓟ—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ न + तो अथवा सं॰ न + तु] नहीं तो। अन्यथा। उ॰—कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।—केशव (शब्द॰)।

नतैत†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नाता + ऐत (प्रत्य॰)] संबंधी। रिश्तेदार। नातेदार। उ॰—नाते हाते लिखि कै नतैतन ते आय गुरु लोगन देखाय कै करम बेते डर के।—रघुनाथ (शब्द॰)।

नत्थ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'नथ'।

नत्थी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नथ (= आभूषण) या नाथना] १. कागज या कपड़े आदि के कई टुकड़ों को एक साथ मिलाकर और

आरपार छेद करके सबको डोरे या आलपीन आदि से एक ही में बाँधना या फसाना। २. इस प्रकार एक ही में नाथे हुए कई कागज आदि जो प्राय: एक ही विषय से संबंध रखते हैं। मिस्ल।

नत्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी।

नत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य (को०)।

नथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना (=नाथ का अगला भाग)] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं। उ०—(क) सहजै नथ नाक ते खोलि धरी करयो कौन धौं फंद या बेसरि को। —कमलापति (शब्द०)। (ख) इहि द्वै ही मोती सुगथ तू नथ गरब निसाँक। जिहि पहिरे जग दग ग्रसति हँसति लसत सी नाँक।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—यह बिलकुल वृत्ताकार बाली की तरह का होता है और सोने आदि का तार खींचकर बनाया जाता है। इसमें प्राय: गुंज के साथ चबक, बुलाक या मोतियों की जोड़ी पहनाई रहती है। छोटी नथ को बेसर कहते हैं। हिंदुओं में नथ सौभाग्य का चिह्न समझी जाती है।

नथना[1]—संज्ञा पुं० [सं० नस्त (=नाक)] १. नाक का अगला भाग। नाक का वह चमड़ा जो छेदों के परदे का काम देता है।

मुहा०—नथना फुलाना=क्रोध करना। गुस्सा दिखलाना। नथना फूलना—क्रोध आना।

२. नाक का छेद।

नथना[2]—क्रि० अ० [हिं० नाथना का अ० रूप] १. किसी के साथ नत्थी होना। नाथा जाना। एक सूत्र में बँधना। २. छिदना। छेदा जाना। जैसे,—मेरे पैर काँटों से नथ गए हैं।

नथनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ+नी (अल्पा० प्रत्य०)] १. नाक में पहनने की छोटी नथ। २. बुलाक। ३. तलवार की मूठ पर लगा हुआ छल्ला। ४. नथ के आकार की कोई चीज।

नथनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथना (=नाथा जाना)] बैल की नाक में नथी हुई रस्सी। नाथ।

नथिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ+इया (प्रत्य०)] दे० 'नथ'।

नथुना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नथनी'।

नथुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथनी] नाक में पहनने की नथ। उ०—बैनन मैन को बैन बजै यह नासिका रासथली नथुनी को।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—नथुनी उतारना=कुमारी का कौमार नष्ट करना। कुमारी के साथ प्रथम समागम करना। चीरा उतारना। सिर ढँकाई करना।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग केवल वेश्याओं की लड़कियों के संबंध में होता है।

नथुवा†(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नथुना'। उ०—नथुवा ले जाइ केरि बहुत सुँघावै फूल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ३६६।

नथूनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नथुनी'। उ०—छोटी नथूनी बड़े मुतियान बड़ी अँखियान बड़ी सुघरे है।—ठाकुर०, पृ० ५।

नथूली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नासाछिद्र। नथना। उ०—तनक तनक सी नाक नथूली। राजत नील सुपीत भँगूली।—नंद० ग्रं०, पृ० २४५।

नथ्थ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नथ'। उ०—बनी कि कीर नासिका, सु गध्थ नथ्थ भासिका।—ह० रासो, पृ० २४।

नद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका नाम पुंल्लिंगवाची हो; जैसे, सोन, दामोदर, ब्रह्मपुत्र। उ०—मिल्यो महानद सोन सुहावन।—तुलसी (शब्द०)। २. एक ऋषि का नाम। ३. समुद्र (को०)। ४. मेघ। बादल (को०)।

नदथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाद। गर्जन। २. बैल का डकरना। ३. रुदन (को०)।

नदन—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द करना। आवाज करना।

नदनदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र।

नदना(पु)†—क्रि० अ० [सं० नदन (=शब्द करना)] १. पशुओं का शब्द करना। रँभाना। बँबाना। उ०—महिषी सुरभि पूर पय धारिणि वृषभ नदत सानंदा।—रघुराज (शब्द०)। २. बजना। शब्द करना। उ०—(क) एक ओर जलद के माचे घहरारे मंजु एक ओर नाकन के नदत नगारे हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) नदत दुंदुभि डंका बदत मारू हूका, चलत लागत धंका कहत आगे।—सूदन (शब्द०)।

नदनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. सिंह। शेर। ३. शब्द। आवाज। गर्जन। ४. स्तुति की ध्वनि (को०)। ५. युद्ध। संग्राम (को०)।

नदपति—[सं०] समुद्र (को०)।

नदम—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास।

नदर[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] नद या नदी के आसपास का प्रदेश।

नदर[2]—वि० जिसे किसी प्रकार का भय न हो। निडर।

नदराज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नदान(पु)†—वि० [फ़ा० नादान] बे समझ। बुद्धिहीन। उ०—दान दे रे जिय को नदान निर्दई कान्ह, बसी सब रैन मोहि अब घर जान दे।—देव (शब्द०)। २. छोटी उम्र का। इतनी छोटी उम्र का जो संसार का व्यवहार बिलकुल न समझ सकता हो। उ०—(क) जो जमुमति तें जाय पुकारें। लखि नदान तहँ हम ही हारें।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) भैया तोर निपट नदान छोटो ननदी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४०।

नदामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. पश्चात्ताप। २. लज्जित होने का भाव। हया। उ०—खोजे खलक नहिं प्यार में। नाहक नदामत को सहे।—तुरसी० श०, पृ० २१।

नदारत†—वि० [फ़ा० नदारद] दे० 'नदारद'।

नदारद—वि० [फ़ा०] गायब। अप्रस्तुत। जो मौजूद न हो। लुप्त। जैसे,—जब बक्स खोला तब उसमें रुपया पैसा सब नदारद था।

नदाल—वि० [सं०] भाग्यशाली (को०)।

नदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति।

नदिआ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी'। उ०—नदिआ ओर भउ प्रथाह। भीम भुअंगम पथ चलबाह।—विद्यापति, पृ० ३३१।

नदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी नदी या नाला (को०)।

नदिया¹—संज्ञा पुं० [सं० नवद्वीप] बंगाल प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर जो न्यायशास्त्र का विद्यापीठ माना जाता है।

नदिया‡(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० नदिका, अथवा हिं० नदी + इया (प्रत्य०)] दे० 'नदी'।

नदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जल का वह प्राकृतिक और भारी प्रवाह जो किसी बड़े पर्वत या जलाशय आदि से निकलकर किसी निश्चित मार्ग से होता हुआ प्रायः बारहों महीने बहता रहता हो। दरिया।

विशेष—(क) पहाड़ों पर बरफ के गलने या वर्षा होने के कारण जो पानी एकत्र होता है वह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार नीचे की ओर ढलता और मैदानों में से होता हुआ प्रायः समुद्र तक पहुँचता है। कभी यह पानी अपनी स्वतंत्र धारा में समुद्र तक पहुँचता है और कभी समुद्र तक जानेवाली किसी दूसरी बड़ी धारा में मिल जाता है। जो धारा सीधी समुद्र तक पहुँचती है वह भौगोलिक परिभाषा में मुख्य नदी कहलाती है और जो दूसरी धारा में मिल जाती है वह सहायक नदी कहलाती है। ऐसा भी होता है कि नदी या तो जाकर किसी झील में मिल जाती है और या किसी रेतीले मैदान आदि में लुप्त हो जाती है जिस स्थान से नदी का प्रारंभ होता है उसे उसका उद्गम कहते हैं, जिस स्थान पर वह किसी दूसरी नदी से मिलती है उसे संगम कहते हैं और जिस स्थान पर वह समुद्र में मिलती है उसे मुहाना कहते हैं। नदी जिस मार्ग से बहती है वह मार्ग गति कहलाता है और उसके बहाव के कारण जमीन में जो गड्ढा बन जाता है वह गर्भ कहलाता है। साधारणतः नदियाँ बारहों महीने बहती रहती हैं, पर छोटी नदियाँ गरमी के दिनों में बिलकुल सूख जाती हैं। वर्षा में प्रायः सभी नदियों का जल बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन दिनों आस पास के प्रांत का वर्षा का जल भी आकर उनमें मिल जाता है। इससे उसका पानी बहुत अधिक मटमैला भी होता है। (ख) 'नदी' वाचक शब्द से ईश, नाथ, प, पति, वर इत्यादि 'पति' वाची शब्द या प्रत्यय लगाने से वह 'समुद्र' वाची शब्द हो जाता है। जैसे, नदीश, सरित्पति, आपगानाथ, तटिनीवर इत्यादि।

पर्या०—सरि। सरिता। आपगा। तरंगिणी। शैवलिनी। तटिनी। ह्रदिनी। धुनी। स्रोतस्वती। स्रवंती। निम्नगा। निर्झरिणी। सरस्वती। समुद्रगा। कूलवती। कूलंकषा। कल्लोलिनी। स्रोतस्विनी। ऋषिकुल्या। स्रोतोवहा।

यौ०—नदीश = समुद्र।

मुहा०—नदी नाव संयोग = ऐसा संयोग जो बार बार न हो, कभी एक बार इत्तिफाक हो जाय।

२. किसी तरल पदार्थ का बड़ा प्रवाह। जैसे,—रक्त की नदी बह निकली।

नदीकदंब—संज्ञा पुं० [सं० नदीकदम्ब] १. बड़ी गोरखमुंडी। २. नदियों का समूह (को०)।

नदीकांत—संज्ञा पुं० [सं० नदीकान्त] १. समुद्र। २. समुद्रफल। ३. सिंधुवार नामक वृक्ष। ४. वरुण (को०)।

नदीकांता—संज्ञा पुं० [सं० नदीकान्ता] १. जामुन का पेड़। २. काकजंघा।

नदीकूल—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का तट (को०)।

नदीकूलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जलबेत।

नदीकूकंठ—संज्ञा पुं० [सं० नदीकूकण्ठ] नेपाली बौद्धों का एक तीर्थ।

विशेष—कहते है कि एक विशिष्ट योग मे यहाँ स्नान करने से ऐश्वर्य की वृद्धि और शत्रुओं का नाश होता है।

नदीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के दोनों किनारों के बीच का स्थान। वह गड्ढा जिसमें से होकर नदी का पानी बहता है।

नदीगूलर—संज्ञा पुं० [हिं०] लिसोड़ा।

नदीज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला सुरमा। २. सेंधा नमक। ३. अर्जुन वृक्ष। ४. समुद्रफल। ५. महाभारत के अनुसार भीष्म जो गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ६. कमल (को०)।

नदीज²—वि० जो नदी से उत्पन्न हुआ हो।

नदीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमथ वृक्ष। अरणी का पेड़।

नदीजामुन—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी + हिं० जामुन] छोटा जामुन।

नदीतर—संज्ञा पुं० [सं०] नदी पार करना (को०)।

नदीतरस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से नदी पार की जाय। घाट।

नदीदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम।

नदीदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के बीच मे या द्वीप मे बना हुआ दुर्ग। ऐसा दुर्ग से निकृष्ट माना गया है।

नदीदोह—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो नदी पार करने के बदले में दिया जाय। नदी पार होने का महसूल।

नदीधर—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा को मस्तक पर धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

नदीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण देवता। ३. वरुण या बन्ना नामक जंगली पेड़ जो पलाश की तरह का होता है।

नदीनिवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—नदीनिवासउ उत्तरइ, मारू एक अविश्व।—ढोला, दू० २३०।

नदीनिष्पाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका चावल कड़वा होता है। बोरो।

विशेष—वैद्यक में यह कड़वा, कसैला, भारी, रूखा, वात और कफ उत्पन्न करनेवाला और विष-दोष-नाशक माना गया है।

नदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण ।

नदीपूर—संज्ञा पुं० [सं०] नदी जिसके किनारे बाढ़ आने से डूबे हों [को०] ।

नदीभल्लातक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भिलावाँ जो जल के किनारे होता है ।

विशेष—इसके पत्ते गूमा के पत्तों के समान होते हैं, और फल लाल रंग का होता है । वैद्यक में यह कड़ुआ, कसैला, मधुर, ठंढा, ग्राही वातकारक और कफपित्त, रक्तपित्त तथा व्रणनाशक माना जाता है ।

नदीभव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक ।

नदीभव[२]—वि० जो नदी में उत्पन्न हुआ हो ।

नदीभाषक— संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद या मानकच्चू नामक कद ।

नदीमातृक--संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जहाँ की खेती बारी का सारा काम केवल नदी के जल से होता हो और जहाँ वर्षा के जल की कोई आवश्यकता न हो । जैसे, मिस्र देश ।

नदीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ समुद्र में नदी गिरती हो । नदी का मुहाना

नदीरय—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का प्रवाह या धारा [को०] ।

नदीवंक—संज्ञा पुं० [सं० नदीवङ्क] नदी का मोड़ [को०] ।

नदीवट—संज्ञा पुं० [सं०] बट या बड़ का पेड़ ।

नदीश—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नदीष्ण—वि० [सं०] १. नदी में स्नान करनेवाला । २. नदी के संकटपूर्ण स्थलों, गहराई और धारा को जाननेवाला । ३. अनुभवी । दक्ष । कुशल । पारंगत (को०) ।

नदीसर्ज--संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष ।

नदेया—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि जबू । छोटी जामुन ।

नदोला—संज्ञा पुं० [हिं० नाद+ओला (प्रत्य०)] मिट्टी की छोटी नाँद ।

नद्द(पु)[१]—संज्ञा पुं० [सं० नाद] दे० 'नाद' । उ०—हुलकंत घाव आहत घोर । किलकंत नद्द नारद्द बीर ।—पृ० रा०, १।६६० ।

नद्द[२]—संज्ञा पुं० [सं० नद] दे० 'नद' ।

नद्दना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'नदना' ।

नद्दी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' ।

नद्ध[१]—वि० [सं०] १. बंधा हुआ । बद्ध । नद्धा हुआ । नधा हुआ । २. छिपा हुआ । भीतरी तौर पर बुना हुआ या गुँथा हुआ (को०) । ३. संयुक्त । सबद्ध (को०) ।

नद्ध[२]—संज्ञा पुं० बंध । बंधन । ग्रंथि । गाँठ [को०] ।

नद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँधने या गाँठ देने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

नद्धी†—संज्ञा स्त्री० [सं० नद्धि] दे० 'नाधा' ।

नध्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़े की डोरी । ताँत । २. चमड़े की पट्टी (को०) ।

नद्य—वि० [सं०] १. नदी से उत्पन्न । २. नदी संबंधी [को०] ।

नद्याम्र—संज्ञा पुं० [सं०] समष्ठिला । कोकुआ का पौधा ।

नद्यावर्तक—संज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा के लिये एक शुभ योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब बुध अपनी राशि पर हो और वृहस्पति या शुक्र लग्न में हो अथवा मंगल उच्चस्थित हो और शनि कुंभ राशि में हो । कहते हैं, इस योग में यात्रा करने से सब प्रकार के शत्रुओं का बहुत सहज में नाश हो जाता है । इसे नद्यावर्त भी कहते हैं ।

नद्युत्सृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो नदी के हट जाने से निकल आया हो । चर । गंगबरार ।

नधना—क्रि० अ० [सं० नद्ध+हिं० ना (प्रत्य०)] १. रस्सी या तस्मे के द्वारा बैल, घोड़े आदि का उस वस्तु के साथ जुड़ना या बंधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना हो । जुतना । जैसे, बैल का गाड़ी या हल में नधना ।

मुहा०—काम में नधना = काम में लगना । जैसे, —तुम तो दिन रात काम में नधे रहते हो ।

२. जुड़ना । सबद्ध होना । ३. किसी कार्य का अनुष्ठान होना । काम का ठनना । जैसे,—जब यह काम नध गया है तब इसे पूरा ही कर डालना चाहिए ।

नधाना(पु)—क्रि० स० [हिं० नाधना का सक० रूप] दे० 'नाधना' । उ०—तीरथ बरत के बेला हो, मन नेहु नधाय ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३६ ।

नधाव--संज्ञा पुं० [हिं० नधना] सिंचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाने में ऊपर उलीचने के लिये जो कई गड्ढे बनाने पड़ते हैं उनमें सबसे नीचे का गड्ढा ।

ननंद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] दे० 'ननद' ।

ननंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० ननान्द] दे० 'ननद' [को०] ।

ननँद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननान्द] ननद । पति की बहन ।

नन(पु)†—अव्य० [सं० ननु] दे० 'ननु' । उ०—नन चली चित्त ज्यों ज्यों अचल, करत क्रिया त्यों त्यों भ्रमित ।—हु० रासो, पृ० २५ ।

ननका†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नन्हा' ।

ननकारना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० न+करना] इनकार करना । अस्वीकार करना ; मंजूर न करना ।

ननकारी(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] नकारने की क्रिया । नकार । अस्वीकार । उ०—कहि जोधराज यह अंस में ननकारी नाहिन करत ।—हम्मीर रा०, पृ० १६३ ।

ननकारु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] नकारने का भाव । अस्वीकार । उ०—जिह सिमरन नाही ननकारु ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६० ।

ननकिलाट†--संज्ञा पुं० [अं० लांग क्लाथ] एक प्रकार का सूती कपड़ा । उ०—ननकिलाट दस गज ।--मैला०, पृ० १०५ ।

ननकिलाठ‡--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननकिलाट' ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] पति की बहिन ।

ननदिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ननद+इया (प्रत्य०)] ननद । पति

की बहन। उ०—उठो मोरी लहुरी ननदिया तुम ठकुराइन हो।—धरम०, पृ० ६३।

ननदी†—संज्ञा स्त्री० [सं० ननन्द] दे० 'ननद'।

ननदोई—संज्ञा पुं० [सं० ननन्दपति या ननन्दुःपति, प्रा० णनंदा + वइ (= पति), हिं० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति। पति का बहनोई।

ननसार—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाना + शाला] ननिहाल। नाना का घर। उ०—रामचंद्र लछमण सहित घर राखे दशरत्थ। बिदा कियो ननसार को संग शत्रुघ्न भरत्थ।—केशव (शब्द०)।

नना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। २. कन्या। लड़की। ३. वाक्य।

ननिअउरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल'।

ननिआउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल'।

ननियाससुर—संज्ञा पुं० [हिं० नानी + इया (प्रत्य०) + ससुर] स्त्री या पति का नाना।

ननिया सास—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाना + या (प्रत्य०) + सास] स्त्री या पति की नानी।

ननिहारी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईंट।

ननिहाल—संज्ञा पुं० [हिं० नाना + आलय] नाना का घर। ननसार।

ननु—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका व्यवहार कुछ पूछने, संदेह प्रकट करने अथवा वाक्य के आरंभ में किया जाता है (क्व०)।

ननुआ(पु)†—वि० [सं० लावण्य] सुंदर। सलोना। उ०—ननुआ नयन नलिनि जनु अनुपम अंक निहारइ थोरा।—विद्यापति, पृ० ६२७।

ननुकारना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] इनकार करना। अस्वीकार करना। उ०—जनु ननुकारति मानिनि तिया। मान युवति रत जान्यो पिया।—नंद० ग्रं०, पृ० ११६।

ननुनच—क्रि० वि० [सं० ननु + न + च] आनाकानी। आगापीछा। उ०—द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों के वध करने में भी उन्होंने ननुनच नहीं की।—वी० भा० महा०, पृ० २३४।

ननोई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान जो बिना जोते बोए वर्षा में जलाशयों में स्वयं पैदा होता है। पसही। तिन्नी।

नन्ना†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाना'।

नन्ना†²—वि० [हिं०] दे० 'नन्हा'।

नन्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननिहाल'।

नन्हा—वि० [सं० न्यञ्च या न्यून] [वि० स्त्री० नन्हीं] छोटा।

मुहा०—नन्हा सा = बहुत छोटा। जैसे, नन्हा सा बच्चा, नन्हा सा हाथ।

नन्हाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नन्हा + ई (प्रत्य०)] १. छोटापन। छोटाई। २. अप्रतिष्ठा। बदनामी। हेठी। उ०—(क) बुद्ध वचन सुन भयो कन्हाई। नंदमहर को करे नन्हाई।—सूर (शब्द०)। (ख) ब्रज परधान सरदार महर तू तिनकी करत नन्हाई।—सूर (शब्द०)।

नन्हिया†—संज्ञा पुं० [हिं० नन्हा] १. एक प्रकार का धान। २. इस धान का चावल।

नन्हैया(पु)‡—वि० [हिं० नन्हा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'नन्हा'। उ०—चुटकी देहि नचावै सुन जानि नन्हैया।—सूर (शब्द०)।

नपती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नपाई'।

नपता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसके डैनों पर काली या लाल चित्तियाँ होती हैं।

नपना¹—संज्ञा पुं० [हिं० नाप] दे० 'नपुआ'।

नपना²—क्रि० अ० [हिं०] नप जाना। नापने का काम होना।

नपरका—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और पेट लाल, और पैर तथा चोंच पीली होती है।

नपराजित—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाप + आई (प्रत्य०)] १. नापने की मजदूरी।

नपाक(पु)†—वि० [फ़ा० नापाक] अपवित्र। अशुद्ध।

नपात—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान पथ।

नपुंस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नपुंसक' (को०)।

नपुंसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार वह पुरुष जिसमें कामेच्छा बिलकुल न हो अथवा बहुत ही कम हो और किसी विशेष उपाय से जाग्रत हो।

विशेष—नपुंसक पाँच प्रकार के माने गए हैं। आसेव्य, सुगंधी, कुंभीक, ईर्षक और षंड।

२. वह जो न पुरुष हो न स्त्री। षंड। क्लीब। हिजड़ा। नामर्द।

विशेष—मनुष्यों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो न तो पूरे पुरुष कहे जा सकते हैं न स्त्री। उनमें मूत्र की कोई इंद्रिय स्पष्ट नहीं होती और न मूँछ दाढ़ी या पुरुषत्व ही होता है। वैद्यक के अनुसार जब पिता का वीर्य और माता का रज दोनों समान होते हैं तब संतान नपुंसक होती है।

३. कायर। डरपोक। (क्व०)। ४. संस्कृत व्याकरण में एक लिंग (को०)।

नपुंसकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नपुंसक होने का भाव। हिजड़ापन। २. एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का वीर्य बिलकुल नष्ट हो जाता है और वह स्त्रीसंभोग के योग्य नहीं रह जाता। नामर्दी।

नपुंसकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नामर्दी। नपुंसकता।

नपुंसकमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० नपुंसक मन्त्र] जैनियों के अनुसार वह मंत्र जिसके अंत में 'नमः' हो।

नपुंसक वेद—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से स्त्री के साथ भी संभोग करने की इच्छा होती है और बालक या पुरुष के साथ भी।

नपुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० नाप + उआ (प्रत्य०)] नापने का पात्र। वह बरतन जिसमें रखकर कोई चीज नापी जाय। मान।

नपुत्री(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'निपुत्री'।

नपूँसा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'नपुंसक'। उ०—क्या किरपन

मुँजी की माया नाँव न होय नपूंसे से।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३।

नप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० नप्तृ] [स्त्री० नप्त्री] लड़की या लड़के की संतान। नाती या पोता।

नप्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—इसका मांस हलका, ठंढा, मीठा, कसैला और दोषनाशक माना जाता है।

नप्स(पु)—संज्ञा पुं० [अ० नफ्स] काम। वासना। शहवत। उ०—(क) यह बंदगी तब होयगी इस नप्स को गहि मार।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २८३ (ख) नप्स सैतान को आपुनी कैद करि क्या दुनी में परचा खाइ गोता। है गुनहगार भी गुनह ही करत है खाइगा मार तब फिरैगा रोता।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ३१५।

नफर—संज्ञा पुं० [अ० नफ़र] १ दास। सेवक। जैसे,—नौकर के आगे चाकर, चाकर के आगे नफर। उ०—कबिरा भूलि बिगारिया करि करि मैला चित्त। साहब गरुआ चाहिए नफर बिगारो नित्त।—कबीर (शब्द०)। २. व्यक्ति। जैसे, दस नफर मजदूर।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार केवल बहुत छोटा काम करनेवालों की संख्या आदि प्रकट करने के लिये होता है।

नफरत—संज्ञा स्त्री० [अ० नफरत] घिन। घृणा।

नफरीं—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नफ़ीं] फटकार। लानत [को०]।

नफरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नफरी] १. एक मजदूर की एक दिन की मजदूरी। २. एक मजदूर का एक दिन का काम। ३. मजदूरी का दिन। जैसे,—दो नफरी में वह चौकी तैयार हो जायगी।

नफस—संज्ञा पुं० [अ० नफ़स] दम। श्वास। साँस। [को०]।

नफसानफसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नफस] १. वह विवाद या झगड़ा जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान रखकर किया जाय। खींचतान। २. चखाचखी। वैमनस्य। लड़ाई।

नफा—संज्ञा पुं० [अ० नफ़अ] लाभ। फायदा। उ०—(क) अजा मोल लै नीचन देई। चमं नफा पर अपना लेई।—रघुनाथ (शब्द०)। (ख) घनहित उद्यम किहिस अपारा। होय नफा नहीं घटा निहारा।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।

नफाखोर—वि० [अ० नफ़अ+फ़ा० खोर] १. लाभ या नफा खाने वाला। २. अनुचित रीति से मुनाफा करने या कमानेवाला। उ०—क्या हिंदू क्या मुसलमान, हैं एक प्राण, है भूख वही। हिंदू मुसलिम नफाखोर की धन दौलत में भेद नहीं।—हंस०, पृ० ३३।

नफासत—संज्ञा स्त्री० [अ० नफासत] नफीस होने का भाव। उम्दापन।

नफीरी—संज्ञा स्त्री० [फा नफ़ीरी] तुरही। शहनाई।

नफीस—वि० [अ० नफीस] १. उत्तम। उमदा। बढ़िया। २. साफ। स्वच्छ। ३. जिसकी बनावट बहुत अच्छी हो। सुंदर।

नफेरी(पु)—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'नफीरी'। उ०—सितार कमायच अरु मुहचंगा। ताल मृदंग नफेरी संगा।—कबीर सा०, पृ० २४९।

नफ्फेरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नफीरी'। उ०—नबं नद्द नफ्फेरि भेरी समालं। तरक्कंत तेगं मनों बिज्जु बालं।—पृ० रा०, १२।८०।

नफ्स—संज्ञा पुं० [अ० नफ़्स] १. अस्तित्व। २. सत्यता। ३. कामेच्छा। कामवासना। ४. खुलासा। ५. लिंग। शिश्न। ६. आत्मा [को०]।

यौ०—नफसकुश = इंद्रियनिग्रही। नफसकुशी = इंद्रियनिग्रह। नफसपरस्त = कामी। विषयी। नफसपरस्ती = कामुकता। लंपटता। नफसमजमून = लेख का अभिप्राय या खुलासा।

नफ्सानफ्सी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नफसानफसी'।

नफ्सानियत—संज्ञा स्त्री० [अ० नफ़्सानियत] १. कामशक्ति। २. अभिमान [को०]।

नफ्सानी—वि० [अ० नफ़्सानी] वासनात्मक [को०]।

नबात—संज्ञा स्त्री० [अ०] वनस्पति। पेड़ पौधे। उ०—वो बहरे करम हैं व आबेहयात। हुए जिंदा इन्साँ व हैवाँ नबात।—दक्खिनी पृ० २११।

नबी—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर का दूत। पैगंबर। रसूल।

नबीन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'नवीन'। उ०—बेग चलो, न विलंब करो, लखि बाल नवेलि को नेह नबीनो।—मति० ग्रं०, पृ० ३१२।

नबेड़ना—क्रि० स० [सं० निवारण, हिं० निपटाना] १. निपटाना ते करना। (झगड़ा आदि) समाप्त करना। जैसे,—तुम्हें दूसरे की क्या पड़ी है, तुम अपनी नबेड़ो। २. अपने मतलब की चीज ले लेना और बाकी छोड़ देना। चुनना। (क्व०)। दे० 'निबेरना'।

नबेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नबेड़ना] फैसला। न्याय। निपटारा।

नबेरना†—क्रि० स० [हिं०] दे० नबेड़ना'।

नबेरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नबेड़ा'।

नबेली(पु)—वि० स्त्री० [हिं० नवेली] १ नई। नवीना। २. नई उम्र की। उ०—दिपै देह दीपति गयो दीप बयारि बुझाइ। अचल ओट किए तऊ चली नबेली जाइ।—मति० ग्रं०, पृ० ४५२।

नब्दगर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमदगर] चारजामा बनानेवाला आदमी।

नब्ज—संज्ञा स्त्री० [अ० नब्ज] हाथ की वह रक्तवहा नाली जिसकी चाल से रोग की पहचान की जाती है। नाड़ी।

क्रि० प्र०—देखना।—दिखाना।

मुहा०—नब्ज चलाना = नाड़ी में गति होना। नब्ज न रहना = नाड़ी की गति का अंत हो जाना। नाड़ी में गति न रह जाना। प्राण न रहना। नब्ज छूटना = दे० 'नब्ज न रहना'।

नब्बे—वि० [सं० नवति] जो गिनती में पचास और चालीस हो। सौ से दस कम।

नब्बे[2]—संज्ञा पुं० [सं० नवति] चालिस और पचास की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९०।

नभःकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

नभःक्रांत—संज्ञा पुं० [सं० नभःक्रान्त] सिंह (को०)।

नभःक्रांती—संज्ञा पुं० [सं० नभःक्रान्तिन्] सिंह।

नभःपांथ—संज्ञा पुं० [सं० नभःपान्थ] सूर्य।

नभःप्रभेद—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

विशेष—ये विरूप के वंशज थे। ऋग्वेद में इनके कई मंत्र मिलते हैं।

नभःप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नभःश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा (को०)।

नभःसद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. आकाश में विचरनेवाले पक्षी आदि।

नभःसरित—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

नभःसुत—संज्ञा पुं० [सं०] पवन। हवा।

नभःस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. आकाश (को०)।

नभःस्थित[1]—वि० [सं०] जो आकाश में स्थित हो। आकाशस्थ (को०)।

नभःस्थित[2]—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम (को०)।

नभःस्पृक्—वि० [सं० नभःस्पृश्] गगनचुंबी। आकाश को छूनेवाला (को०)।

नभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० नभस्] १ पंच तत्व में से एक। आकाश। आसमान।

पर्या०—आकाश। गगन। व्योम।

२. शून्य स्थान। आकाश। ३. शून्य। सुन्ना। सिफर। ४. श्रावण मास। सावन का महीना। ५. भादों का महीना। उ०—नभगिर हरिव्रत करो नरेशा।—रघुनाथ (शब्द०)। ६. आश्रय। आधार। ७. पास। निकट। नजदीक। उ०—नभ आश्रय नभ भाद्रपद नभ श्रावण को मास। नभ प्रकाश नभ निकट ही घट घट रमा निवास।—नंददास (शब्द०)। ८. राजा नल के एक पुत्र का नाम। ९. हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के वंश के एक राजा का नाम। १०. हरिवंश के अनुसार चाक्षुस मुनि के एक पुत्र का नाम। ११. चाक्षुस मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम। १२. शिव। महादेव। १३. अभ्रक। १४. जल। १५. जन्मकुंडली में लग्न स्थान से दसवाँ स्थान। १६. मेघ। बादल। १७. वर्षा। १८. मृणाल सूत्र। कमल की जड़ के सूत्र या सुतला। १९. बिस-तंतु। २०. वाष्प। कुहरा (को०)। २१. जीवन की अवधि। आयु (को०)। २२. घ्राण (को०)।

नभ[2]—वि० [सं०] हिंसक।

नभग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। २. हवा। ३. बादल। ४. भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

नभग[2]—वि० [सं०] १ आकाशगामी। आकाश में विचरनेवाला। २. भाग्यहीन। अभागा।

नभगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़। उ०—बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी। नभगनाथ पर प्रीति न थोरी।—मानस, ७।७०।

नभगामी—संज्ञा पुं० [सं० नभोगामिन्] १. चंद्रमा। (डिं०)। २. पक्षी। ३. देवता। ४. सूर्य। ५. तारा।

नभगेश—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

नभचर—संज्ञा पुं० [हिं० नभ + सं० चर] दे० 'नभश्चर'।

नभधुज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नभध्वज] मेघ। बादल।

नभध्वज—संज्ञा पुं० [हिं० नभ + सं० ध्वज] दे० 'नभोध्वज'।

नभनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० नभोनदी] आकाशगंगा। उ०—कहै 'मतिराम' नभनदी के कुसुम सम, उड़ै उड़गन सुंड अनिल उड़ाये तें।—मति० ग्रं०, पृ० ३८१।

नभनीरप—संज्ञा पुं० [सं० नभोनीरप] चातक। पपीहा।

नभश्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० नभश्चक्षुस्] सूर्य।

नभश्चमस—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. इंद्रजाल।

नभश्चर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी। २. बादल। ३. हवा ४. देवता, गंधर्व और ग्रह आदि।

नभश्चर[2]—वि० आकाश में चलनेवाला।

नभसंगम—संज्ञा पुं० [सं० नभसङ्गम] चिड़िया। पक्षी।

नभस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिवंश के अनुसार दसवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम। २. आकाश (को०)। ३. पावस (को०)। ४. समुद्र (को०)।

नभस[2]—वि० वाष्पमय। कुहरेवाला (को०)।

नभस्तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश का निचला भाग। २. वायुमंडल (को०)।

नभस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. शिव।

नभस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश। उ०—उसके ऊपर है नभस्थली।—साकेत, पृ० ३२१।

नभस्थित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

नभस्थित[2]—वि० जो आकाश में हो। आकाश मे ठहरा हुआ।

नभस्मय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

नभस्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भादों का महीना। २. हरिवंश के अनुसार स्वरोचिष मनु के एक पुत्र का नाम।

नभस्य[2]—वि० कुहरेवाला। वाष्पमय (को०)।

नभस्वान्—संज्ञा पुं० [सं० नभस्वत्] वायु। हवा।

नभाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अँधेरा। अँधकार। २. राहु। ३. एक ऋषि का नाम। ४. मेघ। बादल (को०)। ५. आकाश (को०)।

नभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिया। चक्र।

नभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में चलनेवाले पक्षी, देवता, ग्रह आदि। २. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से दसवाँ स्थान। ३. दसवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम।

नभोगति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाश में चलता हो। जैसे, पक्षी, देवता, ग्रह आदि।

नभोद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] हरिवंश के अनुसार एक विश्वदेव का नाम।

नभोदुह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मेघ। बादल।

नभोदेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आकाश। उ॰—नभोदेश में विमल चंद्रमंडल सा संस्थित विष्यपुष्ठ पर है मनोज्ञ बांधव अति विस्तृत।—प्रेमांजलि, पृ॰ ४२।

नभोद्वीप—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बादल।

नभोध्वज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बादल।

नभोनदी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] आकाशगंगा।

नभोमणि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सूर्य।

नभोयोनि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महादेव। शिव।

नभोरूप—वि॰ [सं॰] नीले रंग का। जिसका रंग नीला हो।

नभोरेणु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कुहरा। कुहासा।

नभोलय[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] धूआँ।

नभोलय[2]—वि॰ [सं॰] जो आकाश में लीन हो जाय।

नभोवट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आकाशमंडल।

नभ्य[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पहिए के बीच का भाग। २. धुरी। अक्ष। ३. वह तेल या चिकनाई जो पहिए में दी जाय।

नभ्य[2]—वि॰ १. मेघमय। २ वाष्पयुक्त। कुहरेवाला [को॰]।

नभ्यसी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नभस्य] भाद्रपद। भादों का महीना। उ॰—फिरे दास भारी बुले राग बैन। मनो नभ्यसी मास कोकिल गैन।—पृ॰ रा॰, १४।११३।

नभ्राज—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बादल। मेघ।

नमः[1]—क्रि॰ वि॰ [सं॰ नमस्] प्रणाम या स्वागत आदि का व्यंजक शब्द [को॰]।

नमः[2]—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'नम[2]' [को॰]।

नम[1]—वि॰ [फ़ा॰] [संज्ञा नमी] गीला। तर। भीगा हुआ। आर्द्र।

नम[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नमस्] १. नमस्कार। २. त्याग। ३. अन्न। ४. वज्र। ५. यज्ञ। ६. स्तोत्र।

नमक—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ या सं॰ लवणक] १. एक प्रसिद्ध क्षार पदार्थ जिसका व्यवहार भोज्य पदार्थों में एक प्रकार का स्वाद उत्पन्न करने के लिये थोड़े मान में होता है। लवण। नोन।

विशेष—नमक संसार के प्रायः सभी भागों में दो रूपों में पाया जाता है—एक तो जमीन में, चट्टानों या स्तरों के रूप में और दूसरा समुद्रों, झीलों और तालाबों आदि के खारे जल में। भारत में पंजाब, कोहाट, तथा काँगड़े की मंडी नामक रियासत में नमक की खानें हैं जिनमें से बहुत प्राचीन काल से नमक निकाला जाता है। सिंध भी नमक के लिये प्रसिद्ध था। इसी से वहाँ के नमक को सैंधव (सेंधा) कहते थे। पंजाब की खान का नमक भी सेंधा कहलाता है। यह प्रायः साफ और सफेद रंग का होता है और इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं रहती। इसके अतिरिक्त समुद्र या झीलों के खारे पानी आदि को सुखाकर भी कई प्रकार के नमक निकाले जाते हैं। इस प्रकार का नमक करकच कहलाता है। कहीं कहीं रेह या मिट्टी में से भी एक प्रकार का नमक निकाला जाता है जो खारी कहलाता है। एक और प्रकार का नमक होता है जो काला नमक कहलाता है। यह साधारण नमक को हड़, बहेड़े और सज्जी के साथ गलाकर बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त ओषधि और रसायन आदि के काम के लिये और भी अनेक वनस्पतियों और दूसरे पदार्थों को जलाकर खार या नमक तैयार करते हैं। वैद्यक में सैंधव (सेंधा), शाकंभरी (साँभर), समुद्र-लवण (करकच), विडलवण सौवर्चल (काला नमक, सोंचर), काचलवण (नोनी मिट्टी से बनाया हुआ कचिया नमक), औद्भिद, औषर, रोमक और द्रोणी आदि कई प्रकार के लवण गिनाए गए हैं जिनमें से सेंधा नमक सबसे अच्छा माना गया है।

मुहा॰—नमक अदा करना = अपने पालक या स्वामी के उपकार का बदला चुकाना। मालिक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना। (किसी का) नमक खाना = (किसी के द्वारा) पालित होना। (किसी का) दिया खाना। जैसे,—आपने पाँच बरस तक उनका नमक खाया है, आज अगर उन्होंने आपको दो बातें कह ही दीं तो क्या हो गया? नमक मिर्च मिलाना या लगाना = किसी बात को अधिक रोचक या प्रभावशाली बनाने के लिये अपने पास या ओर से भी कुछ बढ़ा देना। किसी बात को बढ़ाकर कहना। जैसे,—उन्होंने यहाँ का सारा हाल तो कह ही दिया, साथ ही अपनी तरफ से भी नमक मिर्च लगा दिया। नमक फूटकर निकलना = नमकहरामी की सजा मिलना। कृतघ्नता का दंड मिलना। नमक से या नमक पानी से अदा होना = दे॰ 'नमक अदा करना'। कटे पर नमक छिड़कना = किसी दुःखी को और भी दुःख देना। पीड़ित को और भी पीड़ित करना। नमक का सहारा = थोड़ा सहारा। थोड़ी सहायता।

यौ॰—नमकख्वार। नमकहराम। नमकहरामी। नमकहलाल। नमकहलाली।

२. कुछ विशेष प्रकार का सौंदर्य जो अधिक मनोहर या प्रिय हो। लावण्य। सलोनापन।

नमकख्वार—वि॰ [फ़ा॰ नमकख्वार] नमक खानेवाला। पालित होनेवाला। जिसका किसी दूसरे के द्वारा पालनपोषण या जीविकानिर्वाह हो।

नमकदान—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नमकदान (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ अल्पा॰ नमकदानी] पिसा हुआ नमक रखने का पात्र।

नमकसार—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] वह स्थान जहाँ नमक निकलता या बनता हो।

नमकहराम—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नमक + अ॰ हराम] वह जो किसी का दिया हुआ अन्न खाकर उसी का द्रोह करे। अपने अन्नदाता को ही हानि पहुँचानेवाला मनुष्य। कृतघ्न।

नमकहरामी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमक + अ० हराम + ई (प्रत्य०)] नमकहरामपन । कृतघ्नता ।

नमकहलाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमक+अ० हलाल] वह जो अपने स्वामी या अन्नदाता का कार्य धर्मपूर्वक करे । सदा अपने मालिक की भलाई करनेवाला मनुष्य । स्वामिनिष्ठ । स्वामिभक्त ।

नमकहलाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमक + अ० हलाल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] नमकहलाल होने का भाव । स्वामिनिष्ठा । स्वामिभक्ति ।

नमकीन[1]—वि० [फ़ा०] १. जिसमें नमक का सा स्वाद हो । जैसे,—चने का साग नमकीन होता है । २. जिसमें नमक पड़ा हो । जैसे, नमकीन बुँदिया, नमकीन सुम्मा । ३. जिसके चेहरे पर नमक हो । सुंदर । खूबसूरत । सलोना ।

नमकीन[2]—संज्ञा पुं० वह पकवान आदि जिसमें नमक पड़ा हो । जैसे, समोसा, सेव, पापड़, दालमोट आदि ।

नमगीरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमगीरह्] वह कपड़ा जिसे ओस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में तान देते हैं । २. पाल या तिरपाल आदि जिसे धूप और वर्षा से रक्षित रखने के लिये किसी स्थान के ऊपर तानते हैं ।

नमत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभु । स्वामी । २. नट । अभिनेता । ३. धूम्र । ४. मेघ (को०) ।

नमत[2]—वि० १. नम्र । जो झुके । २. वक्र । टेढ़ा (को०) ।

नमदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नम्दह्] जमाया हुआ ऊनी कंबल या कपड़ा ।

मुहा०—दुम में नमदा बाँधना = दे० 'दुम' के मुहा० ।

नमन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नमनीय, नमित] १. प्रणाम । नमस्कार । २. झुकाव । ३. नमस्कार करना (को०) । ४. झुकने की क्रिया (को०) ।

नमन[2]—वि० १. झुकनेवाला । झुका हुआ । २. पराजित होनेवाला । पराभूत । ३. झुकानेवाला । नत करनेवाला (को०) ।

नमना(पु)†—क्रि० अ० [सं० नमन] १. झुकना । २. प्रणाम करना । नमस्कार करना ।

नमनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नमन] दे० 'नमन' ।

नमनीय—वि० [सं०] १. नमस्कार करने योग्य । आदरणीय । पूजनीय । माननीय । जिसे नमस्कार किया जाय । उ०—किन्नरी नटी सुनारि पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरीन हू निहारि नमनीय है ।—केशव (शब्द०) । २. जो झुक सके या झुकाया जा सके ।

नमनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लचक । लोच । भंगिमा । उ०—नववधू की पुलक भरी मृदु-मृदु लज्जा उसके मुख पर प्रभासित होकर उसे ऐसी कमनीय नमनीयता प्रदान कर रही थी जो मेरे प्राण रक्तकण को एक अनिर्वचनीय हर्ष की अनुभूति से तरंगित करती थी ।—जिप्सी, पृ० १७३ ।

नमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकना । नमन । २. प्रणाम । नमस्कार । ३. त्याग । छोड़ देना । ४. यज्ञ । ५. अन्न । ६. वज्र । ७. स्तोत्र ।

नमस—वि० [सं०] प्रसन्न (को०) ।

नमसकारना(पु)—क्रि० स० [सं० नमस्कार से नामिक धातु] नमस्कार करना ।

नमसित—वि० [सं०] जिसे नमस्कार किया गया हो । पूजित ।

नमस्करण—संज्ञा पुं० [सं०] आदरपूर्वक या श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

नमस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुककर अभिवादन करना । प्रणाम । २. एक प्रकार का विष ।

नमस्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लज्जावंती । लजालू । २. वराहक्रांता । ३. खदिरी या खदिरिका नामक क्षुप ।

नमस्कार्य—वि० [सं०] १. जो नमस्कार करने योग्य हो । पूज्य । वंदनीय । २. जिसे नमस्कार किया जाय ।

नमस्कृत—वि० [सं०] जिसे आदर सहित नमस्कार किया गया हो (को०) ।

नमस्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नमस्करण' (को०) ।

नमस्क्रिया—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'नमस्कार' ।

नमस्ते—[सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है—आपको नमस्कार है ।

नमस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नमस्कार करने के योग्य । पूज्य । आदरणीय । २. नम्र । विनयशील (को०) ।

नमस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूजा । श्रद्धा । २. आदर । संमान (को०) ।

नमास्यित—वि० [सं०] दे० 'नमसित' ।

नमस्यु—वि० [सं०] १. पूजा या श्रद्धा करनेवाला । २. आदर मान करनेवाला (को०) ।

नमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज, मि० सं० नमस्] मुसलमानों की ईश्वर प्रार्थना जो नित्य पाँच बार होती है ।

विशेष—दैनिक पाँच बार की नमाज के अतिरिक्त सूर्य या चंद्रग्रहण के समय, ईद के दिन, किसी के मरने पर तथा इसी प्रकार के और अवसरों पर भी नमाज पढ़ी जाती है ।

क्रि० प्र०—अदा करना ।—गुजारना ।—पढ़ना ।

मुहा०—नमाज कजा होना = नियत समय पर नमाज न पढ़ा जा सकना ।

नमाजगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाजगाह] मसजिद में वह जगह जहाँ नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाजबंद—संज्ञा पुं० [फा० नमाजबंद] कुश्ती का एक प्रकार का पेच ।

नमाजी—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमाजी] १. नमाज पढ़नेवाला । २. वह वस्त्र जिसपर खड़े होकर नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाना(पु)†—क्रि० स० [सं० नमन] १. झुकाना । २. दबाकर अपने अधीन करना । पस्त करना । काबू में करना ।

नमित—वि० [सं०] १. झुका हुआ । २. टेढ़ा । वक्र (को०) ।

नमिस—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नमिश्क] एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ दूध का फेन जो जाड़े में खाया जाता है।

विशेष—पहले दूध को उबाल लेते हैं तब उसमें चीनी या मिसरी, इलायची, केसर आदि मिलाकर रात भर उसे मथानी से मथते हैं जिससे फेन निकलता है।

नमी—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰] गीलापन। आर्द्रता। तरी। जैसे,—इस जमीन में बहुत नमी है।

नमुचि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. एक ऋषि का नाम। २. एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति नामक दानव का पुत्र था।

विशेष—यह पहले इंद्र का सखा था। इंद्र ने इससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो तुम्हें दिन मे मारूँगा और न रात में, न सूखे अस्त्र से मारूँगा न गीले अस्त्र से, पर पीछे इसने उनका बल हरण कर लिया था। इंद्र ने सरस्वती और अश्विनी-कुमारों से समुद्र के झाग के समान एक वज्रास्त्र लेकर उससे इसे मारा था।

यौ॰—नमुचिद्विष्, नमुचिहन् = इंद्र।

३. पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो शुंभ और निशुंभ का छोटा भाई था। ४. कामदेव।

नमुचिसूदन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नमुचि को मारनेवाला इंद्र।

नमूद—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नुमूद] १. आविर्भाव। २. धूमधाम। तड़क भड़क। ३. उगना। ४. अस्तित्व। हस्ती। ५. ख्याति। शोहरत। उ॰—माता, मुझे नाम नमूद की बहुत चाह नहीं है।—मान॰, पृ॰ २७७।

नमूदार—वि॰ [फ़ा॰] जो उदित हुआ हो। प्रकट। दृग्गोचर।

नमूना—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नमूनह्] १. किसी बड़े या अधिक पदार्थ में से निकाला हुआ वह छोटा या थोड़ा अंश जिसका उपयोग उस मूल पदार्थ के गुण और स्वरूप आदि का ज्ञान कराने के लिये होता है। बानगी। जैसे, कपड़े का नमूना, चावल का नमूना। २. वह जिससे उसके सदृश दूसरी वस्तुओं के स्वरूप और गुण आदि का ज्ञान हो जाय। जैसे, नमूने का थान, नमूने की टोपी। ३. वह जिसके अनुकरण पर वैसी ही और वस्तुएँ बनाई जायँ। ४. ढाँचा। ठाट। खाका।

नमेरु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. रुद्राक्ष का पेड़। २. एक प्रकार का पुन्नाग।

नमेरू—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'नमेरु'।

नमोगुरु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ब्राह्मण। २. दीक्षा देनेवाला गुरु [को॰]।

नम्य—वि॰ [सं॰] १. दे॰ 'नमस्य'। २. झुकने या टेढ़ा होनेवाला [को॰]।

नम्यता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नम्य+ता] झुकने या टेढ़ा होने की क्रिया या गुण [को॰]।

नम्र—वि॰ [सं॰] १. विनीत। जिसमें नम्रता हो। २. झुका हुआ। ३. वक्र। टेढ़ा (को॰)। ४. पूजा करनेवाला (को॰)। ५. श्रद्धालु (को॰)।

नम्रक[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बेत।

नम्रक[2]—वि॰ नत। झुका हुआ। टेढ़ा [को॰]।

नम्रता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नम्र होने का भाव।

नम्रत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'नम्रता'।

नम्रांग—वि॰ [सं॰ नम्राङ्ग] टेढ़ा। झुका हुआ [को॰]।

नम्रित—वि॰ [सं॰] झुका हुआ [को॰]।

नय[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नीति। २. नम्रता। ३. एक प्रकार का जुआ। ४. विष्णु। ५. जैन दर्शन में प्रमाणों द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति।

विशेष—यह सात प्रकार की होती है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत।

६. ले जाने की क्रिया या स्थिति (को॰)। ७. नेतृत्व या नायकत्व करने की क्रिया या स्थिति (को॰)। ८. राजनीति (को॰)। ९. व्यवहार। चलावा [को॰]। १०. सिद्धांत। मत (को॰)। ११. दूरदर्शिता (को॰)। १२. पद्धति। ढंग। विधि (को॰)। १३. योजना (को॰)। नैतिकता (को॰)।

नय(पु)[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नद] नदी। उ॰—इक भीजे चहले पड़े बूड़े बहे हजार। केते औगुन जग करत नव वय चढ़ती बार।—बिहारी (शब्द॰)।

नय(पु)[3]—वि॰ [हिं॰] नया। नवीन। उ॰—नय मुदित कुमुदिय अमित प्रमुदिय, सत्त पत्त सुभासयं।—पृ॰ रा॰, २४।११६।

नयऋति(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नैऋँत] दे॰ 'नैऋँत'।

नयक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अच्छी व्यवस्था करनेवाला व्यक्ति। २. कुशल या निपुण राजनीतिज्ञ [को॰]।

नयकारी(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नृत्यकारी] १. नर्तकों के दल का नायक। नाचनेवाला का मुखिया। उ॰ कितनी बार हुआ मैं तेरा नृत्य लेन दल नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द॰)। २. नाचनेवाला। नचनिया। उ॰—निज भृगुगण को मोद चक्र मे साथ नचावे नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द॰)।

नयकोविद—वि॰ [सं॰] १. नीतिनिपुण। २. राजनीति मे कुशल [को॰]।

नयग—वि॰ [सं॰] नीति के अनुसार चलनेवाला या व्यवहार करनेवाला [को॰]।

नयचक्षुस्—वि॰ [सं॰] राजनीति में दक्ष। दूरदर्शी [को॰]।

नयज्ञ—वि॰ [सं॰] राजनीति में प्रवीण [को॰]।

नयन[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. चक्षु। नेत्र। आँख।

यौ॰—नयनगोचर।

विशेष—'नयन' के मुहाविरों के लिये देखो 'आँख' के मुहाविरे।

२. ले जाना। ३. नेतृत्व करना (को॰)। ४. शासन करना (को॰)। ५. बिताना। यापन (को॰)।

नयन[2]—वि॰ १. ले जानेवाला। २. मार्गदर्शन करनेवाला। नायकत्व करनेवाला। ३. व्यवस्था करनेवाला [को॰]।

नयन[3]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की मछली।

नयनगोचर—वि० [सं०] दिखाई पड़नेवाला। जो आँखों के सामने हो। समक्ष।

नयनपट—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलक। उ०—छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयनपट रोकी।—तुलसी (शब्द०)।

नयनांचल—संज्ञा पुं० [सं० नयनाञ्चल] १. आँख का कोना। २. तिरछी चितवन (को०)।

नयनांत—संज्ञा पुं० [सं० नयनान्त] दे० 'नयनांचल' (को०)।

नयना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनीनिका। आँख की पुतली (को०)।

नयना(पु)²—क्रि० अ० [सं० नमन] १. नम्र होना। २. झुकना। लटकना। उ०—नए जु फल फूलनि के भार। लगि लगि रही धरनि द्रुम डार।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६। ३. नमस्कार करना।

नयना³—संज्ञा पुं० [सं० नयन] आँख। नेत्र। चक्षु।

नयनागर—वि० [सं०] नीतिज्ञ। नीतिनिपुण।

नयनाभिघात—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग (को०)।

नयनाभिराम—वि० [सं०] नयनों को सुंदर लगनेवाला। प्रियदर्शन (को०)।

नयनामोषी—वि० [सं० नयनामोषिन्] आँखों को दृष्टिशून्य करनेवाला (को०)।

नयनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० नयन] लोचनत्व। नेत्रों का धर्म। उ०—निखर उठी नीलिमा, नयनिमा भी अनंत की।—रजत०, पृ० १४१।

नयनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली।

नयनी²—वि० स्त्री० आँखवाली।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्द के अंत में होता है। जैसे, मृगनयनी, कमलनयनी।

नयनू—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] १. मक्खन। २. एक प्रकार की मलमल जिसपर सफेद सूत की बूटियाँ बनी होती हैं।

नयनेता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नयनेतृ] राजनीति का ज्ञाता (को०)।

नयनौषध—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्प कासीस। पीला कसीस।

नयनोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपक। २. आँखों का आनंद। ३. सुदर्शन व्यक्ति या वस्तु (को०)।

नयनोपांत—संज्ञा पुं० [सं० नयनोपान्त] आँख की कोर। अपांग (को०)।

नयन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नयन] दे० 'नयन'। उ०—धर तुण्डत [illegible] नयन्न।—ह० रासो, पृ० [illegible]।

नयपीठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतरंज की बिसात (को०)।

नयप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजनीति में कुशलता (को०)।

नयवादी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नयवादिन्] राजनीतिज्ञ (को०)।

नयविद्, नयविशारद—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] राजनितिज्ञ (को०)।

नयर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० णअर, नयर] शहर। पुर। नगर। उ०—जोयो छै तोड़उ जेसलमेर। जउमो छइ नयर अयोध्या को देश।—बी० रासो, पृ० ७।

नयशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजनीति शास्त्र। राजनीति विषयक कोई ग्रंथ। २. नीतिविषयक ग्रंथ (को०)।

नयशाली—वि० [सं० नयशालिन्] सदाचारवाला। विनयशील (को०)।

नयशील—वि० [सं०] १. नीतिज्ञ। २. विनीत।

नयसील(पु)—वि० [सं० नयशील] १. नीतिज्ञ। २. विनीत। उ०—तुम कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला।—तुलसी (शब्द०)।

नया—वि० [सं० नव, मि० फ़ा० नौ] १. जिसका संगठन, सृजन, आविष्कार या आविर्भाव बहुत हाल में हुआ हो। जो थोड़े समय से बना, चला या निकला हो। नवीन। नूतन। ताजा। हाल का। पुराना का उलटा। जैसे, नया कपड़ा, नया पात्र, नए विचार, नई (हाल की बनी या छपी हुई) किताब।

मुहा०—नया करना = (१) कोई नया फल या अनाज मौसम में पहले पहल खाना। मौसम की नई चीज पहले पहल खाना (२) कपड़ा आदि फाड़ या जला देना। जैसे,—इसे कपड़ा पहनाओ वही नया करके रख देता है।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः अशुभ बात मुँह से निकालने से बचने के लिये करती हैं।

नया पुराना करना = (१) पुराना हिसाब साफ करके नया हिसाब चलाना (महाजनी)। (२) पुराने को हटाकर उसके स्थान पर नया करना या रखना।

यौ०—नया नवेला = नवयुवक। नौजवान।

२. जिसका अस्तित्व तो पहले से हो परंतु परिचय हाल में मिला हो। जो थोड़े समय से मालूम हुआ हो या सामने आया हो। जैसे,—(क) कोलंबस ने एक नए महाद्वीप का पता लगाया था। (ख) अशोक का एक नया शिलालेख मिला है। (ग) नए आदमी को देखकर यह लड़का घबरा जाता है। ३. पहलेवाले से भिन्न। जो पहले था उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा। जैसे,—(क) मैंने कल एक नया घोड़ा खरीदा है। (ख) बंगाल में नए लाट आए हैं। ४. जो पहले किसी के व्यवहार में न आया हो। जिससे पहले किसी ने काम न लिया हो। जैसे,—पहली किताब इसने खो दी थी, यह तो इसे नई लेकर दी गई है। ५. जिसका आरंभ पहले पहल अथवा फिर से, परंतु बहुत हाल में हुआ हो। जैसे, नई जिंदगी पाना, नए सिरे से कोई काम करना, नया चाँद देखना। ६. जिसका नामकरण किसी पुराने नाम पर हुआ हो। जिसका नाम किसी पुराने (स्थान आदि) के नाम पर रखा गया हो। जैसे, नया गोदाम, नई बस्ती, नया बाजार आदि।

नयापन—संज्ञा पुं० [सं० नव, हिं० नया + पन (प्रत्य०)] नया होने का भाव। नवीनता। नूतनत्व।

नयाबत—संज्ञा स्त्री० [अ० नियाबत] नायब का पद और कार्यालय।

उ०—दिल्लीशाही जमाने में नयाबत का सदर मुकाम बरियागढ़ रक्खा गया था।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ७१।

नयाम—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तलवार का म्यान। तलवार की खोल।

नय्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] देखो 'नैया'। उ०—निर्दय हलकोरों से डगमग बहती मेरी नय्या।—हिल्लोल, पृ० १०२।

नरंग—संज्ञा पुं० [सं० नारङ्ग] १. नारंगी का पेड़। २. पुरुषेंद्रिय (को०)। ३. मुहासा।

नरंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा। उ०—प्रीत नरंदा देह पण रीत समंदा बंध।—रा० रू०, पृ० ४३।

नरंधि—संज्ञा पुं० [सं० नरन्धि] सांसारिक जीवन [को०]।

नरंधिष—संज्ञा पुं० [सं० नरन्धिष] विष्णु [को०]।

नरंम(पु)—वि० [फ़ा० नर्म] नरम। मुलायम। चिकना। कोमल। उ०—रेसमी डोरि पट्टी नरंम। रहै सीत छांह दुषित गरंम।—पृ० रा०, ७।५८।

नर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव। महादेव। ३. अर्जुन। ४. धर्मराज और दक्षप्रजापति की एक कन्या से उत्पन्न एक पौराणिक ऋषि।

विशेष—पौराणिक गाथानुसार यह ईश्वर के अंशावतार माने जाते थे। ये और नारायण दोनों भाई थे। विशेष—दे० 'नरनारायण'।

५. एक देव योनि। ६. पुरुष। मर्द। आदमी। ७ एक प्रकार का क्षुप।

विशेष—इसे रायकपूर, रोहिस, सेंधिया और गंधेल भी कहते हैं। विशेष—दे० 'गंधेल'।

८. वह खूँटी जो छाया आदि जानने के लिये खड़े बल गाड़ी जाती है। शंकु। लंब। ९. सेवक। १०. मय राक्षस के पुत्र का नाम। ११. सुधृति के पुत्र का नाम। १२. भवन्मन्य के पुत्र का नाम। १३. दोहे का एक भेद जिसमें १५ गुरु और १८ लघु होते हैं। जैसे,—विश्वंभर नामै नहीं, मही विश्व में नाहिं। दुहू मँह झूठी कौन है, यह संशय जिय माहिं।—(शब्द०)। १४. छप्पय का एक भेद जिसमें १० गुरु और १३ लघु होते हैं। १५. मनुष्य। आदमी (को०)। १६. शतरंज का मोहरा (को०)। १७. परम पुरुष। पुराण पुरुष (को०)। १८. आदमी की लंबाई का परिमाण। पुरुष। १९. घोड़ा (को०)। २०. जीवात्मा (को०)।

नर[2]—वि० जो (प्राणी) पुरुष जाति का हो। मादा का उलटा।

नर[3]—संज्ञा पुं० [हिं० नल] नल जिसमें से होकर पानी आता है। उ०—नर की अरु नर नीर की एकै गति कर जोइ। जेतो नीचे ह्वै चले तेतो ऊँचे होइ।—बिहारी (शब्द०)।

नर[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट'।

नर[5]—संज्ञा पुं० [सं० नीर] जल। पानी। उ०—पुत्री वनिक सराप दिय नर पुहकर नर लोइ। असुर होइ बीसल नृपति नरपल-चारी सोइ।—पृ० रा०, १।४९१।

नरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गेहूँ की घास या डंठल। २. किसी घास का डंठल जो अंदर से पोला हो। ३. एक प्रकार की घास जो प्रायः जलाशयों के पास होती है। उ०—धोंधन के जाल, जामें नरई सेवाल व्याल, ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै।—इतिहास, पृ० २७३।

नरकंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरकान्त] राजा। नृप।

नरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणों और धर्मशास्त्रों आदि के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा पाप का फल भोगने के लिये भेजी जाती है। वह स्थान जहाँ दुष्कर्म करनेवालों की आत्मा दंड देने के लिये रखी जाती है। दोजख। जहन्नुम।

विशेष—अनेक पुराणों और धर्मशास्त्रों में नरक के संबंध में अनेक बातें मिलती हैं। परंतु इनसे अधिक प्राचीन ग्रंथों में नरक का उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है कि वैदिक काल में लोगों में इस प्रकार की नरक की भावना नहीं थी। मनुस्मृति में नरकों की संख्या २१ बतलाई गई है जिनके नाम ये हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, नरक, महानरक, कालसूत्र, संजीवन, महावीचि, तपन, प्रतापन, संहात, काकोल, कुड्मल, प्रतिमूर्तिक, लोहशंकु, ऋजीष, शाल्मली, वैतरणी, असिपत्रवन और लोहदारक। इसी प्रकार भागवत में भी २१ नरकों का वर्णन है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तशूर्मि, वज्रकंटक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची और अयःपान। इसके अतिरिक्त क्षार-मर्दन, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख ये सात नरक और भी माने गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पुराणों में और भी अनेक नरककुंड माने गए हैं जैसे,—वसाकुंड, तप्तकुंड, सूर्यकुंड, चक्रकुंड। कहते हैं, भिन्न भिन्न पाप करने के कारण मनुष्य की आत्मा को भिन्न भिन्न नरकों में सहस्रों वर्ष तक रहना पड़ता है जहाँ उन्हें बहुत अधिक पीड़ा दी जाती है। मुसलमानों और ईसाइयों में भी नरक की कल्पना है, परंतु उनमें नरक के इस प्रकार के भेद नहीं हैं। उनके विश्वास के अनुसार नरक में सदा भीषण आग जलती रहती है। वे स्वर्ग को ऊपर और नरक को नीचे (पाताल में) मानते हैं।

मुहा०—नरक होना = नरक में भेजा जाना। नरक भोगने का दंड होना।

क्रि० प्र०—भोगना।

२. बहुत ही गंदा स्थान। ३. वह स्थान जहाँ बहुत ही पीड़ा या कष्ट हो। ४. पुराणानुसार कलि के पौत्र का नाम जो कलि के पुत्र भय और कलि की पुत्री मृत्यु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसने अपनी बहन यातना के साथ विवाह किया था। ५. विप्रचित्ति दानव के एक पुत्र का नाम। ६. निकृत के गर्भ से उत्पन्न अनृत के एक पुत्र का नाम। ७. दे० 'नरकासुर'।

नरककुंड—संज्ञा पुं० [सं० नरककुण्ड] नरक का वह कुंड जिसमें पापी जीव को यंत्रणा देने के लिये डाला जाता है [को०]।

नरकगति - संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य को नरक में जाना पड़े ।

नरकगामी - वि० [सं० नरकगामिन्] नरक में जानेवाला ।

नरकचतुर्दशी —संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी जिस दिन घर का सारा कूड़ा कतवार निकालकर फेंका जाता है ।

नरकचूर—संज्ञा पुं० [सं० नर + हिं० कचूर] दे० 'कचूर' ।

नरकजित् —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरकांतक' (को०) ।

नरकट —संज्ञा पुं० [सं० नल] बेंत की तरह का एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों की तरह पतली और लंबी होती हैं ।

विशेष—इसके डंठल लंबे, मजबूत और बीच से पोले होते हैं और कलम तथा चटाइयाँ आदि बनाने के काम में आते हैं । इसके अतिरिक्त इसके डंठलों का उपयोग हुक्के की निगालियाँ, दौरियाँ और बेठन के लिये मोढ़े आदि बनाने और छतें पाटने में भी होता है । कहीं कहीं इसके रेशों से रस्से भी बनाए जाते हैं ।

नरकदेवता —संज्ञा पुं० [सं० नरक+देव + ता] निर्ऋति (को०) ।

नरकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] आदमी की खोपड़ी (को०) ।

नरकभूमि —संज्ञा स्त्री० [सं०] यमपुरी । यमलोक की भूमि (को०) ।

नरकभूमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक लोक (जैन) ।

नरकल—संज्ञा पुं० [सं० नल] दे० 'नरकट' ।

नरकस —संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट' ।

नरकस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नदी ।

नरकांतक —संज्ञा पुं० [सं० नरकान्तक] विष्णु ।

नरकामय —संज्ञा पुं० [सं०] १. नरक रूपी रोग । २. प्रेत (को०) ।

नरकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण (को०) ।

नरकावास —संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो नरक में हो । २. नरक में वास (को०) ।

नरकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर ।

विशेष—कहते हैं, जिस समय भगवान् ने वाराह का अवतार लिया था उस समय उन्होंने पृथ्वी के साथ गमन किया था जिससे उसे गर्भ रह गया था । जब देवताओं को मालूम हुआ कि इस गर्भ में एक बड़ा और बली असुर है तब उन्होंने पृथ्वी का प्रसव रोक दिया । इसपर पृथ्वी ने भगवान् से प्रार्थना की । भगवान् ने वर दिया कि त्रेता में जब रामचंद्र के हाथ से रावण का वध होगा तब तुम्हारे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा । और इस बीच में तुम्हें कोई कष्ट न होगा । जिस समय रावण मारा गया उस समय पृथ्वी के गर्भ से उसी स्थान पर इस असुर का जन्म हुआ जिस स्थान पर सीता का जन्म हुआ था । पृथ्वी के इस बालक को राजा जनक ने १६ वर्ष की आयु तक अपने यहाँ रखकर पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया था । जब नरक १६ वर्ष का हो गया तब पृथ्वी उसे जनक के यहाँ से ले आई । उस समय पृथ्वी ने अपने पुत्र को उसके जन्म के संबंध की सारी कथा सुनाई और विष्णु का स्मरण किया । विष्णु नरक को लेकर प्राग्ज्योतिषपुर गए और उन्होंने उसे वहाँ का राजा बना दिया । उसी समय विदर्भ की राजकुमारी माया के साथ नरक का विवाह भी हो गया । उस समय विष्णु ने उसे समझा दिया था कि तुम ब्राह्मणों और देवताओं आदि के साथ कभी विरोध न करना, उन्होंने उसे एक दुर्भेद्य रथ दिया था । नरक कुछ दिनों तक तो बहुत अच्छी तरह राज्य करता रहा पर जब बाणासुर घूमता फिरता प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचा तब नरक भी उसके संसर्ग के कारण दुष्ट हो गया और देवताओं आदि को कष्ट देने लगा । उसी अवसर पर एक बार वशिष्ठ कामाक्षा देवी का दर्शन करने के लिये वहाँ गए थे लेकिन नरक ने उन्हें नगर में घुसने तक नहीं दिया । इसपर वशिष्ठ ने बहुत नाराज होकर शाप दिया था कि शीघ्र ही तुम्हारे पिता के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । इसपर बाणासुर की सम्मति से नरक तपस्या करने लगा जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि तुम्हें देवता, असुर, राक्षस आदि में से कोई न मार सकेगा और तुम्हारा राज्य सदा बना रहेगा । इसके बाद उसे भगदत्त, महाशीर्ष, मदवान और सुमाली नामक चार पुत्र हुए । तब उसने हयग्रीव, मुरु, और उपसुंद आदि असुरों की सहायता से इंद्र को जीता और बहुत ही अत्याचार करना आरंभ किया । अंत में श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की और विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से नरक का सिर काट डाला । कहते हैं कि इसके भांडार में जितना धन आदि था उतना कुबेर के भांडार में भी नहीं था । वह सब धन रत्न आदि श्रीकृष्ण अपने साथ द्वारका ले गए थे ।

नरकी —वि० [सं० नारकी] दे० 'नारकी' ।

नरकुल —संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट' ।

नरकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेशरिन्] नृसिंह जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं ।

नरकेसरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेसरिन्] दे० 'नरकेशरी' । उ०— राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकालु । जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु । —मानस १।२७ ।

नरकेहरी —संज्ञा पुं० [सं० नरकेसरिन्] दे० 'नरकेसरी' ।

नरकौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] मदारी का खेल ।

नरखड़ा —संज्ञा पुं० [देश०] गला ।

नरगण¹ —संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक गण जिसमें उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्र सम्मिलित हैं ।

विशेष—इस गण में जन्म लेनेवाला सुशील और बुद्धिमान होता है । राक्षसगण के साथ इस गण का विरोध माना जाता है । इसे मनुष्य गण भी कहते हैं ।

नरगण²—वि० [हिं० नर + गण] दे० 'गण'-७ ।

नरगिस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक पौधा जो ठीक प्याज के पेड़ सा होता है ।

विशेष—इसकी जड़ भी प्याज की गाँठ सी होती है । इसमें कटोरी के आकार का सफेद रंग का फूल लगता है जिसमें गोल काला धब्बा होता है । नरगिस की सुगंध भी बड़ी मनोहर होती है । फारसी और उर्दू के कवि इस फूल के साथ आँख की उपमा देते हैं । इसके फूल का इत्र बहुत अच्छा बनता है ।

२. इस पौधे का फूल । उ०—कुश्तए हसरतदार हैं या रब किसके, नख्ल ताकृत में जो फूल लगे नरगिस के ।—श्री निवास ग्रं०, पृ० ८५ ।

नरगिसी[1]—संज्ञा पुं० [फा] १. एक प्रकार का कपड़ा जिसपर नरगिस की तरह के फूल बने होते हैं । २. एक प्रकार का तला हुआ अंडा ।

नरगिसी[2]—वि० नरगिस की तरह या रंग आदि का । नरगिस संबंधी । उ०—अपनी नरगिसी निगाहों आँखों का बीमार किया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६२ ।

नरग्गिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नरगिस] दे० 'नरगिस' । उ०—प्राचीन नरगिस औ असोक ।—हृ० रासो, पृ० ६३ ।

नरछा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पाट या पटुआ ।

नरजी(पु)—वि० [हिं] तौल करनेवाला । उ०—नैन किये नरजी दिन रैन रतीबल कंचन-रूपहि तोलैं ।—घनानंद, पृ० ५६२ ।

नरतना(पु)—क्रि० अ० [सं० नर्तन] नाचना । उ०—जहँ चंचल तुरग नरतत मन मुग्ध बनावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११ ।

नरताल—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नृपति । उ०—इमि अनेक उत्पात, भए श्यामपुर जात तँह । तिहि न गिन्यो नरताल समर सूर विख्यात भुव ।—गोपाल (शब्द०) ।

नरत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरपाल । राजा । २. श्रीकृष्ण ।

नरत्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] नर होने का भाव । नरता ।

नरद[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० नर्द] १. चौसर खेलने की गोटी । उ०—तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै ।—गिरधर (शब्द) । २. एक पौधा जिसके फूलों का अरक खींचा जाता है और जिसकी पत्तियाँ मसाले के काम में आती हैं ।

नरद[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्द] शब्द । ध्वनि । नाद ।

नरदन—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्दन (= नाद)] नाद करना । गरजना । उ०—वनपति सम नरदन अमित बल निमि मानमाला गरे ।—गोपाल (शब्द०) ।

नरदवाँ—संज्ञा पुं० [फा० नावदान] नल । पनाला ।

नरदा—संज्ञा पुं० [फा० नावदान] मैला पानी बहने की नाली ।

नरदारा—संज्ञा पुं० [सं० नर + सं० दारा] १. जनाना । जनखा । हिजड़ा । नपुंसक । २. जो पुरुष होकर भी स्त्रियों का काम करे । डरपोक । कायर । उ०—वेष भयानक लखि बिकरारा । चहुँ दिसि भागि चले नरदारा ।—सबल (शब्द०) ।

नरदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । नृपति । २. ब्राह्मण ।

नरदेवकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जिनकी कथा श्रीमद्भागवत में है ।

नरद्विष्—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस [को०] ।

नरनाइक(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] संसार । जगत् । विश्व [को०] ।

नरधि—संज्ञा पुं० [सं० नरनायक] दे० 'नरनायक' । उ०—सिगरे नरनाइक असुर बिनाइक राकसपति हिय हारि गए ।—केशव ग्रं०, पृ० १७१ ।

नरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नृपति । नृपाल ।

नरनायक—संज्ञा पुं० [सं०] नृप । राजा । भूपति ।

नरनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] नर और नारायण नाम के दो ऋषि जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं ।

विशेष—कहते हैं, ये दोनों भाई थे और नारायण इनमें से बड़े थे । महाभारत में लिखा है कि एक बार नर और नारायण गंधमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे थे । उस समय दक्ष का यज्ञ हो रहा था । इस यज्ञ में दक्ष ने रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की थी जिससे क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये रुद्र ने एक शूल फेंका था । वह शूल यज्ञ नष्ट करने के उपरांत जाकर बड़े जोर से नारायण के वक्षस्थल पर गिरा और उसी समय नारायण के हुंकार से पराजित और आहत होकर फिर शंकर के हाथ में जा पहुँचा । इसपर रुद्र क्रोध करके नरनारायण पर चढ़ दौड़े । नारायण ने तो रुद्र का गला पकड़ लिया और नर ने उन्हें मारने के लिये एक सींक उठाई जो बड़ा भारी परशु बन गई । नारायण और रुद्र में भीषण युद्ध होने लगा । उसमें पृथ्वी तथा आकाश में अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे । जब ब्रह्मा ने आकर रुद्र को समझाया कि ये स्वयं नारायण के अवतार हैं और किसी समय तुम्हारी भी सृष्टि इन्हीं के क्रोध से हुई थी तब रुद्र ने प्रार्थना करके नारायण को प्रसन्न किया । इसके उपरांत रुद्र के साथ नरनारायण की घनिष्ठ मित्रता हो गई । महाभारत के नारायणोपाख्यान में यह भी लिखा है कि परब्रह्म के अवतार नर और नारायण नामक दो ऋषियों ने नारायणी अर्थात् भागवत् धर्म का प्रचार किया था और उनके कहने से जब नारद ऋषि श्वेतद्वीप गए थे तब स्वयं भगवान् ने उनको इस धर्म का उपदेश किया था । देवीभागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया था जिनके गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे । इनमें से हरि और कृष्ण तो योगाभ्यास करते थे और नरनारायण हिमालय पर कठिन तपस्या करते थे । उस समय इंद्र ने डरकर इनकी तपस्या भंग करने के लिये काम, क्रोध और लोभ की सृष्टि की और उन तीनों को नर नारायण के सामने भेजा, परंतु नरनारायण की तपस्या भंग नहीं हुई । तब इंद्र ने कामदेव की शरण ली । कामदेव अपने साथ वसंत और रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं को लेकर नरनारायण के पास पहुँचे । उस समय अप्सराओं के गाने आदि से नरनारायण की आँखें खुलीं । उन्होंने सब बातें समझ लीं और इंद्र को लज्जित करने के लिये तुरंत अपनी जाँघ से एक बहुत सुंदर

अप्सरा उत्पन्न की जिसका नाम उर्वशी पड़ा। इसके उपरांत उन्होंने इंद्र की भेजी हुई हजारों अप्सराओं की सेवा करने के लिये उनसे भी अधिक हजारों दासियाँ उत्पन्न कीं। इसपर सब अप्सराएँ नरनारायण की स्तुति करने लगीं। इन अप्सराओं ने नारायण से यह भी वर माँगा था कि आप हम लोगों के पति हों। इसपर उन्होंने कहा था कि द्वापर में जब हम अवतार लेंगे तब तुम लोग राजकुल में जन्म लोगी। उस समय तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तदनुसार नारायण तो श्रीकृष्ण और नर अर्जुन हुए थे। कालिकापुराण में लिखा है कि महादेव ने जब शरभ पक्षी का रूप धारण करके अपने दाँतों की चोट से नरसिंह के दो टुकड़े कर दिए थे तब नरसिंह के नररूपी आधे शरीर से नर तथा सिंहरूपी आधे शरीर से नारायण की उत्पत्ति हुई थी।

नरनारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नरनारी] नर अर्थात् अर्जुन की स्त्री। द्रौपदी। पांचाली। उ०—विपुल भूपति सदसि महँ नरनारि कह्यो प्रभु पाहि। सकल समरथ रहे काहु न वसन दीन्हों ताहि।—तुलसी (शब्द०)।

नरनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अर्जुन की स्त्री। द्रौपदी। २. पुरुष और स्त्री [को०]।

नरनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरनाथ] राजा। नृप। नृपाल। उ०—उदर भरन रत, ईस-विमुख सब भए प्रजा नरनाह।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८५।

नरनाहर—संज्ञा पुं० [सं० नर+हिं० नाहर] नृसिंह भगवान्।

नरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

नरपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नृपति। नृपाल। भूप।

नरपत्ती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरपति] दे० 'नरपति'। उ०—साह दिलासा मोकलै, अब क्यूँ राखौ दूर। नरपत्ती जसराज री, लाखौ पुत्र हजूर।—रा० रू०, पृ० २७।

नरपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर। २. देश।

नरपलचारी—वि० पुं० [सं० नर+पल+चारी] मनुष्य के मांस को खानेवाला। नरमांसभक्षक। उ०—पुनो बनिक सराप दिय भर पुहुकर नर लोइ। असुर होइ बोसल नृपति नरपलचारी सोइ।—पृ० रा०, १।४६१।

नरपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृसिंह। २. वह मनुष्य जो पशु ऐसा आचरण करे। नराधम। नीच आदमी (को०)। ३. यज्ञ आदि में बलिदान के योग्य या उपयुक्त मनुष्य (को०)।

नरपाल—संज्ञा पुं० [सं० नृपाल] नृप। राजा। भूपाल। भूपति।

नरपालि—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा शख।

नरपिशाच—संज्ञा पुं० [सं०] जो मनुष्य होकर भी पिशाचों का सा काम करे। बड़ा भारी दुष्ट और नीच मनुष्य।

नरपुर—संज्ञा पुं० [सं०] भूलोक। मनुष्यलोक।

नरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] नील का पेड़।

नरबदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्मदा] दे० 'नर्मदा'।

नरभक्षी—संज्ञा पुं० [सं० नरभक्षिन्] मनुष्यों को खानेवाला राक्षस। दैत्य।

नरभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नरभूमि'।

नरभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष।

नरम(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० नर्मन्] दे० 'नर्म'। उ०—प्रानसम सहचरि बिसाखा नरम बचननि बोलि। भावना नवबधू मुख तें देति घूँघट खोलि।—घनानंद, पृ० ३००।

नरम[2]—वि० [फ़ा० नर्म] १. कोमल। मृदु। २. लोचदार। ३. शिथिल। ढीला। ४. नजाकत से युक्त (प्रेम प्रसंग का हास-परिहास)। उ०—लहि जाको आघात गात मुरझात नरम भट।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६।

नरमट—संज्ञा स्त्री० [हिं० नरम] वह जमीन जहाँ की मिट्टी मुलायम हो।

नरमदा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नर्मदा'।

नरमरोआँ—संज्ञा पुं० [हिं० नरम+रोआँ] बुनाई के लिये लाल या सफेद रंग का रोआँ जो सदा बहुत मुलायम होता है।

नरम लोहा—संज्ञा पुं० [हिं० नरम+लोहा] अग्नि में लाल करके हवा में ठंढा किया हुआ लोहा जो मुलायम हो जाता है।

नरमा—संज्ञा स्त्री० [हिं० नरम] १. एक प्रकार की कपास जिसे मनवा, देवकपास या रामकपास भी कहते हैं। २. सेमर की रुई। ३. कान के नीचे का भाग। लोल। ४. एक प्रकार की ईख।

नरमाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नरम+आई (प्रत्य०)] दे० 'नरमी'। उ०—अधम पुरुष बदरी फल समान जाके बाहिर सो दिसे नरमाई दिल तंग है।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १०१।

नरमाना[1]—क्रि० स० [हिं० नरम+आना (प्रत्य०)] १. नरम करना। मुलायम करना। २. शांत करना। धीमा करना।

नरमाना[2]—क्रि० अ० १. नरम होना। मुलायम होना। शांत होना। ठंढा होना।

नरमाबड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] बन कपास।

नरमानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नरमानिनी'।

नरमानिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसे मूँछ या दाढ़ी हो।

नरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्यों के कपाल या खोपड़ी की माला [को०]।

नरमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरमुंडों की माला पहननेवाली स्त्री। २. दाढ़ी मूँछवाली स्त्री। नरमानिका [को०]।

नरमा रोहा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का नया गेहूँ जो नया विकसित हुआ है और जिसकी उपज ज्यादा होती है।

नरमी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नर्मी] नरम होने का भाव। मुलायमियत। कोमलता। मृदुता।

नरमेध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें प्राचीनकाल में मनुष्य के मांस की आहुति दी जाती थी।

विशेष—यह यज्ञ चैत्र शुक्ला दशमी से आरंभ होता था और चालीस दिन में समाप्त होता था।

नरयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० नरयन्त्र] सूर्यसिद्धांत के अनुसार एक प्रकार का शंकुयंत्र जिसका व्यवहार धूप में समय जानने के लिये होता था।

नरयान—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी सवारी (पालकी या डोली) जिसे आदमी खींचे या ढोए ।

नररथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरयान' [को०] ।

नरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यलोक । मृत्युलोक । संसार ।

नरवई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरपति, प्रा० णरवई] नरपति । राजा । उ०—भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ । —तुलसी ग्रं०, पृ० ४५ ।

नरवध—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों का वध या हत्या [को०] ।

नरवर—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट मनुष्य । नर श्रेष्ठ ।

नरवरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति ।

नरवा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

नरवा(पु)†²—संज्ञा पुं० [हिं० नाला] दे० 'नाला' । उ०—गाँव ते गाँव बड़ो पुर ते पुर लाँघि नदी नरवा घर को तन ।—श्यामा०, पृ० १७० ।

नरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नरई' । उ०—बालि छाँड़ि कै सूर हमारे अब नरवाई को लुनै ।—सूर (शब्द०) ।

नरवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर ले चले । जैसे, पालकी, तामजान इत्यादि ।

नरवाहन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर ले चले । २. कुबेर । ३. किन्नर । ४. वत्सनरेश उदयन का पुत्र ।

नरवाहन²—वि० मनुष्यों द्वारा खींची या ढोई जानेवाली सवारी पर चलनेवाला ।

नरविष्वण—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस [को०] ।

नरवीर—संज्ञा पुं० (सं०)वीर मनुष्य । बहादुर आदमी । योद्धा [को०] ।

नरव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों में श्रेष्ठ । २. जल में रहनेवाला एक प्रकार का जानवर ।

विशेष—इसके शरीर के नीचे का भाग मनुष्य के आकार का और ऊपर का भाग बाघ के आकार का होता है ।

नरशक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नरेंद्र । राजा । नृप ।

नरशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरव्याघ्र' [को०] ।

नरशृंग—संज्ञा पुं० [सं० नरश्रृङ्ग] असंभव बात । खपुष्प [को०] ।

नरसंसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यसमाज [को०] ।

नरसख—संज्ञा पुं० [सं०] नारायण जो नर के सखा हैं [को०] ।

नरसल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट' ।

नरसार—संज्ञा पुं० [सं०] नौसादर ।

नरसिंग—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का विलायती फूल ।

नरसिंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरसिंघा' ।

नरसिंघ—संज्ञा पुं० [सं० नरसिंह] दे० 'नृसिंह' ।

नरसिंघा—संज्ञा पुं०[हिं० नर(= बड़ा)+सिंघा(= सींग का बना एक प्रकार का बाजा)] तुरही की तरह का एक प्रकार का नल के आकार का तांबे का बड़ा बाजा जो फूँककर बजाया जाता है ।

विशेष—यह जिस स्थान से फूँककर बजाया जाता है उस स्थान पर बहुत पतला होता है और उसके आगे का भाग बराबर चौड़ा होता जाता है । बीच में से इसके दो भाग भी कर
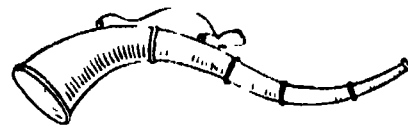
लिए जाते हैं और बजाने के बाद पतला भाग अलग करके मोटे भाग के अंदर रख लिया जाता है । प्राचीन काल में इसका व्यवहार रणक्षेत्र में होता था और आजकल यह देहात में विवाह आदि के अवसर पर बजाया जाता है ।

नरसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नृसिंह' ।

नरसिंहज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो चौथिया या चातुर्थिक का उलटा है ।

विशेष—यह ज्वर तीन दिन तक चढ़ा रहता है और चौथे दिन उतर जाता है, और फिर वही क्रम चलता है ।

नरसिंहपुराण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नृसिंहपुराण' ।

नरसी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरसल' । उ०—नरसी जल में घर करै मनसा चढ़ै पहाड़ ।—रामानंद०, पृ० १२ ।

नरसेज—संज्ञा पुं० [देश०] तिधारा नामक थूहर जिसमें पत्ते नहीं होते । विशेष—दे० 'तिधारा' ।

नरसों†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अतरसों' ।

नरसों—संज्ञा पुं० १. बीते हुए परसों के पहले का दिन । २. आनेवाले परसों के बाद का दिन ।

नरस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० नरस्कन्ध] जनसमुदाय [को०] ।

नरहड़—संज्ञा पुं० [सं० नलक + हिं० हड़] घुटने और पाँव के बीच की लंबी हड्डी ।

नरहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्यवध । नरवध [को०] ।

नरहय—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े और मनुष्य में होनेवाला युद्ध [को०] ।

नरहर¹—संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा सं० नलक + हिं० हड़ या हर] पैर की वह हड्डी जो पिंडली के ऊपर होती है ।

नरहर(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] दे० 'नरहरि' । उ०—नरहर समरतां नह बीते नाणों, लवमूं तिको न लेवै ।—रघु० रू०, पृ० २७ ।

नरहरि—संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह भगवान जो दस अवतारों में चौथे अवतार हैं । उ०—तब ले खड्ग खंभ में मारयो शब्द भयो अति भारी । प्रगट भए नरहरि वपु धरि कटकट करि उच्चारी ।—सूर (शब्द०) ।

नरहरी¹—संज्ञा पुं० [हिं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद में १४ और ५ के विराम से १६ मात्राएँ और अंत में १ नगण १ गुरु होता है । जैसे, —हरि सुनत भक्त की बानी, दुख भरी । झट प्रगटे खंभा फारी, तिहि घरी । रिपु हन्यो दीन सुख भारी, दुख हरी । मन सदा भजो चित लाई, नरहरी (शब्द०) ।

नरहरी(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] दे० 'नरहरि'। उ०—परधन परदारा परिहरी। ताके निकट बसहि नरहरी।—कबीर सा०, पृ० ३१।

नरहा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष।

नरहा²—वि० दे० 'चिल्ली'।

नरहा³ वि० [हिं० नाला] नालेवाला या नाले से संबंधित।

नरहीरा—संज्ञा पुं० [हिं० नर(=बड़ा)+हिं० हीरा] वह आठ पहल या छह पहल का बड़ा हीरा जिसके किनारे खूब तेज हों।

विशेष—कहते हैं, ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत बढ़ जाता है।

नरांग—संज्ञा पुं० [सं० नराङ्ग] १. पुरुष की इंद्रिय। २. मुँहासा [को०]

नरांतक—संज्ञा पुं० [सं० नरान्तक] रावण के एक पुत्र का नाम जो राम-रावण-युद्ध में अंगद के हाथ से मारा गया था।

नरा—संज्ञा पुं० [हिं० नल या नरकट] नरकट की एक छोटी नली जिसके उपर सूत लपेटा रहता है (जोलाहे)।

नराच—संज्ञा पुं० [सं० नाराच] १. तीर। बाण। शर। २. पंच चामर या नागराज नामक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, और अंत में एक गुरु होता है। जैसे,—जु रोज रोज गोप तीय कृष्ण संग धावतीं। सुगीत नाथ पाँव सों लगाय चित्त गावतीं।

नराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वितान वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में तगण, रगण, लघु और गुरु होता है। जैसे, तोरी लगै नराचिका। मोरी कटै भवबाधिका।

नराज† —वि० [फ़ा० नाराज] दे० 'नाराज'।

नराजना(पु)¹ क्रि० स० [फ़ा० नाराज] अप्रसन्न करना। नाराज करना। उ०—उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइँ बाजी।—जायसी (शब्द०)।

नराजना²—क्रि० अ० अप्रसन्न होना। नाराज होना।

नराट(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नरराट्] नरेंद्र। राजा। नृपाल। उ०—अभिवादन तब करत नराटा। मिले पार्थसुत द्रुपद विराटा।—सबल (शब्द०)।

नराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरपति। नृपाल।

नरायन—संज्ञा पुं० [सं० नारायण] दे० 'नारायण'।

नराश—संज्ञा पुं० [सं०] मानवभक्षी राक्षस [को०]।

नराशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नराश'।

नरिंद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा। नराधिप। नरपति।

नरिअर‡—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल'।

नरिअरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० नारियल] नारियल की खोपड़ी का आधा भाग।

नरिबाहना(पु)‡—क्रि० अ० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना। उ०—ज्यूँ बोलइ ते नरिबाहज्यो, बचन तुमारइ लागी छइ नार।—बी० रासो, पृ० ७८।

नरियर‡—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल'।

नरियरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० नरियर+ई (प्रत्य०)] दे० 'नरिअरी'।

नरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० नाली] एक प्रकार का मिट्टी का खपड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम में आता है।

विशेष—यह अर्धवृत्ताकार और लंबा होता है और इसे 'थपुआ' खपड़े की संधियों पर औंधाकार रख देते हैं जिससे उन संधियों में से पानी नीचे नहीं टपकने पाता।

नरियाना‡—क्रि० अ० [सं० नर्दन तुलनीय अ० नअरह्] चिल्लाना। शोर मचाना। हल्ला करना।

नरी¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बकरी या बकरे का रँगा हुआ चमड़ा। २. लाल रंग का चमड़ा। ३. सिझाया हुआ चमड़ा। मुलायम चमड़ा। ४. नार। ढरकी के भीतर की नली जिसपर तार लपेटा रहता है (जुलाहा)। ५. एक प्रकार की घास जो ताल या नदी के किनारे होती है।

नरी†²—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] १. नली। बाली। छुच्छी। पुपली। २. वह बाँस की नली जिससे सुनार लोग आग सुलगाते हैं। फुँकनी।

नरी³—संज्ञा स्त्री० [सं० नर] स्त्री। नारी।

नरी⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला।

नरु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नर] दे० 'नर'।

नरुई† संज्ञा स्त्री० [हिं० नली] छुच्छी। पुपली। छोटी नली।

नरुवा†—संज्ञा पुं० [हिं० नल] अनाज के पौधों की डंडी जो अंदर पोली होती है।

नरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] १. राजा। नृप। नरेश। २. वह जो साँप, बिच्छू आदि के काटने का इलाज करे। विषवैद्य। ३. श्योनाक वृक्ष। ४. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, जिसमें सोलह मात्राओं पर विराम और अंत में दो गुरु होते है। जैसे,—मोर चोंतनो धरे सीस पै, पीतांबर मन मानो। पीत यज्ञ उपवीत विराजत, मनो बसंती बानो।

विशेष—इसे सार और ललितपद भी कहते हैं।

नरेतर—संज्ञा पुं० [सं०] पशु। जानवर [को०]।

नरेंबी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

विशेष—इस पेड़ की छाल से एक प्रकार का खाकी रंग का गोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होता है। यह प्रायः शिवसागर और सिलहट (आसाम) में पाया जाता है।

नरेली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. नारियल का हुक्का। २. छोटा नारियल।

नरेश—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों का स्वामी। राजा। नृप।

नरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरेश' [को०]।

नरेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरेश] दे० 'नरेश'।

नरेसर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नरेश्वर] दे० 'नरेस'। उ०—सेतराम सकबंध नरेसर। हल(ण) लग राजस पूरब अंबर।—रा० रू०, पृ० ११।

नरेह(पु)—वि० [हिं०] १. निरीह । २. निष्कपट । उ०—छोडी सिरै दिवार नरेह निहारती ।—रघु० रू०, पृ० ६५ ।

नरौं‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० नरसों] परसों से पहले या बाद का एक दिन । अतरसों ।

नरोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । भगवान । विष्णु । २. श्रेष्ठ नर या मनुष्य (को०) ।

नरोह—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिंडली की हड्डी । नली । २. कोल्हू की वह नली जिसमें से रस गिरता है ।

नर्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र । नाक (को०) ।

नर्क(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० नरक] दे० 'नरक' ।

नर्कट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नरकट' ।

नर्कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] नासिका । नाक । घ्राणेंद्रिय ।

नर्गिस—संज्ञा पुं० [फ़ा० नरगिस] दे० 'नरगिस' ।

नर्गिसी—संज्ञा पुं०, वि० [फ़ा० नरगिसी] दे० 'नरगिसी' ।

नर्जीव—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव' । उ०—नर्जीव शब्द धारा ।—पृ० रा०, १४।१५ ।

नर्त¹—संज्ञा पुं० [सं०] नाचनेवाला । जो नाचता हो ।

नर्त²—संज्ञा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।

नर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नर्तकी] १. नट । नाचनेवाला । नृत्य करनेवाला । २. एक प्रकार का नरकट । ३. चारण । बंदीजन । ४. केलक । खड्ग की धार पर नाचनेवाला । ५. हाथी । ६. महादेव का एक नाम । ७. मद्रुग्रा । ८. नरकट । ९. मड़ुग्रा । १०. एक प्रकार की संकर जाति जिसकी उत्पत्ति धोबी पिता और वेश्या माता से मानी जाती है । ११. राजा । १२ मयूर । मोर । (को०) । १३. अभिनेता (को०) ।

नर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाचनेवाली, रंडी । वेश्या । नटी । २. नलिका नामक सुगंध द्रव्य । नली । ३. अभिनेत्री (को०) । ४. हथिनी (को०) । ५. मोरिनी (को०) ।

नर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य । नाच । २. वह जो नृत्य करे (को०) ।

नर्तनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नर्तनशाला' (को०) ।

नर्तप्रिय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. मयूर । मोर (को०) ।

नर्तनप्रिय—वि० नृत्य का शौकीन । नाच का प्रेमी (को०) ।

नर्तनशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पर नाच होता हो । नाचघर ।

नर्तनशील—वि० [सं०] नाचने के गुणवाला । नाचनेवाला ।

नर्तनसाला(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० नर्तनशाला]दे० 'नर्तनशाला' । उ०—नर्तनसाला आज किन, इत पौरव परकास ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १०९ ।

नर्तना(पु)—क्रि० अ० [सं० नर्तन] नृत्य करना । नाचना । उ०—बरत कहूँ नायक सुभट कहुँ नर्तन नटराज ।—केशव (शब्द०) ।

नर्तित¹—वि० [सं०] १. नाचता हुआ । नृत्यशील (को०) ।

नर्तित²—संज्ञा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।

नर्तिता—वि० [सं०] नाचती हुई । उ०—नर्तिता अपवर्ग की अप्सरा सी वह शिखा मेरा भाल छूती है ।—इत्यलम्, पृ० १०८ ।

नर्तु—वि० [सं०] तलवार की धार पर नाचनेवाला (को०) ।

नर्तु, नर्तू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्तकी । २. अभिनेत्री (को०) ।

नर्द¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चौसर की गोटी ।

नर्द²—वि० [सं०] डकरने या गरजनेवाला (को०) ।

नर्दकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे कटोल, निभरी और नगई भी कहते हैं ।

नर्दटक—संज्ञा पुं० [सं०] ७० अक्षरों का एक वृत्त या छंद (को०) ।

नर्दन—संज्ञा स्त्री० [सं०]१. नाद । गरज । भीषण ध्वनि । २. उच्च स्वर में गुणकीर्तन ।

नर्दबान—संज्ञा [देश०] १. काठ की सीढ़ी । २. मार्ग । रास्ता (लश०) ।

नर्दा†—संज्ञा पुं० [देश०] मैला बहने की नाली ।

नर्दित¹—वि० [सं०] गरजा हुआ (को०) ।

नर्दित²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पासा या पासे का हाथ (को०) ।

नर्दी—वि० [सं० नर्दिन्] गरजनेवाला (को०) ।

नर्बदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्मदा] दे० 'नर्मदा' ।

नर्म¹—संज्ञा पुं० [सं० नर्मन्] १. परिहास । हंसी ठट्ठा । दिल्लगी । २. सखाओं का एक भेद । हंसी ठट्ठा करनेवाला सखा । उ०—नर्म सखन लै अपने संगा । आवै करन फागु रस रंगा ।—रघुराज (शब्द०) ।

नर्म²—वि० [फ़ा०] १. जो कड़ा न हो । मुलायम । कोमल । २. सहल । सरल । ३. धीमा । सुस्त । ४. विनीत । नम्र ।

यौ०—नर्म नर्म = भला बुरा या सस्ता महँगा । नर्मदिल = मुलायम हृदयवाला ।

नर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] पति (को०) ।

नर्मगर्भ¹—वि० [सं०] परिहासपूर्ण । विनोदपूर्ण (को०) ।

नर्मगर्भ²—संज्ञा पुं० १. गुप्त प्रेमी । २. नायक द्वारा वह कार्य जो गुप्त रहे (को०) ।

नर्मट—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मिट्टी का पात्र । खप्पर (को०) ।

नर्मठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिल्लगीबाज । वह जो परिहास आदि में कुशल हो । २. उपपति । स्त्री का यार । ३. ठोढ़ी । ४. स्तन का अग्रभाग । ५. संभोग । मैथुन (को०) ।

नर्मद¹—संज्ञा पुं० [सं०] दिल्लगीबाज । मसखरा । भाँड़ । हँसोड़ । विदूषक ।

नर्मद²—वि० आनंद देनेवाला । मनोरंजन करनेवाला ।

नर्मदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृक्का या असवर्ग नामक गंधद्रव्य । २. एक गंधर्व स्त्री जो सुंदरी, केतुमती और वसुदा की माता थी । ३. मध्यप्रदेश की एक नदी जो अमरकंटक से निकलकर भड़ौंच के पास खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

नर्मदेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शिवलिंग जो नर्मदा नदी से निकलते हैं।

विशेष—ये प्रायः स्फटिक के या लाल अथवा काले रंग के पत्थर के और बिलकुल अंडाकार होते हैं। पहाड़ों पर से पत्थर के जो टुकड़े नदी में गिरते हैं वे ही जलपात के स्थान पर भँवर में पड़कर अंडाकृति हो जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रकार के लिंगों के पूजन का बहुत माहात्म्य है।

नर्मद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रतिमुख संधि के तेरह अंगों में से एक। वह परिहास जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनंद अथवा दोष छिपाने के लिये किया जाय। जैसे,—रत्नावली में सुसंगता के यह कहने पर कि 'प्यारी सखी, तू बड़ी निठुर है। महाराज तेरी इतनी खातिर करते हैं, तो भी तू प्रसन्न नहीं होती।' सागरिका भौंह चढ़ाकर कहती है—'अब भी तू चुप नहीं रहती, सुसंगता'। २. परिहासप्रियता। परिहास का आनंद (को०)।

नर्मद्युति²—वि० आनंद से उल्लसित। उल्लसित [को०]।

नर्मसचिव—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो राजा के साथ उसे हँसाने के लिये रहता है। विदूषक।

नर्मसुहृद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नर्मसचिव'।

नर्मसाचिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनोरंजन। प्रियवादिता। २. किसी राजा, राजकुमार या सरदार के मनोविनोद संबंधी सचिव का पद [को०]।

नर्मस्फूर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार कैशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

नर्मस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार कौशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

विशेष—कैशिकी वृत्ति के चार भेद ये हैं, नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ।

नर्मी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'नरमी'।

नर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में भी होती है। २. एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में होता है।

नर्स—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह जो रोगियों, घायलों या बूढ़ों आदि की देखभाल या परिचर्या करे। २. रोगी परिचर्या में विधिवत् प्रशिक्षित व्यक्ति। वह स्त्री जो दूसरों के बच्चों आदि का पालन करे। ३. धाय। धात्री।

नल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ नरकट। २. पद्म। कमल। ३. निषध देश के चंद्रवंशी राजा वीरसेन के पुत्र का नाम।

विशेष—ये बहुत ही सुंदर और बड़े गुणवान थे और विशेषतः घोड़ों आदि की परीक्षा और संचालन में बड़े दक्ष थे। ये विदर्भ देश के तत्कालीन राजा भीम की कन्या दमयंती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर ही उसपर आसक्त हो गए थे। एक दिन जब वे बाग में दमयंती की चिंता में बैठे हुए थे तब कहीं से कुछ हंस उड़ते हुए आकर इनके सामने बैठ गए। नल ने उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। उस हंस ने कहा—महाराज, आप मुझे छोड़ दें, मैं विदर्भ देश में जाकर दमयंती के सामने आपके रूप और गुण की प्रशंसा करूँगा। इनके छोड़ देने पर हंस विदर्भ देश में गया और वहाँ दमयंती के बाग में जाकर इसने उसके सामने नल के रूप और गुण की खूब प्रशंसा की, जिसे सुनकर नल के प्रति उसका पहला अनुराग और भी बढ़ गया और उसने हंस से कह दिया कि मैं नल के साथ ही विवाह करूँगी, तुम यह बात जाकर उनसे कह देना। हंस ने वैसा ही किया। जब राजा भीम ने दमयंती का स्वयंवर रचा तब उसमें बहुत से राजाओं के अतिरिक्त अनेक देवता भी आए थे। जब इंद्र, यम, अग्नि और वरुण स्वयंवर में जा रहे थे तब उन्हें मार्ग में नल भी जाते हुए मिले। इन चारों देवताओं ने नल को आज्ञा दी कि तुम जाकर दमयंती से कहो कि हमलोग भी आ रहे हैं, हममें से ही किसी को तुम वरण करना। नल ने जब दमयंती से जाकर यह बात कही तब उसने कहा कि मैं तो तुम्हें ही पति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, यही बात देवताओं से तुम कह देना। नल ने उसे देवताओं की ओर से बहुत समझाया पर दमयंती ने नहीं माना और कहा कि देवता धर्म के रक्षक होते हैं उन्हें मेरे धर्म की रक्षा करनी चाहिए। नल ने ये सब बातें देवताओं से कह दीं। इसपर वे चारों देवता नल का रूप धरकर स्वयंवर में पहुँचे और नल के समीप ही बैठे। दमयंती पहले तो नल के समान पाँच मनुष्यों को देखकर घबराई, पर पीछे से उसने असली नल को पहचानकर उन्हीं के गले में जयमाल पहनाई। इस पर चारों देवताओं ने प्रसन्न होकर नल को आठ वर दिए। दमयंती के साथ नल का विवाह तो हो गया पर कलियुग और द्वापर ने असंतुष्ट होकर नल को कष्ट पहुँचाना चाहा। कलियुग सदा नल के शरीर में प्रवेश करने का अवसर ढूँढ़ा करता था। पर बारह वर्ष तक उसे अवसर ही न मिला। इस बीच में नल को इंद्रसेन नामक एक पुत्र और इंद्रसेना नामक एक कन्या भी हुई। एक दिन अवसर पाकर कलि ने स्वयं तो नल के शरीर में प्रवेश किया और उधर उनके भाई पुष्कर को उनके साथ जूआ खेलकर निषध जीत लेने के लिये उभाड़ा। तदनुसार जूए में नल अपना सर्वस्व हार गए। पुष्कर ने आज्ञा दे दी कि नल या उनके परिवार के लोगों को कोई आश्रय या भोजन आदि न दे। दमयंती ने अपने पुत्र और कन्या को पिता के घर भेज दिया। जब तीन दिन तक नल दमयंती को अन्न भी न मिला तब वे दोनों जंगल में निकल गए। वहाँ दंपति को बड़े बड़े कष्ट मिले। एक दिन नल ने सोने के रंग के कुछ पक्षी देखे और उन्हें पकड़ने के लिये उनपर अपना कपड़ा डाला। पर ये पक्षी उनका कपड़ा लेकर ही उड़ गए। बहुत दुःखी होकर नल ने दमयंती से विदर्भ जाने के लिये कहा, पर उसने नहीं माना। उस समय उन दोनों के पास एक ही वस्त्र बच गया था। उसी को पहनकर दोनों चलने लगे। एक स्थान पर दमयंती थककर जब सो गई तब नल उसका आधा वस्त्र फाड़कर और उसे उसी दशा में

छोड़कर चले गए। जब दमयंती सोकर उठी तब बहुत विलाप करती हुई अपने पति को ढूंढ़ती ढूंढ़ती और अनेक प्रकार के कष्ट उठाती अपने पिता के घर पहुँची। उधर नल भी अनेक कष्ट भोगते हुए अयोध्या पहुँचे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि हुए। बहुत पता लगाने पर दमयंती को सूझ लगा कि ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नामक जो सारथि है वह कदाचित् नल हो। भीम ने ऋतुपर्ण के यहाँ कहलाया कि कल हमारी कन्या का फिर से स्वयंवर होगा। उनके सारथि बाहुक (या नल) ने एक ही दिन में उन्हें विदर्भ पहुँचा दिया। वहाँ दमयंती ने नल को पहचाना और तीन वर्ष तक घोर कष्ट भोगने के उपरांत दंपति फिर मिले। उस समय तक कलि ने भी उनका पीछा छोड़ दिया था। इसके उपरांत ऋतुपर्ण ने नल से क्षमा माँगी। एक मास तक विदर्भ में रहने के उपरांत नल ने फिर पुष्कर के पास जाकर उससे जूआ खेला और फिर अपना राज्य जीत लिया। तब से दोनों फिर सुखपूर्वक रहने लगे। दमयंती का पातिव्रत आदर्श माना जाता है और घोर कष्ट भोगने के लिये नल दमयंती प्रसिद्ध हैं।

४. राम की सेना का एक बंदर जो विश्वकर्मा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—कहते हैं, इसी ने पत्थरों को पानी पर तैराकर रामचंद्र की सेना के लिये लंकाविजय के समय समुद्र पर पुल बाँधा था। पुराणानुसार यह ऋतुध्वज ऋषि के शाप के कारण घृताची के गर्भ से बंदर के रूप में उत्पन्न हुआ था।

५. एक दानव का नाम जो विप्रचित्ति का चौथा पुत्र था और सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ६. यदु के एक पुत्र का नाम। ७. एक नद का नाम। ८. प्राचीन काल में एक प्रकार का चमड़े का मढ़ा हुआ बाजा जो घोड़े की पीठ पर रखकर युद्ध के समय बजाया जाता था।

नल²—संज्ञा पुं० [सं० नाल] १. डंडे के रूप में कुछ दूर तक गई हुई वस्तु जिसके भीतर का स्थान खाली हो। पोली लंबी चीज। २. धातु, काठ या मिट्टी आदि का बना हुआ पोला गोल खंड।

विशेष—यह कुछ लंबा होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी, हवा, धुआँ, गैस आदि के ले जाने के काम में आता है।

३. इसी प्रकार का ईंट पत्थर आदि का बना हुआ वह मार्ग जो दूर तक चला गया हो और जिसमें से होकर गंदगी और मैला आदि बहता हो। पनाला। ४. पेड़ू के अंदर की वह नली जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है। नली।

मुहा०—नल टलना=किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

नल(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नर'। उ०—जो चीन्है तेहि निर्मल अंगा। अनचीन्हे नल भए पतंगा।—कबीर बी०, पृ० २५।

नलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गोलाकार हड्डी जिसके अंदर मज्जा हो। नली के आकार की हड्डी। २. कालदेवल के भतीजे का नाम जिसे बुद्ध ने उपदेश दिया था।

नलका†—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] नली। नाल।

नलकिनी—संज्ञा पुं० [सं०] जंघा। जाँघ।

नलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] छोटा नली। नलिका। उ०—क्षुद्र नलकी में समाता है कहीं क्याह।—हरी घास०, पृ० १४।

नलकील—संज्ञा पुं० [सं०] जानु। घुटना।

नलकूप—संज्ञा पुं० [हिं०] पानी निकालने के लिये जमीन के नीचे गहराई तक छेदकर बैठाया गया एक विशेष प्रकार का नल जो मशीन द्वारा संचालित होता है। ट्यूबवेल।

नलकूबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के एक पुत्र का नाम।

विशेष—इसका उल्लेख महाभारत में है। महाभारत में लिखा है कि एक बार यह अपने भाई मणिग्रीव के साथ खूब शराब पीकर कैलास पर्वत पर गंगा के किनारे एक उपवन में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। उन दोनों को इस दुर्दशा में देखकर नारद ने शाप दिया था कि तुम अर्जुन वृक्ष हो जाओ। कहते हैं, इसी शाप के अनुसार ये दोनों वृंदावन में यमलार्जुन हुए। यहाँ श्रीकृष्ण ने उन्हें स्पर्श करके शाप-मुक्त किया। रामायण में लिखा है कि एक बार जब रावण दिग्विजय करके लौट रहा था तब रास्ते में उसे नलकूबर के यहाँ जाती हुई रंभा नामक अप्सरा मिली। रावण उसे जबरदस्ती पकड़कर अपने साथ ले गया। उसी समय रंभा ने उसे शाप दिया था कि यदि तुम किसी स्त्री के साथ बलात्कार करोगे तो तुरत मर जाओगे। कहते हैं, इसी भय से रावण ने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया था।

२. संगीत ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार गुरु और चार लघु मात्राएँ होती हैं।

नलकोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बेल।

नलदंबु—संज्ञा पुं० [सं० नलदम्बु] नीम का पेड़।

नलद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्परस। मकरंद। २. उशीर। खस। ३. जटामासी। बालछड़। ४. लामज्जक नामक घास।

नलदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी। बालछड़।

नलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] दे० 'नलिनी'। उ०—कहैं कबीर नलनी के सुगना तोहि कवन पकरो।—कबीर श०, भा० २, पृ० १४०।

नलनीरुह—संज्ञा पुं० [सं० नलिनीरुह] मृणाल। कमल की नाल।

नलपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में है।

नलबाँस¹—संज्ञा पुं० [हिं० नल+बाँस] हिमालय की तराई में होनेवाला एक प्रकार का बाँस जिसे विधुनी और देवबाँस भी कहते हैं।

नलबाँस²—वि० दे० 'देवबाँस'।

नलमीन—संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली।

नलवा—संज्ञा पुं० [हिं०] बाँस की टोंटी जिससे बैल को घी पिलाया जाता है। चोंगा।

नलसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर के निकट का समुद्र पर बँधा हुआ वह पुल जो रामचंद्र ने नल नील आदि से बनवाया था।

नला—संज्ञा पुं० [हिं० नल] १. पेड़ू के अंदर की वह नाली जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है।

मुहा०—नला टलना = किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नाली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

२. हाथ या पैर की नली के आकार की लंबी हड्डी।

नलाना—क्रि० स० [हिं० निराना] जिस खेत में फसल बोई गई हो उसमें की निरर्थक घास आदि दूर करना।

नलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नलाना] १. नलाने या निराने का भाव। २. नलाने की क्रिया। ३. नलाने की मजदूरी।

नलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नल के आकार की कोई वस्तु। चोंगा। नली। २ मूँगे के आकार का एक प्रकार का गंधद्रव्य।

विशेष—वैद्यक में यह तीता, कड़ुवा, तीक्ष्ण, मधुर और कृमि, वात, अर्श और शूल रोग का नाशक और मलशोधक माना गया है।

पर्या०—विद्रुमलतिका। कपोलचरणा। नलिनी। रक्तदला। नर्तकी। नटी। प्रवाली।।

३. प्राचीन काल का एक अस्त्र।

विशेष—इसके विषय में कुछ लोगों का अनुमान है कि यह आजकल की बंदूक के समान होता था और इसके द्वारा लोहे की बहुत छोटी छोटी गोलियाँ या तीर छोड़े जाते थे। इसका उल्लेख रामायण और महाभारत के अतिरिक्त वेदों तक में पाया जाता है। शुक्रनीति में इसका अच्छा वर्णन है। इसे नालक और नाल भी कहते थे।

४. तरकश जिसमें तीर रखते हैं। ५. करेमू का साग। ६. पुदीना। ७. वैद्यक में एक प्रकार का प्राचीन यंत्र जिसकी सहायता से जलोदर के रोगी के पेट से पानी निकाला जाता था।

नलित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो नाड़िका साग भी कहलाता है।

विशेष—वैद्यक में यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्रवर्धक माना गया है।

नलिन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० नलिनी] १. पद्म। कमल २. नीलिका। नील। ३. जल। पानी। ४. नीम। ५. सारस पक्षी। ६. करौंदा।

नलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमलिनी। कमल। २. वह देश जहाँ कमल अधिकता से होते हों। ३. पुराणानुसार गंगा की एक धारा का नाम। देवगंगा। ४. नारियल की शराब। ५. नलिनी नामक गंधद्रव्य। ६. नाक का बायाँ नथना। ७. नदी। ८. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं।

विशेष—इसे मनहरण और भ्रमरावली भी कहते हैं।

९. कमलों का समूह (को०)। १०. कमलनाल (को०)। ११. इंद्रपुरी (को०)।

नलिनीनंदन—संज्ञा पुं० [सं० नलिनीनन्दन] कुबेर के उपवन का नाम।

नलिनीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृणाल। कमल की नाल। २. ब्रह्मा।

नलिनेशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

नलिया†—संज्ञा पुं० [हिं०] बहेलिया।

नली¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मैनसिल। २. नलिका नाम का गंधद्रव्य।

नली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० नल का स्त्री० अल्पा०] १. छोटा या पतला नल। छोटा चोंगा। २. नल के आकार की भीतर से पोली हड्डी जिसमें मज्जा भी होती है। ३. घुटने से नीचे का भाग। पैर की पिंडली। ४. बंदूक की नली जिसमें होकर गोली पहले गुजरती है। ५. जुलाहों की नाल। विशेष —दे० 'नाल'। ६. दे० 'नल'।

नलीमोज—संज्ञा पुं० [फा०] वह कबूतर जिसके पंजे तक पर होते हैं।

नलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० नल (= गला)] १. पशुओं का एक रोग जिसमें सूजन हो जाती है। २. छोटा नल या चोंगा। ३. बाँस की पोर। बाँस की दो गाँठों के बीच का टुकड़ा।

नलुवाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नलुआ-२'। उ०—वा बान कों बाँस के एक नलुवा में धरि कै लाठी करि वह बाहिर निकस्यो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १६६।

नलोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] देवनल। बड़ा नरसल।

नल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० नली] १. दे० 'नली'। २. एक प्रकार की घास जिसे पलवान भी कहते हैं। विशेष—दे० 'पलवान'।

नल्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की जमीन की एक प्रकार की नाप या परिमाण।

विशेष—यह किसी के मत से सौ हाथ का और किसी के मत से चार सौ हाथ का होता है।

नल्वण—संज्ञा० पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मान।

विशेष—यह किसी के मत से सोलह सेर का और किसी के मत से बत्तीस सेर का होता है।

नल्वकस्मेगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकजंघा।

नवंबर—संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी मास का ग्यारहवाँ महीना जो ३० दिनों का तथा अक्टूबर के बाद और दिसंबर से पहले होता है।

नव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तव। स्तोत्र। २. लाल रंग की गदहपूरना। विशेष- दे० 'पुनर्नवा'। ३. हरिवंश के अनुसार उशीनर नामक राजा के लड़के का नाम। ४. काक। कौआ (को०)।

नव²—वि० [सं०] नया । नवीन । नूतन ।

नव³—वि० [सं० नवन्] नौ । पाठ और एक । दस से एक कम ।

विशेष—'नव' शब्द से कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि उन पदार्थों का भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनती में नौ होते हैं । जैसे—स्वर किरीट प्रति लसत जटित नव नव कनगूरे ।—गिरधर (शब्द०) ।

नवक¹—वि० [सं०] दे० 'नौ' ।

नवक²—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही तरह की नौ चीजों का समूह । जैसे, (नौ) धातुओं का नवक, (नौ) ग्रहों का नवक ।

नवका—संज्ञा स्त्री० [सं० नौका, प्रा० हिं० नवका] दे० 'नाव' । उ०—उडुप, पोत, नवका, पलव, तरि, वहित्र जलजान । नाम नाव चढ़े भव उदधि, केते तरे प्रजान ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६१ ।

नवकार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक मंत्र ।

नवकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नवोढा स्त्री ।

नवकार्षि गूगल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जिसमें गूगल, त्रिफला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं ।

विशेष—इसका व्यवहार शोथ, गुल्म, भगंदर और बवासीर आदि को दूर करने में होता है ।

नवकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युवा स्त्री । नवयौवना । नौजवान औरत । २. वह युवती जो हाल में पहले पहल रजस्वला हुई हो ।

नवकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ रात्र में पूजनीय नौ कुमारियाँ जिनमें निम्नलिखित नौ देवियों की कल्पना की जाती है कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंडिका, शांभवी, दुर्गा और सुभद्रा ।

विशेष—दे० 'नवरात्र' ।

नवखंड—संज्ञा पुं० [सं० नवखण्ड] भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावर्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश ।

नवग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह । विशेष—दे० 'ग्रह' ।

नवच्छिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नवद्वार' ।

नवछावरि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'न्योछावर' । उ०—मेति बलाय करति नवछावरि बलि भुजदंड कनक अति भासी । नरनारी के नैन निरखि करि चातक तृषित चकोरी प्यासी ।—सूर (शब्द०) ।

नवजात—वि० [सं०] सद्यःउत्पन्न । तुरंत का पैदा हुआ (को०) ।

नवज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभिक ज्वर । चढ़ता बुखार । वह बुखार जिसका अभी आरंभ हुआ हो । विशेष—दे० 'ज्वर' ।

नवड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] मरसा ।

नवढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोढा] दे० 'नवोढ़ा' । उ०—नित्य-नित्य विचार सहित सब साधन साधै । के इहु नवढ़ा नारि नारि उर में आराधै ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६१ ।

नवतन—संज्ञा पुं० [सं० नवतन्तु] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक लड़के का नाम ।

नवता—वि० [सं० नवीन] नवीन । नया । ताजा ।

नवता¹—संज्ञा पुं० [सं० नमन] ढालुआँ जमीन । उतार (कहार) ।

नवता²—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीनता । नयापन

नवति¹—वि० [सं०] अस्सी और दस । सौ से दस कम । नब्बे ।

नवति²—संज्ञा स्त्री० [सं०] नब्बे की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९० ।

नवदंड—संज्ञा पुं० [सं० नवदण्ड] राजाओं के तीन प्रकार के छत्रों में से एक प्रकार के छत्र का नाम ।

नवदंडक—संज्ञा पुं० [सं० नवदण्डक] दे० 'नवदंड' (को०) ।

नवदल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का वह पत्ता जो उसके केसर के पास होता है । २. नया पत्ता (को०) ।

नवदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह ।

नवदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार नौ दुर्गाएँ जिनकी नवरात्र में नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है । यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कुष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा । विशेष—दे० 'दुर्गा' ।

नवद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में के नौ द्वार, यथा—दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुख, एक गुदा और एक लिंग या भग ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था और अब भी कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मरने लगता है तब उसका प्राण इन्हीं नौ द्वारों में से एक द्वार से निकलता है ।

नवद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर और विद्यापीठ जो राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी थी ।

विशेष—यह नगर गंगा नदी के बीच में एक चर पर बसा हुआ है । कहते हैं, यहाँ छोटे छोटे नौ गाँव हैं जिनके समूह को पहले नवद्वीप कहते थे । आधुनिक 'नदिया' शब्द इसी का अपभ्रंश है । यह स्थान विशेषतः न्यायशास्त्र के लिये बहुत प्रसिद्ध है ।

नवधा अंग—संज्ञा पुं० [सं० नवधा अङ्ग] शरीर के नौ अंग—यथा-दो आँखें, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक ।

नवधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नव धातुएँ ।

विशेष—हेमतारारनागाश्च ताम्ररंगे च तीक्ष्णकम् । कांस्यक कांतलोहं च धातवो नव कीर्तिता ।

नवधा भक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ प्रकार की भक्ति । यथा—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन । विशेष-दे० 'भक्ति' ।

नवन(५)—संज्ञा पुं० [सं० नमन] दे० 'नमन'।

नवना(५)†—क्रि० अ० [सं० नमन] १. झुकना। २. नम्र होना।

नवनि(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] १. झुकने की क्रिया या भाव। २. नम्रता। दीनता। उ०—नवनि नीच की अति दुखदाई।—तुलसी (शब्द०)।

नवनिधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निधि'।

नवनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवनीत। मक्खन।

नवनीत—संज्ञा पुं० [सं०] १ मक्खन। २. श्रीकृष्ण।

ननीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत। घी। २. मक्खन।

नवनीत गणप—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक गणेश या गणपति का नाम।

नवनीत धेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित गौ जिसकी कल्पना मक्खन के ढेर में की जाती है।

विशेष—कहते हैं, इस गौ के दान से शिवसायुज्य प्राप्त होता है और विष्णुलोक में वास होता है। वराह पुराण में इसका विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

नवपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले, अनार, धान, हल्दी, मानकच्चू, कच्चू, बेल, अशोक और जयंती इन नौ वृक्षों के पत्ते।

विशेष—इनका व्यवहार नवदुर्गा के पूजन में होता है।

नवपद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मूर्ति जिसकी उपासना जैन लोग करते हैं।

नवपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई या जयकरी छंद का एक नाम। विशेष—दे० 'चौपाई'।

नवप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] नया अन्न या फल आदि खाना।

नवफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवकालिका'।

नवभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवधा भक्ति'।

नवम—वि० [सं०] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो। नवाँ।

नवमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमेली। २. नेवारी।

नवमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नवांश'।

नवमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण और यगण (।।। ।ऽ। ऽ।। ।ऽऽ) होता है। इसे 'नवमालिनी' भी कहते हैं। २ नेवारी का फूल।

नवमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवमल्लिका'।

नवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि।

विशेष—धार्मिक कृत्यों के लिये अष्टमीविद्धा नवमी ग्राह्य होती है। कुछ विशिष्ट मासों के विशिष्ट पक्ष की नवमी के अलग अलग नाम हैं। जैसे, माघ के शुक्ल पक्ष की नवमी का नाम महानंदा, चैत्र शुक्ला नवमी का नाम रामनवमी।

नवयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नए अन्न के निमित्त किया जाय।

नवयुवक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नवयुवती] नौजवान। तरुण।

नवयुवा—संज्ञा पुं० [सं०] जवान। तरुण।

नवयोनिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का न्यास।

नवयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके यौवन का आरंभ हो। नौजवान औरत।

नवरंग—वि० [सं० नव + हिं० रंग] १. सुंदर। रूपवान। नई छटावाला। उ०—सूरदास युगभरि बीतत छिनु। हरि नवरंग कुरंग पीव बिनु।—सूर (शब्द०)। २. नए ढंग का। नवेला। नई शोभायुक्त। उ०—आज बनी नवरंग किसोरी।—सूर (शब्द०)।

नवरंगी[1]—वि० [हिं० नवरंग + ई (प्रत्य०)] १. नित्य नए आनंद करनेवाला। उ०—ऐसे हैं त्रिभंगी नवरंगी सुखदाई री। सूर स्याम बिन न रहौं ऐसी बनि आई री।—सूर (शब्द०)। २. रँगीली। हँसमुख। खुशमिजाज। उ०—नाउति बोलहु महावर देन। लाख टका अरु झूमक सारी देहु दाई को नेग।—सूर (शब्द०)।

नवरंगी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'नारंगी'।

नवरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूँगा, लहसुनिया, पद्मराग और नीलम ये नौ रत्न या जवाहिर।

विशेष—पुराणानुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रह के दोषों की शांति के लिये उपकारी हैं। जैसे, सूर्य के लिये लहसुनिया, चंद्रमा के लिये नीलम, मंगल के लिये मानिक, बुध के लिये पुखराज, बृहस्पति के लिये मोती, शुक्र के लिये हीरा, शनि के लिये नीलम, राहु के लिये गोमेद और केतु के लिये पन्ना।

२. राजा विक्रमादित्य की एक कल्पित सभा के नौ पंडित जिनके नाम ये हैं—धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।

विशेष—ये सब पंडित एक ही समय में नहीं हुए हैं बल्कि भिन्न भिन्न समयों में हुए हैं। लोगों ने इन सबको एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्न थे।

३. गले में पहनने का एक प्रकार का हार जिसमें नौ प्रकार के रत्न या जवाहरात होते हैं।

नवरस—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य के नौ रस, यथा शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। विशेष—दे० 'रस'

नवरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला'।

नवरा(५)†[2]—वि० [सं० नवल] नया। उ०—हाटे बाटे मिले बटोही लया बरद है नवरा।—सं० दरिया, पृ० १४१।

नवरात(५)—संज्ञा पुं० [सं० नवरात्र] दे० 'नवरात्र'। उ०—अखि आगम नवरात को सबको मन हुलसात। लखन रामलीला ललित सजि सजि सबही जात।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६६०।

नवराता†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'नवरात्र'।

नवरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का नौ दिनों तक होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। २. चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक के नौ नौ दिन जिनमें लोग नवदुर्गा का व्रत, घटस्थापन तथा पूजन आदि करते हैं।

विशेष—हिंदुओं में यह नियम है कि वे नवरात्र के पहले दिन घटस्थापन करते हैं और देवी का आवाहन तथा पूजन करते हैं। यह पूजन बराबर नौ दिनों तक होता रहता है। नवें दिन भगवती का विसर्जन होता है। कुछ लोग नवरात्र में व्रत भी करते हैं। घटस्थापन करनेवाले लोग अष्टमी या नवमी के दिन कुमारीभोजन भी कराते हैं। कुमारीभोजन में प्रायः नौ कुमारियाँ होती हैं जिनकी अवस्था दो और दस वर्ष के बीच की होती है। इन नौ कुमारियों के के कल्पित नाम भी हैं। जैसे—कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंडिका, शांभवी, दुर्गा और सुभद्रा। नवरात्र में नवदुर्गा में से नित्य क्रमशः एक एक दुर्गा के दर्शन करने का भी विधान है।

नवराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश जिसे सहदेव ने दक्षिण की ओर दिग्विजय करते समय जीता था।

नवरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नाव। उ०। उ०—गंग जमुन दोउ बहइय तीक्षण धार। सुमति नवरिया बैसल उतरब पार। -सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६।

नवल[1]—वि० [सं०] १. नवीन। नूतन। नव्य। नया। २. सुंदर। ३. जवान। युवा। नवयुवक। ४. उज्वल। शुद्ध। साफ। स्वच्छ।

नवल[2]—संज्ञा पुं० [अं० नेवल (जहाजी) ?] माल का किराया जो जहाजवालों को दिया जाता है (लश०)।

नवल अनंगा -संज्ञा स्त्री० [सं० नवल अनङ्गा] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक।

नवलकिशोर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

नवलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक।

नवला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीन स्त्री। तरुणी।

नवला[2]—वि० स्त्री० नई। नवीना। चढ़ती वय की। उ०—का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। — तुलसी ग्रं०, पृ० २०।

नवलेवा†—संज्ञा पुं० [सं० नव + सं० लेप, हिं० लेवा (= कीचड़ का लेप)] वह कीचड़ जो बढ़ी हुई नदी के उतरने से किनारे पर रह जाती है। नदी के किनारे की दलदल।

नववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वर्ष' (पृथ्वी के विभाग का देश)।

नववल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अगर जिसे दाह अगर कहते हैं, और जिसकी गिनती गंधद्रव्यों में होती है।

नववासुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नसारानुसार जैन लोगों के नव वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, सिंहपुरुष, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण।

विशेष—कहते हैं कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थंकरों के समय में नरक गए थे।

नववास्तु—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक राजर्षि का नाम।

नवविंश—वि० [सं०] उनतीसवाँ। जो क्रम में अट्ठाईस के बाद हो।

नवविंशति[1]—वि० [सं०] बीस और नौ। तीस से एक कम।

नवविंशति[2]—संज्ञा स्त्री० बीस और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—२९।

नवविष—संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ, हारिद्रक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, श्रृंगक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र ये नौ विष।

नवव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

नवशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नंदिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वसिद्धिदा ये नौ शक्तियाँ।

नवशायक—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर संहिता के अनुसार ग्वाला, माली, तेली, जोलाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, लोहार और हज्जाम ये नौ जातियाँ।

विशेष—उक्त संहिता के अनुसार ये नौ जातियाँ संकर हैं और शुद्ध शूद्र जाति के अंतर्गत हैं। बंगाल में नवशायकों के हाथ का जल ब्राह्मण लोग पीते और उनका दान ग्रहण करते हैं।

नवशिक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने अभी हाल में कुछ पढ़ा या सीखा हो। नौसिखुआ। २. वह जिसे आधुनिक ढंग की शिक्षा मिली हो।

नवशोभ—संज्ञा पुं० [सं०] नई शोभावाला। तरुण। जवान। युवक।

नवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्राद्ध जो प्रेत के लिये किया जाता है।

विशेष—यह मरनेवाले दिन से आरंभ किया जाता है तथा एक एक दिन के अंतर पर अर्थात् तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन किया जाता है।

नवसंगम—संज्ञा पुं० [सं० नवसङ्गम] प्रथम समागम। नया मिलाप। पति से पत्नी की पहली भेंट।

नवसत(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० नव + हिं० सत (= सप्त)] नव और सात, सोलह श्रृंगार। उ०—नवसत साजि भई सब ठाढी को छवि सकै बखानी।—सूर (शब्द०)।

नवसत[2]—वि० सोलह। षोडस।

क्रि० प्र०—सजना, साजना = सोलहों श्रृंगार करना। उ०—नवसत साजि सिंगार युवति सब दधि मटुकी लिए आवत।—सूर (शब्द०)।

नवसप्त—संज्ञा पुं० [सं०] नौ और सात, सोलह श्रृंगार।

क्रि० प्र०—सजना, साजना = सोलहों श्रृंगार करना। उ०—(क) चलि ल्याइ सीतहिं सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।

नवमम साजे सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवमम सकल दुति दामिनि।—तुलसी (शब्द०)।

नवसर¹—संज्ञा पुं० [सं० नव+हिं० सर] नौ लड़ का हार। उ०—कंठसिरी दुलरी तिलरी को और हार एक नवसर।—सूर (शब्द०)।

नवसर²—वि० [सं० नव+वत्सर] नववयस्क। जिसकी नई उमर हो। उ०—सुरस्याम स्यामा नवसर मिलि रीझे नंदकुमार।—सूर (शब्द०)।

नवससि(पु)—संज्ञा [सं० नवशशि] द्वितीया का चंद्रमा। दूज का चाँद। नया चाँद।

नवसात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नव+सप्त] दे० 'नवसत'।

क्रि० प्र०—करना = सोलहो शृंगार करना। उ०—पाहरे गात किये नवसात निकाई सों नाक चढ़ाएँई बोलै।—घनानंद, पृ० २०१।

नवसिखा—संज्ञा पुं० [सं० नव+हिं० सीखना] दे० 'नौसिखुआ'।

नवहड़(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नव+हिं० हँड़(=हाँड़ी)] मिट्टी का नया बरतन। नई हाँड़ी। नोहँड़। उ०—कोउ मीधा, नवहड़ त्यावत मोदीखाने मन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६।

नवांग—संज्ञा पुं० [सं० नवाङ्ग] सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, बहेड़ा, आँवला, चाव, चीता और वायविडंग ये नौ पदार्थ।

नवांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवाङ्गा] काकड़ासिंगी।

नवांश—संज्ञा पुं० [सं०] एक राशि का नवाँ भाग जिसका व्यवहार फलित ज्योतिष में किसी नवजात बालक के चरित्र, आकार और चिह्न आदि का विचार करने में होता है।

नवाँ—वि० [सं० नवम] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो। आठवें के बाद और दसवें के पहले का। नौवाँ।

नवा†—वि० [हिं०] दे० 'नया'।

नवाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] विनीत होने का भाव। उ०—सूर नवाई नवखंड वहे। सात दीप दुनी सब नए।—जायसी (शब्द०)।

नवाई(पु)†²—वि० नया। नवीन। उ०—यह मति आप कहाँ धौ पाई। आजु सुनी यह बात नवाई।—सूर (शब्द०)।

नवागत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नवागता] नया आया हुआ। जो अभी आया हो।

नवागतसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] नई भरती की हुई फौज। रंगरूटों की सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण थके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकती है। दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है; क्योंकि यह थकावट के कारण लड़ाई के अयोग्य होती है।

नवाज—वि० [फ़ा० नवाज] कृपा करनेवाला। दया दिखानेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, बंदानवाज। गरीबनवाज = दीन-दयालु। उ०—मुझको पूछा तो कुछ गजब न हुआ। मैं गरीब और तू गरीबनवाज।—गालिब०, पृ० १५७।

नवाजना(पु)†—क्रि० स० [फ़ा० नवाज] कृपा करना। दया दिखलाना।

नवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवाजिश] मेहरबानी। कृपा। दया। उ०—नवाजिश हाए बेजा देखता हूँ। शिकायत हाए रंगी का गिला क्या।—गालिब, पृ० ५५।

नवाड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की नाव। नवारा। उ०—घावों से लोहू की नदी बह निकली, जिसमें भुजाएँ मगरमच्छों सी जनाती थीं, कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते उछलते जाते थे। बीच बीच रथ बड़े नवाड़े से बहे जाते थे।—लल्लू (शब्द०)।

नवान†—संज्ञा पुं० [सं० नवान्न] दे० 'नवान्न'।

मुहा०—नवान करना = फसल का नया आया हुआ अन्न भून या पकाकर पहले पहल खाना। उ०—जौ की कच्ची बालों को भूनकर गुड़ मिलाकर लोग नवान कर रहे हैं।—तितली, पृ० १३३।

नवाना—क्रि० स० [सं० नवन या नमन] झुकाना। विनीत करना। जैसे, सिर नवाना।—उ०—गज लखहि कछु दुख पावा। अंकुश कै ओर नवावा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १२२।

नवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. फसल का नया आया हुआ अनाज। २. एक प्रकार का श्राद्ध जो प्राचीन काल में नया अन्न तैयार होने पर पितरों के उद्देश्य से होता था। ३. ताजा पकाया हुआ अन्न। रींधा हुआ अन्न।

नवाब¹—संज्ञा पुं० [अ० नव्वाब] १. बादशाह का प्रतिनिधि जो किसी बड़े प्रदेश के शासन के लिये नियुक्त हो।

विशेष—भारत में इसका प्रयोग पहले पहल मुगल सम्राटों के समय उनके प्रतिनिधियों के लिये हुआ था। जैसे, लखनऊ के नवाब, सूरत के नवाब।

२. एक उपाधि जो आजकल छोटे मोटे मुसलमानी राज्यों के मालिक अपने नाम के साथ लगाते हैं। जैसे, रामपुर के नवाब। ३. एक उपाधि जो भारतीय मुसलमान अमीरों को अंगरेजी सरकार की ओर से मिलती थी और जो प्रायः राजा की उपाधि के समान होती थी।

नवाब²—वि० बहुत शान शौकत और अमीरी ढंग से रहने तथा खूब खर्च करनेवाला। जैसे,—(क) जब से उनके बाप मर गए है तब से वे नवाब बन गए हैं। (ख) ऐसे नवाब मत बनो नहीं तो साल दो साल में भीख माँगने लगोगे।

नवाबजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवाबजादह्] १. नवाब का पुत्र। नवाब का बेटा। २. वह जो बहुत बड़ा शौकीन हो—(व्यंग्य)।

नवाबपसंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का धान जो भादों के अंत या क्वार के प्रारंभ में तैयार होता है।

नवाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नवाब+ई (प्रत्य०)] १. नवाब का पद। २. नवाब का काम। ३. नवाब होने की दशा।

४. नवाबों का राजत्वकाल। जैसे,—नवाबी में अवध की हालत कुछ और ही थी। ५. नवाबों की सी हुकूमत। जैसे,—चुपचाप बैठो, यहाँ तुम्हारी नवाबी नहीं चलेगी। ६. बहुत अधिक अमीरी या अमीरों का सा अपव्यय। जैसे,—अभी कहीं से सौ दो सौ रुपए उन्हें मिल जायँ, फिर देखिए उनकी नवाबी। ७. एक प्रकार का कपड़ा जिसे पहले अमीर लोग पहना करते थे।

नवारना†—क्रि० अ० [हिं०] १. चलना। टहलना। २. यात्रा करना। सफर करना।

नवारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी नाव।

नवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नेवारी'।

नवासंज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गायक। उ०—किसी को दे के दिल कोई नवासंजे फ़ुगाँ क्यों हो। न हो जब दिल ही सीने में तो मुँह में फिर जबाँ क्यों हो।—गालिब०, पृ० २५३।

नवासा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवासह्] [स्त्री० नवासी] बेटी का बेटा। दौहित्र।

नवासाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवासाज] गायक [को०]।

नवासी[1]—वि० [सं० नवाशीति] नौ और अस्सी। एक कम नब्बे।

नवासी[2]—संज्ञा पुं० नौ और अस्सी की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८९।

नवासो‡[3]—वि० स्त्री० [हिं० नाना (= डालना)] संभोग की तीव्र इच्छा या लालसावाली। (बाज़ारू)।

नवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण का वह पाठ जो नौ दिन में समाप्त किया जाता है। २. किसी सप्ताह, पक्ष, मास या वर्ष आदि का नया दिन।

नवि(पु)—अ० [प्रा० णुवि] न। नहीं तो। अन्यथा। उ०—पावस आयउ साहिबा, बोलण लागा मोर। कंता तूँ घरि धाव नवि, जोवन कीधउ जोर।—ढोला०, दू० ३८।

नवी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गाय के पैर में बछड़े का गला बाँधकर दूध दुहते हैं। नोई।

नवी(पु)†[2]—वि० [सं० नव, तुलनीय फा० नवी (= नया, आधुनिक)] दे० 'नई'। उ०—नवी बाली फूलनी (?) कदम में भेज, प्रीत प्याले भरकर पियाला बसंत।—दक्खिनी०, पृ० ७४।

नवीन[1]—वि० [सं०] १. जो अभी का या थोड़े समय का हो। प्राचीन का उलटा। हाल का। ताजा। नया। नूतन। २. विचित्र। अपूर्व।

नवीन[2]—संज्ञा पुं० [स्त्री० नवीना] नवयुवक। तरुण। जवान।

नवीनता—संज्ञा स्त्री० [सं० नवीनत्व] नूतनत्व। नूतनता। नवीन या नया होने का भाव।

नवीस—संज्ञा पुं० [फा०] लिखाई। लिखने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है। जैसे, अरजीनवीस।

नवीसी—संज्ञा स्त्री० [फा०] लिखाई। लिखने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है। जैसे, अरजीनवीसी।

नवेद—संज्ञा स्त्री० [सं० निवेदन अथवा फ़ा०] १. निमंत्रण। न्योता। २. वह चिट्ठी जिसमें न्योता लिखकर भेजा जाय। निमंत्रण-पत्र। ३. शुभ सूचना। खुशखबरी (को०)।

नवेला—वि० [सं० नवल] [स्त्री० नवेली] १. नवीन। नया। २. तरुण। जवान।

नवेली[1]—वि० स्त्री० [सं० नवल] नई उमर की। तरुणी।

नवेली[2]—संज्ञा स्त्री० नई स्त्री। युवती। तरुणी।

नवैग्रह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नवग्रह] दे० 'नवग्रह'। उ०—प्रसन नवैग्रह सिव प्रसन, हरि आग्या सुर राय।—रा० रू०, पृ० ३६६।

नवैयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रकार। भेद। किस्म।

नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री [सं० नवोढा] १. विवाहिता स्त्री। वधू। २. नवयौवना। युवती स्त्री। ३. साहित्य में मुग्धा के अंतर्गत ज्ञातयौवना नायिका का एक भेद। वह नायिका जो लज्जा और भय के कारण नायक के पास न जाना चाहती हो।

नवोद्धृत—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन।

नव्य[1]—वि० [सं०] १. नया। नवीन। नूतन। ताजा। २. स्तुति करने के योग्य।

नव्य[2]—संज्ञा पुं० गदहपूर्ना। रक्त पुनर्नवा।

नव्वाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. बादशाह का प्रतिनिधि या नायब जो उसकी ओर से किसी क्षेत्र का शासन करता हो। २. किसी रियासत का मुसलमान शासक।

नव्वाबी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. नव्वाब का पद। २. राज्य। शासन। हुकूमत। ३. समृद्धि। संपन्नता। ४. अपव्यय। फिजूलखर्ची।

नश, नशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश, विनाश। २. हानि। क्षति। ३. विलोप। लोप [को०]।

नशना(पु)—क्रि० अ० [सं० नाश] नष्ट होना। बरबाद होना। बिगड़ जाना।

नशा—संज्ञा पुं० [अ० नशह्] १. वह अवस्था जो शराब, भाँग, अफीम या गाँजा आदि मादक द्रव्य खाने या पीने से होती है। मादक द्रव्य के व्यवहार से उत्पन्न होनेवाली दशा।

विशेष—शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि एक प्रकार के विष हैं। इनके व्यवहार से शरीर में एक प्रकार की गरमी उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य का मस्तिष्क क्षुब्ध और उत्तेजित हो उठता है, तथा स्मृति (याद) या धारणा कम हो जाती है। इसी दशा को नशा कहते हैं। साधारणतः लोग मानसिक चिंताओं से छूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करने के अभिप्राय से मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं। बहुत से लोग इन द्रव्यों के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे नित्य प्रति इनका व्यवहार करते हैं। साधारण नशे की अवस्था में

चित्त में अनेक प्रकार की उमंगें उठती हैं, बहुत सी नई नई और विलक्षण बातें सूझती हैं और चित्त कुछ प्रसन्न रहता है। लेकिन जब नशा बहुत हो जाता है तब मनुष्य कै करने लग जाता है अथवा बेहोश हो जाता है।

मुहा०—नशा उतरना = नशे का न रहना। मादक द्रव्य के प्रभाव का नष्ट हो जाना। नशा किरकिरा हो जाना = किसी अप्रिय बात के होने के कारण नशे का मजा बीच में बिगड़ जाना। नशे का बीच में ही उतर जाना। नशा चढ़ना = नशा होना। मादक द्रव्य का प्रभाव होना। (आँखों में) नशा छाना = नशा चढ़ना। मस्ती चढ़ना। नशा जमना = अच्छी तरह नशा होना। नशा टूटना = नशा उतरना। नशा हिरन होना = किसी असंभावित घटना आदि के कारण नशे का बिलकुल उतर जाना।

२. वह चीज जिससे नशा हो। मादक द्रव्य। नशा चढ़ानेवाली चीज। नशीली वस्तु।

यौ०—नशापानी = मादक द्रव्य और उसकी सामग्री। नशे का सामान।

३. धन, विद्या, प्रभुत्व या रूप आदि का घमंड। अभिमान। मद। गर्व।

मुहा०—नशा उतरना = गर्व या घमंड चूर होना। नशा उतारना = घमंड दूर करना।

नशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौआ (को०)।

नशाखोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नशाख़ोर] वह जो किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। नशेबाज।

नशाना(पु)[१]—क्रि० स० [सं० नशन] नष्ट करना। बरबाद करना। बिगाड़ डालना।

नशाना†[२]—क्रि० अ० खो जाना।

नशावन†(पु)—वि० [सं० नाश] नाश करना।

विशेष—समास में 'नष्ट करनेवाला' अर्थ भी होता है।

नशीन—वि० [फ़ा०] बैठनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, गद्दीनशीन, तख्तनशीन।

नशीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बैठने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, तख्तनशीनी। गद्दीनशीनी।

नशीला—वि० [फ़ा० नशा + हिं० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० नशीली] १. नशा उत्पन्न करनेवाला। नशा लानेवाला। मादक। २. जिसपर नशे का प्रभाव हो।

मुहा०—नशीली आँखें = वे आँखें जिनमें मस्ती छाई हो। मदभरी आँखें।

नशेड़ी—वि० [हिं०] नशेबाज।

नशेबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा नशेबाज] वह जो बराबर किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। वह जिसे कोई नशा करने की आदत हो।

नशेमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोंसला। नीड़। आवास। आश्रय स्थल। उ०—कबाबी सीख समझें बुलबुलें आखे नशेमन को।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

नशोहर†—वि० [सं० नश + ओहर] नाश करनेवाला। उ०—सुमति सृष्टि कर निपुन विधाता। विघन नशोहर विमल विधाता।—रघुराज (शब्द०)।

नश्तर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुत तेज छोटा चाकू जिसका अगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः जिसके दोनों ओर धार रहती है। इसका व्यवहार फोड़े आदि चीरने और फसद खोलने में होता है।

मुहा०—नश्तर देना या लगाना = नश्तर से फोड़ा चीरना। नश्तर लगना = फोड़े का चीरा जाना।

नश्यत्प्रसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका बच्चा मर गया हो। मृतपुत्रिका।

नश्वर—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला। जो नष्ट हो जाय या जो नष्ट हो जाने के योग्य हो। जो ज्यों का त्यों न रहे। जैसे,—शरीर नश्वर होता है।

नश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नश्वर होने का भाव।

नष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नख] दे० 'नख'।

नषत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र, हिं० नखत] दे० 'नक्षत्र'।

नषसिष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नखशिख] दे० 'नख सिख'।

नषाना(पु)—क्रि० स० [?] नचाना। चलाना। घुमाना। उ०—जाके घर ताजी तुरकीन की तबेला बँध्यो ताके आगे फेरि फेरि टटुवा नषाइए।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६६।

नष्ट—वि० [सं०] १. जो अदृश्य हो। जो दिखाई न दे। २. जिसका नाश हो गया हो। जो बरबाद हो गया हो। जो बहुत दुर्दशा को पहुँच गया हो। जैसे,—आग लगने के कारण सारा महल्ला नष्ट हो गया। ३. अधम। नीच। बहुत बड़ा दुराचारी या पापी। ४. निष्फल। व्यर्थ। ५. धनहीन दरिद्र। ६. पलायित (को०)।

विशेष—यौगिक में यह शब्द पहले लगता है। जैसे, नष्टवीर्य, नष्टबुद्धि।

नष्टक्रिय—वि० [सं०] कृतघ्न (को०)।

नष्टचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नष्टचन्द्र] भादों के महीने की दोनों पक्षों की चतुर्थी को दिखाई पड़नेवाला चंद्रमा जिसका दर्शन पुराणानुसार निषिद्ध है।

विशेष—कहते हैं, उस दिन चंद्रमा को देखने से कोई न कोई कलंक या अपवाद लगता है। कुछ लोग केवल शुक्ल चतुर्थी के चंद्रमा को ही नष्ट चंद्रमा मानते हैं।

नष्टचित्त—वि० [सं०] उन्मत्त।

नष्टचेतन—संज्ञा पुं० [सं०] अचेत। बेहोश। बेखबर।

नष्टचेष्ट—वि० [सं०] जिसकी चेष्टा या गति नष्ट हो गई हो।

नष्टचेष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्च्छा। बेहोशी। २. प्रलय। ३. एक प्रकार का सात्विक भाव।

नष्टजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० नष्टजन्मन्] जारज। वर्णसंकर। दोगला।

नष्टजातक—संज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की क्रिया या उपाय जिसके अनुसार ऐसे मनुष्य की जन्मकुंडली आदि बनाई जाती है जिसके जन्म के समय और तिथि आदि का कुछ भी पता नहीं रहता।

नष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नष्ट होने का भाव। २. वाहियातपन। दुराचारिता।

नष्टदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो। अंधा। दृष्टिहीन।

नष्टधन—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो [को०]।

नष्टप्रभ—वि० [सं०] तेजहीन। कांतिरहित।

नष्टबुद्धि—वि० [सं०] मूर्ख। मूढ़। बेवकूफ। बुद्धिहीन।

नष्टभ्रष्ट—वि० [सं०] जो बिलकुल टूटफूट या नष्ट हो गया हो।

नष्टराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नष्टरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुष्टुप छंद के एक भेद का नाम।

नष्टविष—वि० [सं०] (वह जहरीला जानवर) जिसका विष नष्ट हो गया हो।

नष्टबीज—वि० [सं०] फसल या अन्न जो बोने पर न उगा हो।

नष्टशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बाण का वह अगला टुकड़ा जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह गया हो [को०]।

नष्टशुक्र—वि० [सं०] जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो।

नष्टसंज्ञ—वि० [सं०] बेहोश [को०]।

नष्टस्मृति—वि० [सं०] जिसकी याददाश्त कमजोर या नष्ट हो गई हो [को०]।

नष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या। रंडी। २. व्यभिचारिणी। कुलटा।

नष्टाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] वह साग्निक ब्राह्मण या द्विज जिसके यहाँ की अग्नि प्रमाद या आलस्य के कारण लुप्त हो गई हो।

नष्टात्मा—वि० [सं० नष्टात्मन्] दुष्ट। खल।

नष्टाप्तिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] खोई हुई चीजों का कुछ अंश मिलना जिससे बाकी चीजों का भी सूत्र मिले।

नष्टार्थ—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो। दरिद्र।

नष्टाशंक—वि० [सं० नष्टाशङ्क] शंकारहित। निर्भय। भयशून्य [को०]।

नष्टाश्वदग्धरथन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत शास्त्रों में प्रसिद्ध एक न्याय जिसका तात्पर्य है दो आदमियों का इस प्रकार मिलकर काम करना जिसमें दोनों एक दूसरे की चीजों का उपयोग करके अपना उद्देश्य सिद्ध करें।

विशेष—यह न्याय निम्नलिखित घटना या कहानी के आधार पर है। दो आदमी अलग अलग रथ पर सवार होकर किसी वन में गए। वहाँ संयोगवश आग लगने के कारण एक आदमी का रथ जल गया और दूसरे का घोड़ा जल गया। कुछ समय के उपरांत जब दोनों मिले तब एक के पास केवल घोड़ा और दूसरे के पास केवल रथ था। उस समय दोनों ने मिलकर एक दूसरे की चीज का उपयोग किया। घोड़ा रथ में जोता गया और वे दोनों निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच गए।

नष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश। बरबादी।

नष्टेंदुकला—संज्ञा स्त्री० [सं० नष्टेन्दुकला] १. प्रतिपदा। परिवा। २. अमावस्या। कुहू [को०]।

नष्टेंद्रिय—वि० [सं० नष्टेन्द्रिय] संज्ञारहित। संज्ञाशून्य [को०]।

नसंक(पु)†—वि० [सं० निःशङ्क] निर्भय। निडर। बेखौफ।

नस्—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक। नासिका [को०]।

यौ०—नस्क्षुद्र = छोटी नासिका।

नस[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्नायु, तुलनीय अ० नसा (= वह रग जो कमर के नीचे से टखने तक है)] १. शरीर के भीतर तंतुओं का वह बंध या लच्छा जो पेशियों के छोर पर उन्हें दूसरी पेशियों या अस्थि आदि कड़े स्थानों से जोड़ने के लिये होता है (जैसे, घोड़ा नस)। साधारण बोलचाल में कोई शरीर-तंतु या रक्तवाहिनी नली।

विशेष—नसों के तंतु दृढ़ और चीमड़ होते हैं, लचीले नहीं होते। वे खींचने से बढ़ते नहीं। नसें शरीर की सबसे दृढ़ और मजबूत सामग्री हैं। कभी कभी वे ऐसे आघात से भी नहीं टूटती जिनसे हड्डियाँ टूट जाती और पेशियाँ कट जाती हैं।

मुहा०—नस चढ़ना या नस पर नस चढ़ना = खिंचाव, दबाव या झटके आदि के कारण शरीर में किसी स्थान की, विशेषतः पैर की पिंडली या बाँह की किसी नस का अपने स्थान से इधर उधर हो जाना या बल खा जाना जिसके कारण उस स्थान पर तनाव और पीड़ा होती है और कभी कभी सूजन भी हो जाती है। नसें ढीली होना = थकावट आना। शिथिलता होना। पस्त होना। नस नस में = सारे शरीर में। सर्वांग में। जैसे,—उनकी नस नस में शरारत भरी पड़ी है। नस नस फड़क उठना = बहुत अधिक प्रसन्नता होना। अति आनंद होना। उमंग होना। जैसे,—आपके चुटकुले सुनकर तो नस नस फड़क उठती है। नस भड़कना = (१) दे० 'नस चढ़ना'। (२) विक्षिप्त होना। पागल होना।

यौ०—घोड़ानस = पैर की वह बड़ी नस जो पीछे की ओर पिंडली के नीचे होती है। इसके कट जाने से बहुत अधिक खून बहता है जिससे लोग कहते हैं, आदमी मर जाता है।

२. लिंग। पुरुष की मूत्रेंद्रिय। (क्व०)।

मुहा०—नस या नसें ढीली पड़ जाना = लिंगेंद्रिय का शिथिल हो जाना। पुंसत्व की कमी हो जाना।

३. पतले रेशे या तंतु जो पत्तों में बीच बीच में होते हैं।

नस(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] दे० 'निशा'। उ०—आगे साथ

सुहामिणउ, नस भर कुंभक्रियाँह। जल पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगल जाँह।--ढोला०, दू० २४५।

नसकटा--संज्ञा पुं० [हिं० नस=लिंग+कटना] नपुंसक। हिजड़ा।

नसतरंग--संज्ञा पुं० [हिं० नस+तरंग] शहनाई के आकार का पीतल का एक प्रकार का बाजा।

विशेष--इसके पतले सिरे पर एक छोटा सा छेद होता है। इस छेद पर मकड़ी के अंडों के ऊपर सफेद छत्ता रखते हैं, फिर उस सिरे को गले की घंटी के पास की नसों पर रखकर गले से स्वर भरते हैं जिससे उस बाजे में शब्द उत्पन्न होता है। ऐसे दो बाजे गले की घंटी के दोनों ओर रखकर एक ही साथ बजाए जाते हैं।

नसतालीक--संज्ञा पुं० [अ० नस्तालीक़] १. फारसी या अरबी लिपि लिखने का वह ढंग जिसमें अक्षर खूब साफ और सुंदर होते हैं। 'घसीट' या 'शिकस्त' का उलटा। २. वह जिसका रंग ढंग बहुत अच्छा और सुंदर हो। सभ्य या शिष्ट व्यक्ति।

नसना(पु)†¹--क्रि० अ० [सं० नशन] १. नष्ट होना। बरबाद होना। २. बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

नसना(पु)²--क्रि० अ० [सं० नुत०, हिं० नटना] भागना। दौड़ना।

नसफाड़--संज्ञा पुं० [हिं० नस+फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैर सूज जाते हैं।

नसर--संज्ञा स्त्री० [अ० नस्र] गद्य। पद्य या नज्म का उलटा।

यौ०--नसरनिगार=गद्यलेखक। नसरनिगारी=गद्यरचना।

नसरी--संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मधुमक्खी। २. इस मक्खी के छत्ते का मोम। विशेष--दे० 'कुंतली'।

नसल--संज्ञा स्त्री० [अ० नस्ल] वंश। खानदान।

नसवार--संज्ञा स्त्री० [हिं० नास+वार (प्रत्य०)] सुंघने के लिये तमाकू के पीसे हुए पत्ते। सुंघनी। नास।

नसहा†--संज्ञा पुं० [सं० नस+हा (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों।

नसा¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नासा। नाक।

नसा†²--संज्ञा पुं० [हिं० नशा] दे० 'नशा'।

नसाना(पु)†¹--क्रि० अ० [सं० नाश] १. नाश को प्राप्त होना। नष्ट हो जाना। २. बिगड़ जाना। खराब हो जाना।

नसाना(पु)†²--क्रि० स० १. नष्ट करना। २. नाश करना। ३. बिगाड़ना। खराब करना।

नसावना‡--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'नसाना'।

नसी--संज्ञा स्त्री० [देश०] कुसी की नोक। हल के फार की नोक।

नसीठ†--संज्ञा पुं० [देश०] बुरा शकुन। असगुन।

नसीत‡--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नसीहत'।

नसीनी†--संज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। जीना। नसेनी।

नसीपूजा--संज्ञा पुं० [हिं० नसी (=कुसी का नोक)+पूजा] हल की पूजा जो बोने के मौसम के पीछे की जाती है। हल पूजा।

नसीब--संज्ञा पुं० [अ०] भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। तकदीर।

मुहा०--किसी को नसीब होना=किसी को प्राप्त होना। जैसे,--ऐसा मकान तुम्हें नसीब कहाँ है? ('नसीब' के बाकी मुहाविरों के लिये देखिए 'किस्मत' के मुहा०।)

नसीबजला--वि० [अ० नसीब+हिं० जलना] जिसका भाग्य खराब हो। अभागा।

नसीबवर--वि० [अ०] भाग्यवान्। सौभाग्यशाली। जिसका नसीब अच्छा हो।

नसीबा†--संज्ञा पुं० [अ० नसीबह्] दे० 'नसीब'।

नसीम--संज्ञा पुं० [अ०] ठंढी, धीमी और बढ़िया हवा।

यौ०--नसीम अामा=जिसकी चाल नसीम की तरह धीमी और मृदु हो।

नसीला¹--वि० [हिं० नस+ईला (प्रत्य०)] जिसमें नसें हों। नसदार।

नसीला†²--वि० [हिं० नशीला] दे० 'नशीला'।

नसीहत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १. उपदेश। शिक्षा। सीख। २. अच्छी संमति।

क्रि० प्र०--करना।--देना।--पाना।--मिलना।--होना।

यौ०--नसीहतगर, नसीहतगुजार, नसीहतगो=उपदेशक। सीख देनेवाला।

नसीहा†--संज्ञा पुं० [देश०] मुलायम मिट्टी के जोतने के लिये हलका हल।

नसूड़िया†--वि० [हिं० नासूर+इया (प्रत्य०)] जिसके देखने, छूने अथवा किसी प्रकार के संबंध से कोई दोष या हानि हो। मनहूस। जैसे,--तुम हर एक चीज में बिना अपना नसुड़िया हाथ लगाए नहीं मानते।

नसूर--संज्ञा पुं० [हिं० नासूर] दे० 'नासूर'।

नसेनी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० निःश्रेणी] सीढ़ी। जीना।

नस्त--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाक। २. सुंघनी [को०]।

नस्तक--संज्ञा पुं० [सं०] जानवरों की नाक में नाथ पहनाने के लिये किया हुआ छेद [को०]।

नस्तकरण--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार भिक्षु लोग नाक में दवा डालने के लिये करते थे।

नस्तरन--संज्ञा पुं० [फ़ा०] सफेद गुलाब। सेवती। २. एक प्रकार का कपड़ा।

नस्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पशुओं की नाक का छेद जिसमें रस्सी डाली जाती है।

नस्तित--संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में छेद करके रस्सी डाली जाय। जैसे, बैल, ऊँट आदि।

नस्तोत--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नस्तित'।

नस्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. नास। सुंघनी। २. बैलों की नाक की रस्सी। नाथ। ३. घी आदि में बनी हुई वह दवा या चूर्ण आदि जिसे नाक के रास्ते दिमाग में चढ़ाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। दे० 'शिरोविरेचन' और 'स्नेहन'। ४. नाक के बाल (को०)।

नस्य[२]—वि० १. नासिका से संबंध रखनेवाला। नाक का। २. नाक से बहने या निकलनेवाला [को०]।

नस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक। २. नाक का छेद। ३. नाथ।

नस्याधार—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें सुंघनी रखी जाती है। नासदानी।

नस्योत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में रस्सी आदि डालने के लिये छेद किया गया हो।

नस्वर(पु)†—वि० [सं० नश्वर] दे० 'नश्वर'।

नहँ[१]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो उत्तर प्रदेश में होता है।

नहँ†[२]—संज्ञा पुं० [सं० नख] दे० 'नाखून'।

नहछू—संज्ञा पुं० [सं० नखक्षौर] १. विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है। २. विवाह के पूर्व की एक रस्म जिसमें कन्या के नाखून काटे जाते हैं और उसे स्नान कराया जाता है।

नहट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० नहँ (=नाखून)] नाखून से की हुई खरोंच। नखक्षत।

नहन—संज्ञा पुं० [देश०] पुरवट खींचने की मोटी रस्सी। नार।

नहना(पु)†—क्रि० स० [हिं० नाधना]। लगाना। जोतना। काम में तत्पर करना। उ०—पसु नों पसुपाल ईस बांधत छोरत नहत।—तुलसी (शब्द०)।

नहनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहना] दे० 'नहना'। उ०—चलनि कहनि बिहँसनि रहनि गहनि सहनि सब ठाम। चहनि नेह की नहनि सों कियो जगत बस राम।—रघुराज (शब्द०)।

नहन्नी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहरनी] दे० 'नहरनी'।

नहर—संज्ञा स्त्री० [अ० नह्र] १. वह कृत्रिम नदी या जलमार्ग जो खेतों की सिंचाई या यात्रा आदि के लिये तैयार किया जाता है। २. जल बहाने के लिये बनाया हुआ रास्ता। उ०—(क) राम अरु यादवन सुभट ताके हते रुधिर के नहर सरिता बहाई।—सूर (शब्द०)। (ख) बाग तड़ाग सुहावन लागे। जल की नहर सकल महि भागे।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—नहर काटना या खोदना = नहर तैयार करना।

विशेष—साधारणतः एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी ले जाने, खेत सींचने आदि के लिये नदियों में जोड़कर जलमार्ग तैयार किया जाता है। बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियों के समान हुआ करती हैं और उनमें बड़ी बड़ी नावें चलती हैं। कहीं कहीं दो झीलों या बड़े जलाशयों का पानी मिलाने के लिये भी नहरें बनाई जाती हैं।

नहरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नखहरणी] १. हज्जामों का एक औजार जिससे नाखून काटे जाते हैं।

विशेष—यह लोहे का एक लंबा गोल टुकड़ा होता है और जिसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है।

२. इसी प्रकार का पोस्ते की ढोंढ़ी चीरने का एक औजार।

नहरम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो भारतवर्ष की सब नदियों में पाई जाती है।

विशेष—पहाड़ी झरनों में यह अधिकता से होती है।

नहरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] छोटी नहर। उ०—आगे की बहू से एक नहरिया निकाली है।—किन्नर०, पृ० १२।

नहरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहर + ई (प्रत्य०)] वह जमीन जो नहर के पानी से सींची जाय।

नहरी[२]—वि० नहर से संबंध रखनेवाला।

नहरी†[३]—संज्ञा स्त्री० नहर।

नहरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। उ०—अहंकार अति दुखद डमरुआ। दम कपट मद मान नहरुआ।—मानस, ७। १२१।

विशेष—पानी के साथ एक विशेष प्रकार के कीड़े शरीर में प्रविष्ट हो जाने के कारण यह रोग होता है। इसमें पहले किसी स्थान पर सूजन होती है। फिर छोटा सा घाव होता है और तब उस घाव में से डोरी की तरह का कीड़ा धीरे धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गजों लंबा होता है। इस रोग से कभी कभी पैर आदि अंग बेकाम हो जाते हैं।

विशेष—दे० 'नारू'।

नहरुवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नहरुआ'।

नहरू—संज्ञा पुं० [हिं० नारू] दे० 'नहरुआ'।

नहल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नहर। उ०—घसि चंदन चंद्रक चहल महलनि नहल फिराइ। विषम गरम ग्रीषम तऊ नैकु न गरम लखाइ।—स० सप्तक, पृ० ३६२।

नहला[१]—संज्ञा पुं० [हिं० नौ] ताश के खेल में वह पत्ता जिसपर नौ चिह्न या बूटियाँ हों।

मुहा०—नहले पर दहला = ईंट का जवाब पत्थर। बढ़कर होना। उ०—सही औस तुम्हीं दिखे पहले। नहले पर तुम्हीं रहे दहले।—अर्चना, पृ० ५८।

नहला[२]—संज्ञा पुं० [देश०] करनी की तरह का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

नहलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहलाना + ई (प्रत्य०)] १. नहलाने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो नहलाने के बदले में दिया जाय।

नहलाना—क्रि० स० [हिं० नहाना का प्रे० रूप] दूसरे को स्नान में प्रवृत्त करना। स्नान कराना। नहवाना।

नहवाना—क्रि० स० [हिं० नहाना का प्रे० रूप] दे० 'नहलाना'।

नहस—वि० [अ० नह्स] अशुभ। अमांगलिक। मनहूस [को०]।

यौ०—नहसकदम = जिसका आना अशुभ हो। नहसरू = अशुभ दर्शन। जिसका दर्शन शुभ न हो।

नहसुत[१]—क्रि० स० [सं० नखक्षत] नख की रेखा। नाखून का निशान। उ०—नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दगद्वार अगोट।—सूर (शब्द०)।

नहसुत²—संज्ञा पुं० [सं० नख (=एक पेड़)] पलाश की तरह का एक पेड़ जिसे फरहद भी कहते हैं। दे० 'फरहद'।

नहँ¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. पहिए के ठीक बीच का सूराख जिसमें धुरी पहनाई जाती है। २. † घर के आगे का आँगन।

नहँ†²—संज्ञा पुं० [हिं० नहँ] दे० 'नाखून'।

नहान—संज्ञा पुं० [सं० स्नान] १. नहाने की क्रिया। जैसे, कुंभ का नहान, छट्ठी का नहान। २. स्नान का पर्व।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

नहाना¹—क्रि० अ० [सं० स्नान, प्रा० ह्वाण, बुंदे० हनाना] १. पानी के स्रोत में, बहती हुई धार के नीचे या सिर पर से पानी डालकर शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे धोना। स्नान करना।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—दूधों नहाना पूतों फलना=धन और परिवार से पूर्ण होना। (आशीर्वाद)।

विशेष—शरीर में जितने रोमकूप हैं, नहाने से उन सबका मुँह खुल और साफ हो जाता है और शरीर की थकावट दूर हो जाती है। भारत सरीखे गरम देशों में लोग नित्य सबेरे उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर नहाते हैं और कभी सबेरे और संध्या दोनों समय नहाते हैं। पर ठंढे देशों के लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताह में एक या दो बार नहाते हैं।

२. रजोधर्म से निवृत्त होने पर स्त्री का स्नान करना। ३ किसी तरल पदार्थ से सारे शरीर का आप्लुत हो जाना। शराबोर हो जाना। बिलकुल तर हो जाना। जैसे, पसीने से नहाना। खून से नहाना।

विशेष—इस अर्थ में 'नहाना' शब्द के साथ प्रायः 'उठना' या 'जाना' संयोज्य क्रिया लगाई जाती है।

नहाना(पु)†²—क्रि० स० [हिं०] नाधना। उ०—भृगत निरत के बैल नहायन, जोत खेत निर्बानो। दुबिधा दूब छोलकर बाहर, बोया नाम की धानी।—कबीर श०, भा०, पृ० ५१।

नहानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नहाना] १. रजस्वला स्त्री। २. स्त्री का रजस्वला होना।

नहार—वि० [फ़ा० नाहार (=जो सबेरे से भूखा हो) का लघु रूप, मि० सं० निराहार] जिसने सबेरे से कुछ खाया न हो। जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो। बासी मुँह।

मुहा०—नहार तोड़ना=जलपान करना। सबेरे के समय हलका भोजन करना। नहार मुँह=बिना जलपान आदि किए हुए। नहार रहना=भूखे रहना। बिना कुछ खाए रहना। उपवास करना।

नहारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नहार] १. वह हलका भोजन जो सबेरे किया जाता है। जलपान। कलेवा। नाश्ता। २. वह गुड़ या गुड़ मिला आटा जो घोड़े को सबेरे, अथवा आधा रास्ता पार कर लेने पर खिलाया जाता है (एक्केवान)। ३. मुसलमानों के यहाँ बननेवाला एक प्रकार का शोरबेदार सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ खमीरी रोटी खाई जाती है।

नहावन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नहान'।

क्रि० प्र०—लगना।—होना।

नहिँ(पु)—अव्य० [सं० नहि] दे० 'नहीं'।

नहिन(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'नहीं'। उ०—आनहि रंग पुहुप मैं देखे। अपनी बारी नहिन सुपेखे।—नंद० ग्रं०, पृ० १२७।

नहिअन†—संज्ञा पुं० [हिं० नह (=नख)] बिछिया की तरह का एक गहना जो पैर की छोटी उँगली में पहना जाता है।

नहि—अव्य० [सं०] नहीं। बिलकुल नहीं। निश्चित रूप से नहीं [को०]

नहियाँ†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० नह=नख] बिछिया की तरह का एक गहना जिसे नहिअन भी कहते हैं।

नहियाँ²(पु)—अव्य० दे० 'नहीं'। उ०—नैनन मैं चाह करे, बैनन में नहियाँ।—मति० ग्रं०, पृ० ३४८।

नहिरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नहरनी'।

नहीं¹—अव्य० [सं० नहि०] एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या अस्वीकृति प्रकट करने के लिये होता है। जैसे—(क) उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। (ख) प्रश्न—आप वहाँ जायँगे? उत्तर—नहीं।

मुहा०—नहीं तो=उस दशा में जब कि वह बात न हो। इसके न होने की दशा में। जैसे,—आप सबेरे ही मेरे पास पहुँच जाइएगा, नहीं तो मैं भी न जाऊँगा। नहीं सही=यदि यह बात न हो तो कोई चिंता नहीं। यदि ऐसा न हो तो कोई परवा या हानि नहीं। जैसे,—(क) अगर वे नहीं आते हैं तो नहीं सही। (ख) यदि आप न पढ़ें तो नहीं सही।

नहीं(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं० नह] नख। नाखून। उ०—तुम रँगभीने सुनत ही गई मेरे पाय की नहीं। सुनिहौ कुँवर और काहि लगाऊँ आधि रैनि गई, इहाँ हम तुम ही।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५३।

नहुर(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नहर नाखून] नाखून। नख। उ०—किंसुक कलिन बेलि भम पाई। नाहुर की सी नहुरे माई।—नंद० ग्रं०, पृ० १३९।

नहुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अयोध्या के एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम जो अंबरीष का पुत्र और ययाति का पिता था। महाभारत में इसे चंद्रवंशी आयु राजा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह बड़ा प्रतापी राजा था। जब इंद्र ने वृत्रासुर को मारा था उस समय इंद्र को ब्रह्महत्या लगी थी। उसके भय से इंद्र १००० वर्ष तक कमलनाल में छिपकर रहा था। उस समय इंद्रासन शून्य देख गुरु बृहस्पति ने इसको योग्य जान कुछ दिनों के लिये इंद्र पद दिया था। उस अवसर पर इंद्राणी पर मोहित होकर इसने उसे अपने पास बुलाना चाहा। तब बृहस्पति की सम्मति से इंद्राणी ने कहला दिया कि 'पालकी पर बैठकर सप्तर्षियों के कंधे पर हमारे यहाँ आओ तब हम तुम्हारे साथ चलें'। यह सुन राजा ने

तदनुसार ही किया और घबराहट में आकर सप्तर्षियों से कहा—सर्प सर्प (जल्दी चलो), इसपर अगस्त्य मुनि ने शाप दे दिया कि 'जा, सर्प हो जा'। तब वह वहाँ से पतित होकर बहुत दिनों तक सर्प योनि में रहा। महाभारत में लिखा है कि पांडव लोग जब द्वैतवन में रहते थे तब एक बार भीम शिकार खेलने गए थे। उस समय उन्हें एक बहुत बड़े साँप ने पकड़ लिया। जब उनके लौटने मे देर हुई तब युधिष्ठिर उन्हें ढूँढ़ने निकले। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि एक बड़ा साँप भीम को पकड़े हुए है। उनके पूछने पर साँप ने कहा कि मैं महाप्रतापी राजा नहुष हूँ; ब्रह्मर्षि, देवता, राक्षस और पन्नग आदि मुझे कर देते थे। ब्रह्मर्षि लोग मेरी पालकी उठाकर चला करते थे। एक बार अगस्त्य मुनि मेरी पालकी उठाए हुए थे, उस समय मेरा पैर उन्हें लग गया जिससे उन्होंने मुझे शाप दिया कि जाओ, तुम साँप हो जाओ। मेरे बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि इस योनि से राजा युधिष्ठिर तुम्हें मुक्त करेंगे। इसके बाद उसने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न भी किए थे जिनका उन्होंने यथेष्ट उत्तर दिया था। इसके उपरांत साँप ने भीम को छोड़ दिया और दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग को प्रस्थान किया।

२. एक नाग का नाम। ३. एक ऋषि का नाम जो मनु के पुत्र और ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा माने जाते हैं। ४. पुराणानुसार कुशिकवंशी एक ब्राह्मण राजा का नाम। ५. एक राजर्षि का नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है। ६. हरिवंश के अनुसार एक मरुत् का नाम। ७. विष्णु का एक नाम। ८. मनुष्य। आदमी।

नहुषाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] तगर पुष्प।

नहुषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति (को०)।

नहुष्य[1]—वि० [सं०] मानव संबंधी (को०)।

नहुष्य[2]—संज्ञा पुं० मनुष्य। आदमी (को०)।

नहूर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़।

विशेष—यह तिब्बत में होती है और कभी कभी नैपाल में भी आ जाती है। बहुत बर्फ पड़ने पर इसके झुंड पर्वत की चोटी से उतरकर सिंधु नदी के किनारे तक भी आ जाते हैं।

नहूसत—संज्ञा पुं० [अ०] १. मनहूस होने का भाव। उदासीनता। खिन्नता। मनहूसी। जैसे,—आपके चेहरे से नहूसत बरसती है।

क्रि० प्र०—टपकना।—बरसना।

२. अशुभ लक्षण।

नांत—वि० [सं० न + अन्त] अनंत। अंतहीन (को०)।

नांतरीयक—वि० [सं० नान्तरीयक] जो पृथक् करने योग्य न हो। घनिष्ट रूप से संबद्ध या संबंधित (को०)।

नांत्र—संज्ञा पुं० [सं० नान्त्र] स्तुति। प्रशंसा (को०)।

नांदन[1]—वि० [सं० नान्दन] तोषकारक। हर्षकारक (को०)।

नांदन[2]—संज्ञा पुं० १. आनंदप्रद उपवन। २. स्वर्ग का उपवन (को०)।

नांदिकर—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिकर] वह जो नांदी पाठ करे (को०)।

नांदी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नान्दी] १. अभ्युदय। समृद्धि। २. वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका पाठ सूत्रधार नाटक आरंभ करने के पहले करता है। मंगलाचरण।

विशेष—संस्कृत नाटकों में विघ्नशांति के लिये इस प्रकार के मंगलपाठ की चाल है। साहित्य दर्पण के अनुसार नांदी आठ या बारह पदों की भी लिखी है। नांदीपाठ मध्यम स्वर में होना चाहिए।

नांदी[2]—संज्ञा पुं० [सं० नान्दिन्] १. नाटक के आरंभ में नांदीपाठ करनेवाला व्यक्ति। २. नाटक के आरंभ में मंगलवाद्य बजानेवाला व्यक्ति।

नांदीक—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीक] १. तोरण का स्तंभ। २. नांदीमुख श्राद्ध।

नांदीकर—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीकर] नांदीपाठक। नांदीपाठ करनेवाला व्यक्ति (को०)।

नांदीघोष—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीघोष] मंगल वाद्यों की आवाज या ध्वनि (को०)।

नांदीनाद—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीनाद] प्रसन्नता या हर्ष की अधिकता में चिल्लाना (को०)।

नांदीनिनाद—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीनिनाद] दे० 'नांदीनाद' (को०)।

नांदीपट—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीपट] कुएँ का ढकना।

नांदीमुख—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीमुख] १. कुएँ का ढकना। २. एक आभ्युदयिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धिश्राद्ध।

विशेष—निर्णयसिंधु में लिखा है कि पुत्र कन्या जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, यज्ञ, पुंसवन, तड़ागादि प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्नप्राशन इत्यादि में नांदीमुख श्राद्ध करना ही चाहिए। वृद्धि हुई हो तब तो यह श्राद्ध करना ही चाहिए, जिस कार्य से अभ्युदय या वृद्धि की संभावना हो उसमें भी इसे करना चाहिए। पहले माता का श्राद्ध करना चाहिए, फिर पिता का, उसके पीछे पितामह, मातामह आदि का। और श्राद्ध तो मध्याह्न में किए जाते हैं पर यह पूर्वाह्न में होता है। पुत्रजन्म के समय का नियम नहीं है।

नांदीमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० नान्दीमुखी] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। जैसे, नित भक्ति दुहु पायँ गुरु केर आई। दशरथ सुत चारी नहें भाग पाई। हिय मँह धरि के ध्यान शृंगी ऋषि को। मुदित मन कियो श्राद्ध नांदीमुखी को।

नाँउँ—संज्ञा पुं० [सं० नामन्] दे० 'नाम'।

यौ०—नाउँ गाँउँ।

नाँक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नासा] दे० 'नाक'। उ०—सुआ सो नाँक कठोर पँवारी। वह कोवलि तिल पुहुप सँवारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १८६।

नाँकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाका] १. भीतर घुसने का मार्ग। प्रवेशद्वार। २. मोड़। वह स्थान जहाँ से रास्ता दूसरी ओर

मध्य भाग। ३. कोई प्रमुख स्थान। उ०—दसव दुआर गुपुत एक नाँकी। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।—जायसी ग्रं०, पृ० २६४।

नाँखना(पु)—क्रि० स० [हिं०] १. डालना। २. परे करना। अलग रखना। उ०—मैं बहुतो सो सत्य मानों, सगुन डारो नाँखि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३१८।

नाँगट(पु)†—वि० [सं० नग्नाट] दे० 'नग्नाट'। उ०—एक तजों नाँगट अपोक्षे रमन।—विद्यापति, पृ० ६०५।

नाँगा[1]—वि० [हिं० नंगा] दे० 'नंगा'।

नाँगा—संज्ञा पुं० [हिं० नंगा] एक प्रकार के साधु जो नंगा ही रहते हैं।

नाँगी—वि० स्त्री० [हिं०] नंगी। उ०—तुम यह बात असंभव [illegible] नाँगी [illegible]।—सूर (शब्द०)।

नाँघना(पु)—क्रि० स० [सं० लङ्घन] लाँघना। इस पार से उस पार [illegible] जाना। उ०—जो नाँघइ सत जोजन सागर। करै सो राम काज मति आगर।—तुलसी (शब्द०)।

नाँठना(पु)—क्रि० अ० [सं० नष्ट] नष्ट होना। बिगड़ जाना। उ०—[illegible] मोह [illegible] नाँठी। मणि गिरि गई छूट जनु गाँठी।—तुलसी (शब्द०)। वि० दे० 'नाठना'।

नाँद—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दक] मिट्टी का एक बड़ा और चौड़ा बरतन जिसमें पशुओं को चारा पानी आदि दिया जाता है। होदी।

विशेष—[illegible] इत्यादि धातुओं का भी बनता है जिसमें [illegible] लोग पानी रखते हैं।

नाँदना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० नाद] १. शब्द करना। शोर करना। २. छींकना।

नाँदना[2]—क्रि० अ० [सं० नन्दन] १. आनंदित होना। खुश होना। उ०—[illegible] न जानो [illegible] विरह तन छाम। [illegible] लिए तुम्हारो नाम।—बिहारी (शब्द०)। २. दीपक का बुझने के पहले कुछ भभककर जलना।

नाँयँ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाम'।

नाँयँ[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'नहीं'।

नाँवँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाम'।

नाँवरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० नाँव + रा (प्रत्य०)] दे० 'नाम'।

नाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाश] नाश करने या मारने की स्थिति या प्रकृति। उ०—[illegible] सुख हाँसी [illegible] घनआनंद कैसे सुहाति बसो तहाँ नाँसी। ज्याय हिते [illegible] हितू हँसि बोलनि सो [illegible] हाँसी।—घनानंद, पृ० १३।

नाँह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नाथ] स्वामी। पति।

ना[1]—अव्य० [सं०] एक शब्द जिसका प्रयोग अस्वीकृति या निषेध सूचित करने के लिये होता है। नहीं। न।

ना(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० नर या ना नृ] मनुष्य। (डिं०)।

ना(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० नाभि] नाभि। (डिं०)।

नाआगाह—वि० [फ़ा०] न जाननेवाला। अनजान (को०)।

नाआजमूदा—वि० [फ़ा० नाआज़मूदह्] जिसे अनुभव या ज्ञान न हो (को०)।

यौ०—नाआजमूदाकार = जो अनुभवी न हो। नाआजमूदाकारी = अनुभवहीनता।

नाआशना—वि० [फ़ा०] १. अपरिचित। २. अनभिज्ञ। अनाड़ी (को०)।

नाइंसाफ—वि० [फ़ा० ना + अ० इंसाफ़] अन्यायी। न्याय न करनेवाला (को०)।

नाइंसाफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + इंसाफ़ + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अनीति। अन्याय। बेईमानी (को०)।

नाइक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नायक'।

नाइत्तिफाकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + अ० इत्तिफ़ाक़ + फ़ा० ई (प्रत्य०)] मेल का अभाव। फूट। मतभेद। विरोध। बिगाड़। रंजिश।

नाइन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाई] १. नाई जाति की स्त्री। २. नाई की स्त्री।

नाइब(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'नायब'।

नाइँ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० न्याय] समान दशा। एक सी गति।

नाइँ[2]—वि० स्त्री० समान। तुल्य। उ०—समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाइँ।—तुलसी (शब्द०)।

नाई[1]—संज्ञा पुं० [सं० नापित] नाऊ। हज्जाम। नापित।

नाई[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाकुली कंद।

नाउँ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० नाम] दे० 'नाम'। उ०—अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।—मानस, २। ११०।

नाउ†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाव'।

नाउत—संज्ञा पुं० [देश०] मंत्र यंत्र से भूत प्रेत झाड़नेवाला। सयाना। झाड़ फूँक करनेवाला। ओझा।

नाउन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाऊ] दे० 'नाइन'।

नाउम्मेद—वि० [फ़ा० नाउम्मीद] निराश। हताश। हतोत्साह। हतसाहस। पस्तहौसला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाउम्मेदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाउम्मीदी] १. निराशा। मायूसी। २. उत्साहहीनता। पस्तहिम्मती (को०)।

नाऊँ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० नाउँ] नाम। उ०—धूम सकलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १। २६।

नाऊ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाई'।

नाकंद—वि० [फ़ा० ना + कंदह्] बिना निकाला हुआ (घोड़ा आदि।) अल्हड़। अशिक्षित। बिना सिखाया हुआ। उ०—(क) नाकंद बछेड़े कूद चुके अब और दुलत्ती मत छाँटो।—नजीर (शब्द०)। (ख) सुरंग बछेरे नैन तुव यदपि हैं नाकंद। मन सौदागर ने कह्यो ये हैं बहुत पसंद।—रसनिधि (शब्द०)।

नाक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नक, पा० नक्क,] १. मुखमंडल की मांसपेशियों और अस्थियों के उभार से बना हुआ नल के रूप का वह अवयव जिसके दोनों छेद मुखविवर और फुस्फुस से मिले रहते हैं और जिससे घ्राण का अनुभव और श्वास प्रश्वास का व्यापार होता है। सूँघने और साँस लेने की इंद्रिय। नासा। नासिका।

विशेष—नाक का भीतरी अस्तर छिद्रमय मांस की झिल्ली का होता है जो बराबर कपालघट और नेत्र के गोलकों तक गई रहती है, इसी झिल्ली तक मस्तिष्क के वे संवेदनसूत्र आए रहते हैं जिनसे घ्राण का व्यापार अर्थात् गंध का अनुभव होता है। इसी से होकर वायु भीतर जाती है जिसमें गंधवाले अणु रहते हैं। इस झिल्ली का ऊपरवाला भाग ही गंधवाहक होता है, नीचे का नहीं। नीचे तक संवेदनसूत्र नहीं रहते। नासारंध्र का मुखविवर, नेत्रगोलक, कपालघट आदि से संबंध होने के कारण नाक से स्वर और स्वाद का भी बहुत कुछ साधन होता है तथा कपाल के भीतर कोशों में इकट्ठा होनेवाला मल और आँख का आँसू भी निकलता है। जीवविज्ञानियों का कहना है कि उठी हुई नाक मनुष्य की उन्नत जातियों का चिह्न है, हबशी आदि असभ्य जातियों की नाक बहुत चिपटी होती है।

यौ०—नाक का बाँसा = दोनों नथुनों के बीच का परदा। नाक घिसनी = बिनती और गिड़गिड़ाहट। नाककटी या नाककटाई = अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। नाकबंद = घोड़े की पूजी।

मुहा०—नाक कटना = प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत जाना। नाक कटाना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगड़वाना। नाक काटना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगाड़ना। नाक काटकर चूतड़ों तले रख लेना = लोक लज्जा छोड़ देना। निर्लज्ज हो जाना। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान छोड़ लज्जाजनक कार्य करना। बेहयाई करना। नाक कान काटना = कड़ा दंड देना। नाक का बाँसा फिर जाना = नाक का बाँसा टेढ़ा हो जाना जो मरने का लक्षण समझा जाता है। (किसी की) नाक का बाल = वह जिसका किसी पर बहुत अधिक प्रभाव हो। सदा साथ रहनेवाला घनिष्ट मित्र या मंत्री। वह जिसकी सलाह से सब काम हो। नाक की सीध में = ठीक सामने। बिना इधर उधर मुड़े। नाक घिसना = दे० 'नाक रगड़ना'। नाक चढ़ना = क्रोध आना। त्योरी चढ़ना। नाक चढ़ाना = (१) क्रोध से नथुने फुलाना। क्रोध की आकृति प्रकट करना। क्रोध करना। (२) घिन खाना। घृणा प्रकट करना। अरुचि दिखाना। नापसंद करना। तुच्छ समझना। नाकों चने चबवाना = खूब तंग करना। हैरान करना। नाक चोटी काट कर हाथ देना = (१) कठिन दंड देना। (२) दुर्दशा करना। अपमान करना। नाक चोटी काटना = कड़ा दंड देना। नाक तक खाना = बहुत ठूँसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक तक भरना = (१) मुँह तक भरना (बरतन आदि को)। (२) खूब ठूँसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक न दी जाना = बहुत दुर्गंध आना। बहुत बदबू मालूम होना। नाक पर उँगली रखकर बात करना = औरतों की तरह बात करना। नाक पकड़ते दम निकलना = इतना दुर्बल रहना कि छू जाने से भी मरने का डर हो। बहुत अशक्त होना। नाक पर गुस्सा होना = बात बात पर क्रोध आना। चिड़चिड़ा स्वभाव होना। (कोई वस्तु) नाक पर रख देना = तुरंत सामने रख देना। चट दे देना। (जब कोई अपने रुपए या और किसी वस्तु को कुछ बिगड़कर माँगता है तब उसके उत्तर में तपाक के साथ लोग ऐसा कहते हैं)। नाक पर दीया बालकर आना = सफलता प्राप्त करके आना। मुख उज्वल करके आना। (स्त्री०)। चाहे इधर से नाक पकड़ो चाहे उधर से = चाहे जिस तरह कहो या करो बात एक ही है। नाक पर पहिया फिर जाना = नाक चिपटी होना। नाक इधर कि नाक उधर = हर तरह से एक ही मतलब। नाक पर मक्खी न बैठने देना = (१) बहुत ही खरी प्रकृति का होना। थोड़ा सा भी दोष या त्रुटि न सह सकना। (२) बहुत साफ रहना। जरा सा दाग न लगने देना। (३) किसी का थोड़ा निहोरा भी न लेना। जरा सा एहसान भी न उठाना। (किसी की) नाक पर सुपारी तोड़ना = खूब तंग करना। नाक फटने लगना = असह्य दुर्गंध होना। नाक बैठना = नाक का चिपटा हो जाना। नाक बहना = नाक में से कपाल-कोशों का मल निकलना। नाक बींधना = नथनी आदि पहनाने के लिये नाक में छेद करना। नाक भौं चढ़ाना या नाक भौं सिकोड़ना = (१) अरुचि और अप्रसन्नता प्रकट करना। (२) घिनाना और चिढ़ना। नापसंद करना। नाक में दम करना या नाक में दम लाना = खूब तंग करना। बहुत हैरान करना। बहुत सताना। नाक मारना = घृणा प्रकट करना। घिन करना। नापसंद करना। नाक में तीर करना या नाक में तीर डालना = खूब तंग करना। बहुत सताना या हैरान करना। नाक में दम होना = बहुत हैरान होना। बहुत सताया जाना। नाक रगड़ना = बहुत गिड़गिड़ाना और विनती करना। मिन्नत करना। नाक रगड़े का बच्चा = वह बच्चा जो देवताओं की बहुत मनौती करने पर हुआ हो। नाकों आना = हैरान हो जाना। बहुत तंग होना। उ०—नाक बनावत आयो हौं नाकहि नाहिं पिनाकहि नेकु निहारो।—तुलसी (शब्द०)। नाक से बोलना = नाक से स्वर निकालना। नकियाना। नाक होकर रहना = बहुत प्रतिष्ठा पाना। बनकर रहना। बड़ा इज्जतवाला बनना। नाक सिकोड़ना = अरुचि या घृणा प्रकट करना। घिनाना। उ०—मुनि अब [illegible] नाक सिकोरो।—तुलसी (शब्द०)।

२. कपाल के कोशों आदि का मल जो नाक से निकलता है। रेंट। नेटा।

क्रि० प्र०—आना। —बहना।

यौ०—नाक सिनकना = जोर से हवा निकालकर नाक का मल बाहर फेंकना।

३. चरखे में लगी हुई एक चिपटी लकड़ी जो अगले खूँटे के आगे निकले हुए बेलन के सिरे पर लगी रहती है और जिसे पकड़कर चरखा घुमाते हैं। ४. लकड़ी का वह डंडा जिसपर चढ़ाकर बरतन खरादे जाते हैं। ५. प्रतिष्ठा की वस्तु। श्रेष्ठ या प्रधान वस्तु। शोभा की वस्तु। जैसे,- वे ही तो इस शहर की नाक हैं। ६. प्रतिष्ठा। इज्जत। मान। उ०—नाक पिनाकहि संग सिधाई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—नाकवाला = इज्जतवाला।

मुहा०—नाक रख लेना = प्रतिष्ठा की रक्षा कर लेना।

नाक²—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु।

विशेष—मगर से इसमें यह अंतर होता है कि यह उतनी लंबी नहीं होती, पर चौड़ी अधिक होती है। मुँह भी इसका अधिक चिपटा होता है और उसपर घड़ा या गुलम नहीं होता। पूँछ में कांटे स्पष्ट नहीं होते। यह जमीन पर मगर से अधिक दूर तक जाकर जानवरों को खींच ला सकती है। सरजू तथा उसमें मिलनेवाली और छोटी छोटी नदियों में यह बहुत पाई जाती है।

नाक³—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग।

यौ०—नाकनटी। नाकपती।

२. अंतरिक्ष। आकाश। ३. अस्त्र का एक आघात। ४. सूर्य (को०)।

नाक⁴—वि० [सं० न + अकम् (=दुःख)] कष्टहीन। प्रसन्न। सुखी [को०]।

नाकचर—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। सुर [को०]।

नाकटा‡—वि० [देश०] १ नाक कटानेवाला। आबरू उतारनेवाला। उ०—पेटकट, नाकट, कनकट, नोकट, मुण्डफोड़ुट तौ तोनुआ। —वर्ण०, पृ० १।

नाकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + ड़ा (प्रत्य०)] नाक का एक रोग जिसमें नाक के बाँसे के भीतर जलन और सूजन होती है और नाक पक जाती है।

नाकद्र—वि० [फ़ा० ना + अ० कद्र] १ जिसकी कोई कदर न हो। जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। २. जो किसी की कदर करना न जानता हो। जिसमें गुणग्राहकता न हो।

नाकद्री—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + अ० कद्र + फ़ा० ई (प्रत्य०)] नाकदर होने की क्रिया या भाव।

नाकबूल—वि० [फ़ा० ना + अ० कबूल] अस्वीकृत। नामंजूर [को०]।

नाकनटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नर्तकी। अप्सरा। उ०—सुमन बरसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना।—मानस, १। २०६।

नाकनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की गंगा या मंदाकिनी [को०]।

नाकना(पु)†—क्रि० स० [सं० लङ्घन, हिं० नाघना] १ लाँघना। उल्लंघन करना। पार करना। डाँकना। उ०—प्रति तनु धनु रेखा, नेक नाकी न जाकी।—केशव (शब्द०)। २. अतिक्रमण करना। पार करना। बढ़ जाना। मात कर देना। उ०—चैत्ररथ कामवन नंदन की नाकी छवि, कहै रघुराज राम काम को समारा है।—रघुराज (शब्द०)। ३. चारों ओर से घेरना।

नाकनाथ—संज्ञा [सं०] स्वर्गपति। इंद्र [को०]।

नाकनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाकनाथ' [को०]।

नाकनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा [को०]।

नाकपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाकनाथ' उ०—सपने होई भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०३।

नाकपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

नाकबुद्धि—वि० [हिं० नाक + बुद्धि] जिसका विवेक नाक ही तक हो। जो नाक से सूँघकर गंध द्वारा ही भक्ष्याभक्ष्य, भले बुरे आदि का विचार कर सके, बुद्धि द्वारा नहीं। तुच्छबुद्धि। क्षुद्र बुद्धिवाला। ओछी समझ का। उ०—अपने पेट दियो तैं उनको नाकबुद्धि तिय सबै कहै री।—सूर (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियों की निंदा में प्रायः लोग कहते हैं कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है, अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो तो वे भक्ष्याभक्ष्य सब खा जायँ।

नाकबेसरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाक + बेसर] दे० 'नकबेसर'। उ०—कासी जाय बरनि बनक नाकबेसरि की।—नंद० ग्रं०, पृ० ४२०।

नाकर्दा—वि० [फ़ा० नाकर्दह्] न किया हुआ।

यौ०—नाकर्दाकार = कोई विशेष काम न करनेवाला। अननुभवी। नाकर्दागुनाह = (१) न किया हुआ गुनाह। उ०—नाकर्दा-गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद। या रब अगर इन कर्दा गुनाहों की सजा है।—गालिब०, पृ० ४१६। (२) जिसके कसूर न किया हो। नाकर्दाजुर्म = दे० 'नाकर्दागुनाह'।

नाकलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक। स्वर्ग [को०]।

नाकवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाकनटी'।

नाकवास—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का वास [को०]।

नाकवेधक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

नाकसद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देव। देवता। २. गंधर्व [को०]।

नाका¹—संज्ञा पुं० [हिं० नाकना] १. किसी रास्ते आदि का वह छोर जिससे होकर लोग किसी ओर जाते मुड़ते, निकलते या कहीं घुसते हैं। प्रवेशद्वार। मुहाना। उ०—(क) हरीचंद सुम बिनु को रोके ऐसे ठग को नाका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६५०। २. वह प्रधान स्थान जहाँ से किसी नगर, बस्ती आदि में जाने के मार्ग का आरंभ होता है। गली या रास्ते का आरंभस्थान। जैसे,—नाके नाके पर सिपाही तैनात थे कि कोई जाने न पावे। उ०—अबकी होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके।—घनानंद, पृ० ५८०।

यौ०—नाकाबंदी। नाकेदार।

३. नगर, दुर्ग आदि का प्रवेशद्वार। फाटक। निकलने पैठने का रास्ता। जैसे, शहर का नाका।

मुहा०—नाका छेंकना या बाँधना = आने जाने का मार्ग रोकना।

४. वह प्रधान स्थान या चौकी जहाँ निगरानी रखने, या किसी

प्रकार का महसूल आदि वसूल करने के लिये तैनात हो। ५. सूई का छेद। ६. आठ गिरह लंबा जुलाहों का एक औजार जिसमें ताने के तागे बाँधे जाते हैं।

नाका[2]—संज्ञा पुं० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु। नक्र। दे० 'नाक'।

नाकापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाकनदी' [को०]।

नाकाबंदी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाका + फा० बंदी] १. प्रवेशद्वार का अवरोध। किसी रास्ते से कहीं आने या घुसने की रुकावट। २. फाटक आदि का छेका जाना।

नाकाबंदी[2]—संज्ञा पुं० १. वह सिपाही जो फाटक या नाके पर पहरे के लिये खड़ा किया गया हो। १. सिपाही। कांस्टेबिल। चौकीदार। पहरेदार।

नाकाबिल—वि० [फा० ना + अ० काबिल] अयोग्य।

नाकाम[1]—वि० [फा०] १. जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो। विफलमनोरथ। असफल। २. निराश। मायूस (को०)।

नाकाम[2]—वि० [हिं० ना + काम] [संज्ञा स्त्री० नाकामी] निरर्थक। बेकार। व्यर्थ। उ०—उनके साहस को नाकाम बना दिया था।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २।

नाकामयाब—वि० [फ़ा०] [संज्ञा स्त्री० नाकामयाबी] १. विफलमनोरथ। ३. अनुत्तीर्ण। असफल [को०]।

नाकारा—वि० [फ़ा० नाकारह्] १. निकम्मा। खराब। बुरा। निष्प्रयोजनी। २. व्यर्थ। बेकार (को०)।

नाकिस—वि० [अ० नाकिस] बुरा। खराब। निकम्मा।
क्रि० प्र० –करना।–होना।

नाकिह—संज्ञा पुं० [अ०] विवाह करनेवाला। निकाह करनेवाला [को०]।

नाकी—संज्ञा पुं० [सं० नाकिन्] (नाक या स्वर्ग में रहनेवाला) देवता। उ० ज्ञान कारिद विवेक नाकी बने।—तुरसी० श०, पृ० २१।

नाकीब—संज्ञा पुं० [अ० नकीब] राजा, महाराजाओं या श्रेष्ठ पुरुषों की सवारी के आगे विरुद का उद्घोष करनेवाला। चोबदार। छड़ीदार। दरबार में मुलाकातियों को पुकारकर उपस्थित करनेवाला। उ०—छरी बरदार चोपदार आसा लिए निकलि नाकीब सब हाँक पारी।—सं० दरिया, पृ० ७८।

नाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीमक की मिट्टी का ढूह। बेमौट। वल्मीक। २. भीटा। टीला। ३ पर्वत। पहाड़। ४. एक मुनि का नाम।

नाकुल[1]—वि० [सं०] नेवले के ऐसा। नेवला संबंधी।

नाकुल[2]—संज्ञा पुं० १. नकुल की संतति। २. रास्ना। ३. सेमर का मुसला। ४. चव्य। ५. यवतिक्ता।

नाकुलक—वि० [सं०] नकुल का पूजक [को०]।

नाकुलि—संज्ञा पुं० [सं०] नकुल का वंशज। [को०]।

नाकुली[1]—वि० [सं० नकुल] १. नेवला संबंधी। २. नकुल नामक पंडित का बनाया हुआ। जैसे, नाकुली शालिहोत्र।

नाकुली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नकुल] १. एक प्रकार का कंद जो सब प्रकार के विषों, विशेषकर सर्प के विष को दूर करता है।

विशेष—नाकुली दो प्रकार का होता है। एक नाकुली दूसरा गंधनाकुली। गुण दोनों का एक सा है। गंधनाकुली कुछ अच्छी होती है।

पर्या०—नागसुगंधा। नकुलेष्टा। भुजंगाक्षी। सर्पाक्षी। विषनाशिनी। रक्तपत्रिका। ईश्वरी। सुरसा।

२. यवतिक्ता लता। ३ रास्ना। ४. चव्य। चविका। ५. श्वेत कंटकारी। सफेद भटकैया।

नाकू—संज्ञा पुं० [सं० नक्र] घड़ियाल या मगर नामक जलजंतु।

नाकूस—संज्ञा पुं० [अ० नाकूस] शंख। कंबु। उ०—तेरा दम भरते हैं हिंदू अगर नाकूस बजता है। तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५१।

नाकेदार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० नाका + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. नाके या फाटक पर रहनेवाला सिपाही। २. वह अफसर या कर्मचारी जो आने जाने के प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी प्रकार का कर महसूल आदि वसूल करने के लिये तैनात हो।

नाकेदार[2]—वि० जिसमें नाका या छेद हो। जैसे, नाकेदार सुई।

नाकेबंदी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाकाबंदी'।

नाकेबंदी[2]—संज्ञा पुं० दे० 'नाकाबंदी'।

नाकेश—संज्ञा पुं० [सं०] (स्वर्ग के अधिपति) इंद्र।

नाकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

नाक्षत्र—वि० [सं०] नक्षत्र संबंधी। जैसे, नाक्षत्र दिन। नाक्षत्र मास, नाक्षत्र वर्ष।

विशेष—जितने काल में चंद्रमा २७ नक्षत्रों पर एक बार घूम जाता है उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। मास का प्रथम दिन वह समय माना जाता है जिसमें चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र पर रहता है। अश्विनी नक्षत्र पर चंद्रमा ६० दंड, भरणी पर ६३ दंड, इसी प्रकार सब नक्षत्रों पर कुछ काल तक रहता है। फलित ज्योतिष में आयुगणना आदि के लिये नाक्षत्र दिन मास आदि निकाले जाते हैं।

नाक्षत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक्षत्र मास।

नाक्षत्रिकी—वि० स्त्री० [सं०] नक्षत्र संबंधिनी। जैसे, नाक्षत्रिकी दशा। दे० 'दशा'।

नाख—संज्ञा स्त्री० [फा० नाशपाती] नाशपाती नाम का फल।

नाखना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० नष्ट] १. नाश करना। नष्ट कर देना। बिगाड़ देना। उ०—(क) जे नखचंद्र भजन खल नाखत रमा हृदय जेहि परसत।—सूर (शब्द०)। (ख) जो हरिचरित ध्यान उर राखै। आनंद सदा दुरित दुख नाखै।—सूर (शब्द०)। २. फेंकना। गिराना। डालना। उ०—जो उर आरत ही आरसी मृदु मालती माल वहै मग नाखै।—(शब्द०)।

नाखना[2]—क्रि० स० [हिं० नाकना]। उल्लंघन करना। उ०—(क) नील नल अंगद सहित जामवंत हनुमंत से अनंत जिन

नीरनिधि नाख्योई। —केशव (शब्द०)। (ख) पाछे ते सीय हरी विधि मर्याद राख्यो। जो पै दसकंध बली रेखा क्यों न नाख्यो। —सूर (शब्द०)।

नाखलफ—वि० [फ़ा० ना + अ० खलफ़] जो लड़का बाप के सदाचार पर न चले। कपूत। उ०—बजाबर हुजूर नाखलफ हैं, और क्या कहूँ, खुदा सातवें दुश्मन को भी ऐसी औलाद न दे।—काया०, पृ० २१३।

नाखुन—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाखुन] नख [को०]।

यौ०—नाखुनतराश = नहन्नी।

नाखुना—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाख़ुनह्] १. आँख का एक रोग जिसमें एक लाल झिल्ली सी आँख की सफेदी में पैदा होती है और बढ़कर पुतली को भी ढक लेती है। २. मोटे लाल डोरे जो घोड़ों की आँख में पैदा हो जाते हैं। ३. चीरा बाँधने का नोकदार अंगुश्ताना।

नाखुर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नहँरू'।

नाखुश—वि० [फ़ा० नाख़ुश] अप्रसन्न। नाराज।

यौ०—नाखुशगवार = अरुचिकर। नाखुशगवारी = (१) अप्रसन्नता। (२) अरुचि।

नाखुशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाखुशी] १. अप्रसन्नता। नाराजी। २. क्रोध। गुस्सा (को०)। ३. बीमारी (को०)।

नाखून—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाख़ून] १. उँगलियों के छोर पर चिपटे किनारे या नोक की तरह निकली हुई कड़ी वस्तु। नख। नँह।

विशेष—नाखून वास्तव में ठोस और कड़ा जमा हुआ उपरी त्वक् है। पशुओं के सींग, खुर आदि भी इसी प्रकार ऊपरी त्वक् की जमावट से बनते हैं।

मुहा०—नाखून लेना = नाखून काटकर अलग करना। नाखून नीले होना = मरने के लक्षण दिखाई पड़ना। मृत्यु के चिह्न प्रकट होना। ऐसे ऐसे नाखून में पड़े हैं = ऐसे ऐसे बहुत देखे भाले हैं। ऐसों की गिनती नहीं।

२. चौपायों के टाप या खुर का बढ़ा हुआ किनारा।

मुहा०—नाखून लेना = (१) नाखूना काटना। (२) घोड़े का ठोकर लेना।

नाखूना—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाख़ूनह्] १ दे० 'नाखुना'। २. मखमल की तरह का एक कपड़ा जिसका ताना सफेद होता है और बाने में अनेक रंग की धारियाँ होती हैं। यह आगरे में बहुत बनता है। ३. बढ़इयों की बहुत पतली रुखानी जिससे बारीक काम किया जाता है।

नाख्वाँदा—वि० [फ़ा० नाख्वाँदह्] १. निरक्षर। अनपढ़। अशिक्षित। उ०—ताहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छंद ढीले ढाले नहीं होते। फिर भी हूँ तो नाख्वाँदा ही।—कुंकुम (भू०), पृ० १६। २. अनिमंत्रित। अनाहूत।

नाग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नागिन] १. सर्प। साँप।

मुहा०—नाग खेलना = ऐसा कार्य करना जिसमें प्राण का भय हो। खतरे का काम करना।

२. कद्रू से उत्पन्न कश्यप की संतान जिनका स्थान पाताल लिखा गया है।

विशेष—वराहपुराण में नागों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा लिखी है। सृष्टि के प्रारंभ में कश्यप उत्पन्न हुए। उनकी पत्नी कद्रू से उन्हें ये पुत्र उत्पन्न हुए—अनंत, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक और अपराजित। कश्यप के ये सब पुत्र नाग कहलाए। इनके पुत्र, पौत्र बहुत ही क्रूर और विषधर हुए। इनसे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी। प्रजा ने जाकर ब्रह्मा के यहाँ पुकार की, ब्रह्मा ने नागों को बुलाकर कहा, जिस प्रकार तुम हमारी सृष्टि का नाश कर रहे हो उसी प्रकार माता के शाप से तुम्हारा भी नाश होगा। नागों ने डरते डरते कहा — महाराज, आप ही ने हमें कुटिल और विषधर बनाया, हमारा क्या अपराध है? अब हम लोगों के रहने के लिये कोई अलग स्थान बतलाइए जहाँ हम लोग सुख से पड़े रहें। ब्रह्मा ने उनके रहने के लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिए।

एक बार कद्रू और विनता में विवाद हुआ कि सूर्य के घोड़े की पूँछ काली है या सफेद। विनता सफेद कहती थी और कद्रू काली। अंत में यह ठहरी कि जिसकी बात ठीक न निकले वह दूसरी की दासी होकर रहे। जब कद्रू ने अपने पुत्रों से यह बात कही तब उन्होंने कहा कि पूँछ तो सफेद है, अब क्या होगा? अंत में जब सूर्य निकला तब सबके सब नाग उच्चैःश्रवा की पूँछ से लिपट गए जिससे वह काली दिखाई पड़ी। जिन नागों ने पूँछ को काला कहना अस्वीकार किया उन्हें कद्रू ने नष्ट होने का शाप दिया जिसके अनुसार वे जनमेजय के सर्पयज्ञ में नष्ट हुए।

पुराणों में बहुत से नागों के नाम दिए हुए हैं। पर उनमें मुख्य आठ हैं—अनंत, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोटक और शंख। ये अष्टनाग और इनका कुल अष्टकुल कहलाता है।

३. एक देश का नाम। ४. उस देश में बसनेवाली जाति।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार 'नाग' शक जाति की एक शाखा थी जो हिमालय के उस पार रहती थी। तिब्बतवाले अपने को नागवंशी और अपनी भाषा को नाग भाषा कहते हैं। जनमेजय की कथा से पुरुवंशियों और नागवंशियों के वैर का आभास मिलता है। यह वैर बहुत दिनों तक चलता रहा। जब सिकंदर भारत में आया तब पहले पहल उससे तक्षशिला का नागवंशी राजा मिला जो पंजाब के पौरव राजा से द्रोह रखता था। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला के राजा के यहाँ बड़े बड़े साँप पले देखे थे जिनकी पूजा होती थी। विशेष—दे० 'नागवंश'।

५. एक पर्वत।—(महाभारत)। ६. हाथी। हस्ति। ७. राँगा। सीसा (धातु)।

विशेष—भावप्रकाश में लिखा है कि वासुकि एक नागकन्या को देख मोहित हुए। उनके स्खलित वीर्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई।

मुहा०—नाग फूँकना = धातु फूँकना।

९. एक प्रकार की घास। १०. नागकेसर। ११. पुन्नाग। १२. मोथा। नागरमोथा। १३. पान। तांबूल। १४. नागवायु। १५. ज्योतिष के करणों में से तीसरे करण का नाम। १६. बादल। १७. आठ की संख्या। १८. दुष्ट या क्रूर मनुष्य। १९. अश्लेषा नक्षत्र।

नागकंद—संज्ञा पुं० [सं० नागकन्द] हस्तिकंद।

नागकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नागकन्या' (को०)।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाग जाति की कन्या।

विशेष—पुराणों मे नागकन्याएँ बहुत सुंदर बतलाई गई हैं।

नागकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का कान। २. एरंड। अंडी का पेड़।

नागकिंजल्क—संज्ञा पुं० [सं० नागकिञ्जल्क] नागकेसर।

नागकुमारिका—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] १. गुरुच। गिलोय। २. मजीठ। मंजिष्ठा।

नागकेसर[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नागकेशर या नागकेसर] एक सीधा सदाबहार पेड़ जो देखने में बहुत सुंदर होता है।

विशेष—यह द्विदल अंकुर से उत्पन्न होता है। पत्तियाँ इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं, जिससे इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है। इसमें चार दलों के बड़े और सफेद फूल गरमियों में लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी महक होती है। लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटनेवाले की कुल्हाड़ियों की धारें मुड़ मुड़ जाती है; इसी से इसे वज्रकाठ भी कहते हैं। फलों में दो या तीन बीज निकलते हैं। हिमालय के पूरबी भाग, पूरबी बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदि में इसके पेड़ बहुतायत से मिलते हैं। नागकेसर के सूखे फूल औषध, मसाले और रंग बनाने के काम में आते हैं। इनके रंग से प्रायः रेशम रँगा जाता है। सिंहल में बीजों से गाढ़ा, पीला तेल निकालते हैं, जो दीया जलाने और दवा के काम में आता है। मदरास में इस तेल को वातरोग में भी मलते हैं। इसकी लकड़ी से अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। लकड़ी ऐसी अच्छी होती है कि केवल हाथ से रँगने से ही उसमें वारनिश की सी चमक आ जाती है। वैद्यक में नागकेसर कसैली, गरम, रूखी, हलकी तथा ज्वर, खुजली, दुर्गंध, कोढ़, विष, प्यास, मतली और पसीने को दूर करनेवाली मानी जाती है। खूनी बवासीर में भी वैद्य लोग इसे देते हैं। इसे नागचंपा भी कहते हैं।

नागकेसर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शुद्ध लोहा या फौलाद (को०)।

नागखंड—संज्ञा पुं० [सं० नागखण्ड] पुराणानुसार जंबूद्वीप के अंतर्गत भारतवर्ष के नौ खंडों या भागों में से एक।

नागगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागगन्धा] नकुलकंद।

नागगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी ग्रह की वह गति जो उस समय होती है जब वह अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र में रहता है (ज्योतिष)।

नागगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

नागचंपा—संज्ञा पुं० [सं० नागचम्पक] नागकेसर का पेड़।

नागचूड़—संज्ञा पुं० [सं० नागचूड] शिव। महादेव।

यौ०—नागचूड़ज = (१) सिंदूर। (२) राँगा।

नागच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

नागज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंदूर। २. वंग।

नागजिह्वा—संज्ञा स्त्री [सं०] १. अनंतमूल। २. शारिवा।

नागजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नागजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] वंग। फूँका हुआ राँगा।

नागफाग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + फाग] अहिफेन। अफीम।

नागदंत—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्त] १. हाथीदाँत। २. दीवार में गड़ी हुई खूँटी।

नागदंतक—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्तक] दे० 'नागदंत'।

नागदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदन्तिका] वृश्चिकाली का पौधा।

नागदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदन्ती] नखी नामक गंधद्रव्य।

नागदमन—संज्ञा पुं० [सं०] नागदौने का पौधा।

नागदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदौने का पौधा।

नागदला—संज्ञा पुं० [सं० नाग + दल] एक पेड़ जो बंगाल, आसाम, बरमा, मालाबार और सिंहल में होता है। बंगाल में इसे 'पोसुर' कहते हैं।

विशेष—सुंदर वन से इसकी लकड़ी आती है जो बहुत कड़ी और मजबूत होती है। यह पानी में रहने से भी अधिक दिनों तक रह सकती है। इससे गाड़ी के पहिए, नाव और अनेक प्रकार के सामान बनते हैं। इसके बीजों का गाढ़ा तेल जलाने के काम में आता है।

नागदलोपम—संज्ञा पुं० [सं०] परुष फल। फालसा।

नागदवनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदमनी] दे० 'नागदौन' उ०—नागदवनि जरजरी राम सुमिरन बरी भनत रैदास चेत-निमेता। —रै० बानी, पृ० २०।

नागदुमा—वि० [सं० नाग + फ़ा० दुम] (हाथी) जिसकी पूँछ का सिरा सर्प के फन की तरह का हो।

विशेष—ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

नागदौन—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १. छोटे आकार का एक पहाड़ी पेड़ जो शिमले और हजारे में बहुत मिलता है।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर से सफेद और मुलायम होती है और विशेषतः छड़ियाँ बनाने के काम में आती है। लोगों का विश्वास है कि इस लकड़ी के पास सौंप नहीं आते।

२. दे० 'नागदौना'।

नागदौना—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १. एक पौधा जिसमें डालियाँ और टहनियाँ नहीं होती।

विशेष—इसके जड़ के ऊपर से ग्वारपाठे की सी पत्तियाँ चारों ओर निकलती हैं। ये पत्तियाँ हाथ हाथ भर लंबी और दो ढाई अंगुल चौड़ी होती हैं। ग्वारपाठे की पत्तियों की तरह इन

पत्तियों के भीतर गूदा नहीं होता। इससे इनका दल बहुत मोटा नहीं होता। पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है पर बीच बीच में हलकी चित्तियाँ सी होती हैं। नागदौने की जड़ कंद के रूप में नीचे की ओर जाती है। वैद्यक में नागदौना चरपरा, कड़ुआ, हलका, त्रिदोषनाशक, कोठे को शुद्ध करनेवाला, विषनाशक तथा मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और ज्वर को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—नागदमनी। बला। मोटा। विषापहा। नागपत्रा। महायोगेश्वरी। जावबनी। वृषका। जावबी। मलध्नी। दुर्धर्षा। दुःसहा। विफला। नागकुमारी। श्रीकदा। कंदशालिनी।

२. एक प्रकार का कड़ुआ और कँटीला दौना जिसके पेड़ लंबे लंबे होते हैं।

विशेष—इसकी सूखी पत्तियाँ लोग कागजों और कपड़ों की तहों के बीच उन्हें कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं।

नागद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागद्रुम' (को०)।

नागद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेंहुड़। थूहर। २. नागफनी।

नागद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार भारतवर्ष के नौ भागों में से एक।

नागधर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नागध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो मल्लार और केदार या सूहा अथवा कान्हड़े और सारंग के योग से बनी है।

विशेष—इसका सरगम इस प्रकार है नि सा ऋ ग म प।

नाग नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र।

नागनग(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] गजमुक्ता। उ०—निज गुण घटत न नागनग परखि न परिहत कोल। तुलसी प्रभु भूषण किए गुंजा बढ़े न मोल।—तुलसी (शब्द०)।

नागनामक—संज्ञा पुं० [सं०] रांगा। टीन (को०)।

नागनामा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागनामन्] तुलसी (को०)।

नागनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्लेषा नक्षत्र। २. नागों में अनंत आदि आठ प्रमुख सर्प (को०)।

नागनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का शुंड (को०)।

नागनिर्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] दीवार की बड़ी खूँटी (को०)।

नागपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं० नागपञ्चमी] सावन सुदी पंचमी।

विशेष—इस तिथि को नागदेवता की पूजा होती है। पुराण में लिखा है कि इस पंचमी तिथि को ही नागों को ब्रह्मा ने शाप और वर दिया था। इससे यह उन्हें अत्यंत प्रिय है। इस तिथि को नागों की पूजा भारत में स्त्रियाँ प्रायः सर्वत्र करती हैं।

नागपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्पों का राजा वासुकि। २. हाथियों का राजा ऐरावत।

नागपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।

नागपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मणा नाम का कंद।

नागपद—संज्ञा पुं० [सं०] संभोग का एक आसन (को०)।

नागपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागपाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे। २. शत्रु को बाँधने के लिये एक प्रकार का बंधन या फंदा।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में मेघनाद का इंद्र से इस अस्त्र को प्राप्त करना लिखा है। पुराणों में भी इसका उल्लेख है। तंत्र में लिखा है कि ढाई फेरे के बंधन को नागपाश कहते हैं।

३. नागों का पाश या बंधन (को०)।

नागपाशक—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रतिबंध (को०)।

नागपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोगवती नाम की नगरी जो पाताल में मानी गई है। २. हस्तिनापुर। ३. अग्निपुराण के अनुसार एक स्थान। ४. मध्य प्रदेश का एक नगर।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि जब गंगा महादेव जी की जटा से निकल हेमकूट, हिमालय आदि को लाँघकर आई तब स्वलोल नामक एक दानव पर्वत के रूप में मार्ग रोकने के लिये खड़ा हो गया। भगीरथ ने कौशिक को प्रसन्न करके उससे एक नागवाहन प्राप्त किया जिसने उस पर्वतरूपी दैत्य को विदीर्ण किया। जिस स्थान पर यह दैत्य विदीर्ण किया गया, उसका नाम नागपुर रखा गया।

नागपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागकेसर। २. पुन्नाग का पेड़। ३. चंपा।

नागपुष्पफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा।

नागपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीली जूही। २. नागदौना।

नागपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदमनी। २. मेढ़ासिंगी।

नागपूत—संज्ञा पुं० [सं० नागपुत्र] कचनार की जाति की एक लता जो सिकिम, बंगाल और बरमा में बहुत होती है।

नागफनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग + फन] १. थूहर की जाति का एक पौधा जिसमें टहनियाँ नहीं होतीं।

विशेष—इस पौधे में साँप के फन के आकार के गूदेदार मोटे दल एक दूसरे के ऊपर निकलते चले जाते हैं। ये दल कुछ नीलापन लिए हुए और कँटीदार होते हैं। काँटे बड़े विषैले होते हैं। उनके चुभने पर बड़ी पीड़ा होती है। दलों के सिरे पर पीले रंग के बड़े बड़े फूल लगते हैं। फूल का निचला भाग छोटी गुल्ली के रूप का होता है जिसमें लाल रंग का रस भरा रहता है। यही गुल्ली फूलों के झड़ जाने पर बढ़कर गोल फल के रूप में हो जाती है। ये फल खाने में खटमीठे होते हैं और दवा के काम आते हैं। अचार और तरकारी भी इन फलों की बनती है। नागफनी के पौधे किसी स्थान को घेरने के लिये बाड़ों में लगाए जाते हैं। काँटों के कारण इन्हें पार करना कठिन होता है।

२. सिंघे के आकार का एक बाजा जिसका प्रचार नैपाल में है। ३. कान में पहनने का एक गहना। उ०—विकट भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल कानिन नगफनियाँ।—तुलसी (शब्द०)। ४. नागे साधुओं का कौपीन।

नागफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवल।

नागफाँस—संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] दे० 'नागपाश'। उ०—नागफाँस लीने घट भीतर, मूसनि सब जग झारी।—घट०, पृ० ३६२।

नागफेन—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम। अहिफेन।

नागबंध—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्ध] १. नाग या सर्प का बंधन। २. एक वृत्त का नाम (को०)।

नागबंधक—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धक] हाथी फँसानेवाला (को०)।

नागबंधु—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धु] पीपल का पेड़।

नागबल—संज्ञा पुं० [सं०] भीम का एक नाम।

विशेष—भीम को दस हजार हाथियों का बल था, इससे यह नाम पड़ा। यह बल उन्हें उस समय प्राप्त हुआ था जब दुर्योधन ने उन्हें विष देकर जल में फेंक दिया था और वे नागलोक में जा पहुँचे थे। नागलोक में गिरने पर नागों ने उन्हें खूब डसा जिससे स्थावर विष का प्रभाव उतर गया और वे स्वस्थ होकर उठ बैठे। वहाँ पर कुंती के पिता के मामा ने भीम को पहचाना। अंत में वासुकि की कृपा से उन्हें उस कुंड का रसपान करने को मिला जिसके पीने से हजारों हाथियों का बल हो जाता है।

नागबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगेरन। गुलसकरी।

नागबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] १. पान की बेल। पान। २. कोई सर्पाकार बेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय। ३. घोड़े की आड़ी तिरछी चाल।

नागभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वासुकि की बहन जरत्कारु।

नागभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भारी सर्प।

नागभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। रुद्र (को०)।

नागमंडलिक—संज्ञा पुं० [सं० नागमण्डलिक] १. साँप खेलानेवाला। सँपेरा। मदारी। २. साँप पकड़नेवाला (को०)।

नागमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम।

नागमरोड़—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + मरोड़ना] कुश्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ को अपनी गर्दन के ऊपर से या कमर पर से एक हाथ से घसीटते हुए गिराते हैं।

विशेष—यह पेंच धोबी पछाड़ ही जैसा होता है, अंतर इतना होता है कि धोबी पछाड़ में दोनों हाथों से जोड़ को पीठ पर से घसीटते हुए फेंकते हैं।

नागमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

नागमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागों की माता, कद्रू। २. सुरसा।

विशेष—रामायण में लिखा है कि जिस समय हनुमान समुद्र लाँघ रहे थे, देवताओं ने उनके बल की परीक्षा के लिये नागों की माता सुरसा को भेजा था।

२. मनःशिला। मैनसिल। ३. मनसा देवी। (ब्रह्मवैवर्त पु०)।

नागमार—संज्ञा पुं० [सं०] केशराज। काला भँगरा। कुकुर भँगरा।

नागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

नागयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लकड़ी या पत्थर का वह खंभा जो पुष्करिणी या तालाब के बीचोबीच जल में खड़ा किया जाता है। लाट। लट्ठा।

विशेष—हयशीर्ष और बृहस्पति के अनुसार यह लाट बेल, पुन्नाग, नागकेसर, चंपा या बरने की लकड़ी की होनी चाहिए। लकड़ी सीधी और सुडौल हो। जलाशयोत्सर्गतत्व में लिखा है कि पहले आठों नागों के नाम अलग अलग पत्रों पर लिखकर जल से भरे कुंडों में डाल देने चाहिए। फिर जल को खूब हिलाकर एक पत्र हाथ में उठा लेना चाहिए। जिस नाग का नाम उस पत्र पर हो वही बनाए हुए जलाशय का अधिपति होगा। उस नाग की पायस नैवेद्य से पूजा करके तब नागयष्टि की स्थापना करनी चाहिए।

नागरंग—संज्ञा पुं० [सं० नागरङ्ग] नारंगी।

नागर[1]—वि० [सं०] [स्त्री० नागरी] १. नगर संबंधी। २. नगर में रहनेवाला या बोला जानेवाला। ३. नगर में उत्पन्न या घोषित (को०)। ४. नगर में बोली जानेवाली या बोला जानेवाला (को०)। ५. सभ्य। शिष्ट। नम्र (को०)। ६. चतुर। सयाना (को०)। ७. दुष्ट। धूर्त। बुरा। जिसमें नगर संबंधी दोष हों (को०)। ८. नामहीन (को०)।

नागर[2]—संज्ञा पुं० १. नगर में रहनेवाला मनुष्य। २. चतुर आदमी। सभ्य, शिष्ट और निपुण व्यक्ति। ३. देवर। ४. सोंठ। ५. नागरमोथा। नारंगी। ७. गुजरात में रहनेवाले ब्राह्मणों की एक जाति। ८. व्याख्याता (को०)। ९. क्लांति। श्रम। कठिनाई (को०)। १०. मोक्ष की इच्छा (को०)। ११. एक रतिबंध (को०)। १२. नागरी लिपि अथवा अक्षर (को०)। १३. राजकुमार जो युद्धरत हो (को०)। १४. किसी नक्षत्र का दूसरे नक्षत्र से विरोध (ज्योतिष) (को०)। १५. ज्ञान या जानकारी का अस्वीकार (को०) १६. वास्तुकला की तीन पद्धतियों में से एक जो चतुरस्र या चतुष्कोण होती है (को०)।

नागर[3]—संज्ञा पुं० [सं० नाग (=सर्प)] दीवार का टेढ़ापन जो जमीन की तंगी के कारण होता है।

नागरक[1]—संज्ञा [सं०] १. शिल्पी। कारीगर। २. चोर। ३. नगर का शासनकर्ता। नागरिक प्रणिधि (को०)। ४. नागरिक। नगरवासी (को०)। ५. नम्र या अनुकूल नायक (को०)। ६. नगर के दोषों से युक्त व्यक्ति (को०)। ७. नगरव्यवस्था करनेवाले राजपुरुषों या पुलिस का प्रधान (को०)। ८. एक रतिबंध (को०)। ९. एक दूसरे के विरोधी नक्षत्र (को०)।

नागरक[2]—वि० १. नगर में उत्पन्न या घोषित। २. नम्र। अनुकूल। ३. विदग्ध। चतुर (को०)।

नागरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प या हाथी का रक्त। २. सिंदूर।

नागरघन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोथा ।

नागरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. नगर का रीति व्यवहार । सभ्यता । उ०—सब हँसत करतार दै नागरता के नाँव । गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव ।—बिहारी (शब्द०) । ३ चतुराई ।

नागरबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागवल्ली] पान की बेल । पान । तांबूल ।

नागरमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नागरमोथा—संज्ञा पुं० [सं० नागरमुस्ता] एक प्रकार का तृण या घास ।

विशेष—इसमें इधर उधर फैली या निकली हुई टहनियाँ नहीं होतीं, जड़ के पास चारों ओर सीधी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं जो शर या मूँज की पत्तियों की सी नोकदार और बहुत कम चौड़ाई की होती हैं । पत्तियों के बीचोबीच एक सीधी सींक निकलती है जिसके सिरे पर फूलों की ठोस मंजरी होती है । यह हाथ भर तक ऊँचा होता है और तालों के किनारे प्रायः मिलता है । इसकी जड़ सूत में फँसी हुई गाँठों के रूप की और सुगंधित होती है । नागरमोथे की जड़ मसाले और औषध के काम में आती है । वैद्यक में नागरमोथा चरपरा, कसैला, ठंढा तथा पित्त, ज्वर, अतिसार, अरुचि, तृषा और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है । जितने प्रकार के मोथे होते हैं उनमें नागरमोथा उत्तम माना जाता है ।

पर्या०—नागरमुस्ता । नादेयी । चूर्णमांसी । कच्छरुहा । चूडाला । पिंडमुस्ता । नागरोत्था । कलापिनी । चक्रांशा । शिशिरा । उच्चटा ।

नागराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्पों में बड़ा सर्प । २ शेषनाग । ३. हाथियों में बड़ा हाथी । ४. ऐरावत । ५. 'पंचामर' या 'नाराच' छंद का दूसरा नाम ।

नागराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ ।

नागरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरी । उ०—प्रेम बिबस डोलत नट नागरि हित गति की अधिकाईं ।—घनानंद, पृ० ५६० ।

नागरिक¹—वि० [सं०] १. जिसे लोकतंत्र, जनतंत्र, प्रजातंत्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्रों के सामान्य निर्वाचनों में मतदान का अधिकार प्राप्त हो । २. नगर संबंधी । ३. नगर का । ४. नगर में रहनेवाला । शहराती । ५. चतुर । सभ्य । दे० 'नागरक' ।

नागरिक²—संज्ञा पुं० १. लोकतंत्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्र का वह निवासी जिसे सामान्य निर्वाचन आदि में मताधिकार प्राप्त हो । २. नगरनिवासी । शहर का रहनेवाला आदमी । दे० 'नागरक' ।

नागरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरिक होने का भाव । नागरिक के स्वत्व और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था । नागरिक जीवन ।

नागरिपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नागरि + पन (प्रत्य०)] चातुरी । चतुरता । उ०—नागरिपन किछु कहुवा चार । कहलहु बुझए सयानी ।—विद्यापति, पृ० ८२ ।

नागरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नगर की रहनेवाली स्त्री । शहर की औरत । २. चतुर स्त्री । प्रवीण स्त्री । ३. स्नुही । थूहर । ४. भारतवर्ष की वह प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी, पाली प्राकृत आदि आजकल प्रायः लिखी और मुद्रित की जाती है । विशेष—दे० 'देवनागरी' । ५. पत्थर की मोटाई की एक बड़ी माप । ६. पत्थर की बहुत मोटी पटिया । बड़ा भोट ।

नागरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० नागरबेल] पान । नागवल्ली । उ०—बाड़ी में है नागरी पान देशांतर जाय । जो वहाँ सूखे बेलड़ी तो रस्न वहीं बिनसाय ।—दरिया० बानी, पृ० २ ।

नागरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. लंपट । व्यभिचारी । २. जार । ३. वह जो विवाह कराए । घटक (को०) ।

नागरुक—संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी ।

नागरेणु—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर ।

नागरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नागर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. चतुराई । बुद्धिमानी ।

नागल—संज्ञा पुं० [देश०] १. हल । २. जूए की रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं ।

नागलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पान की लता । पान । २. शिश्न । लिंग (को०) ।

नागलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल ।

नागवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागों की कुलपरंपरा । २. शक जाति की शाखा ।

विशेष—प्राचीन काल में नागवंशियों का राज्य भारतवर्ष के कई स्थानों में तथा सिंहल में भी था । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि सात नागवंशी राजा मथुरा भोग करेंगे, उसके पीछे गुप्त राजाओं का राज्य होगा । नौ नाग राजाओं के जो पुराने सिक्के मिले हैं उनपर बृहस्पति नाग, देव नाग, गणपति नाग इत्यादि नाम मिलते हैं; ये नागगण विक्रम संवत् १५० और २५० के बीच राज्य करते थे । इन नव नागों की राजधानी कहाँ थी इसका ठीक पता नहीं है पर अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि उनकी राजधानी नरवर थी । मथुरा और भरतपुर से लेकर ग्वालियर और उज्जैन तक का भूभाग नागवंशियों के अधिकार में था । इतिहासों में यह बात प्रसिद्ध है कि महाप्रतापी गुप्तवंशी राजाओं ने शक या नागवंशियों को परास्त किया था । प्रयाग के किले के भीतर जो स्तंभ है उसमें स्पष्ट लिखा है कि महाराज समुद्रगुप्त ने गणपति नाग को पराजित किया था । इस गणपति नाग के सिक्के बहुत मिलते हैं ।

महाभारत में भी कई स्थानों पर नागों का उल्लेख है । पांडवों ने नागों के हाथ से मगध राज्य छीना था । खांडव वन जलाने समय भी बहुत से नाग नष्ट हुए थे । जनमेजय के सर्प यज्ञ का भी यही अभिप्राय मालूम होता है कि पुरुवंशी आर्य राजाओं से नागवंशी राजाओं का विरोध था । इस बात का समर्थन सिकंदर के समय के प्राप्त वृत्त से होता है । जिस समय सिकंदर भारतवर्ष में आया उससे पहले पहल तक्षशिला का नागवंशी राजा ही मिला । उस राजा ने सिकंदर का कई दिनों तक तक्षशिला में आतिथ्य किया और

अपने शत्रु पौरव राजा के विरुद्ध चढ़ाई करने में सहायता पहुँचाई। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला में राजा के यहाँ भारी भारी सर्प पले देखे थे जिनकी नित्य पूजा होती थी। यह शक या नाग जाति हिमालय के उस पार की थी। अब तक तिब्बती अपनी भाषा को नागभाषा कहते हैं।

नागवंशी—वि० [सं० नागवंशिन्] नागों के वंश या कुल का।

नागवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेल। पान। तांबूल।

नागवार—वि० [फा०] १. असह्य। २. जो अच्छा न लगे। अप्रिय।

क्रि० प्र०—होना।—गुजरना।

नागवारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का हाथी। राजकुंजर। २. महावत। फीलवान। ३. मयूर। मोर। ४. गरुड़। ५. गजराज। हाथियों के झुंड का नायक। ६. किसी सभा या राजसभा का प्रधान व्यक्ति [को०]।

नागवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्र ग्रह की चाल में वह मार्ग जो स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रों में हो (बृहत्संहिता)।

विशेष—तीन तीन नक्षत्रों में एक एक वीथी मानी गई है।

२. कश्यप की एक पुत्री का नाम। (ब्रह्मवैवर्त)।

नागवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागशत—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

नागशुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० नागशुण्डी] डंगरी फल। एक प्रकार की ककड़ी।

नागशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नया घर बनवाने में नागों की स्थिति का विचार।

विशेष—फलित ज्योतिष के ग्रंथों में लिखा है कि भादों, कुआर और कातिक इन तीन महीनों में नागों का सिर पूरब की ओर; अगहन, पूस और माघ में दक्षिण की ओर, फागुन चैत और बैसाख में पश्चिम की ओर तथा जेठ, असाढ़ और सावन में उत्तर की ओर रहता है। पहले पहल नींव डालते समय यदि नागों के मस्तक पर आघात पड़ा तो घर बनवानेवाले की मृत्यु, पीठ पर पड़ा तो स्त्री पुत्र की मृत्यु होती है। पेट पर आघात पड़ने से शुभ होता है।

नागसंभव—संज्ञा पुं० [सं० नागसम्भव] १. सिंदूर। २. एक प्रकार का मोती (जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वासुकि, तक्षक आदि नागों के सिर में होता है)।

नागसंभूत—संज्ञा पुं० [सं० नागसम्भूत] दे० 'नागसंभव'।

नागसाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

नागसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागसुगन्धा] सर्पसुगंधा। एक प्रकार की रास्ना। रायसन।

नागस्तोकक—संज्ञा पुं० [सं०] वत्सनाभ विष। अमृत विष।

नागस्फोता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदंती। २. दंती।

नागहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नागहन्त्री] वंध्या कर्कोटकी। बाँझ ककोड़ा। बाँझ खखसा।

नागहनु—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

नागहाँ—क्रि० वि० [फा०] एकाएक। अचानक। अकस्मात्।

नागहानी—वि० स्त्री० [फा०] अकस्मात् आई हुई। जो एकाएक टूट पड़ी हो। जैसे, नागहानी आफत।

नागांग—संज्ञा पुं० [सं० नागाङ्ग] हस्तिनापुर [को०]।

नागांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० नागाङ्गना] १. करिणी। हथिनी (को०)। २. पुराणानुसार नागलोक या पाताल लोक निवासियों की स्त्री। ३. ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन भारत की 'नाग' जाति की अंगना। ४. हाथी का शुंड। सूँड़ (को०)।

नागांचला—संज्ञा स्त्री० [नागाञ्चला] नागयष्टि।

नागांजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नागाञ्जना] नागयष्टि।

नागांतक—संज्ञा पुं० [सं० नागान्तक] १. गरुड़। २. मयूर। ३. सिंह।

नागा[1]—संज्ञा पुं० [सं० नग्न, हिं० नंगा] उस संप्रदाय का शैव साधु जिसमें लोग नंगे रहते हैं। उ०—जंगम सिवरा जरै जरै नागा बैरागी। तरसैं दूना जरै बचै नहीं कोऊ भागी।—पलटू०, भा० १, पृ० १०८।

विशेष—नागा पहले किसी प्रकार का वस्त्र धारण नहीं करते थे, एक दम नंगे रहते थे। अब अंग्रेजी राज्य में एक कौपीन लगाकर निकलते हैं जिसे नागफनी कहते हैं। ये सिर की जटाओं को रस्सी की तरह बट कर पगड़ी के आकार में लपेटे रहते हैं और शरीर में भस्म पोतते हैं। ये अपने पास भस्म का एक गोला रखते हैं जिसकी नित्य पूजा करते हैं। इनकी उद्दंडता और वीरता प्रसिद्ध है। अंगरेजी राज्य के पहले ये बड़ा उपद्रव भी करते थे। वैष्णव वैरागियों से इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करती थी जिसमें बहुत से वैरागी मारे जाते थे। नागों के भी कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरंजनी और निर्वाणी दो मुख्य हैं।

२. नंगा। नग्न। आच्छादनरहित। उ०—भूखा पोषणहार यूँ ज्यूँ जग कमणा हत। नागा ढाकणहार हम, जिम तरवरां वसंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५६।

नागा[2]—संज्ञा पुं० [सं० नाग] १. आसाम के पूर्व की पहाड़ियों में बसनेवाली एक जंगली जाति। जिनका प्रदेश 'नागा खंड' कहा जाता है। २. आसाम में वह पहाड़ या स्थान जिसके आसपास नागा जाति की बस्ती है।

नागा[3]—संज्ञा पुं० [तु० नागह] किसी नित्य या निरंतर होनेवाली अथवा नियत समय पर बराबर होनेवाली बात का किसी दिन या किसी नियत अवसर पर न होना। चलती हुई कार्य-परंपरा का भंग। अंतर। बीच। जैसे,—(क) रोज काम पर जाना, किसी दिन नागा न करना। (ख) तुम्हारे कई नागे हो चुके, तनख्वाह कटेगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नागा देना = बीच डालना। अंतर डालना।—जैसे, रोज न आओ, एक दिन नागा देकर आया करो।

नागाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

नागानन—संज्ञा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

नागाभिभू—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

नागाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का चमड़ा (को०) ।

नागाराति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंध्या कर्कोटकी । बाँझ ककोड़ा । २. गरुड़ (को०) । ३. मयूर (को०) । ४. सिंह (को०) ।

नागारि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागाराति' ।

नागार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध महात्मा या बोधिसत्व जो माध्यमिक शाखा के प्रवर्तक थे ।

विशेष—ऐसा लिखा है कि ये विदर्भ देश के ब्राह्मण थे । किसी किसी के मत से ये ईसा से सौ वर्ष पूर्व और किसी किसी के मत से ईसा से १५० २०० वर्ष पीछे हुए थे । पर तिब्बत में लामा के पुस्तकालय में एक प्राचीन ग्रंथ मिला है जिसके अनुसार पहला मत ही ठीक सिद्ध होता है । बौद्ध धर्म को दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुन ही ने दिया, अत: इनके द्वारा सभ्य और पठित समाज में बौद्ध धर्म का जितना प्रचार हुआ उतना किसी के द्वारा नहीं । इनके दर्शन ग्रंथ का नाम माध्यमिक सूत्र है । इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म संबंधी इन्होंने और कई ग्रंथ लिखे । इन्होंने सात वर्ष तक सारे भारतवर्ष में उपदेश और शास्त्रार्थ करके बहुत से लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया । अंत में ये भोजभद्र नामक प्रधान राजा को दस हजार ब्राह्मणों के सहित बौद्धधर्म में लाए । इनका दर्शन दो भागों में विभक्त है—एक संवृति सत्य दूसरा परमार्थ सत्य । संवृति सत्य में इन्होंने माया का मूल तथ्य निरूपित किया है और परमार्थ सत्य में यह प्रतिपादित किया है कि चिंतन और समाधि के द्वारा महात्मा को किस प्रकार जान सकते हैं । महात्मा को जान लेने पर माया दूर हो जाती है । माध्यमिक दर्शन का सिद्धांत यही है कि साधारण नीतिधर्म के पालन से ही प्राणी पुनर्जन्म से रहित नहीं हो सकता । निर्वाणप्राप्ति के लिये दानशील, शांति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणों के द्वारा आत्मा को पूर्णत्व को पहुँचाना चाहिए । ये कहते थे कि राम, शिव, काली, तारा, इत्यादि देवी देवताओं की उपासना सांसारिक उन्नति के लिये करनी चाहिए । नागार्जुन ने बौद्ध धर्म को जो रूप दिया वह 'महायान' कहलाया और उसका प्रचार बहुत शीघ्र हुआ । नेपाल, तिब्बत, चीन, तातार, जापान इत्यादि देशों में इसी शाखा के अनुयायी हैं । तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्रवर्तक कुछ लोग नागार्जुन ही को मानते हैं । काश्मीर में बौद्धों का जो शोधन हुआ था वह इन्होंने किया था ।

ये चिकित्सक भी अच्छे थे । चक्रपाणि पंडित (विक्रम संवत् १००० के लगभग) ने अपने चिकित्सासंग्रह में नागार्जुन कृत नागार्जुनांजन और नागार्जुनयोग नामक औषधों का उल्लेख किया है । चक्रपाणि ने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगर में उन्हें ये दोनों नुसखे पत्थर पर खुदे मिले थे । ऐसा प्रतीत होता है कि ये पत्थरों पर इस प्रकार के नुसखे खुदवाकर उन्हें स्थान स्थान पर गड़वा देते थे । कक्षपुट, कौतूहलचिंतामणि, योगरत्नमाला, योगरत्नावली और नागार्जुनीय (चिकित्सा) ये और ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं । रस चिकित्सा पद्धति को इन्होंने प्रचारित किया ।

नागार्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी । दुधिया घास ।

नागालाबु—संज्ञा पुं० [सं०] गोल घीया । गोल कद्दू । गोल लौकी ।

नागाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरुड़ । २. मयूर । ३. सिंह ।

नागाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।

नागाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर ।

नागाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मणा कंद ।

नागिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग] १. नाग की स्त्री । साँप की मादा ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि नागिन में बहुत विष होता है, इससे कुटिल और दुष्ट स्त्री के लिये इस शब्द का प्रयोग प्राय: करते हैं ।

२. रोयों की लंबी भौंरी जो पीठ या गरदन पर होती है ।

विशेष—स्त्रियों में ऐसी भौंरी का होना कुलक्षण समझा जाता है ।

३. बैल, घोड़े आदि चौपायों की पीठ पर रोयों की एक विशेष प्रकार की भौंरी जो अशुभ मानी जाती है ।

नागिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाग] दे० 'नागिन' ।

नागी—संज्ञा पुं० [सं० नागिन्] (नागवाले) शिव । महादेव ।

नागीगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] २४ वर्णों का एक वैदिक छंद जिसके प्रथम दो चरणों में नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरण में केवल छह वर्ण ।

नागुला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] १. नेवला । २. नाकुली नामक जड़ी ।

नागेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नागेन्द्र] १. बड़ा सर्प । २. शेष, वासुकि आदि नाग । ३. बड़ा हाथी । ४. ऐरावत ।

नागेश—संज्ञा [सं०] १. शेषनाग । २. प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण नागेश भट्ट । ३. पतंजलि (को०) ।

नागेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शेषनाग । २. ऐरावत । ३. नागकेसर ।

नागेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध रसौषध ।

विशेष—पारा, गंधक, सीसा, राँगा, मैनसिल, नौसादर, जवाखार, सज्जी, सोहागा, लोहा, ताँबा और अभ्रक इन सबको बराबर बराबर लेकर थूहर के दूध में मले । फिर चीते, अड़ूसे और दंती के क्वाथ में मलकर उरद की दाल के बराबर गोली बना डाले ।

नागेसर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नागकेसर' ।

नागेसरी—वि० [हिं० नागेसर] नागकेसर के रंग का पीला ।

नागोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे का वह तवा या बकतर जिसे अस्त्रों के आघात से बचाने के लिये छाती पर पहनते थे । सीनाबंद । २. एक प्रकार का गर्भरोग । गर्भोपद्रव विशेष (को०) ।

नागोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नागोद' ।

नागोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना । (को०) ।

नागौर¹—संज्ञा पुं० [हिं० नव + नगर] मारवाड़ के अंतर्गत एक नगर जो गायों और बैलों के लिये भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है ।

विशेष—ऐसी जनश्रुति है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज ने कोई ऐसा स्थान ढूंढ़ने की आज्ञा दी जो गोपोषण के लिये सबसे अनुकूल हो । लोग चारों ओर छूटे । उनमें से एक ने जंगल में देखा कि तुरंत की ब्याई हुई गाय अपने बछड़े की रक्षा एक बाघ से कर रही है । बाघ बहुत जोर से मारता है पर गाय उसे सींगों से मार मारकर हटा देती है । महाराज के यहाँ जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने उसी जंगल को पसंद किया और वहाँ नागौर या नवनगर नाम का नगर और गढ़ बनवाया ।

नागौर²—वि० [हिं० नागौर] [वि० स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा आदि) ।

नागौरा—वि० [हिं० नागौर] [स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा इत्यादि) ।

नागौरी¹ वि० [हिं० नागौर] नागौर का । अच्छी जाति का (बैल, बछड़ा आदि) ।

नागौरी²—वि० स्त्री० नागौर की । अच्छी जाति की (गाय) ।

नाघना—क्रि० स० [सं० लङ्घन] पार करना । डाँकना । उलाँघना । उ०—देहली नाघ कर, दहलीज के उधर, घनोची पर उधर, घड़े रक्खे भरन ।- आराधना, पृ० ७८ ।

नाच—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य, प्रा० णच्च, नच्च] १. वह उछल कूद जो चित्त की उमंग से हो । अंगों की वह गति जो हृदयोल्लास के कारण मनमानी अथवा संगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार और हावभाव युक्त हो । उ०—करि सिंगार मनमोहनि पातुर नाचहिं पाँच । बादशाह गढ़ छेंका, राजा भूला नाच ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—नाच की प्रथा सभ्य असभ्य सब जातियों में आदि से ही चली आ रही है, क्योंकि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है । संगीतदामोदर में नृत्य का यह लक्षण है—देश की रुचि के अनुसार ताल मान और रस का आश्रित जो अंगविक्षेप हो उसे नृत्य कहते हैं । नृत्य दो प्रकार का होता है—तांडव और लास्य । पुरुष के नाच को तांडव और स्त्री के नाच को लास्य कहते हैं । तांडव के दो भेद हैं—पेलवि और बहुरूप । अभिनयशून्य अंगविक्षेप को पेलवि और अनेक प्रकार के हावभाव, वेशभूषा से युक्त अंग- गति को बहुरूप कहते हैं । लास्य के भी दो भेद हैं—छुरित और यौवत । नायक नायिका परस्पर आलिंगन, चुंबन आदि पूर्वक जो नृत्य करते हैं उसे छुरित कहते हैं । एक स्त्री लीला और हावभाव के साथ जो नाच नाचती है उसे यौवत कहते हैं । इनके अतिरिक्त अंग प्रत्यंग की चेष्टा के अनुसार ग्रंथों में अनेक भेद किए गए हैं । पर प्राचीन काल में नृत्य विद्या राजकुमार भी सीखते थे । अर्जुन इस विद्या में निपुण थे । भारतवर्ष में नाचने का पेशा करनेवाले पुरुषों को नट कहते थे । स्मृतियों में नट निकृष्ट जातियों में रखे गए हैं । नाचना अनेक प्रकार के स्वाँगों के साथ भी होता है, जैसे, नाटक, रासलीला आदि में । विशेष दे० 'नाटक' ।

क्रि० प्र०—करना, नाचना, होना ।

यौ०—नाचकूद । नाच तमाशा । नाच रंग ।

मुहा०—नाच काछना = नाचने के लिये तैयार होना । उ०—मैं अपनो मन हरि सों जोर्‍यो । नाच कछ्यो घूंघट छोरयो तब लोकलाज सब फटकि पछोर्‍यो ।—सूर (शब्द०) । नाच दिखाना = (१) किसी के सामने नाचना । (२) उछलना कूदना । हाथ पैर हिलाना । (३) विलक्षण आचरण करना । जैसे, रास्ते में उसने बड़े बड़े नाच दिखाए । नाच नचाना = (१) जैसा चाहना वैसा काम कराना । उ०—(क) कबिरा बैरी सबल है एक जीव रिपु पाँच । अपने अपने स्वाद को बहुत नचावैं नाच ।—कबीर (शब्द०) । (ख) जो कछु कुबजा के मन भावै सोई नाच नचावै । सूर (शब्द०) । (२) दिक करना । हैरान करना । तंग करना । उ०—जहँ कहुँ फिरत निशाचर पावहिं । धरि सकल बहु नाच नचावहिं । तुलसी (शब्द०) ।

२. नाट्य । खेल । क्रीड़ा । उ०—टूटे नौ मन मोती फूटे दस मन काँच । लिय समेटि सब अभरन होइगा दुख कर नाच ।—जायसी (शब्द०) । ३ कृत्य । धंधा । कर्म । प्रयत्न । उ०—सोच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाचकूद—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाच + कूद] १. नाच । तमाशा । उ०—कतहुँ कथा कहै कछु कोई । कतहुँ नाच कूद भल होई ।—जायसी (शब्द०) । २. आयोजन । प्रयत्न । ३. गुण, योग्यता बड़ाई आदि प्रकट करने का उद्योग । डींग । ४. क्रोध से उछलना, पटकना ।

नाचघर—संज्ञा पुं० [हिं० नाच + घर] वह स्थान जहाँ नाचना गाना आदि हो । नृत्यशाला ।

नाचना—क्रि० अ० [हिं० नाच] १. चित्त की उमंग से उछलना, कूदना तथा इसी प्रकार की और चेष्टा करना । हृदय के उल्लास से अंगों को गति देना । हर्ष के मारे स्थिर न रहना । जैसे, इतना सुनते ही वह आनंद से नाच उठा । उ०—(क) आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़ । आजु नाचि जिउ दीजै आजु आगि हमैं जूड़ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे । अब कीन्हें बिरंचि हम साँचे ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिद पेखि ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

२. संगीत के मेल से ताल स्वर के अनुसार हावभाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकार की और चेष्टाएँ करना । थिरकना । नृत्य करना । उ०—(क) करि सिंगार मन मोहनि पातुर नाचहिं पाँच । बादशाह गढ़ छेंका राजा भूला नाच ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कबहूँ करताल

बजाइ के नाचत मानु मबै मोद भरे ।—तुलसी (शब्द०) । ३. भ्रमण करना । चक्कर मारना । घूमना । जैसे, लट्टू का नाचना ।

मुहा०—सिर पर नाचना =(१) घेरना । ग्रसना । आक्रांत करना । प्रभाव डालना । जैसे, सिर पर पाप, अदृष्ट, दुर्भाग्य आदि नाचना । (२) पास आना । जैसे, सिर पर काल या मृत्यु का नाचना । उ०—जेहि घर काल मजारी नाचा । पंखिहि नावँ जीव नहिं बाँचा ।—जायसी (शब्द०) । सीस पर नाचना =दे० 'सिर पर नाचना' । उ०—लखी नरेस बात सब साँची । तिय मिस मीचु सीस पर नाची ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस मुहाविरे का प्रयोग काल, मृत्यु, अदृष्ट, दुर्भाग्य पाप, ऐसे कुछ शब्दों के साथ ही होता है ।

आँख के सामने नाचना =अंतःकरण में प्रत्यक्ष के समान प्रतीत होना । ध्यान में ज्यों का त्यों होना । जैसे,—(क) उसमें ऐसा सुंदर वर्णन है कि दृश्य आँख के सामने नाचने लगता है । (ख) उसकी सूरत आँख के सामने नाच रही है ।

४. इधर से उधर फिरना । दौड़ना धूपना । उद्योग या प्रयत्न में घूमना । स्थिर न रहना । जैसे, एक जगह बैठते क्यों नहीं, इधर उधर नाचते क्या हो ? उ०—जप माला छापा तिलक सरै न एको काम । मन काँचे नाचे वृथा साँचे राँचे राम ।—बिहारी (शब्द०) । ५. थर्राना । काँपना । उ०—बाजा बान जाँघ जस नाचा । जिउ गा स्वर्ग परा भुँह साँचा ।—जायसी (शब्द०) । ६. क्रोध में आकर उछलना । कूदना । क्रोध से उद्विग्न और चंचल होना । बिगड़ना । जैसे,—तुम सबको कहते हो, पर तुम्हें जरा भी कोई कुछ कहता है तो नाच उठते हो ।

संयो० क्रि०—उठना ।

नाचमहल—संज्ञा पुं० [हिं० नाच + महल] उ०—नाचमहल महँ बैठो भीमा । दीर कुमार क्रोध करि जी मा ।—सबल (शब्द०) ।

नाचरंग—संज्ञा पुं० [हिं० नाच + रंग] आमोद प्रमोद । जलसा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—होना ।

नाचाक—वि० [फ़ा० ना + तु० चाक] जो स्वस्थ न हो । अस्वस्थ । बीमार (को०) ।

नाचाकी—संज्ञा स्त्री० [नाचाक फ़ा० ना + तु० चाक + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. बिगाड़ । अनबन । लड़ाई । वैमनस्य । मनमुटाव । २. बीमारी । रोग (को०) ।

नाचार¹—वि० [फ़ा०] १. विवश । लाचार । असहाय । २. तुच्छ । व्यर्थ । उ०—इच्छायुत वैराग को करे जो चित्त विचार । सदाचार को वेद मत यह विचार नाचार ।—केशव (शब्द०) ।

नाचार²—क्रि० वि० विवश होकर । हारकर । मजबूरन । उ०—सुलतान रुकनुद्दीन फीरोजशाह इतनी शराब पीता था कि आखिर नाचार उसके अमीरों ने उसे कैद कर लिया ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

नाचारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'लाचारी' ।

नाचिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ नचिकेता नामक ऋषि ।

नाचीज—वि० [फ़ा० नाचीज] १. तुच्छ । पोच । उ०—अब उनको नाचीज फौजी गोरे अपने बूट से कुचलने लगे ।—सरस्वती (शब्द०) । २ निकम्मा ।

नाचीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश जो दक्षिण में है । २. इस देश का राजा (महाभारत) ।

नाज¹—संज्ञा पुं० [हिं० अनाज] १. अनाज । अन्न । उ०—खवन को योग जहाँ नाज ही में देखियत माफ करब हो मोहु होत करनाणु है ।—गुमान (शब्द०) । २. खाद्य द्रव्य । भोजन सामग्री । खाना । उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की ।—तुलसी (शब्द०) । विशेष—दे० 'अनाज' ।

नाज²—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाज] १. ठसक । नखरा । चोचला । हाव भाव । उ०—अदा से, नाज से चंचल अजब आलम दिखाती है । व सुमिरन मोतियों की उँगलियों में जब फिराती है ।—नजीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नाज अदा, नाज नखरा =(१) हावभाव । (२) चटक मटक । बनाव सिंगार ।

मुहा०—नाज उठाना =चोचला सहना । नाज से पालना =बड़े लाड़ प्यार से पालना ।

२. घमंड । अभिमान । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाजनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाजनी] १. सुंदरी स्त्री । २. नाजुक बदनवाली औरत । कोमलांगी (को०) ।

नाजबरदार—वि० [फ़ा० नाजबरदार] नाज बरदाश्त करनेवाला । आशिक ।

नाजबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाजबरदारी] नाज बरदाश्त करना । आशिकी ।

नाजबू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाजबू] मरुवे का पौधा ।

नाजाँ—वि० [फ़ा० नाजाँ] घमंड करनेवाला । गर्वित ।

क्रि० प्र०—होना ।

नाजायज—वि० [फ़ा० ना + अ० जायज] जो जायज न हो । जो नियमविरुद्ध हो । अनुचित ।

नाजिम¹—वि० [अ० नाजिम] प्रबंधकर्ता ।

नाजिम²—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी राज्यकाल में वह प्रधान कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश या राज्य के समस्त प्रबंध का भार रहता था । उ०—हुमायूँ तख्त पर बैठा । उसका भाई कामरों पहले से काबुल का नाजिम था ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

विशेष—यह राजपुरुष उस देश का कर्ता धर्ता होता था और उसकी नियुक्ति सम्राट् की ओर से होती थी ।

नाजिर¹—वि० [अ० नाजिर] १. देखनेवाला । दर्शक ।

नाजिर²—संज्ञा पुं० १. निरीक्षक । देखभाल करनेवाला । २. लेखकों का अफसर । प्रधान लेखक । ३. ख्वाजा । महलसरा । ४. वह दलाल जो वेश्याओं को गाने बजाने के लिये ठीक करता और लाता हो ।

नाजिरात—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाजिर+आत (प्रत्य०)] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेश्या आदि से मिलती है।

नाजी—संज्ञा पुं० [जर्मन नात्सी] प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच का एक प्रबल जर्मन राजनीतिक दल। नात्सी।

विशेष—जर्मनी के अधिनायक हिटलर के नेतृत्व में यह दल जर्मनी का प्रमुख दल हो गया था।

नाजी दर्शन—संज्ञा पुं० [अं० नाजी+हिं० दर्शन] नाजी जर्मनी का एक राजनीतिक सिद्धांत। वि० दे० 'नाजीवाद'। उ०—मानव मन की दुर्बलता से लाभ उठानेवाले नाजी दर्शन ने जनता पर बरसों डोरे डाले। —हंस०, पृ० ३९।

नाजीवाद—संज्ञा पुं० [अं० नाजी+वाद] जर्मनी के नाजियों का राजनीतिक सिद्धांत।

विशेष—नाजीवाद फासिज्म के समान जनतंत्र, व्यक्तिस्वतंत्रता, अंतरराष्ट्रीय शांति आदि का विरोधी तथा अधिनायकतंत्र का प्रबल पोषक था। हिटलर के काल में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा।

नाजुक—वि० [फ़ा० नाज़ुक] १. कोमल। सुकुमार। उ०—गड़े नुकीले लाल के नैन रहैं दिन रैनि। तब नाजुक ठोढ़ीन में गाड़ परै मृदु बैन।—शृं० सत० (शब्द०)।

यौ०—नाजुक बदन। नाजुक दिमाग।

२. पतला। महीन। बारीक। ३. सूक्ष्म। गूढ़। जैसे, नाजुक खयाल। ४. थोड़े ही आघात से नष्ट हो जानेवाला। जरा से झटके या धक्के से टूट फूट जानेवाला। थोड़ी असावधानी से भी जिसके टूटने का डर हो। जैसे,—शीशे की चीजें नाजुक होती हैं; सँभालकर लाना।

यौ०—नाजुक मिजाज = जो थोड़ा सा कष्ट भी न सह सके।

५. जिसमें हानि या अनिष्ट की आशंका हो। जोखों का। जैसे, नाजुक वक्त, नाजुक हालत, नाजुक मामला।

नाजुकखयाल—वि० [फ़ा० नाज़ुक+खयाल] कोमल भावनाओंवाला। भदाशय। उच्च विचारोंवाला।

नाजुकखयाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाज़ुकखयाली] काव्य में गूढ़ता या सूक्ष्मता का भाव। उ०—कला पर एक प्रकार की रीतिकालीन छाप और उर्दू कविता की नाजुकखयाली का का प्रभाव है।—स० शास्त्र, पृ० १०६।

नाजुकदिमाग—वि० [फ़ा० नाज़ुक+अ० दिमाग़] १. जो रुचि के प्रतिकूल (जैसे दुर्गंध, कर्कश स्वर आदि) थोड़ी सी बात भी न सहन कर सके। जो जरा जरा सी बात नाक भौं सिकोड़े। २ तुनक मिजाज। चिड़चिड़ा।

नाजुकबदन—वि० [फ़ा० नाज़ुकबदन] १. कोमल और सुकुमार शरीर का। २. डोरिए की तरह का एक महीन कपड़ा। ३. एक प्रकार गुललाला।

नाजुकमिजाज—वि० [फ़ा० नाज़ुक मिज़ाज] दे० 'नाजुकदिमाग'।

नाजो—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाज़] १. नाज करनेवाली। चटक मटकवाली स्त्री। ठसकवाली स्त्री। २. लाड़ली प्यारी स्त्री।

नाट[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाट्य] १. नृत्य। नाच। २. नकल। स्वाँग। उ०—पंथी इतनी कहियो बात। तुम बिनु यहाँ कुँवर वर मेरे होत जिते उत्पात।···गोपी ग्वाल सकल लघु दीरघ पीत बरन कृस गात। परम अनाथ देखियत तुम बिनु केहि अवलंबिए प्रात। कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौं अब कैसे जिय मानत। यह व्योहार आजु लौं है ब्रज कपट नाट छल ठानत।—सूर (शब्द०)। ३. एक देश का नाम।

विशेष—यह देश कर्नाटक के पास था।

४. नाट देशवासी पुरुष। ५. एक राग का नाम।

विशेष—इसे कोई मेघ राग का और कोई दीपक राग का पुत्र मानते हैं। इस राग में वीर रस गाया जाता है।

नाट(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] आण की गाँसी। नाटसाल। उ०—तिय तन चितन जु पंच सर, लगे पंच ही आट। चुंबक साँवरे पी बिनु, क्यों निकसहि ते नाट।—नंद० ग्रं०, पृ० १३५।

नाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटय या अभिनय करनेवाला। नट। २. रंगशाला में नटों की आकृति, हाव भाव, वेश और वचन आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन। वह दृश्य जिसमें स्वाँग के द्वारा चरित्र दिखाए जाएँ। अभिनय। ३. वह ग्रंथ या काव्य जिसमे स्वाँग के द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो। दृश्यकाव्य. अभिनयग्रंथ।

विशेष—नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गए हैं श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। पर मुख्य रूप से इनका ग्रहण होने के कारण दृश्य काव्य मात्र को नाटक कहने लगे हैं। भरतमुनि का नाटयशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद है—काव्य और अभिनेय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेद कहे गए हैं—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित नाटयरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण। साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिए हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं—रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंकवीथी और प्रहसन। उपरूपक के अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणिका। उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य मात्र के अर्थ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) को लेकर लिखना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख, दुःख,

तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान या अंगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रूपक में में प्रधान हों वह नाटक नहीं कहला सकता। संधिस्थल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है। अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण नांदी) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, आकर सभा की प्रशंसा करता है फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें खेले जानेवाले नाटक का प्रस्ताव, कवि-वंश-वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'अधिकारी' कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'आधिकारिक वस्तु' कहते हैं; जैसे, रामलीला में राम का चरित्र। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं; जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र।

'सामने लाने' अर्थात् रूप समुख उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अतः अवस्थानुरूप अनुकरण या स्वाँग का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अंगों की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो किया जाता है उसे वाचिक, रूप बनाकर जो किया जाता है उसे आहार्य तथा भावों के उद्रेक से कंप स्वेद आदि द्वारा जो होता है उसे सात्विक कहते हैं।

नाटक में बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों के द्वारा प्रयोजन सिद्धि होती है। जो बात मुँह से कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धि का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं, जैसे वेणीसंहार नाटक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साहवाक्य द्रौपदी के केशमोचन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य से उसका संबंध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनको दूसरे वाक्य के साथ असंगति न हो 'बिंदु' है। बीच में किसी व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं जैसे उत्तररामचरित में सुग्रीव का और अभिज्ञान-शाकुंतल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देश व्यापी चरित्रवर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरंभ की हुई क्रिया को फलसिद्धि के लिये जो कुछ किया जाय उसे कार्य कहते हैं; जैसे, रामलीला में रावण वध। किसी एक विषयकी चर्चा हो रही हो, इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय के मेल में मालूम हो वहाँ पताकास्थान होता है, जैसे, रामचरित् में राम सीता से कह रहे हैं—'हे प्रिये ! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह, इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है : देव! दुर्मुख उपस्थित। यहाँ 'उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीत होता है, और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशलों की उद्भावना की गई है और अनेक प्रकार के विभेद दिखाए गए हैं।

आजकल देशभाषाओं में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावेश अनावश्यक समझा जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं—'संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में उनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना व्यर्थ है; क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कृशाश्व' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। शिलाली का नाम शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में मिलता है। विद्वानों ने ज्योतिष की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को ४००० वर्ष से ऊपर का बतलाया है। अतः कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह राय कि ग्रीस या यूनान में ही सबसे पहले नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक नहीं है। हरिवंश में लिखा है कि जब प्रद्युम्न, सांब आदि यादव राजकुमार वज्रनाभ के पुर में गए थे तब वहाँ उन्होंने रामजन्म और रंभाभिसार नाटक खेले थे। पहले उन्होंने नेपथ्य बाँधा था जिसके भीतर से स्त्रियों ने मधुर स्वर से गान किया था। शूर नामक यादव रावण बना था, मनोवती नाम की स्त्री रंभा बनी थी, प्रद्युम्न नलकूबर और सांब विदूषक बने थे। विल्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्वयं स्वीकार किया है कि हिंदुओं ने अपने यहाँ नाटक का प्रादुर्भाव अपने आप किया था। प्राचीन हिंदू राजा बड़ी बड़ी रंगशालाएँ बनवाते थे। मध्यप्रदेश में सरगुजा एक पहाड़ी स्थान है, वहाँ एक गुफा के भीतर इस प्रकार की एक रंगशाला के चिह्न पाए गए हैं।

यह ठीक है कि यूनानियों के आने के पूर्व के संस्कृत नाटक आजकल नहीं मिलते हैं, पर इस बात से इनका अभाव, इतने प्रमाणों के रहते, नहीं माना जा सकता। संभव है, कलासंपन्न यूनानी जाति से जब हिंदू जाति का मिलन हुआ हो तब जिस प्रकार कुछ और और बातें एक ने दूसरे की ग्रहण कीं इसी प्रकार नाटक के संबंध में कुछ बातें हिंदुओं ने भी

अपने यहाँ ली हों। बाहृयपटी का 'जवनिका' (कभी कभी 'यवनिका') नाम देख कुछ लोग यवन संसर्ग सूचित करते हैं। अंकों में जो 'दृश्य' संस्कृत नाटकों में आए हैं उनसे अनुमान होता है कि इन पटों पर चित्र बने रहते थे। अस्तु अधिक से अधिक इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में जो अभिनय हुआ करते थे। उनमें चित्रपट काम में नहीं लाए जाते थे। सिकंदर के आने के पीछे उनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला बिना परदों के होती ही हैं।

नाटकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर या स्थान जहाँ नाटक होता है।

नाटका देवदारु—संज्ञा पुं० [हिं० नाटक + देवदारु] एक छोटा पेड़ या झाड़ जो भारत के दक्षिण और लंका में मिलता है।

विशेष—इसकी लकड़ी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो नावों में लगाया जाता है। इस पेड़ के फल और पत्तियों में पाचन, स्वेदन और भेदन शक्तियाँ होती हैं। भारतवर्ष में इसकी पत्तियाँ और फल दुर्भिक्ष में खाए जाते हैं। नमक और मिर्च के साथ लोग पत्तियों का शाक बनाकर भी खाते हैं।

नाटकावतार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नाटक के अभिनय के बीच दूसरे नाटक का अभिनय। जैसा 'उत्तररामचरित' में एक दूसरे नाटक का अभिनय दिखाया गया है।

विशेष—शेक्सपियर के 'हैमलेट' में भी इसी प्रकार अभिनय होना दिखाया गया है।

नाटकिया—संज्ञा पुं० [सं० नाटक + हिं० ईया (प्रत्य०)] १. नाटक में अभिनय करनेवाला। स्वाँग करनेवाला। बहुरूपिया।

नाटकी—संज्ञा पुं० [हिं० नाटक] नाटक करनेवाला। नाटक करके जीविका करनेवाला। उ०—कहूँ नृत्यकारी नचि गावैं। कहूँ नाटकी स्वाँग दिखावैं।—सबल (शब्द०)।

नाटकीय—वि० [सं०] १ नाटक संबंधी। नाटक के ढंग का। २. अभिनयपूर्ण। अभिनयात्मक (को०)।

नाटना[१]—क्रि० अ० [सं० नाट्य (= बहाना)] किसी ऐसी बात को अस्वीकार कर जाना जिसके लिये वचन दिया हो। प्रतिज्ञा आदि पर स्थिर न रहना। इनकार करना। निकल जाना।

नाटना[२]—क्रि० स० [हिं० नटना] अस्वीकार करना। इनकार करना। उ०— जो कोउ भरी धरोहरि नाटै। प्रभु पच्छिन के पर जो काटै।—विश्राम (शब्द०)।

नाटवसंत—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग।

नाटा[१]—वि० [सं० नत (= नीचा)] [वि० स्त्री० नाटी] जिसका डील ऊँचा न हो। छोटे डील का। छोटे कद का। (प्राणियों के लिये) जैसे, नाटा आदमी, नाटा बैल। उ० - नेपाल आदि उत्तराखंड के देशों में लोग नाटे होते हैं।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

नाटा—संज्ञा पुं० [स्त्री० नाटी] छोटे डील का बैल या गाय। उ०— उ०—सिगरोइ दूध पियो मेरे मोहन बलिहि देहु नहिं बाँटी। सूरदास नंद लेहु दोहनी दुहो लाल की नाटी।—सूर (शब्द०)।

नाटा करंज—संज्ञा पुं० [हिं० नाटा + करंज] एक प्रकार का करंज।

नाटार—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री का पुत्र (को०)।

नाटाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।

नाटिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नाट] नर्तक। नाचनेवाला। उ०— कहै कबीर नट नाटिक थाके, मँदला कौन बजावै। गए पपनियाँ उझरी बाजी को काहू के आवै।—कबीर ग्रं० पु० ११७।

नाटिका[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का दृश्य काव्य।

विशेष—यह एक प्रकार का नाटक ही है जिसमें चार अंक होते हैं। पर इसकी कथा कल्पित होती है। नायिका राजकुलोद्भवा और नवानुरागिणी और नायक धीर ललित होता है। इसमें स्त्री पात्र अधिक होते हैं।

२. एक रागिनी।

विशेष—यह नटनारायण, हम्मीर और अहीरी राग के योग से बनती है और संपूर्ण जाति की मानी जाती है। नारद के मत से यह कर्णाटकी और हनुमत के मत से दीपक की पत्नी है। इसका स्वरग्राम यह है—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा।

नाटिका[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडी] दे० 'नाड़ी'। उ०—नाहीं पाँच तत्तु तुम साधा। नाहीं नवो नाटिका राधा।—सं० दरिया, पृ० ४६।

नाटित[१]—वि० [सं०] जिसका अभिनय किया गया हो। अभिनीत।

नाटित[२]—संज्ञा पुं० अभिनय।

नाटितक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुकृति। २. स्वाँग। अभिनय (को०)।

नाटिन—संज्ञा स्त्री० [सं० नटिनी] दे० 'नटिनी'। उ०—नई नागरी नारि नाटिन नचावै।—घरनी०, पृ० ६।

नाटेय—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री या नर्तकी का पुत्र। (को०)।

नाटेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाटेय' (को०)।

नाटेश्वर—संज्ञा पुं० [हिं० नाट + ईश्वर] नटराज। शिव। नाट्याचार्य। उ०—जैसे कोऊ अर्धनारी नाटेश्वर रूप धरे, एक बीज ही ते दोइ डालि नाम पाए हैं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६५१।

नाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नटों का काम। नृत्य गीत और वाद्य।

पर्या०- तौर्यत्रिक।

२. स्वाँग के द्वारा चरित्रप्रदर्शन। अभिनय।

यौ०—नाट्यमंदिर। नाट्यकार। नाट्यशाला। नाट्यरासक। नाट्यशास्त्र।

३. नकल। स्वाँग। चेष्टा के द्वारा प्रदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

४. वह नक्षत्र जिनमें नाट्य का आरंभ किया जाता है।

विशेष—अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा,

शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रों में नाटक प्रारंभ करना चाहिए।

५. अभिनेता का परिधान या वेशभूषा (को०)। ६. अभिनेता (को०)।

नाट्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक करनेवाला। नट।

नाट्यधर—वि० [सं०] अभिनेता का वेश धारण करनेवाला (को०)।

नाट्यधर्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिनय के नियम या विधान (को०)।

नाट्यधर्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाट्यधर्मिका' (को०)।

नाट्यप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिन्हें नाचना प्रिय है)।

नाट्यमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० नाट्यमन्दिर] नाट्यशाला।

नाट्यरासक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उपरूपक। दृश्य काव्य।

विशेष—इसमें केवल एक ही अंक होना है। नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, उपनायक पीठमर्द होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के गान और नृत्य होते हैं।

नाट्यवेद—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनयसंबंधी शास्त्र। नाट्यशास्त्र। (को०)।

नाट्यवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रंगमंच। २. दृश्य (को०)।

नाट्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँपर अभिनय किया जाय। नाटकघर।

नाट्यशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य, गीत और अभिनय की विद्या। २. एक प्राचीन ग्रंथ जिसकी रचना भरत मुनि ने की थी।

विशेष—इसका उपदेश आदि में शिव जी ने ब्रह्मा जी को किया था। ब्रह्मा जी ने इंद्र की प्रार्थना पर अनिरुद्धावतार ग्रहण करके नाट्यवेद नामक उपवेद की रचना की। इसी को गंधर्ववेद भी कहते हैं। इसमें नृत्य-वाद्य-गीतादि की शिक्षा थी। ब्रह्मा जी से भरत मुनि ने यह उपवेद पाकर संसार में इसका प्रचार किया।

नाट्यांग—संज्ञा पुं० [सं० नाट्याङ्ग] नाट्य के दस अंग जिसके अंतर्गत गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढक, सैंधव, द्विगूढक, उत्तमोत्तमक, उक्तप्रयुक्त का समावेश है (को०)।

नाट्यागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाट्यशाला' (को०)।

नाट्याचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यकला विशारद। अभिनय का निर्देशक। अभिनय की शिक्षा देनेवाला।

नाट्यालंकार—संज्ञा पुं० [सं० नाट्यालङ्कार] वह विशेष अलंकार जिसके आने से नाटक का सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है।

विशेष—साहित्यदर्पण में ऐसे अलंकारों की संख्या तैंतीस मानी गई है—आशीर्वाद, आक्रंद, कपट, अक्षमा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रासन, स्पृहा, क्षोभ, पश्चात्ताप, उपपत्ति, आशंसा, अध्यवसाय, विसर्प, उल्लेख, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थविशेषण, प्रोत्साहन, साहाय्य, अभिमान, अनुवर्तन, उत्कीर्तन, याचा, परिहार, निवेदन, प्रवर्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष और शिक्षा (उपदेशन)।

नाट्यालय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाट्यशाला'। उ०—राजकुमारियों के महलों के नाट्यालयों में···।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८।

नाट्यालाबु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति की लौकी (को०)।

नाट्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे विशेष विशेष संबोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियों के लिये नाटकों में आते हैं। जैसे,—ब्राह्मण के लिये आर्य, क्षत्रिय के लिये महाराज, पति के लिये आर्यपुत्र, राजा के साले के लिये राष्ट्रीय, राजा के लिये देव, वेश्या के लिये अज्जुका, कुमार के लिये युवराज, विद्वान् के लिये भाव। २. नाट्यसबंधी उक्ति। जैसे,—स्वगत, प्रकाश, अपवारित, जनांतिक (को०)।

नाठ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] १. नाश। ध्वंस। २. अभाव। अनस्तित्व। ३. वह जायदाद जिसका कोई वारिस न हो।

मुहा०—नाठ पर बैठना = किसी लावारिस माल का अधिकारी होना।

नाठना[1](पु)—क्रि० स० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] नष्ट करना। ध्वस्त करना। उ०—मुनि प्रति विकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।—तुलसी (शब्द०)।

नाठना[2]—क्रि० अ० नष्ट होना। ध्वस्त होना।

नाठना[3]—क्रि० अ० [हिं० नाटना] भागना। हटना। उ०—(क) कोटि पापी इक पासंग मेरे अजामिल कौन बेचारो। नाठ्यो धर्म नाम सुनि मेरो नरक दियो हठि तारो।—सूर (शब्द०)। (ख) राम से साम किए नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे। आपनि सूझि कहौ पिय बूझिए झूझिबे जोग न ठाहरु नाठे।—तुलसी (शब्द०)।

नाठा—संज्ञा पुं० [सं० नष्ट] वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो।

नाड़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड] ग्रीवा। गर्दन। दे० 'नार'।

नाड़[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाड] मोटी डोरी या रस्सी। पगहा। उ०—लाता मारियो पिच्छाड़। गल में घाल घींस्यो नाड़।—राम० धर्म०, पृ० १६७।

नाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० नाड] १. सूत की वह मोटी डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा या धोती बाँधती हैं। इजारबंद। नीवी।

मुहा०—(किसी का) नाड़ा खोलना = संभोग करने के लिये नीवी खोलना। संभोग करना (मारवाड़ स्त्रि०)। नाड़ा छूट करना = पेशाब करना (मारवाड़ स्त्रि०)।

२. लाल या पीला रँगा हुआ गडेदार सूत जो देवताओं को चढ़ाया जाता है। कलाया। कलावा।

नाड़िंधम[1]—वि० [सं० नाडिन्धम] १. नली को फूँकनेवाला। २. नाड़ियों को हिलानेवाला। ३. श्वास को जल्दी जल्दी चलानेवाला। हँफानेवाला। ४. जिसे देखते ही नाड़ी हिल जाय। दहलानेवाला। भयंकर।

नाड़िंधम[2]—संज्ञा पुं० सोनार।

नाड़िंधय—वि० [सं० नाडिन्धय] नलिका द्वारा पीने या चूसनेवाला (को०)।

नाड़ि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नाडि] १. नाड़ी। २. नली (को॰)।

नाड़िक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. एक प्रकार का साग जिसे पटुआ भी कहते हैं। २. नाड़ी। ३. घटिका। दंड।

नाड़िका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नाडिका] १. घड़ी का काल। घड़ी। २. नली (को॰)। ३. किसी वनस्पति का तने या विस्तार का वह भाग जो भीतर पोला होता है। पोला डंठल (को॰)। ४. नासूर (को॰)। ५. सुर्यकिरण (को॰)। ६. घड़ियाल जिसे बजाकर घड़ी बीतने की सूचना दी जाती है (को॰)। ७. आधे दंड का कालमान (को॰)।

नाड़िकेल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नारिकेल] दे॰ 'नारियल'।

नाड़िपत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नाडिपत्र] एक शाक (को॰)।

नाड़िया—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नाडी] (नाड़ी पकड़नेवाला) वैद्य। चिकित्सक।

नाड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नाडी] १. नली। २. साधारणतः शरीर के भीतर की वे नलियाँ जिनमें होकर रक्त बहता है, विशेषतः वे जिनमें हृदय से शुद्ध रक्त क्षण क्षण पर जाता रहता है। धमनी।

विशेष—वे नलियाँ, जिनसे शरीर भर में रक्त का प्रवाह होता है, दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो शुद्ध रक्त को हृदय से लेकर और सब अंगों को पहुँचाती हैं, दूसरी वे जो सब अंगों से अशुद्ध रक्त को इकट्ठा करके उसको हृदय में प्राणवायु के द्वारा शुद्ध होने के लिये लौटाकर ले जाती हैं। पहले प्रकार की नलियाँ ही विशेषतः नाड़ियाँ कहलाती हैं, क्योंकि स्पंदन अधिकतर उन्हीं में होता है। अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचानेवाली नलियों या शिराओं में प्रायः स्पंदन नहीं होता। अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने कोठे में पहुँचता है, वहाँ से फिर वह फुफ्फुस में जाता है, फुफ्फुस में वह शुद्ध होता है। शुद्ध होने पर वह फिर हृदय के बाएँ कोठे में पहुँचता है। हृदय का क्षण क्षण पर आकुंचन और प्रसारण होता रहता है—वह बराबर सिकुड़ता और फैलता रहता है। हृदय जिस क्षण सिकुड़ता है उसमें भरा हुआ रक्त बृहन्नाड़ी के खुले मुँह में क्षिप्त होता है और फिर बड़ी नाड़ी से उसकी शाखा प्रशाखाओं में पहुँचता है। सबसे पतली नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना नहीं देखी जा सकतीं। नाड़ियाँ अधिकतर मांस और पीले तंतुओं की बनी हुई होती हैं। अतः इनमें लचीलापन होता है—ये खींचने से बढ़ जाती हैं। अधिक भर जाने अर्थात् भीतर से जोर पड़ने पर ये फैलकर चौड़ी हो जाती हैं और जोर हटने पर फिर ज्यों की त्यों हो जाती हैं। हृदय का बायाँ कोठा सिकुड़कर बड़े वेग के साथ १½ छटाँक रक्त बड़ी नाड़ी में ढकेलता है। नाड़ियों में तो हर समय रक्त भरा रहता है, अतः जब बड़ी नाड़ी में यह डेढ़ छटाँक रक्त पहुँचता है तब हृदय के समीप का भाग बढ़कर फैल जाता है। फिर जब रक्त का दूसरा झोंका हृदय से आता है तब उसके आगे का भाग फैलता है। इसी आकुंचन प्रसारण के कारण नाड़ियों में स्पंदन या गति होती है। यह स्पंदन बड़ी नाड़ियों में ही मालूम होता है, छोटी छोटी नलियों में नहीं; क्योंकि अत्यंत सूक्ष्म नाड़ियों में पहुँचते पहुँचते लहरों का वेग बहुत कम हो जाता है—और फिर जब शिराओं में यही रक्त अशुद्ध होकर पलटता है तब लहर रह ही नहीं जाती। जब कोई नाड़ी कट जाती है तब उसमें से रक्त उछल उछलकर निकलता है; जब कोई अशुद्ध रक्तवाहिनी शिरा कटती है तब उसमें से रक्त धीरे धीरे निकलता है। नाड़ियों के भीतर का रक्त लाल होता है पर अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के भीतर का रक्त कालापन लिए होता है।

नाड़ियों का स्पंदन या फड़क इन स्थानों में उँगली दबाने से मालूम हो सकती है—कनपटी में, ग्रीवा में के टेंटुए के दहने और बाएँ, उपसंधि के बीच, पैर के अँगूठे की ओर के गट्टे के नीचे, शिश्न के ऊपर की तरफ, कलाई में और बाहु में (बगल की ओरवाले किनारे में)।

नाड़ी एक मिनट में उतनी ही बार फड़कती है जितनी बार हृदय धड़कता है। नाड़ीपरीक्षा से हृदय और रक्तभ्रमण की दशा का ज्ञान होता है, उससे नाड़ियों और हृदय के तथा और भी कई अंगों के रोगों का पता लग जाता है।

आयुर्वेद के ग्रंथों में रक्तवाहिनी नलियों के स्पष्ट और ठीक विभाग नहीं किए गए हैं। सुश्रुत ने ७०० शिराएँ लिखी हैं जिनमें ४० मुख्य हैं—१० रक्तवाहिनी, १० कफवाहिनी, १० पित्तवाहिनी और १० वायुवाहिनी। इसके अतिरिक्त शुद्ध और अशुद्ध रक्त के विचार से कोई विभाग नहीं किया गया है। २४ धमनियों के जो ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी और तिर्यग्गामिनी ये तीन विभाग किए गए हैं, उनमें भी उपर्युक्त विभाग नहीं हैं। सुश्रुत ने शिराओं और धमनियों का मूल स्थान नाभि बतलाया है। आधुनिक प्रत्यक्ष शारीरक की दृष्टि से कुछ लोगों ने शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों का 'धमनी' नाम रख दिया है। यह नाम सुश्रुत आदि के अनुकूल न होने पर भी उपयुक्त है क्योंकि धात्वर्थ का यदि विचार किया जाय तो 'धम' कहते हैं 'धौंकने' या 'फूँकने' का। जिस प्रकार धौंकनी फूलती और पचकती है उसी प्रकार शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियाँ भी। दे॰ 'शिरा', 'धमनी'।

नाड़ीपरीक्षा का विषय भी सुश्रुत में नहीं मिलता है, इधर के ही ग्रंथों में मिलता है। आर्ष ग्रंथों में न होने पर भी पीछे आयुर्वेद में नाड़ीपरीक्षा को बड़ी प्रधानता दी गई, यहाँ तक कि 'नाड़ीप्रकाश' नाम का स्वतंत्र ग्रंथ ही इस विषय पर लिखा गया।

मुहा॰—नाड़ी चलना = कलाई की नाड़ी में स्पंदन या गति होना।

विशेष—नाड़ी का उछलना प्राण रहने का चिह्न समझा जाता है और उसके अनुसार रोगी की दशा का भी पता लगाया जाता है।

नाड़ी छूट जाना = (१) नाड़ी का न चलना। दबाकर छूने

से नाड़ी में गति न मालूम होना। (२) प्राण न रह जाना। मृत्यु हो जाना। (३) संज्ञा न रहना। मूर्छा आना। बेहोशी आना। नाड़ी देखना = कलाई की नाड़ी दबाकर रोगी की अवस्था का पता लगाना। नाड़ीपरीक्षा करके रोगी का निदान करना। नाड़ी धरना या पकड़ना = दे० 'नाड़ी देखना'। नाड़ी दिखाना या धराना = रोग के निदान के लिये वैद्य से नाड़ीपरीक्षा कराना। नब्ज दिखाना। नाड़ी न बोलना = (१) नाड़ी न चलना। नाड़ी मे गति न मालूम होना। (२) प्राण न रहना। (३) मूर्छा आना। बेहोशी आना।

३ हठयोग के अनुसार ज्ञानवाहिनी, शक्तिवाहिनी और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नालियाँ।

विशेष—योगियों का कहना है कि मेरुदंड या रीढ़ के एक इस तरफ और एक उस तरफ ऐसी दो नालियाँ हैं। इनमें जो बाईं ओर है उसे इला या इड़ा और जो दाहिनी ओर है उसे पिंगला कहते है। इन दोनों के बीच में सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। स्वरोदय तथा तंत्र के अनुसार बाएँ नथुने से जो साँस आती जाती है वह इड़ा नाड़ी से होकर और दाहिने नथुने से जो निकलती है वह पिंगला से होकर। यदि श्वास कुछ क्षण बाएँ और कुछ क्षण दहिने नथुने से निकले तो समझना चाहिए कि वह सुषुम्ना नाड़ी से आ रहा है। श्वास की गति के अनुसार स्वरोदय में शुभाशुभ फल भी कहे गए हैं। इला नाड़ी में चंद्र की अवस्थिति रहती है और पिंगला में सूर्य की। अतः इड़ा का गुण शीत और पिंगला का उष्ण है। सुषुम्ना नाड़ी त्रिगुणमयी और चंद्रसूर्याग्नि स्वरूपा है। यह नाड़ी ब्रह्मस्वरूपा है, इसी में जगत् प्रतिष्ठित है। बिना इन नाड़ियों के ज्ञान के योगाभ्यास में सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। जो योगाभ्यास करना चाहते हैं वे पहले इड़ा, फिर पिंगला और फिर सुषुम्ना को लेकर चलते है। सुषुम्ना के सबसे नीचे के भाग को योगी कुंडलिनी मानते है जिसे जगाने का यत्न वे करते हैं। सच पूछिए तो इसी को जगाने के लिये ही योग का अभ्यास किया जाता है। जाग्रत होनेपर कुंडलिनी चंचल होकर सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भीतर सिर की ओर चढ़ने लगती है और बारह चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरंध्र तक चली जाती है। जैसे जैसे वह ऊपर की ओर बढ़ती जाती है, योगी के मानसिक बंधन ढीले पड़ते जाते है और अलौकिक शक्तियाँ उसे प्राप्त होती जाती हैं, यहाँ तक कि मन और शरीर से उसका संबंध छूट जाता है और वह परमानंद में मग्न होकर परमात्मा का शुद्ध रूप देखने लगता है।

निरुत्तर तंत्र में दस नाड़ियाँ लिखी हैं जिनमें ऊपर लिखी तीन मुख्य हैं। घेरंडसंहिता आदि योग के ग्रंथों को देखने से पता लगता है कि अँतड़ियाँ भी नाड़ियों के अंतर्गत मानी गई हैं। प्रक्षालन क्रिया में शक्तिवाहिनी नाड़ी को निकालकर उसके भीतर के मल को धोने का विधान है।

यौ०—नाड़ीव्रण।

४. व्रणरंध्र। नासूर का छेद।

५. बंदूक की नली। ६. काल का एक मान जो छह क्षण का होता है। ७. गंडदूर्वा। ८. वंशपत्री। ९. किसी तृण का पोला डंठल। १०. छद्म। कपट। मक्कारी। ११. वर वधू की गणना बैठाने मे कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्रसमूह। दे० 'नाड़ीनक्षत्र'। १२ मृणाल। पद्मदंड (को०)। १३. घड़ी (को०)। १४. फूँककर बजाया जानेवाला (वंशी आदि) वाद्य (को०)। १५. चमड़े की नली (को०) १६. बुनकरों का एक औजार (को०)।

नाड़ीक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीक] एक प्रकार का साग। पटुआ साग।

नाड़ीकलापक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकलापक] सर्पाक्षी। भिड़नी नाम की घास।

नाड़ीकूट—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकूट] नाड़ीनक्षत्र।

नाड़ीकेल—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकेल] नारियल।

नाड़ीच—संज्ञा पुं० [सं० नाडीच] पटुआ साग।

नाड़ीचक्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचक्र] १. हठयोग के अनुसार नाभिदेश में कल्पित एक अंडाकार गाँठ जिससे निकलकर सब नाड़ियाँ फैली हैं। २. फलित ज्योतिष में नक्षत्रों के उन भेदों को सूचित करनेवाला कोष्ठ या चक्र जिन्हें नाड़ी कहते है। दे० 'नाड़ीनक्षत्र'।

नाड़ीचरण—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचरण] पक्षी।

नाड़ीचीर—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचीर] १. एक प्रकार का छोटा नरसल। २. बुनकरों का वह पोला औजार जिसमें कपड़े का बुना हुआ भाग लिपटता जाता है (को०)।

नाड़ीजंघ—संज्ञा पुं० [सं० नाडीजङ्घ] १. काक। कौआ। २. एक मुनि का नाम। ३. महाभारत के अनुसार एक बगला जो कश्यप का पुत्र, ब्रह्मा का अत्यंत प्रिय पात्र और दीर्घजीवी था।

नाड़ीतरंग—संज्ञा पुं० [सं० नाडीतरङ्ग] १. काकोल। २. हिंडक। ३. लंपट। व्यभिचारी (को०)। ४. ज्योतिषी (को०)।

नाड़ीतिक्त—संज्ञा पुं० [सं० नाडीतिक्त] नेपाली नीम। नेपाल-निंब।

नाड़ीदेह[1]—वि० [सं० नाडीदेह] अत्यंत दुबला पतला।

नाड़ीदेह[2]—संज्ञा पुं० शिव के एक द्वारपाल का नाम।

नाड़ीनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीनक्षत्र] वरवधू की गणना बैठाने के लिये कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्र। (फलित ज्योतिष)।

विशेष—जिस नक्षत्र में मनुष्य का जन्म होता है। उसे तथा उससे दसवें, सोलहवें, अठारहवें, तेईसवें और पचीसवें नक्षत्र को नाड़ीनक्षत्र या नाड़ी कहते हैं। जन्म नाड़ी को आद्य, दसवीं को कर्म, सोलहवीं को सांघातिक, अठारहवीं को समुदय, तेईसवीं को विनाश और पचीसवीं को मानस कहते हैं।

नाड़ीपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडीपरीक्षा] रोग का निदान करने में वैद्य द्वारा नाड़ी देखने का कार्य (को०)।

नाड़ीपात्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीपात्र] एक प्रकार की जलघड़ी [को०]।

नाड़ीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० नाडीमण्डल] विषुवत् रेखा। आकाशीय क्रांतिवृत्त।

नाड़ीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीयन्त्र] सुश्रुत के अनुसार शस्त्रचिकित्सा या चीरफाड़ का एक औजार जो शरीर की नाड़ियों या स्रोतों में घुसी हुई चीज को बाहर निकालने के काम में आता था।

नाड़ीवलय—संज्ञा पुं० [सं० नाडीवलय] काल या समय निश्चित् करने का एक यंत्र। एक प्रकार की घड़ी। (सिद्धांतशिरोमणि)।

नाड़ीविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० नाडीविग्रह] शिव का गण भृंगी जो अत्यंत कृशकाय था। नाडीदेह [को०]।

नाड़ीवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० नाडीवृत्त] १. क्रांतिवृत्त। २. एक प्राचीन समयसूचक यंत्र [को०]।

नाड़ीव्रण—संज्ञा पुं० [सं० नाडीव्रण] वह घाव जिसमें भीतर ही भीतर नली की तरह छेद हो जाय और उसमें से बराबर मवाद निकला करे। नासूर।

नाड़ीशाक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीशाक] पटुआ शाक।

नाड़ीसंस्थान—संज्ञा पुं० [सं० नाडीसंस्थान] नाड़ीजाल [को०]।

नाड़ीस्नेह—संज्ञा पुं० [सं० नाडीस्नेह] दे० 'नाडीदेह' [को०]।

नाड़ीस्वेद—संज्ञा पुं० [सं० नाडीस्वेद] नलिका द्वारा संपादित बाष्पस्नान [को०]।

नाड़ीहिंगु—संज्ञा पुं० [सं० नाडीहिङ्गु] १ एक वृक्ष जिसमें से एक प्रकार की हींग या गोंद निकलता है।

विशेष—यह गोंद औषध के काम में आता है। इस वृक्ष के पत्ते वनमोगरा के पत्तों जैसे होते हैं, फूल सफेद और फल पोस्ते के ढेंढ़ के समान होते हैं।

२. उस वृक्ष से निकली हींग या गोंद।

विशेष—वैद्यक में यह हींग चरपरी, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, तथा कफ, वात और मोह को दूर करनेवाली मानी गई है।

पर्या०—पलाशाख्य। जंतुका। रामठी। वंशपत्री। पिंडाह्वा। सुवीर्या। वेणुपत्री। पिंडा। हिंगु। शिवाटिका। हिंगुनाडिका।

नादूदाना—संज्ञा पुं० [देश०] बैलों की एक जाति जो मैसूर में होती है।

विशेष—इस जाति के बैल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती और मजबूत अधिक होते हैं।

नाणक—संज्ञा पुं० [सं० नाणक] १. धातु। २. निष्क। ३. अंकित मुद्रा। सिक्का।

नाणक—संज्ञा पुं० [सं०] सिक्का। प्राचीन भारत का सिक्का [को०]।

यौ०—नाणकपरीक्षा = सिक्के के खोटे खरे होने की जाँच। नाणकपरीक्षी = सिक्के की परख करनेवाला व्यक्ति।

नाणा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नाणक] १. रुपया पैसा। धन दौलत। उ०—नरहर समरतां जह बीते नाणों, लवसूं तिको न लेवै।—रघु० रू०, पृ० २७। २. खरीज। खुदरा। छोटे सिक्के जिनसे बड़े सिक्कों को भुनाया जाता है।

नाती—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति] १. नातेदार। संबंधी। उ०—जब राजा भाय तेहि पाहीं। बिना बुलाए नात न जाहीं।—रघुराज (शब्द०) २. नाता। संबंध। उ०—यह विचार नहिं करहु हठ झूठ सनेह बढ़ाइ। मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ।—तुलसी (शब्द०)।

नातर(पु)†—अव्य० [हिं० नातरु] दे० 'नातरु'। उ०—जातु विष्णु कहा सुन मोरा। नातर वधु हीन होय तोरा।—कबीर सा०, पृ० ६७।

नातरा—संज्ञा पुं० [हिं० नात + रा (प्रत्य०)] १. दे० 'नाता'। २. विवाह संबंध। ३. विधवा के साथ विवाह। उ०—रीणी राजानूं कहइ, श्री म्हाँ नातरउ कीध।—ढोला०, दू० ३।

नातरु—अव्य० [हिं० न + तो + अरु] और नहीं तो। अन्यथा। उ०—(क) भली भई जो गुरु मिले नातरु होती हानि। दीपक ज्योति पतंग ज्यों पड़ता आप निदान।—कबीर (शब्द०)। (ख) कोऊ खवावे तो कछु खाहीं। नातरु बैठे ही रहि जाही।—सूर (शब्द०)। (ग) नातरु हौं करिहौ बनवास। नेहा योग छाँड़ि सब आस।—लल्लू (शब्द०)।

नातवाँ—वि० [फा०] दुर्बल। हीन। निर्बल। अशक्त।

नातवान—वि० [फ़ा० नातवाँ] दे० 'नातवाँ'। उ०—(क) नातवान तन पै सुनो एती ताकत है न। भत झुकाव मों सामुहे गज मतवारे नैन।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) मैं नातवान हुआ इस कदर कि मुद्दत से। न लब से नाला सीने से आह निकले है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४५।

नाता—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, हिं० नात] १. दो या कई मनुष्यों के बीच वह लगाव जो एक ही कुल में उत्पन्न होने या विवाह आदि के कारण होता है। कुटुंब की घनिष्ठता। ज्ञाति संबंध। रिश्ता।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—टूटना।—तोड़ना।—लगाना।

२. संबंध। लगाव। उ०—(क) कहु रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।—तुलसी (शब्द०)। सूरदास सिय राम लखन बन कहाँ अवध सों नाता।—सूर (शब्द०)।

यौ०—नाता गोता = स्वजन। संबंधी। उ०—अभी तो इनके नाते गोते के लोग फेरे के लिये आ जा रहे हैं।—झाँसी०, पृ० १५७।

नाताकत—वि० [फ़ा० ना + अ० ताकत] जिसे ताकत या बल न हो। निर्बल। अशक्त।

नाताकती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ना + अ० ताक़त + फ़ा० ई (प्रत्य०)] नाताकत होने का भाव। दुर्बलता। कमजोरी।

नातिदूर—वि० [सं०] जो बहुत दूर न हो। कुछ ही दूर का।

उ०—उससे नातिदूर मोहार का चश्मा भी कुछ इसी तरह का है।—किन्नर०, पृ० ४७।

नातिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाती] लड़की की लड़की। बेटी की बेटी।

नाती—संज्ञा पुं० [सं० नप्तृ, प्रा० नत्ति] [स्त्री० नतिनी, नातिन] लड़की या लड़के का लड़का। नप्ता। बेटी या बेटे का बेटा। उ०—(क) नाती पूत कोटि दस ग्रहा। रोवनहार न एको रहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।—तुलसी (शब्द०)।

नाते—क्रि० वि० [हिं० नाता] १. संबंध से। उ०—सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते।—तुलसी (शब्द०)। २. हेतु। वास्ते। लिये। उ०—दूध दही के नाते बनवत बातें बहुत गोपाल। गढ़ि गढ़ि छोलत कहा रावरे लूटत हो ब्रजबाल।—सूर (शब्द०)।

नातेदार—वि० [हिं० नाता + फा० दार (प्रत्य०)] [संज्ञा नातेदारी] संबंधी। रिश्तेदार। सगा। उ०—हे सुत है नहिं दुःख को सामा। नातेदार मोरि तब मामा।—गोपाल (शब्द०)।

नात्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

नात्रात—संज्ञा पुं० [राज० नाता + रा (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति। उ०—उनमें नाता (नात्रा = विधवा विवाह) होता है, जिससे वे नात्रात (नात्रायत) राजपूत कहलाते हैं।—राज०, पृ० ५०४।

नाथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभु। स्वामी। अधिपति। मालिक। २. पति। ३. वह रस्सी जिसे बैल भैंसे आदि की नाक छेदकर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिसमें वे वश में रहें। उ०—रंगनाथ हौं जाकर हाथ ओही के नाथ। गहे नाथ सो खींचै फेरत फिरै न माथ।—जायसी (शब्द०)। ४. मत्स्येंद्रनाथ के अनुयायी योगियों की एक उपाधि। गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी जो उनके नामों के साथ ही मिली रहती है। ५. नाथ सिद्धों का परम तत्व। उ०—पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरंजन करे।—रामानंद०, पृ० ३। ६. एक प्रकार के मदारी जो साँप पालते और नचाते हैं।

मुहा०—नाथ पड़ना = जिम्मेदारी आना।

नाथ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाथना] १. नाथने की क्रिया या भाव। उ०—रंग नाथ हौं जाकर हाथ ओहि के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरे फिरे न माथ।—जायसी (शब्द०)।

नाथ[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नथ] दे० 'नथ'। उ०—परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।—जायसी (शब्द०)।

नाथता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभुता। स्वामित्व।

नाथत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व।

नाथद्वारा—संज्ञा पुं० [सं० नाथद्वार] उदयपुर राज्य के अंतर्गत वल्लभ संप्रदाय के वैष्णवों का एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित है।

विशेष—औरंगजेब ने जब मथुरा की सब कृष्णमूर्तियों को तोड़ने का विचार किया तब सन् १६७१ में उदयपुर के महाराणा राजसिंह श्रीनाथ जी की मूर्ति को मथुरा से उदयपुर की ओर लेकर धूमधाम के साथ चले। इस स्थान पर जब रथ पहुँचा तब पहिया कीचड़ में धँस गया। लोगों ने कहा कि श्रीनाथजी की इच्छा इसी स्थान पर रहने की है। महाराणा ने भारी मंदिर बनवाकर मूर्ति वहीं स्थापित कर दी।

नाथना—क्रि० स० [हिं० नाथ] १. बैल, भैंसे आदि की नाक छेदकर उसमें इसलिये रस्सी डालना जिसमें वे वश में रहें। नकेल डालना। नाक छेदना। उ०—(क) आजु लखे रावन दस माथा। आजु कान्ह कारे फन नाथा।—जायसी (शब्द०)। (ख) काली नाग नाथि हरि लाए सुरभी ग्वाल जिवाए।—सूर (शब्द०)। (ग) साल बैल नाथन के कारण आप अयोध्या आए।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—नाक पकड़कर नाथना = बलपूर्वक वश में करना।

२. किसी वस्तु को छेदकर उसमें रस्सी या तागा डालना। ३. किसी वस्तु या कई वस्तुओं के कई भागों को छेदकर रस्सी या तागे के द्वारा एक में जोड़ना। नत्थी करना। जैसे,—इन सब कागजों को एक में नाथकर रख दो। ४. लड़ी के रूप में जोड़ना।

नाथवत्—वि० [सं०] १. स्वामी या रक्षक से युक्त। २. पराधीन [को०]।

नाथवान्—वि० [सं० नाथवत्] दे० 'नाथवत्'।

नाथ संप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० नाथ + सम्प्रदाय] गोरखनाथ का चलाया हुआ एक पंथ। उ०—नाथ संप्रदाय के आदि प्रवर्तक 'आदि नाथ' शिव ही कहे जाते हैं।—पू० म० भा०, पृ० ३३५।

नाथहरि—संज्ञा पुं० [सं०] पशु।

नाथित—संज्ञा पुं० [सं०] प्रार्थना। अनुरोध। याचना [को०]।

नाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। ध्वनि। आवाज। २. वर्णों का अव्यक्त मूल रूप।

विशेष—संगीत के आचार्यों के अनुसार आकाशस्थ अग्नि और मरुत् के संयोग से नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहती है उसे ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। संगीतदर्पण में लिखा है कि आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देहज अग्नि पर आघात करता है और अग्नि ब्रह्मग्रंथिगत प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर ऊपर चढ़ने लगता है। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, गलदेश में पुष्ट, शीर्ष में अपुष्ट और मुख में कृत्रिम नाद उत्पन्न करता है। संगीत दामोदर में नाद तीन प्रकार का माना गया है—प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसंभव। जो मुख आदि अंगों से उत्पन्न किया जाता है वह प्राणिभव, जो वीणा आदि से निकलता है वह अप्राणिभव और जो बाँसुरी से निकाला जाता है वह उभयसंभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग आदि कुछ भी

संभव नहीं। ज्ञान भी उसके बिना नहीं हो सकता। प्रत: नाद परज्योति वा ब्रह्मरूप है और सारा जगत् नादात्मक है। इस दृष्टि से नाद दो प्रकार का है - आहत और अनाहत। अनाहत नाद को केवल योगी ही सुन सकते हैं।

हठयोग दीपिका में लिखा है कि जिन मूढ़ों को तत्वबोध न हो सके वे नादोपासना करें। अंतस्थ नाद सुनने के लिये चाहिए कि एकाग्रचित्त होकर शांतिपूर्वक आसन जमाकर बैठे। आँख, कान, नाक, मुँह सबका व्यापार बंद कर दे। अभ्यास की अवस्था में पहले तो मेघगर्जन, भेरी आदि की सी गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ेगी, फिर अभ्यास बढ़ जाने पर क्रमश: वह सूक्ष्म होती जायगी। इन नाना प्रकार की ध्वनियों में से जिसमें चित्त सबसे अधिक रमे उसी में रमावे। इस प्रकार करते करते नादरूपी ब्रह्म में चित्त लीन हो जायगा।

३. वर्णों के उच्चारण में एक प्रयत्न जिसमें कंठ न तो बहुत फैलाकर न संकुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। ४. अनुस्वार के समान उच्चारित होनेवाला वर्ण। सानुनासिक स्वर। अर्धचंद्र।

पर्या०—अर्धेंदु। अर्धमात्रा। कलाराशि। सदाशिव। अनुच्चर्या। तुरीया। परा। विश्वमातृकला।

५. संगीत।

यौ०—नादविद्या=संगीत शास्त्र।

नादना(पु)¹—क्रि० स० [सं० नदन या हिं० नाद] बजाना। उ०—(क) काहू बीन गहा कर काहू नाद मृदंग। सब दिन अनंद बधावा रहस कूद इक संग।—जायसी (शब्द०)। (ख) इन ही के आए ते बधाए ब्रज नित नए नादत बढ़त सब सब सुख जियो है।—तुलसी (शब्द०)।

नादना²—क्रि० अ० १. बजना। शब्द करना। उ०—शून्य ज्ञान सुषुप्ती होय। अकुलाहट सना हो सोय।—कबीर (शब्द०)। २. चिल्लाना। गरजना। उ०—मनु करि दल लखि वृद्ध हरि नादि उठयो कंदर निकर। गोपाल (शब्द०)।

नादना³—क्रि० अ० [सं० नन्दन] लहकना। लहलहाना। प्रफुल्लित होना। उ०—नैकु न जानी परति यों पर्‌यो बिरह तन छाय। उठति दिया लौं नादि हरि लिए तिहारो नाम।—बिहारी (शब्द०)।

नादमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर अँगूठे को ऊपर की ओर उठाए रहना पड़ता है।

नादवान्—वि० [सं० नादवत्] स्वरमय। ध्वनिमय। ध्वनित [को०]।

नादली—संज्ञा स्त्री० [अ० नाद + अली] संग यशब नामक पत्थर की चौकोर टिकिया जिसपर कुरान की एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे रोगबाधा दूर करने के लिये यंत्र की तरह पहनते हैं। हौलदिली।

विशेष—आयत का प्रारंभ 'नाद अलियन' इस वाक्य से होता है। इसी से यंत्र को नादली कहते हैं। हकीमों का कथन है कि उक्त पत्थर में कलेजे की धड़क आदि दूर करने का विशेष गुण है। छाती पर उसका संसर्ग रहने से हौलदिल तथा दिल धड़कने की बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि बिजली का असर भी जहाँ यह पत्थर रहता है वहाँ नहीं होता।

नादाँ—वि० [फ़ा०] दे० 'नादान'। उ०—(क) दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है। आखिर इस मर्ज की दवा क्या है।—गालिब०, पृ० ३०४। (ख) फायदा क्या सोच आखिर तू भी है दाना असद। दोस्ती नादाँ की है जी का जियाँ हो जायगा।—गालिब०, पृ० ६६।

नादान—वि० [फ़ा०] [संज्ञा नादानी] नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ०—कबीर मारी प्रल्लाह की ताको कहत हराम। हलाल कहै अपनी मारी यह नादान कलाम।—कबीर (शब्द०)।

नादानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अज्ञान। नासमझी।

नादार—वि० [फ़ा०] १. जो अपने पास कुछ न रखता हो। जिसके पास कुछ न हो। अकिंचन। निर्धन। कंगाल। उ०—बाद अज जिके कल्बी लेबे दिल में मलफी बूझ। जिन ताकूँ नादार झंकारे तो मंजिल मलकूत तूज।—दक्खिनी, पृ० ५६। २. गंजीफे के खेल में बिना रंग या मीर की बाजी।

नादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गरीबी। निर्धनता। उ०—जी को नादारी में जीविए।—लल्लू (शब्द०)।

नादि—वि० [सं०] १. शब्द करनेवाला। २. गर्जन करनेवाला [को०]।

नादित—वि० [सं०] शब्द करता हुआ। बजाया हुआ।

नादिम—वि० [अ०] लज्जित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नादिया—संज्ञा पुं० [सं० नन्दी] १. नंदी। २. वह बैल जिसे जोगी लेकर भीख माँगते हैं।

विशेष—ऐसे बैलों को कोई न कोई अंग अधिक (जैसे टाँग) रहता है जिससे लोगों को कुतूहल होता है।

नादिर—वि० [फ़ा०] अद्भुत। अनोखा। उ०—औरंगजेब बादशाह के कोका फिदाई खाँ का बाग बहुत नादिर बना है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

यौ०—नादिर कलाम = उत्तम वाणी। अच्छी वाणी। उ०—मेकाइल जिब्रील नादिर कलाम। फरिश्ताँ कूँ ले सात कीते सलाम।—दक्खिनी०, पृ० ३४४।

नादिरशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारस का एक क्रूर और प्रतापी बादशाह।

विशेष—इसने सन् १७३८ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह पर चढ़ाई की और १७३९ में दिल्ली नगरवासियों की हत्या कराई। प्रात:काल से सूर्यास्त तक यह हत्याकांड जारी रहा जिसमें लाखों मनुष्य मारे गए।

नादिरशाही¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ऐसा अंधेर जैसा नादिरशाह ने दिल्ली में मचाया था। भारी अंधेर या अत्याचार।

नादिरशाही[2]—वि० नादिरशाह के ऐसा। बहुत ही कठोर और उग्र। जैसे, नादिरशाही हुक्म।

नादिरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. एक प्रकार की सदरी या बंडी जो मुगल बादशाहों के समय में पहनी जाती थी। इसके किनारे पर कुछ काम होता था। इसे कभी कभी खिलअत में दिया करते थे। २. गंजीफे का वह पत्ता जो खेल के समय निकालकर अलग रख दिया जाता है।

मुहा०—नादिरी चढ़ाना = बतरह मात करना।

नादिहंद—वि० [फ़ा०] न देनेवाला। जिससे रकम वसूल न हो।

नादिहंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी को कुछ न देने की प्रवृत्ति। अदातव्यता।

नादी—वि० [सं० नादिन्] [वि० स्त्री० नादिनी] १. शब्द करनेवाला। २. बजनेवाला। ३. गर्जन करनेवाला।

नादेअली—संज्ञा स्त्री [अ०] कुरान की एक आयत जो नाद अलियन से शुरू होती है और संग यशब के छोटे चौकोर टुकड़े पर खुदी रहती है जिसे रोगबाधा से बचने के लिये गले में पहनते हैं। दे० 'नादली' (को०)।

नादेय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नादेयी] १. नदी संबंधी। नदी का। २. नदी में होनेवाला।

नादेय[2]—संज्ञा पुं० १ सेंधा नमक। २. सुरमा। ३. काँस नाम की घास। ४. जलबेत। अंबुवेतस। ५. नदो (गंगा) के पुत्र। गांगेय। भीष्म।

नादेयी[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. नदी संबंधिनी। नदी की। २. नदी में होनेवाली।

नादेयी[2]—संज्ञा स्त्री० १. अंबुवेतस। जलबेत। २. भूमिजंबुक। भुइँजामुन। ३. वैजयंतिका। बैजयंती। ४. नारंगी। ५. जपा। अड़हुल। ६. अग्निमथ वृक्ष। अरणी।

नादेहंद—वि० [फ़ा० नादिहंद] दे० 'नादिहंद'।

नाद्य[1]—वि० [सं०] १. नदी संबंधी। २. नदी में उत्पन्न (को०)।

नाद्य[2]—संज्ञा पुं० कमल (को०)।

नाधन—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाधना] चरखे के तकले में तागे की रोक के लिये लगी हुई एक गोल टिकिया। दिमरखा।

विशेष—यह टिकिया पिघली हुई लाही में रुई आदि डालकर बनाते हैं और लिपटे हुए तागे के आगे छेदकर पहना देते हैं।

नाधना—क्रि० स० [सं० नद्ध (= बँधा या जुड़ा हुआ)] १. रस्सी या तस्मे के द्वारा बैल, घोड़े आदि को उस वस्तु के साथ जोड़ना या बाँधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना होता है। जोतना। जैसे, बैल को गाड़ी या हल में नाधना। उ०—(क) खसम बिनु तेली के बैल भयो। बैठत नाहिं साधु की संगति नाधे जनम गयो।—कबीर (शब्द०)। (ख) बहुत वृषभ बहलन में नाधे।—रघुराज (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—काम में नाधना = काम में लगाना।

२. जोड़ना। संबद्ध करना। उ०—तुम्हें देखि पावै, सुख बहु भाँति ताहि दीबै नेकु निरखि नतीजा नेह नाधे को।—कालिदास (शब्द०)। ३. गूँथना। गुहना। उ०—देव जगामग जोतिन की, लर मोतिन की लरकीन सों नाधी।—देव (शब्द०)। ४. (किसी काम को) ठानना। अनुष्ठित करना। आरंभ करना। जैसे, काम नाधना। उपद्रव नाधना। उ०—(क) मेरी कही न मानत राधे। ये अपनी मति समुझत नाहीं कुमति कहा पन नाधे।—सूर (शब्द०)। (ख) याही को कहायो ब्रजराज दिन चार ही में करिहै उजियारी ब्रज ऐसी रीति नाधो है।—मतिराम (शब्द०)।

नाधा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० नाधना] वह रस्सी या चमड़े की पट्टी जिससे हल या कोल्हू की हरिस जुए में बाँधी जाती है। नारी।

नाधा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० नाँद] वह स्थान जहाँ पर पानी, कुएँ, जलाशय आदि से निकालकर फेंका जाता है और जहाँ से नालियों में होता हुआ वह सिंचाई के लिये खेतों में जाता है।

नान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. रोटी। चपाती। २. एक प्रकार की मोटी खमीरी रोटी जो तंदूर में पकाई जाती है।

यौ०—नानखताई। नानबाई। नानपाव।

नानक—संज्ञा पुं० पंजाब के एक प्रसिद्ध महात्मा जो सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे।

विशेष—इनका जन्म रावी नदी के किनारे तिलौंडा नामक गाँव में (आधुनिक रायपुर) संवत् १५२६ में कार्तिकी पूर्णिमा को एक खत्रीकुल में हुआ था। इनके पिता का नाम कालू था। लड़कपन ही से ये सांसारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि पिता ने एक बार इन्हें ४०) नमक खरीदने के लिये दिए। ये नमक खरीदने चले पर बीच में कुछ भूखे साधु मिले और इन्होंने सब रुपयों का अन्न लेकर उन्हें खिला दिया। इन्हें काम काज के योग्य न देख पिता ने इन्हें इनकी बहिन के पास सुलतानपुर (कपूरथले में) नामक स्थान में भेज दिया। वहाँ का नवाब उस समय दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी का संबंधी दौलत खाँ नामक पठान था। उसके यहाँ ये मोदीखाने में नौकर हुए। वहाँ भी इन्होंने साधुओं को खिलाना आरंभ किया जिससे इनपर रुपया खाने का आरोप लगाया गया। पर जब हिसाब लिया गया तब सब ठीक उतरा। इनका विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में गुरुदासपुर जिले के अंतर्गत लाखौकी नामक स्थान के रहनेवाले मूला की कन्या सुलक्षणी से हुआ था। जिस समय ये दौलत खाँ के यहाँ थे उसी समय ३२ वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र श्रीचंद्र का जन्म हुआ। चार वर्ष पीछे दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ। दोनों लड़कों के जन्म के उपरांत नानक ने घरबार छोड़ दिया और मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साथियों को लेकर वे भ्रमण के लिये निकल पड़े। ये चारों ओर घूमकर उपदेश करने लगे। इनके उपदेश का सार यही होता था कि ईश्वर एक है उसकी उपासना हिंदू मुसलमान दोनों के

लिये है। मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना को ये अनावश्यक कहते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों पर इनके मत का प्रभाव पड़ता था। लोगों ने तत्कालीन इब्राहीम लोदी से इनकी शिकायत की और ये बहुत दिनों तक कैद रहे। अंत में पानीपत की लड़ाई में जब इब्राहीम हारा और बाबर के हाथ में राज्य गया तब इनका छुटकारा हुआ। पिछले दिनों में इनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में भी परिवर्तन हुआ। स्वयं विरक्त होकर ये अपने परिवारवर्ग के साथ रहने लगे और दान पुण्य, भंडारा आदि करने लगे। जलंधर जिले में इन्होंने कर्तारपुर नामक एक नगर बसाया और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्विन कृष्ण १०, संवत् १५९७ को इनका परलोकवास हुआ। यह सिखों का एक पवित्र स्थान है।

नानकपंथ—संज्ञा पुं० [हिं० नानक+पंथ] गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित मत। सिख धर्म।

नानकपंथी—संज्ञा पुं० [हिं० नानक+पंथ+ई (प्रत्य०)] गुरु नानक का अनुयायी। सिख। नानकशाही।

नानकशाही—वि० [हिं० नानकशाह+ई (प्रत्य०)] गुरु नानक से संबंध रखनेवाला। जैसे, नानकशाही मत। २. नानकशाह का शिष्य या अनुयायी। जैसे, नानकशाही साधु।

नानकार—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की माफी जिसके अनुसार जमींदार को कुछ जमीन की मालगुजारी नहीं देनी पड़ती।

विशेष—इस प्रकार की माफी अवध के नवाबों के समय से चली आ रही है। नानकार दो तरह का होता है—नानकार देही और नानकार इस्मी। यदि किसी गाँव में कुछ जमीन की या किसी तअल्लुके में कुछ गाँवों की मालगुजारी माफ है और वह माफी उस गाँव या तअल्लुके के साथ लगी हुई है तो वह नानकार देही कहलाती है। इस प्रकार की माफी में गाँव के हर एक हिस्सेदार का हक होता है। यदि माफी किसी खास आदमी के नाम से होती है तो उसे 'नानकार इस्मी' कहते हैं। इसमें हिस्सेदारों का हक नहीं होता पर व्यवहार में यह बहुत कम माना जाता है।

नानकीन—संज्ञा पुं० [चीनी नानकिङ्] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो चीन देश से बाहर को जाता था।

विशेष—यह कपड़ा मटमैले रंग का होता था। पहले पहल इसका बुनना चीन के नानकिङ् नामक नगर में प्रारंभ हुआ था। आजकल इस प्रकार का कपड़ा युरोप आदि अनेक देशों में बनता है और इसी नाम से जाना जाता है।

नानकोआपरेशन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'असहयोग-२'।

नानखताई—संज्ञा स्त्री० [फा० नानखताई] टिकिया के आकार की एक सोंधी खस्ता मिठाई।

विशेष—घी और चीनी के साथ घुले हुए चावल के आटे की टिकिया (बताशे की आकार की) लोहे की एक चद्दर पर रखते हैं फिर चद्दर को दहकते अंगारों से भरे हुए दो थालों के बीच इस प्रकार रखते हैं कि आँच ऊपर और नीचे दोनों ओर से लगे। जब टिकियाँ पक जाती हैं और उनमें से सोंधाहट आने लगती है तब चद्दर निकाल दी जाती है।

नानख्वाह—संज्ञा पुं० [फा० नानख्वाह] अजवाइन [को०]।

नानपज—संज्ञा पुं० [फा० नानपज] नानबाई [को०]।

नानपजी—संज्ञा स्त्री० [फा० नानपजी] नानबाई का धंधा [को०]।

नानपाव—संज्ञा पुं० [फा०] खमीरी आटे की बनी एक प्रकार की रोटी। पावरोटी [को०]।

नानपेरिल—संज्ञा पुं० [अं० नॉनपैरेल] एक प्रकार का छोटा टाइप। ६ पाइंट का टाइप।

नानबाई—संज्ञा पुं० [फा० नानबा, नानबाफ़] रोटियाँ पकाकर बेचनेवाला।

नानस—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'ननिया सास' का संक्षिप्त रूप] ननिया ससुर। पति या स्त्री का नाना (मित्र०)।

नानसरा—संज्ञा पुं० [हिं० 'ननिया ससुर' का संक्षिप्त रूप] ननिया ससुर। पति या स्त्री का नाना (मित्र०)

नाना[1]—वि० [सं०] १. अनेक प्रकार के। बहुत तरह के। विविध। २. अनेक। बहुत।

नाना[2]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० नानी] माता का पिता। माँ का बाप। मातामह। उ०—सो लंका तव नाना केरी। बसे आप मम पितहि खदेरी।—विश्राम (शब्द०)।

नाना[3]—क्रि० स० [सं० नमन] १. झुकाना। नम्र करना। उ०—(क) बुद्धि जो गई आव बौराई। गरब गए तरहीं सिर नाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) इंद्र डरै नित नावहि माथा।—सूर (शब्द०)। २. नीचा करना। ३. डालना। फेंकना। ४ घुमाना। प्रविष्ट करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

नाना[4]—संज्ञा पुं० [अ०] पुदीना।

यौ०—अर्कनाना = सिरके के साथ भबके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

नानाकंद—संज्ञा पुं० [सं०] पिंडालू।

नानाजातीय—वि० [सं०] जिसकी बहुत सी किस्में हों। अनेक प्रकार का [को०]

नानात्मवादी—वि० [सं० नानात्मवादिन्] सांख्य दर्शन को माननेवाला। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा की पृथक् सत्ता स्वीकार करनेवाला [को०]।

नानात्यय—वि० [सं०] विभिन्न प्रकार का। अनेक विधि [को०]।

नानात्व—संज्ञा पुं० [सं०] वैविध्य। अनेकता [को०]

नानाध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करनेवाला वाद्ययंत्र। जैसे, वीणा, सितार आदि [को०]।

नानारस—वि० [सं०] जिसमें अनेक स्वाद हों। अनेक स्वादयुक्त [को०]।

नानारूप—वि० [सं०] १. अनेक रूपोंवाला । बहुरूपी । २. नानाविध । बहुविध [को०]

नानार्थ—वि० [सं०] १. अनेक उद्देश्योंवाला । बहूद्देशीय । २. अनेक अर्थोंवाला । बहुअर्थी [को०] ।

नानावर्ण—विभिन्न रंग का । बहुरंगा । अनेक रंगोंवाला [को०] ।

नानाविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का । विभिन्न [को०] ।

नानाश्रय—वि० [सं०] अनेक आश्रयवाला । जिसके रहने के अनेक स्थान या ठौर ठिकाने हों ।

नानिहाल—संज्ञा पुं० [हिं० नानी + आल सं० (< आलय)] नानी का घर । नाना नानी के रहने का स्थान ।

नानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] माँ की माँ । माता की माता । मातामही ।

विशेष—इस शब्द के आगे 'इया' प्रत्यय लगाकर संबंधसूचक विशेषण भी बनाते हैं । जैसे, ननिया सास ।

मुहा०—नानी मर जाना = होश ठिकाने हो जाना । प्राण सूख जाना । आपत्ति सी आ जाना । संकट या दुःख सा पड़ जाना । उ०—हरमोहन की नानी तो पानेवालों को देखते ही मर गई थी ।—अयोध्या (शब्द०) । नानी याद आना—दे० 'नानी मर जाना' ।

नानुकर—संज्ञा पुं० [हिं० न + करना] नाहीं । इनकार ।

क्रि० प्र०—करना ।

नान्ह—वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा या न्यून)] १. छोटा । लघु । नन्हा । २. नीच । क्षुद्र । उ०—कहै कबीर सुनो हो अंग्रा । नान्ह जानि लतिआए आग्रा ।—कबीर (शब्द०) ३. पतला । बारीक । महीन ।

मुहा०—नान्ह कातना = (१) बहुत बारीक काम करना । (२) कठिन या दुष्कर कार्य करना । उ०—अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी कब कान्ह ? तुलसी लोग रिझाइबो करहिं कातिबो नान्ह ।—तुलसी (शब्द०) ।

नान्हक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नानक' ।

नान्हरिया(पु)‡—वि० [हिं० नान्ह + र, इया (प्रत्य०)] छोटा नन्हा । उ०—मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ो किन होहि । यहि मुख मधुरे बचन हँसि कबहूँ जननि कहोगे मोहि ।—सूर (शब्द०) ।

नान्हा(पु)†—वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा) या सं० न्यून] [वि० स्त्री० नान्ही] १. छोटा । लघु । नन्हा । उ०—सर्बस मैं पहले ही दीनो नान्ही नान्ही दँतुली द्वै पर ।—सूर (शब्द०) । २ पतला । बारीक । महीन । उ०—मन मनसा को मारि के नान्हा करिके पीस । तब सुख पावै सुंदरी पदम झलक्के सीस ।—कबीर (शब्द०) । ३. नीच । क्षुद्र । उ०—खेलत खात रहे ब्रज भीतर । नान्हे लोग तनक धन ईतर ।—सूर (शब्द०) ।

नान्हा—संज्ञा पुं० छोटा बच्चा । लड़का ।

यौ०—नान्हा बारा = छोटा बालक । उ०—काली जी की छोहरी सेई नान्ही बारि ।—नेरस्वामी (शब्द०) ।

नाप—संज्ञा स्त्री० [सं० मापन, हिं० माप] १. किसी वस्तु का विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निर्दिष्ट विस्तार का कितना गुना है । किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई जिसकी छोटाई बड़ाई (या न्यूनता अधिकता) का निश्चय किसी निर्दिष्ट लंबाई के साथ मिलाने से किया जाय । परिमाण । माप । जैसे,—यह धोती नाप में पाँच गज है । २. विस्तार का निर्धारण । किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई आदि कितनी है इसको ठीक ठीक स्थिर करने के लिये की जानेवाली क्रिया । नापने का काम । जैसे,—जमीन की नाप हो रही है ।

यौ०—नाप जोख । नाप तौल ।

३. वह निर्दिष्ट लंबाई जिसे एक मानकर किसी वस्तु का विस्तार कितना है, यह स्थिर किया जाता है । मान । जैसे,—यहाँ की नाप कुछ छोटी है इसी से कपड़ा घटा । ४. निर्दिष्ट लंबाई की वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लंबी, चौड़ी आदि है । नापने की वस्तु । मानदंड । नपना । पैमाना ।

नापजोख—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाप + जोख] दे० 'नापतौल' ।

नापतौल—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाप + तौल] १. नापने और तौलने की क्रिया । २. परिमाण या मात्रा जो नाप या तौलकर स्थिर की जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापदान‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाबदान' ।

नापना—क्रि० स० [सं० मापन] १ किसी वस्तु का विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तार का कितना गुना है । किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई कितनी है, यह निश्चित करना । लंबाई, चौड़ाई आदि की परीक्षा करना । मापना । आयत परिमाण निर्दिष्ट करना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—सिर नापना = सिर काटना ।

२. अंदाज करना । कोई वस्तु कितनी है इसका पता लगाना । जैसे, दूध नापना, शराब नापना ।

नापसंद—वि० [फ़ा०] १. जो पसंद न हो । जो अच्छा न लगे । अनसुहाता । जैसे,—चीज नापसंद हो तो दाम वापस । २. अप्रिय । अरुचिकर । जो न जँचे ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापाक—वि० [फ़ा०] १. अशुद्ध । अशुचि । अपवित्र । भ्रष्ट । २. मैला कुचैला ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नापाकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपवित्रता । अशुद्धता ।

नापायदार—वि० [फ़ा०] १. जो अधिक ठहरने या चलनेवाला न हो । जो टिकाऊ न हो । क्षणभंगुर । २. जो दृढ़ या मजबूत न हो ।

नापायदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अस्थायित्व । क्षणभंगुरता । २. अदृढ़ता । अस्थिरता ।

नापास—वि० [हिं० ना + अं० पास] जो पास या मंजूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नामंजूर। अस्वीकृत। (क्व०)। जैसे,—कौंसिल में उनका बिल नापास हुआ।

नापित—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सिर के बाल मूँड़ने (या काटने), और नाखून आदि काटने का काम करता हो। नाई। नाऊ। हज्जाम।

विशेष—धर्मशास्त्र में नापित की गणना अच्छे शूद्रों में है। स्मृतियों में नापित संकर जाति के अंतर्गत माने गए हैं। पराशर स्मृति में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न संतान का यदि ब्राह्मण द्वारा संस्कार न हुआ हो तो वह नापित कहलाता है। पर परशुराम के अनुसार कुबेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्री के संयोग से नापितों की उत्पत्ति हुई। मनु ने नापितों की गिनती भोज्यान्न शूद्रों में की है।

पर्या०—क्षुरी। मुंडी। दिवाकीर्ति। अंत्यावसायी। सूत्री। नखकुट्ट। ग्रामणी। चंडिल। भांडपुट।

नापितायनि—संज्ञा पुं० [सं०] नाई का पुत्र [को०]।

नापित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाई का धंधा। २. नाई का बेटा [को०]।

नापैद—वि० [फ़ा० ना + पैदा] १. जो पैदा न होता हो। २. न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नाफ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाफ़] १. नाभि। २. केंद्र। मध्य [को०]।

नाफरमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाफ़रमाँ] गुलेलाला का एक भेद जो कुछ नीलापन लिए होता है।

नाफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाफ़] मृगमद कोश। कस्तूरी की थैली जो कस्तूरीमृगों की नाभि में होती है।

नाबदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाब (= नाली)] वह नाली जिससे होकर घर का गलीज, मैला पानी आदि बाहर बहकर जाता है। पनाला। नरदा।

मुहा०—नाबदान में मुँह मारना = घृणित कर्म करना। बुरा और घिनौना काम करना।

नाबालिग—वि० [फ़ा० नाबालिग़] जिसका लड़कपन अभी दूर न हुआ हो। जो अपनी पूरी अवस्था को न पहुँचा हो। जो पूरा जवान न हुआ हो। अप्राप्तवयस्क।

विशेष—कानून में कुछ बातों के लिये २१ वर्ष और कुछ के लिये १८ वर्ष से कम अवस्था का मनुष्य नाबालिग समझा जाता है।

नाबालिगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाबालिग़ी] नाबालिग रहने की अवस्था।

नाबूद—वि० [फ़ा०] जिसका अस्तित्व न रहा हो। नष्ट। ध्वस्त। क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाभ—संज्ञा स्त्री० [सं० 'नाभि' का समासांत रूप] १. नाभि। ढोंढी। धुनी। २. शिव का एक नाम। ३. भागवत में वर्णित एक सूर्यवंशी राजा जो भगीरथ के पुत्र थे। ४. अस्त्रों का एक संहार।

नाभक—संज्ञा पुं० [सं०] हरीतकी। हड़।

नाभस—वि० [सं०] नभस् संबंधी। आकाश संबंधी। आकाशीय [को०]।

नाभा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध भक्त जिनका नाम नारायण-दास था।

विशेष—कहते हैं, ये जाति के डोम थे और दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे। भक्तमाल के कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि इनका जन्म हनुमान वंश में हुआ था। मारवाड़ी भाषा में डोम शब्द का अर्थ हनुमान है। शायद इसीलिये इन टीकाकारों ने इन्हें हनुमानवंशीय लिखा है। पर गुरु भक्त-माल में लिखा है कि तैलंग देश में गोदावरी के समीप उत्तर रामभद्राचल पर्वत पर रामदास नामक एक ब्राह्मण हनुमान जी के अंशावतार रहते थे। इन्हीं के पुत्र नाभा थे। पर कई कारणों से इनका नीच कुल में उत्पन्न होना ही ठीक प्रतीत होता है। ये जन्मांध कहे जाते हैं। बचपन में ही इनके देश में घोर अकाल पड़ा। माता इन्हें पाल न सकी, वन में छोड़कर चली गई। कील्ह जी अपने शिष्य अग्रदास के साथ उस वन से होकर जा रहे थे। उन्होंने बच्चे को उठा लिया और जयपुर के पास गलता नामक स्थान में ले गए। वहाँ महात्माओं की कृपा से और साधुओं का प्रसाद खाने खाते इनकी आँख भी अच्छी हो गई और बुद्धि भी निर्मल हो गई। अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से इन्होंने 'भक्तमाल' लिखा जिसमें अनेक नए पुराने भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। अनुमान से भक्तमाल ग्रंथ संवत् १६४२ और संवत् १६८० के बीच में बनाया गया क्योंकि भक्तमाल में गोसाईं गिरधर जी के विषय में लिखा है कि 'बिट्ठलेश नंदन सुभग जग कोउ नहिं ता समान। श्री वल्लभ जू के वंश में सुरतरु गिरधर भ्राजमान।' यह बात निश्चित है कि संवत् १६४२ में श्री बिट्ठलनाथ गोसाईं का परलोक हुआ और उनके पुत्र गद्दी पर बैठे। इस पद से गोस्वामी तुलसीदास जी का भी भक्तमाल बनने के समय वर्तमान रहना पाया जाता है—रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी। संवत १६८० गोस्वामी जी का मृत्युकाल प्रसिद्ध ही है।

नाभा[2]—पंजाब की एक (राज्य) रियासत जो भारतवर्ष की स्वतंत्रता के पूर्व प्रसिद्ध थी।

नाभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वाल्मीकि के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो ययाति के पुत्र थे।

विशेष—नाभाग के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। रामायण की वंशावली के अनुसार राजा अंबरीष नाभाग के प्रपितामह थे, पर भागवत में अंबरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है।

२. मार्कंडेय पुराण के अनुसार कारुष वंश के एक राजा जो दिष्ट के पुत्र थे।

विशेष—इनकी कथा उक्त पुराण में इस प्रकार है—जब ये युवावस्था को प्राप्त हुए तब एक वैश्य की कन्या को देखकर मोहित हो गए और उस कन्या के पिता द्वारा अपने पिता से विवाह की आज्ञा माँगी। ऋषियों की सम्मति से पिता

ने आज्ञा दी कि 'पहले एक क्षत्रिय कन्या से विवाह करके तब वैश्य कन्या से विवाह करो तो कोई दोष नहीं। नाभाग ने पिता की बात न मानी। पिता पुत्र में युद्ध छिड़ गया। परिव्राट् मुनि ने यह युद्ध शांत किया। नाभाग वैश्य कन्या का पाणिग्रहण करके वैश्यत्व को प्राप्त हुए। प्रमति मुनि ने बल की व्यवस्था दी थी कि यदि कोई क्षत्रिय उनकी कन्या का बलपूर्वक विवाह लेगा तो उनका वैश्यत्व छूट जायगा। अंत में नाभाग भी इसी रीति से फिर क्षत्रिय हो गए।

नाभागारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वृष्णिवंश के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र।

नाभावर्त—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभ्यावर्त] वह भौंरी जो घोड़े की नाभि में हो। यह दूषित मानी जाती है।

नाभि¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चक्रमध्य। पहिए का मध्य भाग। नाह। २. जरायुज जंतुओं के पेट के बीचोबीच वह चिह्न या गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायुनाल जुड़ा रहता है। ढोंढी। धुन्नी। तुन्नी। तुंदी। तुंदिका। तुंदकूपी। ३. कस्तूरी।

नाभि—संज्ञा पुं० १. प्रधान राजा। २. प्रधान व्यक्ति या वस्तु। ३. गोत्र। ४. क्षत्रिय। ५. महादेव। ६. प्रियव्रत राजा के पौत्र (ब्रह्मांड पुराण)। ७. भागवत के अनुसार अग्नीध्र राजा के पुत्र जिनकी पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। नाभि ने पत्नी के सहित पुत्र की कामना से बड़ा भारी यज्ञ किया। उस यज्ञ में प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् साक्षात् प्रकट हुए। नाभि ने वर माँगा कि मेरे तुम्हारे ही ऐसा पुत्र हो। भगवान् ने कहा मेरे ऐसा दूसरा कौन है? अतः मैं ही पुत्र होकर जन्म लूँगा। कुछ काल के पीछे मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव उत्पन्न हुए जो विष्णु के २४ अवतारों में माने जाते हैं। जैनों के आदि तीर्थंकर भी ऋषभदेव माने जाते हैं।

नाभिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० नाभिकण्टक] निकली हुई तुंदी या ढोंढी।

नाभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटभी वृक्ष।

नाभिगुडक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त। तुंदी का उभरा भाग।

नाभिगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत राजा के पुत्र जिनके नाम पर कुश द्वीप का खंड एक वर्ष हुआ।

नाभिगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का आवर्त। तुंदी का उभरा अंग।

नाभिछेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत के जन्मे हुए बच्चे के नाल काटने की क्रिया।

नाभिज—संज्ञा पुं० [सं०] (विष्णु की नाभि से उत्पन्न) ब्रह्मा।

नाभिजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० नाभिजन्मन्] दे० 'नाभिज'।

नाभिनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाड़ी जो गर्भकाल में माता की रसवहा नाड़ी से जुड़ी रहती है।

नाभिनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाली (को०)।

नाभिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें नाभि में घाव हो जाता और वह पक जाती है।

नाभिभू—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (को०)।

नाभिमूल—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का मध्यभाग (को०)।

नाभिल—वि० [सं०] उभरी हुई नाभिवाला। निकली हुई तुंदीवाला।

नाभिवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] नाभिछेदन। नाल काटने की क्रिया।

नाभिवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के नौ वर्षों में से एक। भारतवर्ष।

विशेष—अग्नीध्र राजा ने अपने नौ पुत्रों को जंबू द्वीप के नौ खंड दिए। नाभि को जो खंड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। पीछे नाभि के पौत्र भरत के नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभिसंबंध—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रसंबंध।

नाभी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभि] दे० 'नाभि'।

नाभील—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्रियों के कटि के नीचे का भाग। उरुसंधि। २. नाभि की गहराई। नाभि का गड्ढा। ३. कृच्छ्र। कष्ट। ४. नाभि जो उभरी हुई हो (को०)।

नाभ्य¹—वि० [सं०] नाभि संबंधी।

नाभ्य²—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

नामंजूर—वि० [फ़ा० ना + अ० मंजूर] जो मंजूर न हो। जो माना न गया हो। जो कबूल न किया गया हो। अस्वीकृत। जैसे, अरजी नामंजूर होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाम¹—संज्ञा पुं० [सं० नामन्, तुल० फ़ा० नाम] [वि० नामी] १. वह शब्द जिससे किसी वस्तु, व्यक्ति या समूह का बोध हो। किसी वस्तु या व्यक्ति का निर्देश करनेवाला शब्द। संज्ञा। आख्या। अभिख्या। आह्वा। जैसे,—इस आदमी का नाम रामप्रसाद है, इस पेड़ का नाम अशोक है।

मुहा०—नाम उछलना = बदनामी होना। अपकीर्ति फैलना। निंदा होना। नाम उछालना = अपकीर्ति फैलाना। चारों ओर निंदा कराना। जैसे,—क्यों ऐसा काम करके अपने बाप दादों का नाम उछाल रहे हो! नाम उठ जाना = नाम न रह जाना। चिह्न मिट जाना या चर्चा बंद हो जाना। लोक में स्मरण भी न रह जाना। जैसे,—उसका तो नाम ही संसार से उठ जायगा। नाम करना = नाम रखना। पुकारने के लिये नाम निश्चित करना। किसी दूसरे का नाम करना = दूसरे का नाम लगाना। दूसरे पर दोष लगाना। दूसरे के सिर दोष मढ़ना। जैसे,—आप चुराकर दूसरे का नाम करता है। (किसी बात का) नाम करना = कोई बात पूरी तरह से न करना, कहने भर के लिये थोड़ा सा करना। दिखाने या उलाहना छुड़ाने भर के लिये थोड़ा सा करना। जैसे,—पढ़ते क्या हैं नाम करते हैं। नाम का = (१) नामधारी। जैसे,—इस नाम का कोई आदमी यहाँ नहीं।

(२) कहने सुनने भर को। उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। जैसे,—वे नाम के मंत्री हैं, काम तो और ही करते हैं। (किसी के) नाम का कुत्ता न पालना = किसी से इतना बुरा मानना या घृणा करना कि उसका नाम लेना या सुनना भी नापसंद करना। नाम से चिढ़ना। नाम के लिये = (१) कहने सुनने भर के लिये। थोड़ा सा। अणु मात्र। (२) उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। नाम को = (१) कहने सुनने भर को। ऐसा नहीं जिससे काम चल सके। (२) केवल इतना जितने से कहा जा सके कि एकदम अभाव नहीं है। बहुत थोड़ा। अत्यंत अल्प। नाम को नहीं = जरा सा भी नहीं। अणु मात्र भी नहीं। कहने सुनने को भी नहीं। एक भी नहीं। जैसे,—(क) उस मैदान में नाम को भी पेड़ नहीं है। (ख) घर में नाम को भी नमक नहीं है। (ग) उसने नाम को भी जीवजंतु न छोड़ा। नाम चढ़ना = किसी नामावली में नाम लिखा जाना। नाम दर्ज होना। नाम चढ़ाना = किसी नामावली में नाम लिखाना। नाम दर्ज कराना। नाम चमकना = चारों ओर अच्छा नाम होना। कीर्ति फैलना। यश फैलना। प्रसिद्ध होना। नाम चलना = लोगों में नाम का स्मरण बना रहना। यादगार बनी रहना। जैसे,—संतान से नाम चलता है। नामचार को = (१) नामोच्चार भर के लिये। नाम को। कहने सुनने भर को। पूरे तौर से या मन से नहीं। जैसे,—नामचार को वह यहाँ आता है, कुछ काम तो करता नहीं। (२) बहुत थोड़ा। किंचिन्मात्र। नाम जगाना = नाम की याद कराते रहना। स्मारक बनाए रखना। ऐसा काम करना कि लोगों में स्मरण बना रहे। नाम जपना = (१) बार बार नाम लेना। बार बार नाम का उच्चारण करना। नाम रटना। (२) भक्ति या प्रेम से ईश्वर या देवता का नाम (माला फेरते हुए या यों ही) बार बार लेना। नाम स्मरण करना। ईश्वर या देवता का स्मरण करना। नाम देना = (१) नाम रखना। नामकरण करना। (२) किसी देवता के नाम का मंत्र देना। सांप्रदायिक मंत्र का उपदेश देना। नामधरता = नाम रखनेवाला। नामकरण करनेवाला पिता। बाप। (किसी का) नाम धरना = (१) नाम स्थिर करना। नाम रखना। नामकरण करना। (२) बदनामी करना। बुरा कहना। दोष लगाना। जैसे,—ऐसा काम क्यों करो जिससे दस आदमी नाम धरे। (३) अपनी वस्तु का मोल माँगना। अपनी चीज का दाम कहना। जैसे,—पहले तुम अपनी चीज का नाम धरो, जो जँचेगा मैं भी कहूँगा। (किसी को) नाम धरना = (१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। ऐब बताना। जैसे,—हमारी पसंद की हुई चीज का तुम नाम नहीं धर सकते। नाम धरवाना = दे० 'नाम धराना'। नाम (नाँव) धराना = (१) नामकरण कराना। (२) बदनामी कराना। निंदा कराना। उ०—(क) फिरत धरावत मेरो नामा। मातु न देति होयगी वामा। (ख) डारि दियो गुरु लोगन को डर, गाँव चवाव में नाँव धरायो।—मतिराम (शब्द०) नाम न लेना = अरुचि, घृणा, भय आदि के कारण चर्चा तक न करना। दूर रहना। बचना। संकल्प या विचार तक न करना। जैसे,—(क) उसने मुझे बहुत दिक किया, अब उसका कभी नाम न लूँगा। (ख) उसका स्वाद इतना बुरा है कि एक बार खाओगे तो फिर कभी नाम न लोगे। (ग) अब वह यहाँ आने का नाम तक नहीं लेता। तो मेरा नाम नहीं = तो मैं कुछ भी नहीं। तो मुझे तुच्छ समझना। जैसे,—यदि सबेरे मैं उसे न लाऊँ तो मेरा नाम नहीं। नाम निकल जाना = किसी (भली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध हो जाना। किसी विषय में ख्याति हो जाना। किसी बात के लिये मशहूर या बदनाम हो जाना। जैसे,—जिसका नाम निकल जाता है वह अगर कुछ न करे तो भी लोग उसी को कहते हैं। नाम निकलना = (१) किसी बात के लिये नाम प्रसिद्ध होना। (२) तंत्र आदि की युक्ति से किसी वस्तु को चुराने वाले का नाम प्रकट होना। (३) नाम का कहीं प्रकट या प्रकाशित होना। जैसे, गजट में नाम निकलना। नाम निकलवाना = (१) बदनामी कराना। नाम में कलंक लगवाना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट कराना। (३) किसी नामावली में से नाम कटवाना। किसी विषय से किसी को अलग कराना। नाम निकालना = (१) (भली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध करना। यश फैलाना या बदनामी करना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रगट करना। (३) किसी नामावली से नाम काटना। किसी विषय से अलग करना। नाम पड़ना = नाम रखा जाना। नामकरण होना। नाम निश्चित होना। किसी के नाम = (१) किसी के लिये। किसी के पक्ष में। किसी के व्यवहार या उपयोग के लिये। किसी के अधिकार में। किसी को कानून द्वारा प्राप्त। जैसे,—(क) उसकी सब जायदाद स्त्री के नाम है। (ख) उसने अपनी संपत्ति भतीजे के नाम कर दी। (२) किसी को लक्ष्य करके। किसी के संबंध में। जैसे,—उसके नाम वारंट निकला है। (३) किसी के प्रति। किसी को संबोधन करके। किसी के हाथ में पड़ने के लिये। किसी को दिए जाने के लिये। जैसे,—किसी के नाम चिट्ठी आना, सम्मन जारी होना इत्यादि। किसी के नाम पर = किसी को अर्पित करके। किसी के निमित्त। किसी के स्मारक या तुष्टि के लिये। किसी का नाम चलाने या किसी के प्रति आदर, भक्ति प्रकट करने के लिये। जैसे,—(क) ईश्वर के नाम पर कुछ दो। (ख) उसने अपने बाप के नाम पर यह धर्मशाला बनवाई है। किसी के नाम पड़ना = किसी के नाम के आगे लिखा जाना। जिम्मेदार रखा जाना। किसी के नाम डालना = किसी के नाम के आगे लिखना। किसी के जिम्मे रखना। जैसे,—अगर उनसे रुपया वसूल न हो तो मेरे नाम डाल देना। (किसी के) नाम पर मरना या मिटना = किसी के प्रेम में लीन होना। किसी के प्रेम में खपना। प्रेम के आवेश में अपने हानि लाभ या कष्ट की ओर कुछ भी ध्यान न देना।

(किसी के) नाम पर जूता न लगाना = किसी को अत्यंत तुच्छ समझना। (किसी के) नाम पर बैठना = (१) किसी के भरोसे संतोष करके स्थिर रहना। किसी के ऊपर यह विश्वास करके धैर्य धारण करना या उद्योग छोड़ देना कि जो कुछ उसे करना होगा, करेगा। जैसे,—अब तो ईश्वर के नाम पर बैठ रहते हैं, जो कुछ होना होगा सो होगा। (२) किसी के आसरे में या किसी के ख्याल से कोई ऐसा काम न करना जिसका करना स्वाभाविक या आवश्यक हो। जैसे,—(क) यह स्त्री कब तक अपने पति के नाम पर बैठी रहेगी और दूसरा विवाह न करेगी ? (ख) कब तक अपने मित्र के नाम पर बैठे रहोगे, उठो तैयारी करो। नाम पुकारना = ध्यान आकर्षित करने या बुलाने के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाना। (किसी का) नाम बद करना = बदनामी करना। कलंक लगाना। दोष लगाना। नाम बदनाम करना = कलंक लगाना। ऐब लगाना। बदनामी करना। (किसी का) नाम बद होना = किसी बुरी बात के लिये किसी का नाम प्रसिद्ध हो जाना। नाम निकल जाना। नाम बाकी रहना = (१) मरने या कहीं चले जाने पर भी कीर्ति का बना रहना। लोगों में स्मरण बना रहना। (२) केवल नाम ही नाम रह जाना और कुछ न रहना। पुरानी बातों के कारण प्रसिद्धि मात्र रह जाना पर अब उसकी सत्ता न रहना। जैसे,—सिर्फ नाम बाकी रह गया है कुछ जायदाद अब उनके पास नहीं है। नाम बिकना = नाम प्रसिद्ध हो जाने के कारण किसी की वस्तु का आदर होना। नाम मशहूर होने से कदर होना। नाम बिगाड़ना = (१) कोई बुरा काम करके बदनामी करना। (२) बदनामी करना। कलंक लगाना। नाम मिटना = (१) नाम जाता रहना। नाम न रहना। स्मारक या कीर्ति का लोप होना। (२) नाम तक शेष न रहना। कोई चिह्न न रह जाना। एक दम अभाव हो जाना। नाम मात्र = नाम लेने भर को। बहुत थोड़ा। अत्यंत अल्प। (कोई) नाम रखना = (१) नाम निश्चित करना। नामकरण करना। (किसी का) नाम रखना = (१) नाम निश्चित करना। नामकरण करना। (२) कीर्ति सुरक्षित रखना। अच्छा या बड़ा काम करके यश को स्थिर रखना। नाम डूबने न देना। जैसे,—यह लड़का अपने बाप का नाम रखेगा। (३) बदनामी करना। निंदा करना। बुरा कहना। दे० नाम धरना। (किसी को) नाम रखना = (१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। नुक्स निकालना। ऐब बताना। दे० नाम धरना। नाम लगना = किसी दोष या अपराध के संबंध में नाम लिया जाना। दोष लगना। कलंक मढ़ा जाना। जैसे,—करे किसी ने और नाम लगा हमारा। नाम लगाना = किसी दोष या अपराध के संबंध में नाम लेना। दोष मढ़ना। अपराध लगाना। कलंक लगाना। जैसे,—खुद तुम्हीं ने यह काम किया और अब दूसरे का नाम लगाते हो। (किसी का) नाम लिखना = किसी कार्य या विषय में सम्मिलित करने के लिये रजिस्टर, बही आदि में नाम लिखना। किसी मंडली, संस्था, कार्यालय आदि में सम्मिलित करना। जैसे,—इस लड़के का नाम अभी स्कूल में नहीं लिखा है। (किसी के) नाम लिखना = किसी के नाम के आगे लिखना। किसी के जिम्मे लिखना या टाँकना। जैसे,—इसका दाम हमारे नाम लिख लो। नाम लिखाना = किसी विषय या कार्य में सम्मिलित होने के लिये रजिस्टर बही आदि में नाम लिखाना। किसी मंडली, संस्था या कार्यालय आदि में सम्मिलित होना। जैसे,—इसका नाम स्कूल में जल्दी लिखाओ। (किसी का) नाम लेकर = (१) किसी प्रसिद्ध या बड़े आदमी के नाम से लोगों का ध्यान आकर्षित करके। नाम के प्रभाव से। जैसे,—यह अपने बाप का नाम लेकर भीख माँगेगा और क्या करेगा ? (२) (किसी देवता या पूज्य पुरुष का) स्मरण करके। जैसे,—अब तो भगवान का नाम लेकर इस काम को कर चलते हैं। नाम लेना = (१) नाम का उच्चारण करना। नाम कहना। (२) फलप्राप्ति के लिये या भक्तिवश ईश्वर या देवता का नाम बार बार उच्चारण करना। नाम जपना। नाम स्मरण करना। जैसे,—इस उपकार के लिये वे सदा आपका नाम लेते रहेंगे। (४) चर्चा करना। जिक्र करना। जैसे,—फिर वहाँ जाने का नाम लेते हो। (५) नाम बदनाम करना। दोष लगाना। जैसे,—क्यों व्यर्थ किसी का नाम लेते हो, न जाने किसने यह काम किया है। नाम व निशान = ऐसा चिह्न या लक्षण जिससे किसी वस्तु के होने का प्रमाण मिले। पता। खोज। जैसे,—यहाँ बस्ती का तो कहीं नाम व निशान नहीं है। नाम व निशान मिट जाना = पता न रह जाना। एकदम नाश हो जाना। नाम व निशान न होना = एकदम अभाव होना। बिल्कुल न होना। एक भी या लेशमात्र न होना। (किसी) नाम से = शब्द द्वारा निर्दिष्ट होकर या करके। जैसे, किसी नाम से पुकारना। (किसी) के नाम से = (१) चर्चा से। जिक्र से। जैसे,—मुझे तो उसके नाम से चिढ़ है। (२) (किसी का) संबंध बताकर। नाम लेकर। यह प्रकट करके कि कोई बात किसी की ओर से है। (किसी की) जिम्मेदारी बताकर। जैसे,—जितना रुपया चाहना मेरे नाम से ले लेना। (३) (किसी को) हकदार या मालिक बनाकर। (किसी के) उपयोग या भोग के लिये। जैसे,—वह लड़के के नाम से जायदाद खरीद रहा है (४) नाम के प्रभाव से। नाम लेकर। ध्यान आकर्षित करके। जैसे,—अपने बड़ों के नाम से भीख माँग खाओगे। (५) नाम लेते ही। नाम का उच्चारण होते ही। जैसे,—उसके नाम से वह काँपता है। नाम से काँपना = नाम सुनते ही डर जाना। बहुत भय मानना। नाम होना = (१) नाम लगना। दोष मढ़ा जाना। कलंक लगना। जैसे,—बुराई कोई करे, नाम हो हमारा। (२) नाम प्रसिद्ध होना। जैसे,—काम तो दूसरे करते हैं, नाम उसका होता है।

२. अच्छा नाम । सुनाम । प्रसिद्धि । ख्याति । यश । कीर्ति । जैसे,—इधर उनका बड़ा नाम है ।

क्रि॰ प्र॰—होना ।

मुहा॰—नाम कमाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना । कीर्तिलाभ करना । मशहूर होना । नाम करना = कीर्तिलाभ करना । मशहूर होना । नाम करना = कीर्ति लाभ करना । प्रख्यात होना । जैसे,—उसने लड़ाई में बड़ा नाम किया । नाम को धब्बा लगाना = दे॰ 'नाम पर धब्बा लगना' । नाम को मरना = सुयश के लिये प्रयत्न करना । अच्छा नाम पाने के लिये उद्योग करना । कीर्ति के लिये जी तोड़ परिश्रम करना । नाम चलना = यश स्थिर रहना । कीर्ति का बहुत दिनों तक बना रहना । नाम जगना = नाम चमकना । कीर्ति फैलना । ख्याति होना । नाम जगाना = नाम चमकना । उज्वल कीर्ति फैलाना । नाम डुबाना = नाम को कलंकित करना । यश और कीर्ति का नाश करना । मान और प्रतिष्ठा खोना । नाम डूबना = (१) नाम कलंकित होना । यश और कीर्ति का नाश होना । (२) नाम न चलना । किसी का लुप्त होना । स्मारक न रहना । नाम पर धब्बा लगाना = नाम को कलंकित करना । यश पर लांछन लगाना । बदनामी करना । जैसे,—क्यों ऐसा काम करके बड़ों के नाम पर धब्बा लगाते हो ? नाम पाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना । मशहूर होना । नाम रह जाना = लोगों में स्मरण बना रहना । कीर्ति की चर्चा रहना । यश बना रहना । जैसे,—मरने के पीछे नाम ही रह जाता है । नाम से पुजना = नाम प्रसिद्ध होने के कारण आदर पाना । नाम से बिकना = नाम प्रसिद्ध हो जाने से आदर पाना । नाम ही नाम रह जाना = पुरानी बातों के कारण लोगों में प्रसिद्ध मात्र रह जाना, पर उन बातों का न रहना । जैसे,—नाम ही नाम रह गया है, उनके पास अब कुछ है नहीं ।

नाम²—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] १. प्रसिद्धि । इज्जत । धाक । दबदबा । २. कुल । वंशपरंपरा । नस्ल । ३. यादगार । स्मारक । ४. कलंक । लांछन [को॰] ।

नामक—वि॰ [सं॰] नाम से प्रसिद्ध । नाम धारण करनेवाला । जैसे,—बिहार में पटना नामक एक नगर है ।

नामकरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नाम रखने का काम । पहचान के लिये नाम निश्चित करने की क्रिया । २. हिंदुओं के सोलह संस्कारों में से एक जिसमें बच्चे का नाम रखा जाता है ।

विशेष—यह पाँचवाँ संस्कार है । जन्म से ग्यारहवें या बारहवें दिन बच्चे का नामकरण संस्कार होना चाहिए । ग्यारहवाँ दिन इसके लिये बहुत अच्छा है, यदि ग्यारहवें दिन न हो सके तो बारहवें दिन होना चाहिए । गोभिल गृह्यसूत्र में ऐसी ही व्यवस्था है । स्मृतियों में वर्ण के अनुसार व्यवस्था मिलती है, जैसे, क्षत्रिय के लिये तेरहवें दिन, वैश्य के लिये सोलहवें दिन और शूद्र के लिये बाईसवें दिन । गोभिल गृह्यसूत्र में नामकरण का विधान इस प्रकार है : बच्चे को अच्छे कपड़े पहनाकर माता वाम भाग में बैठे हुए पिता की गोद में दे । फिर उसकी पीठ की ओर से परिक्रमा करती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो । इसके अनंतर पति वेदमंत्र का पाठ करके बच्चे को फिर अपनी पत्नी की गोद में दे दे । फिर होम आदि करके नाम रखा जाय ।

नामकरण पद्धति में यह विधान इस रूप में हो गया है : नामकरण के दिन पिता गौरी, षोडशमातृका आदि का पूजन और वृद्धिश्राद्ध करके अपनी पत्नी को वाम भाग में बैठावे, फिर पत्थर की पटरी पर दो रेखाएँ खींचे फिर दीपक जलाकर यदि लड़का हो तो उसके दाहिने कान के पास 'अमुक देव शर्मा' इत्यादि और लड़की हो तो 'अमुक देवी' इत्यादि कहकर नामकरण करे । नाम के अंत में यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा और देव, क्षत्रिय हो तो वर्मा या त्राता, वैश्य हो तो भूति या गुप्त, और शूद्र हो तो दास होना चाहिए । पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार पुरुष का नाम तद्धितांत न होना चाहिए, पर स्त्री का नाम यदि तद्धितांत हो तो उतना दोष नहीं, जैसे, गांधारी, कैकेयी ।

नामकर्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नामकर्मन्] १. नामकरण संस्कार । २. जैन शास्त्रानुसार कर्म का वह भेद जिससे जीव गति और जाति आदि पर्यायों का अनुभव करता है ।

विशेष - नामकर्म ३४ प्रकार के माने गए हैं—जैसे नरक गति, तिर्यक् गति, द्वींद्रिय जाति, चतुरिंद्रिय जाति, अस्थिर, शुभ, अशुभ, स्थावर, सूक्ष्म इत्यादि ।

नामकीर्तन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ईश्वर के नाम का जप या उच्चारण । भगवान् का भजन ।

नामकृत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कौटिल्य के अनुसार असली चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम बताना । कल्पित नाम बतलाना ।

नामग्रह, नामग्रहण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नाम के साथ उल्लेख । नाम लेकर कहना या पुकारना [को॰] ।

नामग्राम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नाम और पता ।

नामजद—वि॰ [फ़ा॰ नामज़द] १. जिसका नाम किसी बात के लिये निश्चित कर दिया गया हो या चुन लिया गया हो । जैसे,—वे इस साल तहसीलदारी के लिये नामजद हो गए हैं । २. प्रसिद्ध । मशहूर ।

नामजदगी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नामज़दगी] किसी बात या काम के लिये नाम निश्चित करना [को॰] ।

नामजाद(पु)—वि॰ [फ़ा॰ नामज़द] दे॰ 'नामजद २' । उ॰- बाइ लौन स्याम को हराम खोर कैसे होइ नामजाद जगत में जीतपौ पन तीनौं है । —सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ४८५ ।

नामतः—अव्य॰ [सं॰ नामतस्] नाम के द्वारा । नाम से [को॰] ।

नामदार—वि॰ [फ़ा॰] जिसका बड़ा नाम हो । नामी । प्रसिद्ध ।

नामदेव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. कृष्ण के उपासक एक प्रसिद्ध भक्त ।

विशेष—नामा जी कृत भक्तमाल में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है। नामदेव वामदेव जी के नाती (दौहित्र) थे। वामदेव कृष्ण के उपासक थे इससे नामदेव में भी बाल्यावस्था से ही कृष्ण की सच्ची भक्ति थी। वामदेव कुछ दिनों के लिये बाहर गए और अपने दौहित्र नामदेव से कृष्ण की प्रतिमा को प्रति दिन दूध चढ़ाने के लिये कहते गए। नामदेव ने मूर्ति के आगे दूध रखा और पीने को प्रार्थना का। जब मूर्ति ने दूध न पिया तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान् ने प्रकट होकर दूध पिया। नामदेव जब लौटकर आए तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ। धीरे धीरे यह बात बादशाह के कानों तक पहुँची। उसने नामदेव को बुलाकर करामात दिखाने के लिये कहा। नामदेव ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन संयोगवश एक गाय का बछड़ा मर गया और वह उसके शोक में बहुत व्याकुल हुई। नामदेव ने बछड़े को जिला दिया।

२. महाराष्ट्र देश के एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १३०० के लगभग वर्तमान थे।

नामद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत जिसमें अगहन सुदी तीज को गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कांति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवियों की पूजा होती है (देवीपुराण)।

नामधन—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो मल्लार, शंकराभरण, बिलावल, सूहे और केदारे के योग से बना माना जाता है।

नामधराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम + धरना] बदनामी। निंदा। अपकीर्ति।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

नामधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में नाम अर्थात् संज्ञा पदों से निर्मित धातु [को०]।

नामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + धाम] नाम और पता। नाम ग्राम। पता ठिकाना।

नामधारक—वि० [सं०] केवल किसी नाम को धारण करनेवाला, उस नाम के अनुसार कर्म न करनेवाला। नाम मात्र का।

विशेष—जो ब्राह्मण वेदपाठ आदि कर्म न करते हों उन्हें पराशर स्मृति में 'नामधारक' कहा गया है।

नामधारी—वि० [सं०] नाम धारण करनेवाला। नामवाला। नामक।

नामधेय—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाम। अभिधान। आख्या। निदर्शक शब्द। २. नामकरण।

नामधेय—वि० नामवाला। नाम का।

नामनापु‡—क्रि० स० [सं० नमन] झुकाना। नवाना। प्रणमन करना। उ०—नामै सीस अनेक नरेसुर, रैत सुखी प्रणरेह।—रघु० रू०, पृ० ६२।

नामनाभिक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

नामनिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नामस्मरण (जैन)।

नामनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] नाम का कथन या उल्लेख [को०]।

नामनिशान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिह्न। पता। ठिकाना। जैसे,—उस मैदान में बस्ती का नाम निशान भी नहीं है।

नामबोला—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + बोलना] नाम लेनेवाला। नाम जपनेवाला। विनय और भक्तिपूर्वक नामस्मरण करनेवाला।

नाममात्र—वि० [सं०] १. नाम लेने भर का। अत्यंत अल्प। कहने भर को [को०]।

नाममाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाम अर्थात् संज्ञा शब्दों का क्रमबद्ध संग्रह या अभिधान। पर्यायवाची या अनेकार्थक शब्दों का कोश। जैसे, अनेकार्थ नाममाला।

नाममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मुहर जिस पर नाम खुदा हो। वह अँगूठी जिस पर नाम हो [को०]।

नामयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो यज्ञ केवल नाम या धूमधाम के लिये किया जाय। २. भगवन्नामसंकीर्तन का अनुष्ठान या आयोजन।

नामरासी—वि० [सं० नाम + राशि] एक ही नामवाला। समान नाम का।

नामरूप—संज्ञा पुं० [सं०] सबके आधार स्वरूप अगोचर वस्तु तत्व के परिवर्तनशील नाना रूप या आकार जो इंद्रियों को ज्ञात पड़ते हैं तथा उनके भिन्न भिन्न नाम जो भेदज्ञान के अनुसार रखे जाते हैं।

विशेष—वेदांत के अनुसार एक ही अगोचर नित्य तत्व है। जो अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं वे वास्तविक नहीं हैं। वे केवल रूपों या आकारों के कारण हैं जो इंद्रियों या मन के संस्कार मात्र हैं। समुद्र और तरंग अथवा सोना और गहना दो भिन्न भिन्न नाम हैं। एकीकरण द्वारा आत्मा सोने और गहने में अथवा समुद्र और तरंग में सामान्य गुणवाला एक ही पदार्थ देखती है। सोना एक पदार्थ है पर भिन्न भिन्न अवसरों पर बदलनेवाले आकारों के जो संस्कार इंद्रियों द्वारा मन पर होते हैं उनके कारण सोने को ही कभी कड़ा, कभी कंगन, कभी अँगूठी इत्यादि कहते हैं। इसी प्रकार जगत् में यावत् दृश्य हैं सब केवल नामरूपात्मक हैं। उनके भीतर वस्तुसत्ता छिपी हुई है। वेदांत में सदा बदलते रहनेवाले नामरूपात्मक रूप दृश्य जगत् को 'मिथ्या' और 'नाशवान्' और नित्य वस्तुतत्व को सत्य वा अमृत कहते हैं।

नामर्द—वि० [फा०] १. जिसमें पुरुष की शक्ति विशेष न हो। नपुंसक। क्लीव। २. भीरु। डरपोक। कायर।

नामर्दा—वि० [फा० नामर्दह्] दे० 'नामर्द'।

नामर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. नपुंसकता। क्लीबता। २. कायरपन। भीरुता। साहस का अभाव।

नामलेवा—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + लेना] १. नाम लेनेवाला। नाम स्मरण करनेवाला। २. उत्तराधिकारी। संतति। वारिस। जैसे,—नामलेवा रहा न पानी-देवा।

नामवर—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो। नामी। प्रसिद्ध। मशहूर।

नामवरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] कीर्ति । प्रसिद्धि । शुहरत ।

नामवर्जित—वि० [सं०] १. नाम से रहित । नामहीन । २. मूर्ख । बेवकूफ [को०] ।

नामवाचक[1]—वि० [सं०] नाम व्यक्त करनेवाला ।

नामवाचक[2]—संज्ञा पुं० १. नाम । २. व्यक्तिवाचक संज्ञा ।

नामशेष—वि० [सं०] १. जिसका केवल नाम बाकी रह गया हो । जो न रह गया हो । नष्ट । ध्वस्त । २. मृत । गत । मरा हुआ । उ०—नामशेष रह जायँ वाम बैरी बस अब से ।—साकेत, पृ० ४२० ।

नामष—संज्ञा पुं० मृत्यु । मौत [को०] ।

नामसत्य—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति या वस्तु का ठीक ठीक नामकथन चाहे वह नाम उसकी अवस्था या गुण के अनुकूल न हो । जैसे,—लक्ष्मीपति यदि दरिद्र है तो भी उसे लोग लक्ष्मीपति ही कहेंगे । (जैन) ।

नामांक—वि० [सं० नामाङ्क] दे० 'नामांकित' [को०] ।

नामांकित—वि० [सं० नामाङ्कित] जिसपर नाम लिखा हुआ हो या खुदा हो ।

नामांतर—संज्ञा पुं० [सं० नामान्तर] द्वितीय नाम । उपनाम ।

नामा[1]—वि० [सं० नामन्] नामवाला । नामधारी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुव्रीहि समास के उत्तर पद में होता है ।

नामा[2]—संज्ञा पुं० नामदेव भक्त ।

नामाकूल—वि० [फ़ा० ना + अ० माकूल] १. अयोग्य । २. अयुक्त । अनुचित ।

नामानुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] अभिधान । कोश [को०] ।

नामापराध—संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रतिष्ठित का नाम लेकर अपशब्द प्रयोग [को०] ।

नामाभिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नामानुशासन' [को०] ।

नामाबर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नामबर] पत्रवाहक । उ०—न कातिल के यहाँ खत ले गया है । खुदा गैर कीजो नामाबर को ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २६ ।

नामालूम—वि० [फ़ा० ना + अ० मालूम] जो मालूम न हो । अज्ञात ।

नामावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नामों की पंक्ति । नामों की सूची । २. वह कपड़ा जिसपर चारों ओर भगवान का नाम छपा होता है और जिसे भक्त लोग ओढ़ते हैं । रामनामी ।

नामि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

नामिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम संबंधी । संज्ञा संबंधी ।

नामित—वि० [सं०] झुकाया हुआ ।

नामिनेटेड—वि० [अं०] जो किसी पद के लिये चुना गया हो । जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो । मनोनीत । नामजद । जैसे, नामिनेटेड मेंबर ।

नामिनेशन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी पद के लिये किसी का मनोनीत किया जाना । नामजदगी ।

नामी—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + ई (प्रत्य०) अथवा सं० नामिन्] १. नामधारी । नामवाला । जैसे,—रामप्रसाद नामी एक मनुष्य । २. जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर । जैसे, नामी आदमी ।

यौ०—नामी गिरामी ।

नामी गिरामी—वि० [फ़ा०; मि० सं० नामग्राम] जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात ।

नामुनासिब—वि० [फ़ा०] अनुचित । अयोग्य । गैरवाजिब ।

नामुमकिन—वि० [फ़ा० ना + अ० मुमकिन] जो कभी न हो सके । असंभव ।

नामुराद—वि० [फ़ा०] जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो । विफलमनोरथ ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है ।

नामुवाफ़िक—वि० [फ़ा० ना + अ० मुवाफ़िक] जो मुवाफ़िक या अनुकूल न हो । प्रतिकूल । विरुद्ध ।

नामूसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नामूस (= इज्जत)] बेइज्जती । अप्रतिष्ठा । बदनामी । निंदा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नामेहरबान—वि० [फ़ा०] जो मेहरबान न हो । अकृपालु ।

नाम्ना—वि० [वि० स्त्री० नाम्नी] नामवाला । नामधारी ।

नाम्य—वि० [सं०] झुकाने योग्य ।

नायँ(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाम] दे० 'नाम' ।

नायँ[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'नहीं,' 'नाहीं' ।

नाय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नय । नीति । २. उपाय । युक्ति । ३. नेता । अगुआ । ४. नेतृत्व । अगुआई ।

नाय‡[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव] नाव । नौका । किश्ती ।

नायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नायिका] १. जनता को किसी ओर प्रवृत्त करने का अधिकार या प्रभाव रखनेवाला पुरुष । लोगों को अपने कहे पर चलानेवाला आदमी । नेता । अगुआ । सरदार । जैसे, सेना का नायक । २. अधिपति । स्वामी । मालिक । जैसे, गणनायक । ३. श्रेष्ठ पुरुष । जननायक । उ०—सब नायक होई जाय बेल फिर कौन लदावै ।—पलटू०, भा० १, पृ० ५ । ४. साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक रूप-यौवन-संपन्न अथवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो ।

विशेष—साहित्यदर्पण में लिखा है कि दानशील, कृती, सुश्री, रूपवान, युवक, कार्यकुशल, लोकरंजक, तेजस्वी, पंडित और सुशील ऐसे पुरुष को नायक कहते हैं । नायक चार प्रकार के होते हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशांत । जो आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गंभीर, महाबलशाली,

स्थिर और विनयसंपन्न हो उसे धीरोदात्त कहते हैं। जैसे, राम, युधिष्ठिर। मायावी, प्रचंड, अहंकार और आत्मश्लाघायुक्त नायक को धीरोद्धत कहते हैं। जैसे, भीमसेन। निश्चित, मृदु और नृत्यगीतादिप्रिय नायक को धीरललित कहते हैं। त्यागी और कृती नायक धीरप्रशांत कहलाता है। इन चारों प्रकार के नायकों के फिर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ ये चार भेद किए गए हैं। शृंगार रस में पहले नायक के तीन भेद किए गए हैं—पति, उपपति और वैशिक (वेश्यानुरक्त)। पति चार प्रकार के कहे गए हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त पति को अनुकूल, अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति रखनेवाले को दक्षिण, स्त्री के प्रति अपराधी होकर बार बार अपमानित होने पर भी निर्लज्जतापूर्वक विनय करनेवाले को धृष्ट और छलपूर्वक अपराध छिपाने में चतुर पति को शठ कहते हैं। उपपति दो प्रकार के कहे गए हैं—वचनचतुर और क्रियाचतुर।

५. हार के मध्य की मणि। माला के बीच का नग। ६. संगीत कला में निपुण पुरुष। कलावंत। ७. एक वर्णवृत्त का नाम। ८. एक राग जो दीपक राग का पुत्र माना जाता है। ९. दस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। १० कौटिल्य के अनुसार बीस हाथियों तथा घोड़ों का अध्यक्ष। ११. शाक्य मुनि का नाम (को०)।

नायका—संज्ञा स्त्री० [सं० नायिका] १. दे० 'नायिका'। २. वेश्या की माँ। ३. कुटनी। दूती।

नायकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेश (को०)।

नायकी—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग का नाम।

नायकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [सं० नायकी + हिं० कान्हड़ा] एक राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

नायकी मल्लार—संज्ञा पुं० [सं० नायक+मल्लार] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

नायणी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नायन] दे० 'नायन'। उ० —सहज ललाई सौंपरत प्रीतम प्यारी पाय। निरखै भरमै नायणी जावक दे मिलि जाय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३८।

नायन—संज्ञा पुं० [डिं०] वैद्य।

नायन, नायनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाई] [स्त्री० नाइन] नाई की स्त्री। नापित का काम करनेवाली स्त्री। उ०—और न के पाइन दियो, नायनि जावक लाल। प्रान पियारी रावरी परसत तुम्हें रसाल।—मति० ग्रं०, पृ० २६३।

नायब—संज्ञा पुं० [अ०] १. किसी की ओर से काम करनेवाला। किसी के काम की देखरेख रखनेवाला। मुनीम। मुख्तार। २. काम में मदद देनेवाला छोटा अफसर। सहायक। सहकारी। जैसे, नायब दीवान, नायब तहसीलदार।

नायबी—संज्ञा स्त्री० [अ० नायब + ई (प्रत्य०)] १. नायब का काम। २. नायब का पद।

नायाब—वि० [फ़ा०] १. जो न मिलता हो। अप्राप्य। २. उत्कृष्ट।

नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रूप-गुण-संपन्न स्त्री। वह स्त्री जो शृंगार रस का आलंबन हो अथवा किसी काव्य, नाटक आदि में जिसके चरित्र का वर्णन हो।

विशेष—शृंगार में प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं—उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। प्रिय के अहितकारी होने पर भी हितकारिणी स्त्री को उत्तमा, प्रिय के हित या अहित करने पर हित या अहित करनेवाली स्त्री को मध्यमा और प्रिय के हितकारी होने पर भी अहितकारिणी स्त्री को अधमा कहते हैं। धर्मानुसार इनके तीन भेद हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री को स्वीया या स्वकीया, परपुरुष में प्रेम रखनेवाली स्त्री को परकीया या अन्या और धन के लिये प्रेम करनेवाली स्त्री को सामान्या, साधारण या गणिका कहते हैं। वयःक्रमानुसार स्वकीया तीन प्रकार की मानी गई हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। कामचेष्टारहित अंकुरितयौवना को मुग्धा कहते हैं जो दो प्रकार की कही गई है—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना। ज्ञातयौवना के भी दो भेद किए गए हैं—नवोढ़ा जो लज्जा और भय से पतिसमागम की इच्छा न करे और विश्रब्धनवोढ़ा जिसे कुछ अनुराग और विश्वास पति पर हो। अवस्था के कारण जिस नायिका में लज्जा और कामवासना समान हो उसे मध्या कहते हैं। कामकला में पूर्ण रूप से कुशल स्त्री को प्रौढ़ा कहते हैं। इनमें से मध्या और मुग्धा ये दो भेद केवल स्वकीया में ही माने गए हैं, फिर मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद किए गए हैं। प्रिय में परस्त्रीसमागम के चिह्न देख धैर्यसहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्री को धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्री को अधीरा तथा कुछ गुप्त और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्री को धीराधीरा कहते हैं।

परकीया के प्रथम दो भेद किए गए हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा। विवाहिता स्त्री यदि परपुरुष में अनुरक्त हो तो उसे ऊढ़ा या परोढ़ा और अविवाहित स्त्री यदि अनुरक्त हो तो उसे अनूढ़ा या कन्यका कहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारभेद से भी कई भेद किए गए है—जैसे, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता इत्यादि। नायिकाओं के अट्ठाईस अलंकार कहे गए हैं। इनमें हाव भाव और हेला ये तीन अंगज कहलाते हैं। शोभा, कांति दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात अयत्नसिद्ध कहे जाते हैं; लीला, विलास, विच्छित्ति, विब्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अठारह स्वभावज कहलाते हैं।

२ पुराणानुसार दुर्गा की शक्ति। दे० 'अष्टनायिका' (को०)। ३. स्त्री। पत्नी (को०)। ४. एक प्रकार की कस्तूरी (को०)।

नारंग—संज्ञा पुं० [सं० नारङ्ग] १. नारंगी। २. गाजर। ३. पिप्पलीरस। ४. यमज प्राणी। ५. विट (को०)। ६. पंजाबी ब्राह्मणों की एक उपाधि।

नारंगी¹—संज्ञा स्त्री० [दे० नारङ्ग, अ० नारंज] १. नीबू की जाति

का एक मझोला पेड़ जिसमें मीठे सुगंधित और रसीले फल लगते हैं।

विशेष—पेड़ इसका नीबू ही का सा होता है। नारंगी का छिलका मुलायम और पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है और गूदे से अधिक लगा न रहने के कारण बहुत सहज में अलग हो जाता है। भीतर पतली झिल्ली से मढ़ी हुई फाँकें होती हैं जिनमें रस से भरे हुए गूदे के रवे होते हैं। एक एक फाँक के भीतर दो या तीन बीज होते हैं। नारंगी गरम देशों में होती है। एशिया के अतिरिक्त युरोप के दक्षिण भाग, अफ्रिका के उत्तर भाग और अमेरिका के कई भागों में इसके पेड़ बगीचों में लगाए जाते हैं और फल चारों ओर भेजे जाते हैं। भारत में जो मीठी नारंगियाँ होती हैं वे और कई फलों के समान अधिकतर आसाम होकर चीन से आई हैं, ऐसा लोगों का मत है। भारतवर्ष में नारंगियों के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं सिलहट, नागपुर, सिकिम, नैपाल, गढ़वाल, कुमायूँ, दिल्ली, पूना और कुर्ग। नारंगी के प्रधान चार भेद कहे जाते हैं—संतरा, कँवला, माल्टा और चीनी। इनमें संतरा सबसे उत्तम जाति है। संतरे भी देशभेद से कई प्रकार के होते हैं।

चीन और भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों में नारंगी का उल्लेख मिलता है। संस्कृत में इसे नागरंग कहते हैं। 'नाग' का अर्थ है सिंदुर। छिलके के लाल रंग के कारण यह नाम दिया गया। सुश्रुत में नागरंग का नाम आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि युरोप में यह फल अरबवालों के द्वारा गया।

२. नारंगी के छिलके का सा रंग। पीलापन लिए हुए लाल रंग।

नारंगी[2]—वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का।

नार[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड] १. गला। गरदन। ग्रीवा।

मुहा०—नार नवाना = (१) गरदन झुकाना। सिर नीचे की ओर करना। (२) लज्जा, चिंता, संकोच, मान आदि के कारण सामने न ताकना। दृष्टि नीची करना। लज्जित होने, चिंता करने या रूठने का भाव प्रकट करना। उ०—समुझि निज अपराध करनी नार नावति नीच। बहुत दिन तें बरति है के आँखि दोबै सींचि।—सूर (शब्द०)। नार नीची करना=दे० 'नार नवाना'। उ०—मान मनायो राधा प्यारी।·· कत हूँ रही नार नीची करि देखत लोचन फूले। सूर (शब्द०)।

२. जुलाहों की ढरकी। नाल। ३. (पु) कमल की डंडी। मृणाल की नाल। उ०—बरनों गीवँ कूँज कै रीसी। कंज नार जनु लागेउ सीसी।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० १९२।

नार[2]—संज्ञा पुं० १. उल्व नाल। आँवल नाल। वह गर्भस्थ सूत्र जिससे जन्म से पूर्व गर्भस्थ शिशु बँधा रहता है। वि० दे० नाल[2]।

यौ०—नार बेवार।

२. नाला। ३. बहुत मोटा रस्सा। ४. सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बाँधती हैं। नारा। नाला। ५. जुआ जोड़ने की रस्सी या तस्मा। ६. चरने के लिये जानेवाले चौपायों का झुंड।

नार‡[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] दे० 'नारी'।

नार[4]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरसमूह। मनुष्यों की भीड़। २ तुरत का जनमा हुआ गाय का बछड़ा। ३. जल। पानी। उ०—हम घट बिरह दून कै दहा। लोयन नार समुंद होइ बहा।—चित्रा०, पृ० १७१। ४. सोंठ। शुंठी।

नार[5]—वि० १. नरसबंधी। मनुष्यसंबंधी। २. परमात्मासंबंधी।

नार[6]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अनार [को०]।

नार[7]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. आग। अग्नि। उ०—मगन होवे एक दिन में घर दुख की नार।—दक्खिनी०, पृ० १४०। २. नरक (को०)।

नारक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरक। २. नरकस्थ प्राणी। नरक में रहनेवाला व्यक्ति।

नारक[2]—वि० नरक संबंधी। नरक का [को०]।

नारकिक—वि० [सं०] नारकी [को०]।

नारकी—वि० [सं० नारकिन्] नरक भोगनेवाला या नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला। पापी।

नारकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कीड़ा। अश्मकीट। २. किसी को आशा देकर निराश करनेवाला अधम मनुष्य।

नारकीय—वि० [सं०] नरक संबंधी। नरक का। उ०—काली नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर। पैशाचिक सा कुछ दुःखों से मनुज गया शायद उसमें मर।—ग्राम्या, पृ० ३०।

नारजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [को०]।

नारद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये देवर्षि माने गए हैं।

विशेष—वेदों में ऋग्वेद मंडल ८ और ९ के कुछ मंत्रों के कर्ता एक नारद का नाम मिलता है जो कहीं कण्व और कहीं कश्यपवंशी लिखे गए हैं। इतिहास और पुराणों में नारद देवर्षि कहे गए हैं जो नाना लोकों में विचरते रहते हैं और इस लोक का संवाद उस लोक में दिया करते हैं। हरिवंश में लिखा है कि नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। ब्रह्मा ने प्रजासृष्टि की अभिलाषा करके पहले मरीचि, अत्रि आदि को उत्पन्न किया, फिर सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, स्कंद, नारद और रुद्रदेव उत्पन्न हुए (हरिवंश अ० १)। विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को प्रजासृष्टि करने में लगाया पर नारद ने कुछ बाधा की, इसपर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि 'तुम सदा सब लोकों में घूमा करोगे; एक स्थान पर स्थिर होकर न रहोगे।' महाभारत में इनका ब्रह्मा से संगीत की शिक्षा लाभ करना लिखा है। भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पीछे के पुराणों में नारद के संबंध में लंबी चौड़ी कथाएँ मिलती हैं। जैसे, ब्रह्मवैवर्त में इन्हें ब्रह्मा के कंठ से उत्पन्न बताया है और लिखा है कि जब इन्होंने प्रजा की सृष्टि करना अस्वीकार किया तब ब्रह्मा ने इन्हें शाप दिया और गंधमादन पर्वत पर उपबर्हण नामक गंधर्व हुए। एक

दिन इंद्र की सभा में रंभा का नाच देखते देखते ये काममोहित हो गए। इसपर ब्रह्मा ने फिर शाप दिया कि 'तुम मनुष्य हो'। द्रुमिल नामक गोप की स्त्री कलावती पति की आज्ञा से ब्रह्मवीर्य की प्राप्ति के लिये निकली और उसने काश्यप नारद से प्रार्थना की। अंत में काश्यप नारद के वीर्यभक्षण से उसे गर्भ रहा। उसी गर्भ से गंधर्व देह त्याग नारद उत्पन्न हुए। पुराणों में नारद बड़े भारी हरिभक्त प्रसिद्ध हैं। ये सदा भगवान् का यश वीणा बजाकर गाया करते हैं। इनका स्वभाव कलहप्रिय भी कहा गया है इसी से इधर की उधर लगानेवाले को लोग 'नारद' कह दिया करते हैं।

२. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम (महाभारत)। ३. एक प्रजापति का नाम। ४. कश्यप मुनि की स्त्री से उत्पन्न एक गंधर्व। ५. चौबीस बुद्धों में से एक। ६. शाकद्वीप का एक पर्वत (मत्स्य पु०)। ७. वह व्यक्ति जो लोगों में परस्पर झगड़ा लगाता हो। लड़ाई करनेवाला। ८. जलद।

नारदपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अठारह महापुराणों में से एक। इसमें सनकादिक ने नारद को संबोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है। इसमें कथाओं के अतिरिक्त तीर्थों और व्रतों के माहात्म्य बहुत अधिक दिए हैं। २. बृहन्नारदीय नामक एक उपपुराण।

नारदान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] जल निकलने की नाली। दे० 'नाबदान'। उ०—न्यारे न्यारे नारदान मूँदौगो झरोखा जाल, पाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

नारदी—संज्ञा पुं० [सं० नारदिन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारदीय—वि० [सं०] नारद का। नारद संबंधी। जैसे, नारदीय पुराण।

नारना—क्रि० स० [सं० ज्ञान, प्रा० णाण+हिं० ना] थाह लगाना। पता लगाना। भाँपना। ताड़ना। उ०—राधा मन में यहै विचारति। ये मोहे ते ये चतुर कहावति ये मन ही मन मोको नारति। ऐसे वचन कहौंगी इन पै चतुराई इनकी मैं आरति।—सूर०, १०। १७७१।

नारफिक—संज्ञा पुं० [अं०] विलायती घोड़ों की एक जाति जो नारफाक प्रदेश में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े डीलडौल में बड़े, सुंदर और मजबूत होते हैं।

नार बेवार—संज्ञा पुं० [हिं० नार+सं० विवार (=फैलाव)] आँवल नाल। नाल और गर्भ आदि। नारापोटी। उ०—नार बेवार समेत उठाया। ले वसुदेव चले तब छावा।—विश्राम (शब्द०)।

नारमन—संज्ञा पुं० [अं०] १. फ्रांस के नारमंडी प्रदेश का निवासी। २. जहाज का रस्सा बाँधने का खूँटा।

नारबोर[1]—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] नारियल। उ०—कहुँ केर केलं कहुँ नारबोर।—पृ० रासो, पृ० ५५।

नारसिंह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरसिंह रूपधारी विष्णु।

विशेष—तैत्तिरीय आरण्यक में नारसिंह की गायत्री मिलती है।

२. एक तंत्र का नाम। ३. एक उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतार की कथा है। ४. १६वें कल्प का नाम (को०)।

नारसिंह[2]—वि० दे० 'नारसिंही'।

नारसिंही—वि० [सं० नारसिंह+ई (प्रत्य०)] नारसिंह संबंधी।

यौ०—नारसिंही टोना = बड़ा गहरा टोना।

नारांतक—संज्ञा पुं० [सं० नारान्तक] एक राक्षस जो रावण के पुत्रों में कहा गया है।

नारा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जल (मनु०)।

नारा[2]—संज्ञा पुं० [सं० नाल, हिं० नार] १. सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बाँधती हैं। इजारबंद। नीबी। दे० 'नाड़ा'। उ०—नारा बंधन सूथन जथन।—सूर (शब्द०)। २. लाल रँगा हुआ कच्चा सूत जो पूजन में देवताओं को चढ़ाया जाता है। मौली। कुसुंभ सूत्र। ३. हल के जुवे में बँधी हुई रस्सी। ४. बरसाती पानी के बहने का प्राकृतिक मार्ग। छोटी नदी। नाला। उ०—(क) चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।—मानस, २। १३३। (ख) बिच बिच खोह नदी औ नारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२। ५. दे० 'नार[4]'।

नारा[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० नालह्] १. आवाज। शोर। २. सामूहिक आवाज। किसी माँग की ओर ध्यान दिलाने या प्रसन्नता और उत्साह व्यक्त करने के लिये बार बार बुलंद की जानेवाली सामूहिक आवाज।

नाराइन—संज्ञा पुं० [सं० नारायण] दे० 'नारायण'।

नाराच—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे का बाण। वह तीर जो सारा लोहे का हो।

विशेष—शर में चार पंख लगे रहते हैं और नाराच में पाँच। इसका चलाना बहुत कठिन है।

२. बाण। तीर। ३. दुर्दिन। ऐसा दिन जिसमें बादल घिरा हो, अंधड़ चले और इसी प्रकार के और उपद्रव हों। ४. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और चार रगण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और 'तारका' भी कहते हैं। ५. २४ मात्राओं का एक छंद। जैसे,—तजै सरीन काल बीत बाल तीर जाय कै। ६. जलहस्ती (को०)। ७. एक प्रकार का घृत (वैद्यक)।

नाराचघृत—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक घृत जो घी में चीते की जड़, त्रिफला, भटकैया, बायबिडंग, आदि पकाकर बनाया जाता है और उदररोग में दिया जाता है।

नाराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाराची' (को०)।

नाराची—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा तराजू जिसमें बहुत छोटी छोटी चीजें तोली जाती हैं। सुनारों का काँटा।

नाराज—वि० [फ़ा० नाराज] अप्रसन्न। रुष्ट। नाखुश। खफा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाराजगी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाराजगी] अप्रसन्नता।

नाराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नाराजी] अप्रसन्नता। अकृपा। कोप।

नारायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। भगवान। ईश्वर।

विशेष—इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रंथों में कई प्रकार से बतलाई गई है। मनुस्मृति में लिखा है कि 'नर' परमात्मा का नाम है। परमात्मा से सबसे पहले उत्पन्न होने के कारण जल

को 'नारा' कहते हैं। जल जिसका प्रथम अयन या अधिष्ठान है उस परमात्मा का नाम हुआ 'नारायण'। महाभारत के एक श्लोक के भाष्य में कहा गया है कि नर नाम है आत्मा या परमात्मा का। आकाश आदि सबसे पहले परमात्मा से उत्पन्न हुए इससे उन्हें नारा कहते हैं। यह 'नारा' कारणस्वरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है इससे परमात्मा का नाम नारायण हुआ। कई जगह ऐसा भी लिखा है कि किसी मन्वंतर में विष्णु 'नर' नामक ऋषि के पुत्र हुए थे जिससे उनका नाम नारायण पड़ा। ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में और भी कई प्रकार की व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में नारायण की गायत्री है जो इस प्रकार है—'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त और उत्तर नारायण सूक्त तथा शतपथ ब्राह्मण (१३। ६। २। १) और शांख्यायन श्रौत सूत्र (१६। १३। १) में नारायण शब्द विष्णु या प्रथम पुरुष के अर्थ में आया है। जैन लोग नरनारायण को ९ वासुदेवों में से आठवाँ वासुदेव कहते हैं।

२. पूस का महीना। ३. 'अ' अक्षर का नाम। ४. कृष्ण यजुर्वेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। ५. नर ऋषि के सखा। उ०—नर नारायण की तुम दोऊ। —मानस, ४।५। ६. अजामिल का एक पुत्र (को०)। ७. नारायणी सेना (महाभारत)। ८. एक प्रकार का चूर्ण जो दवा के काम में आता है (को०)। ९. धर्मपुत्र नामक एक ऋषि। १०. एक अस्त्र का नाम।

नारायणक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा के प्रवाह से चार हाथ तक की भूमि (बृहद्धर्म पुराण)।

नारायणतैल—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल।

विशेष—तिल के तेल में असगंध, भटकटैया, बेल की जड़ की छाल, देवदार, जटामासी इत्यादि बहुत सी दवाएँ पकाकर इस तेल को तैयार करते हैं।

नारायणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सहदेव। ३. पीतचंदन।

नारायणबलि—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मघात द्वारा बुरी तरह से मरनेवाले पतित मृतक के प्रायश्चित्त के लिये एक बलिकर्म जो नारायण आदि पाँच देवताओं के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—आत्महत्या करनेवाले की और्ध्वदैहिक क्रिया नियमानुसार समय पर नहीं की जाती। मृत्यु के एक वर्ष पर नारायणबलि और पर्णनर दाह (कुस के पुतले का दाह) करके तब श्राद्धादिक किए जाते हैं। आत्मघाती का जो दाह आदि करता है उसे भी प्रायश्चित्त करना चाहिए।

नारायणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. गंगा। ४. सतावर। ५. मुद्गल मुनि की स्त्री का नाम। ६. श्रीकृष्ण की सेना का नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन की सहायता के लिये दिया था। ७. सदानीरा नदी जिसमें नारायणशिला मिलती है।

नारायणी[2]—विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारायणीय[1]—वि० [सं०] नारायणसंबंधी।

नारायणीय[2]—संज्ञा पुं० महाभारत का एक उपाख्यान जिसमें नारद और नारायण ऋषि की कथा है। यह शांति पर्व में है।

नाराशंस[1]—वि० [सं०] प्रशंसासंबंधी। जिसमें मनुष्यों की प्रशंसा हो। स्तुतिसंबंधी।

नाराशंस[2]—संज्ञा पुं० १. वेदों के वे मंत्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्यों, जैसे, राजाओं आदि की प्रशंसा होती है। प्रशस्ति। दानस्तुति आदि। २. वह चमचा जिसमें पितरों को सोमपान दिया जाता है। ३. पितरों के लिये चमचे में रखा हुआ सोम। ४. पितर।

नाराशंसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनुष्यों की प्रशंसा। २. वेद में मंत्रों का वह भाग जिनमें राजाओं के दान आदि की प्रशंसा है।

नारिंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नारङ्ग] नारंगी। उ०—कब मग्ग भूमि चिहुकोद गस्सि। नारिंग सुमन दारिम विगस्सि।—पृ० रा०, १४। ६६।

नारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] १. दे० 'नारी'। उ०—ऐहैं पीव बिचारि यों नारि फेर फिरि जाय।—मति० ग्रं०, पृ० ३०६। २. ग्रीवा। गर्दन। उ०—दुम सुनिभो सासु हमारी, मेरी नारि को हंसुला भारी। तुम सुनिभो जेठानी हमारी मेरे बाँह बाजूबंद भारा।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१४।

नारिक—वि० [सं०] १. जलीय। जल का। जलसंबंधी। २. आत्मासंबंधी। आध्यात्मिक।

नारिकेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नारिकेल'।

नारिकेल—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नारिकेलक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल की गिरी की बनी हुई एक प्रकार की खीर या मिठाई।

विशेष—गिरी के महीन महीन टुकड़ों को घी और चीनी के साथ गाय के दूध में पकाते हैं, गाढ़ा होने पर उतार लेते हैं।

नारिकेलखंड—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल खण्ड] एक औषध जो नारियल की गिरी से बनती है।

विशेष—नारियल की गिरी को पीसकर घी में मिलावे और फिर चीनी मिले हुए नारियल के पानी में उसे डालकर पका डाले। पक जाने पर उसमें धनिया, पीपल, वंशलोचन, इलायची, नागकेसर, जीरे और तेजपत्ते का चूर्ण डालकर मिला दे। इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, क्षयरोग, रक्तपित्त और शूल दूर होता है तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है।

नारिकेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारियल की बनी मदिरा। २. नारियल (को०)।

नारिगोरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाल + गोली] बारूद। बंदूक की गोली। उ०—नारिगोरि सा वत्ति राज मंडी चावद्दिसि।—पृ० रा०, २६। ७५।

नारियल—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] १. खजूर की जाति का एक पेड़ जिसके फल की गिरी खाई जाती है।

विशेष—खंभे के रूप में इसका पेड़ पचास साठ हाथ तक ऊपर को ओर जाता है। इसके पत्ते खजूर ही के से होते हैं। नारियल गरम देशों में ही समुद्र का किनारा लिए हुए होता है। भारत के पास पास के टापुओं में यह बहुत होता है। भारतवर्ष में समुद्रतट से अधिक से अधिक सौ कोस तक नारियल अच्छी तरह होता है, उसके आगे यदि लगाया भी जाता है तो किसी काम का फल नहीं लगता। फूल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली सींकों में मंजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं जो बारह चोदह अंगुल तक लंबे और छह सात अंगुल तक चौड़े होते हैं। फल देखने में लबोतरे और तिपहले दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशेदार छिलका होता है जिसके नीचे कड़ी गुठली और सफेद गिरी होती है जो खाने में मीठी होती है। नारियल के पेड़ लगाने की रीति यह है कि पके हुए फलों को लेकर एक या डेढ़ महीने घर में रख छोड़े। फिर बरसात में हाथ डेढ़ हाथ गड्ढे खोदकर उनमें उन्हें गाड़ दे और राख और खार ऊपर से डाल दे। थोड़े ही दिनों में कल्ले फूटेंगे और पौधे निकल आवेंगे। फिर छह महीने या एक वर्ष में इन पौधों को खोदकर जहाँ लगाना हो लगा दे। भारतवर्ष में नारियल बंगाल, मदरास और बंबई प्रांत में लगाए जाते हैं। नारियल कई प्रकार के होते हैं। विशेष भेद फलों के रंग और आकार में होता है। कोई बिलकुल लाल होते हैं, कोई हरे होते हैं और कोई मिले जुले रंग के होते हैं। फलों के भीतर पानी या रस भरा रहता है जो पीने में मीठा होता है। नारियल बहुत से कामों में आता है। इसके पत्तों की चटाई बनती है जो घरों में लगती है। पत्तों की सींकों के झाड़ू बनते हैं। फलों के ऊपर जो मोटा छिलका होता है उससे बहुत मजबूत रस्से तैयार होते हैं। खोपड़े या गिरी के ऊपर के कड़े कोश को चिकना और चमकीला करके प्याले और हुक्के बनाते हैं। गिरी मेवों में गिनी जाती है। गिरी से एक मीठा गाढ़ा जमनेवाला तेल निकलता है जिसे लोग खाते भी हैं और लगाते भी। पूरी लकड़ी के घर की छाजन में इसका बरेरा लगता है। बंबई प्रांत में नारियल से एक प्रकार का मद्य या ताड़ी बनाते हैं।

वैद्यक में नारियल का फल, शीतल, दुर्जर, वृष्य तथा पित्त और दाहनाशक माना जाता है। ताजे फल का पानी शीतल, हृदय को हितकारी, दीपक और वीर्यवर्द्धक माना जाता है।

एशिया में रूम और मडागास्कर द्वीप से लेकर पूर्व की ओर अमेरिका के तट तक नारियल के जो नाम प्रचलित हैं वे प्रायः सं० नारिकेल शब्द ही के विकृत रूप हैं। यह बात प्रायः सर्वसम्मत है कि नारियल का आदिस्थान भारत और बरमा के दक्षिण के द्वीप (मालद्वीप, लकद्वीप, सिंहल, अंडमान, सुमात्रा, जावा इत्यादि) ही हैं। नारिकेल का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में तो नहीं मिलता पर महाभारत, सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। कथासरित्सागर में 'नारिकेल द्वीप' का उल्लेख है।

पर्या०—नारिकेल। लांगली। सदापुष्प। शिरःफल। रसफल। सुतुंग। कूर्चशेखर। दृढ़नील। नीलतरु। मंगल्य। तृणराज। स्कंधतरु। दाक्षिणात्य। त्र्यंबकफल। दृढ़फल। तुंग। सदाफल। कौशिकफल। फलमुंड। विश्वामित्रप्रिय।

यौ०—नारियल का खोपड़ा = नारियल की कड़ी गुठली जिसके भीतर गिरी की तह रहती है।

मुहा०—नारियल तोड़ना = मुसलमानों की एक रीति जो गर्भ रहने पर की जाती है। नारियल तोड़कर उससे लड़का या लड़की पैदा होने का शकुन निकालते हैं।

२. नारियल का हुक्का।

नारियलपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण देश (बंबई प्रांत) का एक त्योहार जिसमें लोग नारियल ले लेकर समुद्र में फेंकते हैं। यह आषाढ़ सावन में होती है।

नारियली—संज्ञा स्त्री० [हिं० नारियल] १. नारियल का खोपड़ा। २. नारियल का हुक्का। ३. नारियल की ताड़ी।

नारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। औरत। २. तीन गुरु वर्णों की एक वृत्ति। जैसे—माधो ने। दी तारी। गोपों की। है नारी।

नारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडि] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर ललाई लिए भूरे होते हैं। पीठ और पूँछ भी भूरी होती है।

नारी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नार] १. वह रस्सी जिससे जुए में हल बाँधते हैं। नार। २. रथ और अश्व को युक्त करने वाली रज्जु या चमड़े का तस्मा। उ०—सुंदर रथ न चले बिन नारी।—सुंदर०, भा० १. पृ० ३५३।

नारी(पु)†[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० नाड़ी] दे० 'नाड़ी'।

नारी(पु)†[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाली'।

नारीकवच—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशीय मूलक राजा।

विशेष—यह अश्मक का पुत्र और सौदास का पौत्र था। जब परशुराम क्षत्रियों का नाश कर रहे थे तब इन्हें स्त्रियों ने घेरकर बचा लिया था इसी से यह नाम पड़ा। इन्हीं से क्षत्रियों का फिर वंशविस्तार हुआ, इससे इन्हें मूलक कहते हैं।

नारीकेल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नारीकेली] नारियल।

नारीच—संज्ञा पुं० [सं०] नालिता शाक।

नारीतरंगक—संज्ञा पुं० [सं० नारीतरङ्गक] स्त्रियों के चित्त को चंचल करनेवाला पुरुष। जार। व्यभिचारी।

नारीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में वर्णित एक तीर्थ जहाँ पाँच अप्सराएँ ब्राह्मण के शाप से जलजंतु हो गई थीं। अर्जुन ने इनका शाप से उद्धार किया था।

नारीदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] मनु द्वारा कथित नारियों के छह दोष [को०]।

नारीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार कूर्म विभाग से नैऋ त की ओर एक देश।

नारीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। चमेली।

नारुंतुद—वि० [सं० नारुन्तुद] १. जिसके शरीर पर किसी प्रकार का आघात न लग सके। अनाहत। २. जो अरुंतुद (मर्मपीड़क) न हो।

नारु(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नाल] उल्व नाल। आंवल नाल। दे० 'नाल'। उ०—आवौ, आवौ, दाई री मेरी आवौ, नेक हँसि के नारु कटावौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१३।

नारू¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. जूँ। ढील। २. एक रोग।

विशेष—इस रोग में शरीर पर विशेषत: कटि के नीचे जंघा, टाँग आदि में फुंसियाँ सी हो जाती हैं और उन फुंसियों में से सूत सा निकलता है। यह सूत वास्तव में कीड़ा होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथ की लंबाई का हो जाता है। ये कीड़े जब त्वचा के तंतुजाल में होते हैं तब नारू या नहरुवा होता है, जब रक्त की नलियों में होते हैं तब श्लीपद या फीलपाव रोग होता है। नारू का रोग प्राय: गरम देशों में ही होता है।

ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। अधिकतर तो जीवधारियों के शरीर के भीतर रहते हैं पर कुछ तालों और समुद्र के जल में भी पाए जाते हैं। सिरके का कीड़ा इसी जाति का होता है। ये कीट यद्यपि पेट के केचुए से सूक्ष्म होते हैं तथापि इनकी शरीररचना केंचुओं की अपेक्षा अधिक पूर्ण रहती है। इन्हें मुँह होता है, अलग अँतड़ी होती है; इनमें भेद होता है।

नारू²—संज्ञा पुं० [हिं० नाली, पुं०हिं० नारी] वह बोआई जो क्यारियों में होती है।

नारेल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल] नारियल। उ० खिरनी सकेलि नारेल वृंद।—ह० रासो, पृ० ३५६।

नार्थ—संज्ञा पुं० [अं०] उत्तर दिशा।

नार्पत्य—वि० [सं०] नृपसंबंधी। राजा से संबंध रखनेवाला।

नार्मद¹—वि० [सं०] नर्मदासंबंधी। नर्मदा नदी का।

नार्मद²—संज्ञा पुं० शिवलिंग जो नर्मदा में पाया जाता है।

नार्मर—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद में वर्णित एक असुर जिसे इंद्र ने मारा था।

नार्यंग—संज्ञा पुं० [सं० नार्यङ्ग] नारंगी।

नार्यतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

नालंदा—संज्ञा पुं० [देश०] बौद्धों का एक प्राचीन क्षेत्र और विद्यापीठ जो मगध में पटने से तीस कोस दक्खिन और बड़गाँव से ग्यारह कोस पश्चिम था। किसी किसी का मत है कि यह स्थान वहाँ था जहाँ आजकल तेलाढ़ा है।

विशेष—बौद्ध यात्रियों के विवरण से जाना जाता है कि पहले पहल महाराज अशोक ने नालंदा में एक मठ स्थापित किया। चीनी यात्री उएनच्वांग (ह्वेन सांग) ने लिखा है कि पीछे शंकर और मुग्दलगोमी नामक दो ब्राह्मणों ने इस मठ को फिर से बड़े विशाल आकार में बनवाया। इसकी दीवारें जो इधर उधर खड़ी मिलती हैं उनमें से कई तीस बत्तीस हाथ ऊँची हैं। कहते हैं, इस विद्यापीठ में रहकर नागार्जुन ने कुछ दिनों तक उक्त शंकर नामक ब्राह्मण से शास्त्र पढ़ा था। सन् ६३७ ईसवी में प्रसिद्ध चीनी यात्री उएनच्वांग ने इस विद्यापीठ में जाकर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्य से विद्याध्ययन किया था। उस समय इतना बड़ा मठ और इतना बड़ा विद्यापीठ भारत में और कहीं नहीं था। यहाँ सैकड़ों आचार्य और दस हजार से ऊपर ऊपर याजक और शिष्य निवास करते थे। जिस समय काशी में बुद्धपक्ष नामक राजा राज्य करते थे उस समय इस मठ में आग लगी और बहुत सी पुस्तकें जल गईं।

नालंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० नालम्बी] शिव की वीणा (को०)।

नाल¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमल, कुमुद आदि फूलों की पोली लंबी डंडी। डाँड़ी। २. पौधे का डंठल। कांड। ३. गेहूँ, जौ आदि की पतली लंबी डंडी जिसमें बाल लगती है। ४. नली। नल। ५. बंदूक की नली। बंदूक के आगे निकला हुआ पोला डंडा। ६. सुनारों की फुंकनी। ७. जुलाहों की नली जिसमें वे सूत लपेटकर रखते हैं। छूँछा। कैंडा। छुच्छा। ८. वह रेशा जो कलम बनाते समय छिलने पर निकलता है।

विशेष—डंठल या डंडी के अर्थ में पूरब में इसे पुं० बोलते हैं। पुरानी कविताओं में भी प्राय: पुं० मिलता है।

नाल²—संज्ञा पुं० १. रक्त की नालियों तथा एक प्रकार के मज्जातंतु से बनी हुई रस्सी के आकार की वस्तु जो एक ओर तो गर्भस्थ बच्चे की नाभि से और दूसरी ओर गोल थाली के आकार में फैलकर गर्भाशय की दीवार से मिली होती है। आँवल नाल। उल्वनाल। नारा। नार।

विशेष—इसी नाल के द्वारा गर्भस्थ शिशु माता के गर्भ से जुड़ा रहता है। गर्भाशय की दीवार से लगा हुआ जो उभरा हुआ थाली की तरह का गोल छत्ता होता है उसमें बहुत सी रक्तवाहिनी नसें होती हैं जो चारों ओर से अनेक शाखा प्रशाखाओं में आकर छत्ते के केंद्र पर मिलती हैं जहाँ से नाल शिशु की नाभि की ओर गया रहता है। इस छत्ते और नाल के द्वारा माता के रक्त के पोषक द्रव्य शिशु के शरीर में आते जाते रहते हैं, जिससे शिशु के शरीर में रक्तसंचार, श्वास प्रश्वास और पोषण की क्रिया का साधन होता है। यह नाल पिंडज जीवों ही में होता है इसी से वे जरायुज कहलाते हैं। मनुष्यों में बच्चा उत्पन्न होने पर यह काटकर अलग कर दिया जाता है।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—क्या किसी का नाल काटा है ? = क्या किसी की दाई है। क्या किसी को जनानेवाली है। क्या किसी की बड़ी बूढ़ी है। जैसे,—क्या तूने ही नाल काटा है ? (स्त्रि०)। कहीं पर नाल गड़ना = (१) कोई स्थान जन्मस्थान के समान प्रिय होना। किसी स्थान से बहुत प्रेम होना, जल्दी न छूटना।

नावक के तीर । देखन में छोटे लगें बेधें सकल शरीर । —(शब्द०) ।

२. मधुमक्खी का डंक ।

नावक[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाविक] केवट । माझी । मल्लाह । उ०—पुनि गौतमघरनी जानत है नावक शबरी जान ।—सूर (शब्द०) ।

नावघाट—संज्ञा पुं० [हिं०] नावों के ठहरने का घाट । नदी, झील आदि के किनारे का वह स्थान जहाँ नावें ठहरती हों ।

नावडिया†—संज्ञा पुं० [हिं० नाव+डिया (प्रत्य०)] मल्लाह । नाववाला । उ०—नाव तिरे नहं नीर में निबली नावड़ियाँह ।—बाँकी० ग्रं०, भा०२, पृ० १५ ।

नावना† —क्रि० स० [सं० नामन] १. झुकाना । नवाना । उ०—प्रभुपतोक सिरमौर कहावइ । आँकुस गज नावइ । उ०—जायसी (शब्द०) ।

२. डालना । फेंकना । गिराना । उ०—माखन तनक आपने कर लै तनक बदन मैं नावत ।—सूर (शब्द०) । ३. प्रविष्ट करना । घुसाना ।

नावनीत[1]—वि० [सं०] मुलायम । कोमल । मृदुल [को०] ।

नावनीत[2]—संज्ञा पुं० मक्खन का घी । मक्खन से बना घी ।

नावर(पु)† संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव] १. नाव । नौका । उ०—को करि सकै सहाय वहै करिया बिनु नावर ।—गिरिधर (शब्द०) । २. नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं । उ०—बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं । जनु नावरि खेलहिं जल माहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

नावरा—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण में होनेवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत साफ, चिकनी और मजबूत होती है । मेज, कुरसी आदि सजावट के सामान इसके बहुत अच्छे बनते हैं ।

नावरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नाव की क्रीड़ा । दे० 'नावर' ।

नावाँ—संज्ञा पुं० [सं० नामन्] वह रकम जो किसी के नाम लिखी हो ।

नावाकिफ—वि० [फ़ा० ना+अ० वाकिफ] अनजान । अनभिज्ञ ।

नावाज—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह ।

नावाजिब—वि० [फा० ना+अ० वाजिब] जो वाजिब या ठीक न हो । अनुचित ।

नाविक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मल्लाह । माझी । केवट । २. नाव पर यात्रा करनेवाला व्यक्ति । नौकारोही (को०) ।

नावी[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाविन्] दे० 'नाविक' [को०] ।

नावी(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० नापित] नाई । हज्जाम । उ०—नावी फीरइ उतावला, स्वाती नक्षत्र आठमी परलोत ।—बी० रासो, पृ० २० ।

नावेल—संज्ञा पुं० [अं०] उपन्यास ।

नावेलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] उपन्यासकार ।

नाव्य[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाव] १. नूतनता । नवीनता । नयापन । २. गहरा जल या नदी आदि जो नौका से पार करने योग्य हो [को०] ।

नाव्य[2]—वि० [सं०] १. नाव से पार करने योग्य । २. प्रशंसा योग्य । प्रशंसनीय [को०] ।

नाव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी जो नाव से पार की जाय [को०] ।

नाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. न रह जाना । लोप । ध्वंस । बरबादी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—सांख्यवाले कारण में लय होने को ही नाश कहते हैं क्योंकि जो वस्तु है उसका अभाव नहीं हो सकता । कारण में लय हो जाने से सूक्ष्मता के कारण वस्तु का बोध नहीं होता । जब कोई कार्य कारण में इस प्रकार लीन हो जाता है कि वह फिर कार्यरूप में नहीं आ सकता तब आत्यंतिक नाश होता है । नैयायिक नाश को ध्वंसाभाव मानते हैं ।

२. गायब होना । अदर्शन । ३. पलायन । ४. संकट (को०) । ५. निधन (को०) । ६. अनुपलंभ (को०) ।

नाशक—वि० [सं०] १. नाश करनेवाला । ध्वंस करनेवाला । बरबाद करनेवाला । २. मारनेवाला । वध करनेवाला । ३. दूर करनेवाला । न रहने देनेवाला । जैसे, रोगनाशक ।

नाशकारी—वि० [सं० नाशकारिन्] [वि० स्त्री० नाशकारिणी] नाश करनेवाला ।

नाशन[1]—वि० [सं०] नाश करनेवाला । विध्वंस करनेवाला । नाशक । उ०—जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मद नाशन को ।—केशव (शब्द०) ।

नाशन[2]—संज्ञा पुं० १. मृत्यु । मरण । २. विस्मरण । भूलना । ३. नष्ट करना । नाश करना । ४. हटाना । दूर करना [को०] ।

नाशना(पु)—क्रि० स० [सं० नाशन] दे० 'नासना' ।

नाशपाती—संज्ञा स्त्री० [तु०] मझोले डील डौल का एक पेड़ जिसके फल मेवों में गिने जाते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अमरूद की पत्तियों के इतनी बड़ी पर चिकनी और चमकीली होती हैं । फूल सफेद होते हैं पर फूलों के केसर हलके बैगनी होते हैं । फल गोल और उनके गूदे की बनावट कुछ दानेदार होती है । बीज गूदे के भीतर बीचो बीच चार छोटे कोशों में रहते हैं । फल का विशेष अंश सफेद कड़ा गूदा ही होता है, इससे इसके टुकड़े कटे हुए कड़े मिस्री के टुकड़ों के समान जान पड़ते हैं । काश्मीर में नाशपाती के पेड़ जंगली मिलते हैं । काश्मीर के अतिरिक्त हिमालय के किनारे सर्वत्र, दक्षिण में नीलगिरि, बंगलौर आदि में तथा भारतवर्ष में थोड़े बहुत सब स्थानों में इसके पेड़ लगाए जाते हैं । कलम और पैबंद से भी इसके पेड़ लगते हैं जो डील डौल में छोटे होते हैं । काश्मीर की नाशपाती अच्छी होती है और नाख या नाक के नाम से प्रसिद्ध है । नाशपाती युरोप और अमेरिका के प्रायः उन सब स्थानों में होती है जहाँ सरदी अधिक नहीं पड़ती । युरोप में नाशपाती की लकड़ी पर नक्काशी होती है और उसके हलके सामान बनते हैं । आयुर्वेद में नाशपाती का नाम अमृतफल (इससे इसे कहीं कहीं अमरूद भी कहते हैं) भी है जो धातुवर्धक, मधुर, भारी, रेचक तथा अम्ल-वात-नाशक माना गया है । सेब और नाशपाती एक ही जाति के पेड़ हैं ।

नाशवान्—वि० [सं० नाशवत्] नाश को प्राप्त होनेवाला । नश्वर । अनित्य ।

नाशाइस्ता—वि० [फ़ा० नाशाइस्तह्] अनुचित । नामुनासिब । उ०—ऐसे नाशाइस्ता कल्मे भूलकर भी जबान पर न लाना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७ ।

नाशित—वि० [सं०] जिसका नाश किया गया हो ।

नाशी—वि० [सं० नाशिन्] [वि० स्त्री० नाशिनी] १. नाश करनेवाला । नाशक । २. नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुक—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुक्री—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अकृतज्ञता । एहसान फरामोशी । उ०—जहाँ खुदा ने नेमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों का भोग न करना नाशुक्री है ।—मानसरोवर, भा० १, पृ० १३८ ।

नाश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाश्तह्] कलेवा । जलपान । प्रातःकाल का अल्पाहार । पर्याय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाश्य—वि० [सं०] नाश के योग्य । ध्वंसनीय ।

नाष्टिक—वि० [सं०] जिसकी वस्तु नष्ट हुई हो । (स्मृति) ।

नाष्टिकधन—संज्ञा पुं० [सं०] खोया हुआ धन । (स्मृति) ।

नास[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० नासा] १. वह द्रव्य जो नाक में डाला जाय । वह औषध जो नाक से सुरकी या सूँघी जाय ।

क्रि० प्र०—लेना ।

२. सुँघनी । ३. नासिका । नाक (बोलचाल) ।

नास(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० नाश] नाश । उ०—चढ्यौ कोप भीमावती भूप ऐसे । कढ्यौ दैत्य के नास जंभारि जैसे ।—सुजान०, पृ० २६ ।

नासक(पु)—वि० [सं० नाशक] दे० 'नाशक' । उ०—भ्रम तम नासक प्रेम प्रकासक मुखससि सारद नमो नमो ।—घनानंद, पृ० ४६२ ।

नासदान—संज्ञा पुं० [हिं० नास + दान (<सं० आधान)] सुँघनी की डिबिया ।

नासत्य—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमार ।

नासत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र ।

नासना(पु)—क्रि० स० [सं० नाशन] १. नष्ट करना । बरबाद करना । २. मार डालना । बध करना ।

नासपाल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. कच्चे अनार का छिलका जो रंग निकालने के काम में आता है । २. कच्चा अनार । ३. एक प्रकार की आतिशबाजी ।

नासपाली—वि० [फ़ा०] नासपाल के रंग का । कच्चे अनार के छिलके के रंग का ।

नासबूर(पु)—वि० [हिं० ना + फ़ा० सब्र] बेसब्र । धैर्यहीन । उ०—तू साहेब सीये बड़ा बंदा नासबूरा ।—मलूक०, पृ० ३४ ।

नासमझ—वि० [हिं० ना + समझ] जिसे समझ न हो । जो समझदार न हो । जिसे बुद्धि न हो । निर्बुद्धि । बेवकूफ ।

नासमझी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नासमझ] मूर्खता । बेवकूफी ।

नासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० नास्य] १. नासिका । नाक । २. नासारंध्र । नाक का छेद । नथना । ३. द्वार के ऊपर लगी हुई लकड़ी । भरेटा । ४. हाथी की सूँड़ । हस्तिशुंड (को०) । ५. अड़ूसा ।

नासाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का अगला भाग । नाक की नोक ।

नासाछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासा[2]' ।

नासाज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो नाक के भीतर प्याज की गाँठ की तरह का फोड़ा होने से होता है । इस ज्वर में सिर और रीढ़ में बड़ा दर्द होता है ।

नासादारु—संज्ञा पुं० [सं०] भरेटा [को०] ।

नासानाह—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें वायु के साथ कफ मिलकर नाक के छेद को बंद कर देता है । प्रतिनाह । प्रतीनाह ।

नासापरिस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासास्राव' ।

नासापरिशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नासाशोष रोग ।

नासापाक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक में बहुत सी फुंसियाँ निकलने के कारण नाक पक जाती है ।

नासापुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह चमड़ा जो छेदों के किनारे परदे का काम देता है । नथना ।

नासावेध—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है ।

नासायोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर उद्दीपन हो । सौगंधिक नपुंसक ।

नासारंध्र—संज्ञा पुं० [सं० नासारन्ध्र] नाक का छिद्र । नथना ।

नासारोग—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाले रोग जिनकी संख्या सुश्रुत के अनुसार ३१ और भावप्रकाश के मत से ३४ है ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं—अपीनस्य (पीनस), पूतिनस्य, नासापाक, रक्तपित्त, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्ति, प्रतिनाह, परिस्राव, नासाशोष, ४ प्रकार के अर्श, ४ प्रकार के शोथ, ७ प्रकार के अर्बुद और ५ प्रकार के प्रतिश्याय । भावप्रकाश में इससे इतनी विशेषता की है कि एक रक्तपित्त के स्थान पर चार प्रकार के रक्तपित्त लिख दिए हैं ।

नासालु—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल ।

नासावंश—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ऊपर बीचोबीच गई हुई पतली हड्डी । नाक का बाँसा ।

नासाविवर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासारंध्र' ।

नासाशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में कफ सूख जाने का रोग ।

नासासंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] कांडवेल । चिर्चिटा । चिचड़ी ।

नासास्राव—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक से सफेद और पीला मवाद निकला करता है ।

नासिकंधम—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नासिकन्धम] नासिका से फूँकने अथवा स्वर निकालनेवाला (को०)।

नासिकंधय —वि० [सं० नासिकन्धय] नासिका से पान करनेवाला (को०)।

नासिक[1]—संज्ञा पुं० [सं० नासिक्य] महाराष्ट्र देश में एक तीर्थ जो उस स्थान के निकट है जहाँ से गोदावरी निकलती है। इसी के पास पंचवटी वन है जहाँ वनवास के समय रामचंद्र ने कुछ काल निवास किया था और लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान काटे थे।

नासिक(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० नासिका] नाक। नासिका। उ०—नासिक देखि लजानेउ सूआ। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९६।

नासिक[3]—वि० [फ़ा० नाकिस] दे० 'नाकिस'। उ०—बड़ी नासिक जात है मेहतो किसी की नहीं होती।— गोदान, पृ० ३४।

नासिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक। नासा। २. हाथी की सूँड़ (को०)। ३. नाक के आकार की वस्तु (को०)। ४. भरेटा (को०)। ५. अश्विनी नक्षत्र (को०)।

यौ०—नासिकामल।

नासिका[2]—वि० श्रेष्ठ। प्रधान।

नासिक्य[1]—वि० [सं०] नासिका से उत्पन्न।

नासिक्य[2]—संज्ञा पुं० १. नासिका। २. अश्विनीकुमार। ३. बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश। नासिक। ४. अनुनासिक स्वर।

नासिक्यक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक। नासिका (को०)।

नासिर—संज्ञा पुं० [अ०] १. गद्यलेखक। गद्यकार। २. मददगार। सहायक। ३. विजयी। विजेता (को०)।

नासी(पु)—वि० [सं० नाशी] दे० 'नाशी'।

नासीर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सेनानायक के आगे चलनेवाला दल जो जयनाद उच्चारण करता चलता था। सेनाग्र। हरावल।

नासीर[2]—वि० १. आगे बढ़कर युद्ध करनेवाला। २. अग्रेसर। अगुआ (को०)।

नासूत—संज्ञा पुं० [अ०] संसार। उ०—फैल्या मुकाम शैतानी कहना मंजिल नासूत केरी। आरिफ़न की अब बात लगे ना क्यों कर उतरे पेरी।— दक्खिनी०, पृ० ५४।

नासूर—संज्ञा पुं० [अ०] घाव, फोड़े आदि के भीतर दूर तक गया हुआ नली का सा छेद जिससे बराबर मवाद निकला करता है और जिसके कारण घाव जल्दी अच्छा नहीं होता। नाड़ीव्रण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—नासूर डालना = नासूर पैदा करना। घाव करना। छाती में नासूर डालना = बहुत कुढ़ाना। बहुत तंग करना। नासूर भरना = नासूर का घाव अच्छा हो जाना।

नाश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० नाश्तह्] जलपान। सूक्ष्म आहार। कलेवा। उ०—करत नाश्ता इक रोटी की पुनि उठि कै झट।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

नास्ति—अव्य० [सं०] नहीं है। अविद्यमानता। अनस्तित्व। उ०—जेहि ते वद्ध होय सो इच्छा कहावै, जेहि ते नास्ति होय ऐसी अनइच्छा कहावै।—कबीर सा०, पृ० ६२२।

नास्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ईश्वर, परलोक आदि को न माने। ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करनेवाला।

विशेष—जो हेतुशास्त्र अर्थात् तर्क का आश्रय लेकर वेद को अस्वीकार करे, उसका प्रमाण न माने, हिंदू शास्त्र में उसको भी नास्तिक कहा है। हिंदू शास्त्रकारों के अनुसार चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीनों नास्तिक मत हैं। इन मतों में सृष्टि को उत्पन्न करने और चलानेवाला कोई नित्य और स्थिर चेतन नहीं माना गया है। नास्तिकों को बार्हस्पत्य, चार्वाक और लोकायतिक भी कहते हैं।

नास्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नास्तिक होने का भाव। ईश्वर, परलोक आदि को न मानने की बुद्धि।

नास्तिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नास्तिकता'। उ०—नास्तिकत्व का प्रवेश करा पीछे से पछताना व्यर्थ है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०८।

नास्तिक दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का दर्शन। वि० दे० 'दर्शन'।

नास्तिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकता। ईश्वर, परलोक आदि में अविश्वास।

नास्तितरु—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

नास्तिद—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

नास्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिकों का तर्क।

नास्य[1]—वि० [सं०] १. नासिका संबंधी। नाक का। २. नासिका से उत्पन्न।

नास्य[2]—संज्ञा पुं० बैल की नाक में लगी हुई रस्सी। नाथ।

नाह(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० नाथ, प्रा० नाह] १. नाथ। स्वामी। मालिक। २. स्त्री का पति।

नाह[2]—संज्ञा पुं० [सं० नाभ] पहिए का छेद। नाभि।

नाह[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बंधन। २. हिरन फँसाने का फंदा। ३. कोष्ठबद्धता। कब्जियत (को०)।

नाहक—क्रि० वि० [फ़ा० ना + अ० हक़] वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। बेमतलब। निष्प्रयोजन।

नाहट†—वि० [देश०] बुरा। नटखट।

नाहनूह(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाहीं] 'नहीं, नहीं' शब्द। इनकार।

नाहमवार—वि० [फ़ा०] १. जो हमवार या समतल न हो। ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा। २. असभ्य। उजड्ड (को०)।

नाहर[1]—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] [स्त्री० नाहरी] १. सिंह। शेर। २. बाघ।

नाहर[2]— संज्ञा पुं० [देश०] टेसू का फूल।

नाहरसाँस—संज्ञा पुं० [हिं० नाहर + साँस] घोड़ों की एक बीमारी जिसमें उनका दम फूलता है।

नाहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाहर] सिंहिनी । शेरनी । उ०—नारि कहाँ की नाहरी, नख सिख से यह खाय । जल बूड़ा तो ऊबरे मन बूड़ा तो जाय ।—संतवाणी०, पृ० ५८ ।

नाहरू[1]—संज्ञा पुं० [देश०] नारू नाम का रोग । नहरुवा ।

नाहरू[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नाहर' ।

नाहिनⓅ—अव्य० [हिं० नाहिं + न (प्रत्य०)] नहीं । उ०—नाहिन रह्यो मन में ठौर ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७८ ।

नाहिनैⓅ[1]—वाक्य [हिं० नाहीं] नहीं है ।

नाहिनै[2]—अव्य० [हिं०] नाहिन । नहीं । उ०—ब्रजपति हूँ के मन भय भयो । नामकरन जु नाहिनै भयो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४३ ।

नाहीं—अव्य० [हिं०] दे० 'नहीं' ।

नाहुष, नाहुषि—संज्ञा पुं० [सं०] नहुष के पुत्र ययाति ।

निंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निण्डिका] मटर ।

नितⓅ—क्रि० वि०[सं० नित्य]दे० 'नित्य' । उ०- जेटि नारि हँसि पूछे अमिय बचन जिमि नित ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७२ ।

निंताⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० निमित्त] कारण । निमित्त । उ०—मानुस चित आन कछु निंता । करै गुसाईं न मन मँह चिंता ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३१५ ।

निंदⓅ— वि० [सं० निन्द्य] दे० 'निंद्य' ।

निंदक—संज्ञा पुं० [सं० निन्दक] निंदा करनेवाला । दूसरों के दोष या बुराई कहनेवाला । उ०—आन देव निंदक अभिमानी ।—मानस, ७।९७ ।

निंदन—संज्ञा पुं० [सं० निन्दन] [वि० निंदनीय, निंदित, निंद्य] निंदा करने का काम ।

निंदनीयⓅ†—क्रि० स० [सं० निन्दन] निंदा करना । बदनाम करना । बुरा कहना । उ०—(क) पिता मंदमति निंदत तेही । दक्ष शुक्र संभव यह देही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हरि सब के मन यह उपजाई । सुरपति निंदत गिरिहिं बड़ाई ।—सूर (शब्द०) ।

निंदनीय—वि० [सं० निन्दनीय] १. निंदा करने योग्य । बुरा कहने योग्य । २. बुरा । गर्ह्य ।

निंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] १. (किसी व्यक्ति या वस्तु का) दोषकथन । बुराई का वर्णन । ऐसी बात का कहना जिससे किसी का दुर्गुण, दोष, तुच्छता इत्यादि प्रगट हो । अपवाद । जुगुप्सा । कुत्सा । बदगोई । २. अपकीर्ति । बदनामी । कुख्याति । जैसे,—ऐसी बात से लोक में निंदा होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—यद्यपि निंदा दोष के कथन मात्र को कह सकते हैं चाहे कथन यथार्थ हो चाहे अयथार्थ पर मनुस्मृति में ऐसे दोष के कथन को 'निंदा' कहा है जो यथार्थ न हो । जो दोष वास्तव में हो उसके कथन को 'परीवाद' कहा है । कुल्लूक ने अपनी व्याख्या में कहा है कि विद्यमान दोष के अभिधान को 'परीवाद' और अविद्यमान दोष के अभिधान को 'निंदा' कहते हैं ।

निंदास्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दास्तुति] १. निंदा के बहाने स्तुति । व्याजस्तुति । २. दोषकथन और प्रशंसा ।

निंदित—वि० [सं० निन्दित] जो बुरा कहा गया हो । जिसे लोग बुरा कहते हों । दूषित । बुरा ।

निंदु—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दु] मरे बच्चे को जन्म देनेवाली माता । मृतवत्सा माँ (को०) ।

निंद्य—वि० [सं० निन्द्य] १. निंदा करने योग्य । निंदनीय । २. दूषित । बुरा ।

निंद्याⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] दे० 'निंदा' । उ०—अस्तुति निंद्या आसा छाँड़ैं, तजै मान अभिमाना । लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५० ।

निंब—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब] १. नीम का पेड़ ।

यौ०—पंचनिंब । महानिंब ।

२. एक वृक्ष । पारिभद्र (को०) ।

निंबतरु—संज्ञा पुं० [सं० निम्बतरु] १. नीब का पेड़ । २. मंदार वृक्ष । ३. महानिंब । बकायन (को०) ।

निंबपंचक—संज्ञा पुं० [सं० निम्बपञ्चक] नीब के पाँच अंग—पत्ती, फूल, फल, छाल और जड़ (को०)

निंबबीज—संज्ञा पुं० [सं० निम्बबीज] राजादनी वृक्ष । चिरौंजी का पेड़ (को०) ।

निंबर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंरिज' ।

निंबादतीⓅ†—वि० [सं० निम्बादित्य] निंबार्क संप्रदाय का अनुयायी । उ०—निंबादती होइ तौ तूँ कामना कटुक त्यागि, अमृत को पान करि अधिक अघाइए ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ६१२ ।

निंबादित्य—संज्ञा पुं० [सं० निम्बादित्य] निंबार्क संप्रदाय के आदि आचार्य । इनका दूसरा नाम 'अरुणि' भी था । ये श्री राधिका जी के कंकण के अवतार माने जाते हैं ।

विशेष—वृंदावन के पास ध्रुव नामक पहाड़ी पर ये रहते थे । वहीं पर इनके शिष्यों ने इनकी गद्दी स्थापित की । कहते हैं, इनके पिता का नाम जगन्नाथ था । बाल्यावस्था में इनका नाम भास्कराचार्य था । बहुत से लोग इन्हें सूर्य के अंश से उत्पन्न कहते थे । ये कृष्ण के बड़े भारी भक्त थे । इनके नाम के कारण इनके संबंध में एक विलक्षण कथा भक्तमाल में लिखी है । एक सन्यासी या जैन यति इनसे दिन भर शास्त्रार्थ करता रहा । सूर्यास्त हो रहा था । इन्होंने उससे भोजन के लिये कहा । सूर्यास्त के उपरांत भोजन करने का नियम उसका नहीं था । इसपर निंबार्क ने सूर्य को रोक रखा । जबतक संन्यासी ने भोजन नहीं कर लिया तबतक सूर्य देवता एक नीम के पेड़ पर बैठे रहे ।

निंबार्क—संज्ञा पुं० [सं० निम्बार्क] १. निंबादित्य । २. निंबादित्य का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय ।

विशेष—निंबार्क मत वैष्णव धर्म के चार प्रमुख संप्रदायों (रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी तथा निंबार्क) में से एक है । द्वैताद्वैत अध्यात्म दर्शन को आधार मान कर इसमें राधा और कृष्ण के युगलस्वरूप रसभाव से उपासना स्वीकृत है ।

निंबू†—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्बू] नीबू ।

निंबूक—संज्ञा पुं० [सं० निम्बूक] दे० 'निंबू' ।

निंदरना—क्रि० स० [सं० निन्दा] निंदा करना । बदनाम करना । बुरा कहना ।

निंदरिया(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] नींद । निद्रा । उ०—मेरे लाल को आव निंदरिया काहे न आय सुवावै ।—सूर (शब्द०) ।

निंदाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० निराई] १. खेत के पौधों के पास की घास, तृण आदि को उखाड़कर या काटकर अलग करने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निंदाना—क्रि० स० [सं०] दे० 'निराना' ।

निंदासा—वि० [हिं० नींद + आसा (प्रत्य०)] १. जिसे नींद आ रही हो । उनींदा । २. आलस्ययुक्त । अलसाया ।

निंदिया‡—संज्ञा स्त्री०[हिं० नींद + इया (स्वा० प्रत्य०)] नींद । ऊँघ । जैसे, —आव री निंदिया आव (बच्चों के सुलाने का वाक्य) । उ०—सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

निंबकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब + हिं० कौरी] नीम का फल । निबौरी ।

निंबरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीम + बारी] वह बारी या कुंज जिसमें सब पेड़ नीम के ही हों ।

निः—अव्य० [सं० निस्] एक उपसर्ग । दे० 'निस्' ।

निःअच्छर†—संज्ञा पुं० [सं० निः + अक्षर] ब्रह्म । ईश्वर । वह जिसका वर्णन अक्षरों के द्वारा न हो सके । उ०—निःअच्छर अब मिला अच्छर को ले क्या करना ।—पलटू०, भा० १, पृ० १७३ ।

निःकंप—वि० [सं० निष्कम्प] कंपनरहित । अचल ।

निःकपट—वि० [सं० निष्कपट] दे० 'निष्कपट' ।

निःकाज—(पु) वि० [निः + हिं० काज] बिना कार्य के । निष्प्रयोजन । उ०—निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न कारागृह पर्‍यो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२४ ।

निःकाम—वि० [सं० निष्काम] दे० 'निष्काम' ।

निःकारण—वि० [सं० निष्कारण] दे० 'निष्कारण' ।

निःकासन—संज्ञा पुं० [सं० निष्कासन] दे० 'निष्कासन' ।

निःकासित—वि० [सं० निष्कासित] निष्कासित । निकाला हुआ [को०] ।

निःक्रामित—वि० [सं० निष्क्रामित] निकाला या भगाया हुआ ।

निःक्षत्र—वि० [सं०] क्षत्रियरहित । क्षत्रियशून्य (देश आदि) ।

निःक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेप । फेंकना । प्रक्षेपण । २. जमा । गिरवी । आड़ । ३. बिना किसी प्रतिबंध के जमा किया हुआ । सामान्य जमा । ४. प्रेषित करना । ५. परित्याग । ६. पोंछना । सुखाना । ७. गड़ा धन । भूगर्भस्थ धन [को०] ।

निःक्षोभ—वि० [सं०] क्षोभहीन । जिसको क्षोभ न हो ।

निःछल—वि० [सं० निश्छल] दे० 'निश्छल' ।

निःपक्ष—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' ।

निःपाप—वि० [सं० निष्पाप] दे० 'निष्पाप' ।

निःप्रभ—वि० [सं०] निष्प्रभ । प्रभाहीन । नष्टप्रभ [को०] ।

निःप्रयोजन—वि० [सं० निष्प्रयोजन] दे० 'निष्प्रयोजन' ।

निःफल—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल' ।

निःशंक—वि० [सं० निःशङ्क] भयहीन । निडर । निर्भय । जिसे डर न हो । २. जिसे किसी प्रकार का खटका या हिचक न हो ।

निःशत्रु—वि० [सं०] शत्रुरहित । जिसका कोई शत्रु न हो [को०] ।

निःशब्द—वि० [सं०] शब्द से रहित । जहाँ शब्द न हो या जो शब्द न करे ।

निःशम—वि० [सं०] १. क्रोध । २. बेचैनी । अशांति [को०] ।

निःशरण—वि० [सं०] शरणहीन । अरक्षित [को०] ।

निःशलाक—वि० [सं०] निर्जन । एकांत । सुनसान । निराला ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि मंत्रणा निःशलाक स्थान में करनी चाहिए ।

निःशल्य—वि० [सं०] दे० 'निःशल्या' ।

निःशल्या[1]—वि० [सं०] १. शल्यारहित । २. खटकनेवाली चीज से युक्त । प्रतिबंधरहित । निष्कंटक ।

निःशल्या[2]—संज्ञा स्त्री० दती वृक्ष [को०] ।

निःशाख—वि० [सं०] शाखारहित [को०] ।

निःशील—वि० [सं०] शीलरहित [को०] ।

निःशुक—वि० [सं०] १. शक्तिरहित । ओजहीन । २. उत्साहहीन [को०] ।

निःशूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान ।

निःशून्य—वि० [सं०] रिक्त । खाली [को०] ।

निःशेष—वि० [सं०] १. जिसमें कुछ शेष न हो । जिसका कोई अंश न रह गया हो । समूचा । सब । २. समाप्त । पूरा । खतम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निःशोक—वि० [सं०] शोकरहित । चिंतामुक्त [को०] ।

निःशोध्य—वि० [सं०] जिसका साफ करना अनावश्यक हो । स्वच्छ । साफ [को०] ।

निःश्रीक—वि० [सं०] श्रीहीन । कांतिहीन । तेजरहित [को०] ।

निःश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निश्रेणी' ।

निःश्रयिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निःश्रेणी' ।

निःश्रेणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की घास । २. निश्रेणी [को०] ।

निःश्रेणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काठ या बाँस आदि की सीढ़ी । २. खजूर का वृक्ष [को०] ।

निःश्रेणी[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का उत्तम अश्व [को०] ।

निःश्रेयस—वि० [सं०] १. मोक्ष । मुक्ति । २. मंगल । कल्याण । ३. भक्ति । ४. विज्ञान । ५. शिव । शंकर (को०) ।

निःश्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] श्वास का बाहर निकालना ।

निःश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणवायु का नाक से निकलना

या नाक से निकाली हुई वायु। साँस। २. लंबी साँस। दीर्घ श्वास।

निःसंकल्प—वि० [सं० निःसङ्कल्प] इच्छारहित।

निःसंकोच—क्रि० वि० [सं० निःसङ्कोच] बिना संकोच के। बेधड़क। जैसे,—ग्राप निःसंकोच चले ग्राइए।

निःसंख्य—वि० [सं० निःसङ्ख्य] संख्यारहित। अगणित। बेशुमार।

निःसंग—वि० [सं० निःसङ्ग] १. बिना मेल या लगाव का। जो मेल या लगाव न रखता हो। २. निर्लिप्त। ३. जिसमें अपने मतलब का कुछ लगाव न हो।

निःसंचार—वि० [सं० निःसञ्चार] जिसमें गति न हो। जो संचरण न करे [को०]।

निःसंज्ञ—वि० [सं०] संज्ञाशून्य। मूर्छित [को०]।

निःसंतान—वि० [सं० निःसन्तान] जिसके संतान न हो। निपूता या निपूती। लावल्द।

निःसंदेह[1]—वि० [सं० निःसन्देह] संदेहरहित। जिसे या जिसमें कुछ संदेह न हो। जैसे,—किसी ग्रादमी का निःसंदेह होना, किसी बात का निःसंदेह होना।

निःसंदेह[2]—ग्रव्य० १. बिना किसी संदेह के। २. इसमें कोई संदेह नहीं। ठीक है। बेशक।

निःसंधि—वि० [सं० निःसन्धि] १. संधिशून्य। जिसमें कहीं से दरार या छेद न हो। २. दृढ़। मजबूत। ३. कसा हुआ। गठा हुआ।

निःसंपात—वि० [सं० निःसम्पात] १. गमनागमनशून्य। जहाँ या जिसमें ग्राना जाना न हो। जहाँ या जिसमें ग्रावागमन न हो। जहाँ या जिसमें ग्रामदरफ्त न हो। जैसे, निःसंपात मार्ग। २. रात। रात्रि।

निस्संबाध—वि० [सं० निःसम्बाध] १. विस्तीर्ण। फैला हुआ। ग्रबाध [को०]।

निःसंशय—वि० [सं०] संदेहरहित। शंकारहित।

निःसत्व—वि० [सं० निःसत्व] १. जिसकी कुछ सत्ता न हो। जिसमें कुछ ग्रसलियत न हो। २. जिसमें कुछ तत्व या सार न हो। बिना सत का।

निःसपत्न—वि० [सं०] १. शत्रुरहित। जिसका कोई शत्रु न हो। २. निष्कंटक। ३. प्रतिरोधीरहित। ग्रद्वितीय [को०]।

निःसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकलना। २. निकलने का रास्ता। निकास। ३. कठिनाई से निकलने का रास्ता। ४. निर्वाण। ५. मरण।

निःसार[1]—वि० [सं०] १. जिसमें कुछ सार न हो। जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जिसमें कुछ ग्रसलियत न हो। ३. जिसमें प्रयोजन या महत्व की कोई बात न हो।

निःसार[2]—संज्ञा पुं० १. शाखोट वृक्ष। सहोरे का पेड़। २. श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

निःसारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निःसरित] १. निकालना। २. निकास। निकलने का द्वार या मार्ग।

निःसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष। कदली [को०]।

निःसरित—वि० [सं०] निकाला हुआ। निष्कासित। बर्खास्त किया हुआ।

निःसारु—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक।

निःसीम—वि० [सं०] १. जिसकी सीमा न हो। बेहद। २. बहुत बड़ा या बहुत ग्रधिक।

निःसुकि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ जिसके दाने छोटे होते हैं ग्रौर जिसकी बाल में टूँड़ या सीगुर नहीं होते।—(भावप्रकाश)।

निःसृत—वि० [सं०] निकला हुआ।

निःस्नेहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीसी। ग्रलसी।

निःस्पंद—वि० [सं० निःस्पन्द] जिसमें स्पंद न होता हो। जो हिलता डोलता न हो; निश्चल। स्थिर।

निःस्पृह—वि० [सं०] १. इच्छारहित। जिसे किसी बात की ग्राकांक्षा न हो। २. जिसे प्राप्ति की इच्छा न हो। निर्लोभ।

निःस्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकास। २. ग्रवशेष। बचत। निकासी (याज्ञवल्क्य०)।

निःस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यय। खर्च करने का भाव। २. माँड़। [को०]

निःस्व—संज्ञा पुं० [सं०] जिसका ग्रपना कुछ न हो। जिसके पास कुछ न हो। धनहीन। दरिद्र।

निःस्वादु—वि० [सं०] स्वादरहित [को०]।

निःस्वार्थ—वि० [सं०] १. जो ग्रपना ग्रर्थसाधन करनेवाला न हो। जो ग्रपना मतलब निकालनेवाला न हो। जो ग्रपने लाभ, सुख या सुभीते का ध्यान न रखता हो। २. (कोई बात) जो ग्रपने ग्रर्थसाधन के निमित्त न हो। जो ग्रपना मतलब निकालने के लिये न हो। ३. निःस्वार्थ सेवा।

नि[1]—ग्रव्य [सं०] एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में इन ग्रर्थों की विशेषता होती है—१. संघ या समूह। जैसे, निकर। २. ग्रधोभाव। जैसे, निपतित। ३. भृश, ग्रत्यंत। जैसे, निगृहीत। ४. ग्रादेश। जैसे, निदेश। ५. नित्य जैसे। निविशिष्ट। ६. कौशल। जैसे, निपुण। ७. बंधन जैसे, निबंध। ८. ग्रंतर्भाव। जैसे, निपित। ९. समीप। जैसे, निकट। १०. दर्शन। जैसे, निदर्शन। ११. उपरम। जैसे निवृत्त। १२. ग्राश्रय जैसे, निलय। मेदनी कोश में ये ग्रर्थ ग्रौर बतलाए गए हैं—१३. संशय। १४. क्षेप। १५. दान। १६. मोक्ष। १७. विन्यास ग्रौर १८. निषेध।

नि[2]—संज्ञा पुं० निषाद स्वर का संकेत।

निग्रर(पु)†—ग्रव्य० [सं० निकट, प्रा० निग्रड] निकट। पास। समीप।

निग्रर[2]—वि० समान। तुल्य।

निग्रराना(पु)†[1]—क्रि० स० [हिं० निग्रर] निकट जाना। समीप पहुँचना। उ०—ग्राइ नगर निग्रराति बरात बजावत।—तुलसी (शब्द०)

निअराना[2]—क्रि० अ० निकट आना। पास होना। दूर न रह-जाना। उ०—आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत निअराया।—तुलसी (शब्द०)।

निआउⓟ‡—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय'। उ०—नीक सगुन बिचरिहि झगर होइहि धरम निआउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९३।

निआथीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० निःअर्थ अथवा निर्धन] धनहीनता। दरिद्रता। उ०—साची आथि निआथि जो सकै साथ निर-बाहि। जो जिउ जोरे पिउ मिलै भेंटु रे जिउ जरि जाहि।—जायसी (शब्द०)।

निआनⓟ[1]—संज्ञा पुं० [सं० निदान] अंत। परिणाम। उ०—जो निआन तन होइहि छारा। माटिहि पोखि मरै को मारा।—जायसी ग्रं०, पृ० ५४।

निआन[2]—अव्य० अंत में। आखिर।

निआना‡—क्रि० वि० [हिं० न्यारा] न्यारा। अलग। उ०—अनु राजा सो जरै निआना। बादसाहु के सेव न माना।—जायसी (शब्द०)।

निआमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अच्छा और बहुमूल्य पदार्थ। अलभ्य पदार्थ।

निआरा†—वि० [हिं०] दे० 'न्यारा'।

निऋति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैऋत्य या दक्षिणपश्चिम कोण की अधिष्ठातृ देवी। २. अलक्ष्मी। लक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रा। ३. मृत्यु। नाश। ४. पृथ्वी का तत्व। ५. विपत्ति [को०]।

निर्ऋति[1]—संज्ञा पुं० १. नैऋत्य कोण के अधिपति दिक्पाल। २. राक्षस। ३. मरण। ४. आठ वसु में से एक वसु। ५. एक रुद्र। रुद्र का एक रूप। ६. मूल नामक नक्षत्र [को०]।

निर्ऋति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निऋति'।

निकंटकⓟ—वि० [सं० निष्कण्टक] दे० 'निष्कंटक'।

निकंदन—संज्ञा पुं० [सं० नि + कन्दन (= नाश, वध)] नाश। विनाश।

निकंदनाⓟ—क्रि० स० [सं० निकन्दन] नाश करना। संहार करना उ०—आरति निकंदन मिलावै नंदनंदन मु।—धनानंद, पृ० १४६।

निकंदरोग—संज्ञा पुं० [सं०] एक योनिरोग। दे० 'योनिकंद'।

निकⓟ‡—वि० [हिं० नीक] नीका। अच्छा। भला। उ०—कृपिन पुरुस के केओ नहि निक कह।—विद्यापति, पृ० १८०

निकट[1]—वि० [सं०] १. पास का। समीप का। जो दूर न हो। २. संबंध में जिससे विशेष अंतर न हो। जैसे, निकट संबंधी।

निकट[2]—क्रि० वि० पास। समीप। नजदीक।

मुहा०—किसी के निकट = (१) किसी के प्रति। किसी से। जैसे,—किसी के निकट कुछ माँगना। (२) किसी के लेखे में। किसी की समझ में। जैसे,—तुम्हारे निकट तो यह काम कुछ भी नहीं है।

निकटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समीपता। सामीप्य।

निकटपना—संज्ञा पुं० [सं० निकट + पना (प्रत्य०)] निकटता। सामीप्य।

निकटवर्ती—वि० [सं० निकटवर्तिन्] [वि० स्त्री० निकटवर्तिनी] पासवाला। समीपस्थ। नजदीक का।

निकटस्थ—वि० [सं०] १. जो निकट हो। पास का। २. संबंध में जिससे बहुत अंतर न हो। जैसे, निकटस्थ संबंधी।

निकटठूⓟ‡—वि० [हिं०] दे० 'निखट्टू'। उ०—बहुत दिनों में निकटठू आए। पैसा एक न पूँजी लाए।—दक्खिनी० पृ० ३१०।

निकती—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्क + मिति] छोटा तराजू। काँटा।

निकम्मा—वि० [सं० निष्कर्म, प्रा० निकम्म] [वि० स्त्री० निकम्मी] १. जो कोई काम धंधा न करे। जिससे कुछ करते धरते न बने। जैसे, निकम्मा आदमी। २. जो किसी काम का न हो। जो किसी काम में न आ सके। बेमसरफ। बुरा। जैसे, निकम्मी चीज।

निकर[1]—संज्ञा पुं० [अं० निकर बाकर्ज] एक प्रकार का घुटने तक का खुला पायजामा।

निकर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। झुंड। उ०—बिचरहि यामें रसिकवर, मधुकर निकर अपार।—रसखान०, पृ० १२। २. राशि। ढेर। ३. न्यायदेय धन। ४. सार (को०)। ५. निधि। खजाना।

निकरनाⓟ†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निकलना'।

निकर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। २. विदारण करना। फाड़ना [को०]

निकर्मा—वि० [सं० निष्कर्मा] जो काम न करे। आलसी। जो कुछ उद्योग धंधा न करे।

निकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर या नगर के समीप खेल का मैदान। क्रीड़ाभूमि। २. घर के आगे खुला चबूतरा या प्रवेश-द्वार के पास का आँगन। ३. पड़ोस। ४. परती। बिना जोती भूमि [को०]।

निकलंक—वि० [सं० निष्कलङ्क] दोषरहित। निर्दोष। बेदाग। उ०—बुरो बुराई जो तजै तो मन खरो सकात। ज्यों निकलंक मयंक लखि गनै लोक उतपात।—बिहारी (शब्द०)।

निकलंकी[1]—संज्ञा पुं० [सं० निष्कलङ्क] विष्णु का दसवाँ अवतार जो कलि के अंत में होगा। कल्कि अवतार। उ०—द्वादस ये युग लक्षण गायो। निकलंकी अवतार बतायो।—रघुनाथ (शब्द०)

निकलंकी[2]—वि० दे० 'निकलंक'।

निकल—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक, संखिया आदि के साथ मिली हुई खानों में मिलती है।

विशेष—साफ होने पर यह चाँदी की तरह चमकती है। यह बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहे की तरह चुंबक शक्ति को ग्रहण करती है। सन् १७५१ में एक जर्मन ने इसका पता लगाया। इसका साफ करना बहुत कठिन काम है। ताँबे के साथ मिलाने से यह बिलायती

चाँदी के रूप में हो जाती है। अलुमीनम के साथ इसे मिला देने से इसमें अधिक कड़ापन आ जाता है। यह धातु कंधार, राजपूताना तथा सिंहल द्वीप में थोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलने के कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इससे छोटे सिक्के बनाने के काम में यह लाई जाने लगी है।

निकलना—क्रि० अ० [हिं० निकालना] १. बाहर होना। भीतर से बाहर आना। निर्गत होना। जैसे, घर से निकलना, संदूक से निकलना, अंकुर निकलना, आँसू निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —चलना। —जाना। —पड़ना। —भागना।

मुहा०—निकल जाना = (१) चला जाना। आगे बढ़ जाना। जैसे,—अब तो वे बहुत दूर निकल गए होंगे। (२) न रह जाना। खो जाना। नष्ट हो जाना। ले लिया जाना। जैसे,—हाथ से चीज काम या अवसर निकल जाना। (३) घट जाना। कम हो जाना। जैसे,—पाँच में से तीन निकल गए, दो बचे। (४) न पकड़ा जाना। भाग जाना। जैसे,—चोर निकल गया। (स्त्री का) निकल जाना = किसी पुरुष के साथ अनुचित संबंध करके घर छोड़कर चला जाना।

२. व्याप्त या ओतप्रोत वस्तु का अलग होना। मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज का अलग होना। जैसे,—बीज से तेल निकलना, पत्ती से रस निकलना, फल का छिलका निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

३. पार होना। एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। अतिक्रमण करना। जैसे,—इस छेद में से गेंद नहीं निकलेगा।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

मुहा०—निकल चलना = वित्त से बाहर काम करना। इतराना। अति करना।

४. किसी श्रेणी आदि के पार होना। उत्तीर्ण होना। जैसे,—इस बार परीक्षा में तुम निकल जाओगे।

संयो० क्रि०—जाना।

५. गमन करना। जाना। गुजरना। जैसे,—(क) वह रोज इसी रास्ते से निकलता है। (ख) बरात बड़ी धूम से निकली।

संयो० क्रि०—जाना।

६. उदय होना। जैसे, चंद्रमा निकलना, सूर्य निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

७. प्रादुर्भूत होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे,—इतने चिउँटे कहाँ से निकल पड़े। ८. उपस्थित होना। दिखाई पड़ना। ९. किसी ओर को बढ़ा हुआ होना। जैसे,—(क) घर का एक कोना पच्छिम ओर निकला हुआ है। (ख) कील की नोक नहीं निकली है।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

१०. निश्चित होना। ठहराया जाना। उद्भावित होना। जैसे, रास्ता निकलना, दोष निकलना, परिणाम निकलना, उपाय निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —पड़ना।

११. खुलना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। जैसे,—वाक्य का अर्थ निकलना, धोने पर कपड़े का रंग निकलना।

संयो० क्रि० आना।

१२. मेल में से अलग होना। पृथक् होना। जैसे,—गेहूँ में से बहुत कंकड़ी निकली है।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

१३. छिड़ना। आरंभ होना। जैसे, बात निकलना, चर्चा निकलना। १४. प्राप्त होना। सिद्ध होना। सरना। जैसे, काम निकलना, मतलब निकलना।

संयो० क्रि० —आना। —जाना।

१५. हल होना। किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर प्राप्त होना। जैसे,—इतना सीधा सवाल तुमसे नहीं निकलता। १६. लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तु का आरंभ होना। जैसे,—यह नदी कहाँ से निकली है। १७. लकीर के रूप में दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान होना। फैलाव होना। जारी होना। जैसे, नहर निकलना, सड़क निकलना। १८. प्रचलित होना। जारी होना। जैसे, कानून निकलना, कायदा निकलना, रीति निकलना, चाल निकलना।

संयो० क्रि०—जाना।

१९. फँसा, बँधा या जुड़ा न रहना। छूटना। मुक्त होना। जैसे,—गले से फंदा निकलना, बंधन से निकलना, बटन निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

२०. नई बात का प्रगट होना। आविष्कृत होना। ईजाद होना। जैसे,—कोई नई युक्ति निकलना, कल निकलना। २१. शरीर के ऊपर उत्पन्न होना। जैसे,—फोड़े फुंसी निकलना, चेचक निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

२२. प्रमाणित होना। सिद्ध होना। साबित होना। जैसे,—(क) वह नौकर तो चोर निकला। (ख) उनकी कही हुई बात ठीक निकली। २३. लगाव न रखना। किनारे हो जाना। अलग हो जाना। जैसे,—दूसरों को इस काम में फँसाकर तुम तो निकल जाओगे।

संयो० क्रि०—जाना। —भागना।

२४. अपने को बचा जाना। बच जाना। जैसे,—कोई आधी बात कहकर निकल तो जाय।

संयो० क्रि०—जाना। —भागना।

२५. अपनी कही हुई बात से अपना संबंध न बताना। कहकर नहीं करना। मुकरना। नटना। जैसे,—बात कहकर अब निकले जाते हो।

संयो० क्रि०—जाना ।

२६ छपना । बिकना । जैसे,—जितनी पुस्तकें छपाई थीं सब निकल गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२७ प्रस्तुत होकर सर्वसाधारण के सामने आना । प्रकाशित होना । जैसे,—उस प्रेस से अच्छी पुस्तकें निकली हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२८ हिसाब किताब होने पर कोई रकम जिम्मे ठहरना । चाहता होना । जैसे,—तुम्हारा जो कुछ निकलता हो हमसे लो । २९. फटकर अलग होना । उचड़ना । जैसे,—कुरता मोढ़े पर से निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३० प्राप्त होना । पाया जाना । मिलना । जैसे,—(क) हमारा रुपया किसी प्रकार निकल आता तो बड़ी बात होती । (ख) उसके पास चोरी का माल निकला है ।

संयो० क्रि०—आना ।

३१. जाता रहना । दूर होना । हट जाना । मिट जाना । न रह जाना । जैसे,—(क) दवा लगाते ही सब पीड़ा निकल गई । (ख) एक चाँटा दूँगे तुम्हारी सब बदमाशी निकल जायगी ।

संयो० क्रि० जाना ।

३२. व्यतीत होना । बीतना । गुजरना । जैसे,—इसी झंझट में सारा दिन निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३३ घोड़े बैल, आदि का सवारी लेकर चलना आदि सीखना । शिक्षित होना । जैसे,—यह घोड़ा अभी निकला नहीं है ।

निकलवाना—क्रि० स० [हिं० निकालना का प्रे० रूप] निकालने का काम दूसरे से कराना ।

निकलाना†—क्रि० स० [हिं० निकालना] दे० 'निकलवाना' ।

निकष संज्ञा पुं० [सं०] १. कसौटी । २. कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३. हथियारों पर सान चढ़ाने का पत्थर । ४. कसौटी पर कसने से बनी रेखा (को०) । ५. कोई वस्तु या कार्य जिससे किसी की परीक्षा हो । (लाक्ष०) ।

निकषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसौटी । २. कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३. सान पर चढ़ाने का काम । ३. घिसने या रगड़ने का काम ।

निकषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमालि की कन्या और विश्रवा की पत्नी एक राक्षसी जिसके गर्भ से रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण उत्पन्न हुए थे ।

निकषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर । रात्रिचर । राक्षस (को०) ।

निकषोपल—संज्ञा पुं० [सं०] वह काला पत्थर जिसपर सोना कसकर परखा जाता है । कसौटी (को०)

निकस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकष' ।

निकसना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निकलना' । उ०—भूतल तें निकसति कहूँ बिज्जुछटा की लोह ।—शकुंतला, पृ० २१ ।

निकसनी†—वि० [हिं० निकसना] निकलनेवाली । बाहर निकलने की । उ०—तियन की नहिन निकसनी बेर । बेग बाहु पर होति अबेर ।—नंद ग्रं०, पृ० ३११ ।

निकाई(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० निकाय] दे० 'निकाय' ।

निकाई[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नेक, हिं० नीक] १. भलाई । अच्छापन उम्दगी । २. खूबसूरती । सौंदर्य । सुंदरता । उ०—मध मनि माल बीच भ्राजत, कहि जाति न पदक निकाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निकाज—वि० [हिं० नि + काज] बेकाम । निकम्मा । उ०—जोबन चंचल ढीठ है करै निकाजहि काज ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३८ ।

निकाना—क्रि० स० [देश०] दे० 'निराना' ।

निकाब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नक़ाब] नकाब । पर्दा । उ०—आँखों में लाल डोरे शराब के बदले । हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाब के बदले ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०१ ।

निकाम[1]—वि० [हिं० नि + काम] १. निकम्मा । २. बुरा । खराब ।

निकाम[2]—क्रि० वि० व्यर्थ । निष्प्रयोजन । फजूल ।

निकाम[3]—वि० [सं०] १. इष्ट । अभिलषित । २. यथेष्ट । पर्याप्त । काफी । ३. इच्छुक । ४. बहुत । अतिशय ।

निकाम[4]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकामन' (को०) ।

निकामन—संज्ञा पुं० [सं०] आकांक्षा । इच्छा । अभिलाषा (को०) ।

निकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ समूह । झुंड । उ०—देखि सिसु हरखाय निकाय चकोर निहारैं ।—दीन० ग्रं०, पृ० ११८ । २. एक ही मेल की वस्तुओं का ढेर । राशि । ३. निलय । वासस्थान । घर । ४. परमात्मा । ५. शरीर । देह (को०) । ६. लक्ष्य (को०) । ७. वायु । पवन (को०)

निकाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] आवास । निवास । घर (को०) ।

निकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पराभव । हार । २. अपकार । ३. अपमान । अवमानना । मानहानि । ४. तिरस्कार । ५. अनाज ओसाना (को०) । ६. वध करना । मारण । हिंसन (को०) । ७. दुष्टता । बदमाशी (को०) । ८ विरोध । द्वेष (को०) ९. उत्थापन । उठाना (को०) ।

निकार[2]—संज्ञा पुं० [हिं० निकारना] १. निकालने का काम । निष्कासन । २. निकलने का द्वार । निकास । ३. ईख का रस पकाने का कड़ाहा ।

निकारण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । वध ।

निकारना(पु)†—क्रि० स० [हिं० निकालना] दे० 'निकालना' ।

निकाल—संज्ञा पुं० [हिं० निकालना] १. निकास । २. पेंच का काट । वह युक्ति जिससे कुश्ती में प्रतिपक्षी की घात से बचा जाय । तोड़ । ३. कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें अपना दाहिना हाथ जोड़ की बाईं ओर से उसकी गरदन पर पहुँचाकर अपने बाएँ हाथ से उसके दाहिने हाथ को ऊपर उठाते हैं और फिर फुरती के साथ उसके बहने बाथ

पर झुककर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियों से भिड़ाते तथा अपना बायाँ हाथ उसकी दहनी जाँघ में बाहर की ओर से डालकर उसे चित कर देते हैं।

निकालना—क्रि० स० [सं० निष्कासन, हिं० निकासना] १. बाहर करना। भीतर से बाहर लाना। निर्गत करना। जैसे, घर से निकालना, बरतन में से निकालना, चुभा हुआ काँटा निकालना।

संयो० क्रि०—डालना। —देना। —लेना। —ले जाना।

मुहा०—(स्त्री को) निकाल लाना या ले जाना=स्त्री से अनुचित संबंध करके उसे उसके घर से अपने यहाँ लाना या लेकर कहीं चला जाना।

२. व्याप्त या ओतप्रोत वस्तु को पृथक् करना। मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज को अलग करना। जैसे, बीज से तेल निकालना, पत्ती से रस निकालना, फल से छिलका निकालना।

संयो० क्रि०—डालना। —देना। —लेना।

३. पार करना। एक ओर से दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना। अतिक्रमण कराना। जैसे,—दीवार के छेद में से इसे उस पार निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।—ले चलना।—ले जाना।

४. गमन कराना। ले जाना। गुजर कराना। जैसे,—(क) वे बारात इसी सड़क से निकालेंगे। (ख) हम उसे इसी ओर से निकाल ले जायँगे।

संयो० क्रि०—ले चलना।—ले जाना।

५. किसी ओर को बढ़ा हुआ करना। जैसे,—चबूतरे का एक कोना उधर निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

६. निश्चित करना। ठहराना। उद्भावित करना। जैसे, उपाय निकालना, रास्ता निकालना, दोष निकालना, परिणाम निकालना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

७. प्रादुर्भूत करना। उपस्थित करना। मौजूद करना। ८. खोलना। व्यक्त करना। स्पष्ट करना। प्रकट करना। जैसे,—वाक्य का अर्थ निकालना। ९. छेड़ना। आरंभ करना। चलाना। जैसे,—बात निकालना, चर्चा निकालना। १०. सबके सामने लाना। देख में करना। जैसे,—अभी मत निकालो, लड़के देखेंगे तो रोने लगेंगे। ११. मेल या मिलेजुले समूह में से अलग करना। पृथक् करना। जैसे,—(क) इनमें से जो आम सड़े हों उन्हें निकाल दो। (ख) इनमें से जो तुम्हारे काम की चीजें हों उन्हें निकाल लो।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

१२. घटना। कम करना। जैसे,—पाँच में से तीन निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

१३. फँसा, बँधा, जुड़ा या लगा न रहने देना। अलग करना। छुड़ाना। मुक्त करना। जैसे,—गले से फंदा निकालना, कोट से बटन निकालना।

संयो० क्रि०—डालना। —देना। —लेना।

१४. काम से अलग करना। नौकरी से छुड़ाना। बरखास्त करना। जैसे,—इस नौकर को निकाल दो।

संयो० क्रि०—देना।

१५. पास न रखना। दूर करना। हटाना। जैसे,—इस घोड़े को अब हम निकाल देंगे।

संयो० क्रि०—देना।

१६. बेंचना। खपाना। जैसे, माल निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

१७. सिद्ध करना। फलीभूत करना। प्राप्त करना। जैसे,—अपना काम निकालने में वह बड़ा पक्का है।

संयो० क्रि०—लेना।

१८. निर्वाह करना। चलाना। जैसे,—किसी प्रकार काम निकालने के लिये यह अच्छा है।

संयो० क्रि०—लेना।

१९. किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर निश्चित करना। हल करना। जैसे,—यह सवाल तुम नहीं निकाल सकते। २०. लकीर की तरह दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान करना। जारी करना। फैलाना। जैसे, नहर निकालना, सड़क निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

२१. प्रचलित करना, जारी करना। जैसे, कानून निकालना, कायदा निकालना, रीति निकालना। २२. नई बात प्रकट करना। आविष्कृत करना। ईजाद करना। जैसे, नई तरकीब निकालना, कल निकालना। २३. संकट, कठिनाई आदि से छुटकारा करना। बचाव करना। निस्तार करना। उद्धार करना। जैसे,—इस संकट से हमें निकालो। २४. प्रस्तुत करके सर्वसाधारण के सामने लाना। प्रचारित करना। प्रकाशित करना। जैसे,—(क) उस प्रकाशक ने अच्छी पुस्तकें निकाली हैं। (ख) अखबार निकालना। २५. रकम जिम्मे ठहराना। ऊपर ऋण या देना निश्चित करना। जैसे,—उसने सौ रुपए हमारे जिम्मे निकाले हैं। २६. प्राप्त करना। ढूँढ़कर पाना। बरामद करना। जैसे,—पुलिस ने उसके यहाँ चोरी का माल निकाला है। २७. दूसरे के यहाँ से अपनी वस्तु ले लेना। जैसे, बैंक से रुपया निकालना।

संयो० क्रि०—देना।

२६. घोड़े, बैल आदि को सवारी लेकर चलना या गाड़ी आदि खींचना। सिखाना। शिक्षा देना। जैसे,—(क) यह सवार घोड़ा निकालता है। (ख) यह घोड़ा अभी गाड़ी में नहीं निकाला गया है। ३०. प्रवाहित करना। बहाना। ३१. सुई से बेल बूटे बनाना।

निकाला—संज्ञा पुं० [हिं० निकालना] १. निकालने का काम।

२. किसी स्थान से निकाले जाने का दंड। बहिष्कार। निष्कासन।

क्रि० प्र०—मिलना।—होना।

यौ०—देशनिकाला। नगरनिकाला।

निकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जहाँ तक दृष्टि जाती हो वह स्थान। दृष्टिक्षेत्र। क्षितिज। २. प्रकाश। ज्योति। ३. एकांत। ४. सामीप्य। समीपता। ५. सादृश्य [को०]।

निकाष—संज्ञा पुं० [सं०] खुरचना। रगड़ना। घसना। मलना [को०]।

निकास—संज्ञा पुं० [हिं० निकसना, निकासना] १. निकलने की क्रिया या भाव। २. निकालने की क्रिया या भाव। ३. वह स्थान जिससे होकर कुछ निकले। निकलने के लिये खुला स्थान या छेद। जैसे, बरसाती पानी का निकास। ४. द्वार। दरवाजा। जैसे,—घर का निकास दक्खिन ओर मत रखो। ५. बाहर का खुला स्थान। मैदान। उ०—(क) खेलत बने घोष निकास।—सूर (शब्द०)। (ख) खेलन चले कुँवर कन्हाई। कहत घोष निकास जइए तहाँ खेलें धाइ।—सूर (शब्द०)। ६. दूर तक जाने या फैलनेवाली चीज का प्रारंभ स्थान। उद्गम। मूलस्थान। जैसे, नदी का निकास। ७. वंश का मूल। ८. संकट या कठिनाई से निकलने की युक्ति। बचाव का रास्ता। रक्षा का उपाय। छुटकारे की तदबीर। जैसे, अब तो इस मामले में फँस गए हो, कोई निकास सोचो।

क्रि० प्र०—निकालना।

९. निर्वाह का ढंग। ठर्रा। वसीला। सिलसिला। जैसे,—इस समय तो तुम्हारे लिये कोई काम नहीं है, और कोई निकास निकालेंगे। १० लाभ या आय का सूत्र। प्राप्ति का ढंग। आमदनी का रास्ता। ११. आय। आमदनी। निकासी।

निकासना†—क्रि० स० [हिं० निकास] दे० 'निकालना'।

निकासपत्र—संज्ञा पुं० [हिं० निकास + पत्र] वह कागज जिसमें जमाखर्च और बचत का हिसाब समझाया गया हो।

निकासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० निकास + ई (प्रत्य०)] १. निकलने की क्रिया या भाव। २. किसी स्थान से बाहर जाने का काम। प्रस्थान। रवानगी। जैसे, बरात की निकासी। ३. वह धन जो सरकारी मालगुजारी आदि देकर जमींदार को बचे। मुनाफा। प्राप्ति। ४. आय। आमदनी। लाभ। जैसे,—जहाँ चार पैसे की निकासी होती है वहीं सब जाना चाहते है। ५. बिक्री के लिये माल को रवानगी। लदाई। भरती। ६. बिक्री। खपत। ७. चुंगी। ८. रवन्ना।

निकाह—संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानी पद्धति के अनुसार किया हुआ विवाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—निकाह पढ़ाना = विवाह करना।

यौ०—निकाहनामा = विवाह की शर्तें या लिखापढ़ी। निकाहेसानी = विधवा का पुनर्विवाह।

निकियाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निकियाना] निकियाने की मजदूरी। जैसे,—दमड़ी की मुरगी, नौ टका निकियाई।

निकियाना—क्रि० स० [देश०] १. नोचकर धज्जी धज्जी अलग करना। २. चमड़े पर से पंख या बाल नोचकर अलग करना।

निकिष्टⓅ‡—वि० [सं० निकृष्ट] दे० 'निकृष्ट'।

निकुंच—संज्ञा पुं० [सं० निकुञ्च] चाभी। कुंजी। ताली।

निकुंचक—संज्ञा पुं० [सं० निकुञ्चक] १. एक परिमाण या तौल जो आधी अजली के बराबर और किसी किसी के मत से आठ तोले के बराबर होती है। कुडव का चतुर्थांश। २. जलबेंत। अंबुवेतस।

निकुंचन—संज्ञा पुं० [सं० निकुञ्चन] १. दे० 'निकुंचक'। २. संकुचन। सकोचन।

निकुंचित—वि० [सं० निकुञ्चित] संकुचित।

निकुंज—संज्ञा पुं० [सं० निकुञ्ज] १. लतागृह। ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओं से घिरा हो। २. लताओं से आच्छादित मंडप।

निकुंजिकाम्रा—संज्ञा पुं० [सं० निकुञ्जिकाम्रा] दे० 'निकुंजिकाम्ला'।

निकुंजिकाम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुञ्जिकाम्ला] कुंज के वृक्ष का एक भेद। कुंचिका। कुंजिका।

निकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० निकुम्भ] १. कुंभकर्ण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने मारा था। यह रावण का मंत्री था। २. प्रह्लाद के एक पुत्र का नाम। ३. षटपुर का एक असुर राजा जो कृष्ण के हाथों मारा गया। इसने कृष्ण के मित्र ब्रह्मदत्त की कन्याओं का हरण किया था। ४. हर्यश्व राजा का पुत्र (हरिवंश)। ५. एक विश्वदेव। ६. कौरव सेनापतियों में से एक राजा। ७. कुमार का एक गण। ८. महादेव का एक गण। ९. दंती वृक्ष। १०. जमालगोटा।

निकुंभाख्यबीज—संज्ञा पुं० [सं० निकुम्भाख्यबीज] जमालगोटा।

निकुंभिला—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भिला] १. लंका के पश्चिम एक गुफा। २. उस गुफा की देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्ध की यात्रा करता था। ३. यज्ञ, पूजन का स्थान (को०)।

निकुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भी] १. दंती वृक्ष। २. कुंभकर्ण की कन्या।

निकुतीⓅ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० नुकती] मोतीचूर। बुँदिया। उ०—दादी बाँटे सीरनी लाडू निकुती नित्त। प्रथम कमाई पुत्र की सती अऊत निमित्त।—प्रर्घ०, पृ० १४।

निकुरंब—संज्ञा पुं० [सं० निकुरम्ब] समूह। ढेर। उ०—निकर, प्रकर, निकुरंब, व्रज, पुर, पुग, चय, व्यूह। कंदल, जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय, संदूह।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

निकुरुंब—संज्ञा पुं० [सं० निकुरुम्ब] दे० 'निकुरंब'।

निकुलीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वंशानुक्रमागत कला। वंशपरंपरा से चली आ रही कला। २. वह कला जो जातिविशेष में ही प्राप्त हो [को०]।

निकुट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया ।

निकूल—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जिसके उद्देश्य से नरमेध यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ में बैठे यूप में पशुहनन होता था —(शुक्ल यजुर्वेद) ।

निकृंतन[1]—संज्ञा पुं० [सं० निकृन्तन] १. छेदन । खंडन । २. काटने का औजार । छेदन करने का अस्त्र (को०) । ३. एक नरक (को०) ।

निकृंतन[2]—वि० [स्त्री० निकृन्तनी] काटने या छेदन करनेवाला (को०) ।

निकृत—वि० [सं०] १. निकाला हुआ । बहिष्कृत । बदनाम । लांछित । २. तिरस्कृत । ४. नीच । शठ । ५. वंचित । जो ठगा गया हो । ६. पराभवप्राप्त । पराभूत (को०) ।

निकृतप्रज्ञ—वि० [सं०] बदमाश । दुष्ट । बुरा सोचनेवाला (को०) ।

निकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार । भर्त्सना । २. अपकार । ३. दैन्य । ४. शठता । नीचता । ५. पराभव । पराजय । ६. पृथिवी । ७. वंचना । प्रतारण । ८. संध्या से उत्पन्न धर्मपुत्र । ९. एक वसु । आठवें वसु का नाम ।

निकृती—वि० [सं० निकृतिन्] नीच । शठ । दुष्ट ।

निकृत्त—वि० [सं०] १. मूल से छिन्न । जड़ से कटा हुआ । खंडित । २. विदारित । विदीर्ण (को०) ।

निकृष्ट[1]—वि० [सं०] १. बुरा । अधम । नीच । तुच्छ । २. अशिष्ट । असभ्य । ग्राम्य (को०) । ३. समीप । नजदीक (को०) ।

निकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० सामीप्य । समीपता (को०) ।

निकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुराई । अधमता । नीचता । मंदता ।

निकृष्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] बुराई । नीचता । मंदता ।

निकेचाय—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार संचित करना या एकत्र करना (को०) ।

निकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर । मकान । स्थान । जगह । २. चिह्न । निशान । प्रतीक (को०) ।

निकेतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकेत' ।

निकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वासस्थान । घर । मकान । २. पलांडु । प्याज ।

निकोचक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष । ढेरा ।

निकोचन—संज्ञा पुं० [सं०] संकुचन ।

निकोठक—संज्ञा पुं० [सं०] ढेरा । अकोल ।

निकोना—क्रि० स० [देश०] उखाड़ देना । निकियाना । नोच फेंकना । उ०—बहुतक जीव ठिकानो पैहैं आवागवन न होई । जम के दंड दहन पावक की तिनहूँ मूल निकोई । —सहजो०, पृ० ५८ ।

निकोश्य—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपशु के पेट की एक नाड़ी ।

निकोसना†—क्रि० स० [सं० निस् + कोश] १. दाँत निकालना । २. दाँत पीसना । कटकटाना । किचकिचाना ।

निकौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० निकाना] १. निराई । निराने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निक्का†—वि० [सं० न्यक्न (= नत, नीचा)] [वि० स्त्री० निक्की] छोटा । नन्हा । (पंजाबी) ।

निक्रीड़—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौतुक । क्रीड़ा । तमाशा । २. साममेद ।

निक्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वीणाध्वनि । बीन की झनकार । २. किन्नरों का शब्द ।

निक्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निक्वण' (को०) ।

निक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] चुंबन ।

निक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ का अंडा । लीख ।

निक्षिप्त—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । चलाया हुआ । २. डाला हुआ । छोड़ा हुआ । त्यक्त । ३. किसी के यहाँ उसके विश्वास पर छोड़ा हुआ (द्रव्य, संपत्ति आदि) । धरोहर रखा हुआ । अमानत रखा हुआ । ४. रखा हुआ । रक्षित (को०) । प्रेषित । भेजा हुआ (को०) ।

निक्षुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्राह्मणी । २. सूर्य की एक पत्नी का नाम । —(भविष्य पुराण) ।

निक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकने या डालने की क्रिया या भाव । २. चलाने की क्रिया या भाव । ३. छोड़ने या रखने की क्रिया या भाव । त्याग । ४. पोंछने की क्रिया या भाव । ५. धरोहर । अमानत । थाती । किसी के विश्वास पर उसके यहाँ कोई वस्तु छोड़ने या रखने का कार्य अथवा इस प्रकार छोड़ी या रखी हुई वस्तु । ६. अर्पण करना । अर्पण करने की क्रिया या भाव (को०) । ७. मजदूर को सफाई या मरम्मत के लिये कोई वस्तु देना (को०) ।

निक्षेपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो निक्षेप करता हो । २. थाती या धरोहर रखनेवाला । ३. धरोहर में रखा हुआ पदार्थ या वस्तु (कौटि०) ।

निक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निक्षिप्त, निक्षेप्य] १. फेंकना । डालना । २. छोड़ना । चलाना । ३. त्यागना । ४. थाती रखना (को०) । ५. देना । अरपना । अर्पण करना (को०) ।

निक्षेपित—वि० [सं०] १. जिसका निक्षेप कराया गया हो । २. अमानत रखवाया हुआ ।

निक्षेपी—वि० [सं० निक्षेपिन्] १. फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेपक । फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्य—वि० [सं०] निक्षेप के योग्य । फेंकने योग्य । छोड़ने योग्य ।

निखंग(पु)—संज्ञा पुं० [निषङ्ग] दे० 'निषंग' । उ०—दारु बिन सिंग बानरहित निखंग भयो । —हम्मीर०, पृ० ५४ ।

निखंगी(पु)—वि० [सं० निषङ्गिन्] दे० 'निषंगी' ।

निखंड—वि० [सं० निस् + खण्ड] मध्य । न थोड़ा इधर न उधर । सटीक । ठीक । जैसे, निखंड आधी रात, निखंड बेला ।

निखट्टर†—वि० [हिं० नि + कट्टर (= कड़ा)] १. कड़े दिल का । कठोर चित्त का । २. निष्ठुर । निर्दय ।

निखट्टू—वि० [हिं० उप० नि (= नहीं) + खटना (=

टिकना, ठहरना; न टिकनेवाला, न ठहरनेवाला)] १. अपनी कुचाल के कारण कहीं न टिकनेवाला। जिसका कहीं ठिकाना न लगे। इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला। २. जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला। जिससे कोई काम काज न हो सके। निकम्मा। आलसी।

निखनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खनना। खोदना। २. मृत्तिका। मिट्टी। ३. गाड़ना।

निखरक(पु)†—क्रि० वि० [हिं० नि + खटकना] खटक से रहित। बेखटके। उ०—निधरक जान अनबेले निलरक ओर, दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हौ न। —घनानंद, पृ० १०६।

निखरना—क्रि० अ० [सं० निक्षरण (= छँटना)] १. मैल छँट-कर साफ होना। निर्मल और स्वच्छ होना। धुलकर झक होना। २. रंगत का खुलना होना। उ०— मंगल कुंकुम की श्री जिसमें, निखरी हो ऊषा की लाली। भोला सुहाग इठलाता हो, ऐसी हो जिसमें हरियाली। —कामायनी, पृ० १००।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

निखरवाना —क्रि० स० [हिं० निखारना] साफ कराना। धुलवाना।

निखरहर—वि० [देश०] बिछौना रहित। बिस्तर रहित। बिना बिस्तर का (खाट, पलंग आदि)।

निखरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० निखरना] पक्की। घी की पकी हुई रसोई। घृतपक्व। सखरी का उलटा।

विशेष—खानपान के आचार मे घी दूध आदि के साथ पकाया हुआ अन्न (जैसे खीर, पूरी) उच्च वर्णों के लोग बहुत से लोगों के हाथ का खा सकते हैं, पर केवल पानी के संयोग से आग पर पकाई चीजें (जैसे, रोटी, दाल आदि) बहुत कम लोगों के हाथ की खा सकते हैं।

निखर्व[१]—वि० [सं०] दस हजार करोड़। दस सहस्र कोटि।

निखर्व[२]—संज्ञा पुं० दस हजार करोड़ की संख्या।

निखर्व[३]—वि० [सं०] बहुत मोटे डील का। वामन। बौना। नाटा।

निखवख(पु)†—वि० [सं० न्यक्ष (= सारा, सब)] बिलकुल। सब। और कुछ नहीं। उ०—तेहि अर्थ लगायो चोति बहायो निखवख रामै राम लख्यो। —विश्राम (शब्द०)।

निखात—वि० [सं०] १. खोदा हुआ। २. गाड़ा हुआ। ३. खोदकर जमाया हुआ। जैसे, खूँटा [को०]।

निखाद—संज्ञा पुं० [सं० निषाद] दे० 'निषाद'।

निखार—संज्ञा पुं० [हिं० निखरना] १. निर्मलपन। स्वच्छता। सफाई। २. सजाव। शृंगार।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

निखारना—क्रि० स० [हिं० निखरना] १. स्वच्छ करना। साफ करना। माँजना। २. पवित्र करना। पापरहित करना।

निखारा —संज्ञा पुं० [हिं० निखारना] खवकर बनाने का कड़ाह जिसमें डालकर रस उबाला जाता है।

निखालिस‡—वि० [हिं० नि + अ० खालिस] विशुद्ध। जिसमें और किसी चीज का मेल न हो।

निखिल —वि० [सं०] संपूर्ण। सब। सारा।

निखूटना†(पु)—क्रि० अ० [सं० नि० + √खुट्] १. घटना। समाप्त होना। २. त्रुटित होना। छिन्न होना। खोट पड़ना। उ०—टूटे तागे निखुटी पानि, द्वार ऊपर झिलिकावहि कान। —कबीर ग्रं०, पृ० २६६।

निखूटना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निखुटना'।

निखेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध'। उ०—इहि बिधि सब रचना करी, काहू न जाने भेद। जैसे है तैसे तब हुती, अब को करै निखेद। —कबीर सा०, पृ० ६१६।

निखेध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध'।

निखेधना(पु) —क्रि० स० [सं० निषेध] निषेध करना। मना करना। वारण करना।

निखोट[१] वि० [हिं० उप० नि + खोट] १. जिसमें कोई खोटाई या दोष न हो। निर्दोष। उ०—नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल, चोट बिनु मोट पाइ भयो ना निहाल को? —तुलसी (शब्द०)। २. साफ। जिसमें कुछ लगाव फँसाव न हो। स्पष्ट। खुला हुआ। जैसे, निखोट बात।

निखोट[२] —क्रि० वि० बिना संकोच के। बेधड़क। खुल्लम खुल्ला। खुलकर। उ०— (क) कियो सुर प्रणाम निखोट अली चख चंचल अंचल सों ढँपि कै। —कमलापति (शब्द०)। (ख) चढ़ी अटारी वाम वह कियो प्रणाम निखोट। तरनि किरन ते दृगन की करसरोज करि ओट। —मतिराम (शब्द०)।

निखोड़ना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निखोरना'।

निखोड़ा†—वि० [देश०] [स्त्री० निखोड़ी] कठोर चित्त का। निर्दय।

निखोरना†—क्रि० स० [हिं० उप० नि + खोदना या सं० निः + क्षारण] नाखून से नोचना। उखाड़ना।

निगंठ—संज्ञा पुं० [सं० निर्ग्रन्थ (= बंधन रहित)] जैन धर्मावलंबी साधु। उ०—निगंठ जैनों की संज्ञा थी जो केवल कोपीन धारण करते थे। —हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५।

निगंद—संज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध?] जड़ी बूटी जो दवा के काम में आती है और रक्तशोधक समझी जाती है।

विशेष—इस संबंध में यह प्रवाद है कि साँप जब केचली से भर जाने के कारण व्याकुल हो जाता है तब इसे चाट लेता है जिससे केचली उतर जाती है।

निगंदना—क्रि० स० [फ़ा० निगंदह (= बखिया, सीवन)] रजाई, दुलाई आदि रुई भरे कपड़ों मे तागा डालना।

निगंध(पु)—वि० [सं० निर्गन्ध] गंधहीन। निर्गन्ध। जिसमें कोई गंध न हो।

निगड़—संज्ञा स्त्री० [सं० निगड] १. हाथी के पैर बाँधने की जंजीर। अँदू। उ०—लाज की निगड़ गड़दार अड़दार चहूँ चौकि चितवनि चरखीन चमकोरे हैं। ...लोचन अचल ये

मतंग मतवारे हैं।—देव (शब्द०)। २. बेड़ी। उ०—जिन तृन सम कुल लाज निगड़ सब तोरयो हरि रस माहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१८।

निगडन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंजीर से बाँधना। २. बेड़ी डालना [को०]।

निगडित—वि० [सं०] १. जंजीर से बाँधा हुआ। २. बेड़ी डाला हुआ [को०]।

निगण—संज्ञा पुं० [सं०] हवन आदि से उत्पन्न धुआँ [को०]।

निगद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण। कथन। २. ऊँचे स्वर से किया हुआ जप। ३. मंत्र जो ऊँचे स्वर से जपा जाय (को०)। ४. बिना अर्थ जाने रटना (को०)।

निगदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण। कथन। २. याद की हुई या रटी हुई चीज का ऊँचे स्वर से पाठ करना [को०]।

निगदित—वि० [सं०] कथित। कहा हुआ।

निगम—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार्ग। पथ। २. वेद। ३. वणिक्पथ। बनियों की फेरी का स्थान। हाट। बाजार। ४. मेला। ५. माल का आना जाना। व्यापार। ६. निश्चय। ७. कायस्थों का एक भेद। ८. बड़े नगरों की प्रबंधक सभा। नगर निगम। म्युनिसिपल कारपोरेशन। ९. नगर। १०. दे० 'निगमन'। ११. न्याय शास्त्र (को०)। १२. वेदार्थबोधक या वेदसम्मत ग्रंथ (को०)।

निगमन—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में अनुमान के पाँच अवयवों में से एक। हेतु, उदाहरण और उपनय के उपरांत प्रतिज्ञा को सिद्ध सूचित करने के लिये उसका फिर से कथन। साबित की जानेवाली बात साबित हो गई, यह बताने के लिये दलील वगैरह के पीछे उस बात को फिर कहना। नतीजा। जैसे, 'यहाँ पर आग है' (प्रतिज्ञा)। 'क्योंकि यहाँ पर धूआँ है (हेतु)। जहाँ धूँआ रहता है वहाँ आग रहती है' (उपनय)। इसलिये यहाँ पर आग है' (निगमन)।

विशेष—प्रशस्तपाद के भाष्य में 'निगमन' को प्रत्याम्नाय भी कहा है।

२. जाना। भीतर जाना (को०)। ३. वेद का उद्धरण (को०)।

निगमनिवासी—संज्ञा पुं० [सं० निगमनिवासिन्] विष्णु। नारायण।

निगमबोध—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीराज रासो के अनुसार दिल्ली के पास जमुना नदी के किनारे एक पवित्र स्थान।

विशेष—रासो में लिखा है कि दानवराज धुंधु (ढुंढ या ढुंढा) शाप छुड़ाने के लिये विमान पर चढ़कर काशी जा रहे थे। रास्ते में उन्हें प्यास लगी और वे योगिनीपुर (दिल्ली) जल पीने के लिये उतरे जहाँ उन्हें एक ऋषि (हारिफ) मिले। ऋषि ने उन्हें जमुना के किनारे निगमबोध नाम की गुफा में नारायण की तपस्या करने के लिये कहा। दानवराज तपस्या करने लगे। एक दिन पांडुवंशीय (?) राजा अनंगपाल की कन्या सखियों सहित स्नान करने के लिये जमुना के किनारे आई और पानी बरसने के कारण उस गुफा में उसने आश्रय लिया। तपस्वी को देख उसने उसे स्तुति से प्रसन्न किया और यह वर माँगा कि हमलोग वीरपत्नी हों और सदा एक साथ रहें। दानवराज ने अनंगपाल की कन्या को वर दिया कि तुम्हारा एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा भारी वक्ता होगा। इसके उपरांत दानवराज ने काशी जाकर अपना शरीर १०८ खंडों में काटकर गंगा में डाल दिया। उसके जिह्वांश से एक प्रसिद्ध भाट और २० खंडों से २० क्षत्रिय वीर अजमेर में उत्पन्न हुए। इन बीस क्षत्रियों में सोमेश्वर प्रधान थे जिनके पुत्र पृथ्वीराज हुए।

निगमागम—संज्ञा पुं० [सं०] वेद शास्त्र।

निगमी—वि० [सं० निगमिन्] वेद का ज्ञाता [को०]।

निगर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। २. एक धरण की तौल में ५५ मोती चढ़ें तो उन मोतियों के समूह का नाम निगर है। ३. हवन का धूआँ (को०)। ४. गला (को०)। ५. पूरा पूरा ग्रहण करना या आत्मसात् करना (को०)।

निगर[2]—वि० [सं० निकर] सब। सारे। उ०—निगर नगारे नगर के बाजे एकहि बार।—केशव (शब्द०)।

निगर[3]—संज्ञा पुं० दे० 'निकर'।

निगरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भक्षण। निगलना। २. गला। ३. यज्ञाग्नि का धूम। होमधूम।

निगराँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. निगरानी रखनेवाला। २. निरीक्षक। ३. रक्षक।

निगरा[1]—वि० [हिं० उप० नि (=नहीं) + सं० गरण (=गीला या पनीला करना)] (ईख का रस) जो जल मिलाकर पतला न किया गया हो। खालिस। जैसे, निगरा रस।

निगरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ५५ मोतियों की लड़ी जो तौल में ३२ रत्ती हो।

निगरा[3]—वि० [हिं० निगुरा] दे० 'निगुरा'। बेसहारा। उ०—अरे हाँ रे पलटू निगरा सिगरा आदि कहो कोई रोगी भोगी।—पलटू०, पृ० ७६।

निगराना[1]—क्रि० स० [सं० नव + करण] १. निर्णय करना। निबटाना। २. छाँटकर अलग अलग करना। पृथक् करना। ३. स्पष्ट करना। उ०—अगिनि पवन रज पानि के, भाँति भाँति ओहार। आपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावै पार।—चित्रावली, पृ० १।

निगराना[2]—क्रि० अ० १. अलग होना। २. स्पष्ट होना।

निगरानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] देखरेख। निरीक्षण।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—में रहना।

निगरू—वि० [सं० नि + गुरु] हलका। जो भारी या वजनी न हो। उ०—निगरू ह्वै भए गिरिगण जलधि में ज्यों पात।—केशव (शब्द०)।

निगल, निगलन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निगरण' [को०]।

निगलना—क्रि० स० [सं० निगरण, निगलन] १. लील जाना। गले के नीचे उतार देना। घोंट जाना। गटक जाना। २. खा

जाना । ३. रुपया या धन पचा जाना । दूसरे का धन या कोई वस्तु मार बैठना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निगह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] निगाह । दृष्टि । नजर ।

यौ०—निगहबाँ = निगहबान । उ०—बक्त राफ्वारों निगहबाँ किया । मकी मुक्ति के न्यार दर बाँ दिया । —कबीर मं०, पृ० १३७ ।

निगहबान—संज्ञा पुं० [फा०] रक्षक । उ० हमारे निगहबान हैं चाँद सूरज, मगर हम न समझे कि क्यों ज्योति छाया ।—हंस, पृ० ४६ ।

निगहबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रक्षा । देखरेख । रखवाली । चौकसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निगाद—वि० [सं० निगाद] कथन । भाषण ।

निगादी—वि० [सं० निगादिन्] वक्ता ।

निगार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण ।

निगार[2]—संज्ञा पुं० [फा०] १. चित्र । बेलबूटा । नक्काशी ।

यौ०—नक्श निगार ।

२. एक फारसी राग (मुकाम) ।

निगारक—वि० [सं०] भक्षक । निगलनेवाला [को०] ।

निगाल—संज्ञा पुं० [शि०] १. एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में पैदा होता है । इसे रिंगाल भी कहते हैं । २. घोड़े की गरदन । ३. जंजीर । साँकल (को०) ।

निगालक—वि० [सं०] निगलनेवाला । भक्षण करनेवाला [को०] ।

निगालवान्—संज्ञा पुं० [सं० निगालवत्] अश्व । घोड़ा [को०] ।

निगालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण रगण और लघु गुरु होते हैं । इसे 'प्रमाणिका' और 'नागस्वरूपिणी' भी कहते हैं । जैसे,—प्रभात भो, सुहात भो । हली खलो, जगे बली । निहो घरी उठे हरी । न देर है, कहू करी ।

निगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० निगाल] १. निगाल । बाँस की बनी हुई नली । २. हुक्के की नली जिसे मुँह में लगाकर धुआँ खींचते हैं ।

निगाह—संज्ञा स्त्री० [फा०] । दृष्टि । नजर ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

२. देखने की क्रिया या ढंग । चितवन । ताकाई ।

मुहा०—दे० 'दृष्टि', 'नजर' और 'आँख' ।

३. कृपादृष्टि । मेहरबानी ।

क्रि० प्र०—करना । —रखना ।

४. ध्यान । विचार । समझ । ५. निरीक्षण । देखरेख । ६. परख । पहचान ।

क्रि० प्र०—होना ।

निगिभ(पु)—वि० [सं० निगूढ़] अत्यंत गोपनीय । जिसका बहुत लोभ हो । बहुत प्यारी । उ०—निगिभ वस्तु जो होय तिहारी । सोइ सबति मम होय सुखारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

निगीर्ण—वि० [सं०] १. निगला हुआ । २. अंतर्भुक्त । समाविष्ट [को०] ।

निगुंफ—संज्ञा पुं० [सं० निगुम्फ] १. समूह । गुच्छा । २. अत्यंत गुंफन या गुँथाई । घनी गुँथाई (को०) ।

निगु[1]—वि० [सं०] प्रसन्न करनेवाला । मनोहारी [को०] ।

निगु[2]—संज्ञा पु० [सं०] १. मन । २. मल । ३. मूल । जड़ । ४. चित्र । चित्रण [को०] ।

निगुण(पु)—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण' ।

निगुणा(पु)—वि० [सं० निर्गुण] १. कृतघ्न । नीच । एहसान फरामोश । उ०—(क) निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जो कोइ । दादू सब कुछ सौंपिए, सो फिर बैरी होइ ।—संतवाणी०, पृ० ८८ । (ख) सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै नीच । दादू साधु सब कहैं, निगुणा के सिर मीच ।—दादू०, पृ० ४४२ ।

निगुन, निगुना(पु)—वि० [सं० निर्गुण, हिं० निगुणा] दे० 'निगुण' 'निगुणा' ।

निगुनी(पु)—वि० [हिं० उप० नि + गुनी] जो गुणी न हो । गुण रहित । उ०—गुनी गुनी सब कोइ कहत निगुनी गुनी न होत । सुन्यो कहूँ तरु अर्क ते अर्क समान उदोत ।—बिहारी (शब्द०) ।

निगुरा—वि० [हिं० उप० नि + गुरु] जिसने गुरु न किया हो । जिसने गुरु से मंत्र न लिया हो । अदीक्षित । उ०—गुरुमुख होवै सो भरि पीवै, निगुरा नहीं जल पावता है ।—पलटू०, पृ० ३६ ।

निगूढ़[1]—वि० [सं० निगूढ] अत्यंत गुप्त । उ०—माया बिवश भए मुनि मूढ़ा । समुझि नहीं हरि गिरा निगूढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निगूढ़[2]—संज्ञा पुं० वनमुद्ग । मोठ ।

निगूढ़ार्थ—वि० [सं०] जिसका अर्थ छिपा हो ।

विशेष—न्यायसभा में उपस्थित दोनों पक्षवालों के जो उत्तर उत्तराभास (जो उत्तर ठीक न हो) कहे गए हैं उनमें निगूढ़ार्थ भी है । जैसे, यदि प्रतिपक्षी से पूछा जाय कि क्या सौ रुपये तुम्हारे ऊपर आते हैं और वह उत्तर दे कि 'क्या मेरे ऊपर इसके रुपये आते हैं' । इस उत्तर से यह ध्वनि निकलती है कि दूसरे किसी के ऊपर आते हैं ।

निगूना(पु)—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण' । उ०—मरै सोई जो होइ निगुना । पीर न जानै बिरह बिहूना ।—जायसी (शब्द०) ।

निगूहन—संज्ञा पुं० [सं०] गोपन । छिपाव ।

निगृहीत—वि० [सं०] १. घरा हुआ । पकड़ा हुआ । घेरा हुआ । २. आक्रामित । आक्रांत । जिसपर आक्रमण किया गया हो । ३. पीड़ित । ४. दंडित । ५. वशीभूत (को०) । ६. पराजित वाद में परास्त (को०) ।

निगृहीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाधा । रोक । २. पराभव । वश में करना [को०] ।

निगेटिव—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह प्लेट या फिल्म जिसपर फोटो लिया जाता है और जिसपर प्रकाश और छाया की छाप उलटी पड़ती है, अर्थात् जहाँ खुलता और सफेद होना चाहिए काला और गहरा होता है और जहाँ गहरा और काला होना चाहिए वहाँ खुलता और सफेद होता है। कागज पर (पाजिटिव) सीधा छाप लेने से फिर पदार्थों का चित्र यथातथ्य उतर आता है।

निगोड़ा—वि० [हिं० निगुरा, देश०] [स्त्री० निगोड़ी] १. जिसके ऊपर कोई बड़ा न हो। २. जिसके आगे पीछे कोई न हो। जिसके प्राणी न हों। अभागा। ३. अभागा या चपल वा दुष्ट के लिये कभी कभी स्नेह या दुलार के साथ प्रयुक्त पद।

यौ०—निगोड़ा नाठा = जिसके आगे पीछे कोई न हो। बिना प्राणी का। लावारिस।

३. दुष्ट। बुरा। नीच। कमीना। (गाली स्त्रि०)। उ०—जानवर क्या निगोड़ा मिट्टी का गुड्डा है। — फिसाना०, भा० ३, पृ० ४।

निगोड़िन—वि० स्त्री० [हिं० निगुरा] दे० 'निगोड़ा'। उ०—हमारी ननद निगोड़िन जागे।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

निगोरा‡—वि० [हिं०] दे० 'निगोड़ा'।

निग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोक। अवरोध। २. दमन। ३. चिकित्सा। रोकने का उपाय। ४. दंड। ५. पीड़न। सताना। ६. बंधन। ७. भर्त्सन। डाँट। फटकार। ८. सीमा। हद। ९. विष्णु। १०. शिव। ११. चित्तवृत्ति का निरोध (को०)। १२. अतिलंघन (को०)। १३. दे० 'निग्रहस्थान' (को०)।

निग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १ रोकने का कार्य। थामने का कार्य। २. दंड देने का कार्य। ३. बंधन। बाँधना (को०)। ४. पराजय पराभव। हार (को०)।

निग्रहना(पु)—क्रि० स० [सं० निग्रहण] १. पकड़ना। थामना। उ०—कंस केश निग्रहौं भूमि को भार उतारौं।—सूर (शब्द०)। २. रोकना। ३. दंड देना।

निग्रहस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वादविवाद या शास्त्रार्थ में वह अवसर जहाँ दो शास्त्रार्थ करनेवालों मे से कोई उलटी पलटी या नासमझी की बात कहने लगे और उसे चुप करके शास्त्रार्थ बंद कर देना पड़े। यह पराजय का स्थान है।

विशेष—न्याय में जहाँ विप्रतिपत्ति (उलटा पुलटा ज्ञान) या अप्रतिपत्ति (अज्ञान) किसी ओर से हो वहाँ निग्रहस्थान होता है। जैसे, वादी कहे—'आग गरम नहीं होती'। प्रतिवादी कहे कि 'स्पर्श द्वारा गरम होना प्रमाणित होता है'। इसपर वादी यदि बगल झाँकने लगे और कहे कि मैं यह नहीं कहता कि आग गरम नहीं होती, इत्यादि तो उसे चुप कर देना चाहिए या मूर्ख कहकर निकाल देना चाहिए। निग्रहस्थान २२ कहे गए हैं—प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञांतर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञासंन्यास, हेत्वंतर, अर्थांतर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धांत और हेत्वाभास।

(१) प्रतिज्ञाहानि वहाँ होती है जहाँ कोई प्रतिदृष्टांत के धर्म को अपने दृष्टांत में मानकर अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ता है। जैसे, एक कहता है—शब्द अनित्य है। क्योंकि वह इंद्रियविषय है। जो कुछ इंद्रियविषय हो वह घट की तरह अनित्य है। शब्द इंद्रियविषय है। अतः शब्द अनित्य है।

दूसरा कहता है—जाति (जैसे घटत्व) इंद्रियविषय होने पर भी नित्य है इसी प्रकार शब्द ही क्यों नहीं।

इसपर पहला कहता है—जो कुछ इंद्रियविषय हो वह घट की तरह नित्य है। उसके इस कथन से प्रतिज्ञा की हानि हुई।

(२) प्रतिज्ञांतर वहाँ होता है जहाँ प्रतिज्ञा का विरोध होने पर कोई अपने दृष्टांत और प्रतिदृष्टांत में विकल्प से एक और नए धर्म का आरोप करता है। जैसे, एक आदमी कहता है—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह घट के समान इंद्रियों का विषय है।

दूसरा कहता है—शब्द नित्य है, क्योंकि वह जाति के समान इंद्रियविषय है।

इसपर पहला कहता है कि घट और जाति दोनों इंद्रियविषय हैं। पर जाति सर्वगत है और घट सर्वगत नहीं। अतः शब्द सर्वगत न होने से घट के समान अनित्य है। यहाँ शब्द अनित्य है, यह पहली प्रतिज्ञा थी; शब्द सर्वगत नहीं, यह दूसरी प्रतिज्ञा हुई। एक प्रतिज्ञा की साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा के साधक हेतु और दृष्टांत होते हैं।

(३) जहाँ प्रतिज्ञा और हेतु का विरोध हो वहाँ प्रतिज्ञाविरोध होता है; जैसे, किसी ने कहा—द्रव्य गुण से भिन्न है (प्रतिज्ञा), क्योंकि उसकी उपलब्धि रूपादिक से भिन्न नहीं होती। यहाँ प्रतिज्ञा और हेतु में विरोध है क्योंकि यदि द्रव्य गुण से भिन्न है तो वह रूप से भी भिन्न हुआ।

(४) जहाँ पक्ष का निषेध होनेपर माना हुआ अर्थ छोड़ दिया जाय वहाँ प्रतिज्ञा संन्यास होता है। जैसे, किसी ने कहा—'इंद्रियविषय होने से शब्द अनित्य है'। दूसरा कहता है जाति इंद्रियविषय है, पर अनित्य नहीं. इसी प्रकार शब्द भी समझिए। इस प्रकार पक्ष का निषेध होने पर यदि पहला कहने लगे कि कौन कहता है कि 'शब्द अनित्य है' तो उसका यह कथन प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान के अंतर्गत हुआ।

(५) जहाँ अविशेष रूप से कहे हुए हेतु का निषेध होने पर उसमे विशेषत्व दिखाने की चेष्टा की जाती है वहाँ हेत्वंतर नाम का निग्रहस्थान होता है। जैसे, किसी ने कहा—'शब्द अनित्य है' क्योंकि वह इंद्रियविषय है। दूसरा कहता है कि इंद्रियविषय होने से ही शब्द अनित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि जाति (जैसे घटत्व) भी तो इंद्रियविषय है पर वह अनित्य नहीं। इसपर पहला कहता है कि इंद्रियविषय होना जो हेतु मैंने दिया है, उसे इस प्रकार का

इंद्रियविषय समझना चाहिए जो जाति के अंतर्गत लाया जा सकता हो। जैसे, 'शब्द' जाति के अंतर्गत लाया जा सकता है (जैसे, शब्दत्व) पर जाति (जैसे घटत्व) फिर जाति के अंतर्गत नहीं लाई जा सकती। हेतु का यह टालना हेत्वंतर कहलाता है।

(६) जहाँ प्रकृत विषय या अर्थ से संबंध रखनेवाला विषय उपस्थित किया जाता है वहाँ अर्थांतर होता है; जैसे, कोई कहे कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह अस्पृश्य है। विरोध होनेपर यदि वह इधर उधर की फजूल बातें बकने लगे, जैसे हेतु शब्द 'हि' धातु से बना है, इत्यादि, तो उसे अर्थांतर नामक निग्रहस्थान में आया हुआ समझना चाहिए।

(७) जहाँ वर्णों को बिना अर्थ की योजना की जाय वहाँ निरर्थक होता है। जैसे कोई कहे क ख ग नित्य है च व ग ड से।

(८) जब पक्ष का विरोध होने पर अपने बचाव के लिये कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे जो अर्थप्रसिद्ध न होने के कारण जल्दी समझ में न आए अथवा बहुत जल्दी और अस्पष्ट स्वर में बोलने लगे तब अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान होता है।

(९) जहाँ अनेक पदों या वाक्यों का पूर्वापर क्रम से अन्वय न हो, पद और वाक्य असंबद्ध हों, वहाँ अपार्थक होता है।

(१०) प्रतिज्ञाहेतु आदि अवयव क्रम से न कहे जायँ, आगे पीछे उलट पुलटकर कहे जायँ वहाँ अप्राप्तकाल होता है।

(११) प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों में से जहाँ कथन में कोई अवयव कम हो वहाँ न्यून नामक निग्रहस्थान होता है।

(१२) हेतु और उदाहरण जहाँ आवश्यकता से अधिक हो जायँ वहाँ अधिक नामक निग्रहस्थान होता है क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरण से अर्थ सिद्ध हो गया तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहले नियम के मान लेने पर है।

(१३) जहाँ व्यर्थ पुनःकथन हो वहाँ पुनरुक्त होता है।

(१४) चुप रह जाने को अननुभाषण कहते हैं। जहाँ वादी अपना अर्थ साफ साफ तीन बार कहे और प्रतिवादी सुन कर समझकर भी कोई उत्तर न दे वहाँ अननुभाषण नामक निग्रहस्थान होता है।

(१५) जिस बात को सभासद समझ गए हों उसी को तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।

(१६) जहाँपर पक्ष का खंडन अर्थात् उत्तर न बने वहाँ अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१७) जहाँ प्रतिवादी इस प्रकार टाल टूल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूँगा' वहाँ विक्षेप होता है।

(१८) जहाँ प्रतिवादी के दिए हुए दोष को अपने पक्ष में अंगीकार करके वादी बिना उस दोष का उद्धार किए प्रतिवादी से कहे कि 'तुम्हारे कथन में भी तो यह दोष है' वहाँ मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१९) जहाँ निग्रहस्थान में प्राप्त हो जानेवाले का निग्रह न किया जाय वहाँ पर्यनुयोज्योपेक्षण होता है।

(२०) जो निग्रहस्थान में न प्राप्त होनेवाले को निग्रहस्थान में प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोग नामक निग्रहस्थान में गया समझना चाहिए।

(२१) जहाँ कोई एक सिद्धांत को मानकर विवाद के समय उसके विरुद्ध कहता है वहाँ अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान होता है।

(२२) दे० 'हेत्वाभास'।

निग्रही—वि० [सं० निग्रहिन्] १. रोकनेवाला। दबानेवाला। २. दमन करनेवाला। दंड देनेवाला।

निग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आक्रोश। शाप। २. दंड (को०)।

निग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनुचित तथा अन्याययुक्त दंड दे।

निग्रोध—संज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोध] १. राजा अशोक के एक भतीजे का नाम। २. दे० 'न्यग्रोध'। उ०—जटी, कर्षी, रक्त फल, बहुपद, ध्रुव, निग्रोध। यह वंशीवट देखि बलि, सब सुख निरवधि रोध।—नंद० ग्रं०, पृ० १०६।

निघंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निघण्टिका] एक प्रकार का कंद। गुलंच।

निघंटु—संज्ञा पुं० [सं० निघण्टु] १. वैदिक शब्दों का संग्रह। वैदिक कोश।

विशेष—यास्क ने निघंटु की जो व्याख्या लिखी है वह निरुक्त के नाम से प्रसिद्ध है। यह निघंटु अत्यंत प्राचीन है क्योंकि यास्क के पहले भी शाकपूणि और स्थौलष्ठीवी नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारत में कश्यप को निघंटु का कर्ता लिखा है।

२. शब्दसंग्रह मात्र। जैसे, वैद्यक का निघंटु।

निघ[1]—वि० [सं०] जिसकी चौड़ाई और ऊँचाई बराबर हो (को०)।

यौ०—निघानिघ = विभिन्न रूपों तथा आकारों का।

निघ[2]—संज्ञा पुं० १. कंदुक। गेंद। २. पाप (को०)।

निघटनाⓅ[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'घटना'। उ०—संदेसन क्यों निघटत दिन राति।—सूर (शब्द०)।

निघटना[2]—क्रि० स० [हिं० नि+घटना] मिटाना। नष्ट करना।

निघट्टनाⓅ—क्रि० स० [हिं० निघटना] दे० 'निघटना[2]'। उ०—चलत पंथ पंथनि धरम श्रुति करमनिघट्टन।—मतिराम (शब्द०)।

निघरघट—वि० [हिं० नि (=नहीं)+घरघाट] १. जिसका कहीं घर घाट न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जो घूम फिरकर फिर वहीं आए जहाँ से दुतकारा या हटाया जाय। उ०—खोवत है यों ही आयु को भए निपट ही निघरघट।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १२५। २. निर्लज्ज। ढीठ। बेहया। उ०—अघट घटाई भरचो निपट निघरघट, मो घट क्यों रावरी बड़ाई लौं निबरि है।—घनानंद, पृ० ५३।

मुहा०—निघरघट देना = लज्जित किए जाने पर झूठी बातें बनाना कि मैं यहाँ था, मैं वहाँ था। बेहयाई से झूठी सफाई देना। उ०—दूरे न निघरघटो दिए ये रावरी कुचाल। विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल।—बिहारी (शब्द०)।

निघरघटपन—संज्ञा पुं० [हिं०] निर्लज्जता। बेहयाई। उ०—काम में ला भुला निघरघटपन। नाम मरदानगी मिटाना है।—चोखे०, पृ० २९।

निघरा—वि० [हिं० नि + घर] जिसके घर बार न हो। निगोड़ा (गाली)। उ०—मेरी भई यह आनि दशा निघरे विधि तोहि परे यह पीर न।—गुमान (शब्द०)।

निघर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निघर्षण' [को०]।

निघर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] घर्षण। घिसना। रगड़ना।

निघस—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाद्य। आहार। [को०]।

निघा(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निगाह] दे० 'निगाह'। उ०—मो पात्साह की उनपर बोहोत निघा रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०९।

निघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहनन। प्रहार। २. अनुदात्त स्वर।

निघाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहदंड। २. वह लोहे का खंड जिसपर हथौड़े आदि का आघात पड़े। निहाई।

निघाती—वि० [सं० निघातिन्] [वि०स्त्री० निघातिनी] १. मारनेवाला। प्रहार करनेवाला। २. वध करनेवाला।

निघुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। २. हल्ला गुल्ला। शोरगुल [को०]।

निघृष्ट—वि० [सं०] १. घर्षित। रगड़ा हुआ। घर्षणयुक्त। २. मर्दित। पराभूत [को०]।

निघृष्व[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुर। २. खुर का निशान। ३. वायु। हवा। ४. खच्चर या गदहा। ५. सूअर। ६. मार्ग। सड़क [को०]।

निघृष्व[2]—वि० १. निम्न। छोटा। तुच्छ। २. घर्षित। रगड़ा हुआ [को०]।

निघ्न[1]—वि० [सं०] १. अधीन। आश्रित। वशीभूत। २. निर्भर। अवलंबित। ३. गुणित। गुणा किया हुआ।

निघ्न[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्यवंशीय राजा अनरण्य का पुत्र (हरिवंश)।

निचंत(पु)—वि० [सं० निश्चिन्त; प्रा० णिच्चिंत] दे० 'निश्चित'। उ०—भीगण पंथी जीणि कइ नव छंडिया निचंत।—ढोला०, दू० १८९।

निचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० निचन्द्र] एक दानव का नाम।

निचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर के एक राजा जो असीमकृष्ण के पुत्र थे। हस्तिनापुर को जब गंगा बहा ले गई तब इन्होंने कौशांबी में राजधानी बसाई।

निचमन—संज्ञा पुं० [सं०] थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। २. निश्चय। ३. संचय।

निचल(पु)—वि० [सं० निश्चल] दे० 'निश्चल'।

निचला[1]—वि० [हिं० नीचे + ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० निचली] नीचे का नीचेवाला। जैसे, निचला भाग।

निचला[2]—वि० [सं० निश्चल] १. अचल। जो हिलता डोलता न हो। २. स्थिर। शांत। जो चंचल न हो। अचंचल।

क्रि० प्र० —रहना।—होना।

मुहा०—निचला बैठना = (१) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। चंचलता न करना। (२) शिष्टतापूर्वक बैठना।

निचाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीचा+आई (प्रत्य०)] १. नीचा होने का भाव। नीचापन। जैसे, ऊँचाई निचाई। २. नीचे की ओर दूरी या विस्तार। ३. नीच होने का भाव। नीचता। ओछापन। कमीनापन। उ०— (क) भले भलाई पै लहहिं लहहिं निचाई नीच।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नीच निचाई नहिं तजे जो पावै सतसंग।— (शब्द०)।

निचान—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीचा + आन,यान (प्रत्य०)] १. नीचापन। २. ढाल। ढालुवाँपन। ढलान।

निचिंत —वि० [सं० निश्चिन्त] चिंतारहित। बेफिक्र। सुचित।

निचि —संज्ञा पुं० [सं०] कानों के सहित गाय का सिर।

निचिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छी गाय।

निचित —वि० [सं०] १. संचित। इकट्ठा। २. पूरित। व्याप्त। ३. तैयार। निर्मित। ४. संकीर्ण। ५. ढका हुआ (को०)। ६. पुंजीभूत। ढेर लगाया हुआ (को०)।

निचिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम (महाभारत)।

निचिता(पु)†[1]—क्रि० वि० [सं० निश्चिन्त] दे० 'निचिंत'। उ०—चेटक चितहि लगाय निचीते ह्वो भले। जुबती जन मद गंजन घातन ह्वो पले।—घनानंद, पृ० १९२।

निचुड़ना—क्रि० अ० [सं० उप० नि + च्यवन (= चूना) १. रस से भरी या गीली चीज का इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपककर निकल जाय। दबकर पानी या रस छोड़ना। गरना। जैसे, धोती निचुड़ना, नीबू निचुड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. भरे या समाए हुए जल आदि का दाब पाकर अलग होना या टपकना। छूटकर चूना। गरना। जैसे, गीली धोती का पानी निचुड़ना, नीबू का रस निचुड़ना। उ०—कहे देत रँग रात को रँग निचुरत से नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो०क्रि०—जाना।

३. रस या सारहीन होना। ४. शरीर का रस या सार निकल जाने से दुबला होना। तेज और शक्ति से रहित होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

निचुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेंत। २. हिज्जल वृक्ष। ईजड़ का पेड़। ३. दे० 'निचोल' (को०)।

निचुलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'निचोल' २. बिरह बखतर। कवच। उरस्त्राण [को०]।

निचै(पु) —संज्ञा पुं० [सं० निचय] दे० 'निचय'।

निचोड़—संज्ञा पुं० [हिं० निचोड़ना] १. वह वस्तु जो निचोड़ने से निकले। निचोड़ने से निकला हुआ जल, रस आदि। २. सार वस्तु। सार। सत। ३. कथन का सारांश। मुख्य तात्पर्य। खुलासा। जैसे, सब बातों का निचोड़।

निचोड़ना—क्रि० स० [हिं० निचुड़ना] १. गीली या रसभरी वस्तु को दबाकर या ऐंठकर उसका पानी या रस निकालना। गारना। जैसे, गीली धोती निचोड़ना, नीबू निचोड़ना, धोती का पानी निचोड़ना, नीबू का रस निचोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. किसी वस्तु का सार भाग निकाल लेना। ३. सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। निर्धन कर देना। जैसे,—उनके पास अब कुछ नहीं रह गया, लोगों ने उन्हें निचोड़ लिया।

संयो० क्रि०—लेना।

निचोना(पु)†—क्रि० स० [सं० नि + च्यवन] निचोड़ना। उ०—(क) तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मुसुकानि भरी बलि बोलनि में श्रुति माँहि पियूष निचोती रही।—द्विजदेव (शब्द०)।

निचोर(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निचोड़'।

निचोर(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [सं० निचोल] दे० 'निचोल'। उ०—ध्वजा पताका कलस अरु तोरन। मंगल रूप सुरूप निचोरन।—ह० रासो, पृ० १६।

निचोरना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निचोड़ना'। उ०—शशि और भानु निचोर, शोभा राखी शीश पर।—कबीर सा०, पृ० १०४।

निचोरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० निचोड़ना] निचोड़ने का कार्य। उ०—रुचिर निचोरनि नवल नीर लखि मे अधीर तन। तव बिछुरत की पीर चीर अँसुअन रोवन जनु।—नद० ग्रं०, पृ० ३६।

निचोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन वस्त्र। ऊपर से शरीर ढँकने का कपड़ा। २. आहार। आच्छादन। ३. स्त्रियों की ओढ़नी। घूँघट का कपड़ा। ४. उत्तरीय वस्त्र। ५. घाघरा। लहँगा। ६. वस्त्र। कपड़ा।

निचोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोल। कंचुक। अंगा। २. सन्नाह। बकतर।

निचोवना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निचोना'।

निचौहाँ—वि० [हिं० नीचा + औहाँ (प्रत्य०) (< सं० आग्राह)] [वि० स्त्री० निचौहीं] नीचे की ओर किया हुआ या झुका हुआ। नमित। उ० सखिन मध्य करि दीठि निचौहीं राधा सकुच भरी।—सूर (शब्द०)

निचौहैं—क्रि० वि० [हिं० नीचोहाँ] नीचे की ओर। उ०—बिछुरे जिये सकोच यह मुख ते कहत न बैन। दोऊ दौरि लगे हिए किये निचौहैं नैन।—बिहारी (शब्द०)।

निच्छवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीरभुक्ति देश। तिरहुत।

निच्छिवि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रात्य क्षत्रिय। सवर्णा स्त्री से उत्पन्न व्रात्य क्षत्रिय की संतान (मनु०)।

निछक्का[1]—संज्ञा पुं० [सं० निस् + चक्र (= मंडली)] वह समय या स्थान जिसमें कोई दूसरा न हो। निराला। एकांत। निर्जन।

मुहा०—निछक्के में = एकांत में।

निछक्का[2]—वि० सिर्फ। निरा। मात्र।

निछत्र[1]—वि० [सं० निश्छत्र] १. जिसके सिर पर छत्र न हो। छत्रहीन। बिना छत्र का। २. बिना राजचिह्न का। ३. बिना राज्य का।

निछत्र[2]—वि० [सं० निःक्षत्र] क्षत्रियों से हीन। बिना क्षत्रिय का। क्षत्रियों से रहित। उ०—मारयो मुनि बिनही अपराधहिं कामधेनु लै आऊ। इकइस बार निछत्र तब कीन्हीं तहाँ न देखे हाऊ।—सूर (शब्द०)।

निछदम†—संज्ञा पुं० [सं०] एकांत स्थान। निर्जन स्थान।

निछनियाँ‡—क्रि वि० [हिं० निछान] दे० 'निछान'। उ०—यशुमति दौरि लये हरि कनियाँ। आजु गयो मेरो गाय चरावन हौं बलि गई निछनियाँ।—सूर (शब्द०)।

निछरावल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर'। उ०—तन मन धन निछरावल करसाँ अठसिधि नवनिधि सारी ए।—राम० धर्म०, पृ० २५१।

निछल(पु)—वि० [सं० निश्छल] कपटरहित। छलहीन।

निछला†—वि० [?] बिना मिलावट का। बिलकुल। एकमात्र।

निछान[1]—वि० [हिं० उप० नि (= नहीं) + छान (= जो छानने से निकले, अच्छी तरह छान कर निकाला हुआ)] १. खालिस। विशुद्ध। जिसमें मेल न हो। बिना मिलावट का। २. बिलकुल। निछला। निखालिस। एक मात्र। केवल।

निछान[2]—क्रि० वि० एकदम। बिलकुल।

निछावर—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यास + आवर्त = न्यासावर्त; मि० अ० निसार] १. एक उपचार या टोटका जिसमें किसी की रक्षा के लिये कुछ द्रव्य या कोई वस्तु उसके सारे अंगों के ऊपर से घुमाकर दान कर देते या डाल देते हैं। उत्सर्ग। वारफेरा। उतारा। बखेर।

विशेष—इसका अभिप्राय यह होता है कि जो देवता शरीर को कष्ट देनेवाले हों वे शरीर और अंगों के बदले में द्रव्य पाकर संतुष्ट हो जायँ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—निछावर करना = उत्सर्ग करना। छोड़ देना। त्यागना। दे डालना। निछावर होना = दे दिया जाना। त्याग दिया जाना। (किसी का) किसी पर निछावर होना = किसी के लिये मर जाना। किसी के लिये प्राण त्यागना।

२. वह द्रव्य या वस्तु जो ऊपर घुमाकर दान की जाय या छोड़ दी जाय। ३. इनाम। नेग।

निछावरि‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निछावर'। उ०—(क) करहिं निछावरि आरति महा मुदित मन सासुरि।—मानस, १। ३३५। (ख) सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे।—मानस, १। २९३।

निछोह—वि० [हिं० नि+छोह] १. जिसे छोह या प्रेम न हो। २. निर्दय। निष्ठुर।

निछोही—वि० [हिं० नि+छोह] १. जिसे प्रेम या छोह न हो। २. निर्दय। निष्ठुर। उ०—कहु तैं ऐस निछोही जोगी। जीउ लेइ कीन्हेसि हौं रोगी।—चित्रा०, पृ० १३१।

निज¹—वि० [सं०] १. अपना। स्वीय। स्वकीय। पराया नहीं।

विशेष—आजकल इस शब्द का प्रयोग प्रायः 'का' विभक्ति के साथ होता है, जैसे, निज का काम। कर्म की विभक्ति भी इसके साथ लगती है; जैसे, निज को, निजहिं। कविता में और विभक्तियाँ भी दिखाई देती हैं पर कम।

मुहा०—निज का = खास अपना। अपने शरीर, जन या कुटुंब से संबंध रखनेवाला।

२. खास। मुख्य। प्रधान। उ०—(क) परम चतुर निज दास श्याम के सतत निकट रहत हौ। जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ।—सूर (शब्द०)। (ख) कह मारुतसुत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार निज दास।—तुलसी (शब्द०)। ३. ठीक। सही। वास्तविक। सच्चा। यथार्थ। उ०—(क) अब बिनती मम सुनहु शिव जो मोपर निज नेहु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मन मेरो मानै सिख मेरी। जो निज भक्ति जहै हरि केरी।—तुलसी (शब्द०)।

निज²—अव्य० १. निश्चय। ठीक ठीक। सही सही। सटीक।

मुहा०—निज करके = बीस बिस्वे। निश्चय। अवश्य। जरूर।

२. खासकर। विशेष करके। मुख्यतः। उ०—देखु विचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो।—तुलसी (शब्द०)।

निजकाना‡—क्रि० अ० [फ़ा० नजदीक] निकट पहुँचना। समीप आना। उ०—थाने थाने हनुमान अंगद समाने रहो, जाने निजकाने दिन रावण मरण के।—हनुमान (शब्द०)।

निजकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० निज+कर] १. बँटाई की फसल। वह जमीन जिसके लगान में उससे उत्पन्न वस्तु ही ली जाय।

निजघास—संज्ञा पुं० [सं०] पार्वती के क्रोध से उत्पन्न गणों में से एक।

निजन(पु)—वि० [सं० निर्जन, प्रा० णिज्जण; हिं० नि+जन] एकांत। सन्नाटा। सुनसान। निर्जन।

निजा—संज्ञा पुं० [अ० निज़ाअ] झगड़ा। विवाद।

निजाई—वि० [अ० निज़ाअ] विवादग्रस्त। झगड़ालू।

निजात—संज्ञा स्त्री० [अ० नजात] १. बंधनमुक्ति। छुटकारा। मोक्ष। मुक्ति। उ०—अँधियारा पूरी तरह निगल लेगा तुमको, तब सारे बंधन से निजात मिल जाएगी।—ठंडा०, पृ० ६५। २. दे० 'नजात'-१।

निजाम—संज्ञा पुं० [अ० निज़ाम] १. बंदोबस्त। इंतजाम। २. क्रम। सिलसिला। तरतीब (को०)। ३. शैली। तर्ज। पद्धति। ४. हैदराबाद के नव्वाबों का पदवीसूचक नाम।

निजामत—संज्ञा पुं० [अ०] १. नाजिम का पद या कार्य। २. वह कार्यालय जिसमें नाजिम और उसके सहायक कर्मचारी रहते हों।

निजार†—वि० [फ़ा० नज़ार] क्षीण। दुर्बल। कमजोर। उ०—गया था सूँ ज्यों खाल उजार। किया इश्क हो सब जाफरानी निजार।—दक्खिनी०, पृ० १४४।

निजि—वि० [सं०] शुद्ध। जो शुद्धि के सहित हो।

निजी—वि० [सं० निज] दे० 'निज¹'।

निजु—वि० [सं० निज] दे० 'निज'। उ०—(क) निति पूछौं सब जोगी जंगम। कोइ निजु बात न कहै बिहंगम।—जायसी ग्रं० (गुप्त)।—पृ० ३६४। (ख) निजु ये अधिकारी सब सुखकारी सबही बिधि संतोषी।—राम चं०, पृ० ४२।

निजू†—वि० [हिं० निज] निज का। खास अपना।

निजोर(पु)**†**—वि० [हिं० उप० नि+फ़ा० जोर।] निर्बल।

निझनक(पु)—वि०[हिं० नि+झनक] ध्वनिरहित। नीरव। निर्जन।

निझरना—क्रि० अ० [हिं० उप० नि+झरना] १. अच्छी तरह झड़ जाना। लगा या अँटका न रहना। जैसे, पेड़ से फलों का निझरना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. लगी हुई वस्तु के झड़ जाने से खाली हो जाना। जैसे, पेड़ से निझरना। ३. सार वस्तु से रहित हो जाना। लुप्त हो जाना। ४. हाथ झाड़कर निकल जाना। दोष से मुक्त बनना। अपने को निर्दोष प्रमाणित करना। सफाई देना। उ०—सदा चतुराई फबती नाहीं अतिही निझरि रही हो। सुर 'श्याम धौ कहा रहत हैं' यह कहि कहि जो तही हो।—सूर (शब्द०)।

निझोटना‡—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निझोटना'।

निझाना¹—क्रि० अ० [देश०] १. ताक झाँक करना। झाँक झूँक करना। आड़ में छिपकर देखना। २. समाप्त या रिक्त हो जाना। झरकर खतम होना। ३. जलती हुई अग्नि का बुझना या बुझ सा जाना।

निझाना†²—क्रि० स० आग बुझाना।

निझोटना†—क्रि० स० [हिं० उप० नि+झपटना] खींचकर छीनना। झपटना।

निझोल—संज्ञा पुं० [हिं० उप० नि+झोल] हाथी का एक नाम।

निटर†—वि० [देश०] जिसमें कुछ दम न हो। जिसका जोर मर गया हो। मरा हुआ। जो उपजाऊ न रह गया हो। (खेत या जमीन के लिये)।

निटक, निटिल—संज्ञा पुं० [सं०] कपाल। मस्तक।

निटलाक्ष, निटिलाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। शंभु (को०)।

निटलेक्षण, निटिलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निटलाक्ष'।

निटोल—संज्ञा पुं० [हिं० उप० नि+टोला] टोला। मुहल्ला।

पुरा। बस्ती। उ०—अब न कीनो चूक करिहैं यह हमारे बोल। किंकरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करो निटोल। —सूर (शब्द०)।

निट्टिⓅ—क्रि० वि० [देश०] दे० 'नीठि'।

निठल्ला—वि० [हिं० उप० नि (=नहीं)+ठाला] १. जिसके पास कोई काम धंधा न हो। खाली। २. बेरोजगार। बेकार। ३. जो कोई काम धंधा न करे। निकम्मा। निठल्लू। ठलुआ।

निठल्लू—वि० [हिं०] दे० 'निठल्ला-३'।

निठाला—संज्ञा पुं० [हिं० उप० नि+टहल (=काम)] १. ऐसा समय जब कोई काम धंधा न हो। खाली वक्त। २. वह समय जिसमें हाथ में कोई काम धंधा या रोजगार न हो। वह वक्त या हालत जिसमें कुछ आमदनी न हो। जीविका का अभाव। जैसे,—ऐसे निठाले में तुम भी माँगने आए।

निठुर—वि० [सं० निष्ठुर] कठोरहृदय। जिसे दूसरे की पीड़ा का अनुभव न हो। जो पराया कष्ट न समझे। निर्दय। क्रूर। उ०—महिहि निठुर कठोर उर मोरा।—मानस, ६।६०।

निठुरईⓅ—स्त्री० [हिं० निठुर+ई (प्रत्य०)] दे० 'निठुराई'।

निठुरताⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठुरता] निर्दयता। क्रूरता। हृदय की कठोरता।

निठुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० निठुर+आई (प्रत्य०)] निर्दयता। हृदय की कठोरता। क्रूरता। उ०—सब प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धारि निठुराई।—मानस, २।४१।

निठुराव—संज्ञा पुं० [हिं० निठुर+आव (प्रत्य०)] निठुराई। निर्दयता।

निठौर—संज्ञा पुं० [हिं० नि+ठौर] १. बुरी जगह। कुठाँव। २. बुरा दाँव। बुरी दशा। ३. बिना स्थान का व्यक्ति। बेसहारा।

मुहा०—निठौर पड़ना=कुदाँव में पड़ना। बुरी दशा में पड़ना। बेसहारा होना। उ०—बहुरि बन बोलन लागे मोर। जिनको पिय परदेस सिधारो सो तिय परी निठौर।—सूर (शब्द०)।

निडर—वि० [हिं० उप० नि+डर] १. जिसे डर न हो। जो न डरे। निशंक। निर्भय। २. साहसी। हिम्मतवाला। ३. ढीठ। धृष्ट।

निडरपन—संज्ञा पुं० [हिं० निडर+पन प्रत्य०] निडर होने का भाव। निर्भीकता। निर्भयता।

निडरपना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निडरपन'।

निड़ाⓅ—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निअड, हिं० नियर] निकट। नजदीक। पास। उ०—काम निड़ा पग दुर रहा, मुहुड़ा आडों दीजो हाथ।—बी० रासो, पृ० ५१।

निडीन—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी या यान का धीरे धीरे ऊपर से नीचे आना [को०]।

निड़े, निड़ै—अव्य० [सं० निकट] दे० 'निड़ा'।

निढाल—वि० [हिं० उप० नि+ढाल (=गिरा हुआ)] १. गिरा हुआ। पस्त। शिथिल। थका माँदा। अशक्त। सुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जी निढाल होना=जी डूबना। मूर्छा आना। बेहोशी आना।

२. सुस्त। मरा हुआ। उत्साहहीन।

निढालपन—संज्ञा पुं० [हिं०] सुस्ती। आलस्य। उ०—परंतु यहाँ अनुभव होता है एक निढालपन, सुबह शाम दिसंबर का सा जाड़ा लगता है।—वो दुनिया, पृ० ६६।

निढिलⓅ—वि० [हिं० नि+ढीला] १. जो ढीला न हो। कसा या तना हुआ। २. कड़ा। उ०—गाढ़े गाढ़े कुच निढिल पिय हिय को ठहराय। उकसौहै ही तो हिये सबै दई उसकाय। —बिहारी (शब्द०)।

नितंत—क्रि० वि० [सं० नितान्त] दे० 'नितांत'।

नितंब—संज्ञा पुं० [सं० नितम्ब] १. कटि का पश्चाद्भाग। कमर का पिछला उभरा हुआ भाग। चूतड़। (विशेषतः स्त्रियों का)। २. स्कंध। कंधा। ३. तीर। तट। ४. पर्वत का ढालुआँ किनारा। ५. कटि। कमर (को०)।

नितंबिनी¹—वि० स्त्री० [सं० नितम्बिनी] सुंदर नितंबवाली।

नितंबिनी²—संज्ञा स्त्री० सुंदर नितंबवाली स्त्री। सुंदरी।

नित—अव्य [सं०] १. प्रतिदिन। रोज। जैसे,—वह यहाँ नित आता है।

यौ०—नित नित=प्रतिदिन। रोज रोज। नित नया=सब दिन नया रहनेवाला। कभी पुराना न पड़नेवाला। सदा ताजा रहनेवाला।

२. सदा। सर्वदा। हमेशा।

नितराम्—अव्य० [सं०] १. सदा। हमेशा। सर्वदा। २. अत्यंत। अधिक। बहुत अधिक (को०)। ३. पूर्णतः। पूरी तरह (को०)। ४. एकदम। नितांत (को०)।

नितल—संज्ञा पुं० [सं०] सात पातालों में से एक।

नितांत—वि० [सं० नितान्त] १. अतिशय। बहुत अधिक। २. बिल्कुल। सर्वथा। एकदम। निरा। निपट।

नितिⓅ†—अव्य० [सं० नित्य] दे० 'नित'। उ०—नीति चंदन लागै जेहि देहा। सो तन देखु भरव अब खेहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२६।

नित्तⓅ—वि० [सं० नित्य] दे० 'नित्य'। उ०— नित्त राम रस मत्त नित्त गोपीजन वल्लभ। नित्त नियम यों कहत नित्त नव तन अति दुर्लभ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७।

नित्ति, नित्तुⓅ—अव्य० [सं० नित्य] हमेशा। उ०—(क) जिहि आहु आहु बस बुद्धि हूँ कह्यो निति उत्तम सुबुध।—पृ० रासो, पृ० ६४। (ख) जेहि घर कंता रितु भली, आउ बसंता नित्तु।—जायसी ग्रं०, पृ० १४८।

नित्य¹—वि० [सं०] १. जो सब दिन रहे। जिसका कभी नाश न हो। शाश्वत। अविनाशी। त्रिकालव्यापी। उत्पत्ति और विनाशरहित। जैसे,—ईश्वर नित्य है।

विशेष—न्याय मत से परमाणु नित्य है। सांख्य मत से पुरुष

और प्रकृति दोनों नित्य हैं। वेदांत इन सबका खंडन करके केवल ब्रह्म को नित्य कहता है।

२. प्रतिदिन का। रोज का। जैसे, नित्यकर्म।

नित्य[2]—अव्य० १. प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—वह नित्य यहाँ आता है। २. सदा। सर्वदा। अनवरत। हमेशा।

नित्य[3]—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।

नित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नित्यकर्मन्] १. प्रतिदिन का काम। रोज का काम। २. वह धर्म संबंधी कर्म जिसका प्रतिदिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। नित्य की क्रिया। जैसे, संध्या, अग्निहोत्र आदि।

विशेष—मीमांसा में प्रधान या अर्थ कर्म तीन प्रकार के कहे गए हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्यकर्म वह है जिसका प्रतिदिन करना कर्तव्य हो और जिसे न करने से पाप होता हो। दे० 'कर्म'।

नित्यकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नित्यकर्म'।

नित्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्यकर्म। जैसे, शौच, स्नान, संध्या आदि।

नित्यगति—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नित्यजात—वि० [सं०] नित्य पैदा होनेवाला।

नित्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्य होने का भाव। अनश्वरता।

नित्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नित्यता।

नित्यदा—अव्य० [सं०] सर्वदा। हमेशा।

नित्यदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन दान करना। नित्य दान देने की क्रिया [को०]।

नित्यनर्त—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

नित्यनियम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का बँधा हुआ व्यापार। रोज का कायदा।

नित्यनैमित्तिककर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि कर्म।

विशेष—पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्तव्य हैं और किसी निमित्त (जैसे पापक्षय) से भी किए जाते हैं इससे नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यप्रति—अव्य० [सं०] प्रतिदिन। हर रोज।

नित्यप्रमुदित—वि० [सं०] हमेशा आनंदित रहनेवाला [को०]।

नित्यप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] नित्य होनेवाला प्रलय।

विशेष—वेदांत परिभाषा में चार प्रकार के प्रलय कहे गए हैं—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और आत्यंतिक। इनमें से सुषुप्ति को नित्यप्रलय कहते हैं। जिस प्रकार प्रलयकाल में किसी कार्य का बोध नहीं होता उसी प्रकार इस सुषुप्ति की अवस्था में भी नहीं होता। यह अवस्था प्रतिदिन होती है।

नित्यबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पदार्थ को शाश्वत या नित्य समझना [को०]।

नित्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] शाश्वतता। नित्यता [को०]।

नित्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जो निःस्वार्थ भाव से प्रीति या बढ़े हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे।

नित्यमुक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर [को०]।

नित्यमुक्त[2]—वि० जो हमेशा के लिये स्वतंत्र या मुक्त हो [को०]।

नित्ययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का कर्तव्य यज्ञ। जैसे, अग्निहोत्र।

नित्ययुक्त—वि० [सं०] हमेशा तैयार या तत्पर रहनेवाला [को०]।

नित्ययौवना[1]—वि० स्त्री० [सं०] जिसका यौवन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे।

नित्ययौवना[2]—संज्ञा स्त्री० द्रौपदी।

नित्यर्तु—वि० [सं०] हरेक ऋतु में समयानुसार होनेवाला [को०]।

नित्यशः—अव्य० [सं०] १. प्रतिदिन। रोज। २. सदा। सर्वदा।

नित्यश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कांति या प्रफुल्लता जो बराबर बनी रहे [को०]।

नित्यसत्वस्थ—वि० [सं०] १. सर्वदा सत्व गुण से युक्त। २. धैर्य का त्याग न करनेवाला [को०]

नित्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जो २४ जाति अर्थात् केवल साधर्म्य और वैधर्म्य से प्रयुक्त खंडन कहे गए हैं उनमें से एक। वह अयुक्त खंडन जो इस प्रकार किया जाय कि अनित्य वस्तुओं में भी अनित्यता नित्य है अतः धर्म के नित्य होने से धर्मी भी नित्य हुआ। जैसे, किसी ने कहा शब्द अनित्य है क्योंकि वह घट के समान उत्पत्ति धर्मवाला है। इसका यदि कोई इस प्रकार खंडन करे कि यदि शब्द का अनित्यत्व नित्य है तो शब्द भी नित्य हुआ और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्व के अभाव से शब्द नित्य हुआ। इस प्रकार का दूषित खंडन नित्यसम कहलाता है।

नित्यसमास—संज्ञा पुं० [सं०] अनिवार्य समास। वह समास जिसे तोड़ देने पर उसके अंशों से अभीष्ट अर्थ की निष्पत्ति न हो, जैसे, जयद्रथ, पावक [को०]।

नित्यसिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा [को०]।

नित्यसेवक—वि० [सं०] हमेशा दूसरों की सेवा करनेवाला [को०]।

नित्यस्नायी—वि० [सं० नित्यस्नायिन्] प्रतिदिन स्नान करनेवाला [को०]।

नित्यस्वाध्यायी—वि० [सं० नित्यस्वाध्यायिन्] प्रतिदिन वेदादि का अनुशीलन करनेवाला [को०]।

नित्यहोता—वि० [सं० नित्यहोतृ] प्रतिदिन हवन करनेवाला [को०]।

नित्यहोम—संज्ञा पुं० [सं०] रोज किया जानेवाला होम [को०]।

नित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. मनसा देवी। ३. एक शक्ति का नाम।

नित्यानंद—संज्ञा पुं० [सं० नित्यानन्द] १. वह आनंदानुभूति जो सदा बनी रहे। २. वह जो सर्वदा आनंद से रहे [को०]।

नित्यानध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अवसर, चाहे वह जिस बार या जिस तिथि को पड़ जाय, जिसमें वेद के अध्ययन अध्यापन का निषेध हो।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार जब पानी बरसता, बादल गरजता

और बिजली चमकती हो या आँधी के कारण धूल आकाश में छाई हो या उल्कापात होता हो तब अनध्याय रखना चाहिए ।

नित्यानित्य—वि० [सं०] नश्वर और अविनश्वर । शाश्वत और क्षणिक [को०] ।

नित्यानित्यवस्तुविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म के सत्य और जगत् मिथ्यात्व का निश्चय [को०] ।

नित्यानुगृहीत—वि० [सं०] (अग्नि) जिसका निरंतर रक्षण किया जाय ।

नित्याभियुक्त—वि० [सं०] (योगी) जो केवल इतना ही भोजन करके रहे जितने से देहरक्षा होती रहे और सब त्याग करके योगसाधन करे ।

नित्यामित्राभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसा स्थान जहाँ घोर विरोधी या शत्रु निवास करें । वह भूमि जहाँ के लोग सदा दुश्मनी करते हों या जिसमें शत्रु की प्रबलता हो ।

नित्यार(पु)—अव्य० [सं० नित्य + हिं० आर (प्रत्य०)] नित्य । निरंतर । सर्वदा । उ०—लीला ललित मुरार की सुक मुनि कही अपार । ते बड़भागी देव नर जपत रहत नित्यार ।—पृ० रा०, २ । ५६१ ।

नित्यारित्र—वि० [सं०] (जलयान) जो अपने आप चले [को०] ।

नित्योदक—वि० [सं०] (स्थान) जो सदा जल से युक्त या पूरित हो [को०] ।

नित्योदकी —वि० [सं० नित्योदकिन्] दे० 'नित्योदक' [को०]

नित्योदित—वि० [सं०] १. सदा उत्पन्न होनेवाला । २. अपने आप उत्पन्न होनेवाला । जैसे, ज्ञान [को०] ।

नित्योद्युक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम [को०] ।

निथंभ(पु) संज्ञा पुं० [सं० उप० नि + स्तम्भ] खंभा । स्तंभ । उ०—रची बिरंचि बास सो निथंभ राजिका भली ।—केशव (शब्द०) ।

निथरना—क्रि० अ० [सं० निस्तरण; अथवा हिं०उप० नि + थिर + ना (प्रत्य०)] १. पानी या और किसी पतली चीज का स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय । थिरकर साफ होना । २. घुली हुई चीज के नीचे बैठ जाने से जल का अलग हो जाना । पानी छन जाना ।

निथार—संज्ञा पुं० [सं० निस्तार अथवा हिं० निथरना] १. घुली हुई चीज के बैठ जाने से अलग हुआ साफ पानी । २. पानी के स्थिर होने से उसके तल में बैठी हुई चीज । ३. निथरने की क्रिया ।

निथारना—क्रि० स० [हिं० निथरना] १. पानी और किसी पतली चीज को स्थिर करना जिससे उसमें घुली हुई मैल आदि नीचे बैठ जाय । थिराकर साफ करना । २. घुली चीज को नीचे बैठाकर खाली पानी अलग करना । पानी छानना । पानी छानकर अलग करना ।

निथालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निथारना' ।

निद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जहर । विष [को०] ।

निद[2]—वि० निंदक [को०] ।

निदई(पु)—वि० [सं० निर्दयी] दे० 'निर्दयी' ।

निदद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसे दाद का रोग न हो । २. मनुष्य । मानव [को०] ।

निदरन(पु)—वि० [सं० उप० निर् = √द् (= नष्ट करना)] निर्दलन करनेवाला । नष्ट करनेवाला । उ०—आवहु बलि बैसाख, दुख निदरन सुख करन पिय ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६५ ।

निदरना(पु)—क्रि० स० [सं० निरादर] १. निरादर करना । अपमान करना । अप्रतिष्ठा करना । बेइज्जती करना । उ०—मोर प्रभाव विदित नहीं तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. तिरस्कार करना । त्याग करना । ३. मात करना । बढ़ जाना । बढ़कर निकलना । तुच्छ ठहराना । उ०—(क) नाना भाँति न जाहिं बखाने । निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एक एक जीतहिं संसारा । उनहिं निदरि पावत को पारा ।—सबल (शब्द०) ।

निदरसना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निदर्शना] दे० 'निदर्शना' । उ०—जहँ बरनन पद अर्थ को बरनत है कविराज । निदरसना यह दूसरी, बरनत बिबुध समाज ।—मति० ग्रं०, पृ० ३६३ ।

निदरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' । उ०—दिन नहिं चैन रात नहिं निदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी ।—संतबाणी०, पृ०७७।

निदर्शक—वि० [सं०] निदर्शन करनेवाला । बतानेवाला । दिखानेवाला [को०] ।

निदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिखाने का कार्य । प्रदर्शित करने का कार्य । प्रकट करने का कार्य । २. उदाहरण । दृष्टांत ।

निदर्शना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें एक बात किसी दूसरी बात को ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है । यह ६ प्रकार की होती है । उ०—(क) सरिसंगम हित चले ठेलते नाले पत्थर । दिखलाते पथरोध प्रेमियों का अति दुष्कर । (ख) जात चंद्रिका चंद्र सह बिद्युत् घन सह जाय । पिय सहगमन जो तियन को जड़ हू देत बिखाय । (ग) कहाँ सूर्य को बंश अरु कहाँ मोरि मति छुद्र । मैं डूड़े सों मोहवश चाहत तरयो समुद्र । (घ) जंगजीत जे चहत हैं तो सों बैर बढ़ाय । जीबे की इच्छा करत कालकूट ते खाय । (च) उदय होत दिननाथ इत अथवत उत निशिराज । द्वय घंटायुत द्विरद की छवि धारत गिरि आज । (छ) लघु उन्नत पद प्राप्त ह्वै तुरतहि लहत निपात । गिरि तें कांकर बात बस गिरत कहत यह बात ।

विशेष—इस अलंकार के भिन्न भिन्न लक्षण आचार्यों ने लिखे हैं । जहाँ होता हुआ वस्तुसंबंध और न होता हुआ वस्तुसंबंध दोनों बिंबानुबिंब भाव से दिखाए जाते हैं वहाँ निदर्शना होती है ।

उ०—संपदयुत थिर थिर रहत नहिं कोउ जनहिं लखाय। चरमाचल चलि भानु यह सब कहँ रहे जनाय। (साहित्यदर्पण)। न होता हुआ वस्तुसंबंध जहाँ उपमा की कल्पना करे (प्रथम निदर्शना); अथवा जहाँ क्रिया से ही अपने और अपने हेतु के संबंध की उक्ति हो वहाँ निदर्शना अलंकार होता है (दूसरी निदर्शना)। उ०—लघु उन्नत पद प्राप्त ह्वै तुरतहि लहत निपात। गिरि ते काँकर बात बस गिरत कहत यह बात। (काव्यप्रकाश कारिका)। दंडी का यह लक्षण है—अर्थांतर में प्रवृत्त कर्ता द्वारा अर्थांतर के सदृश जो सत् या असत् फल दिखाया जाता है वह निदर्शना है। चंद्रालोककार का लक्षण—सदृश वाक्यार्थों की एकता का आरोप निदर्शना है।

हिंदी के कवि प्रायः चंद्रालोककार का ही लक्षण ग्रहण करके चले हैं। जैसे,—सरिस वाक्य जुग के अरथ करिए एक अरोप। भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दै ओप।—भूषण (शब्द०)। प्रथम निदर्शना जो सो, जे ते, पदन करि असम वाक्य सम कीन। उ०—सुनु खगेश हरि भक्ति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई। ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहत जड़ करनी।—तुलसी (शब्द०)। दूसरी निदर्शना—थापिय गुन उपमान के उपमेयहि के अंग। उ०—जब कर गहत कमान सर देत अरिन को भीति। माउसिंह में पाइए सब अरजुन की रीति।—मतिराम (शब्द०)। तीसरी निदर्शना—थापिय गुण उपमेय को उपमानहि के अंग। उ०—तुव बचनन की मधुरता रही सुधा महँ छाय। चारु चमक बल नैन की मीनन लई छिनाय। (शब्द०)।

निद्लन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्दलन] दे० 'निर्दलन'।

निद्हना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्दहन] जलाना।

निदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरमी। ताप। २. धूप। घाम। ३. ग्रीष्मकाल। गरमी। ४. प्रस्वेद। पसीना (को०)। ५. पुलस्त्य ऋषि का एक पुत्र (विष्णुपुराण)।

निदाघकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार। आक।

निदाघकाल—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी की ऋतु [को०]।

निदाघवार्षिक—वि० [सं०] ग्रीष्म और वर्षा ऋतु संबंधी महीने।

निदाघसिंधु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्मऋतु की नदी जो शुष्कप्राय रहती है [को०]।

निदान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदि कारण। २. कारण। ३. रोगनिर्णय। रोगलक्षण। रोग की पहचान।

विशेष—सुश्रुत के पूछने पर धन्वंतरि जी ने कहा है कि वायु ही प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का मूल है। यह शरीर के दोषों का स्वामी और रोगों का राजा है। वायु पाँच हैं—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान। ये ही पाँचो वायु शरीर की रक्षा करती हैं। जिस वायु का मुख में संचरण होता है उसे प्राणवायु कहते हैं। इससे शरीर की रक्षा, प्राणधारण और खाया हुआ अन्न जठर में जाता है। इसके दूषित होने से हिचकी, दमा, आदि रोग होते हैं। जो वायु ऊपर की ओर चलती है उसे उदान वायु कहते हैं। इसके कुपित होने से कंधे के ऊपर के रोग होते हैं। समान वायु आमाशय और पक्वाशय में काम करती है। इसके बिगड़ने से गुल्म, मंदाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं। व्यान वायु सारे शरीर में घूमती है और रसों को सर्वत्र पहुँचाती है। इसी से पसीना और रक्त आदि निकलता है। इसके बिगड़ने से शरीर भर में होनेवाले रोग हो सकते हैं। अपान वायु का स्थान पक्वाशय है। इसके द्वारा मल, मूत्र, शुक्र, आर्तव, गर्भ, समय पर खिंचकर बाहर होता है। इस वायु के कुपित होने से बस्ति और गुप्त स्थानों के रोग होते हैं। व्यान और अपान दोनों के कुपित होने से प्रमेह आदि शुक्ररोग होते हैं (सुश्रुत)।

४. अंत। अवसान। ५. तप के फल की चाह। ६. शुद्धि। ७. बछड़े का बंधन।

निदान[2]—अव्य० अंत में। आखिर। उ०—जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।—तुलसी (शब्द०)।

निदान[3]—वि० अंतिम या निम्न श्रेणी का। निकृष्ट। बहुत ही गया बीता। हद दरजे का। उ०—उत्तम खेती मध्यम बान। निरघिन सेवा भीख निदान। (कहावत)।

निदारुण—वि० [सं०] १. कठिन। घोर। भयानक। २. दुःसह। निर्दय। कठोर।

निदाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निदाघ] दे० 'निदाघ'।

निदिग्ध—वि० [सं०] १. छाया हुआ लेप किया हुआ। २. बढ़ाया हुआ। प्रवर्धित [को०]।

निदिग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची।

निदिग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निदिग्धा'।

निदिध्यास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निदिध्यासन'। उ०—कीयो श्रवन मनन पुनि कीयो ता पीछे कीयो निदिध्यास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५५।

निदिध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] फिर फिर स्मरण। बार बार ध्यान में लाना।

विशेष—श्रुतियों और योगदर्शन में भी दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मज्ञान के लिये आवश्यक बतलाया गया है।

निदिष्ट—वि० [सं०] १. बताया हुआ। निर्दिष्ट। इंगित। २. आदिष्ट। आज्ञप्त (को०)।

निदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शासन। २. आज्ञा। हुक्म। ३. कथन। ४. पास। सामीप्य। ५. पात्र। बरतन [को०]।

निदेशक—वि० [सं०] निदेश करनेवाला। निर्देशक। (अंग्रेजी के 'डाइरेक्टर' पद के लिये प्रयुक्त हिंदी पारिभाषिक शब्द)।

निदेशिनी[1]—वि० स्त्री० [सं०] निदेश करनेवाली। हुक्म या आज्ञा देनेवाली [को०]।

निदेशिनी[2]—संज्ञा स्त्री० दिशा [को०]।

निदेशी—वि० [सं० निदेशिन्] [वि० स्त्री० निदेशिनी] आज्ञा करनेवाला।

निदेष्टा—वि० [सं० निदेष्टृ] निदेशक। बताने या आज्ञा देनेवाला [को०]।

निदेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निदेश] दे० 'निदेश'। उ०—मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू।—मानस, २। ३०५।

निदोष(पु)—वि० [सं० निर्दोष] दे० 'निर्दोष'।

निद्धि - संज्ञा स्त्री० [सं० निधि] दे० 'निधि'।

निद्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपसंहारक अस्त्र। उ०—ज्योतिष पावक निद्र दैत्यमंथन रति लेख्यो।—पद्माकर (शब्द०)।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सचेष्ट अवस्था के बीच बीच में होनेवाली प्राणियों की वह निश्चेष्ट अवस्था जिसमें उनकी चेतन वृत्तियाँ (और कुछ अचेतन वृत्तियाँ भी) रुकी रहती हैं। नींद। स्वप्न। सुप्ति।

विशेष—गहरी निद्रा की अवस्था में मनुष्य की पेशियाँ ढीली हो जाती हैं, नाड़ी की गति कुछ मंद हो जाती है, साँस कुछ गहरी हो जाती है और कुछ अधिक अंतर देकर आती जाती है, साधारण संपर्क से ज्ञानेंद्रियों में संवेदन और कर्मेंद्रियों में प्रतिक्रिया नहीं होती; तथा आँतों के जिस प्रवाहवत् चलनेवाले आकुंचन से उनके भीतर का द्रव्य आगे खिसकता है उसकी चाल भी धीमी हो जाती है। निद्रा के समय मस्तिष्क या अंत:करण विश्राम करता है जिससे प्राणी नि:संज्ञ या अचेतन अवस्था मे रहता है।

निद्रा के संबंध में सबसे अधिक माना जानेवाला वैज्ञानिक मत यह है कि निद्रा मस्तिष्क में कम रक्त पहुँचने के कारण आती है। निद्रा के समय मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है, यह बात तो देखी गई है। बहुत छोटे बच्चों के सिर के बीच जो पुलपुला भाग होता है वह उनके सो जाने पर कुछ अधिक धँसा मालूम होता है। यदि वह नाड़ी जो हृदय से मस्तिष्क में रुधिर पहुँचाती है, दबाई जाय तो निद्रा या बेहोशी आवेगी। निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क में रक्त की कमी का होना तो ठीक है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस कमी के कारण निद्रा आती है या निद्रा (मस्तिष्क की निष्क्रियता) के कारण यह कमी होती है। हाल के दो वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि निद्रा संवेदनसूत्रों या ज्ञानतंतुओं के घटकों (सेल्स) के संयोग तोड़ने से आती है। संवेदनसूत्र अनेक सूक्ष्म घटकों के योग से बने होते हैं और मस्तिष्करूपी केंद्र में जाकर मिलते हैं। जाग्रत या सचेष्ट अवस्था में ये सब घटक अत्यंत सूक्ष्म सूत की सी उँगलियाँ निकालकर एक दूसरे से जुड़े हुए मस्तिष्कघटकों के साथ संबंध जोड़े रहते हैं। जब घटक श्रांत हो जाते हैं तब उंगलियाँ भीतर सिमट जाती हैं और मस्तिष्क का संबंध संवेदनसूत्रों से टूट जाता है जिससे तंद्रा या निद्रा आती है। एक और दूसरे वैज्ञानिक का यह कहना है कि मस्तिष्क के घटक दिन के समय जितना अधिक और जितनी जल्दी जल्दी प्राणद वायु (आक्सीजन) खर्च करते हैं उतनी उन्हें फेफड़ों से मिल नहीं सकती। अत: जब प्राणद वायु का अभाव एक विशेष मात्रा तक पहुँच जाता है तब मस्तिष्कघटक शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाते हैं। सोने की दशा में आमदनी की अपेक्षा प्राणदवायु का खर्च बहुत कम हो जाता है जिससे उसकी कमी पूरी हो जाती है अर्थात् चेतना के लिये जितनी प्राणदवायु की जरूरत होती है उतनी या उससे अधिक फिर हो जाती है और मनुष्य जाग पड़ता है। इतना तो सर्वसम्मत है कि निद्रा की अवस्था में शरीर पोषण करनेवाली क्रियाएँ क्षय करनेवाली क्रियाओं की अपेक्षा अधिक होती हैं।

निद्रा के संबंध में यह ठीक ठीक नहीं ज्ञात होता कि विकास की किस श्रेणी के जीवों से नियमपूर्वक सोने की आदत शुरू होती है। स्तनपायी उष्णरक्त जीवों तथा पक्षियों से नीचे की कोटि के जीवों के यथार्थ रीति से सोने का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। मछली, साँप, कछुए आदि ठंढे रक्त के जीवों की आँखों पर हिलनेवाली पलकें तो होती नहीं कि उनके आँख मूँदने से उनके सोने का अनुमान कर सकें। मछलियाँ घंटों निश्चेष्ट अवस्था मे पड़ी पाई गई हैं पर उनकी यह अवस्था नियमित रूप से हुआ करती है, यह नहीं कहा जा सकता।

पातजल योगदर्शन के अनुसार निद्रा भी एक मनोवृत्ति है, जिसका आलंबन अभावप्रत्यय अर्थात् तमोगुण है। अभाव से तात्पर्य शेष वृत्तियों का अभाव है, जिसका प्रत्यय या कारण हुआ तमोगुण। सारांश यह है कि तमोगुण की अधिकता से सब विषयों को छोड़कर जो वृत्ति रहती है वह निद्रा है। निद्रा मन की एक क्रिया या वृत्ति है, इसके प्रमाण में भोजवृत्ति में यह लिखा है कि 'मैं खूब सुख से सोया'। ऐसी स्मृति लोगों को जागने पर होती है और स्मृति उसी बात की होगी जिसका अनुभव हुआ होगा।

यौ०—निद्रादरिद्र =जिसे नींद न आती हो। निद्राभंग = जागरण। निद्रावृक्ष = अँधेरा। अंधकार।

निद्रागिण—वि० [सं०] १. सोता हुआ। निद्रित उ०—हृदय गिरी कंदरा निद्रागिण पितृवैरि केशरी जागु।—कीर्ति०, पृ० १८। २. बंद। अविकच। मीलित। मुँदा हुआ।

निद्राभिभूत—वि० [सं०] नींद से ग्रस्त। निद्रित [को०]।

निद्रायमान—वि० [सं० निद्रायमाण] जो नींद में हो। सोता हुआ।

निद्रालस—वि० [सं० निद्रा + अलस] १. निद्रायुक्त। सोया हुआ। २. उनींदा। तंद्रालु। उ०—चूक क्षमा माँगी नहीं, निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही।—अपरा, पृ० ५।

निद्रालु[1]—वि० [सं०] १. निद्राशील। सोनेवाला। २. उनींदा [को०]।

निद्रालु[2]—संज्ञा स्त्री० १. बैंगन। भंटा। २. बबरी। ममरी। वनतुलसी। ३. नली नामक गंधद्रव्य।

निद्रालु[3]—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम (भागवत)।

निद्रासंजनन—संज्ञा पुं० [सं० निद्रासञ्जनन] श्लेष्मा। कफ।

विशेष—कफ की वृद्धि से निद्रा आती है। अत: श्लेष्मा को निद्रासंजनन कहते हैं।

निद्रित—वि० [सं०] सुप्त । सोया हुआ ।

निधड़क—क्रि० वि० [हिं० नि (= नहीं) + धड़क] १. बेरोक । बिना किसी रुकावट के । २. बिना संकोच के । बिना हिचक के । बिना आगा पीछा किए । ३. निःशंक । बेखटके । बिना किसी भय या चिंता के ।

निधन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश । २. मरण । ३. फलित ज्योतिष में लग्न से आठवाँ स्थान ।

विशेष—इस स्थान से अत्यंत संकट, आयु, शत्रु आदि का विचार किया जाता है । यदि लग्न से चौथे स्थान पर सूर्य हों और ग्रह पर शनि की दृष्टि हो तो जिस दिन निधन स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि होगी उसी दिन मृत्यु होगी ।

४. जन्म नक्षत्र से सातवाँ, सोलहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र । ५. कुल । खानदान । ६. कुल का अधिपति । ७. विष्णु । ८. पाँच अवयव या सात अवयवयुक्त साम का अंतिम अवयव ।

यौ०—निधनकारी = नष्टकारक । नाशक । निधनक्रिया = अंत्येष्टि । निधनपति ।

निधन[2]—वि० धनहीन । निर्धन दरिद्र ।

निधनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनहीनता । गरीबी (को०) ।

निधनपति—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलयकर्ता । शिव ।

निधनी—वि० [हिं० नि + धनी] निर्धन । धनहीन । दरिद्र । उ०—जैसे निधनी धनहिं पाए हरख दिन अरु राति । —सूर (शब्द०) ।

निधरक†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'निधड़क' । उ०—निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी । —मानस, २।४१ ।

निधरकता†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निधरक + ता (प्रत्य०)] निधड़कपन । बेधड़की । बेखटकी । उ०—ताही प्रकार अपनो टहल निधरकतासों कर्यो कर्यो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१७ ।

निधातव्य—वि० [सं०] स्थापनीय ।

निधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आधार । आश्रय । २. निधि । खजाना । ३. लयस्थान । वह स्थान जहाँ आकर कोई वस्तु लीन हो जाय । ४. स्थापन । रखना । ५. धन । सम्पत्ति (को०) । ६. विराम स्थान । आराम की जगह (को०) ।

निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गड़ा हुआ खजाना । खजाना ।

विशेष—पृथ्वी में गड़ा हुआ धन यदि राजा को मिले तो उसे आधा ब्राह्मणादि को देकर आधा ले लेना चाहिए । विद्वान् ब्राह्मण यदि पावे तो उसे सब ले लेना चाहिए । यदि अपंडित ब्राह्मण या क्षत्रिय आदि पावें तो राजा को उन्हें छठा भाग देकर शेष ले लेना चाहिए । यदि कोई निधि पाकर राजा को संवाद न दे तो राजा को उसे दंड देना चाहिए और सारा खजाना ले लेना चाहिए (मिताक्षरा) ।

२. कुबेर के नौ प्रकार के रत्न । ये नौ रत्न ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व ।

विशेष—ये सब निधियाँ लक्ष्मी को आश्रित हैं । जिन्हें ये प्राप्त होती हैं उन्हें भिन्न भिन्न रूपों में धनागम आदि होता है । जैसे, पद्मनिधि के प्रभाव से मनुष्य सोने, चाँदी, ताँबे आदि का खूब उपभोग और क्रयविक्रय करता है, महापद्मनिधि की प्राप्ति से रत्न, मोती, मूँगे आदि की अधिकता रहती है, इत्यादि । मार्कंडेय पुराण इनमें अंतिम निधि को छोड़कर आठ निधि का उल्लेख करता है । अंतिम निधि खर्व को कहीं कहीं खर्व नाम कहा गया है ।

३. समुद्र । ४. आधार । घर । जैसे, जलनिधि, गुणनिधि । ५. विष्णु । ६. शिव । ७. नौ की संख्या । ८. जीवक नाम की ओषधि । ९. नलिका नामक द्रव्य । १०. व्यक्ति जो विविध गुणयुक्त हो (को०) । ११. वह स्थान जहाँ संपत्ति, द्रव्य आदि रखा जाय ।

निधिगोप—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदवेदांग में पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो । अनूचान ।

निधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] निधियों के स्वामी, कुबेर ।

निधिप—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

निधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

निधिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

निधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर । २. भैरव का एक नाम (को०) ।

निधीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

निधुवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैथुन । २. नर्म । केलि । ३. हँसी ठट्ठा । ४. कंप ।

निधूमⓅ—वि० [सं० निर्धूम] धूमरहित । बिना धुएँ का । उ०—अगिन के जनु निधूम हैं ऊक । किधौं बिभाकर के बिबि टूक । —नंद० ग्रं०, पृ० २५४ ।

निधेय—वि० [सं०] स्थापनीय । स्थापन करने योग्य ।

निध्यात—वि० [सं०] जिसका मनन या ध्यान किया गया हो । विचारित (को०) ।

निध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. निदर्शन ।

निध्यानिⓅ—वि० [सं० निध्यान] निध्यान करनेवाला । उ०—निःकामी निध्यानि मोह अविगति यहि विधि जान ।—कबीर सा०, पृ० ५९२ ।

निध्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।

निध्रुवि—वि० [सं०] दृढ़ । विश्वसनीय (को०) ।

निध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द ।

निनंक्षु—वि० [सं० निनङ्क्षु] १. मरने की इच्छा रखनेवाला । २. जो भागना या छिपना चाहता हो (को०) ।

निनद—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द । आवाज । घरघराहट । उ०—लाज गह्यो धीरज धर्यो ए पिय चतुर सुजान । सवन सुलद नूपुर निनद ननद न सुनिहै कान ।—स० सप्तक, पृ० ३७२ ।

निनदित—वि० [सं०] दे० 'निनादित' (को०) ।

निनदी—वि० [सं० निनदिन्] दे० 'निनादी' ।

निनदⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निनद] निनाद । जोर की ध्वनि । उ०—

डंका निनद छाये अहद। रनसिंह तूर बेहद सद।—सुजान०, पृ० १८।

निनय—संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। नीताई। आजजी।

निनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्पादन। २. प्रणीता के जल को कुश से यज्ञ की वेदी पर छिड़कने का कार्य।

निनरा(पु) वि० [सं० नि+निकट, प्रा० निनिअड़] न्यारा। अलग। जुदा। दूर। उ०—मानहु बिथर गए चलि कारे तजि केंचुरी भए निनरे री।—सूर (शब्द०)।

निनाद—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द। आवाज।

निनादित[1]—वि० [सं०] शब्दित। ध्वनित।

निनादित[2]—संज्ञा पुं० शब्द। ध्वनि। आवाज [को०]।

निनादी—वि० [सं० निनादिन्] [वि०स्त्री० निनादिनी] शब्द करनेवाला। ध्वनि करनेवाला।

निनान(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० निदान] १. अंत। २. लक्षण।

निनान(पु)[2]—क्रि० वि० अंत में। आखिर।

निनान(पु)[3]—वि० १. परले सिरे का। बिल्कुल। एकदम। घोर। २. बुरा। निकृष्ट। उ०— नमन नमन बहु अंतरा कबिरा नमन निनान। ये तीनों बहुतै नवै चीता, चोर, कमान।—कबीर (शब्द०)

निनाया†—संज्ञा पुं० [देश०] खटमल।

निनार—वि० [हिं०] दे० 'निनारा'। उ०—छाड़ेन्हि लोग कुटुंब सब कोऊ। भए निनार दुख सुख तजि दोऊ।—जायसी ग्रं० ५६।

निनारा—वि० [सं० निः+निकट, प्रा० निनिअड़, हिं० निनर अथवा हिं०] १. अलग। जुदा। भिन्न। न्यारा। उ०—विप्र असीस विनति औधारा। सुआ जीउ नहिं करौं निनारा।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२। २. दूर। हटा हुआ।

निनावाँ—संज्ञा पुं० [हिं० नन्हा ?] जीभ, मसूड़े तथा मुँह आदि के भीतर के और भागों में निकलनेवाले महीन लाल दाने जिनमें छरछराहट और पीड़ा होती है।

निनावाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नि (=बुरा)+नाम, नाँव] १. बिना नाम की वस्तु। वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ या बुरा समझा जाता हो। २. चुड़ैल। भुतनी।

निनियाना†—क्रि० अ० [अनु०] गिड़गिड़ाना। निन्हियाना।

निनौना†—क्रि० स० [हिं० नवना (=झुकना)] नीचे करना। झुकाना। नवना। उ०—नैन निनै बहु नेकहूँ कमलनैन नव नाथ। बालनि के मन मोहि लै बेंचे मनमथ हाथ।—केशव (शब्द०)।

निनौरा—संज्ञा पुं० [हिं० नानी+औरा (प्रत्य०)] नाना या नानी का घर। वह स्थान जहाँ नाना नानी रहते हों।

निन्नानबे[1]—वि० [सं० नवनवति, प्रा० नवनवइ] नब्बे और नौ। जो संख्या में एक कम सौ हो।

निन्नानबे[2]—संज्ञा पुं० नब्बे और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९९।

मुहा०—निन्नानबे के फेर में आना या पड़ना=रुपया बढ़ाने की धुन में होना। धन बढ़ाने की चिंता में पड़ना।

विशेष—इस मुहावरे के संबंध में एक कहानी है। कोई मनुष्य बड़ा अपव्ययी था। एक दिन उसके मित्र ने उसे ९९००) रुपए दिए। उसी दिन से वह १००) पूरे करने के फेर में पड़ गया। जब १००) पूरे हो गए १०१) करने की चिंता में हुआ। इस प्रकार वह दिन रात रुपए के फेर में रहने लगा भारी कंजूस हो गया।

निन्यानबे—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निन्नानबे'।

निन्यारा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'निनारा'।

निन्हियाना‡—क्रि० अ० [अनु० नी नी] गिड़गिड़ाना। दीनता प्रकट करना। आजजी दिखाना।

निपंग(पु)—वि० [सं० नि+पङ्गु] जिसके हाथ पैर टूटे हों या काम न दे सकें। अपाहिज। निकम्मा। उ०—जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग। जो चाहै लेतो बनै तो करि डारु निपंग।—गिरधर (शब्द०)।

निप—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलपात्र। कलश। २. कदंब। कदम का फूल या पेड़ [को०]।

निपज‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० निपजना] उपज।

निपजना(पु)†—क्रि० अ० [सं० निष्पद्य, (+ ते) प्रा० निप्पज्जइ] १. उपजना। उत्पन्न होना। उगना। जमना। उ०—(क) राम नाम कर सुमिरन हँसि कर भावै खीज। उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन में बीज।—कबीर (शब्द०)। (ख) अमिरित बरसै होरा निपजै घटा परै टकसार। तहाँ कबीरा पारखी अनुभव उतरै पार।—कबीर (शब्द०)। २. बढ़ना। पुष्ट होना। पकना। उ०—भली बुद्धि तेरे जिय उपजी। ज्यों ज्यों दिनी भई त्यों निपजी।—सूर (शब्द०) ३. बनना। तैयार होना। उ०—सिख खाँड़ा गुरु मसकला चढ़ै शब्द खरसान। शब्द सहै सम्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान।—कबीर (शब्द०)।

निपजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० निपजना] १. लाभ। मुनाफा। २. उपज। उ०—निश्चय, निधी, मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर। निपजी में साझी घना बाँटनहार कबीर।—कबीर (शब्द०)।

निपट—अव्य० [हिं० नि+पट] १. निरा। विशुद्ध। खाली। और कुछ नहीं। केवल। एकमात्र। उ०—निपटहि द्विज करि जानेसि मोहीं। मैं जस विप्र सुनावउँ तोहीं।—तुलसी (शब्द०)। २. सरासर। एकदम। बिलकुल। नितांत। बहुत अधिक। उ०—(क) आसे पासे जो फिरै निपट पिसावै सोय। कीला सों लागा रहै ताको विघ्न न होय।—कबीर (शब्द०)। (ख) भानुबंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।—तुलसी (शब्द०)। (ग) बाम्हन हुत इक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत ब्यापारी।—जायसी (शब्द०)। (घ) मैं तेहि बारहि बार मनायो। सिर सों खेल निपट जिउ लायो।—जायसी (शब्द०)।

निपटना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निबटना'।

निपटान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] निबटने की क्रिया या भाव। निबटान।

निपटाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निबटाना'।

निपटारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबटारा'।

निपटावा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबटावा'।

निपटेरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबटेरा'।

निपठ, निपठन—संज्ञा पुं० [सं०] अध्ययन। पठन [को०]।

निपतन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निपतित] अधःपतन। गिरना। गिराव। पतन।

निपतित—वि० [सं०] गिरा हुआ। पतित। अधःपतित।

निपत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युद्ध की भूमि। २. गीली चिकनी जमीन। ऐसी भूमि जिसपर पैर फिसले।

निपत्र—वि० [सं० निष्पत्र] पत्रहीन। ठूँठा। उ०—बिन गँठ वृक्ष निपत्र ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।—जायसी (शब्द०)।

निपनिया(पु)†—वि० [हिं० नि + पानी] १. पानी रहित। सूखा। उ०—पानी पिबो तो यहीं पिवो भाई आगे देस निपनिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२। २. निर्लज्ज। हया हीन।

निपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० निष्परिग्रह] दे० 'अपरिग्रह'। उ०—अघ निग्रह संग्रह धर्म कथा, निपरिग्रह साधन को गुन है।—केशव० अमी०, पृ० ११।

निपलाश—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा पेड़ जिसके पत्ते झड़ गए हों [को०]।

निपाँगुर—वि० [हिं० नि + पंगुल] १. लँगड़ा। २. अपाहिज। जिसके हाथ पैर न चलते हों।

निपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ज्यादा पक जाना [को०]।

निपाख(पु)—वि० [सं० निष्पक्ष] १. पंख से रहित। बिना पाँख का। २. पक्ष या सहायक विहीन। निष्पक्ष। उ०—गुननि पकरि लै निपाख करि छोरि देहु।—रसखान०, पृ० ५५।

निपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निपठ' [को०]।

निपात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतन। गिराव। पात। २. अधःपतन। ३. विनाश। उ०—और न कुछ देखै तन स्यामहि ताको करो निपातु। तू जो करै बात सोइ साँची कहा करौं तोहि मातु।—सूर (शब्द०)। ४. मृत्यु। क्षय। नाश। उ०—बनमाला पहिरावत स्यामहिं बार बार अंकवारि भरी घरि। कंस निपात करहुगे तुमही हम जानी यह बात सही परि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. शाब्दिकों के मत से वह शब्द जिसके बनने के नियम का पता न चले अर्थात् जो व्याकरण में दिए गए सामान्य नियमों के अनुसार निष्पन्न न होकर अव्युत्पन्न बना हो। ६. दूसरा सिरा। दूसरा भाग (को०)।

निपात(पु)[2]—वि० [हिं० नि + पात (= पत्ता) १. बिना पत्तों का। जिसमें पत्ते न हों। उ०—साँठिहि रहैं, साधि तन, निसँठहि आगरि भूख। बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।—जायसी (शब्द०)। २ पंख रहित। बिना पंख का। उ०—जेहि पंखी के निग्रर होइ कहै बिरह कै बात। सोई पंखी जाइ जरि, आखिर होइ निपात।—जायसी (शब्द०)।

निपात[3]—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार नहाने का स्थान।

निपातक—संज्ञा पुं० [सं०] पाप। कुकर्म [को०]।

निपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराने का कार्य। २. नाश। क्षय या ध्वंस करने का कार्य। ३. मारने का काम। वध करने का कार्य। ४. नीचे गिरना या उड़ते हुए नीचे की ओर आना (को०)। ५. व्याकरण में शब्द का निपात होना। अव्युत्पन्न रूप से शब्द का निष्पन्न होना (को०)।

निपातना(पु)—क्रि० स० [हिं० निपातन] १. गिराना। नीचे गिराना। उ०—(क) पिपर पात दुख झरे निपाते। सुख पलहा अपने दुख राते।—जायसी (शब्द०)। (ख) व्याकुल राउ शिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।—तुलसी (शब्द०)। २. नष्ट करना। काटकर गिराना। उ०—कहु लंकेस कहत किन बाता। केहि तव नासा कान निपाता।—तुलसी (शब्द०) ३. मारना। मार गिराना। वध करना। उ०—(क) चंदन बास निवारहु तुम कारण बन काटिया। जीवत जिय जनि मारहु मुए ते सबै निपातिया।—कबीर (शब्द०)। (ख) तैसहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।—तुलसी (शब्द०)। (ग) खोवत रह्यों तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी (शब्द०)।

निपाती[1]—वि० [सं० निपातिन्] १. गिरानेवाला। फेंकनेवाला। चलानेवाला। उ०—सायक निपाती चतुरंग के संघाती ऐसे सोहत मदाती अरिघाती उग्रसेन के।—गोपाल (शब्द०)। २. मारनेवाला। घातक।

निपाती[2]—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

निपाती(पु)[3]—वि० [हिं० नि + पाती] बिना पत्ते का। पत्रहीन। ठूँठा उ०—तेहि दुख भए पलास निपाती। लोहू बूड़ उठी होइ राती।—जायसी (शब्द०)।

निपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालाब। गड्ढा। खत्ता। २. कुएँ के पास दीवार घेरकर बनाया हुआ कुंड या खोदा हुआ गड्ढा जिसमें पशु पक्षियों आदि के पीने के लिये पानी इकट्ठा रहता है। ३. दूध दुहने का बरतन। ४. कूप। कुआँ (को०)। ५. पी जाना। सब पी जाना (को०)। ६. आश्रयस्थान। आश्रयस्थल (को०)।

निपाना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० निष्पद्यते; प्रा० निपज्जइ, हिं० निपजै] उत्पन्न करना। बनाना। उ०—मारवणी भगताबिया माझ राग निपाइ।—ढोला०, दू० १०९।

निपाना(पु)†[2]—क्रि० स० [हिं० लिपवाना] लेप कराना। गोबर पानी आदि से लेपकर भूमि को शुद्ध कराना। उ०—सुरै गायरो गोबर मँगाऊँ घर आँगणियो निपाऊँ। कंचन कलस बधाय सुरांने मोतियाँ चौक पुराऊँ।—राम० धर्म० पृ० १।

निपीड़क—वि० [सं० निपीडक] १. पीड़ा देनेवाला। दुःखदायक। २. मलने दलनेवाला। ३. निचोड़नेवाला। ४. पेरनेवाला।

निपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० निपीडन अथवा निष्पीडन] १. कष्ट पहुँचाने या पीड़ित करने का कार्य। पीड़ित करना। तकलीफ देना।

२. मलना दलना । ३. पसाना । पसेव निकालना । ४. पेरना । पेरकर निकालना (जैसे तेल निकाला जाता है) ।

निपीड़ना¹—संज्ञा स्त्री० [सं० निपीड़ना] दे० 'निपीड़न' (को०) ।

निपीड़ना²—क्रि० सं० [सं० निपीडन] १. दबाना । मलना दलना । उ०—भुजन भुजा भरि उरोजन उरहि मीड़ि कंठ कंठ सों निपीड़े रोग्यो हिय हियो है ।—देव (शब्द०) । २ कष्ट पहुँचाना । पीड़ित करना । ३. पेरना निचोड़ना । गारना ।

निपीड़ित—वि० [सं० निपीड़ित] १. दबाया हुआ । २. आक्रांत । ३. जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो । ४. पेरा हुआ । निचोड़ा हुआ । ५. आलिंगित (को०) ।

निपीत—वि० [सं०] १. अच्छी तरह पान किया हुआ । २. मग्न । डूबा हुआ । ३. पूर्णतः भुना हुआ । शोषित (को०) ।

निपीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीने की क्रिया (को०) ।

निपुड़ना—क्रि० अ० [सं० निष्पुट, प्रा० निप्पुड] (दाँत) खोलना । उघारना ।

निपुण—वि० [सं०] १. दक्ष । कुशल । प्रवीण । चतुर । कार्य करने में पटु । २. पूर्ण । पूरा (को०) । ३. ठीक (को०) ।

निपुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षता । कुशलता ।

निपुणाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० निपुण + आई (प्रत्य०)] निपुणता । दक्षता । कुशलता । चतुराई ।

निपुत्री—वि० [हिं० नि + पुत्री] निपूता । निःसंतान । उ०—(क) वो निपुत्री को घर में क्या सुख कि जिस बिना वह सदा अंधकार रहता है ।—सदल मिश्र (शब्द०) । (ख) जो नर ब्राह्मण हत्या कीन्हा । जन्म निपुत्री तेहि जग चीन्हा ।—विश्राम (शब्द०) ।

निपुन(पु)—वि० [सं० निपुण] दे० 'निपुण' ।

निपुनई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निपुण + ई (प्रत्य०)] निपुणता ।

निपुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निपुणता' । उ०—लघु लाग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।—मानस, १ । ६४ ।

निपुनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निपुणाई' उ०—पुर शोभा अवलोकि सुहाई । लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निपूत(पु)†—वि० [हिं० नि + पूत] [वि० स्त्री० निपूती] अपुत्र । पुत्रहीन । उ०—कीनो जिन रावण निपूतो यमहू ते यम कूते लेत मूँड़ आजहू ते न सिरात है ।—हनुमान (शब्द०) ।

निपूता—वि० [सं० निष्पुत्र, प्रा० निपुत्त] [वि०स्त्री० निपूती] जिसे पुत्र न हो । अपुत्र ।

निपेटी(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] भुक्खड़ । भूखी । आतुर । उ०—ओछी बड़ी हलराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ।—घनानंद, पृ० १३ ।

निपैद(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० नापैद] विलय । नाश । उ०—पैदा करत निपैद करत हो ।—जग० बानी, पृ० ३५ ।

निपोटा(पु)—वि० [हिं० नि+पोटा (=कूवत) । शक्तिहीन । असमर्थ । उ०—हे करतार हों तोसों कहौं कबहूँ नहिं दीजिए काहु के टोटो । और लिखो जनि काहु के भाग में मित्र के काज महीप निपोटो ।—राम० धर्म०, पृ० २६८ ।

निपोड़ना†—क्रि० स० [सं० निष्पुट, या निष्पीडन, प्रा० निप्पुड + हिं० निपोरना] खोलना । उघारना । (दाँत के लिये) ।

मुहा०—दाँत निपोड़ना = व्यर्थ हँसना ।

निफन(पु)¹ वि० [सं० निष्पन्न, प्रा० निष्फन्न] पूर्ण । पूरा । संपूर्ण ।

निफन²—क्रि० वि० पूर्ण रूप से । अच्छी तरह । उ०—जोते बिनु बोएं बिनु निफन निराए बिनु सुकृत सुखेत सुख सालि फूलि फरिगे । मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु लोगनि कों करिगे ।—तुलसी (शब्द०) ।

निफरना(पु)¹—क्रि० अ० [हिं० निफारना] चुभकर या धँसकर इस पार से उस पार होना । छिदकर आरपार होना । उ०—घायल सों घूमि रह्यो खड़गी घमंड भरो नेजा नोक लागी शीश कैकयी के नंद की । निफरि धँसी सो भूमि गोंडा गिरयो घूमि घूमि खासी रघुराज बाणी कही रघुनंद की ।—रघुराज (शब्द०) ।

निफरना(पु)²—क्रि० अ० [सं० नि + स्फुट या √ निष्फाण] खुलना । उद्घाटित होना । स्पष्ट होना । साफ होना । प्रकट होना ।

निफल(पु)—वि० [सं० निष्फल, प्रा० निष्फल] निरर्थक । निष्फल । व्यर्थ । उ०—(क) नाचै पंडुक मोर परेवा । निफल न जाय काहि की सेवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) निफल होहिं रावणसर कैसे । खल के सकल मनोरथ जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) ज्यों तिय सुरत समय सितकारा । निफल जाहिं ज्यौं बधिर भतारा ।—नंद० ग्रं०, पृ० ११२ ।

निफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता ।

निफाक—संज्ञा पुं० [अ० निफ़ाक़] १. विरोध । विद्रोह । वैर । २. फूट । भेद । बिगाड़ । अनबन ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

निफारना¹—क्रि० स० [हिं० नि+फारना] १. इस पार से उस पार तक छेद करना । आर पार करना । बेधना । २. इस पार से उस पार निकालना ।

निफारना(पु)²—क्रि० स० [सं० नि+स्फुट] खोलना । उद्घाटित करना । प्रकट करना । स्पष्ट करना । साफ करना ।

निफालन—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि । अवलोकन ।

निफोट—वि० [सं० नि+स्फुट] स्पष्ट । साफ साफ । उ०—सुन ले निफोट ओट वज्र की न बचै कोऊ लागे भेद चोट सावधान को अचानक ।—हनुमान (शब्द०) ।

निफोटक(पु)—वि० [हिं० निफोट] स्पष्ट । साफ । कै मिलि कर मेरो कह्यो कै कर मेरो घात । पाछे वचन संभारियो कहौं निफोटक बात ।—हनुमान (शब्द०) ।

निबंध—संज्ञा पुं० [सं० निबन्ध] १. बंधन । २. वह व्याख्या जिसमें अनेक मतों का संग्रह हो । ३. लिखित प्रबंध । लेख । रचनात्मक गद्य साहित्य की एक विधा । ४. गीत । ५. नीम का पेड़ । ६. आनाह रोग । पेशाब बंद होने की बीमारी । करक । ७. वह वस्तु जिसे किसी को देने का वादा कर लिया गया हो । ८. कौटिल्य के अनुसार सरकारी

आज्ञा । ६. प्रतिबंध । रोक (को०) । १०. संलग्न होना । संलग्नता (को०) । ११. बंधन या जोड़ने का कार्य (को०) । १२. कारण (को०) । १३. आधार । नींव (को०) ।

निबंधन—संज्ञा पुं० [सं० निबन्धन] [वि० निबद्ध] १. बंधन । उ०—तनु कंबु कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिए । अविनीत इंद्रिय निग्रही तिनके निबंधन जानिए ।—केशव (शब्द०) । २. व्यवस्था । नियम । बंधेज । ३. कर्तव्य । बंधन । ४. हेतु । कारण । ५. गाँठ । ६. वीणा या सितार की खूँटी । उपनाह । कान । ७. आश्रय । आधार (को०) ।

यौ०—निबंधन पुस्तक = रजिस्टर ।

निबंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निबन्धनी] १. बंधन । २. बेड़ी ।

निबंधा—संज्ञा पुं० [सं० निबन्धृ] १. लेखक । २. बाँधनेवाला (को०) ।

निबंधी—वि० [सं० निबन्धिन] १. निबंध करनेवाला । बाँधनेवाला । २. संलग्न । संबद्ध । ३. कारण रूप । आधार-स्वरूप (को०) ।

निब—संज्ञा स्त्री० [अं०] लोहे की चद्दर की बनी हुई चोंच जो अँगरेजी कलमों की नोक का काम देती है । जीभी । (यह ऊपर से खोंसी जाती है) ।

निबकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीब, नीम + कौड़ी] १. नीम का फल । निबौली । निबौरी । २. नीम का बीज ।

निबटना—क्रि० अ० [सं० निवर्तन, प्रा० निवट्टना] [संज्ञा निबटेरा, निबटान] १. निवृत्त होना । छुट्टी पाना । फुरसत पाना । फारिग होना । खाली होना । जैसे, सब कामों से निबटना । २. समाप्त होना । पूरा होना । किए जाने को बाकी न रहना । भुगतना । जैसे, काम निबटना । ३. निर्णीत होना । तै होना । अनिश्चित दशा में न रह जाना । जैसे, झगड़ा निबटना । ४. चुकना । खतम होना । न रह जाना । उ०—हे मुँदरी तेरो सुकृत मेरो ही सो हीन । फल सों जान्यो जात है मैं गिरनै कर लीन । अधिक मनोहर असन मख उन अंगुरिन की पाय । गिरी फेर तू आय अब पुन्न गयो निबटाय ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । †५. शौच आदि से निवृत्त होना ।

निबटान—संज्ञा स्त्री० [हिं०] निबटने की क्रिया या भाव ।

निबटाना—क्रि० स० [हिं० निबटना] १. पूरा करना । समाप्त करना । खतम करना । करने को बाकी न छोड़ना जैसे, काम निबटाना । २. भुगताना । चुकाना । बेबाक करना । जैसे, कर्ज निबटाना । ३. तै करना । निर्णीत करना । झंझट न रखना । जैसे, झगड़ा निबटाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना—लेना ।

निबटारा, निबटाव—संज्ञा स्त्री० [हिं० निबटना] १. निबटने की भावना या क्रिया । निबटेरा । २. झगड़े का फैसला । निर्णय ।

निबटेरा—संज्ञा पुं० [हिं० निबटना] १. निबटने का भाव या क्रिया । छुट्टी । २. समाप्ति । ३. झगड़े का फैसला । निश्चय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निबड़(पु)—वि० [सं० निविड़] घना ।

निबड़ना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निबटना' ।

निबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा घड़ा ।

निबद्ध¹—वि० [सं०] १. बँधा हुआ । २. निरुद्ध । रुका हुआ । ३. ग्रथित । गुथा हुआ । ४ बैठाया हुआ । जड़ा हुआ । निवेशित । ५. लिखा हुआ । प्रणीत । रचित (को०) । ६. आवृत (को०) ।

निबद्ध²—संज्ञा पुं० वह गीत जिसे गाते समय अक्षर, ताल, मान, गमक, रस आदि के नियमों का विशेष ध्यान रखा जाय ।

निबर—वि० [हिं०] दे० 'निर्बल' ।

निबरक(पु)—वि० [हिं० निबर + क (प्रत्य०)] निर्बल । निरीह । उ०—निबरक सुत ल्यो कोरा । राम मोहि मारि कलि विष बोरा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २१३ ।

निबरना—क्रि० अ० [सं० निवृत्त, प्रा० निविट्ठ] १. बँधी, फँसी या लगी वस्तु का अलग होना । छूटना । २. मुक्त होना उद्धार पाना । बच निकलना । पार पाना । उ०—(क) पाप के उराहनो, उराहनो न दीबौ मोहिं कालिकाला काशीनाथ कहे निबरत हौं ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कब लौं, कहो पूजि निबरैगे बचिहैं बैर हमारे ?—सूर (शब्द०) । (ग) कैसे निबरै निबल जन करि सबलन सों बैर ।—सभाविलास (शब्द०) । ३. छुट्टी पाना । अवकाश पाना । फुरसत पाना । खाली होना । निवृत्त होना । उ०—हरि छबि जल जब ते परे तब तें छिन निबरे न । भरत ढरत, बूड़त, तरत रहत घरी लौं नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ४. (काम) पूरा होना । समाप्त होना । भुगतना । सपरना । निबटना । चुकना । उ०—(क) सूरदास बिनती कहा बिनवै दोषनि देह भरी । आपन बिरद सँभारोगे तौ यामें सब निबरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन । भीजे तन दोऊ कँपै क्यौं हूँ जप निबरे न ।—बिहारी (शब्द०) । ५. निर्णय होना । तै होना । फैसला होना । ६. एक में मिली जुली वस्तुओं का अलग होना । बिलग होना । उ०—नैना भए पराए चेरे । नंदलाल के रंग गए रँगि अब नाहीं बस मेरे । जदपि जतन किए जुगवति हौं श्यामल शोभा घेरे । तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निबरत नाहिं निबेरे ।—सूर (शब्द०) । ७. उलझन दूर होना । सुलझना । फँसाव या अड़चन दूर होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

८. जाता रहना । दूर होना । न रह जाना । खतम होना । उ०—अब नीके कै समुझि परी । जिन लगि हुती बहुत उर आसा सोऊ बात निबरी ।—सूर (शब्द०) । ६. खतम होना । मिट जाना । खेत रहना । समाप्त होना । उ०—बरी एक भारत भा, भा असवारन मेल । जूझि कुवर सब निबरे गोरा रहा अकेल ।—जायसी ग्रं०, पृ० २६१ ।

निबर्हण¹—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । नष्ट करने की क्रिया या भाव ।

निबर्हण²—वि० विनाशक । नष्टकारक ।

निबलⓅ—वि० [सं० निर्बल] निर्बल। दुर्बल। उ०—कैसे निबहैं निबल जन करि सबलन सों बैर।—सभाविलास (शब्द०)।

निबलई, निबलाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निबल] निर्बलता।

निबहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निवह] समूह। झुंड। दे० 'निवह'। उ०—मनहु उडगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेष।—तुलसी (शब्द०)।

निबहना—क्रि० अ० [हिं० निबाहना] १. पार पाना। निकलना। बचना। छुट्टी पाना। छुटकारा पाना। उ०—(क) मेरे हठ क्यों निबहन पैहौ ? अब तो रोकि सबनि को राख्यो कैसे कै तुम जैहौ ?—सूर (शब्द०)। (ग) कैसे निबहैं निबल जन करि सबलन सों बैर।—सभाविलास (शब्द०)। २. निर्वाह होना। बराबर चला चलना। किसी स्थिति, संबंध आदि का लगातार बना रहना। पालन या रक्षा होना। जैसे, साथ निबहना, मित्रता निबहना, प्रीति निबहना। उ०—(क) महमद बारिउ मीत मिलि भए जो एकहि चित्त। यहि जग साथ जो निबहा ओहि जग बिछुरहि कित्त।—जायसी (शब्द०)। (ख) काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई। जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. बराबर होता चलना। पूरा होना। सपरना। जैसे,—यहाँ का काम तुमसे नहीं निबहेगा। ४ किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना। पालन होना। पूरा होना। चरितार्थ होना। जैसे,—बचन निबहना, प्रतिज्ञा निबहना।

संयो० क्रि०—जाना।

निबहुर†—संज्ञा पुं० [हिं० नि + बहुरना] वह स्थान जहाँ से जाकर कोई न लौटे। यमद्वार।

निबहुरा†—वि० [हिं० नि + बहुरना] जो चला जाय और न लौटे। सदा के लिये चला जानेवाला। (गाली)।

निबाजⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज] दे० 'नमाज'। उ०—बाँग निबाज न होय जँह, स्रवन कथा हरि बेस।—ह० रासो, पृ० ५६।

निबाह—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] १. निबाहने की क्रिया या भाव। रहन। रहायस। गुजारा। कालक्षेप। किसी स्थिति के बीच जीवन व्यतीत करने का कार्य। जैसे,—यहाँ तुम्हारा निबाह नहीं हो सकता। उ०—(क) उघरहिं अंत न होय निबाहू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लोक लाहु परलोक निबाहू।—तुलसी (शब्द०)। २. लगातार साधन। (किसी बात को) चलाए चलने या जारी रखने का कार्य। किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार। संबंध या परंपरा की रक्षा। जैसे,—(क) प्रीति का निबाह, दोस्ती का निबाह। (ख) काम तो मैंने अपने ऊपर ले लिया पर निबाह तुम्हारे हाथ है। ३. चरितार्थ करने का कार्य। पूरा करने का कार्य। पालन। साधन और पूर्ति। जैसे, प्रतिज्ञा का निबाह। ४. छुटकारे का ढंग। बचाव का रास्ता। जैसे,—बड़ी अड़चन में फंसे हैं, निबाह नहीं दिखाई देता।

निबाहक—वि० [सं० निर्वाहक] निबाह करनेवाला।

निबाहना—क्रि० स० [सं० निर्वाहन] १. निर्वाह करना। (किसी बात को) बराबर चलाए चलना। जारी रखना। बनाए रखना। संबंध या परंपरा की रक्षा करना। जैसे, नाता निबाहना, प्रीति निबाहना, मित्रता निबाहना, धर्म निबाहना। उ०—(क) पहिले सुख नेहहि जब जोरा। पुनि होय कठिन निबाहत ओरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) निबाहो बाँह गहे की लाज।—सूर (शब्द०)। २. पूरा करना। पालन करना। चरितार्थ करना। किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना। जैसे, वचन निबाहना। उ०—यह परतिज्ञा जो न निबाहौं। तो तनु अपनो पावक दाहौं।—सूर (शब्द०)। ३. निरंतर साधन करना। बराबर करते जाना। सपराना। जैसे,—अभी काम न छोड़ो थोड़े दिन और निबाह दो।

संयो० क्रि०—देना।

निबिड़—वि० [सं० निबिड] दे० 'निविड़'।

निबुआⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नीबू'।

निबुकनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० निर्मुक्त, प्रा० निम्मुत्त, या सं० निर्भुक्त] १. छुटकारा पाना। छूटना। बंधन से निकलना। उ०—(क) निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुग्रीवहु कै मुरछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती।—तुलसी (शब्द०)। (ग) दीठि निसेनी चढ़ि चल्यो ललचि सुचित मुख गोर। चिबुक गड़ारे खेत मैं निबुकि गिरयो चित चोर।—शृं० सत० (शब्द०)। २. बंधन आदि का खिसकना। ३. समाप्त होना। खत्म होना। संपन्न होना।

संयो० क्रि०—जाना।

निबेड़नाⓅ—क्रि० स० [सं० निवृत्त, प्रा० निविड्ड ?] १. (बंधन आदि) छुड़ाना। उन्मुक्त करना। बंधी, फँसी, या लगी वस्तु को अलग करना। २. परस्पर मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। बिलगाना। छाँटना। चुनना ३. उलझन दूर करना। सुलझाना। लगाव फँसाव दूर करना। ४. निबटाना। निर्णय करना। तै करना। फैसला करना। ५. छोड़ना। हटाना। दूर करना। अलग करना। ६. पूरा करना। निबटाना। सपराना। भुगताना।

निबेड़ाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० निबेड़ना] १. छुटकारा। मुक्ति। २. बचाव। उद्धार। ३. एक में मिली जुली वस्तुओं के अलग होने की क्रिया या भाव। बिलगाव। छाँट। चुनाव। ४. सुलझाने की क्रिया या भाव। उलझन या फँसाव दूर होना। ५. त्याग। ६. निबटेरा। भुगतान। समाप्ति। चुकती। ७ निर्णय। फैसला।

निबेरनाⓅ—क्रि० स० [सं० निवृत्त, प्रा० निविड्ड अथवा हिं०] १. (बंधन आदि) छुड़ाना। उन्मुक्त करना। बँधी, फँसी या लगी वस्तु को अलग करना। उ०—औरन को तोहि का परी अपनी आप निबेर।—कबीर (शब्द०)। २. एक में मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करना। बिलगाना। छाँटना।

चुनना। उ०—(क) नैना भए पराए चेरे। नंदलाल के रंग गए रँगि अब नाहीं बस मेरे। यद्यपि जतन किए जुगवति हौं, श्यामल शोभा घेरे। तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निबरत नाहिं निबेरे।—सूर (शब्द०)। (ख) आगे भए हनुमान पाछे नील जांबवान लंका के निसंक सूर मारे हैं निबेरि कै।—हनुमान (शब्द०)। ३. उलझन दूर करना। सुलझाना। फँसाव या अड़चन दूर करना। ४. निर्णय करना। तै करना। फैसला करना। उ०—(क) जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो। तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रण करि के झूठो करि डारत सकल धरम तेहि केरो। जात रसातल जनु ते तुरतहिं वेद पुरान निबेरो।—रघुराज (शब्द०)। ५. छोड़ना। त्यागना। तजना। उ०—मारी मरै कुसंग की ज्यों केरे ढिग बेर। वह हालै वह चीरइ साकट संग निबेर।—कबीर (शब्द०)। ६. दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—मिटै न बिपति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो।—तुलसी (शब्द०)। ७. (काम) पूरा करना। निबटाना। सपराना। भुगताना। उ—प्रमुदित मुनिहि भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी।—तुलसी (शब्द०)।

निबेरा—संज्ञा पुं० [हिं० निबेरना] १. छुटकारा। मुक्ति। उद्धार। बचाव। उ०—व्याकुल प्रति भवजाल बीच परि प्रभु के हाथ निबेरो।—सूर (शब्द०)। २. मिली जुली वस्तुओं के अलग अलग होने कि क्रिया या भाव। बिलगाव। छाँट। चुनाव। ३. सुलझने की क्रिया या भाव। उलझन या फँसाव का दूर होना। ४. निर्णय। फैसला। निबटेरा। उ०—(क) जैसे बरत भवन तजि भजिए तैसहिं गए फेरि नहीं हेरयो। सूर श्याम रस रसे रसीले पाको करे निबेरो।—सूर (शब्द०)। (ख) ब्राह्मण नृपति युधिष्ठिर केरो। जानै सब गुन ज्ञान निबेरो।—सबल (शब्द०)। ५. (काम का) निबटेरा। भुगतान। समाप्ति। पूर्ति।

निबेसित(पु)—वि० [सं० निवेशित] दे० 'निवेशित'।

निबेहना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निबेरना'।

निबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. समझना। सीखना। जानना। २. बतलाना। समझाना [को०]।

निबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] समझने या बतलाने की क्रिया। निबोध [को०]।

निबोली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीम] दे० 'निबौली'। उ०—पाप गुलीचा धरम निबोली देखि देखि फल चीख रे।—दे० बानी, पृ० ४०।

निबौरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निमौरी] दे० 'निबौली'। उ०—(क) दाख छाड़ि कै तजि कटुक निबौरी को अपने मुख लेहै। गुणनिधान तजि सूर साँवरे को गुणहीन निबैहै।—सूर (शब्द०)। (ख) तो रस राच्यो आन बस कह्यो कुटिल मति कूर। जीभ निबौरी क्यों लगै बौरी चाखि अँगूर।—बिहारी (शब्द०)।

निबौली—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब + फल या वर्तुल] निबकौरी। नीम का फल।

निभ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। प्रभा। चमक दमक। २. छल कपट (को०)। ३. ब्याज। बहाना (को०)। ४. प्राकट्य। अभिव्यक्ति (को०)।

निभ²—वि० तुल्य। समान। उ०—क्षतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला।—तुलसी (शब्द०)।

निभना—क्रि० अ० [हिं० निबहना] १. पार पाना। निकलना। बचना। छुट्टी पाना। छुटकारा पाना। २. निर्वाह होना। बराबर चला चलना। जारी रहना। लगातार बना रहना। संबंध, परंपरा आदि की रक्षा होना। जैसे, (क) साथ निभना, प्रीति निभना, मित्रता निभना, नाता निभना। (ख) इनकी उनकी मित्रता कैसे निभेगी? ३. किसी स्थिति के अनुकूल जीवन व्यतीत होना। गुजारा होना। रहायस होना। जैसे,—(क) तुम वहाँ निभ नहीं सकते। (ख) जैसे इतने दिन निभा वैसे ही थोड़े दिन और सही। ४. बराबर होता चलना। पूरा होना। सपरना। भुगतना। जैसे,—यहाँ का काम तुमसे नहीं निभेगा। ५. किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना। पालन होना। पूरा होना। चरितार्थ होना। जैसे, वचन निभना, प्रतिज्ञा निभना। दे० 'निबहना'। ६. समाप्त होना। बुझना। उ०—चलत पथ, चरण वितत, दीप निभा, हवा लगी।—बेला, पृ० ५०।

संयो० क्रि०—जाना।

निभरम(पु)¹—वि० [सं० निर्भ्रम] भ्रमरहित। जिसे या जिसमें किसी प्रकार की शंका न हो। जिसे या जिसमें कोई खटका न हो।

निभरम(पु)²—क्रि० वि० निःशंक। बेखटके। बेधड़क।

निभरमा(पु)—वि० [सं० निर्भ्रम] जिसका परदा ढका न हो। जिसकी कलई खुल गई हो। जिसकी धाप या मर्यादा न रह गई हो। जिसका विश्वास उठ गया हो।

निभरमी(पु)—वि० [हिं० निभरम + ई] दे० 'निभरम¹'। उ०—ढूंढवाई गाड़ी कहूं और। नगदी माम निभरमी ठौर।—अर्ध०, पृ० २४।

निभरोस†—वि० [हिं० नि+भरोसा] [संज्ञा निभरोसा] जिसे भरोसा न हो। निराश। हताश।

निभरोसी(पु)†—वि० [हिं० नि (=नहीं)+भरोसा] १. जिसे कोई भरोसा न रह गया हो। निराश। हताश। २. जिसे किसी का आसरा भरोसा न हो। निराश्रय। निराधार। बिना सहारे का। हीन। उ०—कीन्हेसि कोई निभरोसी कीन्हेसि कोई बरियार। छारहिं ते सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।—जायसी (शब्द०)।

निभाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबाह'।

निभागा(पु)—वि० [हिं० नि+भाग, सं० भाग्य] अभागा। बदकिस्मत।

निभाना—क्रि० स० [हिं० निबाहना] १. निर्वाह करना। (किसी बात को) बराबर चलाए चलना। बनाए और जारी रखना। संबंध या परंपरा रक्षित रखना। जैसे, नाता निभाना, प्रीति निभाना, धर्म निभाना। २. किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना। चरितार्थ करना। पूरा करना। पालन करना। जैसे, प्रतिज्ञा निभाना, वचन निभाना। उ०—सारंग बचन कह्यो करि हरि को सारंग वचन निभावति।—सूर (शब्द०)। ३. निरंतर साधन करना। बराबर करते जाना। भुगताना। चलाना। भुगताना। जैसे,—अभी काम न छोड़ो, थोड़े दिन और निभा दो।

संयो० क्रि०—देना।

निभार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निभालन] देखना। वर्णन। उ०—जमुन तट भए विम पसार। राधे गेनदे खेलन देखि निभार।—विद्यापति, पु० १२६।

निभालन—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन। प्रत्यक्षीकरण [को०]।

निभाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] दे० 'निबाह'। उ०—मृतक छोह निभाव उर धारो।—कबीर सा०, पु० ६।

निभाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] दे० 'निबाह'। उ०—मेछाँ राह निभाह कज, दिल्लो औरंग साह। ज्यूं सामंद्र अआद मूं यूं रहियो सम दाह।—रा० रू०, पु० १७।

निभूत—वि० [सं०] भूत। व्यतीत। बीता हुआ।

निभृत—वि० [सं०] १. धरा हुआ। रखा हुआ। धृत। २. निश्चल। अटल। ३. गुप्त। छिपा हुआ। ४. बंद किया हुआ। ५. निश्चित। स्थिर। ६. नम्र। विनीत। ७. शांत। अनुद्विग्न। धीर। ८. निर्जन। एकांत। सूना। उ०—दो काठों की संधि बीच उस निभृत गुफा में अपने। अग्निशिखा बुझ गई, जागने पर जैसे सुख सपने।—कामायनी, पु० १३६। ९. भरा हुआ। पूर्ण। युक्त। (समास में प्रयुक्त)। १०. अस्त होने के निकट (सूर्य या चंद्रमा) ११. धीर। धैर्यशाली (को०)। १२. आवृत। आच्छादित (को०)। १३. धीमा। मंद। (को०)।

यौ०—निभृतात्मा=अविचल। धीर।

निभृत—संज्ञा पुं० नम्रता। विनीतता [को०]।

निभै(पु)—वि० [सं० निर्भय] दे० 'निर्भय'। उ०—करनहरा दुरनेस जीवक्कन, तेजल देवै आव निभै तन।—रा० रू०, पु० ३१२।

निभ्रांत(पु)—वि० [सं० निर्भ्रान्ति] दे० 'निभ्रांत'।

निमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] [वि० निमंत्रित] १. किसी कार्य के लिये नियत समय पर आने के लिये ऐसा अनुरोध जिसका अकारण पालन न करने से दोष का भागी होना पड़ता है। बुलावा। आह्वान।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

२. भोजन आदि के लिये नियत समय पर आने का अनुरोध। खाने का बुलावा। न्योता।

क्रि० प्र०—करना। देना।

विशेष—'आमंत्रण' और 'निमंत्रण' में यह भेद है कि निमंत्रण का पालन न करने पर दोष का भागी होना पड़ता है।

निमंत्रणपत्र—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रणपत्र] वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुष से भोज, उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये अनुरोध किया गया हो।

निमंत्रना(पु)—क्रि० स० [सं० निमन्त्रण] न्योता देना। उ०—पुनि पुनि नृपहिं निमंत्रेउ मुनिवर। माग्यो नृप तब आसन मुनि कर।—रघुराज (शब्द०)।

निमंत्रित—वि० [सं० निमंत्रित] जो निमन्त्रित किया गया हो। जिसे न्योता दिया गया हो। आहूत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निम—संज्ञा पुं० [सं०] शलाका। शंकु। कील।

निमक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नमक'।

यौ०—निमकहराम(पु)=दे० 'नमकहराम'। निमकहरामी(पु)=(१) दे० 'नमकहरामी'। (२) दे० 'नमकहराम'। उ०—चाकर रहै हुजूर होइ ना निमकहरामी।—पलटू०, पु० ४५।

निमकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमक] १. नीबू का अचार। २. घी में तली हुई मैदे की मोयनदार नमकीन टिकिया।

निमकौड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीम] दे० 'निबकौरी', 'निबौली'।

निमग्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निमग्ना] १. डूबा हुआ। मग्न। २. तन्मय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निमछड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नि+मच्छड़] ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो। अवकाश। फुरसत। छुट्टी।

निमज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र आदि जलाशयों में डुब्बी लगानेवाला। गोते मारकर समुद्र आदि के नीचे की चीजों को निकालकर जीविका करनेवाला।

निमज्जथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोता लगाना। डूबने की क्रिया। २. सोना। शयन करना [को०]।

निमज्जन—संज्ञा पुं० [सं०] डूबकर किया जानेवाला स्नान। अवगाहन। उ०—कतहुं निमज्जन कतहुं प्रनामा। कतहुं बिलोकत मन अभिरामा।—मानस, २। ३११।

निमज्जना(पु)—क्रि० अ० [सं० निमज्जन] डूबना। गोता लगाना। अवगाहन करना। उ०—(क) सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देखि मिटे अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)।

निमज्जित—वि० [सं०] १. डूबा हुआ। मग्न। निमग्न। २. स्नात। नहाया हुआ।

निमटना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निबटना'।

निमटाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निबटाना'।

निमटेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबटेरा'।

निमड़ना(पु)—क्रि० अ० [सं० निवृत्त] चुकना। समाप्त होना। उ०—पोधादार बोल्यो आँखि पैसो तो निमड़ि गो।—शिखर०, पु० ४८।

निमता(पु)—वि० [हिं० नि + माता] जो माता न हो। जो उन्मत्त न हो। उ०—माते निमते गरजहि बाँधे। निसि दिन रहहिं महावत काँधे।—जायसी (शब्द०)।

निमद—संज्ञा पुं० [सं०] मंद स्वर में किया गया उच्चारण जो स्पष्ट हो [को०]।

निमन(पु)—वि० [हिं०] समान। उ०—जमीन है जो गाजर की जड़ के निमन। व पानी में ज्यों के कँवल के निमन।—दक्खिनी०, पृ० ३३७।

निमय—संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुविनिमय। पदार्थों का अदल बदल।

विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गो, तिल, दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन, रेशम आदि पदार्थों का मुद्रा लेकर विक्रय न करें। यदि उनको ऐसा करने की जरूरत ही पड़े तो वे विनिमय कर लें। अन्नादि का अन्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही बदला किया जाय। नमक तथा पक्वान्न के लिये यह नियम नहीं है। कच्चा पदार्थ देकर पक्वान्न लिया जाय। तिलों के क्रय विक्रय में धान्य के मदल ही नियम हैं।

निमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो मध्यभारत में होती है। बरही। बँगई।

निमष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निमिष] दे० 'निमिष'। उ०—निमष एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ।—दादू०, पृ० ३९।

निमस्कार†—संज्ञा पुं० [सं० नमस्कार] दे० 'नमस्कार'। उ०—ग्रंथकरता गुरु कूं भी इष्ट देवता सु अभेद करिकें, ग्रंथ की विघनता दूरि करिबे के हेत बहुरि निमस्कार करत है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

निमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज] मुसलमानों के मत के अनुसार ईश्वर की आराधना जो दिनरात में पाँच बार की जाती है। इसलाम मत के अनुसार ईश्वरप्रार्थना।

क्रि० प्र०—गुजारना।—पढ़ना।

निमाजगह(पु)‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमाजगाह] नमाज पढ़ने की जगह। नमाजगाह। उ०—दारिगह, बारिगह निमाजगह खोआरगह खोरम।—कीर्ति०, पृ० ४०।

निमाजबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० नमाजबंद] कुश्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ के दाहिनी ओर बैठकर उसकी दाहिनी कलाई को अपने दाहिने हाथ से खींचा जाता है और फिर अपना बायाँ पैर उसकी पीठ की ओर से लाकर उसकी बाहिनी भुजा को इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह चूतड़ के बीचोबीच आ जाती है। इसके बाद उसके दाहिने अँगूठे को अपने दाहिने हाथ से खींचते हुए बाँए हाथ से उसकी जाँघिया पकड़कर उसे उलटकर चित कर देते हैं।

विशेष—इस पेच के विषय में प्रसिद्ध है कि इसके आविष्कर्ता इसलामी मल्लविद्या के आचार्य अली साहब हैं। एक बार किसी जंगल में एक दैत्य से उन्हें मल्लयुद्ध करना पड़ा। उसे नीचे तो वे ले आए, पर चित करने के लिये समय न था, क्योंकि नमाज का समय बीत रहा था। इसलिये उन्होंने उसे इस प्रकार बाँधा कि उसे उसी स्थिति में रखते हुए नमाज पढ़ सकें। जब वे खड़े होते तब उसे भी खड़ा होना और जब बैठते या झुकते तब बैठना या झुकना पड़ता। यही इसका निमाजबंद नाम पड़ने का कारण है।

निमाजी—वि० [फ़ा० नमाज] १. जो नियमपूर्वक नमाज पढ़ता हो। २. दीनदार। धार्मिक (मुसलमान)।

निमाणी(पु)†—वि० [हिं० निमानी] मान से रहित। सरल चित्तवाला। विनीत। दे० 'निमाना'। उ०—सहजे रहे निमाणी सुता। नानक कहै सोई अवधूता।—प्राण०, पृ० १०१।

निमान(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० निम्न = गड्ढा (वेद); या निपान] १. नीचा स्थान। गड्ढा। २. जलाशय। उ०—खोजहुँ दंडक जनस्थाना। सैल सिखर सर सरित निमाना।—(शब्द०)।

निमान[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. माप। २. कीमत। मूल्य [को०]।

निमाना—वि० [सं० निम्न] [वि०स्त्री० निमानी] १. नीचा। ढालुआँ। नीचे की ओर गया हुआ। उ०—फिरत न पाछे नीर ज्यों भूमि निमानी जाय। सो गति मो मन की भई कीजे कौन उपाय।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०)। २. नम्र। विनीत। सरल स्वभाव का। सीधा सादा। भोलाभाला। ३. दब्बू।

निमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक ऋषि जो दत्तात्रेय के पुत्र थे। २ राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। इन्हीं से मिथिला का विदेह वंश चला। उ०—भए विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि एक बार महाराज निमि ने सहस्रवार्षिक यज्ञ कराने के लिये वशिष्ठ जी को बुलाया। वशिष्ठ जी ने कहा मुझे देवराज इंद्र पहले से ही पंचशत वार्षिक यज्ञ में वरण कर चुके हैं। उनका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ करा सकूँगा। वशिष्ठ के चले जाने पर निमि ने गोतमादि ऋषियों को बुलाकर यज्ञ करना प्रारंभ किया। इंद्र का यज्ञ हो जाने पर जब वशिष्ठ जी देवलोक से आए तब उन्हें मालूम हुआ कि निमि गौतम को बुलाकर यज्ञ कर रहे हैं। वशिष्ठ जी ने निमि के यज्ञमंडप में पहुँचकर राजा निमि को शाप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा। वशिष्ठ के शाप देने पर राजा ने भी वशिष्ठ को शाप दिया कि आपका भी शरीर न रहेगा। दोनों का शरीर छूट गया। वशिष्ठ जी तो अपना शरीर छोड़कर मित्रावरुण के वीर्य से उत्पन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति पर देवताओं ने निमि को फिर उसी शरीर में रखकर अमर कर देना चाहा पर राजा निमि ने अपने छोड़े हुए शरीर में जाना नहीं चाहा और देवताओं से कहा कि शरीर के त्यागने में मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं फिर शरीर नहीं चाहता। देवताओं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनको मनुष्यों की आँखों की पलक पर जगह दी। उसी समय से निमि विदेह कहलाए और उनके वंशवाले भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

३. आँखों का मिचना। निमेष।

निमिख—संज्ञा पुं० [सं० निमिष] दे० 'निमिष'।

निमित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हेतु। कारण। २. चिह्न। लक्षण। ३. शकुन। सगुन। ४. ब्याज। बहाना (को०)। ५. उद्देश्य। फल की ओर लक्ष्य। जैसे, पुत्र के निमित्त यज्ञ करना।

यौ०—निमित्तविद = शकुनशास्त्र का ज्ञाता। ज्योतिषी। निमित्तशास्त्र = शकुन अपशकुन आदि को बतानेवाला शास्त्र।

निमित्तक¹—वि० [सं०] किसी हेतु से होनेवाला। जनित। उत्पन्न। उ०—उदर निमित्तक बहुकृत वेषा।—तुलसी (शब्द०)।

निमित्तक²—संज्ञा पुं० चुंबन का एक भेद। (कामसूत्र)।

निमित्तकारण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी सहायता और कर्तृत्व से कोई वस्तु बने। जैसे, घड़े के बनने के निमित्त कारण कुम्हार चाक, दंड, सूत्र इत्यादि। (न्याय शास्त्र)। विशेष—दे० 'कारण'।

निमित्तकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] काक। कौआ (को०)।

निमिराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. निमिवंशी राजा जनक। उ०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात। बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृशगात।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० 'निमि'।

निमित्तावध—संज्ञा पुं० [सं०] बाँधने आदि निमित्त से होनेवाला मरण। जैसे, गाय आदि का (को०)।

निमिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँखों का ढँकना। पलकों का गिरना। आँख मिचना। निमेष। २. उतना काल जितना पलक गिरने में लगता है। पलक मारने भर का समय। ३ सुश्रुत के अनुसार एक रोग जो पलक पर होता है। ४. विष्णु का एक नाम (को०)। ५. फूल का संपुटित होना या बंद होना (को०)।

निमिषक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नैमिषारण्य।

निमिषांतर—संज्ञा पुं० [सं० निमिष + अन्तर] पलक मारने भर का व्यवधान या अंतर (को०)।

निमिषित—वि० [सं०] निमीलित। मिचा हुआ।

निमीलन—संज्ञा पुं० [सं०] १ पलक मारना। निमेष। उ०—नेत्र निमीलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने।—कामायनी, पृ० २३। २ मरण। ३. पलक मारने भर का समय। पल। क्षण। ४. ज्योतिष के अनुसार पूर्ण या खग्रास ग्रहण (को०)।

निमीला, निमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख की झपक। निमीलन। २. ब्याज। छल। ३. देखकर अनदेखा करना (को०)।

निमीलित—वि० [सं०] १. बंद। ढका हुआ। २. मृत। मरा हुआ। ३. सुप्त। जड़ीभूत (को०)। ४. लुप्त। गायब। ५. अंधकाराच्छन्न। अंधकार में निमग्न (को०)।

निमुछिया†—वि० [हिं० नि + मूछ + इया (प्रत्य०)] बिना मूँछवाला। उ०—यद्यपि उसकी वह उम्र बीत चुकी थी जिस उम्र के निमुछिये मुँडे से दूल्हे हमारे समाज में बड़े उत्साह से देखे जाते हैं।—शराबी, पृ० २१।

निमुहाँ—वि० [हिं० नि (= नहीं) + मुँह] [वि० स्त्री० निमुहीं] १. जिसे बोलने का मुँह या साहस न हो। २. न बोलनेवाला। कम बोलनेवाला। चुपका।

निमूँद(पु)¹—वि० [हिं० मुँदना] मुँदा हुआ। मुद्रित। बंद। उ०—कोड़ा आँसु बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल। कीने बदन निमूँद, दृग मलिंग डारे रहत।—बिहारी र०, दो० २१०।

निमूँद(पु)²—वि० [हिं० नि (= नहीं) + मुँदना] जो मुँदा न हो। खुला।

निमूल—वि० [सं०] १. मूलरहित। २. प्रकाशन।

निमेख—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निमेष'।

निमेट(पु)†—वि० [हिं० नि + मिटना] न मिटनेवाला। बना रहनेवाला। उ०—काहु कहौं हौं ओहि सों जेइ दुख कीन्ह निमेट। तेहि दिन आगि करै वह जेहि दिन होइ सो भेंट।—जायसी (शब्द०)।

निमेय—संज्ञा पुं० [सं०] विनिमय। (वस्तुओं की) अदला बदली (को०)।

निमेरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० निबटेरा] दे० 'निबटेरा'। उ०—नीर छीर का मरम ना जानहि केहि बिधि होइ निमेरा।—सं० दरिया, पृ० १०६।

निमेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलक का गिरना। आँख का झपकना। उ०—(क) कहा करौं नीके करि हरि को रूप रेख नहिं पावति। संगहि संग फिरति निसि बासर नैन निमेष न लावति।—सूर (शब्द०)। (ख) मो डर ते डरपै सुरराजहु सोवत नैन लगाय निमेषै।—हनुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. पलक मारने भर का समय। पलक के स्वभावतः उठने और गिरने के बीच का काल। उतना वक्त जितना पलकों के उठकर फिर गिरने में लगता है। पल। क्षण। ३. आँख का एक रोग जिसमें आँखें फड़कती हैं। ४. एक यक्ष का नाम (महाभारत)।

यौ०—निमेषद्युत्, निमेषरुच् = जुगनू।

निमेषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलक। २. खद्योत। जुगनू।

निमेषकृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

निमेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पलक गिरना। आँख मुँदना।

निमोची—संज्ञा स्त्री० [सं०] राक्षस विशेष।

निमोना—संज्ञा पुं० [सं० नवान्न] चने या मटर के पिसे हुए हरे दानों को हलदी मसाले के साथ घी में भूनकर बनाया हुआ रसेदार व्यंजन। उ०—ककरी, कचरी औ कचनारयो। सरस निमोननि स्वाद सँवारयो।—सूर (शब्द०)। (ख) बहुत मिरिच दै कियो निमोना। बेसन के दस बीसक दोना।—सूर (शब्द०)।

निमोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नवान्न] वह दिन जब ईख पहले पहल काटी जाती है।

निम्न—वि० [सं०] १. नीचा। २. गहरा। गंभीर।

यौ०—निम्नवर्ग = समाज का निचला या पिछड़ा हुआ वर्ग।

निम्नग—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे जानेवाला।

निम्नगत—संज्ञा पुं० [सं०] नीचा स्थान [को०]।

निम्नगा—संज्ञा पुं० [सं०] नदी।

निम्ननाभि—वि० [सं०] दुबला पतला। कृश [को०]।

निम्नयोधी—वि० [सं० निम्नयोधिन्] किले के नीचे से या नीची जमीन पर से लड़नेवाला। वि० दे० 'स्थलयोधी'।

निम्नलिखित—वि० [सं०] दे० 'निम्नांकित'।

निम्नांकित—वि० [सं० निम्न+अंकित] नीचे लिखा हुआ। निम्नलिखित।

निम्नारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों की घाटी [को०]।

निम्नोन्नत—वि० [सं०] ऊबड़ खाबड़। जो समतल न हो। विषम [को०]।

निम्मन†—वि० [हिं०] दे० 'नीमन'।

निम्मल(पु)—वि०[सं० निर्मल, प्रा० निम्मल] स्वच्छ। निर्मल। साफ। उ०—सरिता सर निम्मल नीर बहैं।—पृ० रासो, पृ० २१।

निम्लुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यास्त [को०]।

निम्लोच—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का अस्त होना।

निम्लोचनी—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण की नगरी का नाम जो मानसोत्तर पर्वत के पश्चिम है।

निम्लोचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

नियंतव्य—वि० [सं० नियन्तव्य] निगमित होने योग्य। प्रतिबद्ध होने योग्य। शासन योग्य।

नियंता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नियन्तृ] [स्त्री० नियंत्री] १. नियम बाँधनेवाला। व्यवस्था करनेवाला। कायदा बाँधनेवाला। २. कार्य को चलानेवाला। विधायक। ३. शिक्षक। नियम पर चलानेवाला। शासक। ४. सारथी (को०)। ५. घोड़ा फेरनेवाला। घोड़ा निकालनेवाला। ६. विष्णु।

नियंत्रक—वि० [सं० नियन्त्रक] नियंत्रण करनेवाला। नियम की व्यवस्था करनेवाला। कार्य को चलानेवाला।

नियंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० नियन्त्रण] १. नियमन। रोक। २. शासन। प्रतिबंधन। ३. सरकार द्वारा किसी वस्तु के मूल्य, समान वितरण आदि पर लगाया जानेवाला प्रतिबंध। कंट्रोल।

नियंत्रित—वि० [सं० नियन्त्रित] नियम से बँधा हुआ। कायदे का पाबंद। जिसकी क्रिया सर्वथा स्वच्छंद न हो। जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबंध हो। प्रतिबद्ध।

यौ०—नियंत्रित भाव = सरकार द्वारा निर्धारित दर। कंट्रोल रेट।

निय(पु)—वि० [सं० निज, प्रा० णिय] निज। उ०—निय तिय तो पिय पहुँ रमैं आवन चाहत काज। सांचि भारती पौढ़े अब भजि तज बहु काज।—स० सप्तक, पृ० ३६४।

नियत¹—वि० [सं०] १. नियम द्वारा स्थिर। बँधा हुआ। परिमित। संयत। बद्ध। पाबंद। २. ठहराया हुआ। स्थिर। ठीक किया हुआ। निश्चित। मुकर्रर। तैनात। जैसे,—किसी काम के लिये कोई दिन नियत करना, वेतन नियत करना। ३. नियोजित। स्थापित। प्रतिष्ठित। मुकर्रर। जैसे, किसी पद पर या काम पर नियत करना। ४. बाँधा हुआ। जैसे, नियतांजलि। ५. संयुक्त। आसक्त (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नियतकाल = जिसका समय निश्चित हो। नियतव्रत = पवित्र। धार्मिक।

नियत²—संज्ञा पुं० महादेव। शिव।

नियत³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नीयत'।

नियत व्यावहारिक काल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पुण्य, दान, व्रत, श्राद्ध, यात्रा, विवाह इत्यादि के लिये नियत समय।

विशेष—ज्योतिष में कालमान नौ प्रकार के माने गए हैं—सौर, सावन, चांद्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वंतर), ब्राह्म (कल्प), और बार्हस्पत्य। इनमें से ऊपर लिखी बातों के लिये तीन प्रकार के कालमान लिए जाते हैं—सौर, चांद्र और सावन। संक्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्यकाल सौर काल के अनुसार नियत किए जाते हैं। तिथि, करण, विवाह, क्षौर, व्रत, उपवास और यात्रा इत्यादि में चांद्र काल लिया जाता है। जन्म, मरण (सूतक), चांद्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञदिनाधिपति, वर्षाधिपति और ग्रहों की मध्यगति आदि का निर्णय सावन काल द्वारा होता है।

नियतात्मा—वि० [सं० नियतात्मन्] अपने ऊपर प्रतिबंध रखनेवाला। संयमी। जितेंद्रिय।

नियताप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपक की पाँच अवस्थाओं में से एक। नाटक में अन्य उपायों को छोड़ एक ही उपाय से फलप्राप्ति का निश्चय। जैसे, किसी का यह कहना कि अब तो ईश्वर को छोड़ और कोई उपाय नहीं है, वे अवश्य फल देंगे (साहित्यदर्पण)।

नियति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत होने का भाव। बंधेज। बद्ध होने का भाव। २. ठहराव। स्थिरता। मुकर्ररी। ३. भाग्य। दैव। अदृष्ट। ४. बँधी हुई बात। अवश्य होनेवाली बात। ५. पूर्वकृत कर्म का परिणाम जिसका होना निश्चित होता है। ६. आत्मसंयम (को०)। ७. जड़। प्रकृति (जैन)।

यौ०—नियतिनटी।

नियतिवाद—संज्ञा पुं० [सं० नियति + वाद] नियति या भाग्य को प्रमुख माननेवाला सिद्धांत। भाग्य पर निर्भर रहनेवाला मत [को०]।

नियतिवादी—वि० [सं० नियतिवादिन्] नियति या भाग्यवाद का सिद्धांत माननेवाला [को०]।

नियती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। भगवती।

नियतेंद्रिय—वि० [सं० नियतेन्द्रिय] इंद्रियों को वश में करनेवाला। जितेंद्रिय।

नियम—संज्ञा पुं० [सं०] १. विधि या निश्चय के अनुकूल प्रतिबंध। परिमिति। रोक। पाबंदी। नियंत्रण। जैसे,—तुम कोई काम नियम से नहीं करते।

क्रि० प्र०—करना।—बाँधना।

विशेष—जैनग्रंथों में चौदह वस्तुओं के परिमाण बांधने को नियम कहा है— जैसे, द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानहनियम, तांबूलनियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शय्यानियम इत्यादि।

२. दबाव। शासन। ३. बँधा हुआ क्रम। चला आता हुआ विधान। परंपरा। दस्तूर। जैसे,—(क) यहाँ तक आने का उनका नित्य का नियम है। (ख) सबेरे उठने का नियम।

क्रि॰प्र॰—करना।—होना।

४. ठहराई हुई रीति। विधि। व्यवस्था। पद्धति। कायदा। कानून। आज्ञा। जैसे, ब्रह्मचर्य के नियम, व्यवहार के नियम, प्रकृति के नियम।

क्रि॰ प्र॰—करना।—बाँधना।—होना।

मुहा॰—नियम का पालन = नियम के अनुकूल व्यवहार। कायदे की पाबंदी। नियम का भंग = नियम के प्रतिकूल आचरण।

५. ऐसी बात का निर्धारण जिसके होने पर दूसरी बात का होना निर्भर किया गया हो। शर्त। जैसे,—दानपत्र के नियम बहुत कड़े हैं।

क्रि॰प्र॰—करना।—रखना।

६. किसी बात को बराबर करते रहने का संकल्प। प्रतिज्ञा। व्रत। जैसे,—आज से यह नियम कर लो कि झूठ न बोलेंगे।

विशेष—योग के आठ अंगों में एक नियम भी है। शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है। शौच दो प्रकार का होता है—बाह्य और आभ्यंतर। जल, मिट्टी आदि से शरीर को साफ रखना बाह्य शौच है। करुणा, मैत्री, भक्ति आदि सात्विक वृत्तियों को धारण करना अभ्यंतर शौच है। आवश्यक से अधिक की इच्छा न करना ही संतोष है। तप से अभिप्राय है गरमी सरदी सहना, धर्मशास्त्रों में लिखे हुए 'कृच्छ्र चांद्रायण' आदि व्रतों का करना। सब कामों को ईश्वर के नाम पर (ईश्वरार्पण) करना ईश्वरप्रणिधान है। याज्ञवल्क्य स्मृति में दस नियम गिनाए गए हैं—स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेदपाठ, इंद्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध और अप्रमाद।

जैनशास्त्र में गृहस्थधर्म के अंतर्गत १२ प्रकार के नियम कहे गए हैं—प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, दिग्व्रत, भोगोपभोग नियम, अनार्थ दंडनिषेध, सामयिक शिक्षाव्रत, देशावकाशिक शिक्षाव्रत, पौषध और अतिथि संविभाग।

७. एक अर्थालंकार जिसमें किसी बात का एक ही स्थान पर नियम कर दिया जाय अर्थात् उसका होना एक ही स्थान पर बतलाया जाय। जैसे,—हो तुम ही कलिकाल में गुनग्राहक नरराय। ८. विष्णु। ९. महादेव। १०. प्रधान अंग की पूरक विधि (को॰)। ११ कवियों की एक वर्णनपद्धति (को॰)। १२. लक्षण।

नियमतंत्र—वि॰ [सं॰ नियमतन्त्र] नियमों से बँधा हुआ। नियमों के अधीन।

नियमन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ नियमित, नियम्य] १. नियमबद्ध करने का काय। कायदा बाँधना। २. शासन। ३. दमन। निग्रह (को॰)। ४. किसी के लिये वह विधान जिससे उसके सिवा अन्य का वारण हो सके (को॰)।

नियमनिष्ठा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नियमों का तत्परतापूर्वक पालन (को॰)।

नियमपत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रतिज्ञापत्र। शर्तनामा।

नियमपर—वि॰ [सं॰] नियमानुवर्ती। नियमाधीन।

नियमबद्ध—वि॰ [सं॰] नियमों से बँधा हुआ। नियमों के अनुकूल। कायदे का पाबंद।

नियमवती—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म नियमित रूप से होता हो [को॰]।

नियमसेवा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] क्वार सुदी एकादशी से लेकर कार्तिक के अंत तक की जानेवाली विष्णु की उपासना [को॰]।

विशेष—इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक पर्यंत चातुर्मास्य नियमसेवा का विधान है।

नियमस्थिति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तपस्या।

नियमावली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ नियम+अवली] किसी संस्था के संबंध में नियमों का संग्रह।

नियमित—वि॰ [सं॰] १. बँधा हुआ। क्रमबद्ध। २. नियमों के भीतर लाया हुआ। नियमबद्ध। बाकायदा। कायदे कानून के मुताबिक।

नियमी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नियमिन्] नियमपालन करनेवाला।

नियम्य—वि॰ [सं॰] १. नियमित करने योग्य। नियमों से बाँधने योग्य। प्रतिबद्ध होने योग्य। २. शासित होने योग्य। रोके या दबाए जाने योग्य।

नियर†—अव्य॰ [सं॰ निकट, प्रा॰ णियड; तुल॰ अं॰ नियर] समीप। पास। नजदीक।

नियराई†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नियराना] निकटता। सामीप्य।

नियराना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ नियर से नामिक धातु] निकट पहुँचना। पास होना। नजदीक आना या जाना। उ॰—आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई।—तुलसी (शब्द॰)।

नियरे†—अव्य॰ [सं॰ निकटे से हिं॰] दे॰ 'नियर'।

नियाई(पु)—वि॰ [सं॰ न्यायिन्] दे॰ 'न्यायी'। उ॰—साधो मन कुँजड़ी नीक नियाई।—कबीर श॰, भा॰ ३, पृ॰ ४८।

नियाज—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नियाज़] १. इच्छा। कांक्षा। २. प्रयोजन। जरूरत। ३. मुलाकात। साक्षात्। भेंट। ४. प्रार्थना। निवेदन। ५. प्रसाद। चढ़ावा। उ॰—नियाजे लिखे पाये साहब नियाज।

मुहा॰—नियाज हासिल करना = (श्रद्धास्पद का) दर्शन होना।

यौ॰—नियाजमंद = जरूरतमंद। कुछ चाहनेवाला।

नियासन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'निपातन' [को॰]।

नियान(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० निदान] अंत। परिणाम।

नियान(पु)[2]—अव्य० अंत में। आखिर। उ०—(क) अगिनि उठै जरि बुझै नियाना। धुआँ उठा उठि बीच बिलाना।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोउ काहु का नाहि नियाना। मया मोह बाँधा उरझाना।— जायसी (शब्द)।

नियान[3]—संज्ञा पुं० [सं०] गोष्ठ [को०]।

नियाम—संज्ञा पुं० [सं०] नियम।

नियामक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नियामिका] १. नियम करनेवाला। नियम या कायदा बाँधनेवाला। २. व्यवस्था करनेवाला। विधान करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। ३. मारनेवाला। ४. पोतवाह। माझी। मल्लाह। ५. सारथि। रथ हाँकने वाला (को०)।

नियामकगण—संज्ञा पुं० [सं०] रसायन में पारे को मारनेवाली ओषधियों का समूह।

विशेष—सर्पाक्षी, वनककड़ी, सतावर, शंखाहुली, सरफोंका, पुनर्नवा (गदहपुर्ना), मूसाकानी, मत्स्याक्षी, ब्रह्मदंडी, शिखंडिनी (घुँघुची), अनंता, काकजंघा, काकमाची, पोतिक (पोई का साग), विष्णुक्रांता, पीली कटसरैया, सहदेइया, महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, चकवँड़, करंज (कंजा), पाठा, नील, गोजिह्वा इत्यादि।

नियामत—संज्ञा स्त्री० [अ० नेअमत] १. अलभ्य पदार्थ। दुर्लभ पदार्थ। २. स्वादिष्ट भोजन। उत्तम व्यंजन। मजेदार खाना। ३. धन। दौलत। माल।

नियामिका—वि० स्त्री० [सं०] नियम करनेवाली। दे० 'नियामक'।

नियार—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा ?] जौहरी या सुनारों की दूकान का कूड़ा कतवार।

नियारना†—क्रि० स० [सं० निवारण] दे० 'निवारना'।

नियारा†[1]—वि० [सं० निर्निकट, प्रा० निन्निअड़] [वि० स्त्री० नियारी] अलग। जुदा। दूर। उ०—आज नेह सो होइ नियारा। आज प्रेम सँग चला पियारा।—जायसी (शब्द०)।

नियारा[2]—संज्ञा पुं० सुनारों या जौहरियों के यहाँ का कूड़ा करकट।

नियारिया—संज्ञा पुं० [हिं० नियारा, न्यारा] १. मिली हुई वस्तुओं को अलग अलग करनेवाला। २. सुनारों या जौहरियों की राख, कूड़ा करकट आदि में से माल निकालनेवाला। ३. चतुर मनुष्य। चालाक आदमी।

नियारे(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'न्यारे'।

नियाव(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याव', 'न्याय'।

नियासा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निराशा, प्रा० णिरासा, नियासा] दे० 'निराशा'। उ०—धृक जीवन जेहि कंत नियासा। मरै वियोगिनि दरस के आसा।—हिंदी प्रेम०, पृ० २३८।

नियुक्त—वि० [सं०] १. नियोजित। लगाया हुआ। २. (किसी काम में) लगाया हुआ। जोता हुआ। तैनात। मुकर्रर। ३. तत्पर किया हुआ। प्रेरित। ४. स्थिर किया हुआ। ठहराया हुआ। ४. नियोग करनेवाला। जिससे नियोग कराया जाय (को०)। ५. किसी पद या कार्य के लिये तैनात।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुकर्ररी। तैनाती।

नियुत्—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का अश्व। (वैदिक)।

नियुत[1]—वि० [सं०] १. एक लाख। लक्ष। २. दस लाख।

नियुत[2]—संज्ञा पुं० १. एक लाख की संख्या। २. दस लक्ष की संख्या।

नियुत्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] वायु।

नियुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बाहुयुद्ध। हाथाबाहीं। कुश्ती।

नियोक्तव्य—वि० [सं०] नियोजित करने योग्य।

नियोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० नियोक्तृ] १. नियोजित करनेवाला। लगानेवाला। २. नियोग करनेवाला।

नियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नियोजित करने का कार्य। किसी काम में लगाना। तैनाती। मुकर्ररी। २. प्रेरणा। ३. अवधारण। ४. मनु के अनुसार प्राचीन आर्यों की एक प्रथा जिसके अनुसार यदि किसी स्त्री का पति न हो तो या उसे अपने पति से संतान न होती हो तो वह अपने देवर या पति के और किसी गोत्रज से संतान उत्पन्न करा लेती थी। पर कलि में यह रीति वर्जित है। ५. आज्ञा। ६. निश्चय। ७. वह आपत्ति जिसमें यह निश्चय हो कि इसी एक उपाय से यह आपत्ति दूर होगी, दूसरे से नहीं। (कौटि०)।

नियोगी[1]—वि० [सं०] १. जो नियोजित किया गया हो। जो लगाया या मुकर्रर किया गया हो। २. जो किसी स्त्री के साथ नियोग करे।

नियोगी[2]—संज्ञा पुं० १. अधिकारी। २. बंगालियों की जातिगत एक उपाधि या अल्ल।

नियोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभु। स्वामी [को०]।

नियोजक—संज्ञा पुं० [सं०] नियोजित करनेवाला। काम में लगानेवाला। मुकर्रर करनेवाला।

नियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नियोजित, नियोज्य, नियुक्त] १. किसी काम में लगाना। तैनात या मुकर्रर करना। प्रेरणा। २. स्थिर करना। एक सीमा में, जो अधिक या अत्यंत कम न हो, ठहराना। सीमित करना। जैसे, परिवार नियोजन।

नियोजित—वि० [सं०] नियुक्त किया हुआ। लगाया हुआ। मुकर्रर। तैनात।

नियोक्तव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका नियोजन किया जाय। कर्मचारी [को०]।

नियोद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल योद्धा। कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

निर्—अव्य० [सं०] दे० 'निस्'।

निरंकार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निराकार] दे० 'निराकार'।

निरंकुश—वि० [सं० निरङ्कुश] जिसके लिये कोई अंकुश या प्रतिबंध न हो। जिसपर कोई दबाव न हो। जिसके लिये कोई रोक या बंधन हो। बिना डर दाब का। बेकहा। स्वेच्छाचारी। उ०—निपट निरंकुश अबुध असंकू।—तुलसी (शब्द०)।

निरंकुशता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरङ्कुश + ता (प्रत्य॰)] अनियंत्रण। अराजकता। बदइंतजामी। स्वेच्छाचारिता।

निरंग¹—वि॰ [सं॰ निरङ्ग] अंगरहित। २. केवल। खाली। जिसमें कुछ न हो। जैसे,—यह दूध निरंग पानी है। ३. रूपक अलंकार का एक भेद।

विशेष—रूपक दो प्रकार का होता है—एक अभेद दूसरा ताद्रूप्य। अभेद रूपक भी तीन प्रकार का होता है—सम, अधिक और न्यून। इनमें से 'सम अभेद रूपक' के तीन भेद हैं—सांग या सावयव, निरंग या निरवयव और परंपरित। जहाँ उपमेय में उपमान का इस प्रकार आरोप होता है कि उपमान के और सब अंग नहीं आते वहाँ निरवयव या निरंग रूपक होता है—जैसे, 'रैन न नींद न चैन हिए छिनहूँ घर में कछु और न भावै। सोचन को अब प्रेमलता यहि के हिय काम प्रवेश लखावै'। यहाँ प्रेम में केवल लता का आरोप है उसके और अंगों या सामग्रियों का कथन नहीं है। निरंग या निरवयव रूपक भी दो प्रकार का होता है—शुद्ध और मालाकार। ऊपर जो उदाहरण है वह शुद्ध निरवयव का है क्योंकि उसमें एक उपमेय में एक ही उपमान का (प्रेम में लता का) आरोप हुआ है। मालाकार निरवयव वह है जिसमें एक उपमेय में बहुत से उपमानों का आरोप हो—जैसे, 'भँवर संदेह की अछेह आपरत, यह गेह त्यों अनम्रता की देह दुति हारी है। दोष की निधान, कोटि कपट प्रधान जामें, मान न विश्वास द्रुम ज्ञान की कुठारी है। कहै तोष हरि स्वर्गद्वार को विघन धार, नरक अपार की विचार अविकारी है। भारी भयकारी यह पाप की पिटारी नारी क्यों करि विचारी याहि भाखें मुख प्यारी हैं।

यहाँ एक स्त्री उपमेय में संदेह का भँवर, अविनय का घर, इत्यादि बहुत से आरोप किए गए हैं।

निरंग²—वि॰ [हिं॰ उप॰ नि(=नहीं) + रंग] १. बेरंग। बदरंग। विवर्ण। २. फीका। उदास। बेरौनक। उ॰—सो धनि पान चून भई चोली। रंग रंगील, निरंग भई डोली।—जायसी (शब्द॰)।

निरंजन¹—वि॰ [सं॰ निरञ्जन] १. अंजन रहित। बिना काजल का। जैसे, निरंजन नेत्र। २. कल्मषशून्य। दोषरहित। ३. माया से निर्लिप्त (ईश्वर का एक विशेषण)। ४. सादा। बिना अंजन आदि का।

निरंजन²—संज्ञा पुं॰ १. परमात्मा। २. महादेव।

निरंजना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरञ्जना] १. पूर्णिमा। २. दुर्गा का एक नाम।

निरंजनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरञ्जनी] १. साधुओं का एक संप्रदाय।

विशेष—कहते हैं, इस संप्रदाय के प्रवर्तक कोई निरानंद स्वामी थे। उन्होंने निरंजन, निराकार ईश्वर की उपासना चलाई थी, इससे उनके संप्रदाय को निरंजनी संप्रदाय कहने लगे। किंतु आजकल निरंजनी साधु रामानंद के मतानुसार साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवों में हो गए हैं। ये कौपीन पहनते तथा तिलक और कंठी धारण करते हैं। मारवाड़ में इनके अखाड़े बहुत हैं।

निरंतर¹—वि॰ [सं॰ निरन्तर] १. अंतररहित। जिसमें या जिसके बीच अंतर या फासला न हो। जो बराबर चला गया हो। अविच्छिन्न (देश के संबंध में)। २. निविड़। घना। गझिन। ३. जिसकी परंपरा खंडित न हो। अविच्छिन्न। लगातार होनेवाला। बराबर होनेवाला। जैसे, निरंतर प्रवाह (काल के संबंध में)। ४. सदा रहनेवाला। बराबर बना रहनेवाला। स्थायी। जैसे, निरंतर नियम, निरंतर प्रेम। ५. जिसमें भेद या अंतर न हो। जो समान या एक ही हो। ६. जो अंतर्धान न हो। जो दृष्टि से ओझल न हो।

निरंतर²—क्रि॰ वि॰ लगातार। बराबर। सदा। हमेशा। जैसे,—उन्नति निरंतर होती आ रही है।

निरंतरता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरन्तर + ता] क्रम, गति या प्रवाह का लगातार चलते रहने का भाव। सातत्य।

निरंतराभ्यास—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निरन्तराभ्यास] अनवरत चलनेवाला किसी कार्य, पाठ या अध्ययन आदि का क्रम। स्वाध्याय [को॰]।

निरंतराल—वि॰ [सं॰ निरन्तराल] १. अंतरालरहित। व्यवधानविहीन। घना। २. तंग। संकीर्ण [को॰]।

निरंत्र⁹†—वि॰ [सं॰ निरन्तर] दे॰ 'निरंतर'। उ॰—देहि असीस सखी हित प्यासी। रमा निरंत्र रहै तोहि दासी।—इंद्रा॰, पृ॰ १६६।

निरंध¹—वि॰ [सं॰ निरन्ध (=जिससे बढ़कर अंधा न हो)] १. भारी अंधा। २. महामूर्ख। ज्ञानशून्य। उ॰—जाका गुरु है आंधरा चेला खरा निरंध। अंधे को अंधा मिला परा काल के फंद।—कबीर (शब्द॰)। ३. बहुत अँधेरा। उ॰—अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध कुआँ परिहूँ न हिए पछितानो।—केशव (शब्द॰)।

निरंध²—वि॰ [सं॰ निरन्धस्] बिना अन्न का। निरन्न।

निरंब⁹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निरम्बु] दे॰ 'निरंबु'।

निरंबकारी⁹—वि॰ [सं॰ निर्विकार] दे॰ 'निर्विकार'। उ॰—अति निरलंब अति निरंबकारी, महा निराश महा निराधारी।—प्राण॰, पृ॰ ७४।

निरंबर—वि॰ [सं॰] वस्त्ररहित। दिगंबर। नंगा [को॰]।

निरंबु—वि॰ [सं॰ निरम्बु] १. निर्जल। बिना पानी का। २. जो जल न पिए। जो बिना पानी के रहे। ३. जिसमें बिना जल के रहना पड़े। जैसे, निरंबु व्रत। उ॰—व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जल काहु न लीन्हा।—मानस, २। २४६।

निरंभ—वि॰ [सं॰ निरम्भस्] १. निर्जल। २. जो पानी न पिए। बिना पानी पिए रह जानेवाला। उ॰—प्रात अरंभ की संभ लगी निरदंभ निरंभ सँभारै न सासुनि।—देव (शब्द॰)।

निरंश—वि० [सं०] १. जिसे उसका भाग न मिला हो।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि पतित, क्लीव आदि निरंश हैं; इन्हें संपत्ति का भाग न मिलना चाहिए।

२. बिना अक्षांश का।

निरंश[2]—संज्ञा पुं० राशि के भोगकाल का प्रथम और शेष दिन। संक्रांति।

निरंस(पु)—वि० [सं० निरंश] १. अंशरहित। विभागरहित। २. अक्षांश रहित। ३. जिसे अपना प्राप्य भाग न मिला हो। उ०—शेष सहस फन नाथि ज्यों सुरपति करे निरंस। अभिमान कियो साँवरे कहा बापुरो कंस।—सूर (शब्द०)।

निरँजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निरञ्जन] दे० 'निरंजन'। उ०—हुरिया बाल न बुद्ध ऊ ना तरणाऊ तन्न। निरालंब सुन में रमैं निराकार निरँजन्न।—राम० धर्म०, पृ० ६१।

निरअंक(पु)—वि० [हिं० निर+सं० अङ्क] बिना रूप रेख वाला। अरूप। बिना चिह्नवाला। उ०—निरंकार निरअंक निरंजन निर्विकार निरलेस।—केशव० अमी०, पृ० ४।

निरअंकुस(पु)—वि० [सं० निरङ्कुश] दे० 'निरंकुश'। उ०—निरअंकुस अति निडर, रसिक जस झरना गायौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४१८।

निरकलप(पु)—वि० [सं० निः+कल्प] कल्पनारहित। उ०—करम उपाइ बोहोत करि देखे, मति निरकलप तृपति नहिं थाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८२।

निरकेवल†—वि० [सं० निस्+केवल] १. खाली। खालिस। बिना मेल का। २. स्वच्छ। साफ।

निरक्षदेश—संज्ञा पुं० [सं०] भूमध्य रेखा के आसपास के देश जिनमें रात और दिन बराबर होते हैं।

विशेष—पूर्व में भद्राश्ववर्ष और यमकोटि, दक्षिण में भारतवर्ष और लंका, पश्चिम में केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तर कुरु और सिद्धपुरी निरक्ष देश कहे गए हैं। (सूर्यसिद्धांत)।

निरक्षन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण'। उ०—होत बिलक्षण यश बिदेह की जात निरक्षन अपने अक्षन।—रघुराज (शब्द०)।

निरक्षर—वि० [सं०] १. अक्षरशून्य। २. जिसने एक अक्षर भी न पढ़ा हो। अनपढ़। मूर्ख।

यौ०—निरक्षर भट्टाचार्य = पंडित बना हुआ मूर्ख।

निरक्षरता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरक्षर] अक्षरज्ञान का अभाव।

निरक्षरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाडीमंडल। निरक्षवृत्त। क्रांतिवृत्त।

निरखना(पु)—क्रि० स० [सं० निरीक्षण] देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।—तुलसी (शब्द०)।

निरग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नृग] दे० 'नृग'। (राजा)।

निरगुन(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण'। उ०—बिमल नीच निरधन निरगुन कहे जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१६।

निरगुनिया—वि० [हिं० निरगुन+इया (प्रत्य०)] दे० 'निरगुनी'।

निरगुनी—वि० [सं०] निर्गुण या हिं० (प्रत्य०) निर+गुणी] जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो। अनाड़ी। उ०—रंक निरगुनी नीच जितने निवारने हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६। २. निर्गुण ब्रह्म की उपासना करनेवाला।

निरग्नि—वि० [सं०] अग्निहोत्र न करनेवाला। जो श्रौत और स्मार्त विधि के अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरघ—वि० [सं०] निष्पाप। दोषरहित।

निरघिन(पु)—वि० [सं० निर्घृण] १. क्रूर। कृपाहीन। २. अति घृणित। उ०—हहुवौ राजकुँवर सुख भोगी। हौं परदेसी निरघिन जोगी।—चित्रा०, पृ० १७६।

निरघृन(पु)—वि० [सं० निर्घृण] दे० 'निरघिन'। उ०—जदपि बास तव मैं अहैं जीवहिं दोसी नाथ। पै निरघृन कौतुक लखत तुम क्यों वाके साथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३७।

निरघोष—संज्ञा पुं० [सं० निर्घोष] दे० 'निर्घोष'।

निरचू—वि० [सं० निश्चित] निश्चित। खाली। जिसे फुरसत मिल गई हो। जिसने छुट्टी पाई हो। उ०—इस काम से तो मैं निरचू हुई अब चलकर उस राजर्षि का वृत्तांत देखूँ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

निरच्छ(पु)—वि० [सं० निरक्षि] बिना आँख का। अंधा।

निरच्छर—वि० [सं० निरक्षर] दे० 'निरक्षर'। उ०—बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।—मानस, ७। १००।

निरछेह(पु)—वि० [हिं० निर+छोह] बिना माया मोह का। बेलगाव। जिसे ममता या स्नेह न हो। उ०—दुइ अक्षर का सकल पसारा यामें कौन सनेहा। एके लागि सकल जगमोह्या एक रहा निरछेहा।—राम० धर्म०, पृ० १३५।

निरज—संज्ञा पुं० [सं०] रजोहीन। रजोगुण से रहित। निर्मल। उ०—मोहन दरस हियो अभिलाखै। रज कों परस दसनि रज राखै।—घनानंद, पृ० २६१।

निरजन(पु)—वि० [सं० निर्जन] दे० 'निर्जन'। उ०—निरजन जंगलों और पर्वतों के......हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५।

निरजर(पु)[1]—वि० [सं० निर्जर] दे० 'निर्जर'। उ०—पसुपति प्रियहि प्रबोध करन निरजर गिननायक।—दीन० ग्रं०, पृ० ९१।

निरजर[2]—संज्ञा पुं० देवता। निर्जर।

निरजल—वि० [सं० निर्जल] [वि०स्त्री० निरजला]। दे० निर्जल'।

निरजास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्यास] निचोड़। निर्यास। उ०—लह्यौ परम रस को निरजास। श्री ब्रज वृंदाविपिन बिलास।—घनानंद, पृ० २३७।

निरजासु(पु)—वि० [सं० नि+रजस्क] रजोहीन। शुद्ध। निर्मल।

निरजिउ(पु)—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—मीन गँवाए गएउ बिमोही। भा निरजिउ जिउ दीन्हेसि ओही।—पदमावत, पृ० २७७।

निरजिव(पु)—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—को चितवै को बोलै कासों, निरजिव रूप कहूँ का री।—कबीर श०, भा० २, पृ० १०४।

निरजो—संज्ञा स्त्री० [देश०] संगतराशों की महीन टाँकी जिससे संगमर्मर पर काम बनाया जाता है ।

निरजुर†—संज्ञा पुं० [सं० निर्जर] दे० 'निर्जर' । उ०— इधक अनुराग कर पुरष निरजुर अही ।—रघु० रू० पृ० ५७ ।

निरजोस—संज्ञा पुं० [सं० निर्यास] १. निचोड़ । २. निर्णय ।

निरजोसी—वि० [हिं० निरजोस] १. निचोड़ निकालनेवाला । २. निर्णय करनेवाला ।

निरजोसु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० निरजोस] दे० 'निरजोस' । उ०—राम तुम्हहि प्रिय तुम प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ।—मानस, २।२०० ।

निरझर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्झर] दे० 'निर्झर' ।

निरझरनी(पु)—संज्ञा स्त्री०[सं० निर्झरिणी] दे० 'निर्झरिणी'।

निरझरी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्झरी] दे० 'निर्झरी'।

निरत[1]—वि० [सं०] १. किसी काम में लगा हुआ । तत्पर । लीन । मशगूल । २. प्रसन्न (को०) । ३. विश्रांत (को०) ।

निरत(पु)‡[2]—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] दे० 'नृत्य' । उ०—बिन पग नटरा निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताल ।—धरम०, पृ० ५६ ।

निरत(पु)[3]—अव्य [हिं०] लगातार । अनवरत ।

निरत(पु)[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० निरति] दे० 'निरति' । उ०—अध ऊरध बिच सुरति समानी । निरखा सब्द निरत अलगानी ।—घट०, पृ० १०८ ।

निरतना(पु)—क्रि० स० [सं० नर्तन] नाचना । नृत्य करना ।

निरताना†—क्रि० स०[सं० निर्णीत से नामिक धातु] निर्णीत करना । निश्चित करना । स्थिर करना । उ०—उतपति कारण हम सब पावा । वंश अंश दूनो निरतावा ।—कबीर सा०, पृ० ६०१ ।

निरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अत्यंत रति । अधिक प्रीति । २. लिप्त होने का भाव । लीन होने का भाव ।

निरतिशय[1]—वि० [सं०] जिससे और अतिशय न हो सके । हद दरजे का ।

निरतिशय[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

निरत्थ(पु)—वि० [सं० निरर्थ] दे० 'निरर्थ' ।

निरत्यय[1]—वि० [सं०] १. बिना बाधा के । २. जिसमें कोई दोष न हो । त्रुटिरहित । हर प्रकार से सफल [को०] ।

निरत्यय[2]—संज्ञा पुं० रोक या बाधा का अभाव [को०]

निरथाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० निर+अरथाना] निश्चय करना । स्थिर करना या होना । निर्धारण करना । उ०—गगन मंदिल चलि थिर ह्वै रहिए, तकि छबि छकि निरथाई ।—जग० श०, पृ० ७६ ।

निरथु(पु)†—वि० [सं० निरर्थक] बेकार । निष्प्रयोजन । निरर्थक । उ०—देह बिलोईयाँ निकले लथु । जल मथीयाँ जल देलु निरथु । —प्राण०, पृ० २६४ ।

निरदई—वि० [सं० निर्दयी, निरदई] दे० 'निर्दय' । उ०—यो दलमलियतु निरदई दई कुसुम सी गातु । कर धरि देखो, धरधरा उर को अजों न जातु ।—बिहारी र०, दो० ६५१ ।

निरदय(पु)—वि० [सं० निर्दय] दे० 'निर्दय' ।

निरदाइ(पु)—वि० [हिं० निरदई] दे० 'निर्दय' । उ०—बे निरदाइ न दाया करहीं । जीना सबै सपन करि देहीं ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २३६ ।

निरदाग(पु)—वि० [हिं० निर+अ० दाग़] बेदाग । बिना धब्बे का । अछूता । उ०—जग से रहैं उदासी बासी मोह माया निरदाग ।—संत तुरसी०, पृ०२१४ ।

निरदाव(पु)—वि० [हिं० निर+दाँव] बिना दाँव के । बिना अवसर के । उ०—जहाँ गोरख जहाँ ज्ञान गरीबी दुंद बाद नहीं कोई । निसप्रेही निरदावे षेलै गोरष कहीये सोई ।—गोरख०, पृ० ६५ ।

निरदुंद—वि० [सं० निर्द्वन्द्व] दे० 'निर्द्वंद्व' । उ०—निरदुंद रहो गहो सोई मारग जो जेही घाट उतार ।—संत तुरसी०, पृ० २१६ ।

निरदुंदी—वि० [सं० निर्+द्वन्द्विन्] दे० 'निर्द्वन्द्व' । उ०—निरदुंदी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ।—कबीर सा०सं०, पृ० ३७ ।

निरदोखी(पु)—वि० [सं० निर्दोष] दे० 'निर्दोष' । उ०—का मैं कीन्ह जो काया पोखी । दूखन मोहि आपु निरदोखी ।—जायसी ग्रं०, पृ० २५८ ।

निरदोषी(पु)—वि० [सं० निर्दोष] दे० 'निर्दोष' । उ०—भृगुनंदन सुनिये मन मँह गुनिये रघुनंदन निरदोषी ।—केशव (शब्द०)।

निरधन(पु)—वि० [सं० निर्धन] दे० 'निर्धन' । उ०— छिन ही मैं धन होत होत छिनहीं मैं निरधन ।—ब्रज० ग्रं०, पृ०१२७ ।

निरधातु—वि० [सं० निर्धातु] वीर्यहीन । शक्तिहीन । अशक्त । उ०— धातु कमाय सिखे तू जोगी । अब कस अस निरधातु बियोगी । —जायसी (शब्द०) ।

निरधार(पु)[1]—संज्ञा [सं० निर्धारण] निश्चय करने या ठहराने का कार्य ।

निरधार(पु)[2]— वि० अवश्यमेव । निश्चयपूर्वक ।

निरधार[3]—वि० [सं० निराधार] आधारविहीन । आधाररहित ।

निरधारना—क्रि० स० [सं० निर्धारण] १. निश्चय करना । ठहराना । स्थिर करना । २. मन मे धारण करना । समझना । उ०—एक एक नग देखि अनेकन उडुगन वारिय । बसन मनहु सिसुमार चक्र तन इमि निरधारिय ।—गोपाल (शब्द०) ।

निरधिष्ठान—वि० [सं०] १. निराधार । बिना सहारा । २. स्वतंत्र [को०] ।

निरनय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्णय] दे० 'निर्णय' । उ०—होत पंचमी के दिन निरनय इन कलान को ।—प्रेमघन०, पृ० २८ ।

निरना—वि० [हिं०] दे० 'निरन्ना' ।

निरनुक्रोश[1]—वि० [सं०] दयाहीन । क्रूर हृदयवाला [को०] ।

निरनुक्रोश[2]—संज्ञा पुं० दयाहीनता । निष्ठुरता । क्रूरता [को०] ।

निरनुग—वि० [सं०] जिसका कोई अनुगमन करनेवाला न हो [को०] ।

निरनुग्रह—वि० [सं०] अनुदार । निष्ठुर [को०] ।

निरनुनासिक—वि० [सं०] जिसका उच्चारण नाक के संबंध से न हो । जैसे, निरनुनासिक वर्ण ।

विशेष—वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग के अंतिम वर्ण और अनुस्वार को छोड़कर शेष सभी वर्ण निरनुनासिक हैं ।

निरनुबंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० निरनुबन्ध] अर्थ का एक भेद । वह सिद्धि या सफलता जिससे अपना लाभ आवश्यक न हो । दंड या अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना (कौटि०) ।

निरनुबंध[2]—वि० बिना अनुबंध का बिना करार या शर्तनामा का ।

निरनुयोज्य—वि० [सं०] निर्दोष । त्रुटिरहित [को०] ।

निरनुरोध—वि० [सं०] १. अमैत्रीपूर्ण । अस्निग्ध । विप्रिय [को०] ।

निरनुयोज्यानुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रहस्थान । दे० 'निग्रहस्थान' ।

निरनै‡—संज्ञा पुं० [सं० निर्णय] दे० 'निर्णय' । उ०—आतपत्र को चिह्न जोइ ब्रह्मलोक सो जाय । येहि बिधि श्रुति निरनै करत चरन चिह्न परमान ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १८ ।

निरन्न—वि० [सं०] १. अन्नरहित । बिना अन्न का । २. निराहार । जो अन्न न खाए हो । जैसे,—उस दिन वह निरन्न रह गया ।

निरन्ना—वि० [सं० निरन्न] जो अन्न न खाए हो । निराहार ।

मुहा०—निरन्ने मुँह = बिना मुँह में अन्न डाले । बिना कुछ खाए । बासी मुँह । जैसे,—यह दवा निरन्ने मुँह पानी चाहिए ।

निरन्वय—वि० [सं०] १. संतानहीन । २. अयुक्त । असंबद्ध । ३. संदर्भविरुद्ध । अप्रासंगिक । जैसे,—वाक्य में कोई शब्द । ४. तर्कविरुद्ध । अयुक्तियुक्त । ५. दृष्टि से परे । नजर से दूर । ६. अलग । बिना संगी साथी का । ७. सहसा । अनपेक्षित । ८. निश्चिह्न । संपूर्ण लोप [को०] ।

निरपख—वि० [सं० निष्पक्ष हिं०, निर + पख] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—सोई निरपख होइगा, जाके नाँव निरंजन होइ ।—दादू०, पृ० ११६ ।

निरपच्छी—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—निरपच्छी को भक्ति है निरमोही को ज्ञान ।—कबीर सा० सं०, पृ० ३७ ।

निरपत्रप—वि० [सं०] १. निर्लज्ज । बेशर्म । २. धृष्ट । ढीठ [को०] ।

निरपना—वि० [सं० उप० निस्, निर + हिं० अपना] १. जो अपना न हो । जो आत्मीय न हो । २. बिराना । गैर । बेगाना । उ०—जानकी जीवन ! मेरे रावरे बदन फेरे ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरपराध[1]—वि० [सं०] अपराधरहित । बेकसूर । निर्दोष ।

निरपराध[2]—क्रि० वि० बिना अपराध के । बिना कोई कसूर किए । जैसे,—तुमने उसे निरपराध मारा ।

निरपराधी—वि० [हिं०] दे० 'निरपराध' ।

निरपवर्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें भाजक के द्वारा भाग लगे । (गणित) ।

निरपवर्त[2]—वि० [सं०] जिसका अपवर्त न हो सके । जिसका लौटना न हो सके [को०] ।

निरपवर्तन—वि० [सं०] दे० 'निरपवर्त' ।

निरपवाद—वि० [सं०] १. अपवादशून्य । जिसकी कोई बुराई न की जाय । २. निर्दोष । ३. जिसका कभी अन्यथा न हो । जैसे निरपवाद नियम ।

निरपाय—वि० [सं०] जिसका विनाश न हो । जिसका विश्लेष न हो ।

निरपेक्ष[1]—वि० [सं०] १. जिसे किसी बात की अपेक्षा या चाह न हो । बेपरवा । २. जो किसी पर अवलंबित न हो । जो किसी पर निर्भर न हो । ३. जिसे कुछ लगाव न हो । अलग । तटस्थ ।

निरपेक्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर । २. अवहेलना ।

निरपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपेक्षा या चाह का अभाव । २. लगाव का न होना । ३. अवज्ञा । परवा न होना । ४. निराशा ।

निरपेक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो । २. जिसके साथ लगाव न रखा गया हो ।

निरपेक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरपेक्षा] दे० 'निरपेक्षा' ।

निरपेक्षी—वि० [सं० निरपेक्षिन्] १. निरपेक्षा या चाह न रखनेवाला । २. लगाव न रखनेवाला ।

निरपेच—वि० [हिं०] १. बिना पेच का । बिना उलझाव का । साफ साफ । सुस्पष्ट उ०—कहे दरिया निरपेच निरबाव सबंध गहु ज्ञान सनमुख ठाढ़े ।—सं० दरिया, पृ० ७३ ।

निरपेछ†—वि० [सं० निरपेक्ष] दे० 'निरपेक्ष[1]' । उ०—सुंदर भजन सबै करहु नारायण निरपेछ ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७६ ।

निरबंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० निर + बन्ध] ईश्वर या परमात्मा (जो बंधनहीन है) । उ०—बँधे को बंधा मिले, छूटै कौन उपाय । कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १४ ।

निरबंध[2]—वि० उन्मुक्त । स्वतंत्र । बंधनहीन । उ०—आतमा कहत गुरु शुद्ध निरबंध नित्य, सत्य करि मानै सु तौ शब्द हूँ प्रमाण है ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२५ ।

निरबंधन—वि० [निर + बन्धन] बंधनरहित । उ०—निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय । करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ।—कबीर सा० सं०, पृ० २१ ।

निरबंसी—वि० [सं० निर्वंश] जिसे वंश या संतान न हो ।

निरबर्ती—संज्ञा पुं० [सं० निवृत्त] बिरागी । त्यागी ।

निरबल—वि० [सं० निर्बल] दे० 'निर्बल' ।

निरबहना—क्रि० अ० [सं० निर्वहण] निभना । चला चलना ।

निर्वाह करना। उ०—ताते न तरनि ते, न सीरे सुधाकर हूं ते सहज समाधि निरबही है।—तुलसी (शब्द०)।

निरबात(पु)—वि० [सं० निर्वात] दे० 'निर्वात'। उ०—चंद्रमुखी न हलै न चलै निरबात निवास में दीपसिखा सी।—मति० ग्रं०, पृ० ३४३।

निरबान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाण] दे० 'निर्वाण'।

निरबार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० निरवार] दे० 'निरवार'। उ०—तुम्हरे चरन मोर निरबारा। पकरि हाथ करिहो निरतारा।—घट०, पृ० २५१।

निरबाहना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना। निभाना। चलाए चलना। उ०—देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरबाहि। नीची अँखियनु ही इतै गई कनखियनु चाहि।—बिहारी (शब्द०)।

निरबिसी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्विषी] दे० 'निर्विषी'।

निरबेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निबेरा'।

निरबोध(पु)—वि० [सं० निर्बोध] बिना बोध का। मूर्ख। उ०—स्वारथपन आग्रह मलीनता लोभ काम मद क्रोध। कामादिक सब नित्य धरम हैं तन मन के निरबोध।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६५०।

निरभय(पु)—वि० [सं० निर्भय] दे० 'निर्भय'।

निरभर(पु)—वि० [सं० निर्भर] दे० 'निर्भर'।

निरभाग(पु)—वि० [हिं०] बिना भाग्य का। बदकिस्मत। भाग्यहीन। अभागा। उ०—निरभाग पुरुष जित जात तित बैर बिपति अगनित सहत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७६।

निरभिभव—वि० [सं०] १. जिसका अभिभव या अपमान न हो सके। २. जिसका अतिक्रमण न हो सके। अद्वितीय [को०]।

निरभिमान—वि० [सं०] अहंकारशून्य। अभिमानरहित। २. चेतनारहित। संज्ञाशून्य (को०)।

निरभिलाष—वि० [सं०] अभिलाषारहित। इच्छाशून्य।

निरभिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० निरभिसन्धान] अभिसंधान का अभाव [को०]।

निरभ्र—वि० [सं०]बिना बादल का। मेघशून्य जैसे,निरभ्र आकाश।

निरमत्सर(पु)—वि० [सं० निर्मत्सर] बिना मत्सर का। उ०—निरमत्सर जे संत तिनकि चूड़ामणि गोपी।—नंद० ग्रं०, पृ० १७।

निरमना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्माण] निर्माण करना। बनाना। उ०—रूपरासि मनु बिधि निरमई।—जायसी (शब्द०)।

निरमर(पु)—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल'। उ०—(क) पदमिनि चाहि घाटि दुइ करा। और सबै गुन ओहि निरमरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तिमिर गए जग निरमर देखा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८८।

निरमर्ष—वि० [सं०] १. अमर्ष से रहित। क्रोधहीन। वीतराग। निःस्पृह। उदासीन [को०]।

निरमल(पु)—वि० [सं० निर्मल] [वि० स्त्री० निरमली] दे० 'निर्मल'।

निरमली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्मली] 'निर्मली'।

निरमसोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक ओषधि या जड़ी जिससे अफीम के विष का प्रभाव दूर हो जाता है। यह पंजाब में होती है।

निरमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्माण] दे० 'निर्माण'।

निरमाना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्माण] बनाना। तैयार करना। रचना।

निरमायल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्माल्य] दे० 'निर्माल्य'।

निरमित्र[1]—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो।

निरमित्र[2]—संज्ञा पुं० १. त्रिगर्तराज के एक पुत्र का नाम जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में मारा गया था। २. चौथे पांडव नकुल के पुत्र का नाम।

निरमूल(पु)—वि० [सं० निर्मूल] दे० 'निर्मूल'।

निरमूलना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्मूलन] १. निर्मूल करना। उखाड़ना। २. नष्ट करना।

निरमोल—वि० [सं० उप० निस्, निर + हिं० मोल] । जिसका मोल न हो। अनमोल। अमूल्य। २. बहुत बढ़िया।

निरमोलक(पु)—वि० [हिं० निरमोल + क (प्रत्य०) दे० 'निरमोल'। उ०—नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा। तू साहिब समरत्थ हम मल मुत्र के कीरा।—दादू०, पृ० १०२।

निरमोलिका,(पु) **निरमोलिका**(पु)—वि० [हिं० निरमोल + इक (प्रत्य०)] अनमोल। बेशकीमत। उ०—(क) निकटहि निरमोलिक नग जैसें। नैन हीन तिहि पावै कैसें।—नंद० ग्रं०, पृ० १४४। (ख) जीव अछित जोबन गया कछू किया ना नीका। यह हीरा निरमोलिका, कौड़ी पर बीका।—कबीर ग्रं०, पृ० १४८।

निरमोली(पु)—वि० [हिं० निरमोल] दे० 'निरमोल'। उ०—पहिरावति झकझोरि, बेसरि निरमोली है।—नंद ग्रं०, पृ० १८६।

निरमोह(पु)—वि० [सं० निर्मोह] दे० 'निर्मोह'। उ०—अजर अमावन सो निःस्वादी। निःकामी निरमोह अनादी।—कबीर सा०, पृ० १६३।

निरमोहड़ा†—वि० [हिं० निरमोह + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'निर्मोही'। उ०—आवो हरि निरमोहड़ा रे, जाणी थाँरी प्रीति।—संतवाणी०, पृ० ७४।

निरमोही(पु)—वि० [सं० निर्मोही] दे० 'निर्मोही'।

निरय—संज्ञा पुं० [सं०] नरक। दोजख।

निरयण—संज्ञा पुं० [सं०] अयनरहित गणना। ज्योतिष में गणना की एक रीति।

विशेष—सूर्य राशिचक्र में निरंतर घूमता रहता है। उसके एक चक्कर पूरे होने को वर्ष कहते हैं। ज्योतिष की गणना के लिये यह आवश्यक है कि सूर्य के भ्रमण का आरंभ किसी स्थान से माना जाय। सूर्य के मार्ग में दो स्थान ऐसे पड़ते हैं जिनपर उसके आने पर रात और दिन बराबर होते हैं।

इन दो स्थानों में से किसी स्थान से भ्रमण का आरंभ माना जा सकता है। पर विषुवरेखा (सूर्य के मार्ग) के जिस स्थान पर सूर्य के आने से दिनमान की वृद्धि होने लगती है उसे वासंतिक विषुवपद कहते हैं। इस स्थान से आरंभ करके सूर्यमार्ग को ३६० अंशों में विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशों को मेष, द्वितीय को वृष इत्यादि मानकर राशिविभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

पर गणना की एक दूसरी रीति भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणना के आरंभकाल में मेषराशिस्थित अश्विनी नक्षत्र में आरंभ में दिन और रात्रिमान बराबर स्थिर हुआ था। पर नक्षत्रगण खसकता जाता है। अतः प्रतिवर्ष अश्विनी नक्षत्र विषुवरेखा से जहाँ खसका रहेगा वहीं से राशिचक्र का आरंभ और वर्ष का प्रथम दिन मानकर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे 'निरयण गणना' कहते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर पंचांग निरयण गणना के अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियों में 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। बहुत से विद्वानों की राय है कि सायन मत ही ठीक है।

निरर्थ[1]—वि० [सं०] १. अर्थहीन। २. व्यर्थ। निष्फल।

निरर्थ[2]—संज्ञा पुं० १. हानि। २. नासमझी [को०]।

निरर्थक—वि० [सं०] १. अर्थशून्य। बेमानी।

विशेष—निरर्थक वाक्य काव्य का एक दोष माना गया है (चंद्रालोक)।

२. न्याय में एक निग्रह स्थान। दे० 'निग्रहस्थान'। ३. निष्प्रयोजन। व्यर्थ। बिना मतलब का। ४. निष्फल। जिससे कोई कार्य सिद्ध न हो। बेफायदा।

निरर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

निरलंकार—वि० [सं० निर्+अलङ्कार] अलंकारशून्य। सादा। उ०—अलकमंडल में यथा मुखचंद्र निरलंकार।—गीतिका, पृ० २४।

निरलंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्+अलङ्कृति] काव्य में अलंकार या अलंकरण का न होना।

निरलस—वि० [सं०] जिसे आलस्य न हो। बिना आलस्य का [को०]।

निरवक(पु)—वि० [सं० निर्मल, हिं० निरमर] शुद्ध। निरा। केवल। खालिस। उ०—समुझ परी नहिं रामकहानी। निरवक दूध कि सरवक पानी।—कबीर बी०, पृ० १७१।

निरवकाश—वि० [सं०] १. अवकाशरहित। जिसमें स्थान न हो। २. जिसे अवकाश न हो [को०]।

निरवग्रह—वि० [सं०] १. प्रतिबंधरहित। स्वतंत्र। स्वच्छंद। २. जो दूसरे की इच्छा पर न हो। ३. बिना विघ्न या बाधा का।

निरवच्छिन्न—क्रि० वि० [सं०] १. अनवच्छिन्न। जिसका सिलसिला न टूटे। २. निरंतर। लगातार। ३. विशुद्ध। निर्मल।

निरवद्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निरवद्या] १. जिसे कोई बुरा न कहे। अनिंद्य। निर्दोष। जिसमें कोई ऐब या बुराई न हो। २. ईश्वर का एक विशेषण (को०)।

निरवध(पु)—वि० [सं० निरवधि] दे० 'निरवधि'। उ०—निरवध नेह, अवधि अति प्रगटी मूरति सब सुखदाई।—नद० ग्रं०, पृ० ३४४।

निरवधि—वि० [सं०] १. अपार। असीम। बेहद। २. निरंतर। लगातार। बराबर। ३. सदा। सतत। हमेशा।

निरवयव—वि० [सं०] १. अंगों से रहित। निराकार। २. अभाज्य। जो बाँटा न जा सके (को०)।

निरवलंब—वि० [सं० निरवलम्ब] १. अवलंबहीन। आधाररहित। बिना सहारे का। २. निराश्रय। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जिसका कोई सहायक न हो।

निरवशेष—वि० [सं०] पूरा। समग्र। संपूर्ण [को०]।

निरवसाद—वि० [सं०] अवसाद से रहित। प्रसन्न [को०]।

निरवसित—वि० [सं०] जो ऊँची जातियों से अलग हो। (चांडाल आदि) जिसके भोजन या स्पर्श से पात्र आदि अशुद्ध हो जायँ।

निरवस्कृत—वि० [सं०] परिष्कृत। साफ किया हुआ।

निरवहानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निरवहालिका'।

निरवहालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीर।

निरवाना†—क्रि० स० [हिं० निराना का प्रे० रूप] निराने का काम कराना।

निरवार[1]—संज्ञा पुं० [हिं० निरवारना] १. निस्तार। छुटकारा। बचाव। उ०—यही सोच सब परि रहे कहूँ नहीं निरवार। ब्रज भीतर नंदभवन में घर घर यहै विचार।—सूर (शब्द०)। २. छुड़ाने या सुलझाने का काम। ३. निबटेरा। फैसला।

निरवार[2]—वि० निश्चित। निश्चिंत। मुक्त। उ०—पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।—पलटू०, पृ० ३।

निरवारना(पु)—क्रि० स० [सं० निवारण] १. टालना। रोकनेवाली वस्तु को हटाना। छेंकने या बाधा डालनेवाली वस्तु को दूर करना। उ०—आगे आगे लाल लता निरवारत, पाछे पाछे आवत नवल लाड़िली।—नंददास (शब्द०)। २. बंधन आदि खोलना। मुक्त करना। छुड़ाना। उ०—ये सुकुमार बहुत दुख पाए सुत कुबेर के तारौ। सूरदास प्रभु कहत मनहिं मन कर बंधन निरवारौ।—सूर (शब्द०)। ३. छोड़ना। त्यागना। किनारे करना। उ०—राना देसपति लाजै, बापकुल रती जाति, मानि लीजै बात वेगि संग निरवारिए।—प्रियादास (शब्द०)। ४. गाँठ आदि छुड़ाना। सुलझाना। उ०—कबहूँ कान्ह आपने कर सों केसपास निरवारत।—सूर (शब्द०)। ५. निबटाना। निर्णय करना। तै करना।

निरवाह(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाह] दे० 'निर्वाह'।

निरविष(पु)—वि० [सं० निर्विष] दे० 'निर्विष'। उ०—दादू मन

भुवंग यहु बिष भरया, निरबिष क्यों ही न होइ । दादू मिल्या गुरु गारड़ो, निरबिष कीया सोइ ।—दादू० पृ० १५ ।

निरवेद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्वेद] दे० 'निर्वेद' । उ०—यहु बिचारि चहुँआन के, मन उपज्यो निरवेद ।—हम्मीर०, पृ० ६४ ।

निरव्यय—वि० [सं०] शाश्वत । जिसका नाश न हो । अनश्वर [को०] ।

निरशन¹—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का न करना । न खाने का भाव । लंघन । उपवास ।

निरशन²—वि० १. भोजनरहित । जिसने खाया न हो या जो न खाय । २. जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाय । जो बिना कुछ खाए किया जाय । जैसे, निरशन व्रत ।

निरश्रि—वि० [सं०] जो बराबर हो । सम (कोटि०) ।

निरष्ट¹—वि० [सं०] निर्वीर्य । बेदम [को०] ।

निरष्ट²—संज्ञा पुं० चौबीस साल का घोड़ा [को०] ।

निरसंक(पु)†—वि० [हिं० निर + संक] दे० 'निःशंक' ।

निरसंध(पु)—वि० [हिं० निर + संध] संधिरहित । एक समान । समरस । उ०—व्यापक अखंड एक रस निरसंध जु ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५८८ ।

निरस—वि० [सं०] १. जिसमें रस न हो । रसविहीन । २. बिना स्वाद का । बदजायका । फीका । ३. असार । निस्तत्व । ४. रागहीन । ५. रूखा सूखा । ६. जो आनंद न दे । जिससे आनंद न मिले । ७. विरक्त । उ०—रे मन जग सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि । भलो सिखावन हेतु है निसि दिन तुलसी तोहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निरसनीय, निरस्य] १. फेंकना । दूर करना । हटाना । २. खारिज करना । रद करना । ३. निराकरण । परिहार । उ०—सांगतार्थ तहँ करत में कुंवर चारि गोलच्छ । प्रतिग्रह फल निरसन हितै दीने द्विजन प्रतच्छ ।—रघुराज (शब्द०) । ४. निकालना । ५. थूकना । ६. नाश । ७. वध ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निरसना(पु)—क्रि० अ० [सं० निरस] रसशून्य होना । नीरस उ०—परसै पै निरसै नहिं ऐसें । कर्दनि पाइ कुलजन जैसें ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६ ।

निरसहाय(पु)†—वि० [सं० निःसहाय] असहाय । उ०—इक साहु चाहु लागो असुर निरसहाय आकार नव ।—रा० रू०, पृ० २० ।

निरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निःश्रेणिका नाम की घास जो कोंकण देश में होती है ।

निरस्त¹—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । छोड़ा हुआ (जैसे, शर) । २. त्याग किया हुआ । अलग किया हुआ । निकाला हुआ । दूर किया हुआ । ३. खारिज किया हुआ । रद किया हुआ । बिगाड़ा हुआ । निराकृत । ४. वर्जित । रहित । ५. थूका हुआ । उगला हुआ । ४. मुँह से अस्पष्ट रूप से जल्दी जल्दी बोला हुआ । शीघ्र उच्चारित (वाक्य आदि) ।

निरस्त²—संज्ञा पुं० १. फेंकना । फेंकने की क्रिया । २. फेंका हुआ शर । ३. परित्याग । त्याग । ४. अस्वीकरण । ५. शीघ्र कथन या उच्चारण [को०] ।

निरस्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० निर (= नहीं) + सं० अस्ति] अस्तित्व का अभाव । नास्ति । उ०—आपु आपु चेते नहीं, कहँ तो रुसुआ होय । कहहि कबीर जो स्वप्ने, निरस्ति अस्ति न होय ।—कबीर बी० (शिशु०), पृ० २६६ ।

निरस्त्र—वि० [सं०] अस्त्रहीन । बिना हथियार का ।

निरस्थि—वि० [सं०] जिसमें हड्डी न हो । बिना हड्डी का । [को०] ।

निरस्य—वि० [सं०] निरसन के योग्य ।

निरहंकार—वि० [सं० निरहङ्कार] अभिमान से रहित ।

निरहंकृत—वि० [सं० निरहङ्कृत] दे० 'निरहंकार' ।

निरहंकृति—वि० [सं० निरहङ्कृति] दे० 'निरहंकार' ।

निरहम्—वि० [सं०] अहंभावशून्य । अहंकाररहित ।

निरहेतु—वि० [सं० निर्हेतु] दे० 'निर्हेतु' ।

निरहेला†—वि० [सं० हेय] अनादृत । तुच्छ । जिसकी कोई कदर न हो ।

निरांत्र—वि० [सं० निरान्त्र] १. अँतड़ीविहीन । जिसके आँत न हो । २. जिसकी अँतड़ियाँ बाहर झूल रही हों [को०] ।

निरा—वि० [सं० निरालय, पु० हिं० निराल] [वि० स्त्री० निरी] १. विशुद्ध । बिना मेल का । खालिस । २. जिसके साथ और कुछ न हो । केवल । एकमात्र । जैसे,—निरी बकवाद से काम नहीं चलेगा । ३. निपट । नितांत । सर्वतोभाव । एकदम । बिलकुल । जैसे,—वह निरा बेवकूफ है ।

निराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० निराना] १. निराने का काम । फसल के पौधों के आस पास उगनेवाले तृण, घास आदि को दूर करने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निराकरणीय, निराकृत] १. छाँटना । अलग करना । २. हटाना । दूर करना । ३. मिटाना । रद करना । ४. किसी बुराई को दूर करने का का काम । शमन । निवारण । परिहार । ५. खंडन । युक्ति या दलील को काटने का काम । जैसे, किसी सिद्धांत का निराकरण ।

निराकांक्ष—वि० [सं० निराकाङ्क्ष] जिसे अपेक्षा, इच्छा या आकांक्षा न हो ।

निराकांक्षी—वि० [सं० निराकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० निराकांक्षिणी] निःस्पृह । जिसे कुछ इच्छा न हो ।

निराकार¹—वि० [सं०] १. जिसका कोई आकार न हो । जिसके आकार की भावना न हो । २. विरूप । भद्दा । बदसूरत (को०) । ३. छिपा हुआ । छद्मयुक्त (को०) । ४. सीधा सादा । सरल (को०) ।

निराकार²—संज्ञा पुं० १. ब्रह्म । ईश्वर । २. आकाश । ३. शिव (को०) । ४. विष्णु (को०) ।

निराकाश—वि० [सं०] जिसमें अवकाश न हो। जिसमें खाली जगह न हो [को०]।

निराकुल—वि० [सं०] १. जो आकुल न हो। जो क्षुब्ध या डाँवाडोल न हो। २. जो घबराया न हो। अनुद्विग्न। ३. बहुत व्याकुल। बहुत घबराया हुआ। उ०—व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बलिविक्रम लंकपती को।—केशव (शब्द०)। ४. व्याप्त। भरा हुआ। परिपूर्ण (को०)।

निराकृत—वि० [सं०] १. मिटाई हुई। रद की हुई। २. दूर की हुई। हटाई हुई। ३. खंडन की हुई।

निराकृति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] निराकरण। परिहार।

निराकृति[2]—वि० १. आकृतिरहित। निराकार। २. स्वाध्याय-रहित। वेदपाठरहित। ३. कुरूप। बदशक्ल (को०)। ४. पंचमहायज्ञ के अनुष्ठान से रहित (मनु०)।

निराकृति[3]—संज्ञा पुं० रोहित मनु के पुत्र (हरिवंश)।

निराकृती—वि० [सं० निराकृतिन्] निराकरण करनेवाला [को०]।

निराक्रंद[1]—वि० [सं० निराक्रन्द] जहाँ कोई पुकार सुननेवाला न हो। जहाँ कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो। २. जो पुकार न सुने। जो रक्षा या सहायता न करे। ३. जिसकी पुकार न सुनी जाय। जिसको कोई सहायता न करे।

निराक्रंद[2]—संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई शब्द न सुनाई पड़ सके।

निराक्रोश—वि० [सं०] जिसपर कोई आरोप न हो। निर्दोष [को०]।

निराखर(पु)†—वि० [सं० निरक्षर] १. जिसमें अक्षर न हों। बिना अक्षर का। २. बिना अक्षर या शब्द का। मौन। ३. जिसे अक्षर का बोध न हो। अपढ़।

निराग—वि० [सं०] रागरहित। रागविहीन। विरक्त [को०]।

निरागस्—वि० [सं०] पापरहित। निष्पाप।

निराचार—वि० [सं०] आचारहीन। नियमहीन। अनैतिक। असभ्य। उ०—निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानि बैरागी।—मानस, ७।९८।

निराजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो हत्थे और तरौछी को मिलाने के लिये दोनों के सिरों पर लगी रहती है।

निराजुकार(पु)‡—वि० [सं० निराकार] दे० 'निराकार'। उ०—निराजुकार नाम के अकार में अलझिए।—राम० धर्म०, पृ० ३२७।

निराट—वि० [हिं० निराल] जिसके साथ और कुछ न हो। अकेला। एकमात्र। निरा। बिलकुल। निपट। उ०—(क) प्रथम एक जो है किया भया सो बारह बाट। कसत कसौटी ना टिका पीतर भया निराट।—कबीर (शब्द०)। (ख) साधत देह पमेहु निराट कहै मति कोई कहूँ अटकी सी।—देव (शब्द०)।

निराडंबर—वि० [सं० निराडम्बर] १. बिना ढोल का। जिसके पास ढोल न हो। २. जिसमें दिखावा न हो। सादा। आडंबर-हीन [को०]।

निरातंक[1]—वि० [सं० निरातङ्क] १. भयरहित। निर्भय। २. रोगशून्य। निरोग। ३. आतंकरहित। अनियंत्रित (को०)।

निरातंक[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

निरातप—वि० [सं०] धूप या गरमी से रक्षित या बचा हुआ। छायादार [को०]।

निरातपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

निरादर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आदर का अभाव। अपमान। बेइज्जती। क्रि० प्र०—करना।

निरादर[2]—वि० अपमानवाला। आदररहित।

निरादान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदान या लेने का अभाव। २. बुद्ध का एक नाम।

निरादान[2]—वि० कुछ न लेनेवाला।

निरादिष्ट—वि० [सं०] (कर्ज) जो पूरा पूरा चुका दिया गया हो [को०]।

निरादेश—संज्ञा पुं० [सं०] भुगतान। अदा करने या चुकाने का काम।

निराधार—वि० [सं०] १. अवलंब या आश्रयरहित। जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। जैसे,—वह निराधार ठहरा रहा। २. जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। बे जड़ बुनियाद का। अयुक्त। मिथ्या। झूठ। जैसे, निराधार कल्पना। ३. जिसे या जिसमें जीविका आदि का सहारा न हो। ४. जो बिना अन्न जल आदि के हो। जैसे,—उसने दूध तक न पिया, निराधार रह गया।

निराधि—वि० [सं०] १. रोगशून्य। नीरोग। २. चिंतारहित।

निरानंद[1]—वि० [सं० निरानन्द] आनंदरहित। जिसे आनंद न हो। खिन्न।

निरानंद[2]—संज्ञा पुं० १. आनंद का अभाव। २. दुःख।

निराना[1]—क्रि० अ० [हिं० नियराना] नियराना। नजदीक होना। उ०—हित न लखाय वहाँ हूँ हाय हाय कहा करौं, जरौं विषज्वाल पै न काल कैसें हूँ निराय।—घनानंद०, पृ० ३५।

निराना[2]—क्रि० स० [सं० निराकरण] फसल के पौधों के आसपास उगी हुई घास को खोदकर दूर करना जिसमें पौधों की बाढ़ न रुके। नींदना। निकाना। उ०—कृषी निरावहिं चतुर किसाना।—तुलसी (शब्द०)।

निरानी(पु)—वि० [हिं० निराला] पृथक्। अलग। उ० सुरति सत साखी अगम समानी। जाइ निरानी राह लए।—घट०, पृ० २६४।

निरापद—वि० [सं०] १. जिसे कोई आपदा न हो। जिसे कोई आफत या डर न हो। सुरक्षित। २. जिससे किसी प्रकार विपत्ति की संभावना न हो। जिससे हानि या अनर्थ की आशंका न हो। जैसे, निरापद उपाय, निरापद औषध। ३. जहाँ अनर्थ या विपत्ति की आशंका न हो। जहाँ किसी बात का डर या खतरा न हो। जैसे, निरापद स्थान।

निरापन(पु)—वि० [सं० उप० निर् + हिं० आपन, अपना] जो अपना न हो। पराया। बेगाना। उ०—(क) ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए चित न रहै अनुहारि। त्यों सेवतहुँ निरापने ये मातु पिता सुत नारि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सब दुःख आपने निरापने सकल सुख जौ लौं जन भयो न बजाय

राजा राम को।—तुलसी (शब्द०)। (ग) ऐसन देह निरापन बौरे मुए छुवै नहिं कोई हो।—कबीर (शब्द०)।

निरापुन—वि० [हिं०] दे० 'निरापन'। उ०—जउ लहि जिउ आपुन सब कोई। बिनु जिय सबइ निरापुन होई।—जायसी (शब्द०)।

निराबाध—वि० [सं०] १. बाधा से मुक्त या रहित। २. अबाध। ३. बिना उपद्रव का [को०]।

निरामय¹—वि० [सं०] जिसे रोग न हो। नीरोग। भला चंगा। तंदुरुस्त।

निरामय²—संज्ञा पुं० १. जंगली बकरा। २. सूअर। ३. कुशल।

निरामयता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरामय + ता (प्रत्य०)] नीरोग होने की स्थिति। आरोग्य। तंदुरुस्ती। उ०—जहाँ विरस हैं जीवन के क्षण, कहाँ निरामयता, संचेतन ? अपने रोग भोग से रहकर, निर्यातन के कर मलने दो।—गीत०, पृ० ४६।

निरामालु—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ का पेड़। कपित्थ।

निरामिष—वि० [सं०] १. मांसरहित। जिसमे माँस न मिला हो। जैसे, निरामिष भोजन। २. जो मांस न खाय। उ०—बायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।—तुलसी (शब्द०)। ३. जो कामुक या लोलुप न हो (को०)। ४. जिसे पारिश्रमिक न मिलता हो (को०)।

यौ०—निरामिषभोजी, निरामिषाशी = मांस न खानेवाला। जो मांस न खाय। शाकाहारी।

निराय—वि० [सं०] १. लाभरहित। जिसमें मुनाफा न हो। २. जिसे कुछ आय न हो [को०]।

निरायत—वि० [सं०] १ पूरा फैला हुआ। विस्तृत। २. संकुचित। सिकुड़ा हुआ [को०]।

निरायति—वि० [सं०] जिसका अंत निकट हो। जिसका कोई भविष्य न हो [को०]।

निरायत्व—संज्ञा पुं० [सं०] संकोच। ह्रस्वता। छोटाई [को०]।

निरायास—वि० [सं०] बिना श्रम का। आसान। जिसमें मेहनत न हो। सरल [को०]।

निरायुध—वि० [सं०] निरस्त्र। जिसके पास अस्त्रास्त्र न हो। निहत्था [को०]।

निरारंभ—वि० [सं० निरारम्भ] जो हर तरह के काम से दूर हो। २. आरंभरहित। अनारंभ [को०]।

निरार†—वि० [हिं० निराल या निआरा, न्यारा] अलग। पृथक्। जुदा।

निराराⓅ—वि० [हिं० निरार] दे० 'निरार'। उ०—(क) नीर खीर छानै दरबारा। दूर पानि सब करै निरारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बातहिं जानहु विषम पहारा। हिरदै मिला न होइ निरारा।—जायसी (शब्द०)।

निरालंब¹—वि० [सं० निरालम्ब] [वि० स्त्री० निरालंबा] १. बिना आलंब या सहारे का। निराधार। २. निराश्रय। बिना ठिकाने का। ३. जो अपनी मदद आप करता हो (को०)।

निरालंब²—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

निरालंबा—संज्ञा स्त्री० [सं० निरालम्बा] छोटी जटामासी।

निरालⓅ—वि० [हिं० निराला] १. निराला। अद्वितीय। उ०—साहब आपै आप निराल। आतम राम को नाम गुलाल।—भीखा श०, पृ० २०। २. अलग। पृथक्। अलिप्त। उ०—भवसागर में यों रहो ज्यों जल कँवल निराल।—संतबाणी०, पृ०, ३७।

निरालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समुद्री मछली।

निरालमⓅ—वि० [सं० निरालम्ब] १. निराधार। बिना आलंब का। अपने आप। उ०—अलघट घाटि निरालम जोति। दीपक बिन उजियारा होति।—प्राण०, पृ० १३४।

निरालस—वि० [हिं०] दे० 'निरालस्य'।

निरालसी—संज्ञा पुं० [हिं० निरालस] जो आलसी न हो।

निरालस्य¹—वि० [सं०] जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। फुरतीला। चुस्त।

निरालस्य²—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

निराला¹—संज्ञा पुं० [सं० निरालय या देश०] [वि० स्त्री० निराली] एकांत स्थान। ऐसा स्थान जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो। जैसे—(क) वहाँ निराला पड़ता है, चोर डाकू होंगे। (ख) चलो, निराले में बात करें।

निराला²—वि० १. जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो। एकांत। निर्जन। २. जिसके ऐसा दूसरा न हो। विलक्षण। सबसे भिन्न। अद्भुत। अजीब। जैसे, निराला ढंग, निराली चाल। ३. जिसके जोड़ का दूसरा न हो। अनोखा। अनुपम। अनूठा। अपूर्व। बहुत बढ़िया।

निरालाप—वि० [सं०] जो बात न करता हो। आलापरहित। मौन [को०]।

निरालेपⓅ—वि० [सं० निर्लेप] दे० 'निर्लेप'। उ०—निरालेप निरगुन नाम। निज बैठे अमरा धाम।—स० दरिया, पृ०८।

निरालोक¹—वि० [सं०] १. आलोकरहित। अँधेरा। २. जो दिखाई न दे। अदृश्य। ३. अंधा। दृष्टिहीन [को०]।

निरालोक²—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

निरावधि—वि० [सं० निरवधि] दे० 'निरवधि'। उ०—विरह निरावधि, मैं मतवारी, चिर तरुणी बावली, व्यथित मन।—रेणुका, पृ० ८१।

निरावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निराना'।

निरावरण—वि० [सं०] अनाच्छादित। खुला हुआ।

निरावलंब—वि० [सं० निरावलम्ब] बिना सहारे का। निराधार।

निरावृत—वि० [सं०] अनाच्छादित। खुला हुआ [को०]।

निराशंक—वि० [सं० निराशङ्क] निर्भय। जिसे आशंका न हो।

निराश—वि० [सं०] आशाहीन। जिसे आशा न हो। नाउम्मीद।

क्रि० प्र०—करना। होना।

निराशक—वि० [सं०] बिना आशा का [को०]।

निराशा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नाउम्मेदी । आशा का अभाव ।

निराशावाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निराशा+वाद] १. निराशा का सिद्धांत । २. आदर्शोन्मुख साहित्य के अपने स्थापित मूल्यों से च्युत हो जाने पर और यथार्थ की वास्तविक स्थिति से उसका साक्षात्कार होने पर उन स्थितियों में व्यक्त निराशा का सिद्धांत । ३. मनोज्ञान के अनुसार एक मानसिक रोग । मैलंकोलिया ।

विशेष—इसमें रोगी में आत्मविश्वास की कमी हो जाती है । वह अपने वर्तमान जीवन से असंतुष्ट होकर भविष्य के प्रति भी आस्थाहीन बन जाता है ।

निराशावादी—वि॰ [सं॰ निराशावादिन्] निराशावाद का सिद्धांत माननेवाला । उ॰—पश्चिमी साहित्य के निराशावादियों से हमें सावधान करते हुए शुक्ल जी कहते हैं ।—आचार्य॰, पृ॰ १५ ।

निराशिष—वि॰ [सं॰] १. आशीर्वादशून्य । २. तृष्णारहित ।

निराशी—वि॰ [सं॰ निराशिन्] १. हताश । नाउम्मीद । २. आशा-तृष्णा-रहित । उदासीन । विरक्त । उ॰—तुम्हें कौन पति-आएगा अब, जब तुम हुए निराशी से ?—अपलक, पृ॰ ७० ।

निराश्रम—वि॰ [सं॰] जो चार आश्रमों में से किसी में भी न हो (को॰) ।

यौ॰—निराश्रमपद=वह जंगल जिसमें एक भी आश्रम न हो ।

निराश्रमी—वि॰ [सं॰ निराश्रमिन्] दे॰ 'निराश्रम' (को॰) ।

निराश्रय—वि॰ [सं॰] १. आश्रयरहित । आधारहीन । बिना सहारे का । २. जिसे कहीं ठिकाना न हो । असहाय । अशरण । ३. जिसे शरीर आदि पर ममता न हो । निर्लिप्त ।

निराश्रित—वि॰ [सं॰ निराश्रय] दे॰ 'निराश्रय' । उ॰—किंतु विश्व की भ्रातृभावना यहाँ निराश्रित ही रोती ।—साकेत, पृ॰ ३७१ ।

निरासंग—वि॰ [सं॰ निरासङ्ग] १. कौटिल्य के अनुसार अप्रतिहत (सेना) २. आसंग अर्थात् आसक्ति से रहित ।

निरास¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । ३. विरोध (को॰) । ४. वमन (को॰) ।

निरास(पु)²—वि॰ [सं॰ निराश] दे॰ 'निराश' ।

निरासन¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । निरसन ।

निरासन²—आसनरहित ।

निरासा(पु)—स्त्री॰ संज्ञा [सं॰ निराशा] दे॰ 'निराशा' ।

निरासी(पु)—वि॰ [सं॰ निराशी] १. दे॰ 'निराशी' । २. उदासीन । विरक्त । उ॰—सनक कहीं तिय को सुख जानत संसृति विषय निरासी ।—रघुराज (शब्द॰) । ३. उदास । बेरौनक । जहाँ या जिसमें चित्त प्रसन्न न हो । उ॰—सूर स्याम बिनु यह बन सूनो शशि बिनु रैन निरासी ।—सूर (शब्द॰) ।

निरास्वाद—वि॰ [सं॰] बेस्वाद । बदजायका । बेमजा (को॰) ।

निरास्वाद्य—वि॰ [सं॰] जो कुछ भी आनंद न दे । जो आस्वाद के अयोग्य हो (को॰) ।

निराहार¹—वि॰ [सं॰] १. आहाररहित । जो बिना भोजन के हो । जिसने कुछ खाया न हो या जो कुछ न खाय । २. जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाता हो । जैसे, निराहार व्रत ।

निराहार²—संज्ञा पुं॰ आहाररहित रहना । उपवास । अनशन (को॰) ।

निराह्लाद—वि॰ [सं॰ निर्+आह्लाद] अप्रसन्न । दुःखी । उ॰—जन जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद । विकसित नर वर अपवाद नहीं, जन गुण विवाद ।—ग्राम्या, पृ॰ ५६ ।

निरिंग—वि॰ [सं॰ निरिङ्ग] निश्चल । अचल ।

निरिंगिणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरिङ्गिणी] चिक । झिलमिली । परदा ।

निरिंद्रिय—वि॰ [सं॰ निरिन्द्रिय] १. इंद्रियशून्य । जिसे कोई इंद्रिय न हो । २. जिसके हाथ, पैर, आँख, कान आदि न हों या काम के न हों ।

विशेष—मनु ने जन्मांध, क्लीव, पतित, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक इत्यादि को निरिंद्रिय कहा है और इन्हें पितृधन का अनधिकारी ठहराया है ।

३. प्रमाण या साधनहीन (को॰) । ४. अनुर्वर (को॰) । ६. नपुंसक (को॰) ।

निरिंधन—वि॰ [सं॰ निरिन्धन] बिना ईंधन का (को॰) ।

निरिच्छ—वि॰ [सं॰] इच्छारहित । जिसे कोई इच्छा न हो ।

निरिच्छना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ निरीक्षण] देखना । उ॰—मुनि के प्रतच्छ बीस अच्छ बध रच्छसनि, बैठो जो समच्छ अच्छ अच्छनि सों लख्यो है । ·········पच्छवान शैल सों बिपच्छ पर पच्छिन पै, कीश को निरिच्छो क्षमा छोहरी जो रख्यो है ।—रघुराज (शब्द॰) ।

निरी—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'निरा' ।

निरीक्षक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. देखनेवाला । २. देखरेख करनेवाला ।

निरीक्षण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ निरीक्षित, निरीक्ष्य, निरीक्ष्यमाण] १. देखना । दर्शन । २. देखरेख । निगरानी ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—होना ।

३. देखने की मुद्रा या ढंग । चितवन । ४. नेत्र । आँख ।

निरीक्षा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] देखना । दर्शन ।

निरीक्षित—वि॰ [सं॰] १. देखा हुआ । २. देखाभाला हुआ । जाँच किया हुआ ।

निरीक्ष्य—वि॰ [सं॰] १. देखने योग्य । २. जाँच के लायक । निगरानी के लायक ।

निरीक्ष्यमाण—वि॰ [सं॰] जिसको देखते हों । जो देखा जाता हो ।

निरीखन(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निरीक्षण] दे॰ 'निरीक्षण' । उ॰—बरनै दीनदयाल तेज सब करै निरीखन ।—दीन॰ ग्रं॰, पृ॰ ११७ ।

निरीछन(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निरीक्षण] दे॰ 'निरीक्षण' । उ॰—

गौरि तेरे तीछन ह्वै ईछन निरीछन तें पापी सुरलोक जाय पाय कै बिमान को।—दीन० ग्रं०, पृ० १३१।

निरीति—वि० [सं०] ईतिरहित। अतिवृष्टि आदि से रहित।

निरीश¹—वि० [सं०] १. जिसे ईश या स्वामी न हो। बिना मालिक का। २. जिसकी समझ में ईश्वर न हो। अनीश्वरवादी। नास्तिक।

निरीश²—संज्ञा पुं० हल का फाल।

निरीश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] यह सिद्धांत कि कोई ईश्वर नहीं है। भारतीय दर्शन के उन दर्शनों का सिद्धांत जिनमें ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकृत है।

निरीश्वरवादी—संज्ञा पुं० [सं० निरीश्वरवादिन्] जो ईश्वर का अस्तित्व न माने।

निरीष—संज्ञा पुं० [सं०] हल का फाल।

निरीह—वि० [सं०] १. चेष्टारहित। जो किसी बात के लिये प्रयत्न न करे। २. जिसे किसी बात की चाह न हो। ३. उदासीन। विरक्त। जो सब बातों से किनारे रहे। ४. जो किसी बखेड़े में न पड़े। तटस्थ। ५. शांतिप्रिय।

निरीहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निरीहा'। उ०—छाया पथ में तारक द्युति सी, झिलमिल करने की मधुलीला। अभिनय करती क्यों इस मन में कोमल निरीहता श्रमशीला।—कामायनी, पृ० १०४।

निरीहत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निरीहा' (को०)।

निरीहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चेष्टा का अभाव। २. चाह का न होना। विरक्ति।

निरुआर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निरुवार'।

निरुआरना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निरुवारना'।

निरुक्त¹—वि० [सं०] १. निश्चय रूप से कहा हुआ। व्याख्या किया हुआ। २. नियुक्त। ठहराया हुआ।

निरुक्त²—संज्ञा पुं० छह वेदांगों में से एक। वेद का चौथा अंग।

विशेष—वैदिक शब्दों के निघंटु की जो व्याख्या यास्क मुनि ने की है उसे निरुक्त कहते हैं। इसमें वैदिक शब्दों के अर्थों का निर्णय किया गया है। वेद के शब्दों का अर्थ प्रकट करनेवाला प्राचीन आर्ष ग्रंथ यही है। यद्यपि यास्क ने शाकपूणि और स्थौलष्ठीवी आदि अपने से पहले के निरुक्तकारों का उल्लेख किया है, तथापि उनके ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं। सायणाचार्य के अनुसार जिसमें एक शब्द के कई अर्थ या पर्याय कहे गए हों वह निरुक्त है। काशिका वृत्ति के अनुसार निरुक्त पाँच प्रकार का होता है—वर्णागम (अक्षर बढ़ाना), वर्णविपर्यय (अक्षरों को आगे पीछे करना), वर्णविकार (अक्षरों को बदलना), नाश (अक्षरों को छोड़ना) और धातु के किसी एक अर्थ को सिद्ध करना।

निरुक्त के बारह अध्याय हैं। प्रथम में व्याकरण और शब्दशास्त्र पर सूक्ष्म विचार है। इतने प्राचीन काल में शब्दशास्त्र पर ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता। शब्दशास्त्र पर दो मत प्रचलित थे इसका पता यास्क के निरुक्त से लगता है। कुछ लोगों का मत था कि सब शब्द धातुमूलक हैं और धातु क्रियापद मात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगाकर भिन्न शब्द बनते हैं। यास्क ने इसी मत का खंडन किया है। इस मत के विरोधियों का कहना था कि कुछ शब्द धातुरूप क्रियापदों से बनते हैं पर सब नहीं, क्योंकि यदि 'अश' से अश्व माना जाय तो प्रत्येक चलने या आगे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलाएगा। यास्क मुनि ने इसके उत्तर में कहा है कि जब एक क्रिया से एक पदार्थ का नाम पड़ जाता है तब वही क्रिया करनेवाले और पदार्थ को वह नाम नहीं दिया जाता। दूसरे पक्ष का एक और विरोध यह था कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए हैं तो किसी पदार्थ में जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी होने चाहिए। यास्क इसपर कहते हैं कि एक पदार्थ किसी एक गुण या कर्म से एक नाम को धारण करता है। इसी प्रकार और भी समझिए।

दूसरे और तीसरे अध्याय में तीन निघंटुओं के शब्दों के अर्थ प्रायः व्याख्या सहित हैं, चौथे से छठें अध्याय तक चौथे निघंटु की व्याख्या है। सातवें से बारहवें तक पाँचवें निघंटु के वैदिक देवताओं की व्याख्या है।

निरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निरुक्त की रीति से निर्वचन। किसी पद या वाक्य की ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदि का पूरा कथन हो। व्युत्पत्ति। किस शब्द का व्याकरण संबंध और ऐतिहासिक विकास क्रम। २. एक काव्यालंकार जिसमें किसी शब्द का मनमाना अर्थ किया जाय परंतु वह अर्थ सयुक्तिक हो। जैसे,—रूप आदि गुण सो भरी तजि कै ब्रज वनितान। उद्धव कुब्जा बस भए, निर्गुण वही निदान। तात्पर्य यह कि गुणवती ब्रजवनिताओं को छोड़कर 'गुणरहित' कुब्जा के वश होने से कृष्ण सचमुच 'निर्गुण' हो गए हैं।

निरुच्छ्वास—वि० [सं०] १ (स्थान) जहाँ बहुत से लोग न अट सकें। सँकरा। संकीर्ण। २. जहाँ ठसाठस लोग भरे हों। जहाँ खड़े होने तक की जगह न हो। ३. मृत। मरा हुआ (को०)।

निरुज(पु)—वि० [सं० नीरुज] दे० 'नीरुज'।

निरुत्कंठ—वि० [सं० निरुत्कण्ठ] जिसे कोई कामना या इच्छा न हो (को०)।

निरुत्तर—वि० [सं०] १. जिसका कुछ उत्तर न हो। लाजवाब। २. जो उत्तर न दे सके। जो कायल हो जाय। उ०—बंधुवधूरत कहि कियो वचन निरुत्तर बालि।—तुलसी (शब्द०)। ३. जिससे कोई उत्तम या बड़ा न हो (को०)।

निरुत्थ—वि० [सं०] जिसका उद्धार न हो सके (को०)।

निरुत्पात—[सं०] उत्पातरहित। अनिष्ट से परे। (को०)।

निरुत्सव—वि० [सं०] बिना उत्सव का। धूमधाम रहित (को०)।

निरुत्साह¹—वि० [सं०] उत्साहहीन। जिसे उत्साह न हो।

निरुत्साह²—संज्ञा पुं० शक्ति या उत्साह का अभाव (को०)।

निरुत्सुक—वि० [सं०] १. लापरवाह। उदासीन। २. शांत। अनुत्सुक (को०)।

निरुदक—वि० [सं०] जलहीन (को०)।

निरुदर—वि० [सं०] १. बिना पेट का। २. कृश। पतला (को०)।

निरुद्देश्य—वि० [सं०] बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य का। उद्देश्यहीन (को०)।

निरुद्ध¹—वि० [सं०] १. रुका हुआ। बँधा हुआ। प्रतिबद्ध। २. जो रोका गया हो (को०)।

निरुद्ध²—संज्ञा पुं० योग में पाँच प्रकार की मनोवृत्तियों में से एक। चित्त की वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृति को प्राप्त कर निश्चेष्ट हो जाता है।

विशेष—मन की वृत्तियाँ योग में पाँच मानी गई हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त के डाँवाडोल रहने को क्षिप्तावस्था, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य होने को मूढ़ावस्था, चंचलता के बीच बीच में चित्त की स्थिरता को विक्षिप्तावस्था, और एक वस्तु पर निश्चल रूप से स्थिर होने को एकाग्रावस्था कहते हैं। एकाग्र के उपरांत फिर निरुद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है जिसमें स्थिर होने के लिये किसी वस्तु के आलंबन की आवश्यकता नहीं होती, चित्त अपनी प्रकृति में ही स्थिर हो जाता है।

निरुद्धकंठ—वि० [सं० निरुद्धकण्ठ] रुँधे गलेवाला। जिसका कंठ रुँध गया हो।

निरुद्धगुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मलद्वार बंद सा हो जाता है और मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कष्ट से निकलता है।

निरुद्धप्रकश—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बंद सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुककर और थोड़ा थोड़ा होता है।

निरुद्धमान—वि० [सं०] रोका हुआ। जिसे रोक दिया गया हो (को०)।

निरुद्धवीर्य—वि० [सं०] जिसकी शक्ति रोक दी गई हो। जिसकी शक्ति को स्तंभित कर दिया गया हो।

निरुद्यम—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्यम न हो। उद्योगरहित। बेकाम।

निरुद्यमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुद्यम होने की क्रिया या भाव। बेकारी।

निरुद्यमी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्यमिन्] जो कोई उद्यम न करता हो। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योग—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्योग न हो। उद्योगरहित। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योगी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्योगिन्] जो कुछ उद्योग न करे। निकम्मा। बेकार।

निरुद्वेग—वि० [सं०] उद्वेग से रहित। निश्चित।

निरुन्माद—वि० [सं०] १. उन्मादरहित। २. जो घमंडी न हो। दर्पहीन (को०)।

निरुपकाराधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह थाती या धरोहर जो किसी आमदनीवाले काम में न लगी हो।

निरुपकारी—वि० [सं० निरुपकारिन्] उपकार न करनेवाला (को०)।

निरुपक्रम—वि० [सं०] जो ठीक न हो सके। असाध्य (को०)।

निरुपचार—वि० [सं० निर् + उपचार] जो उपचार के परे हो। उपचाररहित। असाध्य। उ०—यदि आत्मा को दे दूवा प्राण वासना ज्वार। जीवन निरीह, संघर्ष विरत हों, निरुपचार।—युगपथ, पृ० १३६।

निरुपजीव्य—वि० [सं०] निर्वाह के अयोग्य। जिससे गुजारा न हो (को०)।

निरुपजीव्या भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर किसी की गुजर न हो सकती हो (कौटि०)।

निरुपद्रव—वि० [सं०] १. जिसमें या जहाँ कोई उपद्रव न हो। विघ्नरहित। शांतिमय। २. जो उत्पात या उपद्रव न करता हो। ३. शुभ। कल्याणमय (को०)।

निरुपद्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुपद्रव होने की क्रिया या भाव।

निरुपद्रवी—संज्ञा पुं० [सं० निरुपद्रविन्] जो उपद्रव न करे। शांत।

निरुपधि—वि० [सं०] १. जिसमें किसी प्रकार की उपाधि न हो। वैशिष्ट्य रहित। विशेषण से अनवाच्छिन्न। २. जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति—वि० [सं०] जिसकी कोई उपपत्ति न हो। अयोग्य।

निरुपपद—वि० [सं०] १. जिसमें उपपद न हो। उपपदरहित। २. बिना उपाधि या पदवी का (को०)।

निरुपप्लव—वि० [सं०] जो क्षतिग्रस्त न हो। उत्पातरहित। निरुपद्रव (को०)।

निरुपभोग—वि० [सं०] जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम¹—वि० [सं०] जिसकी उपमा न हो। उपमारहित। बेजोड़।

निरुपम²—संज्ञा पुं० राष्ट्रकूट वंश के एक राजा का नाम।

निरुपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

निरुपमिता—वि० [सं० निर् + उपमिता] बेजोड़। अद्वितीय। उ०—छवि बेला की नभ की ताराएँ निरुपमिता।—अपरा, पृ० ६७।

निरुपयोग—वि० [सं०] जो किसी काम का न हो। व्यर्थ (को०)।

निरुपयोगी—वि० [सं०] जो उपभोग में न आ सके। व्यर्थ। निरर्थक।

निरुपल—वि० [सं०] बिना पत्थर को (को०)।

निरुपलेप—वि० [सं०] १. उपलेपरहित। अवरोध या बाधारहित। २. बिना लेपवाला। लेपरहित (को०)।

निरुपसर्ग—वि० [सं०] १. उपसर्गरहित। उपद्रवरहित। २. जो (धातु या शब्द) उपसर्गयुक्त न हो (को०)।

निरुपस्कृत—वि० [सं०] शुद्ध। पवित्र। पूत। जो उपस्कृत न हो (को०)।

निरुपहत—वि० [सं०] १. जिसे कोई क्षति न पहुँची हो। २. भाग्यवान् (को०)।

निरुपहित—वि० [सं०] (दर्शन में) बिना उपाधिवाला (को०)।

निरुपाख्य¹—वि० [सं०] १. जिसकी व्याख्या न हो सके। २. जो बिलकुल मिथ्या हो और जिसके होने की कोई संभावना न हो।

निरुपाख्य²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ब्रह्म ।

निरुपादान—वि॰ [सं॰] इच्छा या कामना से मुक्त [को॰] ।

निरुपाधि¹—वि॰ [सं॰] १. उपाधिरहित । बाधारहित । २. मायारहित ।

निरुपाधि²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ब्रह्म ।

विशेष—उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव को ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है ।

निरुपाधिक—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निरुपाधि' [को॰] ।

निरुपाय—वि॰ [सं॰] १. जो कुछ उपाय न कर सके । २. जिसका कोई उपाय न हो ।

निरुपेक्ष—वि॰ [सं॰] १. जिसमें उपेक्षा न हो । उपेक्षारहित । २. छल या धूर्तता से रहित (को॰) ।

निरुवरना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ निवारण] कठिनता आदि का दूर होना । सुलझना । उ॰—अस संयोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुवरई ।—तुलसी (शब्द॰) ।

निरुवार†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निवारण] १. छुड़ाने का काम । मोचन । २. छुटकारा । बचाव । ३. सुलझाने का काम । उलझन मिटाने का काम । ४. तै करने का काम । निबटाने का काम । ५. निर्णय । फैसला । उ॰—कहौ जाय करे बुद्ध बिचार । साँच झूठ होयहै निरुवार ।—सूर (शब्द॰) ।

निरुवारना(पु)—क्रि॰ स॰ [हिं॰ निरुवार] १. छुड़ाना । मुक्त करना । बंधन आदि खोलना । २. सुलझाना । फँसी या गुथी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना । उलझन मिटाना । उ॰—तब सोइ बुद्धि पाय उजियारा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारा ।—तुलसी (शब्द॰) । ३. तै करना । निबटाना । निर्णय करना । फैसला करना । वि॰ दे॰ 'निरवारना' ।

निरुष्णता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गरमी या ताप का अभाव [को॰] ।

निरुष्णीष—वि॰ [सं॰] बिना पगड़ी का । बिना टोपीवाला [को॰] ।

निरुष्मा—वि॰ [सं॰ निरुष्मन्] जो गरम न हो । ठंढा [को॰] ।

निरूढ़¹—वि॰ [सं॰ निरूढ] १. उत्पन्न । २. प्रसिद्ध । विख्यात । साफ या शुद्ध किया हुआ (को॰) । ४ अविवाहित । कुँआरा ।

निरूढ़²—संज्ञा पुं॰ एक प्रकार का पशुयाग ।

निरूढलक्षणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरूढ लक्षणा] वह लक्षणा जिसमें प्रयोगपरंपरा के कारण शब्द का पुराना लक्ष्यार्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल मुख्यार्थबाध या प्रयोजन के कारण ही न ग्रहण किया गया हो । रूढ़ि या प्रसिद्धि को प्राप्त अभिधेयार्थ तुल्य लक्ष्यार्थ बोधक लक्षणा । जैसे, कर्मकुशल । 'कुशल' शब्द का मुख्य अर्थ है कुश उखाड़ने में प्रवीण । पर यहाँ लक्षणा द्वारा वह साधारणतः दक्ष या प्रवीण के अर्थ में ग्रहण किया जाता है ।

निरूढ़वस्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरूढवस्ति] वैद्यक में एक प्रकार की वस्ति या पिचकारी जिसमें रोगी की गुदा में एक विशेष प्रकार की नली के द्वारा कुछ ओषधियाँ पहुँचाई जाती हैं । यह क्रिया डाक्टरी एनिमा की क्रिया के समान ही होती है ।

निरूढ़ा¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरूढा] दे॰ 'निरूढ़लक्षणा' ।

निरूढ़ा²—वि॰ स्त्री॰ [सं॰] अविवाहिता । कुँआरी ।

निरूढ़ि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निरूढि] १. निरूढ़लक्षणा । २. प्रसिद्धि । ३. पटुता । दक्षता (को॰) । ४. सत्यापन । प्रमाणीकरण । पुष्टिकरण (को॰) ।

निरूता(पु)—वि॰ [सं॰ नि + रुत] बिना शब्दवाला । चुप । मौन । उ॰—घटि घटि गोरख फिरै निरूता को घट जागे को घट सूता ।—गोरख॰, पृ॰ १५ ।

निरूप¹—वि॰ [हिं॰ नि + रूप] १. रूपरहित । निराकार । उ॰—मोहन माँग्यो अपनो रूप । यहि ब्रज बसत अँचै तुम बैठी ता बिन वहाँ निरूप ।—सूर (शब्द॰) । २. कुरूप । बद-शकल । उ॰—मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो चंद बहुरूप अनुरूप कै बिचारिए ।—केशव (शब्द॰) ।

निरूप²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वायु । २. देवता । ३. आकाश ।

निरूपक—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ निरूपिका] किसी विषय का निरूपण करनेवाला ।

निरूपण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. प्रकाश । २, किसी विषय का विवेचना-पूर्वक निर्णय न या निर्धारण । विचार । प्रमेय, पदार्थ आदि का भेदोपभेदकथन पूर्वक विस्तृत विवेचन । ३. अन्वेषण । ढूँढ़ना (को॰) । ४. आकार । आकृति । रूप (को॰) । ५. निदर्शन ।

निरूपणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'निरूपण' [को॰] ।

निरूपना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ निरूपण] निर्णय करना । ठहराना । निश्चित करना । उ॰—(क) नेति नेति जेहि वेद निरूपा ।—तुलसी (शब्द॰) । (ख) भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान ।—तुलसी (शब्द॰) ।

निरूपम—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निरुपम' ।

निरूपित—वि॰ [सं॰] निरूपण किया हुआ । जिसकी विस्तृत विवेचना हो चुकी हो । जिसका निर्णय हो चुका हो ।

निरूपिति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. व्याख्या । २. अनुसंधान । परीक्षण । छानबीन [को॰] ।

निरूप्य—वि॰ [सं॰] जो निरूपण करने योग्य हो ।

निरूप्यमाण—वि॰ [सं॰] जिसका निरूपण किया जा रहा हो । जिसपर विचार चल रहा हो । जो विवेचन का विषय हो ।

निरूह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. एक प्रकार की वस्ति या एनिमा । २. तर्क । ३. निश्चय । ४. पूर्ण वाक्य [को॰] ।

निरूहण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वस्ति चढ़ाना । एनिमा देना । २. निश्चय करना । ३. तर्क करना (को॰) ।

निरूहवस्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'निरूढ़वस्ति' ।

निरेखना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ निरीक्षण] देखना । निरखना । निरीक्षण करना । उ॰—(क) हनुमान भए दग औरई से गज लौं गति मंद निरेखयो री ।—हनुमान (शब्द॰) । (ख) न टरैं मन मोहनो चाहि रहैं सब सोतैं सकानी निरेखिबो री ।—हनुमान (शब्द॰) ।

निरेभ—वि॰ [सं॰] बिना शब्द का । बिना आवाज का [को॰] ।

निरै(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निरय] नरक ।

निरैठी(पु)—वि॰ [हिं॰ निरी + ऐंठी] गुमान भरी। मस्त। उ॰—रूप गुन ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी, लाड़नि निरैठी मति बोलनि हुरै हुरी।—घनानंद, पृ॰ ५७।

निरोग‡—वि॰ [सं॰ नीरोग] रोगरहित। जिसे कोई रोग न हो। स्वस्थ।

निरोगी‡—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नीरोग] वह व्यक्ति जिसे कोई रोग न हो। स्वस्थ। तंदुरुस्त।

निरोठा†—वि॰ [देश॰] बदसूरत। बदशकल। कुरूप।

निरोद्धव्य—वि॰ [सं॰] निरोध करने के योग्य (को॰)।

निरोध—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. रोक। अवरोध। रुकावट। बंधन। २. घेरा। घेर लेना। उ॰—तब रावण सुनि लंका निरोध। उपज्यो तन मन अति परम क्रोध।—केशव (शब्द॰)। ३. नाश। ४. योग में चित्त की समस्त वृत्तियों को रोकना जिसमें अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है। चित्तवृत्तियों के निरोध के उपरांत मनुष्य को निर्बीज समाधि प्राप्त होती है। ५. दंड देना। चोट पहुँचाना (को॰)। ६. वशीभूत करना। निग्रह (को॰)। ७. अरुचि। नापसंदगी (को॰)। ८. नैराश्य (को॰)।

निरोधक—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ निरोधिका] रोकनेवाला। जो रोकता हो। निरोध करनेवाला।

निरोधन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. रोक। रुकावट। २. पारे का छठा संस्कार (वैद्यक)। ३. दे॰ 'निरोध'।

निरोधपरिणाम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] योग शास्त्र के अनुसार चित्तवृत्ति की वह अवस्था जो व्युत्थान और निरोध के मध्य में होती है।

विशेष—योगशास्त्र में क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त इन तीन राजसिक परिणामों को व्युत्थान कहते हैं और विशुद्ध सत्वगुण की प्रधानता होने पर जो अवस्था प्राप्त होती है उसे निरोध कहते हैं। जब व्युत्थान से उत्पन्न संस्कारों का अंत हो जाता है और निरोध का आरंभ होने को होता है तब चित्त का थोड़ा थोड़ा संबंध दोनों ओर रहता है। उस अवस्था को निरोधपरिणाम कहते हैं।

निरोधी—वि॰ [सं॰ निरोधिन्] निरोध करनेवाला। प्रतिबंध या रुकावट करनेवाला।

निरौनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ निराना + औनी (प्रत्य॰)] १. खेत निराने के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का ग्राम्य गीत। उ॰—वह निरौनी आदि कई प्रकार की ग्राम्य गीतों से भी मिलती है।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ३५२। २. निराने की क्रिया। उ॰—होत निरौनी जबै धान के खेतन माहीं।—प्रेमघन॰, भा॰ १, पृ॰ ४८। ३. निराने की मजदूरी।

निरौषध—वि॰ [सं॰ निर् + औषध] १. बिना औषध का। २. जिसका कोई उपचार न हो। उ॰—गरीबदास जी ने देख लिया कि यह रोग निरौषध है।—कबीर मं॰, पृ॰ ६०७।

निर्ऋत—वि॰ [सं॰] १. क्षरित। नष्ट। २. क्षीण। दुर्बल। कमजोर (को॰)।

निर्ऋति[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. नैर्ऋत कोण की स्वामिनी। २. राक्षसी। ३. मृत्यु। ४. दरिद्रता। ५. विपत्ति। ६. पृथ्वी का निम्न तल (को॰)। ७. मूल नक्षत्र का एक नाम। दे॰ 'निऋति'।

निर्ऋति[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. अष्ट वसुओं का नाम। २. एक रुद्र (को॰)।

निर्कैवल(पु)—वि॰ [हिं॰ निर् + केवल] १. निखालिस। बिना मिलावट का। २. शुद्ध। उ॰—निर्कैवल निर्भय नाम सहाई।—दरिया॰, पृ॰ ३१।

निर्ख—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] भाव। दर।

यौ॰—निर्ख दारोगा। निर्खनामा। निर्खबंदी।

क्रि॰ प्र॰—मुकर्रर करना।—बाँधना।

निर्खदारोगा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] मुसलमानों के राजत्वकाल में बाजार का वह दारोगा जो चीजों के भाव या दर आदि की निगरानी करता था।

निर्खनामा—संज्ञा पुं॰ [फा॰] मुसलमानों के राजत्वकाल की वह सूची जिसमें बाजार की प्रत्येक वस्तु का भाव लिखा रहता था।

निर्खबंदी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] किसी चीज का भाव या दर निश्चित करने की क्रिया।

निर्गंध—वि॰ [सं॰ निर्गन्ध] जिसमें किसी प्रकार का गंध न हो। गंधहीन।

यौ॰—निर्गंधपुष्पी।

निर्गंधता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निर्गन्धता] निर्गंध होने की क्रिया या भाव।

निर्गंधन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निर्गन्धन] बध। घातन। हत्या करना (को॰)।

निर्गंधपुष्पी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निर्गन्धपुष्पी] सेमर का पेड़।

निर्ग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] देश।

निर्गत[1]—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ निर्गता] निकला हुआ। बाहर आया हुआ।

निर्गत[2]—संज्ञा पुं॰ दे॰ 'निर्यात'। जैसे—निर्गत कर।

निर्गन(पु)—वि॰ [सं॰ निर्गुण] दे॰ 'निर्गुण' उ॰—सुबर बीर संग्राम गुन अति गुन निर्गन बंधि।—पृ॰ रा॰, २५। ६४७।

निर्गम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. निकास। निकलने का मार्ग। २. गमन। पयान (को॰)। ३. द्वार। दरवाजा। ४. वह स्थान जहाँ से वस्तुओं का निर्यात होता है (को॰)।

निर्गमन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. निकलने का काम। निकलना। २. द्वार जिसमें से होकर निकलते हैं। ३. द्वारपाल (को॰)।

यौ॰—निर्गमन मार्ग = निकलने, बाहर जाने का रास्ता।

निर्गमना(पु)—क्रि॰ अ॰ [सं॰ निर्गमन] निकलना। उ॰—इक प्रबिसहिं इक निर्गमहिं भीर भूप दरबार।—तुलसी (शब्द॰)।

निर्गर्व—वि॰ [सं॰] जिसे किसी प्रकार का गर्व या अभिमान न हो।

निर्गलित—वि० [सं०] १. बहा हुआ । २. निकल गया हुआ । ३. घुला हुआ । मिला हुआ । गला हुआ [को०] ।

निर्गवाक्ष—वि० [सं०] बिना झरोखे का । जिसमें वातायन या खिड़की न हो [को०] ।

निर्गुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गुण्डी] दे० 'निर्गुंडी' ।

निर्गुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गुण्डी] एक प्रकार का क्षुप । संभालू । सम्हालू । सिंदुवार ।

विशेष—इसके प्रत्येक सीके में अरहर की पत्तियों के समान पाँच पाँच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचे का भाग सफेद होता है । इसकी अनेक जातियाँ हैं । किसी में काले और किसी में सफेद फूल लगते हैं । फूल आम के बौर के समान मंजरी के रूप में लगते हैं और केसरिया रंग के होते हैं । वैद्यक में इसे स्मरणशक्ति वर्धक, गरम, रूखी, कसैली, चरपरी, हलकी, नेत्रों के लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, आमवात, कृमि, प्रदर, कोढ़, अरुचि, कफ और ज्वर को दूर करनेवाली माना है । औषधियों में इसकी जड़ का व्यवहार होता है ।

पर्या०—नीलिका । नीलनिर्गुंडी । सिंदुक । नीलसिंदुक । पीतसहा । भूतकेशी । इंद्राणी । कपिका । शेफालिका । शीतभीरु । नीलमंजरी । वनजा । मरुत्पुत्री । कर्तरीपत्रा । इंद्राणिका । सिंदुवार ।

निर्गुंडीकल्प—संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण्डीकल्प] वैद्यक के अनुसार निर्गुंडी और शहद को मिलाकर एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई औषध ।

विशेष—यह आँखों की ज्योति बढ़ानेवाली, और कोढ़, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदर आदि रोगों को दूर करनेवाली तथा बहुत ही पौष्टिक समझी जाती है ।

निर्गुंडीतैल—संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण्डीतैल] वैद्यक में एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ निर्गुंडी का तेल ।

विशेष—यह सब प्रकार के फोड़े, फुंसियों, अपची तथा कंठमाला आदि को अच्छा करनेवाला माना जाता है ।

निर्गुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से परे । परमेश्वर ।

निर्गुण[2]—वि० १. जो सत्व, रज और तम तीन गुणों से परे हो । २. जिसमें कोई अच्छा गुण न हो । बुरा । खराब । ३. प्रपंचरहित । (धनुष) जिसमें रोदा न हो (को०) । ४. विशेषता या गुणों से रहित (को०) ।

निर्गुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुण होने की क्रिया या भाव ।

निर्गुणभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर कुछ भी पैदा न होता हो । ऊसर जमीन (कौटि०)।

निर्गुणिया—वि० [सं० निर्गुण + हिं० इया (प्रत्य०)] वह जो निर्गुण ब्रह्म की उपासना करता हो ।

निर्गुणी—वि० [सं० निर्गुण] जिसमें कोई गुण न हो । गुणों से रहित । मूर्ख ।

निर्गुन—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण' ।

निर्गुल्म—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गुल्मा] क्षुप या झाड़ी से रहित [को०]

निर्गूढ़[1]—संज्ञा पुं० [सं. निर्गूढ] वृक्ष का कोटर ।

निर्गूढ़[2]—वि० जो बहुत गूढ हो ।

निर्गृह—वि० [सं०] गृहहीन । बिना घर का [को०] ।

निर्गृही—वि० [सं० निर्गृह] दे० 'निर्गृह' [को०] ।

निर्गौरव—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गौरवा] १. गौरव रहित । सम्मान रहित । २. जिसमें बड़प्पन न हो [को०] ।

निर्ग्रंथ[1]—संज्ञा पुं० [सं० निर्ग्रन्थ] १. बौद्ध क्षपणक । २. दिगंबर । ३. एक प्राचीन मुनि का नाम । ४. जुआड़ी (को०) । ५. मूर्ख व्यक्ति (को०) । ६. मारण । वध (को०) ।

निर्ग्रंथ[2]—वि० १. निर्धन । गरीब । २. मूर्ख । बेवकूफ । ३. जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो । निःसहाय । ४. वस्त्रहीन । ५. नग्न (को०) । ६. वध करनेवाला (को०) । ७. जिसे किसी प्रकार का बंधन न हो (को०) । ८. फलरहित । निष्फल (को०) ।

निर्ग्रंथक[1]—वि० [सं० निर्ग्रन्थक] १. एकाकी । अलग । २. फलहीन । निष्फल । ३. चतुर । कुशल । ४. त्यागा या छोड़ा हुआ । त्यक्त ।

निर्ग्रंथक[2]—संज्ञा पुं० १. बौद्ध क्षपणक । २. दिगंबर जैन । ३. जुआड़ी [को०] ।

निर्ग्रंथन—संज्ञा पुं० [सं० निर्ग्रन्थन] वध [को०] ।

निर्ग्रंथिक[1]—वि० [सं० निर्ग्रन्थिक] १. चतुर । २. जिसमें गाँठ न हो [को०] ।

निर्ग्रंथिक[2]—संज्ञा पुं० दे० 'निर्ग्रन्थक' [को०] ।

निर्ग्रंथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्ग्रन्थिका] बौद्ध भिक्षुणी [को०] ।

निर्ग्राह्य—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष या साक्षात् करने योग्य । २. अनुभव के योग्य । ३. लेने या अपनाने लायक [को०] ।

निर्घंट—संज्ञा पुं० [सं० निर्घण्ट] १. शब्द या ग्रंथसूची । फिहरिस्त । २. दे० 'निघंटु' (को०) ।

निर्घट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह हाट या बाजार जहाँ किसी प्रकार का राजकर न लगता हो । २. भरा हुआ या भीड़ भाड़ से युक्त हाट (को०) ।

निर्घात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शब्द जो हवा के बहुत तेज चलने से होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार दिन के भिन्न भिन्न भागों में इस प्रकार के शब्द होने के भिन्न भिन्न शुभ अशुभ परिणाम होते हैं । जिस समय निर्घात होता हो उस समय किसी प्रकार का मंगल कार्य करना निषिद्ध है ।

२. बिजली की कड़क । ३. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र । ४. बरबादी । विनाश (को०) । ५. तूफान । वात्याचक्र । बवंडर (को०) । ६. भूकंप । भूचाल (को०) । ७. आघात । धक्का (को०) ।

निर्घातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार अस्त्रचिकित्सा की एक क्रिया का नाम। २. बाहर करना। निकालना (को०)।

निर्घुष्ट—वि० [सं०] घोषित [को०]।

निर्घिन—वि० [सं० निर्घृण] दे० 'निर्घृण'। उ०— निर्घिन थे हम क्योंकि राग से था संघर्ष हमारा —सम०, पृ० २२।(ख) भो स्वर्वासी अमर मनुज सा निर्घिन होता तू भी। —साम०, पृ० २२।

निर्घृण—वि० [सं०] १. जिसे घृणा न हो। जिसे गंदी और बुरी वस्तुओं से घिन न लगे। २. जिसे बुरे कामों से घृणा या लज्जा न हो। ३. बिना घृणावाले मनुष्यों का। अति नीच। अयोग्य। निकम्मा। निंदित। उ०—ज्यों त्यों करके अपने निर्घृण जीवन को बिताने का मनसूबा मैंने ठान लिया।—सरस्वती (शब्द०)। ४. निर्दय। बेरहम। दयाहीन। उ०—रावण क्यों न तज्यो तब ही इन। सीय हरी जबहीं वह निर्घृण।—केशव (शब्द०)।

निर्घृणा—संज्ञा पुं० [सं०] निर्दयता। क्रूरता। धृष्टता। अविनीतता [को०]।

निर्घोष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निर्घोषित] शब्द। आवाज।

निर्घोष[2]—वि० [सं०] शब्दरहित।

निर्चा—संज्ञा पुं० [हिं०] चंचु नामक साग। विशेष—दे० 'चंचु'।

निर्छल—वि० [सं० निश्छल] जिसे किसी प्रकार का छल या कपट न आता हो। निष्कपट।

निर्जंतु—वि० [सं० निर्जन्तु] जंतुओं या कीटाणुओं से मुक्त [को०]।

निर्जन[1]—वि० [सं०] १. जहाँ कोई मनुष्य न हो। सुनसान। २. सेवकरहित (को०)।

निर्जन[2]—संज्ञा पुं० उजाड़ जगह। मरुस्थल। सुनसान स्थान [को०]।

निर्जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण विजय [को०]।

निर्जर[1]—वि० [सं०] जिसे कभी बुढ़ापा न आवे। कभी बुड्ढा न होनेवाला।

निर्जर[2]—संज्ञा पुं० १ देवता।

विशेष—देवता लोग जरा अर्थात् बुढ़ापे से सदा रहित माने जाते हैं, इसीलिये वे 'निर्जर' कहलाते हैं। उनको चिरकिशोर या चिर तरुण भी इसी कारण कह दिया जाता है।

२. सुधा। अमृत।

निर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुडुच। गिलोय। २. तालपर्णी। ३. संचित कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना। (जैन)।

निर्जरायु—वि० [सं०] (साँप) जिसने केंचुल छोड़ दिया हो। बिना चमड़े का [को०]।

निर्जल[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री निर्जला] बिना जल का। जल के संसर्ग से रहित। २. जिसमें जल पीने का विधान न हो। जैसे, निर्जल व्रत।

निर्जल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जल बिल्कुल न हो।

निर्जलद—वि० [सं०] मेघ से रहित। बिना बादल का [को०]।

निर्जल व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत या उपवास जिसमें व्रती जल तक न पीए।

निर्जला एकादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जेठ सुदी एकादशी तिथि, जिस दिन लोग निर्जल व्रत रखते हैं।

निर्जाड्य—वि० [सं०] १. जड़ता या मूर्खता से रहित। २. पाला या तुषार से रहित। ३ शीत से मुक्त। ठंडक से रहित [को०]।

निर्जिज्ञास—वि० वि० [सं०] जानने या समझने की इच्छा न रखनेवाला [को०]।

निर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीता हुआ। जिसे जीत लिया गया हो। २. जो वश में कर लिया गया हो।

निर्जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निर्जय' [को०]।

निर्जितेंद्रियग्राम—संज्ञा पुं० [सं० निर्जितेन्द्रियग्राम] वह व्यक्ति जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। यति [को०]।

निर्जिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] मंडूक। मेढक [को०]।

निर्जीव—वि० [सं०] १. जीवरहित। बेजान। मृतक। प्राणहीन। २. अशक्त या उत्साहहीन।

निर्जीवन वि० [सं० निर् + जीवन] दे० 'निर्जीव'। उ०—पृथ्वी की बहती लू, निर्जीवन जड़ चेतन।—अपरा, पृ० ६०।

निर्जीवित—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—प्रेयसि कविते! हे निरुपमिते! अधरामृत से इन निर्जीवित शब्दों में जीवन लाओ।—वीणा, पृ० १।

निर्ज्ञाति—वि० [सं०] जिसके बंधुबांधव या संबंधी न हों [को०]।

निर्ज्ञान—वि० [सं०][वि० स्त्री० निर्ज्ञाना] मूर्ख। असभ्य [को०]।

निर्ज्वर—वि० [सं०] ज्वरविहीन [को०]।

निर्झर—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी ऊँचे स्थान या पर्वत से निकला हुआ पानी का झरना। सोता। चश्मा। झरना। २. सूर्य के एक घोड़े का नाम (को०)। ३. हाथी (को०)। ४. तुषाग्नि। भूसी की आग (को०)।

निर्झरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी। झरने के रूप से निकलकर बहनेवाली नदी [को०]।

निर्झरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निर्झरिणी' [को०]।

निर्झरी[2]—संज्ञा पुं० [सं० निर्झरिन्] पर्वत। पहाड़ [को०]।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] १. औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना। किसी विषय में कोई सिद्धांत स्थिर करना। निश्चय। २. वादी और प्रतिवादी की बातों को सुनकर उनके सत्य अथवा असत्य होने के संबंध में कोई विचार स्थिर करना। फैसला। निबटारा। (स्मृतियों में यह चतुष्पाद व्यवहार का अंतिम पाद है)। ३. मीमांसा में किसी स्थिर सिद्धांत से कोई परिणाम निकालना। ४. हटाना। दूर करना (को०)।

यौ०—निर्णयपाद = दे० 'निर्णय—२।

निर्णयन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय करना। निबटाना [को०]।

निर्णयोपमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान के गुणों और दोषों की विवेचना की जाती है।

निर्णर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के एक घोड़े का नाम [को०]।

निर्णायक—वि० [सं०] निर्णय करनेवाला [को०]।

निर्णायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चय करना। स्थिर करना। २. गंडस्थल। हाथी के कान का बाहरी किनारा [को०]।

निर्णिक्त—वि० [सं०] १. धौत। धुला हुआ। साफ। शुद्ध किया हुआ। २. जिसके लिये प्रायश्चित्त किया गया हो [को०]।

निर्णिक्तमना—वि० [सं० निर्णिक्तमनस्] शुद्ध या पवित्र हृदयवाला [को०]।

निर्णिक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धोना। साफ करना। २. प्रायश्चित्त [को०]।

निर्णीत—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ। जिसका निर्णय हो चुका हो।

निर्णेक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निर्णेजन' [को०]।

निर्णेजक—संज्ञा पुं० [सं०] धोबी [को०]।

निर्णेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोने या नहाने का जल। २. प्रायश्चित्त। ३. शुद्ध करना या धोना [को०]।

निर्णेता[1]—वि० [सं० निर्णेतृ] [वि०स्त्री० निर्णेत्री] निर्णय करनेवाला [को०]।

निर्णेता[2]—संज्ञा पुं० १. विचारपति। जज। २. मार्गदर्शक। ३. प्रमाणपत्र। लेखसाक्ष्य [को०]।

निर्णोद—संज्ञा पुं० [सं०] बहिष्कार। निष्कासन [को०]।

निर्त(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] नृत्य। नाच।

निर्तक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नर्तक] १. नाचनेवाला। नट। २. भाँड़।

निर्तना(पु)†—क्रि० अ० [सं० नृत्य] नाचना। नृत्य करना।

निर्दंड[1]—वि० [सं० निर्दण्ड] जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकें।

निर्दंड[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकते हैं।

निर्दंभ—वि० [सं० निर्दम्भ] जिसे दंभ या अभिमान न हो। दंभहीन।

निर्दई(पु)†—वि० [हिं० निर्दयी] दे० 'निर्दय'।

निर्दग्ध—वि० [सं०] १. जला हुआ। दग्ध। २. जो न जला हो। अदग्ध [को०]।

निर्दट, निर्दड—वि० [सं०] १. दुर्धर्ष। उग्र। २. निष्ठुर। दयाशून्य। ३. पागल। ४. अनावश्यक। बेकाम का। ५. ईर्ष्यालु [को०]।

निर्दय—वि० [सं०] जिसे कुछ भी दया न हो। निष्ठुर। बेरहम।

निर्दयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दय होने की क्रिया या भाव। बेरहमी। निष्ठुरता।

निर्दयी(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'निर्दय'।

निर्दर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झरना। २. कंदरा। गुफा। ३. तत्व। सार [को०]।

निर्दर[2]—वि० १. निर्दय। २. कठोर। कठिन। ३. बेशर्म। निरभय [को०]।

निर्दल—वि० [सं०] १. जिसमें पत्ता न हो। २. गुटबंदी से दूर।

निर्दलन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वंस। वध। विनाश [को०]।

निर्दशन—वि० [सं०] बिना दाँत का [को०]।

निर्दहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिलावें का पेड़। २. जलाना (को०)।

निर्दहन—वि० १. दाहरहित। अग्निरहित। २. जलानेवाला। ज्वलनशील [को०]।

निर्दहना(पु)†—क्रि० स० [सं० दहन] जला देना। उ०—को न क्रोध निर्दहो काम बस केहि नहिं कीन्हा।—तुलसी (शब्द०)।

निर्दहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। चूरनहार। मुर्रा। मरोड़फली।

निर्दाता—संज्ञा पुं० [सं० निर्दातृ] १. देनेवाला। दाता। २. खेत निराने या काटनेवाला [को०]।

निर्दारित—वि० [सं०] १. सुपोषित। मोटा ताजा। २. निर्लिप्त। बिना लगाव का [को०]।

निर्दिष्ट—वि० [सं०] १. जिसका निर्देश हो चुका हो। २. बतलाया या नियत किया हुआ। जिसके संबंध में पहले ही कुछ बतलाया या निश्चय कर दिया गया हो। ठहराया हुआ। जैसे,—(क) सब लोग निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गए। (ख) आप निर्दिष्ट समय पर आ जाइएगा।

निर्दूषण—वि० [सं०] दे० 'निर्दोष'।

निर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ को बतलाना या दिखाना। संकेत करना। २. ठहराना या निश्चित करना। ३. आज्ञा। हुकुम। ४. कथन। ५. उल्लेख। जिक्र। ६. वर्णन। ७. नाम। संज्ञा। ८. उपांत। सामीप्य (को०)।

निर्देशक—वि० [सं०] १. निर्देश करनेवाला। दिखानेवाला। २. पथप्रदर्शक [को०]।

निर्देश्य—वि० [सं०] १. निर्देश करने योग्य। २. बतलाने या दिखाने योग्य। ३. प्रायश्चित्त करने योग्य [को०]।

निर्देष्टा—वि० [सं० निर्देष्टृ] [वि० स्त्री० निर्देष्ट्री] १. बताने या दिखानेवाला। २. मार्ग दिखानेवाला [को०]।

निर्दैन्य—वि० [सं०] दीनतारहित। जो दीन न हो [को०]।

निर्दोष—वि० [सं०] १. जिसमें कोई दोष न हो। बेऐब। बे दाग। २. जिसने कोई अपराध न किया हो। बेकसूर।

निर्दोषता—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्दोष + ता (प्रत्य०)] निर्दोष होने की क्रिया या भाव। अकलंकता। शुद्धता। दोषविहीनता।

निर्दोषी—वि० [हिं०] दे० 'निर्दोष'—२।

निर्द्रव्य—वि० [सं०] १. जो भौतिक न हो। २. द्रव्यरहित। धनहीन। गरीब [को०]।

निर्द्रुम—वि० [सं०] वृक्षहीन [को०]।

निर्द्रोह—वि० [सं०] द्वेष या मत्सर से रहित [को०]।

निर्द्वंद—वि० [सं० निर्द्वन्द्व] दे० 'निर्द्वंद्व'।

निर्द्वंद्व—वि० [सं० निर्द्वन्द्व] १. जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो। जिसका कोई द्वंद्वी न हो। २. जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से रहित या परे हो। ३. स्वच्छंद। बिना बाधा का।

निर्धन¹—वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। धनहीन। गरीब। दरिद्र। कंगाल।

निर्धन²—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।

निर्धनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धन होने की क्रिया या भाव। गरीबी। कंगाली। दरिद्रता।

निर्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जो धर्म से रहित हो।

निर्धातु—वि० [सं०] हीनवीर्य। अशक्त [को०]।

निर्धार, निर्धारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठहराना या निश्चित करना। २. निश्चय। निर्णय। ३. न्याय के अनुसार किसी एक जाति के पदार्थों में से गुण या कर्म आदि के विचार से कुछ को अलग करना। जैसे,—काली गौएँ बहुत दूध देनेवाली होती हैं। यहाँ गो जाति में से अधिक दूध देनेवाली होने के कारण काली गौएँ पृथक् की गई हैं।

निर्धारना—क्रि०स० [सं० निर्धारण] निश्चित करना। निर्धारित करना। ठहराना।

निर्धारित—वि० [सं०] जिसका निर्धारण हो चुका हो। निश्चित किया हुआ। ठहराया हुआ।

निर्धार्य—वि० [सं०] १. निर्धारण के योग्य। जिसका निर्धारण किया जा सके। २. उद्योगी। उद्यमी। उत्साह से काम करनेवाला। ३. निर्भय। निर्भीक [को०]।

निर्धूत¹—वि० [सं०] धोया हुआ। बहाया हुआ। दूर किया हुआ। उ०—साधु पद सलिल निर्धूत कलमष सकल स्वपच जवनादि कैवल्यभागी।—तुलसी (शब्द०)।

निर्धूत²—वि० [सं०] १. खंडित। टूटा हुआ। २. जिसका त्याग कर दिया गया हो। ३. फेंका हुआ। प्रक्षिप्त (को०)। ४. हिलाया या झकझोरा हुआ। (को०)।

निर्धूत³—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसे उसके संबंधियों ने त्याग दिया हो [को०]।

निर्धूम—वि० [सं०] बिना धुएँ वाला [को०]।

निर्धौत—वि० [सं०] धुला हुआ। साफ। २. चमकदार। चमकीला।

निर्नर—वि० [सं०] जिसे मनुष्यों ने त्याग दिया हो [को०]।

निर्नाथ—वि० [सं०] अनाथ। बिना अभिभावक का [को०]।

निर्नाथता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रँड़ापा। वैधव्य। २. सुरक्षा का अभाव। ३. अनाथ की दशा [को०]।

निर्नायक—वि० [सं०] नायकरहित। बिना राजा का। शासकहीन [को०]।

निर्निद्र—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नींद का। जागरूक [को०]।

निर्निमित्त, निर्निमित्तक—वि० [सं०] अकारण। बिना वजह।

निर्निमेष¹—क्रि० वि० [सं०] बिना पलक झपकाए। एकटक।

निर्निमेष²—वि० १. जो पलक न गिरावे। २. जिसमें पलक न गिरे। जैसे, निर्निमेष दृष्टि।

निर्पक्ष(पु)†—वि० [हिं० निर + पक्ष] दे० 'निष्पक्ष'।

निर्फल—वि० [हिं० निर + फल] दे० 'निष्फल'।

निर्बंध¹—संज्ञा पुं० [सं० निर्बन्ध] १. रुकावट। अड़चन। २. जिद। हठ। ३. आग्रह।

निर्बंध—वि० बंधनहीन। अबाध। स्वतंत्र।

निर्बंधी—वि० [सं० निर्बन्ध] बिना किसी बंधन के। बिना किसी बाधा या रुकावट के। उ०—पवना खेलै तहाँ निर्बंधी।—प्राण०, पृ०११।

निर्बर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण [को०]।

निर्बल—वि० [सं०] बलहीन। कमजोर।

निर्बलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमजोरी।

निर्बहना(पु)—क्रि० अ० [सं० निर्वहन] १. पार होना। अलग होना। दूर होना। उ०—जे नाथ करि करुणा बिलोके त्रिविध दुख ते निर्बहे।—तुलसी (शब्द०)। २. क्रम का चलना। निभना। पालन होना। उ०—जानों बात राम की कही। प्रीति न काहू सो निर्बही।—कबीर (शब्द०)।

निर्बाचन—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाचन] दे० 'निर्वाचन'।

निर्बाण—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाण] दे० 'निर्वाण'।

निर्बाध—वि० [सं०] बेरोक। अबाध। २. निर्जन। एकांत। ३. बिना उपद्रव का। निरुपद्रव [को०]।

निर्बाधित—वि० [सं० निर्बाध] बाधाहीन।

निर्बास(पु)—वि० [सं० निर + वास] जिसके कोई वास रहने की जगह न हो। अनिकेत। उ०—निर्दुंदो निर्वैरता सहजो अरु निर्बास। संतोषी निर्मल दसा तकै न पर की आस।—सहजो०, पृ०१९।

निर्बीज—वि० [सं०] जिसमें बीज न हो। दे० 'निर्वीज' [को०]।

निर्बुद्धि—वि० [सं०] जिसे बुद्धि न हो। मूर्ख। बेवकूफ।

निर्बैरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्बैर + ता (प्रत्य०)] बैर या द्वेष-राहित्य। वैरविहीनता। उ०—निर्दुंदो निर्बैरता सहजो अरु निर्बास। संतोषी निर्मल दसा तकै न पर की आस।—सहजो०, पृ० १६।

निर्बोध—वि० [सं०] जिसे कुछ भी बोध न हो। जिसे अच्छे बुरे का कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञान। अनजान।

निर्भग्न—वि० [सं०] १. टूटा फूटा। २. झुका हुआ। टेढ़ा। ३. हीन। निकृष्ट [को०]।

निर्भट—वि० [सं०] कठोर। दृढ़ [को०]।

निर्भय¹—वि० [सं०] १. जिसे कोई डर न हो। निडर। बेखौफ।

निर्भय²—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। २. बढ़िया घोड़ा।

निर्भयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निडरपन। निडर होने का भाव। २. निडर होने की अवस्था।

निर्भर¹—वि० [सं०] १. पूर्ण। भरा हुआ। उ०—सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर। कबहिं देखिबे नयन भरि

राम लखन दोउ बीर।—तुलसी (शब्द०)। २. युक्त। मिला हुआ। ३. अवलंबित। आश्रित। मुनहसर। ४. गाढ़। जैसे, निर्भर परिरंभ (को०)। ५. अतिशय तीव्र। गहरा। अत्यधिक। जैसे, निर्भर निद्रा (को०)।

निर्भर²—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो। बेगार। २. आधिक्य। अतिशयता (को०)।

निर्भरना(पु)—क्रि० स० [हिं०] आप्लावित होना। अत्यंत भार जाना। उ०—अमृत भिर्भ(र) लाई। उलट दरियाव निर्भरिया।—रामानंद०, पृ० १०।

निर्भर्त्सन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भर्त्सन। डाँट डपट। तिरस्कार। २. निंदा। ३. अलता।

निर्भर्त्सना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाँट डपट। बुरा भला कहना। २. निंदा। बदनामी।

निर्भाग्य—वि० [सं०] भाग्यहीन [को०]।

निर्भास—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाशित होना। उद्भासित होना [को०]।

निर्भिन्न—वि० [सं०] १. प्रकट। उद्घाटित। २. छिद्रित। ३. विदीर्ण। फटा हुआ [को०]।

निर्भीक—वि० [सं०] बेडर। निडर। जिसे डर न हो।

निर्भीकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्भीक होने की क्रिया या भाव।

निर्भीत—वि० [सं०] जिसे भय न हो। निडर।

निर्भूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतर्धान होना। गायब होना।

निर्भृति—वि० [सं०] बिना तनखाह का (सेवक)। (मजूरा) जो बिना उजरत के काम करे [को०]।

निर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. फाड़ना। २. छेद करना। वेधन। ३. खोलना। पर्दाफाश करना। ४. पता लगाना। ५. नदी का पेटा। ६. भेदरहित कथन। स्पष्ट कथन (को०)।

निर्भ्रम¹—वि० [सं०] भ्रमरहित। शंकारहित। जिसमें कोई संदेह न हो।

निर्भ्रम²—क्रि० वि० निधड़क। बेखटके। बिना संकोच के। स्वच्छंदता से। बेडर। उ०—स्यामा स्याम सुभग जमुना जल निर्भ्रम करत बिहार।—सूर (शब्द०)।

निर्भ्रांत—वि० [सं० निर्भ्रान्त] १. भ्रमरहित। निश्चित। जिसमें कोई संदेह न हो। २. जिसको कोई भ्रम न हो।

निर्मथ, निर्मथन, निर्मंथ्य—संज्ञा पुं० [सं० निर्मन्थ, निर्मन्थन, निर्मन्थ्य] दे० 'निर्मंथ' [को०]।

निर्मक्षिक—वि० [सं०] जहाँ कोई (अर्थात् मक्खी तक) न हो। एकांत। सुनसान [को०]।

निर्मज्ज—वि० [सं०] मज्जा या चरबी से रहित। दुबला पतला [को०]।

निर्मंथ—संज्ञा पुं० [सं०] अरणि जिसे रगड़कर यज्ञों के लिये आग निकालते हैं।

निर्मंथन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निर्मंथ'।

निर्मथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नालिका या नली नाम का गंधद्रव्य।

निर्मद—वि० [सं०] १. जिसे घमंड न हो। २. अप्रमत्त। ३. खिन्न [को०]।

निर्मना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्माण] दे० 'निर्माना'।

निर्मनुज, निर्मनुष्य—वि० [सं०] १. जहाँ आदमी न हों। गैर आबाद। २. आदमियों द्वारा त्यक्त [को०]।

निर्मम—वि० [सं०] जिसे ममता न हो। जिसको कोई वासना न हो।

निर्मर्याद—वि० [सं०] १. मर्यादाहीन। जिसने मर्यादा छोड़ दी हो। २. उद्धत। अशिष्ट [को०]।

निर्मल¹—वि० [सं०] १. मलरहित। साफ। स्वच्छ। २. पापरहित। शुद्ध। पवित्र। ३. दोषरहित। निर्दोष। कलंकहीन।

निर्मल²—संज्ञा पुं० १. अभ्रक। २. निर्मली।

निर्मलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफाई। स्वच्छता। २. निष्कलंकता। ३. शुद्धता। पवित्रता।

निर्मला—संज्ञा पुं० [सं० निर्मल] १. एक नानकपंथी संप्रदाय।

विशेष—इसके प्रवर्तक रामदास नामक एक महात्मा थे। इस संप्रदाय के लोग गेरुए वस्त्र पहनते और साधु संन्यासियों की भाँति रहते हैं।

२. इस संप्रदाय का कोई व्यक्ति।

निर्मली—संज्ञा पुं० [सं० निर्मल] १. एक प्रकार का मझोला सदाबहार वृक्ष जो बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण भारत और बरमा में पाया जाता है। कतक। पाय पसारी। चाकसू।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, कड़ी और मजबूत होती है, और इमारत, खेती के औजार और गाड़ियाँ आदि बनाने के काम में आती है। चीरने के समय इसकी लकड़ी का रंग अंदर से सफेद निकलता है परंतु हवा लगते ही कुछ भूरा या काला हो जाता है। इस वृक्ष के फल का गूदा खाया जाता है और इसके पके हुए बीजों का, जो कुचले की तरह के परंतु उससे बहुत छोटे होते हैं, आँखों, पेट तथा मूत्रयंत्र के अनेक रोगों में व्यवहार होता है। गँदले पानी को साफ करने के लिये भी ये बीज उसमें घिसकर डाल दिए जाते हैं जिससे पानी में मिली हुई मिट्टी जल्दी बैठ जाती है।

२. रीठे का वृक्ष या फल।

निर्मलोपल—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक।

निर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृक्का। असबरग।

निर्मांस—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो भोजन के अभाव के कारण बहुत दुबला हो गया हो। जैसे, तपस्वी या दरिद्र भिखमंगा आदि।

निर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रचना। बनावट। २. बनाने का काम।

निर्माणविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमारत, नहर, पुल इत्यादि बनाने की विद्या। वास्तुविद्या। इंजीनियरी।

निर्माता—संज्ञा पुं० [सं० निर्मातृ] निर्माण करनेवाला। बनानेवाला। स्रष्टा। जो बनावे।

निर्मात्रिक—वि० [सं०] बिना मात्रा का। जिसमें मात्रा न हो।

निर्मानⓅ—वि० [सं० निर् + मान] जिसका मान न हो । बेहद । अपार । उ०—नित्य निर्मम नित्ययुक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूल ।—तुलसी (शब्द०) ।

निर्मानाⓅ—क्रि० स० [सं० निर्माण] बनाना । रचना । उत्पन्न करना । उ०—ब्रह्मा ऋषि मरीचि निर्मायो । ऋषि मरीचि कश्यप उपजायो ।—सूर (शब्द०) ।

निर्मायलⓅ[१]—संज्ञा पुं० [सं० निर्माल्य] दे० 'निर्माल्य' ।

निर्मायलⓅ[२]—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल' । उ० गुर द्रयाउ सरोवर सत पूरा । अति निर्मायल अमृत भरपूरा ।—प्राण, पृ० १८४ ।

निर्माल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो किसी देवता पर चढ़ चुका हो । देवता पर चढ़ चुकी हुई चीज । देवार्पित वस्तु ।

विशेष—(क) जो पुष्प, फल और मिष्ठान्न आदि किसी देवता पर चढ़ाए जाते हैं वे विसर्जन से पहले 'नैवेद्य' और विसर्जन के उपरांत 'निर्माल्य' कहलाते हैं । (ख) शिव के अतिरिक्त और सब देवताओं के निर्माल्य पुष्प और मिष्टान्न आदि ग्रहण किए जाते हैं ।

निर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृक्का । असबरग ।

निर्मित—वि० [सं०] बनाया हुआ । रचित ।

निर्मिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्माण । बनाने की क्रिया । रचना । २. बनाने का भाव ।

निर्मुक्त[१]—वि० [सं०] १. जो मुक्त हो गया हो । जो छूट गया हो । २. जिसके लिये किसी प्रकार का बंधन न हो ।

निर्मुक्त[२]—संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसने अभी हाल में केंचुली छोड़ी हो ।

निर्मुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति । छुटकारा । २. मोक्ष ।

निर्मूल—वि० [सं०] १. जिसमें जड़ न हो । बिना जड़ का । २. जिसकी जड़ न रह गई हो । जड़ से उखाड़ा हुआ । जैसे, निर्मूल करना । ३. जिसका कोई आधार, बुनियाद या असलियत न हो । बेजड़ । जैसे, निर्मूल बात । ४. जिसका मूल ही न रह गया हो । जो सर्वथा नष्ट हो गया हो । जैसे, रोग को निर्मूल करना ।

निर्मूलक—वि० [सं० निर्मूल + क (प्रत्य०)] दे० 'निर्मूल' ।

निर्मूलन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मूल होना या करना । विनाश ।

निर्मृष्ट—वि० [सं०] जो अच्छी तरह धुला, पोछा या साफ किया हो । मिटाया हुआ (को०) ।

निर्मेघ—वि० [सं०] मेघरहित । अनभ्र । बादल से रहित । उ०—शुभ्र जो था निर्मेघ गगन, सुभग मेरा संगी जीवन ।—माया, पृ० ४१ ।

निर्मेध—वि० [सं०] जिसे मेधा न हो । मूर्ख । बेवकूफ (को०) ।

निर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप की केंचुली । २. शरीर के ऊपर की खाल । ३. पुराणानुसार सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । ४. तेरहवें मनु के सप्तर्षियों में से एक का नाम । ५. आकाश । ६. कवच । सन्नाह । जिरहबक्तर (को०) । ७. मुक्त करना । छोड़ना । त्यागना (को०) ।

निर्मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्ण मोक्ष जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी न रह जाय । २. त्याग ।

निर्मोलⓅ†—वि० [सं० निर्मूल्य; सं० निः + हिं० मोल] जिसके मूल्य का अनुमान न हो सके । अमूल्य । उ०—नैना लोभहिं लोभ भरे ।···जोइ देखें सोइ सोइ निर्मोलै कर ले तहीं धरे ।—सूर (शब्द०) ।

निर्मोह[१]—वि० [सं०] १. जिसके मन में मोह या अज्ञान न हो । २. दया, ममता से रहित । निष्ठुर ।

निर्मोह[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रैवत मनु के एक पुत्र का नाम । २. सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । ३. शिव (को०) ।

निर्मोहिनी—वि० स्त्री० [हिं० निर्मोही + इनी (प्रत्य०)] निर्दय । जिसके चित्त में ममता या दया न हो । कठोरहृदय । उ०—वा निर्मोहिनी रूप की रासि जो ऊपर के उर आनति ह्वै है । ·· आवत हैं नित मेरे लिये इतनो ते बिसेष हू आवति ह्वै है ।—ठाकुर (शब्द०) ।

निर्मोहिया†—वि० [हिं० निर्मोही + इया (प्रत्य०)] दे० 'निर्मोही' ।

निर्मोही—वि० [सं० निर्मोह] जिसके हृदय में मोह या ममता न हो । निर्दय । कठोरहृदय ।

निर्यंत्रण—वि० [निर्यन्त्रण] १. जो नियंत्रण न माने । बिना रुकावट का । २. निरंकुश । स्वेच्छाचारी (को०) ।

निर्यत्न—वि० [सं०] अक्रिय । सुस्त । आलसी । बोदा (को०) ।

निर्याण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर निकलना । २. यात्रा । रवानगी । प्रस्थान । विशेषतः सेना का युद्धक्षेत्र की ओर अथवा पशुओं का चराई की ओर प्रस्थान । ३. वह सड़क जो किसी नगर से बाहर की ओर जाती हो । ४. अदृश्य होना । गायब होना । ५. शरीर से आत्मा का निकलना । मृत्यु । ६. मोक्ष । मुक्ति ७. हाथी की आँख का बाहरी कोना । ८. पशुओं के पैरों में बाँधने की रस्सी । बंधन । ९. लोह । लोहा (को०) ।

निर्यात[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो बेचने के लिये विदेश भेजा गया हो । आयात का उल्टा । रफ्तनी । निर्गत । जैसे,—निर्यात कर । निर्यात व्यापार ।

यौ०—निर्यात कर = विक्रयार्थ बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओं पर लगनेवाला कर ।

निर्यात[२]—वि० बाहर गया हुआ । प्रस्थित ।

निर्यातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला चुकाना । २. प्रतीकार । ३. मार डालना । ४. ऋण चुकाना । ५. (न्यस्त या धरोहर की वस्तु को) लौटाना । वापस करना (को०) । ६. उपहार । भेंट (को०) ।

निर्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति । निर्याण । २. जाना । गमन । प्रयाण । ३. मृत्यु (को०) ।

निर्यातित—वि० [सं०] वापस किया हुआ । लौटाया हुआ (को०) ।

निर्यापित—वि० [सं०] १. जाने के लिये बाध्य किया हुआ। २. अपवारित। समाप्त किया हुआ।

निर्याम—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

निर्यामक—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक। वह जो किसी काम में मदद करे [को०]।

निर्यामकत्व—संज्ञा पुं० [सं० निर्याम] सहायकत्व। मदद (संतरण में) मल्लाही। उ०—सुप्पारक के कुशल निर्यामकत्व में सात सौ यात्रियों की नौयात्रा का उल्लेख है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २९७।

निर्यामणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहाय्य। सहायकत्व। सहायक होने का भाव [को०]।

निर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षों या पौधों में से आपसे आप अथवा उसका तना आदि चीरने से निकलनेवाला रस। २. गोंद। ३. बहना या झरना। क्षरण। ४. क्वाथ। काढ़ा।

निर्युक्तिक—वि० [सं०] १. विच्छिन्न किया हुआ। अलग किया हुआ। २. निरर्थक। जिसमें कोई तर्क न हो। ३. अयोग्य। जो उचित न हो [को०]।

निर्यूथ—वि० [सं०] झुंड से भटका हुआ। दल से बिछुड़ा हुआ। जैसे, हाथी [को०]।

निर्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निर्यास'।

निर्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्वाथ। काढ़ा। २. द्वार। दरवाजा। ३. सिर पर पहनी जानेवाली कोई चीज। जैसे, मुकुट आदि। ४. दीवार में लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय। खूँटी।

निर्लज्ज—वि० [सं०] लज्जाहीन। बेशर्म। बेहया।

निर्लज्जता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेशर्मी। बेहयाई। निर्लज्ज होने का भाव।

निर्लिंग—वि० [सं० निर्लिङ्ग] लिंग अर्थात् लक्षणरहित। जिसमें पहचानने का कोई चिह्न न हो [को०]।

निर्लिप्त¹—वि० [सं०] १. राग द्वेष आदि से मुक्त। जो किसी विषय में आसक्त न हो। २. जो लिप्त न हो। जो कोई संबंध न रखता हो। बेलौस।

निर्लिप्त²—संज्ञा पुं० १. कृष्ण का एक नाम। २. संत [को०]।

निर्लुंचन—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुञ्चन] छीलना। नोचना [को०]।

निर्लुंठन—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुण्ठन] १. लूटना। पददलित करना। २. छेदना। फाड़ना। विद्ध करना [को०]।

निर्लेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी चीज पर जमी हुई मैल आदि खुरचना। २. वह चीज जिससे मैल खुरची जाय (सुश्रुत)।

निर्लेप—वि० [सं०] १. विषयों आदि से अलग रहनेवाला। निर्लिप्त। २. लेपरहित। कलईरहित। (को०)।

निर्लोभ—वि० [सं०] जिसे लोभ न हो। लालच न करनेवाला।

निर्लोभी—वि० [सं० निर्लोभ + ई (प्रत्य०)] दे० 'निर्लोभ'।

निर्लोम—वि० [सं०] बिना रोए का [को०]।

निर्लोमा—वि० [सं० निर्लोमन्] [वि० स्त्री० निर्लोम्नी] बिना रोएँ का [को०]।

निर्वंश—वि० [सं०] जिसके आगे वंश चलानेवाला कोई न हो।

निर्वंशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वंश होने का भाव।

निर्वचन¹—वि० [सं०] १. मौन। २. निर्दोष। निष्कलंक [को०]।

निर्वचन²—क्रि० वि० चुपचाप [को०]।

निर्वचन³—संज्ञा पुं० [वि० निर्वचनीय] १. उच्चारण। २. कहावत। लोकोक्तियाँ। ३. शब्दसूची। ४. निरुक्ति। ५. प्रशंसा [को०]।

निर्वचनीय—वि० [सं०] कहने योग्य। व्याख्या करने योग्य। निर्वचन के योग्य [को०]।

निर्वण—वि० [सं०] १. जंगल से बाहर। २. नग्न। खुला हुआ। ३. जंगल से रहित [को०]।

निर्वत्सल—वि० [सं०] जो बच्चों को प्यार न करे। जिसमें वत्सलता न हो [को०]।

निर्वन—वि० [सं०] दे० 'निर्वण' [को०]।

निर्वपण¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्वपणी] १. तर्पण संबंधी। २. देनेवाला [को०]।

निर्वपण²—संज्ञा पुं० १. तर्पण। २. देना। दान। प्रदान। ३. वितरण [को०]।

निर्वयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प की केंचुल। निर्मोक [को०]।

निर्वैर—वि० [सं०] १. निर्लज्ज। बेशरम। २. निर्भय। निडर।

निर्वर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखना। लक्ष्य करना। २. सावधानी से देखना [को०]।

निर्वर्तित—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो। निष्पन्न [को०]।

निर्वसन—वि० [सं०] वस्त्रहीन। नग्न [को०]।

निर्वसु—वि० [सं०] धनहीन। गरीब [को०]।

निर्वहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निबाह। गुजर। निर्वाह। २. समाप्ति। ३. नाटक में कथा की समाप्ति उपसंहृति [को०]।

यौ०—निर्वहण संधि = नाटक की पाँच संधियों में से अंतिम। इन पाँच संधियों के नाम हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण। अंतिम को उपसंहृति भी कहा गया है।

निर्वहना—क्रि० अ० [सं० निर्वहन] गुजर करना या होना। निभना। चला चलना। परंपरा का पालन होना।

निर्वाक्—वि० [सं० निर्वाच्] जिसके मुँह से बात न निकले। जो चुप हो।

निर्वाक्य—वि० [सं०] जो बोल न सकता हो। गूँगा।

निर्वाचक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रातिनिधिक संस्था के सदस्य या प्रतिनिधि के निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। वह जिसे किसी कार्यकर्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो। मताधिकारप्राप्त मनुष्य। निर्वाचन करनेवाला।

निर्वाचकसंघ, निर्वाचकसमूह—संज्ञा पुं० [सं०] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो। एलेक्टरेट।

निर्वाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुतों में से एक या अधिक को चुनने

या पसंद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। २. किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या चिट्ठी डालकर चुनने या पसंद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे आदमी निर्वाचित हुए हैं।

यौ०—निर्वाचनक्षेत्र = चुनाव का क्षेत्र।

निर्वाचनी संस्था—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निर्वाचक संघ'।

निर्वाचित—वि० [सं०] १. निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। २. जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस डिवीजन से व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाच्य—वि० [सं०] १. न कहने योग्य। २. जिसपर आपत्ति न की जा सके। निर्दोष [को०]।

निर्वाण[1]—वि० [सं०] १. बुझा हुआ (दीपक, अग्नि आदि)। २. अस्त। डूबा हुआ। ३. शांत। धीमा पड़ा हुआ। ४. मृत। मरा हुआ। ५. निश्चल। ६. शून्यता को प्राप्त। ७. बिना बाण का।

निर्वाण[2]—संज्ञा पुं० १. बुझना। ठंढा होना। २. समाप्ति। न रह जाना। ३. अस्त। गमन। डूबना। ४. हाथी को धोना या नहाना (को०)। ५. संगम। संयोग। मिलन (को०)। ६. समाप्ति। पूर्णता (को०)। ७. शांति। ८. मुक्ति। मोक्ष।

विशेष—यद्यपि मुक्ति के अर्थ में निर्वाण शब्द का प्रयोग गीता, भागवत, रघुवंश, शारीरक भाष्य इत्यादि नए पुराने ग्रंथों में मिलता है, तथापि यह शब्द बौद्धों का पारिभाषिक है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा (पूर्व) और वेदांत में क्रमश: मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा कैवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है पर बौद्ध दर्शन में बराबर निर्वाण शब्द ही आया है और उसकी विशेष रूप से व्याख्या की गई है। बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान (या उत्तरीय) और महायान (या दक्षिणी)। इनमें से हीनयान शाखा के सब ग्रंथ पाली भाषा में हैं और बौद्ध धर्म के मूल रूप का प्रतिपादन करते हैं। महायान शाखा कुछ पीछे की है और उसके सब ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। महायान शाखा में ही अनेक आचार्यों द्वारा बौद्ध सिद्धांतों का निरूपण गूढ़ तर्कप्रणाली द्वारा दार्शनिक दृष्टि से हुआ है। प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का जिन बौद्ध आचार्यों से शास्त्रार्थ होता था वे प्राय: महायान शाखा के थे। अत: निर्वाण शब्द से क्या अभिप्राय है इसका निर्णय उन्हीं के वचनों द्वारा हो सकता है। बोधिसत्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'भवसंतति का उच्छेद ही निर्वाण है, अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हम बार बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा भवबंधन का नाश हो सकता है। रत्नकूटसूत्र में बुद्ध का यह वचन है: 'राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है। वज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपधि है, उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता। माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपंचनिवर्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं। यह शून्यता या निर्वाण क्या है? न इसे भाव कह सकते हैं, न अभाव। क्योंकि भाव और अभाव दोनों के ज्ञान के क्षय का ही नाम तो निर्वाण है, जो अस्ति और नास्ति दोनों भावों के परे और अनिर्वचनीय है। माधवाचार्य ने भी अपने सर्वदर्शनसंग्रह में शून्यता का यही अभिप्राय बतलाया है—'अस्ति, नास्ति, उभय और अनुभय इस चतुष्कोटि से विनिर्मुक्ति ही शून्यत्व है'। माध्यमिक सूत्र में नागार्जुन ने कहा है कि अस्तित्व (है) और नास्तित्व (नहीं है) का अनुभव अल्पबुद्धि ही करते हैं। बुद्धिमान लोग इन दोनों का उपशमरूप कल्याण प्राप्त करते हैं। उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि निर्वाण शब्द जिस शून्यता का बोधक है उससे चित्त का ग्राह्यग्राहकसंबंध ही नहीं है। मैं भी मिथ्या, संसार भी मिथ्या। एक बात ध्यान देने की है कि बौद्ध दार्शनिक जीव या आत्मा की भी प्रकृत सत्ता नहीं मानते। वे एक महाशून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

यौ०—निर्वाणप्रुषिष्ठ = मुक्त। निर्वाणमस्तक = मोक्ष। निर्वाणरुचि = मोक्ष की प्राप्ति में लगा हुआ।

निर्वाणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम।

निर्वाणी—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक शासन देवता।

निर्वात—वि० [सं०] १. जहाँ हवा न हो। जहाँ हवा का झोंका न लग सके। २. जो चंचल न हो। स्थिर। शांत।

निर्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवाद। निंदा। २. अवज्ञा। लापरवाई।

निर्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान। २. वह दान जो पितरों के उद्देश्य से किया जाय। ३. (बीज आदि) बोना। वपन (को०)। ४. बुझाना। शांत करना (आग, दीया आदि)। दे० 'निर्वपण'।

निर्वापक—वि० [सं०] बुझानेवाला [को०]।

निर्वापण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठंढा करने की क्रिया। २. तरोताजा करना। ३. बुझाना (प्यास)। ४. आनंदित करना। ५. वध करना। ६. (आग आदि) बुझाना। शांत करना। ७. बीज आदि का बोना। वपन (को०)।

निर्वापित—वि० [सं०] शांत। बुझा हुआ। उ०—उनके सहारे की अंतिम किरण भी निर्वापित हो जायगी।—प्रतिमा,पृ०११४।

निर्वार्य—वि० [सं०] १. जिसका निवारण न किया जा सके। २. जो निर्भय काम करे [को०]।

निर्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्वासन। निकाल देना। २. प्रवास। विदेशयात्रा। ३. हिंसन। वध। मारण [को०]।

निर्वासक—वि० [सं०] निर्वासन करनेवाला।

निर्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार डालना। वध। २. गाँव, शहर या देश आदि से दंडस्वरूप बाहर निकाल देना। देशनिकाला। ३. निकालना। ४. विसर्जन।

निर्वासित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बहिष्कृत [को०]।

निर्वास्य—वि० [सं०] निर्वासन के योग्य [को०]।

निर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी क्रम या परंपरा का चला चलना। किसी बात का जारी रहना। निबाह। जैसे, प्रीति का निर्वाह, कार्य का निर्वाह। २. किसी बात के अनुसार बराबर आचरण। पालन। जैसे, प्रतिज्ञा का निर्वाह, वचन का निर्वाह। ३. समाप्ति। पूरा होना। ४. गुजारा।

निर्वाहक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी काम का निर्वाह करे।

निर्वाहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके ले जाने का निषेध हो। २. नाटक की पाँच संधियों में एक। निर्वहण संधि (को०)। ३. निभाना। निबाहना। पूरा करना (को०)।

निर्वाहना(पु)—क्रि० स० [सं० निर्वाह + हिं० ना (प्रत्य०)] निर्वाह करना। उ०—दोष न कछू है तुम्हैं नेह निर्वाहे को।—पद्माकर (शब्द०)।

निर्विंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्विन्ध्या] विंध्याचल से निकली हुई एक छोटी नदी जिसका उल्लेख मेघदूत में है।

निर्विकल्प[1]—वि० [सं०] १. जो विकल्प, परिवर्तन या प्रभेदों आदि से रहित हो। २. स्थिर। निश्चित।

निर्विकल्प[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'निर्विकल्प समाधि'।

निर्विकल्प[3]—संज्ञा पुं० दे० 'निर्विकल्पक'।

निर्विकल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदांत के अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय में भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। २. न्याय के अनुसार वह अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञान जो इंद्रियजन्य ज्ञान से बिलकुल भिन्न होता है। बौद्ध शास्त्रों के अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्प समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदि का कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानंद ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

विशेष—इस समाधि की तुलना योग की सुषुप्ति अवस्था के साथ की जा सकती है।

निर्विकार[1]—वि० [सं०] विकाररहित। जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो।

निर्विकार[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म।

निर्विकास—वि० [सं०] जो खिला न हो। अनखिला [को०]।

निर्विघ्न[1]—वि० [सं०] विघ्नबाधा रहित। जिसमें कोई विघ्न न हो।

निर्विघ्न[2]—क्रि० वि० बिना किसी प्रकार के विघ्न या बाधा के। जैसे,—सब कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया।

निर्विचार[1]—वि० [सं०] विचाररहित। जिसमें कोई विचार न हो।

निर्विचार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सबीज समाधि।

विशेष—यह किसी सूक्ष्म आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और इस समाधि में उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है। ऐसी समाधि सबसे उत्तम समझी जाती है और उससे चित्त निर्मल होता है और बुद्धि सर्वप्रकाशक हो जाती है

निर्विचिकित्स—वि० [सं०] १. संदेह से रहित। संशयहीन। २. चिंतन से रहित [को०]।

निर्विचेष्ट—वि० [सं०] जिसमें कोई चेष्टा या हरकत न हो। संज्ञाहीन [को०]।

निर्विण्ण—वि० [सं०] १. खिन्न। २. खेद या दुःख से पराभूत। ३. विरागयुक्त। ४. नम्र। ५. ज्ञात। निश्चित [को०]।

निर्वितर्क—वि० [सं०] वितर्करहित। जिसपर तर्क वितर्क न हो सके [को०]।

निर्वितर्क समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सबीज समाधि जो किसी स्थूल आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और जिसमें उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है।

निर्विद्ध—वि० [सं०] १. घायल। आहत। २. वियुक्त। एकाकी [को०]

निर्विद्य—वि० [सं०] विद्याहीन। जो पढ़ा लिखा न हो।

निर्विरोध—वि० [सं०] विरोधरहित। खंडनरहित। जिसका विरोध न हो [को०]।

निर्वित(पु)—वि० [सं० निवृत्त] दे० 'निवृत्त'। उ०—माया से निर्वित भजन को करैं बड़ाई।—पलटू०, भा० १, पृ० १३।

निर्विवाद—वि० [सं०] जिसमें कोई विवाद न हो। बिना झगड़े का।

निर्विवेक—वि० [सं०] जो किसी बात की विवेचना न कर सकता हो। विवेकहीन।

निर्विवेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विवेक होने का भाव।

निर्विशेष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. परब्रह्म। परमात्मा। २. भेद या अंतर का अभाव (को०)।

निर्विशेष—वि० जिसमे कोई अंतर न हो। समान। बिना भेद का [को०]।

निर्विशेषण—वि० [सं०] विशेषणरहित। विशेषताविहीन। जिसमें कोई गुण न हो [को०]।

निर्विष—वि० [सं०] विषहीन। जिसमें विष न हो।

निर्विषय—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से दूर कर दिया गया हो। २. जिसे कार्य करने को कोई क्षेत्र न हो। ३. वासना से रहित। जैसे, मन [को०]।

निर्विषा—संज्ञा संज्ञा [सं०] दे० 'निर्विषी'।

निर्विषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलवर्ग की जाति की एक घास। जदवार।

विशेष—यह पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और मलयागिरि में

अधिकता से होती है। इसकी जड़ अतीस के समान होती है जिसका व्यवहार सांप बिच्छू आदि के विषों के अतिरिक्त शरीर के और भी अनेक प्रकार के विषों का नाश करने के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह जड़ कटु, शीतल, व्रण को भरनेवाली और कफ, वात, रुधिरविकार, विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—निर्विषा। अपविषा। विविषा। विषहा। विषहन्त्री। विषाभावा। अविषा। विषवैरिणी।

निर्विष्ट—वि० [सं०] १. जो भोग कर चुका हो। २. जो विवाह कर चुका हो। ३. जो अग्निहोत्र कर चुका हो। ४. जो मुक्त हो गया हो। ५. जो पा चुका हो। जैसे, वेतन (को०)। ६. बैठा हुआ (को०)।

निर्विहार—वि० [सं०] आनंदहीन। निरानंद (को०)।

निर्वीज—वि० [सं०] १. बीजरहित। जिसमें बीज न हो। २. पुंस्त्वहीन। पुरुषत्व रहित (को०)। ३. जो कारण से रहित हो।

निर्वीज समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातंजल के अनुसार समाधि की वह अवस्था जिसमें चित्त का निरोध करते करते उसका अवलंबन या बीज भी विलीन हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य को सुख दुःख आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्वीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश नाम का मेवा।

निर्वीर—वि० [सं०] वीरों से रहित। वीरहीन (को०)।

निर्वीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति और पुत्र न हो।

निर्वीर्य—वि० [सं०] वीर्यहीन। बल या तेज से रहित। कमजोर। निस्तेज। नपुंसक।

निर्वृक्ष—वि० [सं०] वृक्षहीन (को०)।

निर्वृत[1]—वि० [सं०] १. संतुष्ट। प्रसन्न। २. बेपरवाह चिंताहीन ३. समाप्त। पूर्ण (को०)।

निर्वृत[2]—संज्ञा पुं० घर। आवास (को०)।

निर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतोष। आनंद। २. विश्रांति। शांति। ३. मोक्ष। ४. पूर्णता। ५. स्वतंत्रता। मुक्ति। ६. मरण। नाश (को०)।

निर्वृत्त—वि० [सं०] जो पूरा हो गया हो। जिसकी निष्पत्ति हो गई हो।

निर्वृत्तात्मा—संज्ञा पुं० [सं० निर्वृत्तात्मन्] विष्णु।

निर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पत्ति।

निर्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] भृति।

निर्वेग—वि० [सं०] जिसमें वेग या गति न हो। स्थिर।

निर्वेतन—वि० [सं०] अवैतनिक। बिना वेतन का (को०)।

निर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपना अपमान। २. वैराग्य। ३. खेद। दुःख। ४. अनुताप। ५. साहित्य में शांत रस का स्थायी भाव।

निर्वेध—संज्ञा पुं० [सं०] चुभना। भेदन की क्रिया (को०)।

निर्वेधिम—संज्ञा [सं०] सुश्रुत के अनुसार कान छेदने का एक औजार।

निर्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोग। २. वेतन। तनखाह। ३. विवाह। ब्याह। शादी। ४. मूर्छा। बेहोशी।

निर्वेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] ढरकी, जुलाहे जिसपर बाने का सूत लपेटते हैं (को०)।

निर्वैयक्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० निर् + वैयक्तिक + ता (प्रत्य०)] वैयक्तिक या निज का न होने का भाव।

निर्वैर—[1]वि० [सं०] जिसमें वैर न हो। द्वेष से रहित।

निर्वैर —[2]—संज्ञा पुं० वैर का अभाव (को०)।

निर्वैरता—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्वैर + ता (प्रत्य०)] वैर का अभाव। निर्वैर। उ०—आपा मेटै हरि भजै तन मन तजै विकार।—सब ही सूं निर्वैरता दादू यो मत सार।—राम० धर्म०, पृ० २८५।

निर्व्यथ—वि० [सं०] दे० 'निर्व्यथन' (को०)।

निर्व्यथन[1]—वि० [सं०] १. पीड़ा से मुक्त। २. स्थिर। शांत (को०)।

निर्व्यथन[2]—संज्ञा पुं० १. छिद्र। विवर। गुफा। २. अत्यंत पीड़ा (को०)।

निर्व्यलीक—वि० [सं०] निष्कपट। छलरहित। उ०—संकर हृदय पुंडरीक निवसत हरि चंचरीक निर्व्यलीक मानस गृह संतत रहे छाई।—तुलसी (शब्द०)। २. तत्परता के साथ काम करनेवाला। प्रसन्न। (को०)।

निर्व्यवधान—वि० [सं०] व्यवधानरहित। बाधारहित। खुला हुआ। उन्मुक्त (को०)।

निर्व्यवस्थ—वि० [सं०] क्रमरहित। कभी यह, कभी यह करनेवाला (को०)।

निर्व्यसन—वि० [सं०] जिसमें बुरी लत न हो। दुर्व्यसन से मुक्त (को०)।

निर्व्याज—वि० [सं०] १. निष्कपट। छलरहित। उ०—पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज धरिए ध्यानु।—केशव (शब्द०)। २. बाधारहित। ३. नैसर्गिक (को०)। ४. शुद्ध। सच्चा (को०)।

निर्व्याधि—वि० [सं०] व्याधि या रोग से मुक्त।

निर्व्यापार—वि० [सं०] १. बेकार। २. निष्क्रिय। गतिहीन (को०)।

निर्व्यूढ़—वि० [सं० निर्व्यूढ] १. समाप्त या पूरा किया हुआ। २. परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ३. प्रमाणित या चरितार्थ किया हुआ। सिद्ध किया हुआ। ४. परित्यक्त (को०)।

निर्व्यूढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्व्यूढि] १. समाप्ति। २. द्वार। दरवाजा। ३. खूंटी। ४. शीर्षबिंदु। ५. क्वाथ। काढ़ा। ६. कलगी (को०)।

निर्व्रण—वि० [सं०] अक्षत। बिना घाव या व्रण का (को०)।

निर्हरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निर्हारी] १. शव को जलाने के लिये ले जाना। २. निकालना। बाहर करना (को०)। ३. जलाना। ४. नाश करना।

निर्हाद—संज्ञा पुं० [सं०] मलत्याग। पुरीषोत्सर्ग (को०)।

निर्हार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर निकालना । २. काढ़ना । खींच निकालना । ३. निर्मूलन । उपारना (जड़ आदि) । ४. मलमूत्र का त्याग । ५. व्यक्तिगत निधि । ६. घटाना [को०] ।

निर्हारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शव को गृह से बाहर करे या श्मशान तक ले जाय [को०] ।

निर्हारी—संज्ञा पुं० [सं० निर्हारिन्] १. निकालनेवाला । २. दूर तक फैलनेवाला । ३. महकनेवाला [को०] ।

निर्हेतु, निर्हेतुक—वि० [सं०] जिसमें कोई हेतु या कारण न हो ।

निर्ह्राद—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । आवाज [को०] ।

निर्ह्रास—संज्ञा पुं० [सं०] संक्षिप्ति । छोटा करना [को०] ।

निर्ह्रीक—वि० [सं०] जिसे लाज न हो । निर्लज्ज । बेहया [को०] ।

निलंबन—संज्ञा पुं० [सं० निलम्बन] १. लटकते या झूलते रहने का भाव । २. इधर न उधर । बीच की स्थिति । ३. किसी कर्मचारी पर कोई आरोप लगाकर उसे कार्य न करने देना । मुअत्तली ।

निल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो माली नामक राक्षस की वसुधा नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था और जो बिभीषण का मंत्री था ।

निल[२](पु)—वि० [सं० नील] नीले वर्ण का । नीला । उ०—बाब-हिया निल पंखिया बाढ़त दे दे लूण ।—ढोला०, दू० ३१ ।

निलज†—वि० [सं० निर्लज्ज, प्रा० निलज्ज] दे० 'निर्लज्ज' । उ० रन ते निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ।—मानस, ६।८४ ।

निलजई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निलज + ई (प्रत्य०)] निर्लज्जता । बेशर्मी । बेहयाई । उ०—खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निलजता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लज्जता] निर्लज्जता । बेशर्मी । बेहयाई । उ०—निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहि छोरि ।—तुलसी (शब्द०) ।

निलजी(पु)†—वि० स्त्री० [सं० निर्लज्ज, हिं० निलज] निर्लज्जा या लाजहीन (स्त्री) । बेशर्म । बेहया ।

निलज्ज—वि० [सं० निर्लज्ज] दे० 'निर्लज्ज' । उ०—अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ।—मानस, ५।१९ ।

निलय—संज्ञा पुं० [सं०] १, मकान । घर । २. स्थान । जगह । ३, पशुओं के रहने का स्थान (को०) । ४, घोसला । नीड़ (को०) । ५. लोप । अदर्शन (को०) । ६ पूरी तरह लुप्त या गायब होना (को०) । ७, लुकना । छिपना (को०) ।

निलयन—संज्ञा पुं० [सं०] १, डेरा डालना । २. घर । वासस्थान । ३. उतरना । ४. बाहर जाना [को०] ।

निलहा—वि० [सं० नील + हा (प्रत्य०)] नील से संबंधित । नीलवाला ।

यौ०—निलहा गोरा । निलहा साहब ।

निलाम—संज्ञा सं० [हिं०] दे० 'नीलाम' ।

निलिंप—संज्ञा पुं० [सं० निलिम्प] १, देवता । २, मरुद्गण [को०] ।

यौ०—निलिंपनिर्झरी = देवों की नदी । गंगा । निलिंपाधिप = इंद्र । देवराज ।

निलिंपा, निलिंपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निलिम्पा, निलिम्पिका] १, गाय । २. दूध दुहने की बालटी [को०] ।

निलीन—वि० [सं०] १. बहुत अधिक लीन । २, छिपा हुआ । लुका हुआ (को०) । ३, परिवर्तित । बदला हुआ (को०) । ४. नष्ट । समाप्त (को०) । ५. पूर्ण । पूरा (को०) । ६. तरलित । पिघला हुआ (को०) ।

निवक्ष—संज्ञा पुं० [सं० निवक्षस्] वह जीव या पशु जो यज्ञ आदि में उत्सर्ग किया जाय ।

निवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में वचन का अभाव । २. बोलते जाना । कहते रहना ।

निवछावर—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'निछावर' ।

निवड़िया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नावर] एक प्रकार की नाव । दे० 'निवाड़ा' ।

निवना(पु)†—क्रि० अ० [सं० नमन] झुकना ।

निवपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों आदि के उद्देश्य से कुछ दान करना । २. वह जो कुछ पितरों आदि के उद्देश्य से दान किया जाय ।

निवर[१]—वि० [सं०] निवारण करनेवाला । निवारक ।

निवर[२]—संज्ञा पुं० १. वह जो निवारण करे या रोके । निवारक । २. आवरण । रक्षण । बचाव [को०] ।

निवरा—वि० स्त्री० [सं०] जिसके वर न हो । अविवाहिता । कुमारी ।

निवर्तक—वि० [सं०] १. लौटनेवाला । २. लौटानेवाला । फेर लाने वाला । ३. थम जानेवाला । ४. अपवारित करनेवाला [को०] ।

निवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल में भूमि की एक नाप जो २१० हाथ लंबाई और २१० हाथ चौड़ाई की होती थी । २. निवारण । ३. हटना । लौटना । वापस होना । ४. पीछे हटाना या लौटाना ।

निवर्तित—वि० [सं०] जिसका निवर्तन किया गया हो ।

निवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० निवर्तिन्] १. वह जो पीछे की ओर हट आया हो । २. वह जो युद्ध में से भाग आया हो । ३. निर्लिप्त ।

निवर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निबर्हण'. [को०] ।

निवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास । वासस्थान । गृह [को०] ।

निवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव । २. सीमा । हद (डिं०) ।

निवसन—संज्ञा पुं० [सं० नि + वसन] १. गाँव । २. घर । ३. वस्त्र । ४. अंतरौटा । स्त्री का सामान्य अधोवस्त्र (डिं०) ।

निवसना—क्रि० अ० [सं० निवसन या निवास] रहना । निवास करना । उ०—(क) यहि मिसि चित्रकूट की महिमा मुनिवर बहुत बखानि । सुनत राम हरषित तहँ निवसे पावन गिरि पहिचानि ।—देवस्वामी (शब्द०) । (ख) सब बालक नंदराय समेता । मम गृह निवसहु कृपानिकेता ।—गोपाल (शब्द०) ।

निवह—संज्ञा पुं० [सं०] १, समूह । यूथ । उ०—किंशुक बरन सुअंसुक

सुखमा सुखन समेत। जनु बिधु निवह रहे करि दामिन निकर निकेत।—तुलसी (शब्द०)। २. सात वायुओं में से एक वायु।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात वायुएँ मानी गई हैं जिनमें से प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहती है। निवह वायु भी उन्हीं में से एक है। यह न तो बहुत तेज होती है और न बहुत धीमी। जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी नहीं रहता।

३. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक (को०)। ४. वध (को०)। ५. अनिल। वायु (को०)।

निवाई—वि० [सं० नव] १. नवीन। नया। २. अनोखा। विलक्षण। उ०—पुनि लक्ष्मी यों विनय सुनाई। हरी देखि यह रूप निवाई।—सूर (शब्द०)।

निवाकु—वि० [सं०] चुप। जो आवाज न करता हो। मौन (को०)।

निवाज¹—वि० [फ़ा०] कृपा करनेवाला। अनुग्रह करनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग फारसी और अरबी आदि शब्दों के अंत में यौगिक में होता है। जैसे गरीबनिवाज

निवाज²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज़] दे० 'नमाज'।

निवाजना(पु)†—क्रि० स० [फा० निवाज़] अनुग्रह करना। कृपा करना। कृपापात्र बनाना। उ०—(क) नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक बेद पर बिरद बिराजे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कायर कूर कपूतन की हद तेऊ गरीबनिवाज निवाजे।—तुलसी (शब्द०)।

निवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवाज़िश] १. कृपा। मेहरबानी। २. दया। अनुकंपा।

निवाड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निवार'।

निवाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १. छोटी नाव। २. नाव की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं। नावर।

क्रि० प्र०—खेलना।

निवाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निवारी'।

निवात¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने का स्थान। घर। २. वह वर्म जो शस्त्र के द्वारा छेदा न जा सके। ३. वह स्थान जहाँ हवा न हो (को०)। ४. सुरक्षित स्थान (को०)। ५. दीपक को हवा से बचाने के लिये बनाया गया एक उपकरण। उ०—जालीदार चाँदी के बड़े बड़े निवात, जिनके भीतर अभ्रक लगे हुए थे, अपने पंचदीप को वैसे अपने भीतर ही भीतर जला रहे थे, ठीक उसी तरह अग्निमित्र जल रहा था।—इरावती, पृ० १०५।

यौ०—निवातकवच = (१) एक प्राचीन जाति (जो दैत्य माने गए हैं)। (२) हिरण्यकशिपु का एक पौत्र।

निवात²—वि० १. जहाँ वायु न हो। २. अक्षत। बिना चोट का। ३. सुरक्षित। ४. (कवच आदि) खूब अच्छे ढंग से पहने हुए। ५. घनी या गफिन बुनावट का (को०)।

निवान—संज्ञा पुं० [सं० निम्न] १. नीची जमीन जहाँ सीड़, कीचड़ या पानी भरा रहता हो। २. जलाशय। झील। बड़ा तालाब।

निवाना†—क्रि० स० [सं० नम्र] नीचे की तरफ करना। झुकाना।

निवान्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिना बछड़े की गाय जो किसी अन्य गाय के बछड़े से पेन्हवाकर दुही जाय (को०)।

निवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीज। अनाज। २. पितृतर्पण। तर्पण (श्राद्ध में)। ३. दान। उपहार (को०)।

निवार¹—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि + आर] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नींव में दिया जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है। जाखन। जमवट।

निवार²—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवार] बहुत मोटे सूत की बुनी हुई प्रायः तीन चार अंगुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने जाते हैं। निवाड़। नेवार।

यौ०—निवारबाफ।

निवार³—संज्ञा पुं० [सं० नीवार] तिन्नी का धान। मुन्यन्न। पसही। उ०—कहूँ मूल फल दल भिनि कूटत। कहुँ कहुँ पके निवारनि जूटत।—गुमान (शब्द०)।

निवार⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मूली जो बहुत मोटी और स्वाद में कुछ मीठी होती है, कबुई नहीं होती।

निवार⁵—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निवारण' (को०)।

निवारक—वि० [सं०] १. रोकनेवाला। रोधक। २. दूर करनेवाला। मिटानेवाला।

निवारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोकने की क्रिया। २. हटाने या दूर करने की क्रिया। ३. निवृत्ति। छुटकारा।

निवारन—संज्ञा पुं० [सं० निवारण] दे० 'निवारण'। उ०—ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि।—मानस, ३।३८।

निवारना(पु)—क्रि० स० [सं० निवारण] १. रोकना। दूर करना। हटाना। उ०—(क) पोंछि रुमालन सों श्रमसीकर औरं की भीर निवारत ही रहे।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ख) पलका पै पौढ़ि श्रम राति को निवारिए।—मतिराम (शब्द०)। २. बचाना। रक्षा के साथ काटना या बिताना। उ०—(क) यह सुख ठाम को आराम को निहारो नेक, मेरे कहे घरिक निवारि लीजै घाम को।—(शब्द०)। (ख) घाम घरीक निवारिए कलित ललित अलिपुंज। जमुना तीर तमाल तरु मिलति मालती कुंज।—बिहारी (शब्द०)। ३. निषेध करना। मना करना। उ०—मैनहि लखनहिं राम निवारे।—तुलसी (शब्द०)। (पु) ४. चुकता करना।

निवारबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवार + बाफ] निवार बुननेवाला।

निवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] १. जूही की जाति का एक फैलनेवाला झाड़ या पौधा जो जूही के पौधों से बड़ा होता है।

विशेष---इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबोतरे होते हैं और बरसात में इसमें जूही की तरह के छोटे सफेद फूल लगते हैं। ये फूल ग्राम के बौर की तरह गुच्छों में होते हैं और इनमें से भीनी मनोहर सुगंध निकलती है। वैद्यक में इसे चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग और कर्णरोग आदि को दूर करनेवाली माना है।

२. इस पौधे का फूल। ३. नेपाल में बोली जानेवाली एक भाषा।

निवाला—संज्ञा पुं० [फ़ा० निवालह्] उतना भोजन जितना एक बार मुँह में डाल जाय। कौर। ग्रास। लुकमा।

निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने की क्रिया या भाव। २. रहने का स्थान। ३. घर। मकान। ४. वस्त्र। कपड़ा।

निवासन---संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। आवास। २. कालक्षेप करना। समय काटना। ३. अल्पकालिक निवास (को०)।

निवासस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने का स्थान। वह स्थान जहाँ कोई रहता हो। २. घर। मकान।

निवासी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० निवासिन्] [स्त्री० निवासिनी] १. रहनेवाला। बसनेवाला। वासी। २. पोशाक पहननेवाला (को०)।

निवास्य—वि० [सं०] रहने योग्य।

निविड़—वि० [सं० निबिड] १. घना। घन। घोर। २. गहरा बँधा या कसा हुआ। जैसे, निविड़ मुष्टि। ३. भद्दा (को०)। ४. स्थूल। मोटा (को०)। ५. बृहदाकार (को०)। ६. जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो।

निविड़ता--संज्ञा स्त्री० [सं० निविडता] वंशी या इसी प्रकार के किसी और बाजे के स्वर का गंभीर होना जो उसके पाँच गुणों में से एक गुण माना जाता है।

निबिड़ीश, निबिड़ीस---वि० [सं०] दे० 'निबिरीश' (को०)।

निविद्धान—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो एक ही दिन में समाप्त हो जाय।

निविरीश निविरीस-वि० [सं०] १. घना। गझिन। २. कठोर। स्थूल (को०)।

निविल(पु)†--वि० [सं० निविड] दे० 'निविड़'। उ०---निविल मांसल अंधकार देखूँ।---वर्ण०, पृ० १६।

निविशमान—संज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जिनसे उपनिवेश बसाए जायँ।

विशेष---चंद्रगुप्त के समय में राज्य ऐसे लोगों को अन्न, पशु तथा सपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

निविशेष[1]--वि० [सं०] जिसमें भेद न हो। एकरूप (को०)।

निविशेष[2]—संज्ञा पुं० अंतर या भेद का अभाव। समानता। एकरूपता (को०)।

निविषा†---वि० [सं० निर्विष] दे० 'निर्विष'।

निविष्ट—वि० [सं०] जिसका चित्त एकाग्र हो। २. एकाग्र। ३. लपेटा हुआ। ४. घुसा या घुसाया हुआ। ५. बाँधा हुआ। ६. स्थित। ठहरा हुआ।

निविष्टपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] बोरों में भरा हुआ माल (को०)।

निवीत—संज्ञा पुं० [सं०] ओढ़ने का कपड़ा। चादर। २. यज्ञोपवीत (को०)। ३. यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करना (को०)।

निवीती—वि० [सं० निवीतिन्] यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करनेवाला।

विशेष---साधारणतः यज्ञोपवीत वाम कंधे पर धारण किया जाता है। परंतु ऋषिपूजन के अवसर पर उसे गले में माला की तरह धारण करने का विधान है। साधारण ढंग से पहननेवाले को उपवीती और इस विशेष ढंग से पहननेवाले को निवीती कहते हैं।

निवीर्य—वि० [सं०] वीर्यहीन। जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो।

निवृत[1]---वि० [सं०] १. बंद। घिरा हुआ। २. रोका हुआ। पकड़ा हुआ। ग्रस्त (को०)।

निवृत[2]—संज्ञा पुं० ओढ़ने या लपेटने का कपड़ा (को०)।

निवृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवरण। घेरा। मंडल (को०)।

निवृत्त—वि० [सं०] १. छूटा हुआ। २. जो अलग हो गया हो। विरक्त। ३. जो छुट्टी पा गया हो। खाली। ४. लौटा हुआ (को०)। ५. दूर गया या भागा हुआ (को०)। ६. असंगत (को०)।

यौ०--- निवृत्तकारण = (१) जिसका कोई कारण या प्रेरणा न हो। (२) अनासक्त या निःस्पृह व्यक्ति। निवृत्तमांस = जिसने मांस खाना छोड़ दिया हो। निवृत्तयौवन = जिसका यौवन लौट आया हो। निवृत्तराग = रागहीन। विरक्त। निवृत्तलौल्य = जो इच्छुक न हो। अनाकांक्षी। निवृत्तवृत्ति = अपनी वृत्ति या पेशा त्याग करनेवाला।

निवृत्तवृद्धिक आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो बिना ब्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

निवृत्तसंतापनीय—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक रसायन जिसमें अठारह ओषधियाँ हैं।

विशेष---कहते हैं, इस रसायन के सेवन से मनुष्य का शरीर युवा के समान और बल सिंह के समान हो जाता है और वह मनुष्य श्रुतिधर हो जाता है। ये सब ओषधियाँ सोमरस के समान वीर्ययुक्त मानी जाती हैं। इनके नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णिनी, ब्रह्मसुवर्चला, श्रावणी, महाश्रावणी, गोलोमी, अजलोमी और महावेगवती।

निवृत्तात्मा[1]—वि० [निवृत्तात्मन्] विषयों से अलग रहनेवाला (को०)।

निवृत्तात्मा[2]—संज्ञा पुं० विष्णु (को०)।

निवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति। छुटकारा। २. प्रवृत्ति का अभाव या उलटा। ३. बौद्धों के अनुसार मुक्ति या मोक्ष। ३. एक प्राचीन तीर्थ का नाम। ४. वापस होना। वापसी (को०)। समाप्ति (को०)।

निवेद(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० निवेद्य] दे० 'नैवेद्य'।

निवेदक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी ।

निवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनय । बिनती । २. प्रार्थना । ३. समर्पण । ४. शिव का एक नाम (को०) ।

निवेदनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० निवेदन] १. बिनती करना । प्रार्थना करना । २. नजर करना । कुछ भोज्य पदार्थ आगे रखना । नैवेद्य चढ़ाना । अर्पित कर देना । उ०— सदा आपु को मोहि निवेदै । प्रेम शस्त्र ते ग्रंथिहि छेदै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

निवेदित—वि० [सं०] १. चढ़ाया हुआ । अर्पित किया हुआ । २. कहा हुआ । सुनाया हुआ । निवेदन किया हुआ ।

निवेद्य—संज्ञा पुं० [सं०] नैवेद्य (को०) ।

निवेरनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० निबेड़ना] १. निबटाना । फैसल करना । २. खतम कर देना । उ०—अति बहु केलि गोपिकन केरी । संक्षेपै में कछुक निवेरी ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३. छाँटना । चुन लेना । ४. छुड़ाना । दूर करना । हटाना । उ०— कुलवंत निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरि निवेरि गती ।—तुलसी (शब्द०) ।

निवेराⓅ—वि० [हिं० निबेड़ना या निवेरना] १. चुना हुआ । छाँटा हुआ । उ०—आजु भई कैसी गति तेरी ब्रज में चतुर निवेरी ।—सूर (शब्द०) । २. नवीन । अनोखा । नया । (क) मैं यह आजु निवेरी आई ? बहुतै आदर करति सबै मिलि पहुने की कोबै पहुनाई ।—सूर (शब्द०) ।

निवेलीⓅ†—वि० स्त्री० [हिं० नवेली] नए उम्र की । नवेली ।

निवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह । २. शिविर । डेरा । खेमा । ३. प्रवेश । ४. घर । मकान । ५. फैलाव । विस्तार । परिधि । घेरा (स्तनों का) (को०) । ६. प्रतिलिपि । नकल (को०) । ७. सज्जा (को०) । ८. सेना के पड़ाव डालने की जगह (को०) । ९. स्थापन । निवेशन (को०) ।

निवेशन—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० निवेशनी] १. घोंसला । नीड । २. नगर (को०) । ३. दे० 'निवेश' (को०) ।

निवेशनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी (को०) ।

निवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कपड़ा जिससे कोई चीज ढाँकी जाय । २. सामवेद का मंत्रभेद ।

निवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] ढोपना । ढकना (को०) ।

निवेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याप्ति । २. बरफ का पानी । ३. जलस्तंभ । ४. धवल तुषार । हिमसीकर (को०) । ५. आवर्त । भँवर (को०) । ६. वातचक्र । बवंडर (को०) ।

निवेसनाⓅ—क्रि० स० [सं० नि+√विश्] बैठाना । उ०—प्रीतम जब कर पंकज धरै । बस करि सेज निवेसित करै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १४५ ।

निव्याधी—संज्ञा पुं० [सं० निव्याधिन्] एक रुद्र का नाम ।

निव्यूढ़—संज्ञा पुं० [सं० निव्यूढ] दे० 'निर्व्यूढ़' (को०) ।

निश—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । २. हल्दी ।

निशंक[१]—वि० [सं० निःशङ्क] जिसे किसी बात की शंका या भय न हो । निर्भय । निडर । बेखौफ ।

निशंक[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का नृत्य विशेष ।

निशंगⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निषङ्ग] दे० 'निषंग' ।

निशⓅ†—संज्ञा स्त्री [सं० निश्] रात्रि । रजनी ।

निशचरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर' ।

निशठ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बलदेव के एक पुत्र का नाम ।

निशठ[२]—वि० ईमानदार (को०) ।

निशतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नश्तर] दे० 'नश्तर' ।

निशब्द—वि० [सं०] चुप । न बोलता हुआ । मौन (को०) ।

निशमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. श्रवण । सुनना । ३. जानना । परिचय पाना (को०) ।

निशरण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । घातन । वध करना (को०) ।

निशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष ।

निशांत[१]—संज्ञा पुं० [सं० निशान्त] १. रात्रि का अंत । पिछली रात । रात का चौथा पहर । २. प्रभात । तड़का । ३. घर । गृह ।

निशांत[२]—वि० जो बहुत ही शांत हो ।

निशांतनारी—संज्ञा स्त्री० [निशान्तनारी] गृहिणी ।

निशांध[१]—वि० [सं० निशान्ध] रात्यंध । रात का अंधा । जिसे रात को न सूझे । जिसे रतौंधी होती हो ।

निशांध[२]—संज्ञा पुं० फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग जो उस समय पड़ता है जब सिंहराशि में सूर्य हों ।

विशेष—कहते हैं, इस योग के पड़ने से मनुष्य को रतौंधी होती है ।

निशांधा—संज्ञा स्त्री० [सं० निशान्धा] १. जतुका या पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ औषधि के काम में आती हैं । २. राजकन्या । राजकुमारी ।

निशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रजनी । रात । २. हरिद्रा । हलदी । ३. दारुहरिद्रा । ४. फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन आदि छह राशियाँ । दे० 'राशि' । ५. स्वप्न । सपना (को०) ।

निशाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । शशि । चाँद । २. कुक्कुट । मुरगा । ३. महादेव । ४. एक महर्षि का नाम । ५. कपूर । ६. एक की संख्या (को०) ।

यौ०—निशाकरकलामौलि = शिव ।

निशाकांत—संज्ञा पुं० [सं० निशाकान्त] चंद्रमा (को०) ।

निशाकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०) ।

निशाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अवसान । रात की समाप्ति (को०) ।

निशाखातिर—संज्ञा स्त्री० [अ० खातिर + फ़ा० निशाँ (खातिरनिशाँ)] तसल्ली । दिलजमई । प्रबोध ।

निशाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी ।

निशागृह—संज्ञा पुं० [सं०] शयनागार (को०)।

निशाचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. शृगाल। गीदड़। ३. उल्लू। ४. सर्प। ५. चक्रवाक। ६. भूत। ७. चोर। ८. ग्रंथिपर्ण का एक भेद। ६. महादेव। १०. चोर नामक गंधद्रव्य। ११. बिल्ली। १२. वह जो रात को चले। जैसे, कुलटा, पिशाच आदि।

निशाचरपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. रावण।

निशाचरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राक्षसी। २. कुलटा। ३. केशिनी नामक गंधद्रव्य। ४. अभिसारिका नायिका।

निशाचर्म—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर्मन्] अंधकार। २. अँधेरा।

निशाचारी—संज्ञा पुं० [सं० निशाचारिन्] १. शिव। २. निशाचर।

निशाजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिम। पाला। २. ओस।

निशाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लू। २. निशाचर।

निशाटक—संज्ञा [सं०] गूगल।

निशाटन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

निशाटन[2]—वि० जो रात को विचरण करे। निशाचर।

निशात—वि० [सं०] १. सान धरा हुआ। तेज किया हुआ। २. चमकाया हुआ (को०)।

निशातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] रात का बीतना (को०)।

निशातैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल।

विशेष—यह सेर भर कड़वे तेल, धतूरे के पत्तों का चार सेर रस, आठ तोले पीसी हुई हलदी और चार तोले गंधक के मेल से बनता है। यह तेल कान के रोगों के लिये विशेष उपकारी माना जाता है।

निशाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह व्यक्ति जो रात को खाता हो। २. दे० 'निषाद' (को०)।

निशादि—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का आरंभ। सायंकाल (को०)।

निशाद्यतैल—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो भगंदर के लिये उपकारी माना जाता है।

विशेष—यह तैल कडुवा तेल, पीसी हुई हलदी, सेंधा नमक, चितामूल और गुग्गुल आदि के मेल से बनाया जाता है।

निशाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निशापति'।

निशान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तेज करना। सान पर चढ़ाना।

यौ०—निशानपट्ट = सान धरने का पत्थर।

निशान[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लक्षण जिससे कोई चीज पहचानी जाय। चिह्न। जैसे,—(क) उस मकान का कोई निशान बता दो तो जल्दी पता लग जायगा। (ख) जहाँ तक पुस्तक पढ़ो उसके आगे कोई निशान रख दो। २. किसी पदार्थ से अंकित किया हुआ अथवा और किसी प्रकार बना हुआ चिह्न। जैसे, पैर का निशान, अँगूठे का निशान, ध्वनियों को पहचान के लिये बनाए हुए निशान (अक्षर), किताब पर बनाए हुए निशान आदि।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—लगाना।—बनाना।

३. शरीर अथवा और किसी पदार्थ पर बना हुआ स्वाभाविक या और किसी प्रकार का चिह्न, दाग या धब्बा। जैसे, किसी पशु पर बना हुआ गुल का निशान, चेहरे पर बना हुआ गुम्मर का निशान। ४. किसी पदार्थ का परिचय करने के लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न। जैसे, ज्योतिष में ग्रहों आदि के बनाए हुए निशान, वनस्पति शास्त्र में वृक्ष, झाड़ी और नर या मादा पेड़ या फूल के लिये बनाए हुए निशान। ५. वह चिह्न जो अपढ़ आदमी अपने हस्ताक्षर के बदले में किसी कागज आदि पर बनाता है। ६. वह लक्षण या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहले की घटना अथवा पदार्थ का परिचय मिले। जैसे, किसी पुराने नगर आदि का खंडहर।

यौ०—नाम निशान = (१) किसी प्रकार का चिह्न या लक्षण। (२) अस्तित्व का लेश। बचा हुआ थोड़ा अंश। जैसे,—वहाँ अब किसी घर का नाम निशान नहीं है।

७. पता। ठिकाना।

मुहा०—निशान देना = (१) पता बताना। (२) आसामी को सम्मन आदि तामील करने के लिये पहचनवाना।

यौ०—निशानदेही।

८. वह चिह्न या संकेत जो किसी विशेष कार्य या पहचान के लिये नियत किया जाय। ६. समुद्र में या पहाड़ों आदि पर बना हुआ वह स्थान जहाँ लोगों को मार्ग आदि दिखाने के लिये कोई प्रयोग किया जाता है। जैसे मार्गदर्शक प्रकाशालय आदि (लश०)। १०. दे० 'लक्षण'। ११. दे० 'निशाना'। १२. दे० 'निशानी'। १३. ध्वजा। पताका। झंडा।

मुहा०—किसी बात का निशान उठाना या खड़ा करना = (१) किसी काम में अगुआ या नेता बनकर लोगों को अपना अनुयायी बनाना। जैसे, बगावत का निशान खड़ा करना। (२) आंदोलन करना।

निशानकोना—संज्ञा पुं० [सं० ईशान+हिं० कोना] उत्तर और पूर्व का कोण (लश०)।

निशानची—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशान + ची (प्रत्य०)] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे झंडा लेकर चलता हो। निशानबरदार।

निशानदिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'निशानदेही'।

निशानदेही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निशान + हिं० देना या फ़ा० देह (= देना)] आसामी को सम्मन आदि की तामील के लिये पहचनवाने की क्रिया। आसामी का पता बतलाने का काम।

निशानपट्टी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निशान + हिं० पट्टी] चेहरे की बनावट आदि अथवा उसका वर्णन। हुलिया।

निशानबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे आगे झंडा लेकर चलता हो। निशानची।

निशापति—संज्ञा पुं०[सं०]१. चंद्रमा। निशाकर। २. कपूर। कपूर।

निशाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशानह्] १. वह जिसपर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदि का वार किया जाय । लक्ष्य ।

मुहा०—निशाना करना या बनाना = अस्त्र आदि के वार करने के लिये किसी को लक्ष्य बनाना । निशाना होना = निशाना बनना । लक्ष्य होना ।

२. किसी पदार्थ को लक्ष्य बनाकर उसकी ओर किसी प्रकार का वार करना ।

मुहा०—निशाना बाँधना = वार करने के लिये अस्त्र आदि को इस प्रकार साधना जिसमें ठीक लक्ष्य पर वार हो । निशाना मारना या लगाना = ताककर अस्त्र शस्त्र आदि का वार करना । निशाना साधना = (१) निशाना बाँधना । (२) निशाना लगाने का अभ्यास करना ।

३. मिट्टी आदि का वह ढेर या और कोई पदार्थ जिसपर निशाना साधा जाय । ४. वह जिसपर लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या बात कही जाय ।

निशानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्मृति के उद्देश्य से दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ । वह जिससे किसी का स्मरण हो । यादगार । स्मृतिचिह्न । जैसे,—(क) हमारे पास यही घड़ी उनकी निशानी है । (ख) चलते समय हमें अपनी कुछ निशानी तो दे जाओ । (ग) बस यही लड़का हमारे स्वर्गीय मित्र की निशानी है ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

२. वह चिह्न जिससे कोई चीज पहचानी जाय । निशान । पहचान ।

निशापति—संज्ञा पुं० [सं०] १.चद्रमा । २. कपूर [को०] ।

निशापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र आदि आकाशीय पिंड । २. दानव । निशाचर (को०) ।

निशापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुदिनी । कोईं ।

निशाबल—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धन और मकर ये छह राशियाँ जो रात के समय अधिक बलवती मानी जाती हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष में दो प्रकार की राशियाँ मानी जाती हैं—निशाबल और दिनबल । उक्त छह राशियाँ निशाबल और शेष दिनबल मानी जाती हैं । कहा जाता है, जो काम दिन के समय करना हो वह दिनबल राशियों में और जो काम रात के समय करना हो वह रात्रिबल राशियों में करना चाहिए ।

निशाभंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० निशाभङ्गा] दुग्धपुच्छी नामक पौधा ।

निशामणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशामन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. आलोचन । ३. श्रवण । सुनना ।

निशामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

निशामुख—संज्ञा पुं० [सं०] संध्याकाल । गोधूलि का समय ।

निशामृग—संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़ ।

निशारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात्रियुद्ध । २. मारण । वध । निशरण [को०] ।

निशारत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशारुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सात प्रकार के रूपक तालों में से एक प्रकार का ताल जिसमें दो लघु और दो गुरु मात्राएँ होती हैं । इसका व्यवहार प्रायः हास्य रस के गीतों के साथ होता है ।

निशारुक—वि० [सं०] बहुत अधिक हिंसा करनेवाला ।

निशावन—संज्ञा पुं० [सं०] सन का पौधा ।

निशावसान—संज्ञा पुं० [सं०] रात का अंतिम भाग । प्रभात । तड़का ।

निशाविहार—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस ।

निशावेदी—संज्ञा पुं० [सं० निशावेदिन्] कुक्कुट । मुर्गा [को०] ।

निशास्ता[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. गेहूँ को भिगोकर उसका निकाला और जमाया हुआ सत या गूदा । २. माँड़ी । कलफ ।

निशास्ता[2]—वि० जमाया हुआ । बैठाया हुआ । स्थापित [को०] ।

निशाह्स—संज्ञा पुं० [सं०] कुमोदनी ।

निशाह्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका । सिंदुवार । निर्गुंडी ।

निशाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हलदी । २. जतुका नाम की लता ।

निशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । रात्रि । रजनी । २. हलदी ।

निशिकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । शशि ।

निशिचर—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर' ।

निशिचरराज—संज्ञा पुं० [हिं०] राक्षसों का राजा विभीषण ।

निशित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा ।

निशित[2]—वि० १. चोखा । तेज । तीखा । जो सान पर चढ़ा हुआ हो । २. उत्तेजित (को०) ।

निशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात [को०] ।

निशिदिन—क्रि० वि० [सं०] रातदिन । सदा । सर्वदा ।

निशिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निशानाथ' ।

निशिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निशानाथ' ।

निशिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निशापति' ।

निशिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में भगण, जगण, सगण, नगण और रगण होता है । जैसे,—भाजे सुनि राघव कवींद्र कुल की नई । काव्य रचना विपुल वित्त तिहि दै दई । बार निशिपाल हम से बुध कबौ जनै । हो तुम चिरायु अखिलेश कवि यों भनै ।—अखिलेश (शब्द०) ।

निशिपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निशिपाल' ।

निशिपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी नामक फूल का पेड़ । सिंदुवार ।

निशिपुष्पिका, निशिपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी । शेफालिका । सिंदुवार ।

निशिवासर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] रातदिन । सदा । सर्वदा । हमेशा ।

निशीथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोने का समय । रात । २. आधी रात । ३. भागवत के अनुसार रात्रि के एक कल्पित पुत्र का नाम ।

निशीथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

यौ०—निशीथिनीपति = चंद्रमा ।

निशीथिनीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर । २. शशि । चंद्रमा (को०) ।

निशीथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात (को०) ।

निशुंभ—संज्ञा पुं० [सं० निशुम्भ] १. वध । २. हिंसा । ३. खंडन । तोड़ना (को०) । ४. पुराणानुसार एक असुर का नाम जिसका जन्म कश्यप ऋषि की स्त्री दनु के गर्भ से हुआ था और जो शुंभ तथा निमुचि (नमुचि) का भाई था ।

विशेष—निमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया था पर शुंभ और निशुंभ ने देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया था और स्वर्ग पर राज्य करना आरंभ कर दिया था । जब दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तब निशुंभ ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्गा को मार डालूँगा। उस समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मुंड नामक दो और राक्षस भी इन लोगों में मिल गए । पहले शुंभ और निशुंभ ने दुर्गा से कहलाया कि तुम हममें से किसी के साथ विवाह करो पर दुर्गा ने कहला दिया कि रण में मुझे जो जीतेगा उसी से मैं विवाह करूँगी । रण में दुर्गा ने पहले धुम्रलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज आदि असुरों तथा उनके साथियों को मारा । फिर शुंभ और निशुंभ ने युद्ध आरंभ किया । देवी ने पहले निशुंभ को तब शुंभ को मारा जिससे असुरों का उत्पात शांत हुआ और इंद्र को फिर स्वर्ग का राज्य मिला ।

यौ०—निशुंभमथनी = दुर्गा । निशुंभमर्दिनी ।

निशुंभन—संज्ञा पुं० [निशुम्भन] वध । मार डालना ।

निशुंभमर्दिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निशुम्भमर्दिनी] दुर्गा ।

निशुंभी—संज्ञा पुं० [सं० निशुम्भिन] एक बुद्ध का नाम ।

निशेश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

निशैत—संज्ञा पुं० [सं०] बक । बगुला ।

निशोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात । तड़का ।

निश्कुला—वि० [सं०] अपने कुल से निकाली हुई (स्त्री) ।

निश्चंद्र—वि० [सं० निश्चन्द्र] १. चंद्रमारहित । २ जिसमें चमक न हो ।

निश्चंद्र अभ्रक — संज्ञा पुं० [सं० निश्चन्द्र अभ्रक] वैद्यक में वह अभ्रक जो दूध, ग्वारपाठा, आदमी के मूत्र, बकरी के दूध आदि कई पदार्थों में मिलाकर और सौ बार उनका पुट देकर तैयार किया जाता है ।

विशेष—कहते हैं, यह पद्मराग के समान हो जाता है । यह वीर्यवर्धक, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है ।

निश्चक—वि० [सं०] दे० 'निश्चेष' (को०) ।

निश्चक्रिक—वि० [सं०] १. चक्रविहीन । चक्ररहित । २. छलविहीन ।

निश्चक्षु—वि० [सं० निश्चक्षुस्] अंधा । बिना आँखवाला (को०) ।

निश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसी धारणा जिसमें कोई संदेह न हो । निःसंशय ज्ञान । २. विश्वास । यकीन । ३. निर्णय । जैसे,—इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि यह वस्तु क्या है ।

विशेष—निश्चय बुद्धि की वृत्ति है ।

४. पक्का विचार । दृढ़ संकल्प । पूरा इरादा । जैसे,—मैंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया है । ५. जाँच । अन्वेषण (को०) । ६. एक अर्थालंकार जिसमें अन्य विषय का निषेध होकर प्रकृत या यथार्थ विषय का स्थापन होता है । जैसे,—नहिं सरोज यह वदन है नहिं इंदीवर नैन । मधुकर ! जनि धावै वृथा, मानि हमारे बैन । यहाँ सरोज और इन्दीवर का निषेध करके यथार्थ वस्तु मुख और नैन की स्थापना हुई है ।

निश्चयात्मक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निश्चयात्मिका] जो बिलकुल निश्चित हो । ठीक ठीक । असंदिग्ध ।

निश्चयात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चयात्मक होने का भाव । यथार्थता । असंदिग्धता ।

निश्चयार्थक—वि० [सं० निश्चयार्थ + क] निश्चित अर्थवाला । जिसके अर्थ में हेरफेर न किया जा सके । —उ०—यथार्थ के तत्वों द्वारा, निश्चयार्थक शब्दों में, ज्ञान की किसी स्वचालित व्यवस्था का निर्माण करना विज्ञान का सार है ।—पा० सा० सि०, पृ० ७ ।

निश्चर—संज्ञा पुं० [सं०] एकादश मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ।

निश्चल—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से न हटे । अचल । अटल । २. जो जरा भी न हिले डुले । स्थिर ।

निश्चलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चल होने का भाव । स्थिरता । दृढ़ता ।

निश्चलांग¹—संज्ञा पुं० [सं० निश्चलाङ्ग] १. बगुला । २. पर्वत आदि जो सदा निश्चल रहते हैं ।

निश्चलांग²—वि० जिसके अंग हिलते डोलते न हों ।

निश्चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी । २. पृथ्वी । ३. मत्स्य-पुराण के अनुसार एक नदी का नाम ।

निश्चायक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी बात का निश्चय या निर्णय करता हो । निश्चयकर्ता । निर्णायक ।

निश्चारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाहिका नाम का रोग जो अतिसार का एक भेद है । यह बच्चों को प्रायः होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं । २. वायु । हवा । ३. दुराग्रह । स्वच्छंदता । हठप्रकृति । जिद्दी स्वभाव (को०) । ४. पुरीषक्षय । मलत्याग (को०) ।

निश्चिंत—वि० [सं० निश्चिन्त] जिसे कोई चिंता या फिक्र न हो या जो चिंता से मुक्त हो गया हो । चितारहित । बेफिक्र । जैसे,—(क) आप निश्चिंत रहें, मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा । (ख) अब कहीं जाकर हम इस काम में निश्चिंत हुए हैं ।

निरिंचतईⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० निश्चित + ई (प्रत्य०)] निश्चित होने का भाव । बेफिक्री ।

निश्चित—वि० [सं०] १. जिसके संबंध में निश्चय हो चुका हो । तै किया हुआ । निर्णीत । जैसे,— (क) हमारे यहाँ आने की सब बातें निश्चित हो चुकी हैं । (ख) इस काम के लिये कोई दिन निश्चित कर लो । २. जिसमें कोई परिवर्तन या फेर बदल न हो सके । दृढ़ । पक्का । जैसे,—तुम कोई निश्चित बात तो कहते ही नहीं, नित्य नए बहाने निकालते हो ।

निश्चितार्थ—वि० [सं०] १. जिसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो । निश्चित धारणावाला । २. उचित या ठीक निर्णय करनेवाला । ३. निश्चित अर्थवाला [को०] ।

निश्चिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना ।

निश्चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि ।

निश्चिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

निश्चुक्कण—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिस्सी । २. मंजन ।

निश्चेतन—वि० [सं०] १. बेसुध । बेहोश । बदहवास । २. जड़ ।

निश्चेष्ट—वि० [सं०] १. बेहोश । अचेत । २. चेष्टारहित । ३. निश्चल । स्थिर ।

निश्चेष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं० निश्चेष्ट + ता (प्रत्य०)] १. बेहोशी । संज्ञाशून्यता । २. चेष्टा का अभाव । निश्चेष्ट होने की स्थिति । अकर्मण्यता । उ० —निश्चेष्टता तथा निर्बलता का न करोगे क्या अब शेष । —कुकुम, पृ० ४ ।

निश्चेष्टाकरण—संज्ञा स्त्री [सं०] १. वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो मैनसिल से बनाई जाती है । २. कामदेव के एक प्रकार के बाण का नाम ।

निश्चैⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निश्च्यवन—संज्ञा सं० [सं०] १. पुराणानुसार वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम . २. महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि ।

निश्छंद—वि० [निश्छन्दस] जिसने वेद न पढ़ा हो ।

निश्छद्म—वि० [सं० निस् + छद्म] बिना आवरण का । खुला हुआ । साफ । उ०—मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो, किंतु हृदय निश्छद्म है ।—अ०व०, पृ० ५७ ।

निश्छल—वि० [सं०] छलरहित । सीधा । सरलचित्त । निष्कपट ।

निश्छाय—वि० [सं०] छायाविहीन । बिना छाया का [को०] ।

निश्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न दिया जा सके । अविभाज्य ।

निश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य से न थकना अथवा न घबराना । अध्यवसाय ।

निश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी ।

निश्रीक—संज्ञा पुं० [सं०] सीढ़ी ।

निश्रेणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी [को०] ।

निश्रेणिका तृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो रसहीन और गरम होती है और पशुओं को निर्बल कर देती है ।

निश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीढ़ी । जीना । २. मुक्ति । ३. खजूर का पेड़ ।

निश्रेयस—संज्ञा पुं० [सं० निःश्रेयस्] १. मोक्ष । २. दुःख का अत्यंत अभाव । ३. कल्याण ।

निश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १ नाक या मुँह से बाहर निकलनेवाला श्वास । प्राणवायु के नाक के बाहर निकलने का व्यापार । २. दीर्घ श्वास । लंबी साँस ।

निश्शंक—वि० [सं० निश्शङ्क] १. निडर । निर्भय । बेखौफ । २. संदेहरहित । जिसमें शंका न हो ।

निश्शंस—वि० [सं० निश्शङ्क] दे० 'निश्शंक' । उ०—ऋषि मुनि मनोहंस, रविवंश अवतंस कर्मरत निश्शंस, पूरो मनस्काम ।—आराधना, पृ० ४८ ।

निश्शक्त—वि० [सं०] निर्बल । नाताकत । जिसमें शक्ति न हो ।

निश्शरण—वि० [सं० निः + शरण] शरणहीन । आश्रयहीन । उ०—सुषमता में अमल संचय, चरण में निश्शरण गाया ।—अर्चना, पृ० ८३ ।

निश्शील—वि० [सं०] शीलरहित । बेमुरौवत । बदमिजाज । बुरे स्वभाववाला ।

निश्शीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट स्वभाव । बदमिजाजी ।

निश्शेष—वि० [सं०] जिसमें से कुछ भी बाकी न बचा हो । जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो ।

निषंग—संज्ञा पुं० [सं० निषङ्ग] १. तूण । तूणीर । तरकश । २. खड्ग । ३. प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था । ४. लगाव (को०) । ५. मिलाप । संमिलन (को०) ।

निषंगथि—संज्ञा पुं० [सं० निषङ्गथि] १. आलिंगन । २. रथ । ३. कंधा । ४. तूण । ५. सारथी । ६. धनुष धारण करनेवाला । धनुर्धर ।

निषंगी[1]—वि० [सं० निषङ्गिन्] १. तीर चलानेवाला । धनुर्धारी । जिसके पास तूणीर हो । २. खड्ग धारण करनेवाला । ३. अत्यंत आसक्त । अत्यंत लगाववाला (को०) ।

निषंगी[2]—संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

निषकपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।

निषकश—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की एक प्रणाली जिसमें प्रत्येक स्वर को दो दो बार अलापना पड़ता है । जैसे,—सा सा, रे रे, ग ग, म म, प प, ध ध, नि नि, सा सा । सा सा, नि नि, ध ध, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा ।

निषक्त—वि० [सं०] अत्यंत आसक्त [को०] ।

निषक्‌—संज्ञा पुं० [सं०] बाप । पिता । जनक ।

निषण्ण—वि० [सं०] १. बैठा हुआ । ओठँगा हुआ । स्थित । २. जिसे सहारा मिला हो । ३. गत । गया हुआ । ४. म्लान । खिन्न । विषण्ण [को०] ।

निषण्णक—संज्ञा पुं० १. आसन। २. एक तरह का शाक या तृण [को०]।

निषत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुस्ती। आलस्य। अकर्मण्यता [को०]।

निषत्र(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र'। उ०—सुभ निषत्र गुन करयो जु आरज। कथ्यो भील जन जान जाति द्विज कुल आचारज।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८६।

निषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की दीक्षा।

निषद—संज्ञा पुं० [सं०] १. (संगीत में) निषाद स्वर। २. एक राजा का नाम।

निषदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपवेशन। बैठना। २. बैठने का आसन। ३. रहने का स्थान। आलय। घर। मकान [को०]।

निषद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्थान जहाँ कोई चीज बिकती हो। हाट। २. छोटी खाट।

निषद्यापरीषह—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे स्थान में जहाँ स्त्री, षंड आदि का आगम हो न रहना और यदि इष्टानिष्ट का उपसर्ग हो तो भी अपने चित्त को चलायमान न करना (जैन)।

निषद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीचड़। चहला। २. कामदेव (को०)।

निषद्वरा, निषद्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रजनी।

निषध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। कहते हैं, यह पर्वत इलावृत्त के दक्षिण हरिवर्ष की सीमा पर है। २. हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के प्रपौत्र और कुश के पौत्र का नाम। ३. महाराज जनमेजय के पुत्र का नाम। ४. पुराणानुसार एक देश का प्राचीन नाम जो विंध्याचल पर्वत पर था।

विशेष—किसी किसी के मत से यह वर्तमान कुमाऊँ का एक भाग है और दमयंती के पति नल यहीं के राजा थे।

५. कुरु के एक लड़के का नाम। ६ संगीत के सात स्वरों में से अंतिम या सातवाँ स्वर। निषाद।

निषध[2]—वि० कठिन।

निषधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा नल की राजधानी का नाम [को०]।

निषधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो विंध्य पर्वत से निकलती है।

निषधाभास—संज्ञा पुं० [सं०] कुरु के एक लड़के का नाम।

निषधाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आक्षेप। अलंकार के पाँच भेदों में से एक।

निषसई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निखिसई'।

निषाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बहुत पुरानी अनार्य जाति जो भारत में आर्य जाति के आने से पहले निवास करती थी। इस जाति के लोग शिकार खेलते, मछलियाँ मारते और डाका डालते थे।

विशेष—पुराणों में जिस प्रकार और अनेक अनार्य जातियों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएं लिखी हुई हैं उसी प्रकार इस जाति की उत्पत्ति के संबंध में भी एक कथा है। अग्निपुराण में लिखा है कि जिस समय राजा वेणु की जाँघ मथी गई थी उस समय उसमें से काले रंग का एक छोटा सा आदमी निकला था। वही आदमी इस वंश का आदि पुरुष था। लेकिन मनु के मत से इस जाति की सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से हुई है। मिताक्षरा में यह जाति क्रूर और पापी कही गई है।

२. एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत, रामायण तथा कई पुराणों में है।

विशेष—महाभारत के अनुसार यह एक छोटा राष्ट्र था जो विनशन के दक्षिणपश्चिम में था। संभवतः रामायणवाला शृंगवेरपुर इस राज्य का राजनगर था।

३. संगीत के सात स्वरों में अंतिम और सबसे ऊँचा स्वर जिसका संक्षिप्त रूप 'नि' है।

विशेष—इसकी दो श्रुतियाँ हैं—उग्रता और क्षोभिनी। नारद के अनुसार यह स्वर हाथी के स्वर के समान है और इसका उच्चारणस्थान ललाट है। व्याकरण के अनुसार यह दंत्य है। संगीतदर्पण के अनुसार इस स्वर की उत्पत्ति असुर वंश में हुई है। इसकी जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्म पुष्कर द्वीप में, ऋषि तुंबरु, देवता सूर्य और छंद जगती है। यह संपूर्ण जाति का स्वर है। और करुण इसके लिये विशेष उपयोगी है। इसकी कूट तान ५०४० हैं। इसका वार शनिवार और समय रात्रि के अंत की २ घड़ी १४ पल है। इसका स्वरूप गणेश जी के समान माना जाता है।

निषादकर्षू—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम।

निषादी—संज्ञा पुं० [सं० निषादिन] हाथीवान। महावत।

निषिक्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य से उत्पन्न गर्भ।

निषिक्त[2]—वि० १. सिंचित। सिक्त। २. गर्भित। भीतर डाला हुआ [को०]।

निषिद्ध—वि० [सं०] १. जिसका निषेध किया गया हो। जिसके लिये मनाही हो; जो न करने योग्य हो। २. खराब। बुरा। दूषित। तुच्छ।

निषिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] निषेध। मनाही।

निषिध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निषिद्ध] बुरा कार्य। अपकर्म। उ०—निषिध छुडावण कारनै भय उपजायो आइ। मद्य मांस पर-त्रिय गवन इनते नरकहि जाइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १६८।

निषूटना†—क्रि० अ० [देश०] समाप्त होना। चुक जाना। निबटना। उ०—दह दिसि फूटा, नीर निपुटा, लेखा देवण लाग वे। दादू दास कहै बणिजारा तू रता तरणी नाल वे।—दादू०, पृ० ४८३।

निषूदन—वि० [सं०] नाश करनेवाला। मारनेवाला। वध करने-वाला। जैसे, अरिनिषूदन, केशिनिषूदन।

निषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भाधान। २. रेत। वीर्य। ३. क्षरण। चूना। टपकना। ४. अच्छी तरह सींचना। सिंचन (को०)। ५. गर्भाधान के अवसर पर होनेवाला संस्कार (को०)। ६. धुलाई के काम आनेवाला जल (को०)। ७. गंदा पानी। ८.

भभके द्वारा अर्क उतारना (को०)। ६. वीर्य संबंधी अशुद्धता (को०)।

निषेचन—क्रि० स० [सं०] सींचना। तर करना। भिगोना। आर्द्र करना।

निषेद(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध'। उ०—सतगुरु सब्द जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद। समुंद बुंद एकै भया, किसका करूं निषेद।—कबीर सा० सं०, पृ० ११।

निषेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्जन। मनाही। न करने का आदेश। २. बाधा। रुकावट। ३. इनकार। अस्वीकार (को०)। ४. विधि का उलटा। विधि का विलोम (को०)।

निषेधक—संज्ञा पुं० [सं०] मना करनेवाला। रोकनेवाला।

निषेधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेधित, निषिद्ध] निषेध करने का काम। निवारण। मना करना।

निषेधपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकार का निषेध किया जाय।

निषेधविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बात का निषेध किया जाय।

निषेधात्मक—वि० [सं० निषेध+आत्मक] निषेध रूप। निषेधवाला। उ०—गूढ़ विषयों का प्रतिपादन कभी कभी निषेधात्मक रीति से किया जाता है।—पा० सा० सि०, पृ० १।

निषेधित—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके लिये निषेध किया गया हो। मना किया हुआ। वर्जित।

निषेधी—वि० [सं० निषेधिन्] १. पीछे हट जानेवाला या बचाव करनेवाला। २. पीछे छोड़ जानेवाला। आगे निकल जानेवाला (को०)।

निषेवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निषेवनीय, निषेवित, निषेव्य] १. सेवा। २. सेवन। व्यवहार। ३. पूजा। अर्चन। अनुष्ठान (को०)। ४. लगाव। लगन। संपर्क (को०)। ५. रहना। बसना (को०)।

निषेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निषेवन'। उ०—मज्जन, मंजन, चंदन द्विज पति देव निषेवा।—नंद० ग्रं०, पृ० ४०।

निषेवित—वि० [सं०] १. पूजित। सेवित। प्रार्थित। समादृत। २. अनुष्ठित (को०)।

निषेवी—संज्ञा पुं० [सं० निषेविन्] सेवा करनेवाला।

निषेव्य—वि० [सं०] सेवनीय। सेवा के योग्य।

निष्कंचन(पु)—वि० [सं० निस्+किञ्चन] अकिंचन। दीन। दरिद्र। उ०—अब लरिकिनी आछी होइ तो काहू निष्कंचन गरीब बाह्मन कों बिबाहु करि देउंगो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६९।

निष्कंटक—वि० [सं० निष्कण्टक] १. जिसमें किसी प्रकार की बाधा, आपत्ति या झंझट आदि न हो। शत्रुरहित। बिना खटका। निर्विघ्न। जैसे,—उन्होंने पचीस वर्ष तक निष्कंटक राज्य किया। २. काँटों से रहित। जिसमें काँटा न हो।

निष्कंठ—संज्ञा पुं० [सं० निष्कण्ठ] वरुण या वरना नाम का पेड़।

निष्कंप—वि० [सं० निष्कम्प] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो। अचल। स्थिर।

निष्कंभ—संज्ञा पुं० [सं० निष्कम्भ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

निष्कंभु—संज्ञा पुं० [सं० निष्कम्भु] पुराणानुसार देवताओं के एक सेनापति का नाम।

निष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैदिक काल का एक प्रकार का सोने का सिक्का या मोहर जिसका मान भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न था।

विशेष—प्राचीन काल में यज्ञों में राजा लोग ऋषियों और ब्राह्मणों को दक्षिणा में देने के लिये सोने के बराबर तौल के टुकड़े कटवा लिया करते थे जो 'निष्क' कहलाते थे। सोने के इस प्रकार टुकड़े कराने का मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणा में सब लोगों को बराबर सोना मिले, किसी के पास कम या ज्यादा न चला जाय। पीछे से सोने के इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदि के चिह्न और नाम आदि बनाए या खोदे जाने लगे। इन्हीं टुकड़ों ने आगे चलकर सिक्कों का रूप धारण कर लिया। उस समय कुछ लोग इन टुकड़ों को गूँथकर और उनकी माला बनाकर गले में भी पहनते थे। भिन्न भिन्न समयों में निष्क का मान नीचे लिखे अनुसार था।

एक निष्क	=	एक कर्ष (१६ माशे)
,, ,,	=	,, सुवर्ण ,,
,, ,,	=	,, दीनार ,,
,, ,,	=	,, पल (४ या ५ सुवर्ण)
,, ,,	=	चार माशे
,, ,,	=	१०८ अथवा १५० सुवर्ण।

२. प्राचीन काल में चाँदी की एक प्रकार की तौल जो चार सुवर्ण के बराबर होती थी। ३. वैद्यक में चार माशे की तौल। टंक। ४. सुवर्ण। सोना। ५. सोने का बरतन। ६. हीरा। ७. निर्गम। बाहर जाना। प्रस्थान (को०)। ८. चांडाल (को०)। ८. सोने की एक तौल जो १०८ या १५० सुवर्ण की होती थी (को०)। ९. गले में पहनने का एक स्वर्णाभूषण (को०)।

यौ०—निष्ककंठ, निष्कग्रीव = जिसने गले में सोने का गहना पहन रखा हो।

निष्कपट—वि० [सं०] जो किसी प्रकार का छल या कपट न जानता हो। निश्छल। छलरहित। सीधा। सरल।

निष्कपटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपट होने का भाव। निश्छलता। सरलता। सीधापन।

निष्कपटी—वि० [सं० निष्कपट] दे० 'निष्कपट'।

निष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो।

निष्करुण—वि० [सं०] जिसमें करुणा या दया न हो। करुणारहित। निष्ठुर। निर्दय। बेरहम।

निष्कर्तन—संज्ञा पुं०[सं०] काटना । फाड़ना । तार तार करना [को०] ।

निष्कर्म—वि० [सं० निष्कर्मन्] अकर्मा । जो कामों में लिप्त न हो । उ०—विष्णु नरायण कृष्ण जो वासुदेव ही ब्रह्म । परमेश्वर परमात्मा विश्वंभर निष्कर्म ।—विश्राम (शब्द०) ।

निष्कर्मण्य—वि० [सं०] अकर्मण्य । अयोग्य । निकम्मा । जो कुछ काम न कर सके ।

निष्कर्मा—वि० [सं० निष्कर्मन्] १. जो कर्मों में लिप्त न हो । अकर्मा । २. निकम्मा ।

निष्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चय । खुलासा । तत्व । २. निचोड़ । सार । सारांश । ३. राजा का अपने लाभ या कर आदि के लिये प्रजा को दुःख देना । ४. माप । मापन (को०) । ५. निकालने की क्रिया ।

निष्कर्षण —संज्ञा पुं० [सं०] १. निकालना । खींचकर निकालना । २. घटाना [को०] ।

निष्कर्षी—संज्ञा पुं० [सं० निष्कर्षिन्] एक प्रकार का मरुत् ।

निष्कलंक—वि० [सं० निष्कलङ्क] जिसमें किसी प्रकार का कलंक न हो । निर्दोष । बेऐब ।

निष्कलंकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० निष्कलङ्कतीर्थ] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम जिसमें स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।

निष्कलंकित—वि० [सं० निष्कलङ्क] दे० 'निष्कलंक' ।

निष्कलंकी—वि० [सं० निष्कलङ्क] दे० 'निष्कलंक' ।

निष्कल¹—वि० [सं०] १. जिसमें कला न हो । कलारहित । २. जिसका कोई अंग या भाग नष्ट हो गया हो । ३. जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो । वृद्ध । ४. नपुंसक । ५. पूरा । समूचा ।

निष्कल²—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म । २. आधार । आस्पद । आश्रय (को०) । ३. शिव (को०) । ४. स्त्री का गुह्यांग । उपस्थ । भग (को०) ।

निष्कलत्व—संज्ञा पुं०[सं०] अविभाज्य होने की अवस्था । किसी पदार्थ की वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें ।

निष्कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुड्ढा स्त्री । बुढ़िया ।

निष्कली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिक धर्म होना बंद हो गया हो ।

निष्कल्मष—वि० [सं०] बेदाग । बेऐब । शुद्ध [को०] ।

निष्कषाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके चित्त में किसी प्रकार का दोष न हो । वह जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो । २. मुमुक्षु । ३. एक जिन का नाम (जैन) ।

निष्कांत—वि० [सं० निष्कान्त] जो सुंदर न हो । भद्दा । बदसूरत [को०] ।

निष्काम—वि० [सं०] १. (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न हो । २. (वह काम) जो बिना किसी प्रकार की कामना या इच्छा के किया जाय ।

विशेष—सांख्य और गीता आदि के मत से ऐसा काम करने से चित्त शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है ।

यौ०—निष्कामचारी = बिना किसी इच्छा या आकांक्षा के काम करनेवाला । निष्कामकर्म = वह कार्य जिसके फल की इच्छा न की जाय ।

निष्कामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्काम होने की अवस्था या भाव ।

निष्कामी—वि० [सं० निष्कामिन्] (वह मनुष्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना या आसक्ति न हो ।

निष्कामुक—वि० [सं०] संसारी इच्छाओं से मुक्त [को०] ।

निष्कारण¹—वि० [सं०] १. बिना कारण । बेसबब । २. व्यर्थ । वृथा ।

निष्कारण²—संज्ञा पुं० १ मारना । वध करना । २. हटाना । अलग करना । दूर करना [को०] ।

निष्कार्य—वि० [सं०] निष्प्रयोजन । बे मतलब [को०] ।

निष्कालक—संज्ञा पुं० [सं०] मूँड़े हुए बाल या रोएँ आदि ।

निष्कालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलाने की क्रिया । २. मार डालने की क्रिया । मारण । ३. पशु आदि को निकाल भगाना (को०) ।

निष्कालिक—वि० [सं०] १. जिसके जीने के दिन थोड़े रह गए हों । २. जिसे जीता न जा सके । अजेय (को०) ।

निष्काश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रासाद आदि का बाहर निकला हुआ भाग । जैसे, बरामदा । २. तड़का । भोर (को०) । ३. लोप (को०) । ४. निष्काशन (को०) ।

निष्काशन—संज्ञा पुं० [सं०] निकालना । बाहर करना ।

निष्काशित—वि० [सं०] १. बहिष्कृत । निकाला हुआ । २. निंदित । जिसकी निंदा की गई हो ।

निष्कास—संज्ञा पुं० [सं०] १ निकालने की क्रिया या भाव । २. जारी किया हुआ । ३. रखा या जमा किया हुआ । ४. नियुक्त । ५. खुला हुआ । विकसित । ६. जिसे बुरा भला कहा गया हो [को०] ।

निष्कासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेविका या दासी जिसपर उसके मालिक का कोई बंधन हो [को०] ।

निष्किंचन—वि० [सं० निष्किञ्चन] अकिंचन । धनहीन । दरिद्र । जिसके पास कुछ न हो ।

निष्किल्बिष—वि० [सं०] जो पापी न हो । बेदाग [को०] ।

निष्कुंभ—संज्ञा पुं० [सं० निष्कुम्भ] दंती वृक्ष ।

निष्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर के पास का बाग । नजर बाग । पाईं बाग । २. क्षेत्र । खेत्र । ३. कपाट । किवाड़ा । ४. जनाना महल । स्त्रियों के रहने का घर । ५. एक पर्वत का नाम । ६. पेड़ का खोंड़रा । वृक्षकोटर (को०) ।

निष्कुटि, निष्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इलायची ।

निष्कुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुमार की अनुचरी एक मातृका का नाम ।

निष्कुल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्कुला] बिना कुल का । जिसका कोई संबंधी न रह गया हो ।

निष्कुलीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी या छिलका अलग करना। २. किसी का कुल या खानदान समाप्त करना (को०)।

निष्कुलीन—वि० [सं०] निम्न कुल का (को०)।

निष्कुषित—वि० [सं०] १. काटा या खाया हुआ। मुक्त। २. बाहर किया हुआ। बहिष्कृत। ३. जिसकी खाल उधेड़ी हुई हो (को०)।

निष्कुह—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ का खोंड़रा। कोटर।

निष्कूज—वि० [सं०] कूजनरहित। जहाँ किसी प्रकार का शोरगुल न होता हो। शांत (को०)।

निष्कूट—वि० [सं०] बिना छल का। जिसमें धोखा न हो (को०)।

निष्कृत—वि० [सं०] १. मुक्त। छूटा हुआ। स्वतंत्र। २. हटाया या दूर किया हुआ। निकाला हुआ। ३. निश्चय किया हुआ। निश्चित।

निष्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निस्तार। छुटकारा। २. प्रायश्चित्त। ३. उपेक्षा। ३. धिक्कार (को०)। ४. दुराचरण। बुरा व्यवहार (को०)।

निष्कृप—वि० [सं०] १. तेज। तीक्ष्ण। धारदार। चोखा। २. कृपाविहीन। कृपारहित (को०)।

निष्कृष्ट—वि० [सं०] १. निचोड़कर निकाला हुआ। २. खींचकर बाहर किया हुआ (को०)।

निष्केवल—वि० [सं०] विशुद्ध। पूर्ण शुद्ध। खालिस (को०)।

निष्कैतव—वि० [सं०] छलछद्म से रहित। ईमानदार (को०)।

निष्कैवल्य—वि० [सं०] १. मोक्षहीन। २. पूर्ण। समग्र (को०)।

निष्कोष, निष्कोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी या छिलका अलग करना। २. फाड़ना। विदारण करना। ३. खींचकर बाहर करना।

निष्कोषणक—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत खोदने का खरिका (को०)।

निष्क्रम[1]—वि० [सं०] बिना क्रम या सिलसिले का। बेतरतीब।

निष्क्रम[2]—संज्ञा पुं० १. बाहर निकलना। २. निष्क्रमण की रीति। ३. पतित होना। ४. मन की वृत्ति।

निष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निष्क्रांत] १. बाहर निकलना। २. हिंदुओं में छोटे बच्चों का एक संस्कार जिसमे जब बालक चार महीने का होता है तब उसे घर से बाहर निकालकर सूर्य का दर्शन कराया जाता है।

निष्क्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चार महीने के बालक को पहले पहल घर से निकालकर सूर्य के दर्शन कराना।

निष्क्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेतन। तनखाह। मजदूरी। भाड़ा। २. वह धन जो किसी पदार्थ के बदले में दिया जाय। ३. विनिमय। बदला। ४. बिक्री। बेचने की क्रिया। ५. सामर्थ्य। शक्ति। ६. पुरस्कार। इनाम। ७. कौटिल्य के अनुसार वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय।

निष्क्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. छुटकारे के लिये प्रदत्त धन। २. किसी वस्तु के बदले में प्रदत्त धन (को०)।

निष्क्रांत—वि० [सं० निष्क्रान्त] जो जा चुका हो। बहिर्गत (को०)।

निष्क्रामित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बहिष्कृत (को०)।

निष्क्राम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. माल का बाहर भेजा जाना। बाहर भेजी जानेवाली चलान। २. रफ्तनी माल। (कौटि०)।

निष्क्राम्य शुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल।

निष्क्रिय[1]—वि० [सं०] जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो। सब प्रकार की क्रियाओं से रहित। निश्चेष्ट।

यौ०—निष्क्रिय प्रतिरोध = किसी कार्य या आज्ञा का वह विरोध जिसमें विरोध करनेवाला अपनी समझ से सत्य और उचित काम करता रहता है और इस बात की परवा नहीं करता कि इसके लिये मुझे दंड सहना पड़ेगा।

२. विहित कर्म को न करनेवाला (को०)। ३. काम धाम न करनेवाला। निकम्मा (को०)।

निष्क्रिय[2]—संज्ञा पुं० कर्मशून्य ब्रह्म।

निष्क्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्क्रिय होने का भाव या अवस्था।

निष्क्लेश—वि० [सं०] १. क्लेशरहित। सब प्रकार के कष्टों से मुक्त। २. बौद्धों के अनुसार दसों प्रकार के क्लेशों से मुक्त।

निष्क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं०] मांस आदि का रसा। शोरवा।

निष्टपन—संज्ञा पुं० [सं०] भूनना। जलाना। सेंकना। पकाना (को०)।

निष्टप्त—वि० [सं०] १. अच्छी तरह भुना या पका हुआ। २. जला हुआ (को०)।

निष्टानप—संज्ञा पुं० [सं०] १. रव। आवाज। ध्वनि। २. दीर्घ नाद। गर्जन (को०)।

निष्टाप—संज्ञा पुं० [सं०] हलकी गरमी। थोड़ा ताप (को०)।

निष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री दिति का एक नाम।

निष्टिग्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।

निष्टय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चांडाल। २. म्लेच्छों की एक जाति का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है।

निष्टया—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वाती नक्षत्र (को०)।

निष्ठ—वि० [सं०] १. स्थित। ठहरा हुआ। २. तत्पर। लगा हुआ। जैसे, कर्तव्यनिष्ठ। ३. जिसमें किसी के प्रति श्रद्धा या भक्ति हो। जैसे, स्वामिनिष्ठ।

निष्ठांत—वि० [सं० निष्ठान्त] जिसका नाश अवश्य हो। जो अविनाशी न हो। नष्ट होनेवाला।

निष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थिति। अवस्था। ठहराव। २. निर्वाह। ३. मन की एकांत स्थिति। चित्त का जमना। ४. विश्वास। निश्चय। ५. धर्मगुरु या बड़े आदि के प्रति श्रद्धा भक्ति। पूज्य बुद्धि। ६. विष्णु जिनमें प्रलय के समय समस्त भूतों की स्थिति होगी। ७. इति। समाप्ति। ८. नाश। ९. सिद्धावस्था की अंतिम स्थिति। ज्ञान की वह चरमावस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता हो जाती है। १०. याचना (को०)।

११. व्रत। उपवास (को०)। १२. कौशल। चातुर्य। दक्षता (को०)। १३. व्याकरण में 'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्यय।

निष्ठान, निष्ठानक —पुं० [सं०] चटनी आदि।

निष्ठापित—वि० [सं०] पूरा किया हुआ। समाप्त किया हुआ [को०]।

निष्ठावान्—वि० [सं० निष्ठावत्] जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो।

निष्ठित—वि० [सं०] १. स्थित। दृढ़। ठहरा या जमा हुआ। २. जिसमें निष्ठा हो। निष्ठायुक्त। ३. दक्ष। कुशल। चतुर (को०)।

निष्ठीव, निष्ठीवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. थूक। २. थूक आदि बाहर निकालना (को०)। ३. वैद्यक के अनुसार एक औषध जिसका व्यवहार गले या फेफड़े से काम निकालने में किया जाता है। इसके सेवन से रोगी कफ थूकने लगता है।

निष्ठुर[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्ठुरा] १. कठिन। कड़ा। सख्त। २. जिसमें दया न हो। कठोर हृदयवाला। क्रूर। बेरहम।

निष्ठुर[2]—संज्ञा पुं० परुष वचन। कठोर बात।

निष्ठुरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्ठुर होने का भाव। कड़ाई। सख्ती। कठोरता। २. निर्दयता। क्रूरता। बेरहमी।

निष्ठुरिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

निष्ठेव, निष्ठेवन—संज्ञा पुं० [सं०] थूक।

निष्ठ्यूत—वि० [सं०] १. उक्त। कथित। २. थूका हुआ। उद्गीर्ण। ३. बहिष्कृत [को०]।

निष्ठ्यूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूकने की क्रिया [को०]।

निष्णु—वि० [सं०] कुशल। होशियार। निष्णात।

निष्णात—वि० [सं०] १. किसी विषय का बहुत अच्छा ज्ञाता या जानकार। किसी बात का पूरा पंडित। २. विज्ञ। निपुण। ३. पूर्ण किया हुआ। पूरा किया हुआ।

निष्पंक—वि० [सं० निष्पङ्क] जिसमें कीचड़ आदि न लगा हो। स्वच्छ। निर्मल। साफ। सुथरा।

निष्पंद—वि० [सं० निष्पन्द] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो। स्पंदनरहित।

निष्पक्व—वि० [सं०] १. सुपक्व। २. दग्ध। जला हुआ [को०]।

निष्पक्ष—वि० [सं०] जो किसी के पक्ष में न हो। पक्षपातरहित।

निष्पक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पक्ष होने का भाव। पक्षपात न करने का भाव।

निष्पतन—संज्ञा पुं० [सं०] तेजी से झपटना या बाहर निकलना [को०]।

निष्पताक—वि० [सं०] बिना पताका का। जिसमें फरहरा या ध्वजा न हो [को०]।

निष्पताकध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का दंड जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे।

विशेष—यह दंड ठीक पताका के दंड के समान होता था, अंतर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी।

निष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समाप्ति। अंत। २. सिद्धि। परिपाक। ३. हठ योग के अनुसार नाद की चार प्रकार की अवस्थाओं में से अंतिम अवस्था। ४. निर्वाह। ५. मीमांसा। ६. निश्चय। निर्धारण। ७. उत्पादन। उत्पत्ति (को०)। ८. चर्वणा। अभिव्यंजना। अभिव्यक्ति (को०)।

निष्पत्र—वि० [सं०] १. जिसमें पत्ते न हों। जैसे, पेड़। २. जिसके पर न हो [को०]।

निष्पत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करील का पेड़।

निष्पद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हों। जैसे, नाव आदि।

निष्पद[2]—वि० जिसे पद या पैर न हो [को०]।

निष्पन्न—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो। जो समाप्त या पूरा हो चुका हो।

निष्पयोद—वि० [सं०] अनभ्र। बिना बादल का। मेघरहित [को०]।

निष्पराक्रम—वि० [सं०] पराक्रमरहित। बेकूवत। जिसमें पराक्रम न हो [को०]।

निष्परिकर—वि० [सं०] बिना तैयारी का। जिसने कोई तैयारी न की हो [को०]।

निष्परिग्रह—वि० [सं०] १. जो दान आदि न ले। २. जिसके स्त्री न हो। रँडुआ। ३. अविवाहित। कुँवारा। ४. (साधु) जो परिग्रह अर्थात् पादुका, कंथा आदि से रहित हो (को०)।

निष्परिहार्य—वि० [सं०] जिसे किसी भी कीमत पर न छोड़ा जाय। अनिवार्य [को०]।

निष्परुष—वि० [सं०] जो सुनने मे कर्कश न हो। कोमल।

निष्पर्यंत—वि० [सं० निष्पर्यन्त] सीमाहीन [को०]।

निष्पलक—वि० [सं० निस् + हिं० पलक] अपलक। निर्निमेष। उ०—देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन।—अपरा, पु० ४०।

निष्पवन—संज्ञा पुं० [सं०] धान आदि की भूसी निकालना। कूटना छाटना। अनाज को ओसाना या सूप आदि से पछोरना।

निष्पाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनाज को भूसी निकालने का काम। दाना। २. बोड़ा नाम की तरकारी या फली। लोबिया। ३. मटर। ४. सेम।

निष्पादक—वि० [सं०] निष्पत्ति करनेवाला।

निष्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] निष्पत्ति करना।

निष्पादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोड़ा नाम की तरकारी या फली। लोबिया।

निष्पाप—वि० [सं०] जो पापी न हो। पापरहित। निर्दोष [को०]।

निष्पाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी निकालना। कूट छाँट। २. सूप की हवा। ३. वायु। हवा (को०)। ४. सेम। लोबिया।

निष्पावक—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सेम।

निष्पावी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निष्पादी'।

निष्पिष्ट—वि० [सं०] १. चूर्ण किया हुआ। पिसा हुआ। अच्छी तरह पीसा हुआ। २. पीटा हुआ। पीड़ित [को०]।

निष्पीड़न—संज्ञा पुं० [सं० निष्पीडन] निचोड़ना। गीले कपड़े को दबाकर उसमें से पानी निकालना।

निष्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रहीन। जिसके आगे पुत्र न हो।

निष्पुरुष—वि० [सं०] नपुंसक। नामर्द।

निष्पुलाक—संज्ञा पुं० [सं०] आगामी उत्सर्पिणी के अनुसार १४ वें अर्हत का नाम (जैन)।

निष्पेष, निष्पेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूर चूर करना। पीस डालना। मसल देना। २. घर्षण। रगड़ना। ३. परस्पर घर्षण की ध्वनि [को०]।

निष्पौरुष—वि० [सं०] पौरुषविहीन [को०]।

निष्प्रकंप[1]—संज्ञा पुं० [सं० निष्प्रकम्प] पुराणानुसार तेरहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक का नाम।

निष्प्रकंप[2]—वि० अचल। कंपनविहीन। जो काँपता न हो [को०]।

निष्प्रकारक—वि० [सं०] १. बिना प्रकार या विशेषता का। २. दे० 'निर्विकल्पक' [को०]।

निष्प्रकाश—वि० [सं०] जो साफ न हो। धुँधला [को०]।

निष्प्रचार—वि० [सं०] १. जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। जिसमें गति न हो। न चल सकने योग्य। २. केंद्रित किया हुआ। एक स्थान पर स्थिर किया हुआ। जैसे, मन (को०)।

निष्प्रतिकार, निष्प्रतीकार—वि० [सं०] १. जिसका कोई उपाय न हो सके। ला इलाज। २. जिसे रोका न जा सके। प्रतिबंधहीन [को०]।

निष्प्रतिग्रह—वि० [सं०] दान या उपहार आदि न लेनेवाला [को०]।

निष्प्रतिघ—वि० [सं०] निर्बंध। अबाध [को०]।

निष्प्रतिभ—वि० [सं०] जिसमें प्रतिभा न हो। मंदबुद्धि। २. सहानुभूति न रखनेवाला। ३. जिसमें तड़क भड़क न हो। दीप्तिशून्य [को०]।

निष्प्रतीप—वि० [सं०] १. नाक की सीध में देखनेवाला। जो इधर उधर न देखे। २. उदासीन। जैसे, दृष्टि [को०]।

निष्प्रपंच—वि० [सं० निष्प्रपञ्च] १. छलरहित। ईमानदार। २. विस्तारहीन [को०]।

निष्प्रभ—वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की प्रभा या चमक न हो। प्रभाशून्य। तेजरहित।

निष्प्रयत्न—वि० [सं०] अकर्मण्य। काहिल। सुस्त [को०]।

निष्प्रयोजन[1]—वि० [सं०] १. प्रयोजन रहित। जिसमें कोई मतलब न हो। स्वार्थशून्य। जैसे, निष्प्रयोजन प्रीति। २. जिससे कुछ अर्थ सिद्ध न हो। ३. व्यर्थ। निरर्थक।

निष्प्रयोजन[2]—क्रि० वि० १. बिना अर्थ या मतलब के। २. व्यर्थ। फजूल।

निष्प्रवणि, निष्प्रवाण, निष्प्रवाणि—वि० [सं०] कोरा कपड़ा। एकदम नया कपड़ा [को०]।

निष्प्राण—वि० [सं०] प्राणरहित। मुरदा। मरा हुआ।

निष्प्रेही(पु)—वि० [सं० निस्पृह] जिसको किसी वस्तु की चाह न हो। किसी बात की इच्छा न रखनेवाला। उ०—चतुराई हरि ना मिलैं ये बातों की बात। निष्प्रेही निरधार को गाहक दीनानाथ।—कबीर (शब्द०)।

निष्फल[1]—वि० [सं०] १. जिसका कोई फल न हो। व्यर्थ। निरर्थक। बेफायदा। २. अंडकोशरहित। जिसके अंडकोश न हो। उ०—हे दुर्मति तूने मेरा रूप लेकर इस अकार्य कर्म को किया इसलिये तै निष्फल अर्थात् अंडकोशरहित हो जायगा।—गोपाल भट्ट (वाल्मीकि रामायण) (शब्द०)। ३. फलरहित। बिना फल का। ४. जो किसी कार्य का न हो। बेकार।

निष्फल[2]—संज्ञा पुं० धान का पयाल। पूला।

निष्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका रजोधर्म होना बंद हो गया हो। बूढ़ी स्त्री।

विशेष—जटाधर के मत से ५० वर्ष की अवस्था के उपरांत और सुश्रुत के मत से ५५ वर्ष की अवस्था के उपरांत स्त्रियाँ निष्फला हो जाती हैं।

निष्फलि—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के निष्फल करने का अस्त्र।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार जिस समय विश्वामित्र अपने साथ रामचंद्र को वन में ले गए थे उस समय उन्होंने रामचंद्र को और और अस्त्रों के साथ यह अस्त्र भी दिया था।

निष्फेन[1]—वि० [सं०] झाग या फेनरहित। जिसमें झाग न हो [को०]।

निष्फेन[2]—संज्ञा पुं० अफीम [को०]।

निसंक—वि० [हिं०] दे० 'निशंक'। उ०—बावरो जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहि अंक लगावति।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १७६।

निसंग(पु)—वि० [सं० निस्सङ्ग] अकेला। एकाकी।

निसंबर, निसंबल(पु)—वि० [सं० निसम्बल] संबलविहीन। आश्रय या आधारहीन। निराश्रय। उ०- (क) सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को। संबर निसंबर को सखा असहाय को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७५। (ख) भए राम सरन सबको भलो।··· पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहे जाँचे जलो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८६।

निसंस(पु)†—वि० [सं० नृशंस] क्रूर। बेरहम। निर्दय।

निसँठ(पु)†—वि० [हिं० नि + संठ (= पूँजी)] जिसके पास धन या पूँजी न हो। निर्धन। गरीब। उ०—साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसंठ जो पुरुष पात जिमि डोला।—जायसी (शब्द०)।

निसँस(पु)—वि० [हिं० नि + साँस] जिसे साँस न आती हो। मृतप्राय। मुरदा सा।

निसँसना(पु)—क्रि० अ० [सं० नि श्वसन] हाँफना। निःश्वास लेना। उ०—खनहिं निसाँस बूड़ि जिउ जाई। खनहिं उठइ निसँसइ बउराई।—पदुमा०, पृ० ५३।

निस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निशा'।

निसक—वि० [सं० नि.शक्त] अशक्त। कमजोर। दुर्बल। उ०—कहूँ यहै श्रुति सम्रृत सो यहै सयाने लोग। तीन दबावत निसक हीं राजा पातक रोग।—बिहारी (शब्द०)।

निसकर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निशाकर] चंद्रमा। चाँद।

निसचय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय'।

निसचै(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय'।

निसत(पु)†—वि० [सं० निःसत्य] असत्य। मिथ्या। उ०—जो जाने सत आपुहि जारे। निसत हिएँ सत करै न पारे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२३।

निसतरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० निस्तार] निस्तार पाना। छुटकारा पाना। छुट्टी पाना।

निसतार—संज्ञा पुं० [सं० निस्तार] दे० 'निस्तार'।

निसतारना(पु)—क्रि० स० [सं० निस्तार+ना (प्रत्य०)] निस्तार करना। छुटकारा देना।

निसद्योस(पु)‡—क्रि० वि० [सं० निशा+दिवस] रात दिन। नित्य। सदा।

निसनेहा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निःस्नेहा] दे० 'निःस्नेहा'।

निसबत¹—संज्ञा स्त्री० [अ० निस्बत] १. संबंध। लगाव। ताल्लुक। जैसे,—इन दोनों में कोई निसबत नहीं है। २. मँगनी। विवाह संबंध की बात।

क्रि० प्र०—आना।—ठहरना।

३ तुलना। अपेक्षा। मुकाबला। जैसे,—(क) इसकी और उसकी क्या निसबत? (ख) यह चीज उसकी निसबत अच्छी है।

विशेष—उदाहरण 'ख' की कोटि के वाक्यों में 'निसबत' शब्द के पहले प्रायः फारसी का 'ब' उपसर्ग लगा देते हैं। जैसे,—इसको बनिसबत वह कुछ बड़ा है।

मुहा०—निसबत देना = तुलना करना। मुकाबला करना।

निसबत²—क्रि० वि० संबंध में। बाबत।

निसबती—वि० [अ० निस्बत+ई (प्रत्य०)] संबंधवाला। संबंधी। रिश्ते का।

यौ०—निसबती भाई = बहनोई।

निसयाना(पु)‡—वि० [हिं० नि+सयाना ?] जिसकी सुध बुध खो गई हो। जिसके होश हवास ठिकाने न हों।

निसरना(पु)—क्रि० अ० [सं० निःसरण] निकलना। बाहर होना। उ०—नव बसन निसरत बदन मंहु जो दसन कली समान तें।—सीताराम (शब्द०)।

निसरमा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'बेशरम'। उ०—कीया कौन कीया तैं करमा। सिरजनहार न भज्यो निसरमा।—रामानंद०, पृ० ६।

निसरवाना, निसराना—क्रि० स० [सं० निःसारण] बाहर निकलवाना। बाहर निकालना। उ०—दगनि चुभी छूटी चुभी निसराए निसरै न। चल चल चितवनि चित चुभी बिसराए बिसरै न।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

निसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव। प्रकृति। २. रूप। आकृति। ३. दान। ४. सृष्टि। ५. परित्याग। त्याग (को०)। ६. विनिमय (को०)।

यौ०—निसर्गज, निसर्गसिद्ध = स्वाभाविक। निसर्गनिपुण = जनम का चतुर। निसर्गभिन्न = जो स्वभाव से ही भिन्न लगे। निसर्गविनीत = जो स्वभाव से ही नम्र हो।

निसर्गायु—संज्ञा स्त्री० [सं० निसर्गायुस्] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की गणना जिससे किसी व्यक्ति की आयु का पता लगाया जाता है।

निसवादला(पु)—वि० [सं० निःस्वाद] [वि० स्त्री० निसवादली] स्वादरहित। जिसमें कोई स्वाद न हो।

निसवादली(पु)‡—वि० स्त्री० [हिं० निसवादला] बिना स्वाद की। जिसमें कोई स्वाद न हो। उ०—जनक झूठ निसवादली कौन बात परि जाइ। तियमुख रति आरंभ की नहिं झूठयहि मिटाइ।—बिहारी (शब्द०)।

निसवादिल(पु)—वि० [हिं० निसवाद+इल (प्रत्य०)] स्वादहीन। बेस्वाद। उ०—ह्वै निसवादिल जात रसौ मन मेरे सुभाव मिठासहि पागै।—घनानंद, पृ० २१।

निसवासर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निशिवासर] रात और दिन।

निसवासर²—क्रि० वि० नित्य। सदा। हमेशा।

निसस(पु)†—वि० [सं० निःश्वास] श्वासरहित। अचेत। बेहोश। उ०—निसस ऊभ भर लीन्हे साँसा। भइ अधार जीवन की आसा।—जायसी (शब्द०)।

निसहाय—वि० [सं० निस्सहाय] दे० 'निस्सहाय'।

निसाँत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशान्त] गृह। घर। निशांत। अंतःपुर। उ०—निर्वृत्ति, निशांतऽरु उद्वसित, सरण, पस्त्य, आवास।—नद ग्रं०, पृ० १०८।

निसाँक‡—वि० [सं० निःशंक] १. बेखटके। निर्भय। बेखौफ। २. बेफिक्र। निश्चित।

निसाँस(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० निश्वास] ठंढी साँस। लंबी साँस।

निसाँस²—वि० बेदम। मृतकप्राय। उ०—खनहिं निसाँस बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई।—पदुमा०, पृ० ५३।

निसाँसा†—वि० [हिं० नि+साँस] [वि० स्त्री० निसाँसी] जिसका श्वास न चलता हो। श्वास-प्रश्वास-रहित। उ०—अब हौं मरौं निसाँसी हिये न आवै साँस। रोगिया की को चालै बैदहि जहाँ उपास।—जायसी (शब्द०)।

निसा(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [निशातिर ?] संतोष। तृप्ति। उ०—

हूँ है तब निसा मेरे लोचन चकोरनि की अब वह अमेल आनन इंदु देखिहौं।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—निसा भर = जी भर के। खूब अच्छी तरह। उ०—आज निसा भरि प्यारे निसा भरि कीजिए कान्हर केलि खुसी मैं।—ठाकुर (शब्द०)।

निसा(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] दे० 'निशा'।

निसा(पु)†³—संज्ञा पुं० [अ० नशअह] दे० 'नशा'।

निसा⁴—संज्ञा स्त्री० [अ०] औरत। महिला। स्त्री [को०]।

निसाकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाकर।

निसाखातिर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निशाखातिर'।

निसाचर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर'।

निसाट†—संज्ञा पुं० [सं० निशाट] निशाचर। दे० 'निशाट'। उ०—पड़ झाट जगे इठ थाट पगे। जुधकाट निसाट निराट जगे।—रा० रू०, पृ० १६८।

निसाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निषाद] १. भंगी। मेहतर। २. दे० 'निषाद'।

निसान(पु)¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशान] दे० 'निशान'।

निसान²—संज्ञा पुं० [सं० निःस्वान] नगाड़ा। धौंसा। उ०—बीस सहस घुंमरहिं निसाना। गुलकंचन फेरहिं असमाना।—जायसी (शब्द०)।

निसानन†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशानन] संध्या का समय। प्रदोष काल।

निसाना(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशाना] दे० 'निशाना'।

निसानाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशानाथ] दे० 'निशानाथ'।

निसानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निशानी] दे० 'निशानी'।

निसापति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशापति] दे० 'निशापति'।

निसाफ(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] न्याय। इनसाफ।

निसार¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. निछावर। सदका। उतारा। २. मुगलों के राजत्व काल का एक सिक्का जो चौथाई रुपए या चार आने मूल्य का होता था।

निसार²—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। २. सहोरा या सोनापाठा नाम का वृक्ष।

निसार(पु)³†—वि० [सं० निस्सार] दे० 'निस्सार'।

निसार†⁴—संज्ञा पुं० [सं० निःसरण, हिं० निसरना] निकलने या बाहर जाने का रास्ता।

यौ०—निसार पैसार = निर्गम और प्रवेशपथ।

निसारक—संज्ञा पुं० [सं०] सालक राग का एक भेद।

निसारत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशा + रत] रात में होनेवाली रति। रात्रिकालीन रति। उ०—बैठी गुर जन साथ मैं लखी अचानक लाल। नैन इसारन सौं कही नैन निसारत बाल।—स० सप्तक, पृ० ३७१।

निसारना†—क्रि० स० [सं० निःसरण] निकालना। बाहर करना।

निसारा—संज्ञा स्त्री० [सं० निःसारा] केले का पेड़।

निसावरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कबूतर।

निसास(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० निःश्वास] गहरी या ठंढी साँस।

निसास(पु)²—वि० [हिं० नि (प्रत्य०) + साँस] विगतश्वास। बेदम। उ०—गगन धरति जल बूड़ि गए बूड़त होइ निसास। पिउ पिउ चातक ज्यों रटै मरै सेवाति पियास।—जायसी (शब्द०)।

निसासो(पु)—वि० [सं० निःश्वास] जिसका साँस न चलता हो। बेदम।

निसिंधु—संज्ञा पुं० [सं० निसिन्धु] सम्हालू नाम का पेड़।

निसि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निशि] १. दे० 'निशि'। २. एक वृत्त का नाम। इसके प्रत्येक चरण में एक भगण और एक लघु (ऽ।।।) होता है।

निसिकर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिकर] दे० 'निशिकर' या 'निशाकर'।

निसिचर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० निशिचर] दे० 'निशाचर'। उ०—निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं।—मानस, ३। २४।

निसिचारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिचारी] निशाचर। राक्षस।

निसिदिन(पु)—क्रि० वि० [सं० निशिदिन] १. रातदिन। आठो पहर। २. सदा। सर्वदा। नित्य। हमेशा।

निसिनाथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिनाथ] दे० 'निशिनाथ' या 'निशानाथ'।

निसिनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिनाथ] चंद्रमा।

निसि निसि—संज्ञा स्त्री० [सं० निशि निशि] अर्धरात्रि। निशीथ। आधी रात। उ०—निसि निसि निसिथ निसाह निसि होन लगी अधरात। कौन चले सखि सोय रहु कैहौं उठि परभात।—नंददास (शब्द०)।

निसिपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिपति] चंद्रमा।

निसिपाल(पु)—संज्ञा पुं० [निशिपाल] चंद्रमा।

निसिमनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशामणि] चंद्रमा।

निसिमुख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशामुख] दे० 'निशामुख'।

निसियर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशिकर] चंद्रमा। उ०—धनु धनि तू निसियर निसि माहीं। हौं दिनियर जेहि के तू छाहीं।—जायसी (शब्द०)।

निसियाना(पु)¹†—वि० [हिं० नि + सयाना ?] जिसकी सुधबुध खो गई हो। जिसके होश हवास ठिकाने न हों। उ०—जनहु मानि निसियानी बसी। अति बेसँभार फूलि जनु अरसी।—जायसी (शब्द०)।

निसिवासर(पु)—क्रि० वि० [सं० निशि+वासर] रातदिन। सदा। सर्वदा। नित्य।

निसीठी—वि० [सं० नि + हिं० सीठी] जिसमें कुछ तत्व न हो। निःसार। नीरस। थोथा। उ०—तुम बातें निसीठी कही रिस में मिसरी ते मिठी हमैं लागती हैं।—पद्माकर (शब्द०)।

निसीथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निशीथ] दे० 'निशीथ'।

निसीलⓅ—वि॰ [सं॰ निःशील] शीलरहित । उ॰ —नीच निसील निरीस निसंकी ।—मानस, २ । २९८ ।

निसुंद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निसुन्द] प्रह्लाद के भाई ह्लाद के पुत्र का नाम ।

निसुंभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निशुम्भ] दे॰ 'निशुंभ' ।

निसुⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ निस] दे॰ 'निशा' ।

निसुकाⓅ†[1]—वि॰ [सं॰ निस्वक अथवा निःशुक्र] १. निर्धन । दरिद्र । गरीब । २. कमजोर । असमर्थ । निकम्मा । ३. निस्तेज । उ॰—रहैं निगोड़े नैन डिगि गहैं न चेत अचेत । हौं कसु कै रिस केकरौं ये निसुके हँसि देत । —बिहारी (शब्द॰) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः 'निगोड़ा' शब्द की भाँति करती हैं ।

निसूदक—वि॰ [सं॰] हिंसा करनेवाला । हिंसक ।

निसूदन[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. हिंसा करना । २. वध करना ।

निसूदन[2]—वि॰ मारने या वध करनेवाला [को॰] ।

निसृत—वि॰ [सं॰ निःसृत] दे॰ 'निःसृत' ।

निसृता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] निसोथ ।

निसृष्ट[1]—वि॰ [सं॰] १. छोड़ा हुआ । जो छोड़ दिया गया हो । २. मध्यस्थ । जो बीच में पड़कर कोई बात करे । ३. भेजा हुआ । प्रेरित । ४. दिया हुआ । दत्त । ५. अर्पित किया हुआ ।

निसृष्ट[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दैनिक भृति । रोजाना दी जानेवाली मजदूरी (कौटि॰) ।

निसृष्टार्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. तीन प्रकार के दूतों में से एक दूत । वह दूत जो दोनों पक्षों का अभिप्राय अच्छी तरह समझकर सब प्रश्नों का उत्तर दे देता और कार्य सिद्ध कर लेता है । २. वह मनुष्य जो धन के आयव्यय और कृषि तथा वाणिज्य की देखरेख के लिये नियुक्त किया जाय । ३. वह मनुष्य जो धीर और शूर हो, अपने मालिक का काम तत्परता से करता रहे और अपना पौरुष प्रकट करे ।

यौ॰—निसृष्टार्थदूतिका, निसृष्टार्थदूती = वह दूती जो नायक और नायिका की बातों को सुन समझकर अपनी बुद्धि से कार्यसाधन करे ।

निसेधⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निषेध] दे॰ 'निषेध' । उ॰—का करतब्य निसेध ... 'गिरिधारन' कोऊ नहीं पहचानै ।—पोद्दार ... पृ॰ ४९२ ।

निसेनिकाⓅ संज्ञा स्त्री॰ [निःश्रेणिका] सीढ़ी । सोपान । उ॰—नाभी सर त्रिवली निसेनिका रोमराजि सैवल छबि पावति ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ४१५ ।

निसेनी†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निःश्रेणी] सीढ़ी । जीना । सोपान । उ॰—नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी ।—मानस, ७ । १२१ ।

निसेषⓅ—वि॰ [सं॰ निःशेष] दे॰ 'निःशेष' । उ॰—काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ५६२ ।

निसेसⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निशेष] चंद्रमा ।

निसैनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निःश्रेणी] दे॰ 'निसेनी' ।

निसोगⓅ—वि॰ [सं॰ निःशोक] जिसे कोई शोक या चिंता न हो ।

निसोचⓅ—वि॰ [सं॰ निःशोच] चिंतारहित । निश्चिंत । बेफिक्र । उ॰—सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ।—मानस, २ । २४१ ।

निसोचुⓅ—वि॰ [सं॰ निःशोच] दे॰ 'निसोच' । उ॰—तुलसी की साहसी सराहिए कृपाल नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु हैं ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ २१७ ।

निसोत[1]—वि॰ [सं॰ निःसंयुक्त] जिसमें और किसी चीज का मेल न हो । शुद्ध । निरा । उ॰—(क) तो कत त्रिबिध सूल निस वासर सहते बिपति निसोती ।—तुलसी (शब्द॰) । (ख) रीझत राम सनेह निसोते । को जग मंद मलिन मति मोते ।—तुलसी (शब्द॰) ।

निसोत[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ निसोथ] दे॰ 'निसोथ' ।

निसोत्तर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'निसोत' ।

निसोथ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ निसृता] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत के जंगलों में और पहाड़ों पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोल फल लगते हैं । यह तीन प्रकार की होती है—सफेद, काली और लाल । सफेद निसोथ में सफेद रंग के, काली में कालापन लिए बैगनी रंग के और लाल के फल कुछ लाल रंग के होते होते हैं । सफेद निसोथ के पत्ते और फल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और वैद्यक में वही अधिक गुणकारी भी मानी जाती है । भारत में बहुत प्राचीन काल से वैद्य लोग इसका व्यवहार करते आए हैं और इसका जुलाब सबसे अच्छा समझते हैं । औषध के काम के लिये बाजार में इसकी जड़ तथा डंठलों के कटे हुए टुकड़े मिलते हैं । वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रूखी, रेचक और कफ, सूजन तथा उदर रोगों को दूर करनेवाली माना है ।

पर्या॰—त्रिवृत् । सुवहा । त्रिपुटा । त्रिभंडी । रेचनी । सरा । सहा । सरसा । रोचनी । मालविका । श्यामा । मसूरी । अर्धचंद्रा । विदला । सुवेणी । कालिंदिका । कालमेषी । काली । त्रिवेला । त्रिवृत्तिका । सारा । निसृता ।

निसोधुⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सोध या सुध] १. सुध । खबर । २. संदेसा । कहलाया हुआ समाचार ।

निस्—उप॰ [सं॰] एक उपसर्ग । संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार इस उपसर्ग का 'स' 'र', 'विसर्ग, 'श' और 'ष' में परिवर्तित हो जाता है । जैसे, निर्मक्षिक, निःसंग, निश्चक्र, निष्काम । हिंदी में इसका रूप 'निह' 'निहि' भी मिलता है । जैसे, निहकाम, निहचिंत, निहिचय आदि ।

निरकी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसे निस्तरी भी कहते हैं ।

निस्केवल—वि० [सं० निष्केवल] बेमेल । शुद्ध । निर्मल । खालिस । (बोलचाल) । उ०—उमा जोग जप दान तप नाना व्रत मख नेम । राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निस्केवल प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) ।

निस्तंतु—वि० [सं० निस्तन्तु] १. जिसके कोई संतान न हो । संतति-रहित । २. तंतुहीन ।

निस्तंद्र, निस्तंद्रि—वि० [सं० निस्तन्द्र, निस्तन्द्रि] १. जिसमें आलस्य न हो । निरालस्य । २. बलवान् । मजबूत ।

निस्तत्व—वि० [सं० निस्तत्व] जिसमें कोई तत्व न हो । निस्सार ।

निस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दवा की गोली । वटिका [को०] ।

निस्तब्ध—वि० [सं०] १. जो गड़ या जम सा गया हो । जो हिलता डोलता न हो । जिसमें गति या व्यापार न हो । २. जड़वत् । निश्चेष्ट ।

निस्तब्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तब्ध होने का भाव । खामोशी । २. जरा भी शब्द न होने का भाव । सन्नाटा ।

निस्तमस्क—वि० [सं०] अंधकारहीन [को०] ।

निस्तर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निस्तार] छुटकारा । निस्तार । उ०—जरै देहु दुख जरौं अपारा । निस्तर पाइ जाउँ एक बारा ।—जायसी (शब्द०) ।

निस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निस्तार । छुटकारा । उद्धार । २. पार जाने की क्रिया या भाव ।

निस्तरना(पु)†—क्रि० अ० [सं० निस्तार] निस्तार पाना । पार होना । मुक्त होना । छूट जाना । उ०—नाथ जीव तव माया मोहा । सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निस्तरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसका रेशम बंगाल के 'देसी' कीड़ों के रेशम की अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है ।

विशेष—इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और क्रमि ।

निस्तर्क्य—वि० [सं०] जिसका तर्क करना संभव न हो । अतर्क्य [को०] ।

निस्तर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] वध । हत्या [को०] ।

निस्तल—वि० [सं०] १. गोल आकार का । २. बिना पेंदी का । ३. चंचल । ३. अतल । गहरा । तलहीन । उ०—शीतल सुख मेरे तट की निस्तल निझरी, छबि विभावरी । अनामिका, पृ० १४४ ।

निस्तला—संज्ञा पुं० [सं०] वटिका । गोली [को०] ।

निस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पार होने का भाव । २. छुटकारा । मोक्ष । ३. बचत । बचाव । उद्धार । ४. अभीष्ट की प्राप्ति । ५. साधन । उपाय [को०] ।

निस्तारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० निस्तारिका] निस्तार करनेवाला । बचानेवाला । छुड़ानेवाला ।

निस्तारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निस्तार करना । बचाना । छुड़ाना । २. पार करना । ३. जीतना । पराभूत करना ।

निस्तारन(पु)†—वि० [सं० निस्तारण] दे० 'निस्तारण' ।

निस्तारना(पु)‡—क्रि० स० [दे० निस्तर + ना (प्रत्य०)] छुड़ाना । मुक्त करना । उद्धार करना ।

निस्तार बीज—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह उपाय या काम जिससे मनुष्य की इस संसार तथा जन्म, मरण आदि से मुक्ति हो जाय । जैसे, भगवान् के नाम का स्मरण. कीर्तन, अर्चन, पादसेवन, वंदन, चरणोदक पान, विष्णु के मंत्र का जप आदि ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि कलियुग में जब लोग तपोहीन हो जायँगे तब इन्हीं सब कामों से उनकी मुक्ति होगी ।

निस्तारा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निस्तार' ।

निस्तिमिर—वि० [सं०] अंधकार से रहित या शून्य ।

निस्तीर्ण—वि० [सं०] १. पार गया हुआ । जो तै या पार कर चुका हो । २. जिसका निस्तार हो चुका हो । छूटा हुआ । मुक्त ।

निस्तुष—वि० [सं०] १. बिना भूसी का । जिसमें भूसी न हो । २. निर्मल ।

निस्तुष क्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ ।

निस्तुष रत्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक मणि ।

निस्तुषित—वि० [सं०] १. जिसका छिलका उतार लिया गया हो । २. अलग किया हुआ । ३. छोटा या पतला किया हुआ [को०]।

निस्तेज—वि० [सं० निस्तेजस्] तेजरहित । जिसमें तेज न हो । अप्रभ । मलिन ।

निस्तैल—वि० [सं०] तैलरहित । बिना तेल का । जिसमें तेल न हो ।

निस्तोद, निस्तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] चुभन । काटने, खुरचने, नोचने या डंक मारने जैसी पीड़ा [को०] ।

निस्त्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज । बेहया । बेशर्म ।

निस्त्रिंश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खड्ग । २. तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र ।

यौ०—निस्त्रिंशभृत = खड्गधारी ।

निस्त्रिंश[2]—वि० [सं०] १. निर्दय । जिसमें दया न हो । २. तीस से अधिक [को०] ।

निस्त्रिंशपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूहर ।

निस्त्रुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची ।

निस्त्रैगुण्य—वि० [सं०] जो सत. रज और तम इन तीनों गुणों से रहित या अलग हो ।

निस्त्रैणपुष्पिक—संज्ञा पुं० [सं०] धतूरे का पेड़ ।

निस्नात(पु)—वि० [दे० निष्णात] दे० निष्णात' । उ०—कृती कुशल कोविद निपुन इन प्रबीन निस्नात ।—अनेकार्थ, पृ० ३२ ।

निस्नेह[1]—वि० [सं० निःस्नेह] १. जिसमें प्रेम न हो । २. जिसमें तेल न हो ।

निस्नेह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र ।

निस्नेहफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया । कटेरी ।

निस्पंद¹—वि॰ [सं॰ निस्पन्द] जिसमें स्पंदन न हो। कंपरहित। स्थिर।

निस्पंद²—संज्ञा पुं॰ कंप। स्पंदन [को॰]।

निस्पृह—वि॰ [सं॰] जिसे किसी प्रकार का लोभ न हो। लालच या कामना आदि से रहित।

निस्पृहता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] निस्पृह होने का भाव। लोभ या लालसा न होने का भाव।

निस्पृहा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] अग्निशिखा या कलिहारी नामक पेड़।

निस्पृही—वि॰ [सं॰ निस्पृह] दे॰ 'निस्पृह'।

निस्फ—वि॰ [अ॰ निस्फ़] अर्ध। आधा। दो बराबर भागों में से एक भाग।

निस्फल—वि॰ [सं॰ निष्फल] दे॰ 'निष्फल'। उ॰—कबीर करनी आपनी कबहुँ न निस्फल जाय।—कबीर सा॰, पृ॰ ८८।

निस्फोबँटाई—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ निस्फ़+ई (प्रत्य॰)+हिं॰ बँटाई] वह बँटाई जिसमें आधी उपज जमींदार और आधी आसामी लेता है। अधिया।

निस्बत—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ निसबत] दे॰ 'निसबत'।

निस्यंद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निस्यन्द] १. चूना। बहना। रिसना। झरना। २. नतीजा। परिणाम। ३. व्यक्त करना। जाहिर करना [को॰]।

निस्यंदी—वि॰ [सं॰ निस्यन्दिन्] चूने या बहनेवाला। रिसनेवाला। झरनेवाला [को॰]।

निस्रव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. भात का माँड़। २. वह जो बह या झड़कर निकले। पसेव। ३. बहना। चूना।

निस्व—वि॰ [सं॰] दरिद्र। गरीब। निःस्व।

निस्वन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शब्द। आवाज।

निस्वान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. दे॰ 'निस्वन'। २. तीर की सन्नाहट। तीर चलने से उत्पन्न ध्वनि (को॰)।

निस्वास—संज्ञा पुं॰ [सं॰ निःश्वास] दे॰ 'निःश्वास'।

निःसंक—वि॰ [सं॰ निश्शङ्क] दे॰ 'निश्शंक'। उ॰—अगकुल बैठत अंक पियत निस्संक नयन जल। धनि धनि हैं वे वीर धरयो जिन यह समाधि बल।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ १२५।

निस्संकोच—वि॰ [सं॰ निस्सङ्कोच] संकोच रहित। जिसमें संकोच या लज्जा न हो। बेधड़क।

निस्संग—वि॰ [सं॰ निस्सङ्ग] १. अकेला। एकाकी। जिसका कोई साथी न हो। २. जिसका किसी से लगाव न हो। निर्लिप्त [को॰]।

निस्संतान—वि॰ [सं॰ निस्सन्तान] जिसे कोई संतान न हो। सन्ततिरहित।

निस्संदेह¹—क्रि॰ वि॰ [सं॰ निस्सन्देह] अवश्य। जरूर। बेशक। सचमुच।

निस्संदेह²—वि॰ जिसमें संदेह न हो।

निस्सत्व—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निःसत्व'।

निस्सरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. निकलने का मार्ग या स्थान। २. निकलने का भाव या क्रिया। निकास।

निस्सान(५)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'निशान'। उ॰—सुरत निस्सान तहँ गैब की झालरा, गैब के घंट का नाद आवै।—कबीर श॰, भा॰, पृ॰ ८८।

निस्सार—वि॰ [सं॰] १. साररहित। जिसमें कुछ भी सार या गूदा न हो। २. जिसमें कोई काम की वस्तु न हो। निस्तत्व।

निस्सारित—वि॰ [सं॰] निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।

निस्सीम—वि॰ [सं॰] १. जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। अपार। २. बहुत अधिक।

निस्सृत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ॰—दोउ करत खंग प्रहार वारहिं बार बहुत प्रकार के। तिनको कहत मैं नाम जो है हाथ मुख्य हथ्यार के। उद्भ्रांत भ्रांत प्रवृद्ध आकर विकर भिन्न प्रमानुषै। आविद्ध निर्मर्याद कुल वितवहु निस्सृत रिपुरन दुर्षै।—रघुराज (शब्द॰)।

निस्स्नेह—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निस्नेह'।

यौ॰—निस्नेहफला = श्वेत कंटकारी।

निस्स्पंद—वि॰ [सं॰ निस्स्पन्द] दे॰ 'निस्पंद'।

निस्स्पृह—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निस्पृह'।

निस्स्व, निस्स्वक—वि॰ [सं॰] दे॰ 'निःस्व'।

निस्स्वादु—वि॰ [सं॰] १. जिसमें कोई स्वाद स्वाद न हो। २. जिसका स्वाद बुरा हो।

निस्स्वार्थ—वि॰ [सं॰] स्वार्थ से रहित। जिसमें स्वयं अपने लाभ या हित का कोई विचार न हो।

निहंग¹—वि॰ [सं॰ निःसङ्ग] १. एकाकी। अकेला। विवाह आदि न करनेवाला वा स्त्री से संबंध न रखनेवाला (साधु)। ३ नंगा। ४. बेहया। बेशरम।

निहंग²—संज्ञा पुं॰ १. एक प्रकार के वैष्णव साधु। २. अकेले रहनेवाला साधु।

निहंगम—वि॰ [हिं॰ निहंग] दे॰ 'निहंग'।

निहंग लाडला—वि॰ [हिं॰ निहंग + लाडला] जो माता पिता के दुलार के कारण बहुत ही उद्दंड और लापरवा हो गया हो।

निहंता—वि॰ [सं॰ निहन्तृ] [वि॰ स्त्री॰ निहंत्री] १. विनाशक। नाश करनेवाला। २. मारनेवाला। प्राण लेनेवाला।

निहअच्छर(५)—वि॰ जिसका कभी किसी भी दशा में विनाश न हो। अविनश्वर। उ॰—इस निहअक्षर पुरुष को जो जानि सो मुक्ति मार्ग पावे।—कबीर मं॰, पृ॰ ३७८।

निहकर्मा†—वि॰ [सं॰ निष्कर्मन्] दे॰ 'निष्कर्मा'।

निहकर्मी(५)†—वि॰ [हिं॰ निहकर्मा] दे॰ 'निष्कर्मी'।

निहकलंक(५)†—वि॰ [सं॰ निष्कलङ्क] दे॰ 'निष्कलंक'।

निहकाम(५)†—वि॰ [सं॰ निष्काम] दे॰ 'निष्काम'। उ॰—नर नारी 'सब नर कहैं जब लग देह सकाम। कहै कबीर सो राम को जो सुमिरै निहकाम।—कबीर (शब्द॰)।

निहकामी†—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'निष्कामी'। उ॰—सहकामी सुमिरिन करै पावै उत्तम धाम। निहकामी सुमिरन करै पावैं अविचल राम।—कबीर (शब्द॰)।

निहगर्बⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] निरभिमान । अहंकाररहित । गर्वहीन । उ०—मुक्त भए संसार में बिचरत है निहगर्ब ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६ ।

निहचक†—संज्ञा पुं० [सं० नेमि + चक्र] पहिए के आकार का काठ का गोल चक्कर जो कुएँ की नीवँ में दिया जाता है । निवार । जमवट । जाखिम ।

निहचयⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निहचलⓅ†—वि० [सं० निश्चल] दे० 'निश्चल' ।

निहचितⓅ—वि० [सं० निश्चिन्त] दे० 'निश्चिंत' । उ०—काग ऐसो निहचित कबहूँ नहिं सोवै ।—जग० श०, पृ० ५६ ।

निहचैⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' । उ०—निहचै भारत को अब नास ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७४ ।

निहछलⓅ—वि० [सं० निश्छल] दे० 'निश्छल' । उ०—गोपालहिं रुचत सहज ब्योहार । निहछल बिनु प्रपंच निरकृत्रिम सब विधि बिना बिकार । ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४८ ।

निहठा†—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठा] लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई गढ़ने की चीजों को बसुले से गढ़ते हैं । ठीहा ।

निहडर—वि० [हिं०] दे० 'निडर' । उ०—कोउ इक अंबर को गिरिवर कर धर बोलत तब । निहडर इहि तर रहो गोप गोपी गाइन सब ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६ ।

निहत—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । २. नष्ट । ३. मारा हुआ । जो मार डाला गया हो । ३. प्रविष्ट । संबद्ध । संलग्न (को०) ।

निहततुⓅ—वि० [सं० निस्तत्व] दे० 'निस्तत्व' । उ०—तहाँ बेद कितेब कि गम नहीं निहततु शब्द सरूप देखा ।—सं० दरिया, पृ० ७० ।

निहतार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यगत एक दोष । दे० 'निहतार्थता' ।

निहतार्थता, निहतार्थत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यदोष ।

विशेष—जब किसी अनेकार्थक शब्द के अप्रचलित अर्थ का प्रयोग किया जाता है तब यह दोष माना जाता है ।

निहत्था—वि० [हिं० नि + हाथ] १. जिसके हाथ में कोई शस्त्र न हो । शस्त्रहीन । उ०—हमारे साथ कई मनुष्य पैदल और निहत्थे थे ।—शिवप्रसाद (शब्द०) । २. जिसके हाथ में कुछ न हो । खाली हाथ । निर्धन । गरीब ।

निहनन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या । हनन । वध (को०) ।

निहननाⓅ—क्रि० स० [सं० निहनन] मारना । मार डालना । उ०—तहँहि कबंध दुहुन पर धायो । ताहि निहनि सुर लोक पठायो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

निहपापⓅ†—वि० [सं० निष्पाप] दे० 'निष्पाप' ।

निहफलⓅ†—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल' ।

निहरूपⓅ—वि० [हिं० निह (= नहीं) + सं० रूप] निराकार । अरूप । उ०—शब्द स्पर्श गंध है अब कहियत रस रूप । देह कर्म तममाया तू नहियत निहरूप ।—चरणदास, पृ० २७६ ।

निहला†—संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के पीछे हट जाने से निकल आई हो । गंगबरार । कछार ।

निहलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह पुरुष जिसका यह सिद्धांत हो कि वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि वस्तुओं की सत्ता ही नहीं है ।

विशेष—ऐसे लोग वस्तुओं की वास्तविक सत्ता और उन वस्तुओं के सत्तात्मक ज्ञान का निषेध करते हैं ।

२. रूस देश का एक दल ।

विशेष—यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पैतृक शासन का विरोधी था पर पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रित नियमों का ध्वंसक और नाशक बन गया ।

३. इस दल का कोई आदमी ।

निहलीⓅ†—वि० [देश० निहुम] किनारे की । कोनेवाली । उ०—निहली चितवनि ऐंचा तानी ।—कबीर सा० पृ० १५१८ ।

निहव—संज्ञा पुं० [सं०] पुकार करना । बुलाना । आह्वान (को०) ।

निहशब्दⓅ—वि० [सं० निःशब्द] दे० 'निःशब्द' । उ०—है निहशब्द शब्द सो कहेऊ । ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ ।—कबीर सा०, पृ० १००२ ।

निहसंसाⓅ—वि० [सं० निःसंशय] संदेहरहित । जिसे शंका न हो । उ०—नामहिं गहे तेहि निहसंसा । नाम बिना बूड़े सब हंसा ।—कबीर सा०, पृ० १००८ ।

निहाँ—वि० [फ़ा०] गुप्त । छिपा हुआ (को०) ।

निहाई—संज्ञा स्त्री० [सं० निघाति; मि० फ़ा० निहाली] सोनारों और लोहारों का एक औजार जिसपर वे धातु को रखकर हथौड़े से कूटते या पीटते हैं ।

विशेष—यह लोहे का बना हुआ चौकोर होता है और नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है । नीचे की ओर निहाई को एक काठ के टुकड़े में जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय इधर उधर हिलती डोलती नहीं । यह छोटी बड़ी कई आकार और प्रकार की होती है ।

यौ०—निहाई की थाली = वह थाली जो निहाई पर रखकर नकाशी गई हो ।

निहाउⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० निघाति] लोह का घन । उ०—सुरठी कीन्ह सांग पर घाऊ । परा खरग जनु परा निहाऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

निहाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोह नामक जंतु । गोहटा । २. घड़ियाल । ३. झंझावात । तूफान (को०) ।

निहानी[1]—वि० [फ़ा०] अंदरूनी । भीतर का । छिपा हुआ । गुप्त । उ०—न पाया भेद इसरारे निहानी ।—कबीर मं०, पृ० ४४४ ।

निहानी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० निखनित्री] १. एक प्रकार की रुखानी जिसकी नोक अर्धचंद्राकार होती है और जिससे बारीक खुदाई का काम होता है । कलम । २. एक नोकदार औजार

जिससे ठप्पे की लकीरों के बीच में भरा हुआ रंग खुरचकर साफ किया जाता है।

निहायत—वि० [अ०] अत्यंत। बहुत अधिक। जैसे, निहायत उम्दा चीज, निहायत बारीक काम।

निहायⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निघात] १. निहाई। २. चोट। प्रहार।

निहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुहरा। पाला। उ०—दंड एक रथ देखि न परा। जनु निहार महँ दिनमनि दुरा।—तुलसी (शब्द०)। २. ओस। ३. हिम। बरफ।

निहारुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० निहार] दे० 'निहार'। उ०—चारु चंदन मनहु मरकत शिखर लसत निहारु। रुचिर उर उपवीत राजत पदिक गजमनि हारु।—तुलसी (शब्द०)।

निहारना—क्रि० स० [सं० निभालन (=देखना)] ध्यानपूर्वक देखना। टक लगाकर देखना। देखना। ताकना। उ०—(क) भयो चकोर सो पंथ निहारे। समुँद सीप जस नैन पसारे।—जायसी (शब्द०)। (ख) अँखड़ियाँ झाँई परी पंथ निहारि निहारि। जीभरियाँ छाला पर्यो, नाम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ग) प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. ज्ञान होना। जानना। समझना। उ०—प्रथम पूतना कंस पठाई अति सुंदर बपु धार्यो। धंसि कै गरल लगाय उरोजन कपट न कोउ निहार्यो।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

निहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का आकाशस्थ पदार्थ जो देखने में धुँधले रंग के धब्बे की तरह होता है।

विशेष—दे० 'नीहारिका'।

निहारुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'नहरुवा'।

निहाल—वि० [फ़ा०] जो सब प्रकार से संतुष्ट और प्रसन्न हो गया हो। पूर्णकाम। उ०—(क) दास दुखी तो हरि दुखी आदि अंत तिहुँ काल। पलक एक में परगटे पल में करै निहाल।—कबीर (शब्द०)। (ख) गए जो सरन आरत के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। २. समृद्ध। संपत्तिशाली। मालामाल (को०)।

निहालचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० निहालचह्] छोटी तोशक या गद्दी जो प्रायः बच्चों के नीचे बिछाई जाती है।

निहाललोचन—संज्ञा पुं० [फ़ा० निहाल (=खुश, प्रसन्न या समृद्ध) ?+सं० लोचन ?] वह घोड़ा जिसकी अयाल (केसर) दो भागों में बटी हो, आधी दहिनी और आधी बाईं ओर।

निहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. गद्दा। तोशक। उ०—रेशम की नरम निहाली में सोना जो मजा से हँस हँसकर।—नजीर (शब्द०)। २. निहाई।

निहाव—संज्ञा पुं० [सं० निघाति] लोहे का घन।

निहिंसन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। बध [को०]।

निहिचयⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय'।

निहिचिंतⓅ—वि० [सं० निश्चिन्त, हिं० निहचिंत] दे० 'निश्चित'।

निहित—वि० [सं०] १. स्थापित। रखा हुआ। २. जोर से कहा हुआ। गंभीर आवाज में कथित (को०) ३. समर्पित। सौंपा हुआ (को०)।

निहीन—वि० [सं०] नीच। पामर।

निहुँकना†—क्रि० अ० [हिं० नि+झुकना] झुकना।

निहुकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'निहुरना'।

निहुकाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'निहुराना'।

निहुरना†—क्रि० अ० [हिं० नि+होड़न] झुकना। नवना। उ०—(क) यक से पूजा जोन बिचारा। यक से निहुरि निमाज गुजारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) कुच अग्र नखच्छत नाह दियो सिर नाय निहारति यों सजनी। ससिसेखर के सिर ते सु मनों निहुरे ससि लेत कला अपनी।—ब्रह्म (शब्द०)।

यौ०—निहुरे निहुरे=झुककर।

मुहा०—निहुरे निहुरे ऊँट की चोरी=(१) असंभव कार्य। (२) ऐसी चालाकी जिसे सब जान जाएँ।

निहुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० निठुराई] दे० 'निठुराई'।

निहुराना—क्रि० स० [हिं० निहुरना का प्रे० रूप] झुकाना। नवाना। उ०—भर झोली सिर निहुराए क्या बैठी हो।—इंशाअल्ला (शब्द०)।

निहोर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निहोरा'।

निहोरना—क्रि० स० [सं० मनोहार, हिं० मनुहार] १. प्रार्थना करना। विनय करना। उ०—(क) सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदा शिव मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहिं। देखउँ बेगि सो जतन करु सखा निहोरउँ तोहिं। २. मनाना। मनौती करना। उ०—(क) देवता निहोरि महामारिन ते कर जोरे, भोरानाथ भोरे अपनी सी कहि ठई है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ग्वालिन चली जमुन बहोरि। वाहि सब मिलि कहत आवहु कछु कहति निहोरि।—सूर (शब्द०)। (ग) जोरहु हुकर मोरे मे जाय निहोरत प्यारे पिया बड़भागी।—(शब्द०)। (घ) है तो भली घर ही जो रहो तुम यों कहि के ननदी हूँ निहोरेउ।—(शब्द०)। ३. कृतज्ञ होना। एहसान लेना। उ०—सोइ कृपाल केवटहि निहोरे। जेहि जग किय तिहु पग ते थोरे।—तुलसी (शब्द०)।

निहोरा¹†—संज्ञा पुं० [सं० मनोहार, हिं० मनुहार] १. अनुग्रह। एहसान। कृतज्ञता। उपकार। उ०—(क) क्या काशी क्या ऊसर मगहर हृदय राम बस मोरा। जो काशी तन तजै कबीरा रामहिं कौन निहोरा?—कबीर (शब्द०)। (ख) सो कछु देव न मोहिं निहोरा। निज पन राखेहु जन मन चोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कहा बातो जो अवै न दीवहिं देखि

दुखित कलिकाल । सूर स्याम को कहा निहोरो चलत बेद की चाल ।—सूर (शब्द०) ।

२. बिनती । प्रार्थना । उ०—(क) मैं आपनि दिसि कीन निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चिते रघुनाथ बदन की ओर । रघुपति सों अब नेम हमारो विधि सौं करति निहोर ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. भरोसा । आसरा । आश्रय । आधार । उ०—रात दिवस निरभय जिय मोरे । लग्यों निहोर कंत जो तोरे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) नाक सँवारत आयो हौं नाकहि नाहीं पिनाकहि नेकु निहोरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

निहोरा²—क्रि० वि० १. निहोरे से । कारण से । बदौलत । द्वारा । उ०—(क) तुम सारिखे संत प्रिय मोरे । धरउँ देह नहिं आन निहोरे । —तुलसी (शब्द०) । (ख) तजउँ प्राण रघुनाथ निहोरे । दुहूँ हाथ मुद मोदक मेरे । —तुलसी (शब्द०) । २. के लिये । वास्ते । निमित्त । उ०—तुम बमीठ राजा की ओरा । साख होहु यहि भीख निहोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

निह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोपन । छिपाव । दुराव । २. एक प्रकार का साम । ३. अविश्वास । ४. शुद्धि । पवित्रता । प्रायश्चित्त । ५. बदमाशी । दुष्टता (को०) । ६. अपलाप । बहाना (को०) । ७. इनकार । अस्वीकार (को०) ।

यौ०—निह्नववादी = वह गवाह जो अंडबंड उत्तर दे ।

निह्नवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्वीकरण । इनकार । २. अपलाप । बहाना । गोपन । दुराव । छिपाव (को०) ।

निह्नुत—वि० [सं०] छिपाया हुआ ।

निह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपाव । दुराव । गोपन ।

निह्राद—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द । ध्वनि । निर्ह्राद ।

नींद—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा + प्रा० निद्दा] जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर और अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं । निद्रा । स्वप्न । सोने की अवस्था । वि० दे० 'निद्रा' । उ०—(क) कीन्हेसि सूँख नींद बिसरामा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहि नींद जुड़ाई होई । —तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—छुटना ।—जाना ।—लगना ।

मुहा०—नींद उचटना = नींद का दूर होना । नींद उचाटना = नींद दूर करना । सोने में बाधा डालना । नींद का दुखिया = बहुत सोनेवाला । सदा सोने का इच्छुक रहनेवाला । नींद का माता = नींद से व्याकुल । नींद से गिर गिर पड़नेवाला । नींद उचाट होना = नींद का खुलने पर फिर न आना । सोने में बाधा पड़ना । नींद टूटना = नींद का छूट जाना । जग पड़ना । नींद खराब करना = सोने का हर्ज करना । निद्रा की दशा न रहना । नींद पड़ना = नींद आना । निद्रा की अवस्था होना । नींद परना ⓟ = नींद आना । उ०—नींद न परै रैन जो आई ।—जायसी (शब्द०) । नींद भरना = नींद पूरी करना । सोना । नींद भर सोना = जितनी इच्छा हो उतना सोना । इच्छा भर सोना । उ०—जागत ही सब बीति निसा गई कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ।—तुलसी (शब्द०) । नींद मारना = सोना । नींद लेना = सोना । उ०—(क) नींद न लीन्ह रैन सब जागा । होत बिहान आय गढ़ लागा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जब ते प्रीति स्याम सों कीन्ही । ता दिन ते नैननि नेकहु नींद न लीन्ही । —सूर (शब्द०) । नींद संचरना = नींद आना । उ०—द्वादशि में जो पारण करहीं । और शयन जो नींद संचरहीं । —सबलसिंह (शब्द०) । नींद हराम करना = सोना छुड़ा देना । सोने न देना । नींद हराम होना = सोना छूट जाना । सोने की नौबत न आना ।

नींदड़ियाⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नींदड़ी + इया (प्रत्य०)] नींद । निद्रा ।

नींदड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नींद + ड़ी (प्रत्य०)] दे० 'नींद' । उ०—नैन न आवइ नींदड़ी निस दिन तलफत जाय । दादू आतुर बिरहिनी, क्योंकरि रहुन बिहाय ।—दादू (शब्द०) ।

नींदना†—क्रि० स० [सं० निकन्दन] निराना । दे० 'निंदना' ।

नींदर, नींदरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'नींद' । उ०—हौ जँभात अलसात तात तेरी बानि जानि मैं पाई । गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नींबा†—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब] दे० 'नीम' ।

नीअरⓟ†—अव्य० [सं० निकट, प्रा० नियड] १. निकट । पास । २. समान । तुल्य ।

नी—वि० [सं०] नेता । प्रधान । अगुआ । समासांत में प्रयुक्त । जैसे, ग्रामणी, सेनानी, अग्रणी (को०) ।

नीकⓟ†¹—वि० [सं० निक्त (= स्वच्छ, साफ), फा० नेक] [स्त्री० नीकि] अच्छा । सुंदर । भला । अनुकूल । उ०—(क) अब तुम कहो नीक यह सोभा । पै फल सोई भँवर जेहि लोभा । --जायसी (शब्द०) । (ख) गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—नीक लगना = (१) रुचना । भाना । रुचि के अनुकूल जान पड़ना । (२) सजना । सुशोभित होना । नीक लागना ⓟ = दे० 'नीक लगना' उ०—अब तोहि नीक लाग कर सोई ।—मानस, २।३६ ।

नीकⓟ²—संज्ञा पुं० अच्छाई । उत्तमता । अच्छापन । उ०—जोई फल देखी सोइ फीका । ताकर काह सराहे नीका ।—जायसी (शब्द०) ।

नीका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंचाई के लिये बनी जलप्रणाली (को०) ।

नीका²—वि० [सं० निक्त (= साफ, स्वच्छ), फा० नेक] [वि० स्त्री० नीकी] अच्छा । उत्तम । बढ़िया । भला । उ०—(क) निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ।

—मानस, १।८। (ख) प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागहिं फीकी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) आज्ञा करो नाथ चतुरानन करो सृष्टि विस्तार। होरी खेलन की विधि नीकी रचना रचे अपार।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—नीका लगना = (१) रुचना। भाना। सुहाना। अच्छा मालूम होना। (२) सुशोभित होना। सजना। सोहना।

नीकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकार' [को०]।

नीकाश—वि० [सं०] तुल्य। समान।

नीके—क्रि० वि० [हिं० नीक] अच्छी तरह। भली भाँति। उ०—(क) नीके निरखि नयन भरि सोभा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मातहिं पितहिं उरिण भए नीके। गुरु ऋण रहा सोच बड़ जी के।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सुनि कटु वचन गयो माता पै तब इन ज्ञान दृढ़ायो। हरि की भक्ति करो सुत नीके जो चाहो सुख पायो।—सूर (शब्द०)।

नीको†—वि० [हिं० नीक] दे० 'नीका'।

नीगने(पु)—वि० [सं० नगण्य] अनगिनत। संख्यातीत।

नीग्रो—संज्ञा पुं० [अं०] हबशी। निग्रो।

नीच[1]—वि० [सं०] १. जाति, गुण, कर्म या किसी और बात में घटकर या न्यून। क्षुद्र। तुच्छ। अधम। हेठा। जैसे, नीच आदमी, नीच कुल।

यौ०—नीच ऊँच = छोटा बड़ा। बड़े घराने या छोटे घराने का। उ०—नीच ऊँच धन संपति हेरा।—जायसी (शब्द०)।

२. जो उत्तम और मध्यम कोटि से घटकर हो। अधम। बुरा निकृष्ट।

यौ०—नीच ऊँच = (१) अच्छा बुरा। (२) बुराई भलाई। गुण अवगुण। (३) अच्छा और बुरा परिणाम। हानि लाभ। जैसे,—नीच ऊँच समझकर काम करो। (४) संपद् विपद्। सुख दुःख। सफलता असफलता।

नीच[2]—संज्ञा पुं० १. नीच मनुष्य। क्षुद्र मनुष्य। ओछा आदमी। उ०—नीच निचाई नहिं तजै जो पावै सतसंग। २. चोर नामक गंध द्रव्य। ३. फलित ज्योतिष में वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च स्थान से सातवाँ हो। ४. भ्रमण काल में किसी ग्रह के भ्रमणवृत्त का वह स्थान जो पृथ्वी से अधिक दूर हो। ५. दशार्ण देश के एक पर्वत का नाम।

नीचक—वि० [सं०] १. छोटा। लघु। बौना। २. मद्धिम। जैसे, आवाज। ३. तुच्छ। निकृष्ट। ओछा [को०]।

नीचकदंब—संज्ञा पुं० [सं० नीचकदम्ब] मुंडी।

नीचकमाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीच + कमाई] १. निम्न व्यवसाय। २. तुच्छ काम। खोटा काम। ३. बुरे कामों से पैदा किया धन।

नीचका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रशस्त गो। अच्छी गाय।

नीचकी[1]—संज्ञा पुं० [सं० नीचकिन्] [स्त्री० नीचकिनी] १. उच्च। श्रेष्ठ। २. ऊँचा। जिसके पास अच्छी गाएँ हों।

नीचकी[2]—संज्ञा पुं० १. ऊपरी भाग। २. किसी वस्तु का शीर्ष भाग (को०)। ३. बैल का सिर (को०)।

नीचग[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीचगा] १. नीचे जानेवाला। २. पामर। ओछा।

नीचग[2]—संज्ञा पुं० १. पानी। २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो अपने उच्च स्थान से सातवें पड़ा हो।

नीचगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २. नीचवर्णगामिनी स्त्री। नीच के साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगामी[1]—वि० [सं० नीचगामिन्] [वि० स्त्री० नीचगामिनी] १. नीचे जानेवाला। २. ओछा।

नीचगामी[2]—संज्ञा पुं० जल।

नीचगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च स्थान या राशि से गिनती में सातवाँ पड़े। २. नीच या निम्न कोटि के व्यक्ति का घर। उ०—जो संपदा नीच गृह सोहा।—मानस।

नीचट†—वि० [सं० निश्चय] दृढ़। पक्का।

नीचता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीच होने का भाव। २. अधमता। खोटाई। तुच्छता। क्षुद्रता। कमीनापन।

नीचत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नीचता।

नीचभोज्य—संज्ञा पुं० [सं०] पलांडु। प्याज [को०]।

नीचयोनि—वि० [सं०] निम्न कुल का [को०]।

नीचवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांत मणि।

नीचस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीचगृह'।

नीचा—वि० [सं० नीच] [वि० स्त्री० नीची] १. जिसके तल से उसके आस पास का तल ऊँचा हो। जो कुछ उतार या गहराई पर हो। गहरा। ऊँचा का उलटा। निम्न। जैसे, नीची जमीन, नीचा रास्ता।

यौ०—नीचा ऊँचा = कहीं गहरा और कहीं उठा हुआ। जो समतल न हो। नाबराबर। ऊबड़ खाबड़। उतार चढ़ाव।

२. ऊँचाई में सामान्य की अपेक्षा कम। जो ऊपर की ओर दूर तक न गया हो। जैसे, नीचा पेड़, नीचा मकान। नीची टोपी।

विशेष—ऊँचाई निचाई का भाव सापेक्ष होता है।

३. जो ऊपर से जमीन की ओर दूर तक आया हो। अधिक लटका हुआ। जैसे, नीचा अंगा, नीची धोती, नीची डाल। ४. जो ऊपर की ओर पूरा उठा न हो। झुका हुआ। नत। जैसे, सिर नीचा करना, झंडा नीचा करना, दृष्टि नीची करना, आँख नीची करना। उ०—(क) आवक बैहि असीस सीस नीचो करि करि कै।—गोपाल (शब्द०)। (ख) रघुनाथ चितै हँसि ठाढ़ी रही पल घूँघट में दृग नीचो करें।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) देवनंदन ने देखा इन बातों के कहते लाज से उसकी आँखें नीची हो गईं।—अयोध्यासिंह (शब्द०)। ५. जो चढ़ा हुआ न हो। जो तीव्र न हो। धीमा। मध्यम। जो जोर का न हो। जैसे, नीचा सुर, नीची आवाज। ६. जो जाति, पद, गुण इत्यादि में न्यून या घटकर हो। जो उत्तम और मध्यम कोटि का न हो। छोटा या ओछा। क्षुद्र। बुरा।

मुहा०—नीचा ऊँचा = (१) भला बुरा। (२) भलाई बुराई। गुण अवगुण। अच्छा और बुरा परिणाम। हानि लाभ। (३) संपद विपद। सुख दुःख। बढ़ती घटती। सफलता असफलता। नीचा ऊँचा दिखाना या सुझाना = दे० 'ऊँचा नीचा दिखाना'। नीचा ऊँचा सुनाना = दे० 'ऊँचा नीचा सुनाना'। नीचा खाना = (१) तुच्छ बनना। अपमानित होना। हेठा बनना। (२) हारना। परास्त होना। (३) लज्जित होना। झिपना। उ०—चालाकी में अच्छे खासे पट्ठे, दस पंद्रह वर्ष मुंसिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा बहुत नीचा खाकर भी ''आठो गाँठ कुम्मेत हो चुके थे।—हिंदी प्रदीप (शब्द०)। नीचा दिखाना = (१) तुच्छ बनाना। हेठा करना। अपमानित करना। (२) मान भंग करना। दर्प चूर्ण करना। शेखी झाड़ना। (३) परास्त करना। हराना। (४) झिपाना। लज्जित करना। नीचा देखना = दे० 'नीचा खाना'। उ०—कहीं किसी ने देख सुन लिया तो भी वही बात हुई। जग में नीचा अलग देखना पड़ता है।—अयोध्यासिंह (शब्द०)। नीची दृष्टि करना = सिर झुकाना। सामने न ताकना। (लज्जा संकोच आदि से)। नीची दृष्टि से देखना = तुच्छ या छोटा समझना। मान या प्रतिष्ठा न करना। कदर न करना।

नीचाशय—वि० [सं०] तुच्छ विचार का। क्षुद्र। ओछा।

नीचू‡¹—वि० [हिं० नि + चूना] जो चूए न। जो टपकता न हो। जिसमें पानी ऊपर से या बाहर से रसकर आता या टपकता न हो।

नीचू‡²—वि० [हिं० नीचा] दे० 'नीचा'।

नीचे—क्रि० वि० [हिं० नीचा] नीचे की ओर। अधोभाग में। ऊपर का उलटा। उ०—पानक को लिखै पानि नवै तिमि सीस नवाय के नीचेहि जावै।—मतिराम (शब्द०)।

विशेष—'ऊपर', 'यहाँ', 'वहाँ' आदि शब्दों के समान इस क्रि० वि० शब्द के साथ पंचमी और षष्ठी की 'से', 'तक', 'का' विभक्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीचे से, नीचे का।

मुहा०—नीचे ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा इस क्रम से। एक पर एक। तले ऊपर। जैसे,—इन सब पुस्तकों को नीचे ऊपर रख दो। (२) ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। उथल पथल। अस्त व्यस्त। अव्यवस्थित। जैसे,—इतने दिनों में पुस्तकें लगाकर रखी थीं तुमने उन्हें नीचे ऊपर कर दिया। नीचे गिरना = (१) प्रतिष्ठा खोना। मान मर्यादा गँवाना। (२) पतित होना। (३) कुश्ती में पटका जाना। पछाड़ खाना। नीचे गिराना = (१) पतित करना। मान मर्यादा दूर करना। (२) कुश्ती में पटकना। पछाड़ना। नीचे डालना = (१) फेंकना। गिराना। (२) किसी बात में घटकर करना। पराजित करना। जीतना। नीचे लाना = गिराना। कुश्ती में पछाड़ना। ऊपर से नीचे तक = (१) सब भागों में। सर्वत्र। (२) सर्वांग में। सिर से पैर तक। जैसे,—उसने मेरी ओर ऊपर से नीचे तक देखा।

२. घटकर। कम। न्यून। जैसे,—दरजे में वह सबसे नीचे है। ३. अधीनता में। मातहती में। जैसे,—उनके नीचे दस मुहर्रिर काम करते हैं।

नीजा†—संज्ञा पुं० [सं० रज्जु ?] रस्सी।

नीजन(पु)¹—वि० [सं० निर्जन, प्रा० णिज्जण, णीजण] निर्जन। जनशून्य। सुनसान। उ०—दौरयो दल साजि महाराज ऋतुराज जानि नीजन मवास, मानिनी जन गरीब से।—देव (शब्द०)।

नीजन(पु)²—संज्ञा पुं० निर्जन स्थान। वह स्थान जहाँ कोई न हो। निराला। एकांत। उ०—मोहिं सकोच सखी जन को नतु नीजन हूँ उन्हें बीजन ढोरों।—देव (शब्द०)।

नीजू†—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी। पानी भरने की डोरी।

नीझर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्झर, प्रा० णिज्झर, णीझर] निर्झर। झरना। सोता। उ०—(क) तिस सरवर के तीर, सो हंसा मोती चुनइ। पीवइ नीझर नीर, सोहै हंसा सो सुणइ।—दादू (शब्द०)। (ख) सो हंसा सरनागत जाय। सुंदरि तहाँ पखारे पाय। पीवइ अमिरित नीझर नीर। बैठइ तहाँ जगत गुरु पीर।—दादू (शब्द०)।

नीठ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नीठि²'। उ०—नीठ निसासत अप्प भर गहयो कन्ह चहुआन। गए गेह लै सकल मिलि प्रथीराज अकुलान।—पृ० रा०, ५। ८५।

नीठि¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिष्ट, प्रा० अनिट्ठ] अरुचि। अनिच्छा।

मुहा०—नीठि नीठि करके = (१) ज्यों त्यों करके। बहुत इधर उधर करके। किसी न किसी प्रकार। उ०—नीठि नीठि करि चित्र मदिर लौं आई बाल चहूँ ओर चाहि कछु चेति कै भजी सगो।—बेनी (शब्द०)। (२) कठिनता से। मुश्किल से। उ०—छूटी लट लटकति कटि तट लौं चितवति नीठि नीठि करि टाढ़ी।—केशव (शब्द०)।

नीठि²—क्रि० वि० १. ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार। उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि सोहत सुहाई सूही ईंडरी सुपट की। कहै पदमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।—पद्माकर (शब्द०)। २. मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) चहूँ ओर चितै संत्रास। अवलोकियो आकाश। तहँ लाख बैठो नीठि। तब पर्यो बानर दीठि।—केशव (शब्द०)। (ख) ऐसी मोच मीठी सीठी चीठी अलि दीठी, सुनै मीठी मीठी बातन जो नीके ह्वै में नीठि है।—केशव (शब्द०)। (ग) करके मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय। सदा समीपिन सखिन हूँ नीठि पिछानी जाय।—बिहारी (शब्द०)। (घ) चको जकी सी ह्वै रही बूझे बोलति नीठि। कहूँ दीठि लागी लगी, कै काहू की दीठि।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—नीठि नीठि = ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार। जैसे तैसे। मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) नीठि नीठि उठि बैठि हू पिय प्यारी परभात। दोऊ नींद भरे खरे गरे लागि गिरि जात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) भौंह ऊँचे

भाँवर उलटि मोरि मोरि मुँह मोरि। नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सों जोरि।—बिहारी (शब्द०)।

नीठो—वि० [सं० अनिष्ट, प्रा० अनिट्ठ] अनिष्ट। अप्रिय। न सुहानेवाला। न भानेवाला। उ०—छेक उक्ति जहँ दुर्मिल सम जक का समुझावनि नीठो! बिसरी, सूर, न भावति घर की, चोरी को गुड़ मीठो।—सूर (शब्द०)।

नीड़—संज्ञा पुं० [सं० नीड] १. बैठने या ठहरने का स्थान। २. चिड़ियों के रहने का घोसला। ३. रथ के भीतर का वह स्थान जिसमें रथी बैठता है। रथ में बैठने का मुख्य स्थान। ४. बिछौना। पलंग। खाट (को०)। ५. माँद (को०)।

नीड़क—संज्ञा पुं० [सं० नीडक] १. पक्षी। चिड़िया। २. घोसला (को०)।

नीड़ज—संज्ञा पुं० [सं० नीडज] पक्षी।

नीड़ोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० नीडोद्भव] पक्षी (को०)।

नीत[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीता] १. लाया हुआ। पहुँचाया हुआ। २. स्थापित। ३. प्राप्त। ४. व्यतीत किया हुआ। बिताया हुआ (को०)। ५. गृहीत। ग्रहण किया हुआ। उ०—किधौं मंद गरजनि जलधर, की पग नूपुर रव नीत।—सूर (शब्द०)।

नीत[2]—संज्ञा पुं० १. धन दौलत। २. अनाज (को०)।

नीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ले जाने या ले चलने की क्रिया, भाव या ढंग। २. व्यवहार की रीति। आचारपद्धति। जैसे, सुनीति, दुर्नीति। ३. व्यवहार की वह रीति जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे। वह चाल जिसे चलने से अपनी भलाई, प्रतिष्ठा आदि हो और दूसरे की कोई बुराई न हो। जैसे,—जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग। साईं तहाँ न बैठिए जहँ कोउ देय उठाय।—गिरिधर (शब्द०)। ४. लोक या समाज के कल्याण के लिये उचित ठहराया हुआ आचार व्यवहार। लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार। सदाचार। अच्छी चाल। नय। उ०—सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती। कस न राम राखहु तुम नीती।—तुलसी (शब्द०)। ५. राजा और प्रजा की रक्षा के लिये निर्धारित व्यवस्था। राज्य की रक्षा के लिये ठहराई हुई विधि। राजा का कर्तव्य। राजविद्या।

विशेष—महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर को नीतिशास्त्र की शिक्षा दी है जिसमें प्रजा के लिये कृषि, वाणिज्य आदि की व्यवस्था, अपराधियों को दंड, अमात्य, चर, गुप्तचर, सेना, सेनापति इत्यादि की नियुक्ति, दुष्टों का दमन, राष्ट्र, दुर्ग और कोश की रक्षा, धनिकों की देखरेख, दरिद्रों का भरण पोषण, युद्ध, शत्रुओं को वश में करने के साम, दाम, दंड, भेद ये चार उपाय, साधुओं की पूजा, विद्वानों का आदर, समाज और उत्सव, सभा, व्यवहार तथा इसी प्रकार की और बहुत सी बातें आई हैं। नीति विषय पर कई प्राचीन पुस्तकें हैं। जैसे, उशना की शुक्रनीति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामंदकीय नीतिसार इत्यादि।

६. राज्य की रक्षा के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति। राजाओं की चाल जो वे राज्य की प्राप्ति या रक्षा के लिये चलते हैं। पालिसी। जैसे, मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य और राक्षस की नीति। ७. किसी कार्य की सिद्धि के लिये चली जानेवाली चाल। युक्ति। उपाय। हिकमत। ८. संबंध (को०)। ९. दान। प्रदान (को०)।

यौ०—नीतिकुशल = नीतिज्ञ। नीतिघोष = बृहस्पति के रथ का नाम। नीतिदोष = आचारदोष। नीतिनिपुण, नीतिनिष्ण = नीतिज्ञ। नीतिबीज = कूट संकल्प का मूल। नीतिविज्ञान = दे० 'नीतिशास्त्र'। नीतिविद् = राजनीतिज्ञ। बुद्धिमान्। नीति विद्या = राजनीति शास्त्र। नीतिशास्त्र। नीतिविषय = आचरण का विषय या क्षेत्र। नीतिशतक = भर्तृहरि द्वारा रचित नीति विषयक १०० श्लोक।

नीतिज्ञ—वि० [सं०] १. नीति जाननेवाला। नीतिकुशल। २. बुद्धिमान् (को०)।

नीतिमान्—वि० [सं० नीतिमत्] [वि० स्त्री० नीतिमती] नीति परायण। सदाचारी।

नीतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें देश, काल और पात्र के अनुसार बरतने के नियम हों। २. वह शास्त्र जिसमें मनुष्य समाज के हित के लिये देश, काल और पात्रानुसार आचार व्यवहार तथा प्रबंध और शासन का विधान हो।

नीदनाⓟ—क्रि० स० [सं० निन्दन] निंदा करना। उ०—सोवत सपने स्याम घन हिलिमिलि हरत वियोग। तब ही टरि कितहूँ गई नीदौ नींदन योग।—बिहारी (शब्द०)।

नीधन, नीधनाⓟ—वि० [सं० निर्धन] धनहीन। दरिद्र। उ०—दादू सब जग नीधना धनवंता नहिं कोइ। सो धनवंता जानिए जाके राम पदारथ होइ।—दादू (शब्द०)।

नीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ वलीक। छाजन की ओलती। २. वन। ३. नेमि। पहिए का चक्र या चक्कर। ४. चंद्रमा। ५. रेवती नक्षत्र।

नीप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कदंब। २. धूलकदंब। ३. बंधूक। दुपहरिया। ४. नीलाशोक। अशोक। ५. पहाड़ का निचला भाग। ६ बृहत्संहिता में वर्णित एक देश का नाम। ७. एक राजा का नाम।

नीप[2]—वि० नीचे की ओर स्थित (को०)।

नीप[3]—संज्ञा पुं० [अं० निप] दो चीजों को बाँधने या गाँठ देने के लिये रस्सी का फेरा या फंदा।

मुहा०—नीप लेना = रस्सी में बाँधने के लिये फंदा लगाना।

नीपजनाⓟ—क्रि० अ० [सं० निष्पद्य, प्रा० णीपज्ज] उत्पन्न होना। पैदा होना। निपजना।

नीपनाⓟ†—क्रि० स० [सं० लेपन, हिं० लीपना] दे० 'लीपना'।

नीपर—संज्ञा पुं० [अं० निपर] १. लंगर में बंधी हुई रस्सियों में से एक। २. उक्त रस्सी के बंधन को कसने के लिये लगा हुआ डंडा (लश०)।

नीपातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि।

नीबा—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब, हिं० नीम] दे० 'नीम'।

नीबरा—वि० [सं० निर्बल, प्रा० णिब्बर] दुर्बल। कमजोर।

नीबीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० नीवी] दे० 'नीवी'।

नीबू—संज्ञा पुं० [सं० निम्बूक, अ० लीमूँ] मध्यम आकार का एक पेड़ या झाड़ जिसका फल भी नीबू कहा जाता और खाया जाता है और जो पृथ्वी के गरम प्रदेशों में होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ मोटे दल की और दोनों छोरों पर नुकीली होती हैं, तथा उनके ऊपर का रंग बहुत गहरा हरा और नीचे का हलका होता है। पत्तियों की लंबाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती। फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुत से परागकेसर होते हैं। फल गोल या लंबोतरे तथा सुगंधयुक्त होते हैं। साधारण नीबू स्वाद में खट्टे होते हैं और खटाई के लिये ही खाए जाते हैं। मीठे नीबू भी कई प्रकार के होते हैं। उनमें से जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर जाता है तथा जिनके रसकोश की फाँकें अलग हो जाती हैं वे नारंगी के अंतर्गत गिने जाते हैं। साधारणतः नीबू शब्द से खट्टे नीबू का ही बोध होता है। उत्तरीय भारत में नीबू दो बार फलता है। बरसात के अंत में, और जाड़े (अगहन, पूस) में। अचार के लिये जाड़े का ही नीबू अच्छा समझा जाता है क्योंकि यह बहुत दिनों तक रह सकता है। खट्टे नीबू के मुख्य भेद ये हैं—कागजी (पतले चिकने छिलके का गोल और लंबोतरा), जंबीरी (कड़े मोटे खुरदरे छिलके का), बिजौरा (बड़े मोटे और ढीले छिलके का), चकोतरा (बहुत बड़ा खरबूजे सा, मोटे और कड़े छिलके का)। पैवंद द्वारा इनमें से कई के मीठे भेद भी उत्पन्न किए जाते हैं; जैसे, कवले या संतरे का पैवंद खट्टे चकोतरे पर लगाने से मीठा चकोतरा होता है।

आजकल नीबू की अनेक जातियाँ चीन, भारत, फारस, अरब तथा योरप और अमेरिका के दक्षिणी भागों में लगाई जाती हैं। खट्टा नीबू हिंदुस्तान में कई जगह (कुमाऊँ, चटगाँव आदि) जंगली भी होता है जिससे सिद्ध होता है कि यह भारतवर्ष से पहले पहल और देशों में फैला। मीठे नीबू या नारंगी का उत्पत्तिस्थान चीन बतलाया जाता है। चीन और भारत के प्राचीन ग्रंथों में नीबू का उल्लेख बराबर मिलता है। फारस और अरब के व्यापारियों द्वारा यह यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में गया। प्राचीन रोमन लोगों को यह फल बहुत दिनों तक बाहरी व्यापारियों से मिलता रहा और वे इसका व्यवहार सुगंध के लिये तथा कपड़ों को कीड़ों से बचाने के लिये करते थे। मीठे नीबू या नारंगियों का प्रचार तो योरप में और भी पीछे हुआ। पहले पहल ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रोम नगर में नारंगी के लगाए जाने का उल्लेख मिलता है। पीछे पुर्तगाल आदि देशों में नारंगी की बहुत उन्नति हुई।

सुश्रुत में जंबीर, नारंग, ऐरावत और दंतशठ ये चार प्रकार के नीबू आए हैं। ऐरावत और दंतशठ दोनों अम्ल कहे गए हैं। जंबीर तो खट्टा है ही। राजनिघंटु में ऐरावत नारंग का पर्याय लिखा गया है जो सुश्रुत के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ता। शायद नागरंग शब्द के कारण ऐसा हुआ है। 'नाग' का अर्थ सिंदूर न लेकर हाथी लिया और ऐरावत को नागरंग का पर्याय मान लिया। तैलग भाषा में चकोतरे को गजनिंबू कहते हैं अतः ऐरावत वही हो सकता है। भावप्रकाश में बीजपूर (बिजौरा) मधुककंटी (चकोतरा), जंबीर (खट्टा नीबू) और निंबूक (कागजी नीबू) ये चार प्रकार के नीबू कहे गए हैं। सुश्रुत में जंबीर और दंतशठ अलग है पर भावप्रकाश में वे एक दूसरे के पर्याय हैं। राजवल्लभ में लिंपाक और मधुकुक्कुटिका ये दो भेद जंबीरी के कहे गए हैं। उसी ग्रंथ में करण या कन्ना नीबू का भी उल्लेख है। नीचे वैद्यक में आए हुए नीबुओं के नाम दिए जाते हैं—

(१) निंबूक (कागजी नीबू)। (२) जंबीर (जंबीरी नीबू, खट्टा नीबू या गलगल)—(क) वृहज्जंबीर, (ख) लिंपाक, (ग) मधुकुक्कुटिका (मीठा जंबीरी या शरबती नीबू)। (३) बीजपूर (बिजौरा)। पर्याय—मातुलुंग, रुचक, फलपूरक, अम्लकेशर, बीजपूर्ण, सुकेसर, बीजक, बीजफलक, जंतुघ्न, दंतुरच्छद, पूरक, रोचनफल। (क) मधुर मातुलुंग या मीठा बिजौरा। इसे संस्कृत में मधुकर्कटिका और हिंदी में चकोतरा कहते हैं। (४) करण या कन्ना नीबू—इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं—इसे अरबी में कलंबक कहते हैं। निंबु या निंबूक शब्द सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में नहीं आया है, इससे विद्वानों का अनुमान है कि यह अरबी लीमूँ शब्द का अपभ्रंश है। 'संतरा' शब्द के विषय में डा० हंटर का अनुमान है कि यह 'सिंट्रा' शब्द से बना है जो पुर्तगाल में एक स्थान का नाम है। पर बाबर ने अपनी पुस्तक में 'संगतरा' का उल्लेख किया है, इससे इस विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

मुहा०—नीबू निचोड़ = थोड़ा सा कुछ देकर बहुत सी चीजों में साझा करनेवाला। थोड़ा सा संबंध जोड़कर बहुत कुछ लाभ उठानेवाला। नीबू चटाना या नीबू नमक चटाना = निराश करना। ठेंगा दिखाना।

विशेष—कहते हैं कि किसी सराय में एक मियाँ साहब रहते थे जो हर समय अपने पास नीबू और चाकू रखते थे। जब सराय में उतरा हुआ कोई भला आदमी खाना खाने बैठता तब आप चट जाकर उसकी दाल में नीबू निचोड़ देते थे जिससे वह भलमनसाहत के विचार से आपको खाने में शरीक कर लेता था।

नीम¹—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब] पत्ती झाड़नेवाला एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके सब अंग कड़वे होते हैं। निंब।

विशेष¹—इसकी उत्पत्ति हिंदलांकुर से होती है और इसकी

पत्तियाँ डेढ़ दो बित्ते की पतली सीकों के दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और अंगुल भर चौड़ी होती हैं। किनारे इनके आरी की तरह होते हैं। छोटे छोटे सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। फलियाँ भी गुच्छों में लगती हैं और निबौली कहलाती हैं। ये फलियाँ खिरनी की तरह लबोतरी होती हैं और पकने पर चिपचिपे गूदे से भर जाती हैं। एक फली में एक बीज होता है। बीजों से तेल निकलता है जो कड़ुएपन के कारण केवल औषध के या जलाने के काम का होता है। नीम की तिताई या कड़ुवापन प्रसिद्ध है। इसका प्रत्येक भाग कड़ुवा होता है—क्या छाल, क्या पत्ती, क्या फूल, क्या फल। पुराने पेड़ों से कभी कभी एक प्रकार का पतला पानी रस रसकर निकलता है और महीनों बहा करता है। यह पानी कड़ुवा होता है। और 'नीम का मद' कहलाता है। नीम की लकड़ी ललाई लिए और मजबूत होती है तथा किवाड़, गाड़ी, नाव आदि बनाने के काम में में आती है। पतली टहनियाँ, दातून के लिये बहुत तोड़ी जाती हैं। वैद्यक में नीम कड़ुई, शीतल तथा कफ, व्रण, कृमि, वमन, सूजन, पित्तदोष और हृदय के दाह को दूर करनेवाली मानी जाती है। दूषित रक्त को शुद्ध करने का गुण भी इसका प्रसिद्ध है।

पर्या०—निंब। नियमन। नेता। पिचुमंद। अरिष्ट। प्रभद्रक। पारिभद्रक। शुकप्रिय शीर्षपर्ण। यवनेष्ट। वाल्वज। छर्दन। हिंगु। निर्यास। पीतसार। रविप्रिय। मालक। यूपारि। पूकमालक। कीकट। विबंध। कैटर्य। छर्दिघ्न। काकफल। कीरेष्ट। सुमना। विशीर्णपर्ण। शीत। राजभद्रक।

मुहा०—नीम की टहनी हिलाना=गरमी की बीमारी लेकर बैठना। उपदंश या फिरंग रोगग्रस्त होना। (जिसमें लोग नीम की टहनी लेकर घाव पर से मक्खियाँ उड़ाया करते हैं)।

नीम²—वि० [फ़ा० मि० सं० नेम] आधा। अर्ध। जैसे, नीमटर, नीमहकीम।

यौ०—नीमपुख्त, नीमपुख्ता=अधपका। नीमशब=आधीरात। नीमहकीम=अधकचरा ज्ञान रखनेवाला हकीम।

नीमगिर्दा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बढ़ई का एक औजार जो रुखानी या पेशकश की तरह का होता है। इसकी नोक सीधी न होकर अर्धचंद्राकार होती है। इससे बढ़ई खरादने के समय सुराही आदि की गर्दन छीलते हैं।

नीमच—संज्ञा पुं० [हिं० नहीं+मच्छ] एक मछली जो बंगाल, उड़ीसा, पंजाब और सिंध की नदियों में होती है।

विशेष—इसका मांस खाने में अच्छा होता है।

नीमचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नीमचह्] खाँड़ा।

नीमजाँ—वि० [फ़ा०] अधमरा।

नीमटर—वि० [फ़ा० नीम+हिं० टरटर] अधकचरा। जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो। जो किसी विषय को केवल थोड़ा बहुत जानता हो।

नीमन†—वि० [सं० निर्मल ?] १. अच्छा। भला। नीरोग। चंगा। उ०—जानि लेहु हारि इतने ही में कहा करै नीमन को वैद।—सूर (शब्द०)। २. दुरुस्त। जो बिगड़ा हुआ न हो। जो जीर्ण न हुआ हो। ३. बढ़िया। अच्छा। सुंदर।

नीमबर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच उस समय काम देता है जब जोड़ पीछे की ओर से कमर पकड़कर बाईं ओर खड़ा होता है। इसमें अपना बायाँ घुटना जोड़ की दाहिनी जाँघ के नीचे ले जाते हैं, फिर बाएँ हाथ को उसकी टाँगों में से निकालकर उसका बायाँ घुटना पकड़ते और दाहिने हाथ से उसकी मुट्ठी पकड़कर भीतर की ओर खींचते हैं जिससे वह चित्त गिर पड़ता है।

नीमर†—वि० [सं० निर्बल, हिं० नीबर] दुर्बल। बलहीन। शक्तिहीन।

नीमरजा—वि० [फ़ा०] १. थोड़ी बहुत रजामंदी। २. कुछ तोष या प्रसन्नता। उ०—परि पा करि बिनती घनी नीमरजा ही कीन।—शृं० सत० (शब्द०)।

नीमषारण्य, नीमषारन‡—संज्ञा पुं० [सं० नैमिषारण्य] दे० 'नैमिषारण्य'।

नीमस्तीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नीम+आस्तीन] दे० 'नीमास्तीन'।

नीमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नीमह्] एक पहरावा जो जामे के नीचे पहना जाता है। उ०—केसरि को नीमा जामा जरी को फेंटा दुपटा जरी को तेजपुंज समहतु है।—रघुनाथ (शब्द०)।

विशेष—यह जामे के आकार का होता है पर न तो यह जामे के इतना नीचा होता है और न इसके बंद बगल में होते हैं। यह घुटने के ऊपर तक नीचा होता है और इसके बंद सामने रहते हैं। आस्तीन इसकी पूरी नहीं होती, आधी होती है। इसके दोनों बगल सुराहियाँ होती हैं।

नीमावत—संज्ञा पुं० [हिं० निंब+आवत] वैष्णवों का संप्रदाय। निंबार्काचार्य का अनुयायी वैष्णव।

नीमास्तीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नीम+आस्तीन] एक प्रकार की फतुई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] भावना। भाव। आंतरिक लक्ष्य। उद्देश्य। आशय। संकल्प। इच्छा। मंशा। जैसे,—(क) हम किसी बुरी नीयत से नहीं कहते हैं। (ख) तुम्हारी नीयत जाने की नहीं मालूम होती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—बदनीयत।

मुहा०—नीयत डिगना, नीयत डोलना=अच्छा या उचित संकल्प दृढ़ न रहना। मन में विकार उत्पन्न होना। बुरा संकल्प होना। नीयत बद होना=बुरा विचार होना। बुरी इच्छा या संकल्प होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। बेईमानी सूझना। नीयत बदल जाना=(१) संकल्प या विचार और का और होना। इरादा दूसरा हो जाना। (२) बुरा विचार होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। नीयत बाँधना=संकल्प करना।

मन में ठानना। इरादा करना। नीयत बिगड़ना = दे० 'नीयत बद होना'। नीयत भरना = जी भरना। मन तृप्त होना। इच्छा पूरी होना। नीयत में फर्क आना = बुरा संकल्प या विचार होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। बेईमानी या बुराई सूझना। नीयत लगी रहना = ध्यान बना रहना। इच्छा बनी रहना। जी ललचाया करना।

नीरंध्र—वि० [सं० नीरन्ध्र] १. जिसमें छिद्र न हो। छिद्ररहित। २. ठोस। घना [को०]।

नीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी। जल।

मुहा०—नीर ढलना = मरते समय आँख से आँसू बहना। किसी का नीर ढल जाना = किसी की लज्जा जाती रहना। निर्लज्ज या बेहया हो जाना।

२. कोई द्रव पदार्थ या रस। ३. फफोले आदि के भीतर का चेप या रस। जैसे, शीतला का नीर। ४. सुगंधबाला।

नीरज¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में उत्पन्न वस्तु। २. कमल। ३. मोती। मुक्ता। उ०—यज्ञ पूरन के रमापति दान देत अशेष। हरी नीरज चीर माणिक वर्षि वर्षा वेष।—केशव (शब्द०)। ४. कूट। कूठ। ५. एक प्रकार का तृण। उशीर। ६. ऊदबिलाव। जलमार्जार (को०)। ७. शिव। महादेव (को०)।

नीरज²—वि० १. जलीय। जल से होनेवाला या उद्‌भूत (को०)। २. दे० 'नीरजा'।

नीरजा—वि० [सं० नीरजस्] १. बिना धूल का। स्वच्छ। २. जिसे रजोदर्शन न हुआ हो। अरजस्क (स्त्री) [को०]।

नीरत—वि० [सं०] जो रत न हो। विरत [को०]।

नीरद¹—संज्ञा पुं० [सं० नीर] १. जल देनेवाला। २. बादल। ३. मोथा। मुस्तक (को०)।

नीरद²—वि० [सं० निः + रद] बे दाँत का। अदंत।

नीरधर—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।

नीरधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नीरना†—क्रि० स० [देश०] छिटकाना। छितराना। बिखेरना।

नीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

नीरपति—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण। देवता।

नीरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का बेंत। अंबुवेतस् [को०]।

नीरम—संज्ञा पुं० [?] वह बोझ जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखने के लिये रहता है (लश०)।

नीररुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।

नीरव—वि० [सं०] ध्वनिरहित। बिना शब्द का [को०]।

नीरस—वि० [सं०] १. रसहीन। जिसमें रस या गीलापन न हो। २. सूखा। शुष्क। ३. जिसमें कोई स्वाद या मजा न हो। फीका। जिसमें कोई आनंद न हो। जैसे, नीरस काव्य।

नीरांजन—संज्ञा पुं० [सं० नीराजन] [स्त्री० नीराजना] १. दीपदान। आरती। देवता को दीपक दिखाने की विधि।

क्रि० प्र०—उतारना।—वारना।

२. हथियारों को चमकाने या साफ करने का काम। ३. एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारों की सफाई कराते थे। यह कुआर कार्तिक में होता था जब यात्रा की तैयारी होती थी।

नीरांजना(पु)—क्रि० स० [सं० नीराजना] १. आरती करना। दीपक दिखाना। २. हथियारों को माँजना।

नीरिंदु—संज्ञा पुं० [सं० नीरिन्दु] सिहोर का पेड़।

नीरुक्, नीरुज्—संज्ञा पुं० [सं०] रोगाभाव। रोगराहित्य [को०]।

नीरुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुष्ठौषधि। २. व्याधिरहित। वह जो रोगरहित हो [को०]।

नीरे†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नियरे'।

नीरेणुक—वि० [सं०] धूलिरहित। रजशून्य [को०]।

नीरोग—वि० [सं०] जिसे रोग न हो। स्वस्थ। चंगा। तंदुरुस्त।

नीलंगु—संज्ञा पुं० [सं० नीलङ्गु] १. एक प्रकार का कीड़ा। एक क्षुद्र कीट। २. गीदड़। ३. भँवरा। ४. फूल।

नील¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नीला, नीली] नीले रंग का। गहरे आसमानी रंग का।

नील²—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीला रंग। गहरा आसमानी रंग। २. एक पौधा जिससे नीला रंग निकाला जाता है।

विशेष—यह दो तीन हाथ ऊँचा होता है। पत्तियाँ चमेली की तरह टहनी के दोनों ओर पंक्ति में लगती हैं पर छोटी छोटी होती हैं। फूल मंजरियों में लगते हैं। लंबी लंबी बबूल की तरह फलियाँ लगती हैं। नील के पौधे की ३०० के लगभग जातियाँ होती हैं। पर जिनसे यहाँ रंग निकाला जाता है वे पौधे भारतवर्ष के हैं और अरब मिस्र तथा अमेरिका में भी बोए जाते हैं। भारतवर्ष ही नील का आदिस्थान है और यहीं सबसे पहले रंग निकाला जाता था। ८० ईसवी में सिंध के किनारे के एक नगर से नील का बाहर भेजा जाना एक प्राचीन यूनानी लेखक ने लिखा है। पीछे के बहुत से विदेशियों ने यहाँ नील के बोए जाने का उल्लेख किया है। ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में जब यहाँ से नील योरप के देशों में जाने लगा तब से वहाँ के निवासियों का ध्यान नील की ओर गया। सबसे पहले हालैंडवालों ने नील का काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नील की रंगाई के लिये योरप भर में निपुण समझे जाते थे। नील के कारण जब वहाँ कई वस्तुओं के वाणिज्य को धक्का पहुँचने लगा तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा नील का आमद बंद करने पर विवश हुए। कुछ दिनों तक (सन् १६६० तक) इंगलैंड में भी लोग नील को विष कहते रहे जिससे इसका वहाँ जाना बंद रहा। पीछे बेलजियम से नील का रंग बनानेवाले बुलाए गए जिन्होंने नील का काम सिखाया।

पहले पहल गुजरात और उसके आस पास के देशों में से नील योरप जाता था; बिहार, बंगाल आदि से नहीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब नील के काम की ओर ध्यान दिया तब बंगाल,

बिहार में नील की बहुत सी कोठियाँ खुल गई और नील की खेती में बहुत उन्नति हुई।

भिन्न भिन्न स्थानों में नील की खेती भिन्न भिन्न ऋतुओं में और भिन्न भिन्न रीति से होती है। कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेत में रहती है और कहीं अठारह महीने तक। जहाँ पौधे बहुत दिनों तक खेत में रहते हैं वहाँ उनसे कई बार काटकर पत्तियाँ आदि ली जाती हैं। पर अब फसल को बहुत दिनों तक खेत में रखने की चाल उठती जाती है। बिहार में नील फागुन चैत के महीने में बोया जाता है। गरमी में तो फसल की बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोर के साथ टहनियाँ और पत्तियाँ निकलती और बढ़ती हैं। अतः आषाढ़ में पहला कलम हो जाता है और टहनियाँ आदि कारखाने भेज दी जाती हैं। खेत में केवल खूँटियाँ ही रह जाती हैं। कलम के पीछे फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे वह बरसात का पानी अच्छी तरह सोखता है और खूँटियाँ फिर बढ़कर पौधों के रूप में हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर कुआर में होती है।

नील से रंग दो प्रकार से निकाला जाता है—हरे पौधे से और सूखे पौधे से। कटे हुए हरे पौधों को गड़ी हुई नाँदों में दबाकर रख देते हैं और ऊपर से पानी भर देते हैं। बारह चौदह घंटे पानी में पड़े रहने से उसका रस पानी में उतर आता है और पानी का रंग धानी हो जाता है। इसके पीछे पानी दूसरी नाँद में जाता है जहाँ डेढ़ दो घंटे तक लकड़ी से हिलाया और मथा जाता है। मथने का यह काम मशीन के चक्कर से भी होता है। मथने के पीछे पानी थिराने के लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देर में माल नीचे बैठ जाता है। फिर नीचे बैठा हुआ यह नील साफ पानी में मिलाकर उबाला जाता है। उबल जाने पर यह बाँस की फट्टियों के सहारे तानकर फैलाए हुए मोटे कपड़े (या कनवस) की चाँदनी पर ढाल दिया जाता है। यह चाँदनी छनने का काम करती है। पानी तो निथर कर बह जाता है और साफ नील लेई के रूप में लगा रह जाता है। यह गीला नील छोटे छोटे छिद्रों से युक्त एक संदूक में, जिसमें गीला कपड़ा मढ़ा रहता है, रखकर खूब दबाया जाता है जिससे उसकी सात आठ अंगुल मोटी तह जमकर हो जाती है। इसके कतरे काटकर धीरे धीरे सूखने के लिये रख दिए जाते हैं। सूखने पर इन कतरों पर एक पपड़ी सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नाम से बिकते हैं। मिताक्षरा, विधानपारिजात आदि धर्मशास्त्र के कई ग्रंथों में ब्राह्मण के लिये नील में रँगा हुआ वस्त्र पहनने का निषेध है।

मुहा०—नील का टीका लगाना = कलंक लेना। बदनामी उठाना। उ०—नभ में तो बन को बिलास कहाँ बूझत हो; नील से लरे ते टीको नील को न करिहैं।—हनुमान (शब्द०)। नील का खेत = कलंक का स्थान। नील की सलाई फिरवा देना = आँखे फोड़वा डालना। अंधा कर देना। (कहते हैं, पहले अपराधियों की आँख में नील की गरम सलाई डाल दी जाती थी जिससे वे अंधे हो जाते थे)। नील घोंटना = झगड़ा बखेड़ा मचाना। किसी बात को लेकर देर तक उलझना। नील बलाना = पानी बरसने के लिये नील जलाने का टोटका करना। नील बिगड़ना = (१) चाल चलन बिगड़ना। आचरण भ्रष्ट होना। (२) आकृति बिगड़ना। चेहरे का रंग उड़ना। (३) किसी के सिर पैर की बात का प्रसिद्ध होना। झूठी और असंगत बात फैलना। (४) समझ पर पत्थर पड़ना। बुद्धि ठिकाने न रहना। (५) कुदिन आना। शामत आना। दुर्दशा होनेवाली होना। (६) भारी हानि या घाटा होना। दिवाला होना।

३. चोट का नीले या काले रंग का दाग जो शरीर पर पड़ जाता है। जैसे,—जहाँ जहाँ छड़ी बैठी है नील पड़ गया है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—नील डालना = इतनी मार मारना कि शरीर पर नीले दाग पड़ जायँ। गहरी मार मारना।

४. लांछन। कलंक। ५. राम की सेना का एक बंदर। ६. भागवत के अनुसार इलावृत खंड का एक पर्वत जो रम्यक वर्ष की सीमा पर है। ७. नव निधियों में से एक। ८. मंगल घोष। मंगल का शब्द। ९. वटवृक्ष। बरगद। १०. इंद्रनील मणि। नीलम। ११. काच लवण। १२. तालीसपत्र। १३. विष। १४. एक नाग का नाम। १५. विष्णुपुराण में वर्णित नीलनी से उत्पन्न अजमीढ़ राजा का एक पुत्र। १६. माहिष्मती का एक राजा।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है। नील राजा की एक अत्यंत सुंदरी कन्या थी जिसपर मोहित होकर अग्नि देवता ब्राह्मण के वेश में राजा से कन्या माँगने आए। कन्या पाकर अग्नि देवता ने राजा को वर दिया कि जो शत्रु तुमपर चढ़ाई करेगा वह भस्म हो जायगा। पांडवों के राजसूय यज्ञ के अवसर पर सहदेव ने माहिष्मती नगरी को घेरा। अपनी सेना को भस्म होते देख सहदेव ने अग्नि देवता की स्तुति की। अग्निदेव ने प्रगट होकर कहा कि नील के वंश में जबतक कोई रहेगा मैं बराबर इसी प्रकार रक्षा करूँगा। अंत में अग्नि की आज्ञा से नील ने सहदेव की पूजा की और सहदेव उससे इस प्रकार अधीनता स्वीकार कराकर चले गए।

१७. नृत्य के १०८ करणों में से एक। १८. एक यम का नाम। १९. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सोलह वर्ण होते है। यथा,—डंकनि देत अतंकनि संकनि दूरि धरै। गोमुख दूरनि पूर चहूँ दिसि भीति भरै। २०. एक प्रकार का विजय साल। २१. मंजुश्री का एक नाम। २२. गहरे नीले रंग का वृषभ (को०)। २३. एक संख्या जो दस हजार अरब की होती है। सौ अरब की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१०००००००००००००।

नीलकंठ¹—वि० [सं० नीलकण्ठ] [वि० स्त्री० नीलकंठी] जिसका कंठ नीला हो।

नीलकंठ[2]—संज्ञा पुं० १. मोर । मयूर । २. एक चिड़िया । चाष पक्षी ।

विशेष—यह एक बित्ते के लगभग लंबी होता है । इसका कंठ और डैने नीले होते हैं । शेष शरीर का रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है । चोंच कुछ मोटी होती है । यह कीड़े, मकोड़े पकड़कर खाता है. इससे वर्षा और शरद ऋतु में उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है । विजयादशमी के दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है । स्वर इसका कुछ कर्कश होता है ।

३. महादेव का एक नाम ।

विशेष—कालकूट विष पान करके कंठ में धारण करने के कारण शिव का कंठ कुछ काला पड़ गया इससे यह नाम पड़ा । महाभारत में यह लिखा है कि अमृत निकलने पर भी जब देवताओं ने समुद्र का मथना बंद नहीं किया तब सधूम अग्नि के समान कालकूट विष निकला जिसकी गंध से ही तीनों लोक व्याकुल हो गए । अंत में ब्रह्मा ने शिव से प्रार्थना की और उन्होंने यह कालकूट पान करके कंठ में धारण कर लिया । पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ विस्तार के साथ है ।

४. गौरा पक्षी । चटक । (नर के कंठ पर काला दाग होता है) । ५. मूली । ६. पियासाल । ७. एक मधुमक्खी (को०) ।

नीलकंठ रस—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठ रस] एक रसौषध ।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा, विष, चीता, पद्मकाठ दारचीनी, रेणुका, वायविडंग, पिपरामूल, इलायची, नागकेसर, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आँवला, बहेड़ा और ताँबा सम भाग लेकर सबके दुगने पुराने गुड़ में मिलाकर चने के बराबर गोली बनावे । इसके सेवन से कास, श्वास, प्रमेह, हिचकी, विषम ज्वर, ग्रहणी, शोथ, पांडु, मूत्रकृच्छ्र इत्यादि रोग दूर होते हैं ।

नीलकंठाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठाक्ष] रुद्राक्ष ।

नीलकंठाक्षी—वि० [सं० नीलकण्ठाक्षी] खंजन जैसे नयनोंवाली [को०] ।

नीलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकण्ठी] १. एक छोटी चिड़िया । यह हिमालय पर पाई जाती है । इसका बोलना बहुत ही मधुर और सुरीला होता है । २. एक प्रकार का छोटा पौधा जो शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसकी पत्तियाँ बहुत कड़ुवी होती हैं और पुराने ज्वर में दी जाती हैं ।

नीलकंद—संज्ञा पुं० [सं० नीलकन्द] भैंसा कंद । महिष्कंद । शुभ्रालु ।

नीलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काच लवण । २. वर्त्तलोह । बीदरी लोहा । ३. मटर । ४. भौंरा । ५. पियासाल । ६. बीजगणित में अव्यक्त राशि का एक भेद । ७. गहरे नीले या काले रंग का अश्व (को०) ।

नीलकण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम का टुकड़ा । २. ठोढ़ी पर गोदे हुए गोदने का बिंदु ।

नीलकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्याह जीरा । काला जीरा ।

नीलकमल—संज्ञा पुं० [सं०] नील रंग का कमल । नीलाब्ज । नीलांबुज [को०] ।

नीलकांत—संज्ञा पुं० [सं० नीलकान्त] १. एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालय के अंचल में होती है ।

विशेष—मसूरी में इसे नीलकांत और नैनीताल में इसे दिगदल कहते हैं । इसका माथा, कंठ के नीचे का भाग और छाती काली होती है. सिर पर कुछ सफेदी भी होती है । पूँछ नीली होती है । कंठ में भी कुछ नीलेपन की झलक रहती है ।

२. विष्णु । ३. एक मणि । नीलम ।

नीलकुंतला—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकुन्तला] वृहद्धर्मपुराण के अनुसार गौरी की एक सखी का नाम [को०] ।

नीलकुरंटक—संज्ञा पुं० [सं० नीलकुरण्टक] नीली कटसरैया । नील झिंटी [को०] ।

नीलकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा ।

नीलक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलक्रान्ता] विष्णुक्रांता लता जिसमें बड़े नीले फूल लगते हैं ।

नीलक्रौंच—संज्ञा पुं० [सं० नीलक्रौञ्च] काला बगला । वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है ।

नीलगाय—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + गाय] नीलापन लिए भूरे रंग का एक बड़ा हिरन जो गाय के बराबर होता है ।

विशेष—इसके कान गाय के से और सींग टेढ़े और छोटे होते हैं । छोटे छोटे बालों का केसर (अयाल) भी होता है । गले के नीचे बड़े बालों का एक छोटा गुच्छा सा होता है । देखने में यह जंतु गाय और हिरन दोनों से मिलता जान पड़ता है और प्राय: जंगलों में ही झुंड बाँधकर रहता है । नीलगाय ऊँट की तरह चारों पैर मोड़कर विश्राम करती है, गाय की तरह पार्श्व भाग भूमि पर रखकर नहीं । पालने से यह पाली जा सकती है । शिकारी चमड़े आदि के लिये इसका शिकार भी करते हैं । चमड़ा इसका बहुत मजबूत होता है । गले के चमड़े की ढालें बनती हैं । वैद्यक के अनुसार नीलगाय का मांस मधुर, बलकारक, उष्णवीर्य स्निग्ध तथा कफ और पित्तवर्धक होता है ।

पर्या० —गवय । नीलांतक । रोझ ।

नीलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक पर्वत ।

नीलग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नीलचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जगन्नाथ जी के मंदिर के शिखर पर माना जानेवाला चक्र । २. एक दंडक वृत्त जो ३० अक्षरों का होता है और अशोक पुष्प मंजरी का एक भेद है । इसमें 'गुरु लघु' १५ बार क्रम से आते हैं । यथा.—जानि के समै भुवाल राम राज साज साजि ता समै अकाज काज कैकई जु कीन ।

नीलचर्मा[1]—वि० [पुं० नीलचर्मन्] नीले चमड़े का ।

नीलचर्मा[2]—संज्ञा पुं० १. फालसा । २. नीले रंग का चर्म (को०) ।

नीलच्छद[1]—वि० [सं०] नीले पंख या आवरण का ।

नीलच्छद[2]—संज्ञा पुं० १. गरुड़ । २. खजूर ।

नीलज—संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तलोह । बीदरी लोहा ।

नीलजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील पर्वत से उत्पन्न वितस्ता (झेलम) नदी।

नीलझिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलझिण्टी] नीली कटसरैया।

नीलतरा—स्त्री० स्त्री० [सं० नीलतीरा या नीलतटा] बौद्ध कथाओं के अनुसार गांधार देश की एक नदी जो उरुवेलारण्य से होकर बहती थी जहाँ जाकर बुद्धदेव ने उरुवेल काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन भाइयों का अभिमान दूर किया था।

नीलतरु—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीलापन। २. कालापन। स्याही।

नीलताल—संज्ञा पुं० [सं०] स्याम तमाल। हिंताल।

नीलदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी दूब।

नीलद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल वा असन नामक वृक्ष।

नीलध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल। २. महाभारत के अश्वमेध पर्व में उल्लिखित माहिष्मती का एक राजा। इसकी पत्नी का नाम ज्वाला और कन्या स्वाहा नाम की लक्ष्मी के शाप से उत्पन्न थी।

नीलनिर्गुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलनिर्गुण्डी] नील सिंधुवार [को०]।

नीलनिर्यासक—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल का पेड़।

नीलनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। व्योम।

नीलपंक—संज्ञा पुं० [सं० नीलपङ्क] १. काला कीचड़। २. अंधकार।

नीलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घना काला आवरण। २. अंधे व्यक्ति के आँख की काली झिल्ली या आवरण [को०]।

नीलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलकमल। २. गुंडतृण। गोनरा घास जिसकी जड़ कसेरू है। ३. अश्मंतक वृक्ष। ४. विजयसाल। ५. अनार। दाड़िम।

नीलपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

नीलपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नीलपत्रिका'।

नीलपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल [को०]।

नीलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वृंदार वृक्ष।

नीलपिंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलपिङ्गला] वृहद्धर्म पुराण के अनुसार एक विशेष प्रकार की गाय [को०]।

नीलपिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी।

नीलपुनर्नवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीले रंग की पुनर्नवा या गदहपूर्ना [को०]।

नीलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीला फूल। २. नीची भँगरैया। ३. नीलाम्लान। काला कोराठा। ४. ग्रंथिपर्ण। गठिवन।

नीलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता। अपराजिता।

नीलपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अलसी। २. नील का पौधा।

नीलपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला बीना। नीली कोयल। २. अलसी। तीसी।

नीलपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

नीलफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जामुन। २. बैंगन।

नीलबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० नील + बटी] कच्चे नील की पट्टी।

नीलबिरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील+बिरई] सनाय का पौधा। सना।

नीलबीज—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल। नीलबीज।

नीलभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. चंद्रमा। ३. भौंरा। भ्रमर [को०]।

नीलभृंगराज—संज्ञा पुं० [सं० नीलभृङ्गराज] नीला भँगरा।

नीलम—संज्ञा पुं० [फा०। सं० नीलमणि] नील मणि। नीले रंग का रत्न। इंद्रनील।

विशेष—नीलम वास्तव में एक प्रकार का कुरंड है जिसका नंबर कड़ाई में हीरे से दूसरा है। जो बहुत चोखा होता है उसका मोल भी हीरे से कम नहीं होता। नीलम हलके नीले से लेकर गहरे नीले रंग तक के होते हैं। अब भारतवर्ष में नीलम की खानें नहीं रह गई हैं। काश्मीर (बसकर) की खानें भी अब खाली हो चली हैं। बरमा में मानिक के साथ नीलम भी निकलता है। सिंहल द्वीप और श्याम से भी बहुत अच्छा नीलम आता है।

रत्नपरीक्षा संबंधी पुस्तकों में मानिक के समान नीलम भी तीन प्रकार के कहे गए हैं। उत्तम, महानील और साधारण। महानील के संबंध में लिखा है कि यदि वह सौगुने दूध में डाल दिया जाय तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा। सबसे श्रेष्ठ इंद्रनील वह है जिसमें से इंद्रधनुष की सी आभा निकले। पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं। नीलम में पाँच बातें देखी जाती है—गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णाढ्यत्व, पार्श्ववर्तित्व और रंजकत्व। जिसमें स्निग्धत्व होता है उसमें से चिकनाई छूटती है। जिसमें वर्णाढ्यत्व होता है उसे प्रातःकाल सूर्य के सामने करने से उसमें नीली शिखा भी फूटती दिखाई पड़ती है। पार्श्ववर्तित्व गुण उस नीलम में माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चाँदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े। जिसे जलपात्र आदि में रखने से सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए। रत्नसंबंधी पुरानी पोथियों में भिन्न भिन्न रत्नों के धारण करने के भिन्न भिन्न फल लिखे हुए हैं।

नीलमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम। २. कृष्ण (को०)।

नीलमाधव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। जगन्नाथ [को०]।

नीलमाष—संज्ञा पुं० [सं०] काला उरद। राजमाष।

नीलमीलिक—संज्ञा पुं० [सं०] खद्योत। जुगनू।

नीलमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पकसीस। काली मिट्टी।

नीलमोर—संज्ञा पुं० [हिं० नील + सं० मयूर > हिं० मोर] कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है।

नीलरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम। २. कृष्ण। नीलमाधव [को०]।

नीललोह—संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्तलोह। बीदरी लोहा।

नीललोहित[१]—वि० [सं०] नीलापन लिए लाल। बैंगनी।

नीललोहित[२]—संज्ञा पुं० १. शिव का एक नाम जिनका कंठ नीला और मस्तक लोहित वर्ण है। २. एक कल्प का नाम (को०)।

नीललोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूमि जंबू। एक प्रकार की छोटी जामुन। २. पार्वती।

नीलवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीला रंग। २. मूली [को०]।

नीलवर्षाभू[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली पुनर्नवा।

नीलवर्षाभू[2]—संज्ञा पुं० भेक। मेढक [को०]।

नीलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंदाक। बाँदा। परगाछा।

नीलवसन[1]—पुं० [सं०] नीला कपड़ा।

नीलवसन[2]—वि० नीला व काला वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलवसन[3]—संज्ञा पुं० १. शनि ग्रह। २. बलराम।

नीलवीज—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल।

नीलवुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलवृष्ना। नीला बोना नाम का पेड़।

नीलवृंत—संज्ञा पुं० [सं० नीलवृन्त] तूल। रूई।

नीलवृष—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार का साँड़ या बछड़ा।

विशेष—श्राद्ध में नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है। जिस वृष का रंग लाल (लोहित), पूँछ, खुर और सिर शंख वर्ण हों उसे नीलवृष कहते हैं। ऐसे वृष के उत्सर्ग का बड़ा फल है।

नीलवृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैगन।

नीलशिग्रु—संज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड़। शोभांजन।

नीलसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलसन्ध्या] कृष्णापराजिता।

नीलसार—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

विशेष—इसका हीर काला आबनूस होता है।

नीलसिंदुवार—संज्ञा पुं० [सं० नीलसिन्दुवार] नील निर्गुंडी [को०]।

नीलसिर—संज्ञा पुं० [हिं० नील+सिर] एक प्रकार की बतख जिसका सिर नीला होता है।

विशेष—यह हाथ भर लंबी होती है और सिंध, पंजाब, काश्मीर आदि में पाई जाती है। अंडे यह गर्मी में देती है।

नीलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] नील रंग के समान गहरा प्रेम। दृढ स्नेह। स्थिर प्रेम [को०]।

नीलस्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और दो गुरु अक्षर होते हैं। जैसे,—राउर के सम हैं नहु बालो। जोवति है दुतिवंत जहाँ लौ। जो गिरि दुर्गनि माहुं बसै जू। जा भुज चंदन भार बसै जू।—गुमान (शब्द०)।

नीलस्वरुपक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीलस्वरूप'।

नीलांग[1]—वि० [सं० नीलाङ्ग] नीले अंग का।

नीलांग[2]—संज्ञा पुं० सारस पक्षी।

नीलांगु—संज्ञा पुं० [सं० नीलाङ्गु] दे० 'नीलंगु' [को०]।

नीलांजन—संज्ञा पुं० [सं० नीलाञ्जन] १. नीला सुरमा। २. तूतिया। नीला थोथा।

नीलांजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जना] १. बिजली। २. नीलांजनी। ३. काला कपास।

नीलांजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जनी] एक क्षुप। कालांजनी [को०]।

नीलांजसा—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जसा] १. बिजली। २. एक अप्सरा। ३. एक नदी।

नीलांबर[1]—संज्ञा पुं० [सं० नीलाम्बर] १. नीला वस्त्र। नीले रंग का कपड़ा (विशेषतः रेशमी)। २. तालीशपत्र। ३. बलदेव। ४. शनैश्चर। ५. राक्षस।

नीलांबर[2]—वि० नीले कपड़ेवाला। नील वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलांबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाम्बरी] एक रागिनी।

नीलांबुज—संज्ञा पुं० [सं० नीलाम्बुज] नील कमल।

नीला[1]—वि० [सं० नील] आकाश के रंग का। नील के रंग का।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नीला करना = मारते मारते शरीर पर नीले दाग डालना। बहुत मार मारना। नीला पड़ना = नीला हो जाना। नीला पीला होना = क्रोध दिखाना। क्रुद्ध होना। बिगड़ना। नीले हाथ पाँव हों = ठंढा हो जाय। मर जाय। (स्त्रि० शाप)। चेहरा नीला पड़ जाना = (१) चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। आकृति से भय उद्विग्नता, लज्जा आदि प्रगट होना। (२) आकृति बिगड़ जाना। सजीवता के लक्षण नष्ट होना।

नीला[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का कबूतर। २. नीलम।

नीला[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीली मक्खी। २. नील पुनर्नवा। ३. नील का पौधा। ४. एक लता। ५. एक नदी (महाभारत)। ६. मल्लार राग की एक भार्या।

नीलाक्ष[1]—वि० [सं०] नीली आँख का।

नीलाक्ष[2]—संज्ञा पुं० राजहंस।

नीलाचल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलगिरि पर्वत। २. जगन्नाथ जी के निकट की एक छोटी पहाड़ी।

नीलाथोथा—संज्ञा पुं० [सं० नीलतुत्थ] ताँबे की उपधातु। ताँबे का नीला क्षार या लवण। तूतिया।

विशेष—वैद्यक में लिखा है की जिस धातु की जो उपधातु होती है उसमें उसी का सा गुण होता है पर बहुत हीन। ताँबे का यह नीला लवण खानों में भी मिलता है पर अधिकतर कारखानों में निकाला जाता है। ताँबे के चूर को यदि खुली हवा में रखकर तपावें या गलावें और उसमें थोड़ा सा गंधक का तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्ल गुण नष्ट हो जायगा और उसके योग से तूतिया बन जायगा। नीलाथोथा रँगाई और दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह क्षारसंयुक्त, कटु, कसैला, वमनकारक, लघु, लेखन-गुण-युक्त, भेदक, शीतवीर्य, नेत्रों को हितकर तथा कफ, पित्त, विष पथरी, कुष्ट और खाज को दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया शोधकर अल्प मात्रा में दिया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। बिल्ली की विष्ठा में तूतिए को गूँधकर दशमांश सोहागा मिलाकर धीमी आँच में पकावे। इसके पीछे मधु और सेंधे नमक का पुट दे। दूसरी विधि यह है कि तूतिए में आधा गंधक मिलाकर उसे चार दंड तक पकावे। शुद्ध होने से उसमें वमन आदि का दोष कम हो जाता है।

नीलाब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल।

नीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० नीला + पन (प्रत्य०)] नीलिमा। नीलाहट।

नीलाम—संज्ञा पुं० [पुर्त० लीलाम] बिक्री का एक ढंग जिसमें माल उस आदमी को दिया जाता है जो सबसे अधिक दाम बोलता है। बोली बोलकर बेचना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—नीलामघर।

मुहा०—नीलाम पर चढ़ना = बोली बोलकर बेचा जाना। (माल) नीलाम पर चढ़ाना = बोली बोलकर बेचना।

नीलामघर—संज्ञा पुं० [हिं० नीलाम + घर] वह घर या स्थान जहाँ चीजें नीलाम की जाती हों।

नीलामी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीलाम + ई (प्रत्य०)] नीलाम होने का भाव या क्रिया।

नीलामी[2]—वि० [हिं० नीलाम] नीलाम में मोल लिया हुआ।

नीलाम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कटसरैया। नील झिंटी [को०]।

नीलाम्लान—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं। काला कोराठा (मराठी)।

नीलाम्ली—संज्ञा पुं० [सं०] राजनिघंटु में वर्णित एक क्षुप। नलखुड़गुड। यह मधुर, रूक्ष और कफ तथा वातहारक कहा गया है।

नीलारुण—संज्ञा पुं० [सं०] उषःकाल। अरुणोदय। प्रत्यूष [को०]।

नीलालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंद। राजनिघंटु में इसका गुण मधुर, शीतकारक, पित्त, दाह और श्रमनाशक कहा गया है [को०]।

नीलावती—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलवती] एक प्रकार का चावल। उ०—नीलावती चाउर विवि दुर्लभ। भात परोस्यो माता सुलभ।—सूर (शब्द०)।

नीलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील निगुंडी [को०]।

नीलाश्मा—संज्ञा पुं० [सं० नीलाश्मन्] नील मणि [को०]।

नीलाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।

नीलासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विजयसाल का पेड़। २. एक रतिबंध।

नीलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + आहट (प्रत्य०)] नीलापन।

नीलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलजंतु का नाम।

नीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोमबरी। २. नीली निगुंडी। नीलाभी। नील सम्हालु वृक्ष। ३. आँख का एक रोग। तिमिर रोग के अंतर्गत लिंगनाश का एक भेद। आँख लिलमिलाने का रोग।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार जिस तिमिर रोग में कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिंगनाश कहते हैं और जिसमें आकाश में सूर्य, नक्षत्र, बिजली आदि की सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलिका कहते हैं।

४. मुख पर का एक रोग जिसमें सरसों के बराबर छोटे छोटे कड़े काले दाने निकलते हैं। झल्ला।

नीलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़। २. नीला थोथा।

नीलिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० निलिमन्] १. नीलापन। २. श्यामता। स्याही।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह पुं० है पर हिंदी में स्त्री० है।

नीली[1]—वि० स्त्री० [हिं० नीला] काले रंग की। नील के रंग की। काली। आसमानी।

नीली[2]—संज्ञा स्त्री० १. नील का पौधा। २. नीलिका रोग। ३. नीले रंग की एक प्रकार की मक्खी (को०)।

नीली घोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + घोड़ी] १. काले अथवा सब्ज रंग की घोड़ी। २. जामे के साथ सिली हुई कागज की घोड़ी जिसे पहन लेने से जान पड़ता है कि आदमी घोड़े पर सवार है। डफाली इसे पहनकर गाजी मियाँ के गीत गाते हुए भीख माँगने निकलते हैं।

नीली चकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + चकरी] एक प्रकार का पौधा।

नीली चाय—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीली + चाय] अगिया घास या यज्ञकुश।

नीली राग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रगाढ़ या दृढ़ प्रेम [को०]।

नीली संधान—संज्ञा पुं० [सं० नीलीसन्धान] नील का संधान या खमीर [को०]।

यौ०—नीलीसंधानभांड = नील का बर्तन या नाँद।

नीलू—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील] एक प्रकार की घास। पलवान।

नीलोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल।

नीलोत्पली—संज्ञा पुं० [सं० नीलोत्पलिन्] १. शिव के एक अंश। २. बौद्ध महात्मा मंजुश्री का एक नाम।

नीलोपल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम। २. नीला पत्थर [को०]।

नीलोफर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नीलोफ़र मि० सं० नीलोत्पल] १. नील कमल। २. कुई। कुमुद।

विशेष—हकीमी नुसखों में कुमुद या कुई का ही व्यवहार यहाँ होता है।

नीवँ—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि, प्रा० नेइं] १. घर बनाने में गहरी नाली के रूप में खुदा हुआ गड्ढा जिसके भीतर से दीवार की जोड़ाई आरंभ होती है। दीवार उठाने के लिये गहरा किया हुआ स्थान।

क्रि० प्र०—खोदना।

मुहा०—नींव देना = (१) गड्ढा खोदकर दीवार खड़ी करने के लिये स्थान बनाना। दीवार की जड़ जमाने के लिये भूमि खोदना। (२) घर उठाने का आरंभ करना। (किसी बात की) नींव देना = कारण या आधार खड़ा करना। जड़ खड़ी करना। आरंभ करना। उपक्रम करना। सामान करना। जैसे, झगड़े की नींव देना। उ०—बाकी जो सो उठि छता वई धुंव की नीवँ।—लाल (शब्द०)। नीवँ भरना = दीवार के लिये खुदे हुए गड्ढे में कंकड़, पत्थर आदि पाटना।

२. दीवार के लिये गहरे किए हुए स्थान में ईंट, पत्थर, मिट्टी आदि की जोड़ाई या जमावट जिसके ऊपर दीवार उठाते हैं। दीवार की जड़ या आधार। मूलभित्ति।

क्रि० प्र०—धरना।—रखना।

मुहा०—नींव का पत्थर = वह पत्थर जो मकान बनाने के आरंभ में पहले पहल नींव में रखा जाता है। नींव जमाना या डालना या देना = दीवार उठाने के लिये नीवें के गड्ढे में ईंट, पत्थर आदि जमाकर आधार खड़ा करना। दीवार की जड़ जमाना। (किसी बात की) नीवें जमाना = (१) आधार दृढ़ करना। स्थिर करना। स्थापित करना। (२) गर्भ स्थित करना। पेट रखना। (किसी वस्तु या बात की) नींव डालना या देना = आधार खड़ा करना। जड़ जमाना। सूत्रपात करना। बुनियाद डालना। आरंभ करना। जैसे,—क्लाइव ने अंगरेजी राज्य की नीवें डाली। नीवें पड़ना = (१) घर की दीवार का आधार खड़ा होना। घर बनने का लग्गा लगाना। उ०—शोक की नींव परी हरि लोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे। —(शब्द०)। (२) आरंभ होना। सूत्रपात होना। जड़ खड़ी होना या जमना। जैसे, झगड़े की नीवें पड़ना, राज्य की नींव पड़ना।

३. जड़। मूल। स्थिति। आधार।

नीव—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नींव'।

नीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिक्षु। परिव्राजक। २. वाणिज्य। ३. कीचड़। ४. जल। ५. व्यापारी। वाणिज्य करनेवाला (को०)। ६. गृह-निर्माण-योग्य-भूमि (को०)।

नीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अकाल के समय अन्न की बढ़ी हुई आवश्यकता या माँग। २. अकाल। दुर्भिक्ष (को०)।

नीवानास[१]—संज्ञा पुं० [हिं० नींव+नाश] जड़ मूल से नाश। सत्यानाश। बरबादी। ध्वंस।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नीवानास[२]—वि० चौपट। नष्ट। बरबाद।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

नीवार—संज्ञा पुं० [सं०] पसही या तिन्नी का चावल। मुन्यन्न।

नीवारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीवार' (को०)।

नीवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमर में लपेटी हुई धोती की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ पेट के नीचे सूत की डोरी से या यों ही बाँधती हैं। कटिवस्त्रबंध। फुफुँदी। नारा। ३. लहँगे में पड़ी हुई वह डोरी जिससे लहँगा कमर में बाँधा जाता है। इजारबंद। ४. साड़ी। धोती। ५. कौटिल्य के अनुसार वह धन जिसके ब्याज आदि की आय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रक्षित रहे। स्थायी कोश। ६. खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौटि०)।

नीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निधि। स्थायी कोश। दे० 'नीवि'। उ०—इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अध्यक्ष नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। —करुणा (परिचय)।

नीवीग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह व्यक्ति जिसके पास चंदा या किसी दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

नीवृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनपद। २. ग्रामसमूह। देश (को०)।

नीध्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीध्र' (को०)।

नीशार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सरदी, हवा आदि से बचाव के लिये परदा। कनात। २. मसहरी।

नीसा†—संज्ञा पुं० [देश०] सफेद धतूरा।

नीसक(पु)—वि० [हिं० नि + सक (= शक्ति)] सामर्थ्यहीन। शक्तिहीन।

नीसान(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'निशान'।

नीसानी—संज्ञा स्त्री० [?] तेईस मात्राओं का एक छंद जिसमें १३वीं और १०वीं मात्रा पर विराम होता है। यह उपमान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यथा,—भाई सूरज मल्ल से कहना यह भाई। हम तुम बदे साहि के बुज्झे न लराई।—सूदन (शब्द०)।

नीसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नीशार] पर्दा। कनात। दे० 'नीशार'।

नीसू—संज्ञा पुं० [सं० निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुंदा जिसपर रखकर चारा या गन्ना काटते हैं।

नीहाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'नीवँ'।

नीहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुहरा। २. पाला। हिम। तुषार। बर्फ। ३. बाहर करना। रीता करना (को०)।

नीहारकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०)।

नीहारजल—संज्ञा पुं० [सं०] ओसबिंदु। शबनम (को०)।

नीहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में धुएँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज जो अँधेरी रात में सफेद धब्बे की तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है।

विशेष—नीहारिका के धब्बे हमारे सौर जगत् से बहुत दूर हैं। दूरबीन के द्वारा देखने से ऐसे बहुत से धब्बों का पता अबतक लग चुका है जो भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं। कुछ धब्बे तो ऐसे हैं जो अच्छी से अच्छी दूरबीनों से देखने पर भी कुहरे या भाप के रूप के ही दिखाई पड़ते हैं, और कुछ एक दम छोटे छोटे तारों से मिलकर बने पाए जाते हैं और वास्तव में तारकगुच्छ हैं। आकाश गंगा में इस प्रकार के तारकगुच्छ बहुत से हैं। इन तीनों में शुद्ध नीहारिका एक प्रकार के धब्बे ही हैं जो प्रारंभिक अवस्था में हैं। इनसे आती हुई किरणों की रश्मिविश्लेषण यंत्र से परीक्षा करने से कुछ में कई प्रकार की आलोकरेखाएँ पाई जाती हैं। इनमें से कई एक का तो निश्चय नहीं होता कि किस द्रव्य से आती हैं, तीन का पता लगता है कि वे हाइड्रोजन (उद्जन) की रेखाएँ हैं। ज्योतिर्विज्ञानियों का कथन है कि नीहारिका के धब्बे ग्रह नक्षत्रों के उपादान हैं। इन्हीं के क्रमशः घनीभूत होकर जमते जमते नक्षत्रों और लोकपिंडों की सृष्टि होती हैं। इनमें अत्यंत अधिक मात्रा का ताप होता है। हमारा यह सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहों के साथ आरंभ में नीहारिका रूप में था।

नु—प्रत्य० [सं०] विकल्प, संदेह, वितर्क, अनिश्चय आदि अर्थों में प्रयुक्त प्रत्यय। कि के साथ प्रयुक्त होने पर यह संभावना, निश्चयादि अर्थ व्यक्त करता है।

नुकता¹—संज्ञा पुं० [अ० नुकतह्] १. बिंदु। बिंदी। २. शून्य। सिफर (को०)। ३. चिह्न। दाग। निशान। धब्बा (को०)।

नुकता²—संज्ञा पुं० [अ० नुकतह्] १. चुटकुला। फबती। लगती हुई उक्ति।

क्रि० प्र०—छेड़ना।—छोड़ना।

२. ऐब। दोष। दुर्गुण।

क्रि० प्र०—निकालना।

यौ०—नुकताचीं। नुकताचीनी।

३. झालर के रूप का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर इसलिये बाँधा जाता है जिसमें आँख में मक्खियाँ न लगें। तिल्हारी।

नुकताचीँ—वि० [फ़ा० नुकतह्चीं] दे० 'नुकताचीन'।

नुकताचीन—वि० [फ़ा० नुक़्तह्चीन] ऐब ढूँढनेवाला या निकालनेवाला। दोष ढूँढनेवाला या निकालनेवाला। छिद्रान्वेषी।

नुकताचीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] छिद्रान्वेषण। दोष निकालने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नुकती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नखुदी] एक प्रकार की मिठाई। बेसन की छोटी महीन बुँदिया।

नुकना†—क्रि० अ० [हिं० लुकना] लुकना। छिपना।

नुकरा¹—संज्ञा पुं० [अ० नुक़रह्] १. चाँदी। २. घोड़ों का सफेद रंग।

नुकरा²—वि० सफेद रंग का (घोड़ा)।

नुकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जलाशयों के पास रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर सफेद और चोंच काली होती है।

नुकसान—संज्ञा पुं० [अ०] १. कमी। घटी। ह्रास। छीज। जैसे,—सीड़ में रखने से इतने कागज का नुकसान हो गया। २. हानि। घाटा। फायदा का उलटा। जियान। क्षति। पास की वस्तु का जाता रहना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नुकसान उठाना = हानि सहना। पल्ले का खोना। क्षतिग्रस्त होना। नुकसान पहुँचना = नुकसान होना। नुकसान पहुँचाना = हानि करना। क्षतिग्रस्त करना। नुकसान भरना = हानि की पूर्ति करना। घाटा पूरा करना।

३. बिगाड़। खराबी। दोष। अवगुण। विकार।

मुहा०—(किसी को) नुकसान करना = दोष उत्पन्न करना। अस्वस्थ करना। स्वास्थ्य के प्रतिकूल होना। जैसे,—आलू हमें बहुत नुकसान करता है।

नुकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] खुरपी से निराने का काम।

नुकाना†¹—क्रि० स० [हिं० लुकना] लुकाना। छिपाना।

नुकाना†²—क्रि० स० [देश०] खुरपी से निराना।

नुकीला—वि० [हिं० नोक+ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० नुकीली] १. नोकदार। जिसमें नोक निकली हो। जो छोर की ओर बराबर पतला होता गया हो। २. नोक झोंक का। बाँका तिरछा। सुंदर ढब का। सजीला। जैसे, नुकीला जवान।

नुकीली—वि० स्त्री० [हिं० नुकीला] दे० 'नुकीला'।

नुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० नोक का अल्पा०] १. नोक। पतला सिरा। २. सिरा। छोर। अंत। जैसे,—गली के नुक्कड़ पर वह दुकान है। ३. कोना। निकला हुआ कोना।

नुक्का—संज्ञा पुं० [हिं० नोक] १. नोक।

यौ०—नुक्का टोपी = पतली दोपलिया टोपी जो लखनऊ में दी जाती है।

२. गेड़ी के खेल में एक लकड़ी।

मुहा०—नुक्का मारना या लगाना = (१) गेड़ी मारना। गेड़ी के खेल में लकड़ी मारना। (२) कील ठोंकना। बाधा पहुँचाना। कष्ट पहुँचाना।

नुक्स—संज्ञा पुं० [अ० नुक़्स] १. दोष। ऐब। खराबी। बुराई।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

२. त्रुटि। कसर।

नुखरना—क्रि० अ० [देश०] भालू का चित्त लेटना (कलंदर)।

नुखाट—संज्ञा स्त्री० [देश०] छड़ी की मार जो कलंदर भालू के मुँह पर मारते हैं। (कलंदर)।

नुगदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नुकती] दे० 'नुकती'।

नुचना—क्रि० अ० [सं० लुञ्चन] १. अंश या अंग से लगी हुई किसी वस्तु का झटके से खिंचकर अलग होना। खिंचकर अलग होना। खिंचकर उखड़ना। उखड़ना, जैसे, बाल नुचना। पत्ती नुचना। २. खरोंचा जाना। नाखून आदि से छिलना।

संयो० क्रि०—जाना।

नुचवाना—क्रि० स० [हिं० नोचना का प्रे० रूप] नोचने का काम कराना। नोचने में प्रवृत्त करना। नोचने देना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

नुजट—संज्ञा पुं० [देश० ?] संगीत में १४ शोभाओं में से एक।

नुत—वि० [सं०] स्तुत। प्रशंसित। वंदित। जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तुति। वंदना। २. पूजा।

नुत्त—वि० [सं०] १. चलाया हुआ। क्षिप्त। २. प्रेरित।

नुत्फा—संज्ञा पुं० [अ० नुत्फ़ह्] वीर्य। शुक्र।

मुहा०—नुत्फा ठहरना = गर्भ रहना।

यौ०—नुत्फाहराम।

२. संतति। औलाद।

नुत्फाहराम—वि० [अ० नुत्फ़ाह् राम] १. जिसकी उत्पत्ति व्यभिचार से हो। वर्णसंकर। दोगला। २. कमीना। बदमाश (गाली)।

नुनखरा—वि० [हिं० नून + खारा] स्वाद में नमक सा खारा। नमकीन।

नुनखारा—वि० [हिं०] दे० 'नुनखरा'।

नुनना—क्रि० स० [सं० लवन, लून] लुनना। खेत काटना।

नुनाई(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ 'नून' से, नोना, नोनो (= सुंदर या लोना)] लावण्य । सुंदरता । सलोनापन ।

नुनी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] छोटी जाति का तूत जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर सिक्किम तक तथा बरमा और दक्षिण भारत के पहाड़ों पर भी होता है ।

नुनेरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ नून + एरा (प्रत्य॰)] १. नोनी मिट्टी आदि से नमक निकालनेवाला । नमक बनाने का रोजगार करनेवाला । २. लोनिया । नोनिया । (इस जाति के लोग पहले नमक निकाला करते थे) ।

नुमा—वि॰ [फा॰] १. दिखानेवाला । बतानेवाला । २. समान । तुल्य । (समासांत में प्रयुक्त) जैसे, खुशनुमा, बदनुमा, राहनुमा [को॰] ।

नुमाइंदगी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] प्रतिनिधित्व [को॰] ।

नुमाइंदा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ नुमाइन्दह्] प्रतिनिधि ।

नुमाइश—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. दिखावट । दिखावा । प्रदर्शन । दिखाने या प्रगट करने का भाव । तड़क भड़क । ठाट बाट । सज धज । ३. नाना प्रकार की वस्तुओं का कुतूहल और परिचय के लिये एक स्थान पर दिखाया जाना ।

यौ॰—नुमाइशगाह ।

४. वह मेला जिसमें अनेक स्थानों से इकट्ठी की हुई उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ दिखाई जाती हैं । प्रदर्शनी ।

नुमाइशगाह—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार की उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ इकट्ठी करके दिखाई जायँ ।

नुमाइशी—वि॰ [फ़ा॰] १. दिखाऊ । दिखौवा । जो दिखावट के लिये हो, किसी प्रयोजन का न हो । जो देखने मे भड़कीला और सुंदर हो, पर टिकाऊ या काम का न हो । २. जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो ।

नुमायाँ—वि॰ [फ़ा॰] व्यक्त । जाहिर । स्पष्ट [को॰] ।

नुसखा—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. लिखा हुआ कागज । २. कागज का वह चिट जिसपर हकीम या वैद्य रोगी के लिये औषध और सेवनविधि आदि लिखते हैं । दवा का पुरजा । ३. रोगी के लिये लिखी हुई औषधियाँ और उनकी सेवनविधि आदि ।

मुहा॰—नुसखा बाँधना = हकीम या वैद्य के लिखे अनुसार दवाएँ देना । पंसारी या अत्तार का काम करना । नुसखा लिखना = रोगी को देख औषध की व्यवस्था करना । दवा लिखना ।

नुहरना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ निहुरना] दे॰ 'निहुरना' ।

नूत¹—वि॰ [सं॰ नूतन नूत्न] १. नया । नवीन । नूतन । उ॰—(क) मदन नूत पल्लव धरे रंग भीजी ग्वालिनी ।—सूर (शब्द॰) । (ख) दूत विधि नूत कबहुँ न उर आनहीं ।—राम चं॰, पृ॰ ११४ । २. अनोखा । अनूठा । उ॰—मूले भौंरा कहत हैं फले अंबिया नाव । और तरुन में नूत यह तेरो धन्य सुभाव ।—(शब्द॰) ।

नूत²—वि॰ [सं॰] दे॰ 'नुत' [को॰] ।

नूतन—वि॰ [सं॰] १. नया । नवीन । २. हाल का । ताजा । ३. अनोखा । अपूर्व । विलक्षण ।

नूतनता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] नूतन का भाव । नवीनता । नयापन ।

नूतनत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नयापन ।

नूत्न—वि॰ [सं॰] दे॰ 'नूतन' ।

नूद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शहतूत ।

नूधा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का तंबाकू ।

नून¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. आल । २. आल की जाति की एक लता जो दक्षिण भारत तथा आसाम, बरमा आदि देशों में होती है ।

विशेष—इससे भी एक प्रकार का लाल रंग निकलता है । इसका व्यवहार भारतवर्ष में कम पर जावा आदि द्वीपों में बहुत होता है ।

नून†²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ लवण, हिं॰ लोन] नमक ।

मुहा॰—नून तेल = गृहस्थी का सामान ।

नून³—वि॰ [सं॰ न्यून, प्रा॰ णूण] दे॰ 'न्यून' । उ॰—(क) सुनो के परम पद ऊनो के अनंत मद नूनो के नदीस नद इंदिरा झुरै परी ।—इतिहास, पृ॰ २६७ । (ख) प्रेमहि सज्जन हिये महँ होन देत नहिं नून ।—रसनिधि (शब्द॰) ।

नूनताई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ न्यूनता, हिं॰ नूनता + ई (प्रत्य॰)] दे॰ 'न्यूनता' ।

नूनी†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ न्यून, हिं॰ नून] शिश्नेंद्रिय, विशेषत: बच्चों की ।

नूपुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना । पैंजनी । घुँघुरू । १. नगण के पहले भेद का नाम । ३. इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।

नूका—संज्ञा पुं॰ [?] १४ मात्राओं का एक छंद जो कज्जल के नाम से अधिक प्रसिद्ध है । यथा. झलमल परी दुग्ग मझार । दलबल दपट देखि अपार । खलबल करत नर अरु नार । छल बल कोट ओट निहार ।

नूर—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. प्रकाश । आभा । जैसे,—खुदा का नूर ।

मुहा॰—नूर का तड़का = बहुत सबेरा । प्रातःकाल । नूर बरसना = प्रभा का अधिकता से प्रकट होना ।

२. श्री । कांति । शोभा । ३.ईश्वर का नाम (सूफी) । ४. संगीत में बारह मुकामों में से एक ।

यौ॰—नूरचश्म = आँखों की रोशनी । लड़का । सुपुत्र । नूर-चश्मी = कन्या । सुपुत्री । नूरबाफ ।

नूरबाफ—संज्ञा पुं॰ [अ॰ नूर + फ़ा॰ बाफ़] जुलाहा । ताँती ।

नूरा¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] वह कुश्ती जो आपस में मिलकर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरे के विरोधी न हों (पहलवान) ।

नूरा²—वि॰ [अ॰ नूर] नूरवाला । तेजस्वी । उ॰—दधिकर्दम खेलत रघुबंसी बरनारी सब नूरे ।—रघुराज (शब्द॰) ।

नूरी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक चिड़िया ।

नूह—संज्ञा पुं॰ [अ॰] शामी या इबरानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतों के अनुसार एक पैगंबर का नाम ।

विशेष—इनके समय में बड़ा भारी तूफान आया था । इस तूफ़ान में सारी सृष्टि जलमग्न हो गई थी, केवल नूह का परिवार

और कुछ पशु एक किश्ती पर बैठकर बचे थे। कहते हैं उन्हीं से फिर नए सिरे से सृष्टि चली।

नृ संज्ञा पुं० [सं०] १. नर। मनुष्य। २. शतरंज या चौसर की गोट (को०)। ३. प्रधान। मुखिया। नेता (को०)।

नृकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य की खोपड़ी।

नृकलेवर—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य का मृत शरीर। मनुष्य का शव।

नृकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नृकेशरिन्] १. नृसिंह अवतार। २. मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी पुरुष। श्रेष्ठ पुरुष।

नृग संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राजा जिन्हें गिरगिट योनि में रहकर कृत पाप का फल भोगना पड़ा था।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार है—राजा नृग बड़े दानी थे। उन्होंने न जाने कितने गोदान आदि किए थे। एक बार उनकी गायों के झुंड में किसी एक ब्राह्मण की गाय आ मिली। राजा ने एक बार एक ब्राह्मण को सहस्र गो दान में दीं जिनमें वह ब्राह्मणवाली गाय भी थी। ब्राह्मण ने जब अपनी गाय को पहचाना तब दोनों ब्राह्मण राजा नृग के पास आए। राजा नृग ने जिस ब्राह्मण को गाएँ दान में दी थीं उसे गाय बदल लेने के लिये बहुत समझाया पर उसने एक न मानी। अंत में वह दूसरा ब्राह्मण उदास होकर चला गया। जब राजा का परलोकवास हुआ तब उनसे यम ने कहा कि आपका पुण्यफल बहुत है पर ब्राह्मण की गाय हरने का पाप भी आपको लगा है। चाहे पाप का फल पहले भोगिए, चाहे पुण्य का। राजा ने पाप का ही फल पहले भोगना चाहा अतः वे सहस्र वर्ष के लिये गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अंत में श्रीकृष्ण के हाथों से उनका उद्धार हुआ।

२. मनु के पुत्र का नाम। ३. यौधेय वंश का आदि पुरुष जो नृगा के गर्भ से उत्पन्न उशीनर का पुत्र था। ४. परमात्मा (को०)।

नृगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा उशीनर की पत्नी का नाम।

नृघ्न—वि० [सं०] नरघातक।

नृजल—संज्ञा पुं० [सं०] मानव मूत्र। मनुष्य का पेशाब (को०)।

नृतक(पु) संज्ञा पुं० [सं० नृत+क] दे० 'नर्तक'।

नृतना(पु)—क्रि० अ० [सं० नृत] दे० 'नृत्तना'।

नृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाच। नृत्य।

नृतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाचनेवाला। नर्तक। २. पृथिवी। धरती (को०)। ३. दीर्घ। बड़ा (को०)। ४. कीट। कृमि (को०)।

नृतू—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. नरहिंसक।

नृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य। अभिनय। हाव भाव से युक्त नाच। भावों का आश्रय लेकर किया जानेवाला नाच।

नृत्तना(पु)—क्रि० अ० [सं० नृत्त] नाचना। नृत्य करना।

नृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ पाँव हिलाने, उछलने कूदने आदि का व्यापार। नाच। नर्तन।

विशेष—इतिहास, पुराण, स्मृति इत्यादि सबमें नृत्य का उल्लेख मिलता है। संगीत के ग्रंथों में नृत्य के दो भेद किए गए हैं—तांडव और लास्य। जिसमें उग्र और उद्धत चेष्टा हो उसे तांडव कहते हैं और जो सुकुमार अंगों से किया जाय तथा जिसमें शृंगार आदि कोमल रसों का संचार हो उसे लास्य कहते हैं। 'संगीत नारायण' में लिखा है कि पुरुष के नृत्य को तांडव और स्त्री के नृत्य को लास्य कहते हैं। 'संगीतदामोदर' के मत से तांडव और लास्य भी दो दो प्रकार के होते हैं—पेलवि और बहुरूपक। अभिनयशून्य अंगविक्षेप को पेलवि कहते हैं। जिसमें छेद, भेद तथा अनेक प्रकार के भावों के अभिनय हों उसे बहुरूपक कहते हैं। लास्य नृत्य दो प्रकार का होता है—छुरित और यौवन। अनेक प्रकार के भाव दिखाते हुए नायक नायिका एक दूसरे का चुंबन आलिंगन आदि करते हुए जो नृत्य करते हैं वह छुरित कहलाता है। जो नाच नाचनेवाली अकेले आप ही नाचे वह यौवन है। इसी प्रकार संगीत के ग्रंथों में हाथ, पैर, मस्तक आदि की विविध गतियों के अनुसार अनेक भेद उपभेद किए गए हैं। धर्मशास्त्रों में नृत्य से जीविका करनेवाले निंद्य कहे गए हैं।

नृत्यकी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्तकी] दे० 'नर्तकी'।

नृत्यप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव (जिन्हें तांडव नृत्य प्रिय है)। २. कार्तिकेय का एक अनुचर।

नृत्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचघर।

नृत्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] रंगमंच। रंगशाला (को०)।

नृदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का चारों ओर का घेरा।

नृदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. ब्राह्मण।

नृधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० नृधर्मन्] कुबेर।

नृदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—केशव (शब्द०)।

नृपंजय—संज्ञा पुं० [सं० नृपञ्जय] एक पुरुवंशीय राजा।

नृप—संज्ञा पुं० [सं०] नरपति। राजा।

नृपकंद—संज्ञा पुं० [सं० नृपकन्द] लाल प्याज।

नृपगृह—संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रासाद। राजमहल। उ०—मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृपगृह कलस सो इंदु उदारा।—मानस, १। १९५।

नृपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजापन। राजा का गुण या भाव।

नृपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. क्षत्रिय (को०)। ३. कुबेर।

नृपद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमिलतास। २. खिरनी का पेड़।

नृपनय—संज्ञा पुं० [सं०] नृपनीति। राजनीति। उ०—करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।—मानस, २। २५७।

नृपनीति—संज्ञा संज्ञा [सं०] राजनीति। राजधर्म। उ०—मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति।—मानस, २। ३१।

नृपद्रोही—संज्ञा पुं० [सं० नृपद्रोहिन्] परशुराम। उ०—भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृपद्रोही।—मानस, १। २७९।

नृपपथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजपथ। प्रधान मार्ग। राजमार्ग (को०)।

नृपप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल प्याज। २. रामशर। सरकंडा। ३. एक प्रकार का बाँस। ४. जड़हन धान। ५. आम का पेड़। ६. राजसुग्गा। पहाड़ी या पर्वती तोता।

नृपप्रियफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन।

नृपप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी। २. पिंड खजूर।

नृपबदर—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जात का बेर (को०)।

नृपमांगल्य—संज्ञा पुं० [सं० नृपमाङ्गल्य] तरवट का पेड़। आहुल।

नृपमान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था।

नृपलक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] राजचिह्न। नृपचिह्न (को०)।

नृपलिंग—संज्ञा पुं० [सं० नृपलिङ्ग] दे० 'नृपलक्ष्म (को०)।

नृपवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाम्रवृक्ष। २. राजा का प्रिय व्यक्ति (को०)।

नृपवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

नृपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सोनालु का पेड़।

नृपशासन—संज्ञा सं० [सं०] राजाज्ञा। राजा का आदेश (को०)।

नृपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य रूपी पशु। मनुष्य जो पशु के समान हो। २. यज्ञ में बलि देने के लिये चुना हुआ मनुष्य (को०)।

नृपसभ—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं की सभा। वह सभा जिसमें बहुत से राजा सम्मिलित हों (को०)।

नृपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार। राजपुत्र। उ०—एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।—मानस, १।२२१।

नृपसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजसभा। राजा का दरबार (को०)।

नृपसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या। राजकुमारी। २. छछूँदर। छछूँदरी।

नृपांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का कर। उपज का वह निर्धारित छठा या आठवाँ अंश जो राजा को कर के रूप में मिलता था। २. राजपुत्र (को०)।

नृपात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार।

नृपात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या। २. कड़ुवा घीया। कड़ई तूँबी।

नृपाध्वर—संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ।

नृपान्न—संज्ञा पुं० [सं०] राजभोग धान।

नृपाभीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था।

नृपामय—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयरोग। राजरोग।

नृपाल—संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों का पालन करनेवाला) राजा। दे० 'नृपति'।

नृपावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त। एक प्रकार का रत्न।

नृपासन—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रासन। राजसिंहासन। तख्त।

नृपाह्व, नृपाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कहलानेवाला। राजा नामधारी। २. लाल प्याज।

नृपोचित[1]—वि० [सं०] जो राजाओं के योग्य हो।

नृपोचित[2]—संज्ञा पुं० १. राजमाष। काला बड़ा उरद। २. लोबिया।

नृमणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत में वर्णित प्लक्ष द्वीप की एक महानदी।

नृमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पिशाच या भूत जो बच्चों को लगकर तंग किया करता है।

नृमर—संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों को मारनेवाला) राक्षस।

नृमिथुन—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री पुरुष का जोड़ा।

नृमेध—संज्ञा पुं० [सं०] नरमेध या पुरुषमेध यज्ञ।

नृम्ण[1]—वि० [सं०] प्रसन्न करनेवाला (को०)।

नृम्ण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण। २. पौरुष। ३. साहस। ४. धन (को०)।

नृयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पंच यज्ञों में से एक जिसका करना गृहस्थ के लिये कर्तव्य है। अतिथिपूजा। अभ्यागत का सत्कार।

नृलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नरलोक। मनुष्यलोक। मर्त्यलोक।

नृवराह—संज्ञा पुं० [सं०] वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु।

नृवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] नरवाहन। कुबेर (को०)।

नृवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव (को०)।

नृशंस—वि० [सं०] १. लोगों को कष्ट या पीड़ा पहुँचानेवाला। क्रूर। निर्दय। २ अनिष्टकारी। अपकारी। अत्याचारी। जालिम।

नृशंसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दयता। क्रूरता।

नृशृंग—संज्ञा पुं० [सं० नृशृङ्ग] मनुष्य की सींग के समान अनहोनी बात या वस्तु। अलोकपदार्थ।

नृसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंहरूपी भगवान् विष्णु। विष्णु का चौथा अवतार।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि सत्ययुग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने घोर तप करके ब्रह्मा से वर माँग लिया कि न मैं देव, असुर, गंधर्व, नाग, राक्षस या मनुष्य के हाथ से मारा जा सकूँ, न अस्त्र, शस्त्र, वृक्ष, शैल तथा सूखे या गीले पदार्थ से मरूँ; और न स्वर्ग, मर्त्य आदि किसी लोक में या दिन, रात किसी काल में मेरी मृत्यु हो सके। इस प्रकार का वर पाकर वह दैत्य अत्यंत प्रबल हो उठा और स्वर्ग आदि छीनकर देवताओं को बहुत सताने लगा। देवता लोग विष्णु भगवान् की शरण में गए। विष्णु ने उन्हें अभयदान देकर अत्यंत भीषण नृसिंह मूर्ति धारण की जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा सिंह का था। जब यह नृसिंह मूर्ति हिरण्यकशिपु के पास पहुँची तब उसके पुत्र प्रह्लाद ने कहा कि यह मूर्ति दैवी है, इसके भीतर सारा चराचर जगत् दिखाई पड़ता है। जान पड़ता है, अब दैत्यकुल नष्ट होगा। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपने दैत्यों से नृसिंह को मारने के लिये कहा। पर जितने दैत्य मारने गए सब नष्ट हुए। अंत में हिरण्यकशिपु आप उठकर युद्ध करने लगा। हिरण्यकशिपु के

क्रुद्ध नेत्रों की ज्वाला से समुद्र का जल खलबला उठा, सारी पृथ्वी डाँवाडोल हुई और लोकों में हाहाकार मच गया। देवताओं का आर्तनाद सुन नृसिंह भगवान् अत्यंत भीषण गर्जन करके दैत्य पर झपटे और उन्होंने उसका पेट फाड़ डाला।

भागवत और विष्णु पुराण में सब कथा तो यही है पर प्रह्लाद की भक्ति का प्रसंग अधिक है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकशिपु वर पाकर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे जिनमें प्रह्लाद विष्णु भगवान् का बड़ा भारी भक्त था। शुक्राचार्य का पुत्र दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाता था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने परीक्षा के लिये सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिये कहा। प्रह्लाद, विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगा। इसपर दैत्यराज बहुत बिगड़ा। क्योंकि वह विष्णु का घोर द्वेषी था। पर बिगड़ने का कुछ भी फल नहीं हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। पिता के द्वारा अनेक ताड़न और कष्ट सहकर भी प्रह्लाद भक्ति पर दृढ़ रहे। धीरे धीरे बहुत से सहपाठी बालकों का दल प्रह्लाद का अनुयायी हो गया। इसपर दैत्यराज ने कुपित होकर प्रह्लाद से पूछा कि 'तू किसके बल पर इतना कूदता है? प्रह्लाद ने कहा 'भगवान् के, जिसके बल पर यह सारा संसार चल रहा है'। हिरण्यकशिपु ने पूछा 'तेरा भगवान् कहाँ है' प्रह्लाद ने कहा वह सदा सर्वत्र रहता है। दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा 'क्या इस खंभे में भी है? प्रह्लाद ने कहा 'अवश्य'। हिरण्यकशिपु खड्ग लेकर बार बार खंभे की ओर देखने लगा। इतने में खंभे के भीतर से प्रलय के समान शब्द हुआ और नृसिंह ने निकलकर दैत्यराज का वध किया।

२. श्रेष्ठ पुरुष। ३. एक रतिबंध।

नृसिंह चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वैशाख शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस तिथि को नृसिंह जी का अवतार हुआ था इससे इस दिन व्रत, पूजन, उत्सव आदि किए जाते हैं।

नृसिंह पुराण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक उपपुराण।

नृसिंहपुरी—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक तीर्थ जो मुलतान में कहा जाता है।

नृसिंहवन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहत्संहिता के अनुसार कूर्म विभाग में पश्चिम उत्तर स्थित एक देश।

नृसोम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह जो मनुष्यों में चंद्रमा के सदृश हो। नरश्रेष्ठ।

नृहरि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नृसिंह।

ने†—प्रत्य॰ [सं॰ प्रत्य॰ टा = एण] सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता का चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता की विभक्ति। जैसे,—राम ने रावण को मारा। उसने यह काम किया।

विशेष—हिंदी की भूतकालिक क्रियाएँ सं॰ कृदंतों से बनी हैं इसी से कर्मवाच्य रूप में वाक्यों का प्रयोग आरंभ हुआ। क्रमशः उन वाक्यों का ग्रहण कर्तृवाच्य में भी होने लगा।

नेइँ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नेव] दे॰ 'नींव'।

नेई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ नेव] दे॰ 'नींव'। उ॰—प्रथम उजारि लीन्हि कैकेई। दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई।—मानस, २।२९।

नेउछाउरि, नेउछावरि†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ न्योछावर] दे॰ 'न्योछावर' 'निछावर'।

नेउतना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ न्योतना] दे॰ 'नेवतना', 'न्योतना'।

नेउतहरी†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ न्योता + हरि (प्रत्य॰)] निमंत्रित जन।

नेउता†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ न्योता] दे॰ 'नेवता', 'न्योता'।

नेउला—संज्ञा पुं॰ [सं॰ नकुल, हिं॰ नेवला] दे॰ 'नेवला'।

नेक[1]—वि॰ [फ़ा॰] १. अच्छा। भला। उत्तम।

यौ॰—नेक अंजाम। नेक अंदेश = हितचिंतक। खैरख्वाह। नेकचलन। नेकजात = सत्कुलीन। उत्तम जाति का। नेकतर, नेकतरीन = उत्तमतर। श्रेष्ठतर। नेकदिल। नेकनाम। नेकनीयत। नेकबख्त।

२. शिष्ट। सज्जन। जैसे, नेक आदमी।

नेक[2]—वि॰ [हिं॰ न + एक] थोड़ा। तनिक। जरा सा। किंचित्। कुछ।

नेक[3](पु)—क्रि॰ वि॰ थोड़ा। जरा। तनिक। उ॰—नेक हँसौहीं बानि तजि लख्यो परत मुख नीठि।—बिहारी (शब्द॰)।

नेक अंजाम—वि॰ [फ़ा॰] अच्छे परिणामवाला (कार्य)।

नेकचलन—वि॰ [फ़ा॰ नेक + हिं॰ चलन] अच्छे चाल चलन का। सदाचारी।

नेकचलनी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नेक + हिं॰ चलन] सुचाल। सदाचार। भलमनसाहत।

नेकदिल—वि॰ [फ़ा॰] शुद्ध हृदय का। साफ दिलवाला।

नेकनाम—वि॰ [फ़ा॰] जिसका अच्छा नाम हो। जो अच्छा प्रसिद्ध हो। यशस्वी।

नेकनामी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] नामवरी। सुख्याति। कीर्ति। सुयश।

नेकनीयत—वि॰ [फ़ा॰ नेक + अ॰ नीयत] १. अच्छे संकल्प का। शुभ संकल्पवाला। १. जिसका आशय या उद्देश्य अच्छा हो। उत्तम विचार का। उदाराशय। भलाई का विचार रखनेवाला।

नेकनीयती—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नेकनीयत] १. नेकनीयत होने का भाव। अच्छा संकल्प। भला विचार। २. ईमानदारी।

नेकबख्ती—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ नेकबख्ती] १. सौभाग्य। खुशकिस्मती। २. उत्तम स्वभाव। सुशीलता।

नेकरो—संज्ञा स्त्री॰ [?] समुद्र की लहर का थपेड़ा जिससे जहाज किसी ओर को बढ़ता है। हाँक। (लश॰)।

नेकी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] १. भलाई। उत्तम व्यवहार। २. सज्जनता भलमनसाहत।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

यौ०—नेकी बदी = भलाई बुराई। पाप पुण्य। जैसे,—नेकी बदी साथ जाती है।

३. उपकार। हित। जैसे,—उसने तुम्हारे साथ बड़ी नेकी की है।

यौ०—नेकी बदी = उपकार अपकार। हित अहित।

मुहा०—नेकी और पूछ पूछ=किसी का उपकार करने में उससे पूछने की क्या आवश्यकता है!

नेकु(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नेक'।

नेग—संज्ञा पुं० [सं० नैयमिक, हिं० नेवग] १ विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों तथा कार्य या कृत्य में योग देनेवाले और लोगों को कुछ दिए जाने का नियम। देने, पाने का हक या दस्तूर। जैसे,—नेग में उनको बहुत कुछ मिला।

यौ०—नेगचार। नेगजोग।

मुहा० —नेग करना = शुभ मुहूर्त में आरंभ करना। साइत करना।

२. वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, नौकरों चाकरों तथा नाई बारी आदि काम करनेवालों को उनकी प्रसन्नता के लिये नियमानुसार दिया जाता है। बँधा हुआ पुरस्कार। इनाम। बखशिश। उ०—लाख टका अरु झूमका (देहु) सारी दाइ कौं नेग।—सूर०, १०। ४०।

क्रि० प्र०—चुकाना।—देना।

मुहा०—नेग लगना = (१) पुरस्कार देना आवश्यक होना। रीति के अनुसार कुछ देना जरूरी होना। जैसे,—यहाँ ५०) नेग लगेगा। (२) ठीके लगना। काम में आ जाना। सार्थक होना। सफल होना।

नेगचार—संज्ञा पुं० [हिं० नेग + सं० आचार] दे० 'नेगजोग'।

नेगचारु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० नेगचार] दे० 'नेगजोग'। उ० —नेगचारु कहुँ नागरि गहरु लगावहिं। निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिं।—तुलसी ग्रं०, पु० ५८।

नेगजोग—संज्ञा पुं० [हिं० नेग + जोग] १. विवाह आदि मंगल अवसरों पर संबंधियों तथा काम करनेवालों को उनके प्रसन्नतार्थ कुछ दिए जाने का दस्तूर। देने पाने की रीति। इनाम बाँटने की रस्म। २ वह धन जो मंगल अवसरों पर संबंधियों और नौकरों चाकरों आदि को बाँटा जाता है। इनाम। उ०—नेगी नेगजोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं।—मानस, १।३५३।

नेगटी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० नेग + टा (प्रत्य०)] नेग या रीति का पालन करनेवाला। दस्तूर पर चलनेवाला। उ०—अग प्रीति कर देखो नाहिं नेगटी कोऊ। छत्रपति रक लौ देखे प्रकृति विरुद्ध न बन्यो कोऊ। दिन जु गए बहुत जनमनि के ऐसे जाहु जिन कोऊ। सुनि हरिदास मीन भलो पायो बिहारी ऐसो पावो सब कोऊ।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

नेगी—संज्ञा पुं० [हिं० नेग] नेग पानेवाला। नेग पाने का हकदार। उ०—लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।—मानस, ६।१०८।

नेगीजोगी—संज्ञा पुं० [हिं० नेगजोग] नेग पानेवाले। विवाह आदि मंगल अवसरों पर इनाम पाने के अधिकारी, जैसे, नातेदार, नाई, बारी, नौकर, चाकर इत्यादि। खुशी का इनाम पाने का हकदार।

नेगु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० नेग] दे० 'नेग'। उ०—नेगु माँगि मुनि नायक लीन्हा। आसिरबाद बहुत बिधि दीन्हा।—मानस, १।३५३।

नेगेटिव¹—संज्ञा पुं० [अं०] फोटोग्राफी में मसाला लगा वह प्लेट या फिल्म जिसपर उस चीज की उलटे वर्णों की प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया जाता है। इसी पर मसालेदार कागज रखकर छापा जाता है जो यथार्थ चित्र रूप में दिखाई देता है।

नेगेटिव²—वि० १. ऋणात्मक। धनात्मक का उलटा। २. नकारात्मक। जिससे अस्वीकृति या निषेध सूचित हो।

नेचर—संज्ञा पुं० [अं०] १. प्रकृति। कुदरत। जैसे,—वे नेचर को माननेवाले हैं। २. स्वभाव। प्रकृति।

नेचरिया—संज्ञा पुं० [अं० नेचर + हिं० इया (प्रत्य०)] प्रकृति के अतिरिक्त ईश्वर आदि को न माननेवाला। लोकायतिक। नास्तिक। प्रकृतिवादी।

नेचवा†—संज्ञा पुं० [देश०] पलँग का पाहा।

नेचरोपैथी—संज्ञा स्त्री० [अं०] प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली [को०]।

नेछावर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर'।

नेजक—संज्ञा पुं० [सं०] रजक। धोबी।

नेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोना। साफ करना। २. धुलाई का स्थान। वस्त्रादि धोने की जगह [को०]।

नेजा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. भाला। बरछा। २. साँग। निशान।

मुहा०—नेजा हिलाना = बरछा या बल्लम फिराना।

३. बिलगोजा नाम की मूली फली या मेवा।

नेजाबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] भाला या राजाओं का निशान लेकर चलनेवाला।

नेजाल(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० नेजा + हिं० ल (स्वा० प्रत्य०)] भाला। बरछा।

नेटा†—संज्ञा पुं० [हिं० नाक + टा] नाक से निकलनेवाला कफ या बलगम। नाक से निकलनेवाला कफ या मल।

क्रि० प्र०—बहना।

मुहा०—नेटा बहना = गंदा और मैला कुचैला रहना। चेहरा साफ सुथरा न रहना।

नेटिव¹—वि० [अं०] देश का। देशी। मुल्क का। मुल्की। जैसे, नेटिव आदमी।

नेटिव²—संज्ञा पुं० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो और जो विदेशी या बाहर का न हो। आदिम निवासी।

नेठना(पु)—क्रि० अ० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] दे० 'नाठना'।

नेड़े†—क्रि० वि० [सं० निकट, प्रा० निग्रड]निकट। पास। नजदीक।

नेत¹—संज्ञा पुं० [सं० नियति (= ठहराव)] १. ठहराव। निर्धारण।

किसी बात का स्थिर होना। उ०—यहँ ग्यारहें भीम प्रस भरत कुंडली नेत।—रघुराज (शब्द०)। २. निश्चय। ठहराव। ठान। संकल्प। इरादा। उ०—(क) आजु न जान देहुँ री ग्वालिन बहुत दिनन को नेत।—सूर (शब्द०)। (ख) चार चोर चामीकर हेतू। किय मारन जयदेवहिं नेतू।—रघुराज (शब्द०)। ३ व्यवस्था। प्रबंध। आयोजन। बंदिश। ढंग। उ०—(क) हाय हाय माच्यो विश्वग्राम बीच भाखें सुर काल काढ़े प्रभु बाँधे प्रलय नेत है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) नेत करन की है गति तोरी। जामें जाय बात नहिं मोरी।—रघुराज (शब्द०)।

नेत²—संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मथानी की रस्सी। नेता। उ०—(क) को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै?—सूर (शब्द०)। (ख) नोई नेत की करी चमोटी घूँघट में डरवायो।—सूर (शब्द०)।

नेत³—संज्ञा पुं० [देश०] एक गहना। उ०—कहुँ कंकन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ नाटंक कहुँ नेत।—सूर (शब्द०)।

नेत⁴—संज्ञा स्त्री० दे० 'नेती'।

नेत⁵—संज्ञा स्त्री० [अ० नीयत] दे० 'नीयत'। उ०—जु पढ़े बिन बयो है रह्यो न परे तो पढ़ो चित में करि चेत सों जू। रस स्वादहिं चाय बिषाद बहाय रहो रमि के इहि नेत सों जू।—घनानंद, पृ० ४।

नेत⁶—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की रेशमी चादर। उ०—(क) पुनि गलमस बढ़ाव। नेत बिछाई खाट। बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख पाट।—जायसी (शब्द०)। (ख) पालंग पाँव कि आछे पाटा। नेत बिछाव चलै जो बाटा।—जायसी (शब्द०)।

नेतली—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र (= मथानी की डोरी)] एक प्रकार की पतली डोरी (लश०)।

नेता¹—संज्ञा पुं० [सं० नेतृ] [स्त्री० नेत्री] १. पीछे ले चलनेवाला। अगुआ। नायक। सरदार। २. प्रभु। स्वामी। मालिक। ३. काम को चलानेवाला। निर्वाहक। प्रवर्तक। ४. नीम का पेड़। ५. विष्णु। ६. नाटक का नायक (को०)। ७. दो की संख्या (को०)। ८. दंड देनेवाला (को०)।

नेता²—संज्ञा पुं० [सं० नेत्र] मथानी की रस्सी।

नेति—[सं०] एक संस्कृत वाक्य (न इति) जिसका अर्थ है 'इति नहीं' अर्थात् 'अंत नहीं है'। ब्रह्म या ईश्वर के संबंध में यह वाक्य उपनिषदों में अनंतता सूचित करने के लिये आया है। उ०—नेति नेति कहि वेद पुकारा।—तुलसी (शब्द०)।

नेती—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हिं० नेता] १. वह रस्सी जो मथानी में लपेटी जाती है और जिसके खींचने से मथानी फिरती है या दही मथा जाता है। २. एक क्रिया जो हठ योग में की जाती है।

नेतीधौती—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्र, हिं० नेता + सं० धौति] हठयोग की एक क्रिया जिसमें कपड़े की धज्जी पेट में डालकर आँतें साफ करते हैं। दे० 'धौति'।

नेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख। २. मथानी की रस्सी। ३. एक प्रकार का वस्त्र। ४. वृक्षमूल। पेड़ की जड़। ५. रथ। ६. जटा। ७. नाड़ी। ८. वस्तिशलाका। वस्ती की सलाई। कटोटा। ९. दो की संख्या का सूचक शब्द।

नेत्रकनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का तारा।

नेत्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रपटल। नेत्र का गोलक [को०]।

नेत्रगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का डेला। नेत्रमंडल।

नेत्रच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] पलक। पपोट [को०]।

नेत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू।

नेत्रजल—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू।

नेत्रपर्यंत—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रपर्यन्त] आँख का कोना।

नेत्रपाक—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग।

नेत्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रपिण्ड] १. नेत्रगोलक। आँख का डेला। २. बिड़ाल। बिल्ली।

नेत्रपुष्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा नाम की लता।

नेत्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रबन्ध] आँखमिचौली का खेल (महाभारत)।

नेत्रबाला—संज्ञा पुं० [सं० बाला] सुगंधबाला। कचमोद। बालक।

विशेष—दे० 'सुगंधबाला'।

नेत्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत या नृत्य में एक भाव जिसमें केवल आँखों की चेष्टा से सुख दुःख आदि का बोध कराया जाता है और कोई अंग नहीं हिलते डोलते। यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है।

नेत्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रमण्डल] आँख का घेरा। आँख का डेला।

नेत्रमल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कीचड़। गिद्द।

नेत्रमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रगोलक से मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिससे अंतःकरण में दृष्टिज्ञान होता है।

नेत्रमीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिक्ता लता (जिसके सेवन से आँखें बंद रहती हैं)।

नेत्रमुष—वि० [सं०] नेत्रों को आकर्षित करनेवाला। नेत्रों को वशीभूत कर लेनेवाला [को०]।

नेत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र (जिनके शरीर में गौतम के शाप से सहस्र योनिचिह्न हो गए थे जो पीछे नेत्र के आकार के हो गए)। २. चंद्रमा (जो अत्रि की आँख से उत्पन्न हुए थे)।

नेत्ररंजन—संज्ञा पुं० [सं० नेत्ररञ्जन] कज्जल। काजल।

नेत्ररोग—संज्ञा पुं० [सं०] आँख में होनेवाले रोग जो वैद्यक में ७६ माने गए हैं।

विशेष—इनमें से १० वायुजन्य, १३ कफजन्य, १६ रक्तजन्य, १० पित्तज, २५ सन्निपातज और २ बाहरी हैं। वायुजन्य रोगों में से हताधिमंथ, निमेषदृष्टिगत, गंभीरिका और वातहत-वर्त्मन् असाध्य हैं और काचरोग, शुष्काक्षिपाक, अधिमंथ,

अभिष्यंद और मारुत साध्य हैं। पित्तज रोगों में से ह्रस्वजात, जलस्राव, परिम्लायी और नीली असाध्य हैं और अम्लाध्युषित दृष्टि, शुक्तिका, विदग्ध दृष्टि, पोथकी और लगण साध्य हैं। श्लेष्मज रोगों में स्राव रोग और काच रोग साध्य होता है। पूयस्राव, नाकुलांध्य, अक्षिपाक और अलजी ये सब सर्वदोषज असाध्य हैं। सन्निपातज काचरोग और पक्ष्मकोपरोग साध्य हैं। ७६ नेत्ररोगों में से ६ संधिगत, २१ वर्त्मगत, ११ शुक्लभागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वगत, १२ दृष्टिगत और २ बाह्य रोग है।

नेत्ररोगहा—संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिकाली वृक्ष।

नेत्ररोम—संज्ञा पुं० [सं० नेत्ररोमन्] आँख की बिरनी। बरौनी।

नेत्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी पिचकारी।

नेत्रवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] पलक [को०]।

नेत्रवारि—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू [को०]।

नेत्रविष्—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कीचड़।

नेत्रविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दिव्य सर्प जिसकी आँख में विष होता है।

नेत्रसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० नेत्रसन्धि] आँख का कोना।

नेत्रस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रस्तम्भ] आँख की पलकों का स्थिर हो जाना, अर्थात् उठना और गिरना बंद हो जाना।

नेत्रस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] आँखों से पानी बहना।

नेत्रहा—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रहन्] दे० 'नेत्ररोगहा'।

नेत्रांजन—संज्ञा पुं० [सं० नेत्राञ्जन] आँखों में लगाने का सुरमा [को०]

नेत्रांत—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रान्त] आँख के कोने और कान के बीच का भाग। कनपटी।

नेत्रांबु—संज्ञा पुं० [सं० नेत्राम्बु] अश्रु। आँसू [को०]।

नेत्रांभ—संज्ञा पुं० [सं० नेत्राम्भस्] आँसू। अश्रु [को०]।

नेत्रातिथि—वि० [सं०] जो दृष्टिगोचर हो। दृष्टिपथ में आनेवाला [को०]।

नेत्राभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० नेत्राभिष्यन्द] आँख का एक रोग जो छूत से फैलता है। आँख आने का रोग।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें बड़ी पीड़ा होती है। यह वातज, पित्तज, रक्तज और कफज चार प्रकार का होता है। वातज अभिष्यंद में सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आँखों में किरकिरी पड़ी हो। इसमें ठंढा पानी बहता है और सिर दुखता है। पित्तज अभिष्यंद में आँखों में जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठंढी चीजें रखने से आराम मालूम होता है। कफज अभिष्यंद में आँखें भारी जान पड़ती हैं, सूजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजों से आराम मालूम होता है। रक्तज अभिष्यंद में आँखें बहुत लाल रहती हैं और सब लक्षण पित्तज अभिष्यंद के से होते हैं। अभिष्यंद रोग की चिकित्सा न होने से अधिमंथ रोग होने का डर रहता है।

नेत्रारि—संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। सेहुँड़।

नेत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की छोटी पिचकारी (सुश्रुत)। २. स्रुवा। चमस् [को०]।

नेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपने पीछे ले चलनेवाली। अग्रगामिनी। अगुआ। सरदार। २. राह बतानेवाली या सिखानेवाली। रास्ते पर चलानेवाली। शिक्षयित्री। ३. नाड़ी। ४. लक्ष्मी। ५. नदी।

नेत्रोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेत्रों का आनंद। देखने का मजा। २. वह वस्तु जिसे देखने से नेत्रों को आनंद मिले। दर्शनीय वस्तु।

नेत्रोपम—संज्ञा पुं० [दे०] आँख के आकार का फल-बादाम [को०]।

नेत्रोपम फल—संज्ञा पुं० [सं०] बादाम (भावप्रकाश)।

नेत्रौषध—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख की दवा। २. पुष्प कसीस।

नेत्रौषधि, नेत्रौषधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी।

नेत्र्य—वि० [सं०] १. आँखों के लिये हितकारक। २. नेत्र संबंधी [को०]

नेत्र्यगण—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत, त्रिफला, लोध, ग्वारपाठा, वनकुलथी आदि नेत्ररोगों के लिये उपकारी ओषधियों का समूह।

नेदिष्ठ[1]—वि० [सं०] १. निकट का। पास का। २. निपुण।

नेदिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० अंकोठ वृक्ष। ढेरे का पेड़।

नेदिष्ठी[1]—वि० [सं० नेदिष्ठिन्] समीप का। निकटस्थ।

नेदिष्ठी[2]—संज्ञा पुं० सहोदर भाई।

नेनुआ, नेनुवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक भाजी या तरकारी। घियातोरई। घिवरा।

नेदीयान्—वि० [सं०] दे० 'नेदिष्ठ'।

नेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल पुरोहित। २. जल [को०]।

नेपचून—संज्ञा पुं० [फरासीसी] सूर्य की परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह जिसका पता सन् १८४६ के पहले किसी को नहीं था।

विशेष—अबतक जितने ग्रह जाने गए हैं उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। बड़ाई में यह तीसरे दरजे के ग्रहों में है। इस ग्रह का व्यास ३७,००० मील है। सूर्य से इसकी दूरी २,८०,००,००,००० मील के लगभग है. इससे इसे सूर्य के चारो ओर घूमने में १६४ वर्ष लगते हैं, अर्थात् नेपचून का एक वर्ष हमारे १६४ वर्षों का होता है। जिस प्रकार पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा है उसी प्रकार नेपचून का भी एक उपग्रह है। उसका पता भी सन् १८४६ (अक्टूबर) में हो गया। वह नेपचून की परिक्रमा ५ दिन २१ घंटे ८ मिनट में करता है।

नेपथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेश। भूषण। सजावट। २. वेशस्थान। नृत्य, अभिनय, नाटक आदि में परदे के भीतर का वह स्थान जिसमें नट नटी नाना प्रकार के वेश सजते हैं। नाटक में परदे के पीछे का स्थान जिसमें नट लोग नाटक के पात्रों की नकल बनाते हैं। ३. वह स्थान जहाँ नृत्य अभिनय आदि हो। नाच रंग की जगह। रंगशाला। रंगभूमि।

नेपाल—संज्ञा पुं० [देश०] हिंदुस्तान के उत्तर में एक छोटा पहाड़ी देश जो हिमालय के तट पर है।

विशेष—नेपाल नाम के संबंध में कई प्रकार के अनुमान हैं। कुछ लोग कहते हैं कि तिब्बत तथा उसके आसपास की अनार्य जातियाँ अपनी भाषा में उस प्रदेश को जहाँ गोरखे बसते हैं 'पाल' कहती हैं। सिक्किम, भूटान आदि के लोग नेपाल के पूर्वी भाग को 'ने' कहते हैं। तिब्बती भाषा में पाल पशम या ऊन को भी कहते हैं। लेपचा, नेवार आदि जातियों की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ पहाड़ की गुफा लिया जाता है। तिब्बत और बरमा के बौद्ध 'ने' शब्द से पवित्र गुहा या देवता द्वारा रक्षित स्थान का भाव लेते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि नेवार जाति ही से नेपाल नाम पड़ा। पंडित लोग शुद्ध शब्द 'नयपाल' मानकर 'न्याय का पालन करनेवाला' अर्थ करते हैं। रामायण महाभारत आदि में इस देश का नाम नहीं मिलता। पुराणों में स्कंदपुराण के रेवाखंड, नागरखंड और सह्याद्रिखंड में तथा गरुड़ पुराण में इस देश का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता में भी नेपाल का नाम आया है। शक्तिसंगमतंत्र, बृहन्नीलतंत्र और वाराहीतंत्र आदि कई तंत्रों में नेपाल का वर्णन मिलता है। शक्तिसंगमतंत्र में जटेश्वर से लेकर योगेश्वर तक के देश को नेपाल कहा है और उसे बहुत सिद्धिदायक बतलाया है। जैन हरिवंश तथा हेमचंद्र की स्थविरावली में भी नेपाल का उल्लेख मिलता है। नैपाली बौद्धों के तंत्रों और पुराणों में नेपाल का माहात्म्य अलौकिक कथाओं के सहित पाया जाता है।

२. ताम्र। ताँबा (को०)।

नेपालक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा। ताम्र (को०)।

नेपालजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नेपालजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेपालजा' (को०)।

नेपालनिंब—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपालनिम्ब] नेपाल की नीम। एक प्रकार का चिरायता।

विशेष—वैद्यक में नेपाली नीम कुछ गरम, योगवाही, हलकी, कड़ुई तथा पित्त, कफ, सूजन, रुधिर रोग, प्यास और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—नैपाल। तृण निंब। ज्वरांतक। नीडिनिक्त। अर्धतिक्त। निद्रारि। सन्निपातहा।

नेपालमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद के समान एक कंद।

नेपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

नेपाली[1]—वि० [हिं० नेपाल] १. नेपाल का। नेपाल में रहने या होनेवाला। २. नेपाल संबंधी।

नेपाली[2]—संज्ञा पुं० नेपाल का रहनेवाला आदमी।

नेपाली[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनःशिला। मैनसिल। २. नेवारी का पौधा। ३. जंगली खजूर का वृक्ष या उसका फल (को०)।

नेपुर †—संज्ञा पुं० [सं० नूपुर] दे० 'नूपुर'।

नेफा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० नेफ़ह्] पायजामे या लहँगे के घेर में इजारबंद या नाड़ा पिरोने का स्थान।

नेफा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] पूर्वोत्तर भारत का सीमांत प्रदेश। मुख्यतः यह आसाम का उत्तरी पहाड़ी हिस्सा है और जिसका पश्चिमी भाग भूटान से सटा हुआ है।

विशेष—अँगरेजी में इस प्रदेश का नाम नार्थ ईस्टर्न फ्रंटियर एजेंसी है जिसके आद्य अक्षरों से यह संक्षिप्त नाम बना है।

नेब(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० नायब] सहायक। कार्य में सहायता देनेवाला। मंत्री। दीवान। उ०—(क) कहु बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिला देब। भरत बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ऋषि नृपसीस ठगौरी सी डारी। कुलगुरु, सचिव, निपुन नेबनि अवरेब न समुझि सुधारी। सिरस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी। पठए बिनहिं सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी।—तुलसी (शब्द०) (ग) आए नँदनंदन के नेब। गोकुल माँझ जोग बिस्तारयो भली तुम्हारी जेब।—सूर (शब्द०)।

नेबुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० नीबू] दे० 'नीबू'।

नेबुला[1]—संज्ञा पुं० [अं०] आकाश में धूएँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज। नीहारिका। वि० दे० 'नीहारिका'।

नेबुला†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० नीबू, नेबू + ला (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'नीबू'।

नेबू†—संज्ञा पुं० [हिं० नीबू] दे० 'नीबू'।

नेम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. अवधि। ३. खंड। टुकड़ा। ४. प्राकार। दीवार। ५. कैतव। छल। ६. अर्ध। आधा। ७. गर्त। गड्ढा। ८. अन्य हिस्सा। और हिस्सा। ९. सायंकाल। १०. मूल। जड़। ११. दीवाल की नींव (को०)। १२. अभिनय। नृत्य (को०)। १३. अन्न। भोजन। खाना। (को०)।

नेम[2]—संज्ञा पुं० [सं० नियम] १. नियम। कायदा। बंधेज। २. बँधी हुई बात। ऐसी बात जो टलती न हो, बराबर होती हो। ३. रीति। दस्तूर। ४. धर्म की दृष्टि से कुछ क्रियाओं का पालन। जैसे व्रत, उपवास आदि। ५. प्रतिज्ञा। दृढ़ निश्चय।

यौ०—नेमधरम = पूजा पाठ, व्रत, उपवास आदि।

विशेष—दे० 'नियम'।

नेमत—संज्ञा स्त्री० [अ० नेʼमत] १. ईश्वर की कृपा। ईश्वरीय देन। २. धन। संपत्ति। दौलत। ३. सुख। आनंद। ४. सुस्वादु भोजन। उत्तम भोजन (को०)।

यौ०—नेमतखाना = (१) भोज्य पदार्थों के रखने का स्थान। भोज्य-वस्तु-भंडार। (२) खाद्य पदार्थ रखने की लकड़ी या लोहे की जालीदार आलमारी।

नेमि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहिए का घेरा या चक्कर। चक्रपरिधि। प्रधि। नेमी। २. कुएँ के ऊपर चारों ओर बँधा हुआ ऊँचा स्थान या चबूतरा। कुएँ की जगत। ३. भूमिस्थित कूपपट्ट। कूएँ की जमवट। ४. प्रांत भाग। किनारे का हिस्सा। ५. कूएँ के किनारे लकड़ी का वह ढाँचा जिसपर रस्सी रखते और जिसमें प्रायः घिरनी लगी रहती है। ६. धरित्री। पृथिवी (को०)।

नेमि²—संज्ञा पुं० १. नेमिनाथ तीर्थंकर। २. तिनिश वृक्ष। तिनास। तिनसुना। ३. एक दैत्य (भागवत)। ४. वज्र।

नेमिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के वंश के एक राजा जो असीमकृष्ण के पुत्र थे। इन्होंने कौशांबी में अपनी राजधानी बनाई थी (भागवत)।

नेमी¹—संज्ञा पुं० [सं० नेमिन्] तिनिश वृक्ष।

नेमी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेमि'।

नेमी³—वि० [सं० नियम] १. नियम का पालन करनेवाला। २. धर्म की दृष्टि से पूजा पाठ, व्रत उपवास आदि नियमपूर्वक करनेवाला।

यौ०—नेमी धरमी।

नेय—वि० [सं०] १. ले जाने योग्य। २. निर्देश्य। शासन करने योग्य। २. पढ़ाने योग्य। शिक्षा देने योग्य। ३. व्यतीत करने योग्य। जैसे, समय (को०)।

नेयार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्यदोष जहाँ प्रयोजन या रूढ़ि के बिना लक्षणा का प्रयोग किया जाता है वहाँ यह दोष होता है।

नेर¹—क्रि० वि० [सं० निकट] दे० 'नियर'।

नेर²—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० णयर] दे० 'नगर'। उ०—नवरि पूजि फिरि घर चली रोर परो सब नेर।—रसरतन, पृ० १६३।

नेरता‡—संज्ञा स्त्री० [सं० नैर्ऋत] नैर्ऋत्य दिशा। पश्चिम दक्षिण का कोना।

नेरना†—क्रि० स० [हिं० निराना] निकोसना। बिलगाना (रेखा आदि)।

नेरवाती—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीले रंग की एक पहाड़ी भेड़ जो भोटान से लद्दाख तक पाई जाती है। इसके ऊन के कंबल आदि बनते हैं।

नेरा—क्रि० वि० [हिं० नियर] [स्त्री० नेरी] निकट। पास। समीप। उ०—पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।—मानस, ५।५३।

नेराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० निराना] दे० 'निराई'।

नेराना¹—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० निकट, प्रा० निअड़, हिं० नियर] दे० 'नियराना'।

नेराना‡²—क्रि० स० [हिं० निराना] दे० 'निराना'।

नेरी†—क्रि० वि० [देश०] जरा सा भी। थोड़ा भी। तनिक भी। उ०—कब छकी तित ही थिरकी, अब ऐसी अनेरी परयाति न नेरी।—घनानंद, पृ० ५।

नेरुवा†—संज्ञा पुं० [सं० नल, हिं० नाली, नारी] कोल्हू के नीचे बनी हुई तेल बहने की नाली।

नेरे—क्रि० वि० [हिं० नियर] निकट। पास। समीप। उ०—प्रथम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम बल क्यों बसौं जमनगर नेरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६४।

नेव(पु)¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० नायब] दे० 'नेब'।

नेव²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नींव'।

नेवग(पु)—संज्ञा पुं० [डिं०] नेग।

नेवगी—संज्ञा पुं० [डिं०] नेगी।

नेवछावर, नेवछावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर'।

नेवज—संज्ञा पुं० [सं० नैवेद्य] देवता को अर्पित करने की वस्तु। खाने पीने की चीज जो देवता को चढ़ाई जाय। भोग। उ०—(क) गावत मंगलचार महर घर। नेवज करि करि धरति स्याम डर।—सूर (शब्द०)। (ख) बहुत भाँति सब करे पकवाने। नेवज करि धरि साँझ बिहाने।—सूर (शब्द०)। (ग) महरि सबै नेवज लै सैंतति। स्याम छुवै कहुँ ताको डरपति।—सूर (शब्द०)।

नेवजा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] चिलगोजा।

नेवजी—संज्ञा स्त्री० [?] एक फूल का नाम।

नेवत†—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] दे० 'नेवता', 'न्योता'। उ०—कहेहु नीक मोरेहु मनभावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा।—मानस, १।६२।

नेवतना†—क्रि० स० [सं० निमन्त्रण] निमंत्रित करना। नेवता भजना। उ०—(क) सुर गंधर्व जे नेवति बुलाए। ते सब बधू सहित तहँ आए।—सूर (शब्द०)। (ख) नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग।—मानस, १।६०।

नेवतहरी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'न्योतहरी'।

नेवता—संज्ञा पुं० [हिं० न्योता] दे० 'न्योता'।

नेवना(पु)—क्रि० अ० [सं० नमन] नमन होना। झुकना।

नेवर¹—संज्ञा पुं० [सं० नूपुर] पैर का एक गहना। नूपुर।

नेवर²—संज्ञा स्त्री० १. घोड़े के पैर का वह घाव जो दूसरे पैर की ठोकर या रगड़ से हो जाता है।

क्रि० प्र०—लगना।

नेवर†³—वि० [सं० न + वर (= अच्छा)] बुरा। खराब।

नेवरना(पु)—क्रि० अ० [सं० निवारण] १. निवारण होना। दूर होना। उ०—सुनि जोगी के अमर जो करनी। नेवरी बिथा बिरह कै मरनी।—जायसी (शब्द०)। २. समाप्त होना। खतम होना। ३. निपटना।

नेवरा—संज्ञा पुं० [देश०] लाल कपड़े की झारी की खोली।

नेवल—संज्ञा पुं० [हिं० नेवर] दे० 'नेवर'।

नेवल—वि० [अं०] नौ संबंधी। नौका संबंधी।

नेवला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल, प्रा० नउल] चार पैरों से जमीन पर रेंगनेवाला हाथ सवा हाथ लंबा और ४-५ अंगुल चौड़ा मांसाहारी पिंडज जंतु।

विशेष—यह जंतु देखने में गिलहरी के आकार का पर उससे बड़ा और भूरे रंग का होता है। पूँछ इसकी बहुत लंबी और रोयों से फूली हुई होती है। मुँह इसका चूहे, गिलहरी आदि की तरह आगे की ओर नुकीला होता है। दाँत इसके बहुत पैने होते हैं। टीलों, पुराने घरों, नदी के कगारों आदि में बिल खोदकर प्रायः नर मादा साथ रहते हैं। वसंत ऋतु में मादा दो या तीन बच्चे देती है जो बहुत दिनों तक उसके पीछे

पीछे घूमा करते हैं। नेवला भारतवर्ष में ही पाया जाता है यद्यपि इसकी जाति के और दूसरे जंतु अफ्रिका, अमेरिका आदि के गरम स्थानों में मिलते हैं। नेवले प्रायः चूहों तथा और छोटे जंतुओं को खाकर रहते हैं। साँप को मारने में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। बड़े से बड़े सर्प को ये अपनी फुरती से खंड खंड कर डालते हैं। लोग इन्हें पालते भी हैं। पालने पर ये इतने परच जाते हैं कि पीछे पीछे दौड़ते हैं।

नेवा¹—संज्ञा पुं० [सं० नियम ?] १. रीति। दस्तूर। रवाज। २. कहावत। लोकोक्ति।

नेवा²—वि० [सं० न्याय या सं० निभ] नाईं। समान।

नेवा³—वि० [?] चुप। मौन।

नेवाज—वि० [फ़ा० निवाज] १. दे० 'निवाज'। उ०—राम गरीब नेवाज! भए हौं गरीब नेवाज गरीब नेवाजी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०। २. दे० 'नमाज'।

नेवाजना—क्रि० स० [फ़ा० निवाज] दे० 'निवाजना'। उ०—बालि बलसालि दलि पालि कपिराज को, बिभीषन नेवाजि सेतु सागर तरन भो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

नेवाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'निवाड़ा'।

नेवाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] दे० 'नेवारी'।

नेवानाⓊ†—क्रि० स० [सं० नमन] नमन करना। झुकाना।

नेवार¹—संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल में बसनेवाली वहाँ की एक आदिम जाति।

नेवार²—संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'निवाड़', 'निवार'।

नेवारनाⓊ†—क्रि० स० [सं० निवारण] निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली] जूही या चमेली की जाति का एक पौधा जिसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुंद या जूही की सी होती हैं। यह बरसात में अधिक फूलता है और इसके फूलों में बड़ी अच्छी भीनी महक होती है। इसे वनमल्लिका भी कहते हैं।

नेवी—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक राष्ट्र या देश के समस्त लड़ाकू जहाज, जलपोत या नौसेना। जलसेना।

नेशन—संज्ञा पुं० [अं०] लोकसमुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और सम भाषा या अनेक भाषा बोलनेवाला जनसमूह। राष्ट्र।

नेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० नेष्टृ] १. सोम यज्ञ में प्रधान ऋत्विकों में से एक ऋत्विक्। ये क्रम में १६ वें ऋत्विक् हैं। २. त्वष्टा देवता।

नेष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का ढला [को०]।

नेस—संज्ञा पुं० [फ़ा० नेश (=डंक) ?] जंगली जानवरों के लंबे नुकीले दाँत जिनसे वे काटते हैं।

नेसकुन—संज्ञा पुं० [देश०] बंदरों का खोड़ा खाना (कलंदर)।

नेसुकⓊ†¹—वि० [हिं० नेकु, नेक] तनक। थोड़ा सा।

नेसुकⓊ²—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। टुक। तनक।

नेसुहा†—संज्ञा पुं० [सं० नि+स्था; निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिसपर गन्ना या चारा काटते हैं।

नेस्त—वि० [तु० मि० सं० नास्ति] जो न हो।

यौ०—नेस्तनाबूद = नष्ट भ्रष्ट। जो जड़मूल से न रह गया हो।

नेस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. न होना। अनस्तित्व। २. आलस्य। ३. नाश। बर्बादी।

क्रि० प्र०—फैलाना।

नेह—संज्ञा पुं० [सं० स्नेह] १. स्नेह। प्रेम। प्रीति। प्यार। मुहब्बत। उ०—तुम चाहो न चाहो हमैं चित सों हमैं नेह को नातो निबाहनो है (शब्द०)। (ख) समझै कविता घन आनंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी।—घनानंद, पृ० ३। २. चिकना। तेल या घी।

नेहीⓊ—वि० [हिं० नेह+ई (प्रत्य०)] स्नेह करनेवाला। प्रेमी। उ०—नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानैं।—घनानंद, पृ० ३।

नैःश्रेयस—वि० [सं०] १. सुखकारी। कल्याणकारी। २. मोक्षदाता [को०]।

नैःस्व—संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। अकिंचनता [को०]।

नै¹—संज्ञा स्त्री० [सं० नय] दे० 'नय'।

नै²—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी, प्रा० णई] नदी। उ०—कितो न औगुन जग करत नै बय चढ़ती बार।—बिहारी (शब्द०)।

नै³—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बाँस की नली। २. हुक्के की निगाली। ३. बाँसुरी।

नैऋतⓊ—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नैऋर्त्य] दे० 'नैऋर्त्य'।

नैक¹—वि० [सं०] जो एक ही न हो। अनेक। बहुत।

नैक²—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

नैक³—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नेक', 'नेकु'।

नैकचर—वि० [सं०] जो अकेले न चलते हों, झुंड में चलते हों। जैसे, सूअर, भेड़िया, हिरन इत्यादि।

नैकटिक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैकटिकी] पार्श्ववर्ती। समीपवर्ती। निकट का।

नैकटिक²—संज्ञा पुं० भिक्षु। यति। ग्राम से कोस भर की दूरी पर रहनेवाले तपस्वी, यति या भिक्षु [को०]।

नैकट्य—संज्ञा पुं० [सं०] निकटता। निकट होने का भाव।

नैकधा—क्रि० वि० [सं०] अनेक प्रकार से। विभिन्न प्रकार से [को०]।

नैकभावाश्रय—वि० [सं०] जो एक भावाश्रित न हो। परिवर्तनशील [को०]।

नैकभेद—वि० [सं०] अनेक प्रकार का [को०]।

नैकशृंग—संज्ञा पुं० [सं० नैकशृङ्ग] विष्णु का एक नाम। (विष्णुसहस्रनाम)।

विशेष—भगवान् विष्णु के तीन पैर और चार सींग माने गए हैं।

नैकषेय—संज्ञा पुं० [सं०] (निकष के वंशज)। राक्षस।

नैकु—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नेक', 'नेकु'।

नैकृतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैकृतिकी] १. दूसरे की हानि करके निष्ठुर जीविका करनेवाला। निष्ठुर। २. कटुभाषी। ३. निम्न विचार का। क्षुद्र। कमीना [को०]।

नैगम—वि० [सं०] १. निगम संबंधी। जिसमें ब्रह्म आदि का प्रतिपादन हो, जैसे उपनिषद्।

नैगम²—संज्ञा पुं० १. उपनिषद् भाग। २. नय। नीति। ३. वणिक। व्यापारी। बनिया (को०)। ४. नागर। नागरिक (को०)। ५. साधन। उपाय (को०)। दे० 'नैगमकांड' (को०)।

नैगमकांड—संज्ञा पुं० [सं० नैगमकाण्ड] निरुक्त के तीन अध्याय जिनमें यास्क ने वैदिक शब्दों की निरुक्ति की है।

नैगमनय—संज्ञा पुं० [सं०] वह नय या तर्क जो द्रव्य और पर्याय दोनों को सामान्य-विशेष-युक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्य के बिना विशेष, और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता (जैन)।

नैगमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैगमिकी] १. वेद संबंधी। २. वेदों से निर्गत या निष्पन्न [को०]।

नैगमेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। २. सुश्रुत के अनुसार नैगमेष नामक बालग्रह।

नैगमेष—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में जो नौ बालग्रह कहे गए हैं उनमें नवाँ।

विशेष—इस बालग्रह द्वारा पीड़ित होने से बच्चों के मुँह से फेन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपर को टँगी रहती है और देह से चरबी की सी गंध आती है।

नैघंटुक—संज्ञा पुं० [सं० नैघण्टुक] वैदिक शब्दावली का संग्रह ग्रंथ जिसकी व्याख्या यास्क ने अपने निरुक्त में की है [को०]।

नैचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नैचह्] १. हुक्के की दोहरी नली जिसमें एक के सिरे पर चिलम रखी जाती है और दूसरे का छोर मुँह में रहकर धुआँ खींचते हैं।

यौ०—नैचाबंद।

२. एकदम दुबला पतला व्यक्ति (व्यंगोक्ति)।

नैचाबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नैचा बनानेवाला।

नैचाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नैचा बनाने का काम।

नैचिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय आदि चौपायों का माथा।

नैचिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छी गाय।

नैची—संज्ञा स्त्री० [हिं० नीचा] पुर, मोट या चरसा खींचते समय बैलों के चलने के लिये बनी हुई ढालू राह। रपट। पैड़ी।

नैचुल—वि० [सं०] निचुल संबंधी। हिज्जल वृक्ष संबंधी।

नैचुल—संज्ञा पुं० निचुल का फल या बीज।

नैज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैजी] अपना। निज का। निजी [को०]।

नैटी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दुद्धी नाम की घास या जड़ी। दुधिया घास।

नैतल—संज्ञा पुं० [सं०] अधोलोक। नीचे का लोक [को०]।

यौ०—नैतलसद्मा=यमराज।

नैतिक—वि० [सं०] नीति संबंधी। नीतियुक्त।

नैत्य¹—वि० [सं०] १. नित्य का। २. नित्य दिया जानेवाला।

नैत्य²—संज्ञा पुं० नित्य का कर्म।

नैत्यक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यकी] १. अनिवार्य। जिसका निवारण न हो। २. नित्य होनेवाला या नित्य किया जानेवाला [को०]।

नैत्यक²—संज्ञा पुं० नैवेद्य [को०]।

नैत्यिक–वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यिकी] दे० 'नैत्यिक' [को०]।

नैत्रिक—वि० [सं०] नेत्र संबंधी। नेत्र का [को०]।

नैदाघ¹—वि० [सं०] निदाघ संबंधी। ग्रीष्म का।

नैदाघ²—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म [को०]।

नैदाधिक—वि० [सं०] निदाघ संबंधी। ग्रीष्म का।

नैदाघीय—वि० [सं०] निदाघ संबंधी।

नैदानिक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] १. रोगों का निदान जाननेवाला। २. रोगों का निदान करनेवाला।

नैदेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] आदेशों को कार्यान्वित करनेवाला। सेवक। भृत्य। नौकर [को०]।

नैधन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. निधन। मरण। २. फलित ज्योतिष में लग्न से आठवाँ स्थान। मृत्यु स्थान।

नैधन²—वि० नश्वर। मरणशील [को०]।

नैधान—वि० [सं०] (सीमा) जो विभिन्न वस्तुओं के द्वारा निर्धारित हो [को०]।

नैधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक। वह सीमा जिसका चिह्न गड़ा हुआ कोयला या तुष (भूसी) हो। (स्मृति)।

नैधानी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी कोयले आदि से भरे घड़े गाड़कर बनाई जाय।

विशेष—बृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनाने का विधान बताया है। पराशर ने कहा है कि ग्राम के वृद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे बच्चों को सीमा के चिह्नों से परिचित कराते रहें।

नैधेय—वि० [सं०] निधि संबंधी। निधि का। निधि से संबद्ध [को०]।

नैन(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नयन] दे० 'नयन'।

नैन²—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन।

नैनसुख—संज्ञा पुं० [हिं० नैन+सुख] एक प्रकार का चिकना सूती कपड़ा।

नैनीं†—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] नैनू। मक्खन।

नैनू¹—संज्ञा संज्ञा पुं० [हिं० नैन (=आँख)] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें आँख की सी गोल उभरी हुई बूटियाँ बनी होती हैं। उभरे हुए बेलबूटे का सूती कपड़ा।

नैनू[२]—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन ।

नैपाल[१]—वि० [सं०] १. नेपाल संबंधी । २. नेपाल का । नेपाल में होनेवाला ।

नैपाल[२]—संज्ञा पुं० १. नैपाल निंब । २. एक प्रकार की ईख ।

नैपाल[३]—संज्ञा पुं० दे० 'नेपाल' ।

नैपालिक—संज्ञा पुं० [सं०] तांबा ।

नैपाली[१]—वि० [हिं० नैपाल] नैपाल देश का । २. नैपाल में रहने या होनेवाला । जैसे, नैपाली सिपाही, नैपाली टाँगन ।

नैपाली[२]—संज्ञा पुं० नैपाल का रहनेवाला आदमी ।

नैपाली[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नवमल्लिका । नेवारी । २. मनः-शिला । मैनसिल । ३. नील का पौधा । ४. शेफालिका । एक प्रकार की निर्गुंडी ।

नैपुण —संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैपुण्य' [को०] ।

नैपुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निपुणता । चतुराई । होशियारी । दक्षता । कमाल । २. वह वस्तु जिसके लिये निपुणता आवश्यक हो (को०) । ३. पूर्णता । संपूर्णता (को०) ।

नैभृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनय । नम्रता । शालीनता । २. गोपनीय । ३. निस्तब्धता । निःशब्दता । ४. स्थैर्य । स्थिरता [को०] ।

नैमंत्रणक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योनार । भोज । दावत [को०] ।

नैमय—संज्ञा पुं० [सं०] वणिक । व्यवसायी । रोजगारी ।

नैमित्त[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैमित्ती] निमित्त संबंधी । चिह्न आदि से संबंध ।

नैमित्त[२]—संज्ञा पुं० ज्योतिर्विद । निमित्त शास्त्र का ज्ञाता [को०] ।

नैमित्तिक—वि० [सं०] जो किसी निमित्त से किया जाय । जो निमित्त उपस्थित होने पर या किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिये हो । जैसे, नैमित्तिक कर्म, नैमित्तिक स्नान, नैमित्तिक दान ।

विशेष—यज्ञ आदि कर्म जो किसी निमित्त से किए जाते हैं वे नैमित्तिक कहलाते हैं । जैसे, पुत्रप्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ । दे० 'कर्म' । ग्रहण आदि उपस्थित होने पर जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान कहलाता है । इसी प्रकार दोष या पापशांति के लिये जो दान दिया जाता है वह नैमित्तिक दान कहलाता है ।

नैमित्तिकलय—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ पुराण के अनुसार एक प्रलय जिसमें सौ वर्ष तक अनावृष्टि होती है, बारहों सूर्य उदित होकर तीनों लोकों का शोषण करते हैं, फिर बड़े भीषण मेघ सौ बरस तक लगातार बरसकर सृष्टि का नाश करते हैं ।

नैमिश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैमिष' ।

नैमिष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नैमिषारण्य तीर्थ । उ०—तीरथ वर नैमिष विख्याता । अति पुनीत साधक सिधि दाता ।—मानस, १ । १४३ । २. यमुना के दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणों में है ।

नैमिष[२]—वि० [सं०] निमिष भर में समाप्त होनेवाला । क्षणजीवी । क्षणस्थायी [को०] ।

नैमिषारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वन जो आजकल हिंदुओं का एक तीर्थस्थान माना जाता है । यह आजकल नीमखार कहलाता है ।

विशेष—यह स्थान अवध के सीतापुर जिले में है । पुराणों में इसके संबंध में दो प्रकार की कथाएं मिलती हैं । वराह पुराण में लिखा है कि इस स्थान पर गौरमुख नामक मुनि ने निमिष मात्र में असुरों की बड़ी भारी सेना भस्म कर दी थी इसी से इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा । देवी भागवत में लिखा है कि ऋषि लोग जब कलिकाल के भय से बहुत घबराए तब ब्रह्मा ने उन्हें एक मनोमय चक्र देकर कहा कि तुम लोग इस चक्र के पीछे पीछे चलो, जहाँ इसकी नेमि (घेरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यंत पवित्र स्थान समझना । वहाँ रहने से तुम्हें कलि का कोई भय नहीं रहेगा । कहते हैं, सौति मुनि ने इस स्थान पर ऋषियों को एकत्र करके महाभारत की कथा कही थी । विष्णुपुराण में लिखा है, इस क्षेत्र में गोमती में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है ।

नैमिषि—संज्ञा पुं० [सं०] नैमिषारण्यवासी ।

नैमिषीय—वि० [सं०] निमिष संबंधी ।

नैमिषेय—वि० [सं०] १. नैमिष संबंधी । २. नैमिषारण्य का ।

नैमेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनिमय । वस्तुओं का बदला । २. वाणिज्य ।

नैयग्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] न्यग्रोध (बरगद) वृक्ष का फल [को०] ।

नैयत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नियतत्व । नियत होने का भाव । २. आत्मनिग्रह (को०) ।

नैयमिक[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैयमिकी] नियमानुसारी । नियमानुकूल । विधिसंमत [को०] ।

नैयमिक[२]—संज्ञा पुं० [सं० नैयमिकम्] नियमितता । नियमानु-सारिता [को०] ।

नैया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाव, नाय] नाव । किश्ती । उ०—नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार ।—गिरिधर (शब्द०) ।

नैयायिक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र का जाननेवाला । न्यायवेत्ता ।

नैरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नैरञ्जना] गया के पास बहनेवाली फल्गु नदी का प्राचीन नाम ।

विशेष—फल्गु के पश्चिम की ओर बहनेवाली शाखा को जो मोहानी नदी में जाकर मिल जाती है अब भी नीलांजन कहते हैं ।

नैरंतर्य—संज्ञा पुं० [सं० नैरन्तर्य] निरंतरत्व । निरंतर का भाव । अविच्छेद ।

नैर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० णयर, पु० हिं० नयर] शहर । देश । जनपद । उ०—मेरे कहे मेर कर, सिवाजी सों वैर, करि गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं ।—भूषण (शब्द०) ।

नैरपेक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] निरपेक्षता । उपेक्षा । उदासीनता [को०] ।

नैरयिक—वि० [सं०] नरक में रहनेवाला ।

नैरर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] निरर्थकता।

नैराश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निराशा का भाव। नाउम्मेदी। २. इच्छा का अभाव। आशा का अभाव (को०)।

नैरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] बाण छोड़ने का एक मंत्र।

नैरुक्त[1]—वि० [सं०] निरुक्त संबंधी।

नैरुक्त[2]—संज्ञा पुं० १. निरुक्त संबंधी ग्रंथ। २. निरुक्त का जानने या अध्ययन करनेवाला व्यक्ति।

नैरुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्तवेत्ता। निरुक्त का विद्वान्।

नैरुज्य—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविहीनता। स्वस्थता। निरोगता [को०]।

नैरूहिक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वस्ति का एक भेद।

नैर्ऋत[1]—वि० [सं०] निर्ऋति संबंधी।

नैर्ऋत[2]—संज्ञा पुं० १. निर्ऋति का पुत्र। राक्षस। २. पश्चिम-दक्षिण-कोण का स्वामी।

विशेष—ज्योतिष के मत से इस दिशा का स्वामी राहु है।

३. मूल नक्षत्र।

नैर्ऋती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण पश्चिम के मध्य की दिशा। दक्खिन और पश्चिम के बीच का कोन। २. दुर्गा का एक नाम (को०)।

नैर्ऋतेय—स्त्री० पुं० [सं०] निर्ऋत का वंशज।

नैर्ऋत्य—वि० [सं०] निर्ऋति देवता का (पशु आदि)।

नैर्गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्गुणता। अच्छी सिफत का न होना। २. कला कौशल आदि का अभाव। ३. सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का न होना। त्रिगुणशून्यता। (नैर्गुण्य होने से ब्रह्म की प्राप्ति कही गई है)।

नैर्घृण्य—संज्ञा पुं० [सं०] निर्घृण होने का भाव। कठोरता। दयाहीनता [को०]।

नैर्देशिक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर (को०)।

नैर्मल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्मलता। २. विषयों से विराग।

नैर्लज्ज, नैर्लज्य—संज्ञा पुं० [सं०] निर्लज्जता।

नैर्वाहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैर्वाहिकी] निर्वाह के योग्य। जो निर्वाह के लिये हो।

नैल्य—संज्ञा पुं० [सं०] नीलापन। गहरा नीला रंग [को०]।

नैवासिक—वि० [सं०] निवास योग्य [को०]।

नैवासी—संज्ञा पुं० [सं०] १. निवास साधु। वृक्ष पर रहनेवाला देवता।

नैविड्य—संज्ञा पुं० [सं०] निबिड़ता। घनत्व।

नैवेद्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निवेदन के लिये भोज्य द्रव्य। वह भोजन की सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय। देवबलि। भोग।

विशेष—घी, चीनी, श्वेतान्न, दधि, फल इत्यादि नैवेद्य द्रव्य कहे गए हैं। नैवेद्य देवता के दक्षिण भाग में रखना चाहिए आगे या पीछे नहीं। कुछ ग्रंथों का मत है कि पक्व नैवेद्य देवता के बाएँ और कच्चा दाहिने रखना चाहिए। देवता को भोग लगा हुआ प्रसाद खाने का बड़ा फल लिखा है पर शिव को चढ़ा हुआ निर्माल्य खाने का निषेध है। चढ़ाए जाने के उपरांत नैवेद्य द्रव्य निर्माल्य कहलाता है।

नैवेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थी के उपकरण। २. मिताक्षरा के अनुसार निवेशन के निमित्त प्रदत्त कन्या जो आभूषणादि से युक्त हो। ३. ब्राह्मण को दिया जानेवाला उपहार।

नैश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैशी] १. निशा संबंधी। रात्रि का। २. रात्रि में होनेवाला [को०]।

नैशनल—वि० [अं०] राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का। राष्ट्रीय। सार्वजनिक। जैसे, नैशनल कांग्रेस।

नैशनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो। राष्ट्रवादी।

नैशिक—वि० [सं०] निशा संबंधी। रात का।

नैश्चल्य—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चलता। स्थिरता। अचंचलता [को०]।

नैश्चिंत्य—संज्ञा पुं० [सं० नैश्चिन्त्य] निश्चिंत होने का भाव। चिंता का अभाव। निश्चिंतता [को०]।

नैश्चित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थिरता। २. (विवाह आदि) निश्चित या स्थिर संस्कार या उत्सव आदि [को०]।

नैषद्यिक—वि० [सं०] १. उपवेशनकारी। बैठनेवाला। २. निषद देश संबंधी। निषद का।

नैषध[1]—वि० [सं०] निषध देश संबंधी। निषध देश का।

नैषध[2]—संज्ञा पुं० १. निषध देश का निवासी व्यक्ति या वस्तु। २. निषध देश का राजा। ३. नल जो निषध देश के राजा थे। ४. श्रीहर्षरचित एक संस्कृत काव्य जिसमें २२ सर्गों में राजा नल की कथा का वर्णन है। ५. विष्णु पुराण के अनुसार पृथिवी का एक खंड जिसे जंबू द्वीप के अधीश्वर अग्नीध्र ने अपने पुत्र हरिवर्ष को दिया था (को०)।

नैषधीय—वि० नल संबंधी। जैसे नैषधीय चरित (को०)।

नैषध्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा नल का पुत्र या वंशज।

नैषाद—संज्ञा पुं० [सं०] निषाद का पुत्र [को०]।

नैषादि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैषाद' (को०)।

नैषेचनिक—संज्ञा पुं० [सं०] राज्याभिषेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार। (कौटि०)।

नैष्कर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अकर्मण्यता। निष्क्रियता। २. आलस्य। ३. कर्म तथा कर्मफल का परित्याग। ४. आत्मज्ञान।

यौ०—नैष्कर्म्यसिद्धि = समस्त कर्मों से निवृत्ति।

नैष्किंचन्य—संज्ञा पुं० [सं० नैष्किञ्चन्य] निष्किंचनता। दरिद्रता।

नैष्किक[1]—वि० [सं०] १. निष्क संबंधी। २. निष्क द्वारा मोल लिया हुआ।

नैष्किक[2]—संज्ञा पुं० टंकशाला का अध्यक्ष। टकसाल घर का अफसर।

नैष्कृतिक—वि० [सं०] परवृत्ति छेदन में तत्पर। दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन निकालनेवाला। स्वार्थी।

नैष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नवजात बालक को प्रथम बार घर से बाहर ले जाने का संस्कार [को०]।

नैष्ठिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैष्ठिकी] १. निष्ठावान्। निष्ठायुक्त। २. मरण काल में कर्तव्य (कर्म)।

नैष्ठिक[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मचारियों का एक भेद। वह ब्रह्मचारी जो उपनयन काल से लेकर मरण काल तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के आश्रम पर ही रहे।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यावज्जीवन गुरु के पास रहना चाहिए। गुरु यदि न हों तो उनके पुत्र के पास, और आचार्यपुत्र भी न हों तो आचार्यपत्नी की सेवा में, आचार्यपत्नी के अभाव में अग्निहोत्र की अग्नि के पास उसे जीवन बिताना चाहिए। इस प्रकार का जितेंद्रिय ब्रह्मचारी अंत में मुक्ति पाता है।

नैष्ठुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] निठुराई। क्रूरता।

नैष्ठ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ निष्ठा [को०]।

नैसर्गिक—वि० [सं०] स्वाभाविक। प्राकृतिक। स्वभावसिद्ध। कुदरती।

नैसर्गिकी—वि० स्त्री० [सं०] प्राकृतिक।

नैसर्गिकी दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक दशा।

नैसा⑨—वि० [सं० अनिष्ट] अनैसा। बुरा। खराब। उ०—(क) सूरदास प्रभु के गुण ऐसे। भक्तन भल, दुष्टन को नैसे।—सूर (शब्द०)। (ख) कहु राधा हरि कैसे हैं। तेरे मन भाये की नाहीं, की सुंदर की नैसे हैं।—सूर (शब्द०)।

नैसुक⑨—वि० [हिं०] दे० 'नेसुक'।

नैस्त्रिंशिक—संज्ञा पुं० [सं०] निस्त्रिंशवाला। खड्गधर। तलवार धारण करनेवाला [को०]।

नैहर—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, णाइ (= पिता) + हिं० घर, अप० णाइहर] स्त्री के पिता का घर। माँ बाप का घर। मायका। पीहर। उ०—नैहर जनम भरब बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई।—मानस, २।२१।

नैहार—वि० [सं०] तुषाराच्छन्न। कुहेलिकामय [को०]।

नो—क्रि० वि० [सं०] नहीं।

नोखना—क्रि० स० [सं० नद्ध] दे० 'नोवना'।

नोआ[1]—संज्ञा पुं० [हिं० नोवना] [स्त्री० अल्पा० नोई] दूध दुहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्सी। बंधी।

नोइनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोवना] दे० 'नोई'।

नोई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोवना] दूध दुहते समय गाय के पैर बाँधने की रस्सी। बंधी।

नोक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] [वि० नुकीला] १. उस ओर का सिरा जिस ओर कोई वस्तु बराबर पतली पड़ती गई हो। सूक्ष्म अग्रभाग। शंकु के आकार की वस्तु का महीन या पतला छोर। अनी। जैसे, सूई की नोक, काँटे की नोक, भाले की नोक, खूँटे की नोक, जूते की नोक।

यौ०—नोक झोंक।

मुहा०—नोक की लेना = बढ़ बढ़कर बातें करना। गर्व दिखाना। नोक दुम भागना = जी छोड़कर भागना। बेतहाशा भागना। नोक रह जाना = मान की बात रह जाना। टेक या प्रतिज्ञा का निर्वाह हो जाना। बात रह जाना। मर्यादा रह जाना। प्रतिष्ठा बनी रह जाना। नोक बनाना = बनाव सिंगार करना। रूप सँवारना।

२. किसी वस्तु के निकले हुए भाग का पतला सिरा। किसी ओर को बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग। जैसे,—जमीन की एक नोक पानी के भीतर तक गई है। ३. कोण बनानेवाली दो रेखाओं का संगम स्थान या बिंदु। निकला हुआ कोना। जैसे, दीवार की नोक।

नोक झोंक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नोक + हिं० झोंक] १. बनाव सिंगार। ठाटबाट। सजावट। जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक झोंक से थिएटर देखने निकले थे। २. तपाक। तेज। आतंक। दर्प। जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक झोंक से बातें करते थे। उ०—शरद घटान की छटान सी सुगंधधार धारयो है जटान काम कीन्हों नोक झोंक के।—रघुराज (शब्द०)। ३. चुभनेवाली बात। व्यंग्य। ताना। आवाजा। जैसे,—उनकी नोंक झोंक अब नहीं सुनी जाती। ४. छेड़छाड़। परस्पर की चोट। जैसे,—आजकल उन दोनों में खूब नोक झोंक चल रही है।

क्रि० प्र०—चलना।

नोकना—क्रि० स० [?] ललचना। उ०—चिते रही राधा हरि को मुख। उत ही श्याम एकटक प्यारी छबि अंग अंग अवलोकत। रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत। सखिन कह्यो वृषभानु सुता सों देखे कुँवर कन्हाई। सूर श्याम एई हैं ब्रज में जिनकी होति बड़ाई।—सूर (शब्द०)।

नोकदार—वि० [फ़ा०] १. जिसमें नोक हो। २. चुभनेवाला। पैना। ३. चित्त में चुभनेवाला। दिल में असर करनेवाला। ४. शानदार। तड़क भड़क का। ठसक का।

नोकपलक—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोक + पलक] आँख, नाक आदि की गढ़न। चेहरे की बनावट।

मुहा०—नोकपलक से ठीक = चारों ओर से सुडौल। नख से सिख तक सुंदर।

नोकपान—संज्ञा पुं० [फ़ा० नोक + हिं० पान] जूते की नोक और एड़ी पर लगा हुआ कीमुख्ती चमड़ा जो पान के आकार का होता है। जूते की काटछाँट, सुंदरता और मजबूती। (जूतेवाले)। जैसे,—जरा इस जूते का नोकपान देखिए।

नोकाझोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोकझोंक] १. छेड़छाड़। परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण। ताना। आवाजा। २. परस्पर की चोट। विवाद। झगड़ा।

क्रि० प्र०—चलना।

नोकीला[1]—वि० [हिं० नोक + ईला (प्रत्य०)] दे० 'नुकीला'।

नोखा[1]—वि० [हिं० अनोखा] [स्त्री० अनोखी] अद्भुत। विचित्र।

विलक्षण । अनूठा । अपूर्व । जैसे,—नोखे की नाउन बाँस की नहरन (स्त्रियाँ) ।

नोच—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोचना] १. नोचने की क्रिया या भाव । २. छीनने या लेने की क्रिया । कई ओर से कई आदमियों का झपाटे के साथ छीनना या लेना । लूट ।

यौ०—नोचखसोट । नोचाखसोटी । नोचानाची । नोचानोची ।

३.—कई ओर से कई आदमियों का माँगना । चारों ओर की माँग । बहुत से लोगों का तकाजा । जैसे,—चारों ओर से नोच है किसका किसका रुपया दें ।

क्रि० प्र०—मचना ।—होना ।

नोचखसोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोचना+खसोटना] झपाटे के साथ लेना या छीनना । जबरदस्ती खींच खाँच करके लेना । छीनाझपटी । लूट ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—होना ।

नोचना—क्रि० स० [सं० लुञ्चन] १. किसी जमी या लगी हुई वस्तु को झटके से खींचकर अलग करना । उखाड़ना । जैसे, बाल नोचना, डाढ़ी नोचना, पत्ती नोचना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी वस्तु में दाँत, नख या पंजा धँसाकर उसका कुछ अंश खींच लेना । नख आदि से विदीर्ण करना । जैसे,—चीता शिकारी का मांस नोचता हुआ निकल गया ।

संयो० क्रि०—लेना ।

यौ०—नोचना खसोटना = खींच खाँचकर लेना । झपाटे से छीनना । लूटना ।

३. शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाना कि नाखून धँस जायँ । खरोंचना । खरोंच डालना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

४. बार बार तंग करके लेना । दुःखी और हैरान करके लेना । पीछे पड़कर किसी की इच्छा के विरुद्ध उससे लेना । जैसे,—तीर्थों में पंडे और कचहरियों में अमले नोच डालते हैं ।

संयो० क्रि०—डालना ।

५. बार बार तंग करके माँगना । ऐसा तकाजा करना कि नाक में दम हो जाय । जैसे,—उसे चारों ओर से महाजन नोच रहे हैं किसका किसका देगा ।

नोचानाची—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोचना] दे० 'नोचखसोट' ।

नोचू—संज्ञा पुं० [हिं० नोचना] १. नोचनेवाला । २. छीना झपटी करके लेनेवाला । ३. तंग करके लेनेवाला । घेरकर या पीछे पड़कर जहाँतक मिल सके लेनेवाला । ४. बार बार माँगकर तंग करनेवाला । तकाजों के मारे नाकों दम करनेवाला ।

नोट—संज्ञा पुं० [अं०] १. टाँकने या लिखने का काम । ध्यान रहने के लिये लिख लेने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. लिखा हुआ परचा । पत्र । चिट्ठी ।

यौ०—नोट पेपर ।

३. टिप्पणी । आशय या अर्थ प्रकट करनेवाला लेख । ४. सरकार की ओर से जारी किया हुआ वह कागज जिसपर कुछ रुपयों की संख्या रहती है और यह लिखा रहता है कि सरकार से उतना रुपया मिल जायगा । सरकारी हुंडी ।

विशेष—हिंदुस्तान में नोट दो प्रकार का होता है एक करेंसी, दूसरा प्रामिसरी । करेंसी नोट बराबर सिक्कों के स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहें तब मिल सकता है । प्रामिसरी नोट पर केवल सूद मिलता रहता है । सरकार माँगने पर उसका रुपया देने के लिये बाध्य नहीं है । प्रामिसरी नोट का भाव घटता बढ़ता है ।

नोटपेपर—संज्ञा पुं० [अं०] चिट्ठी लिखने का कागज ।

नोटबुक—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह कापी या बही जिसपर कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय ।

नोटिस—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. विज्ञप्ति । सूचना । २. विज्ञापन । इश्तिहार ।

विशेष—इस शब्द को कुछ लोग पुल्लिंग भी बोलते हैं ।

नोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा । चलाने या हाँकने का काम । २. बैलों को हाँकने की छड़ी या कोड़ा । प्रतोद । पैना । औगी । उ०—मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं ।—केशव (शब्द०) । ३. खंडन ।

नोदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेरणा [को०] ।

नोदयिता—वि० [सं० नोदयितृ] प्रेरक । प्रेरणा देनेवाला । आगे बढ़ानेवाला [को०] ।

नोधा—वि० [सं०] नव प्रकार या ढंग का । नवधा [को०] ।

नोन—संज्ञा पुं० [सं० लवण, हिं० लोन] नमक ।

नोनचा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० नोन + फ़ा० अचार] १. नमकीन अचार । २. नमक में डाली हुई आम की फाँकों की खटाई ।

नोनचा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० नोन + छार] वह भूमि जहाँ लोनी बहुत हो । लोनी जमीन ।

नोनछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन + छार] लोनी मिट्टी ।

नोनहरा—संज्ञा पुं० [?] पैसा । (गंधर्वों की बोली) ।

नोनहरामीⓊ—वि० [हिं० नोन+हरामी] दे० 'नमकहरामी' ।

नोना[1]—संज्ञा पुं० [सं० लवण, हिं० नोन] [स्त्री० नोनी] १. नमक का अंश जो पुरानी दीवारों तथा सीड़ की जमीन में लगा मिलता है । २. लोनी मिट्टी । † ३. शरीफा । सीताफल । आत । ४. एक कीड़ा जो नाव या जहाज के पेदे में लगकर उसे कमजोर कर देता है । उधई कीड़ा ।

नोना†[2]—वि० [वि० स्त्री० नोनी] १. नमक मिला । खारा । जैसे, नोना पानी, नोनी मिट्टी । २. लावण्यमय । सलोना । सुंदर । ३. अच्छा । बढ़िया ।

नोनाⓊ—क्रि० स० [हिं० नोअना, नोचना] दे० 'नोचना' ।

नोना चमारी—संज्ञा स्त्री० एक प्रसिद्ध जादूगरनी जिसकी दोहाई

प्रवर्तक मंत्रों में दी जाती है। माना जाता है कि यह कामरूप देश की थी। लोना चमाइन।

नोनिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० नोना] लोनी मिट्टी से नमक निकालनेवाली एक जाति।

नोनिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोन] एक भाजी। लोनिया। अमलोनी।

नोनी†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० लवण] १. लोनी मिट्टी। २. लोनिया। अमलोनी का पौधा।

नोनी²—वि० स्त्री० [हिं० नोना] १. सुंदर। रूपवती। २. अच्छी। बढ़िया।

नोनो(पु)†—वि० [हिं० लोन, लोना] [वि० स्त्री० नोनी] १. सलोना। सुंदर। २. अच्छा। भला। बढ़िया।

नोर(पु)¹—वि० [सं० नवल हिं० नोल] नवीन। नया। उ०—सित सरोज फूले उतै इत इंदीवर नोर। ससि मंडल वहि ओर जनु विषमंडल यहि ओर।—गुमान (शब्द०)।

नोर²—संज्ञा पुं० [हिं० लोर] अश्रु। आँसू। उ०—(क) नहि नहि करए नयन ढर नोर। काँच कमल भमरा झिक झोर।—विद्यापति, पृ० २०४। (ख) नहि नहि करय नयन ढर नोर। सूति रहलि धनि सेजक ओर।—विद्यापति, पृ० २०४।

नोल(पु)¹—वि० [सं० नवल] दे० 'नवल'।

नोल²—संज्ञा स्त्री० [देश०] चिड़िया की चोंच।

नोवना†—क्रि० स० [सं० बद्ध, हिं० नद्धना, नहना] दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधना। उ०—बछरा छोरि खरिक को दीनो आप कान्ह तन सुध बिसराई। नोवत वृषभ निकसि गैया गई हँसत सखा कहा दुहत कन्हाई।—सूर (शब्द०)।

नोहर†—वि० [सं० नोपलभ्य, प्रा० नोलहइ, या मनोहर] १. अलभ्य। दुर्लभ। जल्दी न मिलनेवाला। २. अनोखा। अद्भुत। उ०—अति सुकुमार सरीर मनोहर नोहर नैन बिसाला।—रघुराज (शब्द०)।

नौंधरई, नौंधराई, नौंधरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम + धरना] दे० 'नामधराई'।

नौ¹—वि० [सं० नव] जो गिनती में आठ और एक हो। एक कम दस।

नौ²—संज्ञा पुं० एक कम दस की संख्या। नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—९।

मुहा०—नौ दो ग्यारह होना = देखते देखते भाग जाना। चलता होना। चल देना। भाग जाना। नौ तेरह बाइस बताना = हीला हवाली करना। टाल मटूल करना। इधर उधर की बातें करके टाल देना। जैसे,—जब मैं रुपया माँगने जाता हूँ तब वे नौ तेरह बाइस बताते हैं।

नौ³—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] १. पोत। जहाज। नौका। २. एक राशि या नक्षत्र का नाम (को०)। ३. काल। समय (को०)।

नौ⁴—वि० [सं० नव, तुल० फा० नौ] नया। नवीन। हाल का। ताजा।

नौकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ + कौड़ी] एक प्रकार का जुआ जो तीन आदमी तीन तीन कौड़ियाँ लेकर खेलते हैं।

नौकर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० नौकरानी] १. सेवा करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त मनुष्य। टहल या काम धंधा करने के लिये तनखाह पर रखा हुआ आदमी। भृत्य। चाकर। टहलुवा। खिदमतगार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

यौ०—नौकर चाकर।

२. कोई काम करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया हुआ मनुष्य। वैतनिक कर्मचारी। जैसे,—तहसीलदार एक सरकारी नौकर है।

मुहा०—(किसी को) नौकर रखना = कार्य पर वेतन देकर नियुक्त करना। काम पर लगाना।

नौकरशाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नौकर + शाही] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र उच्च राजकर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी अफसरों के हाथों में रहे। वि० दे० 'ब्यूरोक्रेसी'।

नौकराना—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौकर + आना (प्रत्य०)] १. वेतन के अतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। २. वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। दस्तूरी।

नौकरानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नौकर + आनी (प्रत्य०)] दासी। घर का काम धंधा करनेवाली स्त्री।

नौकरी—संज्ञा स्त्री [फ़ा० नौकर + ई (प्रत्य०)] १. नौकर का काम। सेवा। टहल। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—नौकरी देना या बजाना = नौकरी के काम में लगना। सेवा में तत्पर होना। नौकरी से लगना = नौकर होना। काम पाना। नौकरी पाना।

२. कोई काम जिसके लिये तनखाह मिलती हो। जैसे, सरकारी नौकरी।

नौकरीपेशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौकरीपेशह] वह जिसका काम नौकरी करना हो। वह जिसकी जीविका नौकरी से चलती हो।

नौकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जहाज की पतवार।

नौकर्णधार—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का कर्णधार। जहाज चलानेवाला मल्लाह। पोतचालक (को०)।

नौकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका।

नौकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नौकर्मन्] मल्लाह का पेशा या काम।

नौका—संज्ञा स्त्री [सं०] नाव। जहाज।

नौकादंड—संज्ञा पुं० [सं० नौकादण्ड] पतवार। डाँड़ा (को०)।

नौक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] नावों का पुल।

नौगरे नौगरही, नौगही(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नव + ग्रह या फ़ा० गिरह] दे० 'नौग्रही'।

नौगिरही—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौग्रही] दे० 'नौग्रही'।

नौग्रही—संज्ञा स्त्री० [सं० नव+ग्रह] हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें नौ कँगूरेदार दाने पाट में गुँथे रहते हैं।

नौचर¹—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह।

नौचर²—वि० जहाज पर जानेवाला।

नौचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौचह्] [स्त्री० नौची] नई युवावस्था का व्यक्ति। नवयुवक [को०]।

नौची—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नौची (= नववधू), या फ़ा० नौचह् का० स्त्री०] १. वेश्या की पाली हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो। २. नवयुवती।

नौछावर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर'।

नौज—अव्य० [सं० नवघ, प्रा० नवज्ज; या अ० नऊज] १. ऐसा न हो। ईश्वर न करे। (अनिच्छासूचक)। उ०—नगर कोट घर बाहर सुना। नौज होय घर पुरुष बिहूना।—जायसी (शब्द०)। २. न हो। न सही। (बेपरवाही) (स्त्रि०)।

नौजवान—वि० [फ़ा०] नवयुवक। नया पठ्ठा। उठती जवानी का।

नौजवानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उठती युवावस्था। नई जवानी।

नौजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० लौज़ह्] १. बादाम। २. चिलगोजा। उ०—नौजा नरियर नेतरबाला। नीम निसोत निबिसी आला।—सूदन (शब्द०)।

नौजी—संज्ञा स्त्री० [?] लीची।

नौजीवक, नौजीविक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह। खलासी।

नौतन(पु)—वि० [सं० नूतन] दे० 'नूतन'।

नौतम(पु)¹—वि० [सं० नवतम] १. अत्यंत नवीन। बिलकुल नया। २. ताजा।

नौतम²—संज्ञा पुं० [सं० नम्रता] नम्रता। विनय।

नौता¹—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] दे० 'न्योता'।

नौता(पु)²—वि० [सं० नव या नूतन] [वि० स्त्री० नौती] नया। हाल का। ताजा। उ०—करहि जो किंगरी लेइ बैरागी। नौती होइ बिरह कै आगी।—जायसी (शब्द०)।

नौतार्य—वि० [सं०] जहाज या नौका से पार होने योग्य [को०]।

नौतेरही—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौ + तेरह] १. ककई ईंट। छोटी ईंट। नौ अंगुल चौड़ी और तेरह अंगुल लंबी ईंट जो पुरानी चाल के मकानों में लगती थी। २. एक प्रकार का जुआ जो पासों से खेला जाता है।

नौतोड़¹—वि० [सं० नव, हिं० नौ+तोड़ना] नया तोड़ा हुआ। जो पहले पहल जोता गया हो। जैसे, नौतोड़ खेत या जमीन।

नौतोड़²—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो पहली बार जोती गई हो।

नौदंड—संज्ञा पुं० [सं० नौदण्ड] नाव खेने का डाँड़ा।

नौदसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नौ + दस] एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदार से रुपया उधार लेते हैं और साल भर में ९) के १०) देते हैं।

नौध—संज्ञा पुं० [सं० नव (= नया) + पौधा] नया पौधा। अँखुआ।

नौधा¹—संज्ञा पुं० [सं० नव, हिं० + पौधा] १. नील की वह फसल जो वर्षारंभ ही में बोई गई हो। २. नए फलदार पौधों का बगीचा। नया लगा हुआ बगीचा। † ३. नया पट्ठा। उभरता हुआ जवान।

नौधा(पु)²—वि० [सं० नवधा, नोधा] दे० 'नवधा'।

नौनगा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ+नग] बाहु पर पहनने का एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं। इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दाने में भिन्न भिन्न रंग के नग जड़े जाते हैं। इसे 'नौरतन' भी कहते हैं।

नौना—क्रि० अ० [सं० नमन] १. नवना। झुकना। २. झुककर टेढ़ा होना।

नौनिहाल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नवयुवक। नौजवान [को०]।

नौनेता—संज्ञा पुं० [सं० नौनेतृ] जहाज की पतवार पकड़नेवाला। कर्णधार। मल्लाह।

नौबंधन—संज्ञा पुं० [सं० नौबन्धन] हिमालय के सर्वोच्च शृंग का नाम। कहते हैं कि महाप्लावन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था (महाभारत)।

नौबढ़—वि० [सं० नव + हिं० बढ़ना] हाल में बढ़ा हुआ। उच्च। जिसे क्षुद्र या हीन दशा से अच्छी दशा में आए थोड़े ही दिन हुए हों। उ०—लखौ लखन कौतुक धरि धीरा। काहु करत बढ़ि नौबढ़ बीरा।—रघुराज (शब्द०)।

नौबढ़िया†, नौबढ़ुवा—वि० [हिं०] दे० 'नौबढ़'।

नौबत—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बारी। पारी। जैसे, नौबत का बुखार। २. गति। दशा। हालत। जैसे,—घर चलो, देखो तुम्हारी क्या नौबत होती है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नौबत को पहुँचना = दशा को प्राप्त होना। हालत में होना।

३. स्थिति में कोई परिवर्तन करनेवाली बातों का घटना। उपस्थित दशा। संयोग। जैसे,—ऐसा काम न करो जिससे भागने की नौबत आवे।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

४. वैभव, उत्सव या मंगलसूचक वाद्य जो पहर पहर भर पर देवमंदिरों, राजप्रसादों या बड़े आदमियों के द्वार पर बजता है। समय समय पर बजनेवाला बाजा।

विशेष—नौबत में प्रायः शहनाई और नगाड़े बजाते हैं।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

यौ०—नौबतखाना।

मुहा०—नौबत झड़ना = नौबत बजना। नौबत बजना = (१) आनंद उत्सव होना। (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा होना। नौबत बजाना = (१) आनंद उत्सव करना। खुशी मनाना। (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा करना। दबदबा दिखाना। आतंक प्रकट करना। नौबत बजाकर = डंके की चोट। खुले आम। नौबत की टकोर = (१) डंके की चोट। (२) डंके या नगाड़े की आवाज।

नौबतखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौबतखानह्] फाटक के ऊपर बना हुआ वह स्थान जहाँ नौबत बजाई जाती है। नक्कारखाना।

नौबती—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौबत + ई (प्रत्य०)] १. नौबत बजानेवाला। नक्कारची। २. फाटक पर पहरा देनेवाला। पहरेदार। ३. कोतल घोड़ा। बिना सवार का सजा हुआ घोड़ा। ४. बड़ा खेमा या तबू।

नौबतीदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौबतदार] १. खेमे पर पहरा देनेवाला। संतरी। २. दरबान। द्वारपाल।

नौबद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नौबत] दे० 'नौबत'। उ०—नौबद नाद निसान बजि भेरी ढोल मृदग।—रसरतन, पृ० १८७।

नौबरार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह भूमि जो किसी नदी के हट जाने से निकल आती है।

नौमासा—संज्ञा पुं० [सं० नवमास] १. गर्भ का नवाँ महीना। २. वह रीति रस्म जो गर्भ नौ महीने का हो जाने पर की जाती है और जिसमें पँजीरी मिठाई आदि बाँटी जाती है।

नौमि(पु)—क्रि० स० [सं० नमामि का अपभ्रंश या सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है 'मैं नमस्कार करता हूँ'। उ०—नौमि निरंतर श्री रघुबीरं।—तुलसी (शब्द०)।

नौमी—संज्ञा स्त्री० [सं० नवमी] पक्ष की नवीं तिथि।

नौयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जहाज। २. जहाजरानी [को०]।

नौयायी—वि० [सं० नौयायिन्] नाव पर जानेवाला (यात्री या माल)।

नौरंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० नव+रङ्ग] एक प्रकार की चिड़िया।

नौरंग(पु)†[2]—संज्ञा पुं० औरंग (औरंगजेब) का रूपांतर।

नौरंगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नारंगी] दे० 'नारंगी'।

नौरतन[1]—संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] दे० 'नवरत्न'।

नौरतन[2]—संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] नौनगा नाम का गहना।

नौरतन[3]—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चटनी जिसमें ये नौ चीजें पड़ती हैं—खटाई, गुड़, मिर्च, शीतलचीनी, केसर, इलायची, जावित्री सौंफ और जीरा।

नौरस[1]—वि० [सं० नव (= नया) + रस] १. (फल) जिसका रस नया अर्थात् ताजा हो। नया पका हुआ (फल)। ताजा (फल)। २. नवयुवक।

नौरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० नवरस] साहित्य में शृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्भुत, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शांत ये नौ रस।

नौरात्र†—संज्ञा पुं० [सं० नवरात्र] दे० 'नवरात्र'।

नौरूप—संज्ञा पुं० [हिं० नव + रोपना] नील की फसल की पहली कटाई। वि० दे० 'नील'।

नौरोज—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौरोज] १. पारसियों में नए वर्ष का पहला दिन। इस दिन बहुत आनंद उत्सव मनाया जाता था। २. त्योहार का दिन। ३. खुशी का दिन। कोई शुभ दिन।

नौल[1]—वि० [सं० नवल] दे० 'नवल'।

नौल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज पर माल लादने का भाड़ा।

नौलक्खा—वि० [हिं० नौलाख] दे० 'नौलखा'।

नौलखा—वि० [हिं० नौ + लाख] नौ लाख का। जिसका मूल्य नौ लाख का हो। जड़ाऊ और बहुमूल्य। जैसे, नौलखा हार।

नौलखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताने को दबाने के लिये एक लकड़ी जिसमें इधर उधर बजनी पत्थर बँधे रहते हैं। (जुलाहे)।

नौला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला'।

नौलासी—वि० [सं० नवल] नर्म। मुलायम। कोमल।

नौवाब—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवाब] दे० 'नवाब'।

नौवाबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवाबी] दे० 'नवाबी'।

नौवाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नौनेता'।

नौशा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नौशह] [स्त्री० नौशी] दूल्हा। वर।

नौशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'नौशा' [को०]।

नौशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नववधू। दुलहिन।

नौशेरवाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारस का एक परम प्रसिद्ध न्यायी और प्रतापी बादशाह।

विशेष—यह सन् ५३१ ई० में अपने पिता कुबाद के मरने पर सिंहासन पर बैठा। रोमन लोगों को इसने युद्ध में कई बार परास्त किया। मुसलमान लेखकों ने तो लिखा है कि इसने रोम के बादशाह को कैद किया था। रोम का सम्राट् उस समय जस्टिनियन था। नौशेरवाँ की एंटियोकस पर विजय, शाम देश तथा भूमध्य सागर के अनेक स्थानों पर अधिकार तथा साइबेरिया, यूक्साइन आदि प्रदेशों पर आक्रमण रोम के इतिहास में भी प्रसिद्ध है। रोम का बादशाह जस्टिनियन पारस्य साम्राज्य के अधीन होकर प्रतिवर्ष तीस हजार अशरफियाँ कर देता था। ८० वर्ष की वृद्धावस्था में नौशेरवाँ ने रोम राज्य के विरुद्ध चढ़ाई की थी और दारा तथा शाम आदि देशों को अधिकृत किया था। ४८ वर्ष राज्य करके वह प्रतापी और न्यायी बादशाह परलोक सिधारा।

फारसी किताबों में नौशेरवाँ के न्याय की बहुत सी कथाएँ हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसी बादशाह के समय में मुसलमानों के पैगंबर मुहम्मद साहब का जन्म हुआ जिनके मत के प्रभाव से आगे चलकर पारस की आर्य सभ्यता का लोप हुआ।

नौसत(पु)—संज्ञा [हिं० नौ + सात] सोलहो शृंगार। सिंगार। उ०—नौसत साजे चली गोपिका गिरवर पूजा हेत।—सूर (शब्द०)।

नौसर†—संज्ञा पुं० [हिं० नौ + सर] चालाकी। तिकड़म। धोखाधड़ी। चालबाजी।

नौसरा—संज्ञा पुं० [हिं० नौ + सर] नौ लड़ी की माला। नौलराहार या गजरा।

नौसरिया†—वि० [हिं०] चालाक। चालबाज। तिकड़मी।

नौसादर—संज्ञा पुं० [सं० नर + सादर, फ़ा० नौशादर] एक तीक्ष्ण झालदार क्षार या नमक जो दो वायव्य द्रव्यों के योग से बनता है।

विशेष—यह क्षार वायव्य रूप में हवा में अल्प मात्रा में मिला रहता है और जंतुओं के शरीर के सड़ने गलने से इकट्ठा होता है। सींग, खुर, हड्डी, बाल आदि का भभके में अर्क खींचकर यह अकसर निकाला जाता है। गैस के कारखाने में पत्थर के कोयले को भभके पर चढ़ाने से जो एक प्रकार का पानी सा पदार्थ छूटता है, आजकल बहुत सा नौसादर

उसी से निकाला जाता है। पहले लोग ईंट के पजावों से भी, जिनमें मिट्टी के साथ कुछ जंतुओं के अंग भी मिलकर जलते थे, यह क्षार निकालते थे। नौसादर औषध तथा कलाकौशल के व्यवहार में आता है।

वैद्यक में नौसादर दो प्रकार का कहा गया है। एक कृत्रिम जो और क्षारों से बनाया जाता है, दूसरा अकृत्रिम जो जंतुओं के मूत्र पुरीष आदि के क्षार से निकाला जाता है। आयुर्वेद के अनुसार नौसादर शोधनाशक, शीतल तथा यकृत, प्लीहा, ज्वर, अर्बुद, सिरदर्द, खाँसी इत्यादि में उपकारी है।

पर्या०—नरक्षार। सादर। वज्रक्षार। विदारण। अमृतक्षार चूलिका लवण। क्षारश्रेष्ठ।

नौसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] जहाजी बेड़ा [को०]।

नौसार—संज्ञा स्त्री० [सं० लवणशाला; हिं० नोन+सार] वह स्थान जहाँ नोनिया लोग लोनी मिट्टी से नमक बनाते हैं।

नौसिख—वि० [सं० नवशिक्षित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसिखिया—वि० [सं० नवशिक्षित, प्रा० नवसिक्खिअ] जिसने नया नया सीखा हो। जिसने कोई काम हाल में सीखा हो। जो सीखकर पक्का न हुआ हो। जो दक्ष या कुशल न हुआ हो।

नौसिखुवा†—वि० [सं० नवशिक्षित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना या फौज जो लड़ाकू जल के जहाजों पर चढ़कर युद्ध करती है। लड़ाकू जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जल सेना।

नौसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। जलसेनाध्यक्ष।

नौहड़—संज्ञा पुं० [सं० नव (=नया)+भाण्ड, हिं० हाँडी] मिट्टी की नई हाँड़ी। कोरी हँड़िया।

नौहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० नव+भाण्ड] पितृपक्ष। कनागत (जिसमें मिट्टी के पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रखे जाते हैं)।

न्यंक—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्कु] रथ का एक अंग।

न्यंकु¹—वि० [सं० न्यङ्कु] नितांत गमनशील। बहुत दौड़नेवाला।

न्यंकु²—संज्ञा पुं० १. मृगभेद। एक प्रकार का हिरन। बारहसिंगा। २. एक मुनि। ऋष्यशृंग (को०)। ३. वह छात्र जो गुरु के साथ रहता हो (को०)।

न्यंकुभूरुह—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्कुभूरुह] श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

न्यंकुसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यङ्कुसारिणी] एक वैदिक छंद जिसके पहले और दूसरे चरण में १२, १२ अक्षर और तीसरे और चौथे चरण में ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यंग—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्ग] १. लक्षण। चिह्न। २. प्रकार। भेद [को०]।

न्यंचन—संज्ञा पुं० [सं० न्यञ्चन] १. मोड़। घुमाव। २. छिपने की जगह। ३. छिद्र [को०]।

न्यंचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यञ्चनी] गोदी। उत्संग [को०]।

न्यंचित—वि० [सं० न्यञ्चित] १. अधःक्षिप्त। नीचे फेंका या डाला हुआ। २. झुकाया हुआ। नवाया हुआ (को०)।

न्यंजलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यञ्जलिका] नीचे की ओर की हुई अंजली या हथेली।

न्यंत—संज्ञा पुं० [सं० न्यन्त] १. संनिकटता। सामीप्य। २. अंतिम या पश्चिमी भाग [को०]।

न्यक—क्रि० वि० [सं०] अवज्ञा, अपमान, अपकर्ष, अवनति, लघुता मानहानि आदि अर्थों में 'कृ' अथवा 'भू' धातु के साथ प्रयुक्त क्रियाविशेषण। कृ धातु के अतिरिक्त अन्य शब्दों के साथ इसका रूप न्यग् होता है।

न्यक्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अवमान। तिरस्कार [को०]।

न्यक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'न्यक्करण' [को०]।

न्यक्त—वि० [सं०] अंजित। अभिषिक्त।

न्यक्ष¹—वि० [सं०] निकृष्ट। अधम। क्षुद्र।

न्यक्ष²—संज्ञा पुं० १. समग्रता। संपूर्णता। २. परशुराम। ३. महिष। भैंसा [को०]।

न्यग्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपमान। तिरस्कार। २. मानभाव। अधीनता। ३. अपकर्ष [को०]।

न्यग्भावित—वि० [सं०] तिरस्कृत। गौण। अमुख्यताप्राप्त [को०]।

न्यग्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वट वृक्ष। बरगद। २. शमी वृक्ष। ३. बाहु। ४. लंबाई की एक नाप। उतनी लंबाई जितनी दोनों हाथों के फैलाने से होती है। व्याम। परिमाण। पुरसा। ५. विष्णु। ६. मोहनौषधि। ७. महादेव। ८. उग्रसेन के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। ९. मुसाकानी। मूषिकपर्णी।

न्यग्रोधपरिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डल] वह जिसकी लंबाई चौड़ाई एक व्यास या पुरसा हो। ऐसे पुरुष त्रेता में राज्य करते थे (मत्स्यपुराण)।

न्यग्रोधपरिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डला] स्त्रियों का एक भेद। वह स्त्री जिसके स्तन कठोर, नितंब विशाल और कटि क्षीण हो।

न्यग्रोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यग्रोधी। मुसाकानी।

न्यग्रोधादि गण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वृक्षों का एक गण या वर्ग जिसके अंतर्गत ये वृक्ष माने जाते हैं—बरगद, पीपल, गूलर, पाकर, महुआ, अर्जुन, आम, कुसुम, आमड़ा, जामुन, चिरौंजी, मासरोहिणी, कदम, बेर, तेंदू, सलई, तेजपत्ता, लोध, सावर, भिलावाँ, पलाश, तुन, घुंघची या मुलेठी।

न्यग्रोधिक—वि० [सं०] (स्थान) जहाँ बहुत से वटवृक्ष हों।

न्यग्रोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी लता।

न्यग्रोधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी।

न्यच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर काले चकत्ते पड़ जाते हैं। २. तिल। शरीर पर का तिल (को०)।

न्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हानि। नाश। २. क्षय [को०]।

न्यर्बुद—वि० [सं०] दश अर्बुद। दस अरब (संख्या)।

न्यर्बुदि—संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र का नाम। (अथर्व०)।

न्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमा करना। रखना। २. देना। त्यागना। ३. सामने लाना। उपस्थित करना [को०]।

न्यस्त¹—वि० [सं०] १. रखा हुआ। धरा हुआ। २. स्थापित। बैठाया या जमाया हुआ। ३. चुनकर सजाया हुआ। ४. क्षिप्त। डाला हुआ। फेंका हुआ। ५. त्यक्त। छोड़ा हुआ।

न्यस्त²—संज्ञा पुं० धरोहर रखा हुआ। अमानत रखा हुआ।

न्यस्तशस्त्र¹—वि० [सं०] जिसने हथियार रख दिए हों।

न्यस्तशस्त्र²—संज्ञा पुं० पितृलोक।

न्यस्य—संज्ञा पुं० [सं०] न्यसन करने योग्य [को०]।

न्यह्न—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या का सायंकाल।

न्यांकव—संज्ञा पुं० [सं० न्याङ्कव] न्यंकु का मृगचर्म। बारहसिंघे का चमड़ा।

न्याई—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय'।

न्याउ—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] दे० 'न्याय'।

न्याक्य—संज्ञा पुं० [सं०] पकाया हुआ अथवा भुना हुआ चावल [को०]।

न्याति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति] जाति। उ०—मधुकर कहा कारे की न्याति? ज्यों जलमीन कमल मधुपन को छिन नहिं प्रीति खटाति।—सूर (शब्द०)।

न्याद—संज्ञा पुं० [सं०] आहार।

न्याना¹—वि० [सं० अज्ञान या हिं० नि (=नहीं) + सं० ज्ञान, प्रा० णाण] १. जो कुछ न जानता हो। अनजान। निर्बोध। २. छोटी उमर का। अल्प अवस्था का। अल्पवयस्क।

न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. उचित बात। नियम के अनुकूल बात। हक बात। नीति। इनसाफ। जैसे,—(क) न्याय तो यही है कि तुम उसका रुपया फेर दो। (ख) अपराध कोई करे और दंड कोई पावे यह कहाँ का न्याय है। २. सदसद्विवेक। दो पक्षों के बीच निर्णय। प्रमाणपूर्वक निश्चय। विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निबटेरा। किसी मामले मुकदमे में दोषी और निर्दोष, अधिकारी और अनधिकारी आदि का निर्धारण। जैसे—(क) राजा अच्छा न्याय करता है। (ख) इस अदालत में ठीक न्याय नहीं होता।

यौ०—न्यायसभा। न्यायालय।

३. वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिये विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है। विवेचनपद्धति। प्रमाण, दृष्टांत, तर्क आदि से युक्त वाक्य।

विशेष—न्याय छह दर्शनों में है। इसके प्रवर्तक गौतम ऋषि मिथिला के निवासी कहे जाते हैं। गौतम के न्यायसूत्र अबतक प्रसिद्ध हैं। इन सूत्रों पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य है। इस भाष्य पर उद्योतकर ने वार्तिक लिखा है। वार्तिक की व्याख्या वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका' के नाम से लिखी है। इस टीका की भी टीका उदयनाचार्य कृत 'तात्पर्यपरिशुद्धि' है। इस परिशुद्धि पर वर्धमान उपाध्याय कृत 'प्रकाश' है।

गौतम का न्याय केवल प्रमाण तर्क आदि के नियम निश्चित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि आत्मा, इंद्रिय, पुनर्जन्म, दुःख अपवर्ग आदि विशिष्ट प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। गौतम ने सोलह पदार्थों का विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कही है। सोलह पदार्थ या विषय में हैं।—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। इन विषयों पर विचार किसी मध्यस्थ के सामने वादी प्रतिवादी के कथोपकथन के रूप में कराया गया है। किसी विषय में विवाद उपस्थित होने पर पहले इसका निर्णय आवश्यक होता है कि दोनों वादियों के कौन कौन प्रमाण माने जायँगे। इससे पहले 'प्रमाण' लिया गया है। इसके उपरांत विवाद का विषय अर्थात् 'प्रमेय' का विचार हुआ है। विषय सूचित हो जाने पर मध्यस्थ के चित्त में संदेह उत्पन्न होगा कि उसका यथार्थ स्वरूप क्या है। उसी का विचार 'संशय' या 'संदेह' पदार्थ के के नाम से हुआ है। संदेह के उपरांत मध्यस्थ के चित्त में यह विचार हो सकता है कि इस विषय के विचार से क्या मतलब। यही 'प्रयोजन' हुआ। वादी संदिग्ध विषय पर अपना पक्ष दृष्टांत दिखाकर बतलाता है, वही 'दृष्टांत' पदार्थ है। जिस पक्ष को वादी पुष्ट करके बतलाता है वह उसका 'सिद्धांत' हुआ। वादी का पक्ष सूचित होने पर पक्षसाधन की जो जो युक्तियाँ कही गई हैं प्रतिवादी उनके खंड खंड करके उनके खंडन में प्रवृत्त होता है। युक्तियों के ये ही खंड 'अवयव' कहलाते हैं। अपनी युक्तियों को खंडित देख वादी फिर से और युक्तियाँ देता है जिनसे प्रतिवादी की युक्तियों का उत्तर हो जाता है। यही 'तर्क' कहा गया है। तर्क द्वारा वादी जो अपना पक्ष स्थिर करता है वही 'निर्णय' है। प्रतिवादी के इतने से संतुष्ट न होने पर दोनों पक्षों द्वारा पंचावयवयुक्त युक्तियों का कथन 'वाद' कहा गया है। वाद या शास्त्रार्थ द्वारा स्थिर सत्य पक्ष को न मानकर यदि प्रतिवादी जीत की इच्छा से अपनी चतुराई के बल से व्यर्थ उत्तर प्रत्युत्तर करता चला जाता है तो वह 'जल्प' कहलाता है। इस प्रकार प्रतिवादी कुछ काल तक तो कुछ अच्छी युक्तियाँ देता जायगा फिर ऊटपटाँग बकने लगेगा जिसे 'वितंडा' कहते हैं। इस वितंडा में जितने हेतु दिए जायँगे वे ठीक न होंगे, वे 'हेत्वाभास' मात्र होंगे। उन हेतुओं और युक्तियों के अतिरिक्त जान बूझकर वादी को घबराने के लिये उसके वाक्यों का ऊटपटाँग अर्थ करके यदि प्रतिवादी गड़बड़ डालना चाहता है तो वह उसका 'छल' कहलाता है, और यदि व्याप्तिनिरपेक्ष साधर्म्य वैधर्म्य आदि के सहारे अपना पक्ष स्थापित करने लगता है तो वह 'जाति' में आ जाता है। इस प्रकार होते होते जब शास्त्रार्थ में यह अवस्था आ जाती है कि अब प्रतिवादी को रोककर शास्त्रार्थ बंद किया जाय तब 'निग्रहस्थान' कहा जाता है। (विवरण प्रत्येक शब्द के अंतर्गत देखो)।

न्याय का मुख्य विषय है प्रमाण । 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञान का। यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं। गौतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनमें से आत्मा, मन और इंद्रिय का संयोग रूप जो ज्ञान का करण या प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है। वस्तु के साथ इंद्रिय-संयोग होने से जो उसका ज्ञान होता है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। प्रत्यक्ष को लेकर जो ज्ञान होता है वह 'अनुमान' है। भाष्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि लिंग लिंगी के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान (तथा ज्ञान के कारण) को अनुमान कहते हैं। जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धूआँ रहता है वहाँ आग रहती है। इसी को नैयायिक व्याप्ति ज्ञान कहते हैं जो अनुमान की पहली सीढ़ी है। हमने कहीं धूआँ देखा जो आग का लिंग या चिह्न है और हमारे मन में यह ध्यान हुआ कि जिस धूएँ के साथ सदा हमने आग देखी है वह यहाँ है। इसी को परामर्श ज्ञान या व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता कहते हैं। इसके अनंतर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि 'यहाँ आग है'। अपने समझने के लिये तो उपयुक्त तीन खंड काफी हैं पर नैयायिकों का कार्य है दूसरे के मन में ज्ञान कराना, इससे वे अनुमान के पाँच खंड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं।

(१) प्रतिज्ञा—साध्य का निर्देश करनेवाला अर्थात् अनुमान से जो बात सिद्ध करना है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, यहाँ पर आग है।

(२) हेतु—जिस लक्षण या चिह्न से बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, क्योंकि यहाँ धूआँ है।

(३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्न के साथ जहाँ देखी गई है उसे बतानेवाला वाक्य। जैसे,—जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, जैसे 'रसोईघर में'।

(४) उपनय—जो वाक्य बतलाए हुए चिह्न या लिंग का होना प्रकट करे, जैसे, 'यहाँ पर धूआँ है'।

(५) निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गई यह कथन।

अतः अनुमान का पूरा रूप यों हुआ—
यहाँ पर आग है (प्रतिज्ञा)।
क्योंकि यहाँ धूआँ है (हेतु)।
जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, 'जैसे रसोई घर में' (उदाहरण)।
यहाँ पर धूआँ है (उपनय)।
इसीलिये यहाँ पर आग है (निगमन)।

साधारणतः इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को न्याय कहते हैं। नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवों का मानना आवश्यक नहीं समझते। वे प्रमाण के लिये प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टांत इन्हीं तीनों को काफी समझते हैं। मीमांसक और वेदांती भी इन्हीं तीनों को मानते हैं। बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु।

दुष्ट हेतु को हेत्वाभास कहते हैं पर इसका प्रमाण गौतम ने प्रमाण के अंतर्गत न करके इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है। इसी प्रकार छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तव में हेतुदोष ही कहे जा सकते हैं। केवल हेतु का अच्छी तरह विचार करने से अनुमान के सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं।

गौतम का तीसरा प्रमाण 'उपमान' है। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से न जानी हुई वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वही उपमान है। जैसे, नीलगाय गाय के सदृश होती है। किसी के मुँह से यह सुनकर जब हम जंगल में नीलगाय देखते हैं तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि 'यह नीलगाय है'। इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तु का उसके नाम के साथ संबंध ही उपमिति ज्ञान का विषय है। वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाण के ही अंतर्गत मानते हैं। वे कहते हैं कि 'गो के सदृश गवय होता है' यह शब्द या आगम ज्ञान है क्योंकि यह आप्त या विश्वासपात्र मनुष्य के कहे हुए शब्द द्वारा हुआ। फिर इसके उपरांत यह ज्ञान कि 'यह जंतु जो हम देखते हैं गो के सदृश है' यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तक का ज्ञान तो शब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनंतर जो यह ज्ञान होता है कि 'इसी जंतु का नाम गवय है' वह न प्रत्यक्ष है, न अनुमान, न शब्द, वह उपमान ही है। उपमान को कई नए दार्शनिकों ने इस प्रकार अनुमान के अंतर्गत किया है। वे कहते हैं कि 'इस जंतु का नाम गवय है', 'क्योंकि यह गो के सदृश है' 'जो जो जंतु गो के सदृश होते है उनका नाम गवय होता है'। पर इसका उत्तर यह है कि 'जो जो जंतु गो के सदृश्य होते हैं वे गवय हैं' यह बात मन मे नहीं आती, मन में केवल इतना ही आता है कि 'मैंने अच्छे आदमी के मुँह से सुना है कि गवय गाय के सदृश होता है ?'

चौथा प्रमाण है शब्द। सूत्र में लिखा है कि आप्तोपदेश अर्थात् आप्त पुरुष का वाक्य शब्दप्रमाण है। भाष्यकार ने आप्तपुरुष का लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना (अनुभव किया) हो ठीक ठीक वैसा ही कहनेवाला हो, वही आप्त है, चाहे वह आर्य हो या म्लेच्छ। गौतम ने आप्तोपदेश के दो भेद किए हैं—दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। प्रत्यक्ष जानी हुई बातों को बतानेवाला दृष्टार्थ और केवल अनुमान से जानी जानेवाली बातो (जैसे स्वर्ग, अपवर्ग, पुनर्जन्म इत्यादि) को बतानेवाला अदृष्टार्थ कहलाता है। इसपर भाष्य करते हुए वात्स्यायन ने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और ऋषि-वाक्य (वैदिक) का विभाग हो जाता है अर्थात् अदृष्टार्थ में केवल वेदवाक्य ही प्रमाण कोटि में माना जा सकता है। नैयायिकों के मत से वेद ईश्वरकृत है इससे उसके वाक्य सदा

सत्य और विश्वसनीय हैं पर लौकिक वाक्य तभी सत्य माने जा सकते हैं जब उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रों में वेद के प्रामाण्य के विषय में कई शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमांसक ईश्वर नहीं मानते पर वे भी वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्द मात्र को मानते हैं और शब्द और अर्थ का नित्य संबंध बतलाते हैं। पर नैयायिक शब्द का अर्थ के साथ कोई नित्य संबंध नहीं मानते।

वाक्य का अर्थ क्या है, इस विषय में बहुत मतभेद है। मीमांसकों के मत से नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्यों से कही जाती है चाहे साफ साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्यों से संबंध द्वारा। पर नैयायिकों के मत से कई पदों के संबंध से निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परंतु वाक्य में जो पद होते हैं वाक्यार्थ के मूल कारण वे ही हैं। न्यायमंजरी में पदों में दो प्रकार की शक्ति मानी गई है—प्रथम अभिधात्री शक्ति जिससे एक एक पद अपने अपने अर्थ का बोध कराता है और दूसरी तात्पर्य शक्ति जिससे कई पदों के संबंध का अर्थ सूचित होता है। शक्ति के अतिरिक्त लक्षणा भी नैयायिकों ने मानी है। आलंकारिकों ने तीसरी वृत्ति व्यंजना भी मानी है पर नैयायिक उसे पृथक् वृत्ति नहीं मानते। सूत्र के अनुसार जिन कई अक्षरों के अंत में विभक्ति हो वे ही पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—नाम विभक्ति और आख्यात विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और आख्यात दो ही प्रकार के पद मानते हैं। अव्यय पद को भाष्यकार ने नाम के ही अंतर्गत सिद्ध किया है।

न्याय में ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदांती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, संभव और अभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारों को अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्यायशास्त्र का मुख्य विषय है। इसी से 'प्रमाणप्रवीण', 'प्रमाणकुशल आदि शब्दों का व्यवहार नैयायिक या तार्किक के लिये होता है।

प्रमाण अर्थात् किसी बात को सिद्ध करने के विधान का ऊपर उल्लेख हो चुका। अब उक्त विधान के अनुसार किन किन वस्तुओं का विचार और निर्णय न्याय में हुआ है, इसका संक्षेप में कुछ विवरण दिया जाता है।

ऐसे विषय न्याय में प्रमेय (जो प्रमाणित किया जाय) पदार्थ के अंतर्गत हैं और बारह गिनाए गए हैं—

(१) आत्मा—सब वस्तुओं का देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला। (२) शरीर—भोगों का आयतन या आधार। (३) इंद्रियाँ—भोगों के साधन। (४) अर्थ—वस्तु जिसका भोग होता है। (५) बुद्धि—भोग। (६) मन—अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इंद्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। (७) प्रवृत्ति—वचन, मन और शरीर का व्यापार। (८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामों में प्रवृत्ति होती है। (९) प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म। (१०) फल—सुख दुःख का संवेदन या अनुभव। (११) दुःख—पीड़ा, क्लेश। (१२) अपवर्ग—दुःख से अत्यंत निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूची से यह न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के अतिरिक्त और प्रमाण के विषय या प्रमेय हो ही नहीं सकते। प्रमाण के द्वारा बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतम ने अपने सूत्रों में उन्हीं बातों पर विचार किया है जिनके ज्ञान से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। न्याय में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लिंग (अनुमान के साधन चिह्न या हेतु) कहे गए हैं, यद्यपि शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा पृथक् मानी गई है। वैशेषिक में भी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि को आत्मा का लिंग कहा है। शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा के पृथक् होने के हेतु गौतम ने दिए हैं। वेदांतियों के समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। सांख्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुष को अकर्ता और अभोक्ता, साक्षी वा द्रष्टा मात्र मानते हैं। नैयायिक आत्मा को कर्ता, भोक्ता आदि मानते हैं। संसार को रचनेवाली आत्मा ही ईश्वर है। न्याय में आत्मा के समान ही ईश्वर में भी संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि, प्रयत्न ये गुण माने गए हैं पर नित्य करके। न्यायमंजरी में लिखा है कि दुःख, द्वेष और संस्कार को छोड़ और सब आत्मा के गुण ईश्वर में हैं। बहुत से लोग शरीर को पाँचों भूतों से बना मानते हैं पर न्याय में शरीर केवल पृथ्वी के परमाणुओं से घटित माना गया है। चेष्टा, इंद्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं। जिस पदार्थ से सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करने का व्यापार चेष्टा है। अतः शरीर का जो लक्षण किया गया है उसके अंतर्गत वृक्षों का शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि यह लक्षण वृक्षशरीर में नहीं घटता, इससे केवल मनुष्यशरीर का ही अभिप्राय समझना चाहिए। शंकर मिश्र ने वैशेषिक सूत्रोपस्कार में कहा है कि वृक्षों को शरीर है पर उसमें चेष्टा और इंद्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पूर्वजन्म में किए कर्मों के अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतों से पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति कही गई है। घ्राणेंद्रिय से गंध का ग्रहण होता है, इससे वह पृथ्वी से बनी है। रसना जल से बनी है क्योंकि रस जल का ही गुण है। चक्षु तेज से बना है क्योंकि रूप तेज का ही गुण है। त्वक् वायु से बना है क्योंकि स्पर्श वायु का गुण है। श्रोत्र आकाश से बना है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है।

बौद्धों के मत से शरीर में इंद्रियों के जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हीं को इंद्रियाँ कहते हैं। (जैसे, आँख की पुतली, जीभ इत्यादि); पर नैयायिकों के मत से जो अंग दिखाई पड़ते हैं वे इंद्रियों के अधिष्ठान मात्र हैं, इंद्रियाँ नहीं हैं। इंद्रियाँ

का ज्ञान इंद्रियों द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही त्वग् इंद्रिय मानते हैं। न्याय में उनके मत का खंडन करके इंद्रियों का नानात्व स्थापित किया गया है। सांख्य में पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। न्याय में कर्मेंद्रियाँ नहीं मानी गई हैं पर मन एक करण और अणुरूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो युगपद् ज्ञान संभव होता, अर्थात् अनेक इंद्रियों का एक क्षण में एक साथ संयोग होने से उन सबके विषयों का एक साथ ज्ञान होता। पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों भूतों के गुण और इंद्रियों के अर्थ या विषय हैं। न्याय में बुद्धि को ज्ञान या उपलब्धि का ही दूसरा नाम कहा है। सांख्य में बुद्धि नित्य कही गई है पर न्याय में अनित्य।

वैशेषिक के समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओं के योग से सृष्टि मानता है। प्रमेयों के संबंध में न्याय और वैशेषिक के मत प्रायः एक ही हैं इससे दर्शन में दोनों के मत न्याय मत कहे जाते हैं। वात्स्यायन ने भी भाष्य में कह दिया है कि जिन बातों को विस्तार भय से गौतम ने सूत्रों में नहीं कहा है उन्हें वैशेषिक से ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतम का न्याय केवल विचार या तर्क के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक (तर्कशास्त्र) से यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शन के अंतर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अवश्य है कि न्याय में प्रमाण या तर्क की परीक्षा विशेष रूप से हुई है।

न्यायशास्त्र का भारतवर्ष में कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकों में जो प्रवाद प्रचलित है उनके अनुसार गौतम वेदव्यास के समकालीन ठहरते हैं; पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'आन्वीक्षिकी' 'तर्कविद्या' 'हेतुवाद' का निंदापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में तो नैयायिक शब्द भी अयोध्याकांड में आया है। पाणिनि ने न्याय से नैयायिक शब्द बनने का निर्देश किया है। न्याय के प्रादुर्भाव के संबंध में साधारणतः दो प्रकार के मत पाए जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि बौद्ध धर्म का प्रचार होने पर उसके खंडन के लिये ही इस शास्त्र का अभ्युदय हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि वैदिक वाक्यों के परस्पर समन्वय और समाधान के लिये जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में जिन युक्तियों और तर्कों का व्यवहार किया वे ही पहले न्याय के नाम से कहे जाते थे। आपस्तंब धर्मसूत्र में जो न्याय शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसा से ही अभिप्राय समझना चाहिए। माधवाचार्य ने पूर्वमीमांसा का जो सारसंग्रह लिखा उसका नाम न्यायमालाविस्तार रखा। वाचस्पति मिश्र ने भी 'न्यायकणिका' के नाम से मीमांसा पर एक ग्रंथ लिखा है। पर न्याय के प्राचीनत्व से वंग देश का गौरव समझनेवाले कुछ बंगाली पंडितों का कथन है कि न्याय ही सब दर्शनों में प्राचीन है क्योंकि और सब दर्शनसूत्रों में दूसरे दर्शनों का उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रों में कहीं किसी दूसरे दर्शन का नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सब दर्शनों में प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्क के नियम बौद्ध धर्म के प्रचार से बहुत पूर्व प्रचलित थे, चाहे वे मीमांसा के रहे हों या स्वतंत्र। हेमचंद्र ने न्यायसूत्रों पर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और चाणक्य को एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध-धर्म-प्रचार के पूर्व का ठहरता है। क्योंकि बौद्ध धर्म का प्रचार अशोक के समय से और बौद्ध न्याय का आविर्भाव अशोक के भी पीछे महायान शाखा स्थापित होने पर हुआ। पर वात्स्यायन और चाणक्य का एक होना हेमचंद्र के श्लोक (जिसमें चाणक्य के आठ नाम गिनाए गए है) के आधार पर ही ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों का कथन है कि वात्स्यायन ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए। ईसा की छठी शताब्दी में वासवदत्ताकार सुबंधु ने मल्लनाग, न्यायस्थिति, धर्मकीर्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकों का उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकराचार्य ने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्नागाचार्य के 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रंथ का खंडन करके वात्स्यायन का मत स्थापित किया। 'प्रमाणसमुच्चय' में दिङ्नाग ने वात्स्यायन के मत का खंडन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन दिङ्नाग के पूर्व हुए। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन बतलाया है, पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और दिङ्नाग का काल ईसा की तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबंधु के उल्लेख से दिङ्नागाचार्य का ही काल छठी शताब्दी के पूर्व ठहरता है अतः वात्स्यायन को जो उनसे भी पूर्व हुए पाँचवीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायन ने दशावयवादी नैयायिकों का उल्लेख किया है, इससे सिद्ध है कि उनके पहले से भाष्यकार नैयायिकों की परंपरा चली आती थी। अस्तु, सूत्रों की रचना का काल बौद्ध धर्म के प्रचार के पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन नैयायिकों के बीच विवाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर १३ वीं शताब्दी तक बराबर चलता रहा। इससे खंडन मंडन के बहुत से ग्रंथ बने। १४ वीं शताब्दी में गंगेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय' की नींव डाली। प्राचीन न्याय मे प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमें से और सबको किनारे करके केवल 'प्रमाण' को लेकर ही भारी शब्दाडंबर खड़ा किया गया। इस नव्यन्याय का आविर्भाव मिथिला मे हुआ। मिथिला से नदिया में जाकर नव्यन्याय ने और भी भयंकर रूप धारण किया। न उसमें तत्वनिर्णय रहा, न तत्वनिर्णय की सामर्थ्य।

४. दृष्टांत वाक्य जिसका व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है। कोई विलक्षण घटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो। कहावत।

ऐसे न्याय या दृष्टांत वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं जिनमें से कुछ अकारादि क्रम से दिए जाते हैं --

(१) **अजाकृपाणीय न्याय**- कहीं तलवार लटकती थी, नीचे से बकरा गया और वह संयोग से उसकी गर्दन पर गिर पड़ी। जहाँ दैवसंयोग से कोई विपत्ति आ पड़ती है वहाँ इसका व्यवहार होता है।

(२) **अजातपुत्रनामोत्कीर्तन न्याय**—अर्थात् पुत्र न होने पर भी नामकरण होने का न्याय। जहाँ कोई बात होने पर भी आशा के सहारे लोग अनेक प्रकार के आयोजन बाँधने लगते हैं वहाँ यह कहा जाता है।

(३) **अध्यारोप न्याय**—जो वस्तु जैसी न हो उसमें वैसे होने का (जैसे रज्जु में सर्प होने का) आरोप। वेदांत की पुस्तकों में इसका व्यवहार मिलता है।

(४) **अंधकूपपतन न्याय**--किसी भले आदमी ने अंधे को रास्ता बतला दिया और वह चला, पर जाते जाते कूएँ में गिर पड़ा। जब किसी अनधिकारी को कोई उपदेश दिया जाता है और वह उसपर चलकर अपने अज्ञान आदि के कारण चूक जाता है या अपनी हानि कर बैठता है तब यह कहा जाता है।

(५) **अंधगज न्याय**- कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी को टटोला। जिसने जो अंग टटोल पाया उसने हाथी का आकार उसी अंग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिसने पैर टटोला उसने खंभे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण अंग का ज्ञान न होने पर उसके संबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं तब इस उक्ति का प्रयोग करते हैं।

(६) **अंधगोलांगूल न्याय**--एक अंधा अपने घर के रास्ते से भटक गया था। किसी ने उसके हाथ में गाय की पूँछ पकड़ाकर कह दिया कि यह तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुँचा देगी। गाय के इधर उधर दौड़ने से अंधा अपने घर तो पहुँचा नहीं, कष्ट उसने भले ही पाया। किसी दुष्ट या मूर्ख के उपदेश पर काम करके जब कोई कष्ट या दुःख उठाता है तब यह कहा जाता है।

(७) **अंधचटक न्याय**—अंधे के हाथ बटेर।

(८) **अंधपरंपरा न्याय**--जब कोई पुरुष किसी को कोई काम करते देखकर आप भी वही काम करने लगे तब वहाँ यह कहा जाता है।

(९) **अंधपंगु न्याय**--एक ही स्थान पर जानेवाला एक अंधा और एक लँगड़ा यदि मिल जायँ तो एक दूसरे की सहायता से दोनों वहाँ पहुँच सकते हैं। सांख्य में जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही गई है।

(१०) **अपवाद न्याय**—जिस प्रकार किसी वस्तु के संबंध में ज्ञान हो जाने से भ्रम नहीं रह जाता उसी प्रकार। (वेदांत)।

(११) **अपराह्नच्छाया न्याय**–जिस प्रकार दोपहर की छाया बराबर बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की प्रीति आदि के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।

(१२) **अपसारिताग्निभूतल न्याय**—जमीन पर से आग हटा लेने पर भी जिस प्रकार कुछ देर तक जमीन गरम रहती है उसी प्रकार धनी धन के न रह जाने पर भी कुछ दिनों तक अपनी अकड़ रखता है।

(१३) **अरण्यरोदन न्याय**—जंगल में रोने के समान बात। जहाँ कहने पर कोई ध्यान देनेवाला न हो वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(१४) **अर्कमधु न्याय**- यदि मदार में ही मधु मिल जाय तो उसके लिये अधिक परिश्रम व्यर्थ है। जो कार्य सहज में हो उसके लिये इधर उधर बहुत श्रम करने की आवश्यकता नहीं।

(१५) **अर्द्धजरतीय न्याय** एक ब्राह्मण देवता अर्थकष्ट से दुःखी हो नित्य अपनी गाय लेकर बाजार में बेचने जाते पर वह न बिकती। बात यह थी कि अवस्था पूछने पर वे उसकी बहुत अवस्था बतलाते थे। एक दिन एक आदमी ने उनसे न बिकने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा जिस प्रकार आदमी की अवस्था अधिक होने पर उसकी कदर बढ़ जाती है उसी प्रकार मैंने गाय के संबंध में भी समझा था। उसने आगे ऐसा न कहने की सलाह दी। ब्राह्मण ने सोचा कि एक बार गाय को बुड्ढी कहकर अब फिर जवान कैसे कहूँ। अंत में उन्होंने स्थिर किया कि आत्मा तो बुड्ढी होती नहीं देह बुड्ढी होती है। अतः इसे मैं 'आधी बुड्ढी आधी जवान' कहूँगा। जब किसी की कोई बात इस पक्ष में भी और उस पक्ष में भी हो तब यह उक्ति कही जाती है।

(१६) **अशोकवनिका न्याय** अशोक वन में जाने के समान (जहाँ छाया सौरभ आदि सब कुछ प्राप्त हो)। जब किसी एक ही स्थान पर सब कुछ प्राप्त हो जाय और कहीं जाने की आवश्यकता न हो तब यह कहा जाता है।

(१७) **अश्मलोष्ट न्याय**--अर्थात् तराजू पर रखने के लिये पत्थर तो ढेले से भी भारी है। यह विषमता सूचित करने के अवसर पर ही कहा जाता है। जहाँ दो वस्तुओं में सापेक्षिकता सूचित करनी होती है। वहाँ 'पाषाणेष्टक न्याय' कहा जाता है।

(१८) **अस्नेहदीप न्याय**—बिना तेल के दीये की सी बात। थोड़े ही काल रहनेवाली बात देखकर यह कहा जाता है।

(१९) **अहिकुंडल न्याय**—साँप के कुंडल मारकर बैठने के समान। किसी स्वाभाविक बात पर।

(२०) **अहि नकुल न्याय**—साँप नेवले के समान। स्वाभाविक विरोध या वैर सूचित करने के लिये।

(२१) **आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय**—आकाश के समान अपरिच्छिन्न।

(२२) आभाणक न्याय—लोकप्रवाद के समान।

(२३) आम्रवण न्याय—जिस प्रकार किसी वन में यदि आम के पेड़ अधिक होते हैं तो उसे 'आम का वन' ही कहते हैं, यद्यपि और भी पेड़ उस वन में रहते हैं, उसी प्रकार जहाँ औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही उल्लेख किया जाता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(२४) उत्पाटितदंतनाग न्याय—दाँत तोड़े हुए साँप के समान। कुछ करने धरने या हानि पहुँचाने में असमर्थ हुए मनुष्य के संबंध में।

(२५) उदकनिमज्जन न्याय—कोई दोषी है या निर्दोष इसकी एक दिव्य परीक्षा प्राचीन काल में प्रचलित थी। दोषी को पानी में खड़ा करके किसी ओर बाण छोड़ते थे और बाण छोड़ने के साथ ही अभियुक्त को तबतक डूबे रहने के लिये कहते थे जबतक वह छोड़ा हुआ बाण वहाँ से फिर छूटने पर लौट न आवे। यदि इतने बीच में डूबनेवाले का कोई अंग बाहर न दिखाई पड़ा तो उसे निर्दोष समझते थे। जहाँ सत्या-सत्य की बात आती है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(२६) उभयतः पाशरज्जु न्याय—जहाँ दोनों ओर विपत्ति हो अर्थात् दो कर्तव्यपक्षों में से प्रत्येक में दुःख हो वहाँ इसका व्यवहार होता है। 'साँप छछूँदर की गति।'

(२७) उष्ट्रकंटक भक्षण न्याय—जिस प्रकार थोड़े से सुख के लिये ऊँट काँटे खाने का कष्ट उठाता है उसी प्रकार जहाँ थोड़े से सुख के लिये अधिक कष्ट उठाया जाता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(२८) ऊपरवृष्टि न्याय—किसी बात का जहाँ कोई फल न हो वहाँ कहा जाता है।

(२९) कंठचामीकर न्याय—गले में सोने का हार हो और उसे इधर उधर ढूँढ़ता फिरे। आनंदस्वरूप ब्रह्म के अपने में रहते भी अज्ञानवश सुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगने के दृष्टांत में वेदांती कहते हैं।

(३०) कदंबगोलक न्याय—जिस प्रकार कदंब के गोले में सब फूल एक साथ ही जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ कई बातें एक साथ हो जाती हैं वहाँ इसे कहते हैं। कुछ नैयायिक शब्दो-त्पत्ति में कई वर्णों के उच्चारण एक साथ मानकर उसके दृष्टांत में यह कहते हैं। यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार कदंब में सब तरफ किंजल्क होते हैं वैसे शब्द जहाँ उत्पन्न होता है उसके सभी ओर उसकी तरंगों का प्रसार होता है।

(३१) कदलीफल न्याय—केला काटने पर ही फलता है इसी प्रकार नीच सीधे कहने से नहीं सुनते।

(३२) कफोनिगुड़ न्याय—सूत न कपास जुलाहों से लटकौवल।

(३३) करकंकण न्याय—'कंकण' कहने से ही हाथ के गहने का बोध हो जाता है, 'कर' कहने की आवश्यकता नहीं। पर कर कंकण कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'हाथ में पड़ा हुआ कड़ा'। इस प्रकार का जहाँ अभिप्राय होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(३४) काकतालीय न्याय—किसी ताड़ के पेड़ के नीचे कोई पथिक बैठा था और ऊपर एक कौवा बैठा था। कौवा किसी ओर को उड़ा और उसके उड़ने के साथ ही ताड़ का एक पका हुआ फल नीचे गिरा। यद्यपि फल पककर आपसे आप गिरा था तथापि पथिक ने दोनों बातों को साथ होते देख यही समझा कि कौवे के उड़ने से ही तालफल गिरा। जहाँ दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहाँ उनमें परस्पर कोई संबंध न होते हुए भी लोग संबंध समझ लेते हैं। ऐसा संयोग होने पर यह कहावत कही जाती है।

(३५) काकदध्युपघातक न्याय—'कौवे से दही बचाना' कहने से जिस प्रकार 'कुत्ते, बिल्ली आदि सब जंतुओं से बचाना' समझ लिया जाता है उसी प्रकार जहाँ किसी वाक्य का अभिप्राय होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(३६) काकदंतगवेषण न्याय—कौवे का दाँत ढूँढ़ना निष्फल है अतः निष्फल प्रयत्न के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।

(३७) काकाक्षिगोलक न्याय—कहते हैं, कौवे के एक ही पुतली होती है जो प्रयोजन के अनुसार कभी इस आँख में कभी उस आँख में जाती है। जहाँ एक ही वस्तु दो स्थानों में कार्य करे वहाँ के लिये यह कहावत है।

(३८) कारणगुणप्रक्रम न्याय—कारण का गुण कार्य में भी पाया जाता है। जैसे सूत का रूप आदि उससे बुने कपड़े में।

(३९) कुशकाशावलंबन न्याय—जैसे डूबता हुआ आदमी कुश काँस जो कुछ पाता है उसी को सहारे के लिये पकड़ता है, उसी प्रकार जहाँ कोई दृढ़ आधार न मिलने पर लोग इधर उधर की बातों का सहारा लेते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है। 'डूबते को तिनके का सहारा' बोलते भी हैं।

(४०) कूपखानक न्याय—जैसे कुआँ खोदनेवाले की देह में लगा हुआ कीचड़ उसी कूएँ के जल से साफ हो जाता है उसी प्रकार राम, कृष्ण आदि को भिन्न भिन्न रूपों में समझने से ईश्वर में भेद बुद्धि का जो दोष लगता है वह उन्हीं की उपासना द्वारा ही अद्वैतबुद्धि हो जाने पर मिट जाता है।

(४१) कूपमंडूक न्याय—समुद्र का मेढक किसी कूएँ में जा पड़ा। कूएँ के मेढक ने पूछा 'भाई! तुम्हारा समुद्र कितना बड़ा है।' उसने कहा 'बहुत बड़ा'। कूएँ के मेढक ने पूछा 'इस कूएँ के इतना बड़ा'। समुद्र के मेढक ने कहा 'कहाँ कुआँ, कहाँ समुद्र'। समुद्र से बड़ी कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं। इसपर कूएँ का मेढक जो कूएँ से बड़ी कोई वस्तु जानता ही न था बिगड़कर बोला 'तुम झूठे हो, कूएँ से बड़ी कोई वस्तु हो नहीं सकती'। जहाँ परिमित ज्ञान के कारण कोई अपनी जानकारी के ऊपर कोई दूसरी बात मानता ही नहीं वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(४२) कूर्मांग न्याय—जिस प्रकार कछुआ जब चाहता है तब अपने सब अंग भीतर समेट लेता है और जब चाहता है बाहर करता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि और लय करता है।

(४३) कैमुतिक न्याय—जिसने बड़े बड़े काम किए उसे कोई छोटा काम करते क्या लगता है। उसी के दृष्टांत के लिये यह उक्ति कही जाती है।

(४४) **कौंडिन्य न्याय**—यह अच्छा है पर ऐसा होता तो और भी अच्छा होता।

(४५) **गजभुक्तकपित्थ न्याय**—हाथी के खाए हुए कैथ के समान ऊपर से देखने में ठीक पर भीतर भीतर निःसार और शून्य।

(४६) **गड्डलिकाप्रवाह न्याय**—भेड़िया धसान।

(४७) **गणपति न्याय**—एक बार देवताओं में विवाद चला कि सबमें पूज्य कौन है। ब्रह्मा ने कहा जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा पहले कर आवे वही श्रेष्ठ समझा जाय। सब देवता अपने अपने वाहनों पर चले। गणेश जी चूहे पर सवार सबके पीछे रहे। इतने में मिले नारद। उन्होंने गणेश जी को युक्ति बनाई कि राम नाम लिखकर उसी की प्रदक्षिणा करके चटपट ब्रह्मा के पास पहुँच जाओ। गणपति ने ऐसा ही किया और देवताओं में वे प्रथम पूज्य हुए। इसी से जहाँ थोड़ी सी युक्ति से बड़ी भारी बात हो जाय वहाँ इसका प्रयोग करते हैं।

(४८) **गतानुगतिक न्याय**—कुछ ब्राह्मण एक घाट पर तर्पण किया करते थे। वे अपना अपना कुश एक ही स्थान पर रख देते थे जिससे एक का कुश दूसरा ले लेता था। एक दिन पहचान के लिये एक ने अपने कुश को ईंट से दबा दिया। उसकी देखा देखी दूसरे दिन सबने अपने कुश पर ईंट रखी। जहाँ एक की देखादेखी लोग कोई काम करने लगते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(४९) **गुडजिह्निका न्याय**—जिस प्रकार बच्चे को कड़वी औषध खिलाने के लिये उसे पहले गुड़ देकर फुसलाते हैं उसी प्रकार जहाँ अरुचिकर या कठिन काम कराने के लिये पहले कुछ प्रलोभन दिया जाता है वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(५०) **गोबलीवर्द न्याय**—'बलीवर्द' शब्द का अर्थ है बैल। जहाँ यह शब्द गो के साथ हो वहाँ अर्थ और भी जल्दी खुल जाता है। ऐसे शब्द जहाँ एक साथ होते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है।

(५१) **घट्टकुटीप्रभात न्याय**—एक बनिया घाट के महसूल से बचने के लिये ठीक रास्ता छोड़ ऊबड़खाबड़ स्थानों में रातभर भटकता रहा पर सबेरा होते होते फिर उसी महसूल की छावनी पर पहुँचा और उसे महसूल देना पड़ा। जहाँ एक कठिनाई से बचने के लिये अनेक उपाय निष्फल हों और अंत में उसी कठिनाई में फँसना पड़े वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(५२) **घटप्रदीप न्याय**—घड़ा अपने भीतर रखे हुए दीप का प्रकाश बाहर नहीं जाने देता। जहाँ कोई अपना ही भला चाहता है दूसरे का उपकार नहीं करता वहाँ यह प्रयुक्त होता है।

(५३) **घुणाक्षर न्याय**—घुनों के चालने से लकड़ी में अक्षरों के से आकार बन जाते हैं, यद्यपि घुन इस उद्देश्य से नहीं काटते कि अक्षर बनें। इसी प्रकार जहाँ एक काम करने में कोई दूसरी बात अनायास हो जाय वहाँ यह कहा जाता है।

(५४) **चंपकपटवास न्याय**—जिस कपड़े में चंपे का फूल रखा हो उसमें फूलों के न रहने पर भी बहुत देर तक महँक रहती है इसी प्रकार विषय भोग का संस्कार भी बहुत काल तक बना रहता है।

(५५) **जलतरंग न्याय**—अलग नाम रहने पर भी तरंग जल से भिन्न गुण की नहीं होती। ऐसा ही अभेद सूचित करने के लिये इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(५६) **जलतुंबिका न्याय**—(क) तूँबी पानी में नहीं डूबती डुबाने से ऊपर आ जाती है। जहाँ कोई बात छिपाने से छिपनेवाली नहीं होती वहाँ इसे कहते हैं। (ख) तूँबी के ऊपर मिट्टी कीचड़ आदि लपेटकर उसे पानी में डालें तो वह डूब जाती है पर कीचड़ धोकर पानी में डालें तो नहीं डूबती इसी प्रकार जीव देहादि के मलों से युक्त रहने पर संसार सागर में निमग्न हो जाता है, और मल आदि छूटने पर पार हो जाता है।

(५७) **जलानयन न्याय**—पानी 'लाओ' कहने से उसके साथ बरतन का लाना भी समझ लिया जाता है क्योंकि बरतन के बिना पानी आवेगा किसमें।

(५८) **तिलतंडुल न्याय**—चावल और तिल की तरह मिली रहने पर भी अलग दिखाई देनेवाली वस्तुओं के संबंध में इसका प्रयोग होता है।

(५९) **तृणजलौका न्याय**—दे॰ 'तृणजलौका' शब्द।

(६०) **दंडचक्र न्याय**—जैसे घड़ा बनने में दंड, चक्र आदि कई कारण हैं वैसे ही जहाँ कोई बात अनेक कारणों से होती है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(६१) **दंडापूप न्याय**—कोई डंडे में बँधे हुए मालपुए छोड़कर कहीं गया। आने पर उसने देखा कि डंडे का बहुत सा भाग चूहे खा गए हैं। उसने सोचा कि जब चूहे डंडा तक खा गए तब मालपूए को उन्होंने कब छोड़ा होगा। जब कोई दुष्कर और कष्टसाध्य कार्य हो जाता है तब उसके साथ ही लगा हुआ सुखद और सहज कार्य अवश्य ही हुआ होगा यही सूचित करने के लिये यह कहावत कहते हैं।

(६२) **दशम न्याय**—दस आदमी एक साथ कोई नदी तैरकर पार गए। पार जाकर वे यह देखने के लिये सबको गिनने लगे कि कोई छूटा या बह तो नहीं गया। पर जो गिनता था अपने को छोड़ देता इससे गिनने में नौ ही ठहरते। अंत में उस एक खोए हुए के लिये सबने रोना शुरू किया। एक चतुर पथिक ने आकर उनसे फिर से गिनने के लिये कहा। जब एक उठकर नौ तक गिन गया तब पथिक ने कहा 'दसवें तुम'। इसपर सब प्रसन्न हो गए। वेदांती इस न्याय का प्रयोग यह दिखाने के लिये करते हैं कि गुरु के 'तत्वमसि' आदि उपदेश सुनने पर अज्ञान और तज्जनित दुःख दूर हो जाता है।

(६३) **देहलीदीपक न्याय**—देहली पर दीपक रखने से भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला रहता है। जहाँ एक ही आयोजन से दो काम सधें या एक शब्द या बात दोनों ओर लगे वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६४) नष्टाश्वदग्धरथ न्याय—एक आदमी रथ पर बन में जाता था। बन में आग लगी और उसका घोड़ा मर गया। वह बहुत व्याकुल घूमता था कि इतने में एक दूसरा आदमी मिला जिसका रथ जल गया था और घोड़ा बचा था। दोनों ने मिलकर काम चला लिया। इस प्रकार जहाँ दो आदमी मिलकर एक दूसरे की त्रुटि की पूर्ति करके काम चलाते हैं वहाँ इसे कहते हैं।

(६५) नारिकेलफलांबु न्याय—नारिकेल के फल में जिस प्रकार न जाने कहाँ से कैसे जल आ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी किस प्रकार आती है नहीं जान पड़ता।

(६६) निम्नगाप्रवाह न्याय—नदी का प्रवाह जिस ओर को जाता है उधर रुक नहीं सकता। इसी प्रकार के अनिवार्य क्रम के दृष्टांत में यह कहावत है।

(६७) नृपनापितपुत्र न्याय—किसी राजा के यहाँ एक नाई नौकर था। एक दिन राजा ने उससे कहा कि कहीं से सबसे सुंदर बालक लाकर मुझे दिखाओ। नाई को अपने पुत्र से बढ़कर और कोई सुंदर बालक कहीं न दिखाई पड़ा और वह उसी को लेकर राजा के सामने आया। राजा उस काले कलूटे बालक को देख बहुत क्रुद्ध हुआ, पर पीछे उसने सोचा कि प्रेम या राग के वश इसे अपने लड़के सा सुंदर और कोई दिखाई ही न पड़ा। राग के वश जहाँ मनुष्य अंधा हो जाता है और उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं रह जाती वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।

(६८) पंकप्रक्षालन न्याय—कीचड़ लग जायगा तो धो डालेंगे इसकी अपेक्षा यही विचार अच्छा है कि कीचड़ लगने ही न पावे।

(६९) पंजरचालन न्याय—दस पक्षी यदि किसी पिंजड़े में बंद कर दिए जायँ और वे सब एक साथ यत्न करें तो पिंजड़े को इधर उधर चला सकते हैं। दस ज्ञानेंद्रियाँ और दस कर्मेंद्रियाँ प्राणरूप क्रिया उत्पन्न करके देह को चलाती हैं इसी के दृष्टांत में सांख्यवाले उक्त न्याय कहते हैं।

(७०) पाषाणेष्टक न्याय—ईंट भारी होती है पर उससे भी भारी पत्थर होता है।

(७१) पिष्टपेषण न्याय—पीसे को पीसना निरर्थक है। किए हुए काम को व्यर्थ जहाँ कोई फिर करता है वहाँ के लिये यह उक्ति है।

(७२) प्रदीप न्याय—जिस प्रकार तेल, बत्ती और आग इन भिन्न भिन्न वस्तुओं के मेल से दीपक जलता है उसी प्रकार सत्व, रज और तम इन परस्पर भिन्न गुणों के सहयोग से देह-धारण का व्यापार होता है। (सांख्य)।

(७३) प्रापाणक न्याय—जिस प्रकार घी, चीनी आदि कई वस्तुओं के एकत्र करने से बढ़िया मिठाई बनती है उसी प्रकार अनेक उपादानों के योग से सुंदर वस्तु तैयार होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही जाती है। साहित्यवाले विभाव, अनुभाव आदि द्वारा रस का परिपाक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग प्रायः करते हैं।

(७४) प्रासादवासि न्याय—महल में रहनेवाला यद्यपि कामकाज के लिये नीचे उतरकर बाहर इधर उधर भी जाता है पर उसे प्रासादवासी ही कहते हैं इसी प्रकार जहाँ जिस विषय की प्रधानता होती है वहाँ उसी का उल्लेख होता है।

(७५) फलवत्सहकार न्याय—आम के पेड़ के नीचे पथिक छाया के लिये ही जाता है पर उसे फल भी मिल जाता है। इसी प्रकार जहाँ एक लाभ होने से दूसरा लाभ भी हो वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(७६) बहुवृकाकृष्ट न्याय—एक हिरन को यदि बहुत से भेड़िए लगें तो उसके अंग एक स्थान पर नहीं रह सकते। जहाँ किसी वस्तु के लिये बहुत से लोग खींचाखींची करते हैं वहाँ वह यथास्थान या समूची नहीं रह सकती।

(७७) बिलवर्तिगोधा न्याय—जिस प्रकार बिल में स्थित गोह का विभाग आदि नहीं हो सकता उसी प्रकार जो वस्तु अज्ञात है उसके संबंध में भला बुरा कुछ नहीं कहा जा सकता।

(७८) ब्राह्मणग्राम न्याय—जिस ग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक होती है उसे ब्राह्मणों का गाँव कहते हैं यद्यपि उसमें कुछ और लोग भी बसते हैं। औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है, यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(७९) ब्राह्मणश्रमण न्याय—ब्राह्मण यदि अपना धर्म छोड़ श्रमण (बौद्ध भिक्षुक) भी हो जाता है तब भी उसे ब्राह्मण श्रमण कहते हैं। एक वृत्ति को छोड़ जब कोई दूसरी वृत्ति ग्रहण करता है तब भी लोग उसकी पूर्ववृत्ति का निर्देश करते हैं।

(८०) मज्जनोन्मज्जन न्याय—तैरना न जाननेवाला जिस प्रकार जल में पड़कर डूबता उतराता है उसी प्रकार मूर्ख या दुष्ट वादी प्रमाण आदि ठीक न दे सकने के कारण क्षुब्ध और व्याकुल होता है।

(८१) मंडूकतोलन न्याय—एक धूर्त बनिया तराजू पर सौदे के साथ मेढक रखकर तौला करता था। एक दिन मेढक कूदकर भागा और वह पकड़ा गया। छिपाकर की हुई बुराई का भंडा एक दिन फूटता है।

(८२) रज्जुसर्प न्याय—जबतक दृष्टि ठीक नहीं पड़ती तबतक मनुष्य रस्सी को साँप समझता है इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य दृश्य जगत् को सत्य समझता है, पीछे ब्रह्मज्ञान होने पर उसका भ्रम दूर होता है और वह समझता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (वेदांती)।

(८३) राजपुत्रव्याध न्याय—कोई राजपुत्र बचपन में एक व्याध के घर पड़ गया और वहीं पलकर अपने को व्याधपुत्र ही समझने लगा। पीछे जब लोगों ने उसे उसका कुल बताया तब उसे अपना ठीक ठीक ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य अपने को न जाने क्या समझा करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह समझता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। (वेदांती)।

(८४) राजपुरप्रवेश न्याय—राजा के द्वार पर जिस प्रकार बहुत से लोगों की भीड़ रहती है पर सब लोग बिना गड़बड़

या हल्ला किए चुपचाप कायदे से खड़े रहते हैं उसी प्रकार जहाँ सुव्यवस्थापूर्वक कार्य होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(८५) रात्रिंदिवस न्याय—रात दिन का फर्क। भारी फर्क।

(८६) लूतातंतु न्याय—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही सूत निकालकर जाला बनाती है और फिर आप ही उसका संहार करती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही सृष्टि करता है और अपने में उसे लय करता है।

(८७) लोष्टलगुड़ न्याय—ढेला तोड़ने के लिये जैसे डंडा होता है उसी प्रकार जहाँ एक का दमन करनेवाला दूसरा होता है वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(८८) लोह चुंबक न्याय—लोहा गतिहीन और निष्क्रिय होने पर भी चुंबक के आकर्षण से उसके पास जाता है उसी प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृति के साहचर्य से क्रिया में तत्पर होता है। (सांख्य)।

(८९) वरगोष्ठी न्याय—जिस प्रकार वरपक्ष और कन्यापक्ष के लोग मिलकर विवाह रूप एक ऐसे कार्य का साधन करते हैं जिससे दोनों का अभीष्ट सिद्ध होता है उसी प्रकार जहाँ कई लोग मिलकर सबके हित का कोई काम करते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(९०) वह्निधूम न्याय—धूमरूप कार्य देखकर जिस प्रकार कारण रूप अग्नि का ज्ञान होता है उसी प्रकार कार्य द्वारा कारण अनुमान के संबंध में यह उक्ति है (नैयायिक)।

(९१) बिल्वखल्वाट (खल्वाट) न्याय—धूप से व्याकुल गंजा छाया के लिये बेल के पेड़ के नीचे गया। वहाँ उसके सिर पर एक बेल टूटकर गिरा। जहाँ इष्टसाधन के प्रयत्न में अनिष्ट होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(९२) विषवृक्ष न्याय—विष का पेड़ लगाकर भी कोई उसे अपने हाथ से नहीं काटता। अपनी पाली पोसी वस्तु का कोई अपने हाथ से नाश नहीं करता।

(९३) वीचितरंग न्याय—एक के उपरांत दूसरी, इस क्रम से बराबर आनेवाली तरंगों के समान। नैयायिक ककारादि वर्णों की उत्पत्ति वीचितरंग न्याय से मानते हैं।

(९४) बीजांकुर न्याय—बीज से अंकुर या अंकुर से बीज है यह ठीक नहीं कहा जा सकता। न बीज के बिना अंकुर हो सकता है न अंकुर के बिना बीज। बीज और अंकुर का प्रवाह अनादि काल से चला आता है। दो संबद्ध वस्तुओं के नित्य प्रवाह के दृष्टांत में वेदांती इस न्याय को कहते हैं।

(९५) वृक्षप्रकंपन न्याय—एक आदमी पेड़ पर चढ़ा। नीचे से एक ने कहा कि यह डाल हिलाओ, दूसरे ने कहा यह डाल हिलाओ। पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी कुछ स्थिर न कर सका कि किस डाल को हिलाऊँ। इतने में एक आदमी ने पेड़ का धड़ ही पकड़कर हिला डाला जिससे सब डालें हिल गईं। जहाँ कोई एक बात सबके अनुकूल हो जाती है वहाँ इसका प्रयोग होता है।

(९६) वृद्धकुमारिका न्याय या वृद्धकुमारी वाक्य न्याय—कोई कुमारी तप करती करती बुड्ढी हो गई। इंद्र ने उससे कोई एक वर माँगने के लिये कहा। उसने वर माँगा कि मेरे बहुत से पुत्र सोने के बरतनों में खूब घी दूध और अन्न खायँ। इस प्रकार उसने एक ही वाक्य में पति, पुत्र, गोधन धान्य सब कुछ माँग लिया। जहाँ एक की प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो वहाँ यह कहावत कही जाती है।

(९७) शतपत्रभेद न्याय—सौ पत्ते एक साथ रखकर छेदने से जान पड़ता है कि सब एक साथ एक काल में ही छिद गए पर वास्तव में एक एक पत्ता भिन्न भिन्न समय में छिदा। कालांतर की सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान नहीं हुआ। इस प्रकार जहाँ बहुत से कार्य भिन्न भिन्न समयों में होते हुए भी एक ही समय में हुए जान पड़ते हैं वहाँ यह दृष्टांत वाक्य कहा जाता है। (सांख्य)।

(९८) श्यामरक्त न्याय—जिस प्रकार कच्चा काला घड़ा पकने पर अपना श्याम गुण छोड़ कर रक्तगुण धारण करता है उसी प्रकार पूर्व गुण का नाश और अपर गुण का धारण सूचित करने के लिये यह उक्ति कही जाती है।

(९९) श्यालकशुनक न्याय—किसी ने एक कुत्ता पाला था और उसका नाम अपने साले का नाम रखा था। जब वह कुत्ते का नाम लेकर गालियाँ देता तब उसकी स्त्री अपने भाई का अपमान समझकर बहुत चिढ़ती। जिस उद्देश्य से कोई बात नहीं की जाती वह यदि उससे हो जाती है तो यह कहावत कही जाती है।

(१००) संदंशपतित न्याय—सँड़सी जिस प्रकार अपने बीच आई हुई वस्तु को पकड़ती है उसी प्रकार जहाँ पूर्व और उत्तर पदार्थ द्वारा मध्यस्थित पदार्थ का ग्रहण होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है।

(१०१) समुद्रवृष्टि न्याय—समुद्र में पानी बरसने से जैसे कोई उपकार नहीं होता उसी प्रकार जहाँ जिस बात की कोई आवश्यकता या फल नहीं वहाँ यदि वह की जाती है तो यह उक्ति चरितार्थ की जाती है।

(१०२) सर्वापेक्षा न्याय—बहुत से लोगों का जहाँ निमंत्रण होता है वहाँ यदि कोई सबके पहले पहुँचता है तो उसे सबकी प्रतीक्षा करनी होती है। इस प्रकार जहाँ किसी काम के लिये सबका आसरा देखना होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है।

(१०३) सिंहावलोकन न्याय—सिंह शिकार मारकर जब आगे बढ़ता है तब पीछे फिर फिरकर देखता जाता है। इसी प्रकार जहाँ अगली और पिछली सब बातों की एक साथ आलोचना होती है वहाँ इस उक्ति का व्यवहार होता है।

(१०४) सूचीकटाह न्याय—सुई बनाकर कड़ाह बनाने के समान। किसी लोहार से एक आदमी ने आकर कड़ाह बनाने को कहा। थोड़ी देर में एक दूसरा आया, उसने सुई बनाने के लिये कहा। लोहार ने पहले सुई बनाई तब कड़ाह। सहज काम पहले

करना तब कठिन काम में हाथ लगाना, इसी के दृष्टांत में यह कहा जाता है।

(१०५) सुंदोपसुंद न्याय—सुंद और उपसुंद दोनों भाई बड़े बली दैत्य थे। एक स्त्री पर दोनों मोहित हुए। स्त्री ने कहा दोनों में जो अधिक बलवान् होगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। परिणाम यह हुआ कि दोनों लड़ मरे। परस्पर के फूट से बलवान् से बलवान् मनुष्य नष्ट हो जाते हैं यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(१०६) सोपानारोहण न्याय—जिस प्रकार प्रासाद पर जाने के लिये एक एक सीढ़ी क्रम से चढ़ना होता है उसी प्रकार किसी बड़े काम के करने में क्रम क्रम से चलना पड़ता है।

(१०७) सोपानावरोहण न्याय—सीढ़ियाँ जिस क्रम से चढ़ते हैं उसी के उलटे क्रम से उतरते हैं। इसी प्रकार जहाँ किसी क्रम से चलकर फिर उसी के उलटे क्रम से चलना होता है (जैसे, एक बार एक से सौ तक गिनती गिनकर फिर सौ से निन्नानबे, अट्ठानबे इस उलटे क्रम से गिनना) वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(१०८) स्थविरलगुड न्याय—बुड्ढे के हाथ से फेंकी हुई लाठी जिस प्रकार ठीक निशाने पर नहीं पहुँचती उसी प्रकार किसी बात के लक्ष्य तक न पहुँचने पर यह उक्ति कही जाती है।

(१०९) स्थूणानिखनन न्याय—जिस प्रकार घर के छप्पर में चाँड़ देने के लिये खंभा गाड़ने में उसे मिट्टी आदि डालकर दृढ़ करना होता है उसी प्रकार युक्ति उदाहरण द्वारा अपना पक्ष दृढ़ करना पड़ता है।

(११०) स्थूलारुंधती न्याय—विवाह हो जाने पर वर और कन्या को अरुंधती तारा दिखाया जाता है जो दूर होने के कारण बहुत सूक्ष्म है और जल्दी दिखाई नहीं देता। अरुंधती दिखाने में जिस प्रकार पहले सप्तर्षि को दिखाते हैं जो बहुत जल्दी दिखाई पड़ता है और फिर उंगली से बताते हैं कि उसी के पास वह अरुंधती है देखो, इसी प्रकार किसी सूक्ष्म तत्व का परिज्ञान कराने के लिये पहले स्थूल दृष्टांत आदि देकर क्रमशः उस तत्व तक ले जाते हैं।

(१११) स्वामिभृत्य न्याय—जिस प्रकार मालिक का काम करके नौकर भी स्वामी की प्रसन्नता से अपने को कृतकार्य समझता है उसी प्रकार जहाँ दूसरे का काम हो जाने से अपना भी काम या प्रसन्नता हो जाय वहाँ के लिये यह उक्ति है।

ऊपर जो न्याय दिए गए हैं उनका व्यवहार प्रायः होता है और बहुत से न्याय संस्कृत में आते हैं जो विस्तारभय से नहीं दिए गए। लौकिक न्याय संग्रह नामक ग्रंथ में जिसके कर्ता रघुनाथ हैं ३६४ न्यायों की सूची है।

५. सादृश्यता। समानता। तुल्यता (को०)। ६. विष्णु का एक नाम (को०)।

न्यायकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० न्यायकर्तृ] न्याय करनेवाला। दो पक्षों के विवाद का निर्णय करनेवाला। इंसाफ करनेवाला। मुकदमे का फैसला करनेवाला हाकिम।

न्यायतः—क्रि० वि० [सं० न्यायतस्] १. न्याय से। धर्म और नीति के अनुसार। ईमान से। २. ठीक ठीक।

न्यायता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय का भाव। औचित्य।

न्यायनिर्वपण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम (महाभारत)।

न्यायपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचरण का न्यायसंमत मार्ग। उचित रीति। २. मीमांसा दर्शन (को०)।

न्यायपर—वि० [सं०] न्यायशील। न्यायी। को०]।

न्यायपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायशीलता। न्यायी होने का भाव।

न्यायपरायण—वि० [सं०] दे० 'न्यायपर' [को०]।

न्यायप्रिय—वि० [सं०] जिसे न्याय प्रिय हो।

न्यायवर्ती—वि० [सं० न्यायवर्तिन्] न्याय पथ पर चलनेवाला [को०]।

न्यायवादी—वि० [सं० न्यायवादिन्] १. उचित या न्याय को कहनेवाला। २. निर्णायक।

न्यायवान्—संज्ञा पुं० [सं० न्यायवत्] [वि० स्त्री० न्यायवती] न्याय पर चलनेवाला। विवेकी। न्यायी।

न्यायवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध आचरण। सदाचरण [को०]।

न्यायशील—वि० [सं०] न्यायी। न्याय करनेवाला [को०]।

न्यायसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जहाँ विवादों का निर्णय हो। कचहरी। अदालत।

न्यायसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उचित या उपयुक्त व्यवहार [को०]।

न्यायाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायकर्ता। व्यवहार या विवाद का निर्णय करनेवाला अधिकारी। मुकद्दमे का फैसला करनेवाला अधिकारी। जज।

न्यायालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ न्याय अर्थात् व्यवहार या विवाद का निर्णय हो। वह जगह जहाँ मुकदमों का फैसला हो। अदालत। कचहरी।

न्यायी—संज्ञा पुं० [सं० न्यायिन्] न्याय पर चलनेवाला। नीतिसंमत आचरण करनेवाला। उचित पक्ष ग्रहण करनेवाला।

न्याय्य—वि० [सं०] न्याययुक्त। न्यायसंगत।

न्यार(पु)[1]—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निन्निअड] दे० 'न्यारा'।

न्यार[2]—संज्ञा पुं० [हिं० निवार] पसही धान। मुन्यन्न।

न्यार[3]—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा] पशुओं को दिया जानेवाला चारा। भूसा आदि। उ०—दे न्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार बनी माता धरती।—मिट्टी०, पृ० ४४।

न्यारा—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निन्निअड, निन्नियर, पुं०हिं० निन्यार] [वि० स्त्री० न्यारी] १. जो पास न हो। दूर। २. जो मिला या लगा न हो। अलग। पृथक्। जुदा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

३. और ही। अन्य। भिन्न। जैसे,—यह बात न्यारी है। ४. निराला। अनोखा। विलक्षण। जैसे,—मथुरा तीन लोक से न्यारी।

न्यारिया—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा] सुनारों के निआर (राख इत्यादि) को धोकर सोना चाँदी एकत्र करनेवाला।

न्यारे—क्रि० वि० [हिं० न्यारा] १. पास नहीं। दूर। जैसे,—उससे न्यारे रहो। २. अलग। पृथक्। साथ में नहीं। जैसे,—वह हमसे न्यारे हो गया।

न्याव—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] १. नियम नीति। आचरण। पद्धति। उ०—ऊधो, ताको न्याव है जाहि न सूझै नैन।—सूर (शब्द०)। २. उचित पक्ष। वाजिब बात। कर्तव्य का ठीक निर्धारण। ३. विवेक। उचित अनुचित की बुद्धि। इंसाफ। जैसे,—जो तुम्हारे न्याव में आवे वही करो। ४. दो पक्षों के बीच निर्णय। विवाद या झगड़े का निबटेरा। व्यवहार या मुकद्दमे का फैसला। जैसे —राजा करे सो न्याव।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—न्याव चुकाना = झगड़ा निबटाना। विवाद का निर्णय करना। फैसला करना।

न्यास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० न्यस्त] १. स्थापन। रखना। २. यथास्थान स्थापन। जगह पर रखना। ठीक जगह क्रम से लगाना या सजाना। ३. स्थाप्य द्रव्य। किसी की वस्तु जो दूसरे के यहाँ इस विश्वास पर रखी हो कि वह उसकी रक्षा करेगा और माँगने पर लौटा देगा। धरोहर। थाती। ४. अर्पण। ५. त्याग। ६. संन्यास। ७ पूजा की तांत्रिक पद्धति के अनुसार देवता के भिन्न भिन्न अंगों का ध्यान करते हुए मंत्र पढ़कर उनपर विशेष वर्णों का स्थापन।

यौ०—अंगन्यास। करन्यास।

८. किसी रोग या बाधा की शांति के लिये रोगी या बाधाग्रस्त मनुष्य के एक एक अंग पर हाथ ले जाकर मंत्र पढ़ने का विधान। ९. काशिका वृत्ति (को०)। १०. निशान। चिह्न (को०)। ११. आवाज या ध्वनि का मंद करना (को०)। १२. अंकन। चित्रण (को०)।

न्यासधारी—संज्ञा पुं० [सं०] थाती रखनेवाला। धरोहर रखनेवाला (को०)।

न्यासस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त किया जाय।

न्यासापह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर को इनकार जाना। थाती लौटाने से अस्वीकार करना (को०)।

न्यासिक—वि० [सं०] धरोहर रखनेवाला। जो किसी की थाती रखे।

न्यासी—संज्ञा पुं० [सं० न्यासिन्] संन्यासी (को०)।

न्युब्ज[1]—वि० [सं०] १. अधोमुख। औंधा। २. कुबड़ा। ३. रोग से जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो।

न्युब्ज[2]—संज्ञा पुं० १. कुश। २ माला। ३. एक यज्ञपात्र। ४. कमरंग फल। कमरख। ५. न्यग्रोध वृक्ष (को०)।

न्युब्जखड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] टेढ़ी तलवार। वक्रखड्ग (को०)।

न्यूज—संज्ञा स्त्री० [अं०] समाचार। संवाद। वृत्तांत। वृत्त। खबर।

यौ०—न्यूजप्रिंट = समाचारपत्र छापने का कागज। एक प्रकार का कागज। न्यूजपेपर।

न्यूजपेपर—संज्ञा पुं० [अं०] समाचारपत्र। अखबार।

न्यून—वि० [सं०] १. कम। थोड़ा। अल्प। २. घटकर। कम। ओछा। ३. नीच। क्षुद्र। ४. विकारयुक्त। विकृत।

न्यूनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी। २. हीनता।

न्यूनांग—वि० [सं० न्यूनाङ्ग] विकलांग। अंगभंग। अपंग (को०)।

न्यूनाधिक—वि० [सं०] १. थोड़ा बहुत। कमोबेश (को०)।

न्योचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सायण के अनुसार दासी या सेविका। २. स्त्रियों का एक आभूषण (को०)।

न्योछावर—संज्ञा स्त्री० [हिं० निछावर] दे० 'निछावर'।

न्योजी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लीची?] १. लीची नामक फल। उ०—कोइ नारँग कोइ झाड़ चिरौंजी। कोइ कटहर बड़हर कोइ न्योजी।—जायसी (शब्द०)। २. नेता। चिलगोजा।

न्योतना—क्रि० स० [हिं० न्योता + ना (प्रत्य०)] १. किसी रीति रस्म या आनंद उत्सव आदि में संमिलित होने के लिये इष्ट मित्र, बंधु बांधव आदि को बुलाना। निमंत्रित करना।

संयो० क्रि०—देना।

२. दूसरे को अपने यहाँ भोजन करने के लिये बुलाना। जैसे,—उसने सौ ब्राह्मण न्योते हैं।

न्योतनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० न्योतना] वह खाना पीना जो विवाह आदि मंगल अवसरों पर होता है।

न्योतहरी—संज्ञा पुं० [हिं० न्योता] निमंत्रित मनुष्य। न्योते में आया हुआ आदमी।

न्योता—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] किसी रीति रस्म, आनंद उत्सव आदि में संमिलित होने के लिये इष्ट मित्र, बंधु बांधव आदि का आह्वान। बुलावा। निमंत्रण।

क्रि० प्र०—देना।

२. अपने स्थान पर भोजन के लिये बुलावा। भोजन स्वीकार करने की प्रार्थना। जैसे,—उन्होंने दस ब्राह्मणों को न्योता दिया है।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—देना।

३. वह भोजन जो दूसरे को अपने यहाँ कराया जाय या दूसरे के यहाँ (उसकी प्रार्थना पर) किया जाय। दावत। जैसे,—(क) वह न्योता खाने गया है। (ख) हमें न्योता खिलाओ।

क्रि० प्र०—खाना।—खिलाना।

४. वह भेंट या धन जो अपने इष्टमित्र, संबंधी इत्यादि के यहाँ से किसी शुभ या अशुभ कार्य में संमिलित होने का न्योता पाकर उसके यहाँ भेजा जाता है। जैसे,—इसकी कन्या के विवाह में मैंने १००) न्योता भेजा था।

न्योरा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० नेवला] दे० 'नेवला'।

न्योरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० नूपुर] बड़े दानों का घुँघरू। नेवर।

न्योला—संज्ञा पुं० [हिं० नेवला] दे० 'न्योला'।

न्योली—संज्ञा स्त्री० [सं० नली] नेती, धोती, आदि के समान हठयोग की एक क्रिया जिसमें पेट के नलों को पानी से साफ करते हैं।

न्यौज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नैवेद्य] नेवज। नैवेद्य।

न्रप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नृप] राजा। नृप।

न्वैनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नोहनी', 'नोई'।

न्हवाना(पु)—क्रि० स० [सं० स्नापन, प्रा० ण्हावण] स्नान कराना। नहवाना।

न्हान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, प्रा० ण्हाण] दे० 'नहान'।

न्हाना†(पु)—क्रि० अ० [सं० स्नान, प्रा० ण्हाण] दे० 'नहाना'।

न्हावना†(पु)—क्रि० स० [दे० स्नापन, प्रा० ण्हावण, हिं० नहवाना] स्नान कराना। नहलाना।